॥ श्रीहरिः ॥

1133

# संक्षिप्त
# श्रीमद्देवीभागवत

[ सचित्र, मोटा टाइप, केवल हिन्दी ]

गीताप्रेस, गोरखपुर

1133

॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त

# श्रीमद्देवीभागवत

( सचित्र, मोटा टाइप )

केवल हिन्दी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक

हनुमानप्रसाद पोद्दार
चिम्मनलाल गोस्वामी

॥ श्रीहरिः ॥

# नम्र निवेदन

अठारह पुराणोंकी परिगणनामें जिस प्रकार श्रीमद्भागवत-महापुराण शीर्ष स्थानपर है उसी प्रकार देवीभागवतकी भी महापुराणके रूपमें उतनी ही महत्ता एवं मान्यता प्राप्त है। प्राचीनकालसे ही शाक्त-भक्त इसे 'शाक्त-भागवत' या देवीभागवत और भागवत-महापुराणको वैष्णव-भक्त 'वैष्णव-भागवत' अथवा श्रीमद्भागवत कहते चले आ रहे हैं। तत्त्व-चिन्तकोंकी दृष्टिमें वस्तुतः दोनों भागवत मिलकर एक ही महापुराणकी पूर्ति करते हैं। जैसे वामाङ्ग और दक्षिणाङ्गके मिलनेसे एक ही महाकायकी पूर्ति होती है, वैसे ही दोनों भागवत एक ही परमतत्त्वके वाम तथा दक्षिण अङ्गके पूरक हैं। दोनों ही एक ही 'परात्पर-तत्त्व' का बोध करानेवाले भिन्न-भिन्न नाम-रूप, गुण-ऐश्वर्य, लीला-कथा और महिमा आदिका प्रतिपादन मुख्यरूपसे करते हैं। दोनों ही महापुराणोंका एकमात्र लक्ष्य है—परमात्म-तत्त्वसे जीवका एकात्मक सम्बन्ध जोड़ना अर्थात् मनुष्य-जीवनके अभीष्ट, अन्तिम लक्ष्य—मोक्ष-प्राप्ति-हेतु प्रेरित और तत्पर करना।

भारतीय आर्य-धर्म-दर्शनकी यह विशेषता है कि इसमें सच्चिदानन्द परात्पर ब्रह्मकी मातृ-रूपमें आराधना की गयी है। यह आराधना कल्पित आराधना नहीं है। वस्तुतः यहाँ अनन्त अद्भुत मातृ-रूपमें शुद्ध सच्चिदानन्दमय परात्पर-तत्त्व ही स्वयं प्रकट है। परब्रह्मकी मातृरूपमें उपासना स्वयंमें बड़े महत्त्वकी है। संतानके लिये माता ही सबसे अधिक निकट और सहज स्नेहसे द्रवित होती है। पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। वह तो सदा वात्सल्य-सुधा-धारासे निज संततिके जीवनको ( सर्वविध उत्कर्ष और साधन-साफल्य-मण्डित करने-हेतु ) सदा अभिषिक्त और सम्पुष्ट ही करती रहती है। समस्त आर्तियोंका नाश, समस्त विघ्नोंकी निवृत्ति, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, सिद्धि, सफलताकी प्राप्ति, परम वैराग्य और तत्त्व-ज्ञानका उदय, भक्ति-प्रेमकी सुधाधारामें अवगाहन—सभी दुर्लभ-से-दुर्लभ पदार्थों तथा तत्त्वोंकी उपलब्धि माताकी आराधना-उपासनासे सहज ही हो जाती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

उसी साधनोपयोगी, कैवल्यदायक, सुप्रसिद्ध श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका यह संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर सर्वप्रथम सन् १९६० ई० में 'कल्याण' के ३४ वें वर्षके विशेषाङ्क (संक्षिप्त देवीभागवताङ्क)-के रूपमें प्रकाशित हुआ था। उस समय 'कल्याण' के प्रबुद्ध पाठकों, जिज्ञासु भक्तों, साधकों और सर्वसाधारण श्रद्धालु आस्तिकजनोंने इसे सहज सादर भावसे अपनाया और अधिक पसन्द किया था। फलस्वरूप उक्त विशेषाङ्कका वह संस्करण (जो संख्यामें लाखसे भी अधिक था) शीघ्र ही समाप्त हो गया। उसी समयसे इसके पुनर्मुद्रणकी माँग निरन्तर बनी हुई थी। पराम्बा भगवतीकी अहैतुकी कृपासे 'कल्याण' का पूर्व प्रकाशित वही विशेषाङ्क अब ग्रन्थाकारमें (मात्र लेखोंको छोड़कर सम्पूर्ण ग्रन्थका साररूप) 'संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत' के नामसे श्रीजगदम्बाके सम्मान्य प्रेमी भक्तजनों और सहृदय पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया गया है।

इसमें श्रीदेवीभागवत-पुराणके विविध विचित्र कथा-प्रसङ्गोंसहित देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि तथा देवी-उपासनाके फलरूपमें प्राप्त आश्चर्यमय शुभ परिणामोंके रोचक तथा ज्ञानप्रद आख्यान भरे पड़े हैं। विशेषतः पराशक्ति श्रीमद्देवीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिका तात्त्विक विवेचन और लीला-कथाओंका सरस उपादेय वर्णन इसकी मुख्य प्रतिपाद्य विषय-सामग्री है। साथ ही अनेकानेक ज्ञानप्रद, रोचक पौराणिक कथाओं एवं अन्यान्य सुरुचिपूर्ण शिक्षाप्रद चरित्रोंका भी इसमें सुन्दर उल्लेख है।

देवीभागवतके श्रवण तथा पारायणकी बड़ी महिमा है। इस कल्याणकारी परम पावन ग्रन्थके पढ़ने-सुनने तथा पारायण करनेसे लोक-परलोकमें सब प्रकारके उत्कर्षकी प्राप्ति और भवरोगसे मुक्ति मिलती है—ऐसा कहा गया है।

भगवतीकी परम अनुकम्पाने ही देवी-स्तवन व आराधनके रूपमें श्रीमद्देवीभागवतका यह मुख्य सार ( ग्रन्थरूपमें ) आप सबके कर-कमलोंमें पुनः समर्पित करनेमें हमें समर्थ और निमित्त बनाया है। इसे हम अकारण करुणामयी माँकी सहज कृपा-वात्सल्यता ही अपना परम सौभाग्य मानते हैं।

आशा है कि सभी जिज्ञासु, श्रद्धालु आस्तिकजन और प्रेमी पाठक इस ग्रन्थरत्नसे अधिकाधिक लाभ उठाते हुए आध्यात्मिक साधना-पथपर उत्तरोत्तर अग्रसरित होते रहेंगे। हमारा यह प्रयास सच्चे अर्थोंमें तभी सार्थक होगा।

**—प्रकाशक**

# श्रीदेवीभागवतकी आरती

आरति जग-पावन पुरानकी।
मातृ-चरित्र-विचित्र-खानकी॥
देवि-भागवत अतिशय सुन्दर।
परमहंस मुनि-जन-मन-सुखकर।
विमल ज्ञान-रवि मोह-तिमिर-हर॥
परम मधुर सुषमा-वितानकी॥ १॥
कलि-कल्मष-विष-विषम-निवारिणि।
युगपत् भोग-सुयोग प्रसारिणि।
परमानन्द-सुधा विस्तारिणि॥
सुमहौषध अज्ञान-हानकी॥ २॥
संतत सकल सुमङ्गलदायिनि।
सन्मति सद्गति मुक्ति-प्रदायिनि।
नूतन नित्य विभूति-विधायिनि॥
परमप्रभा परतत्त्व-ज्ञानकी॥ ३॥
आर्ति-अशान्ति, भ्रान्ति-भय-भंजनि।
पाप-ताप माया-मद-गंजनि।
शुचि सेवक-मन-मानस-रंजनि॥
लीला-रस मधुमय निधानकी॥ ४॥

# विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या | विषय पृष्ठ-संख्या



**चौथा स्कन्ध**

विषय पृष्ठ-संख्या



विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या | विषय पृष्ठ-संख्या

## छठा स्कन्ध



## सातवाँ स्कन्ध

विषय पृष्ठ-संख्या



विषय पृष्ठ-संख्या

## आठवाँ स्कन्ध



## नवाँ स्कन्ध

| विषय | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|

## दसवाँ स्कन्ध



## ग्यारहवाँ स्कन्ध



## बारहवाँ स्कन्ध



## चित्र-सूची

### इकरंगे

### यन्त्र



### रेखाचित्रोंकी सूची

भक्तोंकी आराध्या भगवती दुर्गा

उमा हैमवतीदेवी

## भगवती शताक्षी या शाकम्भरी

शत शत नेत्रोंसे बरसाया नौ दिन तक अविरल अति जल।
भूखे जीवोंके हित दिए अमित तृण अन्न शाक शुचि फल।।

वामाङ्गाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका

मूलप्रकृति राधाके दक्षिण अंगसे राधाका और वाम अंगसे लक्ष्मीका प्रकट होना

श्रीश्रीराधादेवी

सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम्। शृङ्गाररसिन्धुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम्॥

श्रीभ्रामरीदेवी

श्रीश्रीदशभुजागायत्रीदेवी

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।

श्रीभुवनेश्वरी देवी

# श्रीमद्देवीभागवत-माहात्म्य

सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालिनी या च रौद्री संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या।
पश्यन्ती मध्यमाथो तदनु भगवती वैखरी वर्णरूपा सास्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधितालंकरोतु॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

## ऋषिगण तथा सूतजीका संवाद, देवीभागवतकी महिमा

जो सृष्टिकालमें सर्गशक्ति, स्थितिकालमें पालनशक्ति तथा संहारकालमें रुद्रशक्तिके रूपमें रहती हैं, चराचर जगत् जिनके मनोरञ्जनकी सामग्री है; परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाणीके रूपमें जो विराजमान रहती हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरके द्वारा जो आराधित हैं, वे भगवती आद्याशक्ति हमारी वाणीको सुशोभित करें। भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ अर्जुन, भगवती सरस्वती एवं महाभाग व्यासजीको प्रणाम करके इस देवीभागवत नामक विजयगाथाका उच्चारण करना चाहिये।

ऋषिगण बोले—सूतजी! आप बड़े बुद्धिमान् हैं। व्यासजीसे आपने शिक्षा प्राप्त की है। आप बहुत वर्षोंतक जीवित रहें। भगवन्! अब आप हमें मनको प्रसन्न करनेवाली पवित्र कथाएँ सुनानेकी कृपा कीजिये। भगवान् विष्णुके अवतारकी पावन कथा सम्पूर्ण पापोंका संहार करनेवाली एवं अत्यन्त अद्भुत है। हम भक्तिपूर्वक उसका श्रवण कर चुके। भगवान् शंकरका दिव्य चरित्र, भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेकी महिमा तथा इसका इतिहास भी आपके मुखारविन्दसे सुननेका सुअवसर हमें मिल चुका। अब हमें वह कथा सुननेकी इच्छा है, जो परम पवित्र हो तथा जिसके प्रभावसे मनुष्य सुगमतापूर्वक भुक्ति और मुक्तिके सम्यक् अधिकारी बन जायँ। महाभाग! आपसे बढ़कर संदेह-निवारण करनेवाले अन्य किसीको हम नहीं देखते। आप हमें मुख्य-मुख्य कथाएँ कहनेकी कृपा कीजिये, जिससे कलियुगी मनुष्योंको भी सिद्धि मिल सके।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तुम बड़े भाग्यशाली हो। जगत्के कल्याण होनेकी

इच्छासे तुमने यह बहुत उत्तम बात पूछी। अतः सम्पूर्ण शास्त्रोंका जो साररूप है, वह प्रसंग विशदरूपसे तुम्हारे सामने मैं उपस्थित करता हूँ।

ऋषियोंने कहा—महाभाग सूतजी! आप वक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। वह पुराण कैसा है और उसके सुननेकी कौन-सी विधि है, कितने दिनोंमें यह कथा सम्पन्न होती है, इस कथामें किस

देवताका पूजन होना चाहिये तथा कितने मनुष्य पहले इसे सुन चुके हैं और उनकी कौन-कौन-सी अभिलाषाएँ पूर्ण हो चुकी हैं? यह सब हमें सुनानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—व्यासजी भगवान् विष्णुके अंश हैं। पराशरजी उनके पिता और सत्यवती माता हैं। व्यासजीने वेदोंको चार भागोंमें विभाजन करके उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया, किंतु जो संस्कारहीन, नीच कुलमें उत्पन्न, वेद पढ़नेके अनधिकारी एवं स्त्रियाँ और मूर्खजन हैं, उन्हें धर्मका ज्ञान कैसे हो—यह चिन्ता उनके मनमें जाग उठी। तब स्वयं मनमें विचार करके उन्होंने उक्त प्राणियोंके धर्मज्ञानार्थ पुराण-संहिताका सम्पादन किया। अठारह पुराणोंकी रचना करके उनको मुझे पढ़ाया। महाभारतकी कथा भी सुनायी। उसी समय भुक्ति और मुक्ति देनेवाला देवीभागवत नामक पुराण रचा। स्वयं उसके वक्ता बने और राजा जनमेजयको श्रोता होनेका सुअवसर प्राप्त हुआ।

पूर्व समयकी बात है—जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् थे, उन्हें तक्षक सर्पने डँस लिया था। उनकी दुर्गति-निवारणके लिये जनमेजयने देवीभागवत सुना। वेदव्यासजीके मुखारविन्दसे नौ दिनोंमें इसकी श्रवण-विधि सम्पन्न की। वे त्रिलोकजननी भगवती आद्या-शक्तिका विधि-पूर्वक पूजन करते थे। नवाह यज्ञ समाप्त होनेपर उसी क्षण महाराज परीक्षित्को भगवतीका परमधाम प्राप्त हो गया। दिव्य रूप धारण करके वे वहाँ पधार गये। पिताको परमधाम प्राप्त हो गया—यह देखकर राजा जनमेजयको अपार हर्ष हुआ। उन्होंने मुनिवर व्यासजीकी भलीभाँति पूजा की।

जो मानव भक्तिपूर्वक देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, सिद्धि सदा उनके संनिकट खेलती रहती है। अतः उन्हें निरन्तर इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें अनेकों धर्म थे; किंतु कलिके लिये एक पुराण-श्रवण ही धर्म रह गया है। इसके सिवा मनुष्योंका उद्धार करनेवाला दूसरा कोई धर्म ही नहीं है। कलिके मनुष्य धर्म और आचारसे हीन एवं अल्पायु होंगे। उनके कल्याणके लिये भगवान् व्यासने पुराणसंज्ञक इस अमृत-रसका निर्माण किया है। इस देवी-भागवतके श्रवणमें मास और दिवसका कोई खास नियम नहीं है। मनुष्य सदा इसका श्रवण कर सकते हैं। आश्विन, चैत्र, वैशाख और जेठके महीनेमें तथा चार नवरात्रोंमें सुननेसे यह पुराण विशेष फल देनेवाला होता है। नवरात्रमें इसका अनुष्ठान करनेपर मनुष्य सभी पुण्य-कर्मोंसे अधिक फल पा लेते हैं; अतः इसे 'नवाह यज्ञ' कहा गया है। जो कलुषित विचार-वाले, पापी, मूर्ख, मित्रद्रोही, वेदकी निन्दा करनेवाले, हिंसामें संलग्न और नास्तिक हैं, उनका भी कलिमें इस नवाह यज्ञसे निस्तार हो जाता है। महान् तप, व्रत, तीर्थ, दान, नियम, हवन और यज्ञ आदि करनेपर भी मनुष्योंको जो फल दुर्लभ रहता है, वह भी नवाह यज्ञसे सुलभ हो जाता है। अतः देवीभागवत सर्वोत्तम पुराण माना जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये यह सर्वोपरि साधन है। सूर्यके कन्याराशिमें स्थित होनेपर आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमी तिथिके दिन श्रीमद्देवीभागवतकी पुस्तक सोनेके सिंहासनपर स्थापित करके भक्तिपूर्वक योग्य ब्राह्मणको दान करनी

चाहिये। ऐसा करनेसे वह पुरुष देवीका प्रीतिभाजन होकर उनके परमपदका अधिकारी बन जाता है। जो पुरुष देवीभागवतके एक श्लोक अथवा आधे श्लोकका भी भक्तिभावसे नित्य पाठ करता है, उसपर देवी प्रसन्न हो जाती हैं। महामारी, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ तथा अनेकों उत्पात भी देवीभागवतके श्रवण-मात्रसे शमन हो जाते हैं। पूतना आदि बालग्रहकृत तथा भूतप्रेतजनित जो भय हैं, वे इस देवीभागवतके श्रवणसे पास भी नहीं फटक सकते। भक्तिपूर्वक देवीभागवतका पाठ और श्रवण करनेवाला मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके फलका अधिकारी हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण प्रसेनको खोजनेके लिये चले गये। बहुत समयतक नहीं लौटे। तब वसुदेवजीने यह देवीभागवत पुराण सुना। इसके प्रभावसे उन्होंने अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्णको शीघ्र पाकर आनन्द लाभ किया था। जो पुरुष देवी-भागवतकी कथा भक्तिके साथ पढ़ता और सुनता है, भुक्ति और मुक्ति उसके करतलगत हो जाती हैं। यह कथा अमृतस्वरूपा है, इसके श्रवणसे अपुत्र पुत्रवान्, दरिद्र धनवान् और रोगी आरोग्यवान् हो जाता है। जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या और मृतवत्सा हो, वह भी देवी-भागवतकी कथा सुननेसे दीर्घजीवी पुत्रकी जननी बन जाती है। जिसके घरमें श्रीमद्देवी-भागवतकी पुस्तकका नित्य पूजन होता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है। वहाँ रहनेवाले लोगोंके पास पाप नहीं टिक सकते। जो अष्टमी, नवमी अथवा चतुर्दशीके दिन भक्तिके साथ यह कथा सुनता या पढ़ता है, उसे परमसिद्धि उपलब्ध हो जाती है। इसका पाठ करनेवाला यदि ब्राह्मण हो तो प्रकाण्ड विद्वान्, क्षत्रिय हो तो महान् शूरवीर, वैश्य हो तो प्रचुर धनाढ्य और शूद्र हो तो अपने कुलमें सर्वोत्तम हो सकता है।

(अध्याय १)

☆

## देवीभागवतके माहात्म्य-प्रसङ्गमें जाम्बवान्‌के यहाँसे श्रीकृष्णके मणि प्राप्त करने तथा जाम्बवतीसे विवाह करके द्वारका लौटनेकी कथा

ऋषियोंने पूछा—महाबुद्धिमान् सूतजी! महाभाग वसुदेवने कैसे पुत्र प्राप्त किया? भगवान् श्रीकृष्णने परिभ्रमण करके प्रसेनको कहाँ खोजा और क्यों खोजा? श्रीमद्देवी-भागवतकी यह कथा वसुदेवजीने किस विधिसे सुनी और इसके कौन वक्ता हुए? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी बोले—भोजवंशी राजा सत्राजित् द्वारकामें सुखपूर्वक रहते थे। उनके द्वारा सदा सूर्यका आराधन हुआ करता था। भगवान् सूर्यने सत्राजित्‌की भक्तिसे परम प्रसन्न होकर उन्हें अपने लोकका दर्शन कराया। साथ ही उन्हें एक 'स्यमन्तक' नामक मणि दी। सत्राजित् उस मणिको गलेमें धारणकर द्वारका आये। वह मणि अत्यन्त चमकीली थी। उसे देखकर पुरवासियोंने समझा कि सूर्यनारायण हैं। अतः सुधर्मा सभामें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर वे उनसे कहने लगे—'जगत्प्रभो! ये सूर्यनारायण आ रहे हैं।' उनकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके मुखपर मुसकान छा गयी। वे बोले—'अरे बालको! ये सूर्य नहीं हैं। ये तो स्यमन्तकमणि धारणकर सत्राजित् आ रहे हैं।

मणिके कारण इनकी ज्योति फैल रही है। सूर्यने इन्हें यह मणि दी है।'

तदनन्तर सत्राजित्ने ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे स्वस्तिवाचन कराया, मणिकी पूजा की और उस मणिको अपने भवनमें स्थापित कर दिया। प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देनेवाली वह मणि जहाँ रहती थी, वहाँ महामारी, दुर्भिक्ष एवं अन्य उत्पातसम्बन्धी भय कभी नहीं ठहर सकते थे। सत्राजित्के एक भाई थे। उनका नाम प्रसेन था। एक बार वे उस मणिको गलेमें धारणकर घोड़ेपर सवार हुए और शिकार खेलनेके लिये वनको चल पड़े। उन्हें सिंहने देखा और घोड़ेसहित मारकर मणि ले ली। ऋक्षराज जाम्बवान् बड़ा बली था। उसने देखा, सिंह मणि लिये हुए है। अतः बिलके द्वारपर ही सिंहको मारकर उसने मणि छीन ली और उसे अपने पुत्रको खेलनेके लिये दे दिया। बच्चा भी उस चमकीली मणिको लेकर खेलने लगा। कुछ समय बाद जब प्रसेन नहीं लौटे तब सत्राजित्को महान् दुःख हुआ। कहा—'पता नहीं किसे मणि पानेकी इच्छा हो गयी, जिसके हाथों प्रसेन कालका ग्रास बन गया।' फिर तो जनसमाजके मुखसे द्वारकामें इस प्रकार किंवदन्ती फैल गयी कि हो-न-हो श्रीकृष्णने प्रसेनको मार डाला है; क्योंकि मणिमें उनकी आसक्ति हो गयी थी। यह बात भगवान् श्रीकृष्णके कानोंमें भी पड़ी। तब अपने ऊपर लगे हुए इस कलङ्कको दूर करनेके लिये उन्होंने कुछ पुरवासियोंको साथ लेकर यात्रा आरम्भ कर दी। वे वनमें पहुँचे। सिंहद्वारा मारे हुए प्रसेनको देखा। रक्तसे चिह्नित मार्गको पकड़कर सिंहको खोजते हुए वे आगे बढ़े। एक बिलके द्वारपर मरा हुआ सिंह दिखायी पड़ा। तब कृपापरवश हो वे पुरवासियोंसे कहने लगे—'तुमलोग मेरे लौटनेतक यहीं रहना। मणि लेनेवालेका पता लगानेके लिये मैं इस बिलके अंदर जा रहा हूँ।' 'बहुत अच्छा' कहकर पुरवासी वहीं ठहर गये। भगवान् श्रीकृष्ण बिलके भीतर वहाँ गये जहाँ जाम्बवान्का स्थान था। देखा, ऋक्षराजका बालक मणि हाथमें लिये हुए था। इन्होंने मणि छीननेकी चेष्टा की। इतनेमें धायने भयंकर शब्दोंमें गर्जना आरम्भ कर दिया। धायकी चिल्लाहट सुनकर वहाँ तुरंत जाम्बवान् आ पहुँचा। उसका भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध आरम्भ हो गया। रात-दिन लगातार लड़ाई होती रही। दोनोंमें सत्ताईस दिनोंतक घोर संग्राम चलता रहा। उधर द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतीक्षामें बिलके द्वारपर रुके थे। बारह दिनोंतक उन्होंने प्रतीक्षा की। तत्पश्चात् डरकर वे अपने-अपने घर लौट गये। पहुँचनेपर आरम्भसे अन्ततक सारा समाचार कह सुनाया। सुनकर सबको महान् कष्ट हुआ। अब वे सत्राजित्की निन्दा करने लगे। अपने पुत्रकी यह कष्टकहानी महाभाग वसुदेवके कानोंमें भी पड़ी। परिवारसहित वे शोकसागरमें डूबने-उतराने लगे। 'अब मेरा कल्याण कैसे होगा' इस प्रकारकी अनेकों चिन्ताएँ उनके मनमें उठने लगीं। इतनेमें देवर्षि नारदजी ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। वसुदेवजी उठकर खड़े हो गये। मुनिको प्रणाम किया। उनकी यथोचित पूजा की। नारदजीने बुद्धिमान् वसुदेवजीसे कुशल-समाचार पूछा। फिर कहा—'आप चिन्तित क्यों हैं ? इसका कारण बतलाइये।'

वसुदेवजीने कहा—मेरा प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण प्रसेनको खोजनेके लिये पुरवासियोंके साथ वनमें गया था। मरे हुए प्रसेनपर उसकी दृष्टि पड़ी। बिलके द्वारपर देखा कि प्रसेनको मारनेवाला सिंह भी मरा पड़ा है। तब पुरवासियोंको द्वारपर ही ठहराकर वह स्वयं अंदर घुस गया। मुने ! बहुत दिन व्यतीत हो गये, अबतक मेरा वह प्राणप्रिय पुत्र नहीं लौटा। इसीसे मैं चिन्तित हूँ। कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मेरा लड़का शीघ्र वापस आ जाय।

नारदजी बोले—यदुश्रेष्ठ ! तुम पुत्रप्राप्तिके लिये अम्बिका देवीकी आराधना करो। उनके आराधनसे ही तुम्हारा शीघ्र कल्याण होगा।

वसुदेवजीने पूछा—देवर्षे ! वे अम्बिका देवी कौन हैं, उनकी क्या महिमा है और कैसे उनका पूजन होता है ? भगवन् ! यह बतानेकी कृपा कीजिये।

नारदजी बोले—महाभाग वसुदेव ! अम्बिका देवीके सम्पूर्ण माहात्म्यको विशदरूपसे कौन कह सकता है। मैं संक्षेपसे कुछ कहता हूँ, सुनो। भगवती अम्बिका नित्यस्वरूपिणी हैं। सत्, चित् और आनन्दमय उनका श्रीविग्रह है। वे सर्वोपरि हैं। यह चराचर जगत् उनसे ओतप्रोत है। उन्हींकी आराधनाके प्रभावसे ब्रह्माजी इस चराचर जगत्‌की रचना करते हैं। मधु और कैटभसे भयभीत होनेपर पितामहने देवीकी स्तुति की और वे उस भयसे मुक्त हुए। उन्हींकी कृपासे भगवान् विष्णु इस जगत्‌का संरक्षण करते हैं। भगवान् रुद्रपर उनकी कृपादृष्टि पड़ी, तभी संसारके संहारमें वे सफल हो सके। वे ही संसारबन्धनमें हेतु हैं। मुक्त कर देना भी उन्हींका काम है। वे देवी परमा विद्यास्वरूपिणी हैं। सम्पूर्ण शक्तिशालियोंपर भी उनका शासन रहता है। तुम नवरात्रविधिसे उन भगवती जगदम्बिकाका पूजन करके नौ दिनोंमें श्रीमद्देवीभागवत पुराण सुनो। उस पुराणके श्रवण करनेसे शीघ्र ही तुम्हारा पुत्र लौट आयेगा। इस पुराणके पढ़ने और सुननेवालेसे भुक्ति-मुक्ति दूर नहीं रह सकतीं।

इस प्रकार मुनिवर नारदजीके कहनेपर वसुदेवजीने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और अपार प्रसन्नता प्रकट करते हुए वे कहने लगे।

वसुदेवजी बोले—भगवन् ! आपके कहनेपर भगवती जगदम्बिकाके कृपा-प्रसादसे सिद्ध होनेवाला अपना पूर्वप्रसङ्ग मुझे याद आ गया; उसे मैं कहता हूँ, सुनिये। पहलेकी बात है, आकाशवाणीसे यह जानकर कि 'देवकीके आठवें गर्भसे कंसका निधन होगा' पापी कंसने भयके कारण मुझे सभामें ही घेर लिया। अपनी स्त्री देवकीके साथ मुझे कारागारकी हवा खानी पड़ी। ज्यों ही बच्चे पैदा होते, दुरात्मा कंस उन्हें मार डालता था। कंसके हाथों मेरे छः बालकोंकी मृत्यु हो जानेपर देवकीके अन्तःकरणमें शोकका सागर उमड़ पड़ा। अब वह कल्याणी रात-दिन चिन्ता करने लगी। तब मैंने मुनिवर गर्गजीको बुलाकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया, पूजा की, अनुनय-विनय किया और पुत्रकी इच्छा प्रकट करते हुए देवकीकी कष्टकथा उन्हें कह सुनायी। मैंने कहा—'भगवन् ! आप करुणाके सागर हैं। यादवोंने आपसे दीक्षा पायी है। मुने ! आप दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त होनेका साधन बतलानेकी कृपा करें।' तब दयानिधि गर्गजी प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे।

गर्गजी बोले—महाभाग वसुदेव ! दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त होनेका उपाय बताता हूँ, सुनो। भगवती दुर्गा भक्तोंका दुःख दूर करनेवाली और कल्याणस्वरूपिणी हैं। तुम उन्हींकी आराधना करो। उनकी कृपासे तुम्हारा तुरंत कल्याण हो जायगा; क्योंकि उनकी उपासनासे अखिल जनोंके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। भगवती दुर्गामें भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको जगत्‌में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

मुनिके यों कहनेपर हम पति-पत्नी दोनोंके हृदयमें अपार हर्ष छा गया। मैंने अत्यन्त भक्ति-पूर्वक उनको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! आप परम दयालु हैं। यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो मथुरापुरीमें रहकर ही आप मेरे लिये भगवती जगदम्बिकाकी आराधना आरम्भ कर दीजिये। महामते ! मैं कंसके यहाँ बंदी बना हूँ। इस समय मुझसे कुछ भी होनेकी सम्भावना नहीं दीखती। अतः आप ही इस दुःखरूपी दुस्तर सागरसे उद्धार करनेकी कृपा कीजिये।' इस प्रकार मेरे कहनेपर मुनिवर गर्गजी प्रसन्न होकर बोले—'वसुदेव ! तुम मेरे अति प्रेमपात्र हो, अतएव तुम्हारे कल्याणार्थ मैं अवश्य यत्न करूँगा।' फिर तो, मेरे प्रेमपूर्वक प्रार्थना करनेपर मुनिवर गर्गजी भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करनेके लिये कुछ ब्राह्मणोंको साथ लेकर विन्ध्यपर्वतपर चले गये। वहाँ पहुँचकर वे भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली जगन्माताके जप और पाठमें संलग्न होकर उनकी आराधना करने लगे। अनुष्ठान समाप्त होनेपर आकाशवाणी हुई—'मुने ! मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा। पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये मैंने श्रीविष्णुको आदेश दिया है। वसुदेवके यहाँ देवकीके गर्भसे वे अपना अंशावतार ग्रहण करेंगे। उनके प्रकट होते ही वसुदेवजी कंसके डरसे उन्हें लेकर गोकुलमें नन्दजीके घर पहुँचा देंगे। साथ ही यशोदाजीकी कन्याको ले जाकर अपने यहाँ आये हुए कंसको दे देंगे और कंस उस कन्याको जमीनपर दे मारेगा। इतनेमें ही वह कन्या कंसके हाथसे छूट जायगी। उसका अत्यन्त मनोहर रूप हो जायगा। मेरा ही अंशरूप विग्रह धारण करके वह विन्ध्यगिरिपर जाकर जगत्‌के कल्याणमें संलग्न हो जायगी।'

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर मुनिवर गर्गजीने भगवती जगदम्बिकाको प्रणाम किया। अत्यन्त प्रसन्न होकर वे मथुरापुरीमें आये। मैंने उनके मुखसे देवीका वरदान सुना। सुनते ही हम पति-पत्नी दोनोंको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। मेरे हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। तभीसे भगवती जगदम्बिकाका उत्तम माहात्म्य मैं जानता था। देवर्षे ! आज भी आपके मुखारविन्दसे वही माहात्म्य मैं सुन रहा हूँ। अतः प्रभो ! आप ही मुझे श्रीमद्देवीभागवत सुनानेकी कृपा कीजिये। देवर्षे ! आप दयाके सागर हैं। मेरे सौभाग्यसे ही आपका यहाँ पधारना हुआ है।

वसुदेवजीका कथन सुनकर नारदजी प्रसन्न हो गये। शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें उन्होंने कथा आरम्भ कर दी। कथाकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये अनेकों ब्राह्मण नवार्ण-जप करने लगे। कुछ ब्राह्मणोंने मार्कण्डेयपुराणोक्त दुर्गासप्तशतीका पाठ प्रारम्भ कर दिया। नारदजीने प्रथम स्कन्धसे कथा आरम्भ की। वसुदेवजी भक्तिपूर्वक सुनते रहे। नवें दिन कथा-प्रसङ्ग समाप्त हुआ। महाभाग वसुदेवजीने

प्रसन्न होकर पुस्तक और कथावाचककी यथोचित पूजा की। उस समय भगवान् श्रीकृष्णका जाम्बवान्‌के साथ बिलमें युद्ध चल रहा था। पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णके मुष्टिप्रहारसे जाम्बवान् घायल हो गया। उसकी देह रक्तसे सन गयी। फिर जब चेत हुआ तब उसने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मस्तक झुकाया और अपार श्रद्धा प्रकट करता हुआ वह उनसे अपना अपराध क्षमा कराने लगा। उसने कहा—'भगवन्! मैं आपको जान गया। आप ही राघवेन्द्र भगवान् श्रीराम हैं। आपके क्रोधसे समुद्र क्षुब्ध हो उठा था, लंका चौपट हो गयी और सपरिवार रावण कालका ग्रास बन गया। भगवन्! वे ही आप अब श्रीकृष्णरूपसे पधारे हैं। मेरी उद्दण्डता क्षमा करें। प्रभो! मैं सब तरहसे आपका सेवक हूँ। उचित आज्ञा देनेकी कृपा करें।' जाम्बवान्‌की बात सुनकर जगत्प्रभु भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'ऋक्षराज! हम मणिके लिये यहाँ बिलमें आये हैं।' फिर तो ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने प्रीतिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की। अपनी कन्या जाम्बवतीका उनके साथ विवाह कर दिया और मणि भी सौंप दी। तब श्रीकृष्णने जाम्बवतीको पत्नीरूपमें स्वीकार करके मणि गलेमें धारण कर ली और जाम्बवान्‌से विदा लेकर वे द्वारकाके लिये प्रस्थित हो गये। उसी दिन देवीभागवतकी कथा समाप्त हुई। उदारबुद्धि वसुदेवजीने ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे प्रसन्न किया। विप्रगण आशीर्वाद दे रहे थे कि उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण मणि धारण किये हुए पत्नीके साथ वहाँ आ पहुँचे।
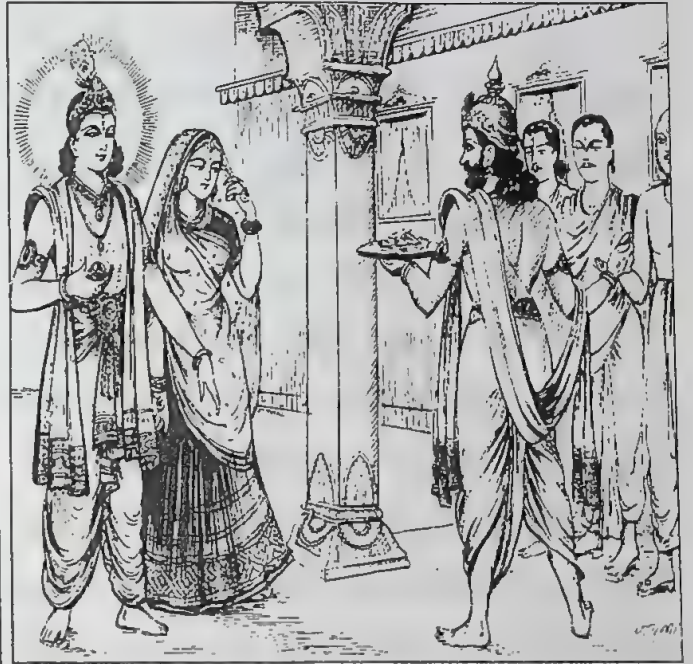
भार्यासहित श्रीकृष्णचन्द्रको वहाँ पधारे देखकर वसुदेव प्रभृति जितने लोग थे, सबके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे डबडबा गये और हृदयमें हर्षकी बाढ़-सी आ गयी। तदनन्तर देवर्षि नारदजी भगवान् श्रीकृष्णके आगमनसे हर्षित हो श्रीकृष्णचन्द्र और वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर ब्रह्मसभाको चल दिये। भगवान् श्रीहरिका जो यह चरित्र है, उसके प्रभावसे अपयश शान्त हो जाता है। शुद्धचित्त होकर निर्मल भक्तिके साथ जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह पूर्ण सुखी हो जाता है। जगत्‌में उसकी अभिलाषा अधूरी नहीं रह सकती और अन्तमें वह आवागमनसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय २)

☆

# देवीभागवतके माहात्म्यप्रसङ्गमें राजा सुद्युम्नके स्त्री बनने और श्रीमद्देवीभागवत-श्रवणके फलस्वरूप सदाके लिये पुरुष बनकर राज्य-लाभ और परमपद प्राप्त करनेकी कथा

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! अब दूसरा इतिहास सुनो, जिसमें इस देवीभागवतका माहात्म्य कहा गया है। एक समयकी बात है। मुनिवर अगस्त्यजी, जिनकी पत्नी लोपामुद्रा हैं, स्वामी कार्तिकेयके पास गये और वन्दना करके उनसे अनेक कथाएँ पूछीं। कार्तिकेयने तीर्थ, व्रत और दानके माहात्म्यसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी कथाएँ सुनायीं। वे काशी, मणिकर्णिका, गङ्गा आदि तीर्थोंका माहात्म्य विशदरूपसे वर्णन कर गये। इन कथाओंको सुनकर मुनिवर अगस्त्यजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। जगत्के कल्याणके लिये परम तेजस्वी कार्तिकेयजीसे उन्होंने फिर पूछा।

अगस्त्यजी बोले—तारकासुरका संहार करनेवाले भगवन् ! आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। अब देवीभागवतका माहात्म्य और उसके सुनने-की विधि भी बतानेकी कृपा कीजिये। जिसमें त्रिलोकजननी नित्यस्वरूपा भगवती दुर्गाके चरित्र गाये गये हैं, उस देवीभागवत नामक पुराणसे बढ़कर दूसरा कोई पुराण नहीं है।

स्वामी कार्तिकेयने कहा—ब्रह्मन् ! श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यको विस्तारसे कौन कह सकता है ? फिर भी मैं संक्षेपसे कहता हूँ, सुनो। जो नित्यस्वरूपा हैं, सत्-चित्-आनन्दमय जिनका श्रीविग्रह है तथा भुक्ति-मुक्ति देना जिनका स्वभाव ही है, वे भगवती जगदम्बिका देवीभागवतमें स्वयं विराजमान रहती हैं। अतएव मुने ! इसे देवीकी वाङ्मयी मूर्ति कहते हैं। इसके पढ़ने और सुननेसे जगत्के कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रह सकते। सुना है, विवस्वान् मनुके पुत्र श्राद्धदेव थे। उन्हें कोई संतान न थी। वसिष्ठजीकी सम्मतिसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया। विवस्वान् मनुकी स्त्रीका नाम श्रद्धा था। श्रद्धाने होतासे प्रार्थना की—'ब्रह्मन् ! आप ऐसा उपाय कीजिये कि मेरे गर्भसे कन्या उत्पन्न हो।' तब होता मन-ही-मन 'कन्या उत्पन्न हो'—यों संकल्प करते हुए हवन करने लगे। इस विपरीत भावनाके फलस्वरूप इला नामकी कन्या उत्पन्न हुई। राजा विवस्वान् कन्याको देखकर उदास हो गये। उन्होंने गुरुदेवसे पूछा—'यहाँ आपका संकल्प उलटा फल देनेवाला कैसे हो गया ?' राजाकी बात सुनकर मुनिवर वसिष्ठ ध्यानस्थ हो गये। उन्हें मालूम हो गया कि होता इस व्यतिक्रमके कारण हैं। तब इलाको पुरुष बनानेके लिये मुनिने भगवान् श्रीहरिकी शरण ली। मुनिके तप एवं भगवान्के अनुग्रहसे वह इला सबके देखते ही पुरुषरूपमें परिणत हो गयी। उस समय गुरुदेवने संस्कार करके इलाका नाम सुद्युम्न रखा। वे मनुपुत्र सुद्युम्न ऐसे प्रकाण्ड विद्वान् हुए, मानो विद्याके अथाह सागर हों। कुछ समयके बाद जब सुद्युम्न युवा हुए तब वे घोड़ेपर चढ़कर शिकार खेलनेके लिये जंगलमें चले गये।

किसी समयकी बात है, देवाधिदेव भगवान् शंकर अपनी प्राणप्रिया पार्वतीके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहे थे। उसी समय उनके दर्शनकी अभिलाषासे मुनिगण वहाँ पधारे। मुनियोंको देखकर पार्वतीजी लज्जित हो

गयीं। संयमशील मुनियोंने देखा, भगवान् शङ्कर और पार्वतीजी हास-विलास कर रहे हैं; तब वे तुरंत लौटकर वैकुण्ठको चले गये। फिर भी अपनी प्रेयसी भार्या पार्वतीको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे भगवान् शङ्करने यह शाप दे दिया—'आजसे जो पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, उसकी आकृति स्त्रीकी बन जायगी।' उसी समयसे पुरुष उस स्थानपर नहीं जाते। सुद्युम्न वहाँ सहसा चले गये और जाते ही उनकी आकृति स्त्रीकी हो गयी। साथके सब लोग भी स्त्री बन गये। जो घोड़ा था, वह भी घोड़ीके रूपमें परिणत हो गया। यह देखकर उस सुन्दरी स्त्रीको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह वनमें इधर-उधर घूमने लगी। एक समयकी बात है, वह स्त्री बुधके आश्रमके सन्निकट पहुँच गयी। उसे देखकर बुधके मनमें विकार उत्पन्न हो गया—उसे पानेकी इच्छा जाग उठी। वह स्त्री भी सोमनन्दन बुधको पति बनानेकी इच्छा प्रकट करने लगी। तब वह स्त्री बुधके साथ हास-विलास करती हुई उन्हींके आश्रमपर रहने लगी। कुछ समय व्यतीत होनेपर बुधने उस स्त्रीके गर्भसे पुरूरवाको उत्पन्न किया। बुधके आश्रमपर रहते हुए उसे वर्षों बीत गये। एक दिन उसे अपना पहला वृत्तान्त याद आ गया। स्मरण आते ही उसके मनपर दुःखकी घटा छा गयी। फिर तो वह निकली और तुरंत गुरुदेव वसिष्ठके आश्रमपर चली गयी। उन्हें प्रणाम करके अपना सारा समाचार कह सुनाया और पुनः पुरुष होनेकी इच्छा प्रकट करती हुई उनके शरणापन्न हो गयी। सब बातें विदित हो जानेपर वसिष्ठजी कैलासपर गये। उन्होंने भगवान् शंकरकी भलीभाँति पूजा की और उत्तम भक्तिके साथ वे उनके आराधनमें लग गये।

वसिष्ठजीने कहा—भगवन्! आप कल्याणस्वरूप, मङ्गलकर्ता और जटा धारण करनेवाले हैं। पार्वतीजी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हैं। चन्द्रमा आपके ललाटकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। आपके प्रति मेरा बारम्बार नमस्कार है। सुख प्रदान करनेवाले कैलासवासी भगवान् शंकर! आपको नमस्कार है। आप भक्तोंको भुक्ति और मुक्ति देनेवाले भगवान् नीलकण्ठ हैं। जो कल्याणमयविग्रह हैं, शरणागतोंका भय दूर करना जिनका स्वभाव ही बन गया है, वृषभ जिनका वाहन है और शरण देनेमें जो बड़े कुशल हैं, उन परमप्रभु शिवको मेरा नमस्कार है। जो सृष्टि, स्थिति और संहारके समय ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण किया करते हैं, जो वर देनेमें सदा तत्पर रहते हैं, उन देवाधिदेव त्रिपुरान्तक भगवान् शंकरको नमस्कार है। यज्ञ करनेवालोंको यज्ञफल प्रदान करनेवाले यज्ञस्वरूप भगवान् शङ्करको बारम्बार नमस्कार है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्निको ही अपने तीनों नेत्रोंमें स्थापित करनेवाले गङ्गाधर भगवान् शङ्कर! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार वसिष्ठजीके स्तुति करनेपर भगवान् शङ्कर प्रकट हो गये। वे नन्दीपर सवार थे। जगज्जननी पार्वती साथ विराजमान थीं। शङ्करका दिव्य विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान जगमगा रहा था। रजतगिरिके सदृश उनकी स्वच्छ कान्ति थी। तीन नेत्र थे। ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित था। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर शरणमें आये हुए मुनिवर वसिष्ठजीसे कहने लगे।

भगवान् शङ्कर बोले—विप्रवर! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वर माँग लो। भगवान्‌के यों

कहनेपर वसिष्ठजीने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और इलाके पुरुष हो जानेकी प्रार्थना की। तब प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने मुनिवरसे कहा—'यह एक महीने पुरुष रहेगा और एक महीने स्त्री।' यों शङ्करसे वर पा लेनेपर वसिष्ठजीने जगज्जननी भगवती पार्वतीको प्रणाम किया। वे देवी वर देनेमें सदा उत्सुक रहती हैं। करोड़ों चन्द्रमाके समान उनकी सुन्दर कान्ति है। उनका मुखमण्डल मुसकानसे भरा रहता है। इला सदाके लिये पुरुष बन जाय, इस कामनासे मुनि भक्तिपूर्वक पार्वतीकी पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे—

'भक्तोंपर कृपा करनेवाली देवेश्वरी! आपकी जय हो। अखिल देवताओंसे सुपूजित होनेवाली देवी! आपकी जय हो। अनन्त गुणोंकी आश्रयभूता देवी! आपकी जय हो। शरणागतोंपर अनुग्रह करनेवाली देवेश्वरी! आपको बारम्बार नमस्कार है। दुःख दूर करनेवाली एवं दुष्ट दैत्योंकी संहारिणी भगवती दुर्गे! आपकी जय हो। भक्तिसे प्रसन्न होकर दर्शन देनेवाली जगदम्बिके! आपको प्रणाम है। महामाये! आपके चरणकमल संसाररूपी समुद्रको पार करनेके लिये नौका हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाली देवेश्वरी! आप प्रसन्न हो जायँ। देवी! कौन है, जो आपकी स्तुति कर सके। मैं केवल आपको प्रणाम कर रहा हूँ!'*

भगवती दुर्गा साक्षात् नारायणी हैं। वसिष्ठजीके यों भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर वे तुरंत प्रसन्न हो गयीं। तदनन्तर शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाली उन महादेवीने मुनिसे कहा—'तुम सुद्युम्नके घर जाकर भक्तिभावसे मेरी आराधना करो। द्विजवर! तुम प्रसन्नतापूर्वक नौ दिनोंमें सुद्युम्नको श्रीमद्देवीभागवत सुनाओ। वह पुराण मुझे बहुत प्रिय है। उसके सुनते ही वह उसी क्षण पुरुष हो जायगा।' इस प्रकार कहकर भगवान् शङ्कर और पार्वती अन्तर्धान हो गये। अब वसिष्ठजी उस दिशाको प्रणाम करके अपने आश्रमपर चले आये। उन्होंने सुद्युम्नको बुलाया और देवीकी आराधना करनेकी बात कह सुनायी एवं आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रविधिका पालन करते हुए मुनिने भगवती जगदम्बिकाकी पूजा की और राजा सुद्युम्नको श्रीमद्देवीभागवत पुराण सुनाना आरम्भ कर दिया। राजा भी वह अमृतमयी कथा भक्तिभावसे सुननेमें संलग्न हो गये। कथा समाप्त होनेपर उन्होंने गुरुदेवको प्रणाम करके उनकी पूजा की और वे सदाके लिये पुरुष हो गये। तब मुनिवर वसिष्ठने सुद्युम्नको राज्यपर अभिषिक्त किया! सुद्युम्न प्रजाजनको प्रसन्न रखते हुए भूमण्डलपर राज्य करने लगे। उन्होंने भाँति-भाँतिके यज्ञ—जिनमें प्रचुर दक्षिणा दी

---

* जय देवि महादेवि भक्तानुग्रहकारिणि। जय सर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये॥
नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले। जय दुर्गे दुःखहन्त्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि॥
भक्तिगम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके। संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे॥
ब्रह्मादयोऽपि बिबुधास्त्वत्पादाम्बुजसेवया। विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वं समवाप्नुयुः॥
प्रसन्ना भव देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि। कस्त्वां स्तोतुं क्षमो देवि केवलं प्रणतोऽस्म्यहम्॥
(दे० मा० ३। ४४-४८)

जाती है—करके देवीकी पूजा की। फिर पुत्रोंको राज्य सौंपकर स्वयं भगवतीके परमधामको चले गये। विप्रो ! मैं विशदरूपसे यह इतिहास कह चुका। जो मनुष्य परम अमृतस्वरूप इस प्रसङ्गको प्रेमपूर्वक पढ़ता अथवा सुनता है, संसारमें भगवतीकी कृपासे उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और अन्तमें वह भगवतीके परम धामको चला जाता है। (अध्याय ३)

☆

## देवीभागवतके माहात्म्य-प्रसङ्गमें मुनिके शापसे रेवती नक्षत्रके पतन, पर्वतसे रेवती नामकी कन्याके प्रादुर्भाव, ऋषि प्रमुचके द्वारा उसके पालन तथा राजा दुर्दमके साथ उसके विवाहकी एवं रेवती नक्षत्रके पुनः स्थापनकी कथा

सूतजी कहते हैं—इस प्रकारकी अत्यन्त अद्भुत दिव्य कथा सुननेपर भी अगस्त्यजीकी इच्छा शान्त न हुई। अतः नम्रतापूर्वक उन्होंने पुनः श्रीकार्तिकेयजीसे कहा।

अगस्त्यजीने कहा—आप देवसेनाके अध्यक्ष हैं। मैंने आपके मुखारविन्दसे यह अलौकिक कथा सुन ली। अब श्रीमद्देवी-भागवतका दूसरा माहात्म्य सुनानेकी कृपा कीजिये।

स्कन्दजी कहते हैं—मित्रावरुणसे प्रकट होनेवाले मुने ! अब यह कथा कहता हूँ, सुनो ! जिसके एक अंशमें भागवतकी महिमा कही गयी हो, धर्मका विशद वर्णन हो और गायत्रीका प्रसङ्ग आरम्भ करके उसका महत्त्व दर्शाया गया हो, उसे भागवत कहते हैं। भगवती जगदम्बिकासे इस कथाका सम्बन्ध है। अतएव इसे 'देवीभागवत' कहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—सभी देवता उन भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करते हैं। ऋतवाक् नामके एक मुनि थे। उनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। उनके यहाँ समयानुसार पुत्रोत्सव हुआ। रेवतीका चौथा चरण गण्डान्त होता है; उसीमें उस बालककी उत्पत्ति हुई। मुनिने उस लड़केकी जातकर्म आदि सभी क्रियाएँ सविधि सम्पन्न कीं। चूडाकरण और उपनयन आदि संस्कार भी सम्पन्न किये। महात्मा ऋतवाक्‌के यहाँ जबसे उस पुत्रका जन्म हुआ, तभीसे वे रोग और शोकसे चिन्तित रहने लगे। क्रोध और लोभ उन्हें सदा घेरे रहते थे। माताकी भी यही स्थिति हो गयी। उसे निरन्तर अनेक रोग सताने लगे। वह उदास होकर सदा चिन्तामें डूबी रहती थी। वह लड़का भी उद्दण्ड हो गया। तब मुनि अत्यन्त चिन्तित होकर सोचने लगे—कौन ऐसा कारण है, जिससे यह मेरा पुत्र महान् दुष्ट हो गया ! उस समय उस लड़केने किसी मुनिकी स्त्रीको हठपूर्वक छीन लिया था। वह ऐसा प्रचण्ड मूर्ख था कि माता-पिताकी शिक्षापर बिलकुल ध्यान ही नहीं देता था। तब ऋतवाक् मुनि अत्यन्त खिन्न होकर कहने लगे—'मनुष्योंको पुत्र न हो यह अच्छा; किंतु दुराचारी पुत्र हो जाना किसी स्थितिमें भी ठीक नहीं है; क्योंकि दुष्ट पुत्र पितरोंको स्वर्गसे नरकमें ढकेल देता है, वह जीवनपर्यन्त पिताको केवल दुःख ही देता रहता है। कुपुत्र और पापपरायण संतानसे पिता कभी सुखी नहीं हो सकते। ऐसे पुत्र-जन्मको धिक्कार है। उस पुत्रसे न मित्रोंका उपकार होता है और न शत्रुओंका अपकार ही। जगत्‌में वे ही पुरुष बड़भागी हैं, जिनके घर सुपुत्र होनेका अवसर सुलभ है। सदाचारी पुत्र

दूसरेका उपकार करता और माता-पिताको सुखी बनाये रहता है। दुराचारी पुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है, जगत्‌में अपकीर्ति होती, इस लोक और परलोकमें दुःख सहने पड़ते तथा अन्तमें नरककी यातना भोगनी पड़ती है। कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है, दुष्ट स्त्री मिलनेसे जन्मकी सार्थकता जाती रहती है, उत्तम भोजन न मिलनेसे दिन व्यर्थ चला जाता तथा कुमित्रसे सुखकी आशा भी निष्फल हो जाती है।

स्कन्दजी कहते हैं—इस प्रकार दुष्ट पुत्रके नीच व्यवहारसे दुःखी होकर वे श्रीगर्गजीके पास गये और उनसे पूछने लगे।

ऋतवाक् मुनि बोले—भगवन्! आप ज्यौतिषशास्त्रके आचार्य हैं। मेरे पुत्रके दुराचारी होनेका क्या कारण है—यह मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, बतानेकी कृपा करें। मैंने गुरुकी सेवामें तत्पर रहकर विधिपूर्वक वेदाध्ययन किया। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके उचित रूपसे विवाहकी विधि सम्पन्न की। स्त्रीके साथ रहकर सदा मैं गार्हस्थ्यधर्मका पालन करता रहा। समुचित रूपसे पञ्चयज्ञकी क्रिया सम्पन्न की। विप्रवर ! मुझे नरकका भय सदा बना रहता था; अतः कामसम्बन्धी सुखकी इच्छा न करके मैंने केवल पुत्र-प्राप्तिके लिये शास्त्राज्ञानुसार गर्भाधान किया। मुने ! फिर भी माता अथवा पिता—किसके दोषसे मुझे यह ऐसा दुराचारी पुत्र प्राप्त हो गया ? यह दुःखदायी पुत्र परिवारमें अशान्ति फैला रहा है !

ऋतवाक् मुनिकी यह बात सुनकर ज्यौतिष-शास्त्रके पारगामी मुनिवर गर्गजीने सभी कारणोंपर विचार करके कहा।

गर्गजी बोले—मुने ! पुत्रके दुश्चरित होनेमें न तुम कारण हो और न माता तथा कुल ही। रेवतीका अन्तिम चरण गण्डान्त होता है। वही कारण है; क्योंकि मुने ! वही निन्दित वेला तुम्हारे इस पुत्रके जन्म-समय बीत रही थी। अतएव तुम्हें दुःखी करना इसका स्वभाव बन गया। दूसरा कोई भी कारण नहीं है। ब्रह्मन् ! तुम उस दुःखको दूर करनेके लिये जगज्जननी भगवती दुर्गाकी आराधना करो। यत्नपूर्वक सुपूजित होनेपर वे सम्पूर्ण विघ्न शान्त कर देती हैं।

गर्गजीकी बात सुनकर ऋतवाक् मुनि क्रोधसे मूर्च्छित हो गये। उन्होंने रेवतीको शाप दिया—'वह आकाशसे गिर जाय।' उस समय नक्षत्रमण्डल चमक रहा था। उधर सबके नेत्र लगे हुए थे। इतनेमें ही मुनिके शापसे रेवती आकाशसे टूटकर कुमुदगिरिपर आ पड़ी। रेवतीके गिरनेसे वह पर्वत 'रैवतक' नामसे प्रसिद्ध हो गया। तबसे उस पर्वतकी शोभा और भी अधिक बढ़ गयी। यों रेवतीको शाप देनेके पश्चात् मुनिवर ऋतवाक् गर्गजीके कथनानुसार भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करके सुख और सौभाग्यसे सम्पन्न हो गये।

स्कन्दजी कहते हैं—रेवती नक्षत्रका जो तेज पर्वतपर पड़ा, उससे एक कन्या उत्पन्न हो गयी। जगत्में अनुपम सुन्दरी होकर वह दूसरी लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगी। रेवतीके तेजसे प्रकट होनेवाली उस कन्यापर प्रमुच ऋषिकी दृष्टि पड़ी। उसे देखकर वे प्रसन्न हो गये और उसका रेवती नाम रख दिया। महर्षि प्रमुचका आश्रम कुमुदगिरिपर था। उस कन्याको वे अपने स्थानपर ले आये और पुत्रीकी भाँति धर्मपूर्वक उसके पालन-पोषणकी व्यवस्था कर दी। जब कुछ समय बाद वह सुन्दरी कन्या युवती हो गयी तब उसे देखकर 'कौन इसके योग्य वर होगा' यों मुनि विचार करने लगे। बहुत अन्वेषण करनेपर भी उस कन्याके अनुरूप वर पानेमें उन्हें सफलता न मिल सकी। तब वे अग्निशालामें जाकर अग्निदेवकी उपासना करने लगे। अग्निदेव प्रसन्न हुए और कन्याके वरके विषयमें मुनिसे बोले—'मुने ! सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले, पराक्रमी, शूरवीर, प्रियभाषी तथा युद्धमें पीछे न हटनेवाले राजा दुर्दम इसके पति होंगे।' अग्निदेवकी यह बात सुनकर मुनिके मनमें प्रसन्नता छा गयी। उसी समय संयोगवश राजा दुर्दम शिकार खेलनेके बहाने प्रमुच ऋषिके आश्रमपर आ गये। वे बड़े बुद्धिमान्, बलवान् और शक्तिशाली थे। उनके पिताका नाम विक्रमशील और माताका नाम कालिन्दी था। प्रियव्रतके वंशमें उनकी उत्पत्ति हुई थी। जब राजा आश्रमके भीतर गये तब उन्हें मुनि दिखायी न पड़े, अतः उन्होंने उस कन्या रेवतीको बुलाया और 'प्रिये !' सम्बोधन करके पूछने लगे।

राजा दुर्दमने पूछा—'प्रिये ! महाभाग महर्षि आश्रमसे कहाँ पधारे हैं ? कल्याणी ! सच-सच बताओ, मैं उनके चरणोंके दर्शन करना चाहता हूँ।'

कन्या बोली—'महाराज ! मुनिवर अभी-अभी निकलकर अग्निशालामें गये हैं।' कन्याकी बात सुनकर राजा दुर्दम अग्निशालाके द्वारपर पहुँच गये। वे राजोचित वेषभूषामें थे। नम्रतासे उनका मस्तक झुका हुआ था। उनपर मुनिकी दृष्टि पड़ी। तब राजाने मुनिको प्रणाम किया और मुनि अपने शिष्यसे कहने लगे—'गौतम ! अर्घ्य उपस्थित करो। ये राजा अर्घ्य पानेके अधिकारी हैं; क्योंकि बहुत दिनोंपर इनका आगमन हुआ है और खास बात तो यह है कि ये हमारे जामाता हैं।' यों कहकर मुनिने उन्हें अर्घ्य दिया और राजाने उसे स्वीकार भी कर लिया। राजा दुर्दम अर्घ्य आदिके पश्चात् आसनपर विराजमान थे। मुनिने प्रचुर आशीर्वाद देकर उन्हें संतुष्ट किया और कुशल पूछी। कहा—'राजन् ! तुम्हारी सेना, खजाना, मित्रमण्डली, भृत्यवर्ग, मन्त्रिवर्ग, देश, नगर और स्वयं आत्मामें किसी प्रकारकी अशान्ति तो नहीं है न ? तुम्हारी पत्नीकी तो कुशल पूछनी ही नहीं है; क्योंकि वह तो मेरे यहाँ ही ठहरी है। इसीसे मैंने उसका समाचार नहीं पूछा। अन्य लोगोंकी कुशल कह सुनाओ।'

राजाने कहा—भगवन् ! आपकी कृपासे सर्वत्र कुशल है। ब्रह्मन् ! पर मुझे यह बहुत आश्चर्य हो रहा है कि आपने मुझे जामाता कहा है; अतः मेरी कौन-सी पत्नी आपके यहाँ है ?

ऋषि बोले—राजन् ! जो जगत्में अद्वितीय सुन्दरी है, वह रेवती नामकी तुम्हारी पत्नी यहाँ है। वह किस प्रकार तुम्हारी भार्या हुई—यह

रहस्य तुम नहीं जानते।

राजाने कहा—प्रभो! मेरी सुभद्रा आदि भार्याएँ घरपर हैं, उन्हींको मैं जानता हूँ। भगवन्! रेवतीके सम्बन्धमें तो मुझे कुछ भी पता नहीं।

ऋषि बोले—राजन्! तुमने अभी जिसे 'प्रिये' शब्दसे सम्बोधित किया है, वही तुम्हारी प्रेयसी भार्या है। एक क्षण भी तो नहीं हुआ, तुम इसे भूल गये?

राजाने कहा—'मुने! आप जो कह रहे हैं, वही ठीक है। मैंने वैसे ही ('प्रिये' शब्द) कहकर बुलाया; परंतु मेरी कुत्सित भावना नहीं थी। इस विषयमें आप मुझपर अप्रसन्न न हों।'

ऋषि बोले—राजन्! तुम बहुत ठीक कहते हो, तुम्हारे मनमें कोई बुरा विचार नहीं था, किंतु अग्निदेवकी प्रेरणासे तुम्हें ऐसे शब्दका उच्चारण करना पड़ा। इस कन्याके पति कौन होंगे, यह बात अभी मैंने अग्निदेवसे पूछी थी। उन्होंने कहा है—'राजा दुर्दम इस कन्याके स्वामी होंगे। इसे कोई टाल नहीं सकता।' इसलिये राजन्! मैं यह कन्या तुम्हारी सेवामें समर्पण करता हूँ, इसे स्वीकार करो। तुमने उसे 'प्रिये' शब्दसे जो सम्बोधित किया था, उस विषयमें तो कुछ विचार ही नहीं करना चाहिये।

मुनिकी यह बात सुनकर राजा चुप हो गये। अब मुनि उनके विवाहकी विधि सम्पन्न करनेकी व्यवस्था करने लगे। पाणिग्रहण-संस्कार करनेके यत्नमें संलग्न मुनिको देखकर उनसे कन्याने कहा—'पिताजी! उचित तो यह है कि आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही करनेकी कृपा करें।'

ऋषि बोले—'वत्से! अनेकों वैवाहिक नक्षत्र हैं। फिर रेवतीमें ही क्यों विवाह करें? रेवती तो इस समय नक्षत्रमण्डलमें है भी नहीं।

कन्याने कहा—रेवतीसे भिन्न नक्षत्रमें मेरा विवाह-संस्कार समुचित न होगा। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, इस नक्षत्रमें ही मेरी वैवाहिक क्रिया सम्पन्न करनेकी कृपा करें।

ऋषि बोले—पूर्व समयकी बात है। ऋतवाक् मुनिने रेवतीको नक्षत्रमण्डलसे नीचे गिरा दिया था। अब वहाँ उसका स्थान ही न रहा। फिर उसी नक्षत्रमें विवाह होनेके लिये तुम क्यों अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हो?

कन्या बोली—क्या केवल ऋतवाक् मुनिने ही तपस्या की है? मन, वाणी अथवा कर्मसे ऐसी तपस्या करनेकी क्या आपमें योग्यता नहीं है? पिताजी! आप तो जगत्‌की रचना करनेमें समर्थ हैं। मैं आपका तपोबल खूब जानती हूँ। अतः आप रेवतीको नक्षत्रमण्डलमें पुनः स्थापित करके उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह कीजिये।

ऋषि बोले—तुम्हारा कल्याण हो। तुम जैसा कहती हो वैसा ही होगा। मैं तुम्हारे लिये आज ही रेवती नक्षत्रको सोममार्गमें स्थित करके उसीमें तुम्हारा विवाह-संस्कार सम्पन्न करूँगा।

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! इस प्रकार कहकर मुनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे उसी समय रेवतीको नक्षत्रमण्डलमें पूर्ववत् स्थापित कर दिया। फिर उसी नक्षत्रमें वैवाहिक विधिके अनुसार मुनिने राजा दुर्दमको वह रेवती नामकी कन्या सौंप दी। विवाह कर देनेके पश्चात् मुनिने राजासे कहा—'वीर! तुम्हें क्या पानेकी इच्छा है? कहो, उसे मैं पूर्ण करनेको उद्यत हूँ।'

राजा बोले—मुनिवर! मैं स्वायम्भुव मनुका वंशज हूँ। आपकी कृपासे मुझे मन्वन्तरका

अधिष्ठाता पुत्र प्राप्त हो—यही अभिलाषा है।

मुनिने कहा—राजन्! यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करो। तब मन्वन्तरका स्वामी पुत्र तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। श्रीमद्देवीभागवत पाँचवाँ पुराण है। उसकी पाँच आवृत्तियाँ श्रवण करनेसे तुम अपने मनके अनुसार पुत्र प्राप्त कर लोगे। इस रेवतीके गर्भसे पाँचवाँ—रैवत नामक मनु होगा। उसे वेदकी पूर्ण जानकारी रहेगी। शास्त्रके सभी रहस्य उसे ज्ञात रहेंगे। धर्ममें उसकी निष्ठा रहेगी और वह युद्धमें कभी पराजित न हो सकेगा।

मुनिके यों कहनेपर राजाने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और पत्नीको साथ लेकर वे अपने नगरको चले गये और पिता-पितामहकी राजगद्दीपर बैठकर उन्होंने शासन आरम्भ कर दिया। राजा दुर्दम बड़े बुद्धिमान् और धर्मात्मा थे। वे उसी प्रकार प्रजाकी रक्षा करते रहे, जैसे औरस पुत्रकी की जाती है। एक समयकी बात है, महात्मा लोमशजी राजभवनपर पधारे। राजाने प्रणाम करके उनका स्वागत-सत्कार किया और हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे।

राजाने कहा—मुने! आप सर्वसमर्थ हैं। मुझे पुत्र पानेकी इच्छा है। अतः आप श्रीमद्देवी-भागवत नामक पुराण सुनानेकी कृपा कीजिये। राजाकी बात सुनकर लोमशजीको बड़ा आनन्द हुआ। वे कहने लगे—'राजन्! तुम धन्य हो, तभी तो त्रिलोकजननी भगवती दुर्गामें तुम्हारी ऐसी भक्ति जाग्रत् हो गयी है। जो भगवती जगदम्बिका देवता, दानव और मनुष्योंकी परम आराध्या हैं, उनमें जब तुम्हारी भक्ति हो गयी, तब फिर तुम्हारा कार्य सिद्ध होनेमें क्या संदेह है। अतएव राजन्! मैं तुम्हें श्रीमद्देवीभागवतपुराण अवश्य सुनाऊँगा। उसके श्रवणमात्रसे कोई भी पदार्थ पानेको शेष नहीं रहता।'

ब्रह्मन्! यों कहकर लोमशजीने शुभ मुहूर्तमें कथा आरम्भ कर दी। राजा दुर्दम सपत्नीक बैठकर विधिपूर्वक कथाकी पाँच आवृत्तियाँ सुनते रहे। कथा समाप्त होनेके दिन उन धर्मात्माने अत्यन्त आनन्दके साथ पुराण और मुनिकी पूजा की। नवार्ण मन्त्रसे हवन किया। कुमारी कन्याएँ जिमायी गयीं। वे सपत्नीक ब्राह्मण-भोजनमें सम्मिलित हुए और सबको दक्षिणा देकर संतुष्ट किया गया। कुछ समय व्यतीत होनेपर भगवतीकी कृपासे रानीको लोकका कल्याण करनेवाला गर्भ रह गया। गर्भकी अवधि पूर्ण होनेपर ग्रहोंके उत्तम योगमें रानीने पुत्र प्रसव किया। उस समय सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाला मुहूर्त बीत रहा था। पुत्र-जन्मकी बात सुनकर राजाके मनमें अपार हर्ष छा गया। उन्होंने स्नान किया। सुवर्णके कलश रखे गये और उनके जलसे जातकर्म आदि क्रियाएँ सुचारुरूपसे सम्पन्न की गयीं। ब्राह्मणोंको दान देकर संतुष्ट किया गया। तदनन्तर समयपर यज्ञोपवीत हुआ तथा अङ्गों और उपाङ्गोंसहित वेद पढ़ानेकी राजाने व्यवस्था कर दी। फिर रैवत नामसे विख्यात वह बालक सम्पूर्ण क्रियाओंका पारगामी, धर्मात्मा, धर्मका प्रवचन एवं अनुष्ठान करनेवाला, परम पराक्रमी तथा अस्त्रवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ निकला। तदनन्तर ब्रह्माजीने रैवतको मनुके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। श्रीमान् रैवत मन्वन्तरके स्वामी बनकर धर्मपूर्वक पृथ्वीपर शासन करने लगे।

इस प्रकार मैंने भगवती जगदम्बिकाके एवं पुराणके माहात्म्यका संक्षेपसे वर्णन कर दिया।

उसे विस्तारपूर्वक कहनेमें तो कोई भी समर्थ नहीं हो सकता।

सूतजी कहते हैं—अगस्त्यजीने श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्य एवं विधि सुननेके पश्चात् स्वामी कार्तिकेयजीकी पूजा की और पुनः अपने आश्रमको लौट आये। ब्राह्मणो ! तुमलोगोंके समक्ष देवीभागवतके माहात्म्यका वर्णन मैं कर चुका। भक्तिपूर्वक इसे पढ़ने और सुननेवाला पुरुष जगत्‌में भोगोंको भोगकर अन्तमें पुनरागमनसे रहित हो जाता है। (अध्याय ४)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणके महान् फल तथा माहात्म्यका वर्णन

ऋषिगण बोले—महाभाग सूतजी ! हम देवीभागवतके उत्तम माहात्म्यको सुन चुके। अब पुराणश्रवणकी विधि सुनना चाहते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनिगणो ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि सर्वप्रथम ज्योतिषीको बुलाकर उससे मुहूर्त पूछे। ज्येष्ठ माससे लेकर छः महीने पुराणश्रवणके लिये उत्तम हैं। हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, श्रवण एवं मृगशिरा तथा अनुराधा नक्षत्र, पुण्यतिथियाँ और शुभग्रह वार—इनमें कथा आरम्भ करनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है। जिस नक्षत्रमें बृहस्पति हों, उससे चन्द्रमातक गिने। क्रमशः फल यों समझना चाहिये—चारतक धर्मप्राप्ति, फिर चारतक लक्ष्मीप्राप्ति, इसके बाद एक नक्षत्र कथामें सिद्धि देनेवाला, फिर पाँच नक्षत्र सुखकर, बादमें छः नक्षत्र पीड़ा देनेवाले, इसके बाद चार नक्षत्र राजभय उपस्थित करनेवाले, तदनन्तर तीन नक्षत्र ज्ञानप्राप्तिमें सहायक होते हैं। पुराणश्रवणके आरम्भमें इस चक्रपर अवश्य विचारकर लेना चाहिये, यह भगवान् शङ्करका कथन है। अथवा भगवती जगदम्बिकाको प्रसन्न करनेके लिये चार नवरात्रोंमें इसका श्रवण करना चाहिये। इसके सिवा अन्य महीनेमें भी इसे सुना जा सकता है; परंतु तब भी तिथि, नक्षत्र और दिनके सम्बन्धमें विचार करना परम आवश्यक है। विवेकशील पुरुषका कर्तव्य होता है कि विवाह आदि यज्ञोंमें जैसी सामग्री आवश्यक होती है, वैसी ही सामग्री इस नवाहयज्ञमें भी एकत्रित करनेका प्रयत्न करे ! दम्भ और लोभसे रहित अनेकों सहायक विद्वान् रहने चाहिये। भगवती जगदम्बिकामें भक्ति रखनेवाले चार अन्य पुरुष कथावाचकके अतिरिक्त बैठकर पाठ करें। प्रत्येक दिशामें यों समाचार भेजना चाहिये—'आपलोग यहाँ अवश्य पधारें, श्रीमद्देवीभागवतकी कथा आरम्भ हो रही है। सूर्य, गणेश, शिव, शक्ति अथवा विष्णु—किन्हीं भी देवताओंमें भक्ति रखनेवाले क्यों न हों, वे सभी इस कथाश्रवणके अधिकारी हैं; क्योंकि सभी देवता भगवती आद्याशक्तिकी उपासना तो करते ही हैं। श्रीमद्देवीभागवतकी कथा अमृतमयी है। इसमें अटूट प्रेम रखनेवाले सज्जन इस रसको पीनेकी उत्कट इच्छासे यहाँ अवश्य पधारनेकी कृपा करें। ब्राह्मण आदि चारों वर्ण, स्त्रियाँ, आश्रमवासी, चाहे सकाम हों या निष्काम—सभी इस कथारूपी अमृतका पान करनेके अधिकारी हैं। यदि नौ दिनोंतक कथा सुननेका अवकाश न मिले तो इस पुण्यमय यज्ञमें

यथावसर कुछ समयके लिये तो अवश्य ही आना चाहिये। अत्यन्त नम्रताके साथ जनसमाजमें निमन्त्रण भेजना चाहिये। आये हुए सज्जनोंको ठहरानेके लिये समुचित स्थानका प्रबन्ध करे ! धरतीको झाड़-बुहारकर कथाका स्थान सजावे। वहाँकी भूमि विस्तृत हो। उसे गोबरसे लीप देना चाहिये। वहाँ सुन्दर मण्डप बनावे। केलेके खम्भ लगाये जायँ। ऊपर चाँदनी लगा दी जाय। ध्वजा और पताकाओंसे मण्डपकी सजावट होनी चाहिये। कथावाचकके लिये दिव्य आसन लगावे। उस आसनपर सुखप्रद बिछौना होना चाहिये। यत्नपूर्वक ऐसा आसन बनावे कि वक्ता पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके कथा बाँच सके। कथा सुननेके लिये स्त्री-पुरुष सभी आवें और उनके लिये समुचित आसनोंकी व्यवस्था हो। सुन्दर ढंगसे प्रवचन करनेवाले, इन्द्रिय-विजयी, शास्त्रज्ञानी, देवीके उपासक, दयाशील, निःस्पृह, उदार और सत्-असत्का ज्ञान रखनेवाले विद्वान् पुरुष उत्तम वक्ता माने जाते हैं। श्रोता वह उत्तम है, जो ब्रह्ममें आस्था रखता हो, जिसकी देवताओंमें भक्ति हो तथा जो कथारूपी रसका पान करना चाहता हो। साथ ही उदार, निर्लोभी और नम्र तथा हिंसादिसे वर्जित भी हो। पाखण्ड रचनेवाला, लोभी, स्त्री-लम्पट, धर्मध्वजी, कटुभाषी और क्रोधी स्वभाववाला वक्ता देवीयज्ञमें श्रेष्ठ नहीं माना गया है। श्रोताओंको समझानेमें तत्पर रहनेवाले एक प्रकाण्ड विद्वान् संदेह-निवारण करनेके लिये सहायकरूपमें कथावाचकके पास बैठाये जायँ। कथा आरम्भ होनेके पहले ही दिन वक्ता और श्रोतागण क्षौरकर्म करा लें। इसके बाद नियम-पालन करनेमें लग जायँ। शौच आदिसे निवृत्त होकर अरुणोदय वेलामें ही स्नान कर लें। संध्या, तर्पण आदि नित्यकर्म संक्षेपसे करें। श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुननेका अधिकारी बननेके लिये गोदान करना चाहिये।

श्रीमद्देवीभागवतकी पुस्तक सुन्दर अक्षरोंसे सम्पन्न भगवतीकी वाङ्मयी मूर्ति है। सम्पूर्ण उपचारोंसे इसकी पूजा परम आवश्यक है। कथाकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरण करे। वे ब्राह्मण 'नवार्णमन्त्र' का जप और 'दुर्गासप्तशती' का पाठ करें। प्रदक्षिणा और नमस्कार करनेके पश्चात् भगवतीकी यों स्तुति करनी चाहिये—

'कात्यायनी ! आप महामाया एवं जगत्की अधीश्वरी हैं। भवानी ! आपकी मूर्ति कृपामयी है। मैं संसाररूपी सागरमें डूब रहा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवसे सुपूजित होनेवाली जगदम्बिके ! आप मुझपर प्रसन्न हों। देवी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अभिलषित वर देनेकी कृपा करें।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् मनको एकाग्र करके कथा सुने। व्यासस्वरूप मानकर समाहित चित्तसे कथावाचककी पूजा करे। माला, अलंकार एवं वस्त्र आदिसे स्वागत करके व्यासदेवकी यों प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप व्यासस्वरूप हैं। सम्पूर्ण शास्त्रों एवं इतिहासोंका रहस्य आपको विदित है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। कथारूपी चन्द्रमाको उदय करके मेरे अन्तःकरणके अन्धकारको दूर करनेकी कृपा करें।' नौ दिनोंतक सभी नियम प्रथम दिनकी तरह करने चाहिये। ब्राह्मणोंको बैठाकर उनकी पूजा करनेके पश्चात् स्वयं बैठे। धर्म, अर्थ, काम

और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्राप्त करनेके लिये खूब सावधानीसे कथाश्रवण करना चाहिये। उस समय घर, स्त्री, पुत्र और धन-सम्बन्धी चिन्ता बिलकुल दूर कर दे। पण्डितजी सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त होनेके कुछ समय पहलेतक कथा बाँचें। दोपहरमें केवल दो घड़ी विश्राम करना चाहिये। लघुशङ्का और शौचपर नियन्त्रण रहे अर्थात् बारम्बार न जाना पड़े—इसके लिये थोड़ा भोजन करना उत्तम है। वास्तवमें तो कथार्थी एक समय केवल हविष्यान्न खायँ—यही ठीक है। अथवा वे फल, दूध एवं घृतके आधारपर रह सकते हैं। विचारशील पुरुषको चाहिये कि जिससे कथामें विघ्न न पड़े, वैसे ही भोजनकी व्यवस्था कर ले।

द्विजवरो ! अब कथा-श्रवणमें निष्ठा रखनेवालोंके नियम बताता हूँ। जो ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करमें भेददृष्टि रखते, भगवती जगदम्बिकामें जिनकी भक्ति नहीं होती तथा जो पाखण्डी, हिंसक, कपटी, ब्राह्मणद्रोही और नास्तिक हैं, उन्हें श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुननेका अधिकार नहीं है। ब्राह्मणका धन अपहरण करनेवाले, दूसरेकी स्त्रीपर दृष्टि डालनेवाले तथा देवताके धनपर अधिकार जमानेवाले लोभी मनुष्य कथा-श्रवणके अनधिकारी हैं। व्रती पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे, जमीनपर सोवे, सत्य बोले, इन्द्रियोंपर काबू रखे और कथा समाप्त होनेपर रातमें संयमपूर्वक पत्रावलीमें भोजन करे। बैंगन, तेल, दाल, मधु एवं जला हुआ, बासी तथा भावदूषित अन्न त्याग दे। मांस, मसूर, ऋतुमती स्त्रीका देखा हुआ अन्न, मूली, हींग, प्याज, लहसुन, गाजर, कोंहड़ा और नालिका नामक साग न खाय। काम, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ एवं अभिमानको पास न आने दे। ब्राह्मण-द्रोही, पतित, संस्कारहीन, चाण्डाल, यवन, ऋतुमती स्त्री और वेदविहीन मनुष्योंके साथ कथाके व्रतमें संलग्न पुरुष बातचीततक न करे। वेद, गौ, ब्राह्मण, गुरु, स्त्री, राजा, महान् पुरुष, देवता तथा देवताके भक्त—इनकी निन्दा कानसे भी न सुने। जो कथाव्रती पुरुष हैं, उन्हें चाहिये कि सदा नम्र रहें, निष्कपट व्यवहार करें, पवित्रता रखें, दयालु बनें, थोड़ा बोलें और मन-ही-मन उदारता प्रकट करते रहें। श्वेतकुष्ठी, कुष्ठी, क्षय रोगवाला, भाग्यहीन, पापी, दरिद्र और संतानहीन जन भी भक्तिपूर्वक इस कथाको सुन सकते हैं। जो स्त्री वन्ध्या है, भाग्यहीना है तथा जिसे एक संतानके बाद पुनः संतान नहीं हुई हो अथवा जिसके बच्चे मर जाते या गर्भ ही गिर जाता हो—ये स्त्रियाँ श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनें। जो पुरुष बिना परिश्रम ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पानेकी अभिलाषा रखता है, वह यत्नपूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुने। कथाके ये नौ दिन नौ यज्ञोंके समान हैं। इनमें किया हुआ दान, हवन, जप अनन्त फल देनेवाला होता है।

इस प्रकार नवाहव्रत करके कथाका उद्यापन करना चाहिये। फलकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष महाष्टमीव्रतके समान इसका भी उद्यापन करें। निष्काम पुरुष कथा-श्रवणमात्रसे ही पवित्र होकर आवागमनसे रहित हो जाते हैं; क्योंकि निजजनोंको भोग और मोक्ष प्रदान कर देना भगवती जगदम्बिकाका स्वभाव ही है। पुस्तक और कथावाचककी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये। वक्ताके दिये हुए

प्रसादको भक्तिपूर्वक स्वीकार कर लें। जो पुरुष प्रतिदिन कुमारी कन्याओंकी पूजा करता, उन्हें जिमाता और प्रार्थना करता है, साथ ही सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको भी भोजन कराता है, उसकी कार्यसिद्धिमें कुछ भी संदेह नहीं रहता। कथासमाप्तिके दिन सम्पूर्ण दोषोंके शमनार्थ गायत्री-सहस्रनाम अथवा विष्णुसहस्रनामका पाठ करना चाहिये। जिनके स्मरण और नामोच्चारणसे तप, यज्ञ एवं क्रियाओंमें न्यूनता नहीं रह जाती, उन भगवान् विष्णुका कीर्तन अवश्य करना चाहिये। समाप्तिके दिन दुर्गासप्तशती-मन्त्रोंसे या देवीभागवतके मूल पाठसे अथवा नवार्ण-मन्त्रसे हवन करनेका विधान है। अथवा गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके घृतसहित खीरका हवन करना चाहिये; क्योंकि इस श्रीमद्देवीभागवतको गायत्रीका स्वरूप ही कहा गया है। वस्त्र, भूषण और धनसे कथा-वाचकको संतुष्ट करना चाहिये। कथावाचकके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवताओंकी प्रसन्नता उपलब्ध हो जाती है। भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करे; क्योंकि ब्राह्मण पृथ्वीपर देवताके स्वरूप हैं। उनके प्रसन्न होनेपर अपनी अभिलाषा पूर्ण हो जाती है। देवीमें भक्ति रखनेवाला पुरुष सुहागिनी स्त्रियोंको और कुमारी कन्याओंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देकर अपने कार्यकी सिद्धि होनेके लिये उनसे प्रार्थना करे। सुवर्ण, दूध देनेवाली गाय, हाथी, घोड़े तथा पृथ्वी आदिका भी दान देना चाहिये। इस दानका अक्षय फल होता है। यह श्रीमद्देवी-भागवत सुन्दर अक्षरोंमें लिखा जाय। इसे रेशमी वस्त्रके वेष्टनमें लपेटकर सुवर्णके सिंहासनपर रखे और अष्टमी अथवा नवमीके दिन कथा-वाचककी पूजा करके उन्हें दे दे। ऐसा करनेसे वह पुरुष इस लोकमें भोगोंको भोगकर अन्तमें दुर्लभ मुक्ति पा जाता है।

पुराणकी जानकारी रखनेवाला दरिद्र, दुर्बल, बालक, तरुण अथवा बूढ़ा पुरुष भी नमस्कार करानेका अधिकारी, पूज्य एवं सर्वदा आदरणीय माना जाता है। गुण एवं जन्म देनेवाले जगत्‌में अनेकों गुरु हैं; किंतु उन सबकी अपेक्षा पुराणका ज्ञाता गुरु ही सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। पुराणकी जानकारी रखनेवाला ब्राह्मण यदि व्यासगद्दीपर बैठकर कथा बाँच रहा हो तो प्रसङ्ग समाप्त होनेके पूर्व किसीको प्रणाम न करे। पुराणकी कथा परम पवित्र है। जो इसे उपेक्षाबुद्धिसे सुनते हैं, उन्हें फल तो मिलता ही नहीं, उलटे दुःख और दारिद्र्य भोगने पड़ते हैं। पुराणके जाननेवाले पुरुषको आसन, पात्र, द्रव्य, फल, वस्त्र और कम्बल देनेवाले बड़भागीजन भगवद्धामके अधिकारी होते हैं। जो पुस्तकको रेशमी वस्त्र और सूत्रसे वेष्टित करके दान करते हैं, उन पुरुषोंको अनेक सुख भोगनेका अवसर मिलता है।

यदि कोई पुरुष जिस किसी प्रकारसे भी देवीभागवतकी नौ आवृत्तियाँ सुन चुका हो, उसके फलका कहाँतक वर्णन किया जाय—वह तो जीवन्मुक्त ही हो जाता है। राजासे शत्रुता हो जाय, हैजा आदि महामारीका प्रकोप हो, अकाल पड़ जाय अथवा राष्ट्रविप्लव हो तो इन सबके भयकी शान्तिके लिये यह देवीभागवत सुनना चाहिये। द्विजगणो ! भूत-प्रेत-सम्बन्धी बाधा शान्त करने, शत्रुसे राज्य पाने तथा

पुत्रोत्सव होनेके लिये इस देवीभागवतका श्रवण परम आवश्यक है। श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक अथवा आधे पादका भी श्रवण, पठन करनेवाला पुरुष परमपदका अधिकारी हो जाता है। स्वयं भगवती जगदम्बिकाके श्रीमुखसे आधा श्लोक ही निकला। तत्पश्चात् शिष्य-परम्परासे उसीका इतना विस्तृत देवीभागवत तैयार हो गया।

गायत्रीसे बढ़कर न कोई धर्म है न तपस्या है, न देवता है और न भजनेयोग्य ही है। गायत्री शरीरकी रक्षा करती है, अतएव इसे 'गायत्री' कहते हैं। वही गायत्री इस देवीभागवतमें अपने रहस्योंसहित विद्यमान है। यह देवीभागवतपुराण जगदम्बिकाको प्रसन्न करनेका अचूक साधन है। श्रीमद्देवीभागवत परम पावन पुराण है। ब्राह्मणोंका यह एकमात्र धन है। नारायणस्वरूप धर्मनन्दन युधिष्ठिरने इसमें धर्मकी पर्याप्त व्याख्या की है। गायत्रीका रहस्य, निवासभूत भगवतीके मणिद्वीपका वर्णन एवं स्वयं भगवतीद्वारा हिमालयसे कही गयी गीताका वर्णन भी इसमें है। जिनके सम्पूर्ण प्रभावको महान् देवतागण भी नहीं जान पाते, उन भगवती जगदम्बिकाके चरणोंमें निरन्तर प्रणाम है। जिनके चरणकमलोंकी धूलिके प्रभावसे ब्रह्माजी इस जगत्की सृष्टि करते, विष्णु पालन करते और रुद्र संहार करनेमें सफल होते हैं, उन भगवती जगदम्बिकाके चरणोंमें निरन्तर प्रणाम है।

मणिद्वीपपर भगवती जगदम्बिकाका भव्य भवन विराजमान है। यह भवन चिन्तामणि आदि रत्नोंसे बना है। अमृतसे भरे कूप और दिव्य वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते हैं। भगवान् शङ्करके हृदयमें स्थान पानेवाली प्रसन्नवदना भगवती जगदम्बिका वहाँ विराजती हैं। बड़भागी पुरुष उनका ध्यान करके भोग भोगनेके पश्चात् निश्चय ही परमपद भी पा जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर एवं इन्द्र आदि देवता जिनकी उपासना करते हैं, वे मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी भगवती जगदम्बिका जगत्का कल्याण सम्पादन करें।

(अध्याय ५)

## श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य समाप्त

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## पहला स्कन्ध

### सूतजी और शौनकजीका संवाद, शौनकजीकी प्रार्थनापर सूतजीके द्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोक-संख्याका कथन एवं उपपुराणों तथा अट्ठाईस व्यासोंके नाम, भागवतकी महिमा

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्॥

जो सर्वचेतनस्वरूपा आदि-अन्तसे रहित एवं ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी भगवती जगदम्बिका हैं, उनका हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धिको तीक्ष्ण बनानेकी कृपा करें।

शौनकजीने कहा—महाभाग सूतजी! आप महाभाग एवं पुरुषश्रेष्ठ हैं; क्योंकि आपने परम पावन पुराण-संहिताओंका भलीभाँति अध्ययन कर लिया है। अनघ! मुनिवर व्यासजीने अठारहों पुराणोंका प्रणयन किया और आप अध्ययन करते रहे। वे सभी पुराण बड़े ही अद्भुत हैं। मानद! सत्यवतीनन्दन व्यासजीके मुखारविन्दसे पाँच लक्षणों एवं रहस्योंसहित उन सम्पूर्ण पुराणोंको आप अच्छी प्रकार जान गये हैं। आज हमारा पुण्य फल-दानोन्मुख हो गया, जिससे आप इस पावन क्षेत्रमें पधारे। मुनियोंको विश्राम देनेवाला यह क्षेत्र बड़ा ही उत्तम एवं कलिके दोषसे रहित है। सूतजी! यह मुनिमण्डली पुण्यदायी पुराण-सम्बन्धी कथा सुननेके लिये उत्सुक है। आप सावधान होकर हमें सुनानेकी कृपा करें। महाभाग! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके वेत्ता एवं त्रिविध तापोंसे रहित हैं। आपकी आयु कभी क्षीण न हो। भगवन्! अब आप वेदसे सम्बन्ध रखनेवाला पुराण कहनेकी कृपा कीजिये। सूतजी! जिन्हें कान हैं और जो सुननेके स्वादसे भी परिचित हैं, वे मनुष्य यदि पुराण नहीं सुनते तो वे हतभाग्य हैं। जिस प्रकार षड्रसके स्वादसे जीभ तृप्त हो जाती है, वैसे ही विद्वान् पुरुषके वचनोंसे कर्णेन्द्रियोंको महान् आनन्द होता है—यह सभी जानते हैं। सर्पोंके कान नहीं होते, तब भी मधुर स्वरोंको सुनकर वे अपनी सुधि-बुधि खो बैठते हैं। फिर कानवाले मनुष्य यदि सद्वाणी नहीं सुनते तो उन्हें बहरा ही क्यों न कहा जाय। अतएव सौम्य! ये सभी विप्रगण कथा सुननेकी अभिलाषासे सावधान होकर नैमिषारण्य क्षेत्रमें बैठे हैं। कलिके भयसे इन्हें महान् दुःख हो रहा है। जिस किसी प्रकारसे समय तो बीत ही जाता है। अज्ञानी जनोंका समय विषयचिन्तनमें और विद्वानोंका समय शास्त्रावलोकनमें बीत जाता है—यह अनुभव-सिद्ध बात है।

अपने सिद्धान्तको परिपुष्ट करनेवाले

अनेकों अद्भुत शास्त्र हैं, उनमें भाँति-भाँतिके सिद्धान्तोंका विवेचन किया गया है तथा उनकी पुष्टिमें प्रबल प्रमाण दिये गये हैं। वेदान्तको सात्त्विक, मीमांसाको राजस और न्यायको तामस शास्त्र कहा जाता है। सौम्य ! वैसे ही आपके कहे हुए पाँच लक्षणवाले पुराण भी सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारके हैं। आपके मुखारविन्दसे निकल चुका है, परमपावन देवीभागवत पाँचवाँ पुराण है। यह वेदके समान आदरणीय है। पुराणके सभी लक्षणोंसे यह ओतप्रोत है। उस समय इसका संक्षेपमें ही वर्णन किया गया था। इसके श्रवणसे मुमुक्षुजन मुक्त हो जाते हैं। यह परम अद्भुत पुराण धर्ममें रुचि उत्पन्न करनेवाला एवं अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। अब आप इस दिव्य एवं मङ्गलमय भागवत-पुराणको विस्तार-पूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये। सभी ब्राह्मण बड़े आदरके साथ सुननेके लिये उत्सुक हैं। धर्मज्ञ ! आप व्यासजीके मुखारविन्दसे इस प्राचीन संहिताका भलीभाँति ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं; क्योंकि उन गुरुदेवमें आपकी अटूट श्रद्धा थी और आपमें सभी सद्गुण विद्यमान हैं। सर्वज्ञ ! आपके कहे हुए अन्य भी बहुत-से पुराण हमने सुने हैं। किंतु उनके सुननेसे अब भी हमारी उसी प्रकार तृप्ति नहीं हो रही है जैसे देवता अमृतपानसे कभी नहीं अघाते। सूतजी ! धिक्कार है इस अमृतको, जिसे पीनेवाले कभी मुक्त नहीं हो सकते। किंतु धन्य है यह पुराण, जो सुननेसे ही मनुष्यको मुक्त कर देता है। सूतजी ! अमृत-पान करनेके लिये हमने हजारों यज्ञ किये, किंतु फिर भी हमें शान्ति न मिल सकी; क्योंकि यज्ञोंका फल स्वर्ग है। स्वर्ग भोगनेके पश्चात् वहाँसे गिरना ही पड़ता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें आने-जानेकी क्रिया सदा चलती ही रहती है। सर्वज्ञ सूतजी ! इस त्रिगुणात्मक जगत्में काल-चक्रकी प्रेरणासे सदा चक्कर काटनेवाले मनुष्योंको ज्ञान हुए बिना मुक्ति मिलनी कभी सम्भव नहीं। अतएव आप परम पावन देवीभागवतको कहनेकी कृपा कीजिये। यह पुराण सम्पूर्ण रसोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त पवित्र, गोपनीय तथा मुक्तिकामी जनोंको सदा अभिलषित मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

सूतजी कहते हैं—श्रीमद्देवीभागवत अत्यन्त पवित्र एवं वेदप्रसिद्ध पुराण है। इसके सम्बन्धमें आप महानुभावोंके प्रश्न करनेसे मैं धन्य, बड़भागी और परम पावन बन गया। अब मैं इसे कहता हूँ। यह पुराण सम्पूर्ण श्रुतियोंके अर्थसे अनुमोदित, अखिल शास्त्रोंका रहस्य एवं आगमोंमें अपना अनुपम स्थान रखनेवाला है। जो योगियोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले एवं ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सुसेवित हैं तथा प्रधान मुनिगण उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा जिनका सदा चिन्तन किया करते हैं, भगवती जगदम्बिकाके उन सुकोमल चरणकमलोंको प्रणाम करके आज मैं विस्तारपूर्वक यह पुराण कहनेके लिये प्रस्तुत हो रहा हूँ। द्विजवरो ! यह रसोंका भण्डार है ! इसमें जहाँ देखिये, भगवतीकी भक्ति निहित है। अतएव भगवतीके नामसे ही अर्थात् श्रीमद्देवीभागवत नामसे यह पुराण प्रसिद्ध है। उपनिषद्में जो विद्या नामसे प्रसिद्ध है; आद्या, परा, सर्वज्ञा जिनके नामान्तर हैं, जो संसारके आवागमनरूपी बन्धनको काटनेमें कुशल हैं, सर्वत्र ही जिनकी सत्ता बनी रहती है, दुष्टजन जिन्हें किसी प्रकार भी नहीं जान सकते तथा

मुनियोंके ध्यान करनेपर जो स्वयं अपनी झाँकी दिखाया करती हैं, वे भगवती जगदम्बिका इस कार्यमें सफलता प्रदान करनेकी कृपा करें। जो अपनी त्रिगुणात्मिका शक्तिके द्वारा इस सत्-असत्स्वरूप सम्पूर्ण जगत्की रचना करके उसकी रक्षामें तत्पर हो जाती हैं तथा प्रलय-कालमें सबका संहार करके स्वयं अकेले ही रमण करना जिनका स्वाभाविक गुण है, उन चराचर जगत्की सृष्टि करनेवाली भगवती जगदम्बिकाका मैं मनसे ध्यान करता हूँ। पौराणिकों एवं वैदिकोंका कथन है तथा यह भलीभाँति विदित भी है कि ब्रह्माजी इस अखिल जगत्के स्रष्टा हैं। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि ब्रह्माजीका जन्म भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे हुआ है। फिर ऐसी स्थितिमें ब्रह्माजी स्वतन्त्र स्रष्टा कैसे ठहरे? भगवान् विष्णुको भी स्वतन्त्र स्रष्टा नहीं कह सकते। वे शेषनागकी शय्यापर सोये हुए थे। नाभिसे कमल निकला और उसपर ब्रह्माजी प्रकट हुए। किंतु वे श्रीहरि भी तो किसी आधारपर अवलम्बित थे। उनके आधारभूत क्षीरसमुद्रको भी स्वतन्त्र स्रष्टा नहीं माना जा सकता; क्योंकि वह रस है, रस बिना पात्रके ठहरता नहीं। कोई-न-कोई रसका आधार रहना ही चाहिये। अतएव चराचर जगत्की आधारभूता भगवती जगदम्बिका ही स्रष्टारूपमें निश्चित हुईं। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ। कमलस्थित ब्रह्माजीको दर्शन मिले। भगवान् विष्णु योगनिद्राके अधीन होकर शयन कर रहे थे, तब उन प्रभुको जगानेके लिये पितामहने जिनकी स्तुति की थी, उन भगवती जगदम्बिकाकी मैं शरण लेता हूँ। वे भगवती सगुण, निर्गुण, मुक्ति प्रदान करनेवाली और मायास्वरूपिणी हैं। अब मैं उनका ध्यान करके सम्पूर्ण पुराणोंका कथन करता हूँ। मुनिगण सुननेकी कृपा करें।

श्रीमद्देवीभागवत सबसे उत्तम एवं पावन पुराण माना जाता है। इसमें अठारह हजार श्लोक हैं। संस्कृत भाषामें इसकी रचना हुई है। वेदव्यासजीने सुन्दर बारह स्कन्धोंसे इसे सजाया है। पूरे पुराणमें तीन सौ अठारह अध्याय हैं। प्रथम स्कन्धमें बीस, द्वितीयमें बारह, तृतीयमें बीस, चतुर्थमें पचीस, पञ्चममें पैंतीस, षष्ठमें इकतीस, सप्तममें चालीस, अष्टममें चौबीस, नवममें पचास, दशममें तेरह, एकादशमें चौबीस और द्वादश स्कन्धमें चौदह अध्याय हैं। महात्मा पुरुषोंका कथन है कि इस पुराणमें इस प्रकार तो अध्याय हैं और अठारह हजार श्लोक हैं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुकीर्तन और मन्वन्तर-वर्णन आदि पुराणविषयक पाँचों लक्षण इसमें विद्यमान हैं। जो निर्गुण हैं, सदा विराजमान रहनेवाली हैं, सर्वव्यापी हैं, जिनमें कभी विकार नहीं होता, जो कल्याणमय विग्रह हैं, योगसे जानी जा सकती हैं तथा सबको धारण करनेवाली, तुरीयावस्थापन्ना हैं; उन्हीं भगवतीकी सात्त्विकी, राजसी और तामसी शक्तियाँ स्त्रीकी आकृतिमें महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकालीके रूपसे प्रकट होती हैं। संसारकी अव्यवस्था दूर करनेके लिये इनका अवतार होता है। इन तीनों शक्तियोंका जो शरीर धारण करना है, इसे ही शास्त्रज्ञ पुरुष 'सर्ग' कहते हैं। सृष्टि, स्थिति और संहारका कार्य सँभालनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपसे उन आद्याशक्तिका प्रकट होना 'प्रतिसर्ग' माना गया है। चन्द्रवंशी और

सूर्यवंशी राजाओंके उपाख्यान तथा हिरण्यकशिपु प्रभृति दैत्योंके प्रसङ्गका वर्णन 'वंश' कहा गया है। स्वायम्भुव आदि प्रधान मनुओंका वर्णन और उनके समयका जो निर्णय हुआ है, वह 'मन्वन्तर' नामसे विख्यात है। फिर उन मनुओंकी वंशावलीका विशदरूपसे वर्णन किया गया है—यह 'वंशानुचरित' हो गया। इन पाँच लक्षणोंसे यह पुराण सुशोभित है। महाभाग व्यासजीने सवा लाख श्लोकोंमें जिस महाभारतकी रचना की है, वह इतिहास कहलाता है। महाभारतमें भी ये पाँचों लक्षण हैं। चार वेद हैं और पाँचवाँ श्रीमहाभारत है, जो वेदतुल्य माना गया है।

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! आप सर्वज्ञान-सम्पन्न हैं। अब हम यह सुनना चाहते हैं कि पुराण कितने हैं और उनमें कितने श्लोक हैं। विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये। हमलोग कलियुगकी कुचालसे डरकर नैमिषारण्यमें ठहरे हैं। ब्रह्माजीने अपने मनसे चक्र निर्माण करके हमें दिया और कहा कि 'तुमलोग इसीके आश्रयमें रहो।' साथ ही हम सब लोगोंसे यह भी कहा कि 'इस चक्रके पीछे-पीछे जाओ। जहाँ इसका हाल गिर जाय, वह स्थान परम पावन है। वहाँ कभी कलियुगका प्रभाव नहीं पड़ सकता। अतः जबतक फिर सत्ययुग नहीं आ जाता, तबतक तुम्हें वहाँ ही रहना चाहिये।' तब हमने ब्रह्माजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके वहाँकी बातें सुनीं और सम्पूर्ण देशोंको देखनेकी इच्छासे तुरंत चल पड़े। यहाँ आकर सबके सामने इस चक्रको घुमाया। इसके अरें चारों ओर घूमने लगे। जहाँ इसकी नेमि (हाल) गिर गयी, वह परमपावन स्थान नैमिषारण्य कहलाने लगा। कलिकी दाल यहाँ नहीं गलने पाती। अतएव कलिकालसे डरे हुए मुनियों, सिद्धों और महात्माओंको साथ लेकर मैं यहाँ ठहरा हूँ। सत्ययुग न आनेतक किसी तरह कालक्षेप हो रहा है। सूतजी ! इस समय भाग्यवश आपका दर्शन हो गया। अब आप वेदसे सम्बन्ध रखनेवाले पावन पुराणोंकी कथा कहनेकी कृपा कीजिये। सूतजी ! आपकी बुद्धि बड़ी विलक्षण है। सभी लोग आपके मुखारविन्दसे कथा सुननेके लिये उत्सुक हैं। अब हमारे कोई (दूसरा) धंधा नहीं है। हमने मनको एकाग्र कर लिया है। सूतजी ! आप दीर्घकालतक वर्तमान रहें। कभी भी दुःख और संताप आपके पास न आ सकें। अब आप पुण्यमय एवं कल्याणकारी देवीभागवत सुनानेकी कृपा कीजिये। इसमें धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंका विस्तारपूर्वक वर्णन है। ब्रह्मविद्या भी कही गयी है। फिर उसकी जानकारी हो जानेपर तो मोक्ष भी सुलभ हो जाता है। सूतजी ! मुनिवर व्यासजीके मुखारविन्दसे निकली हुई यह परम पावन कथा मनको मुग्ध कर देती है। इसे सुनकर हमारे कान अतृप्त ही बने रहते हैं। जिसमें सभी गुण हैं, सम्पूर्ण जगत्को रचनेवाली भगवती जगदम्बिकाकी नाट्य-सरीखी लीलाओंसे जो ओतप्रोत है तथा जिसके प्रभावसे सारे पाप विलीन हो जाते हैं, उस परम पावन एवं अद्भुत तथा भगवतीके नामसे शोभा पानेवाले श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराणको प्रकट करनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! सुनो, सत्यवतीनन्दन व्यासजीके मुखारविन्दसे मैंने जितने पुराण सुने हैं, उनका आनुपूर्वी तुम्हारे

सामने उल्लेख कर रहा हूँ। मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, वामन, वायु, विष्णु, वाराह, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड, कूर्म और स्कन्द—इन नामोंके अठारह पुराण हैं। पहला मत्स्य-पुराण है, इसमें चौदह हजार श्लोक हैं। अत्यन्त अद्भुत मार्कण्डेयपुराणकी श्लोक-संख्या नौ हजार है। तत्त्वदर्शी मुनिगणोंने भविष्य-पुराणकी श्लोक-संख्या साढ़े चौदह हजार गिनी है। पुण्यमय श्रीभागवतमें अठारह हजार श्लोक हैं। ब्रह्म-पुराणकी श्लोक-संख्या दस हजार है। ब्रह्माण्ड-पुराणमें बारह हजार एक सौ श्लोक हैं। अठारह हजार श्लोकोंमें ब्रह्मवैवर्तपुराण पूरा हुआ है। शौनकजी ! वामनपुराणमें दस हजार तथा वायुपुराणमें चौबीस हजार छः सौ श्लोक हैं। विष्णुपुराण और वाराहपुराण बड़े ही विचित्र ग्रन्थ हैं। पहलेकी श्लोक-संख्या तेईस हजार और दूसरेकी चौबीस हजार है। अग्निपुराणमें सोलह हजार श्लोक हैं। नारदपुराण पचीस हजार श्लोकोंसे सम्पन्न हुआ है। पद्मपुराणका विशद वर्णन पचपन हजार श्लोकोंमें समाप्त हुआ है। लिङ्गपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। गरुड़पुराणके वक्ता भगवान् विष्णु हैं। उसकी श्लोक-संख्या उन्नीस हजार है। कूर्मपुराणमें सत्रह हजार श्लोक कहे गये हैं। परम अद्भुत स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या इक्यासी हजार है। निष्पाप मुनिवरो ! इस प्रकार पुराणों और उनकी संख्याओंका विशद वर्णन मैं कर चुका।

अब ऐसे ही उपपुराण भी हैं—उन्हें कहता हूँ, सुनो। उपपुराणोंके नाम हैं—सनत्कुमार-पुराण, नृसिंहपुराण, नारदपुराण, शिवपुराण, दुर्वासापुराण, कपिलपुराण, मनुपुराण, उशनःपुराण, वरुणपुराण, कालिकापुराण, साम्बपुराण, नन्दिपुराण, सौरपुराण, पराशर-पुराण, आदित्यपुराण, माहेश्वरपुराण, भागवत-पुराण और वसिष्ठपुराण। उच्चकोटिके अनुभवी पुरुषोंने इन्हें ही उपपुराण कहा है। इन पुराणों और उपपुराणोंकी रचना करनेके पश्चात् महाभाग व्यासजीने महाभारत नामक इतिहासका प्रणयन किया। सभी मन्वन्तरोंके प्रत्येक द्वापर युगमें धर्मकी स्थापना करनेके लिये व्यासजी विधिपूर्वक पुराणोंकी रचना करते हैं। प्रत्येक द्वापरमें भगवान् विष्णु ही व्यासरूपसे प्रकट होते हैं और जगत्के कल्याणार्थ एक वेदको ही अनेक भागोंमें विभाजित करते हैं। फिर यह जानकर कलियुगके ब्राह्मण अल्पायु और मन्दबुद्धि होंगे, वे ही प्रभु प्रत्येक युगमें पुण्यमय पुराण-संहिताओंकी रचना किया करते हैं। स्त्री, शूद्र और अपने कर्मसे च्युत ब्राह्मण वेद सुननेके अनधिकारी माने जाते हैं। उनका भी कल्याण हो जाय, इसलिये पुराणोंकी रचना हुई है। मुनिवरो ! इस समय अट्ठाईसवें द्वापरका सातवाँ मन्वन्तर बीत रहा है। इस मन्वन्तरके अधिष्ठाता वैवस्वत मनु हैं। सत्यवतीनन्दन व्यासजी मेरे गुरुदेव हैं। इनके समान धर्मका ज्ञान किसीको नहीं है। वे ही इस मन्वन्तरके वेदव्यास हैं। फिर उन्तीसवें मन्वन्तरमें द्रौणि नामक व्यास होंगे। आजतक सत्ताईस व्यास हो चुके हैं। प्रत्येक युगमें उनके द्वारा पुराण-संहिता कही गयी है।

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी ! अबतकके द्वापर युगोंमें पुराणोंकी रचना करनेवाले जो व्यासदेव हो चुके हैं, उनका परिचय बतानेकी कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—प्रथम द्वापरमें वेदोंका

विभाग स्वयं ब्रह्माजीने किया। अतः उस युगके व्यास ब्रह्माजी हुए। दूसरे द्वापरमें प्रजापतिने व्यासका कार्य सम्पन्न किया। तीसरेमें उशना, चौथेमें बृहस्पति, पाँचवेंमें सविता और छठेमें मृत्युदेव व्यासकी गद्दीपर थे। सातवें द्वापरमें मघवाने, आठवेंमें वसिष्ठने, नवेंमें सारस्वतने, दसवेंमें त्रिधामाने, ग्यारहवेंमें त्रिवृषने, बारहवेंमें भारद्वाजने, तेरहवेंमें अन्तरिक्षने, चौदहवेंमें धर्मने, पंद्रहवेंमें त्रय्यारुणिने, सोलहवेंमें धनञ्जयने, सत्रहवेंमें मेधातिथिने, अठारहवेंमें व्रतीने, उन्नीसवेंमें अत्रिने, बीसवेंमें गौतमने और इक्कीसवेंमें हर्यात्मा उत्तमने व्यासका कार्य सम्पादन किया। वाजश्रवा वेन, आमुष्यायण सोम, तृणबिन्दु, भार्गव, शक्ति, जातूकर्ण्य और कृष्णद्वैपायन भी व्यासोंमें परिगणित हैं। ये ही अट्ठाईस व्यास हैं। मैंने जिनके नाम सुने थे, उन्हें गिना दिया। इन कृष्णद्वैपायन व्यासजीके मुखारविन्दसे श्रीमद्देवीभागवत सुननेका सुअवसर मुझे मिल चुका है। यह पुराण बड़ा ही पवित्र एवं सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाला है। इसके प्रभावसे मनोरथ पूर्ण होते और मुक्ति भी सुलभ हो जाती है। इसके सभी विषय वेदके अभिप्रायसे युक्त हैं। सम्पूर्ण वेदोंका सारभूत यह पुराण मुक्तिकामी जनोंको सदा प्रिय है। इस पुराणकी रचना करनेके पश्चात् व्यासजीने सर्वप्रथम अपने अयोनिज एवं विरक्त पुत्र महाभाग शुकदेवजीको अधिकारी समझकर उन्हें ही सुनाया। मुनिवरो ! मैं वहीं था। वेदव्यासजी प्रवचन कर रहे थे। इसीसे यथार्थ बातें मैंने भी सुन लीं। गुरुदेव बड़े कृपालु थे। उन्हींकी कृपासे यह अत्यन्त गुप्त पुराण प्रकट हुआ है। व्यासनन्दन शुकदेवजीकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। उनके पूछनेपर इस गुप्त पुराणकी सभी बातें व्यासजी व्यक्त किया करते थे। वहाँ रहनेके कारण इस पुराणकी अमित महिमाका मैं भी जानकार हो गया। मुनिवरो ! श्रीमद्देवी-भागवत स्वर्गीय कल्पवृक्षका सुन्दर पका हुआ फल है। इस संसाररूपी समुद्रके अथाह जलको पार करनेकी इच्छा रखनेवाले शुकदेवजी उस फलको आदरपूर्वक चखनेवाले पक्षी हैं। उन्होंने इस विविध कथारूपी अमृतको अपने कानरूपी पुटकोंमें भर-भरकर खूब पान किया। जगत्में कौन ऐसा पुरुष है, जो इस अद्भुत कथाको सुनकर कलिके भयसे मुक्त न हो जाय। जो पापी वैदिक धर्मोंसे विमुख एवं अपने चरित्रसे भ्रष्ट है, उसे भी यदि जिस किसी प्रकारसे भी श्रीमद्देवीभागवत सुननेका अवसर मिल जाय तो संसारके विविध भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवतीके उस नित्य परमधामको वह चला जाता है, जहाँ योगीलोग जाया करते हैं। जो निर्गुणस्वरूपा हैं, जो संतजनोंकी प्रेमपात्री एवं ध्यानमें दर्शन देनेवाली हैं। वे विद्यामयी भगवती जगदम्बिका उस बड़भागी पुरुषके हृदयरूपी गुफामें निवास कर लेती हैं, जो निरन्तर इस देवीभागवतकी कथा सुननेमें तत्पर रहता है। संसाररूपी अगाध समुद्रको पार करनेके लिये यह सर्वाङ्गपूर्ण मानवदेह सुन्दर जहाज है। जिसे ऐसा शरीर मिल गया और कथावाचककी भी कमी न रही, तब भी जो मूर्ख इस कल्याणमय देवीभागवतको नहीं सुन पाता, निश्चित ही वह अत्यन्त भाग्यहीन है। जिसे विचारशील मानव-तन मिल गया, दोनों कान विद्यमान हैं, तब भी सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले, रसके भंडार एवं परम पावन इस भागवतपुराणको न

सुनकर, जो प्रेमपूर्वक परनिन्दा और परचर्चा सुननेमें मस्त रहता है, वह मूर्ख मर ही क्यों नहीं जाता—उसके जीवनसे लाभ ही क्या है। (अध्याय १—३)

☆

## व्यासजीका वनमें जाना, नारदजीका मिलना और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मामें हुए प्राचीन संवादका वर्णन करते हुए व्यासजीको देवीकी उपासना करनेके लिये कहना

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी ! व्यासजीकी किस भार्यासे शुकदेवजी प्रकट हुए ? कैसे उनका आविर्भाव हुआ और वे ऐसे किन गुणोंसे सम्पन्न थे कि उन्होंने संहिताओंका भलीभाँति अध्ययन कर लिया ? महामते ! आपने कहा है, शुकदेवजी अयोनिज हैं, अरणिसे उनका प्राकट्य हुआ है। इन बातोंसे हमें महान् आश्चर्य हो रहा है। इनका स्पष्टीकरण करनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—प्राचीन समयकी बात है, सत्यवतीनन्दन व्यासजी सरस्वती नदीके तटपर विराजमान थे। उनके आश्रमपर दो गौरैया पक्षी थे। उन्हें देखकर वे आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने देखा पक्षी अपने घोंसलेमें थे। उनका एक सुन्दर बच्चा अभी-अभी अंडेसे बाहर निकला था। उस बच्चेके सभी अङ्ग बड़े सुन्दर थे और अभी पाँख और रोओंसे वह रहित था। दोनों पक्षी उस बच्चेको आहार पहुँचानेके लिये असीम प्रयत्न कर रहे थे। बारम्बार दाने ला-लाकर उन्हें बच्चेके मुखमें डालना उनका प्रधान कर्तव्य बन गया था। वे आनन्दमें विह्वल होकर उस बच्चेके अङ्गोंको अपने अङ्गोंसे रगड़ते और प्रेमपूर्वक मुख चूमा करते थे। उन गौरैयोंका अपने बच्चेमें ऐसा अद्भुत प्रेम देखकर व्यासजीने अपने मनमें विचार किया कि जब पक्षी अपने पुत्रके प्रति इतना स्नेह कर रहे हैं, तब मनुष्योंका संतानोंमें प्रेम हो—इसमें कौन-सी विचित्र बात है; क्योंकि उन्हें तो पुत्रोंसे सेवा पानेकी अभिलाषा बनी रहती है।

सत्यवतीनन्दन व्यासजी इस प्रकारके विविध विचारोंमें उलझकर उदास हो गये। मन-ही-मन बहुत कुछ सोच-समझकर बात निश्चित कर ली और वे मन्दराचल पर्वतके निकट चले गये। विचार किया, 'मेरे मनोरथ पूर्ण करने एवं वर देनेमें निपुण कौन देवता हैं, जिनकी मैं उपासना करूँ ? भगवान् विष्णु, शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, स्वामी कार्तिकेय, अग्नि अथवा वरुण—मुझे किनकी उपासना करनी चाहिये ?' इस प्रकार व्यासजी सोच रहे थे—इतनेमें ही स्वच्छन्दगति मुनिवर नारदजी हाथमें वीणा लिये हुए वहाँ पधारे। मुनिको देखकर व्यासजीको अपार हर्ष हुआ। उन्होंने पाद्य एवं अर्घ्य-प्रदानकी समुचित व्यवस्था की। साथ ही कुशल-समाचार पूछा। कुशल-प्रश्न सुन लेनेके पश्चात् मुनिवर नारदजीने व्यासजीसे पूछा—'द्वैपायन ! तुम क्यों इतने चिन्तित दीख रहे हो ? अपनी चिन्ताका कारण बतलाओ।'

व्यासजीने कहा—सुना गया है कि पुत्रहीनकी गति नहीं होती और मानसिक सुख भी उसे सुलभ नहीं हो सकता। इसलिये मैं बहुत दुःखी हूँ और यही चिन्ता मुझे बार-बार बेचैन किये डालती है। अब मैं मनोरथ पूर्ण करनेवाले किस देवताकी उपासना करूँ—इस विचार-

धारामें गोते खा रहा हूँ। इस परिस्थितिमें अब आप ही मेरे आश्रय हैं। महर्षे ! आप सब कुछ जाननेवाले एवं कृपाके समुद्र हैं। शीघ्र बतानेकी कृपा कीजिये कि मैं किन देवताकी शरणमें जाऊँ, जो मुझे पुत्र दे सकें।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार व्यासजीके पूछनेपर महामना नारदजी अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे।

नारदजीने कहा—महाभाग व्यासजी ! तुम इस विषयमें जो पूछ रहे हो, ठीक यही प्रश्न मेरे पिताजीने भगवान् श्रीहरिसे किया था। देवाधिदेव भगवान् जगत्के स्वामी हैं। लक्ष्मीजी उनकी सेवामें उपस्थित रहती हैं। दिव्य कौस्तुभमणि उनकी शोभा बढ़ाती है। वे शङ्ख, चक्र और गदा लिये रहते हैं। पीताम्बर धारण करते हैं। चार भुजाएँ हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न चमकता रहता है। वे चराचर जगत्के आश्रयदाता हैं, जगद्गुरु एवं देवताओंके भी देवता हैं। ऐसे जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरि महान् तप कर रहे थे। उनकी समाधि लगी थी। यह देखकर मेरे पिता ब्रह्माजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। अतः उन्होंने उनसे जाननेकी इच्छा प्रकट की।

ब्रह्माजीने पूछा—प्रभो ! आप देवताओंके अध्यक्ष, जगत्के स्वामी और भूत, भविष्य एवं वर्तमान—सभी जीवोंके एकमात्र शासक हैं। भगवन् ! फिर आप क्यों तपस्या कर रहे हैं और किस देवताकी आराधनामें ध्यानमग्न हैं ? मुझे असीम आश्चर्य तो यह हो रहा है कि आप देवेश्वर एवं सारे संसारके शासक होते हुए भी समाधि लगाये बैठे हैं। प्रभो ! आपके नाभि-कमलसे तो मेरी उत्पत्ति हुई और वह मैं अखिल विश्वका रचयिता बन गया। फिर आप-जैसे सर्वसमर्थ पुरुषसे बढ़कर कौन विशिष्ट देवता है, उसे बतानेकी कृपा अवश्य कीजिये। जगत्प्रभो ! मैं तो यही जानता हूँ कि सबके कारणस्वरूप आदिपुरुष परमात्मा आप ही हैं। आपमें सारी शक्तियाँ स्थित हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार तथा सभी कार्योंके करनेवाले आप ही हैं। महाराज ! आपकी इच्छासे ही मैं इस जगत्की रचना करता हूँ। भगवान् शंकर भी आपकी आज्ञा पानेपर ही समयानुसार सदा संहारलीलामें प्रवृत्त होते हैं। भगवन् ! सूर्यका आकाशमें चक्कर लगाना, सुखदायी पवनका चलना, अग्निका जलना और मेघका बरसना आदि सभी कार्य आपकी आज्ञापर ही निर्भर हैं। मुझे तो महान् कौतूहल यह हो रहा है कि आप किस देवताका ध्यान कर रहे हैं। त्रिलोकीमें आपसे बढ़कर किसी देवताको मैं नहीं देखता। अतएव सुव्रत ! मुझ दासको यह रहस्य स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष किसी बातको छिपाते नहीं—स्मृतियाँ भी यही कहती हैं।

ब्रह्माजीके ये विनीत वचन सुनकर भगवान्

श्रीहरि उनसे कहने लगे—'ब्रह्मन् ! सावधान होकर सुनो। मैं अपने मनका विचार व्यक्त करता हूँ। देवता, दानव और मानव—सब यही जानते हैं कि तुम सृष्टि करते हो, मैं पालन करता हूँ और शंकर संहार किया करते हैं, किंतु फिर भी वेदके पारगामी पुरुष अपनी युक्तिसे यह सिद्ध करते हैं कि रचने, पालने और संहार करनेकी यह योग्यता जो हमें मिली है, इसकी अधिष्ठात्री शक्तिदेवी हैं। वे कहते हैं कि संसारकी सृष्टि करनेके लिये तुममें राजसी शक्तिका संचार हुआ है, मुझे सात्त्विकी शक्ति मिली है और रुद्रमें तामसी शक्तिका आविर्भाव हुआ है। उस शक्तिके अभावमें तुम इस संसारकी सृष्टि नहीं कर सकते, मैं पालन करनेमें सफल नहीं हो सकता और रुद्रसे संहारकार्य होना भी सम्भव नहीं। ब्रह्माजी ! हम सभी उस शक्तिके सहारे ही अपने कार्यमें सदा सफल होते आये हैं। सुव्रत ! प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों उदाहरण मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ, सुनो। यह निश्चित बात है कि उस शक्तिके अधीन होकर ही मैं (प्रलयकालमें) इस शेषनागकी शय्यापर सोता और सृष्टि करनेका अवसर आते ही जग जाता हूँ। मैं सदा तप करनेमें लगा रहता हूँ। उस शक्तिके शासनसे कभी मुक्त नहीं रह सकता। कभी अवसर मिला तो लक्ष्मीके साथ सुखपूर्वक समय बितानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। मैं कभी तो दानवोंके साथ युद्ध करता हूँ। अखिल जगत्को भय पहुँचानेवाले दैत्योंके विकराल शरीरोंको शान्त करना मेरा परम कर्तव्य हो जाता है।

धर्मज्ञ ! बहुत पहलेकी बात कह रहा हूँ। उस समय तुम तो थे ही। चारों ओर जल-ही-जल था। मुझे पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध करना पड़ा था। मेरे कानके मलसे उत्पन्न होनेवाले मधु और कैटभ नामधारी दो दानव महान् दुष्ट थे। उन्हें असीम अभिमान था। भगवती आद्याशक्तिकी कृपासे ही मैं उन दैत्योंको मारनेमें सफल हो सका। महाभाग ! उस समयकी बातसे क्या तुम अपरिचित हो ? सर्वश्रेष्ठ शक्ति ही तो उस जीतमें कारण हुई थी। फिर तुम बार-बार क्यों पूछते हो। जब सर्वत्र जल-ही-जल शेष रहता है, तब उस शक्तिकी इच्छाके अधीन होकर मैं पुरुषरूपसे विचरा करता हूँ। प्रत्येक युगमें कच्छप, वाराह, नृसिंह और वामनरूप मुझे धारण करने पड़ते हैं। ब्रह्माजी ! प्राचीन समयकी बात है, एक बार धनुषकी डोरी टूटी और उसके झटकेसे मेरा मस्तक धड़से अलग हो गया। तुम बड़े कुशल शिल्पी हो, अतः तुमने घोड़ेका मस्तक मेरे धड़से जोड़ दिया। यह घटना तो तुम्हारे सामने ही घटी थी। तभीसे लोग मुझे 'हयशिरा' कहने लगे। जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी ! तुम इससे अपरिचित नहीं हो। मुझे सब प्रकारसे शक्तिके अधीन होकर रहना पड़ता है। उन्हीं भगवती शक्तिका मैं निरन्तर ध्यान किया करता हूँ। ब्रह्माजी ! मेरी जानकारीमें इन भगवती शक्तिसे बढ़कर दूसरे कोई देवता नहीं हैं।

नारदजी कहते हैं—इस गुप्त रहस्यके वक्ता भगवान् विष्णु हैं और श्रोता ब्रह्माजी रहे। मुनिवर ! फिर तो पितामहने वे सभी बातें अक्षरशः मुझे कह सुनायीं। अतएव तुम भी यदि अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहते हो तो उन्हीं भगवतीके चरण-कमलको अपने हृदयमें धारण करो। तुम्हारी जो भी अभिलाषाएँ हैं, वे सभी

भगवती जगदम्बिका अवश्य पूरा कर देंगी।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीके कहनेपर सत्यवतीनन्दन व्यासजी भगवतीके चरण-कमलोंको अपने हृदयमें स्थापित करके तपस्या करनेके लिये पर्वतपर चले गये।

(अध्याय ४)

☆

## भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारका कारण तथा 'हयग्रीव' स्वरूपसे 'हयग्रीव' दानवका वध

ऋषिगण बोले—सूतजी! आपने बड़े आश्चर्यकी बात कही। अरे, जो भगवान् विष्णु सबके कर्ता-धर्ता हैं, उनका भी मस्तक कटकर धड़से अलग हो गया। फिर उस धड़पर घोड़ेका सिर रखा गया और वे 'हयग्रीव' कहलाने लगे। वेद भी जिनकी स्तुति करते हैं, सम्पूर्ण देवताओंको आश्रय देना जिनका स्वाभाविक गुण है तथा जो समस्त कारणोंके भी परम कारण हैं, उन आदिदेव जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिको भी छिन्नमस्तक हो जाना पड़ा—यह दैवकी ही करामात है; परंतु महामते! ऐसी घटना कैसे घट गयी—इसे शीघ्र विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुनिगणो! भगवान् विष्णु परम तेजस्वी एवं देवताओंके भी देवता हैं। उनकी लीला बड़ी विचित्र है। तुम सब लोग अत्यन्त सावधान होकर उनकी अद्भुत कथा सुनो। एक समयकी बात है—सनातन परम प्रभु भगवान् श्रीहरिको घोर युद्ध करना पड़ा। दस हजार वर्षोंतक वे युद्धभूमिमें डटे रहे। फिर तो उन्हें थकान-सी हो गयी। तब वे अपने पुण्यप्रदेश वैकुण्ठमें गये। पद्मासन लगाकर बैठे। धनुषपर डोरी चढ़ी हुई थी, इसी अवस्थामें धनुषको भूमिपर टेककर उसीके सहारे वे कुछ झुक-से गये। फिर उसीपर भार देकर अलसाने भी लगे। श्रमके कारण अथवा लीलासंयोगसे उन्हें घोर निद्रा आ गयी। उसी अवसरपर कुछ दिनोंसे देवताओंके यहाँ यज्ञ करनेकी योजना चल रही थी। इन्द्र, ब्रह्मा, शंकर आदि सभी देवता यज्ञ करनेमें तत्पर होकर भगवान् श्रीहरिसे मिलने वैकुण्ठमें गये। देवताओंका कार्य निर्विघ्न चलता रहे—यही उस यज्ञका उद्देश्य था। वहाँ उन्हें यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं मिला। फिर तो ध्यानद्वारा पता लगाकर वे जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँच गये। देखा, परमप्रभु भगवान् श्रीहरि योगनिद्राके अधीन होकर अचेत-से पड़े हैं। तब वे देवतालोग वहीं ठहर गये। जब भगवान्‌की निद्रा भङ्ग न हुई, तब वे देवता अत्यन्त चिन्तित हो गये। ऐसी स्थितिमें इन्द्रने प्रधान देवताओंको सम्बोधित करके कहा—'अब क्या करना चाहिये? देवताओ! आप स्वयं विचार करें, भगवान् विष्णुको कैसे जगाया जाय?' तब भगवान् शंकरने कहा—'देवताओ! यद्यपि किसीकी निद्रा भङ्ग करना निषिद्ध आचरण है, फिर भी यज्ञका कार्य सम्पन्न करनेके लिये तो इन्हें जगा ही देना चाहिये।' तब ब्रह्माजीने वम्री नामक एक कीड़ा उत्पन्न किया। सोचा—धनुष पृथ्वीपर है ही, यह कीड़ा उस धनुषकी ताँतको काट देगा। तदनन्तर आगेकी रस्सीको काटते ही झुका हुआ धनुष ऊपरको तन उठेगा; फिर तो देवाधिदेव श्रीहरिकी निद्रा टूट ही जायगी। तब देवताओंका

कार्य सिद्ध होनेमें कोई संदेह न रहेगा। इस प्रकार मनमें विचार करके प्रधान देवता अविनाशी ब्रह्माजीने वैसा करनेके लिये वम्रीको आज्ञा दे दी। तब वह वम्री नामक कीड़ा ब्रह्माजीसे कहने लगा—'अरे! लक्ष्मीकान्त भगवान् नारायण देवताओंके भी आराध्यदेव हैं। भला, उन जगद्गुरुकी निद्रा मैं कैसे भङ्ग कर सकूँगा। भगवन्! इस धनुषकी डोरीको काटनेसे मुझे कौन-सा लाभ है, जिसके कारण ऐसा घृणित कार्य किया जा सके। सभी प्राणी किसी-न-किसी स्वार्थको लेकर ही नीच कर्ममें प्रवृत्त होते हैं—यह बिलकुल निश्चित बात है। इसलिये यदि मेरा कोई निजी काम बननेवाला हो, तभी इसे काटनेमें मैं तत्पर हो सकूँगा।'

ब्रह्माजीने कहा—सुनो! हमलोग तुम्हें यज्ञमें भाग दिया करेंगे। यह निजी लाभ मानकर अब तुम शीघ्र हमारा काम करो अर्थात् भगवान् श्रीहरिको जगा दो। देखो, यज्ञमें हवन करते समय अगल-बगल जो भी हविष्य गिर जायगा, वह तुम्हारा भाग है—यह समझ लो। अच्छा, अब हमारा काम बहुत जल्दी हो जाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीके कहनेपर उसी क्षण वम्रीने प्रत्यञ्चाको, जो नीचे भूमिपर थी, खा लिया। फिर तो धनुष बन्धन-मुक्त हो गया। प्रत्यञ्चा कटते ही दूसरी ओरकी डोरी भी वैसे ही ढीली पड़ गयी। उस समय बड़े जोरसे भयंकर शब्द हुआ, जिससे देवता भयभीत हो उठे। चारों ओर अन्धकार छा गया। सूर्यकी प्रभा क्षीण हो गयी। फिर तो सभी देवता घबराकर सोचने लगे—'अहो, ऐसे भयंकर समयमें पता नहीं क्या होनेवाला है।' ऋषियो! समस्त देवता यों सोच रहे थे; इतनेमें पता नहीं, भगवान् विष्णुका मस्तक कुण्डल और मुकुटसहित कहाँ उड़कर चला गया। कुछ समयके बाद जब घोर अन्धकार शान्त हुआ, तब भगवान् शंकर और ब्रह्माजीने देखा श्रीहरिका श्रीविग्रह बिना मस्तकका पड़ा हुआ है। यह बड़े आश्चर्यकी बात सामने आ गयी। भगवान् विष्णुके केवल धड़को देखकर उन श्रेष्ठ देवताओंके आश्चर्यकी सीमा न रही। अब वे चिन्ताके उमड़े हुए समुद्रमें डूबने-उतराने लगे। अत्यन्त दुःखी होकर उनकी आँखें जल बरसाने लगीं। वे विलाप करने लगे—'हा नाथ! आप तो देवताओंके भी आराध्यदेव एवं सनातन प्रभु हैं। फिर भगवन्! सम्पूर्ण देवताओंको निष्प्राण करनेवाली यह कैसी दैवी विचित्र घटना घट गयी।'

ब्रह्माजीने कहा—कालभगवान्ने जैसा विधान रच रखा है, वैसा अवश्य ही होता है—यह बिलकुल असंदिग्ध बात है। जैसे बहुत पहले कालकी प्रेरणासे भगवान् शंकरने मेरा ही मस्तक काट दिया था, उसी तरह आज भगवान् विष्णुका भी मस्तक धड़से अलग होकर समुद्रमें जा गिरा है। शचीपति देवराज इन्द्रके हजारों भग हो गये। उन्हें दुःखी होकर स्वर्गसे गिर जाना पड़ा और मानसरोवरमें जाकर वे कमलपर रहने लगे। अतएव तुम्हें बिलकुल शोक नहीं करना चाहिये। तुम सभी उन सनातनमयी विद्यास्वरूपिणी महामायाका चिन्तन करो। वे प्रकृतिमयी भगवती निर्गुणस्वरूपिणी एवं सर्वोपरि विराजमान हैं। अब वे ही हमारा कार्य सिद्ध करेंगी। वे जगत्को धारण करती हैं। उनका नाम 'ब्रह्मविद्या' भी है। सब प्राणी उन्हींकी संतान हैं। त्रिलोकीमें चर और अचर

जितने प्राणी हैं, सबमें वे विराजमान हैं।

सूतजी कहते हैं—फिर ब्रह्माजीने वेदोंको, जो सामने देह धारण करके उपस्थित थे, आज्ञा दी।

ब्रह्माजीने कहा—ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी भगवती जगदम्बिका परम आराध्या हैं। उन सनातनी देवीके अङ्गोंका साक्षात्कार होना कठिन है। वे भगवती महामाया सम्पूर्ण कर्मोंको सिद्ध कर देती हैं। अतः तुमलोग उनकी स्तुति करो। तदनन्तर सुन्दर शरीर धारण करनेवाले वेद ब्रह्माजीका कथन सुनकर उन भगवतीका, जो ज्ञानगम्या हैं—महामाया नामसे प्रसिद्ध हैं तथा जिनपर सम्पूर्ण जगत् अवलम्बित है, स्तवन करने लगे।

वेद बोले—देवी ! आप महामाया हैं, जगत्की सृष्टि करना आपका स्वभाव है, आप कल्याणमय विग्रह धारण करनेवाली एवं प्राकृतिक गुणोंसे रहित हैं, अखिल जगत् आपका शासन मानता है तथा भगवान् शंकरके आप मनोरथ पूर्ण किया करती हैं। माता ! आपके लिये नमस्कार है। सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये आप पृथ्वीस्वरूपा हैं। प्राणधारियोंके प्राण भी आप ही हैं। धी, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति, श्रद्धा, मेधा, धृति और स्मृति—ये सभी आपके नाम हैं। 'ॐकारमें जो अर्द्धमात्रा है, वह आपका रूप है। गायत्रीमें आप प्रणव हैं। जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा और दया—इन नामोंसे आप प्रसिद्ध हैं। माता ! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप त्रिलोकीको उत्पन्न करनेमें बड़ी कुशल हैं। आपका विग्रह दयासे परिपूर्ण है। आप माताओंकी भी माता हैं। आप विद्यामयी एवं कल्याणस्वरूपिणी हैं। आपका सारा प्रयत्न अखिल जगत्के हितार्थ होता है। आप परम पूज्या हैं। वाग्बीज आपका स्थान है। ज्ञानद्वारा संसारजनित अन्धकारको आप नष्ट कर देती हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, अग्नि और सरस्वती, सूर्य—ये जो भूमण्डलके स्वामी कहे जाते हैं, उन्हें भी आपने ही नियुक्त किया है। इसलिये आपके समक्ष उनकी कुछ भी प्रधानता न रही ! आप चराचर जगत्की जननी जो ठहरीं। जगदम्बिके ! आपको जब अखिल भूमण्डलको उत्पन्न करनेकी इच्छा होती है, तब आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि मुख्य देवताओंको प्रकट करती और उनके द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्य आरम्भ कर देती हैं। देवी ! वस्तुतः तो आपका एक ही रूप है। आपमें संसारकी लेशमात्र भी सत्ता नहीं है। सम्पूर्ण संसारमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जिसे आपके रूपोंको जानने एवं नामोंको गिननेकी योग्यता प्राप्त हो सकी हो। भला, वापीके थोड़े जलको तैरकर पार करनेमें असमर्थ सिद्ध हुआ मानव समुद्रके अथाह जलको कैसे कुशलतापूर्वक पार कर सकता है ? भगवती ! देवताओंमें भी कोई ऐसा सिद्ध न हो सका, जो आपकी विभूतिको जान सके। आप संसारकी एकमात्र जननी हैं। आप अकेले ही इस मिथ्याभूत समस्त जगत्की रचना कर डालती हैं। देवी ! इस जगत्के मिथ्यात्वमें श्रुतिवचन ही प्रमाण है। देवी ! आश्चर्य तो यह है कि इच्छारहित होते हुए भी आप अखिल जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। आपका यह अद्भुत चरित्र हमारे मनको मोहमें डाल रहा है। जब सारी श्रुतियाँ आपके गुणों एवं प्रभावको

जाननेमें असमर्थ रहीं, तब हम उन्हें कैसे जान सकते हैं। अधिक क्या कहें, अपने परम प्रभावको आप स्वयं भी नहीं जानतीं। कल्याणमयी जगदम्बिके ! भगवान् श्रीविष्णुका मस्तक धड़से अलग हो गया है—क्या आप इसे नहीं जानतीं ? अथवा जानकर भी उनके प्रभावकी परीक्षा करना चाहती हैं।

इस समय श्रीहरि मस्तकहीन हो गये हैं—यह बात महान् आश्चर्यजनक एवं साथ ही असीम दुःखप्रद भी सिद्ध हो रही है। अब हम यह नहीं जान सकते कि आप जन्म-मरणके बन्धनको काटनेमें कुशल होते हुए भी श्रीविष्णुके मस्तकको जोड़नेमें विलम्ब क्यों कर रही हैं ? जगदम्बिके ! आपका यह लीला-वैभव अब हमारी समझसे बाहर है, अथवा युद्धभूमिमें देवताओंसे हार जानेपर दैत्योंने पावन तीर्थोंमें जाकर कोई घोर तप किया है और आप उन्हें वर दे चुकी हैं, जिसके फलस्वरूप भगवान् विष्णुका मस्तक अलक्षित हो गया या अब आप श्रीहरिको मस्तकहीन देखनेका ही आनन्द लूटना चाहती हैं। जगदम्बिके ! आप लक्ष्मीपर कुपित तो नहीं हो गयीं ? क्योंकि उनको आप भगवान् विष्णुसे रहित देखना चाहती हैं। माना, यदि लक्ष्मीने अपराध ही कर दिया हो, तब भी तो आपको क्षमा कर देना चाहिये; क्योंकि वे भी आपसे ही प्रकट हुई हैं। अतः श्रीहरिको पुनः मस्तक प्रदान करके लक्ष्मीको प्रसन्न करनेकी कृपा कीजिये। देवी ! ये सुरगण आपको निरन्तर नमस्कार कर रहे हैं। आपके जगत्सृजनमय कार्यकी व्यवस्थाके ये प्रधान सदस्य हैं। आपकी कृपासे इन्हें प्रतिष्ठा भी प्राप्त हो चुकी है। अब आप अखिल लोकनायक भगवान् विष्णुको प्राणदान करके शोकरूपी समुद्रसे इन देवताओंका उद्धार करनेकी कृपा कीजिये। माता ! पहले तो हम यही नहीं जानते कि श्रीहरिका मस्तक चला कहाँ गया है। यह तो बिलकुल निश्चित है कि आपकी कृपाके बिना और कोई उपाय नहीं है। देवी ! आप जैसे अमृत पिलाकर देवताओंको जीवित करनेमें निपुण हैं, वैसे ही अब जगत्को भी जीवित रखना आपका कर्तव्य है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार जब अङ्गों-उपाङ्गोंसहित वेदोंने भगवती जगदम्बिकाका स्तवन किया, तब वे गुणातीता मायामयी देवी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। फिर तो देवताओंको लक्ष्य करके आकाशवाणी होने लगी। प्रत्येक वाणी कल्याणमयी थी। सभी शब्दोंमें सुख भरा था। वह वाणी इस प्रकार थी—

देवताओ ! अब तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। शान्तचित्त होकर अपने स्थानपर विराजमान हो जाओ। वेदोंने भली-भाँति मेरी स्तुति की है। अतः मेरी प्रसन्नतामें किंचित् भी संदेह नहीं रहा। जो पुरुष मर्त्यलोकमें मेरे इस स्तोत्रको भक्तिपूर्वक पढ़ता है अथवा पढ़ेगा, उसे सभी अभीष्ट वस्तुएँ सुलभ हो जायँगी ! अथवा जो श्रद्धालु मानव तीनों कालमें सदा इसका श्रवण करता है, उसके सभी शोक शान्त हो जाते हैं और वह सुखी हो जाता है। मेरा यह वेदप्रणीत स्तोत्र निश्चय ही वेदतुल्य है। अब तुमलोग श्रीहरिके छिन्नमस्तक होनेका कारण सुनो। इस जगत्में कोई भी कार्य अकारण कैसे होगा। एक समयकी बात है, भगवान् श्रीविष्णु लक्ष्मीके साथ एकान्तमें विराजमान थे। लक्ष्मीके मनोहर मुखको

देखकर उन्हें हँसी आ गयी। लक्ष्मीने समझा 'हो-न-हो भगवान् विष्णुकी दृष्टिमें मेरा मुख कुरूप सिद्ध हो चुका है, अतएव मुझे देखकर इन्हें हँसी आ गयी; क्योंकि बिना कारण उनका यों हँसना बिलकुल असम्भव है।' फिर तो महालक्ष्मीको क्रोध आ गया। सात्त्विक स्वभाव-वाली होनेपर भी वे तमोगुणसे आविष्ट हो गयीं। श्रीमहालक्ष्मीके शरीरमें भयंकर तामसी शक्तिका जो प्रवेश हुआ, उसका भी भावी परिणाम वस्तुतः देवताओंका कार्य सिद्ध करना था। वे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। तब झट उनके मुखसे निकल गया—'तुम्हारा यह मस्तक गिर जाय'। इसीसे इस समय इनका सिर क्षारसमुद्रमें लहरा रहा है। देवताओ ! इसमें कुछ कारण दूसरा भी है—वह यही कि तुमलोगोंका एक महान् कार्य सिद्ध होनेवाला है, यह बिलकुल निश्चित बात है। हयग्रीव नामक एक दैत्य हो चुका है। उसकी विशाल भुजाएँ हैं और वह बड़ी ख्याति पा चुका है। सरस्वती नदीके तटपर जाकर उसने महान् तप किया। वह मेरे एकाक्षरमन्त्र मायाबीजका जप करता रहा। बिना कुछ खाये ही जप करता था। उसकी इन्द्रियाँ वशमें हो चुकी थीं। सभी भोगोंका उसने त्याग कर दिया था। सम्पूर्ण भूषणोंसे भूषित जो मेरी तामसी शक्ति है, उसी शक्तिकी उसने आराधना की। वह दैत्य एक हजार वर्षतक ऐसा कठिन तप करता रहा। तब मैं ही तामसी शक्तिके रूपमें सजकर उसके पास गयी और जैसे रूपका वह ध्यान कर रहा था, ठीक उसी रूपमें मैंने उसे दर्शन दिये। मैं सिंहपर बैठी थी। सर्वाङ्ग दयासे ओतप्रोत थे। मैंने कहा—'महाभाग ! वर माँगो ! सुव्रत ! तुम्हें जो इच्छा हो, उसे देनेको मैं तैयार हूँ।' मुझ देवीकी बात सुनकर वह दानव प्रेमसे विभोर हो उठा। उसने तुरंत मेरी प्रदक्षिणा की और चरणोंमें मस्तक झुकाया। मेरे इस रूपको देखकर उसके नेत्र प्रेमसे पुलकित हो उठे और आनन्दके आँसुओंसे भर गये। फिर तो वह मेरी स्तुति करने लगा।

हयग्रीव बोला—कल्याणमयी देवी ! आपको नमस्कार है। आप महामाया हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार करना आपका स्वाभाविक गुण है। भक्तोंपर कृपा करनेमें आप बड़ी कुशल हैं। मनोरथ पूर्ण करना और मुक्ति देना आपका मनोरञ्जन है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा इनके गुण गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—इन सबका कारण आप ही हैं। महेश्वरी ! नासिका, त्वचा, जिह्वा, नेत्र और कान आदि इन्द्रियाँ तथा इनके अतिरिक्त भी जितनी कर्मेन्द्रियाँ हैं, वे सब आपसे ही उत्पन्न हुई हैं।

भगवतीने कहा—तुमने बड़ी अद्भुत तपस्या की है। मैं तुम्हारी भक्तिसे भलीभाँति प्रसन्न हूँ। तुम अपना अभिलषित वर माँगो। तुम्हें जो भी इच्छा हो, मैं देनेको तैयार हूँ।

हयग्रीव बोला—माता ! जिस किसी प्रकार भी मुझे मृत्युका मुख न देखना पड़े, वैसा ही वर देनेकी कृपा कीजिये। मैं अमर योगी बन जाऊँ। देवता और दानव कोई भी मुझे जीत न सके।

देवीने कहा—देखो, जन्मे हुएकी मृत्यु और मरे हुएका जन्म होना बिलकुल निश्चित है। भला, ऐसी सिद्ध मर्यादा जगत्‌में कैसे व्यर्थ की जा सकती है। राक्षसराज ! मृत्युके विषयमें तो ऐसी ही बात पक्की समझ लेनी चाहिये। अतः

मनमें सोच-विचारकर जो इच्छा हो, वर माँगो।

हयग्रीव बोला—अच्छा तो, हयग्रीवके हाथ ही मेरी मृत्यु हो। दूसरे मुझे न मार सकें। बस, अब मेरे मनकी यही अभिलाषा है। इसे पूर्ण करनेकी कृपा करें।

देवीने कहा—महाभाग! अब तुम घर जाओ और आनन्दपूर्वक राज्य करो। यह बिलकुल निश्चित है, हयग्रीवके सिवा दूसरा कोई तुम्हें नहीं मार सकेगा।

इस प्रकार उस दानवको वर देकर तामसी देवी अन्तर्धान हो गयीं और वह दैत्य भी असीम आनन्दका अनुभव करते हुए अपने घर चला गया। वही पापी इन दिनों मुनियों और वेदोंको अनेक प्रकारसे सता रहा है। त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उस दुष्टको मार सके। अतएव इस घोड़ेका सुन्दर सिर उतारकर श्रीविष्णुके धड़से जोड़ दिया जायगा। यह कार्य ब्रह्माजीके हाथ सम्पन्न होगा। तदनन्तर वे ही भगवान् हयग्रीव देवताओंके हित-साधनके लिये उस दुष्ट एवं निर्दयी दानवके प्राण हरेंगे।

सूतजी कहते हैं—देवताओंसे यों कहकर वह आकाशवाणी शान्त हो गयी। फिर तो देवता आनन्दसे विह्वल हो उठे। उन्होंने दिव्य शिल्पी ब्रह्माजीसे कहा—

देवता बोले—भगवन्! श्रीविष्णुके मस्तकहीन शरीरपर सिर जोड़नारूप महत्कार्य सम्पन्न करनेकी कृपा करें। तभी भगवान् हयग्रीव बनकर इस दानवराजका संहार करेंगे।

सूतजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उसी क्षण सुरगणके सामने ही तलवारसे घोड़ेका मस्तक उतार लिया। साथ ही तुरंत उसे भगवान्के शरीरपर जोड़नेकी व्यवस्था सम्पन्न कर दी। फिर तो भगवती जगदम्बिकाके कृपाप्रसादसे उसी क्षण भगवान् विष्णुका हयग्रीवावतार हो गया। वह दानव बड़ा ही
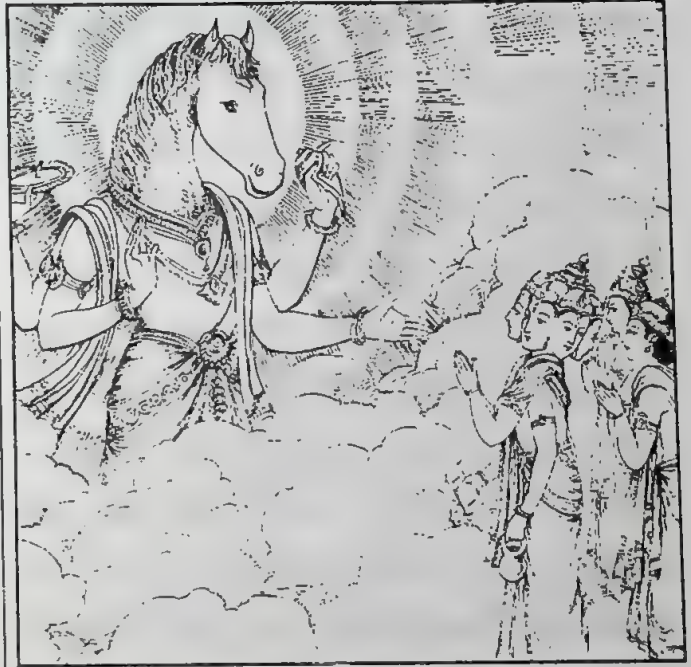
अभिमानी था। देवताओंसे उसकी घोर शत्रुता थी। अवतार लेनेके पश्चात् कितने समयतक भगवान् उसके साथ युद्धभूमिमें डटे रहे। तब कहीं उसकी मृत्यु हुई। मर्त्यलोकमें रहनेवाले जो पुरुष यह पुण्यमयी कथा सुनते हैं, वे सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त हो जाते हैं—यह बिलकुल निश्चित बात है। भगवती महामायाका चरित्र परम पवित्र एवं पापोंका संहार करनेवाला है। उसे जो पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ सुलभ हो जाती हैं। (अध्याय ५)

☆

## त्रिविध साहित्य तथा त्रिविध श्रवणका विवेचन करते हुए पुराणकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन; मधु-कैटभको देवीका वरदान; भगवान् विष्णुका योगनिद्राके अधीन होना; ब्रह्माजीके द्वारा देवीकी स्तुति और भगवान् विष्णुका योगनिद्रासे जागरण

ऋषियोंने पूछा—सौम्य! अभी आपके मुखारविन्दसे निकल चुका है कि जब सर्वत्र जल-ही-जल था, उस समय मधु और कैटभके साथ भगवान् विष्णुकी लड़ाई ठन गयी, पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध चलता रहा। अब प्रश्न होता है कि अत्यन्त पराक्रमी, किसी प्रकार हार न खानेवाले तथा देवता भी जिन्हें न जीत सके, ऐसे वे दानव उस एकार्णव-जलमें उत्पन्न ही कैसे हो गये? महाप्राज्ञ! वे दानव क्यों उत्पन्न हुए और किस कारण भगवान्ने उनकी जीवन-लीला समाप्त कर दी, यह बतानेकी कृपा कीजिये। यह प्रसङ्ग बड़ा ही विलक्षण जान पड़ता है। हम सभीको सुननेकी बड़ी उत्कट इच्छा है और आप प्रसिद्ध वक्ता यहाँ पधारे ही हैं। पाँच इन्द्रियोंमें आँख और कान—ये सबसे अधिक कल्याण करनेवाली मानी जाती हैं; क्योंकि सुननेसे वस्तुका विज्ञान होता है और देखनेसे चित्तमें प्रसन्नता होती है। महाभाग! सुनना भी तीन प्रकारका होता है—सात्त्विक, राजस और तामस। विज्ञ पुरुष इस विषयका वास्तविक विवेचन कर चुके हैं। उन्होंने वेद-शास्त्र आदिके श्रवणको सात्त्विक, साहित्य-श्रवणको राजस और युद्धसम्बन्धी तथा दूसरोंके दोष प्रकट करनेवाली बातोंके सुननेको तामस माना है। प्रकाण्ड विद्वानोंने सात्त्विक श्रवणमें भी तीन प्रकारका भेद बतलाया है—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रवणको उत्तम, स्वर्ग देनेवालेको मध्यम तथा भोग देनेवालेको अधम कहा है। विद्वानोंके निर्णय करनेपर यह बात स्पष्ट हुई है। साहित्य भी तीन प्रकारके होते हैं—जिसमें अपनी नायिकाके शृङ्गारका वर्णन है, वह उत्तम है। जो वेश्याओंके शृङ्गार-वर्णनसे सम्बन्ध रखता है, वह मध्यम तथा परस्त्रीके शृङ्गारका वर्णन करनेवाला साहित्य अधम माना गया है। तामस श्रवणके तीन भेद समझने चाहिये। शास्त्रका अवलोकन करनेवाले विद्वानोंने आततायीके साथ युद्धके प्रसङ्गको सुनना उत्तम कहा है। वैर ठन जानेपर शत्रुओंके साथ जो लड़ाई छिड़ जाती है—जैसे पाण्डवोंके साथ हुआ था, वह मध्यम है। बिना कारण विवाद खड़ाकर लड़नेका जो प्रसङ्ग है, वह अधम है। अतएव महामते! पुराणश्रवण सबसे श्रेष्ठ सिद्ध है। इस पावन प्रसङ्गके सुननेसे बुद्धि बढ़ती है तथा पाप-ताप सदाके लिये शान्त हो जाते हैं। इसलिये महाबुद्धे! अब वही पुराणविषयक पवित्र कथा सुनानेकी कृपा कीजिये!

सूतजी कहते हैं—महानुभावो! तुम्हारे अंदर जो यह प्रसङ्ग सुननेकी इच्छा जाग्रत् हो उठी और मैं कहनेके लिये तत्पर हो गया—इससे जगत्में मैं और तुमलोग सभी कृतार्थ हो गये। प्राचीन समयकी बात है, त्रिलोकी जलमग्न हो गयी थी। केवल भगवान् विष्णु शेषनागकी शय्यापर सोये हुए थे। उनके कानकी मैलसे मधु और कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए। समयानुसार उस समुद्रमें ही वे

प्रतापी दैत्य तरुण हो गये। अब इधर-उधर जाकर उनका खेलना-कूदना आरम्भ हो गया। एक समयकी बात है, वे स्थूलकाय दानव समुद्रमें खेल रहे थे। इतनेमें ही वे दोनों भाई मन-ही-मन सोचने लगे—बिना कारण कार्यका होना असम्भव है। सब जगह यही नियम लागू है। आधारके बिना आधेय किसी प्रकार ठहर नहीं सकता। हमें तो यही जँचता है कि आधाराधेयभाव सर्वथा सिद्ध है। तब 'यह सुखदायी अगाध जल किसपर ठहरा है? किसने इसकी उत्पत्ति की और क्यों की? इस जलमें हम कैसे आ गये? अथवा हम क्यों उत्पन्न हुए और कौन हमारे जन्मदाता हैं? वे जन्मदाता पिता कहाँ हैं?'—इत्यादि प्रश्न उनके मनमें उत्पन्न हुए और उन्होंने निश्चय किया कि हमें यह बात अवश्य जान लेनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—स्थिति जाननेके लिये इस प्रकारकी चेष्टा करनेपर भी मधु-कैटभ किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। उस समय मधु अपने भाई कैटभके पास ही उपस्थित था। उससे वह कहने लगा।

कैटभने कहा—भैया मधु! इस जलमें हमारी सत्ता कायम रखनेवाली भगवती शक्ति हैं। उनमें अपार बल है। वे शक्ति कभी नष्ट नहीं होतीं। मेरी समझसे वे ही इस कार्यकी कारण हैं। उन्होंने इस विस्तृत जलकी रचना की है और उन्हींके आधारपर यह जल ठहरा भी है। वे ही परम आराध्या शक्ति हमारी उत्पत्तिमें कारण हैं।

इस प्रकार वास्तविक रहस्य जाननेके लिये मधु और कैटभका मन व्यस्त था। अभी बुद्धि किसी निर्णयतक न पहुँच सकी थी, इतनेमें ही आकाशमें गूँजता हुआ सुन्दर 'वाग्बीज' सुनायी पड़ा। सुनकर वे दोनों उसका अभ्यास करनेमें तत्पर हो गये। तब उस वाग्बीजकी आकृति आकाशमें इस प्रकार चमक उठी, मानो बिजली कौंध रही हो। फिर तो उन्होंने विचार किया कि यही मन्त्र है, इसमें कुछ भी संदेह करनेकी बात
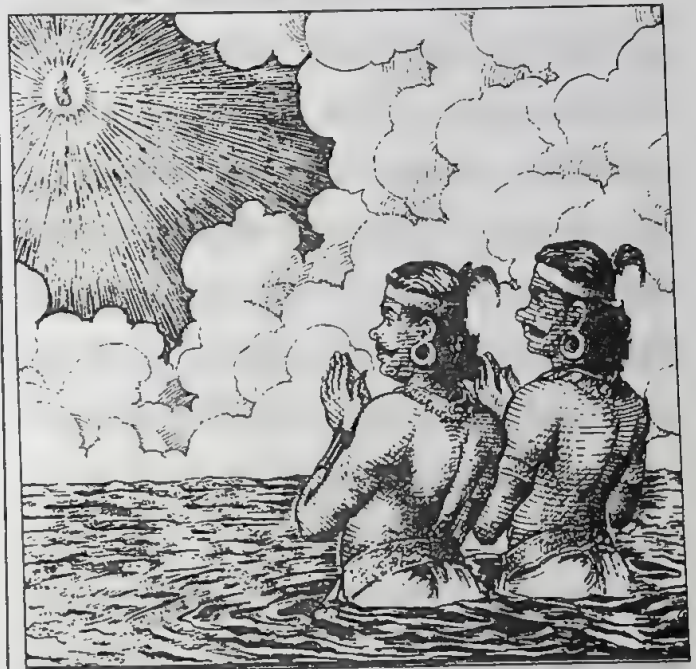
नहीं है। ध्यान लगाया तो उसी सगुण मन्त्रकी झाँकी उपलब्ध हुई। अब तो वे उसी मन्त्रका ध्यान और जप करनेमें लग गये। अन्न-जल छोड़ दिया। मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली। यों एक हजार वर्षतक उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की। फिर तो वह परम आराध्या शक्ति मधु और कैटभपर प्रसन्न हो गयी। उस समय वे निश्चिन्त होकर तप कर रहे थे। उनकी स्थिति देखकर शक्तिका मन कृपासे ओतप्रोत हो गया; अतः आकाशवाणी होने लगी—'दैत्यो! तुम्हारी तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ; स्वेच्छानुसार वर माँगो, उसे मैं पूर्ण कर दूँ।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकारकी आकाशवाणी सुननेके पश्चात् मधु और कैटभने कहा—'सुन्दर व्रतका पालन करनेवाली देवी! तुम हमें स्वेच्छा-मरणका वर देनेकी कृपा करो।'

आकाशवाणी हुई—'दैत्यो ! मेरी कृपासे इच्छा करनेपर ही मौत तुम्हें मार सकेगी। यह निश्चित है, देवता और दानव किसीसे भी तुम दोनों भाई पराजित न हो सकोगे।'

सूतजी कहते हैं—देवीके यों वर देनेपर मधु और कैटभको अत्यन्त अभिमान हो गया। अब वे समुद्रमें जलचर जीवोंके साथ क्रीड़ा करने लगे। द्विजवरो ! कुछ समयके पश्चात् एक दिन अनायास ही प्रजापति ब्रह्माजीपर उनकी दृष्टि पड़ी। ब्रह्माजी कमलके आसनपर विराजमान थे। मधु और कैटभमें अपार बल था। ब्रह्माजीको देखकर उन्हें अपार हर्ष हुआ। युद्ध करनेके लिये इच्छा प्रकट करते हुए वे पितामहसे कहने लगे—'सुव्रत ! तुम हमारे साथ युद्ध करो। यदि लड़ना नहीं चाहते तो इसी क्षण जहाँ इच्छा हो, चले जाओ; क्योंकि जब तुम्हारे अंदर शक्ति ही नहीं है, तब इस उत्तम आसनपर बैठनेका अधिकार ही कहाँ रहा।' मधु और कैटभकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीको बड़ी चिन्ता हुई। उनका सारा समय तपमें ही बीता था। अतः अत्यन्त शूरवीर मधु और कैटभको देखकर उन्होंने सोचा, 'अब मैं क्या करूँ ?' उनके मनमें चिन्ताकी लहरें उठने लगीं। वे स्वयं किसी निश्चयपर न पहुँच सके।

सूतजी कहते हैं—मधु और कैटभ बड़े बलवान् थे। उन्हें देखकर ब्रह्माजी उपाय सोचने लगे। सभी शास्त्रोंके वे पूर्ण जानकार थे। युद्ध-सम्बन्धी साम, दान, दण्ड और भेद आदि अनेकों उपाय उनके सामने आये। सोचा, इन राक्षसोंमें वास्तविक कितना बल है—यह मैं बिलकुल नहीं जानता। शत्रुका बल जाने बिना युद्धमें प्रवृत्त हो जाना ठीक नहीं समझा जाता। ये बड़े दुष्ट और अभिमानी हैं। यदि मैं इनसे विनती करूँ तो यह निश्चित है, मैंने स्वयं ही अपनी दुर्बलता प्रमाणित कर दी। फिर, निर्बल सिद्ध हो जानेपर तो इनमेंसे कोई एक ही मुझे मार डालेगा ! इस अवसरपर कुछ देकर भी काम चलाना ठीक नहीं जँचता और भेद तो किया ही जाय किस प्रकार। अतः अब शेषनागकी शय्यापर सोये हुए जो भगवान् विष्णु हैं, इन्हें जगाऊँ। इनके चार भुजाएँ हैं और असीम बल है। ये ही मेरा दुःख दूर कर सकेंगे।

इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर ब्रह्माजी कमलकी डंडी पकड़े हुए संतापहारी श्रीहरिके पास पहुँचे और उनके शरणापन्न हो गये। उस समय जगत्प्रभु श्रीविष्णु गाढ़ी नींदमें सोये हुए थे। अनेक सुन्दर शब्दोंसे सम्बोधित करके ब्रह्माजीने उन्हें जगानेके लिये स्तवन आरम्भ कर दिया।

ब्रह्माजीके स्तुति करनेपर भी भगवान् विष्णुकी नींद नहीं टूटी। उनपर योगनिद्राका पूरा अधिकार जम चुका था। तब ब्रह्माजी सोचने लगे—'अब श्रीहरि शक्तिके प्रभावसे पूर्ण प्रभावित होकर खूब गाढ़ी नींदमें मग्न हो गये हैं। अतएव ये जाग न सके। इस स्थितिमें मुझ दुःखी जनका क्या कर्तव्य होता है ? अभिमानमें चूर रहनेवाले ये दानव मुझे मारनेके लिये समीप आ गये। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहीं कोई मेरा रक्षक नहीं दीखता।'

ब्रह्माजी मन-ही-मन सोचनेके पश्चात् एक निर्णयपर पहुँचे। फिर तो चित्तको एकाग्र करके उन्होंने योगनिद्राकी स्तुति आरम्भ कर दी। उनके मनमें ऐसा विचार स्थिर हुआ कि अब केवल भगवती शक्ति ही मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं,

जिनके प्रभावसे भगवान् विष्णु अचेत-से हो गये हैं—हिल-डुलतक नहीं सकते। जिस प्रकार मरा हुआ प्राणी शाब्दिक गुणोंको समझनेमें असमर्थ हो जाता है, इस समय ठीक वही दशा इन भगवान् श्रीविष्णुकी हो गयी है। नींदसे आँखें बंद हैं। ये कुछ जानते ही नहीं। इनकी मैंने निरन्तर इतनी स्तुति की; फिर भी ये निद्राको दूर न कर सके। समझ गया—इनके वशमें निद्रा नहीं है, किंतु ये ही निद्राके अधीन होकर रहते हैं। जो जिसके वशमें रहता है, वह उसका अनुचर है—यह बिलकुल निश्चित बात है। इससे सिद्ध हो गया, ये भगवती योगनिद्रा इन लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुकी भी अधिष्ठात्री हैं। लक्ष्मीजी भी इन्हींके अधीन हो गयीं; क्योंकि पतिदेव विष्णु ही जब अधीन हो गये, तब उनकी अलग सत्ता कहाँ। इससे निश्चित होता है कि यह अखिल ब्रह्माण्ड भगवती योगनिद्राके अधीन है। मैं, विष्णु, शंकर, सावित्री, लक्ष्मी और उमा—सभी इन्हीं योगनिद्राके शासनसूत्रमें बँधे हैं। इस विषयमें अब सोचने-विचारनेका तो कोई अवसर ही नहीं रहा। जब साधारण मनुष्योंकी भाँति स्वयं भगवान् विष्णु ही इसके प्रभावसे प्रभावित होकर नींदमें अचेत-से हो गये हैं, तब अन्य महात्मा पुरुषोंपर इनका अधिकार है या नहीं, यह तो विचार ही नहीं उठ सकता। इसलिये अब मैं इन भगवती योगनिद्राकी स्तुति करूँ, जिनकी कृपासे जगकर भगवान् विष्णु युद्धमें मेरी सहायता करनेमें तत्पर हो सकेंगे। उस समय ब्रह्माजी कमलपर विराजमान थे। वे अपने मनमें उपर्युक्त विचार निश्चित करके भगवान् विष्णुके अङ्गोंमें शोभा पानेवाली उन भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देवी ! मैं जान गया, तुम निश्चय ही इस जगत्की कारणस्वरूपा हो। सम्पूर्ण वेद-वचन इसे प्रमाणित कर रहे हैं। यही कारण है कि चराचर जगत्को प्रबुद्ध करनेवाले परमपुरुष भगवान् विष्णु आज गाढ़ी नींदमें मग्न हैं। माता ! तुम समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें निवास करती हो। भवानी ! तुम सगुणरूप धारण करके अपनी लीला प्रकट करती हो। तुम्हारे इस कार्य-कौशलको कोई नहीं जान पाता। मुनिगण 'संध्या' नामसे तुम्हारे गुणोंकी कल्पना करके प्रातः, सायं और मध्याह्न—तीनों समय निश्चितरूपसे तुम्हारे ध्यानमें लगे रहते हैं। माता ! प्राणियोंको सत्-असत्का ज्ञान करानेवाली बुद्धि तुम्हीं हो। देवी ! देवता जिससे निरन्तर सुखका अनुभव करते हैं, वह श्री तुम्हारा ही रूप है। अखिल जगत्में तुम कीर्ति, धृति, कान्ति, मति, रति और श्रद्धारूपसे विराजती हो। तुम अखिल जगत्की जननी हो ! मैं दुःखी होकर इसका प्रमाण खोजनेमें प्रयत्नशील था—इतनेमें भगवान् विष्णु तुम्हारे अधीन हो नींद ले रहे हैं—यही मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। इससे अधिक अब सैकड़ों प्रमाणोंकी आवश्यकता ही क्या रही। देवी ! वेदज्ञ पुरुष भी तुम्हें नहीं जान पाते। वेद भी तुम्हारे अखिल अभिप्रायसे अनभिज्ञ ही रहता है; क्योंकि इस वेदकी उत्पत्ति भी तुम्हींसे हुई है ! फिर तुम्हारे रहस्यको कैसे जान सकता। तुमसे उत्पन्न हुआ यह अखिल जगत् ही इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है। देवी ! यज्ञमें हवन करते समय भी वेदज्ञ पुरुष तुम्हारे 'स्वाहा' इस नामका उच्चारण करते हैं। यदि वे स्वाहा न कहें तो देवतालोग यज्ञभागसे वञ्चित ही रह जायँ। इससे

देवताओंको वृत्ति देनेवाली भी तुम्हीं सिद्ध हुई। देवी ! तुम पहले भी मेरी रक्षा कर चुकी हो। वैसे ही अब इस देवशत्रु कैटभसे भी मुझे बचाओ। वर देनेवाली देवी ! मैं मधु और कैटभको अत्यन्त भयंकर देखकर भयभीत हो तुम्हारी शरणमें आया हूँ। महानुभावे ! इस समय भगवान् विष्णु मेरे इस दुःखको नहीं जानते—ऐसी मेरी समझ है; क्योंकि वे तुम्हारी मायासे अचेत होकर जडवत् पड़े हैं। ऐसी स्थितिमें या तो तुम भगवान् विष्णुपरसे अपना प्रभाव खींच लो अथवा इन दानवराज मधु और कैटभका स्वयं संहार करो। इन दोनोंमें जो तुम्हारी रुचि हो, वही करो। भगवती लक्ष्मी भी तुम्हारे अधीन हैं। अतः वे भी अपने पतिदेव श्रीहरिको नहीं जगा सकतीं। जान पड़ता है उन्हें भी तुम्हारे प्रभावसे अकस्मात् नींद आ गयी, जिससे वे परवशकी भाँति सो गयी हैं—जगती ही नहीं। देवी ! तुम सम्पूर्ण जगत्की माता हो। सभी मनोरथ पूर्ण करना तुम्हारा स्वभाव है। जो लोग अन्य देवताओंकी उपासना छोड़कर तुम्हारे परायण हो चरण-कमलोंमें उत्तम भक्ति स्थापित करते हैं, वे बड़भागी जन धरातलपर धन्य हैं। भगवती ! धी, कान्ति, कीर्ति आदि मङ्गलमय वृत्तियाँ तुम्हारे गुण हैं। तुम दिव्यस्वरूपिणी हो। तुम्हारी शक्ति जो निद्रा है, उसके अधीन होकर वे विष्णु बंदीकी भाँति असमर्थ-से हो गये हैं ! तुम्हीं भगवती शक्ति हो। अखिल जगत्में तुम्हारा ही प्रभाव व्याप्त है। चराचर जगत् तुम्हींसे उत्पन्न हुआ है। अपने ही बनाये हुए जगत्-प्रपञ्चमें तुम वैसे ही क्रीड़ा करती हो, जैसे नट अपने फैलाये हुए इन्द्रजालमें सुखका अनुभव कर रहा हो। माता ! तुम्हींने युगके आरम्भमें विष्णुको जगत्का पालन करनेके लिये उत्तम शक्ति प्रदान की। वे समस्त संसारकी रक्षामें सफल भी हुए। किंतु आज वे पराधीन-से पड़े हैं। यह निश्चय है तुम्हारी जो इच्छा होती है, वही तुम करती हो। भगवती ! मुझे उत्पन्नकर यदि मेरी स्थिति कायम रखना चाहती हो तो मौनभावका परित्याग करके दया करनेकी कृपा करो। ये दानव कालस्वरूप हैं, इन्हें तुमने बनाया ही क्यों ? अथवा मेरा उपहास करानेकी इच्छासे ही इन्हें प्रकट कर दिया ? भवानी ! मैंने तुम्हारी अद्भुत चेष्टा जान ली। सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि करके तुम स्वतन्त्ररूपसे आनन्दका अनुभव किया करती हो। फिर चराचर जगत्को अपनेमें लीन भी कर लेती हो। तुम मुझे पहले जगत्स्रष्टा बना चुकी हो। वही मैं यदि दैत्यके हाथसे मारा गया तो मेरी बड़ी अपकीर्ति होगी।

सूतजी कहते हैं—जब इस प्रकार ब्रह्माजीने भगवतीकी स्तुति की, तब तामसी निद्रा देवी भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे निकलकर बगलमें

खड़ी हो गयीं। अब अमितपराक्रमी भगवान् श्रीहरिके सभी अङ्गोंसे निद्रा देवीका अधिकार

उठ गया। मधु और कैटभके संहारके लिये ही भगवती योगनिद्राने ऐसी कृपा की थी। फिर तो भगवान् श्रीविष्णु जब अपने शरीरको हिलाने-डुलाने लगे, तब उनके दर्शन करके ब्रह्माजी आनन्दविभोर हो उठे। साथ ही उन्होंने श्रीहरिकी परिक्रमा आरम्भ कर दी।

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी ! इस कथाप्रसङ्गको जानकर तो हमें बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है; क्योंकि वेद, शास्त्र, पुराण और विज्ञजनोंने सदा यही निर्णय किया है कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर—ये ही तीनों सनातन देवता हैं। इनसे बढ़कर इस ब्रह्माण्डमें दूसरा कोई देवता है ही नहीं। ब्रह्माजी सारे संसारकी सृष्टि करते हैं। जगत्का संरक्षण भगवान् विष्णुके अधीन रहता है। प्रलयके अवसरपर शंकरजी उसका संहार किया करते हैं। इस जगत्प्रपञ्चके ये ही तीनों देवता कारण हैं। ये वास्तवमें एक ही हैं, किंतु कार्यवश सत्त्व, रज और तम आदि गुणोंको स्वीकार करके ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर नामसे विख्यात होते हैं। इन तीनोंमें परमपुरुष भगवान् विष्णु सबसे श्रेष्ठ हैं। वे जगत्के स्वामी और आदिदेव कहलाते हैं। उनमें सब कुछ करनेकी योग्यता है। दूसरा कोई भी देवता उन अतुल तेजस्वी श्रीविष्णुके समान शक्तिशाली नहीं है। फिर ऐसे सर्वसमर्थ परमप्रभु भगवान् श्रीविष्णु योगमायाके अधीन होकर कैसे सो गये ? महाभाग ! हमें यह महान् संदेह हो रहा है ! इस मङ्गलमय प्रसङ्गको सुनानेकी कृपा कीजिये। सुव्रत ! आप पहले जिसकी चर्चा कर चुके हैं तथा जिसने परमप्रभु विष्णुपर भी अधिकार जमा लिया, वह कौन-सी शक्ति है ? कहाँसे उसकी सृष्टि हुई, उसमें कैसे इतना पराक्रम हो गया और क्या उसका परिचय है—सब बतानेकी कृपा करें। जो सबके स्वामी हैं, जगत्के गुरु हैं, सर्वोत्तम आत्मा हैं, परम आनन्दस्वरूप हैं, सच्चिदानन्दमय विग्रह हैं, सबकी सृष्टि करते हैं, सबका संरक्षण करते हैं, रजोगुणसे रहित हैं, सर्वत्र विचर सकते एवं परम पवित्र परात्पर हैं, ऐसे सर्वगुणसम्पन्न भगवान् श्रीविष्णु विवश होकर कैसे नींदमें अचेत हो गये ? आपमें अप्रतिम ज्ञान भरा है। हमें यह जो महान् संदेह हो रहा है, इसे आप अपनी ज्ञानमयी तलवारसे काटनेकी कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! चराचरसहित इस त्रिलोकीमें कौन ऐसा है, जो इस संदेहको दूर कर सके। ब्रह्माजीके पुत्र नारद, कपिल आदि दिव्य महापुरुष भी इस प्रश्नका समाधान करनेमें निरुपाय हो जाते हैं। महानुभावो ! यह प्रश्न बड़ा ही गहन और विचारणीय है। इसके सम्बन्धमें मैं क्या कह सकता हूँ। जिनसे यह इतना विशाल चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, उन भगवान् विष्णुको ही वेदोंमें सर्वान्तर्यामी और सबका रक्षक बतलाया गया है। अतएव वैदिक सिद्धान्तको माननेवाले सभी लोग उन परमप्रभु भगवान् नारायणके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन्हींकी उपासना करते हैं। ऐसे ही कुछ लोग शंकरके उपासक हैं। महादेव, शंकर, शशिशेखर, त्रिनेत्र, पञ्चवक्त्र, शूलपाणि, वृषभध्वज, त्र्यम्बक, कपर्दी और गौरी-देहार्द्धधारी आदि नामोंसे भगवान् शिव वेदोंमें विख्यात हैं। वे सदा कैलासपर्वतपर रहते हैं। उनमें सारी शक्तियाँ निहित हैं। भूतगण उन्हें चारों ओरसे घेरे रहते हैं। उन्होंने दक्षका यज्ञ विध्वंस कर दिया था। महानुभावो ! इसी तरह अनेकों

वेदज्ञ पुरुष प्रतिदिन प्रातः, सायं और मध्याह्न-कालमें भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंका पाठ करके उनके द्वारा सूर्यकी उपासना करते हैं। वे मानते हैं कि सम्पूर्ण वेदोंमें सूर्यकी उपासनाको ही उत्तम माना गया है। उन्हीं महाभागका नाम परमात्मा भी है। वैसे ही कुछ वेदज्ञ पुरुषोंका कथन है कि वेदोंमें सब जगह अग्निकी उपासना की गयी है। इनके सिवा दूसरे लोग इन्द्र और वरुणको भी पूज्य मानते हैं। जिस प्रकार गङ्गा एक ही हैं, किंतु धाराओंके रूपमें पृथक्-पृथक् बहती हैं, वैसे ही महर्षियोंका कथन है कि एक ही भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंमें विराजमान हैं।

'प्रत्यक्ष', 'अनुमान' और तीसरा 'शब्द'—इन तीन प्रमाणोंको ही प्रकाण्ड विद्वानोंने सिद्ध किया है। नैयायिकोंके सिद्धान्तमें 'उपमान' को लेकर चार प्रमाण कहे गये हैं। मीमांसकोंने 'अर्थापत्ति' सहित पाँच प्रमाण माने हैं। पुराणवेत्ता विज्ञ पुरुष सात प्रमाण मानते हैं। जो इन सभी प्रमाणोंसे नहीं जाना जा सकता, वही परब्रह्म परमात्मा है। इस विषयमें शास्त्र, बुद्धि एवं निश्चयात्मिका युक्तिसे बारम्बार विचार करके अनुमान कर लेना चाहिये। विज्ञ पुरुषोंको चाहिये कि जिसका प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है, उसे भी अनुमानसे विचार कर लें। शिष्ट मार्गका अनुसरण करनेवाला भी निरन्तर दृष्टान्तसे काम लिया करता है। विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं और पुराणोंने भी घोषणा की है कि ब्रह्मामें सृष्टि करनेकी शक्ति है और विष्णु पालन करनेमें समर्थ हैं तथा शंकर संहार करनेमें कुशल हैं। सूर्य जगत्को प्रकाश देते हैं। शेष और कच्छप पृथ्वी धारण किये रहते हैं। अग्निमें जलानेकी और पवनमें हिलाने-डुलानेकी शक्ति है। सबमें जो शक्ति विराजमान है, वही आद्याशक्ति है। उसीके प्रभावसे शिव भी शिवताको प्राप्त होते हैं। जिसपर उस शक्तिकी कृपा न हुई, वह कोई भी हो, शक्तिहीन हो जाता है। बुधजन उसे असमर्थ कहते हैं। सबमें व्यापक रहनेवाली जो आद्याशक्ति है, उसीका 'ब्रह्म' इस नामसे निरूपण किया गया है। अतएव विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि भलीभाँति विचार करके सदा उसी शक्तिकी उपासना करे। विष्णुमें सात्त्विकी शक्ति व्याप्त है। यदि वह उनसे अलग हो जाय तो विष्णु कुछ भी न कर सकें। ब्रह्मामें जो राजसी शक्ति है, उसके बिना वे सृष्टि-कार्यमें अयोग्य हैं। शिवमें जो तामसी शक्ति है, उसीके प्रभावसे वे संहारलीला करते हैं। मनोयोग-पूर्वक इस प्रकार बार-बार विचार करके सारी बात समझ लेनी चाहिये। वही आद्याशक्ति इस अखिल ब्रह्माण्डको उत्पन्न करती और उसका पालन भी करती है। वही इच्छा होनेपर इस चराचर जगत्का संहार भी करनेमें संलग्न हो जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, अग्नि और पवन—ये सभी किसी प्रकार भी स्वतन्त्ररूपसे अपने-अपने कार्यका सम्पादन नहीं कर सकते; किंतु जब वह आद्याशक्ति इन्हें सहयोग देती है, तभी ये अपने कार्यमें सफल होते हैं। अतः इन कार्य-कारणोंसे यही प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि वह शक्ति ही सर्वोपरि है। विद्वान् पुरुष उस शक्तिके विषयमें दो प्रकारकी कल्पना करते हैं—सगुणा और निर्गुणा! भोगकी इच्छा करनेवाले सगुणाकी उपासना करते हैं। विरागियोंके यहाँ निर्गुणाकी उपासना होती है। वह शान्तस्वरूपा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी स्वामिनी है। विधिपूर्वक उसकी

उपासना करनेपर सभी मनोरथ सुलभ हो जाते हैं। वह आद्याशक्ति परब्रह्मस्वरूपा एवं सनातनी है। कभी उसका अवसान नहीं होता। अतएव मुनिवरो ! विवेकी पुरुष संदेहरहित होकर उस शक्तिकी ही उपासना करें। सम्पूर्ण शास्त्रोंसे यही बात निश्चित होती है। शक्तिहीन पुरुष चेष्टारहित हो जाता है—यह तो प्रत्यक्ष ही दिखायी पड़ रहा है। अतएव सम्पूर्ण जगत्में शक्तिको ही सर्वोपरि समझना चाहिये।

(अध्याय ६—८)

☆

## मधु-कैटभके साथ भगवान् विष्णुका युद्ध, भगवतीकी स्तुतिसे भगवान्के द्वारा मधु-कैटभका सम्मोहन और भगवान् विष्णुके द्वारा उनका वध

सूतजी कहते हैं—जब जगद्गुरु भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे निद्रा दूर हुई, उनके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय एवं वक्षःस्थल—सभी अङ्गोंसे निकलकर उस तामसी देवीने मूर्तिमान् हो आकाशमें स्थान बना लिया और भगवान् बार-बार जँभाई लेते हुए उठकर बैठ गये, तब उन्होंने देखा, वहीं प्रजापति ब्रह्माजी भयभीत होकर खड़े हैं। फिर तो महान् तेजस्वी श्रीविष्णु मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें कहने लगे—

भगवान् विष्णु बोले—पद्मयोनि ब्रह्माजी ! आप जप-तप छोड़कर यहाँ कैसे आ गये ? भगवन् ! क्यों आप इतने चिन्तित हैं ? आपका मन भयसे अत्यन्त घबराया हुआ क्यों है ?

ब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! मधु और कैटभ नामक दो दैत्य आपके कानकी मैलसे उत्पन्न हुए हैं। उनका रूप बड़ा ही भयंकर है और वे अपार बली हैं। वे दोनों मुझे मारनेके लिये उपस्थित हैं। जगत्प्रभो ! उन्हींसे डरकर मैं आपके पास चला आया। भगवन् ! भयसे मेरा कलेजा काँप रहा है और चेतना लुप्त-सी हो रही है। अब आप मुझे बचाइये।

भगवान् विष्णु बोले—ब्रह्माजी ! यहाँ विराजिये, अब आपका भय समाप्त हो गया। वे मूर्ख अपनी आयु खो चुके हैं। अभी युद्ध करनेके लिये मेरे पास आयेंगे और निश्चय ही मैं उनका वध कर दूँगा !

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे कह रहे थे—इतनेमें ही मतवाले मधु और कैटभ दोनों महाबली दानव ब्रह्माजीको खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। मुनिवरो ! सर्वत्र जल-ही-जल था, बिना किसी अवलम्बके ही निश्चिन्त होकर वे दैत्य खड़े थे। उनके सर्वाङ्गमें अहंकार भरा था। वे ब्रह्माजीसे कहने लगे—'भागकर इसके पास चला आया ? क्या इससे बच सकेगा ? युद्ध कर। यह देखता ही रहेगा और हम तेरे प्राण हर लेंगे। इसके बाद सर्पके फनपर बैठनेवाले इसे भी हम मारेंगे। किंतु पहले अभी तू लड़ ले; या लड़ना नहीं चाहता तो 'मैं तुम्हारा दास हूँ' यों कह दे।'

सूतजी कहते हैं—मधु और कैटभकी बात सुनकर भगवान् विष्णु उनसे कहने लगे—'दानव-श्रेष्ठ ! तुम इच्छापूर्वक मुझसे युद्ध कर लो। महाभाग ! तुम बड़े बली हो। तुम्हें असीम अभिमान हो गया है। यदि युद्ध करनेकी अभिलाषा हो तो आ जाओ, मैं तुम्हारा अभिमान दूर कर दूँगा !'

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके वचन

सुनकर मधु और कैटभकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। वे बिना किसी सहारे जलमें ही खड़े थे; फिर भी श्रीहरिसे युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। मधु कुपित होकर तुरंत ही भगवान्‌से लड़नेके लिये आगे आ गया था। अभी कैटभ वहीं ही ठहर गया। दो मतवाले पहलवानोंकी भाँति भगवान् विष्णु और मधु मल्लयुद्ध करने लगे। मधुके थक जानेपर कैटभ लड़ने लगता था। फिर मधु और फिर कैटभ—यों बार-बार वे क्रोधान्ध दैत्य शक्तिशाली श्रीहरिके साथ बाहुयुद्ध करनेमें संलग्न हो गये। उस समय ब्रह्माजी और भगवती शक्ति—ये दोनों आकाशमें खड़े होकर यह दृश्य देख रहे थे। मधु और कैटभको कुछ श्रम न हुआ और भगवान् विष्णु थक-से गये। जब पाँच हजार वर्षोंतक लड़ाई होती ही रही, तब भगवान् श्रीहरि मधु एवं कैटभकी मृत्युके विषयमें विचार करने लगे। सोचा, 'अरे ! मैंने पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किया, फिर भी इन भयंकर दानवोंको श्रमतक न हुआ और मैं थक गया—यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। मेरा बल और पराक्रम कहाँ चला गया ? ये दानव सदा स्वस्थ ही कैसे रह जाते हैं ? कौन-सा ऐसा कारण इस समय उपस्थित हो गया ?' यों भगवान् विष्णुको चिन्तित देखकर मधु और कैटभको अपार हर्ष हुआ। तब वे मतवाले दानव मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें कहने लगे—'विष्णो ! यदि तुझमें बल न रहा और युद्ध करनेसे थकान आ गयी तो मस्तकतक हाथ जोड़कर कह दे कि 'मैं अब तुमलोगोंका दास बन गया।' महामते ! यदि यह न जँचे—अभी कुछ शक्ति शेष हो तो युद्ध कर। तुझे तो हम मार ही डालेंगे। साथ ही इस चार मुखवाले ब्रह्माके भी प्राण हर लेंगे।'

सूतजी कहते हैं—महाभाग श्रीविष्णु अगाध जलमें विराजमान थे। मधु और कैटभने उन्हें यों खरी-खोटी सुनायी। उनकी बात सुनकर भगवान् शान्तिपूर्वक मधुर वचन कहने लगे।

भगवान् बोले—जो थक गया हो, डरा हो, जिसके हथियार गिर पड़े हों, स्वयं गिर गया हो अथवा अभी जो बालक हो—इनपर शूरवीर पुरुष प्रहार नहीं करते, यही सनातन धर्म है। इस युद्धभूमिमें मैंने पाँच हजार वर्षोंतक लड़ाई की। मैं अकेला हूँ और समान बलवाले तुम दो भाई लड़ रहे हो। तुम दोनों समय-समयपर जैसे विश्राम कर लेते हो, वैसे ही मैं भी कुछ विश्राम करके युद्ध करूँगा—इसमें क्या संदेह है। माना, तुम दोनों महान् मतवाले शूरवीर हो; परंतु कुछ समयतक ठहरो, मैं विश्राम कर लूँ। फिर न्यायपूर्वक युद्ध आरम्भ होगा।

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णुका उक्त कथन सुनकर दानवश्रेष्ठ मधु और कैटभ शान्त हो गये। फिर युद्ध होगा—यों निश्चय करके कुछ समयके लिये वे दूर जाकर खड़े हो गये। चतुर्भुज भगवान् विष्णुने देखा, मधु और कैटभ यहाँसे बहुत दूर चले गये हैं; तब उन्होंने 'उनकी मृत्यु क्यों नहीं होती'—इसका कारण सोचा। विचार करनेपर ज्ञात हुआ कि 'भगवतीने इन्हें वरदान दिया है। ये जब चाहेंगे, तभी मृत्यु इनके पास आयेगी। इसीसे ये शान्त भी नहीं होते। मैंने व्यर्थमें इतनी घोर लड़ाई की। मेरे परिश्रमका कुछ भी फल न मिला। ये कैसे मरेंगे—यह ठीक जाने बिना अब मैं युद्ध करूँ भी किस प्रकार। ये दानव वरके प्रभावसे घमंडमें चूर हो रहे हैं। सदा मुझे दुःख देना इनका

स्वभाव ही बन गया है। बिना युद्ध किये ये मरेंगे भी कैसे। भगवती वर दे चुकी है, वह उसे टाल नहीं सकती। भला, अपनी इच्छासे तो दुःखी आदमी भी मृत्युका आवाहन नहीं करता—फिर ये क्यों मरना चाहेंगे। जब कोई असाध्य रोगी और दरिद्र भी स्वयं मरना नहीं चाहता, फिर ये तो अभिमानमें चूर रहते हैं; अपनी मृत्यु क्यों चाहेंगे। अतः मैं अब सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाली उन विद्यामयी शक्तिकी शरणमें चलूँ, क्योंकि अब उनके प्रसन्न हुए बिना कार्य सिद्ध नहीं हो सकता।'

भगवान् विष्णु यों सोच रहे थे—इतनेमें ही मनको मुग्ध करनेवाली भगवती योगनिद्राके उन्हें दर्शन हुए। उस समय वे कल्याणमयी देवी आकाशमें विराजमान थीं। आनन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिको योगका ज्ञान तो था ही, उन्होंने बड़े ही रहस्यपूर्ण शब्दोंमें मधु-कैटभका संहार होनेके लिये भगवती भुवनेश्वरीकी स्तुति की।

भगवान् विष्णुके स्तुति करनेपर देवी मुसकराकर कहने लगीं—'विष्णो ! तुम देवताओंके स्वामी हो। हरे ! अब पुनः युद्ध करनेमें तत्पर हो जाओ। अब ये दोनों शूरवीर दानव ठगकर मारे जा सकेंगे। मेरी वक्र दृष्टिसे ये अवश्य ही मोहमें पड़ जायँगे। नारायण ! मेरी मायासे मोहित हो जानेपर तुम शीघ्र ही इन्हें मार डालना।'

सूतजी कहते हैं—भगवतीकी प्रेमरससे सनी हुई वाणी सुनकर भगवान् विष्णु युद्धभूमिमें आकर खड़े हो गये। वे महाबली दानव बड़े ही विचारशील थे। युद्धकी इच्छासे वे भी सामने उपस्थित हुए। भगवान् विष्णुको सामने देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। बोले—"चार भुजावाले विष्णु ! ठहरो, ठहरो और युद्ध करो। तुम्हें लड़नेकी उत्कट इच्छा तो है ही। हार और जीतमें प्रारब्ध प्रबल होता है—यह निश्चय जानकर तुम्हें युद्धमें लग ही जाना चाहिये। बलवान् विजयी होता है, किंतु कभी-कभी भाग्यवश दुर्बल भी विजय पा जाता है। इसलिये महात्मा पुरुषको चाहिये कि किसी भी परिस्थितिमें हर्ष और शोक न करे। 'मैं सदासे दानवोंका शत्रु हूँ। प्राचीन समयमें बहुत-से दैत्य मुझसे पराजित हुए हैं'—यह जानकर हर्ष और इस समय इन मधु एवं कैटभसे मैं हार गया—यह शोक करना तुम्हारे लिये अनुचित है।"

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर महाबाहु मधु और कैटभ युद्धके लिये डट गये। उन्हें देखकर भगवान् विष्णुने बड़े विचित्र ढंगसे एक घूँसा मारा। बलाभिमानी उन दैत्योंने भी भगवान्पर घूँसोंसे चोट पहुँचायी। यों परस्पर घोर युद्ध होने लगा। लड़ते हुए उन अपार बलशाली दानवोंको देखकर भगवान् श्रीहरिने कातर भावसे भगवतीकी ओर दृष्टि फेरी।

सूतजी कहते हैं—उस समय भगवान् करुणारससे भींग-से गये थे। उन्हें देखकर भगवतीने अट्टहास किया। उनकी आँखें लाल हो गयी थीं, साथ ही उन्होंने कामदेवके बाणोंकी तुलना करनेवाले अपने कटाक्षभरे नेत्रोंसे उन दैत्योंको आहत कर दिया। भगवती मुसकराती हुई तिरछी नजरोंसे उनकी ओर देख रही थीं। उनके उस अवलोकनमें प्रेम और मोह भरे थे। फिर तो भगवतीकी तिरछी चितवनको देखकर दुरात्मा मधु और कैटभ तुरंत मोहित हो गये। मदन-शरोंसे उनका मन व्यथित हो उठा। 'यह कैसा मनोहर अद्भुत दृश्य सामने आ गया'—

यों मानते हुए वे अपनी विस्तृत छटा दिखानेवाली देवीकी ओर देखते रह गये !

भगवान् विष्णु काम साधनेमें सतर्क तो थे ही, वे देवीके अभिप्रायको देखकर समझ गये कि अब दैत्य मोहित हो चुके हैं। फिर तो हँसकर मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें उन्होंने मधुर शब्दोंमें कहा—'वीर ! तुम्हें जो इच्छा हो, वर माँग लो। मैं तुम्हारे युद्ध-कौशलसे अत्यन्त प्रसन्न होकर अवश्य वर देनेको तैयार हूँ। प्राचीन समयमें युद्ध करनेवाले बहुतेरे दानव मेरे सामने आये; किंतु मैंने तुम्हारे समान न तो किसीको देखा और न सुना ही। तुम बड़े ही अनुपम बलवान् हो। अतएव मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अपार बलशाली दानवो ! तुम दोनों भाइयोंकी अभिलाषा मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।'

सूतजी कहते हैं—उस समय मधु और कैटभ कामसे आतुर थे। उन्हें अपने बलका अभिमान तो था ही। उनकी आँखें कमलके समान थीं। जगत्को आह्लादित करनेवाली भगवती महामाया सामने विराजमान थीं। भगवान् विष्णुका वचन सुनकर भी दानवोंकी आँखें देवीकी ओर लगी रहीं। अभिमानी वे भगवान् श्रीहरिसे कहने लगे—'विष्णो ! हम माँगने नहीं आये हैं, तुम हमें क्या दे सकोगे ? देवेश ! तुम्हें ही हम देनेको तैयार हैं। हम याचक नहीं, हम तो उदार दाता हैं। हृषीकेश ! तुम्हें जिस वरकी अभिलाषा हो, हमसे प्रार्थना करो। वासुदेव ! तुम्हारे इस अद्भुत युद्धसे हम बड़े प्रसन्न हैं।'

मधु और कैटभकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'यदि तुमलोग अब मुझपर प्रसन्न हो और वर देना चाहते हो तो बस, दोनों मेरे हाथसे मौत स्वीकार कर लो।'

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् श्रीहरिकी बात सुनकर मधु और कैटभ महान् आश्चर्यमें पड़ गये। वे 'हम ठगे गये'—मानकर खड़े रहे। उनके मुखपर शोककी घटा घिर आयी। सर्वत्र जल भरा था। कहीं भी प्राकृतिक भूमि नहीं दीखती, यह मनमें विचारकर वे भगवान्से कहने लगे—'जनार्दन ! तुम देवताओंके स्वामी हो। तुमने भी पहले वर देनेकी बात कही है, तुम कभी झूठ नहीं बोलते। अतः हमारा भी अभिलषित वर दो। माधव ! हमारा वर यही है कि जलशून्य विस्तारवाले स्थानपर हमारा वध करो। हमने तुमसे मौत स्वीकार कर ली, किंतु तुम भी वचनका पालन करना।' तब भगवान्ने सुदर्शन चक्रको याद किया। साथ ही वे हँसकर कहने लगे—'महाभाग ! जलशून्य विस्तृत स्थानपर ही तुम्हें मार रहा हूँ।' यों कहकर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने अपनी विशाल जाँघें फैलाकर जलपर ही जलरहित स्थान मधु और कैटभको दिखा दिया। साथ ही कहा—'इस स्थानपर जल नहीं है, अब तुम अपना मस्तक दे दो। आजसे मैं भी सत्यवादी रहूँगा और तुम भी।' भगवान्का यह कथन सुनकर उसकी सत्यतापर वे विचार करते रहे। पश्चात् अपने चार हजार कोसवाले विशाल शरीरको उन्होंने स्वयं मृत्युके मुखमें डाल दिया। उस समय भगवान्ने अपनी जाँघें सटा लीं, यह देखकर मधु और कैटभको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन विचित्र जाँघोंपर मस्तक रखनेके लिये भगवान्ने दैत्योंसे कहा। उन्होंने मस्तक रख दिये, तब भगवान्ने उनके मस्तकोंको चक्रसे काट डाला। तदनन्तर मधु और कैटभके

प्राणपखेरू उड़ गये। उस समय सारा समुद्र उन

दैत्योंके रक्त और मज्जासे व्याप्त हो गया।

मुनीश्वरो ! तभीसे पृथ्वीका नाम 'मेदिनी' पड़ गया। इसीलिये मिट्टी खाना निषेध माना जाता है। तुमलोगोंने जो पूछा था, वह सारा प्रसङ्ग भलीभाँति विचारकर मैं कह चुका। अतः विज्ञपुरुषोंको उचित है कि विद्यास्वरूपिणी महामायाकी ही सदा आराधना करें। सभी देवता और दानव भी उस परम शक्तिकी ही उपासना करते हैं। त्रिलोकीमें भगवतीसे बढ़कर कोई भी देवता नहीं है, यह बात सत्य है। वेद और शास्त्र इसके प्रमाण हैं। अतः वे चाहे निर्गुण हों अथवा सगुण—उन परा शक्तिकी उपासना करनी ही चाहिये।

(अध्याय ९)

☆

## व्यासजीकी तपस्या और भगवान् शंकरका वरदान, राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीरूपमें परिणति, पुरूरवाकी उत्पत्ति, सुद्युम्नकी देवी-उपासना तथा भगवतीकी कृपासे सुद्युम्नको परमधामकी प्राप्ति, राजा पुरूरवाको उर्वशीकी प्राप्ति और प्रतिज्ञाभङ्गके कारण उर्वशीका राजाको छोड़कर चले जाना

ऋषिगण बोले—सूतजी ! आप पहले कह चुके हैं कि व्यासजी बड़े तेजस्वी थे। उन्होंने सम्पूर्ण पावन पुराणोंकी रचना करके शुकदेवजी-को पढ़ा दिया। किस प्रकारकी तपस्या करनेके प्रभावसे उन्हें शुकदेवजी पुत्ररूपमें प्राप्त हुए थे—इस विषयमें व्यासजीके मुखारविन्दसे आपने जो कुछ सुना हो, वह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजी उच्चकोटिके साक्षात् योगी थे। सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे जैसे उनका जन्म हुआ, वह कहता हूँ। एक समयकी बात है—महाभाग व्यासजी 'मुझे पुत्र हो'—यह निश्चित विचार करके मेरुगिरिके रमणीय शिखरपर गये और उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। उनके मनमें बार-बार विचार उठता था कि 'शक्तिकी उपासना अवश्य होनी चाहिये। जो शक्तिका पूजन नहीं करता, जगत्‌में उसकी निन्दा होती है। शक्तिका उपासक आदर पाता है।' सत्यवतीनन्दन व्यासजी सुमेरुगिरिके जिस शिखरपर तपस्या करते थे, वहाँ एक बड़ा अद्भुत कनेरका उपवन था। सभी देवता और महान् तपस्वी मुनि वहाँ क्रीड़ा करते थे। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत् और अश्विनी-कुमार तथा अन्य भी ब्रह्मको साक्षात्कार किये

हुए मुनिगण वहाँ ठहरे हुए थे। निरन्तर संगीत-ध्वनि होती थी। फिर तो चराचर सम्पूर्ण जगत्में व्यासजीका तेज फैल गया। उनकी जटाएँ अग्निके समान चमकने लगीं। उस समय उनके तेजको देखकर शचीपति इन्द्र डर गये। देवराजके मनमें व्यथा उत्पन्न हो गयी। वे भगवान् शंकरके पास जाकर खड़े हो गये। उनकी स्थिति देखकर भगवान् शंकरने कहा।

शंकरजी बोले—'इन्द्र ! तुम देवताओंके राजा हो। आज कैसे भयभीत हो गये ? तुमपर कौन-सा दुःख टूट पड़ा। तुम्हें कभी भी तपस्वियोंके प्रति अमर्ष नहीं करना चाहिये। शक्तिसहित मैं उपास्य हूँ—यों जानकर मुनिगण तपस्यामें लगे रहते हैं। वे किसी प्रकार भी दूसरेका अहित नहीं करना चाहते।' जब शंकरने इन्द्रसे यों कहा, तब वे उनसे पूछने लगे—'व्यासजी क्यों तपस्या करते हैं और उनके मनमें क्या अभिलाषा है ?'

भगवान् शंकरने कहा—पराशरनन्दन व्यास पुत्र पानेके लिये कठिन तपस्या कर रहे हैं। अभी सौ वर्ष पूरे हो जाते हैं, तब मैं उन्हें सुन्दर पुत्र दूँगा।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् शंकरने इन्द्रसे कहा। तत्पश्चात् वे जगद्गुरु शंकर व्यासजीके पास गये और कहने लगे—'वासवीनन्दन व्यास ! उठो। तुम्हें अभी सुन्दर पुत्र प्राप्त होगा। अनघ ! तुम्हें सम्पूर्ण तेजोंका साकार विग्रह, ज्ञानी, यशका विस्तार करनेवाला तथा अखिलजनोंका प्रिय पुत्र प्राप्त होनेवाला है। उसमें सभी सात्त्विक गुण उपस्थित रहेंगे। साथ ही वह सत्यपराक्रमी भी होगा।

सूतजी कहते हैं—भगवान् शंकरकी मधुमयी वाणी सुनकर महाभाग व्यासजीने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और वे अपने आश्रमको चले गये। बहुत वर्षोंके परिश्रमसे वे थक गये थे। 'पुत्र उत्पन्न करनेके लिये जो अरणि '(अर्थात् कामिनी)' विख्यात है, वह तो आज मेरे पास है नहीं। परंतु मैं किसी स्त्रीको स्वीकार भी कैसे करूँ; क्योंकि स्त्री तो पैरोंको जकड़नेवाली शृङ्खला ही है। स्त्री चाहे पुत्र उत्पन्न करनेमें कुशल, पातिव्रत-धर्मके पालनमें निपुण और रूपवती भी क्यों न हो, है तो वह बन्धन-स्वरूप ही। वह अपनी इच्छाके अनुसार सुख भोगना पसंद करती है। गृहस्थका जीवन बड़ा ही संकटमय है; फिर, अब मैं उसे कैसे स्वीकार करूँ।' मुनिवर व्यासजी यों सोच रहे थे—इतनेमें ही घृताची नामकी अप्सरा दिव्य रूप धारण किये हुए उन्हें दृष्टिगोचर हुई। उस समय वह मुनिके समीप ही आकाशमें खड़ी थी। अप्सराओंमें उसका सर्वोच्च पद था। 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? यदि मैं इसे स्वीकार कर लेता हूँ तो अनेकों तप करनेवाले महात्मा मेरी हँसी उड़ायेंगे। जो कुछ भी हो, उत्तम सुख देनेवाला तो गृहस्थाश्रम ही है। कहा जाता है—यह आश्रम पुत्र देता है, स्वर्ग पहुँचाता है और ज्ञान हो जानेपर मोक्ष भी दे देता है। बहुत पहले नारदजीसे मैं एक प्रसङ्ग सुन चुका हूँ। उर्वशी नामक अप्सरा थी। राजा पुरूरवा उसके वशमें हो गये थे। अन्तमें उस अप्सराने राजाका तिरस्कार कर दिया था।'

मुनियोंके पूछनेपर सूतजी कहने लगे—मुनिवरो ! इलाके गर्भसे पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई थी—यह प्रसङ्ग अब तुम्हें सुनाता हूँ। पुरूरवा यज्ञ और दानमें संलग्न रहनेवाले एक धार्मिक

पुरुष हो गये हैं। सुद्युम्न नामक एक राजा थे। उनके मुखसे कभी असत्य वाणी नहीं निकलती थी। इन्द्रियोंपर उनका अधिकार था। एक बार वे घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलनेके लिये जंगलमें गये। साथमें बहुत-से मन्त्री भी थे। आजगव नामक धनुष और बाणोंसे भरा हुआ अद्भुत तरकस उन्होंने ले रखा था। शिकार करते हुए वे राजा सुद्युम्न एक विचित्र वनमें जा पहुँचे। वह दिव्य वन मेरुगिरिके निचले भागमें था। पारिजातके वृक्षोंसे उसकी अनुपम शोभा हो रही थी। अशोक, बकुल तथा सुन्दर लताओंसे वह महक रहा था। साखू, तरकुल, तमाल, चम्पा, कटहल, आम, नीम, महुआ और वासन्ती लताएँ चारों ओरसे उस वनको घेरे हुए थीं। अनार, नारियल और केलेके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। जूही, मालती और कूँई आदि फूलवाली लताओंसे वह भरा था। वहाँ अनेकों हंस और बगुले विचरते थे। निरन्तर बाँसोंकी ध्वनि होती रहती थी। भँवरे गुनगुनाते थे। वह वन सम्यक् प्रकारसे सुखदायी था। राजा सुद्युम्न उस वनको देखकर बड़े हर्षित हुए। वृक्ष फूलोंसे लदे थे और कोयलें कूक रही थीं। यह देखकर राजा और उनके सेवकोंके मन मुग्ध हो गये। फिर तो महाराज सुद्युम्न उस वनमें घुसे। जाते ही उनका रूप स्त्रीका हो गया और घोड़ा भी घोड़ीके रूपमें परिणत हो गया। अब तो वे घोर चिन्तामें पड़ गये। सोचा—'यह क्या हो गया?' वे अत्यन्त चिन्तित हो उठे। बार-बार चिन्ताकी लहरें उठने लगीं। उन्हें असीम कष्ट हुआ। वे लज्जित हो गये। विचारने लगे—'मेरी आकृति स्त्रीकी हो गयी। अब मैं क्या करूँ, कैसे घर जाऊँ! अब मैं किस प्रकार राज्यका शासन सँभालूँगा? अरे, मुझे किसने ठग लिया?'

ऋषिगण बोले—सूतजी! आपने बड़े ही आश्चर्यकी बात कही कि राजा सुद्युम्न स्त्री हो गये। उनमें तो देवताके समान पराक्रम था, फिर क्यों उन्हें स्त्री हो जाना पड़ा? उस अत्यन्त रमणीय वनमें राजाने कौन-सा ऐसा कार्य किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें यह दशा प्राप्त हुई? सुव्रत! इसे विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है—भगवान् शंकरका दर्शन करनेके लिये सनक प्रभृति ऋषिगण वहाँ पधारे थे। उस समय भगवान् शिव भगवती उमाके साथ क्रीड़ामें मग्न थे। ऋषियोंको देखकर उमा अत्यन्त लज्जित हो गयीं। वे पतिदेवके पाससे उठीं और लज्जित होकर अलग बैठ गयीं। उनका शरीर बड़े जोरसे काँपने लगा। उन दोनोंके आनन्दका अवसर देख ऋषिगण यत्र-तत्र बिखरकर शीघ्र ही भगवान् नारायणके आश्रमको चले गये। अपनी प्रिया पार्वतीको अत्यन्त लज्जित देखकर भगवान् शंकरने उनसे कहा—'तुम क्यों इतनी लज्जित हो रही हो, मैं अभी तुम्हें सुखी किये देता हूँ। वरानने! देखो, आजसे कोई भी पुरुष मोहवश इस वनमें पैर रखेगा तो तुरंत ही वह स्त्री हो जायगा।' इस प्रकार भगवान् शंकरने उस वनको शाप दे दिया, तबसे वह वन दोषका खजाना बन गया। जहाँ कहींके जो लोग इस बातको जानते हैं, वे उस कामवनमें कभी भूलकर भी पैर नहीं रखते। महाराज सुद्युम्न इस बातसे अनभिज्ञ थे, अतएव मन्त्रियोंसहित वहाँ चले गये। इसलिये सबके साथ ही उन्हें शापके अनुसार स्त्रीत्व स्वीकार करना पड़ा। अब उन

राजर्षि सुद्युम्नपर चिन्ताके मेघ उमड़ पड़े। लज्जाके कारण वे घर न जा सके। उस वनसे निकलकर बाहर ही इधर-उधर घूमने लगे। स्त्री होनेके कारण उस समय उनका नाम 'इला' पड़ गया। वे चारों ओर घूम रहे थे, इतनेमें चन्द्रमाके नवयुवक पुत्र बुधसे उनकी भेंट हो गयी। इलाका रूप बड़ा ही मनोहर था। अनेकों स्त्रियाँ उसके साथ थीं। महाभाग बुधने उसे अपनी पत्नी बनानेकी इच्छा प्रकट की। इलाके मनमें भी बुधको पति बनानेकी बात जँच गयी। फिर तो प्रेमपूर्वक दोनोंका परस्पर सम्बन्ध हो गया। उसी इलाके गर्भसे बुधने पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया।

उस सुन्दरी स्त्री इलाने वनमें रहकर पुत्र तो उत्पन्न कर दिया; किंतु उसके मनमें चिन्ताकी लहरें उठती ही रहीं। वहीं उसने अपने कुलके आचार्य मुनिवर वसिष्ठजीको याद किया। वसिष्ठजी बड़े दयालु थे। उन्होंने सुद्युम्नकी दशा देखकर जगत्के कल्याण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् शंकरकी स्तुति की। भगवान् शिव मुनिवरपर प्रसन्न हो गये। वसिष्ठजीने अपने प्रियपात्र राजाके पुनः पुरुष होनेकी प्रार्थना की 'तब अपनी बात भी सत्य रहे'—यह सोचकर भगवान् शंकरने कहा—'राजा एक मास पुरुष रहेगा और एक मास तो इसे स्त्री ही रहना पड़ेगा।' इस प्रकार वर पाकर धर्मात्मा सुद्युम्न पुनः अपने घर चले आये। वसिष्ठजीकी कृपासे उन्होंने राज्यकी व्यवस्था आरम्भ कर दी। स्त्री होनेपर वे महलमें रहते थे और पुरुष रहते समय उनके द्वारा राज्यका अनुशासन होता था। उस समय प्रजामण्डलमें अशान्ति फैल गयी। ऐसे राजा उन्हें अप्रिय-से जान पड़ते थे।

समयानुसार पुरूरवाकी युवा अवस्था हो गयी, तब राजा सुद्युम्न उन्हें राजगद्दीपर बैठाकर स्वयं वनको चले गये। अनेक वृक्षोंसे सम्पन्न उस सुन्दर वनमें जाकर उन्होंने मुनिवर नारदजीसे उत्तम 'नवाक्षर' मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की और अत्यन्त प्रेमपूर्वक उस मन्त्रका जप आरम्भ कर दिया। फिर तो सबका उद्धार करनेवाली गुणमयी भगवती योगमाया राजापर प्रसन्न हो गयीं। सिंहपर बैठकर वे राजाके सामने पधारीं। उनका दिव्य रूप बड़ा ही मनोहर था। दिव्य रूप धारण करनेवाली उन देवीके दर्शन पाकर स्त्री बने हुए राजा सुद्युम्नकी आँखें आनन्दसे उत्फुल्ल हो उठीं, उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ सिर झुकाकर भगवती जगदम्बिकाको प्रणाम किया और स्तुति आरम्भ कर दी।

इलाने कहा—भगवती ! मैंने आपके सुप्रसिद्ध दिव्य रूपकी झाँकी पा ली। इस रूपसे अखिल जगत्का कल्याण हो जाता है। माता ! देवगण जिसकी उपासना करते हैं तथा मुक्ति देना और मनोरथ पूर्ण करना जिसका स्वभाव ही है उस आपके चरणकमलमें मैं मस्तक झुकाती

हूँ। जगदम्बिके ! जब देवता और मुनिगण—ये सब भी आपके स्वरूपके सम्बन्धमें सम्यक् प्रकारसे निर्णय नहीं कर पाते, तब पृथ्वीपर रहनेवाला साधारण मनुष्य उसे कैसे जान सकता है। दयामयी ! आपकी दयापूर्ण दृष्टि पड़नेपर ही आपके सम्पूर्ण प्रभाव समझमें आते हैं। देवी ! आपके वैभवको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, पवन, कुबेर तथा वसुगणतक आपके सम्पूर्ण गुणोंसे अपरिचित हैं, तब गुणहीन मनुष्य क्योंकर उन्हें समझ सकता है? माता ! भगवान् विष्णु महान् तेजस्वी हैं, तब भी सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेवाला लक्ष्मीके रूपमें आपका जो सात्त्विक स्वरूप है, उसे ही वे जानते हैं। ब्रह्माजी आपके राजस रूपसे और शंकर तामस रूपसे परिचित हैं। कहाँ तो मैं प्रचण्ड मूर्ख और कहाँ आपका यह अत्यन्त प्रभावशाली परम प्रसाद—मेरे लिये यह कितना असम्भव है। भवानी ! आपका कृपापूर्ण चरित्र समझमें आ गया। अनन्य भक्तिसे उपासना करनेवाले सेवकोंपर दया करना आपका स्वभाव ही है। जब आपने लक्ष्मीरूपसे विराजमान होकर इनसे सम्बन्ध स्थापित किया, तभी ये विष्णु मधु दैत्यको मारनेमें समर्थ हुए। फिर भी ये प्रसन्नतापूर्वक आपसे व्यवहार नहीं कर पाते, अपितु चरण दबवाते हैं—इसका रहस्य तो यह है कि आपका हाथ अग्निके सदृश तेजस्वी है। उससे स्पर्श कराकर वे अपने पैरोंको पवित्र बनाते हैं ताकि पृथ्वीका भार सँभाल सकें। पुराणपुरुष भगवान् विष्णुकी छातीमें भृगुजीने लात मारी; किंतु आप श्रीदेवीकी अभिलाषासे वे अप्रसन्न न हुए, जैसे काटे जानेपर भी अशोक वृक्ष भविष्यमें अच्छा सज जानेकी आशासे अप्रसन्न नहीं होता। सभी देवता भगवान् विष्णुको प्रणाम करते हैं और उन श्रीहरिका मन आपमें लगा रहता है। देवी ! आप भगवान् विष्णुके अत्यन्त विस्तृत, शान्त एवं भूषणोंसे भूषित वक्षःस्थलपर शय्याकी भाँति सदा उसी प्रकार विराजमान रहती हैं, जैसे बिजली मेघमालामें शोभा पाती है। तो फिर क्या वे जगत्प्रभु विष्णु आपके वाहन नहीं हुए ? माता ! यदि आप नाराज होकर उन्हें छोड़ दें तो निश्चित है कि उनकी पूजा असम्भव हो जायगी। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि कोई पुरुष शान्त, सुशील और गुणी भले ही हो; किंतु उसके पास आपका (शक्तिका) वास न हो तो अपने कहलानेवाले भाई-बन्धु भी उसे छोड़ देते हैं। अमितप्रभावशालिनी देवी ! सदा तुम्हारे चरणकमलोंकी उपासनामें उद्यत रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, क्या ये कभी स्त्री नहीं थे। मैं तो मानती हूँ कि ये भी स्त्री थे और तुमने ही इन्हें पुरुष बनाया है। माता ! तुम्हारी शक्तिका कितना वर्णन करूँ ? माता ! तुम जब पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष बनानेकी शक्ति रखती हो, तब मुझे भी पुरुष बना देनेकी कृपा करो। तब देवीने प्रसन्न होकर इलाको पुरुष बना दिया। तदनन्तर सुद्युम्नने कहा—'देवी ! मेरे मनमें तो ऐसी कल्पना उठती है कि तुम न स्त्री हो न पुरुष हो; न निर्गुण हो और न सगुण। अथवा तुम जो कोई भी हो, मैं भक्तिभावके साथ अनवरत तुम्हें प्रणाम करता हूँ। माता ! यही अभिलाषा है कि तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति सदा बनी रहे।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करके राजा सुद्युम्न भगवतीके शरणागत हो गये।

भगवतीने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें अपने धाममें भेज दिया। इस प्रकार भगवती जगदम्बिकाके कृपाप्रसादसे राजा उस परमपदके अधिकारी हो गये, जहाँसे लौटना नहीं होता तथा देवतालोग भी जिस पदके लिये लालायित रहते हैं।

सुद्युम्नके स्वर्ग सिधारनेपर पुरूरवा राज्य करने लगे। वे महान् गुणी और प्रजाकी प्रसन्नतामें सदा प्रयत्नशील रहनेवाले थे। प्रतिष्ठानपुर बड़ा ही रमणीय नगर था। उसीमें उनकी राजधानी थी। प्रजाकी रक्षामें सदा संलग्न रहनेवाले तथा सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता पुरूरवाके हाथमें अब शासन-सूत्र आ गया। वे अमित उद्यमशील थे। प्रभुशक्ति तो उनमें थी ही। साम, दान, दण्ड, भेद—सब उनके अधीन रहते थे। उनके राज्यकालमें सभी वर्ण अपने-अपने आश्रम-धर्मका पालन करते थे। महाराज पुरूरवाने विविध यज्ञ किये—जिनमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी गयीं। उनके रूप, गुण, वैभव, सदाचार, स्वभाव और शक्तिकी बात सुनकर उर्वशी आसक्त हो गयी। उसने राजा पुरूरवाको पति बनाना चाहा। वह अप्सरा ब्रह्माजीके शापसे मर्त्यलोकमें आयी हुई थी। राजा पुरूरवाको गुणी समझकर उन्हें उसने वरण किया। पर उसने राजाके सामने ये शर्तें रखीं—'राजन् ! तुम्हारे पास ये दो मेंढ़े रहते हैं, इनकी तुम्हें रक्षा करनी होगी। मैं प्रतिदिन घृत ही खाऊँगी। इसके सिवा मेरा दूसरा कुछ भी भोजन न होगा। महाराज ! मैथुनके अतिरिक्त मैं तुम्हें कभी नग्न न देख सकूँगी ! राजन् ! यदि यह शर्त कभी भङ्ग हुई तो तुम्हें छोड़कर मैं चली जाऊँगी। यह बिलकुल सत्य बात कहती हूँ।' राजाने उर्वशीकी शर्त स्वीकार कर ली। तब शापसे उद्धार पानेके लिये वह प्रतिज्ञापूर्वक वहाँ रहने लगी। उस समय राजाकी बुद्धि और मनका एकमात्र विषय उर्वशी ही बन गयी थी। वे उसपर इतने आसक्त हो गये कि उसके बिना क्षणभर भी रहना उनके लिये असम्भव हो गया। इस प्रकार अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। देवराज इन्द्र स्वर्गमें थे; उन्होंने उर्वशीको वहाँ नहीं देखा, तब वे गन्धर्वोंसे कहने लगे—'गन्धर्वो ! तुम सब लोग उर्वशीको यहाँ लानेका प्रयत्न करो। राजा पुरूरवाकी आँखोंसे ओझल होकर उनके घरसे मेंढ़ोंको चुरा लिया जाय तो निश्चय ही काम बन जायगा। यहाँ मेरा स्थान उर्वशीके बिना उदास हो गया है—इसकी शोभा ही नष्ट हो गयी है। अतः जिस किसी उपायसे भी उस सुन्दरी अप्सराको यहाँ अवश्य लौटा लाओ।'

तदनन्तर देवराज इन्द्रके कथनानुसार विश्वावसु प्रभृति अनेकों गन्धर्व पुरूरवाके महलमें गये। खूब अँधेरा छाया हुआ था। गन्धर्वोंने मेंढ़ोंको चुरा लिया। वे जब उन्हें लेकर आकाशमार्गसे चले, तब मेंढ़े चिल्लाने लगे। उर्वशी उन मेंढ़ोंको पुत्रके समान मानती थी। उनकी चिल्लाहट सुनकर वह कुपित हो उठी। साथ ही उसने नरेशसे कहा—'इन मेंढ़ोंको सुरक्षित रखनेकी तुमने प्रतिज्ञा की थी, किंतु राजन् ! आज तुम्हारे विश्वासमें आकर मैं नष्ट हो गयी। ये मेंढ़े मुझे पुत्रके समान प्यारे थे। इन्हें चोरोंने चुरा लिया और तुम स्त्रीके समान आँखें मूँदे पड़े हो। तुम नपुंसक हो, केवल अपने मनमें ही वीर बने हुए हो। तुम-जैसे पतिके साथ रहकर मैं चौपट हो गयी। अरे, ये दोनों मेंढ़े मुझे प्राणोंके समान प्रिय थे। किंतु आज ये

मेरी आँखोंसे ओझल हो गये।' इस प्रकार उर्वशी विलाप करने लगी। उसे उदास देखकर अपनी सुधि-बुधि खोये हुआ राजा पुरूरवा नंगे ही झट चोरोंके पीछे दौड़ पड़े। ठीक उसी समय राजभवनके सामने ही गन्धर्वोंकी प्रेरणासे बिजली चमक उठी। राजा जानेकी उतावलीमें थे। अप्सराने उन्हें नंगे ही देख लिया। फिर तो सभी गन्धर्व रास्तेमें ही मेंढ़ोंको छोड़कर भाग गये। राजाने उन मेंढ़ोंको पकड़ लिया और वे थके-माँदे अपने भवनपर लौट आये। उस समय उन्हें उर्वशी दिखायी नहीं पड़ी। तब पुरूरवा अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे। परंतु वह सुन्दरी स्त्री उर्वशी तो पतिको नग्न देखकर कभीकी जा चुकी थी। अब स्वयं राजा पुरूरवा रोते हुए देश-देशान्तरोंमें चक्कर काटने लगे। उनका मन उर्वशीमें अटका हुआ था। पागलकी-सी दशा हो गयी थी। वे सारे भूमण्डलपर घूमते रहे। उन्हें कुरुक्षेत्रमें उर्वशी दिखायी पड़ी। उसे देखकर महाराज पुरूरवाका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। फिर मीठी वाणीमें वे कहने लगे—'अरी सुन्दरी ! ठहरो, ठहरो ! मेरा चित्त तुममें लगा हुआ है। मैं तुम्हारे अधीन होकर रहता हूँ। मैंने कोई अपराध भी नहीं किया है। फिर मुझ पतिको इस घोर संकटमें छोड़ना तुम्हारे लिये कहाँतक उचित है ? देवी ! वही यह तुम्हारा प्रिय देह है। तुम्हारे दूर होनेपर अब यह नष्ट हो रहा है। सुन्दरी ! यदि तुमने इसका परित्याग कर दिया तो इसे सियार और कौए खा जायँगे—अर्थात् मैं जी नहीं सकूँगा।'

इस प्रकार राजा पुरूरवा दुःखी होकर विलाप कर रहे थे। बड़ी दयनीय दशा हो गयी थी। वे थक गये थे—अत्यन्त विवश हो गये थे। तब उनसे उर्वशीने कहा।

उर्वशी बोली—महाराज ! तुम बड़े मूर्ख हो। तुम्हारी बुद्धि कहाँ कुण्ठित हो गयी ? तुम घर जाओ। वहाँका ही आनन्द भोगो। मनमें यों विषाद करना व्यर्थ है।

इस तरह समझानेपर भी महान् मोहमें डूबे हुए पुरूरवाको ज्ञान न हो सका। वे दुःखके उमड़े सागरमें गोता खाते रहे।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार यह कथा मैंने कह दी। उर्वशीका प्रसङ्ग बहुत बड़ा है। मैं तो इसे थोड़ेमें ही कह गया।

(अध्याय १०—१३)

☆

## श्रीशुकदेवजीका जन्म और व्यासजीके द्वारा विवाहके लिये कहे जानेपर शुकदेवजीका अस्वीकार करना, वटपत्रपर स्थित बालकरूप भगवान् विष्णुकी कथा

सूतजी कहते हैं—घृताची नामकी उस सुन्दरी अप्सराको सामने देखकर व्यासजी अपार चिन्तामें पड़ गये। सोचा, 'मैं क्या करूँ ? यह देवकन्या अप्सरा मेरे अनुरूप नहीं है।' उस समय विचार-सागरमें निमग्न मुनिको देखकर अप्सराके मनमें आतङ्क छा गया। सोचा, 'मुनि कहीं मुझे शाप न दे दें।' उसने अपना रूप सुगीका बना लिया और डरती हुई वह मुनिके आगेसे निकली। अब उसे पक्षीके रूपमें देखकर व्यासजी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। अप्सराको देखनेके साथ ही मुनिके शरीरमें कामका संचार हो गया था। उस समय अग्नि

प्रकट करनेके विचारसे व्यासजी काष्ठ-मन्थन कर रहे थे। अकस्मात् उस लकड़ीपर ही उनका वीर्य गिर पड़ा। पर वे काष्ठ-मन्थन करते ही रहे। मुनिके उसी अमोघ वीर्यसे शुकदेवजीका आविर्भाव हो गया। व्यासजीके समान ही शुकदेवजीकी बड़ी भव्य आकृति थी। काष्ठसे उत्पन्न हुए उस बालकने व्यासजीके मनको आश्चर्यचकित कर दिया। जिस प्रकार यज्ञमें हवि पानेपर अग्नि प्रदीप्त हो उठती है, वैसे ही शुकदेवजीकी आकृति चमचमा रही थी। पुत्रको देखकर मुनिके आश्चर्यकी सीमा न रही। मनमें आया—यह कैसी घटना घट गयी ? उन्होंने यों विचार किया कि हो-न-हो, यह भगवान् शंकरके वरका ही प्रभाव है। काष्ठसे प्रकट हुए शुकदेवजी तेजके मूर्तिमान् विग्रह ही जान पड़ते थे। अपने तेजसे एक दूसरे अग्निकी भाँति उनकी आभा चमक रही थी। दिव्य तेजसे सम्पन्न एक दूसरे गार्हपत्य-अग्निकी तुलना करनेवाले एवं परम प्रसन्न पुत्रको जब मुनिने देखा, तब उन्होंने तुरंत गङ्गामें गोता लगाया और फिर वे पर्वतके शिखरपर आ गये। तपस्वीलोग आकाशसे बालक शुकदेवजीपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। व्यासजीने महात्मा शुकदेवके जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। विश्वावसु, नारद और तुम्बुरु आदि प्रधान गन्धर्वोंके मनमें अपार हर्ष हुआ। वे सब शुकदेवजीके दर्शनार्थ आये और गान करने लगे। काष्ठसे प्रकट इस दिव्य बालक शुकदेवजीके दर्शन पाकर सम्पूर्ण महाभाग विद्याधरोंको असीम आनन्द हुआ। उन्होंने स्तुति आरम्भ कर दी। द्विजवरो ! शुकदेवजीके धारण करनेके लिये दण्ड, सुन्दर कृष्णमृगचर्म और दिव्य कमण्डलु स्वयं आकाशसे पृथ्वीपर आ गये। शुकदेवजी बहुत शीघ्र बड़े हो गये, प्रकाश तो उनका जन्मका ही साथी था। विविध विद्याओंके विशेषज्ञ व्यासजीने उनके यज्ञोपवीतकी विधि पूरी की। जन्मके समय ही रहस्य और संग्रहसहित सभी वेद शुकदेवजीके पास उसी प्रकार विराजमान हो गये, जैसे उन्होंने व्यासजीको सुशोभित किया था। मुनिवरो ! पुत्रोत्पत्तिके समय व्यासजीने घृताची अप्सराको सुगीके रूपमें देखा था, अतएव बालकका नाम शुकदेव रख दिया। शुकदेवजीने बृहस्पतिको विद्यागुरु बनाया। ब्रह्मचर्यके व्रतमें कोई भी विधि अधूरी नहीं रही।

गुरुकुलमें रहकर रहस्यों और संग्रहोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं अखिल धर्मशास्त्रोंका उन्होंने भलीभाँति अध्ययन कर लिया। गुरुको दक्षिणा दे दी। समावर्तन हो जानेपर वे अपने पिता व्यासजीके पास आ गये। पास आये हुए पुत्रको देखकर व्यासजी प्रसन्नतापूर्वक उठे और शुकदेवजीको बारम्बार उन्होंने हृदयसे लगाया। वे उनका मस्तक सूँघने लगे। कुशल पूछनेके पश्चात् उत्तम विद्याध्ययनके प्रसङ्गमें बातचीत की। 'तुमने भलीभाँति विद्या पढ़ ली।' यों आश्वासन देकर व्यासजीने शुकदेवजीको आश्रमपर रख लिया।

तदनन्तर व्यासजी शुकदेवजीका विवाह करनेकी बात सोचने लगे। उन्होंने शुकदेवजीसे भी कहा—'अनघ ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। बेटा ! तुमने सभी वेद और धर्मशास्त्र पढ़ लिये। अब अपना विवाह कर लो। गृहस्थ बनकर देवताओं और पितरोंका यजन करो। पुत्र ! विवाह करके मुझे पितृ-ऋणसे मुक्त करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। शुकदेव ! तुम बड़े

बुद्धिमान् हो। तुम्हें गृहस्थाश्रममें रहनेपर मुझे महान् सुख होगा। बेटा ! तुमसे मुझे बड़ी आशा है, उसे तुम्हें पूर्ण करना चाहिये। महाप्राज्ञ ! अत्यन्त कठिन तपस्या करनेके पश्चात् तुम अयोनिजका मैंने मुख देखा है। शुकदेव ! तुम दिव्य रूप हो। मैं तुम्हारा पिता हूँ। मेरी रक्षा करो।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहनेपर पूर्ण वैरागी शुकदेवजीने अपने पिता व्यासजीसे यों कहना आरम्भ किया।

शुकदेवजीने कहा—पिताजी ! भला, बताइये तो मर्त्यलोकमें ऐसा कौन-सा सुख है, जिसमें दुःख न भरे हों ? पण्डितजन ऐसे सुखको सुख ही नहीं कहते। महाभाग ! विवाह कर लेनेपर मैं स्त्रीके वशमें हो जाऊँगा। पराधीन हो जानेपर—विशेषतः जब स्त्री मुझे अपने काबूमें कर लेगी, तब मेरे लिये कौन-सा सुख रह जायगा ? सम्भव है, लोहे और काष्ठके यन्त्रसे जकड़ा हुआ मनुष्य कभी छूट भी जाय; किंतु स्त्री-पुत्रमयी शृङ्खलासे बँध जानेपर तो वह किसी प्रकार भी मुक्त नहीं हो सकता।

द्विजवर ! विष्ठा और मूत्रसे शरीरकी रचना होती है। स्त्रियोंका भी तो वही शरीर है। फिर सदसत्‌का विचार रखनेवाला कौन ऐसा पुरुष है, जिसमें ऐसे शरीरसे प्रीति जोड़नेकी इच्छा जाग्रत् हो ? विप्रर्षे ! मैं अयोनिज हूँ; फिर योनिमें फँसानेवाली मेरी बुद्धि हो भी कैसे। भविष्यमें भी मुझे किसी योनिमें जन्म लेना पड़े—यह मैं नहीं चाहता। परमात्मा-विषयक अद्भुत सुखका त्याग करके विष्ठामय घृणित सुख भोगनेकी इच्छा ही मैं क्यों करूँ। आत्मामें आनन्दका अनुभव करनेवाले पुरुष लौकिक सुखके लिये लालायित नहीं होते। मैंने सर्वप्रथम वेदोंका अध्ययन करके उनपर विचार किया, किंतु शान्ति न मिली; क्योंकि कर्मयोगमें प्रवृत्ति करानेके लिये वे वेद भी हिंसाके ही समर्थक सिद्ध हुए। मैंने बृहस्पतिजीको गुरु बनाया; परंतु उनपर भी गार्हस्थ्यमय समुद्रकी लहरें निरन्तर लहराती रहीं। तब वे कैसे मेरा उद्धार कर सकते थे। जिस प्रकार किसी वैद्यको स्वयं रोग सता रहा हो और वह दूसरेकी चिकित्सा करने लगे—ठीक यही हालत मेरे गुरुजीकी है। वे स्वयं मुक्तिकी बाट देखते रहते हैं। अहो, यह गार्हस्थ्य-जीवन कितना अन्धकारमय है ! गुरुदेवके चरणोंमें मस्तक झुकाकर मैं आपकी शरणमें आ गया। कालरूपी विषैले व्यालसे मेरा कलेजा काँप रहा है। आप तत्त्वका ज्ञान देकर मेरी रक्षा कीजिये। इस अन्धकारपूर्ण संसारमें मैं नक्षत्रमण्डलके समान निरन्तर चक्कर काटता रहा। जैसे भुवनभास्कर दिन-रात कहीं भी नहीं ठहरते, वैसे ही मेरे विश्रामका कोई स्थान नहीं था।

पिताजी ! स्वयं वस्तुस्थितिपर विचार

किया जाय तो संसारमें कौन-सा सुख है ? अज्ञानीजन भले ही सुख मानें। वे तो वैसे ही हैं, जैसे विष्ठाके कीड़े विष्ठामें ही सुख मानते हैं। जो वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके भी संसारमें रचे-पचे रहते हैं, उनसे बढ़कर दूसरा कोई मूर्ख है ही नहीं। कुत्ते, गदहे और घोड़ेके समान उनका जन्म व्यर्थ है। जिसे दुर्लभ मानवजीवन मिल गया और वेद-शास्त्रके अध्ययनकी सुविधा प्राप्त हो गयी, तब भी यदि वह मानव संसारमें बँधा ही रहा तो दूसरा कौन मुक्त हो सकेगा। स्त्री त्रिगुणमयी माया है। जगत्में विद्वान्, विवेकी और शास्त्रका पारगामी कहलानेवाला अधिकारी वही है, जिसके पैर इस नारीमयी शृङ्खलासे मुक्त रहे हैं। बन्धनको सुदृढ़ करनेवाला अध्ययन व्यर्थ है, उस पढ़नेसे क्या लाभ ! अतः अब मुझे वही पढ़ना चाहिये, जो मुझे इस भवपाशसे मुक्त कर सके। पुरुषको सदा फँसाये रहनेके कारण ही तो गृहको ग्रह कहते हैं। पिताजी ! बन्धनकी सामग्रीसे ओतप्रोत गृहमें सुख कहाँ है ? गार्हस्थ्य-जीवनसे मेरा मन भयभीत हो गया है। जिनकी बुद्धि मारी गयी है तथा जो भाग्यसे वञ्चित हैं, वे ही अविवेकीजन मानव-जन्म पाकर भी फिर इस बन्धनमें पड़ते हैं।

व्यासजीने कहा—पुत्र ! गृह न तो बन्धनागार है और न बन्धनमें कारण ही। जिसका मन गृहस्थाश्रममें आसक्त नहीं हुआ, वह गृहस्थ होते हुए भी मुक्त हो जाता है। न्यायपूर्वक आये हुए पैसोंसे वेदकी आज्ञाके अनुसार सत्कार्यमें लगा रहे। श्राद्ध करे, सत्य बोले और पवित्रता रखे, तो घरमें रहता हुआ भी वह मुक्त है। ब्रह्मचारी, संन्यासी और वानप्रस्थ नियम पालन करके सदा गृहस्थके घर मध्याह्नके बाद भिक्षाके लिये आते हैं; उन्हें श्रद्धापूर्वक अन्न देने और उनके साथ मधुर सम्भाषण करनेसे गृहस्थोंको महान् धर्म होता है। वे कृतार्थ हो जाते हैं। गृहस्थाश्रमसे श्रेष्ठ अन्य किसी धर्मको मैंने न देखा है और न सुना ही है। विज्ञ वसिष्ठ आदि आचार्य भी इसी आश्रममें रह चुके हैं। महाभाग ! वेदकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेवाले गृहस्थको क्या नहीं मिल सकता ? स्वर्ग, मोक्ष और उत्तम कुलमें जन्म—उसे सभी सुलभ रहते हैं। जिस-जिस बातकी अभिलाषा होती, उसीको वह पा जाता है। धर्मके जानकार पुरुष कहते हैं कि एक आश्रमके नियमका पालन करके दूसरे आश्रममें जाना चाहिये। अतएव तुम अग्निस्थापन करके यत्नपूर्वक कर्म करनेमें तत्पर हो जाओ। पुत्र ! धर्मका रहस्य तुमसे छिपा नहीं है। अब तुम गृहस्थाश्रम स्वीकार करके पुत्र उत्पन्न करो और देवताओं, पितरों एवं मनुष्योंको सम्यक् प्रकारसे संतुष्ट करनेमें लग जाओ। इसके पश्चात् गृहका परित्याग करके वनमें जाकर वहाँका उत्तम व्रत पालन करना। वानप्रस्थ रहकर, फिर उससे भी श्रेष्ठ संन्यासाश्रममें चले जाना। बेटा ! तुम मेरी हितभरी बात मान जाओ। तुम्हें अच्छे कुलकी कन्याके साथ विवाह करके वैदिक मार्गका आश्रय लेना चाहिये।

शुकदेवजीने कहा—पिताजी ! गृहस्थाश्रम सदा कष्ट देनेवाला है। मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा। शिकारमें जानवरोंको फँसानेवाली फाँसीकी तुलना करनेवाले इस आश्रमसे सम्पूर्ण प्राणी निरन्तर बँधे रहते हैं। पिताजी ! धनकी चिन्तामें आतुर मनुष्योंको सुख कहाँ दिखायी

देता है ? निर्धन प्राणी अत्यन्त लोभमें आकर अपनेमें ही मार-काट मचाया करते हैं। इन्द्रको भी वैसा सुख नहीं मिलता, जैसा एक निःस्पृह भिक्षुकको प्राप्त होता है। त्रिलोकीकी सम्पत्ति मिल जानेपर भी इस जगत्‌में दूसरा कोई वैसे आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता। इन्द्र स्वर्गके राजा हैं, किंतु तप करते हुए तपस्वीको देखकर उनका हृदय दहल उठता है। वे अनेकों प्रकारके विघ्न उसके सामने उपस्थित करनेकी चेष्टामें लग जाते हैं।

महाभाग ! आपका मैं औरस पुत्र हूँ, यह बात जानते हुए भी सदा दुःख देनेवाले अत्यन्त अन्धकारपूर्ण इस संसारमें मुझे आप क्यों ढकेल रहे हैं ? पिताजी ! जन्मके समय, बुढ़ापेमें, मृत्युकाल उपस्थित होनेपर तथा विष्ठा एवं मूत्रसे व्याप्त गर्भमें रहनेपर बारम्बार दुःख-ही-दुःख तो भोगने पड़ते हैं। तृष्णा और लालचसे होनेवाला दुःख इससे भी अधिक कष्टप्रद है। मानद ! मरणसे भी बढ़कर दुःख वह है, जो किसीसे याचना की जाय। पिताजी ! बड़ा परिवार हो जानेपर स्त्री, पुत्र और पौत्र आदि सभी परिजन दुःखकी पूर्तिके ही साधन होते हैं फिर अद्भुत सुख कहाँ है ? पिताजी ! सुखी बनानेवाले योगशास्त्र एवं ज्ञानशास्त्र हैं। उन्हींकी व्याख्या मुझे सुनाइये। अनेकों कर्मकाण्ड हैं; परंतु उनमें मेरा मन कभी नहीं लगता। प्रारब्ध, संचित और वर्तमान—ये तीन प्रकारके अविद्याजन्य कर्म हैं। जिससे इन सबका अभाव हो जाय, वही उपाय बतानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकारके विविध वचन शुकदेवजीके मुखसे निकले, उन्हें सुनकर व्यासजीका मन चिन्ताकी लहरोंमें डूबने लगा। 'अब किस निश्चित मार्गपर चलूँ'—वे यों सोचने लगे। पिताजी शोकाकुल हैं, इनकी दशा दयनीय हो चुकी है—यों देखकर शुकदेवजीकी आँखोंमें आश्चर्य भर गया। वे कहने लगे—'अहो ! मायाका बल सर्वोपरि है। तभी तो वेदान्तकी रचना करनेवाले, सर्वज्ञ एवं वेदके समान प्रमाणित वचन कहनेवाले पण्डित भी इसके प्रभावसे अपनी सत्ता खो बैठते हैं। समझमें नहीं आता, वह कौन-सी माया है। अहो, वह बहुत दुस्तर प्रतीत होती है, जिनके चंगुलमें सत्यवतीनन्दन व्यासजी इतने विद्वान् होते हुए भी फँस गये हैं। जो पुराणोंके वक्ता हैं, जिन्होंने महाभारतकी रचना की है तथा जिनके द्वारा वेद विभाजित हुए हैं, वे भी मोहित हो गये। अतः जगत्‌को मोहित करनेवाली उन माया-देवीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। धाता, विधाता और रुद्रादि देवता भी जब मायादेवीके फंदेमें फँस चुके हैं, तब त्रिलोकीमें कौन ऐसा है, जो उसके प्रभावसे मुक्त रह जाय। निश्चय ही भगवती मायाका बल और पराक्रम महान् आश्चर्यजनक है, तभी तो सर्वज्ञानसम्पन्न एवं अपार शक्तिशाली श्रीविष्णु भी योगमायासे अलग नहीं रहते। व्यासजीको भगवान् विष्णुका अंशावतार माना जाता है। फिर भी मोहके उमड़े समुद्रमें वे इस प्रकार गोता खा रहे हैं, जैसे नाव फट जानेपर व्यापारी डूब रहा हो। अपनी सत्ता खोये हुए साधारण मनुष्यकी भाँति आज इनके नेत्रोंसे जल गिर रहा है। योगमायाकी शक्ति बड़ी विलक्षण है; क्योंकि सदसद्विवेकी जन भी इसे नहीं हटा सकते। ये कौन हैं, मैं कौन हूँ और यहाँ कैसे आया ? यह कैसा विचित्र भ्रम है ! यह शरीर पाँच तत्त्वोंसे बना है। इसमें पिता-पुत्र

आदिका व्यवहार ही तो वासना है। मायावियों-को भी मोहमें डालनेवाली यह माया निश्चय ही असीम शक्तिसम्पन्न है, जिसके प्रभावसे प्रभावित हो जानेके कारण इन ब्राह्मण देवता व्यासजीके नेत्रोंसे भी आँसू झर रहे हैं !

सूतजी कहते हैं—योगमाया सम्पूर्ण कारणोंकी भी कारण हैं। सभी देवता उन्हींसे प्रकट हुए हैं। ब्रह्मा आदिपर भी उनका शासन चलता है। शुकदेवजीने उन भगवती योगमाया-को मानसिक प्रणाम किया। पिता व्यासजीकी दयनीय दशा हो गयी थी। वे शोकरूपी समुद्रमें डूब रहे थे। कारण सामने रखते हुए शुकदेवजी उनसे कल्याणकारी वचन कहने लगे—'महाभाग ! आप पराशरजीके औरस पुत्र हैं। स्वयं सबको ज्ञान देना आपका स्वभाव ही है। भगवन् ! फिर आप साधारण अज्ञानी जनकी भाँति क्यों शोक कर रहे हैं ? महाभाग ! आज मैं आपका पुत्र हूँ। पता नहीं, पूर्वजन्ममें मैं कौन था और आप कौन थे। महान् पुरुष इस भ्रमके चक्करमें क्यों पड़ें। महामते ! आप धैर्यपूर्वक विवेकका अनुसरण कीजिये। विषादमें मनको म्लान करना अनुचित है। इस पिता-पुत्र आदि व्यवहारको मोहजाल मानकर आप शोक करना छोड़ दें। मुने ! आप बड़े बुद्धिमान् एवं ज्यौतिषशास्त्रके ज्ञाता हैं। अपनी विवेकशक्तिसे मेरा अज्ञान दूर कीजिये, जिससे मैं गर्भवासके भयसे सदाके लिये मुक्त हो जाऊँ। अनघ ! यह जगत् कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म पाना सबको सुलभ नहीं रहता। फिर यदि उत्तम कुलमें ब्राह्मणके घर जन्म हो जाय—यह तो बड़ा ही दुर्लभ है। मैं अपनेको बँधा हुआ मानता हूँ। मेरी यह धारणा चित्तसे अलग नहीं हो पाती। जब बुद्धि जगत्के जालमें फँस जाती है, तब वृद्ध पुरुष ही उसके उद्धारक होते हैं।'

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजीमें असीम बुद्धि थी। उनका वेष शान्त था। वे मानसिक संन्यासी हो चुके थे। ऐसे सुयोग्य पुत्रके उपर्युक्त बातें कहनेपर व्यासजी बोले।

व्यासजीने कहा—पुत्र ! तुम बड़े भाग्यशाली हो। मैंने देवीभागवतकी रचना की है, इसका अध्ययन करो। वेदतुल्य इस पावन पुराणकी संक्षिप्तरूपसे रचना हुई है। पाँच लक्षणोंसे सुसम्पन्न इस पुराणमें बारह स्कन्ध हैं। मेरी समझसे यह पुराण सम्पूर्ण पुराणोंका भूषण है—अर्थात् सबसे प्रधानता इसीकी है। महामते ! जिसके सुनते ही सद्-असद् वस्तुका सम्यक् ज्ञान सुलभ हो जाता है, उसी देवी-भागवतका अब तुम अध्ययन करो। भगवान् विष्णु बालकरूपसे वटपत्रपर सोये हुए थे। सोचने लगे—'मैं क्यों बालक बन गया ? किस चेतन पुरुषने मेरी यह स्थिति कर दी ? किस कार्यका सम्पादन करनेके लिये मैं रचा गया हूँ ? किस द्रव्यसे मेरी यह रचना सम्पन्न हुई है ? मुझे किस प्रकार ये सभी बातें ज्ञात हों ?'—महान् पुरुष भगवान् विष्णुके मनमें यों चिन्ताकी लहरें उठ रही थीं। इतनेमें भगवती योगमायाने सारी शङ्काएँ शान्त कर देनेके लिये आधे श्लोकमें सम्पूर्ण पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला यह वचन कहा—'यह सारा जगत् मैं ही हूँ, मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु है ही नहीं।'

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।

पहले तो भगवान् विष्णुने भगवतीके इस वचनको मनमें ही सम्यक् प्रकारसे समझा।

तत्पश्चात् वे सोचने लगे—'किसके मुखसे यह सत्य वाणी निकली है ? इसका वक्ता स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक—कौन है ? किस प्रकार मुझे उसका परिचय प्राप्त होगा।' यों चिन्तित रहते हुए भी उन्होंने भागवतको हृदयमें स्थान दे दिया। बार-बार उसी आधे श्लोकका वे उच्चारण करने लगे। अब उसीमें उनका मन लग गया। फिर भी उनकी चिन्ता दूर नहीं हुई। वे वटपत्रपर सो गये। जब चित्त कुछ शान्त हुआ, तब भगवती योगमाया उनके सामने प्रकट हुईं। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका दिव्य विग्रह शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि अनुपम आयुधोंसे सुशोभित था। उन्होंने अद्भुत वस्त्र पहन रखे थे। चित्र-विचित्र भूषण उन्हें भूषित कर रहे थे। उन्हींके सदृश उनकी अंशभूता अनेकों सखियाँ भी साथ विराजमान थीं, सुन्दर मुख था। मन्द हास्य करती हुई वे भगवती महालक्ष्मी अमित तेजस्वी श्रीविष्णुके ठीक सामने ही प्रकट हुईं।

सूतजी कहते हैं—उस समय सर्वत्र जल-ही-जल था। मनको मुग्ध करनेवाली महालक्ष्मीके अचानक दर्शन पाकर कमल-लोचन श्रीविष्णु महान् आश्चर्यमें पड़ गये। रति, भूति, बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वाहा, स्वधा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृम्भा, तन्द्रा आदि शक्तियाँ उन महादेवीके साथ चारों ओर अलग-अलग विराजमान थीं। सबके हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध सुशोभित थे। वे अनेकों आभूषणोंसे अलंकृत थीं। पारिजात-पुष्पकी माला एवं मोतीके हार उनकी छबि बढ़ा रहे थे ! उस जलार्णवमें भगवती महालक्ष्मी तथा उनकी सहचरी शक्तियोंको देखकर भगवान् विष्णुका हृदय आश्चर्यसे भर गया। वे सर्वात्मा प्रभु इस घटनाको देखते ही आश्चर्यचकित-से होकर सोचने लगे—'ये सम्पूर्ण स्त्रियाँ कौन हैं तथा वट-पत्रकी शय्यापर सोनेवाला मैं ही कौन हूँ ? इस जलार्णवमें यह वटका वृक्ष कैसे उत्पन्न हुआ और किस अज्ञात शक्तिने मुझे सुन्दर बालक बनाकर यहाँ स्थापित कर दिया है ? यह स्त्री कौन है ? किस अनिर्वचनीय शक्तिने क्यों मेरे आगे यह अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया ? अब मुझे क्या करना चाहिये ? मैं कहाँ जाऊँ या कहीं न जाकर सावधानीके साथ बालस्वभाववश चुपचाप यहीं लेटा रहूँ ?' (अध्याय १४-१५)

☆

## भगवान् विष्णु और महालक्ष्मीका तथा भगवान् विष्णु और ब्रह्माका संवाद, व्यासजीके द्वारा शुकदेवजीसे जनकजीके पास मिथिलापुरी जाकर संदेह निवारण करनेका अनुरोध और शुकदेवजीका जानेके लिये प्रस्तुत होना, श्रीशुकदेवजीका मिथिलापुरीमें पहुँचकर नगरके द्वारपालको उपदेश देना, महलके द्वारपर रोके जानेके बाद उनका विलासभवनमें पहुँचना तथा प्रत्येक स्थितिमें निर्विकार रहना

व्यासजी कहते हैं—भगवान् विष्णु वटपत्रपर सोये हुए थे। उनका मन आश्चर्यके उमड़े समुद्रमें डूब रहा था। उनकी यह दशा देख भगवती मुस्कराकर कहने लगीं—'विष्णो !

तुम क्यों विस्मय-विमुग्ध हो रहे हो ? भगवती महाशक्तिके प्रभावसे तुम मुझे पहचान नहीं पाते। पहले भी तो सृष्टि और प्रलयका चक्कर चलता रहा है, उस समय तुम अनेकों बार अवतरित हो चुके हो ! वह पराशक्ति निर्गुण है। तुम सगुण परब्रह्म हो। वैसे ही मैं भी सगुणा शक्ति हूँ। मेरे विषयमें यों समझना चाहिये कि जो सात्त्विकी शक्ति है, वही मैं हूँ। अभी तुम्हारे नाभिकमलसे प्रजापति ब्रह्माकी सृष्टि होगी।

रजोगुणसे सम्पन्न होकर वे सम्पूर्ण जगत्की रचना करेंगे। तपस्यामें संलग्न होनेके पश्चात् उन्हें सर्वोत्कृष्ट शक्ति सुलभ होगी। तब वे त्रिलोकीके निर्माणमें सफल होंगे। ब्रह्मा रजोगुणको धारण करनेवाले हैं, अतः उनकी सृष्टि भी रजोगुण-सम्पन्न होगी। विलक्षण बुद्धिवाले ब्रह्मा पञ्चभूतोंका निर्माण करके उनके भीतर इन्द्रियोंको, इन्द्रियोंके संचालक देवताओंको तथा मनको यथायोग्य स्थापितकर अपनी सृष्टि सजायेंगे। इसीसे उन्हें कर्ताकी उपाधि मिली है। महाभाग ! तुम इस विश्वकी रक्षाका काम सँभालना। क्रोधके आवेशमें आनेपर तुम्हारी भौंहोंके बीचसे रुद्रका अवतार होगा। उन्हें तामसी शक्ति प्राप्त होगी। महामते ! फिर तो वे रुद्र ही कल्पके अन्तमें इस सृष्टिका संहार करेंगे। इसी कार्यका सम्पादन करनेके लिये मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। मुझे तुम सात्त्विकी शक्ति समझो। मधुसूदन ! मैं यहीं रहूँगी। सदासे तुम्हारे ही पास मैं रहती हूँ। तुम्हारा हृदय मेरा निवासस्थान है। मैं यहीं रहूँगी।'

भगवान् विष्णु बोले—देवी ! कुछ समय पूर्व मैंने आधा श्लोक सुना है। उसके अक्षर अत्यन्त स्पष्ट थे। वह परम रहस्यभरी वाणी किनके मुखसे निकली है ? वरानने ! तुम उसे बतानेकी कृपा करो। सुन्दरी ! मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। जिस प्रकार निर्धन मनुष्यको धनका स्मरण होता रहता है, वैसे ही यह बात मुझे बारम्बार याद आ रही है।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् विष्णुकी बात सुनकर लक्ष्मीका मुख खिल उठा। वे हँसकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कहने लगीं।

महालक्ष्मी बोलीं—विष्णो ! कहती हूँ, सुनो ! मैं सगुणस्वरूपा चतुर्भुजी भगवती हूँ—यह मेरा परिचय है। क्या तुम निर्गुणा आद्याशक्तिको नहीं जानते ? उन्हींमें उनका सगुण रूप भी छिपा रहता है। महाभाग ! तुम जान लो, उन्हीं निर्गुणा भगवतीने यह आधा श्लोक कहा है। इसे परम पावन देवीभागवत-पुराण समझ लेना चाहिये। यह कल्याणकारी पुराण वेदके रहस्यसे परिपूर्ण है। शत्रुओंका शमन करनेवाले अटल व्रतधारी भगवान् विष्णो ! मैं उन भगवतीकी विशेष कृपा मानती हूँ, जो इस गुप्त रहस्यको उन्होंने स्पष्ट कर दिया। महाविद्याके मुखसे व्यक्त हुई यह वाणी सम्पूर्ण

शास्त्रोंका सार है। इससे अधिक जाननेकी वस्तु त्रिलोकीमें कुछ है ही नहीं। निश्चय ही वे भगवती तुमपर बहुत प्रेम रखती हैं, तभी तो तुम्हारे सामने उन्होंने इसे व्यक्त किया।

व्यासजी कहते हैं—भगवती महालक्ष्मीके इस वचनको सुननेके पश्चात् भगवान् विष्णुने उसे महान् मन्त्र मानकर हृदयमें सदाके लिये धारण कर लिया। कुछ समय व्यतीत हो जानेके बाद उनके नाभिकमलसे प्रकट हुए ब्रह्माजी दैत्योंसे भयभीत होकर शरणमें पहुँचे। तब श्रीहरिने घोर युद्ध करके उन मधु और कैटभ नामक दैत्योंको मारा। फिर वे स्पष्ट अक्षरवाले उस आधे श्लोकके जपमें संलग्न हो गये। उन्हें जप करते देखकर ब्रह्माजीके मनमें अपार हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान् विष्णुसे पूछा—'जगदीश्वर ! आप सभी देवताओंके आराध्य हैं। कमललोचन ! फिर आप किसका जप कर रहे हैं ? आपसे अधिक आदर पानेका अधिकारी देवता कौन है, जिसका स्मरण करके आपका हृदय आनन्दमें निमग्न हो रहा है ?'

भगवान् विष्णु बोले—महाभाग ! क्रिया-कारण आदि लक्षणोंसे सम्पन्न जो शक्ति तुममें और मुझमें विराजमान है, उसे कल्याणस्वरूपा भगवती आद्याशक्ति समझो। जिनके आधारपर इस अगाध जलमें सारा जगत् स्थित है, जो सदा विराजमान रहकर साकाररूपसे अपनी लीला प्रकट करती हैं तथा जिनसे यह चराचर अखिल विश्व उत्पन्न हुआ है, सदा प्रसन्न रहनेवाली वे ही भगवती महाशक्ति मनुष्योंका उद्धार करनेके लिये अवतरित हुई हैं। वर देना उनका स्वभाव ही है। वे परम विद्यास्वरूपिणी सनातनी देवी हैं। विश्वका उद्धार करनेके लिये ही उनका प्राकट्य होता है। शासकोंपर भी शासन स्थापित करनेवाली उन्हीं भगवतीकी प्रेरणासे प्राणी इस जगत्-जालमें जकड़ा रहता है। शुद्धस्वरूप ब्रह्मन् ! उन्हीं भगवतीकी चित्-शक्तिसे मैं, तुम तथा सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न हुए हैं—ऐसा जानो। इसमें कभी संदेह नहीं करना चाहिये। उन देवीने जो आधे श्लोकमें कहा है, वही द्वापरके आरम्भमें विशद व्याख्या होनेपर देवीभागवत नामसे प्रसिद्ध होगा।

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके नाभि-कमलपर विराजमान थे, वहीं उन्होंने इस आधे श्लोकको याद कर लिया। तत्पश्चात् अपने अमित बुद्धिशाली पुत्र नारदजीको इसकी शिक्षा दी। नारदजीने उसे मुझे पढ़ाया। फिर मैंने बारह स्कन्धोंमें विशद रूपसे इसकी व्याख्या की। महाभाग ! उसी वेदतुल्य पुराणका तुम अध्ययन करो। सर्ग, उपसर्ग आदि पाँचों लक्षणोंसे परिपूर्ण वह पुराण भगवती जगदम्बिकाकी उत्तम कथाओंसे सुशोभित है। उसके सभी भाग तत्त्वज्ञानके रससे सने हैं। सम्पूर्ण पुराणोंमें वह श्रेष्ठ माना जाता है। पवित्रतामें धर्मशास्त्रकी तुलना करता है। उसमें वेदके सिद्धान्त भरे हैं, वृत्रासुरके वधकी कथा तथा अन्य भी अनेकों कथाओंका उसमें वर्णन हुआ है। संसाररूपी समुद्रसे उद्धार करनेवाला वह पुराण ब्रह्मविद्याका तो भंडार ही है ! महाभाग ! तुम योग्य और प्रतिष्ठित पुरुष हो। तुम्हें अनुपम बुद्धि प्राप्त है। अतः इस परम पावन देवीभागवत नामक पुराणके अध्ययनमें उद्यत हो जाओ। इसमें अठारह हजार श्लोक हैं। अज्ञानको दूर करनेवाले इस दिव्य पुराणके प्रभावसे ज्ञानरूपी सूर्य अत्यन्त तपने लगता है।

यह प्रशंसनीय कल्याणकारी पुराण श्रोताओं और वक्ताओंको सुखी बनाता, शान्ति प्रदान करता, दीर्घजीवी तथा पुत्र एवं पौत्रसे सम्पन्न करता है। ये धर्मात्मा सूत मेरे शिष्य हैं। इस मङ्गलमय पवित्र पुराणका तुम्हारे साथ ही ये भी अध्ययन करेंगे।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवजीको तथा मुझको देवीभागवतका उपदेश दिया। उन्होंने जो इसकी विस्तृत व्याख्या की, उसके सभी विषय मैंने याद कर लिये। व्यासजीके पावन आश्रमपर रहकर मैंने देवीभागवतका अध्ययन किया। तब भी अन्य लोगोंकी भाँति शुकदेवजीके हृदयमें शान्ति नहीं आयी। वे एकान्तमें रहने लगे। उनके मनकी व्याकुलता दूर न हो सकी। जान पड़ता था, मानो उन्हें कुछ भूल गया हो। उनकी न भोजनमें विशेष रुचि होती और न उपवासमें ही। इस प्रकार शुकदेवजीको चिन्तित देखकर व्यासजीने उनसे पूछा—'पुत्र ! तुम निरन्तर क्यों इतने चिन्तित रहते हो ? मानद ! तुम्हारे मनमें क्यों इतनी व्याकुलता आ गयी ? जिस प्रकार निर्धन मनुष्य ऋणसे दबकर सदा उसीकी चिन्तामें व्यग्र रहता है, तुम्हारी भी ठीक वही दशा हो रही है। पुत्र ! मैं तुम्हारा पिता वर्तमान हूँ। फिर तुम्हें कौन-सी चिन्ता सवार हो गयी ? पुत्र ! यदि मेरे कहनेसे तुम्हारे मनको शान्ति न मिले तो तुम जनकजी जिसके रक्षक हैं, उस मिथिलापुरीमें चले जाओ। वहाँ राजा जनक प्रसिद्ध धर्मात्मा, जीवन्मुक्त एवं बड़े सत्यवादी हैं। महाभाग ! वे तुम्हारा अज्ञान दूर कर देंगे। पुत्र ! तुम उन नरेशके पास जाकर अपनी शङ्काका निराकरण कर लो। साथ ही, वर्णाश्रम-सम्बन्धी धर्मोंके रहस्यको भी उनसे समझ लेना। वे राजर्षि जनकजी जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानी, परम पवित्र, सत्यवादी, सदा शान्त रहनेवाले, योगके अभ्यासी और योगमें निरन्तर प्रीति रखनेवाले हैं।'

सूतजी कहते हैं—व्यासजी अनुपम तेजस्वी पुरुष हैं। उनका उक्त कथन सुनकर परम तेजस्वी शुकदेवजी उनसे कहने लगे—'धर्मात्मन् ! यह बात तो मेरे मनमें बिलकुल दम्भ-सी प्रतीत हो रही है कि राजा जनक प्रसन्नतापूर्वक राज्य करते हुए भी जीवन्मुक्त हैं। पिताजी ! भला, जो राज्य करता है, वह कैसे विदेह हुआ ? मेरे मनमें यह बड़ी शङ्का उत्पन्न हो गयी है। अतः अब मैं उन महाराजको देखना चाहता हूँ कि जलमें रहकर भी कमलपत्रकी भाँति उससे अछूत रहनेवाले वे जगत्में कैसे रहते हैं ? पिताजी ! जिसे भोग लिया गया है वह अभुक्त रह जाय और जिसे कर लिया है वह अकृत रह जाय, यह कैसे हो सकता है ? इन्द्रियोंका व्यवहार कैसे दूर हो सकता है। माता, पुत्र, स्त्री और कुलटा—इनमें भेद एवं अभेद क्यों न किया जाय ? और यदि किया गया तो फिर मुक्तता कहाँ रही ? यदि कड़ुआ, नमकीन, तिक्त, कषाय और मीठा आदि रसोंको जीभ जानती है और मनुष्यके द्वारा उत्तम-उत्तम पदार्थ भोगे जा रहे हैं, सर्दी-गरमी, सुख-दुःखको भी वह भलीभाँति समझता है तो पिताजी ! किस प्रकार वह जीवन्मुक्त हुआ ? मेरे संदेहका यही विषय है। शत्रु और मित्रका ज्ञान होनेपर द्वेष एवं प्रेम होना सदा सिद्ध नियम है। राजा जनक व्यवहारमें रहते हुए कैसे इस नियमको तोड़ सकते हैं। चोर और तपस्वी दोनोंमें उनकी समान बुद्धि कैसे रह सकती है

और यदि विषम बुद्धि है तो फिर मुक्तता कैसी ? पिताजी ! मैंने अभीतक किसी भी राजाको जीवन्मुक्त नहीं देखा। फिर राजा जनक गृहस्थ रहकर कैसे जीवन्मुक्त हैं, यही महान् शङ्का मेरे मनमें हो रही है। साथ ही, उनकी बात सुनकर उन्हें देखनेके लिये मेरे मनमें प्रबल इच्छा जाग उठी है। अतः अपना संदेह दूर करनेके निमित्त मैं मिथिलापुरी जाता हूँ।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार पिता व्यासजीसे कहकर महामना शुकदेवजी उनके पैरोंपर गिर पड़े। हाथ जोड़कर जानेकी इच्छा प्रकट करते हुए उन्होंने यह वचन कहा—'महाभाग ! मेरे पूछनेपर आपने जो आज्ञा दी, वह मुझे स्वीकार है। अतः जनकजीद्वारा सुरक्षित विदेहनगर देखना मुझे महान् अभीष्ट हो गया। मुझे यह निश्चय करना है कि राजा जनक बिना दण्ड दिये कैसे राज्यका भार सँभालते हैं; क्योंकि यदि शासन उठा दिया जाय तो प्रजामें धार्मिकताका आना असम्भव है। धर्मकी रक्षा होनेमें दण्ड ही कारण है। यह मनु आदि महर्षियोंकी सतत घोषणा है। पिताजी ! फिर यह नियम कैसे लागू रह सका, यही मेरे मनको विशेष संदिग्ध कर रहा है। यह प्रसङ्ग तो ठीक वैसा ही जान पड़ता है कि जैसे कोई कहे—'मेरी यह माता वन्ध्या है।' महाभाग ! आप एक महान् तपस्वी हैं। मिथिला जानेके समय मैं अपना हार्दिक विचार आपके सामने उपस्थित कर देता हूँ।'

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजीके मनमें जानेकी इच्छा उठ चुकी थी। अपने ऐसे परम ज्ञानी एवं दृढ़ वैरागी पुत्रको देखकर व्यासजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया और वे कहने लगे।

व्यासजी बोले—बेटा शुकदेव ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो। पुत्र ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। मेरे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके आनन्दपूर्वक जा सकते हो। वहाँ जाकर फिर मेरे उत्तम आश्रमपर अवश्य लौट आना। कहीं किसी प्रकार भी अन्यत्र मत जाना। तुम्हारे मुखकमलको देखकर मैं सुखसे अपना जीवन व्यतीत करता हूँ। पुत्र ! तुम्हारे आँखोंसे ओझल हो जानेपर तो मुझे दुःख ही भोगना पड़ेगा; क्योंकि तुम्हीं मेरे प्राण हो। पुत्र ! जनकजीके द्वारा अपना संदेह निवृत्त करानेके पश्चात् तुरंत यहाँ आ जाना। तदनन्तर वेदाध्ययनमें तत्पर होकर सुखपूर्वक मेरे पास रहना।

सूतजी कहते हैं—व्यासजीके इस प्रकार कहनेपर शुकदेवजीने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया, प्रदक्षिणा की और उसी क्षण इतनी तीव्र गतिसे चल पड़े, मानो धनुषसे छूटा हुआ बाण हो। उन्हें जाते समय मार्गमें अनेकों समृद्धिशाली देश, वन, वृक्ष, फूले-फले खेत, तप करनेवाले तपस्वी, मन्त्रकी दीक्षासे सुशोभित यजमान, योगाभ्यासमें रत योगी, वानप्रस्थ, शिवके उपासक, सूर्यके उपासक, शक्तिके उपासक तथा विष्णुके उपासक दिखायी पड़े। अनेक प्रकारके धर्म देखनेमें आये। उन्हें देखते हुए महामति शुकदेवजी क्रमशः सुमेरु पर्वत और हिमालयको पार करके मिथिला पहुँचे। धन-धान्यसे परिपूर्ण उस उत्तम नगरीमें जानेपर उन्होंने देखा सभी प्रजा सुखी है और सर्वत्र सदाचारका पालन हो रहा है। फाटकपर द्वारपाल था। उसने रोका और कहा—'आप कौन यहाँ पधारे हैं ? कहिये, किस कार्यसे आपका आना हुआ है ?' द्वारपालके पूछनेपर शुकदेवजीने कुछ भी उत्तर

नहीं दिया, बल्कि नगरके प्रवेशमार्गसे निकलकर वे ठूँठे वृक्षकी भाँति अविचल खड़े हो गये। उनका मन आश्चर्यसे मुग्ध हो गया। मुखपर हँसी छा गयी। वे अचल खड़े रहे और एक भी शब्द उनके मुँहसे नहीं निकला।

द्वारपालने कहा—ब्रह्मन्! कहिये, आप गूँगे तो नहीं हैं? आप किसलिये यहाँ पधारे हैं? मेरी तो ऐसी समझ है कि बिना काम किसीका कहीं जाना सम्भव नहीं होता। ब्राह्मणदेवता! महाराजकी आज्ञा हो जानेपर आप इस नगरीमें जा सकते हैं। अज्ञात कुल और शीलवाला मनुष्य किसी प्रकार भी इस पुरीमें जानेका अधिकारी नहीं है। मानद! आप निश्चय ही महान् तेजस्वी एवं वेदके अच्छे विद्वान् जान पड़ते हैं। अपना वंश और प्रयोजन मुझे बतलानेके पश्चात् इच्छानुसार पुरीमें पधारनेकी कृपा करें।

शुकदेवजीने कहा—द्वारपाल! तुम्हारा क्या दोष है। तुम तो सदाके लिये परतन्त्र हो। सेवकको तो उचितरूपसे प्रभुका कार्य ही करना चाहिये। तुम्हारे द्वारा मैं यहाँ रोका गया। इसमें राजा भी निर्दोष है; क्योंकि विज्ञजनोंका कर्तव्य है कि वे चोर और शत्रुको भलीभाँति जानकर ही व्यवहार करें।

द्वारपालने पूछा—ब्रह्मन्! सुख और दुःखका क्या रूप है? कल्याणकामी पुरुषको क्या करना चाहिये? कौन शत्रु एवं कौन हितैषी है? आप सभी निर्णीत बातें मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

शुकदेवजीने कहा—सम्पूर्ण जगत्में द्वैविध्यका पसारा है; क्योंकि रागी और विरागी—दो प्रकारके प्राणी सर्वत्र मिलते हैं। उनकी धारणाएँ भी दो प्रकारकी होती हैं। विरागीके तीन भेद हैं—ज्ञात, अज्ञात और मध्यम। मूर्ख और चतुरके भेदसे दो प्रकारके रागी होते हैं। चतुरताके दो भेद कहे गये हैं—शास्त्रज और मतिज। युक्त और अयुक्तके भेदसे दो प्रकारकी मति जगत्में सर्वथा व्यवहृत होती है।

द्वारपाल बोला—द्विजवर! आप महान् पुरुष हैं। मैं अर्थ-ज्ञानसे शून्य हूँ। आपने जो बातें कहीं, मैं समझ नहीं सका। अतः ब्रह्मन्! अब आप सभी बातें स्पष्टरूपसे विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

शुकदेवजीने कहा—जिसका संसारमें राग है, वही रागी कहा जाता है। उसे अनेकों प्रकारके सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं। स्त्री, पुत्र, धन, प्रतिष्ठा और विजय पाकर वह सुखी होता है। जब ये नहीं मिलते, तब प्रतिक्षण वह दुःखका अनुभव करने लगता है। सच्चे सुखके साधनको ही कर्तव्य माना गया है। जो उसमें विघ्न उपस्थित करता है, उसे शत्रु जानना चाहिये। रागी पुरुष सदा सुख पहुँचानेवाला मित्र कहलाता है। जो मोहमें नहीं पड़ता वही चतुर है। सर्वत्र मोहित हो जानेवाला मूर्ख कहलाता है। एकान्तमें रहकर आत्माका चिन्तन करना और वेदान्तका स्वाध्यायी होना विरागी पुरुषके लिये सुख है। जगत्का चिन्तन और अनुशीलन आदि जितने कार्य हैं, वे सब विरागीजनके लिये दुःखरूप हैं। कल्याणकामी विज्ञ पुरुषके लिये काम, क्रोध एवं प्रमाद आदि भाँति-भाँतिके शत्रु कहे गये हैं। केवल संतोष ही उसका बन्धु अर्थात् मित्र है। इसके सिवा त्रिलोकीमें दूसरा कोई भी हितैषी नहीं है।

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजीके उपर्युक्त

वचन सुनकर द्वारपालके मनमें निश्चित हो गया कि यह कोई ज्ञानी ब्राह्मण है। अतः उसने राजाके भव्य भवनमें पधारनेके लिये मुनिसे प्रार्थना की। शुकदेवजी मिथिलाका दृश्य देखते हुए आगे बढ़े। वह नगरी तीन प्रकारके मनुष्योंसे खचाखच भरी थी। रत्नराशियोंसे भरी-पूरी अनेकों दूकानें थीं। खरीदने और बेचनेवाले बहुतेरे थे। जहाँ-कहीं भी विपुल सम्पत्ति दीखती थी। तीन प्रकारके प्राणियोंपर दृष्टिपात करते हुए शुकदेवजी चलते रहे। तदनन्तर राजभवनके प्रवेशमार्गपर पहुँचे। वे इतने तेजस्वी थे, मानो दूसरे सूर्य ही हों। वहाँ भी द्वारपालने उन्हें रोक दिया। तब काठकी भाँति मुनि वहीं खड़े हो गये। उन महातपस्वी मुनिने वहीं एक निर्जन स्थानमें शाखाहीन वृक्षकी भाँति स्थिर होकर समाधि लगा ली। उनकी दृष्टिमें धूप और छायामें कोई अन्तर नहीं था। कुछ समय बाद हाथ जोड़े हुए राजमन्त्री आये और शुकदेवजीको राजभवनकी दूसरी ड्योढ़ी-विलासभवनमें ले गये। वहाँ अत्यन्त अद्भुत एवं मनमोहक दिव्य वृक्ष फूलोंसे सुशोभित हो रहे थे। राजमन्त्रीने वृक्षोंके साथ ही उस वनको भी उन्हें दिखानेकी व्यवस्था की। तत्पश्चात् शुकदेवजीका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार किया। राजाकी सेवामें तत्पर रहनेवाली गाने एवं बजानेमें परम प्रवीण बहुत-सी सुन्दरियाँ वहाँ थीं। उन्होंने काम-शास्त्रका अध्ययन सम्यक् प्रकारसे किया था। उन स्त्रियोंको शुकदेवजीकी सेवा करनेके लिये आज्ञा देकर स्वयं राजमन्त्री उस भवनसे चले गये। उस समय केवल मुनि ही वहाँ अकेले रहे। उन स्त्रियोंने सर्वोत्कृष्ट श्रद्धासे विधिपूर्वक शुकदेवजीका स्वागत-सत्कार किया। देश और कालके अनुरूप अनेकों प्रकारकी भोजन-सामग्री उपस्थित करके उनको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की। इसके बाद राजभवनके भीतर रहनेवाली स्त्रियाँ मिलीं और वे मुनिको अन्तःपुरका मनोहर वन दिखलाने लगीं। उन स्त्रियोंका मन मोहित हो गया था। शुकदेवजी बड़े सुन्दर थे और उनकी बोली अत्यन्त मधुर थी। फिर भी, मुनिको जितेन्द्रिय मानकर वे उनकी मर्यादित सेवा करती रहीं। पवित्रात्मा शुकदेवजी उन स्त्रियोंको माताके समान मानते थे! जो आत्मचिन्तनमें सुख मानता है तथा जिसने काम-क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है, उसे किसी भी स्थितिमें न हर्ष होता है और न ताप ही। अतएव स्त्रियोंकी चेष्टाएँ देखते हुए भी शुकदेवजी शान्त-चित्तसे ही विराजे रहे। स्त्रियोंने उनके शयनके लिये सुन्दर शय्या तैयार कर दी। उसपर बहुमूल्य बिछौने बिछे थे और सजानेवाली अनेकों वस्तुएँ उपस्थित थीं। शुकदेवजीने पैर धोये और सावधान हो हाथमें कुशा लेकर वे सायंकालकी संध्या करने बैठ गये। संध्याके पश्चात् वे ध्यानस्थ हो गये। उनकी एक पहर रात तो संध्या और ध्यानमें व्यतीत हो गयी। इसके बाद दो पहरतक सोकर वे उठ गये। रातका अन्तिम चौथा पहर फिर ध्यानमें बीता। तत्पश्चात् उन्होंने स्नान किया। प्रातःकालके संध्या-वन्दन आदि कार्य करके वे निश्चिन्त हो गये।

(अध्याय १६-१७)

☆

## राजा जनक और शुकदेवजीके प्रश्नोत्तर, राजा जनकके उपदेशसे शुकदेवजीकी शङ्काका निराकरण, व्यासजीके पास लौटनेके बाद उनका विवाह, चार पुत्र तथा एक कन्याकी उत्पत्ति, कन्याके विवाह और संतानका वर्णन, शुकदेवजीका गृह-त्याग और व्यासजीका विषाद, श्रीशंकरजीका अनुग्रह, व्यासजीको शुकदेवका प्रतिबिम्ब-दर्शन

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर शुकदेवजीके आगमनका समाचार पाकर राजा जनक अपने मन्त्रियोंसहित गुरुपुत्रको आगे करके उनके पास गये। उन्हें उत्तम आसनपर बैठाया। भलीभाँति आव-भगत की। कुशल-मङ्गल पूछा। दूध देनेवाली गौ सामने उपस्थित कर दी। शुकदेवजीने महाराज जनकके किये हुए सत्कारको नियमानुसार स्वीकार किया। राजासे भी उन्होंने कुशल पूछी और उनसे अपना शुभ समाचार कह सुनाया। कुशल-प्रश्न होनेके पश्चात् व्यासनन्दन शुकदेवजी सुखदायी आसनपर बैठ गये। उनका चित्त शान्त था। तब राजा जनकने उनसे पूछा—'महाभाग! आप बड़े निःस्पृह महात्मा हैं। मुनिवर! किस कामसे आपका यहाँ पधारना हुआ, बतानेकी कृपा कीजिये।'

शुकदेवजी बोले—महाराज! पिता व्यासजीने मुझसे कहा कि 'तुम विवाह कर लो; क्योंकि सभी आश्रमोंमें उत्तम गृहस्थाश्रम ही है।' परंतु उनकी आज्ञाको बन्धनकारक मानकर मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'यह बन्धन नहीं है।'—तब भी मैंने उनकी बात नहीं मानी। मेरा मन विविध कल्पनाओंमें उलझने लगा। मेरी मनोवृत्तिको समझकर मुनिवर व्यासजी बोले—'तू मिथिला चला जा, शोक मत कर। वहाँ राजा जनक रहते हैं। वे याज्ञिक पुरुष एवं जीवन्मुक्त हैं। 'विदेह' नामसे उन्हें सारा जगत् जानता है। वहाँ वे अकण्टक राज्य करते हैं। राज्यका भार सँभालते हुए भी वे मायाके बन्धनोंसे मुक्त हैं। परम तपस्वी पुत्र! फिर तू क्यों डरकर वनवृत्ति स्वीकार करना चाहता है? महाभाग! राजा जनककी स्थिति देखकर अपने मानसिक अन्धकारको दूर करके तुझे विवाह कर लेना चाहिये। यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो जाकर उन महाराजसे पूछ ले। वे राजा जनकजी तेरे मानसिक संदेहका निराकरण कर देंगे। पुत्र! उन राजाकी बात सुनकर शीघ्र मेरे पास लौट आना।' महाराज! पिताकी आज्ञा मानकर मैं आपकी पुरीमें आ गया। आप निष्पाप पुरुष हैं। मैं संसारके बन्धनसे मुक्त होना चाहता हूँ। मुझे क्या करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करें। राजेन्द्र! तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थवास अथवा ज्ञान—इन साधनोंमेंसे किसका आश्रय लेनेसे मुक्ति सुलभ होती है, यह कहनेकी कृपा करें।

जनकजीने कहा—सुनिये, मोक्षमार्गका अनुसरण करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि पहले उसका यज्ञोपवीत-संस्कार हो। तब विद्या पढ़नेके लिये वह गुरुके यहाँ निवास करे। वेद और वेदान्तका अध्ययन हो जानेपर गुरुको दक्षिणा दे। उसका समावर्तन हो। तब वह विवाह करके गृहस्थाश्रमी बन जाय। मनपर अधिकार रखे। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई विधि-विधान उसके लिये लागू नहीं होता।

संतोष रखे, दूसरेकी आशा न करे, मनमें पापको न ठहरने दे, अग्निहोत्रादि कर्म करता रहे,

सत्य बोले और सदा पवित्र रहे। पुत्र और पौत्र हो जानेपर वानप्रस्थ हो जाय। तपस्या करके काम-क्रोध आदि छहो शत्रुओंपर विजय प्राप्त करे। तत्पश्चात् पुत्रके पास रहनेके लिये स्त्रीकी व्यवस्था कर दे। न्यायपूर्वक सम्पूर्ण अग्नियोंका अपनेमें आधान करके चौथे आश्रममें पैर रखे। धार्मिक भावना मनसे कभी दूर न हो। चित्त शान्त रहे। शुद्ध वैराग्य होनेपर ही ऐसी स्थिति बनानी चाहिये। विरक्त पुरुष ही संन्यासी होनेका अधिकारी है। यदि विराग नहीं हुआ तो कभी भी संन्यास लेना अनुचित है। वेदकी यह सच्ची घोषणा है। मेरी समझसे इसे कोई मिथ्या नहीं बना सकता। शुकदेवजी ! वेदकी आज्ञाके अनुसार अड़तालीस संस्कार विहित हैं। उनमेंसे महापुरुषोंने गृहस्थके लिये चालीस संस्कार बतलाये हैं। साथ ही शम, दम आदि आठ संस्कार मुक्तिकामी पुरुषके लिये निश्चित किये हैं। क्रमशः एक आश्रमके नियमोंका पालन करके दूसरे आश्रममें जाय, यही आदरणीय पुरुषोंकी आज्ञा है।

श्रीशुकदेवजीने पूछा—बुद्धिमें वैराग्य और प्रत्यक्ष ज्ञान एवं परोक्ष ज्ञानका उदय हो जानेपर गृहस्थ आदि आश्रमोंमें रहना आवश्यक है या वनमें ?

जनकजीने कहा—मानद ! बलवती इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त करना बड़ा कठिन काम है। ये इन्द्रियाँ अपक्वबुद्धि पुरुषके मनमें अनेकों प्रकारके विकार उत्पन्न कर देती हैं ? यदि संन्यास ले लेनेपर भी कामबासना जग उठे तो फिर वह पुरुष सुन्दर पदार्थ खाने, कोमल शय्यापर सोने, इन्द्रिय-सुख भोगने तथा पुत्र पानेकी इच्छाको कैसे शान्त कर सकता है ? वासनाएँ बड़ी दुर्जर हैं। ये शान्त नहीं होतीं। अतः इनका वेग शान्त करनेके लिये क्रमशः त्यागी बनना चाहिये। ऊपर सोनेवाला तो कभी-न-कभी गिरता ही है। जो नीचे सोता है, उसके गिरनेकी सम्भावना नहीं रहती। संन्यासी हो जानेपर भ्रष्ट हो जाय तो फिर उसके लिये कोई भी मार्ग सहज नहीं है। चींटी पैरसे ही वृक्षके मूलपर चढ़कर डालियोंपर चली जाती और धीरे-धीरे सुखपूर्वक फलतक भी पहुँच जाती है। पक्षी कोई विघ्न सामने न आ जाय, इस भयसे बड़ी तीव्र गतिसे चलता है। परिणाम यह होता है कि वह तो थक जाता है और चींटी सुखी होती है। जो भगवत्-साक्षात्कारसे वञ्चित हैं, वे मनके प्रबल वेगको रोक नहीं सकते। अतः क्रमशः वर्णाश्रम धर्मका अनुसरण करते हुए मनको जीतना चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहकर भी सदा शान्त रहे, बुद्धिमें विकार उत्पन्न न होने दे। आत्माका चिन्तन करे। न लाभमें प्रसन्न हो और न हानिमें दुःखी। प्रत्येक स्थितिमें समानरूपसे रहे। जो चिन्ताका विषय हो, उसका परित्याग करते हुए विहित कर्मका आचरण करे। भगवच्चिन्तनकी प्रसन्नता हृदयमें

भरी रहे। ऐसा पुरुष भवबन्धनसे निस्संदेह मुक्त हो जाता है। अनघ ! देखो, मैं राज्य करते हुए भी जीवन्मुक्त हूँ। मैं इच्छानुसार कर्म कर लेता हूँ; किंतु कोई भी कर्म मेरे बन्धनका कारण नहीं बन पाता। अनघ ! जिस प्रकार भाँति-भाँतिके भोगोंको भोगता हुआ तथा अनेकों कार्योंको करता हुआ भी मैं समान रहता हूँ, ठीक वैसे ही तुम भी मुक्त होनेकी चेष्टा करो। बन्धनमें डालनेवाला जो प्रत्यक्ष कारण है, उसे मैंने बता दिया। जिस कारणकी सत्ता ही नहीं है, वह बाँध कैसे सकेगा ? पाँचों तत्त्व और फिर उनके गुण—ये सब केवल दीखते हैं, इसकी वास्तविक सत्ता नहीं है। ब्रह्मन् ! आत्मा अचिन्त्य, शुद्धस्वरूप और निर्लेप है। वह केवल अनुमानसे जाना जाता है, कभी प्रत्यक्ष नहीं होता। फिर वह बन्धनमें कैसे आयेगा ? द्विजवर ! सुख और दुःखके अगाध सागरमें डुबानेवाला यह मन ही है। इसके शुद्ध हो जानेपर सभी इन्द्रियोंमें विकारका अभाव हो जाता है। चाहे कोई सम्पूर्ण तीर्थोंमें बार-बार जाय और गोता लगाये, परंतु जबतक मनमें पवित्रता नहीं आती, तबतक उसका सब कुछ किया-कराया व्यर्थ है।

परंतप ! मनुष्योंको बन्धनमें डालने और मुक्त करनेमें देह, जीवात्मा और इन्द्रियाँ—कोई भी कारण नहीं हैं। केवल मन ही उन्हें मुक्त करने और फँसानेमें निमित्त बनता है। आत्मा तो सदा शुद्ध और मुक्तस्वरूप है। वह किसी प्रकार भी बन्धनमें नहीं फँसता। बन्धन और मोक्ष तो मनमें रहते हैं। मन शान्त रहा तो बन्धन और मोक्षकी सत्ता स्वयं शान्त हो जाती है। शत्रु, मित्र और उदासीन आदि सभी भेद मनमें रहते हैं। आत्मा एक है। मनुष्य यदि द्वैतबुद्धि न करे तो भेदकी सम्भावना कैसे हो। जीव ब्रह्मस्वरूप है। मैं वही नित्य ब्रह्म हूँ, इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है। जगत्में अविद्या फैली है। इसीसे जीव और ब्रह्ममें भेदबुद्धिकी प्रतीति होती है। महाभाग ! यह अविद्या विद्यासे अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे शान्त होती है। अतः विवेकी पुरुषको चाहिये कि विद्या और अविद्याके विषयमें भलीभाँति जानकारी प्राप्त कर ले। धूपमें रहे बिना छायाके सुखका अनुभव कैसे हो। ऐसे ही सामने अविद्या आये बिना विद्याकी महत्ता कैसे जानी जा सकती है। गुणोंमें गुणोंका, भूतोंमें भूतोंका तथा विषयोंमें इन्द्रियोंका रहना स्वाभाविक है। फिर इसमें आत्माका क्या दोष ? सबके पालनार्थ वेदोंमें मर्यादा स्थापित कर दी गयी है। अनघ ! यदि पुरुष उसके अनुसार न चले, तब तो नास्तिकोंके विचारके अनुसार धर्मकी सत्ता ही मिट जायगी। धर्मके नष्ट हो जानेपर वर्णव्यवस्था भी स्थिर न रह सकेगी। अतः वेदके बताये हुए मार्गसे चलनेवाले ही कल्याणके भागी होते हैं।

श्रीशुकदेवजीने कहा—महाराज ! मेरा हृदय इस संदेहसे अलग नहीं हो पाता कि जिसके चारों ओर मायाका विस्तार है, उसकी स्पृहा कैसे शान्त हो सकती है। शास्त्रका ज्ञान एवं नित्य और अनित्य वस्तुका विवेक होनेपर भी मनुष्यका मन मोहमें फँसा ही रहता है। फिर वह मुक्त कैसे हो सकता है। केवल शास्त्रीय ज्ञानमें इतनी शक्ति नहीं है कि उसके प्रभावसे हृदयका अज्ञान दूर हो सके, जैसे दीपककी चर्चासे अन्धकारमें कोई कमी नहीं होती। राजेन्द्र ! विज्ञ पुरुषोंका वक्तव्य है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके साथ सदा मैत्री होनी चाहिये। किंतु यदि वह गृहस्थ है तो इस कर्तव्यका पालन कैसे

कर सकेगा ? राजन्! धनकी, राज्यसुखकी तथा संग्राममें विजय पानेकी अभिलाषा आपके हृदयमें बनी है। तब आप जीवन्मुक्त कैसे हुए ? आप चोरमें चोर-बुद्धि तथा तपस्वीमें साधु-बुद्धि रखते हैं। अपने और परायेका ज्ञान आपको है ही, फिर आपमें विदेहता कैसी? राजन्! कड़वे, तीखे, खट्टे एवं कसैले आदि रसोंका तथा अच्छे-बुरेका ज्ञान आपको है ही। अतः अच्छे कामोंमें आपका मन रमता और बुरेकी ओर जाता नहीं। महाराज ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाएँ समयानुसार आपका साथ देती ही हैं, फिर आपमें साम्यावस्थाकी क्या सम्भावना रही ? हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल सैनिक—सब-के-सब मेरे अधीन हैं; मैं सबका स्वामी हूँ—आप यह मानते हैं कि नहीं ? राजन्! आप मधुर पदार्थको प्रसन्नतापूर्वक खाते हैं। स्वादहीन भोजनमें वैसी प्रसन्नता नहीं रहती। तब फिर माला और सर्पमें आपकी समान दृष्टि कहाँ रही। महाराज ! विमुक्त तो वह हो सकता है, जिसकी मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समान दृष्टि है, जो सबमें एक बुद्धि रखता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हित-साधनमें लगा रहता है। अतः अब मेरा मन क्षणभरके लिये भी घर एवं स्त्री आदिमें रमना नहीं चाहता। एकान्तमें रहकर इच्छाओंको शान्त करके सानन्द समय व्यतीत करूँ—यही मेरी बुद्धि निर्णय कर रही है। मैं किसीका साथ न करूँगा, ममता मनसे अलग रहेगी; फल, मूल, पत्ते—जो कुछ मिलेगा, खा लूँगा, सुख-दुःखके अनुभवसे अलग रहूँगा और किसी वस्तुका संग्रह नहीं करूँगा। सदा शान्तिपूर्वक मृगकी भाँति विचरा करूँगा।

राजन्! जब मेरे मनमें वैराग्यका उदय हो गया और सभी सुख-दुःख आदि गुण शान्त हो गये, तब घर, धन और सुन्दर स्त्रीसे मुझे क्या प्रयोजन है ? आप अनेकों आसक्तियोंसे युक्त तरह-तरहकी बात सोचते रहते हैं और कहते हैं कि मैं जीवन्मुक्त हूँ। मुझे तो आपका यह व्यवहार दम्भ ही जान पड़ता है। राजन्! कभी शत्रु-विषयक, कभी धन-विषयक और कभी सेना-विषयक चिन्ता आपके मनको घेरे रहती है। आपकी तो बात ही कौन-सी है—जो मुनिगण सूक्ष्म भोजन करके अपने व्रतमें अटल हो वनमें तपस्या करते हैं और जानते हैं कि संसार मिथ्या है, वे भी इस जगज्जालमें फँस जाते हैं। राजन्! आपके कुलमें उत्पन्न होनेवालोंका 'विदेह' नाम ही रख दिया जाता है। इसे आप बिलकुल विपरीत बात समझ लीजिये। जैसे किसी मूर्खका नाम विद्याधर, अंधेका नाम दिवाकर और दरिद्रका नाम लक्ष्मीधर रख दिया जाय तो उनके वे नाम अनर्थक ही हैं।

जनकजीने कहा—द्विजवर ! तुमने बात बिलकुल सच्ची कही है। इसमें कुछ भी झूठ नहीं है। तब भी सुनो, मेरे गुरु व्यासजी एक आदरणीय पुरुष हैं। माना, तुम उनके पास न रहकर वनमें जाना चाहते हो। पर वहाँ भी तो मृगोंसे तुम्हारा सम्बन्ध होगा ही—यह बिलकुल निश्चित है। जब पञ्चमहाभूतोंसे कोई भी स्थान रिक्त नहीं है, तब तुम वहाँ निस्सङ्ग कैसे रह सकोगे ? मुने ! भोजनकी चिन्ता तो कभी साथ छोड़ नहीं सकती, फिर तुम निश्चिन्त कैसे हुए ? जिस प्रकार वनमें रहते हुए भी तुम्हें अपने दण्ड और मृगचर्मकी चिन्ता लगी रहती है, वैसे ही मुझे अपने राज्यकी चिन्ता है। तब हम दोनोंकी चिन्ता समान रही या नहीं ? बल्कि दूर

देशमें जानेके कारण तुम्हारा मन अधिक चिन्तित रहेगा। मेरे मनमें तो संदेहकी कल्पना भी नहीं उठती। मैं सब तरहके संकल्प-विकल्पको त्याग चुका हूँ। मुने ! सर्वथा सुखसे खाता और सुखसे सोता हूँ। 'जगत् मुझे बाँध नहीं सकता'— मैंने यह निश्चित धारणा बना ली है। अतः मैं सभी समय सुखी रहता हूँ और 'मैं जगज्जालमें फँस गया हूँ'—यह शङ्का तुम्हें निरन्तर दुःखार्णवमें डुबाया करती है। इसलिये अब सजग हो जाओ। इस चिन्ताका परित्याग करके सुखी होना अपना परम कर्तव्य है। 'यह देह मेरी है'—यही बन्धन और 'यह देह मेरी नहीं है'— यही मुक्तता है। ऐसे ही धन, गृह और राज्यमें जो अपनी ममता स्थापित कर दी जाती है; वही निस्संदेह बन्धन है। ममता न हो तो कहीं कोई बन्धन नहीं। बन्धन शरीर तथा घरमें नहीं है। यह तो अहंता-ममतामें है।

सूतजी कहते हैं—जनकजीका उपर्युक्त कथन सुनकर शुकदेवजीका मन मुग्ध हो गया। उनकी शङ्काएँ नष्ट हो गयीं। उसी क्षण जनकजीसे आज्ञा लेकर वे व्यासाश्रमको चल पड़े। पुत्रको आते हुए देखकर व्यासजीके सुखकी सीमा न रही। उन्होंने शुकदेवजीको गोदमें बिठा लिया, मस्तक सूँघा, फिर उनकी कुशल पूछी। इसके बाद शुकदेवजी अपने पिताके पास ही उनके सुन्दर आश्रमपर रहने लगे। वे वेदाध्ययनमें सफलता पा चुके थे। सम्पूर्ण शास्त्रोंका सम्यक् प्रकारसे अध्ययन किया था। राज्य करते हुए भी जनकजीकी जो स्थिति थी, उसे देखकर शुकदेवजीके मनको बड़ी शान्ति मिली। अब पिताके आश्रमपर रहना उन्हें अभीष्ट हो गया। पितरोंकी एक सौभाग्यवती कन्या थी। उस सुन्दरी कन्याका नाम था पीवरी। योग-पथके पथिक होते हुए भी शुकदेवजीने उसे अपनी पत्नी बनाया। उस कन्यासे उन्हें चार पुत्र हुए—कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि और देवश्रुत। कीर्ति नामकी एक कन्या हुई। परम तेजस्वी शुकदेवजीने विभ्राजकुमार महामना अणुहके साथ उस कन्याका विवाह कर दिया। अणुहके पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुए। शुकदेवजीके दौहित्र ब्रह्मदत्त बड़े प्रतापी राजा हुए। साथ ही वे ब्रह्मज्ञानी भी थे। कितने समयतक वहाँ रहकर नारदजीने उन्हें ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया था। ज्ञानकी पराकाष्ठापर पहुँचकर ब्रह्मदत्तने सर्वोत्कृष्ट योगमार्गका अनुसरण किया। फिर पुत्रको राज्य सौंपकर वे बदरिकाश्रम चले गये। मायाबीजके उपदेशसे उनका ज्ञान अत्यन्त निर्मल हो गया था। नारदजीकी कृपासे वे बहुत शीघ्र मुक्तिप्रद ज्ञानके अधिकारी हो गये।

फिर शुकदेवजी अपने पिता व्यासजीका साथ छोड़कर कैलासके सुरम्य शिखरपर गये। वहाँ उन्होंने अविचल समाधि लगा ली। परम सिद्धि मिल जानेपर उनका आसन शिखरसे ऊपर उठ गया। आकाशमें वे इस प्रकार चमकने लगे, मानो महान् तेजस्वी सूर्य चमक रहे हों। शुकदेवजीके ऊपर उठते समय पर्वतका शिखर फटकर दो भागोंमें बँट गया। वायुकी भाँति तीव्र गतिसे वे आकाशमें चले तो उत्पातोंकी भरमार हो गयी। ऋषिगणने उनका स्तवन आरम्भ कर दिया। उस समय शुकदेवजी तेजस्वी होनेके कारण आकाशमें एक-दूसरे सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशित होने लगे। उधर व्यासजीको असीम विषाद हुआ। उनके मुखसे बार-बार 'हे पुत्र !' यह शब्द निकल रहा था। वे पर्वतके उस शिखरपर चले गये, जहाँ शुकदेवजीने योगाभ्यास

किया था। व्यासजीकी दयनीय दशा समझकर शुकदेवजीने उत्तर दिया। उनके वचनसे सभी जान गये कि शुकदेवजी व्यष्टि-शरीरको समष्टिमें मिलाकर आकाशमें चले गये हैं। उस पर्वतके शिखरपर अबतक भी स्पष्ट उत्तर सुनायी पड़ता था। व्यासजीका विलाप बंद न हुआ। वे शोकके उमड़े सागरमें डूब रहे थे। मुखसे 'पुत्र-पुत्र'की करुण ध्वनि निकल रही थी। मनपर विरहका बादल मँडरा रहा था। उनकी स्थिति देखकर भगवान् शंकर वहाँ पधारे और उन्होंने उनको समझाना आरम्भ किया—'व्यास ! तुम शोक मत करो ! तुम्हारा पुत्र शुकदेव योग-शास्त्रका प्रकाण्ड विद्वान् है। उसे वह उत्तम गति सुलभ हुई है जिसे अकृतात्मा कभी पा ही नहीं सकते। तुम तो स्वयं विज्ञ पुरुष हो। अतः शुकदेवके विषयमें तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अनघ ! ऐसे योग्य पुत्रकी प्राप्तिसे तो तुम्हारी कीर्ति विस्तृत हो गयी।

व्यासजीने कहा—देवेश ! मैं क्या करूँ—विवश हो गया हूँ। पुत्रको देखनेसे अतृप्त मेरे नेत्र अब भी उसे देखनेके लिये छटपटा रहे हैं।

महादेवजी बोले—तुम्हारे पुत्रकी मनको अत्यन्त मुग्ध करनेवाली छाया तुम्हें निकट ही दिखायी पड़ेगी। महान् तप करनेवाले मुनिवर ! उस प्रतिबिम्बको देखकर अपना चित्त शान्त कर लो।

सूतजी कहते हैं—फिर तो शुकदेवजीका परम प्रकाशमान प्रतिबिम्ब व्यासजीको दिखायी पड़ने लगा। मुनिको वर देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके अन्तर्धान होनेके पश्चात् व्यासजी अपने आश्रमपर चले आये।

(अध्यान १८-१९)

☆

## व्यासजीका सरस्वती नदीके तटपर निवास, शंतनुके कथा-प्रसङ्गमें भीष्मजीके द्वारा काशिराजकी कन्याओंके हरण, चित्राङ्गदके मरण और विचित्रवीर्यके विवाह आदिकी कथा और व्यासजीके द्वारा संतानोत्पादनका प्रसङ्ग

ऋषियोंने पूछा—परम सिद्धि प्राप्त करके शुकदेवजीके पधार जानेपर देवशिरोमणि व्यासजीने फिर क्या किया, इसे विस्तारपूर्वक हमें बतानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु प्रभृति अनेकों शिष्य व्यासजीके पास रहकर वेदाभ्यास करते थे। वे सभी पहले ही आज्ञा लेकर पृथ्वीपर धर्मप्रचारार्थ चले गये थे तथा पुत्र शुकदेवजीका अन्तरिक्षमें निवास हो गया—यह सब देखकर व्यासजीके मनपर शोककी घटा घिर आयी। उन्होंने वहाँसे चलनेका विचार कर लिया। इतनेमें उन्हें निषादकन्या अपनी पुण्यवती माता सत्यवती याद आ गयी। उन्होंने उन्हें गङ्गाके तटपर छोड़ दिया था। उस समय वे अत्यन्त शोकाकुल थीं। माता सत्यवतीकी दयनीय दशा याद आनेपर वे महातेजस्वी मुनिवर व्यासजी उस पर्वतशिखरको छोड़कर अपनी जन्मभूमिपर आ गये। आकर निषादोंसे पूछा—'पुण्यमयी माता कहाँ गयी'? उन सबने उत्तर दिया—'वह कन्या राजा शंतनुको सौंप दी गयी है।' इसके बाद दाशराजने प्रसन्नतापूर्वक व्यासजीका आतिथ्य-सत्कार किया।

फिर तो व्यासजी सरस्वती नदीके सुरम्य

तटपर अपना आश्रम बनाकर वहीं रहने लगे। तपस्या आरम्भ हो गयी। राजा शंतनु बड़े प्रतापी नरेश थे। उन्होंने सत्यवतीके गर्भसे दो पुत्रोंको जन्म दिया। वनवासी जीवन व्यतीत करते हुए भी व्यासजी उन दोनों पुत्रोंको भाई मानकर बड़े सुखी थे। महाराज शंतनुके प्रथम पुत्रका नाम चित्राङ्गद हुआ। शत्रुदमन चित्राङ्गद अनुपम सुन्दर एवं सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे। दूसरे पुत्रका नाम विचित्रवीर्य था। उनमें भी सभी गुण विद्यमान थे। उन्हें देखकर पिताको अपार हर्ष होता था। राजा शंतनुके सबसे बड़े पुत्र महान् प्रतापी भीष्म थे ! उनमें असीम शक्ति थी। सत्यवतीकुमार चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य भी भीष्मजीके समान ही बलशाली हुए। सर्वलक्षणसम्पन्न तीनों पुत्रोंको देखकर महामना शंतनु अपनेको देवताओंसे भी अजेय मानते थे। कुछ समयके पश्चात् राजा शंतनुका स्वर्गवास हो गया। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रको छोड़ देता है, वैसे ही उन धर्मात्मा नरेशने अपने जीर्ण शरीरका परित्याग कर दिया। शंतनुके स्वर्ग सिधारनेपर उनके लिये और्ध्वदेहिक क्रियाएँ सविधि सम्पन्न की गयीं। अनेकों प्रकारके दान किये गये। इसके बाद पराक्रमी भीष्मजीने स्वयं राज्यको स्वीकार न करके चित्राङ्गदको राजा बनाया। सत्यवतीकुमार चित्राङ्गद बड़े प्रतापी एवं पुण्यात्मा पुरुष थे। उन बलाभिमानी वीरने शत्रुओंको परास्त कर दिया था।

एक समयकी बात है—महाराज चित्राङ्गद विशालवाहिनी साथ लेकर वनमें गये। चित्राङ्गद अभी मार्गमें ही थे, इसी बीच चित्राङ्गद नामक गन्धर्वने उन्हें देखा और एक उत्तम रथपर उन नरेशके सामने ही वह भूमिपर उतर आया। राजा चित्राङ्गद और वह चित्राङ्गद नामधारी गन्धर्व दोनों एक समान पराक्रमी थे। तदनन्तर वे दोनों कुरुक्षेत्र नामक प्रसिद्ध स्थानमें भयंकर युद्ध करने लगे। तीन वर्षतक लड़ाई चलती रही। अन्तमें राजा चित्राङ्गद उस गन्धर्वके हाथ युद्धमें काम आकर स्वर्ग चले गये। समाचार पाकर भीष्मजीने उनके श्राद्धादि कर्म किये।

तदनन्तर उन्होंने विचित्रवीर्यको राजगद्दी सौंप दी। पश्चात् मन्त्रियों एवं महानुभाव गुरुओंने सत्यवतीको समझाया। सामने ही दूसरे पुत्रका राज्याभिषेक भी हुआ। इससे माता शोकाकुल होनेपर भी संतुष्ट हो गयी।

अब सत्यवतीकुमार विचित्रवीर्य युवा हो गये। भीष्मजीको अपने छोटे भाईके विवाहकी चिन्ता लग गयी। काशिराजके तीन कन्याएँ थीं। सभीमें शुभ लक्षण विद्यमान थे। राजाने स्वयंवरकी पद्धतिसे विवाह करनेके लिये कन्याओंको उपस्थित किया था। शर्त थी, कन्याएँ इच्छानुसार वर चुन लें। हजारों नरेश और राजकुमार बुलाये गये थे। लब्धप्रतिष्ठ राजाओंकी मण्डली उपस्थित थी। महान् तेजस्वी भीष्मजी एक रथपर बैठकर उस स्वयंवरमें पधारे और सभी राजाओंको परास्त करके उन्होंने तीनों कन्याएँ बलपूर्वक छीन लीं। महारथी भीष्मजी तेजस्वी पुरुष थे। अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण नरेशोंको जीतनेके पश्चात् उन कन्याओंको लेकर वे हस्तिनापुर लौट आये। भीष्मजीने उन सुन्दरी कन्याओंके प्रति ऐसी धारणा बना ली थी, मानो ये माता, बहन अथवा पुत्री हों। उन्हें लाकर उन्होंने तुरंत सत्यवतीको सौंप दिया और ज्यौतिष एवं वेदके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे शुभ मुहूर्त बतानेकी प्रार्थना की। जब विवाहका सारा सामान एकत्रित कर लिया और अपने छोटे भाई धर्मात्मा विचित्रवीर्यका उन

कन्याओंके साथ विवाह करने लगे तो तीनोंमें जो अत्यन्त सुन्दरी थी, उस बड़ी कन्याने लज्जित होकर भीष्मजीसे कहा—'धर्मज्ञ ! आप कुरुवंशके एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। आपने अपने वंशको उज्ज्वल कर दिया है। गङ्गानन्दन ! मैं तो मन-ही-मन राजा शाल्वको स्वयंवरमें वर चुकी हूँ। वह नरेश मेरे प्रेममें विह्वल हो गया था। अतः उसने भी चित्तमें मुझे वर लिया था। परंतप ! अब इस कुलकी प्रथाके अनुसार जो उचित हो, करनेकी कृपा कीजिये ! भीष्मजी ! आप धर्मात्माओंमें भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। यद्यपि शाल्वने पहले मुझे वर लिया, फिर भी आप शक्तिशाली पुरुष हैं; अतः जैसी इच्छा हो, कर सकते हैं।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार उस कन्याके कहनेपर कुरुनन्दन भीष्मजीने वृद्ध ब्राह्मणों, मन्त्रियों और माता सत्यवतीसे कर्तव्यके विषयमें पूछा। स्वयं भी वे धर्मके विशेषज्ञ थे। सबकी अनुमति प्राप्त करके उस कन्यासे उन्होंने कहा—'वरानने ! तुम स्वेच्छापूर्वक जा सकती हो।' अब भीष्मजीसे विदा होकर वह कन्या शाल्वके पास गयी और अपने मनकी अभीष्ट बात उस नरेशके सामने स्पष्ट कह दी। बोली—'महाराज ! आपमें मेरा मन रम गया था। अतः मैं धर्मपूर्वक भीष्मजीसे विदा हो आयी हूँ। अब आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। मेरे साथ विवाह कर लीजिये। नृपश्रेष्ठ ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ; क्योंकि आप मेरे हृदयमें बस गये हैं और आपका हृदय भी मुझसे रिक्त नहीं है—यह बिलकुल निश्चित बात है।'

शाल्वने कहा—सुन्दरी ! मेरे सामने ही भीष्मने तुझे पकड़कर रथपर बैठा लिया था। अतः मैं तुझे अपनी पत्नी नहीं बनाऊँगा। कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष है, जो दूसरेकी छोड़ी हुई कन्याके साथ विवाह करेगा ? यद्यपि तेरे प्रति भीष्मकी मातृभावना थी, फिर भी तू उनके पास तो रह ही चुकी है। अतः मेरे साथ तेरा विवाह होना असम्भव है।

अब महामना शाल्वके त्याग देनेपर वह कन्या रोती-बिलखती हुई पुनः भीष्मजीके पास आयी तथा आँखोंसे आँसू गिराती हुई यों कहने लगी—'वीर ! आपकी छोड़ी हुई मानकर शाल्वने मुझे स्वीकार नहीं किया। महाभाग ! आप धर्मज्ञ पुरुष हैं। मुझे अपनी दासी बना लीजिये। अन्यथा मैं शरीर त्याग दूँगी।'

भीष्मजी बोले—सुन्दरी ! तुम्हारे चित्तमें दूसरा पुरुष बस चुका है। अतः तुम्हें कैसे स्वीकार किया जाय। कल्याणी ! अब तुम निश्चिन्त होकर अपने पिताके पास चली जाओ।

जब शाल्वके समान ही भीष्मजीसे भी उसे उत्तर मिल गया, तब वह कन्या जंगलमें चली गयी। वहाँ एक परम पवित्र निर्जन स्थान था। वहीं रहकर वह तपस्या करने लगी। इधर राजा विचित्रवीर्यका दो स्त्रियोंके साथ सम्बन्ध हुआ। काशिराजकी वे दोनों सुन्दरी कन्याएँ अनुपम रूपवती थीं। एकका नाम था अम्बालिका और दूसरीका अम्बिका। प्रतापी राजा विचित्रवीर्य उन पत्नियोंके साथ भाँति-भाँतिसे भोग-विलास करने लगे। वे कभी घरपर रहते और कभी उपवनमें चले जाते थे। नौ वर्षोंतक महाराज विचित्रवीर्य उन दोनोंके साथ मनके अनुकूल रमण करते रहे। इतनेमें उन्हें राजयक्ष्माकी बीमारी हो गयी। इसके बाद वे इस लोकसे चल बसे। पुत्रके मर जानेपर सत्यवतीको अपार दुःख हुआ। उनकी आज्ञासे मन्त्रियोंने विचित्रवीर्यके श्राद्धादि प्रेतकार्य सम्पन्न किये।

तब एकान्तमें सत्यवतीने अत्यन्त दुःखित होकर भीष्मजीसे कहा—'महाभाग पुत्र ! तुम अपने पिता शंतनुके राज्यका भार सँभाल लो, साथ ही वंशकी रक्षा करो। ऐसा यत्न करो, जिससे ययातिका वंश लुप्त न होने पाये।'

भीष्मजीने कहा—माताजी ! मैंने पिताके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आप सुन चुकी हैं। अतः मैं न राज्य करूँगा और न विवाह ही।

सूतजी कहते हैं—तब वंश-परम्परा कैसे कायम रहे—इस चिन्तासे सत्यवती घबरा उठी। सोचा, यदि राजाकी अनुपस्थितिमें मैं अकर्मण्य बनी रही तो मेरे लिये सुखकी कोई आशा नहीं दीखती। तब भीष्मजीने उनसे यह वचन कहा—'माता ! तुम शोक न करके विचित्रवीर्यके क्षेत्रसे पुत्र उत्पन्न करानेकी चेष्टा करो।' भीष्मजीकी बात सुनकर सत्यवतीने अपने बड़े पुत्र शुद्धात्मा व्यासजीका मन-ही-मन चिन्तन किया। स्मरण करते ही तपस्वी व्यासजी वहाँ आ पहुँचे। भीष्मजीने व्यासजीकी पूजा की। सत्यवतीने उन्हें सम्मानित किया। वहाँ बैठे हुए महान् तेजस्वी मुनि ऐसे जान पड़ते थे, मानो दूसरी धूमरहित आग ही चमक रही हो। तब माता सत्यवतीने अपने पुत्र मुनिवर व्यासजीसे कहा—'बेटा ! अब तुम विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो।' व्यासजीने माताकी बात सुनकर उसको आप्त वचन माना। अतः अपनी स्वीकृति दे दी। जब अम्बिका ऋतुकालके स्नानसे निवृत्त हो गयी, तब उसने मुनिके मानस संयोगसे नेत्रहीन पुत्र उत्पन्न किया। उस पुत्रमें अमित बल था। जन्मान्ध[१] बालकको देखकर सत्यवतीका मन दुःखसे मुक्त न हो सका। तब दूसरी बहूसे कहा—'तुम भी शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो।' तब उसी प्रकार अम्बालिकाने भी गर्भ धारण किया, तदनन्तर वह पाण्डुकी[२] जननी हुई। सबकी सम्मतिसे पाण्डु राज्यके अधिकारी सिद्ध हुए। एक वर्षके बाद सत्यवतीने फिर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये बहूको प्रेरणा की। मुनिवर व्यासजीको बुलाकर उनसे विनयपूर्वक कहा और रात्रिके समयमें उन्हें शयनागारमें भेज दिया। उस समय वहाँ बहूने स्वयं न जाकर उसने अपनी दासीको भेज दिया। उस दासीके उदरसे विदुरजीका जन्म हुआ, जो पुण्यात्मा पुरुष 'धर्म'के अंश माने जाते हैं।

इस प्रकार व्यासजीने वंशकी रक्षाके लिये धृतराष्ट्र प्रभृति तीन महान् पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये। निष्पाप मुनियो ! ययाति-वंशसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सभी कथाएँ तुम्हें सुना दीं। भ्रातृ-धर्मके विशेषज्ञ धर्मात्मा तथा परम संयमी श्रीव्यासजीकी कृपासे उनका वंश सुरक्षित रह गया। (अध्याय २०)

## श्रीमद्देवीभागवतका पहला स्कन्ध समाप्त।

═★═

---

१. दूसरे पुराणोंमें कथा आती है, अम्बिकाने व्यासजीके तेजको सहनेमें असमर्थ होनेके कारण आँखें मूँद ली थीं। अतः उससे 'नेत्रहीन' पुत्रका जन्म हुआ।

२. अम्बालिकाने मुनिका तेज सहन करनेके लिये अपने सर्वाङ्गमें मलयागिरि चन्दनका लेप कर लिया था, जिससे 'पाण्डुरोगवाला' पुत्र उत्पन्न हुआ।

॥ श्रीभगवत्यै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## दूसरा स्कन्ध

### सत्यवतीकी उत्पत्ति तथा भगवान् व्यासके प्राकट्यकी कथा

ऋषियोंने कहा—सूतजी ! आपकी यह अस्पष्ट वाणी महान् आश्चर्य उत्पन्न कर रही है। हमारे मनमें कई प्रश्न उत्पन्न हो गये हैं। पहली बात तो यह है कि जब पतिव्रता सत्यवती पिताके घरपर थीं, तभी उनसे व्यासजीका जन्म कैसे हो गया ? फिर इस स्थितिमें राजा शंतनुने सत्यवतीसे विवाह करके दो पुत्र क्यों उत्पन्न किये ? महाभाग ! आप नैष्ठिक पुरुष हैं। इसका रहस्य विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—जो आदिशक्ति हैं तथा जिनकी कृपासे चतुर्वर्ग—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—सभी सुलभ हो जाते हैं, उन परमा शक्तिको प्रणाम करनेके पश्चात् इस पुराण-सम्बन्धी पावन प्रसङ्गका मैं वर्णन करूँगा। विशेषता तो यह है कि भगवती जगदम्बिकाका वाङ्मय बीजमन्त्र किसी बहाने भी मानवके मुखसे निकल जाता है तो उसे अविचल सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अतः सभीका परम कर्तव्य है कि सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये उसी बीजमन्त्रसे भलीभाँति भगवती जगदम्बिकाका निरन्तर चिन्तन करें; क्योंकि मनोरथ पूर्ण करनेमें वे सदा तत्पर रहती हैं। एक धार्मिक एवं सत्यप्रतिज्ञ उपरिचर नामक राजा थे। चेदिदेशमें उनकी राजधानी थी। उनके पास प्रचुर धन था। वे ब्राह्मणोंके भक्त थे। उन्होंने इन्द्रकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर देवराजने राजाको एक स्फटिक मणिका बना हुआ सुन्दर विमान दिया। राजा उपरिचर उस दिव्य विमानपर चढ़कर सर्वत्र विचरने लगे। उसपर बैठकर वे आकाशमार्गसे स्वच्छन्द यात्रा करते। उस विमानका भूमिसे सम्पर्क नहीं होने पाता था। वे प्रतिदिन धार्मिक कृत्य करते थे। सम्पूर्ण जगत्में उनकी ख्याति हो गयी। उनकी सुन्दरी पत्नीका नाम था गिरिका। राजा उपरिचरके पाँच पुत्र थे। सभी बड़े बलिष्ठ एवं अमित तेजस्वी थे। राजाने उन पुत्रोंको अलग-अलग देशोंमें अभिषिक्त कर दिया था।

एक समयकी बात है—राजा उपरिचरकी स्त्री ऋतुमती थी। स्नानसे निवृत्त होकर उसने पुंसवन-व्रत किया और पतिदेवसे अपनी कामना प्रकट की। परंतु पितरोंकी आज्ञासे राजाको मृगयाके लिये वनमें जाना पड़ा। उस समय उनका चित्त उस भामिनीमें अटका था। वे उस सुन्दरी भार्याको याद कर रहे थे। इतनेमें ही उनका शुक्र स्खलित हो गया। तब उन्होंने उस वीर्यको वट-वृक्षके एक पत्तेमें रख दिया। राजाको रानीके ऋतुकालका ज्ञान था ही। सोचा, 'किसी प्रकार भी यह वीर्य व्यर्थ न हो। निश्चय ही मेरा यह वीर्य अमोघ है। इसे मैं अपनी स्त्रीके लिये भेज दूँ।' इस प्रकार विचारकर पहले तो उस वीर्यको उन्होंने अभिमन्त्रित किया। फिर वटपत्रके दोनेमें उसे रखा। पास ही एक बाज पक्षी था। राजाने उससे कहा—'महाभाग ! तुम इसे लेकर अभी मेरे घर जाओ। सौम्य ! इसे घरपर ले जाकर

मेरी प्रेयसी भार्या गिरिकाको तुरंत दे देना। आज उसका ऋतुकाल है।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर राजा उपरिचरने वह वीर्यवाला दोना बाजको दे दिया। तदनन्तर उड़नेकी कलाको अच्छी तरह जाननेवाले उस पक्षीने पुटक उठाया और वह तुरंत आकाशमें उड़ चला। वह चोंचमें दोना लिये आकाशमार्गसे उड़ा जा रहा था। इतनेमें ही एक दूसरे बाजने उसे देख लिया। 'यह मांस लिये हुए है'—यह समझकर तुरंत उस पहले बाजपर वह टूट पड़ा। अब आकाशमें वे दोनों पक्षी तुण्डयुद्ध करने लगे। चोंचसे युद्ध करते समय वह वीर्यका दोना यमुनाके जलमें गिर पड़ा। उसके गिर जानेपर वे दोनों पक्षी इच्छानुसार चले गये। इसी समय कोई एक अद्रिका नामकी अप्सरा यमुनामें स्नान कर रही थी और एक ब्राह्मण-देवता नहाकर संध्या-वन्दनमें संलग्न थे। जलमें डूबकर खेलती हुई उस सुन्दरी अप्सराने ब्राह्मणका पैर पकड़ लिया। उस समय ब्राह्मण-देवता प्राणायाम कर रहे थे। स्वच्छन्द गतिवाली उस अप्सराको देखकर उन्होंने शाप दे दिया 'तू मछली हो जा; क्योंकि तूने मेरे ध्यानमें विघ्न उपस्थित किया है।' द्विजवरके शापसे वह सुन्दरी अप्सरा अद्रिका मछलीके रूपमें परिणत होकर यमुनाके जलमें पड़ी थी। उसी समय बाजके पंजेसे छूटकर वीर्य गिरा और मछलीरूपमें परिणत उस दिव्य अप्सराने तुरंत लपककर उसे ले लिया। कुछ समय बाद वह मछली एक मत्स्यजीवी (धीवर) के हाथ लग गयी। मछलीमारने उसे जालमें फँसा लिया। उस समय उसके गर्भका दसवाँ महीना चल रहा था। मत्स्यजीवी उस मछलीका पेट चीरने लगा। इतनेमें उसके पेटसे दो मनुष्याकार बच्चे निकल आये—एक शोभासम्पन्न बालक था और दूसरी सुन्दरी कन्या। इस आश्चर्यजनक घटनाको
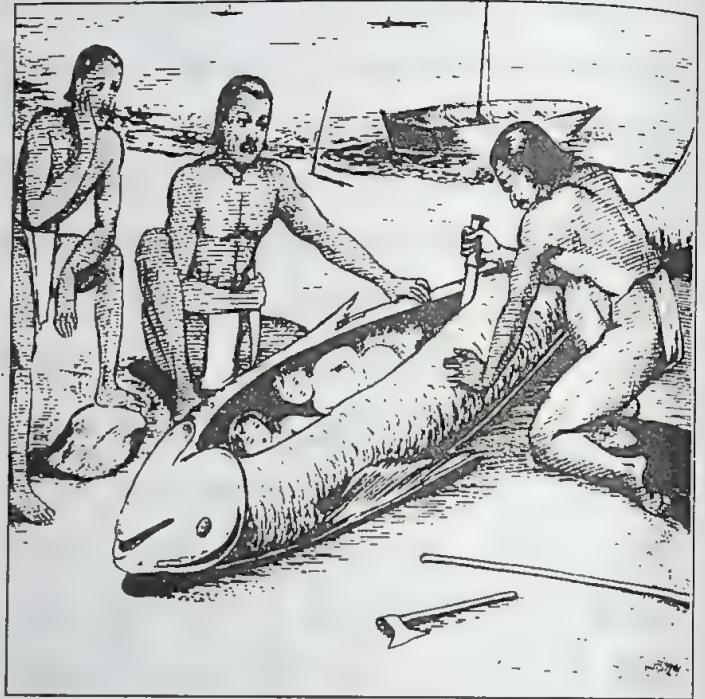
देखकर वह मत्स्यजीवी महान् संदेहमें पड़ गया। उसने मछलीके उदरसे निकले हुए दोनों बच्चे राजाको सौंप दिये। राजाको भी बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस सुन्दर पुत्रको अपने पास रख लिया। उपरिचर नामक राजाके वीर्यसे उत्पन्न वही बालक आगे चलकर राजा मत्स्य नामसे विख्यात हुआ। वह महान् धार्मिक, सत्यप्रतिज्ञ और पिताके समान शक्तिशाली था। उस समय राजा उपरिचरने वह कन्या धीवरको दे दी। वही कन्या 'काली' एवं 'मत्स्योदरी' नामसे प्रसिद्ध हुई। उस कन्याके शरीरसे मछलीकी गन्ध आती थी। अतः उसका एक नाम 'मत्स्यगन्धा' भी पड़ गया। तदनन्तर वह कन्या धीवरके घर पाली-पोसी गयी।

ऋषियोंने पूछा—जब मुनिके शापसे वह दिव्य अप्सरा अद्रिका मछली हो गयी और धीवरने उसका पेट फाड़ दिया, तब क्या वह मर गयी और उसे धीवर खा गया? फिर उस अप्सराकी क्या हालत हुई? उसके शापका

अन्त कैसे हुआ और फिर किस प्रकार वह स्वर्ग पहुँची ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—जब मुनिने उसे शाप दे दिया, तब उस अप्सराको बड़ी चिन्ता हुई। दीन-हीन-सी होकर वह विलाप करती हुई मुनिसे प्रार्थना करने लगी। मुनि बड़े दयालु थे। रोती हुई उस स्त्रीसे उन्होंने कहा—'कल्याणी ! शोक मत करो। शाप-मुक्तिका समय मैं तुम्हें बता देता हूँ। शुभे ! मैंने क्रोधके आवेशमें तुम्हें शाप दे दिया। तुम मछलीकी योनिमें चली जाओगी। फिर, जब तुम्हारे पेटसे दो मानव बच्चे उत्पन्न होंगे, तब तुम्हारा शापसे उद्धार हो जायगा।'

इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर वह अप्सरा मछली होकर यमुनाके जलमें समय बिताने लगी। दोनों बच्चोंको जन्म देनेके पश्चात् उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसका शापसे उद्धार हो गया। फिर वह अप्सरा मछलीके रूपका परित्याग करके दिव्यरूपमयी सुन्दरी स्त्री बनकर स्वर्ग चली गयी। यों 'मत्स्यगन्धा' नामक उस सुन्दरी कन्याका जन्म हुआ। धीवरके घर पलकर वह सयानी हो गयी। जब वह मत्स्य-गन्धा युवावस्थामें प्रविष्ट हुई तब उसकी सुन्दरता निखर उठी। धीवरराजका जो कुछ काम था, उसीको वह किया करती।

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है, महान् तेजस्वी मुनिवर पराशरजी तीर्थयात्रा कर रहे थे। घूमते हुए वे यमुनाके पावन तटपर आये। उस समय नाव खेनेवाला केवट भोजन कर रहा था। धर्मात्मा पराशरजीने उससे कहा—'तुम नावसे मुझे यमुनाके उस पार पहुँचा दो।' केवट यमुनाके तटपर ही खा रहा था। मुनिकी आज्ञा सुनकर उसने अपनी मत्स्यगन्धा नामकी सुन्दरी कन्यासे कहा—'बेटी ! तुम बड़ी चतुर हो। ये मुनि धर्मात्मा एवं तपस्वी पुरुष हैं। इन्हें उस पार जानेकी इच्छा है। तुम नावपर चढ़ाकर इन्हें पहुँचा दो।' पिताके यों कहनेपर वह कुमारी मत्स्यगन्धा मुनिको नावपर बैठाकर उस पार ले जाने लगी। नाव यमुनाके जलको पार कर रही थी—इतनेमें ही दैववश उस मनोहर नेत्रवाली कन्याको देखकर मुनिके मनमें प्रबल वासना जग उठी। उन्होंने दाहिने हाथसे उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। तब वह सुन्दरी कन्या मुनिसे कहने लगी—'आपका उत्तम कुल है, आप श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं और आपने तप किया है। क्या मैं आपके अनुरूप हूँ, आप वसिष्ठजीके वंशज हैं। आप अत्यन्त कुलीन और सदाचारी पुरुष हैं। धर्मके रहस्यको जाननेवाले मुनिजी ! आप मुझे पानेकी इच्छा क्यों कर रहे हैं? द्विजवर ! जगत्में मनुष्यका जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ है। मेरी समझसे उसमें भी सबसे दुर्लभ बात है मनुष्य होकर ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होना। विप्रवर ! आप कुल, शील एवं स्वाध्याय आदि सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न एक उत्तम ब्राह्मण हैं। आपको धर्मकी पूरी जानकारी है। मेरे शरीरसे तो मछलीकी दुर्गन्ध निकला करती है। मुझे देखकर आपमें यह कुत्सित भाव कैसे उत्पन्न हो गया ?' उसने मन-ही-मन सोचा, 'यह ब्राह्मण वस्तुतः बड़ा मूर्ख है। पर यहाँ है भी कौन, जो इसकी इच्छाके विरुद्ध काम कर सके।' यों विचारकर मत्स्यगन्धाने मुनिवर पराशरसे कहा—'महाभाग ! धैर्य रखिये। मैं अभी उस पार चलती हूँ।

सूतजी कहते हैं—नौका उस पार चली गयी। उनसे वह कहने लगी—'मुनिवर ! मैं दुर्गन्धा हूँ। दोनों समान रूपवाले हों, तभी संयोग होनेपर सुख मिलता है।'

मत्स्यगन्धाके इस प्रकार वचन निकालते ही पराशरजीने अपने तपोबलसे उसे कस्तूरीकी गन्ध-वाली बना दिया और वह सुगन्ध चार कोसतक फैल गयी। तब मुनिसे वह योजनगन्धा कल्याणी सत्यवती कहने लगी—'मुनिवर ! यह जनसमाज देख रहा है तथा उस तटपर मेरे पिताजी भी हैं। यह पाशविक कर्म बड़ा भयंकर है। मनुष्यको रातके समय ही इसे करना चाहिये, दिनमें करना निषिद्ध है—ऐसी शास्त्राज्ञा है। महाबुद्धे ! अभी अपनी इच्छा रोके रहिये। अन्यथा जगत्में असहनीय अपवाद फैल जायगा।'

इस प्रकार सत्यवतीके युक्तिपूर्ण वचन सुनकर महान् विचारशील पराशरजीने उसी क्षण अपने पुण्यके प्रभावसे कुहरा उत्पन्न कर दिया। कुहरा उत्पन्न हो जानेपर तटपर अँधेरा छा गया। तब सत्यवतीने कोमल वाणीमें मुनिसे यह वचन कहा—'विप्रवर ! मैं क्वारी कन्या हूँ। आप तो इच्छानुसार चले जायँगे। ब्रह्मन् ! आपका वीर्य व्यर्थ नहीं हो सकता। फिर मेरी क्या गति होगी ? मैं यदि गर्भवती हो गयी तो पितासे क्या कहूँगी ? फिर मेरे लिये क्या कर्तव्य होगा—बतानेकी कृपा कीजिये।'

पराशरजीने कहा—प्रिये ! मेरा प्रिय कार्य करनेपर भी तुम कन्या ही रहोगी। भामिनी ! तुम्हें और भी जो अभीष्ट हो, वह वर माँग लो।

सत्यवती बोली—सम्मान प्रदान करनेवाले मुनिजी ! आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे जगत्में मेरे माता-पिता इस रहस्यको न जान सकें। मेरा कन्याव्रत भङ्ग न होने पाये। द्विजवर ! मेरे आपके समान ही अत्यन्त अद्भुत शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हो। मेरी यह सुगन्ध सदा स्थिर रहे। मैं सदा नवयुवती बनी रहूँ।

पराशरजी बोले—सुन्दरी ! सुनो, तुम्हारा पुत्र भगवान् विष्णुका अंश होगा। त्रिलोकीमें उसकी प्रसिद्धि होगी। प्रिये ! किसी अदृष्ट कारणके अमिट प्रभावसे ही मैं तुमपर आसक्त हुआ हूँ। वरानने ! आजसे पहले कभी मेरा मन किसीपर नहीं लुभाया था। सुन्दरी अप्सराएँ मेरे सामने आयीं। उन्हें देखकर भी मैंने कभी धैर्यका बाँध नहीं टूटने दिया। तुम समझ लो इसमें अवश्य कोई रहस्यमय कारण छिपा है। अन्यथा तुम दुर्गन्धाको देखकर मैं कैसे मोहित हो जाता। प्रसन्नवदने ! तुम्हारा पुत्र पुराणोंका रचयिता होगा। वेदके रहस्यको समझकर उसे चार भागोंमें बाँट देगा। तीनों लोकोंमें उसकी प्रतिष्ठा सुस्थिर होगी।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरके यों कहनेपर सत्यवती अनुकूल हो गयी। तत्पश्चात् यमुनाके जलमें स्नान करके मुनिवर वहाँसे तुरंत पधार गये। सत्यवती भी पिताके घर लौट गयी। उसी क्षण उसे गर्भ रह गया। समयानुसार सत्यवतीने यमुनाके द्वीपमें ही पुत्र उत्पन्न किया। वह बालक जान पड़ता था मानो कोई दूसरा कामदेव हो। वह तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होते ही बढ़ गया और अपनी मातासे कहने लगा—'माँ ! मुझमें असीम शक्ति है। मनको तपोनिष्ठ बनाकर ही मैं गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। अब तुम इच्छानुसार जा सकती हो। मैं भी तपस्या करने चला जाता हूँ। महाभागे ! तुम जब याद करोगी, तभी मैं सामने आ जाऊँगा। माताजी ! कभी तुम्हारे सामने अत्यन्त कठिन परिस्थिति आ जाय, तो मुझे स्मरण करना। मैं उसी क्षण सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा। माता ! तुम्हारा कल्याण हो। मेरे जानेमें विलम्ब हो रहा है। तुम चिन्ता छोड़कर आनन्दसे समय व्यतीत करो।'

इस प्रकार कहकर व्यासजी वहाँसे चल

दिये। सत्यवती भी अपने पिताके पास चली गयी। सत्यवतीने यमुना-द्वीपमें व्यासजीको जन्म दिया। इसीसे व्यासजी 'द्वैपायन' नामसे विख्यात हो गये। वे भगवान् विष्णुके अंशावतार हैं, अतः प्रकट होते ही प्रौढ़ हो गये। इन्होंने प्रत्येक तीर्थमें स्नान किया और उत्तम तपस्या की। इस तरह पराशरजीके कृपा करनेपर व्यासजी प्रकट हुए। कलियुग आ गया—यह जानकर उन्होंने वेदोंकी शाखाएँ बनायीं। वेदका विस्तार करनेसे उनका नाम 'वेदव्यास' पड़ गया। पुराणसंहिताएँ तथा श्रेष्ठ महाभारत—सब उन्हींकी रचनाएँ हैं। वेदोंका विभाजन करके उन्होंने अपने शिष्योंको पढ़ा दिया। सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, असित, देवल तथा अपने पुत्र शुकदेवजी—ये सभी उनके शिष्य थे।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! सत्यवती एवं व्यासजीके पवित्र जन्ममें ये ही सब कारण हैं। महाभाग मुनियो ! इनकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। महान् पुरुषोंके चरित्रकी समालोचना करना अनुचित है। न उनके सभी आचरणोंका अनुकरण ही करना चाहिये। मुनिवर पराशरजीके गुण ही ग्रहण करनेयोग्य हैं। पराशरजी धर्मज्ञ पुरुष हैं। जिस कामको नीचजन करते हैं, उसमें उनकी प्रवृत्ति होनेकी क्या सम्भावना थी ? किन्तु व्यासजी प्रकट होनेवाले थे—यही उस कार्यमें कारण छिपा था। आश्चर्यजनक इस प्रसङ्गको मैंने कह सुनाया। जो पुरुष इस पवित्र उपाख्यानको सुनता है, उसकी दुर्गति नहीं होती। वह सर्वदा सुखी रहता है।

(अध्याय १-२)

☆

## राजा महाभिष और गङ्गाजीको ब्रह्माजीका शाप, महाभिषकी शंतनुके रूपमें उत्पत्ति तथा शंतनुके राज्यपदपर प्रतिष्ठित होने, शंतनुके साथ गङ्गाजीके विवाह और वसुओंके उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न होने, उनके गङ्गाप्रवाह किये जाने तथा भीष्मके उत्पन्न होनेपर गङ्गाके चले जानेकी कथा

ऋषिगण बोले—पुण्यात्मा सूतजी ! महातेजस्वी व्यास एवं सत्यवतीके जन्मकी कथाका आपने वर्णन किया। फिर भी हमारा एक प्रश्न तो शेष रह ही गया। जिन्हें आपने व्यासकी माता कहा है, वे कल्याणी सत्यवती महान् धर्मज्ञ राजा शंतनुको कैसे प्राप्त हुईं ? सत्यवती निषादकी पुत्री थीं। वेष-भूषासे भी वे अच्छी नहीं थीं। फिर पूरुवंशी धर्मात्मा राजा शंतनुने उन्हें स्वयं कैसे स्वीकार कर लिया ? राजा शंतनुकी पहली स्त्री कौन थी, जिससे बुद्धिमान् भीष्मजीका जन्म हुआ था तथा भीष्मजी वसुके अंश क्यों कहे जाते हैं, यह बतानेकी कृपा कीजिये। सूतजी ! आपके मुखारविन्दसे निकल चुका है, भीष्मजी अपार तेजस्वी थे। उन्होंने सत्यवतीके शूरवीर पुत्र चित्राङ्गदको राजगद्दीपर अभिषिक्त कर दिया। चित्राङ्गदके मर जानेपर उसके छोटे भाई सत्यवतीकुमार विचित्रवीर्यको राजा बना दिया। राजा शंतनुके भीष्मजी बड़े पुत्र थे। भीष्मजीका धार्मिक विचार था। वे बड़े सुन्दर थे। उनके रहते छोटा पुत्र गद्दीका अधिकारी बनकर राज्य कैसे करने लगा ? राजा कोई अनभिज्ञ पुरुष तो थे नहीं। विचित्रवीर्यकी मृत्यु हो जानेपर अत्यन्त

शोकाकुल होकर सत्यवतीने पुत्रवधुओंसे क्यों दो गोलक पुत्र उत्पन्न करवाये ? उन कल्याणीने भीष्मजीको ही राजगद्दी क्यों नहीं सौंप दी ? वीरवर भीष्मजीके विवाह न करनेका क्या कारण है ? महाभाग ! आप व्यासजीके बुद्धिमान् शिष्य हैं। हमारे संदेहको दूर कर देना आपके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। हम सभी अन्य कार्योंका परित्याग करके सुननेकी इच्छासे ही इस धर्मक्षेत्रमें उपस्थित हुए हैं।

सूतजी कहते हैं—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न एक महाभिष नामक राजा विख्यात हो चुके हैं। वे बड़े सत्यवादी, धर्मात्मा और चक्रवर्ती नरेश थे। उन्होंने एक हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ करके देवराज इन्द्रको प्रसन्न किया। फलस्वरूप वे स्वर्गके अधिकारी बने। एक समयकी बात है—राजा महाभिष ब्रह्माजीके भवनपर गये थे। प्रजापति ब्रह्माजीकी सेवामें सभी देवता वहाँ पधारे हुए थे। लोकपितामहकी सेवामें महानदी देवी गङ्गा भी वहाँ उपस्थित थीं। बड़े वेगसे हवा चली, जिससे गङ्गाजीका वस्त्र इधर-उधर खिसक गया। उपस्थित सभी देवताओंने गङ्गाजीकी ओर दृष्टि न डालकर अपने मस्तक नीचे कर लिये। किंतु राजा महाभिष निर्भीकता-पूर्वक उधर ताकते रहे। बुद्धिमती गङ्गा भी उन नरेशकी ओर नजर फैलाये रहीं। दोनों प्रेम-पाशमें बँध चुके थे। उन्हें देखकर ब्रह्माजीको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया—'राजन् ! तू मर्त्यलोकमें जाकर जन्म ले। वहाँ जब तू बहुत पुण्य करेगा, तब उसके फलस्वरूप फिर तुझे स्वर्गमें रहनेकी सुविधा मिलेगी। राजाकी ओर प्रेमपूर्वक देखते रहनेके कारण गङ्गाको भी ब्रह्माजीने वैसा ही शाप दिया। अब वे दोनों उदास होकर ब्रह्माजीके पाससे चल पड़े। उस समय महाभिषने मर्त्यलोकके धर्मात्मा राजाओंके विषयमें विचार किया। अन्तमें पूरुवंशी राजा प्रतीपके घर जन्म लेनेकी बात उन्हें जँची। इसी समय आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ वसिष्ठजीके आश्रमपर आये थे। उन्हें इच्छानुसार भोग-विलास करनेकी सुविधा प्राप्त थी। पृथु आदि आठ वसु थे। उनमें द्यौ नामक एक प्रधान वसु था। वहाँ द्यौकी स्त्रीने नन्दिनी गौको देखा। देखकर उसने अपने पति द्यौसे पूछा—'यह उत्तम कामधेनु गौ किसकी है ?' द्यौने उत्तर दिया—'सुन्दरी ! यह उत्तम गौ वसिष्ठजीकी है। स्त्री अथवा पुरुष—कोई भी हो, यदि उसे इस गायका दूध पीनेका अवसर मिल जाय तो वह निश्चय ही दस हजार वर्षतक जी सकता है और उसकी जवानी सदा स्थिर रह सकती है।' यह बात सुनकर द्यौकी सुन्दरी स्त्रीने कहा—'मेरी एक सखी मर्त्यलोकमें रहती है। वह राजर्षि उशीनरकी पुत्री है। वह अनुपम सुन्दरी है। महाराज ! आप उसी मेरी सखीके लिये इस पुण्यमयी एवं इच्छानुसार दूध देनेवाली नन्दिनी गौको बछड़ेसहित अपने उत्तम आश्रमपर ले चलिये और जबतक मेरी वह सखी इस गौका दूध न पी ले, तबतक वहीं रखिये। ऐसा होनेपर वह सखी मानव-समाजमें प्रथम श्रेणीकी होकर रहेगी। उसे बुढ़ापा और रोगोंका सामना नहीं करना पड़ेगा।' यद्यपि द्यौके मनमें पाप-भावना नहीं थी, फिर भी स्त्रीकी बात सुनकर उसने मनोनिग्रही मुनिवर वसिष्ठजीका अपमान करके उस नन्दिनी गौको चुरा लिया। उस कार्यमें पृथु आदि सभी वसु सहायक थे। नन्दिनीका अपहरण हो जानेके पश्चात् महान् तपस्वी वसिष्ठजी फल-फूल लेकर अपने आश्रमपर आये। आते ही उनकी गौकी ओर

दृष्टि गयी। उन्हें अपने आश्रमपर गाय एवं बछड़ा दोनों ही नहीं दिखायी पड़े। वे तेजस्वी मुनि गुफाओं और वनोंमें भी उस गौको खोजने लगे। जब उन्हें कहीं भी गौ न मिली, तब उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो उन्हें ज्ञात हो गया कि वसुगण मेरा अपमान करके गौको चुरा ले गये हैं। तब वे बोले कि 'इस अपराधसे उन सभी वसुओंको मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है'—यों स्वयं वसिष्ठजीने वसुओंको शाप दे दिया। यह सुनकर वसुओंका मन खिन्न हो गया। हमें शाप हो गया है—यह जानकर वे ऋषिके पास पहुँचे और मुनिको प्रसन्न करते हुए उनकी शरण ग्रहण की। तब सामने खड़े हुए उन दयनीय वसुओंसे धर्मात्मा वसिष्ठजीने कहा—'तुम सब तो एक वर्षके बाद शापसे छूट जाओगे। किंतु जिसने मेरी उस प्यारी नन्दिनीका अपहरण किया है, उस द्यौ नामक वसुको बहुत दिनोंतक मानव-योनिमें रहना पड़ेगा।' शापग्रस्त हो जानेके पश्चात् वसुओंने देखा, नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी रास्तेमें जा रही थीं। शापके कारण गङ्गाजीका मन भी अत्यन्त उदास था। वसुओंने नम्रतापूर्वक उनसे कहा—'देवी! हम सभी अमृतभोजी देवता मर्त्य-लोकमें कैसे उत्पन्न होंगे? हमें मनुष्योंके उदरमें जन्म लेना पड़े, यह तो बड़ी चिन्ताकी बात है। अतएव सरिताओंमें सुप्रसिद्ध गङ्गाजी! आप ही मनुष्य होकर हमारी जननी बननेकी कृपा करें। कल्याणी! शंतनु नामसे प्रसिद्ध जो राजर्षि हैं, उन्हें आप पतिदेव बना लें। फिर हमें उत्पन्न होते ही आप जलमें फेंक दीजियेगा।' गङ्गाजीने स्वीकृति दे दी। फिर वे सभी वसुगण अपने-अपने लोकको चले गये। देवी गङ्गा भी वहाँसे चल पड़ीं। उनके मनमें बार-बार विचार उठ रहा था।

उसी समय राजा महाभिष प्रतीपके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए। उनका नाम शंतनु रखा गया। उन्हें राजर्षिकी उपाधि मिली। वे बड़े धर्मात्मा और सत्य-प्रतिज्ञ हुए। जब राजा प्रतीपने अमित तेजस्वी सूर्यका स्तवन किया, तब उन्हें फलस्वरूप एक कन्या मिली। वरकी अभिलाषा करनेवाली वह सुन्दरी कन्या जलसे निकलकर प्रतीपकी पवित्र दाहिनी जङ्घापर बैठ गयी। वह जाँघ ऐसी थी मानो साखूका वृक्ष हो। तब राजा प्रतीपने गोदमें बैठी हुए उस कन्यासे कहा—'कल्याणी! तुम बिना पूछे ही मेरी दाहिनी पवित्र जङ्घापर आ बैठी, तुम्हारी क्या इच्छा है?' उस कन्याने प्रतीपसे कहा—'राजेन्द्र! आप कुरुवंशके एक महापुरुष हैं। मैं आपको पति बनाना चाहती हूँ। अतएव मैं आपके अङ्कमें बैठ गयी। आप मेरी सेवा स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। तब उस नवयुवती सुन्दरी कन्यासे प्रतीपने कहा—'पतिकी अभिलाषा करनेवाली परायी स्त्रीसे कामके विवश होकर मैं सङ्ग नहीं कर सकता। भामिनी! यह जान लो, अपनी कन्याओं और पुत्रवधुओंके लिये यह स्थान निश्चित है। अतः कल्याणी! तुम मेरी पुत्रवधू बन जाओ। तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे मुझे अभिलषित पुत्र होगा, यह बिलकुल निश्चित है।' तब 'बहुत ठीक' कहकर वह दिव्यदर्शिनी कन्या वहाँसे चली गयी और राजा प्रतीप भी उस स्त्रीके विषयमें ही विचार करते हुए पुनः घर लौट आये। कुछ दिनों बाद राजा प्रतीपको पुत्र हुआ। समय पाकर राजकुमारकी जवानी निखर आयी। वनमें जानेकी इच्छा होनेपर राजाने पुत्रसे पूर्वसमाचार कह सुनाये। सब वृत्तान्त बतानेके पश्चात् वे

राजकुमारसे कहने लगे—'पुत्र ! मनको मुग्ध करनेवाली वह सुन्दरी यदि वनमें तुम्हारे पास आ जाय और उसके मनमें तुम्हें पति बनानेका विचार हो तो उससे विवाह अवश्य कर लेना चाहिये। राजन् ! मेरी आज्ञा मानकर, 'तुम कौन हो ?' यह उससे मत पूछना। उसे अपनी धर्मपत्नी बना लेनेपर ही तुम्हारा जीवन सुखमय होगा।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा प्रतीपने पुत्रको आज्ञा देकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी राज्य-सम्पत्ति उसे सौंप दी और वे वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने तप आरम्भ कर दिया। भगवती जगदम्बिकाकी उन्होंने उपासना की। तदनन्तर समयपर शरीरका परित्याग करके वे स्वर्गके अधिकारी बन गये। अब महातेजस्वी शंतनुके हाथमें राज्यका शासनसूत्र आ गया। सारे भूमण्डलके वे एकच्छत्र राजा हुए। उन नरेशके राज्यकालमें धर्मपूर्वक सब व्यवहार होता था। वे प्रजाकी भलीभाँति रक्षा करते थे।

सूतजी कहते हैं—प्रतीपके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् सत्यपराक्रमी राजा शंतनु एक बार शिकार खेलने गये। वे गङ्गाके तटपर घने जंगलमें घूम रहे थे। वहीं अद्भुत आभूषणोंसे अलङ्कृत एक सुन्दरी कन्या उन्हें दिखायी पड़ी। उसे देखकर राजा शंतनुको बड़ा हर्ष हुआ। सोचा, पिताजीने जिस स्त्रीकी बात कही थी, वह यही है; यह स्त्री क्या है मानो कोई दूसरी लक्ष्मी ही साकाररूपसे विराज रही है। उसके मुखार-विन्दकी ओर राजाके अपलक नेत्र लगे थे। फिर भी देखनेकी आकाङ्क्षा शान्त न हुई। निष्पाप शौनकजी ! उस समय शंतनु मानो अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उस सुन्दरी कन्याके मनमें भी निश्चित हो गया कि ये ही राजा महाभिष हैं। अतः वह प्रेमसे पुलकित हो गयी। फिर वह कुछ मुस्कराकर राजाके सामने उपस्थित हुई। सुन्दर नेत्रवाली उस कन्याको देखकर राजा शंतनुका मन प्रचुर आनन्दमें मग्न हो गया। अमृतमयी वाणीसे सान्त्वना देते हुए उससे मधुर वचन कहने लगे— 'सुजघने ! तुम देवी, मानुषी, गन्धर्वी, यक्षिणी, नाग-कन्या अथवा अप्सरा—इनमेंसे कौन हो ? तुम्हारा मुख बड़ा ही मनोहर दीखता है। अस्तु, सुन्दरी ! तुम जो कोई भी हो, इस समय मेरी धर्मपत्नीका स्थान स्वीकार कर लेना तुम्हें उचित है।'

सूतजी कहते हैं—राजा शंतनुको निश्चित ज्ञान न था कि ये ही गङ्गा हैं, किंतु गङ्गा जानती थीं कि वे राजा महाभिष ही हैं, जो इस समय शंतनुके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। अतः पूर्वप्रेमके सम्बन्धको याद करके गङ्गाने राजाकी बात मान ली। साथ ही हँसकर उनसे कहने लगीं।

गङ्गाने कहा—'महाराज ! आप राजा प्रतीपके सुपुत्र हैं। मैं आपको खूब जानती हूँ। कौन सुन्दरी है, जिसे भाग्यवश ऐसे सुयोग्य पतिदेव मिल जायँ और वह उन्हें वरण करना न चाहे। परंतु नृपवर ! आप वचनबद्ध हो जायँ, तब मैं आपको पति बनाऊँगी। राजन् ! आप राजाधिराज हैं। मेरी प्रतिज्ञा सुन लीजिये। फिर मैं आपको स्वीकार कर लेती हूँ। राजन् ! मैं जो कुछ भी कार्य करूँ—वह अच्छा हो अथवा बुरा, उसे रोकनेके आप अनधिकारी रहेंगे। मुझसे अप्रिय वचन कभी नहीं कहेंगे। राजेन्द्र ! आप श्रेष्ठ हैं; फिर भी जिस समय आप मेरी बात ठुकरा देंगे, उसी समय मैं आपको छोड़कर चाहे जहाँ चली जाऊँगी।'

वसुगण जन्म लेनेकी बात गङ्गाजीसे प्रार्थनापूर्वक स्वीकार करा चुके थे तथा महाभिषका पूर्वप्रेम भी उन्हें स्मरण था। इन

बातोंपर विचार करके ही गङ्गाने अपना यह कार्यक्रम बना लिया। 'मुझे सब स्वीकार है।' राजाके यों कहनेपर गङ्गाजी राजा शंतनुकी पत्नी बन गयीं। इस प्रकार मनुष्यके रूपमें प्रकट होनेवाली गङ्गासे राजा शंतनुका विवाह हुआ। फिर तो उत्तम वरकी वधू बनकर सौभाग्यवती गङ्गा राजभवनमें विराजने लगीं। राजा उनके साथ रहकर मनोहर उपवनमें आनन्द करने लगे। गङ्गा भी राजाको प्रसन्न करनेकी चेष्टामें लगी रहतीं। यों अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर राजा शंतनुके संयोगसे दिव्यलोचना गङ्गाको गर्भ रह गया। उनसे पुत्रके रूपमें वसुकी उत्पत्ति हुई। उत्पन्न होते ही उस पुत्रको उन्होंने गङ्गाके जलमें फेंक दिया। दूसरेकी भी यही हालत हुई। तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा और सातवाँ—सभी बालक यों गङ्गाजीके द्वारा कालके ग्रास बना दिये गये। तब राजा शंतनुको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'अब मैं क्या करूँ? किस प्रकार मेरा वंश जगत्में स्थिर रह सकेगा। यह स्त्री तो पापका साकार विग्रह है। तभी तो इसने सात पुत्र मार डाले। मैं इसे मना करता हूँ तो निश्चय ही यह मुझे छोड़कर चली जायगी। अब इसके उदरमें यह आठवाँ गर्भ है। मेरे मनको यह गर्भ बहुत अनुकूल जान पड़ता है। इस समय भी यदि मैं नहीं रोकूँगा तो यह बिलकुल निश्चित है कि यह पापिनी स्त्री उसे भी जलमें फेंक देगी। भविष्यमें मुझे पुत्र होगा या नहीं, इस संशयको दूर करना साधारण बात नहीं है। माना, हो भी तो यह निश्चित नहीं होता कि यह स्त्री उसकी भी रक्षा करेगी या नहीं। इस प्रकारकी संशयग्रस्त अवस्था सामने आनेपर अब मुझे क्या करना चाहिये? वंशकी रक्षाके लिये यत्न करना मेरे लिये परम कर्तव्य है।

तदनन्तर गङ्गाके उदरसे आठवाँ द्यौ नामक वसु, जिसने स्त्रीके वशीभूत होकर मुनिवर वसिष्ठजीकी नन्दिनी गौको चुराया था, पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ। उसे देखकर राजा शंतनु गङ्गाके पैरोंपर पड़ गये और बोले—'तन्वङ्गी! तुम्हारा मुखमण्डल पवित्र मुसकानसे खिला रहता है। मैं तुम्हारा सेवक हूँ। इस समय तुमसे मेरी यह प्रार्थना है, तुम इस बच्चेका जीवनदान देनेकी कृपा करो। मैं एक पुत्रका पालन-पोषण करूँगा। तुमने मेरे सात सुन्दर पुत्र मार डाले। सुश्रोणी! इस आठवें पुत्रकी रक्षा करो। इसीलिये मेरा मस्तक तुम्हारे पैरोंपर पड़ा है। अनुपम शोभा पानेवाली प्रिये! तुम दूसरी कोई भी वस्तु माँग लो—चाहे वह कितनी ही दुर्लभ क्यों न हो, मैं उसे अभी देनेको तैयार हूँ। परंतु मेरी वंशपरम्परा सुरक्षित रखना तुम्हारा परम कर्तव्य है। वेदके पारगामी विद्वान् कहते हैं कि संतानहीन पुरुषकी गति नहीं होती और वह स्वर्गमें भी स्थान नहीं पाता। अतः इस आठवें पुत्रको सुरक्षित रखनेके लिये मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ।'

इस प्रकार राजा शंतनुके कहनेपर भी गङ्गा

उस बालकको लेकर जानेके लिये उद्यत हो गयीं। तब राजाने अत्यन्त दुःखी होकर गङ्गासे कहा—'अरी पापिनी ! तू यह क्या कर रही है ? क्या तुझे नरकका भी भय नहीं लगता ? तेरी जैसी इच्छा हो—जा अथवा रह। किंतु मेरे बच्चेको तो यहीं रहने दे। तू वंशका उच्छेद करनेवाली है। तेरी-जैसी स्त्रीसे मुझे क्या करना है।'

राजा शंतनुके यों कहनेपर गङ्गाने राजासे कहा—''राजन् ! इस बालकको जीवित रखनेकी तो मेरी भी इच्छा है; परंतु आपने जो प्रण किया था, वह टूट गया। अतः मैं यहाँ रह नहीं सकूँगी। आप निश्चय जान लें, मैं गङ्गा हूँ। देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये यहाँ आयी थी। बहुत पहलेकी बात है—महाभाग वसिष्ठने वसुओंको शाप दे दिया कि 'तुम सभी मनुष्य-योनिमें चले जाओ।' इससे बेचारे वसु चिन्तासे घबरा गये। मैं वहीं उपस्थित थी। मुझे देखकर उन्होंने प्रार्थना की कि 'अनघे ! आप हमारी जननी बननेकी कृपा करें।' महाराज ! तब मैंने वसुओंको वर दे दिया। एतदर्थ तुम्हारी पत्नी बन गयी। भलीभाँति समझ लें, देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही मेरा यहाँ आना हुआ था। वे ही सात वसु मेरे पुत्र हुए थे। अब ऋषिके शापसे उनका उद्धार हो गया। यह एक वसु कुछ समयतक आपका पुत्र बनकर रहेगा। राजन् ! मैं इसे दिये देती हूँ, आप अपने इस पुत्रको स्वीकार कर लें। इसको दिव्य पुरुष वसु मानकर पुत्रजनित सुख भोगिये। महाभाग ! 'गाङ्गेय' नामसे विख्यात यह बालक सबसे अधिक बलवान् होगा। आज तो मैं इसे वहीं ले जाती हूँ, जहाँ मैंने आपको पति बनाया था। पालन-पोषण करनेपर जब यह बड़ा हो जायगा, तब लौटा दूँगी; क्योंकि राजन् ! माताके न रहनेपर बच्चेका जीना और सुखी रहना महान् असम्भव है।''

इस प्रकार कहकर तथा बच्चेको साथ लेकर गङ्गा अन्तर्धान हो गयीं। राजा शंतनु अपने भवनमें पड़े रहे। उनके दुःखका कोई पार न था। स्त्री और विचित्र बालकके वियोगसे उत्पन्न दुःख उन्हें बेतरह सताने लगा। वे राज्य करते रहे; परंतु उनके मनपर चिन्ताकी काली घटा निरन्तर घिरी रहती थी। यों कुछ समय व्यतीत हो गया। इसके बाद राजा शंतनु एक बार शिकार खेलने गये। वे धीरे-धीरे गङ्गाके तटपर पहुँच गये। उस समय महाराज शंतनुने देखा, नदीमें बहुत थोड़ा जल था। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ उन्हें एक कुमार दिखायी पड़ा, जो गङ्गाके तटपर खेलनेमें लग रहा था। वह बालक विशाल धनुषपर बाण चढ़ाकर उन्हें छोड़ता जाता था। यही उसकी क्रीड़ा थी। उस बालकको देखकर राजा शंतनु बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्हें किसी भी वास्तविक रहस्यकी जानकारी नहीं हो सकी। यह पुत्र मेरा है अथवा नहीं—यह बात उनके ध्यानमें आयी ही नहीं। उस बालकका कार्य महान् अलौकिक था। बाण चलानेमें उसके हाथकी बड़ी सफाई थी। उसे देखकर राजा शंतनु आश्चर्यान्वित हो गये। तदनन्तर उन्होंने उससे पूछा—'अरे शुद्धाचारी बालक ! तुम किसके पुत्र हो ?' वह वीर बालक बाणोंको चलानेमें मस्त था, इससे उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देरके बाद वह अन्तर्धान हो गया। अब राजा शंतनु चिन्तासे घबरा उठे। सोचा, 'यह बालक कहीं मेरा पुत्र ही तो नहीं था; किंतु अब क्या करूँ और कहाँ जाऊँ।' पश्चात् सावधान होकर वे वहीं बैठ गये और

उन्होंने गङ्गाकी स्तुति आरम्भ कर दी। तब गङ्गाजी उसी रूपसे वहाँ प्रकट हुईं, जैसा सुन्दर रूप वे पहले दिखा चुकी थीं। उनका सर्वाङ्ग सुन्दरतासे परिपूर्ण था। उन्हें देखकर राजा शंतनुने स्वयं पूछा—'गङ्गे ! यह जो बालक अभी छिप गया है, वह कौन था ? तुम उसे दिखानेकी कृपा करो।'

गङ्गा बोलीं—राजेन्द्र ! यह तुम्हारा पुत्र है। मैंने इसकी रक्षा अबतक की। यह आठवाँ वसु है। मैं अब इसे तुम्हारे हाथ सौंप रही हूँ। यह महान् तपस्वी बालक 'गाङ्गेय' नामसे विख्यात होगा। अपने व्रतमें अटल रहनेवाला यह तुम्हारा पुत्र इस कुलकी कीर्तिका विस्तार करेगा। वसिष्ठजीके पवित्र आश्रमपर रखकर मैंने तुम्हारे इस बालकको सम्पूर्ण वेदों एवं धनुर्वेदका निरन्तर अध्ययन कराया है। इसे सम्पूर्ण विद्याओंकी पूर्ण जानकारी हो गयी है। समस्त अर्थोंके विवेचनमें यह बड़ा निपुण है। यह परम पवित्र बालक है। वसिष्ठजी जो कुछ जानते हैं, वह सब तुम्हारा यह पुत्र जान गया है। राजन् ! आप प्रसिद्ध नरेश हैं, इस बालकको लीजिये और आनन्दका अनुभव कीजिये।'

इस प्रकार कहकर गङ्गाने वह बालक राजा शंतनुको सौंप दिया और वे स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। राजाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। वे असीम सुखका अनुभव करने लगे। उन्होंने पुत्रको गोदमें बैठाकर उसका मस्तक सूँघा, फिर रथपर बैठाया और वे अपने नगरको प्रस्थित हो गये। हस्तिनापुर पहुँचनेपर महाराज शंतनुने बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाया। ज्योतिषी पण्डितोंको बुलाकर उनसे शुभ दिन पूछा। सम्पूर्ण प्रजा और प्रवीण मन्त्री आमन्त्रित हुए। सबकी उपस्थितिमें राजा शंतनुने गङ्गानन्दन भीष्मजीको युवराज-पदपर अभिषिक्त किया। सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको राज्यका उत्तराधिकारी बना देनेपर उन धर्मात्मा नरेशको अपार सुख मिला। अब गङ्गा उनके चित्तसे अलग हो गयीं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! भीष्मजीके जन्म और गङ्गाकी उत्पत्तिमें जो कुछ कारण थे, वे मैंने तुम्हें सभी बता दिये। वसुओंके शापसे ही यह घटना घटी। गङ्गावतरणके तथा वसुओंकी उत्पत्तिके इस पावन प्रसङ्गको जो मनुष्य सुनता है, वह अखिल पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है। मुनिवरो ! यह उपाख्यान परम पवित्र, मङ्गलमय एवं वैदिक सिद्धान्तोंसे सम्पन्न है। व्यासजीके मुखारविन्दसे मैंने जैसा सुना था, ठीक वैसा ही तुम्हें कह सुनाया।

(अध्याय ३-४)

☆

## भीष्मप्रतिज्ञा तथा सत्यवतीके साथ शंतनुके विवाह और कौरव-पाण्डवोंके जन्मकी कथा

ऋषिगण बोले—लोमहर्षणकुमार सूतजी ! शापके कारण वसुओंको जन्म लेना पड़ा तथा भीष्मजीकी उत्पत्तिमें भी वही कारण था, यह बात आपने स्पष्ट कर दी। धर्मज्ञ ! अब विस्तार-पूर्वक यह बतानेकी कृपा कीजिये कि व्यास-माता सत्यवतीको, जो पतिव्रता थीं तथा जिनका सर्वाङ्ग सुगन्धसे परिपूर्ण था, राजा शंतनुने कैसे प्राप्त किया। शंतनु भी एक महान् धर्मात्मा नरेश थे और सत्यवतीका पालन निषादके घर हुआ था। फिर किस कारणसे राजाने उन्हें स्वीकार

किया ? सुव्रत ! आप इस संशयको दूर करनेकी कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—राजर्षि शंतनु सदा शिकार खेलनेके लिये उत्सुक रहते थे। वे चार वर्षतक वनमें घूमते रहे। कुमार भीष्मजीको वे साथ रखते थे। वे उसी प्रकार आनन्दका अनुभव कर रहे थे, मानो भगवान् शंकर स्वामी कार्तिकेयके साथ सुखी हों। एक समयकी बात है—मृगया करते हुए वे किसी ऐसे जंगलमें पहुँच गये, जहाँ नदियोंकी स्वामिनी यमुना लहरा रही थीं। वहाँ उन्हें अज्ञात उत्तम गन्ध आने लगी। यह गन्ध कहाँसे निकल रही है—इस बातका पता लगानेके लिये वे वनमें घूमने लगे। मन-ही-मन सोचा, 'पारिजात, कस्तूरी, चम्पा, मालती अथवा केतकी—इनमें किसीकी भी ऐसी मनोहर गन्ध नहीं होती। मेरी नासिकाको आकर्षित करनेवाली इस सुन्दर गन्धको वायुने कहाँसे लाकर उपस्थित कर दिया।' यों सोचते हुए राजा शंतनुने वनके चारों तरफ चक्कर काटा। गन्धके लोभसे उनका मन मुग्ध हो गया था। अतः जिधरसे वह हवा आ रही थी, वे उधर ही बढ़ने लगे। आगे जानेपर यमुनाके तटपर उन्हें एक सुन्दर स्त्री दिखायी पड़ी। उसने शृङ्गार कर रखा था। वह धूमिल वस्त्र पहने बैठी थी। ऐसी सर्वाङ्गसुन्दरीको देखकर राजा शंतनु आश्चर्यमें पड़ गये। इसीके शरीरसे सुगन्ध निकल रही है—इस बातका उन्हें निश्चय हो गया। उस स्त्रीका रूप अलौकिक था। वह अप्रतिम सुन्दर थी। उसकी अनुपम गन्धका सारा जगत् सम्मान करता था। युवा अवस्था थी। उसे देखते ही राजा शंतनुका चित्त आश्चर्यके उमड़े सागरमें गोता खाने लगा। सोचा, 'यह कौन है और इस समय कहाँसे आ गयी है ? यह कोई देवाङ्गना है, मानुषी है या गन्धर्व अथवा नागकी कन्या है ? इस श्रेष्ठ गन्धवाली सुन्दरी स्त्रीका निश्चित परिचय मैं कैसे प्राप्त करूँ ?' महाराज शंतनु यों मनमें विचारते रहे, किंतु किसी निश्चयपर न पहुँचे। फिर तटपर बैठी हुई निषादपुत्रीसे वे पूछने लगे—'प्रिये ! तुम कौन हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं ? तुम कहाँसे यहाँ आयी हो ? क्या तुम्हारे साथ दूसरा कोई नहीं है ? यह तो बताओ कि तुम विवाहिता हो अथवा अविवाहिता ? तुम्हारी क्या अभिलाषा है ? विस्तारपूर्वक मुझसे सभी बातें बतानेकी कृपा करो।'

इस प्रकार राजा शंतनुके पूछनेपर कमलके समान नेत्रवाली उस युवती स्त्रीने हँसकर महाराजसे कहा—'राजन् ! आप जान लें—मैं दाशराजकी पुत्री हूँ। पिताके आज्ञानुसार यहाँ बैठी हूँ। महाराज ! मैं इस जलमें नाव चलाती हूँ। मेरे कुलका यही धार्मिक कार्य है। मेरे पिताजी अभी घर गये हैं। राजन् ! आपके सामने मैं बिलकुल सच्ची बात बता रही हूँ।' यों कहकर वह सुन्दर कन्या चुप हो गयी। राजा शंतनुने उस कन्यासे कहा—'मैं कुरुके वंशका एक प्रसिद्ध राजा हूँ। मृगनयनी ! मेरे घर दूसरी कोई स्त्री नहीं है। तुम मेरी धर्मपत्नीके स्थानको सुशोभित करो। मैं सदा तुम्हारे अनुकूल रहूँगा। मेरी पत्नी मुझे छोड़कर चली गयी, तबसे मैंने दूसरी किसीको पत्नी नहीं बनाया। बिना स्त्रीके ही जीवन व्यतीत करता रहा हूँ।'

राजा शंतनुकी वाणी निश्चय ही अमृतके समान अत्यन्त मधुर थी। सुन्दर गन्धवाली एवं सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न उस दाशकन्या सत्यवतीने उसे सुनकर धैर्य रखा। वह महाराज शंतनुसे कहने लगी—'राजन् ! आपने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, मैं उसको उसी रूपमें

सत्य मानती हूँ। आपकी जैसी इच्छा है, वैसा ही होना चाहिये; किंतु मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे पिताजी आपकी कामना पूर्ण करेंगे। अतः आप उन्हींसे मिलकर मेरे लिये प्रार्थना कीजिये। मैं कोई वेश्या नहीं; दाशराजकी पुत्री हूँ। मैं निरन्तर पिताकी आज्ञाके अनुसार चलती हूँ। मेरे पिताजी महान् पुरुष हैं। यदि वे मुझे आपको सौंप दें, तो आप मेरा पाणिग्रहण कर लीजिये। तबसे मैं आपके अधीन रहूँगी; परंतु कुलमें जो व्यवहार हैं, उनकी रक्षा करनी ही पड़ती है।'

सूतजी कहते हैं—महाराज ! शंतनु सत्यवतीकी बात सुनकर उसकी याचना करनेके लिये दाशराजके घर पहुँच गये। उन्हें आते देखकर दाशराजको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह राजा शंतनुको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगा।

दाशराजने कहा—राजन् ! मैं आपका सेवक हूँ। आप यहाँ पधारे, इससे मैं कृतार्थ हो गया। महाराज ! आज्ञा दीजिये, किसलिये मेरे घर आपका पदार्पण हुआ है ?

राजा शंतनु बोले—अनघ ! यदि सम्भव हो तो तुम अपनी कन्या मुझे दे दो, मैं इसे धर्मपत्नी बनाऊँगा। तुमसे बिलकुल सच्ची बात कह रहा हूँ।

दाशराजने कहा—राजन् ! आप यदि मेरे इस कन्यारत्नके लिये प्रार्थना करते हैं तो मैं अवश्य दे दूँगा; क्योंकि देनेयोग्य वस्तु कभी भी अदेय नहीं हो सकती, किंतु महाराज ! एक यह शर्त है कि 'इस कन्याका पुत्र ही आपके बाद राज्यका अधिकारी होगा। किसी भी स्थितिमें आपके दूसरे पुत्रको राजगद्दी नहीं मिलेगी।'

सूतजी कहते हैं—दाशराजकी बात सुनकर राजा शंतनु अत्यन्त चिन्तित हो गये; क्योंकि वे भीष्मजीको राजा बना चुके थे। अतः कुछ भी उत्तर न देकर वे घर लौट गये। मनपर चिन्ताकी घटा घिरी रही। घर पहुँचनेपर वे न कुछ खाते थे और न उन्हें नींद ही आती थी। महाराज शंतनुको चिन्तासे उद्विग्न देखकर पुत्र देवव्रत (भीष्मजी) उनके पास गये और उनसे अशान्तिका कारण पूछा—'नरेन्द्र ! आप राजाओंके सिरमौर हैं। कौन शत्रु आपका सामना करना चाहता है ? मैं अभी उसे अधीन कर लेता हूँ। सत्य कहिये, आप क्यों चिन्तित हैं ? राजन् ! जो पुत्र पिताके दुःखको नहीं जानता है और न उसे दूर करनेका यत्न ही करता है, उसके जन्म लेनेसे क्या लाभ है ? रघुकुलको आनन्दित करनेवाले भगवान् राम पुत्ररूपसे दशरथके घर पधारे थे। पिताकी आज्ञासे राज्यका परित्याग करके वे वनमें चले गये। सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूट पर्वतपर वास किया। राजन् ! राजा हरिश्चन्द्रका लड़का, जो रोहित नामसे विख्यात था, पिताके इच्छानुसार बिक गया। ब्राह्मणके घर उसने सेवा-वृत्ति स्वीकार कर ली। महाराज ! यह शरीर आपका है। मैं कौन-सा कार्य करूँ ? क्या मैं अकुशल हूँ ? निश्चय बतलाइये। मेरे जीवित रहते हुए आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जो काम असाध्य है, उसे भी करनेको मैं तैयार हूँ। राजन् ! व्यक्त कीजिये। आपको कौन-सी चिन्ता सता रही है ? मैं अभी धनुष लेकर उसे दमन कर देता हूँ। यदि उस कार्यमें मेरी मृत्यु हो गयी तो मेरा जन्म सार्थक हो जायगा अथवा यदि मैं सफल-प्रयास हुआ तो आपकी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी। दोनों तरहसे ही मुझे लाभ है। उस पुत्रको धिक्कार है, जो समर्थ होते हुए भी पिताके मनोरथको पूर्ण करनेमें उद्यत नहीं होता, जो पिताकी चिन्ताको दूर नहीं कर सकता, उस पुत्रके जन्मसे क्या

प्रयोजन है *?'

सूतजी कहते हैं—राजा शंतनु मन-ही-मन लज्जित थे। अपने पुत्र भीष्मकी बात सुनकर वे तुरंत बोल उठे।

राजाने कहा—पुत्र ! मुझे गहरी चिन्ता तो यह है कि तू मेरा एक ही बालक है। यद्यपि तू शूरवीर, पराक्रमी, प्रतिष्ठित एवं संग्राममें पीछे पैर रखनेवाला नहीं है; फिर भी पुत्र ! एक संतान रहनेके कारण मुझ-जैसे पिताका यह जीवन विफल है, क्योंकि यदि कभी युद्ध छिड़ा और तू उसमें काम आ गया तो फिर मैं आश्रयहीन होकर क्या कर सकूँगा ? पुत्र ! मुझे यही विशेष चिन्ता है। मैं इसीसे दुःखी हूँ।

सूतजी कहते हैं—राजा शंतनुकी बात सुनकर भीष्मजीने वृद्ध मन्त्रियोंसे पूछा और कहा—'इस समय महाराज अत्यन्त लज्जित हैं, मुझसे स्पष्ट कहते नहीं। आपलोग उनसे पूछकर निश्चय करके सच्ची बात मुझे बतानेकी कृपा करें। फिर मैं निश्चिन्त होकर उन सभी कार्योंको सिद्ध करनेमें लग जाऊँगा।' भीष्मजीकी बात सुनकर मन्त्रीलोग राजा शंतनुके पास गये। सम्यक् प्रकारसे सारी बातें जानकर उन्होंने भीष्मजीको सब बतला दिया। भीष्मजी पिताका अभिप्राय जानकर उसी क्षण उन मन्त्रियोंको साथ लेकर दाशराजके घर गये और अत्यन्त नम्र होकर प्रेमपूर्वक कहने लगे।

भीष्मजी बोले—परंतप ! तुम अपनी सौभाग्यवती पुत्री मेरे पिताजीके लिये दे दो। एतदर्थ मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ। तुम्हारी यह कन्या मेरी माता बने। मैं इसका सेवक हूँ।

दाशराजने कहा—महाभाग ! तुम राजकुमार हो। इसे स्वीकार करो और अपनी पत्नी बनाओ; क्योंकि यह निश्चय है, तुम्हारे रहते हुए इसका पुत्र राजा नहीं बन सकेगा।

भीष्मजी बोले—आप दाशराजकी यह कुमारी मेरी माता है, मैं राज्य करना नहीं चाहता। बिलकुल निश्चित कहता हूँ, सर्वथा इसीका पुत्र राज्यका अधिकारी बनेगा।

दाशराज बोला—मैं जान गया, तुम सत्यभाषी हो। किंतु यदि तुम्हारा पुत्र बलवान् हुआ तो वह हठपूर्वक इससे राज्य छीन लेगा। इसमें कोई संदेह नहीं दीखता।

भीष्मजीने कहा—तात ! तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विवाह ही नहीं करूँगा। यह बात सर्वथा सत्य होकर रहेगी। मेरी प्रतिज्ञा किसी भी प्रकार टल नहीं सकती।

सूतजी कहते हैं—भीष्मजीकी ऐसी अटल प्रतिज्ञा सुनकर दाशराजने अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या सत्यवतीको महाराज शंतनुके लिये समर्पण कर दिया। इस प्रकार राजा शंतनुने सत्यवतीको अपनी पत्नी बनाया। इस कन्यासे पहले व्यासजीका जन्म हो चुका है, यह बात उन्हें मालूम नहीं हो सकी।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार महाराज शंतनुने सत्यवतीसे विवाह किया। सत्यवतीके दो पुत्र हुए और समयानुसार मर भी गये। फिर व्यासजीके द्वारा विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्रका जन्म हुआ, जो नेत्रहीन था। मुनिको देखकर उस स्त्रीने आँखें बंद कर ली थीं। फलस्वरूप वह अन्धे पुत्रकी जननी हुई। दूसरी स्त्रीने व्यासजीको

---

* धिक् तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं क्षमोऽपि सन्न प्रतिपादयेद् यः।
जातेन किं तेन सुतेन कामं पितुर्न चिन्तां हि समुद्धरेद् यः॥ (२।५।४४)

देखकर सर्वाङ्गमें सफेद चन्दन लगा लिया था। अतः उसका पुत्र पाण्डुरोगसे ग्रस्त हुआ। दासीसे विदुरका जन्म हुआ। विदुरजी सत्यवादी, धर्मके अवतार एवं पुण्यात्मा पुरुष थे। मन्त्रियोंने छोटे पुत्र पाण्डुको राजा बनाया। अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्रको राज्यका अधिकार नहीं मिला। भीष्मजीकी सम्मति लेकर महापराक्रमी पाण्डु राज्यका कार्य सँभालने लगे। बुद्धिमान् विदुरजीकी मन्त्रिपदपर नियुक्ति हुई। धृतराष्ट्रकी दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था गान्धारी, जो सुबलराजकी पुत्री थी। दूसरीका नाम वैश्या (वैश्यकन्या) था। वह घरका कार्य सँभालती थी। वेदवादी विद्वान् पाण्डुकी भी दो स्त्रियाँ बतलाते हैं। एक थी शूरसेनकुमारी कुन्ती और दूसरी माद्री, जिसका जन्म मद्रराजके घर हुआ था। गान्धारीने अत्यन्त सुन्दर सौ पुत्र उत्पन्न किया। वैश्यासे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो परम मनोहर और युद्धका महान् अभिलाषी था। कुन्ती जब पिताके घर कन्यावस्थामें थी, तभी उसने कर्णको जन्म दिया। सूर्यके कृपा-प्रसादसे उस मनोहर पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उसका नाम 'कर्ण' पड़ा। इसके बाद कुन्ती पाण्डुकी धर्म-पत्नी बनीं।

ऋषिगण बोले—मुनिवर सूतजी ! आप यह कैसी विचित्र बात कह रहे हैं कि कुन्तीसे पहले पुत्र उत्पन्न हो गया और इसके पश्चात् उसका पाण्डुके साथ विवाह हुआ। कैसे सूर्यका संयोग हुआ, जिससे कुन्तीको कर्णकी जननी होना पड़ा ? फिर, कुन्ती कन्या कैसे रही, जो पाण्डुने उससे विवाह किया ? ये सभी बातें बतानेकी कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो ! जिस समय शूरसेनकुमारी कुन्ती बहुत छोटी थी, तभी राजा कुन्तिभोज उस कल्याणी कन्याको माँग लाये थे। उसे पुत्री मानकर उन्होंने अपने घरपर ही पाला-पोसा। कुन्ती बड़ी सुन्दर थी। अग्निहोत्रका समय था। राजा कुन्तिभोजकी आज्ञासे वह कन्या सेवाका कार्य सँभाल रही थी। चौमासेका दिन था। प्रातःकालकी पुण्य वेला थी। मुनिवर दुर्वासाजी वहाँ पधारे। कुन्तीने मुनिका सम्यक् प्रकारसे स्वागत किया। उसकी सेवासे दुर्वासाजी बड़े संतुष्ट हुए। तदनन्तर मुनिने कुन्तीको एक ऐसा उत्तम मन्त्र बताया, जिसका प्रयोग करके आवाहन करनेसे देवता स्वयं आकर मनोरथ पूर्ण कर दें। दुर्वासाजीके चले जानेपर कुन्ती अपने महलमें बैठकर उस मन्त्रके प्रभावको निश्चय जाननेके लिये उपाय सोचने लगी। मनमें विचार किया कि मैं किस देवताको स्मरण करूँ। उस समय सूर्यनारायण आकाशमें विराजमान थे। उनपर कुन्तीकी दृष्टि पड़ी। मन्त्रका प्रयोग करके उन प्रखर किरणोंवाले सूर्यके आवाहनमें वह संलग्न हो गयी। आवाहन करते ही अपने मण्डलसे एक परम मनोहर पुरुषका रूप धारण करके भुवन-भास्कर अन्तःपुरमें कुन्तीके सामने आ पहुँचे। उन्हें देखकर कुन्तीके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसका सर्वाङ्ग काँप उठा। फिर तो सुन्दर नेत्रोंवाली वह कुन्ती हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी और कहने लगी—'भगवन् ! आपके दर्शनसे मुझे अपार हर्ष हुआ है। अब आप यहाँसे पधारनेकी कृपा करें।'

भगवान् सूर्यने कहा—कुन्ती ! तुमने मन्त्रका प्रयोग करके मुझे क्यों बुलाया ? बुलानेपर जब मैं तुम्हारे सामने आ गया, तब मेरा स्वागत क्यों नहीं कर रही हो ? तुम्हारे मन्त्रके प्रभावसे मैं विवश हूँ।

कुन्तीने कहा—धर्मके रहस्यको जाननेवाले भगवन् ! आपसे कोई बात छिपी नहीं है। मैं अभी कन्या हूँ। सुव्रत ! आपके चरणोंमें मेरा मस्तक झुका है।

भगवान् सूर्य बोले—कुन्ती ! तुम यदि मेरा स्वागत न करोगी तो जिसने तुम्हें मन्त्र दिया है, उसको मैं शाप दूँगा ही, साथ ही तुम भी कठिन शापसे बचकर नहीं रह सकोगी। सुमुखी ! यह निश्चय जान लो, तुम्हारा कन्या-धर्म पूर्ववत् रहेगा। साधारण मनुष्य इस रहस्यसे अनभिज्ञ रहेंगे और मुझ-जैसा ही तेजस्वी बालक तुमसे उत्पन्न होगा।

तदनन्तर कुन्तीको अभिलषित वर देकर भुवनभास्कर अपने लोकको पधार गये। कुन्ती गर्भवती हो गयी। वह सदा अपने गुप्तागारमें रहने लगी। यह रहस्य एक धायको मालूम हो गया। न माता जान सकी और न दूसरे लोग ही। भवनमें छिपे रूपसे पुत्रका जन्म हुआ। वह बालक अनुपम सुन्दर था। मनोहर दो कुण्डल और दिव्य कवच उसे जन्मकालमें ही सुशोभित कर रहे थे। वह बालक जान पड़ता था मानो दूसरा सूर्य हो अथवा स्वामी कार्तिकेय हो। धायने उस बच्चेको उठा लिया और कुन्तीके प्रति, जो महान् लज्जित थी, बोली—'सुन्दरी ! मैं तुम्हारी सेवामें उपस्थित हूँ, फिर तुम किस चिन्तामें डूब रही हो ?' तब उस बालकका त्याग करनेके लिये पिटारीमें रखती हुई कुन्ती उस पुत्रसे कहने लगी—'बेटा ! मुझे अपार दुःख हो रहा है। किंतु लाचार हूँ, करूँ क्या ? तुम मुझे प्राणोंके समान प्यारे हो। फिर भी, मेरे लिये तुम्हारा परित्याग परम आवश्यक हो गया। तुममें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। मेरा भाग्य बड़ा खोटा है, तभी तो मैं तुम्हें दूर कर रही हूँ। माता कात्यायनी सगुण और निर्गुण-स्वरूपिणी हैं। वे सबकी अधिष्ठात्री एवं अखिल विश्वकी जननी हैं। वे भगवती तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें अपना अमृतमय दुग्धपान करावें। तुम मेरे प्राणप्रिय हो। तुम्हारा मुख कमलके समान कमनीय है। फिर कब तुम्हारा मुख देखनेका मुझे अवसर सुलभ होगा ? तुम सूर्यके पुत्र हो। पुत्र ! मैंने पूर्वजन्ममें निश्चय ही त्रिलोकजननी भगवती कात्यायनीका आराधन नहीं किया है। उन कल्याणमयी देवीके चरणकमलका निरन्तर चिन्तन नहीं किया। इसीसे मैं उत्तम भाग्यसे वञ्चित रही। तुम्हारा त्याग करनेके पश्चात् मैं वनमें जाकर तपस्या करूँगी।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर कुन्तीने उस शिशुको पिटारीमें रखकर धायको दे दिया। कोई जान न जाय—इस बातसे वह डरती थी। पश्चात् स्नान किया। भयभीत रहती हुई पिताके घर कालक्षेप करने लगी। उधर धाय पिटारी लेकर जा रही थी। रास्तेमें अधिरथ नामक सूत मिला। अधिरथकी स्त्री राधा भी साथ थी। उसने उस बच्चेको माँग लिया। फिर अधिरथके घर उस बालकका पालन-पोषण होने लगा। वही वीर बालक आगे चलकर महाबली कर्ण नामसे विख्यात हुआ। इसके बाद वही कन्या कुन्ती स्वयंवरमें पाण्डुकी धर्मपत्नी बनी।

पाण्डुकी एक दूसरी स्त्री माद्री थी, उसके पिता मद्रराज थे। एक समयकी बात है, महान् पराक्रमी पाण्डु जंगलमें शिकार खेल रहे थे। उनके हाथ एक मुनिकी हत्या हो गयी। उस समय वे मुनि मृगके रूपमें अपनी पत्नीके साथ रमण कर रहे थे। राजाने उन्हें मृग समझ लिया था। मृगरूपधारी मुनिने कुपित होकर पाण्डुको

शाप दे दिया—'यदि तुम कभी स्त्रीके साथ सम्भोग करोगे तो तुम्हें प्राणोंसे हाथ धो बैठना पड़ेगा। मेरी बात सत्य होकर रहेगी।' मुनिके यों शाप दे देनेपर पाण्डुको बड़ा शोक हुआ। वे अत्यन्त दुःखी होकर राज्यका परित्याग करके वनमें रहने लगे। मुनिवरो ! पाण्डुकी कुन्ती और माद्री—दोनों स्त्रियोंको सती-धर्मका पूर्ण ज्ञान था। राजाकी सेवा करनेके लिये वे भी साथ चली गयीं। गङ्गाके तटपर मुनियोंके आश्रम थे। वहीं पाण्डुने भी अपना निवासस्थान बनाया। अनेकों धर्मशास्त्र सुननेको मिलते थे। उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। एक समयकी बात है—कथाका प्रसंग चल रहा था। एक धार्मिक वाणी राजाके कानमें पड़ी। आदरपूर्वक पूछनेपर मुनिने कहा—'परंतप ! संतानहीनकी गति नहीं होती है। स्वर्गमें जानेका अधिकारी भी वह नहीं होता। अतः जिस किसी उपायसे भी पुत्र उत्पन्न करना परमावश्यक है। अंशज[१], पुत्रिकापुत्र[२], क्षेत्रज[३], गोलक[४], कुण्ड[५], सहोढ[६], कानीन[७], क्रीत[८], वनमें मिला हुआ, किसीका दिया हुआ तथा किसी निर्धनसे पैसे देकर खरीदा हुआ—ये ग्यारह प्रकारके पुत्र कहे गये हैं। इनमें उत्तरोत्तर एक-से-एकको निकृष्ट माना गया है। इसमें कोई संशय नहीं है।' यह वचन सुनकर पाण्डुने अपनी कमलनयनी प्रिया कुन्तीसे यह बात कही।

तब कुन्तीने कहा—प्रभो ! मेरे पास मनोरथ पूर्ण करनेवाला एक मन्त्र है। पूर्व समयकी बात है, दुर्वासा मुनिने यह मन्त्र मुझे बताया था। इसका प्रयोग कभी विफल नहीं हो सकता। राजन् ! यदि इस मन्त्रसे किसी देवताको मैं आमन्त्रित करूँ तो वे तुरंत मेरे सामने आ जायँगे और मेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे। उसी समय पाण्डुने कुन्तीको मन्त्र-प्रयोग करनेकी अनुमति दे दी। तब कुन्तीने प्रधान देवता धर्मको याद किया। वहाँ धर्म पधारे। उनकी कृपासे कुन्ती प्रथम पुत्र युधिष्ठिरकी माता हुई। वायुदेवकी कृपासे भीम और देवराज इन्द्रकी कृपासे अर्जुनको उत्पन्न किया। एक-एक वर्षके अन्तरसे ये तीनों परम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। फिर माद्रीने पतिदेव पाण्डुसे कहा—'कुरुश्रेष्ठ ! मुझे भी पुत्र दीजिये। महाराज ! मैं क्या करूँ। प्रभो ! मेरा भी दुःख दूर करना आपका परम कर्तव्य है।' माद्रीकी बात सुनकर पाण्डुने कुन्तीसे मन्त्र बता देनेका अनुरोध किया। कुन्ती बड़ी दयालुहृदया थीं। उन्होंने माद्रीको मन्त्र बतला दिया। पतिकी अनुमतिसे माद्रीने एक पुत्रके लिये मन्त्र-प्रयोग किया। स्मरण करनेपर दोनों अश्विनीकुमार आ गये। उनके अनुग्रहसे माद्री नकुल और सहदेव—इन दो पुत्रोंकी जननी हुई। द्विजवरो ! इस प्रकार पाँचों देवकुमार पाण्डव क्षेत्रज पुत्र हुए। एक-एक वर्षके व्यवधानसे उस जंगलमें ही इन कुमारोंका जन्म हुआ।

एक समयकी बात है—आश्रम सुनसान था। माद्रीको देखकर पाण्डु अत्यन्त विकारग्रस्त

---

१-**अंशज**—अपने वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र। २-**पुत्रिकापुत्र**—अपनी पुत्रीका बालक। ३-**क्षेत्रज**—आपत्ति-कालमें किसी अन्य पुरुषसे उत्पन्न बालक। ४-**गोलक**—पतिके मर जानेपर उत्पन्न बालक। ५-**कुण्ड**—पतिके रहते हुए जार पुरुषसे उत्पन्न बालक। ६-**सहोढ**—विवाहके पूर्व ही कन्या गर्भवती हो, पतिके घर जानेपर जिसका प्रसव करे। ७-**कानीन**—कन्याने पिताके घरपर ही छिपे रूपसे जिसे उत्पन्न कर दिया हो। ८-**क्रीत**—जो मूल्य देकर खरीदा गया हो।

हो गये। मृत्यु सिरपर नाच उठी। उन्होंने माद्रीको पकड़ लिया। माद्री निरन्तर रोकती रही। फिर भी पाण्डु दैवकी प्रेरणासे उसके आलिङ्गनमें उद्यत हो गये। माद्रीका संयोग होते ही पाण्डुका शरीर धरतीपर लुढ़क गया। जिस प्रकार वृक्षपर फैली हुई लता वृक्षके कट जानेपर नीचे बिखर जाती है, ठीक उसी प्रकार पाण्डुके धराशायी होते ही माद्री भी जमीनपर पड़ गयी। उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। उस समय कोलाहल सुनकर रोती हुई कुन्ती, पाँचों लड़के तथा महाभाग मुनिगण भी वहाँ आ गये। पाण्डुके शरीरसे प्राणपखेरू उड़ गये थे। उपस्थित सभी व्रतशील मुनियोंने गङ्गाके तटपर पाण्डुके मृत शरीरका विधिपूर्वक अग्नि-संस्कार किया। माद्री सतियोंकी सत्यता प्रदर्शित करनेके विचारसे पाण्डुके साथ सती हो गयी। उसने दोनों पुत्र धर्मको साक्षी रखकर कुन्तीको सौंप दिये। जलाञ्जलि देनेके पश्चात् वहाँके निवासी मुनिगण पाँचों पुत्रोंके सहित कुन्तीको हस्तिनापुर ले आये। कुन्तीके आनेका समाचार पाकर भीष्म, विदुर तथा धृतराष्ट्रके नगरमें निवास करनेवाले और भी अनेकों व्यक्ति वहाँ आ गये। पाण्डुके शापका रहस्य जानकर उपस्थित सभी व्यक्तियोंने कुन्तीसे पूछा—'वरानने ! ये किसके लड़के हैं ?' कुन्ती बड़ी दुःखी थीं। उन्होंने उत्तर दिया—'कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ये बालक देवताओंके हैं। मैं निश्चित बात कह रही हूँ।' विश्वास दिलानेके लिये कुन्तीने सभी देवताओंका आवाहन किया। सम्पूर्ण देवता आकाशमें आकर विराजमान हो गये और बोले—'निःसंदेह ये

हमारे पुत्र हैं।' भीष्मजीने देवताओंके वचनका अनुमोदन करनेके साथ ही पुत्रोंका भी यथोचित सम्मान किया। फिर उन बालकोंको और बहू कुन्तीको लेकर भीष्म प्रभृति सभी सज्जन हस्तिनापुरमें रहने लगे। प्रसन्नतापूर्वक समुचित धन व्यय करके सबकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार कुन्तीके सभी पुत्र उत्पन्न हुए और भीष्मजीने उनका पालन-पोषण किया।

(अध्याय ५-६)

☆

## कौरव-पाण्डवोंका संक्षिप्त इतिहास, युद्धमें प्रायः सभीका संहार, व्यासजीके द्वारा श्रीभुवनेश्वरीकी कृपासे गान्धारी, कुन्ती, उत्तरा आदिको मृत सम्बन्धियोंके दर्शन, भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामका अन्तर्धान, पाण्डवोंका हिमालय-प्रवेश, परीक्षित्‌को राज्यप्राप्ति और ब्राह्मणकुमारका शाप

सूतजी कहते हैं—आदरणीया द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी भार्या हुई। वह पतिव्रता स्त्री थी। उन पाँचों पाण्डवोंसे द्रौपदीके पाँच पुत्र हुए। सभी बालक बड़े सुन्दर थे। सुभद्रासे अर्जुनका विवाह हुआ, जो भगवान् श्रीकृष्णकी बहन थी। अर्जुन उस कल्याणी सुभद्राको भगवान्

श्रीकृष्णकी सम्मतिसे हरकर ले आये थे। सुभद्रासे महान् वीर पुत्र अभिमन्युका जन्म हुआ। वह वीर बालक समराङ्गणमें सदाके लिये सो गया। द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी निर्मम हत्या हो गयी। राजा विराटकी पुत्रीसे अभिमन्युका विवाह हुआ था। वह एक अनुपम सुन्दरी थी। वंश डूब रहा था। उस समय उसने एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसके प्राण अग्निबाणसे निकल चुके थे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उत्तराके उस बालककी रक्षा की। अश्वत्थामाके अग्निबाणसे वह शिशु जल रहा था। भगवान्‌ने अपनी अद्भुत शक्तिसे उसे बचाया। वंशके समाप्त होनेपर उस पुत्रकी उत्पत्ति हुई थी। अतएव वह श्रेष्ठ बालक पृथ्वीपर परीक्षित्‌के नामसे विख्यात हुआ। पुत्रोंके मर जानेपर धृतराष्ट्रके दुःखका ओर-छोर न रहा। वे पाण्डवोंके राज्यमें कालक्षेप करने लगे। भीमके वाग्बाणसे धृतराष्ट्रका मन सदा संतप्त रहता था। वैसे ही गान्धारी भी पुत्रशोकसे अत्यन्त कातर होकर जीवन बिता रही थी। युधिष्ठिर रात-दिन उन दोनोंकी सेवामें संलग्न रहते थे। धृतराष्ट्रको समझाते-बुझाते रहना—धर्मात्मा विदुरजीका काम था। युधिष्ठिरकी अनुमतिसे धर्मात्मा अर्जुन भी अपने भाईके पास रहते और धृतराष्ट्रकी सेवा किया करते थे। पुत्रके शोकसे उत्पन्न हुआ दुःख भूल जाय—मानो यही अर्जुनका प्रधान उद्देश्य था। परंतु भीमकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं होती थी। 'जिस किसी प्रकारसे भी बूढ़े धृतराष्ट्रके कानोंमें आवाज जा सके'—इसका ध्यान रखते हुए भीम वाग्बाणोंसे उन्हें बींधा करते थे। वहाँ जो लोग थे, उनको सुना-सुनाकर वे कहते—'यह अन्धा बड़ा दुष्ट है। मैंने इसके सभी पुत्रोंको मार डाला। यहाँतक कि दुःशासनके कलेजेका गरम खून भी पिया। अब इस निर्लज्ज अन्धेका मेरे दिये हुए पिण्डकी ही आशा रह गयी।' भीम इस प्रकारके कठोर वचन प्रतिदिन धृतराष्ट्रको सुनाया करते थे। 'यह भीम प्रचण्ड मूर्ख है'—यों कहकर धर्मात्मा अर्जुन धृतराष्ट्रको आश्वासन देते थे।

धृतराष्ट्रने अठारह वर्षोंतक वहीं रहकर अपना कष्टमय जीवन व्यतीत किया, फिर वन जानेके लिये अर्जुनसे कहा। साथ ही महाराज धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कुछ धन माँगा। कहा कि 'अब मैं मृत पुत्रोंके विधिपूर्वक पिण्डदानादि कार्य करना चाहता हूँ। यद्यपि भीमने सब मृत व्यक्तियोंके श्राद्ध किये हैं, किंतु पूर्व वैरको याद रखते हुए मेरे पुत्रोंके लिये उसने कुछ भी नहीं किया। यदि तुम मुझे धन दे देते हो तो उससे मैं पुत्रोंकी और्ध्वदैहिक क्रिया करके दिव्य फल देनेवाली तपस्या करनेके लिये वनमें चला जाऊँगा।' धर्मनन्दन युधिष्ठिर पुण्यात्मा पुरुष थे। उनसे और विदुरजीसे एकान्तमें बातचीत हुई। तब उन्होंने धनाभिलाषी धृतराष्ट्रको धन देनेकी बात मनमें निश्चित कर ली। फिर युधिष्ठिरने अपने सभी भाइयोंको बुलाकर उनसे कहा—'महाभागो ! धृतराष्ट्र पिताके तुल्य हैं। इन्हें श्राद्ध करनेकी इच्छा है; मैं इन्हें धन दूँगा।' अमित तेजस्वी युधिष्ठिर सबसे बड़े भाई थे। उनके आग्रहपूर्ण वचन सुनकर भीमकी क्रोधाग्नि भभक उठी। भीमने कठोर वचनोंसे दुर्योधनादिके हितार्थ धृतराष्ट्रको धन देनेका विरोध किया और फिर वे वहाँसे उठकर चल दिये।

अर्जुन, नकुल और सहदेव—इन तीनों भाइयोंने महाराज युधिष्ठिरका समर्थन किया। तब युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रको प्रचुर सम्पत्ति सौंप दी और अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने पुत्रोंके श्राद्धादि कर्म सविधि सम्पन्न कराये। ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। और्ध्वदैहिक क्रिया करनेके

पश्चात् उसी क्षण वे गान्धारीके साथ वनमें चले गये। कुन्ती और विदुरने भी साथ दिया। महामति धृतराष्ट्रके वन जाते समय सञ्जय भी सहयोग देनेको तैयार हो गये। पुत्रोंके मना करते रहनेपर भी उनकी बात न मानकर धर्मशीला कुन्ती धृतराष्ट्रादिके साथ वनमें चली गयी। भीमसेन एवं अन्य बहुतसे वीर सभी गङ्गाके तटतक पहुँचाकर वहाँसे रोते-बिलखते लौटकर हस्तिनापुर चले आये। गङ्गाके तटपर जाकर धृतराष्ट्र प्रभृति सज्जनोंने एक सुन्दर आश्रम बनाया। उसे फूससे छाया गथा था। मन और इन्द्रियोंको वशमें करके वे वहीं तपस्या करने लगे। जब तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए उन्हें छः वर्ष बीत गये, तब युधिष्ठिरने खेद प्रकट करते हुए अपने छोटे भाइयोंसे यह वचन कहा—'मैंने स्वप्नमें माता कुन्तीको देखा है। वे वनमें हैं और उनका शरीर दुर्बल है। अतः मेरे मनमें आता है कि उन माताओं और पिताओंके दर्शन करनेके लिये मैं वहाँ जाऊँ। महात्मा विदुर और सर्वज्ञानसम्पन्न संजयसे भी भेंट हो जायगी। मेरा तो ऐसा विचार है, तुम्हें यदि यह बात जँचती हो तो हम सभी वहाँ चलें।' युधिष्ठिरकी बात सुनकर सभी भाई, सुभद्रा, द्रौपदी और विराटकुमारी उत्तरा एवं बहुत-से अन्य नगरनिवासी एकत्रित होकर चल पड़े। बूढ़े माता-पिताको देखनेके लिये सभी उत्सुक थे। शतयूपाश्रमपर पहुँचकर सबने परस्पर भेंट की। जब वहाँ विदुर नहीं दीख पड़े, तब युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रसे पूछा—'महाराज ! बुद्धिमान् विदुरजी कहाँ हैं ?' धृतराष्ट्रने उत्तर दिया—'विदुर तो बड़े त्यागी पुरुष हैं। उनके मनमें किसी बातकी इच्छा नहीं रहती। पासमें कुछ रखते भी नहीं। कहीं गङ्गाके तटपर बैठकर सनातन श्रीहरिका ध्यान करते होंगे।' दूसरे दिन महाराज युधिष्ठिर गङ्गाके किनारे घूम रहे थे। देखा, विदुरजी एकान्त वनमें बैठे तपस्या कर रहे हैं। शरीर बिलकुल क्षीण हो गया है। उन्हें देखकर राजा युधिष्ठिरने कहा—'मैं युधिष्ठिर आपके श्रीचरणोंमें मस्तक झुका रहा हूँ।' वे सामने खड़े हो गये। आवाज विदुरजीके कानोंमें पड़ी, किंतु उस समय पुण्यात्मा विदुरजी मिट्टीके धूहे-जैसे हो गये थे। कुछ बोले नहीं। क्षणभर बाद उनके मुखसे एक अत्यन्त अद्भुत तेज निकलकर युधिष्ठिरके मुखमें समा गया; क्योंकि वे दोनों धर्मके अंश होनेके कारण परस्पर एक ही तो थे। इस प्रकार विदुरजीका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया। युधिष्ठिरने महान् शोक प्रकट किया। मृत शरीरको जलानेके लिये समुचित तैयारी की। इतनेमें स्पष्ट सुनायी देती हुई आकाशवाणी होने लगी—'राजन् ! ये विदुर परम त्यागी पुरुष थे। इनका दाह करना उचित नहीं है। तुम इच्छानुसार चले जाओ।'

आकाशवाणी सुनकर सब भाइयोंने गङ्गाके पवित्र जलमें स्नान किया। धृतराष्ट्रके पास जाकर सभी बातें विस्तारपूर्वक उनको बता दीं। उस समय आश्रमपर समस्त पाण्डव तथा अनेकों नागरिक विद्यमान थे। सत्यवतीनन्दन व्यास, नारद एवं अन्य भी बहुत-से महानुभाव मुनि युधिष्ठिरसे मिलनेके लिये आये थे। तब कुन्तीने शुभदर्शन व्यासजीसे कहा—'द्वैपायन ! मैंने अपने पुत्र कर्णको जन्मके समय ही देखा है। तपोधन ! मेरा मन बहुत दुःखी है। आप एक बार कर्णको सामने उपस्थित करनेकी कृपा करें। महाभाग ! आप सर्वथा समर्थ पुरुष हैं। प्रभो ! मेरा मनोरथ पूर्ण करनेकी कृपा कीजिये।'

गान्धारीने कहा—मुने ! मेरे पुत्र समराङ्गणमें चले गये। मैं भर आँख उन्हें देख भी न पायी। मुनिवर ! मेरे वे पुत्र एक बार मुझे

दिखानेकी कृपा करें !

सुभद्रा बोली—अभिमन्यु महान् पराक्रमी वीर था। मैं प्राणोंसे भी अधिक उससे प्यार करती थी। तपोधन ! आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं। मुझे उस पुत्रको देखनेकी बड़ी लालसा लगी हुई है। आप उसका साक्षात्कार करानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकारके वचन सुनकर सत्यवतीनन्दन व्यासजीने प्राणायाम करके सनातनी भगवती जगदम्बिकाका ध्यान किया। सायंकालका समय था। गङ्गाके तटपर मुनिवर व्यासजीने युधिष्ठिर प्रभृति सब पाण्डवोंको बुलाया और पुण्यसलिला भागीरथीमें स्नान करके वे जगज्जननी देवी दुर्गाकी यों स्तुति करने लगे।

परम पुरुष श्रीहरि जिनके आश्रयमें आनन्द करते हैं, जो सगुण, निर्गुण, ब्रह्मस्वरूपिणी एवं देवताओंकी अधिष्ठात्री हैं, उन मणिद्वीप-निवासिनी भगवती भुवनेश्वरीकी उन्होंने वन्दना की। कहा—'देवी ! जिस समय कोई भी देवता नहीं रहते, उस समय भी तुम विराजमान रहती हो। मैं तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, उनके शब्द, स्पर्श प्रभृति गुण, इन्द्रिय, अहंकार, मन, बुद्धि तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके अभावमें भी सुशोभित रहनेवाली भगवती जगदम्बिके ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। साम्यावस्थामें तुम इस जीव-जगत्को चिन्मय ब्रह्ममें स्थापित करके पूरे कल्पतक समाधिमग्न हो जाती हो। कोई भी ऐसा विवेकी पुरुष नहीं है, जो तुम परम स्वतन्त्रतामयी देवीको जान सके। माता ! ये प्राणी अपने मृत व्यक्तियोंको पुनः देखनेके लिये मुझसे प्रार्थना करते हैं। मुझमें ऐसा सामर्थ्य कहाँ ? अतः तुम इनके स्वर्गवासी परिजनोंको शीघ्र दिखानेकी कृपा करो।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार व्यासजीके विनय करनेपर भगवती भुवनेश्वरीने उन दिवङ्गत सभी नरेशोंको बुलाकर सामने उपस्थित कर दिया। लौटकर आये हुए अपने परिजनोंको
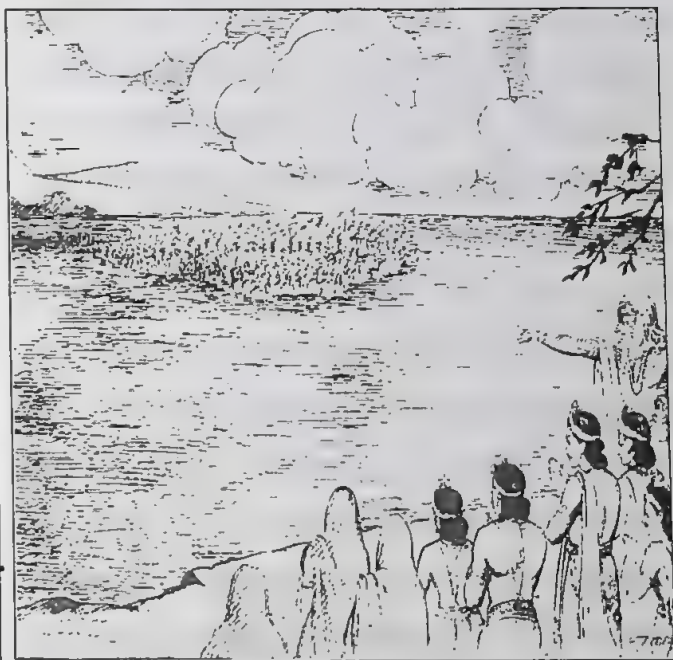
देखकर कुन्ती, गान्धारी, सुभद्रा, उत्तरा एवं सम्पूर्ण पाण्डव मोहमें पड़ गये। व्यासजी अमित तेजस्वी पुरुष हैं। उन्होंने इन्द्रजालके समान यह घटना उपस्थित करके भगवती महामायाका ध्यान किया। तत्पश्चात् उन स्वर्गवासी वीरोंके पुनः लौट जानेकी व्यवस्था कर दी। यह देखकर सम्पूर्ण पाण्डव, मुनिगण रास्तेभर व्यासजीकी चर्चा करते हुए हस्तिनापुर चले गये।

सूतजी कहते हैं—इसके बाद तीसरे दिन वनमें अनायास ही आग लग गयी, जिसमें धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती सभी जलकर भस्म हो गये। उस समय संजय राजा धृतराष्ट्रको छोड़कर तीर्थयात्रा करने गये हुए थे। नारदजीके द्वारा यह समाचार सुनकर राजा युधिष्ठिर बड़े दुःखी हुए। कौरवोंका संहार हो जानेके छत्तीस वर्ष बाद यादवोंका भी संहार हो गया। ब्राह्मणके शापसे वे प्रभासक्षेत्र जाकर मर मिटे। उन्होंने आपसमें ही लड़ाई ठान ली थी। यों

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने ही वे सभी कालके गालमें चले गये। बलरामजीने भी शरीर त्याग दिया। भगवान् श्रीकृष्ण बहेलियेके बाणके व्याजसे अन्तर्धान हो गये। श्रीकृष्ण साक्षात् हरि हैं। पूर्व शापकी रक्षा करनेके विचारसे उन्होंने यों लीला-संवरण की। भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेकी अप्रिय बात सुनकर वसुदेवजीने भगवती भुवनेश्वरीका ध्यान किया और प्राणेन्द्रियोंको पवित्र करके वे सदाके लिये शान्त हो गये। तत्पश्चात् महान् दुःखी होकर अर्जुन प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँ जितने मृत व्यक्ति थे, उन सबका उन्होंने यथायोग्य अग्नि-संस्कार किया। तदनन्तर समुद्रने भगवान् श्रीकृष्णकी उस पुरीको डुबो दिया। अर्जुन सब लोगोंको लेकर वहाँसे चल चुके थे। मार्गमें चोरों और अहीरोंने उनके सभी वैभव छीन लिये। उस समय अर्जुनका सारा प्रभाव प्रस्थान कर चुका था।

इसके बाद इन्द्रप्रस्थपुरीमें पहुँचकर अर्जुनने अनिरुद्धकुमार वज्रनाभको वहाँका राजा बनाया। व्यासजीके सामने अपनी वेदना प्रकट की। तब उन मुनिने अर्जुनको आश्वासन दिया—'महामते ! जब भगवान् फिर धरातलपर पधारेंगे, तब तुम भी साथ आ जाओगे। उस समय तुम्हारा प्रचण्ड तेज पुनः प्रदीप्त हो उठेगा।' व्यासजीके ये सुहावने वचन सुनकर अर्जुन हस्तिनापुर चले गये। उन्होंने महान् खेद प्रकट करते हुए सारी बातें युधिष्ठिरसे कह सुनायीं। भगवान् श्रीकृष्णका अन्तर्धान और यादवोंका संहार सुनकर महाराज युधिष्ठिर हिमालय जानेका विचार करने लगे। उन्होंने उत्तरानन्दन महाराज परीक्षित्को राज्यपर अभिषिक्त किया। उस समय परीक्षित् छत्तीस वर्षके हो गये थे। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने द्रौपदी और भाइयोंके साथ हिमालयकी यात्रा कर दी। हस्तिनापुरमें रहकर छत्तीस वर्षतक राज्य करनेके पश्चात् उन छहों व्यक्तियोंने हिमालयमें जाकर शरीर त्याग दिया। राजर्षि परीक्षित् भी बड़े धार्मिक पुरुष थे। उन्होंने साठ वर्षोंतक सावधानीके साथ सम्पूर्ण प्रजाका पालन-पोषण किया। इसके बाद एक दिन महाराज परीक्षित् शिकार खेलनेके विचारसे एक गहन वनमें चले गये। एक मृगको खोजते हुए उत्तरा-नन्दन महाराज परीक्षित् थक गये। भूख और प्याससे वे घबरा उठे। उनके सर्वाङ्ग धूपसे संतप्त हो रहे थे। इतनेमें पास ही एक मुनि दिखायी पड़े। उस समय मुनिने ध्यान लगा रखा था। राजाने आतुर होकर उनसे जलके लिये पूछा। मुनि मौन धारण किये रहे। कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब प्याससे व्याकुल राजा परीक्षित् कुपित हो उठे। उन्होंने एक मरे हुए सर्पको धनुषकी नोकमें उठा लिया और कलिके प्रभावसे प्रभावित होकर परीक्षित्ने उन मुनिके गलेमें वह साँप लपेट दिया। तब भी वे मुनिवर मौन ही रहे। उनकी समाधि भङ्ग नहीं हुई। राजा परीक्षित् भी अपने घर चले गये।

उन मुनिका गविजात नामक एक महान् तेजस्वी तपोनिष्ठ पुत्र था। उसमें अपरिमित शक्ति थी। पास ही जंगलमें वह खेल रहा था—उसने यह बात सुनी। मित्रोंने उससे कहा—'मुनिकुमार ! अभी तुम्हारे पिताके गलेमें किसीने मरा हुआ सर्प लटका दिया है।' मित्रोंके मुखसे यह वचन सुनकर वह मुनिकुमार क्रोधसे तमतमा उठा। उसी क्षण हाथमें जल लेकर उसने राजा परीक्षित्को शाप दे दिया—'जिसने आज मेरे पिताके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला है, उस नराधमको आजसे सातवीं रात तक्षक सर्प काट खाय।' उस समय राजा परीक्षित् घर पहुँच गये

थे। मुनिका एक शिष्य राजाके पास गया। उसने मुनिकुमार गविजातका दिया हुआ शाप महाराज परीक्षित्को कह सुनाया। 'ब्राह्मणने शाप दे दिया है'—यह निश्चित समाचार राजाको मिल गया। 'शाप किसी प्रकार टल नहीं सकता'—यों विचारकर महाराज परीक्षित्ने अपने वृद्ध मन्त्रियोंसे कहा—'ब्राह्मणने मुझे शाप दे दिया है। मेरा अपराध तो था ही। मन्त्रिवरो ! मुझे अब क्या उपाय करना चाहिये—अब आपलोग इस विषयमें विचार करें। वेदके पारगामी विद्वान् कहते हैं कि मृत्यु अनिवार्य है—उसे कोई टाल नहीं सकता। फिर भीं, विद्वान् पुरुषोंका कर्तव्य है कि वे शास्त्रोक्त उपाय करनेमें कभी न चूकें। कितने यत्नवादी विद्वान् कहते हैं कि भलीभाँति सोच-समझकर उपाय करनेसे दुर्लभ कार्य भी सिद्ध हो जाया करते हैं। मणि, मन्त्र और औषधके प्रभावकी भाँति उपायका परिणाम भी निश्चितरूपसे जान लेना बड़ा कठिन है। मणि, मन्त्र और औषध यदि पूर्ण अभ्यस्त हों तो उनसे क्या नहीं हो सकता। पूर्व समयकी बात है—एक मुनिकी स्त्रीको सर्पने डँस लिया। वह मर गयी। मुनिने मन्त्रके प्रभावसे उसे जिला दिया और अपनी आधी आयु दे दी। अतः विवेकी पुरुषको होनहारके ऊपर ही सर्वथा निर्भर नहीं हो जाना चाहिये। मन्त्रिवरो ! मुनिका यह उदाहरण तो सामने ही है, देख लें। अतएव प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। प्रयत्न करनेपर भी कार्यमें सफलता न हो तो बुधजन मनमें विचार लेते हैं कि भाग्यका विधान ऐसा ही था।'

मन्त्रियोंने पूछा—महाराज ! वे कौन मुनि थे, जिन्होंने अपनी प्यारी पत्नीको आधी आयु देकर जीवित कर दिया ? महाराज ! उनकी स्त्रीका देहान्त कैसे हो गया था ? यह प्रसंग हमें बतानेकी कृपा करें।

राजा परीक्षित् बोले—भृगुकी पुलोमा नामसे विख्यात वह सुन्दरी स्त्री थी। सुना जाता है कि उसी पुलोमाके पेटसे च्यवन मुनि उत्पन्न हुए हैं। च्यवन मुनिकी स्त्रीका नाम सुकन्या था। वह सुकन्या राजा शर्यातिकी सुन्दरी पुत्री थी। सुकन्याके उदरसे श्रीमान् प्रमति पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए, जो बड़े विख्यात नरेश थे। प्रमतिकी स्त्रीका नाम प्रतापी था। वह भी उन्हींके समान आदरणीया थी। प्रतापीके गर्भसे रुरु नामक मुनिका जन्म हुआ, जो परम तेजस्वी पुरुष थे। उसी समयकी बात है—स्थूलकेश नामसे प्रसिद्ध कोई मुनि थे। वे बड़े तपस्वी, धर्मात्मा और सत्यवादी रहे। एक दिन मेनका नामकी एक दिव्य परम सुन्दरी अप्सरा नदीके तटपर आयी और जलमें क्रीड़ा करने लगी। त्रिलोकसुन्दरी उस अप्सरासे विश्वावसु मुनिका समागम हो गया, जिससे वह गर्भवती होकर चली गयी। स्थूलकेश मुनिके आश्रमके पास जाकर मेनकाने कन्याका प्रसव किया। त्रिलोकसुन्दरी उस अनाथ कन्याको नदीके तटपर देखकर मुनि स्थूलकेशने अपने पास रख लिया। उनके द्वारा वह पाली-पोसी गयी। मुनिने उसका नाम 'प्रमद्वरा' रख दिया। समय पाकर वह युवा स्त्री हो गयी। उसमें सभी शुभ लक्षण उपस्थित हो गये। मुनिवर रुरुने उस प्रमद्वरा नामक कन्याको देखा। (अध्याय ७-८)

☆

## रुरुके द्वारा आधी आयु देनेपर प्रमद्वराका पुनः जीवित होना, तक्षकके द्वारा धन प्राप्त करनेपर मन्त्रविद् कश्यपका लौट जाना, फलके अंदर कीड़ेके रूपमें पैठकर तक्षकका परीक्षित्‌के पास पहुँचकर उन्हें काटना और परीक्षित्‌की मृत्यु

परीक्षित् कहते हैं—मुनिवर रुरुका मन खिन्न हो गया था। वे आश्रमपर जाकर सोये थे। उन्हें दीन-हीन देखकर पिताने पूछा—'रुरु ! तुम उदास क्यों हो ?' तब रुरुने पितासे कहा—'स्थूलकेश मुनिके आश्रमपर जो प्रमद्वरा नामकी कन्या है, मैं उसके साथ विवाह करना चाहता हूँ।' पुत्रकी बात सुनकर उसी क्षण पिता प्रमति मुनिवर स्थूलकेशके पास गये। उन्हें समझा-बुझाकर अनुकूल बनाया। तत्पश्चात् सुन्दरी प्रमद्वराके लिये याचना की। स्थूलकेश मुनिने वचन दिया कि शुभ मुहूर्त आनेपर मैं विवाह कर दूँगा। प्रमति और स्थूलकेश—ये दोनों महात्मा तपोवनमें निकट रहकर विवाहकी तैयारी करने लगे। उसी समयकी बात है—सुन्दर नेत्रवाली प्रमद्वरा घरके आँगनमें घूम रही थी। एक अलसाया हुआ साँप पड़ा था। प्रमद्वराके पैरका स्पर्श होते ही उसने उसे डँस लिया। इससे उसका शरीर प्राणहीन होकर जमीनपर गिर पड़ा। सब ओर कुहराम मच गया। सब-के-सब मुनि आ गये। शोकाकुल होकर विषाद करने लगे। जमीनपर पड़ी हुई मृत पुत्रीको देखकर पिताके दुःखका पारावार न रहा। प्रमद्वरा इतनी तेजस्विनी थी कि मरनेपर भी उसका शरीर चमक रहा था। उसके मर जानेपर समाचार सुनकर रुरु भी रोते-बिलखते देखनेके लिये आये। देखा, वह मृत कन्या जमीनपर पड़ी थी। जान पड़ता था, मानो जीवित ही है। स्थूलकेश तथा अन्य अनेकों श्रेष्ठ ऋषि विषाद कर रहे थे। उन्हें देखकर रुरु वहाँसे बाहर निकल आये। उन्होंने शोकाकुल होकर मनमें सोचा—'मेरे दुर्भाग्यने ही इस महान् अद्भुत सर्पको यहाँ भेजा है। तभी तो मेरे कल्याणका संहार करनेमें यह कारण बन गया। क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? अब तो मेरी प्राणप्रिया इस लोकसे चल बसी। मैं बड़ा ही भाग्यहीन हूँ; इससे इसके पाणिग्रहण करनेका तथा अग्निमें लाजाकी आहुति देनेका भी अवसर मुझे प्राप्त नहीं हो सका। मेरे इस मानव-जीवनको धिक्कार है। अब तो मेरे प्राण प्रयाण कर जायँ—यही ठीक है।' यों विषाद करते हुए वे नदी-तटपर बैठकर उपाय सोचने लगे—'यदि मैं मर जाता हूँ तो कभी न मिटने-वाली आत्महत्याके सिवा दूसरा कौन-सा फल मेरे हाथ लगेगा। मेरे पिता दुःखी होंगे। माताका मन संतापकी आगमें रात-दिन जला करेगा। हाँ, मुझे मरा देखकर मेरा दुर्भाग्य अवश्य ही बड़ा संतुष्ट होगा। इससे मेरी दिवंगत प्रिया प्रमद्वराका तो कुछ उपकार होनेकी सम्भावना है नहीं। यदि मैं वियोगसे व्याकुल होकर स्वयं आत्महत्या कर लूँगा तो वह प्रमद्वरा परलोकमें मुझ आत्म-घातीकी पत्नी बन जायगी—यह भी सम्भव नहीं रहेगा। इसलिये मेरे प्राण त्याग करनेमें तो अनेकों दोष हैं। जीवित रहनेपर ये कोई दोष नहीं आ सकते।' इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् मुनिवर रुरुने स्नान और आचमन करके पवित्र होकर हाथमें जल लिया और कहा—'यदि मैंने कुछ भी देवपूजन आदि पुण्य कार्य किया हो, अर्थात् भक्तिपूर्वक गुरु-देवकी पूजा, जप, तप, हवन, सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन, पुण्यमयी

गायत्रीका जप एवं भगवान् सूर्यकी आराधना की हो तो उस पुण्यके प्रभावसे मेरी यह प्रिया जीवित हो जाय। इतनेपर भी, यदि मेरी प्राण-प्रियाके प्राण नहीं लौटेंगे तो मैं जीवन त्याग दूँगा।' इस प्रकार संकल्प करके देवाराधना-पूर्वक रुरुने वह जल जमीनपर छोड़ दिया।

राजा परीक्षित् कहते हैं—रुरु अपनी भावी पत्नी प्रमद्वराके वियोगसे दुःखी होकर यों विलाप कर रहे थे। इतनेमें सामने भगवान्का भेजा हुआ दूत आया और मुनिसे कहने लगा।

देवदूतने कहा—ब्राह्मणदेवता ! तुम्हें इस प्रकार दुःसाहस नहीं करना चाहिये। भला, मरी हुई स्त्री पुनः कैसे जीवित हो जायगी ? यह सुन्दरी कन्या मेनका अप्सराकी कन्या थी। इसकी आयुके वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। विवाह होनेके पूर्व ही यह मर गयी। तुम किसी दूसरी सुन्दरी स्त्रीके साथ विवाह कर लो। अरे प्रचण्ड मूर्ख ! रोते हो क्यों ? अब इसके साथ तुम्हारा क्या प्रेम रहा ?

रुरु बोले—देवदूत ! यह जीवित हो अथवा न हो, किंतु यह निश्चय है कि अब मैं किसी दूसरी स्त्रीके साथ विवाह नहीं करूँगा। मुझे मर जाना ही पसंद है।

राजा परीक्षित् कहते हैं—मुनिका आग्रह जानकर देवदूतको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अत्यन्त मनोहर सुन्दर सत्य वचन कहे—'द्विजवर ! तुम्हें वह उपाय बताता हूँ, जिससे प्राचीन समयमें देवतालोग लाभ उठा चुके हैं। तुम अपने जीवनकी आधी आयु देकर शीघ्र प्रमद्वराको जिला सकते हो।'

रुरु बोले—'मैं निःसंदेह इस कन्याको अपनी आधी आयु दे देता हूँ, आज मेरी यह प्राणप्रिया पुनः जीवन लाभ करके उठ बैठे। उसी समय विश्वावसु मुनि विमानपर बैठकर वहाँ पधारे।' वे विश्वावसु गन्धर्वोंके राजा थे। अपनी पुत्री प्रमद्वराका निधन जानकर स्वर्गसे उनका आना हुआ था। फिर विश्वावसु और देवदूत दोनों धर्मराजके पास गये और उनसे यह वचन कहा—'धर्मराज ! यह रुरुकी पत्नी और विश्वावसुकी कन्या है। इसका नाम प्रमद्वरा है। अभी सर्पके काट लेनेसे इसके प्राण निकल गये हैं। धर्मराज ! रुरु इसके लिये प्राण देनेको तैयार हैं। अतः उनकी आधी आयु प्राप्त करके यह सुन्दरी कन्या पुनः जीवित हो जाय। रुरुके नियमव्रतका पुण्य इस कार्यके बदले समर्पित है।'

धर्मराजने कहा—देवदूत ! यदि तुम विश्वावसुकी कन्याको जीवित करना चाहते हो तो उठो, रुरुके पास जाओ और उसकी आधी आयुसे कन्याको जीवित कर दो।

राजा परीक्षित् कहते हैं—इस प्रकार धर्मराजके कहनेपर देवदूत गया और प्रमद्वराको जीवित करके उसी क्षण रुरुको सौंप दिया। तदनन्तर शुभ मुहूर्त्त आनेपर रुरु और प्रमद्वराका विधिपूर्वक विवाह भी हो गया। यों उपाय करनेसे वह मरी हुई भी कन्या पुनः जीवित हो

गयी। इसलिये शास्त्रकी यह सम्मति है कि

सम्यक् प्रकारसे उपाय कर लेना चाहिये। प्राणकी रक्षाके लिये मणि, मन्त्र और ओषधिका विधिपूर्वक उपयोग करना उचित है।

इस प्रकार मन्त्रियोंसे कहकर राजा परीक्षित्ने राज्यका भार उत्तम सेवकोंको सौंप दिया और बहुत शीघ्र एक सात मंजिलके ऊँचे भवनकी भलीभाँति व्यवस्था की। वे मन्त्रियोंके साथ उसी भवनमें ऊपर जाकर रहने लगे। रक्षा करनेके लिये मणि और मन्त्र जाननेवाले अनेकों प्रसिद्ध पुरुषोंकी नियुक्ति हो गयी। इसके बाद महाराज परीक्षित्ने गौरमुख नामवाले मुनिको भेजा। भेजनेका अभिप्राय यह था कि ये गौरमुखजी जाकर मुनिको प्रसन्न करें और बार-बार कहें कि 'परीक्षित् हमारा सेवक है, उसका अपराध क्षमा करें।'

साथ ही राजा परीक्षित् सुरक्षित रहनेके लिये अपने आस-पास मन्त्रसिद्ध ब्राह्मणोंको भी रखने लगे। फाटकपर मन्त्रीके नवयुवक कुमारको बैठा दिया। वहाँ बहुत-से हाथी खड़े थे। ऐसा कड़ा प्रबन्ध था कि उस अत्यन्त सुरक्षित भवनमें कोई भी नहीं जा सकता था। वायु तक भी अपनी इच्छासे नहीं जा सकती थी, उसे भी रुक जाना पड़ता था। राजा ऊपर रहकर खाने-पीनेका कार्य सम्पन्न किया करते थे। स्नान और संध्या आदि कार्यके लिये भी वहीं समुचित व्यवस्था थी।

कोई एक कश्यप नामका श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसने सुना कि राजा परीक्षित्को शाप लग गया है। उसे धन प्राप्त करनेकी इच्छा थी। उसने विचार किया कि 'मैं वहाँ चलूँ, जहाँ राजा परीक्षित् ब्राह्मणसे शापित होकर इस समय रहते हैं।' ऐसा सोचकर वह ब्राह्मण अपने घरसे निकला और चल पड़ा। मुनिवर कश्यप मन्त्र-शास्त्रका पूर्ण विद्वान् था; परंतु धनमें उसकी विशेष आसक्ति थी।

सूतजी कहते हैं—राजा परीक्षित्के शापकी बात तक्षकको मालूम हो गयी थी, अतः जिस दिन कश्यप अपने घरसे चला, उसी दिन तक्षक भी सुन्दर मनुष्यका रूप धारण करके घरसे निकल पड़ा। उसने वृद्ध ब्राह्मणकी आकृति बना ली थी। रास्तेमें जा रहा था, इतनेमें राजा परीक्षित्के पास जाता हुआ वह कश्यप ब्राह्मण उसे दिखायी पड़ा। तब तक्षकने उस मन्त्रविद् ब्राह्मणसे पूछा—'महाराज ! आप इतनी उतावलीके साथ कहाँ जा रहे हैं और क्या कार्य करना चाहते हैं ?'

कश्यपने कहा—महाराज परीक्षित्को तक्षक सर्प काटेगा। महाराजके शरीरसे उसकी विषाग्निको दूर करनेके लिये मैं शीघ्र वहीं जा रहा हूँ। द्विजवर ! मैं विष उतारनेवाला मन्त्र जानता हूँ। यदि अभी राजाकी आयु होगी तो मैं उन्हें अवश्य जीवित कर दूँगा।

तक्षक बोला—ब्राह्मण ! वह तक्षक मैं ही हूँ। राजा परीक्षित्को मैं ही अपनी विषाग्निसे भस्म करूँगा। तुम लौट जाओ; क्योंकि जिसे मैं काट दूँ, उसकी चिकित्सा करनेकी तुममें शक्ति नहीं है।

कश्यपने कहा—सर्प ! ब्राह्मणने महाराजको शाप दे दिया है। अतः तुम्हारा काटना तो अनिवार्य ही है; किंतु मैं मन्त्रके बलसे राजाको निःसन्देह पुनः जिला दूँगा।

तक्षक बोला—ब्राह्मण ! तुम बड़े पवित्रात्मा पुरुष हो। यदि तुम मेरे काटे हुए महाराज परीक्षित्को जिलाने जा रहे हो तो पहले अपना मन्त्रबल मुझे दिखानेकी कृपा करो। मैं अभी इस वट-वृक्षको अपने विषपूर्ण दाँतोंसे काटकर भस्म कर दूँगा।

कश्यपने कहा—सर्पराज ! तुम्हारे काटे
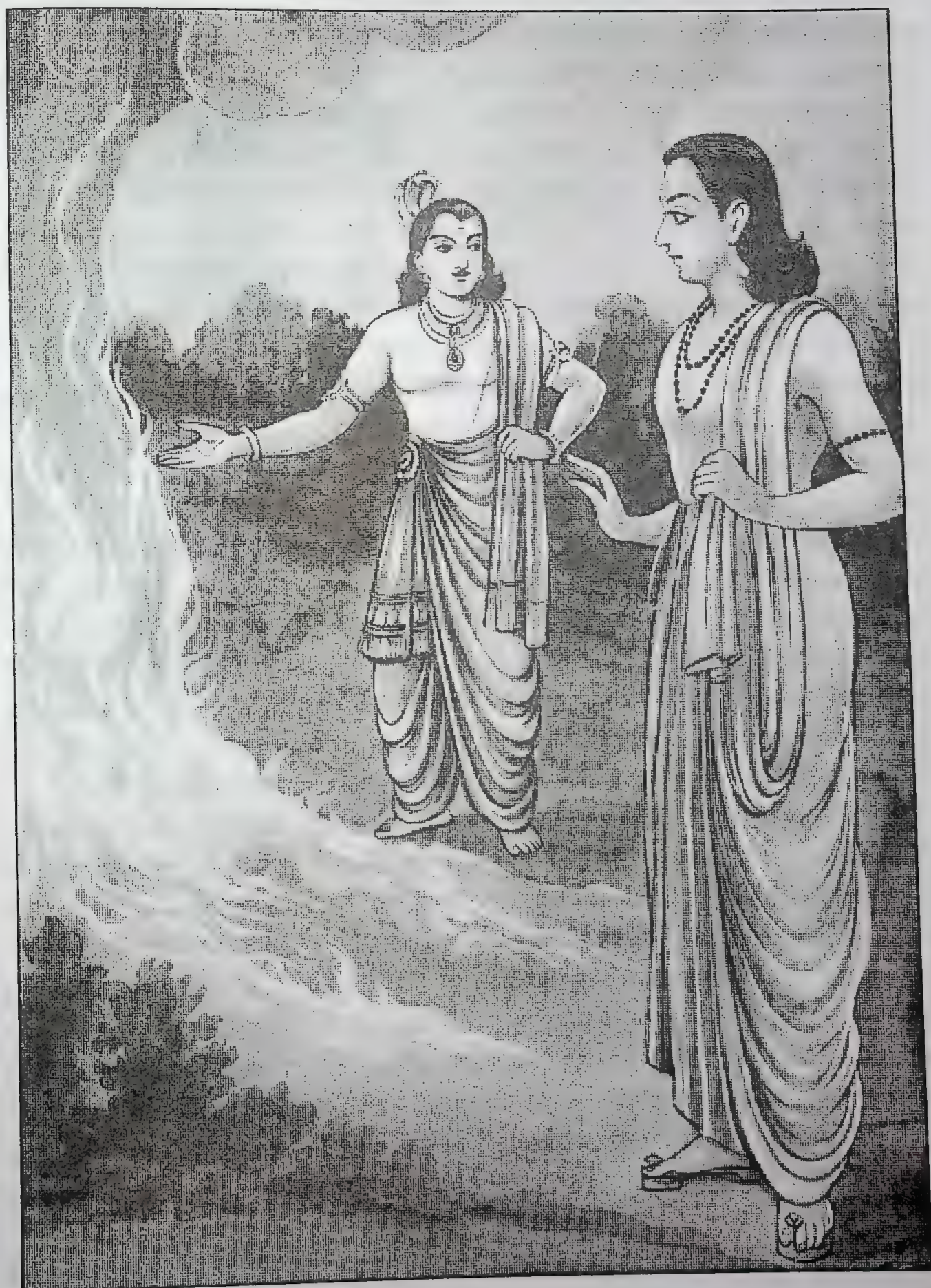
तक्षक नाग और कश्यप ब्राह्मण

या जलाये जानेपर भी मैं इसे फिर हरा-भरा कर दूँगा।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर तक्षकने उस वृक्षको काटा और विषाग्निसे उसे राख बना दिया। साथ ही कश्यपसे कहा—'द्विजवर! तुम अब इसे पुनः जीवित करो।' सर्पके विषसे भस्मीभूत वृक्षको देखकर कश्यपने सारी राख बटोर ली और यह वचन कहा—'महान् विष उगलनेवाले सर्पराज! अब मेरा मन्त्रबल देखो, तुम्हारे सामने ही मैं वट-वृक्षको पूर्ववत् हरा-भरा कर देता हूँ।' ऐसा कहकर मन्त्रके पूर्ण वेत्ता कश्यपने हाथमें जल लिया और मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उसे राखपर छींट दिया। जलके छींटे पड़नेसे उस वट-वृक्षकी पुनः पूर्ववत् सुन्दर स्थिति हो गयी। यह सब देखकर तक्षकको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने कश्यपसे पूछा—'ब्राह्मण! तुम क्यों इतना परिश्रम करते हो? तुम्हें जो अभिलषित वस्तु हो, बताओ, मैं उसे अभी दे देता हूँ।'

कश्यपने कहा—सर्पराज! मुझे धनकी आवश्यकता थी। महाराज परीक्षित्‌को शाप लग गया है, उन्हें साँप काटेगा, मैं अपनी मन्त्र-विद्यासे उनका उपकार कर दूँ, तो मेरी आवश्यकता पूर्ण हो सकती है। यों विचारकर ही मैं घरसे चला था।

तक्षक बोला—द्विजवर! तुम्हें राजासे जितना धन पानेकी इच्छा हो, वह मुझसे ले लो। मैं अभी दे देता हूँ, उसे लेकर तुम अपने घर पधारो। इससे मेरी भी सफलता स्थिर रह सकेगी।

सूतजी कहते हैं—परमार्थके महत्त्वको जाननेवाले कश्यपने तक्षककी बात सुनकर कर्तव्यके विषयमें बार-बार विचार किया। सोचा, यदि मैं धन लेकर अपने घर वापस चला जाता हूँ तो लोभके कारण जगत्‌में मेरी निन्दा होगी। यदि मैंने परीक्षित्‌को जिला दिया तो मेरा वह यश होगा, जो कभी मिट नहीं सकता। प्रचुर धन मिलनेके साथ ही किसीके जीवनदानसे जो पुण्य होता है, वह भी मुझे सुलभ हो जायगा। यशकी रक्षा करनी चाहिये। यशरहित धनको धिक्कार है। रघुने यशके लिये अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणको दान कर दी थी। हरिश्चन्द्र और कर्ण अपनी कीर्ति फैलानेके लिये अकिञ्चन बन गये थे। फिर राजा परीक्षित् विषकी आगसे जल रहे हों, तो मैं उनकी उपेक्षा कैसे कर सकता हूँ। यदि आज मैं राजाको जीवित कर देता हूँ तो सभी प्राणी सुखसे जीवन व्यतीत करेंगे; क्योंकि राजाके नहीं रहनेपर प्रजाका संहार तो निश्चित ही है। राजा मर गये तो प्रजाके नाशका पाप भी मेरे सिर चढ़ जायगा। धनके लोभसे जगत्‌में निन्दा तो होगी ही।

इस प्रकार मनमें विचार करनेके पश्चात् उस प्रकाण्ड विद्वान् कश्यपने ध्यान करके देखा, तो उसे पता लगा कि राजाकी आयु समाप्त हो गयी है। महाराजका अन्तिम समय आ गया है। ध्यानसे यह निश्चित जान लेनेपर धर्मात्मा कश्यप तक्षकसे धन लेकर घर लौट गया। कश्यपको घर लौटाकर सातवें दिन राजा परीक्षित्‌का प्राण हरनेके लिये तक्षक बड़ी उतावलीके साथ हस्तिनापुरको चला। नगरकी अन्तिम सीमामें ऊँचे महलपर राजा परीक्षित् बैठे थे। बड़ी सावधानीके साथ मणि, मन्त्र और ओषधिकी व्यवस्था करके उनकी रक्षा की जा रही थी। तब तक्षक चिन्तित हो गया। कहीं न काट सका तो ब्राह्मण मुझे शाप दे देगा—इस भयसे उसके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। अतः उसने ध्यानपूर्वक विचार किया कि इस ऊँचे महलमें किस प्रकार पैठा जा सकता है। इस राजाको

ब्राह्मणने शाप दे रखा है। इस मूर्खने उस ब्राह्मणको दुःखी बनाया था। पाण्डुके वंशमें कोई भी ऐसा दुष्ट राजा नहीं हुआ, जिसने तपस्वी मुनिके गलेमें मरा सर्प लपेट दिया हो। इस घृणित कर्म करनेवाले राजाने 'अन्तिम समय आ गया, बुरे फल भोगने पड़ेंगे'—यह जानते हुए अपने भवनपर रक्षक नियुक्त कर दिये हैं। निश्चिन्त होकर स्वयं कोठेपर बैठा है और मृत्युको भी धोखा देना चाहता है। ब्राह्मणकी आज्ञा पालन करनेके लिये मैं किस प्रकार इसे जलानेमें सफल हो सकूँगा। मृत्यु टल नहीं सकती—इस बातसे यह मूर्ख बिलकुल अनभिज्ञ है। अतएव रक्षकोंको नियुक्त करके स्वयं ऊँचे भवनपर बैठा आनन्द कर रहा है। दैव अमित प्रतापी है। यदि उसने इसकी मृत्यु निश्चित कर दी है तो करोड़ों यत्न करनेपर भी यह कैसे बच सकता है ? 'मैं मृत्युका शिकार बन चुका हूँ'—जानते हुए भी इस नरेशने जीवन बनाये रखनेकी धारणा बना रखी है। इसीसे यह निश्चिन्त होकर सुरक्षित स्थानपर जा बैठा है। राजाका कर्तव्य है कि सभी समय दान-पुण्य आदि उत्तम कर्म करे। इससे दुःख दूर हो जाता है और आयुमें वृद्धि होती है। यदि आयु न बढ़ी—मरण-समय ही आ गया तो स्नान-दान आदि पवित्र क्रियाएँ करके इस लोकसे जानेवालेको स्वर्ग मिलता है। अन्यथा नरककी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इस राजाके पास ब्राह्मणको पीड़ा पहुँचानेका पाप तो था ही, भयंकर विप्रशाप अलग है। मृत्युकी घड़ी निकट आ गयी है—इसे कोई टाल नहीं सकता। इसके पास कोई योग्य ब्राह्मण भी नहीं है, जो इसे यह बता दे कि ब्रह्माद्वारा निर्धारित की हुई मृत्यु अनिवार्य है।

इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् तक्षकने अपने पास रहनेवाले बहुत-से नागोंको तपस्वीके रूपमें राजाके पास भेजा। वे फल-मूल लेकर राजभवन चले। स्वयं तक्षक एक छोटा-सा कीड़ा बनकर फलमें बैठा और वहाँ जानेको उत्सुक हो गया। फल लेकर सभी सर्प शीघ्रता-पूर्वक घरसे चल पड़े। राजभवनके दरवाजेपर जाकर रुक गये। महाराजका भव्य भवन वहीं था। पहरेदारोंने तपस्वियोंको देखकर उनके आनेका कारण पूछा। तपस्वी वेषधारी सर्पोंने कहा—'हमलोग महाराजका दर्शन करनेके लिये तपोवनसे आये हैं। अभिमन्युकुमार परीक्षित् इस वंशके सूर्य हैं। इन शूरवीर नरेशकी छवि अत्यन्त मनोहर दिखायी पड़ती है। हमलोग अथर्ववेद-मन्त्रोंका प्रयोग करके इन्हें दीर्घजीवी बनानेके विचारसे आये हैं। तुम महाराजसे निवेदन कर दो कि आपसे मिलनेके लिये मुनिगण आये हैं। हमलोग राजाका अभिषेक करके उन्हें अभीष्ट फल देंगे और वापस लौट जायँगे। हमने भरतवंशी राजाओंके यहाँ कहीं ऐसे द्वारपाल नहीं देखे और न सुने ही, जो राजासे तपस्वियोंको भी न मिलने दें। हमारा वहाँतक जानेका विचार है, जहाँ महाराज परीक्षित् विराजमान हैं। हम आशीर्वाद देकर उनका कल्याण करेंगे, किंतु आज्ञा मिलनेपर ही जायँगे।

सूतजी कहते हैं—उन तपस्वियोंकी बात सुननेके पश्चात् ब्राह्मण मानकर द्वारपालोंने राजाका जो आदेश था, वह सुना दिया और कहा—'हमारी समझसे आज आपलोगोंकी महाराजसे भेंट नहीं होगी। अतः आप सभी कल इस राजभवनपर पधारनेकी कृपा करें। मुनिवरो ! ब्राह्मणके शापसे भयभीत होकर राजाने व्यवस्था कर रखी है कि कोठेपर कोई भी न आ सके। यह बात बिलकुल निश्चित है।'

तब ब्राह्मणोंने द्वारपालोंसे कहा कि 'ये फल, मूल, जल हम ब्राह्मणोंके आशीर्वाद हैं। तुम इनको तो राजाके पास पहुँचा दो।' यों कहनेपर द्वारपालोंने जाकर महाराज परीक्षित्से कहा—'तपस्वीलोग फल लेकर आये हुए हैं।' राजाने आज्ञा दी—'जो फल-मूल हैं, उन्हें ले आओ और उनसे पूछो—किस कामसे पधारे हैं। पुनः कल प्रातःकाल आनेकी कृपा करें। उनसे मेरा प्रणाम कह देना और सूचित कर देना कि आज मुझसे भेंट नहीं होगी।' तब द्वारपाल फाटकपर गये। वहाँ उनसे फल-मूल लेकर बड़े सम्मानके साथ महाराजके पास पहुँचा दिया। तब ब्राह्मण-वेषधारी नाग वहाँसे लौट गये। राजा परीक्षित्ने फलोंको हाथमें उठाकर मन्त्रियोंसे कहा—'सुहृद्गणो ! आज आपलोग ये फल खायँ। ब्राह्मणका दिया हुआ यह एक उत्तम फल मैं भी खाता हूँ।' उत्तरानन्दन परीक्षित्ने इस प्रकार कहकर मन्त्रियोंको फल दे दिये और स्वयं भी एक पका हुआ फल हाथमें लेकर उसे चीरा। राजाने उस फलको चीरा तो उसमेंसे एक छोटा-सा कीड़ा निकल आया, उसकी आँखें काली थीं और शरीर लाल था। उसपर स्वयं महाराजकी दृष्टि पड़ी। मन्त्रियोंने भी देखा। वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। राजाने मन्त्रियोंसे कहा—'अब मुझे विषसे किंचिन्मात्र भी भय नहीं है। अभी सूर्य अस्त होनेवाले हैं। अब मैं ब्राह्मणका शाप शिरोधार्य कर लेता हूँ। यह कीड़ा मुझे काट ले।'

यों कहकर महाराज परीक्षित्ने उस कीड़ेको अपने गलेसे लगा लिया। सूर्यास्त होते ही कण्ठमें लगाया हुआ वह कीड़ा तक्षक नागके रूपमें परिणत हो गया। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। वह स्वयं मूर्तिमान् काल ही प्रतीत होता था। उसने राजाके शरीरमें लिपटकर उन्हें

डँस लिया। मन्त्रियोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे अत्यन्त शोकाकुल होकर रोने लगे। उस भयंकर सर्पको देखकर मन्त्रियोंका कलेजा काँप उठा। वे भाग चले। सभी द्वारपाल चीत्कार करने लगे। बड़े जोरसे हाहाकार मच गया। तक्षक नागके फणसे आक्रान्त होते ही राजा परीक्षित्की अमित शक्ति लुप्त-सी हो गयी। वे न कुछ बोल सके और न कहीं जा ही सके। तक्षकके मुखसे आगकी लपटके समान भयंकर विष निकला और उसने राजाको झुलस दिया। उसी क्षण महाराजके प्राण प्रयाण कर गये। राजाका जीवन समाप्त करके वह सर्प प्राणियोंको जलाता हुआ तुरंत आकाशमें चला गया। भूतलके सभी प्राणी उसे देखते ही रह गये। प्राण निकल जानेपर जले हुए वृक्षकी भाँति राजा परीक्षित् धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े। उनकी मृत्यु देखकर सब लोगोंने करुण विलाप आरम्भ कर दिया ! (अध्याय ९-१०)

☆

## जनमेजयका राज्याभिषेक, उत्तङ्कके अनुरोधसे सर्पयज्ञका आयोजन, आस्तीकको वचन देनेके कारण जनमेजयके द्वारा सर्पयज्ञकी समाप्ति और आस्तीकके जन्मका इतिहास

सूतजी कहते हैं—महाराज मर गये और राजकुमार अभी बालक हैं—यह देखकर स्वयं सभी मन्त्रियोंने राजा परीक्षित्‌की पारलौकिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं। गङ्गाके तटपर अगुरु आदि पवित्र लकड़ियोंकी चिता बनायी और उसपर महाराजके मृत शरीरको, जो प्रायः जल गया था, रख दिया। गौएँ, सुवर्ण, अनेक प्रकारके अन्न और भाँति-भाँतिके वस्त्र आदि बहुत-से पदार्थ उचित रूपसे ब्राह्मणोंको दिये गये। परीक्षित्‌कुमार जनमेजय अभी बच्चे थे, तब भी प्रजा उनसे बहुत प्रसन्न रहती थी, अतः मन्त्रियोंने शुभ मुहूर्त आनेपर उन्हें सिंहासनका अधिकारी बना दिया। जनमेजयमें सभी राजोचित लक्षण विद्यमान थे। नगर एवं प्रान्तके लोगोंने उन्हें बचपनमें ही अपना राजा मान लिया। धाय उन्हें तरह-तरहके राजोचित गुण सिखाया करती थी। दिन-प्रतिदिन जैसे वे बढ़ते थे, वैसे ही उनकी बुद्धिका विकास होता चला जाता था। जब जनमेजय ग्यारह वर्षके हो गये, तब कुलके पुरोहितने उन्हें समुचित विद्याकी शिक्षा देनी आरम्भ कर दी। पुरोहितके बतानेके अनुसार सभी बातें जनमेजय सीख लेते थे। फिर, जिस प्रकार द्रोणाचार्यने अर्जुनको तथा परशुरामजीने कर्णको पढ़ाया था, वैसे ही कृपाचार्यने जनमेजयको सम्पूर्ण धनुर्वेद सिखला दिया। विद्याओंका अध्ययन कर लेनेपर वे बड़े पराक्रमी वीर हुए। धनुर्वेद और वेदोंकी उन्हें पूर्ण जानकारी हो गयी। परमार्थविषयक ज्ञान भी उनसे छिपा न रहा। धर्मशास्त्रके अर्थका विवेचन करनेमें वे पूर्ण कुशल हो गये। कभी असत्य भाषण नहीं करते थे। इन्द्रियोंको वशमें रखते थे। जैसे पहले युधिष्ठिरने राज्य किया था, वैसे ही धर्मात्मा जनमेजय राज्यका काम सँभालने लगे। तदनन्तर काशीनरेश राजा सुवर्णवर्माक्षने अपनी वपुष्टमा नामकी सुन्दरी कन्याका उनके साथ विवाह कर दिया। कल्याणी वपुष्टमाको पाकर जनमेजयका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। राज्यका सभी कार्य सुयोग्य मन्त्री सँभाला करते थे। उसी समयकी बात है—एक उत्तङ्क नामक मुनि थे। तक्षक उन्हें कष्ट दे चुका था। उस पूर्व वैरका बदला चुकानेके लिये मनमें विचार करके वे हस्तिनापुर गये। महाराज जनमेजयद्वारा तक्षकका अपकार हो सकता है—यह मानकर उत्तङ्क उनके पास पहुँचे और कहने लगे—'राजेन्द्र ! किस समय क्या करना चाहिये और क्या नहीं—इसकी जानकारी आप बिलकुल नहीं रखते। इसीसे इस समय आपसे अकर्तव्यका पालन हो रहा है और कर्तव्यकी अवहेलना होती जा रही है। मैं आपसे कहूँ भी क्या ? क्योंकि अब आप उद्यम और अमर्षसे वञ्चित हो गये हैं। किसके साथ वैर है और उसका क्या प्रतीकार है—इसकी कुछ भी जानकारी न रखकर आप सदा बालकोंके समान व्यवहारमें लगे रहते हैं।'

जनमेजयने पूछा—मैंने किस वैरपर ध्यान नहीं दिया और किसका प्रतीकार नहीं किया—महाभाग ! आप इसे स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये। सब जान लेनेपर मैं उसके अनुसार कार्य करनेका प्रयत्न करूँगा।

उत्तङ्कने कहा—राजन् ! तक्षक महान् दुष्ट

है। इसने आपके पिताको मार डाला है। आप मन्त्रियोंको बुलाकर पिताकी मृत्युका कारण पूछ लें।

सूतजी कहते हैं—उत्तङ्ककी बात सुनकर महाराज जनमेजयने अपने श्रेष्ठ मन्त्रियोंसे पूछा। मन्त्रियोंने उत्तर दिया कि 'ब्राह्मणका शाप होनेके कारण तक्षकने महाराजको काट लिया था और इसीसे उनकी मृत्यु हुई।'

जनमेजयने कहा—जब निश्चित है कि ब्राह्मणने महाराजको शाप दे दिया था, तब तो उनकी मृत्युमें शाप ही कारण हुआ। मुनिवर ! कहिये, फिर इसमें तक्षकका क्या दोष बताया जाय ?

उत्तङ्क बोले—विष उतारनेवाला कश्यप ब्राह्मण आ रहा था। तक्षक शापवश काटता और वह ब्राह्मण उन्हें जिला देता, पर धन देकर तक्षकने उसे लौटा दिया। इसीसे राजाकी मृत्यु हुई। अतएव राजन् ! इतनेपर भी आपके पिताका संहार करनेवाला वह तक्षक क्या वैरी नहीं हुआ ? नृपवर ! प्राचीन समयकी बात है—रुरुकी भार्याको सर्पने काट लिया था। वह मर गयी थी। रुरु मुनिके साथ अभी उसका विवाह भी नहीं हुआ था। रुरुने उसे पुनः जीवित कर दिया। साथ ही उसने घोर प्रतिज्ञा की कि 'जो-जो सर्प दिखायी पड़ेगा, उसे अवश्य ही आयुधसे मार डालूँगा।' राजन् ! यों प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् रुरु हाथमें शस्त्र लेकर, जहाँ कहीं भी सर्प मिलते उन्हें मारता हुआ भूमण्डलपर चक्कर लगाने लगा। एक समयकी बात है, एक बूढ़ा अजगर सर्प वनमें बैठा था, उसपर रुरुकी दृष्टि पड़ गयी। तब डंडा लेकर वह उसे मारनेके लिये पास पहुँच गया और क्रोधमें आकर डंडा जमा दिया। चोट लगनेपर उस सर्पने रुरुसे कहा—'ब्राह्मण ! मैं तो तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं करता; फिर तुम मुझे क्यों मार रहे हो ?'

रुरुने उत्तर दिया—एक सर्पने मेरी प्राणप्रिया भार्याको डँस लिया था, इससे उसके प्राण निकल गये थे। सर्प ! उस समय मैंने अत्यन्त दुःखी होकर ऐसी प्रतिज्ञा कर ली थी।

अजगर सर्प बोला—मैं नहीं काटता। जो काटते हैं, वे तो दूसरे ही सर्प हैं। उनका और मेरा शरीर एक समान है—ऐसा मानकर मुझे मारना तुम्हें उचित नहीं।

मुनिवर उत्तङ्क कहते गये—वह अजगर सर्प मनुष्यकी भाषामें मनोहर वाणी बोल रहा था। अतः रुरुने उससे पूछा—'तुम कौन हो और तुम्हें कैसे अजगरकी योनि मिल गयी ?'

अजगर बोला—द्विजवर ! प्राचीन समयकी बात है, मैं एक ब्राह्मण था। मेरा एक मित्र था, जिसकी खेचर नामसे प्रसिद्धि थी। वह मेरा मित्र खेचर सुप्रसिद्ध धर्मात्मा, सत्यवादी और जितेन्द्रिय ब्राह्मण था। मैंने मूर्खतावश तृणका एक सर्प बनाकर उसे धोखेमें डाल दिया। उस समय वह मेरा मित्र अग्निशालामें बैठकर अग्निहोत्र कर रहा था। सर्पको देखकर वह आतङ्कित हो गया। उसके सभी अङ्ग काँपने लगे। अत्यन्त घबराहट उत्पन्न हो गयी। रहस्य खुल जानेपर उसने मुझे शाप दे दिया कि 'अरे मूर्ख ! तूने सर्पसे मुझे भयभीत किया है, अतः तू भी सर्प हो जा।' मुझे तुरंत सर्पकी योनि मिल गयी। फिर जब मेरी प्रार्थनासे अत्यन्त संतुष्ट होनेपर द्विजवर खेचरकी क्रोधाग्नि कुछ शान्त हुई, तब उन्होंने मुझसे कहा—'सर्प ! मुनिवर रुरु इस शापसे तुम्हारा उद्धार करेंगे। प्रमतिसे रुरुका जन्म होना निश्चित है।' वही मैं सर्प हूँ और तुम रुरु हो। मेरी इस उत्तम बातपर ध्यान दो। ब्राह्मणोंके लिये अहिंसा सर्वोत्तम धर्म है।

इसमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि वह सर्वत्र दयाभाव रखे।

मुनिवर उत्तङ्क कहते रहे—वह अजगर पूर्वजन्मका ब्राह्मण था। रुरुके मारनेपर उसका शापसे उद्धार हो गया। उसे शापमुक्त करनेके बाद रुरुने सर्पोंको मारना बंद कर दिया। अपनी उस मरी हुई स्त्रीको फिरसे जीवित करके उसके साथ विवाह कर लिया। यों रुरुने पूर्व-वैर याद रखते हुए बहुत-से सर्पोंकी सत्ता मिटा डाली। एक तुम हो, जो सर्पोंके प्रति उठी शत्रुताको भूलकर मौज कर रहे हो। राजेन्द्र! तुम भरतवंशी राजाओंमें सबसे उत्तम माने जाते हो। तुम्हें पिताके मारनेवालोंपर अत्यन्त कुपित हो जाना चाहिये। तुम्हारे मृत पिता आकाशमें भटक रहे हैं। तुम सर्पोंको मारकर पिताका उद्धार करनेमें उद्यत हो जाओ; क्योंकि पिताके वैरको भूला हुआ प्राणी जीता हुआ भी मरा ही समझा जाता है। नृपवर! जबतक तुम सर्पोंको मार न डालोगे, तबतक तुम्हारे पिताकी सद्गति होनी असम्भव है। अतः अम्बा-यज्ञ करके उन्हें मारनेका यत्न करना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है। महाराज! पिताका वैर याद रखते हुए उस यज्ञमें सभी सर्प होम दिये जायँगे।

सूतजी कहते हैं—जब जनमेजयने मुनिवर उत्तङ्ककी बात सुनी, तब उनकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े, मनपर संतापकी घटा उमड़ आयी। वे बोले—'मैं महान् मूर्ख हूँ। मुझे धिक्कार है। मैंने व्यर्थ ही अपनेको बड़ा मान रखा है। तभी तो मुझ मूर्खके पिताको सर्पने काट लिया, जिससे वे दुर्गति भोग रहे हैं। अच्छा, अब मैं यज्ञ करके पिताका बदला चुकाऊँगा। सचमुच प्रज्वलित अग्निमें सर्पोंका संहार कर देना परम आवश्यक है। फिर मनमें कोई खटका न रह जायगा।' उसी क्षण जनमेजयने सम्पूर्ण मन्त्रियोंको बुलाया और उनसे यह वचन कहा—'मन्त्रिवरो! आप सब लोग यज्ञकी यथोचित सामग्री तैयार करें। उत्तम ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे गङ्गाके तटपर पवित्र भूमिका पता लगावें। वहाँ सावधान होकर ऐसा सुन्दर मण्डप बनवावें, जिसमें सौ खम्भे लगे हों। मन्त्रियो! मेरे इस यज्ञमें वेदीका निर्माण होना बहुत आवश्यक है। विस्तारपूर्वक सर्पमेध-यज्ञ किया जायगा। तक्षक यज्ञपशु बनेगा, मुनिवर उत्तङ्क होताका कार्य सम्पन्न करेंगे। आपलोग शीघ्र वेदके पारगामी बहुज्ञ ब्राह्मणोंका आवाहन करें।'

सूतजी कहते हैं—महाराज जनमेजयके मन्त्री बड़े बुद्धिमान् थे। राजाके आज्ञानुसार वे कार्य करनेमें संलग्न हो गये। यज्ञकी सभी सामग्री तैयार कर ली गयी। विस्तृत वेदीका निर्माण करा लिया गया। सर्पोंकी आहुति आरम्भ हो गयी। तक्षक भागकर इन्द्रके पास चला गया। उसने उनसे प्रार्थना की—'प्रभो! मैं भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।' इन्द्रने डरे हुए तक्षकको आश्वासन देकर अपने आसनके पास बिठा लिया। उन्होंने उसे सर्वथा अभय बना दिया और कहा—'सर्प! अब तू निर्भय हो जा।' तक्षकने इन्द्रकी शरण ले ली है और देवराजने उसे अभय प्रदान कर दिया है—यह जानकर मुनिवर उत्तङ्क छटपटा उठे। तब उन्होंने इन्द्रसहित तक्षकका आवाहन किया। उधर तक्षकने यायावर-कुलमें उत्पन्न होनेवाले धर्मात्मा आस्तीकका स्मरण किया। वे मुनिवर जरत्कारु मुनिके लड़के थे। मुनिकुमार आस्तीक वहाँ आये और महाराज जनमेजयसे उन्होंने बड़ी प्रार्थना की। मुनि आस्तीक बचपनमें ही बड़े विद्वान् थे। उनकी प्रतिभा देखकर महाराजने उनका यथोचित

स्वागत किया और मुनि क्या चाहते हैं, यह जाननेकी इच्छा प्रकट की। तब आस्तीकने कहा—'महाभाग! अब आप यज्ञ करना बंद कर दें।' राजा जनमेजय सत्यवचनसे बँध चुके थे। मुनिने पुनः वही प्रार्थना की। फिर तो मुनिके कथनानुसार राजाको सर्पोंकी आहुति समाप्त कर देनी पड़ी।

तदनन्तर वैशम्पायनजी विस्तारपूर्वक राजाको महाभारतकी कथा सुनाने लगे। सम्पूर्ण कथा सुन लेनेपर भी महाराज जनमेजयके मनको समुचित शान्ति न मिल सकी। तब उन्होंने व्यासजीसे पूछा कि 'मेरे चित्तके शान्त होनेका क्या उपाय है? मेरे अन्तःकरणमें सदा आग-सी लगी रहती है। मुनिवर! बताइये, मैं क्या करूँ। मेरा भाग्य बड़ा ही खोटा है। तभी तो मेरे पिता, जो अर्जुनके पौत्र थे, दुर्मरणके चक्करमें पड़ गये। महाभाग व्यासजी! समराङ्गणमें शरीर त्याग देना क्षत्रियोंके लिये उत्तम मृत्यु मानी जाती है। घरपर हो अथवा युद्ध-भूमिमें, किंतु विधिपूर्वक मरण होना समुचित था। मेरे पिताजी ऐसी मृत्युसे वञ्चित रहे। ऊपर—अन्तरिक्षमें विवश होकर उन्हें शरीर छोड़ना पड़ा। अतः सत्यवतीनन्दन व्यासजी! अब आप शान्तिका कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे दुर्मरणसे प्राण त्यागे हुए मेरे पिताजी शीघ्र ही स्वर्गके अधिकारी बन जायँ।'

सूतजी कहते हैं—राजा जनमेजयकी उपर्युक्त बातें सुनकर सत्यवतीनन्दन व्यासजी उस सभामें ही उनसे कहने लगे।

व्यासजी बोले—राजन्! मैं अत्यन्त अद्भुत एवं परम गोपनीय पुराण तुमसे कहूँगा, इस पावन पुराणका नाम श्रीमद्देवीभागवत है। इसमें अनेकों इतिहास उद्धृत हैं। मैंने बहुत पहले अपने पुत्र शुकदेवको यह पुराण पढ़ाया था। राजन्! अब इसे तुम्हें सुना रहा हूँ। यह मेरी बात परम गोपनीय है—सर्वत्र प्रकट नहीं करनी चाहिये। इस पुराणके श्रवणसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभी सुलभ हो जाते हैं। कल्याणकारी एवं अक्षय सुख देनेवाले इस पुराणमें सम्पूर्ण वेदोंका सार भाग रख दिया गया है।

जनमेजयने पूछा—प्रभो! यह आस्तीक किसका पुत्र था और क्यों विघ्न डालनेके लिये आ गया था? सर्पोंकी रक्षा करनेसे उसका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो रहा था, जिससे उसने ऐसी चेष्टा की? महाभाग! आप उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हैं। ये सभी बातें स्पष्टरूपसे कहनेकी कृपा कीजिये। साथ ही सम्पूर्ण पुराण भी विशदरूपसे सुना दीजिये।

व्यासजी कहते रहे—एक जरत्कारु नामक मुनि थे। उनका स्वभाव बड़ा ही सौम्य था। उन्होंने गृहस्थाश्रमकी व्यवस्था नहीं की थी। वनमें विचर रहे थे। देखा, उनके पूर्वज एक गड़हेमें लटके हुए थे। तब उन पितरोंने जरत्कारुसे कहा—'पुत्र! तुम विवाह कर लो, जिससे हम परम तृप्त हो सकें। यह निश्चय है कि तुम सदाचारी पुत्रके प्रभावसे हम दुःखोंसे मुक्त होकर स्वर्गके अधिकारी बन जायँगे।' उस समय जरत्कारुने पितरोंसे कहा—'पूर्वजो! यदि समान नामवाली तथा निरन्तर अधीनता स्वीकार करनेवाली कोई कन्या बिना माँगे मुझे मिल जाय तो मैं गृहस्थ बननेको तैयार हूँ। मेरी बात बिलकुल सत्य है।' इस प्रकार पितरोंसे कहकर वे ब्राह्मण जरत्कारु तीर्थोंमें घूमने चले गये। उसी समय सर्पोंकी माताने पुत्रोंको शाप दे दिया कि 'तुम आगमें गिर जाओ'। वह प्रसङ्ग इस प्रकार है कि कश्यप मुनिकी दो भार्याएँ थीं—कद्रू और विनता। भगवान् सूर्यके रथमें जुते घोड़ेको देखकर वे आपसमें विवाद करने लगीं। उस

समय घोड़ेको देखकर कद्रूने विनतासे पूछा—'कल्याणी ! यह अश्व किस रंगका है ? सच्ची बात कहो। विलम्ब नहीं होना चाहिये।'

विनता बोली—भद्रे ! यह उत्तम अश्व निश्चय सफेद रंगका है। तुम इसे क्या मानती हो ? कहो, तुम्हारी समझमें यह किस वर्णका है ? फिर हम वह बाजी लगायें कि यदि मेरी हार होगी तो मैं तुम्हारी दासी बन जाऊँगी और तुम हार जाओगी तो तुम्हें मेरी दासता स्वीकार करनी होगी।

कद्रूने कहा—सुमुखी ! मेरी समझसे तो यह अश्व काले रंगका है। बात ठीक है, अतः तुम दिव्य दासी बननेके लिये मेरे पास आ जाओ।

सूतजी कहते हैं—उस समय कद्रूके पास बहुत-से छोटे-छोटे काले सर्प थे। उन अपने सभी पुत्रोंसे कद्रूने कहा—'तुमलोग इस घोड़ेके सर्वाङ्गमें लिपटकर इसे काला बना दो।' कुछ पुत्रोंने माताकी आज्ञा नहीं मानी। तब माता कद्रूने उन्हें शाप दे दिया कि 'जनमेजयके यज्ञमें आग धधकती रहेगी और तुमलोग जाकर उसमें भस्म हो जाओगे।' अन्य सर्पोंने आज्ञा मान ली। माताको प्रसन्न करनेके लिये वे उस घोड़ेकी पूँछमें जाकर लिपट गये। अतः वह अश्व काले रंगका दीखने लगा। अब कद्रू और विनता दोनों बहनें एक ही साथ गयीं और घोड़ेको देखने लगीं। वह अश्व कृष्ण वर्णका दीख रहा था, यह देखकर विनताका मन संतप्त हो उठा। उसी समय विनताके पुत्र गरुड़ आये। गरुड़में असीम शक्ति थी। वे सर्पोंको निगल जाते थे। माताको दुःखी देखकर उन्होंने पूछा—'माता ! तुम क्यों अत्यन्त खिन्न हो ? मुझे ज्ञात होता है, मानो तुम रो रही हो। तुम्हारा एक पुत्र मैं और दूसरा सूर्यका रथ हाँकनेवाला अरुण—ये दोनों जीवित हैं। पुण्यमयी माता ! हम दोनोंके रहते हुए तुम्हें दुःख भोगना पड़े तो हमारे जीनेको धिक्कार है। उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ हुआ, जो माताके दुःखको दूर न कर सके। माता ! मुझसे अपने संतापका कारण बताओ। मैं अभी तुम्हें सुखी बना देता हूँ।'

विनताने कहा—'पुत्र ! मैं सौतकी दासी बन गयी हूँ। क्या कहूँ, ऐसी विपत्ति व्यर्थ ही मेरे सिर आ पड़ी है। वह सौत मुझे आज्ञा देती है कि तू मुझे कंधेपर चढ़ाकर ले चल। पुत्र ! इस समय यही मेरे दुःखका कारण है।

गरुड़ बोले—माता ! मैं उसे वहाँ अवश्य पहुँचा दूँगा, जहाँ वह जाना चाहती है। कल्याणी ! तुम शोक मत करो। तुम्हारी सारी चिन्ता दूर कर देता हूँ !

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार गरुड़के कहनेपर विनता कद्रूके पास गयी। महाबली गरुड़ भी माता विनताको दासीपनसे मुक्त करनेके लिये साथ गये। उन्होंने पुत्रसहित कद्रूको कंधेपर उठा लिया और समुद्रके उस पार चल पड़े। वहाँ पहुँच जानेपर गरुड़ने कद्रूसे कहा—'माता ! तुम्हें प्रणाम है। मुझे निश्चित-रूपसे यह बतानेकी कृपा करो कि मेरी माँ किस प्रकार दासीभावसे मुक्त हो सकेगी।'

कद्रूने कहा—पुत्र ! तुम अभी स्वर्गसे बलपूर्वक अमृत ले आकर मेरे लड़कोंको सौंप दो। यों करके तुम अपनी अबला माताका शीघ्र उद्धार कर सकते हो।

व्यासजी कहते हैं—कद्रूके इस प्रकार कहनेपर पक्षिराज महाबली गरुड़ तुरंत इन्द्रलोक चले गये। वहाँ उन्होंने युद्ध करके अमृतका कलश छीन लिया और अमृत लाकर विमाता कद्रूको दिया। उनके इस प्रयाससे माता विनता निस्संदेह दासीभावसे मुक्त हो गयी। जब सर्प

स्नान करनेके लिये चले गये, तब इन्द्रने चुपकेसे अमृत चुरा लिया। उधर गरुड़के प्रभावसे विनता तो दासीभावसे मुक्त हो ही गयी थी। वहाँ कुशाएँ बिछी थीं। सर्प आकर उन कुशाओंको चाटने लगे। कुशाओंकी नोक बड़ी ही तीक्ष्ण थी, उसका स्पर्श होते ही सर्प दो जीभवाले हो गये। माता कद्रूने अपने जिन पुत्रोंको शाप दिया था, वे वासुकि प्रभृति नाग ब्रह्माजीकी शरणमें गये और शापसे उत्पन्न होनेवाले भयकी बात उनसे कह सुनायी। तब महाभाग ब्रह्माजीने उन सर्पोंसे कहा—'वासुके ! जरत्कारु नामक एक श्रेष्ठ मुनि हैं। उन्हीं-जैसे नामवाली अपनी बहन तुम उन्हें सौंप दो। उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तुमलोगोंकी रक्षा करेगा। आस्तीक नामसे उसकी प्रसिद्धि होगी। इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है।' ब्रह्माजीकी वह कल्याणमयी वाणी सुनकर वासुकि वनमें गया और अपनी बहनको विनयपूर्वक मुनिको सौंप दिया। उस कन्याका नाम भी जरत्कारु था। जरत्कारु मुनिने उसे अपने समान नामवाली जानकर वासुकिसे कहा—'जिस क्षण यह मेरा अप्रिय कार्य करेगी, उसी क्षण मैं इसे त्याग दूँगा।' इस प्रकार वचनबद्ध करके स्वयं मुनिने उस कन्याके साथ विवाह कर लिया। कन्या सौंपकर वासुकि इच्छानुसार अपने घरकी ओर चल पड़ा।

परंतप ! इसके बाद जरत्कारु मुनि उस महान् वनमें स्वच्छ पर्णकुटी बनाकर उस भार्याके साथ विहार करते हुए सुखसे जीवन व्यतीत करने लगे। एक समयकी बात है, वे मुनिवर जरत्कारु भोजन करके सोने लगे। वहीं वासुकिकी सुन्दरी बहन, जो मुनिकी पत्नी थी, बैठी थी। उससे उन्होंने कहा—'प्रिये ! किसी प्रकारकी भी स्थिति क्यों न आ जाय; तुम मुझे जगाना मत।' उस नवयुवती भार्यासे यों कहकर मुनि निद्रादेवीके अधीन हो गये। जब अंशुमाली अस्ताचलपुर सिधारे, संध्याका समय उपस्थित हो गया और मुनि जगे नहीं, तब धर्मलोपके भयसे डरकर उनकी भार्या जरत्कारु चिन्तित हो उठी। सोचा, 'क्या करूँ ? मेरे मनमें शान्ति नहीं होती। यदि मुनिको जगा देती हूँ तो ये मुझे त्याग देंगे; और यदि नहीं जगाती हूँ तो संध्याका समय व्यर्थ ही चला जायगा। पतिके धर्मनाशकी अपेक्षा यह त्याग उत्तम है; क्योंकि मृत्यु तो निश्चित ही है। धर्महीन पुरुषोंको बार-बार नरक भोगने पड़ते हैं।' यों भलीभाँति सोच-समझकर उस बेचारी जरत्कारुने अपने पतिदेव मुनि जरत्कारुको जगा दिया। उसने कहा—'सुव्रत ! उठिये, उठिये। संध्या करनेका समय उपस्थित हो गया है।' मुनिकी नींद टूट गयी। उन्होंने पत्नी जरत्कारुसे कहा—'निद्रामें विघ्न डालनेवाली !

मैं जा रहा हूँ। तू अब अपने भाईके घर चली जा।' मुनिके यों कहते ही जरत्कारुका सर्वाङ्ग काँप उठा। वह उनसे कहने लगी—'अमित-तेजस्वी प्रभो ! मेरे भाईने जिस कामके लिये मुझे आपकी सेवामें सौंपा है, वह कैसे पूर्ण

होगा ?' तब मुनिने शान्तचित्त होकर उत्तर दिया—'वह तो है ही।' मुनिके त्याग देनेपर वह स्त्री अपने भाई वासुकिनागके घर चली गयी। जब वासुकिने उससे पूछा, तब पतिदेवकी कही हुई बात उनको सुना दी और यह भी कहा—"मेरी प्रार्थनापर मुनि 'अस्तीति' कहनेके पश्चात् मुझे छोड़कर चले गये।" बहनकी बात सुनकर वासुकिको पूर्ण विश्वास हो गया। उसने सोचा, 'मुनि बड़े सत्यवादी हैं। उनकी वाणी विफल नहीं हो सकती।' तब उसने जरत्कारुको अपने घरपर रख लिया। कुछ समय व्यतीत हो जानेपर मुनिका वंशधर पुत्र जरत्कारुके उदरसे उत्पन्न हुआ। कुरुश्रेष्ठ ! उसी पुत्रकी अस्तीति नामसे प्रसिद्धि हुई। वही बालक भविष्यमें आस्तीक मुनिके नामसे विख्यात हुआ।

राजेन्द्र ! माताके कुलकी रक्षा करनेके लिये उसने तुम्हारे यज्ञमें आकर तक्षकको बचा लिया। महाराज ! यही यायावरका कुलदीपक आस्तीक है। वासुकिनागकी बहन जरत्कारु इसकी जननी थी। इस मुनिका काम सराहनीय था। तुमने भी उसे मान्यता दी थी। महाबाहो ! तुम्हारा कल्याण हो। राजन् ! अब तुम भक्तिपूर्वक भगवती जगदम्बिकाका एक बहुत विशाल मन्दिर बनवाओ, जिसके पुण्यसे तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकेगी। उत्तम भक्तिसे आराधना करनेपर भगवती जगदम्बिका सदा समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देती हैं, कुलका अभ्युदय करनेके साथ ही राज्यको कभी विचलित नहीं होने देतीं। राजेन्द्र ! तुम नवरात्रव्रत करके श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराणका श्रवण करो। मैं तुम्हें उसे सुना दूँगा। यह अलौकिक कथा परम पवित्र, संसारसे उद्धार करनेवाली तथा अनेक रसोंसे परिपूर्ण है। राजेन्द्र ! जिनके प्रेमपरिपूर्ण चित्तमें भगवती सदा विराजमान रहती हैं, उन विचारकुशल पुरुषोंको धन्य है। वे ही भाग्यवान् गिने जाते हैं। भारत ! महामायास्वरूपिणी भगवती जगदम्बिकाकी जो निरन्तर उपासना नहीं करते, वे मानव इस भारतवर्षमें महान् दुःखी दिखायी पड़ते हैं। राजन् ! जब ब्रह्मासे लेकर सम्पूर्ण देवता सदा उनकी आराधनामें तत्पर रहते हैं, तब कौन मनुष्य है जो उनकी सेवासे विमुख होकर सुखी रह सके। जो निरन्तर इस पुराणको सुनता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह सर्वोत्कृष्ट पुराण सर्वप्रथम आधे श्लोकमें भगवती आद्या शक्तिने विष्णुके लिये कहा था। राजन् ! इसीके श्रवणसे तुम्हारा चित्त शान्त हो जायगा और पितरोंको सदा स्वर्गमें रहनेकी सुविधा मिल जायगी।

(अध्याय ११-१२)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका दूसरा स्कन्ध समाप्त

★

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## तीसरा स्कन्ध

### जनमेजयका श्रीव्याससजीसे प्रधान देवता तथा ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति एवं स्वरूपके सम्बन्धमें प्रश्न, ब्रह्माजीके द्वारा नारदजीके प्रति भगवती आद्या शक्तिके प्रभावका वर्णन, श्रीदेवीजीके द्वारा दिये हुए विमानपर श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेशका विविध लोकोंमें गमन तथा वहाँके विलक्षण दृश्योंको देखते हुए अन्तमें भगवतीके दिव्य द्वीपमें पहुँचना

जनमेजयने पूछा—भगवन्! आपने अम्बायज्ञ अर्थात् परम पवित्र नवरात्र-व्रत करके उसके द्वारा देवीके आराधन करनेकी आज्ञा दी है। अतः वे कौन देवी हैं, कैसे और कब प्रकट हुईं ? उनके पधारनेका क्या उद्देश्य है तथा वे किन गुणोंसे विभूषित हैं ? अम्बायज्ञ किस प्रकार होता है ? उसका कैसा रूप है और क्या विधान है ? दयानिधे ! आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं। विधिवत् सब वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। ब्रह्मन्! साथ ही विस्तारपूर्वक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति भी कहिये; क्योंकि भूदेव ! ब्रह्माण्डके विषयमें जो कुछ कहा गया है तथा वह जैसा, जो है, ये सभी बातें आप जानते हैं। मैंने सुना है कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन सगुण देवता हैं। क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारके कार्यका उत्तरदायित्व इनपर रहता है। पराशरनन्दन व्यासजी ! अब मैं इनके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ, आप बतलानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तुम्हारी बुद्धि बड़ी विशाल है। अभी तुमने जो पूछा है कि ब्रह्मादिकी उत्पत्ति कैसे हुई, सो वह महान् कठिन विषय है। उसमें अनेक प्रश्न उठ जाते हैं। यही प्रश्न पूर्व समयमें मैंने नारदजीसे किया था। उन्होंने जो उत्तर दिया, वह मुझे याद है। राजन्! कहता हूँ, सुनो। एक समयकी बात है—गङ्गाके तटपर सर्वज्ञानसम्पन्न मुनिवर नारदजी विराजमान थे। वेदके सर्वोत्कृष्ट ज्ञाता उन मुनिका मुझे दर्शन हुआ। वे बड़े शान्तस्वरूप थे। उन्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं सामने जाकर उनके चरणोंपर लोट गया। उन्होंने आज्ञा दी तब समीपमें ही एक सुन्दर आसनपर मैं जा बैठा। उस समय मुनिवर नारदजी गङ्गाके तटपर एक निर्जन स्थानमें बिछी हुई बालूपर बैठे थे। कुशल-प्रश्न हो जानेके पश्चात् मैंने नारदजीसे पूछा। मैंने कहा—'मुने ! आप बुद्धिमान् हैं। मुझे यह बतानेकी कृपा कीजिये कि इस विस्तृत ब्रह्माण्डके प्रधान कर्ता कौन हैं। मुनिवर ! यह ब्रह्माण्ड कहाँसे उत्पन्न हो गया ? द्विजवर ! साथ ही यह भी बताइये कि यह ब्रह्माण्ड विनाशशील है अथवा सदा रहनेवाला है ? इसकी रचना

करनेवाला कोई एक है अथवा बहुत-से इसके रचयिता हैं ? कर्ताके अभावमें कार्यका होना असम्भव है। यह प्रश्न मेरे मनमें उठा करता है। कुछ लोग भगवान् शंकरको परम कारण मानकर जगत्का रचयिता बतलाते हैं। वे कहते हैं, देवाधिदेव भगवान् शंकर अविनाशी पुरुष हैं—उनका कभी जन्म और मरण नहीं होता। वे आत्मामें रमण करनेवाले हैं। देवताओंपर भी उनका शासन बना रहता है। तीनों गुण रहते हुए भी उनसे वे निर्लिप्त रहते हैं। वे संसाररूपी सागरसे उद्धार करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं। अतः वे ही सृष्टि, स्थिति और संहारके आदिकारण हैं।

दूसरे कई लोग भगवान् विष्णुकी प्रशंसा किया करते हैं; वे शक्तिशाली पुरुष, अव्यक्त, अखिल ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, परब्रह्म परमात्मा हैं। उनकी कृपासे भक्ति और मुक्ति दोनों सुलभ हो जाती हैं। वे शान्तस्वरूप हैं। सभी ओर उनका मुख है। वे व्यापक पुरुष हैं, विश्वको शरण देना उनका स्वभाव ही है। वे कभी जन्मते और मरते नहीं।

कुछ दूसरे लोग ब्रह्माजीको सृष्टिका प्रधान कारण बतलाते हैं। उनका कथन है कि ब्रह्माजी ही सर्ववेत्ता पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्रगतिका श्रेय उन्हींके ऊपर है। वे देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्मा विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट हुए हैं। कुछ दूसरे वेदवादी जन सर्वेश सूर्यको जगत्स्रष्टा कहते हैं। वे सावधान होकर प्रातः-सायं उनकी स्तुति और यशोगान किया करते हैं। कितने लोग शतक्रतु इन्द्रको प्रधान मानकर यज्ञमें उनकी उपासना करते हैं। वे कहते हैं, देवराज इन्द्रके हजार आँखें हैं तथा वे सम्पूर्ण प्राणियोंके साक्षात् स्वामी हैं। यज्ञेश, सुरेश एवं त्रिलोकेश कहलानेका उन्हें अधिकार प्राप्त है। वे शचीके स्वामी, यज्ञोंके भोक्ता, सोमरस पीनेवाले एवं सोमोंके प्रेमी हैं। कुछ दूसरे-दूसरे सम्प्रदायवाले वरुण, सोम, अग्नि, पवन, यम, कुबेर एवं गणराज गणेशको प्रधान देवता मानते हैं। कहते हैं कि गजवदन गणेशजी सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर देते हैं। उनका स्मरण करनेसे ही सिद्धि सुलभ हो जाती है। वे यथेच्छ कार्य सिद्ध करनेवाले देवता हैं।

कितने आचार्य भवानीको सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली बतलाते हैं। वे आदि माया महाशक्ति एवं परम पुरुषके साथ रहकर कार्य सम्पादन करनेवाली प्रकृति हैं। ब्रह्मके साथ उनका अभेद सम्बन्ध है। वे सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्यमें संलग्न रहती हैं। सम्पूर्ण प्राणियों एवं देवताओंकी भी वे जननी हैं। उनका कभी जन्म और मरण नहीं होता। वे पूर्णतामयी देवी प्राणियोंमें व्यापकरूपसे विराजमान रहती हैं। वे अखिल विश्वकी अधीश्वरी हैं। सगुण, निर्गुण एवं कल्याणमय उनका विग्रह है। वैष्णवी, शाम्भवी, ब्राह्मी, वासवी, वारुणी, वाराही, नारसिंही तथा अद्भुत महालक्ष्मी नामसे वे विख्यात हैं। उन्हींसे वेद प्रकट हुए हैं। वे ही विद्या कहलाती हैं। उन्हींके आधारपर संसार-रूपी वृक्ष टिका है। वे सम्पूर्ण दुःखोंको दूर कर देती हैं। उनका स्मरण करनेसे ही मनुष्य समस्त काम्यवस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। वे मुक्ति चाहनेवालोंको मुक्ति और फल चाहनेवालोंको अभीष्ट फल देती हैं। उनका स्वरूप सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे परे है। गुणोंका विस्तार उन्हींसे होता है। वे निर्गुण होते हुए भी

सगुण हैं। अतएव फल चाहनेवाले पुरुष उनका ध्यान करते हैं। कितने श्रेष्ठ मुनि कहते हैं कि जो निरञ्जन, निराकार, निर्लेप, निर्गुण, अरूप एवं व्यापक ब्रह्म हैं, उन्हींसे जगत्की सृष्टि हुई है। कहीं-कहीं वेद और उपनिषद्में वे ही ब्रह्म तेजोमय बतलाये गये हैं। वे प्रधान पुरुष हैं। हजारों मस्तकों, आँखों, कानों, हाथों, मुखों और चरणोंसे वे सम्पन्न हैं। आकाश श्रीविष्णुका चरण है—यह बात स्पष्ट रूपसे कही गयी है। विद्वान् पुरुष शान्त निरञ्जन विराद् पुरुषको ही प्रधान बताते हैं। कुछ दूसरे प्राचीन रहस्यके जानकार लोग उन्हें पुरुषोत्तम कहते हैं। कुछ अन्य सम्प्रदायके सदस्य कहते हैं कि कभी भी कोई विशिष्ट न रहा है और न है।

कुछ लोग कहते हैं कि यह सारा ब्रह्माण्ड अनीश्वर है—कभी भी कोई विशिष्ट पुरुष इसकी रचना नहीं करते। यह जगत् अचिन्त्य है। सदा बना रहता है। कोई इसका अधिष्ठाता नहीं है। स्वाभाविक ढंगसे ही यह उत्पन्न हो जाता है। प्रकृति-पुरुष भी इसके कर्ता नहीं कहे जाते। देवताओंमें सभी सत्त्वगुण विद्यमान हैं, उनमें सत्य धर्मकी प्रतिष्ठा भी है, किंतु दुरात्मा दानव उन्हें सदा पीड़ा पहुँचाया करते हैं। फिर धर्मकी मर्यादा कहाँ रही? मेरे वंशज पाण्डव बड़े धर्मात्मा थे। उनके द्वारा सदा धर्मका पालन होता था। फिर भी उन्हें भाँति-भाँतिके दुःखोंका सामना करना पड़ा। मुनिवर ! आप शक्तिशाली पुरुष हैं। मेरे मनका संदेह दूर करनेकी कृपा करें। मुने ! ज्ञानरूपी नौकाद्वारा संसार-समुद्रसे आप मेरा उद्धार कर दें। यह संसार मोहरूपी जालसे परिपूर्ण है; मैं इसमें डूबता, गिरता एवं अचेत पड़ा रहता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—महाबाहो ! कुरुवंशी राजाओंमें तुम सर्वश्रेष्ठ राजा हो। तुमने जो बातें पूछी हैं, वे ही मैंने मुनिवर नारदजीसे पूछी थीं।

नारदजी कहते हैं—व्यासजी ! प्राचीन समयकी बात है—यही संदेह मेरे हृदयमें भी उत्पन्न हो गया था। तब मैं अपने पिता अमित-तेजस्वी ब्रह्माजीके स्थानपर गया और उनसे इस समय जिस विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी विषयमें मैंने पूछा। मैंने कहा—'पिताजी ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कहाँसे उत्पन्न हुआ है? विभो ! आपने सम्यक् प्रकारसे इसकी रचना की है? अथवा विष्णु इस विश्वके रचयिता हैं? या शंकरने इसकी सृष्टि की है? जगत्प्रभो ! आप विश्वके आत्मा हैं। सच्ची बात बतानेकी कृपा करें। किन देवताकी पूजा करनी चाहिये? तथा कौन देवता सबसे बड़े एवं सर्वसमर्थ हैं? निष्पाप ब्रह्माजी ! इन सभी प्रश्नोंका समाधान करके मेरे हृदयके संदेहको दूर करनेकी कृपा कीजिये। सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! इस प्रकार मेरे प्रश्न करनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी मुझसे कहने लगे।'

ब्रह्माजीने कहा—बेटा ! मैं इस प्रश्नका क्या उत्तर दूँ? यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है। महाभाग ! तुम भगवान् विष्णुसे इसका समुचित समाधान पा सकते हो। महामते ! इस संसारमें कोई भी रागी पुरुष ऐसा नहीं है, जिसे यह रहस्य विदित हो। जो त्यागी, आकाङ्क्षारहित एवं ईर्ष्याशून्य है, वही इसके रहस्यको जान सकता है। पूर्वकालमें सर्वत्र जल-ही-जल था। स्थावर-जङ्गम जितने प्राणी हैं, इनमें कोई भी नहीं थे। तब कमलसे मेरी उत्पत्ति हुई। उस समय मुझे सूर्य, चन्द्रमा, वृक्ष तथा पर्वत—कोई

भी दिखायी नहीं पड़े। मैं कमलकी कर्णिकापर बैठकर विचार करने लगा—'इस अगाध जलमें मैं कैसे उत्पन्न हो गया ? कौन मेरा रक्षक है तथा इस प्रलयकालमें सृष्टि एवं संहार करनेवाले कौन विशिष्ट पुरुष हैं ? कहीं भी स्पष्टरूपसे भूमि भी नहीं दीखती, जिसपर यह जल टिका हुआ है। यह कमल कैसे उत्पन्न हुआ ? रूढ एवं यौगिक—दोनों अर्थोंमें कोई इसका कारण होना ही चाहिये। यौगिक अर्थ करनेपर इसका मूल कारण पङ्क होता है। तो अब देखूँ कि वह पङ्क है कहाँ। जहाँ वह मूल कारण पङ्क होगा, उसके नीचे पृथ्वी अवश्य होगी।' यों विचार करके मैं जलमें उतरा। एक हजार वर्षतक पृथ्वीका अन्वेषण करता रहा, इसपर भी मुझे उस जलका कहीं ओर-छोर नहीं मिला। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'तप करो, तप करो।' तब मैंने तपस्या आरम्भ कर दी। कमलपर बैठे ही हजार वर्षतक मैं तप करता रहा। फिर उसी समय 'सृष्टि करो'—ऐसी आकाशवाणी सुनायी पड़ी। उसे सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। सोचा कि किसकी सृष्टि करूँ अथवा मेरा क्या कर्तव्य है।

उसी समय मधु और कैटभ नामके दो भयंकर दानव सामने आ गये। वे उस महार्णवमें मुझसे युद्ध करनेकी इच्छा प्रकट करने लगे। मैं उनसे भयभीत हो उठा। तब कमलका डंठल पकड़कर जलमें उतरा। वहाँ मुझे एक परम अद्भुत पुरुषके दर्शन मिले। उनका श्रीविग्रह मेघके समान श्याम था। वे पीताम्बर पहने थे। चार भुजाएँ थीं। शेषनागकी शय्यापर सोये थे। उन जगत्प्रभुके गलेको वनमाला सुशोभित कर रही थी। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म—इन चार आयुधोंसे वे अनुपम शोभा पा रहे थे। ऐसे शेषशायी भगवान् विष्णुका मुझे दर्शन हुआ। वे योगनिद्राके वशीभूत होकर गाढ़ी नींदमें सोये हुए थे। उनकी सारी चेष्टाएँ शान्त थीं। नारदजी! शेषनागकी शय्यापर सोये हुए उन प्रभुको देखकर मेरा मन चिन्तित हो उठा। इतनेमें भगवती योगनिद्रा याद आ गयीं। मैंने उनका स्तवन किया। तब वे कल्याणमयी भगवती श्रीविष्णुके विग्रहसे निकलकर अचिन्त्य रूप धारण करके आकाशमें विराजमान हो गयीं। दिव्य आभूषण उनकी छवि बढ़ा रहे थे। जब योगनिद्रा भगवान् विष्णुके शरीरसे अलग होकर आकाशमें विराजने लगी, तब तुरंत ही श्रीहरि उठ बैठे। उन्होंने मधु और कैटभके साथ पाँच हजार वर्षोंतक बड़ी घमासान लड़ाई की। तब वे दैत्य मरे। पहले देवीके कटाक्षसे मधु और कैटभ मोहित हो गये थे। इसके बाद भगवान् विष्णुने गोदमें लेटाकर उन्हें वहीं प्राणोंसे रहित कर दिया। अब वहाँ मैं और भगवान् विष्णु—दो थे। वहीं रुद्र भी प्रकट हो गये। हम तीनोंको भगवती आद्या शक्तिके दर्शन हुए। उन्हें देखकर मन मुग्ध हो गया। हमने उनकी उत्तम स्तुति की। तब वे आदिशक्ति हमलोगोंसे कहने लगीं।

देवीने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर! तुम भलीभाँति सावधान होकर अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो जाओ। सृष्टि, स्थिति और संहार—ये तुम्हारे कार्य हैं। इन महान् पराक्रमी दैत्योंका निधन हो जानेपर अब तुम्हें अपना स्थान बनाकर शान्तिपूर्वक निवास करना चाहिये। तुम अब अपने सामर्थ्यसे चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करो।

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवती आद्या शक्तिकी

वह वाणी बड़ी मधुर, सुन्दर एवं सुखप्रद थी। हमने वह स्पष्ट सुनी। हमलोगोंने उनसे कहा—'माता ! हम किस प्रकार इन प्रजाओंके सृजन आदि कार्य करनेमें सफल हों ? विस्तृत भूमिका अभाव है। सभी स्थान जलमग्न हैं। पञ्चभूत, गुण एवं तन्मात्र इन्द्रियाँ चाहिये, परंतु उनका भी अभाव है।' हमारी बात सुनकर उन कल्याण-स्वरूपिणी भगवतीका मुखमण्डल मुसकानसे भर गया। इतनेमें एक सुन्दर विमान आकाशसे उतर आया। तब उन देवीने हमें आज्ञा दी—'देवताओ ! निर्भीक होकर इच्छापूर्वक इस विमानमें प्रवेश कर जाओ। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ! आज मैं तुम्हें एक अद्भुत दृश्य दिखलाती हूँ।' हमने भगवतीकी बात सुनकर उसे शिरोधार्य कर लिया। उस रत्नजटित विमानपर चढ़कर हमलोग आरामसे बैठ गये। वह विमान मोतियोंकी मालासे सुशोभित था। उससे अनेकों किङ्किणियोंकी ध्वनि हो रही थी। अमरावतीकी तुलना करनेवाले उस भव्य विमानपर हम तीनों निर्भीक होकर बैठे थे।

इन्द्रिय-विजयी हम तीनों देवताओंको उसपर बैठे देखकर देवीने अपने सामर्थ्यसे विमानको आकाशमें उड़ा दिया।

ब्रह्माजी कहते हैं—मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाला वह विमान जिस अपरिचित स्थानपर गया, वहाँ सम्पूर्ण फलोंसे लदे हुए अनेक सुन्दर वृक्ष थे। कोकिलोंकी काकली उन वृक्षोंकी शोभा बढ़ा रही थी। विस्तृत भूमि, बहुत-से पर्वत, वन और उपवन उस स्थानको सुशोभित कर रहे थे। स्त्री, पुरुष, पशु, पवित्र नदी, बावली, कुएँ, पोखरे, गड्ढे और झरने वहाँ अनगिनत थे। आगे एक अत्यन्त सुन्दर नगर दिखायी पड़ा। अद्भुत चहारदीवारी उस नगरकी छवि बढ़ा रही थी। उसमें बहुत-से ऊँचे-ऊँचे महल थे। उचित स्थानपर यज्ञशाला बनी थी। उस नगरको देखकर उसका परिचय प्राप्त करनेकी मनमें इच्छा उत्पन्न हुई। सोचा, यह स्वर्ग हो; पर किसने इसकी रचना की है ? वस्तुतः वह नगर बड़ा ही अद्भुत था। वहाँके राजा देवताके समान दिव्य पुरुष थे। शिकार खेलनेके विचारसे वे वनमें घूम रहे थे। उन्हें तथा विमानपर बैठी हुई भगवती जगदम्बिकाको भी हमने देखा। इतनेमें हमारा विमान हवाका बल पाकर आकाशमें मँडराने लगा।

क्षणभर बाद ही वह एक दूसरे सुन्दर प्रदेशमें जा पहुँचा। वहाँ हमने देखा, अनुपम नन्दनवन था। पारिजातकी सघन छायाके नीचे सुरभि गौ बैठी थी। पासमें ही ऐरावत हाथी विराजमान था। सैकड़ों अप्सराएँ, यक्ष, गन्धर्व और विद्याधर उस पारिजातके उपवनमें गाते एवं विहार करते थे। देखा तो वहीं महाभाग इन्द्र भी थे। उनके समीप उनकी प्राणप्रिया शची विद्यमान थीं। उस स्वर्गके दृश्यको देखकर हम

आश्चर्यचकित हो गये। जलके स्वामी वरुण, कुबेर, यमराज, सूर्य और अग्नि आदि देवता भी वहाँ विराजमान थे। उन्हें देखकर हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही। वह नगर भलीभाँति सजाया हुआ था। वहाँके राजा इन्द्र ही थे। वे शान्तचित्त होकर तामजानपर बैठे और नगरके बाहर चले आये। हमलोग विमानपर बैठे-बैठे यह कौतुक देख रहे थे।

इतनेमें हमारा विमान तेजीसे चल पड़ा और वह दिव्यधाम—ब्रह्मलोकमें जा पहुँचा। सम्पूर्ण देवता उस नगरके सामने मस्तक झुकाया करते थे। वहाँ एक दूसरे ब्रह्मा विराजमान थे। उन्हें देखकर भगवान् शंकर और विष्णुको बड़ा आश्चर्य हुआ। सभा लगी थी। सम्पूर्ण वेद अपने-अपने अङ्गोंसहित रूप धारण करके उसमें बैठे थे। समुद्रों, नदियों, पर्वतों, पन्नगों और उरगोंका समाज एकत्रित था। भगवान् शंकर और विष्णुने मुझसे पूछा—'चतुरानन! ये अविनाशी ब्रह्मा कौन हैं?' मैंने उत्तर दिया—'मुझे कुछ पता नहीं, सृष्टिके अधिष्ठाता ये कौन हैं। भगवन्! मैं कौन हूँ, ये कौन हैं और हमारा उद्देश्य क्या है—इस उलझनमें मेरा मन चक्कर काट रहा है।'

इतनेमें मनके समान तीव्रगामी वह विमान तुरंत वहाँसे चल पड़ा और कैलासके सुरम्य शिखरपर जा पहुँचा। वहाँ बहुत-से यक्ष विद्यमान थे। मन्दारका एक सुन्दर उपवन था, जिसमें सुग्गे और कोयल कलरव कर रहे थे। वीणा और पखावज आदि वाद्योंकी सुखदायी ध्वनि हो रही थी। वहाँ विमानके पहुँचते ही एक भव्य भवनसे त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर निकले। वे नन्दी वृषभपर बैठे थे। उनके पाँच मुख थे और दस भुजाएँ थीं। मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था। बाघंबर पहने थे। गजचर्मकी चादर ओढ़ रखी थी। महाबली गणेश और स्वामी कार्तिकेय अगल-बगल रहकर रक्षाका कार्य सम्पन्न कर रहे थे। भगवान् शंकरके साथ मार्गमें चलते समय उनके दोनों पुत्र गणेश और कार्तिकेयकी अनुपम शोभा हो रही थी। नन्दी प्रभृति जितने प्रधान गण रक्षक थे, वे सभी शंकरके पीछे-पीछे जय-ध्वनि करते हुए चल रहे थे। नारद! उस समय भगवान् शंकर तथा उनके अन्य गणोंको देखकर हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही।

क्षणभरके बाद ही वह विमान उस शिखरसे भी पवनके समान तेज चालसे उड़ा और वैकुण्ठ-लोकमें पहुँच गया, जहाँ भगवती लक्ष्मीका विलास-भवन था। बेटा नारद! वहाँ मैंने जो सम्पत्ति देखी, उसका वर्णन करना मेरे लिये असम्भव है। उस उत्तम पुरीको देखकर विष्णुका मन आश्चर्यके समुद्रमें गोता खाने लगा। वहाँ कमललोचन श्रीहरि विराजमान थे। अलसीके फूलके समान उनके श्रीविग्रहकी कान्ति थी। पीताम्बर पहने थे। चार भुजाएँ थीं। वे पक्षिराज गरुड़पर विराजमान थे। दिव्य आभूषणोंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। प्राणप्रिया लक्ष्मीजी चँवर डुला रही थीं। उन सनातन श्रीहरिकी झाँकी पाकर हम सभी भौंचक्के-से रह गये। एक दूसरेको देखते हुए हम विमानमें एक उत्तम आसनपर बैठे रहे।

इतनेमें ही पवनसे बातें करता हुआ वह विमान तुरंत उड़ गया। आगे अमृतके समान मीठे जलवाला समुद्र मिला। उसका जल बड़ा ही मधुर था। जोर-जोरसे तरङ्गें उठ रही थीं।

बहुत-से जलचर जन्तु वहाँ निवास करते थे। वहीं एक मनोहर द्वीप था। मन्दार और पारिजात आदि वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। अनेकों बिस्तरोंसे सारी भूमि ढकी थी। तरह-तरहके चित्रोंसे उसे सजाया गया था। मोतीकी मालाएँ लटक रही थीं। अनेक प्रकारके हार उसकी छवि बढ़ा रहे थे। अशोक, बकुल, कुरबक, केतकी और चम्पा आदि मनोहर वृक्ष उस द्वीपके कोने-कोनेको सुशोभित कर रहे थे। कोयलें मधुर स्वरमें कुहू-कुहू कर रही थीं। सर्वत्र दिव्य गन्धोंका छिड़काव हुआ था। भौंरे गुन-गुना रहे थे, जिससे उसकी शोभा अधिक बढ़ गयी थी। उसी द्वीपमें एक मङ्गलमय मनोहर पलंग बिछा था। उस पलंगमें सुन्दर रत्न जड़े थे। भाँति-भाँतिके रत्नोंसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। हमलोग विमानपर बैठे थे। दूरसे ही उस अत्यन्त सुन्दर पलंगको हमने देखा। उस पलंगपर अनेकों बिस्तर बिछे थे। इन्द्रधनुषके समान वह चमक रहा था। उस उत्तम पलंगपर एक दिव्य रमणी बैठी थीं। उनके गलेमें लाल रंगकी माला थी। लाल वस्त्रोंसे श्रीविग्रह सुशोभित था। लाल चन्दन लगाये हुए थीं। लाल-लाल नेत्र थे। वे ऐसी प्रभापूर्ण देवी थीं, मानो करोड़ों बिजलियाँ एक साथ चमक रही हों। अत्यन्त सुन्दर मुख था। लाल-लाल दाँत थे। करोड़ों लक्ष्मियोंसे भी अधिक वह सुन्दर थीं। सूर्यकी प्रतिभाके समान वे चमक रही थीं। दिव्य पाश, अङ्कुश, अभय और वरमुद्रासे उन भगवती भुवनेश्वरीके हाथ सुशोभित थे। अद्भुत आभूषण पहन रखे थे। वैसी सुन्दरी स्त्रीको मैंने कभी नहीं देखा था। पासमें अनेकों साधक बैठकर 'ह्रीं' इस मन्त्रका जप कर रहे थे। सबके हृदयमें वास करनेवाली वे अखिल जगत्की अधिष्ठात्री देवी थीं। नाम-जपमें संलग्न रहनेवाली बहुत-सी सखियाँ निरन्तर स्तुति कर रही थीं। भुवनेशी, माहेश्वरी आदि नामोंको हृदयङ्गम करनेवाली देवकन्याएँ चारों ओर बैठी थीं। उन देवियोंके कामपुष्पा आदि अनेकों नाम थे। छः कोनोंवाला उत्तम यन्त्र बना था। उसीपर भगवती भुवनेश्वरी विराजमान थीं। उन्हें देखकर हम सभी महान् आश्चर्यमें पड़ गये। कुछ समयतक हम वहीं ठहरे रहे। आपसमें कहने लगे—'यह सुन्दरी कौन है और इसका क्या नाम है, हम इसके विषयमें बिलकुल अनभिज्ञ हैं। इसके हजारों नेत्र, हजारों हाथ, हजारों मुख हैं। दूरसे देखनेपर ही ये कितनी सुन्दर प्रतीत हो रही हैं! ये न कोई अप्सरा हैं और न गन्धर्वकन्या एवं देवकन्या ही।'

नारद! यों संदेहग्रस्त होकर हमलोग वहाँ रुके रहे। तब भगवान् विष्णुने उन चारुहासिनी भगवतीको देखकर विवेकपूर्वक निश्चय कर लिया कि वे भगवती जगदम्बिका हैं। तब उन्होंने कहा कि ये भगवती हम सभीकी आदि कारण हैं। महाविद्या और महामाया इनके नाम हैं। ये पूर्ण प्रकृति हैं। कभी इनका नाश नहीं होता। मन्दबुद्धि जन इन्हें जान नहीं सकते। योगद्वारा इनका साक्षात्कार होता है। गम्भीर आशयवाली ये देवी परब्रह्मकी इच्छा हैं। ये नित्य हैं और इनका विग्रह भी नित्य है। ये 'विश्वेश्वरी', 'वेदगर्भा' एवं 'शिवा' कहलाती हैं। इनके विशाल नेत्र हैं। ये सबकी आदि जननी हैं। प्रलयकालमें अखिल जगत्को समेट लेती हैं। सम्पूर्ण जीवोंकी आकृतिको ये अपने विग्रहमें छिपा लेती हैं। ब्रह्मा एवं शंकर! ये सर्वबीजमयी

देवी विराज रही हैं। इनकी करोड़ों विभूतियाँ अगल-बगल विराजमान हैं। क्रमशः उन्हें देख लें। उन विभूतियोंका शरीर दिव्य अलंकारों एवं दिव्य गन्धोंसे सुशोभित है। ब्रह्मा और शंकर ! देखो, वे सभी सहचरियाँ भगवतीकी सेवा कर रही हैं। जो प्रभूत पुण्यवाले, महान् दानी एवं तपस्वी हैं, उन्हींको कल्याणस्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरीके दर्शन मिलते हैं। रागीजन इनका दर्शन नहीं कर पाते। ये मूल प्रकृति हैं। सदा परम पुरुषके साथ रहती हैं। ब्रह्माण्डकी रचना करके परम पुरुषको ये दिखाया करती हैं। परम पुरुष द्रष्टा हैं, यह चराचर जगत् दृश्य है और उन परम पुरुषकी ये आदि शक्ति महामाया सबकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ये ही सम्पूर्ण संसारकी कारण हैं। ये वे ही दिव्याङ्गना हैं, जिनके प्रलयार्णवमें मुझे दर्शन हुए थे। उस समय मैं बालकरूपमें था। मुझे पालनेपर ये झुला रही थीं। वटवृक्षके पत्रपर एक सुदृढ़ शय्या बिछी थी। उसपर लेटकर मैं पैरके अँगूठेको अपने कमल-जैसे मुखमें लेकर चूस रहा था तथा बालकोचित अनेक चेष्टाएँ करके खेल रहा था। मेरे सभी अङ्ग अत्यन्त कोमल थे। मैं बालक बनकर सोया था और ये देवी गा-गाकर मुझे झुलाती थीं। वे ही ये देवी हैं। इसमें कोई संदेहकी बात नहीं रही। इन्हें देखकर मुझे पहलेकी बात याद आ गयी। ये हम सबकी जननी हैं। इनके विषयमें मेरी जितनी जानकारी है तथा मैं जो कुछ अनुभव कर चुका हूँ, वह कहता हूँ; सुनो।

(अध्याय१—३)

☆

## ब्रह्माजीका भगवतीके चरणनखमें समस्त देवता, लोक आदिको देखना तथा भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर और ब्रह्माके द्वारा भगवती जगदम्बिकाकी स्तुति

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बताकर भगवान् विष्णुने फिर कहा कि 'हमलोग बारम्बार प्रणाम करते हुए इन भगवतीके पास चलें। ये परम आदरणीया महामाया हमें अवश्य वर प्रदान करेंगी। इनके निकट चलकर निर्भीक हो हम इनके चरणोंकी उपासनामें लग जायँ। द्वारपर रहनेवाले द्वारपाल हमें रोक देंगे तो वहीं ठहरकर सावधानीके साथ हम इनकी स्तुति आरम्भ कर देंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् विष्णुके कहनेपर मुझे और शंकरको बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवतीके पास जाना हमलोगोंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'हाँ, चलना चाहिये'—यों श्रीहरिसे कहकर हम सभी अर्थात् मैं, विष्णु और शंकर तीनों द्वारके पास जाकर विमानसे नीचे उतरे। जब देवीने हम सभीको द्वारपर देखा, तब वे मुसकराकर हँसने लगीं और तुरंत हम तीनोंको स्त्री बना दिया। हम उत्तम आभूषणोंसे अलंकृत रूपवाली युवती बन गये। अब हमारे आश्चर्यका पार न रहा। फिर हम उस देवीके सन्निकट चले गये। हम स्त्रीरूपमें थे। मनोहर रूपवाली वे देवी यहाँ हमें अपने चरणोंके पास देखकर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे निहारने लगीं। हम भगवतीको प्रणाम करके सामने बैठ गये और एक-दूसरेको देखने लगे। हमारा रूप स्त्रीका बन गया था। शरीरपर सुन्दर आभूषण

थे। हमें वहीं एक पादपीठ दिखायी पड़ा। वह अनेकों मणियोंसे सुसज्जित था। करोड़ों सूर्योंके समान उससे आभा निकल रही थी। मैं, विष्णु और शंकर—तीनों वहीं रुक गये। वहाँ देवीकी हजारों सहेलियाँ विराजमान थीं। किन्हींके शरीरपर लाल वस्त्र, किन्हींके शरीरपर नीला वस्त्र तथा किन्हींके शरीरपर पीला सुन्दर वस्त्र था। उन सभी देवियोंकी आकृति कल्याणमयी थी। उन्होंने विचित्र वस्त्र और आभूषण धारण कर रखे थे। भगवती भुवनेश्वरीके पास रहकर वे उनकी सेवा कर रही थीं। अन्य बहुत-सी स्त्रियाँ नाच और गाकर उनकी उपासनामें तत्पर थीं। आनन्दमें निमग्न होकर वीणा आदि वाद्योंको बजा रही थीं। नारद ! मैंने जो वहाँ अद्भुत दृश्य देखा, वह बतलाता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो। भगवती भुवनेश्वरीके चरण कमलके समान कोमल थे। नख स्वच्छ दर्पणका काम दे रहे थे। भगवतीके नखमें ही मुझे स्थावर-जङ्गम सारा ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वायु, अग्नि, यमराज, सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, त्वष्टा, इन्द्र, पर्वत, समुद्र, न[illegible]याँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्राङ्गद, नारद, तुम्बुरु, हाहा, हूहू, अश्विनीकुमार, वसुगण, सिद्ध, साध्य, पितरोंका समुदाय, शेष प्रभृति सभी नाग, किन्नर, उरग, राक्षस, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा पर्वतश्रेष्ठ कैलास—ये सब-के-सब दिखायी पड़े। वहीं मेरा जन्मस्थान कमल था, उसीपर मैं चार मुखवाला ब्रह्मा बैठा था। शेषशायी भगवान् विष्णु दिखायी पड़ रहे थे। मधु-कैटभ भी दृष्टिगोचर हुए।

महाभाग ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार भगवतीके चरण-कमलके नखमें मुझे अद्भुत दृश्य दिखायी पड़ा। मैं देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। यह क्या है—ऐसी शङ्का उत्पन्न हो गयी। विष्णु और शंकरका मन भी आश्चर्यसे भर गया। तब मैं, विष्णु और रुद्र—तीनोंने मान लिया कि ये देवी अखिल जगत्की जननी हैं। हम उन देवीकी झाँकी करते रहे—इतनेमें पूरे सौ वर्षका समय व्यतीत हो गया। उस सुधामय कल्याणस्वरूप द्वीपमें भाँति-भाँतिकी लीलाएँ हो रही थीं। वहाँकी देवियाँ हमलोगोंसे भी सखीके समान व्यवहार करती थीं। उनके सर्वाङ्ग प्रेमसे पुलकित थे। शरीरपर अनेक प्रकारके आभूषण सुशोभित थे। उनके अत्यन्त मनोहर रूपको देखकर हमलोग भी मोहित हो गये थे। उनके सुन्दर भावोंको देखते हुए हम सबको अपार हर्ष हुआ। स्त्री-वेषमें परिणत श्रीविष्णुने समयानुसार उन भगवती भुवनेश्वरीकी स्तुति आरम्भ कर दी।

भगवान् विष्णु बोले—प्रकृति देवीको नमस्कार है। भगवती विधात्रीको निरन्तर नमस्कार है। जो कल्याणस्वरूपिणी हैं, मनोरथ

पूर्ण करनेवाली हैं तथा वृद्धि एवं सिद्धिस्वरूपा हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है। जिनका सच्चिदानन्दमय विग्रह है, जो संसारकी उत्पत्ति-स्थान हैं तथा जो सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं तिरोभावरूप पाँच कृत्योंका विधान करती हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको प्रणाम है। सर्वाधिष्ठानमयी भगवतीको नमस्कार है। माता ! मैं जान गया, यह सम्पूर्ण संसार तुम्हारे भीतर विराजमान है। इस जगत्की सृष्टि और संहार तुम्हींसे होते हैं। तुम्हारी ही व्यापक माया इस संसारको सजाती है। अब मैंने तुम्हारा पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया कि तुम अखिलजगन्मयी हो—इसमें कोई संदेह नहीं। सारा विश्व सत् और असत्मय विकारस्वरूप है। तुम समय-समयपर चेतन पुरुषको इसका विस्तार दिखाया करती हो। सोलह एवं सात तत्त्वोंसे तुम्हारा विग्रह सम्पन्न है। हमें इन्द्रजालकी भाँति तुम्हारा साक्षात्कार होता है। यह निश्चय है कि तुम मनोरञ्जनके लिये लीला कर रही हो। तुम्हारी शक्तिसे वञ्चित होनेपर कोई भी वस्तु अपने रूपमें प्रतीत नहीं होती। तुम्हीं अखिल विश्वमें व्याप्त होकर विराजमान हो। माता ! बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं कि यदि तुम्हारी शक्ति अलग हो जाय तो जगत्की व्यवस्था करनेमें पुरुषको सफलता मिलनी असम्भव है। तुम अपने प्रभावसे सम्पूर्ण संसारको संतुष्ट करनेमें सदा संलग्न रहती हो। तुम्हारे तेजसे सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। देवी ! प्रलयकालके समय तुम संसारको भक्षण कर लेती हो। भगवती ! तुम्हारे वैभवके चरित्रको कौन जान सकता है। माता ! तुमने मधु-कैटभके चंगुलसे हमारी रक्षा की। मणिद्वीप आदि विस्तृत लोक दिखलाये। उन द्वीपोंके आनन्द-भवनमें हमें पहुँचाया और हम करोड़ों उत्तम दृश्य देखनेमें सफल हुए। भवानी ! यह सब तुम्हारी ही महान् कृपा है। माता ! जब मैं, शंकर और ब्रह्मा भी तुम्हारे अचिन्त्य प्रभावसे अपरिचित हैं, तब दूसरा कौन है, जो उसे जान सके। तुम्हारे बनाये हुए जितने भुवन हैं, तुम्हारे इस शक्तिसम्पन्न नख-दर्पणमें हमें उनकी झाँकी मिली है। देवी ! हमने इस लोकमें दूसरे ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर देखे हैं। सबमें वैसी ही असीम शक्ति थी। क्या अन्य लोकोंमें ये नहीं हैं ? देवी ! तुम्हारे इस फैले हुए अचिन्त्य ऐश्वर्यको हम कैसे जानें ? माता ! चरण-कमलोंमें मस्तक झुकाकर मैं तुमसे यही माँगता हूँ कि तुम्हारा यह रूप निरन्तर मेरे हृदयमें बसा रहे, मेरे मुँहसे तुम्हारा नाम-कीर्तन होता रहे तथा नेत्र तुम्हारे चरणकमलोंकी झाँकीसे कभी वञ्चित न हों। आर्ये ! मेरे प्रति तुम्हारा यह भाव बना रहे कि यह मेरा सेवक है और मैं मनमें सदा तुम्हें अपनी स्वामिनी माना करूँ। माता-पुत्रकी भाँति यह अव्यभिचारिणी धारणा हम दोनोंके हृदयमें सदा विद्यमान रहे। जगदम्बा ! तुम जगत्के सम्पूर्ण प्रपञ्चको जानती हो; क्योंकि सारे ज्ञानकी अन्तिम सीमा तुम्हींमें समाप्त हो गयी है। मैं तुमसे क्या निवेदन करूँ ? भवानी ! जो उचित हो, वही करो। तुम्हारी इच्छाके अनुकूल ही कार्य होना चाहिये। ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं; पर जब तुम्हारी इच्छासे हममें शक्ति उत्पन्न होती है, तभी हम इस कार्यके सम्पादनके अधिकारी होते हैं। गिरिराजनन्दिनी ! तुम सबकी माता हो। जगत्का पालन करना और उसे टिकाये रखना तुम्हारा स्वाभाविक कार्य है।

वरदायिनी भगवती ! तुम्हारी शक्तिसे सम्पन्न होनेपर ही सूर्य जगत्‌को प्रकाशित करता है। तुम शुद्धस्वरूपा हो, यह सारा संसार तुम्हींसे उद्भासित हो रहा है। मैं, ब्रह्मा और शंकर—हम सभी तुम्हारी कृपासे ही विद्यमान हैं। हमारा आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है। केवल तुम्हीं नित्य हो, जगज्जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो। यह निश्चय है कि बुद्धिमान् मनुष्योंकी बुद्धि और शक्तिशाली जनोंकी शक्ति तुम्हीं हो। कीर्ति, कान्ति और कमला तुम्हारे नाम हैं। तुम शुद्धस्वरूपा हो। कभी तुम्हारा मुख मलिन नहीं होता। मुक्ति देना तुम्हारा स्वभाव ही है। मर्त्यलोकमें पधारनेपर भी तुम सदा विरक्त रहती हो। वेदोंका मुख्य विषय गायत्री तुम्हीं हो। स्वाहा, स्वधा, भगवती और ॐ—ये तुम्हारे रूप हैं। तुम्हींने देवताओंकी रक्षाके लिये वेदशास्त्रोंका निर्माण किया है। परिपूर्ण समुद्रकी तरङ्गके समान सम्पूर्ण प्राणी अनित्य हैं। ये सभी अजन्मा ब्रह्माजीके अंश हैं। अपना स्वयं कोई स्वार्थ न रहनेपर भी उन जीवोंका उद्धार करनेके लिये ही तुम इस अखिल जगत्‌की रचना करती हो। नाट्य दिखलानेवाले नटकी भाँति तुम्हीं संसारकी सृष्टि और संहार किया करती हो। तुम्हारा यह प्रभाव सर्वसाधारणको विदित है। देवी ! तुम महाविद्यास्वरूपिणी हो, तुम्हारा विग्रह कल्याणमय है, तुम सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देती हो। मैं बार-बार तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ।

ब्रह्माजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान् विष्णु यों स्तुति करके चुप हो गये। तब महाभाग शंकरजी नम्रतापूर्वक योगमायाके सामने उपस्थित होकर कहने लगे।

भगवान् शंकर बोले—'देवी ! यदि महाभाग विष्णु तुम्हींसे प्रकट हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा भी तुम्हारे ही बालक हुए। फिर मैं तमोगुणी लीला करनेवाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ—अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करनेवाली तुम्हीं हो। शिवे ! सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि करनेमें तुम बड़ी चतुर हो। माता ! पृथ्वी, जल, पवन, आकाश, अग्नि, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि, मन और अहंकार—ये सब तुम्हीं हो। इस चराचर जगत्‌को तुम्हीं बनाती हो। इसके बाद वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर—तीनों सदा इसे सजानेमें व्यस्त रहते हैं। माता ! यदि कहा जाय कि पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच सगुण तत्त्वोंसे जगत् स्वयं उत्पन्न हो सकता है तो ये पाँच तत्त्व भी तुम्हारी ही कला हैं। तुमसे पृथक् इन तत्त्वोंकी अभिव्यक्ति ही कैसे हो सकती है। माता ! ब्रह्मा, विष्णु और महेशका रूप धारण करके तुम्हीं जगत्‌की रचना करती हो। अतः सम्पूर्ण चराचर जगत् तुम्हारा ही रूप है। तुम भाँति-भाँतिके स्वाँग बनाकर कौतूहलवश अपनी इच्छाके अनुसार क्रीड़ा करती और शान्त भी हो जाती हो। इस संसारकी सृष्टि, स्थिति, और संहारमें तुम्हारे गुण सदा समर्थ हैं। उन्हीं तीनों गुणोंसे उत्पन्न हम ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर नियमानुसार कार्यमें तत्पर रहते हैं। हम ये तीनों देवता जो जगत्‌का कार्य सँभालते रहते हैं, तुम्हारे ही रूप हैं। अतः सबका कारण तुम्हीं सिद्ध हुई। मैं, ब्रह्मा और विष्णु विमानपर चढ़कर जा रहे थे। हमें रास्तेमें नये-नये जगत् दिखायी पड़े। भवानी ! भला, कहिये तो उन्हें किसने बनाया है ? जगदम्बिके ! तुम अपनी

कलासे इस जगत्‌का सृजन और संरक्षण करनेमें संलग्न रहती हो ! कल्याणमयी माता ! तुम्हारे चरणकमलोंके अतिरिक्त त्रिलोकीमें मेरा कुछ भी अन्य अभिलषित पदार्थ नहीं है। भूमण्डलपर कौन ऐसा है, जो तुम्हारे चरणकमलोंकी उपासना छोड़कर अकण्टक राज्य चाहे ? तुम्हारे पादपद्मोंकी सन्निधि मिले बिना एक घड़ी युगके समान प्रतीत हो रही है। माता ! तुम्हारे चरण-कमलोंकी उपासना न करके जो पुण्यात्मा मुनि तपस्यामें संलग्न हैं, निश्चय ही उन्हें भाग्यनिर्माता ब्रह्माने ठग लिया है। तपरूपी धन होनेपर भी मोक्षसे वञ्चित होनेके कारण उनकी हार ही समझनी चाहिये। अजन्मा माता ! तुम्हारे चरणकमलोंकी धूलिका सेवन करनेसे जितना शीघ्र इस संसार-सागरसे उद्धार हो जाता है, उतना तपस्या, इन्द्रियसंयम, ध्यान अथवा विहित यज्ञोंसे होना असम्भव है। देवी ! दया करके मुझे पवित्र नवार्णमन्त्रका उपदेश देनेकी कृपा करो। उस अद्भुत, अत्यन्त विस्तृत एवं सर्वोत्तम मन्त्रका जप करते ही मैं सुखी हो जाऊँगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—अद्भुत तेजस्वी भगवान् शंकरके यों स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बिकाने नवार्णमन्त्रका स्पष्ट उच्चारण किया। सुनकर महादेवजीको अपार हर्ष हुआ। भगवतीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर वे वहीं बैठ गये। कामना पूर्ण करनेवाले एवं मोक्षदायी उस नवाक्षरमन्त्रका जप आरम्भ कर दिया। बीजमन्त्रके साथ उत्तम रीतिसे उच्चारण करते हुए वे जप करने लगे। जगत्‌का कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरको यों करते देखकर मैं भी महामाया जगदम्बिकाके चरणोंपर गिर पड़ा और मैंने उनसे कहा—'माता ! तुम अखिल जगत्‌की सृष्टि करनेवाली शुद्धस्वरूपा हो। वेद तुम्हारे ऐसे रूपकी कल्पना करनेमें अकुशल हैं सो बात नहीं है; परंतु वे साधारण कार्यमें तुम्हारा प्रयोग करना नहीं चाहते। सारे यज्ञोंमें तुम्हारे 'स्वाहा' नामका उच्चारण किया ही जाता है। त्रिलोकीमें कोई भी वस्तु नहीं है, जिसको तुम न जानती हो। इस सारे अद्भुत ब्रह्माण्डकी रचना करनेवाला केवल मैं हूँ। मेरे सिवा त्रिलोकीमें शक्तिशाली दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है। मैं निस्संदेह धन्यवादका पात्र हूँ; क्योंकि मैं सर्वोपरि ब्रह्मा जो ठहरा'—यह मेरा अभिमान है। आज मैं तुम्हारे चरण-कमलोंकी धूलि प्राप्त करके वास्तवमें धन्य हो गया हूँ। तुम्हारी कृपासे मुझे यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया है। तुम संसारका भय दूर करनेमें बड़ी निपुण हो। मुक्ति देना तुम्हारा स्वभाव ही है। मैं तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक हूँ—यह बिलकुल निश्चित है। अब मेरी रक्षा करो। जो तुम्हारे पावन चरित्रको पूरा नहीं जानते, वे ही मानव मुझे प्रभु बताया करते हैं। जिन्हें तुम्हारा प्रभाव ज्ञात नहीं है, वे ही जन स्वर्गकी कामनासे यथेष्ट यज्ञमें लगे रहते हैं। संसारके सृजनकी लीला करनेके लिये तुमने मुझे ब्रह्माके पदपर नियुक्त किया और मेरे द्वारा अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी बनवाये। आदिमाये ! यह सभी भेद मैं ही जानता हूँ—दूसरा कोई नहीं जानता; मेरे अहंकारजन्य अपराध क्षमा करनेकी कृपा करो। जो आठ प्रकारके योगमार्गमें तत्पर होकर समाधिमें स्थित हो अथक प्रयत्न करते हैं, उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। माता ! कभी किसी ब्याजसे भी तुम्हारा नाम उच्चारण कर लिया जाय तो उससे मुक्ति सुलभ हो जाती है—

इस बातको वे जानते ही नहीं। भवानी ! विष्णु और शंकर प्रभृति आदि पुरुष हैं, वे तुम्हारे सर्वोत्तम रहस्यको जानते हैं और उन्हें उसका अनुभव भी है। वे तुम्हारे शिवा, अम्बिका, शक्ति एवं ईशा आदि पावन नामोंका आधे पलके लिये भी त्याग नहीं करते। क्या तुम विश्वका निर्माण नहीं कर सकती थीं ? अवश्य कर सकती थीं; क्योंकि तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही चार प्रकारके प्राणी जगत्‌में उत्पन्न हो सकते हैं। सृष्टिके आदिमें केवल विनोदके लिये ही तुम मुझ ब्रह्माको बनाकर यह सृजनकार्य सम्पादित कराती हो। तुम्हारी कहीं उत्पत्ति हुई है—यह प्रसङ्ग न देखा गया है और न सुना ही गया है। तुम्हारी उत्पत्ति कहाँसे हुई है—इसे कोई नहीं जानता। जगत्‌में कोई भी तुम्हारे रहस्यसे परिचित नहीं है। भवानी ! तुम एक हो, आद्या शक्ति हो—सम्पूर्ण स्वतन्त्र वेदोंने तुम्हारा यों ज्ञान कराया है। माता ! तुम्हारे सम्पर्कसे ही मैं ब्रह्मा सृष्टि करनेमें, विष्णु पालन करनेमें और शंकर संहार करनेमें कुशल हैं। यदि आज तुमसे अलग हो जायँ तो हम सबकी शक्ति कुण्ठित हो जायगी। तुम्हारी लीला बड़ी विचित्र है। अल्पज्ञ पुरुष इस विषयमें विवाद कर बैठते हैं। कौन है, जो तुम्हारी विनोदपूर्ण लीलासे मोहित न हो जाय ? आदिदेव भगवान् विष्णु अकर्ता हैं। उनके गुण स्पष्ट हैं। न उन्हें कोई इच्छा है और न उनकी कोई उपाधि ही है। वे सदा कलाशून्य और सर्वसमर्थ हैं। फिर भी तुम्हारी विस्तृत लीलाकी झाँकी करनेमें वे संलग्न रहते हैं—ऐसी शास्त्रज्ञोंकी उक्ति है। इस मूर्त और अमूर्त जगत्‌का आधार तुमसे पूर्व कोई भी दूसरा पुरुष नहीं था। कोई तीसरा भी नहीं है। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'—इस वेदके वचनको व्यर्थ कहना तो बनता नहीं। और इधर अनुभव दूसरी बात कहता है। इस प्रकार वेदवाक्यों और अनुभवमें अत्यन्त विरोध उत्पन्न हो रहा है। वेद कहते हैं 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' है तो क्या वह आत्मस्वरूपा तुम्हीं हो अथवा वह कोई और ही पुरुष है—मेरे इस संदेहको दूर करनेकी कृपा करो। किसी महान् पुण्यके प्रभावसे ही मुझे तुम्हारे चरणोंकी सेवा सुलभ हुई है। तुम स्त्री हो अथवा पुरुष—यह रहस्य भी मुझे विशदरूपसे कृपा करके बतलाओ।

(अध्याय ४-५)

☆

## जगदम्बिकाके द्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरके लिये महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकालीको अर्पण करके उनको कार्य करनेका आदेश

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार मैंने जब भगवती जगदम्बिकासे विनयपूर्वक पूछा तब वे मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगीं।

देवीने कहा—मैं और ब्रह्म एक ही हैं। मुझमें और इन ब्रह्ममें कभी किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। जो वे हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही वे हैं। बुद्धिके भ्रमसे भेद* प्रतीत हो रहा है। हमलोगोंके सूक्ष्म भेदको जो जानता है, वही

* सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वथैव ममास्य च। योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥ (३।६।२)

बुद्धिमान् पुरुष है। उसके संसारसागरसे मुक्त होनेमें कुछ भी संदेह नहीं है। ब्रह्म एक ही है। केवल संसार-रचनाके समय वह द्वैतरूपको प्राप्त होता है। फिर द्वैतकी भावना होने लगती है। जिस प्रकार दीपक एक ही है, किंतु छोटे-बड़े आदि उपाधि-भेदसे अनेक प्रकारका भासता है तथा एक ही मुखकी छाया दर्पणके भेदसे तरह-तरहकी प्रतीत होने लगती है, वैसे ही मैं और ब्रह्म एक हैं। तब भी मायारूपी कार्य-कारणके उपाधि-भेदसे हमारा प्रतिबिम्ब अलग-अलग झलक रहा है। ब्रह्माजी ! जगत्का निर्माण करनेके लिये सृष्टिकालमें भेद दीखता ही है। जब हम दो रूप धारण करके कार्य करनेमें उद्यत हो जाते हैं, तब दृश्य और अदृश्यमें इस भेदका प्रतीत होना सर्वथा युक्त ही मानना चाहिये। संसारके अभावमें मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न नपुंसक ही। फिर सृष्टि आरम्भ हो जानेपर इस भेदकी कल्पना हो जाती है। बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वाञ्छा, शक्ति, अशक्ति, वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, सत्यासत्य वाणी, परा, मध्या एवं पश्यन्ती आदि वाणीके अन्य भेद तथा जो अनेक प्रकारकी नाड़ियाँ हैं, ये सब मेरे ही रूप हैं। संसारमें मेरे सिवा कोई पदार्थ ही नहीं है। ब्रह्माजी ! सब कुछ मेरा ही रूप है अर्थात् सब मैं ही हूँ—यों निश्चित धारणा बना लेनी चाहिये। ब्रह्माजी ! इस सारे संसारमें मैं ही व्यापक रूपसे विराजमान हूँ। सम्पूर्ण देवताओंमें विभिन्न नामोंसे मैं विख्यात हूँ—यह बिलकुल निश्चित बात है। मैं शक्ति-रूप धारण करके पराक्रम करती हूँ। गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही और वासवी—सभी मेरे रूप हैं। विभिन्न कार्योंके उपस्थित होनेपर उन-उन देवियोंके भीतर अपनी शक्ति स्थापित करके मैं सारी व्यवस्था करती हूँ। हाँ, उस-उस देवीको निमित्त बना लेना मेरा स्वभाव है। जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें प्रकाश एवं चन्द्रमामें शीतलताका विस्तार करनेकी योग्यता जिस प्रकार बनी रहे, वैसी व्यवस्था करके मैं उनके भीतर प्रविष्ट होती हूँ। ब्रह्माजी ! मैं तुमसे निश्चित कहती हूँ, यदि मैं शक्ति हट जाऊँ तो संसारमें एक भी प्राणी हिल-डुल न सके। मुझ शक्तिके अलग हो जानेपर शंकर दैत्योंको मारनेमें सदा असमर्थ हैं। जब मैं मनुष्यके शरीरसे कुछ दूर चली जाती हूँ, तब प्राणी उसे अत्यन्त दुर्बल कहता है। उस नीच मानवके विषयमें कोई भी ऐसा नहीं कहते कि यह रुद्रहीन अथवा विष्णुहीन है। कोई भूमिपर पड़ा हो, अपनेको सँभालनेमें अयोग्य हो, डर गया हो, हृदयमें चिन्ताकी लहर उठती हो अथवा शत्रुके चंगुलमें फँस गया हो तो उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है। जगत्में उसके विषयमें कोई नहीं कहता कि यह रुद्रहीन है। इसलिये मुझ शक्तिको ही एकमात्र कारण समझो। जैसे तुम भी तो सृष्टिकार्यके अभिलाषी हो। तो जब मैं साथ देती हूँ, तभी तुम अखिल जगत्की रचना करते हो। वैसे ही विष्णु, शंकर, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यम, त्वष्टा, वरुण और पवन—सभी मुझ शक्तिके सहयोगसे ही कार्यमें सफलता पाते हैं। पृथ्वी तभी स्थिर रहकर प्राणिजगत्को

धारण कर सकती है, जब मैं शक्ति उसे साथ दिये रहती हूँ। मैं हट जाऊँ तो एक परमाणु तकको धारण करनेमें वह असमर्थ है। वैसे ही शेषनाग, कच्छप एवं सारे दिग्गज भी मेरे सहयोगसे ही अपने कार्य सम्पादन कर सकते हैं। सम्पूर्ण जल पी जाना, अग्निकी सत्ता नष्ट कर देना तथा पवनकी गति रोकना मेरी इच्छापर निर्भर है। अभी-अभी मैं जो चाहूँ, सो कर सकती हूँ। ब्रह्माजी ! मुझ शक्तिके प्रयाण कर जानेपर समस्त प्राणी निष्प्राण हैं। कभी किसी प्रकार भी वे जीवित हैं—यह संदेह ही नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार मिट्टीके लौंदे और कपालमें घड़ेका प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव स्पष्ट है, वैसे ही प्राणियोंमें समझ लेना चाहिये। आज पृथ्वी नहीं है। विचार करनेपर ज्ञात होता है कि इसके परमाणु तक नष्ट हो गये हैं; परंतु क्षणिक होनेपर भी महत्तत्त्वका कभी अभाव नहीं होता। वह नित्य होनेपर भी अनित्य-सा रहता है; क्योंकि वह कर्ताके अधीन रहता है। वह महत्तत्त्व सात भेदोंसे विवक्षित है। ब्रह्माजी ! तुम्हें वह महत्तत्त्व देती हूँ, स्वीकार करो। उसीसे अहंकार उत्पन्न होता है। इसके बाद जिस प्रकार पहले सृष्टि की थी, वैसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी रचनाका कार्य आरम्भ करो। जाओ, अब अपने घर-द्वारका निर्माण करके वहीं रहो और अपने-अपने कर्तव्यका पालन करो। ब्रह्माजी ! इस शक्तिको तुम अपनी स्त्री बनाओ। यह अनुपमा सुन्दरी है। इसका मुख सदा मुसकानसे भरा रहता है। 'महासरस्वती' नामसे विख्यात इस श्रेष्ठ देवीमें सभी रजोगुण विद्यमान हैं। इसका दिव्य शरीर स्वच्छ वस्त्रोंसे सुशोभित है। अलौकिक आभूषण इसकी छवि बढ़ा रहे हैं। यह उत्तम सिंहासनपर बैठी हुई है। क्रीडा करनेके लिये तुम्हारी यह सहचरी है। यह सुन्दरी अब सदा तुम्हारी स्त्री होकर रहेगी। इस प्रेयसी भार्याको भी मेरी ही विभूति समझकर आदरकी दृष्टिसे देखना। कभी भी इसका तिरस्कार करना वाञ्छनीय नहीं। अब तुम शीघ्र इसे साथ लेकर सत्यलोकमें पधारो। समय हो गया है, अतः महत्तत्त्वका सहारा लेकर चार प्रकारकी सृष्टि बनानेमें तत्पर हो जाओ। उस महत्तत्त्वमें कर्म और जीवके साथ शरीर विद्यमान हैं। पूर्व-कल्पकी भाँति पुनः सृष्टि कर लो। परंतु ध्यान रखना—काल, कर्म, स्वभाव और गुण आदि कारणोंके अनुसार ही सारी चराचर सृष्टि रचनी है। विष्णु तुमसे सदा आदर और सत्कार पानेके अधिकारी हैं; क्योंकि सत्त्वगुणकी प्रधानता होनेके कारण वे सदा सब तरहसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। जिस-जिस समय तुमलोगोंके सामने कोई कठिन कार्य उपस्थित होगा, तब-तब ये विष्णु धराधामपर प्रकट हो जायँगे। कहीं पशुयोनिमें और कहीं मानव-योनिमें इनका अवतार होगा। प्रकट होकर दानवोंका संहार करना इनका स्वाभाविक गुण है। ये महाबली महादेव भी तुम्हारी सहायतामें रहेंगे।

अब तुम देवताओंकी रचना करके आनन्दपूर्वक विहार करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अत्यन्त सावधानीके साथ अनेक यज्ञोंसे सभी देवताओंकी उपासना करेंगे। यज्ञमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी जायँगी। उन सम्पूर्ण यज्ञोंमें वे मेरा नाम उच्चारण करेंगे। किंतु निश्चय है कि उस हविसे तुम सभी देवता तृप्त और संतुष्ट हो

जाओगे। ये शंकर भी सब तरहसे तुम्हारे सम्मानके पात्र हैं। सभी यज्ञोंमें यत्नपूर्वक इनकी भी पूजा होनी चाहिये। पुनः जब देवताओंपर दैत्योंद्वारा भय उपस्थित होगा, तब मेरी शक्तियाँ सुन्दर रूप धारण करके आवेंगी और दैत्य उनके ग्रास बन जायँगे। वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही और शिवा तथा इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी शक्तियाँ हैं। ब्रह्मा ! अब तुम जगत्‌का निर्माण आरम्भ करो। बीज और ध्यानसहित यह नौ अक्षरोंका नवार्णमन्त्र है। ब्रह्माजी ! निरन्तर इसे जपते हुए सम्पूर्ण कार्योंमें संलग्न हो जाओ। महामते ! तुम इस मन्त्रको सभी मन्त्रोंसे श्रेष्ठ समझना। समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये इसे सदा हृदयमें धारण किये रहना चाहिये।'

इस प्रकार मुझे आज्ञा देकर प्रसन्नवदना भगवती जगदम्बाने भगवान् विष्णुसे कहा—''विष्णो ! मनको मुग्ध करनेवाली इस 'महालक्ष्मी'को लेकर अब तुम भी पधारो। यह सदा तुम्हारे वक्षःस्थलमें विराजमान रहेगी—इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है। यह कल्याणी सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली शक्ति है। तुम्हें विनोद करनेके लिये इसे मैंने दिया है। तुम कभी इसका तिरस्कार न करके सदा सत्कार करते रहना। अब मैंने तुम्हें 'लक्ष्मीनारायण' कहलानेकी सुविधा दे दी है। देवताओंकी जीविका स्थिर रखनेके लिये मैंने सब प्रकारके यज्ञोंका निर्माण कर दिया है। तुम तीनों प्रेमपूर्वक साथ रहकर भाग ग्रहण करना। तुम ब्रह्मा, शिव और ये देवता—सभी मेरे प्रभावसे प्रकट हुए हो। अतः ये सबसे सम्मान पानेके अधिकारी एवं पूजाके पात्र होंगे—इसमें कोई संदेह नहीं। जो मूर्ख मानव इनमें भेद-बुद्धि रखेंगे, उन्हें निश्चय ही नरकमें जाना पड़ेगा। जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे ही स्वयं श्रीहरि हैं। इनमें भेद-भाव रखनेवाला मनुष्य नरकका अधिकारी होता है। ऐसे ही ब्रह्माके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। इसमें कुछ भी अन्यथा विचार करना अनावश्यक है। विष्णो ! गुणोंमें जो दूसरे भेद हैं, वे तुम्हें बताती हूँ—तुम एक महान् पुरुष हो। तुम्हारे पास सत्त्वगुणकी प्रधानता रहनी चाहिये। अन्य रजोगुण और तमोगुण तुममें गौड़ होकर रहेंगे। विभिन्न जगत्‌में रजोगुणी होकर तुम इस लक्ष्मीके साथ सदा आनन्द करना। रमाकान्त ! पहला वाग्बीज (ऐं), दूसरा कामराजबीज (क्लीं) और तीसरा मायाबीज (ह्रीं)—ये मेरे मन्त्र हैं। तीसरा मन्त्र जो तुम्हें बताया है, उसके प्रभावसे श्रेष्ठ अर्थ सुलभ हो जाता है। विष्णो ! इस मन्त्रका निरन्तर जप करते हुए आनन्दपूर्वक विहरो। जब मैं सम्पूर्ण चराचर विश्वको अपनेमें लीन कर लूँगी, तब तुमलोग भी मुझमें प्रवेश कर जाओगे। भक्ति और मुक्ति देनेवाले इस मन्त्रको सदा स्मरण रखना चाहिये। कल्याणकी इच्छा करनेवाला पुरुष 'ॐ' इस प्रणवके साथ मन्त्रजप करे। पुरुषोत्तम ! तुम वैकुण्ठकी रचना करके वहीं विराजमान रहो। मैं सदा स्थिर रहनेवाली आद्या शक्ति हूँ। मेरा चिन्तन करते हुए इच्छानुसार विहार करना।'

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवती त्रिगुणा, निर्गुणा और प्रकृतिसे परे हैं। भगवान् विष्णुसे उपर्युक्त बातें कहनेके पश्चात् वे महाभाग शंकरके प्रति मधुर वाणीमें बोलीं।

देवीने कहा—शंकर ! मनको मुग्ध करनेवाली यह 'महाकाली' गौरी-नामसे विख्यात

है। तुम इसे पत्नीरूपसे स्वीकार करो। कैलासकी रचना करके वहीं रहो और इसके साथ सुख-पूर्वक आनन्द करो। तुम्हारी लीलामें तमोगुणकी प्रधानता रहेगी। सत्त्वगुण और रजोगुण गौण होकर रहेंगे। रजोगुणी और तमोगुणी बनकर असुरोंका संहार करनेके लिये लीला आरम्भ कर दो। परम पुरुषका ध्यान करनेके लिये तुम तप कर चुके हो। महादेव ! तुम बड़े पुण्यात्मा हो। परमात्मा शान्तस्वरूप हैं। उनमें सत्त्वगुण प्रधान है। तुम्हें उनकी शरण लेनी चाहिये। तुम तीनों तीन गुणोंसे सम्पन्न हो। सृष्टि, स्थिति और संहार तुम्हारे कार्य हैं। संसारमें कहीं भी कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो इन तीन गुणोंसे अतिरिक्त हो। जगत्में जितने पदार्थ दीख रहे हैं, वे सब-के-सब त्रिगुणमय हैं। निर्गुण होकर सबको दिखायी दे, ऐसी कोई वस्तु न थी और न होगी। निर्गुण तो परमात्मा हैं, जो कभी स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होते। शंकर ! मैं समयानुसार सगुण और निर्गुण भी रूप धारण कर लेती हूँ। मेरा विग्रह सर्वोत्तम है। मैं सदा कारण होकर रहती हूँ। कभी कार्यकी श्रेणीमें नहीं गयी। कारण होनेकी स्थितिमें मेरा रूप सगुण रहता है। परम पुरुष परमात्माके पास मैं निर्गुणरूपसे रहती हूँ। अहंकार एवं शब्द-स्पर्श आदि महत्तत्त्वके गुण हैं। कार्य और कारणरूपसे दिन-रात व्यापार आरम्भ रहता है। मुझसे ही अहंकार उत्पन्न हुआ है। अतः मुझ कल्याणीको 'कारण' कहते हैं। अहंकार मेरा कार्य है। उसमें सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण आ जाते हैं। अहंकारसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। यह समष्टि बुद्धिका परिचायक है। इससे महत्तत्त्व कार्य और अहंकार कारण कहलाता है। अहंकारसे तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं—यह निरन्तरका नियम है। वे ही सूक्ष्मरूपसे पञ्चभूतोंकी कारण होती हैं। सबके सृजनमें पञ्चभूतोंके सात्त्विक अंशसे पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा सोलहवाँ मन—ये सभी उत्पन्न होते हैं। इनमें कोई कार्य होता है और कोई कारण। इस प्रकार सोलह विभिन्न पदार्थोंका समुदाय यह प्राणी होता है। परमात्मा आदिपुरुष हैं। वे न कार्य हैं और न कारण। शम्भो ! सबके सृष्टि-कालमें इसी प्रकारकी शैली बरती जाती है। यों सृष्टिका क्रम मैंने संक्षेपमें तुम्हें बतला दिया। महानुभाव देवताओ ! अब मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये विमानपर बैठकर तुमलोग शीघ्र पधारो। कोई कठिन कार्य उपस्थित होनेपर जब तुम मुझे स्मरण करोगे, तब मैं सामने आ जाऊँगी। देवताओ ! मेरा तथा सनातन परमात्माका ध्यान तुम्हें सदा करते रहना चाहिये। हम दोनोंका स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे कार्य सिद्ध होनेमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं रहेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवती जगदम्बिकाने हमें विदा कर दिया। उन्होंने शुद्ध आचारवाली शक्तियोंमेंसे भगवान् विष्णुके लिये महालक्ष्मीको, शंकरके लिये महाकालीको और मेरे लिये महासरस्वतीको पत्नी बननेकी आज्ञा दे दी। अब उस स्थानसे हम चल पड़े। दूसरे स्थानोंपर हम तीनोंकी पुरुषरूपसे प्रतिष्ठा हुई। देवीके उस परम अद्भुत प्रभाव एवं स्वरूपका हम सदा स्मरण कर रहे थे। यात्राकालमें हमारे विमानपर चढ़ते ही वह द्वीप, वह देवी और सुधासागर—सब-के-सब अदृश्य हो गये। पुनः हमें विमान ही दीखने

लगा—दूसरी कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ी। वह विमान बहुत विशाल था। उसपर बैठकर हमलोग कमलके पास पहुँचे, जहाँ केवल जल-ही-जल था और मधु एवं कैटभ नामक दुर्धर्ष दानव श्रीहरिके हाथसे कालके ग्रास बन चुके थे। (अध्याय ६)

☆

## नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका, त्रिविध सृष्टि तथा गुणादिका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—मैं, विष्णु एवं शंकरने ऐसी अनुपम प्रभावशाली देवीके दर्शन प्राप्त किये। महाभाग नारद ! वहाँ छिपे रूपसे वे बहुत-सी देवियाँ अलग-अलग दृष्टिगोचर हो रही थीं।

व्यासजी कहते हैं—पिताकी यह बात सुनकर मुनिवर नारदजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। पुनः ब्रह्माजीसे वे पूछने लगे।

नारदजीने कहा—पिताजी ! जो आद्य, अविनाशी, निर्गुण, अक्षर एवं अव्यय परम पुरुष हैं, उनके देखे हुए और अनुभव किये हुए रूपका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। कमलपर प्रकट होनेवाले पिताजी ! मैं त्रिगुण शक्तिके दर्शन तो कर चुका। अब, निर्गुणा शक्ति कैसी हैं ? उनका रूप और परम पुरुषका रूप दोनों साथ ही मुझे बताइये। उनके दर्शन पानेके लिये श्वेतद्वीपमें जाकर मैं महान् तप करता रहा। बहुत-से सिद्ध, महात्मा और क्रोधपर विजय पानेवाले तपस्वी सामने आये। किंतु उन परब्रह्म परमात्माको मैं नहीं देख सका। कृपापूर्वक इनका परिचय मुझे बताइये।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीने अपने पिता प्रजापति ब्रह्माजीसे पूछा। तब ब्रह्माजीका मुख मुसकानसे भर गया। उनके मुखसे सत्य वाणी निकल पड़ी।

ब्रह्माजी बोले—मुने ! निर्गुणका रूप इन आँखोंसे नहीं दीख सकता, क्योंकि निर्गुणमें कोई रूप है ही नहीं, फिर वह दृष्टिगोचर कैसे हो। निर्गुणा शक्ति और निर्गुण परम पुरुष सुगमतापूर्वक नहीं दीख पड़ते। मुनिजन ज्ञान-रूपी नेत्रोंसे उनका अनुभव करते हैं। इन दोनों प्रकृति और पुरुषको अजन्मा एवं अविनाशी समझना चाहिये। विश्वासपूर्वक चिन्तन करनेसे इनकी झलक मिल सकती है। विश्वासकी कमी हो तो ये कभी भी नहीं मिल सकते। नारद ! सम्पूर्ण प्राणियोंमें जो चेतना है, उसीको परमात्मा समझो। तेजःस्वरूप परमात्मा विभिन्न

प्राणियोंमें व्यापकरूपसे सदा विराजमान रहते हैं। महाभाग नारद ! उन परमात्मा और आद्या शक्तिको व्यापक समझना चाहिये। वे सभी जगह रहते हैं। उनके बिना जगत्में किसी भी

वस्तुकी सत्ता नहीं है। वे दोनों विचिन्त्य हैं। वे सदा प्रत्येक प्राणीके शरीरमें मिलकर रहते हैं। दोनों अविनाशी हैं, एकरूप हैं, चिन्मय हैं, निर्गुण हैं और मलशून्य हैं। जो शक्ति हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं, वे ही शक्ति हैं—ऐसा सिद्धान्त है। नारद ! इनमें कोई भी भेद नहीं है। यह सूक्ष्म तत्त्व समझ लो। नारद ! सम्पूर्ण शास्त्रों और अङ्गों-उपाङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन करनेके पश्चात् भी जिसके मनमें वैराग्यका उदय नहीं होता, वह पुरुष इन प्रकृति और पुरुषके सूक्ष्म भेदको नहीं जान सकता। पुत्र ! तुम चरम कोटिके विद्वान् हो। भला, कोई सगुण प्राणी निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार कैसे कर सकता है ? अतः तुम्हें सगुण परमात्माकी ही आराधना करनी चाहिये।

नारदजीने कहा—पिताजी ! आप देवताओं-के भी आराध्य देव हैं। तीनों गुणोंका जो स्वरूप है, उसे मैं विस्तारपूर्वक जानना चाहता हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे अहंकारके तीन रूप हैं। पुरुषोत्तम ! उन रूपोंका भी स्पष्टी-करण करनेकी कृपा कीजिये। प्रभो ! जिसे जान लेनेपर मैं संदेहसे मुक्त हो जाऊँ, मुझे उस ज्ञानका उपदेश दीजिये। साथ ही गुणोंके विस्तृत लक्षणोंको भी अलग-अलग समझाइये।

ब्रह्माजीने कहा—निष्पाप नारद ! तीन अहंकारोंकी तीन शक्तियाँ हैं। तुम्हें उनका परिचय देता हूँ—वे 'ज्ञानशक्ति', 'क्रियाशक्ति' और 'अर्थशक्ति'के नामसे विख्यात हैं। ज्ञान-शक्तिका सात्त्विक अहंकारसे, क्रियाशक्तिका राजस अहंकारसे और द्रव्यशक्तिका तामस अहंकारसे सम्बन्ध है। ये तीन शक्तियाँ तुम्हें बतला दीं। नारद ! अब उनके कार्योंका निरूपण करूँगा, सावधान होकर सुनो। तामसी द्रव्यशक्तिसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच तन्मात्राओंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। आकाशका गुण शब्द, वायुका स्पर्श, अग्निका रूप, जलका रस और पृथ्वीका गुण गन्ध है। नारद ! संक्षेपसे यह बात समझ लेनी चाहिये। द्रव्यशक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले ये दसों एकत्रित होकर जब प्रकट होते हैं, तब इन्हें 'तामस अहंकारसे उत्पन्न सृष्टि' कहा जाता है। अब राजसी क्रियाशक्तिसे जिनका प्रादुर्भाव होता है, उन्हें कहता हूँ; सुनो। कान, त्वचा, जीभ, आँख और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान (पञ्चप्राण)—सभी क्रियाशक्तिसे उत्पन्न होते हैं। प्रकट हुए इन पंद्रहोंके समुदायको 'राजस सृष्टि' कहते हैं। इनके सभी साधन क्रियाशक्तिमय हैं। इनका उपादानकारण चिद्-वृत्ति कही जाती है। सात्त्विक अहंकारसे सम्बन्ध रखनेवाली जो ज्ञानशक्ति है, उससे दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच अधिष्ठातृदेवता तथा बुद्धि प्रभृति अन्तःकरणोंके अधिष्ठाता— चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र और चौथा क्षेत्रज्ञ तथा मनसहित पंद्रह प्रकट होते हैं। सात्त्विक अहंकारकी यह सृष्टि 'सात्त्विक सृष्टि'के नामसे विख्यात है। स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्माके दो रूप हैं। भगवान्‌के निराकार ज्ञानरूपको सबका उपादानकारण कहा जाता है। साधकोंको ध्यानमें स्थूलरूपकी झाँकी मिलती है। परमपुरुष परमात्माका यही सूक्ष्म शरीर है, जिसकी व्याख्या की गयी है। यह मेरा शरीर भी सूत्ररूपसे उन्हींका स्थूलरूप कहा

जाता है। पञ्चतन्मात्राओंकी व्याख्या मैं कर चुका हूँ। जो सूक्ष्म भूत थे, उन्हींका पञ्चीकरण कर देनेपर पाँच भूतोंका समुदाय शरीर उत्पन्न हो जाता है। इस पञ्चीकरणके भेदको भी कहता हूँ। सभी भूतोंके विभाग स्पष्ट हो जानेपर प्रत्येकमें एक-एक गुणकी वृद्धि लक्षित होती है। आकाशका केवल एक गुण शब्द है—दूसरा कोई नहीं। वायुके शब्द और स्पर्श—ये दो गुण हैं। अग्निके तीन गुण हैं—शब्द, स्पर्श और रूप। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण जलके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे पृथ्वी परिपूर्ण है। इस प्रकार सभी वस्तुओंके सम्मेलनसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति कही जाती है। ये सभी जीव मिलकर ब्रह्माण्डको स्थिर रखते हैं। चौरासी लाख प्राणी कहे गये हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—बेटा नारद! यह सृष्टिका वर्णन कर चुका, जो तुमने मुझसे पूछा था। अब गुणोंके विषयमें कहता हूँ, मनको एकाग्र करके सुनो। सत्त्वगुणको प्रीतिमय समझना चाहिये। सुखसे प्रीति उत्पन्न होती है। आर्जव, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धृति, अनुकम्पा, लज्जा, शान्ति और संतोष—ये सभी गुण निश्चल सात्त्विक प्रीतिके उत्पन्न होनेमें कारण हैं। सत्त्वगुण शुभ्रवर्ण है। इससे धर्ममें निरन्तर प्रेम बढ़ता है। साथ ही सात्त्विक श्रद्धाका प्रादुर्भाव और असात्त्विक श्रद्धाका तिरोभाव भी होता है। तत्त्वदर्शी मुनियोंने कहा है कि श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। राजसी श्रद्धा रक्तवर्णकी होती है। उससे विलक्षण प्रीति उत्पन्न होना असम्भव है। दुःखसे प्रीतिका अभाव होता है—यह निश्चित बात है। जहाँ राजसिक श्रद्धा होती है, वहाँ द्वेष, द्रोह, कृपणता, हठता, इच्छित पदार्थ पानेकी चिन्ता तथा निद्रा—ये सभी अपना अधिकार जमाये रहते हैं। अभिमान, घमंड और मानसिक विकार—ये राजस श्रद्धासे ही उत्पन्न होते हैं। विद्वान् पुरुष इन लक्षणोंको देखकर राजस श्रद्धा समझ ले। तामसिक श्रद्धाका रूप कृष्णवर्ण कहा गया है। यह मोह उत्पन्न करता एवं विषाद प्रकट करता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, टेढ़ापन, अत्यन्त नास्तिकता और दूसरेके दोषको देखनेका स्वभाव—ये तामसी श्रद्धाके लक्षण हैं। पण्डितजन इन लक्षणोंसे युक्त श्रद्धाको तामसी श्रद्धा निश्चित कर लें। इस श्रद्धासे सम्बन्ध होनेपर दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेकी प्रवृत्ति जग उठती है। अतएव कल्याणकामी पुरुषोंको चाहिये कि वे सात्त्विक श्रद्धाका प्रयोग करें, राजसिक श्रद्धापर नियन्त्रण रखें तथा तामसी श्रद्धाका सर्वथा त्याग कर दें। सत्त्व, रज और तम—इन तीनोंमें किसीसे किसीका प्रेम नहीं है। ये एक-दूसरेसे विरोध रखते हैं, कहीं-कहीं इनका मेल-मिलाप भी हो जाता है। वैसे न कहीं केवल सत्त्व रहता है और न रज एवं न तम ही। तीनों साथ रहते हैं। इससे इनको अन्योन्याश्रय भी कहा गया है। नारद! काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, असूया, ईर्ष्या आदि सभी शरीरके विकार हैं। जबतक ये बाहर नहीं निकल जाते, तबतक मनुष्य पुण्यात्मा नहीं बन सकता। तीर्थाटन करनेपर भी यदि ये विकार शरीरसे बाहर न निकलें तो तीर्थका फल केवल श्रम ही रहा। जैसे किसान कितने परिश्रमसे खेती करता है, विषम भूमिको सुडौल बनाकर

मँहगे मूल्यसे खरीदा हुआ बीज बोता है, मनमें उत्तम आशा लगी रहती है। दिन-रात खेतकी रक्षामें अथक परिश्रम करता है। अब हेमन्तका समय आ गया। खेतमें फल-फूल लग रहे हैं। इतनेमें रखवाली करनेवाला किसान सो गया। बाघ और मृग आदि जंगली जानवर आये और सारा खेत खा गये। बेचारा गृहस्थ निराश होकर बैठ गया। पुत्र ! वैसे ही मनसे विकार दूर न हुए तो तीर्थाटनके परिश्रमसे केवल दुःख ही उठाना पड़ता है—वह कोई फल नहीं दे सकता।

शास्त्रका अध्ययन करनेसे श्रेष्ठ सत्त्वगुण उत्पन्न होता और बढ़ता है। नारद ! उसका फल यह होता है कि तामसिक पदार्थोंमें आसक्ति नहीं हो पाती। राजस और तामस दोनों वृत्तियोंको वह हठपूर्वक रोक देता है। लोभ होनेसे प्रबल रजोगुणकी उत्पत्ति होती है। तमोगुण और सत्त्वगुणको वह दबा डालता है। मोह होनेसे तमोगुण उत्पन्न होता है और क्रमशः उसकी वृद्धि होने लगती है। वह सत्त्वगुण और रजोगुण—दोनोंपर अपना अधिकार जमाये रहता है। जिस प्रकार एक गुण दूसरेको दबा देता है, वह प्रसङ्ग अब मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ। जब सत्त्व-गुणकी वृद्धि होती है, तब मनमें धार्मिक भावनाएँ जग उठती हैं। उस समय रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न कोई बाहरी विषय चित्तपर नहीं चढ़ता। सदा सत्त्वगुणसे उत्पन्न अर्थका ही चिन्तन होता है। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ सामने नहीं आ पाते। बिना यत्न करनेपर भी धार्मिक अर्थ और यज्ञमें अभिरुचि उत्पन्न हो जाती है। सत्त्वगुणके उदय होनेपर मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष केवल सात्त्विक विषयोंमें ही रुचि रखता है। राजस पदार्थको भी नहीं चाहता, फिर तामस पदार्थको तो चाहेगा ही कैसे। इस प्रकार पहले रजोगुणको जीतकर फिर तमोगुणपर अधिकार करना चाहिये। पुत्र ! उस समय केवल शुद्ध सत्त्वगुण ही रह जाता है।

जब रजोगुण बढ़ जाता है, तब पुरुष सात्त्विक सनातन धर्मोंका परित्याग करके अन्य धर्मोंकी उपासना करने लगता है; क्योंकि उस समय राजसी श्रद्धा उसके हृदयमें जमी रहती है। राजसी श्रद्धाके उदय होनेपर धन बढ़ाने और राजस भोग भोगनेको जी चाहता है। तब सत्त्वगुण उससे दूर हट जाता है और तमोगुण भी पूरा पास नहीं ठहरता।

जब तमोगुण अत्यधिक बढ़ जाता है, तब वेद और धर्मशास्त्रमें मानव विश्वास नहीं कर पाता। मनमें तामसी श्रद्धाको लेकर धनका अपव्यय करता है। वह सभी जगह वैरका बीज बो देता है। कहीं भी उसे शान्ति नहीं मिलती। वह मूर्ख, शठ एवं क्रोधी मनुष्य सत्त्व और रजकी अवहेलना करके स्वच्छन्दतापूर्वक विशाल भोगोंमें भटकता रहता है। न केवल कहीं सत्त्वगुण रहता है और न रजोगुण एवं तमोगुण ही। ये सभी गुण परस्पर सापेक्ष हैं, अतः एक साथ रहते हैं। कहीं भी रजोगुणके बिना सत्त्वगुण और सत्त्वगुणके बिना रजोगुण नहीं ठहर सकता। पुरुष-श्रेष्ठ नारद ! तमोगुणके बिना ये सत्त्वगुण और रजोगुण भी आश्रय नहीं पाते। ऐसे ही सत्त्वगुण और रजोगुणके बिना केवल तमोगुण भी कहीं नहीं ठहर सकता। ये सभी गुण मिथुनधर्मा हैं। इनके कार्योंमें अन्तर है। सभी एक-दूसरेके आश्रयसे रहते हैं, कभी सर्वथा पृथक् नहीं रहते। एक गुण दूसरे गुणको

उत्पन्न करनेवाला होता है; क्योंकि ये प्रसवधर्मी हैं। कभी सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुणको उत्पन्न करता है, कभी रजोगुणसे सत्त्वगुण और तमोगुण भी उत्पन्न होते हैं। कहीं तमोगुण रजोगुण और सत्त्वगुण—इन दोनोंका जनक होता है। इसी प्रकार ये एक-दूसरेके जनक हैं—जैसे घटसे मिट्टी और मिट्टीसे घट उत्पन्न हुआ करता है। ये गुण बुद्धिमें रहकर परस्पर इच्छाओंको उद्बोधित करते हैं। जिस प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र—तीनों मिलकर किसी कार्यका सम्पादन करते हैं अथवा स्त्री-पुरुष—दोनोंका सम्मिलन होनेपर नूतन सृष्टि बन जाती है, वैसे गुण भी एक-दूसरेके साथ संयोग करते हैं। रजोगुणके मिथुन होनेपर सत्त्वगुण, सत्त्वगुणके मिथुन होनेपर रजोगुण और तमोगुणके मिथुन होनेपर सत्त्वगुण और रजोगुण—ये दोनों उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहा गया है।

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार पिताजीने सर्वोत्तम गुणकी व्याख्या की। यह सब सुननेके पश्चात् वहीं फिर मैंने उनसे प्रश्न किया।

नारदजीने कहा—पिताजी ! आपने गुणोंके लक्षण बतला तो अवश्य दिये; परंतु आपके मुखारविन्दसे निकला हुआ यह वाङ्मय-रस इतना मधुर है कि मैं अबतक इसे पीता रहा, किंतु मेरी तृप्ति नहीं हुई। अतएव गुणोंका सम्यक् प्रकारसे परिचय करानेकी कृपा कीजिये, जिससे मेरा अन्तःकरण परम शान्ति प्राप्त कर सके।

व्यासजी कहते हैं—रजोगुणसे प्रकट होनेवाले जगत्कर्ता ब्रह्माजी महाभाग नारदजीके पिता हैं। पुत्रके पूछनेपर वे कहने लगे।

ब्रह्माजी बोले—नारद ! मैं गुणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। केवल सत्त्वगुण तो कहीं भी लक्षित नहीं होता। सभी गुणोंका सम्मिलित रूप ही सामने आता है। उदाहरणके लिये, सम्पूर्ण आभूषणोंसे सुशोभित एवं हावभावसे युक्त एक सुन्दरी स्त्री अपने पतिको काम-सुख देती है, साथ ही उसके माता-पिता, भाई-बन्धु भी विभिन्न भावोंसे प्रसन्न होते हैं। वहीं, वह सौतोंको महान् कष्ट देनेवाली भी सिद्ध होती है। वैसे ही सत्त्वगुण जब स्त्री-वेषमें होता है और उससे रजोगुण एवं तमोगुण सम्बन्धित होते हैं, तब राजसी एवं तामसी वृत्ति उत्पन्न होती है। रजोगुण और तमोगुणके स्त्रीरूपमें आनेपर यदि सत्त्वगुणसे सम्बन्ध होता है तो सात्त्विक वृत्ति उत्पन्न होती है। एकसे दूसरेका परस्पर संयोग होनेपर एक विलक्षण वृत्ति तैयार हो जाती है। नारद ! स्वभावमें आश्रयके अनुकूल जात्यन्तरका आविर्भाव नहीं होता। जहाँ कहीं भी संयोगके अनुसार वृत्ति बन जाती है। जैसे एक सुन्दर युवती स्त्री है। लज्जा करना, मधुर बोलना और नम्रतापूर्वक रहना आदि गुण उसमें विद्यमान हैं। धर्मशास्त्रके अनुकूल कामशास्त्रकी वह पूर्ण जानकार है। उसके व्यवहारसे पतिको बड़ी प्रसन्नता होती है। साथ ही उसे देखकर सौतोंका कलेजा दहल उठता है। यद्यपि उसमें सभी सात्त्विक गुण हैं, फिर भी लोग कह बैठते हैं कि इसके व्यवहारसे बहुतोंको दुःख हो जाया करता है। वैसे ही सात्त्विक गुणके विषयमें उसके विपरीत तामसिक गुणका आभास हो जाना स्वभावसिद्ध है। जैसे राजकीय सेना चोरोंसे सताये जानेवाले साधुओंको सुख देनेवाली होती है और डाकूलोग उसीसे महान्

दुःखका अनुभव करने लगते हैं, वैसे ही गुण जिसका जैसा स्वभाव है, उसके अनुसार विपरीत भाव उत्पन्न कर देते हैं। जिस प्रकार आकाशमें अत्यन्त बादल छा जानेपर दुर्दिन हो जाता है, बिजली कड़कने लगती है, चारों ओर अँधेरा छा जाता है। मेघ भूमिको भिगोने लगते हैं। यह स्थिति खेत जोतनेवाले गृहस्थके लिये महान् दुःखदायी हो जाती है और जिनके खेतमें बीज उग गये हैं, उन्हें इससे सुख मिलता है। अधिक कष्ट तो उन बेचारे मन्दभागी गृहस्थोंको होता है, जिनका घर अभी छाया नहीं गया है—जो छप्परके लिये खर, बाँस आदि जुटा रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि सभी गुण जिनका जैसा स्वभाव है, उसीके अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल प्रतीत होते हैं।

पुत्र ! अब उन गुणोंके लक्षण बताता हूँ, सुनो। सत्त्वगुण प्रकाश करनेवाला, स्वच्छ और विशद है। जिस समय बचपनमें नाक, कान, आँख आदि इन्द्रियाँ अभी छोटी रहती हैं और निर्मल अन्तःकरण विषयोंकी ओर नहीं मुड़ता, उस समय शरीरमें सत्त्वगुणका साम्राज्य समझना चाहिये। फिर जँभाई लेना, सोना और हाथ-पैर पटकना आदि क्रियाएँ रजोगुणके प्रभावसे होती हैं। जब किसी मानवके शरीरमें रजोगुणकी मात्रा बढ़ जाती है, तब वह कलिका स्वरूप खोजने और दूसरे ग्राममें जाने-आनेकी धुनमें लग जाता है। विवादमें उलझ जानेपर उसका चित्त अत्यन्त चञ्चल हो उठता है। महान् अंधा बना देनेवाले कामकी उत्पत्ति हो जाती है। तदनन्तर शरीरके सभी अङ्गोंमें शीघ्र गुरुता आ जाती है। वह इन्द्रियोंको ढकने लगता है। मन एकाग्र न होनेसे नींद नहीं आती। नारद ! यों गुणोंके लक्षण समझ लेने चाहिये।

नारदजीने पूछा—पिताजी ! आपने तीनों गुणोंको भिन्न-भिन्न स्वभाववाला बतलाया है। तब ये तीनों एक स्थानमें रहकर एक-दूसरेके सहयोगसे कैसे निरन्तर कार्य करते हैं ? क्योंकि भिन्न-भिन्न स्वभाववाले शत्रु होते हैं, यह बिलकुल निश्चित बात है। भला, शत्रुगण परस्पर मिलकर कैसे काम कर सकते हैं—यह रहस्य मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—बेटा ! सुनो; मैं सत्त्व, रज, तम—तीनोंके विषयमें कहता हूँ। इन गुणोंका दीपक-जैसा स्वभाव है। उदाहरणके लिये, दीपक प्रकाश फैलाकर वस्तुओंको दिखाता है। तेल, बत्ती और लौ—ये तीनों विरुद्धधर्मी हैं अर्थात् किसीका किसीसे प्रेम नहीं है। वैसी ही बात यहाँ भी समझ लेनी चाहिये। विरुद्धधर्मी तेलका अग्निमें संयोग होता है और बत्ती, विरोधी तेल—दोनों परस्पर आगसे संयोग करके एकत्र होकर वस्तुओंको प्रकाशित करने लगते हैं।

नारदजी कहते हैं—सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! ऐसे ही प्रकृतिसे प्रकट हुए सभी गुण बताये गये हैं। वे ही प्रकृतिसे सम्बन्ध रखनेवाले गुण जगत्‌की उत्पत्तिमें कारण हैं।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! मेरे पूछनेपर नारदजीने यह सभी प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक मुझे समझा दिया, साथ ही गुणोंके सम्पूर्ण लक्षण अलग-अलग करके बतला दिये। वास्तवमें जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है, उसी परमा शक्तिकी आराधना करनी चाहिये। कार्यभेदसे वही शक्ति कभी सगुण और कभी निर्गुणभावसे विराजमान हो जाती है। निरीह अविनाशी परम

पुरुष परमात्मा पूर्ण होनेपर भी स्वतन्त्र कर्ता नहीं हैं। शक्ति-महामायाके बिना वे अकर्ता ही हैं। सत्, असत्-रूप इस सारे संसारकी सृष्टि ये महामाया ही करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, कुबेर, वरुण, अग्नि, वायु, पूषा, स्वामी कार्तिकेय और गणेश प्रभृति सभी देवता इस शक्तिसे सम्पन्न होनेपर ही अपने कार्य सम्पादन करनेमें समर्थ होते हैं। राजन् ! वे परमेश्वरी ही जगत्की कारण हैं। तुम उन्हींका भजन और पूजन करो। विधिपूर्वक परम भक्तिके साथ उन्हींकी पूजामें संलग्न हो जाओ। वे ही महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंकी अधिष्ठात्री हैं। सभी कारण उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। वे समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, शान्तस्वरूपा, सुखसे आराधना करनेयोग्य और परम दयालु हैं। केवल उनके नामका उच्चारण करनेसे ही वे अभीष्ट वस्तु दे देती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवताओंने पूर्वकालमें उनकी उपासना की है। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले बहुत-से आत्मसंयमी तपस्वी उनकी उपासना कर चुके हैं। प्रसङ्गवश अस्पष्ट नाम उच्चारण करनेपर भी वे अभिलषित दुर्लभ पदार्थोंको प्रदान कर देती हैं। वनमें व्याघ्र आदि हिंसक जानवरोंको देखकर डर जानेसे 'ऐ' 'ऐ' यों बिन्दुरहित नामका उच्चारण होनेपर भी मनोरथ पूर्ण हो गया था। राजन् ! इस विषयमें सत्यव्रत ब्राह्मणका उदाहरण सामने है। हम सभी पुण्यात्मा मुनियोंका समाज एकत्रित था। वहीं कुछ विशेषज्ञ पुरुष यह प्रसङ्ग कह रहे थे। मैंने प्रत्यक्ष अपने कानोंसे विस्तारपूर्वक सभी बातें सुनीं। सत्यव्रत नामका एक महान् मूर्ख निरक्षर ब्राह्मण था। किसी कोलके मुखसे सुनकर प्रसङ्गवश उसने उसका उच्चारण किया था। अनुस्वारका उच्चारण उससे नहीं हो सका। केवल 'ऐ' इतना ही उच्चारण हुआ। फिर भी वह एक बड़ा भारी विद्वान् बन गया। 'ऐ' कारके उच्चारण करनेसे ही उसपर भगवती परम प्रसन्न हो गयीं। दयासे ओतप्रोत रहनेवाली उन भगवती परमेश्वरीने उस ब्राह्मणको कविराज बना दिया।

(अध्याय ७—९)

☆

## भगवती देवीकी कृपासे मूर्ख उतथ्यके महान् पण्डित सत्यव्रत ब्राह्मण बन जानेकी कथाका आरम्भ, अनायास सारस्वतमन्त्रके उच्चारणसे भगवतीकी महती कृपा

जनमेजयने पूछा—वह द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मण सत्यव्रत कौन था ? किस देशमें उसकी उत्पत्ति हुई थी और उसका कैसा स्वभाव था ? मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। उस ब्राह्मणने कैसे 'ऐ' यह सुना और फिर क्यों उसका उच्चारण किया। उच्चारण करते ही उस ब्राह्मणको कैसी सिद्धि तत्काल प्राप्त हो गयी ? सब कुछ जाननेमें समर्थ तथा सर्वत्र विराजमान रहनेवाली भगवती इतनेसे कैसे प्रसन्न हो गयीं ? मुने ! मनको मुग्ध करनेवाली यह कथा विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यासजी परम उदार, पवित्र एवं मधुर वचन कहने लगे।

व्यासजीने कहा—राजन्! यह पुराण-सम्बन्धी पावन कथा मैं कहता हूँ, सुनो। कुरुराज! बहुत पहलेकी बात है, मुनियोंके समाजमें मैंने यह कथा सुनी थी। कुरुश्रेष्ठ! एक समयकी बात है—मैं पवित्र तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ पुण्यभूमि नैमिषारण्यमें पहुँच गया। वहाँ बहुत-से मुनि विराजमान थे। उन सभी मुनियोंको प्रणाम करके उस उत्तम आश्रममें मैं बैठ गया। कठोर व्रतका पालन करनेवाले एवं जीवन्मुक्त सभी ब्रह्माजीके मानस पुत्र वहाँ पधारे थे। उस समय उन ब्राह्मणोंके समाजमें कथा आरम्भ हो रही थी। जमदग्निजीने सामने बैठकर मुनियोंसे इस प्रकार पूछा।

जमदग्नि बोले—तपस्यामें तत्पर रहनेवाले महाभाग मुनियो! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वरुण, कुबेर, पवन, त्वष्टा, स्वामी कार्तिकेय, गणेश, सूर्य, अश्विनीकुमार, भग, पूषा, चन्द्रमा तथा सभी ग्रह—इन सबमें विशेषरूपसे किसकी उपासना करनी चाहिये? कौन देवता अभीष्ट फल प्रदान कर सकते हैं? किनकी सुखपूर्वक आराधना की जा सकती है और तुरंत कौन देवता प्रसन्न हो जाते हैं? श्रेष्ठ व्रतमें संलग्न रहनेवाले महानुभाव मुनियो! आपसे कोई बात छिपी नहीं है। अतः शीघ्र बतानेकी कृपा कीजिये।

इस प्रकार मुनिवर जमदग्निके पूछनेपर लोमशजीने कहा—जमदग्ने! तुमने यह जो प्रश्न किया है, इस विषयमें अब मैं कहता हूँ; सुनो। सभी कल्याणकामी पुरुषोंको चाहिये कि वे महाशक्तिकी उपासना करें। वे पराप्रकृति, आद्या, सर्वत्र विराजमान और सब कुछ देनेवाली कल्याणमयी हैं। वे ही देवताओं तथा ब्रह्मा आदि महानुभावोंकी जननी हैं। आदि प्रकृति होनेसे संसाररूपी वृक्षकी वे मूल कारण हैं। स्मरण करने अथवा नामका उच्चारण करनेपर वे अवश्य मनोरथ पूर्ण कर देती हैं। उनका हृदय दयासे ओतप्रोत है। उपासना करनेपर वे तुरंत वर देनेमें तत्पर हो जाती हैं। मुनिवरो! एक परम पावन कथा कहता हूँ, सुनो—कैसे एक अक्षरके उच्चारण करनेसे ही ब्राह्मणने मोक्ष प्राप्त कर लिया था।

कोसलदेशमें देवदत्त नामसे विख्यात कोई एक ब्राह्मण रहता था। उसे संतान नहीं थी। पुत्र-प्राप्तिके लिये उसने सविधि पुत्रेष्टि याग आरम्भ किया। तमसा नदीके तटपर जाकर उत्तम यज्ञ-मण्डप बनाया। यज्ञ करानेमें निपुण, वेदके पूर्ण ज्ञाता ब्राह्मण बुलाये गये। विधिपूर्वक वेदी बनायी गयी। अग्निकी स्थापना की। यों द्विजवर देवदत्त विधिपूर्वक पुत्रेष्टि यागमें संलग्न हुआ। देवदत्तने उस यज्ञमें मुनिवर सुहोत्रको ब्रह्मा, याज्ञवल्क्यको अध्वर्यु, बृहस्पतिको होता, पैलको प्रस्तोता, गोभिलको उद्गाता तथा अन्य उपस्थित मुनियोंको सदस्य बनाकर उन्हें विधिवत् धन दक्षिणामें दिया। सामवेदका गान करनेवाले मुनिवर गोभिल उद्गाता होकर सातों स्वरोंके साथ रथन्तर मन्त्रका उच्चारण कर रहे थे। स्वरित स्वरसे मन्त्रगान हो रहा था। बार-बार साँस लेनेसे मन्त्रोच्चारण करते समय उसका स्वर भङ्ग हो गया। तुरंत देवदत्तने कुपित होकर गोभिलसे कहा—'मुनिवर! तुम बड़े मूर्ख हो। मैं पुत्र प्राप्त करनेके लिये यज्ञ कर रहा हूँ, तुमने मेरे इस सकाम यज्ञमें स्वरहीन मन्त्रका उच्चारण कर दिया।' यह सुनकर गोभिल अत्यन्त क्रोधसे भर

गये। उन्होंने देवदत्तसे कहा—'तुम्हें शब्दशून्य प्रचण्ड मूर्ख पुत्र प्राप्त होगा। साथ ही उसमें शठता भी भरी होगी। महामते! सभी प्राणियोंके शरीरमें श्वास आते-जाते रहते हैं। इनपर किसीका अधिकार नहीं है। फिर स्वरभङ्ग हो जानेमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं है, जो तुमने मुझसे ये कटु वचन कह डाले।' महात्मा गोभिलकी उपर्युक्त बात सुननेके पश्चात् उनके शापसे भयभीत होकर अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए देवदत्तने मुनिसे कहा—'विप्रवर! आप मुझ निर्दोषपर निष्कारण क्यों कुपित हो रहे हैं? मुनि तो कभी भी क्रोधके वश नहीं होते और सदा सुख प्रदान किया करते हैं। विप्रेन्द्र! थोड़ा-सा अपराध हो जानेपर आपने कैसे मुझे शाप दे दिया? पहले तो मैं पुत्रके अभावसे महान् दुःखी था ही, इसपर आपने मुझे दूसरे घोर दुःखके ही पचड़ेमें डाल दिया; क्योंकि वेदके पारगामी विद्वान् कहते हैं कि मूर्ख पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना ही उत्तम है। फिर भी मूर्ख ब्राह्मण तो सबकी दृष्टिमें हेय समझा जाता है*। द्विजवर! मूर्ख ब्राह्मण सभी कर्मोंमें पशु अथवा शूद्रकी भाँति अनधिकारी माना जाता है। अब ऐसे मूर्ख पुत्रसे मेरा कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? जैसा शूद्र, वैसा ही मूर्ख ब्राह्मण—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। मूर्ख ब्राह्मणकी न कहीं पूजा होती है न उसे दान मिलता है। सम्पूर्ण कार्योंमें वह निन्द्य माना जाता है। देशमें रहनेवाले वेदशून्य मूर्ख ब्राह्मणको कर देना पड़ता है। राजा उसे शूद्रके समान समझते हैं। पितृकार्य तथा देवकार्यके अवसरपर फलकी इच्छा करनेवाले पुरुषको चाहिये कि मूर्ख ब्राह्मणको किसी आसनपर न बैठावे। राजा भी उसे शूद्रवत् जानकर सभी शुभकार्योंमें वञ्चित रखते हैं। ऐसे वेदहीन ब्राह्मणको खेती करनेका काम सौंपते हैं। बिना ब्राह्मणके कुशके चटसे श्राद्धमें कार्य सम्पादन कर लेना ठीक है; किंतु मूर्ख ब्राह्मणसे कभी भी श्राद्धकी विधि पूर्ण न करे।† मूर्ख ब्राह्मणको भोजनसे अधिक अन्न नहीं देना चाहिये। उस राजाके राज्यको धिक्कार है, जिसके देशमें मूर्ख जनता बसती है तथा मूर्ख ब्राह्मण भी दान-मान आदिसे पूजित होते हैं, साथ ही जहाँ आसन, पूजन और दानमें किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं माना जाता। अतः विज्ञ पुरुषको चाहिये कि मूर्ख और पण्डितके भेदकी जानकारी अवश्य रखें। जहाँ दान, मान और परिग्रहसे मूर्ख गौरवके पात्र माने जाते हों, उस देशमें पण्डितजनको किसी प्रकार भी नहीं

* मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेदविदो विदुः। तथापि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निन्द्य एव हि॥ (३।१०।३१)

† विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धं कुशचटेन वै। न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन॥ (३।१०।३७)

रहना चाहिये*; क्योंकि दुर्जन व्यक्तियोंकी सम्पत्तियाँ दुर्जनोंके उपकारमें ही व्यय होती हैं—जैसे फलसे लदे हुए नीमके वृक्षपर आकर कौवे भले ही फल खा लें, वे फल अन्य किसीके उपयोगमें नहीं आते। वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेद-पाठ करता है, उसके पूर्वज स्वर्गमें रहकर अत्यन्त आनन्दके साथ क्रीड़ा करते हैं। अतः गोभिलजी ! आप तो वेदके प्रकाण्ड विद्वान् हैं; फिर मुझे मूर्ख पुत्र होनेकी बात आपने क्यों कह दी ? अरे, इस संसारमें मूर्ख पुत्रका होना तो कहीं मृत्युसे भी अधिक कष्टप्रद है। महाभाग ! अब आप इस शापसे उद्धार करनेकी मुझपर कृपा कीजिये। आप दीनोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। मेरा मस्तक आपके चरणोंमें पड़ा है।

लोमशजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर वह देवदत्त गोभिलजीके पैरपर पड़ गया। अत्यन्त कातर होकर करुणापूर्वक स्तुति करता रहा। उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। तब गोभिलजीने उस दीनहृदय देवदत्तकी ओर दृष्टि डाली। महात्माओंका क्रोध क्षणमें ही शान्त हो जाता है। पापीजन ही ऐसे हैं, जिनका कोप कल्पोंतक भी दूर नहीं होता। जलका स्वाभाविक गुण है शीतल रहना। आगपर गरम करनेसे वह गरम भले ही हो जाय; किंतु फिर आगका संयोग हटते ही वह तुरंत ठंढा हो जाता है।† गोभिलजीका हृदय दयासे भर गया। उन्होंने अत्यन्त दुःखी देवदत्तसे कहा—'तुम्हारा पुत्र मूर्ख होकर फिर विद्वान् भी हो जायगा। यह बिलकुल निश्चित बात है।' यों वर दे देनेपर द्विजवर देवदत्तका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। यज्ञकी पूर्णाहुति की गयी। सभी उपस्थित ब्राह्मण विधिपूर्वक विदा हुए। कुछ समय व्यतीत होनेपर देवदत्तकी सुन्दरी पतिव्रता स्त्रीने गर्भ धारण किया। ब्राह्मणपत्नीका नाम रोहिणी था। वह रोहिणीके समान ही शुभलक्षणा थी। देवदत्तने विधिके साथ गर्भाधान और पुंसवन आदि संस्कार सम्पन्न किये। उसका शृङ्गार कराया। वेदमें कही हुई विधिके अनुसार सीमन्तोन्नयन-संस्कार किया। अपना मनोरथ सफल मानकर अत्यन्त प्रसन्न मनसे बहुत-सा धन दान दिया। शुभ-ग्रहका दिन था। नक्षत्र रोहिणी था। उसी शुभ-मुहूर्तमें उस रोहिणी नामक भार्याने पुत्र प्रसव किया। दिनमें शुभ-लग्नमें जन्म हुआ। उसी समय ब्राह्मणने बालकका जातकर्म-संस्कार किया। समयानुसार पुत्रको देखकर नामकरण किया। देवदत्तको पहलेकी बातें याद थीं। उन्होंने अपने उस पुत्रका नाम 'उतथ्य' रखा। आठवें वर्षमें शुभ-योग और शुभ-दिन पाकर उन ब्राह्मण देवताने पुत्रका यज्ञोपवीत-संस्कार सविधि सम्पन्न किया। वेदाध्ययनकी विधि उपस्थित होनेपर गुरुदेव उतथ्यको पढ़ाने लगे, किंतु उतथ्यने एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया। वह मूर्खकी भाँति चुपचाप बैठा रहा। फिर पिताने उसे बहुतेरे ढंगसे पढ़ाया; किंतु उस मूर्खकी बुद्धि ठीक रास्तेपर नहीं आयी। वह मूर्खके समान पड़ा रहा। फिर तो पिता देवदत्त चिन्ताके समुद्रमें डूबने लगे। बारह

---

* मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः। तस्मिन् देशे न वस्तव्यं पण्डितेन कथञ्चन॥ (३।१०।४)

† क्षणकोपा महान्तो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः।
जलं स्वभावतः शान्तं पावकातपयोगतः। उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत्॥
(३।१०।४७-४८)

वर्षोंतक उतथ्य पढ़नेका अभ्यास करता रहा। फिर भी संध्या-वन्दन करनेकी विधि तक उसे मालूम न हो सकी। जगत्में जितने ब्राह्मण, तपस्वी तथा इतर जन थे, उन सबमें इस बातका प्रचार हो गया कि उतथ्य मूर्ख है। जहाँ कहीं भी वह वनमें जाता था, लोग उसका उपहास करते थे। माता-पिता भी उसकी निन्दा करने और उसे कोसने लगे। जब सारी जनता, पिता-माता एवं बन्धु-बान्धव—सभी उतथ्यकी अत्यन्त निन्दा करने लगे, तब उस ब्राह्मणके मनमें वैराग्य हो गया। वह वनमें जाने लगा। पिताने कहा—'यदि यह अन्धा या पङ्गु रहता तो भी ठीक था; किंतु मूर्ख पुत्र तो बिलकुल व्यर्थ है।' माता-पिताकी इन बातोंसे ऊबकर वह उतथ्य वनमें चला गया। गङ्गाके तटपर एक पवित्र स्थान था। वहीं सुन्दर कुटी बनाकर वह जंगलके फल-मूल खाकर ही जीवन व्यतीत करने लगा। वहाँ मन और इन्द्रियोंपर संयम रखते हुए वह रहने लगा। उत्तम नियम यह बना लिया, 'अब कभी भी झूठ नहीं बोलूँगा।' यों उस सुरम्य आश्रमपर ब्रह्मचर्यपूर्वक उसका समय व्यतीत होने लगा।

लोमशजी कहते हैं—वह ब्राह्मण उतथ्य न वेदाध्ययन जानता था और न जप ही। देवताओंका ध्यान और आराधन कैसे होता है—इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और भूतशुद्धि करनेकी विधिसे वह बिलकुल अपरिचित था। कीलक मन्त्र पढ़ने और गायत्रीका जप करनेसे वह सर्वथा अनभिज्ञ था। शौच जानेकी, स्नान करनेकी और आचमनकी विधि भी उसे मालूम न थी। भोजनके समय प्राणाग्निहोत्र करके, विश्वदेवबलि एवं अतिथिबलि देने तथा संध्याके अवसरपर समिधा लाकर हवन करनेके नियमका ज्ञान भी उसे नहीं था। बस—वह उतथ्य ब्राह्मण प्रातःकाल उठता था और यथाकथंचित् दतुअन करके बिना कुछ मन्त्र बोले ही शूद्रकी भाँति गङ्गामें स्नान कर लेता था। मध्याह्नकालमें जंगलसे फल ले आता था और इच्छानुसार उदरकी पूर्ति कर लेता था। कौन फल खानेके योग्य है और कौन नहीं, इसका उसे कुछ पता नहीं था। वह सत्य बोलता था। उसके मुखसे कभी भी मिथ्या शब्द नहीं निकलता। इससे वहाँकी जनताने उस ब्राह्मणका नाम 'सत्यव्रत' रख लिया। वह न कभी किसीका अहित करता और न अनुचित कर्ममें उसकी प्रवृत्ति होती। सुखसे अपनी कुटीमें ही सो जाता था। भय उसके पास भी फटकने नहीं पाते थे। हाँ, उसके मनमें यह चिन्ता बनी रहती कि 'कब मेरा शरीर शान्त हो जायगा। मैं जंगलमें कष्टसे जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मूर्ख जीवनको धिक्कार है। मर जाना निश्चित है तो फिर देर क्यों, दैवने ही मुझे मूर्ख बना दिया है, इसमें दूसरा कोई कारण नहीं है। उत्तम ब्राह्मण-कुलमें जन्म पाकर भी मैं अब किसीके कामका नहीं रहा। जैसे वन्ध्या सुन्दर स्त्री हो, बिना फलका वृक्ष हो और दूध न देनेवाली गाय हो, वैसे ही मैं भी व्यर्थ ही रहा। मैं दैवकी भी क्या निन्दा करूँ। निश्चय ही मेरे ऐसे कर्म बन चुके हैं। मैंने पूर्वजन्ममें पुस्तक लिखकर न तो श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दी और न किसीको उत्तम विद्या पढ़ायी; उसी कर्मके प्रभावसे मुझ अधम ब्राह्मणको यह फल भोगना पड़ रहा है। मैंने तीर्थमें रहकर तपस्या नहीं की, संत पुरुषोंका स्वागत नहीं किया और धन देकर ब्राह्मणोंकी

पूजा नहीं की। अतएव इस जन्ममें मैं मूर्ख रह गया। यहाँ वेद और शास्त्रके पारगामी अनेकों मुनिकुमार हैं। किसी दुर्दैवका मारा हुआ मैं ही एक ऐसा दुर्बुद्धि निकला। मुझे तपस्या करनेकी विधि तो मालूम ही नहीं है, फिर मैं कौन-सा श्रेष्ठ साधन करूँ। मेरे मनकी यह कल्पना व्यर्थ है; क्योंकि मेरा भाग्य ही खोटा है।'

इस प्रकार द्विजवर उतथ्यके मनमें रात-दिन चिन्ताकी तरङ्गें उठती रहती थीं। गङ्गाके तटपर पवित्र भूमिमें एक छोटी-सी कुटिया थी। उसीमें ये समय व्यतीत कर रहे थे। उतथ्यका वह आश्रम बिलकुल निर्जन वनमें था। विरक्त होकर कालक्षेप करते हुए वे चुपचाप वहीं बैठे रहते थे। यों उस पुण्यसलिला गङ्गाके तटपर चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। न कोई आराधना की, न जप किया और न किसी मन्त्रकी जानकारी प्राप्त की, उस वनमें रहकर उतथ्यने केवल समय ही व्यतीत किया। पर उतथ्य मुनि सत्य बोलनेका व्रत पालन करते हैं, यह बात सब लोग जान गये। सारी जनतामें उनका यश फैल गया कि ये सत्यव्रत हैं, कभी भी इनके मुखसे मिथ्या वाणी नहीं निकलती।

एक समयकी बात है—एक महान् मूर्ख जंगली आदमी शिकार खेलते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथमें धनुष-बाण थे। उस घोर वनमें शिकार करते समय यमराजके समान वह भयंकर जान पड़ता था। उसकी शकल-सूरत बड़ी डरावनी थी। हिंसा-वृत्तिमें वह बड़ा ही निपुण था। उस धनुषधारी किरातके बाणसे एक सूअर बिंध गया था। अत्यन्त भयभीत होकर भागता हुआ वह सूअर बड़ी शीघ्रतासे उतथ्य मुनिके पास पहुँचा। जब आश्रममें आया, तब उस सूअरका शरीर थर-थर काँप रहा था। उसकी देह रुधिरसे लथपथ हो गयी थी। दयाका वह महान् पात्र हो गया था। उस दीन-हीन पशुपर उतथ्य मुनिकी दृष्टि पड़ गयी। रुधिरसे भीगे शरीरवाला वह सूअर मुनिके सामनेसे ही दौड़ा जा रहा था। अभी तुरंत उसे चोट लगी थी। दयाके उद्रेकसे उतथ्य मुनि काँप उठे। फिर तो उनके मुखसे सारस्वत-बीज 'ऐं' का उच्चारण हो गया। पहले इस मन्त्रको न कभी जाना था और न सुना ही था। किसी अदृष्टकी प्रेरणासे मुखमें आ गया। वे महात्मा उतथ्य तो नितान्त अज्ञानी थे। उन्हें सारस्वत बीज-मन्त्रका क्या पता, किंतु शोकमें पड़ जानेपर उनके मुखसे यह उच्चारण हो गया। इधर वह सूअर आश्रममें जाकर एक सघन झाड़ीमें छिप गया। वहाँ किसीके पहुँचनेका मार्ग नहीं था। अब उसे मनमें शान्ति मिली। किंतु बाणसे बिंधा होनेके कारण उसका शरीर काँप रहा था। इसके बाद तुरंत वह निषादराज शिकारी कानतक बाण खींचे हुए धनुष हाथमें लिये उतथ्य मुनिके सामने आ पहुँचा। उसका शरीर बड़ा ही भयंकर था। शिकार खेलते समय जान पड़ता था मानो स्वयं काल ही है। उस व्याधने देखा अद्वितीय सत्यवादी नामसे विख्यात उतथ्य मुनि कुशके आसनपर बैठे हैं। उसने सामने खड़े होकर प्रणाम किया और पूछा—'द्विजवर! सूअर कहाँ गया? मैं जानता हूँ आप प्रसिद्ध सत्यव्रती हैं। अतः अब मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि मेरे बाणसे बिंधा हुआ वह सूअर कहाँ है? मेरा सारा परिवार भूखसे छटपटा रहा है। मैं उस परिवारकी क्षुधा शान्त करनेकी इच्छासे ही आया हूँ। द्विजवर! ब्रह्माने मेरे लिये यही वृत्ति

बनायी है। दूसरा कोई रोजगार नहीं है। मैं बिलकुल सत्य कहता हूँ। अच्छे अथवा बुरे— किसी उपायसे कुटुम्बका भरण-पोषण करना तो अनिवार्य ही है। ब्राह्मण देवता ! आप सत्यव्रती हैं। सच्ची बात बतला दें। इस समय मेरे बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। बाणसे मारा हुआ वह सूअर कहाँ गया है ? पूछता हूँ, शीघ्र कहिये।'

इस प्रकार उस व्याधके पूछनेपर महाभाग

उतथ्य मुनिके मनमें भाँति-भाँतिके विचार उठने लगे। सोचा, 'नहीं देखा है'—यह कहनेपर कौन-सा उपाय है कि जिससे मेरा सत्यव्रत नष्ट न हो; परंतु सत्य हो अथवा असत्य, मैं यह भी कैसे कहूँ कि बाणसे बिंधे हुए शरीरवाला सूअर इधर गया है। यह क्षुधातुर व्याध तो पूछ ही रहा है, उसे देखकर यह मार ही डालेगा। वह सत्य सत्य नहीं है, जिसमें हिंसा भरी हो। यदि दयायुक्त हो तो अनृत भी सत्य ही कहा जाता है। जिससे मनुष्योंका हित होता हो, वही सत्य है।* उसे असत्य नहीं कहा जाता। दोनों विरुद्ध पक्ष हैं। इस स्थितिमें मेरा हित कैसे हो ? मैं क्या उत्तर दूँ, जिससे मेरी वाणी भी झूठ न हो ?

इस धर्मसंकटमें पड़कर उतथ्य सोचते रहे, परंतु किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। जब उतथ्यने बाणसे छिदे हुए दयापात्र सूअरको देखा था, तब उनके मुँहसे अनायास 'ऐ' शब्द निकल पड़ा था। 'ऐं' भगवतीका वाग्बीज मन्त्र है। अतः उसे सुनकर भगवती प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने उतथ्यको अलभ्य विद्या प्रदान कर दी। भगवतीके वाग्बीज मन्त्रका उच्चारण हो जानेसे मुनिको सम्पूर्ण विद्याएँ स्फुरित हो गयीं। प्राचीन समयमें जैसे वाल्मीकिजी हो चुके हैं, वैसे ही उतथ्य मुनि एक महान् कवि बन गये। सत्य बोलनेकी अभिलाषा रखनेवाले धर्मात्मा उतथ्य दयाशील तो थे ही। अब उन्होंने धनुष-बाण लेकर सामने खड़े हुए व्याधसे यह एक श्लोक कहा—'व्याध ! देखनेवाली जो आँख है, वह बोलती नहीं और जो वाणी बोलती है, उसने देखा नहीं; फिर तुम अपना कार्य साधनेकी धुनमें लगे हुए क्यों बार-बार पूछ रहे हो ?'†

मुनिवर उतथ्यके यों कहनेपर वह पशुघाती व्याध चला गया। सूअरके विषयमें उसकी आशा नष्ट हो गयी। जैसे आया था, वैसे ही वह अपने स्थानको लौट पड़ा। अब वे ही उतथ्य एक दूसरे

* सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम्। हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथान्यथैव ॥ (३।११।३६)

† या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति। अहो व्याध स्वकार्यार्थी किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ (३।११।४१)

वाल्मीकिकी भाँति प्रकाण्ड विद्वान् हो गये। सारे भूमण्डलमें सत्यव्रत नामसे उनकी प्रसिद्धि हो गयी। तदनन्तर सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐं' का उन्होंने विधिवत् जाप किया। इससे जगत्में उनकी विद्वत्ताकी प्रभा चारों ओर फैल गयी। ब्राह्मणलोग सभी पर्वोंके अवसरपर उनका यश निरन्तर गाया करते हैं।

इस कथाको मुनिगण बहुत विस्तारसे कहा करते हैं। यह समाचार सुनकर जिन पिताने उतथ्यको त्याग दिया था, वे आश्रमपर गये और बड़े आदरके साथ मुनि उतथ्यको घर लौटा लाये। अतएव राजन्! उन आदिशक्ति भगवती जगदम्बिकाकी भक्तिपूर्वक सदा उपासना करनी चाहिये। वे परा शक्ति ही सारे जगत्की कारण हैं। महाराज! इसलिये अब तुम वेदमें कथित विधिके अनुसार उन भगवतीका यज्ञ आरम्भ करो। निश्चय ही वह यज्ञ सभी समय सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देता है—यह बात पहले कही जा चुकी है। भक्तिपूर्वक स्मरण, पूजन, ध्यान, नामोच्चारण एवं स्तवन करनेपर भगवती अभिलषित प्रयोजनोंको सिद्ध कर देती हैं। इसीसे लोग उन्हें 'कामदा' कहते हैं। राजन्! रोगी, दीन, क्षुधातुर, निर्धन, मूर्ख, वैरियोंसे पीड़ित, गुलामी करनेवाले, नीच, अङ्गहीन, पागल, भोजनसे कभी तृप्त न होनेवाले, सदा भोगमें ही रचे-पचे, इन्द्रियोंके गुलाम, अधिक लालची, सामर्थ्यहीन और रोगग्रस्त मनुष्योंको देखकर पण्डित सर्वथा अनुमान कर लें कि इन लोगोंने भगवतीकी उपासना नहीं की है। साथ ही जो सम्पत्तिशाली हैं, पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न हैं, शरीरसे हृष्ट-पुष्ट हैं, सभी भोगोंसे युक्त हैं, वेदवादी हैं, राज्यलक्ष्मीसे सुशोभित हैं, शूरवीर हैं, अपने भाई-बन्धुओंसे भरे-पूरे हैं तथा सारे शुभ लक्षणोंसे युक्त हैं, उन पुरुषोंको देखकर पण्डितजन अनुमान कर लें कि इन लोगोंने सम्पूर्ण मनोरथ सफल करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी आराधना की है। यों व्यतिरेक और अन्वय दोनों प्रकारसे विचार कर लेना चाहिये। इस जगत्में सुखियोंको देखकर निश्चय कर लेना चाहिये कि निश्चय ही इन्होंने जगदम्बिकाकी निरन्तर उपासना की है। इसीलिये ये सुखी हैं।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! नैमिषारण्य-क्षेत्रमें मुनिमण्डली बैठी थी। उस समय लोमशजीके मुखसे भगवतीका यह उत्तम माहात्म्य मैंने सुना था। राजेन्द्र! तुम इसे भलीभाँति विचार करके परम भक्ति और प्रेमके साथ भगवतीकी निरन्तर आराधनामें संलग्न हो जाओ। (अध्याय १०-११)

☆

## तीन प्रकारके यज्ञ, मानसयज्ञकी महत्ता और जनमेजयसे देवी-यज्ञ करनेके लिये व्यासजीकी प्रेरणा

राजा जनमेजयने कहा—प्रभो! आप भगवती जगदम्बिकाके अनुष्ठानकी समीचीन विधि बतलानेकी कृपा कीजिये, जिसे सुनकर अपनी शक्तिके अनुसार सावधानीसे मैं आराधनमें लग जाऊँ। पूजनकी विधि, मन्त्र और हवनकी सामग्री— सभी बता दें। कितने ब्राह्मण होने चाहिये और कितनी दक्षिणाएँ दी जायँ?

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सुनो, मैं भगवतीके यज्ञका सविधि वर्णन करता हूँ। अनुष्ठानविधिसे ये यज्ञ सदा तीन प्रकारके

समझने चाहिये—सात्त्विक, राजस और तामस। मुनियोंके लिये सात्त्विक, राजाओंके लिये राजस और राक्षसोंके लिये तामस होते हैं। ज्ञानी एवं वैरागियोंके लिये ज्ञानमय यज्ञ कहा गया है। तुम्हें और भी विस्तारसे बतलाता हूँ—देश, काल, द्रव्य, मन्त्र, ब्राह्मण और श्रद्धा जहाँ सात्त्विक हों अर्थात् काशी आदि पवित्र स्थान, उत्तरायणका समय, न्यायसे कमाया हुआ द्रव्य, वैदिक मन्त्र, श्रोत्रिय ब्राह्मण और आस्तिकी श्रद्धा हो; उसे सात्त्विक यज्ञ कहते हैं। राजन्! यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिसे यज्ञ सम्पन्न हो तो पूर्ण फल प्राप्त होता है—इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है। अन्यायसे उपार्जन किये हुए द्रव्यद्वारा जो पुण्य कार्य किया जाता है, वह न तो इस लोकमें कीर्ति दे सकता है और न परलोकमें ही उससे कुछ फल मिल सकता है* । अतएव इस लोकमें यश और परलोकमें सुख पानेके लिये न्यायसे कमाये हुए धनके द्वारा ही सदा पुण्य कार्य करना चाहिये।

राजेन्द्र! तुम्हारे सामनेकी बात है, पाण्डवोंने सर्वोत्तम राजसूय यज्ञ किया था। समाप्तिके समय प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं। उस यज्ञमें यादवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पधारे थे। भारद्वाज प्रभृति प्रकाण्ड विद्वानोंका समाज जुटा था। लगातार एक महीनेतक यज्ञ होनेपर पूर्णाहुति हुई थी। फिर भी पाण्डवोंको अत्यन्त कठिन कष्ट भोगने पड़े। उन्होंने वनवासके दुःख भोगे। पाञ्चालीको विपत्ति झेलनी पड़ी। जुएमें पाण्डव हार गये। भला, यज्ञका फल कहाँ रहा, जब कि उन्हें वनवासके इतने अधिक कष्ट सहने पड़े। उन सभी महाभाग पाण्डवोंने राजा विराटके घर नौकरी की थी। कीचकने साध्वी द्रौपदीको कितना कष्ट दिया था। जिस समय पतिव्रता सुन्दरी द्रौपदीको केश पकड़कर खींचा गया, उस समय कोई भी पाण्डव उस अबलाकी रक्षा न कर सके। यदि कर्म करनेमें प्रतिकूल फल सिद्ध हुआ तो श्रेष्ठ ज्ञान रखनेवाले पण्डितजन कल्पना कर लें कि इसमें अवश्य कोई अव्यवस्था हो गयी है। कर्मशील विद्वानोंने प्रायः कर्मको ही प्रधान बतलाया है। वे कहते हैं कर्ताके, मन्त्रके और द्रव्यके भेदसे विपरीत फल हो जाता है।

पूर्व समयकी बात है—इन्द्रने विश्वरूपको यज्ञमें आचार्य बनाया था। पर मातृपक्षवाले दैत्योंका भी हित करनेके लिये विश्वरूपजी विपरीत मन्त्र कहने लगे। देवताओं और दानवोंका कल्याण हो— बार-बार यों कहकर उन्होंने मातृपक्षवाले जो असुर थे, उनकी भी रक्षा करनी चाही। दैत्योंको हृष्ट-पुष्ट देखकर इन्द्र कुपित हो उठे। तदनन्तर देवराजने तुरंत वज्रसे विश्वरूपका मस्तक धड़से अलग कर दिया। इससे यह निस्संदेह सिद्ध हो जाता है कि कर्ताके भेदसे विपरीत फल होता है। यदि इसे न मानें तो ठीक नहीं; क्योंकि पञ्चालनरेश राजा द्रुपदने क्रोधके आवेशमें आकर द्रोणको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञ किया। फलस्वरूप धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। साथ ही यज्ञवेदीसे द्रौपदी नामक कन्याका भी जन्म हो गया। प्राचीन समयकी बात है, जब राजा दशरथको एक भी संतान नहीं थी, तब उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ

* अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्। न कीर्तिरिहलोके च परलोके न तत्फलम्॥ (३।१२।८)

किया, इससे उन्हें चार पुत्र उत्पन्न हुए। अतः युक्तिपूर्वक क्रिया करनेपर यज्ञ सर्वथा सिद्धि प्रदान कर सकता है।

राजन्! सभी तरहसे सिद्ध हो गया कि कर्ममें कुछ भी गड़बड़ी होनेपर फलसिद्धिमें प्रतिकूलता आ जाती है। पाण्डवोंके यज्ञमें भी कोई-न-कोई अनुचित कार्य अवश्य हो गया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें विपरीत भोग भोगने पड़े। जुएमें उनकी हार हो गयी। राजन्! धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर जैसे सत्यवादी थे, वैसे महारानी द्रौपदी भी साध्वी थीं, अन्य सभी भाई भी बड़े पवित्रात्मा थे; किंतु उनका धन अन्यायोपार्जित था, इसीसे क्रियामें विगुणता आ गयी थी। अथवा यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने अभिमानपूर्वक यज्ञ किया था, जिससे दोष सामने आ गया।

महाराज! सात्त्विक यज्ञको तो बड़ा ही दुर्लभ बताया गया है। वानप्रस्थी मुनिलोग ही इस यज्ञको कर सकते हैं। राजन्! जो तपस्यामें तत्पर रहनेवाले मुनि प्रतिदिन सात्त्विक भोजन करते हैं, जंगली पका हुआ फल, जो उनके हितकारक हो, वही ग्रहण करते हैं, खीर बनाकर मन्त्रपूर्वक हवन करते हैं। यज्ञमें पशु बाँधनेके लिये खम्भ नहीं रखते अर्थात् पशुबलि तो करते ही नहीं, श्रद्धा अधिक रखते हैं। ऐसे ही यज्ञोंको परम सात्त्विक कहा गया है। जिनमें प्रचुर द्रव्य खर्च किया जाय, वे यज्ञ सुसंस्कृत होनेपर भी क्षत्रियोंके तथा वैश्योंके लिये और अभिमान-पूर्वक सम्पन्न होनेवाले यज्ञ शूद्रोंके लिये बताये गये हैं। महात्माओंने कहा है कि अभिमान बढ़ानेवाले कोपपूर्ण तामस यज्ञ दानवोंके होते हैं। उनके निन्दित यज्ञमें सर्वत्र ईर्ष्या भरी रहती है। जो मुमुक्षु पुरुष हैं तथा जगत्से जिनका विराग हो गया है, उन महात्माओंके लिये मानसिक यज्ञका विधान है। महात्माओंके यज्ञमें किसी साधनकी कमी नहीं रहती। अन्य सभी यज्ञोंमें किसी-न-किसी साधनकी कमी हो भी सकती है; क्योंकि द्रव्य, श्रद्धा, क्रिया, ब्राह्मण, देश और काल—इन सभी साधनोंसे यज्ञ पूर्ण होते हैं।

एक मानस यज्ञके सिवा किसी भी यज्ञमें साङ्गोपाङ्ग सभी साधन नहीं मिल सकते। सबसे पहले मनकी शुद्धि आवश्यक है। मन सर्वथा गुणरहित हो जाय। यह बिलकुल सत्य बात है कि मन शुद्ध हो जानेपर शरीरकी शुद्धि हो ही जाती है। जिसका मन इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग करके शान्त हो जाता है, वही पुरुष इस यज्ञके करनेका अधिकारी होता है। मनमें ही सर्वप्रथम अनेक योजनके विस्तारवाला मण्डप बनाये। जिन्हें यज्ञोंमें लिया गया है, उन पवित्र वृक्षोंके सुन्दर और दृढ़ मण्डपकी रचना करे। मानसिक विशाल वेदीकी कल्पना कर मनसे ही विधिवत् अग्निस्थापना भी कर ले। मनमें ही विधिका पालन करते हुए ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता और प्रस्तोताके रूपमें ब्राह्मणोंको वरण कर लिया जाय। उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा अन्य सदस्योंकी भी मानसिक कल्पना कर ले। सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी यत्नपूर्वक मानसिक पूजा भी कर लेनी चाहिये। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—इन पाँचों अग्नियोंकी वेदीपर सविधि स्थापना करे। उस समय गार्हपत्य अग्निके स्थानपर प्राणकी, आहवनीयके स्थानपर अपानकी, दक्षिणाग्निके स्थानपर व्यानकी, आवसथ्यके स्थानपर समानकी तथा

सभ्यके स्थानपर उदानकी कल्पना कर ले। ये सभी अग्नि परम तेजस्वी हैं। मन-ही-मन द्रव्यकी भावना कर लेनी चाहिये। परम पवित्र निर्गुण मन ही उस समय होता और यजमानका काम करता है। उस यज्ञके प्रधान देवता निर्गुण अविनाशी साक्षात् ब्रह्म हैं। सदा आनन्द प्रदान करनेवाली कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बिका निर्गुण शक्तिके रूपमें पधारकर फल प्रदान करती हैं। वे ही ब्रह्मविद्या हैं। उन्हींपर सारा जगत् टिका है। वे सर्वत्र व्याप्त हैं। मानसिक यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण उन्हीं भगवती जगदम्बिकाके उद्देश्यसे उन्हींके द्रव्यका प्राणरूपी अग्निमें हवन कर दे। राजन् ! फिर चित्तको निरालम्ब करनेके पश्चात् प्राणोंको भी सुषुम्णा-मार्गसे नित्य ब्रह्ममें होम दे। स्वयं अपने अनुभवसे यह काम कर लेना चाहिये। तदनन्तर शान्तचित्तसे समाधि लगाकर परब्रह्मस्वरूपा भगवती परमेश्वरीका ध्यान करे। जिस समय पुरुष 'सम्पूर्ण प्राणियोंमें परब्रह्म विराजमान है तथा परब्रह्ममें ही सारे प्राणी हैं'—यों देखने लगता है, तब उसे परम मङ्गलमयी भगवती जगदम्बिकाकी झाँकी होने लगती है।* भगवतीका श्रीविग्रह सत्, चित् और आनन्दसे परिपूर्ण है। उनके दर्शन हो जानेपर पुरुष ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। राजन् ! उस समय उस पुरुषके मायिक सभी कार्य जल-भुन जाते हैं। केवल प्रारब्ध भोगनेके लिये ही वह शरीर धारण किये रहता है। तात ! ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष मरनेके पश्चात् परम धाममें चले जाते हैं। जो भगवती जगदम्बिकाकी उपासना करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है—उसके कोई कार्य शेष नहीं रह जाते। अतएव सम्पूर्ण प्रयत्न करके गुरुदेवके कथनानुसार अखिल भूमण्डलकी अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बिकाका ध्यान, उनके गुणोंका श्रवण तथा मनन करना चाहिये।

राजन् ! इस प्रकार किया हुआ यज्ञ मोक्षरूपी फल प्रदान करता है—इसमें कोई संशय नहीं है। इसके अतिरिक्त जितने सकाम यज्ञ हैं, उनका फल अनित्य होता है। विद्वान् पुरुष कहते हैं और वेदकी आज्ञा है कि स्वर्गकी कामना रखनेवाला पुरुष विधिपूर्वक अग्निष्टोम यज्ञ करे। यह ठीक है; किंतु मेरी समझसे पुण्य समाप्त हो जानेपर फिर उन्हें मर्त्यलोकमें आना ही पड़ता है। अतएव अक्षय पुण्यफल प्रदान करनेवाला मानस यज्ञ ही सबसे श्रेष्ठ है। परंतु विजयकी अभिलाषा रखनेवाला राजा इस यज्ञको सम्पन्न नहीं कर सकता। राजन् ! अभी कुछ दिन पहले तुमने जो सर्पयज्ञ किया था, वह तो तामस है; क्योंकि नीच तक्षकके वैरको स्मरण रखते हुए प्रतिहिंसाकी भावनासे वह यज्ञ किया गया था। उस यज्ञमें करोड़ों सर्पोंको तुमने आगमें भून डाला।

महाराज ! अब तुम विधिपूर्वक विस्तारके साथ वह देवीयज्ञ करो, जिसका अनुष्ठान सृष्टिके पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने किया था। राजेन्द्र ! तुम वैसा ही यज्ञ करो। मैं तुम्हें सभी विधि बतला देता हूँ। सर्वप्रथम वेदके उत्तम ज्ञाता एवं विधिके पूर्ण जानकार ब्राह्मण होने चाहिये, जिन्हें देवीके बीजमन्त्रका विधान मालूम हो तथा जो मन्त्रके उच्चारणकी शैलीको

* सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम्॥ (३।१२।५५-५६)

भलीभाँति जानते हों, ये ब्राह्मण याजक बनाये जायँगे। तुम्हीं यजमान रहोगे। महाराज ! इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ करके उससे मिले हुए पुण्य-फलको अर्पितकर अपने पिताका उद्धार करो। ब्राह्मणका अपमान करनेसे जो पाप होता है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। अनघ ! तुम्हारे पिता वैसे ही ब्राह्मणके शापजनित दोषसे दूषित हो चुके हैं; साथ ही साँपके काटनेसे राजाका जो शरीरान्त हुआ, उससे भी दुर्मरण सिद्ध होता है। मृत्युके समय भूमिपर कुशा बिछाकर उसपर वे नहीं सुलाये गये थे। बीचमें ही उनकी मृत्यु हो गयी। वे न संग्राममें मरे और न गङ्गाके तटपर ही। कुरुश्रेष्ठ ! तुम्हारे पिताजी मरते समय स्नान-दान आदि कुछ भी न कर सके। वे राजमहलमें ऊपर कोठेपर थे और वहीं श्वासकी गति बंद हो गयी। राजेन्द्र ! उस समय राजाके परलोक सुधरनेका एक उपाय था; किंतु उन्होंने उस अत्यन्त दुर्लभ उपायको अपनाया नहीं। वह उपाय यह है कि प्राणी जहाँ-कहीं भी रहे, समझे कि मृत्यु सिरपर ही नाच रही है। अतः मनको सारे विषयोंसे हटाकर वैराग्यका अवलम्बन कर ले और यह निश्चय करे कि 'पाँच भूतोंसे बना हुआ मेरा यह शरीर क्या दुःखका साधन हो सकता है। अरे, यह शरीर अभी शान्त हो जाय अथवा इच्छानुसार किसी दूसरी घड़ीमें हो। इससे मेरा क्या सम्बन्ध है—मैं तो शरीरसे पृथक् निर्गुण अविनाशी आत्मा हूँ। नष्ट होनेवाले ये तत्त्व भले ही नष्ट हो जायँ —मुझे इससे क्यों चिन्ता होनी चाहिये। निःसंदेह मैं सदा स्थिर रहनेवाला विकारशून्य ब्रह्म हूँ, न कि संसारी। देहसे मेरा जो सम्बन्ध भासता है, इसमें कर्मभोग ही कारण है। वे अच्छे-बुरे सभी कर्म मुझसे भिन्न हैं। सुख और दुःखके साधन होनेसे मानव-देहके साथ उनका सम्बन्ध प्रतीत होता है। वास्तवमें तो मैं इस अत्यन्त भयावह दुःखालय संसारसे अलग हूँ'—इस प्रकार चिन्तन करते हुए मरनेवाला प्राणी स्नान-दान आदि सभी सत्क्रियाओंसे वञ्चित ही क्यों न रहा हो, उसे पुनः जन्म लेनेका दुःख नहीं भोगना पड़ता। यही सबसे उत्तम साधन कहा गया है। यह योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। राजेन्द्र ! ब्राह्मणने तुम्हारे पिताको शाप दे दिया। यह सुनकर भी राजाने वैराग्यका आश्रय नहीं लिया। औषध, मणि, मन्त्र और उत्तम-से-उत्तम यन्त्रोंका संग्रह किया। एक बड़े ऊँचे महलपर रहनेकी व्यवस्था की। परिणाम यह हुआ—वे कोठेपर थे, वहीं साँपके काटनेसे उनके प्राण निकल गये। अतः राजेन्द्र ! तुम अपने पिताके उद्धारके सत्कार्यमें संलग्न हो जाओ।

सूतजी कहते हैं—अपार तेजस्वी व्यासजी-के मुखसे यह वचन सुनकर जनमेजय दुःखसे अत्यन्त घबरा उठे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ गिरने लगीं। उन्होंने कहा—'मेरे इस जीवनको धिक्कार है ! क्या करूँ, जिससे इसी क्षण उत्तरानन्दन मेरे पिताजी दिव्य स्वर्गके अधिकारी बन जायँ ?' (अध्याय १२)

☆

# भगवान् विष्णुद्वारा अम्बिका-यज्ञ और आकाशवाणी

राजा जनमेजयने पूछा—पितामह ! अपार शक्तिशाली भगवान् विष्णु तो स्वयं जगत्के कारण हैं। फिर उन्होंने भी यज्ञ किया—यह कैसे ? महामते ! उनके उस यज्ञमें कौन-कौन ब्राह्मण सहायक थे, जिन्हें वेदका सारा रहस्य मालूम था और जो ऋत्विज्का काम कर रहे थे ? परम तपस्वी मुनिजी ! मुझे यह सब बतानेकी कृपा कीजिये। भगवान् विष्णुने किस प्रकार अम्बिका-यज्ञ किया था, उसे सुन लेनेके पश्चात् मैं भी उनकी शैलीका अनुसरण करते हुए सावधान होकर वैसे ही यज्ञ करूँगा।

व्यासजी बोले—महाभाग्यशाली राजन् ! जिस प्रकार भगवतीका यज्ञ विधिके साथ सम्पन्न हुआ था, उस परम अद्भुत प्रसङ्गको विस्तारसे सुनो। जब भगवती भुवनेश्वरीने अपने श्रीविग्रहसे तीन शक्तियोंको विदा किया, तब वे तीनों शक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु और शंकरके रूपमें पुरुष बन गयीं। एक-एक सुन्दर विमानपर उनका आसन था। उस समय उन प्रधान देवताओंके सामने भयंकर जलार्णव ही नजर आता था। अतः वे ठहरनेके लिये स्थान बनाने लगे। उनके द्वारा पृथ्वीकी सृष्टि हुई और उसपर वे रह गये। उस समय भगवती भुवनेश्वरीने ही उस आधार-शक्ति पृथ्वीको अपने पाससे भेजा था। तभी वह पृथ्वी प्रतिष्ठित हुई। उसमें मज्जा, मेद सटा हुआ था। वह मेद मधु और कैटभके शरीरका था। उसका संयोग होनेसे पृथ्वीका नाम 'मेदिनी' पड़ गया। सबको अपने ऊपर स्थान देनेसे 'धरा' और विस्तृत होनेसे 'पृथ्वी'—ये नाम और हुए। भारी होनेसे 'मही' भी कहलाने लगी। भगवती भुवनेश्वरीने उस पृथ्वीको शेषनागके मस्तकपर ठहराया। वे उसे स्थिररूपसे धारण किये रहें—इस विचारसे सम्पूर्ण विशाल पर्वत बनाये। जिस प्रकार काठमें लोहेकी कील ठोंक दी जाती है, ताकि वह टस-से-मस न हो, उसी प्रकार वे पर्वत बनाये गये थे। महाराज ! इसीसे पण्डितजन पर्वतोंको 'महीधर' कहते हैं। भगवतीने अनेक योजन विस्तारवाले उस सुमेरु-पर्वतको बहुत सुन्दर रूपसे सजाया। बहुत-से मणिमय शिखर उसकी अद्भुत शोभा बढ़ा रहे हैं। मरीचि, नारद, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष प्रजापति और वसिष्ठ—ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र कहे गये हैं। मरीचिसे कश्यपजी प्रकट हुए। दक्षप्रजापतिसे तेरह कन्याएँ उत्पन्न हुईं। कश्यपजीके द्वारा उन दक्ष-कन्याओंसे देवता और दानव उत्पन्न हुए। तभीसे काश्यपी सृष्टि चली—जिसका मनुष्य, पशु और सर्प आदि अनेक जातियोंके भेदसे विशाल रूप हो गया। ब्रह्माजीके आधे शरीरसे स्वायम्भुव मनु प्रकट हुए और उनके आधे वामभागसे स्त्रीके रूपमें शतरूपाजीका आविर्भाव हुआ। उन्हीं मनु और शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। तीन अत्यन्त सुन्दर एवं उत्तम गुणवाली कन्याएँ उत्पन्न हुईं। कमलयोनि ब्रह्माजीने इस प्रकारकी सृष्टि रचकर सुमेरुपर्वतके शिखरपर एक सुन्दर ब्रह्मलोक बनाया। फिर भगवान् विष्णुने लक्ष्मीजीके मनोरञ्जनके लिये वैकुण्ठ प्रकट किया। उनका वह सर्वोत्तम सुरम्य क्रीड़ाभवन सम्पूर्ण लोकोंके ऊपर विराजमान है। भगवान् शंकरने भी एक उत्तम स्थान बना लिया, जिसका नाम कैलास पड़ा। भूतोंकी एक मण्डली बनाकर उनके साथ

वे इच्छानुसार आनन्द करने लगे। मर्त्यलोक और पातालसे अतिरिक्त एक तीसरा स्वर्गलोक है, जो सुमेरुगिरिके शिखरपर विराजमान है। भाँति-भाँतिके रत्नोंसे सुशोभित उस स्थानपर देवराज इन्द्र रहने लगे। समुद्रका मन्थन करनेसे उत्तम पारिजात वृक्ष, चार दाँतवाला ऐरावत हाथी, सारी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली कामधेनु गौ, उच्चैःश्रवा घोड़ा और रम्भा आदि बहुत-सी अप्सराएँ निकलीं। स्वर्गको सुशोभित करनेवाले इन सबको इन्द्रने अपने पास रख लिया। इसके बाद समुद्रसे धन्वन्तरि और चन्द्रमा प्रकट हुए, जो अनेक गणोंके साथ स्वर्गमें रहकर शोभा पा रहे हैं।

राजेन्द्र ! इस तरह तीन प्रकारकी सृष्टि प्रकट हुई। देवता, पशु और मानव आदि अनेक भेदोंसे यह सृष्टि कल्पित है। संचित कर्मके अनुसार अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके भेदोंसे जीवोंकी सृष्टि हुई। इस प्रकार सृष्टिका कार्य सम्पन्न करके ब्रह्मा, विष्णु और शंकर—ये सभी महानुभाव अपने-अपने दिव्य स्थानोंमें आनन्दपूर्वक रहते हुए इच्छानुसार काम करने लगे। यों सृष्टि प्रचलित हो जानेपर भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके परामर्शसे अपने दिव्य भवनमें आनन्द करने लगे। एक समयकी बात है—भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें विराजमान थे। इतनेमें उन्हें अमृतके समुद्रमें सुशोभित होनेवाला मणिद्वीप याद आ गया, जहाँ उन्होंने महामायाकी झाँकी की थी तथा उन्हें पावन मन्त्र भी मिला था। उन परम शक्तिका स्मरण होनेके पश्चात् अब वे उनसे पृथक् न रह सके। फिर तो उन लक्ष्मीकान्त श्रीहरिके मनमें अम्बिका-यज्ञ करनेकी बात आ गयी। अतः वे अपने भवनसे नीचे उतर आये। महादेवजीको बुलाया। ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष प्रजापति, वामदेव और बृहस्पति भी बुलाये गये। अत्यन्त विस्तारके साथ यज्ञ सम्पन्न करनेके लिये सब सामग्रियाँ एकत्रित की गयीं। महामूल्यवान् सभी सात्त्विक एवं मनोहर साधन-सामग्री जुटायी गयी। शिल्पियोंद्वारा एक विशाल यज्ञशाला बनवायी गयी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सत्ताईस परम श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋत्विज्-रूपमें वरण किये गये। अग्निस्थापन करनेके लिये एक स्थान बनवाया और बहुत बड़ी-बड़ी वेदियाँ बनवायीं। ब्राह्मणलोग बैठकर देवीके बीजमन्त्र अर्थात् मायाबीजका जप करने लगे। विधिपूर्वक प्रज्वलित की हुई अग्निमें उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा अभीष्ट पदार्थका हवन आरम्भ हो गया। अनन्त आहुतियोंके पश्चात् आकाशवाणी हुई। भगवान् विष्णुको सुनाते हुए बड़े मधुर अक्षरोंमें स्पष्ट स्वरसे शब्द सुनायी देने लगे—'विष्णो ! तुम सभी देवताओंमें सदा सर्वोत्तम स्थान प्राप्त करो। देव-समुदायमें तुम आदरणीय, पूजनीय और शक्तिशाली होकर शोभा पाओगे। ब्रह्मा आदि तथा इन्द्र प्रभृति सम्पूर्ण देवता तुम्हारी पूजा करेंगे। विष्णो ! भूमण्डलपर तुम्हारी भक्तिसे सुसम्पन्न अनेकों मानव जीवन धारण करेंगे। तुम उन सम्पूर्ण मनुष्योंको उत्तम वर दोगे—इसमें कोई संशय नहीं है। समस्त देवताओंका मनोरथ पूर्ण करनेकी तुममें शक्ति होगी। तुम परम परमेश्वर कहलाओगे। सम्पूर्ण यज्ञोंमें तुम्हारी प्रधानता रहेगी। सभी याज्ञिक तुम्हें पूजेंगे। यही नहीं—सारी जनता तुम्हारी पूजा करेगी और तुम वरदाता बनकर रहोगे। दानवोंद्वारा सताये

जानेपर देवता तुम्हारी सेवामें उपस्थित होंगे। पुरुषोत्तम ! तुम उस समय सम्पूर्ण देवताओंको अपनी शरणमें स्थान दोगे। सारे पुराणों और विस्तृत वेदोंमें तुम्हारी विपुल कीर्ति गायी जायगी। तुम निश्चय ही सबके परम आराध्य देवता हो। जब-जब भूमण्डलपर धर्मका ह्रास होगा, तब-तब शीघ्र अपना अंशावतार धारण करके धर्मकी रक्षा करना तुम्हारा परम कर्तव्य होगा। तुम्हारे सभी परम प्रसिद्ध अवतार धरातलपर एक-एक करके प्रकट होंगे। महात्माओंद्वारा उन अवतारोंका सम्मान होगा। माधव ! सभी अवतार अनेक योगियोंसे सम्बन्ध रखेंगे। मधुसूदन ! अखिल जगत्में तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। सभी अवतारोंमें तुम्हें शक्तिका सहयोग प्राप्त होगा। सम्पूर्ण कार्योंको सम्पन्न करनेवाली वह शक्ति मेरे अंशसे प्रकट होगी। वाराही, नारसिंही आदि-भेदसे भाँति-भाँतिकी वे शक्तियाँ होंगी। उनके हाथोंमें अनेक प्रकारके आयुध रहेंगे, उनकी आकृति बड़ी सुन्दर होगी और सभी आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते रहेंगे। माधव ! उन्हीं शक्तियोंके साथ रहकर तुम देवताओंके कार्य सम्पन्न करोगे। मेरे वरदानके प्रभावसे सभी कार्य तुम्हें सुलभ हो जायँगे। तुम कभी भी उन शक्तियोंका तिरस्कार मत करना। तुम्हें यत्नपूर्वक सब तरहसे उन शक्तियोंकी पूजा और प्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्रतिमाओंमें भावना करके पूजा करनेपर निश्चय ही वे भारतवर्षमें मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर देंगी। देवेश ! साथ ही उन शक्तियोंका और तुम्हारा भी यश दिशा-विदिशामें फैल जायगा। सातों द्वीपों एवं समस्त भूमण्डलमें कीर्ति विख्यात हो जायगी। महाभाग ! संसारमें सकाम पुरुष अपनी अभिलाषा पूर्ण होनेके लिये तुम्हारी और उन शक्तियोंकी उपासना करेंगे। हरे ! अनेक प्रकारके अभिप्राय रखनेवाले वे मानव पूजाके अवसरपर वैदिक मन्त्रों और नाम-जपके द्वारा निरन्तर आराधनामें तत्पर रहेंगे। देवाधिदेव मधुसूदन ! मानवोंद्वारा सुपूजित होनेके कारण मर्त्यलोक और स्वर्गलोकमें तुम्हारी महिमा बढ़ जायगी !

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार वर देकर आकाशवाणी शान्त हो गयी। आकाशवाणी सुनते ही भगवान् विष्णुके सभी अङ्ग प्रसन्नतासे खिल उठे। तदनन्तर उन्होंने विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त करके ब्रह्माके वंशज देवताओं और मुनियोंको विदा किया और स्वयं गरुड़पर चढ़कर अपने अनुचरोंके साथ वैकुण्ठको प्रस्थित हो गये। उस समय सभी देवता और मुनि आपसमें अत्यन्त आश्चर्ययुक्त बातें करते हुए अपने-अपने पवित्र स्थानोंपर पधारे। उनके मनमें प्रसन्नताकी लहरें उठ रही थीं। आकाशवाणीको सुनकर सभीके मनमें भगवतीके प्रति भक्ति जाग उठी थी। अतएव ब्राह्मण एवं प्रधान मुनिगण भक्तिपूर्वक भगवतीकी उस आराधनामें तत्पर हो गये, जो सम्पूर्ण फल प्रदान करनेवाली एवं वेदोंमें वर्णित है। (अध्याय १३)

☆

## जनमेजयके प्रश्न करनेपर श्रीव्यासजीके द्वारा देवीकी महिमाका कथन; राजा ध्रुवसंधिकी कथा; अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें राजा युधाजित् और वीरसेनका विवाद एवं युधाजित् और वीरसेनका युद्ध; वीरसेनकी मृत्यु; मनोरमाका पुत्र सुदर्शनको लेकर मन्त्री विदल्लके साथ मुनि भरद्वाजके आश्रममें गमन और भरद्वाजके द्वारा उसे आश्रयदान

राजा जनमेजयने कहा—द्विजवर ! श्रीहरिने भगवती जगदम्बिकाका यज्ञ किया, यह प्रसङ्ग मैं विस्तारसे सुन चुका। अब आप मुझे भगवतीकी महिमा विशदरूपसे बतानेकी कृपा कीजिये। विप्रवर ! देवीकी महिमा सुननेके पश्चात् मैं उनका उत्तम यज्ञ अवश्य करूँगा। फिर तो आपके कृपाप्रसादसे मेरा जीवन परम पवित्र बन जायगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! देवीका उत्तम चरित्र मैं कहूँगा। अभी एक प्राचीन इतिहास विस्तारसे कह रहा हूँ। राजेन्द्र ! कोसलदेशमें एक सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं। वे महान् तेजस्वी राजा पुष्यके सुपुत्र थे। उनका नाम ध्रुवसंधि था। वे बड़े धर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र व्रतका पालन करनेवाले और आश्रमधर्मके पूरे समर्थक थे। समृद्धिशालिनी अयोध्या उनकी राजधानी थी। राजा ध्रुवसंधिके शासनकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्य सभी अपनी-अपनी जीविकामें तत्पर रहकर धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। उनके राज्यमें कहीं भी चोर, चुगलखोर, धूर्त, पाखण्डी, कृतघ्न और मूर्ख मनुष्य नहीं बसते थे। कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार राजा ध्रुवसंधिकी जीवनचर्या चल रही थी। उनके दो स्त्रियाँ थीं, जो बड़ी सुन्दर एवं स्वामीकी इच्छा पूर्ण करनेमें सदा तत्पर रहती थीं। राजाकी एक धर्मपत्नीका नाम मनोरमा था। वह रानी अत्यन्त सुन्दर एवं विदुषी थी। दूसरी रानी लीलावती भी वैसे ही रूप और गुणोंसे सम्पन्न थी। राजा ध्रुवसंधि उन पत्नियोंके साथ नाना प्रकारके गृहों, उपवनों, पर्वतों, बावलियों और राजमहलोंमें रहकर आनन्दका अनुभव करते थे। उनकी रानी मनोरमाने शुभ घड़ीमें एक उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। उस लड़केका नाम सुदर्शन रखा गया। उसके शरीरमें सभी राजोचित चिह्न वर्तमान थे। दूसरी रानी लीलावतीने भी एक महीने बाद सुन्दर पुत्र प्रसव किया। उस समय शुभ ग्रहका दिन और शुक्लपक्ष था। राजा ध्रुवसंधिने दोनों कुमारोंके जातकर्म आदि संस्कार किये। पुत्र-जन्मके आनन्दोत्सवमें ब्राह्मणोंको प्रचुर सम्पत्ति बाँटी गयी। राजन् ! महाराज ध्रुवसंधि उन दोनोंके प्रति एक समान प्रेम रखते थे। लाड़-प्यारमें उन्होंने कभी भी भेदभाव नहीं रखा। उन परम तपस्वी महाराजने बड़ी प्रसन्नतासे अपने वित्तके अनुसार विधिपूर्वक दोनों कुमारोंका चूड़ाकरण-संस्कार किया। मुण्डन हो जानेपर उन दोनों सुन्दर कुमारोंने राजाके मनको मोहित कर लिया। खेलते समय वे बालक सभीके मनको मुग्ध कर देते थे। उन दोनों कुमारोंमें सुदर्शन बड़ा लड़का था। लीलावतीके सुन्दर पुत्रका नाम शत्रुजित् था। उसकी बोली बड़ी मधुर थी। मधुरभाषी और अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण

राजा उससे अधिक प्रेम करने लगे। प्रजाजनों तथा मन्त्रियोंका भी वह राजकुमार विशेष प्रेमपात्र बन गया। शत्रुजित्के गुणोंके कारण राजा ध्रुवसंधिकी जैसी उसमें प्रीति थी, वैसी प्रीति मन्दभाग्य होनेके कारण सुदर्शनमें न रही।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हो जानेपर शिकारमें सदा प्रेम रखनेवाले महाराज ध्रुवसंधि एक दिन वनमें गये। राजा भयंकर जंगलमें शिकार खेल रहे थे। इतनेमें झाड़ीसे महान् रोषमें भरा हुआ एक सिंह बाहर निकल आया। पहले तो उन नरेशने तीखे बाणोंसे उस सिंहका मुँह छेद दिया, जिससे वह अत्यन्त कुपित होकर राजाको सामने देखते ही मेघकी भाँति अत्यन्त गम्भीर स्वरमें गर्ज उठा। उसकी क्रोधाग्नि धधक उठी थी। अतः पूँछ ऊपर उठाकर गर्दनके लम्बे बालोंको फहराता हुआ राजा ध्रुवसंधिको मारनेके लिये आकाशसे कूद पड़ा। महाराजने सिंहको सामने आते देखकर तुरंत दाहिने हाथमें तलवार और बायें हाथमें ढाल उठा ली। आगे डट गये, मानो कोई दूसरा सिंह ही हो। नरेशके जितने सेवक थे, वे भी सब-के-सब क्रोधमें भरकर सिंहपर पृथक्-पृथक् बाण चलाने लगे। चारों ओरसे हाहाकार मच गया। रोमाञ्चकारी लड़ाई छिड़ गयी। एक बार वह भयानक सिंह राजापर टूट पड़ा। ऊपर झपटा देख ध्रुवसंधिने उसपर तलवारकी चोट की। फिर भी उस सिंहने अपने तीखे नखोंसे झपटकर राजाको चीर डाला। अब सिंहके नखोंसे क्षत-विक्षत होकर राजा जमीनपर गिर पड़े और उनके श्वासकी गति बंद हो गयी। सैनिकोंमें चिल्लाहट मच गयी। उन लोगोंने फिर अनेकों बाण सिंहपर मारे, जिससे राजाकी भाँति वह सिंह भी वहीं प्राणोंसे हाथ धो बैठा। सैनिक राजधानीमें लौट आये और उन्होंने प्रधान मन्त्रियोंको इस दुर्घटनाकी सूचना दे दी। महाराज ध्रुवसंधिकी मृत्यु सुनकर सभी श्रेष्ठ मन्त्री वनमें गये और उनके मृत शरीरका दाह-संस्कार कराया। वसिष्ठजीने परलोकमें सुख पहुँचानेवाली सारी पारलौकिक क्रियाएँ वहीं विधिपूर्वक सम्पन्न करायीं। तदनन्तर प्रजावर्ग, मन्त्रिमण्डल और मुनिवर वसिष्ठ—सब-के-सब सुदर्शनको राजा बनानेके लिये आपसमें विचार करने लगे। प्रधान मन्त्रीने कहा—'ये राजकुमार सुदर्शन महाराजकी धर्मपत्नी मनोरमाके पेटसे उत्पन्न हैं। ये बड़े शान्तस्वभाव और सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। बालक होनेपर भी धर्मात्मा राजकुमार गद्दीका अधिकारी समझा जाता है।' जब सभी वयोवृद्ध मन्त्रियोंने यह राय निश्चित कर दी, तब समाचार पाकर उज्जैनका राजा युधाजित् यथाशीघ्र अयोध्या आ गया। राजा ध्रुवसंधिके मर जानेपर उनकी रानी लीलावतीने अपने पिता युधाजित्को समाचार दे दिया था, जिसे सुनकर अपने दौहित्र शत्रुजित्का हित-साधन करनेके विचारसे उज्जयिनीपतिका आगमन हुआ था। वैसे ही मनोरमाका पिता राजा वीरसेन, जो कलिङ्ग देशका शासक था, अपने दौहित्र सुदर्शनका हित-साधन करनेके लिये वहाँ आ गया। दोनों नरेशोंके साथ पर्याप्त संख्यामें सैनिक थे। स्थिति बड़ी भयंकर थी। राजगद्दीपर किसका अधिकार होगा—इस बातको लेकर मुख्य मन्त्रियोंके साथ उन्होंने मन्त्रणा आरम्भ कर दी।

युधाजित्ने पूछा—'दोनों राजकुमारोंमें कौन बड़ा है? बड़ा पुत्र ही राज्यका अधिकारी

होता है। छोटे लड़केको कभी भी राजगद्दी नहीं मिलती।' वहीं राजा वीरसेनने भी उत्तर दिया—'राजन्! धर्मपत्नी मनोरमाका कुमार सुदर्शन बड़ा पुत्र है। इस बड़े पुत्रको ही राज्य मिलना चाहिये, जैसा कि मैंने धर्मज्ञ पुरुषोंके मुखसे सुना है।' तब युधाजित्ने फिर कहा—'अजी नहीं, यह दूसरा कुमार शत्रुजित् गुणोंके कारण ज्येष्ठ है। राजोचित चिह्नोंसे युक्त होनेपर भी सुदर्शन वैसा नहीं माना जा सकता।' वीरसेन और युधाजित्—दोनों नरेश बड़े स्वार्थी थे। उनमें परस्पर विवाद छिड़ गया। अब उस कठिन परिस्थितिमें कौन उनका संदेह दूर करनेको समर्थ हो सकता था। युधाजित्ने मन्त्रियोंसे कहा—'निश्चय ही तुमलोग अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो। तुम्हारी इच्छा है कि सुदर्शनको राजा बनाकर उसका धन हड़प लें। व्यवहारसे तुमलोगोंका यह दूषित विचार मैं समझ गया। सुदर्शनसे शत्रुजित् अधिक बलवान् है। अतः राजाके आसनपर वही बैठे—ऐसी तुमलोगोंकी सम्मति होनी चाहिये। मेरे जीते-जी गुणोंमें बड़े राजकुमारको छोड़कर गुणहीन छोटेको कौन राजा बना सकता है, जब कि उसके साथ सेना भी सहयोग देनेको तैयार है। इस प्रश्नपर निश्चय ही मैं युद्ध करूँगा और तलवारकी धारसे यह पृथ्वी दो भागोंमें बँट जायगी। फिर तुमलोगोंकी इसमें क्या बात रह जायगी।'

वीरसेन और युधाजित् दोनों नरेशोंमें बड़ा वाद-विवाद छिड़ गया। प्रजाजनों और ऋषियोंमें खलबली मच गयी। बहुत-से सामन्त नरेश अपनी-अपनी सेना लेकर राजधानीको नष्ट करनेके विचारसे आ धमके। बड़ी तत्परतासे परस्पर युद्धके लिये उन्हें उतावली लगी हुई थी। 'राजा ध्रुवसंधि मर गये'—यह सुनकर शृंगवेरपुरमें रहनेवाले निषाद राजाका खजाना लूटनेके लिये वहाँ आ गये। राजाका प्राणान्त हो गया। दोनों राजकुमार अभी बालक हैं और आपसमें लड़ाई छिड़ गयी है—यह समाचार पाकर देश-देशान्तरसे लुटेरोंके भी दल आ पहुँचे। अब विवाद खड़ा होनेपर युद्ध आरम्भ हो गया। युधाजित् और वीरसेन—दोनों लड़नेकी अभिलाषासे मैदानमें डट गये।

व्यासजी कहते हैं—युद्ध आरम्भ हो जानेपर वीरसेन और युधाजित्—दोनों नरेश लड़नेके लिये शस्त्रोंको लेकर उपस्थित हो गये। क्रोध और लोभने उन्हें अपने वशमें कर लिया था। अब भलीभाँति रोमाञ्चकारी संग्राम आरम्भ हो गया। युधाजित्की भुजाएँ बड़ी विशाल थीं। हाथमें धनुष लेकर वह समराङ्गणमें खड़ा था। उसके पास वाहन और सैनिक बहुत थे। उसने युद्धके लिये पक्की धारणा बना ली थी। राजा वीरसेन इन्द्रके समान तेजस्वी था। 'युद्ध करना क्षत्रियका धर्म है'—यह सोचकर अपने दौहित्रका कल्याण करनेके विचारसे सैनिकोंके साथ वह युद्ध-भूमिमें उपस्थित था। समराङ्गणमें युधाजित्को देखकर उसने उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, मानो मेघ पर्वतपर जल बरसा रहा हो। उस समय सत्यपराक्रमी नरेशके सर्वाङ्गमें क्रोध व्याप्त हो गया था। वीरसेनके सभी बाण अत्यन्त चमकीले, सीधे धँस जानेवाले और तीव्रगामी थे। राजाने उन बाणोंसे युधाजित्को ढक-सा दिया। साथ ही युधाजित्के फेंके हुए बाणोंके उसने अपने नाराचोंसे टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये। हाथी, घोड़े और रथोंसे खचाखच भरी हुई वह युद्धभूमि अत्यन्त विशाल रूप

धारण किये हुए थी। देवता, मुनि और मानव उसका भयंकर दृश्य देख रहे थे। तुरंत कौवे और गीध आदि पक्षी मांस खानेकी अभिलाषासे आ पहुँचे और उनसे वहाँका आकाश ढक-सा गया। उस युद्धमें इतने हाथी, घोड़े और वीर कटे थे कि उनके रुधिरसे एक भयंकर नदी बह चली। वह अत्यन्त आश्चर्यमयी नदी ऐसी जान पड़ती थी मानो यमलोकके मार्गमें प्रवाहित वैतरणी नदी पापी मनुष्योंके सामने अत्यन्त डरावनी दीख रही हो। तीव्र धारके वेगसे कटे हुए तटवाली उस नदीमें मनुष्योंके केशयुक्त बिखरे मस्तक, खेलनेवाले बालकोंद्वारा यमुनामें फेंके गये तुम्बी-फलके समान प्रतीत हो रहे थे। युद्ध-भूमिसे इतनी अधिक धूल उड़ रही थी कि आकाशमें विचरनेवाले सूर्य छिप जाते और रात्रिका दृश्य उपस्थित हो जाता था। फिर वही धूल जब रुधिरके अथाह सागरमें सन जाती तो पुनः सूर्य उगकर चमकने लगते थे। तदनन्तर उस घमासान युद्धमें राजा युधाजित्‌ने अपने तीखे एवं अत्यन्त भयंकर अनेक बाणोंसे वीरसेनपर वार किया। बाणोंके भीषण आघातसे राजा वीरसेन निष्प्राण होकर सदाके लिये भूमिपर सो गये। उनका मस्तक धड़से अलग हो गया था। उनकी सेना मर-खप चुकी थी। जो बचे थे, वे सभी चारों ओर भाग चले।

पिताजीने रणाङ्गणमें शरीर त्याग दिया—यह समाचार सुनकर मनोरमा भयसे घबरा उठी। उस समय पिताके वैरकी बात उसे बार-बार याद आ रही थी। उसने सोचा, "अवश्य ही नीच युधाजित् राज्यके लोभसे मेरे बालक पुत्रको भी मार डालेगा; क्योंकि वह बड़ा ही पापी है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, पिताजी युद्धमें काम आ गये। पतिदेवने पहले ही शरीर त्याग दिया और अभी मेरा यह पुत्र बिलकुल बालक है। लोभमें असीम पाप भरा हुआ है। उस नीच लोभने किसको अपने वशमें नहीं किया? उससे आविष्ट हो जानेपर श्रेष्ठ राजा भी कौन-सा बुरा कर्म नहीं कर सकता—लोभी प्राणी पिता, माता, भाई, गुरु एवं अपने बन्धु-बान्धवोंको भी मार डालता है। इस विषयमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं किया जा सकता*। लोभवश मानव निषिद्ध भोजन खा लेता है; जहाँ नहीं जाना चाहिये वहाँ चला जाता है; धर्मको तो वह सदाके लिये त्याग देता है। इस नगरमें कोई भी अधिक शक्तिशाली पुरुष मेरा सहायक नहीं रहा, जिसके अवलम्बपर रहकर मैं इस होनहार बच्चेका पालन-पोषण कर सकूँ। यदि पापी युधाजित् मेरे पुत्रको मार डालेगा तो फिर मैं क्या करूँगी। जगत्‌में मेरा कोई रक्षक नहीं है, जिसके सहारे मेरी स्थिति सुधर सके। मेरी सौत जो लीलावती है, वह भी सदासे वैर ठाने रहती है। वह दयालु बनकर मेरे पुत्रकी क्यों रक्षा करेगी। जब युधाजित् यहाँ लौट आयेगा तब तो मैं भाग भी नहीं सकूँगी। पुत्रको अबोध बालक जानकर तुरंत ही वह मुझे कैदखानेमें ठूँस देगा। सुना जाता है, इस डाहको लेकर ही इन्द्रने विमाता दितिके गर्भस्थ बालकको सात टुकड़ोंमें काट डाला था। इसके बाद फिर

---

* लोभोऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः। किं न कुर्यात् तदाविष्टः पापं पार्थिवसत्तमः॥
पितरं मातरं भ्रातॄन् गुरून् स्वजनबान्धवान्। हन्ति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचारणा॥
(३। १५। २१-२२)

सातोंके सात-सात भाग किये थे। उस समय इन्द्रने अपने वज्रको अत्यन्त छोटा बनाकर उसे हाथमें ले माता दितिके उदरमें प्रवेश किया था। वे ही उनचास पवन अब भी द्युलोकमें विराजमान हैं। मैंने यह भी सुना है कि पूर्व-कालमें एक रानीने सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिये उसे भोजनमें विष दे दिया था। कुछ समय व्यतीत हो जानेपर उसके बच्चा पैदा हुआ। तब भी उस बालककी देहमें विष सटा था। इसीसे वह बालक भूमण्डलमें 'सगर' नामसे विख्यात हुआ। राजा दशरथके जीते ही उनके बड़े पुत्र रामको रानी कैकेयीने इस सौतियाडाहके कारण ही वन भेज दिया था। बादमें राजाकी मृत्यु भी हो गयी। बेचारे मन्त्री, जो मेरे पुत्र सुदर्शनको राजा बनाना चाहते थे, पराधीन हैं। अब उन्हें निश्चय ही युधाजित्‌के अनुकूल होकर रहना पड़ेगा। मेरा भाई वैसा शूरवीर है नहीं, जो इस बन्धनसे मुझे मुक्त कर सके। अहो, दैवकी प्रेरणासे यह महान् कष्ट मुझे प्राप्त हो गया। फिर भी उद्योग तो सर्वथा करना ही चाहिये। फलसिद्धि भगवान्‌की कृपापर निर्भर है। अतः अब मुझे तुरंत इस बच्चेकी रक्षाके उपायमें लग जाना चाहिये।''

इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके उस असहाय मनोरमाने प्रधान मन्त्री विदल्लको, जिसकी दरबारमें बड़ी प्रतिष्ठा थी तथा जो सभी कार्योंमें परम प्रवीण था, बुलवाया। विदल्लके आनेपर वह उसे एकान्तमें ले गयी और बच्चेका हाथ पकड़कर आँखोंसे आँसू गिराती हुई अत्यन्त दुःखी होकर दीनतापूर्वक कहने लगी—'मन्त्रीजी ! मेरे पिताजी संग्राममें काम आ गये, मेरा यह पुत्र अभी बिलकुल बच्चा है और द्वेषी राजा युधाजित् बड़ा बली है। अब इस कठिन परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये, बतानेकी कृपा कीजिये।' यह सुनकर मन्त्री विदल्लने मनोरमासे कहा—''अब इस स्थानपर कदापि नहीं रहना चाहिये, हमलोग काशीके पास वनमें चलें। वहाँ सुबाहु नामसे विख्यात मेरे मामा रहते हैं। उनके पास अटूट सम्पत्ति है। बलमें भी वे बहुत बढ़-चढ़कर हैं। वहाँ वे हमारी रक्षा कर लेंगे। 'मेरे मनमें राजा युधाजित्‌से मिलनेकी इच्छा है'— यों कहकर आप नगरसे निकलें और रथपर बैठकर यात्रा कर दें। अब इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।'' मन्त्री विदल्लके इस प्रकार कहनेपर रानी मनोरमा एक दासी और मन्त्री विदल्लको साथ लेकर रथपर बैठी और नगरसे बाहर निकल चली। उस समय वह भयसे घबरायी हुई थी। मनपर दुःखके बादल उमड़ रहे थे। उसकी दीनताकी सीमा न थी। पिताका मृत्युविषयक दुःख मनको मथ रहा था। युधाजित्‌से मिलनेके बाद मनोरमाने शीघ्रता-पूर्वक पिताका दाह-संस्कार किया। भयभीत होनेके कारण उसके सभी अङ्ग काँप रहे थे। फिर वहाँसे चलकर दो दिनोंमें वह गङ्गाके तटपर पहुँची। रास्तेमें बहुत-से डाकू—निषाद आ धमके और जो कुछ उनके पास धन था, सब उन क्रूरोंने छीन लिया और वे रथको भी लेकर भाग चले। रानी मनोरमाके शरीरपर एक अच्छी साड़ी बची थी। उसके नेत्र निरन्तर जल गिरा रहे थे। उसने दासीका हाथ पकड़ा और बच्चेको लेकर गङ्गाके तटपर गयी। भयसे अत्यन्त घबराकर वह तुरंत नावपर बैठी और पुण्य-सलिला गङ्गाको पार करके चित्रकूट पहुँच गयी। डरके कारण व्याकुल होकर वह तुरंत

भरद्वाजजीके आश्रममें चली गयी। वहाँ बहुत-से तपस्वियोंको देखकर उसका भय दूर हो गया। तदनन्तर मुनिवर भरद्वाजने मनोरमासे पूछा—'शुचिस्मिते ! तुम कौन हो ? किसने तुम्हें स्त्रीरूपसे स्वीकार किया है और क्यों इतना दुःख सहकर तुम यहाँ आयी हो ? सच्ची बात बताओ। सुन्दरी ! तुम देवी हो अथवा मानुषी ? इस अबोध बालकको लेकर वनमें आनेका क्या कारण है ? कमलके समान नेत्रवाली देवी ! ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा राज्य छिन गया है।'

मुनिवर भरद्वाजके यों पूछनेपर रानी मनोरमा कुछ भी उत्तर न दे सकी। उसे दुःखसे

महान् संताप हो रहा था। आँखोंसे जलकी धारा बह रही थी। उसने मन्त्री विदल्लकी ओर संकेत कर दिया। तब विदल्लने मुनिसे कहा—'एक प्रधान नरेश ध्रुवसंधि थे, उन्हींकी ये धर्मपत्नी हैं। इनका नाम मनोरमा है। महाराज ध्रुवसंधि बड़े पराक्रमी थे। सूर्यवंशमें उनका जन्म हुआ था। सिंहद्वारा उनकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गयी। सुदर्शन नामसे विख्यात यह कुमार उन्हीं महाराजका पुत्र है। इन महारानीके पिता वीरसेन बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। इस अपने दौहित्र सुदर्शनके लिये वे रणमें मर मिटे। अब राजा युधाजित्‌के भयसे अत्यन्त भयभीत होकर ये रानी निर्जन वनमें भटक रही हैं। मुनिवर ! ये राजकुमारी अपने छोटे बच्चेको लेकर आपकी शरणमें आयी हैं। महाभाग ! अब आप ही इनके रक्षक हैं। दुःखी प्राणीकी रक्षा करनेमें यज्ञसे अधिक पुण्य बताया गया है। भयसे घबराये हुए दीनकी रक्षा करनेसे तो और भी विशेष फल होना कहा है।'*

मुनिवर भरद्वाजने कहा—'पवित्र व्रतका आचरण करनेवाली कल्याणी ! तुम यहाँ निर्भय होकर रहो और अपने पुत्रका भरण-पोषण करो। विशाललोचने ! अब तुम्हें शत्रुका भय बिलकुल नहीं करना चाहिये। इस सुन्दर पुत्रकी रक्षा करो। तुम्हारा यह पुत्र राजा होगा। इस आश्रममें दुःख और शोकका तुम्हें कभी भी सामना नहीं करना पड़ेगा।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार मुनिवर भरद्वाजजीके कहनेपर रानी मनोरमाका चित्त शान्त हो गया। अब वह मुनिकी दी हुई कुटीमें निश्चिन्त होकर रहने लगी। वहाँ उसे दासी और मन्त्री विदल्लका साथ रहा। फिर तो पुत्र सुदर्शनका पालन करती हुई वह अपना समय व्यतीत करने लगी। (अध्याय १४-१५)

☆

* आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम्। भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम्॥ (३।१५।५७)

## राजकुमार सुदर्शनको मारनेके लिये युधाजित्का भरद्वाजाश्रमपर जाना, मुनिसे मनोरमा तथा सुदर्शनको बलपूर्वक छीन ले जानेकी बात कहना तथा मुनिका रहस्यभरा उत्तर देना, भरद्वाजकी बात सुनकर मन्त्रीकी सम्मतिसे युधाजित्का लौट जाना तथा कामबीज मन्त्रके प्रभावसे सुदर्शनका जगदम्बिकाकी कृपा प्राप्त करना

व्यासजी कहते हैं—युद्ध समाप्त हो जानेपर महाबली युधाजित् लड़ाईके मैदानसे लौटकर अयोध्या पहुँचा। जाते ही वध कर डालनेकी इच्छासे मनोरमा और सुदर्शनको खोजने लगा। 'वह कहाँ चली गयी'—यों बार-बार कहते हुए उसने बहुत-से सेवक इधर-उधर दौड़ाये। फिर एक अच्छा दिन देखकर अपने दौहित्र शत्रुजित्को राजगद्दीपर बैठानेकी व्यवस्था की। अथर्ववेदके पावन मन्त्रोंका उच्चारण करके जलसे भरे हुए सम्पूर्ण कलशोंसे शत्रुजित्का अभिषेक हुआ। कुरुनन्दन ! उस समय भेरी, शङ्ख और तुरही आदि बाजोंकी ध्वनिसे नगरमें खूब उत्सव मनाया गया। ब्राह्मण वेद पढ़ते थे। वन्दीगण स्तुतिगान कर रहे थे और सर्वत्र जयध्वनि गूँज रही थी। ऐसा जान पड़ता था, मानो अयोध्यापुरी हँस रही है। उस नये नरेशकी राजगद्दी होनेपर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी-पूरी तथा स्तुति और बाजोंकी ध्वनिसे निनादित वह अयोध्या एक नवीन पुरी-सी जान पड़ती थी। कुछ सज्जन पुरुष ही अपने घरोंमें रहकर शोक मनाते थे। वे सोचते थे—'ओह ! आज राजकुमार सुदर्शन कहाँ भटक रहा होगा। वह परम साध्वी रानी मनोरमा अपने पुत्रके साथ कहाँ चली गयी। उसके महात्मा पिता वीरसेन तो राज्यलोभी वैरी युधाजित्के हाथ युद्धमें मारे ही गये।' इस प्रकार चिन्तित रहकर सबमें समान बुद्धि रखनेवाले वे सज्जन पुरुष बड़े कष्टसे समय व्यतीत करते थे। शत्रुजित्का शासन मानना उनके लिये अनिवार्य था। यों युधाजित्ने दौहित्र शत्रुजित्को विधि-पूर्वक राजगद्दीपर बैठाकर मन्त्रियोंको कार्यभार सौंप दिया और स्वयं उज्जयिनी नगरीको चला गया। वहाँ पहुँचनेपर उसे समाचार मिला कि सुदर्शन मुनियोंके आश्रमपर ठहरा है। फिर तो उसे मारनेके लिये वह दुष्ट चित्रकूटके लिये चल पड़ा। उस समय शृङ्गवेरपुरमें दुर्दर्श नामक एक निषाद राज्य करता था। वह बड़ा बली और शूरवीर था। युधाजित् उसे अपना अगुआ बनाकर शीघ्र ही चल दिया।

'युधाजित् सेनासहित आ रहा है'—यह सुनकर मनोरमाके मनमें महान् क्लेश हुआ। छोटे-से कुमारकी सँभाल करनेवाली स्नेहमयी माता भयसे घबरा उठी। आँखोंसे आँसू गिराती हुई अत्यन्त चिन्तित होकर उसने मुनिवर भरद्वाजसे कहा—'मुनिजी ! अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? युधाजित् यहाँ भी पहुँच गया। इसने मेरे पिताको मारनेके पश्चात् अपने दौहित्र शत्रुजित्को राजा बना दिया और अब मेरे इस नन्हेंसे पुत्रका वध करनेके लिये सेनासहित यहाँ आ रहा है। प्रभो ! मैं एक प्राचीन इतिहास सुन चुकी हूँ—पाण्डव वनमें रहते थे। मुनियोंका पावन आश्रम ही उनका स्थान था। साथमें देवी द्रौपदी थी। पाँचों भाई पाण्डव एक दिन शिकार खेलने चले गये। केवल द्रौपदी मुनियोंके उस पावन आश्रमपर रह गयी। वहाँ

धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, च्यवन, अत्रिके वंशज कण्व, जतु, क्रतु, वीतिहोत्र, सुमन्तु, यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड, यवक्रीत, यज्ञकृत् तथा इनके अतिरिक्त भी बहुत-से पुण्यात्मा मुनि उस पावन आश्रमपर विराजमान थे। उन सबने वेदध्वनि आरम्भ कर दी थी। मुनिजी! वह आश्रम मुनियोंसे खचाखच भरा था। अपनी दासियोंके साथ सुन्दरी द्रौपदी निर्भय होकर समय व्यतीत कर रही थी। उसी समय सिन्धुदेशका समृद्धिशाली नरेश राजा जयद्रथ अपनी सेनाके सहित उसी मार्गसे कहीं जा रहा था। वेदध्वनि सुनकर वह मुनिके आश्रमके पास आ गया। पुण्यात्मा मुनियोंकी वेदध्वनि सुनते ही राजा जयद्रथ रथसे तुरंत उतरा और उनके दर्शन करनेकी अभिलाषासे वहाँ आ पहुँचा। जब राजा जयद्रथ आश्रममें आया तब उसके साथ दो नौकर थे। मुनियोंको वेद-पाठमें संलग्न देखकर वह वहीं बैठ गया। प्रभो! मुनिमण्डलीसे भरे-पूरे उस आश्रममें वह राजा जयद्रथ हाथ जोड़कर कुछ समयतक बैठा रहा। इतनेमें वहाँ बैठे हुए उस नरेशको देखनेके लिये बहुत-सी स्त्रियाँ तथा मुनिभार्याएँ भी चली आयीं। उनके मुँहसे 'यह कौन है'—निकल रहा था। उन स्त्रियोंके समाजमें देवी द्रौपदी भी थी। वह सुन्दरताके कारण एक दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी। उसपर जयद्रथकी दृष्टि पड़ गयी। किसी देवकन्याकी भाँति शोभा पानेवाली उस सुन्दरी द्रौपदीको देखकर जयद्रथने धौम्य मुनिसे पूछा—'यह सुन्दर मुखवाली तथा श्यामवर्णसे सुशोभित कौन स्त्री है? यह सुकुमारी किसकी पत्नी है, इसके पिता कौन हैं और इसका क्या नाम है? द्विजदेव! यह राजरानी-जैसी जान पड़ती है; मुनि-पत्नी ऐसी नहीं हो सकती।'

धौम्य बोले—सिन्धुदेशपर शासन करनेवाले महाराज! यह पाण्डवोंकी प्रेयसी भार्या देवी द्रौपदी है। इस पाञ्चाल-राजकुमारीमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। इस समय यह इसी उत्तम आश्रमपर रहती है।

जयद्रथने पूछा—विख्यात पराक्रमी वे शूरवीर पाँचों पाण्डव कहाँ गये हैं? क्या इस समय वे महाबली योद्धा निश्चिन्त होकर इसी वनमें ठहरे हैं?

धौम्यजीने कहा—वे पाँचों पाण्डव वनमें गये हैं। शीघ्र ही यहाँ पधारेंगे।

धौम्यमुनिकी बात सुनकर राजा जयद्रथ उठा और द्रौपदीके पास जाकर उसे उसने प्रणाम किया और यह वचन बोला—'सुन्दरी! तुम्हारा कल्याण हो। इस समय वे तुम्हारे पतिदेव कहाँ गये? निश्चय ही आज तुम्हें वनमें ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये हैं।' तब द्रौपदीने उत्तर दिया—'राजकुमार! आपका कल्याण हो। आश्रमके पास ठहरिये। अभी पाण्डव आ रहे हैं।' द्रौपदीके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त लोभसे आक्रान्त उस पापी नरेशने मुनियोंका अपमान करके देवी द्रौपदीको हर लेना चाहा। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सर्वथा किसीके विश्वासपर निर्भर न हो जाय। हर किसीपर विश्वास करनेवाला जन दुःख पाता है। इस विषयमें प्रमाण राजा बलि हैं। विरोचननन्दन श्रीमान् बलि बड़े धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञशील, दानी, शरण देनेमें कुशल तथा उत्तम विचारके राजा थे। वे प्रह्लादके पौत्र थे। अधर्ममें कभी उनकी रुचि नहीं होती थी। उन्होंने

दक्षिणायुक्त निन्यानबे यज्ञ किये। उस समय योगीलोग भी जिनकी उपासना करते हैं, वे भगवान् विष्णु देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये निर्विकार होते हुए भी सात्त्विक रूप धारण करके धरातलपर पधारे। कश्यपजीके घर उनका अवतार हुआ। बलिको छलनेके लिये उन्होंने वामन-वेष बना लिया था। उन्होंने कपट करके बलिका राज्य तथा समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी उनसे छीन ली। विरोचनकुमार राजा बलि सत्यवादी थे। भगवान् विष्णु इन्द्रका काम साधनेके लिये उनके साथ कपट कर गये। यह प्रसङ्ग मैं सुन चुकी हूँ। जब सत्त्वमूर्ति भगवान् विष्णुने ही यज्ञ विध्वंस करनेके विचारसे वामनरूप धारण करके ऐसा कर्म कर डाला, तब दूसरा मनुष्य क्या नहीं कर सकता। अतएव मुनिवर! कभी किसीका भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जब मनमें लोभ आ जाता है तब उसे पाप करनेसे कोई भय नहीं रहता। यह निश्चय है कि लोभसे जिनकी बुद्धि मारी गयी है, वे प्राणी अनेकों पाप कर बैठते हैं। मुने! कभी भी किसी कामके करनेमें उन्हें परलोकका किंचिन्मात्र भी भय नहीं रहता। लोभसे नष्ट हुए चित्तवाले मनुष्य दूसरोंका धन हड़पनेके लिये मन, वाणी और कर्मसे भलीभाँति अपने कार्यमें संलग्न हो जाते हैं*। बहुत-से मानव देवताओंकी निरन्तर आराधना करके धन चाहते हैं। यह निश्चय है कि देवता स्वयं हाथसे धन उठाकर किसीको नहीं दे सकते; किंतु उनके द्वारा मनुष्यका अभिलषित धन दूसरेके पाससे उसके पास चला जाता है। किसी भी बहानेसे देवता धन देनेमें कुशल हैं। वैश्य धान्य और वस्त्र आदि बहुत-सी चीजें बेचनेके लिये संग्रह करके 'मेरी सम्पत्ति अधिक-से-अधिक बढ़ जाय'—इस अभिलाषासे देवताओंको पूजते हैं। परंतप! क्या इस व्यापारसे दूसरोंका धन हड़पनेकी उन्हें इच्छा नहीं होती? व्यापारी वस्तु खरीद लेनेके बाद तुरंत ही महँगी मनाने लगता है। इसी प्रकार सभी प्राणी दूसरेकी सम्पत्ति लेनेके लिये निरन्तर प्रयत्नमें लगे रहते हैं। ब्रह्मन्! तब विश्वास कैसा? लोभ और मोहके वशीभूत प्राणियोंके लिये तीर्थ, दान और अध्ययन— सभी व्यर्थ हैं। उनका किया सत्कर्म भी नहीं कियेके समान हो सकता है। अतएव महाभाग! कृपापूर्वक इस पापी नरेश्वर युधाजित्को घर लौटा दीजिये। विप्रवर! जैसे जानकीजी वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर रहीं, वैसे ही मैं भी अपने बच्चेसहित यहाँ निर्भय निवास करूँगी।'

इस प्रकार मनोरमाके कहनेपर तेजस्वी मुनिवर भरद्वाजजी राजा युधाजित्के पास गये और उससे बोले—'राजन्! तुम इच्छानुसार अपने नगरको लौट जाओ।'

युधाजित् बोला—उत्तम स्वभाववाले मुनिवर! तुम हठ न करके मनोरमाको अपने आश्रमसे निकाल दो। मैं मनोरमाको छोड़कर नहीं जा सकता। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो

---

* लोभश्चेतसि चेत् स्वामिन् कीदृक् पापकृतं भयम्॥
लोभाहताः प्रकुर्वन्ति पापानि प्राणिनः किल। परलोकाद् भयं नास्ति कस्यचित् कर्हिचित् पुनः॥
मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः। प्रपतन्ति नराः सम्यग् लोभोपहतचेतसः॥
(३।१६।४७—४९)

फिर मैं उसे बलपूर्वक छीन ले जाऊँगा।

ऋषिने कहा—जैसे प्राचीन समयमें विश्वामित्र मुनिवर वसिष्ठकी धेनुको बलपूर्वक ले जानेको तैयार हुए थे, वैसे ही यदि तुममें शक्ति हो तो बलपूर्वक मेरे आश्रमसे मनोरमाको ले जाओ।

व्यासजी कहते हैं—मुनिवर भरद्वाजकी यह बात सुनकर राजा युधाजित्ने अपने वृद्ध मन्त्रीको बुलाया और बड़ी सावधानीके साथ उससे पूछा— 'सुव्रत! तुम्हारी बुद्धि बड़ी विलक्षण है। बताओ, अब इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये? क्या मीठे वचन बोलनेवाली पुत्रवती उस सुन्दरी मनोरमाको बलपूर्वक छीन लूँ? क्योंकि सब प्रकारसे कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको चाहिये कि एक छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। समय पाकर वह छोटा शत्रु भी राजयक्ष्मा रोगकी भाँति बढ़कर मृत्युका साधन बन सकता है। यहाँ न कोई सेना है और न योद्धा ही, जो मुझे रोक सके। अतः यहाँ मैं अपने दौहित्रके शत्रु उस सुदर्शनको पकड़कर आसानीसे मार डालूँगा और यदि मैं बलपूर्वक इस प्रयत्नमें सफल हो जाता हूँ तो उसका राज्य निष्कण्टक हो सकता है। यह निश्चय है कि सुदर्शनके मर जानेपर मेरा दौहित्र निर्भय हो जायगा।'

प्रधान मन्त्रीने कहा—राजन्! सहसा कोई काम नहीं करना चाहिये। आपने भरद्वाज मुनिकी बात सुनी है न? उन्होंने विश्वामित्रका उदाहरण सामने रखा है। यह बहुत पुरानी कथा है—गाधिनन्दन श्रीमान् विश्वामित्र एक प्रसिद्ध नरेश हो चुके हैं। एक समयकी बात है, वे महाराज घूमते हुए वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर पहुँच गये। उन प्रतापी नरेशने मुनिको प्रणाम किया। मुनिने एक आसन आगे बढ़ा दिया और राजा विश्वामित्र उसपर बैठ गये। इसके बाद महात्मा वसिष्ठजीने विश्वामित्रको भोजनके लिये बुलाया। गाधिनन्दन महायशस्वी वे नरेश अकेले नहीं थे, उनके साथ बड़ी सेना भी थी। नन्दिनीकी कृपासे खाने-पीनेकी सभी वस्तुएँ वहाँ उपस्थित हो गयीं। राजा और उनके सैनिकोंने इच्छानुसार भोजन किया। अब राजा विश्वामित्र नन्दिनीके उस प्रभावसे अपरिचित न रहे। अतः वे मुनिवर वसिष्ठसे उस नन्दिनीको माँगने लगे।

विश्वामित्रने कहा—मुने! आप बड़े तपस्वी हैं। आपसे मेरी प्रार्थना है, यह नन्दिनी गौ मुझे दे देनेकी कृपा करें। मैं इसके बदलेमें बड़े थनोंवाली एक हजार गौएँ आपको देता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! यह गौ होमके लिये हविष्य प्रदान करती है। अतः मैं किसी प्रकार इसको दे नहीं सकता। तुम्हारी हजार गौएँ तुम्हारे ही पास रहें।

विश्वामित्रने कहा—साधो! आपकी

इच्छाके अनुसार दस हजार अथवा एक लाख गौएँ देनेको मैं तैयार हूँ; किंतु आप मुझे नन्दिनी अवश्य दे दीजिये। नहीं तो, फिर मैं बलपूर्वक छीन लूँगा।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, उसे बलपूर्वक पूरा कर लो। परंतु मैं अपनी रुचिसे तो इस नन्दिनी गौको अपने आश्रमसे तुम्हारे यहाँ नहीं भेज सकता।

मुनिवर वसिष्ठकी उपर्युक्त बातें सुनकर राजा विश्वामित्रने अपने महाबली सेवकोंको आज्ञा दी कि 'तुमलोग नन्दिनी गौको पकड़ लो।' वे सभी सेवक अपने बलके अभिमानमें चूर थे। उन्होंने बलपूर्वक नन्दिनीको बाँध लिया। नन्दिनी काँपने लगी। उसकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। उसने मुनिवर वसिष्ठसे कहा—'मुने! आप क्यों मुझे त्याग रहे हैं? देखिये—ये राजकर्मचारी मुझे बाँधकर घसीट रहे हैं।' तब वसिष्ठजीने यह उत्तर दिया—'उत्तम दूध देनेवाली धेनो! मैं तुम्हें त्याग नहीं रहा हूँ। शुभे! यह राजा तुम्हें जबर्दस्ती लिये जा रहा है। मैंने अभी इसका स्वागत किया है। क्या करूँ, तुम्हें छोड़नेकी मेरे मनमें किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं है।' इस प्रकार मुनिके कहनेपर नन्दिनीके सर्वाङ्गमें क्रोध भड़क उठा। वह बड़े जोरसे रँभाने लगी। उसके मुखसे अत्यन्त भयंकर शब्द निकले। उसी समय नन्दिनीके शरीरसे असीम डरावने दैत्योंका आविर्भाव हो गया। वे सभी दैत्य हाथोंमें हथियार लिये हुए थे। शरीरपर कवच सुशोभित थे। 'ठहरो, ठहरो' यों उनके मुखसे ध्वनि निकल रही थी। फिर तो उन्होंने राजा विश्वामित्रकी सारी सेना समाप्त कर दी और नन्दिनीको बन्धनसे मुक्त कर दिया। तदनन्तर अत्यन्त दुःखी होकर विश्वामित्र अकेले ही घर लौट गये। उस समय अत्यन्त कातर उस नीच नरेशके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। उसने क्षत्रियके बलकी घोर निन्दा की और ब्राह्मणके बलको दुराराध्य मानकर वह तपस्या करने लगा। एक निर्जन वनमें बहुत वर्षोंतक विश्वामित्रकी कठिन तपस्या चलती रही। अन्तमें क्षत्रियधर्मका परित्याग करके वह राजा ऋषि बन गया। अतएव राजन्! आप भी एक अद्भुत मुनिका वैर न मोल लीजिये। तपस्वियोंके साथ संग्राम छेड़ना निश्चय ही अपने कुलको कालके मुखमें झोंकना है। राजेन्द्र! अब आप इन परम तपस्वी मुनिवर भरद्वाजजीके पास जाइये और भविष्यमें कुछ भी न करनेका आश्वासन दीजिये। सुदर्शन भी सुखपूर्वक यहाँ समय व्यतीत करे। अरे, सम्पत्तिहीन यह एक अबोध बालक आप-जैसे बलवान् राजाका अहित ही क्या कर सकेगा? एक अनाथ दुर्बल कुमारके प्रति आपका वैरभाव रखना बिलकुल व्यर्थ है। महाराज! सर्वत्र दया रखनी चाहिये। यह सारा संसार दैवके चलाये चलता है। फिर डाह रखनेसे क्या प्रयोजन है? जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। राजन्! दैवकी प्रेरणासे वज्र तृणके समान तुच्छ हो जाता है और किसी समय तृणमें भी वज्र-जैसी शक्ति आ जाती है—इसमें कोई संशय नहीं है। इस दैवका ही प्रभाव है कि खरहा सिंहका तथा मच्छर हाथीका घातक बन बैठता है। अतएव मेधावी राजन्! आप सहसा काम करनेसे मुख मोड़कर मेरे हितकर वचनोंपर ध्यान दीजिये।

व्यासजी कहते हैं—अपने प्रधान मन्त्रीकी बात मानकर उस प्रसिद्ध नरेश युधाजित्ने

भरद्वाज मुनिके चरणोंपर मस्तक रख दिया। तत्पश्चात् उसने अपने नगरकी राह पकड़ ली। अब मनोरमाके मनकी भारी चिन्ता भी मिट गयी। मुनिके आश्रमपर रहकर अपने पुत्र सुदर्शनके पालन-पोषणमें वह अपना समय व्यतीत करने लगी। दिन बीतते गये। जब वह सुकुमार बालक सुदर्शन कुछ बड़ा हो गया, तब सब तरहसे निर्भय होकर मुनिकुमारोंके साथ खेल-कूदमें भी शामिल होने लगा।

एक समयकी बात है—सुदर्शन मन्त्री विदल्लके पास था। इतनेमें एक मुनिकुमार वहाँ आया और हास्यके रूपमें विदल्लको 'क्लीब' इस नामसे पुकार उठा। इस 'क्लीब' शब्दमें जो 'क्ली' एक अक्षर है, वह सुदर्शनको स्पष्ट सुनायी पड़ा और तुरंत याद हो गया। अब अनुस्वारहीन उस शब्दको ही वह बार-बार रटने लगा। 'क्लीं' यह कामबीज नामक भगवती जगदम्बिकाका बीज-मन्त्र है। वही मन्त्र सुदर्शनके मनमें जम गया। अब उस मन्त्रके प्रति आदरबुद्धि रखते हुए वह उसका जप करता रहा। महाराज ! सौभाग्यका ही यह परिणाम है कि उस बालक सुदर्शनको अनायास ही ऐसा अद्भुत बीजमन्त्र स्वयमेव प्राप्त हो गया। इस समय सुदर्शनकी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी। ऋषि, छन्द, ध्यान और न्यास—सभी विधि-विधानोंसे वह अपरिचित था। अब वह राजकुमार सुदर्शन मन-ही-मन इस कामबीज 'क्लीं' का जप करता हुआ खेलने-खाने लगा। सोनेपर भी उसे मन्त्रकी स्मृति दूर नहीं होती थी; क्योंकि उस सुदर्शनने उसे एक सार वस्तु समझ लिया था। जब वह राजकुमार सुदर्शन ग्यारह वर्षका हुआ, तब भरद्वाज मुनि उसका यज्ञोपवीत-संस्कार करके उसे वेदाध्ययन कराने लगे। उस कामबीज मन्त्रके प्रभावसे ही उसे साङ्गोपाङ्ग धनुर्वेद, नीतिशास्त्र तथा सम्पूर्ण विद्याएँ भलीभाँति प्राप्त हो गयीं। एक समयकी बात है, राजकुमार सुदर्शनको भगवतीने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया। भगवती लाल वस्त्र पहने हुई थीं, उनके विग्रहसे लालिमा चमक रही थी और सभी आभूषण भी लाल वर्णके थे। वे अद्भुतशक्ति भगवती वैष्णवी गरुडपर विराजमान थीं। उन जगदम्बिकाके दर्शन पाकर राजकुमार सुदर्शनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। अब सम्पूर्ण विद्याओंके रहस्यको जानने-वाला वह राजकुमार उसी वनमें रहने और भगवती जगदम्बिकाकी उपासना करते हुए नदीके तटपर घूमने लगा। जगज्जननीकी कृपासे उसे धनुष, बहुत-से तीखे बाण, तूणीर और कवच मिल गये थे।

काशीनरेशकी एक लाड़िली कन्या थी। उसका नाम शशिकला था। उस श्रेष्ठ कन्यामें सभी उत्तम गुण थे। उस कन्या शशिकलाने सुना—समीप ही वनके मुनि-आश्रममें कोई एक राजकुमार रहता है। सर्वलक्षणसम्पन्न वह राजकुमार सुदर्शन नामसे विख्यात है। शूरवीर होनेके साथ ही वह ऐसा सुन्दर है, मानो दूसरा कामदेव ही हो। जब वन्दीजनोंके मुखसे उस राजकुमारीने ये समाचार सुने, तब उसके मनमें सुदर्शनको पति बनानेकी इच्छा जग उठी। बुद्धिने समर्थन भी कर दिया। उसी दिन आधी रातके समय स्वप्नमें भगवती जगदम्बिका शशिकलाके पास पधारीं और उसे आश्वासन देकर स्वस्थचित्तसे यह वचन कहने लगीं—'उत्तम कटिभागसे शोभा पानेवाली सुन्दरी ! वर माँगो। सुदर्शन मेरा भक्त है। मेरी आज्ञा मानकर

सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह सुदर्शन अब तुम्हारा हो गया।'

इस प्रकार स्वप्नमें भगवती जगदम्बिकाके मनोहर रूपके दर्शन पाकर तथा उनके मुखारविन्दसे निकले हुए वचन याद करके वह सुन्दरी शशिकला बड़े जोरसे हँस पड़ी। उसे इतना आनन्द मिला कि वह उठकर बैठ गयी। माताके बार-बार पूछनेपर भी उस तपस्विनी राजकन्याने माँसे अपनी प्रसन्नताका कारण नहीं बतलाया। स्वप्नकी बात बार-बार याद आनेपर उसका मुख प्रसन्नतासे खिल उठता था! एक किसी दूसरी सखीसे शशिकलाने स्वप्नकी सारी बातें विस्तारपूर्वक बतला दीं। तदनन्तर एक दिन विशाल नेत्रोंवाली वह राजकुमारी शशिकला अपनी सखियोंके साथ घूमनेके लिये सुन्दर उपवनमें गयी। चम्पाके बहुतेरे वृक्ष उस उपवनकी शोभा बढ़ा रहे थे। फूल तोड़ती हुई वह राजकुमारी चम्पाके नीचे पहुँच गयी। वहीं कुछ क्षण रुक जानेपर उसने देखा, मार्गपर एक ब्राह्मण बड़ी उतावलीसे आ रहा है। उस ब्राह्मण देवताको प्रणाम करके सुन्दरी शशिकला मधुर वाणीमें बोली—'महाभाग! आपका किस देशसे पधारना हुआ है?'

ब्राह्मणने कहा—बाले! मैं भरद्वाजजीके आश्रमसे एक आवश्यक कार्यवश इधर आया हूँ। तुम क्या पूछती हो? मुझसे कहो!

शशिकला बोली—महाभाग! उस आश्रममें अत्यन्त प्रशंसनीय, संसारमें सबसे बढ़कर तथा विशेषरूपसे देखनेयोग्य कौन पदार्थ है?

ब्राह्मणने कहा—कल्याणी! वहाँ ध्रुवसंधि नरेशके राजकुमार श्रीमान् सुदर्शन रहते हैं; उन श्रेष्ठ पुरुषका जैसा नाम है, वैसे ही उनमें सभी गुण भरे हैं। वस्तुतः वे बड़े दर्शनीय पुरुष हैं। सुन्दरी! जिसने कुमार सुदर्शनको नहीं देखा, मेरी समझसे उसकी आँखोंकी कोई सार्थकता सिद्ध नहीं होती। संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माने उन एक सुदर्शनमें ही सभी गुण भर दिये हैं। उनमें बड़ी विलक्षणता है। अतः गुणोंके समुद्र सुदर्शनको ही मैं देखनेयोग्य मानता हूँ। वे सर्वथा तुम्हारे पति होनेके योग्य हैं। मणि और काञ्चनकी भाँति यह तुमलोगोंका संयोग पहलेसे ही निश्चित हो चुका है। (अध्याय १६-१७)

☆

## राजकुमारी शशिकलाका सुदर्शनको मनमें वरण करना, काशिराज-रानीका कन्याको समझाना, कन्याका सुदर्शनसे विवाह करनेका निश्चय प्रकट करना, सुदर्शनका तथा अन्यान्य राजाओंका स्वयंवरमें पहुँचना

व्यासजी कहते हैं—ब्राह्मणका कथन सुनकर सुन्दरी शशिकलाके मनमें प्रेमकी धारा उमड़ पड़ी ! वह ब्राह्मण तो वहाँसे चला गया। सुदर्शनके प्रति शशिकलाका प्रेम तो पहलेसे था ही, पुनः अधिक प्रेमका उद्रेक हो जानेसे वह अत्यन्त उद्विग्न हो उठी। शशिकला अपने प्रति प्रेम रखनेवाली एक सखीसे कहने लगी—'प्रिये ! जिसका प्रसङ्ग सुननेके पश्चात् मेरे शरीरमें क्षोभ उत्पन्न हो गया है, वह पुरुष अवश्य ही किसी अच्छे कुलका राजकुमार है। अभी रसविज्ञानसे वह अपरिचित है। एक दूसरे कामदेवके समान उस सुन्दर राजकुमारको मैंने स्वप्नमें देखा था। तभीसे विरहसे अत्यन्त आकुल हुए मेरे कोमल मनको उसकी याद सता रही है। सखी ! अब तो मुझे शरीरका शीतल चन्दन विषके समान, माला सर्पके समान तथा शशधरकी शीतल किरणें अग्निके समान जान पड़ती हैं। राजमहल, उपवन, पर्वत अथवा बावली—किसी स्थानपर भी मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिलती। दिनमें अथवा रातमें सुखके जितने साधन हैं, कोई मुझे सुखी नहीं बना सकते। सुन्दर शय्या, ताम्बूल, गाना और बजाना—किसीसे भी मेरे मनमें प्रसन्नता नहीं होती और न मेरी आँखोंको कोई वस्तु तृप्त ही कर सकती है। अतः अब मैं उस वनमें जाना चाहती हूँ, जहाँ राजकुमार विराजमान हैं। किंतु कुलकी लाजका भय मुझे भयभीत कर रहा है। साथ ही मैं पिताजीके वशमें भी तो हूँ। क्या करूँ, मेरे पिताजी अभी स्वयंवर करनेके लिये भी तो तैयार नहीं हैं। स्वयंवर होता तो मैं उस समय राजकुमार सुदर्शनके लिये अपनी इच्छा प्रकट कर देती। माना, दूसरे सहस्रों प्रचुर संपत्तिशाली नरेश हैं; किंतु वे कोई भी मेरे मनको मुग्ध नहीं कर पाते। मेरे मनमें तो बस, वह राज्यहीन सुदर्शन ही बस गया है।'

व्यासजी कहते हैं—राजकुमार सुदर्शनके कोई सहायक नहीं था, न पासमें सम्पत्ति थी और न वह प्रसिद्ध शूरवीर ही था। फल-मूल खाकर वनवासी जीवन व्यतीत करता था। केवल भगवती जगदम्बाका कामबीज मन्त्र उसके हृदयमें बस गया था। उसी मन्त्रके जपके प्रभावसे सुदर्शनको सिद्धि मिल गयी। वह मन्त्र उसके चित्तसे क्षणभरके लिये भी दूर नहीं होता था। जपकी क्रिया सदा चलती रहती। एक रातको स्वप्नमें विष्णुमयी पूर्णब्रह्मस्वरूपा भगवती जगदम्बाने उसे अपने दर्शन कराये। वे अव्यक्तस्वरूपिणी भगवती समस्त सम्पत्ति प्रदान कर देती हैं। शृङ्गवेरपुरके अध्यक्ष निषादने सुदर्शनके पास आकर उसे एक उत्तम रथ चढ़नेको दे दिया। उस रथमें सभी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत थी। वह रथ चार घोड़ोंसे खींचा जाता था। पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं। राजकुमार सुदर्शन एक विजयशाली महान् व्यक्ति हैं—मनमें यह जानकर शृङ्गवेरपुरके अध्यक्षने भेंटरूपमें उसके पास वह रथ उपस्थित किया था। सुदर्शनने भी प्रसन्नतापूर्वक वह रथ ले लिया और साथ ही मित्ररूपसे आये हुए निषादका जंगली फल एवं फूलोंके द्वारा

यथोचित स्वागत भी किया। आतिथ्य स्वीकार करके निषादराजके चले जानेपर, वहाँ जो तप करनेवाले मुनिगण थे, वे अत्यन्त प्रसन्न होकर सुदर्शनसे कहने लगे—'राजकुमार! तुम भगवतीकी कृपाके फलस्वरूप थोड़े ही दिनोंके बाद एक स्वतन्त्र राजा होओगे—यह ध्रुव सत्य है। इसमें कोई भी संदेह नहीं है। सुव्रत! भगवती जगदम्बा वर देनेमें कुशल एवं संसारको मोहित करनेवाली हैं। वे तुमपर प्रसन्न हैं। अब तुम्हें उत्तम सहायक भी मिल गया है, अतः बिलकुल चिन्ता मत करो।'

तत्पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन मुनियोंने मनोरमासे कहा—'सुमुखी! अब तुम्हारा पुत्र भूमण्डलका सम्राट् होकर रहेगा।' मुनियोंके वचन सुनकर सुन्दरी मनोरमाने उत्तर दिया—'महाराज! आपका वचन सफल हो। यह कुमार आपकी सदा सेवा करेगा। श्रेष्ठ उपासनाके प्रभावसे कौन-सी ऐसी विचित्र घटना है, जो सम्भव न हो। अन्यथा मेरे पास तो न सेना है, न मन्त्रिमण्डल और न खजाना ही है। न तो कोई प्रबल सहायक ही है। फिर किसके सहयोगसे मेरा पुत्र राज्य पानेके योग्य बन सकता है? हाँ, आपलोग मन्त्रके पूर्णवेत्ता विद्वान् हैं। आपके आशीर्वादकी सहायतासे निश्चय ही मेरा पुत्र राजा होगा। इसमें मुझे भी कोई संदेह नहीं दीखता।

व्यासजी कहते हैं—सुदर्शनको सभी विद्याएँ सुलभ हो गयी थीं। वह राजकुमार रथपर बैठकर जहाँ जाता; वहीं तेजसे ऐसा जान पड़ता था, मानो एक अक्षौहिणी सेना उसके साथ हो। राजन्! सुदर्शन प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर बीजमन्त्रका जप करता था। उसी मन्त्रके प्रभावसे उसमें इतनी शक्ति आ गयी थी। दूसरे किसी कारणकी तो कल्पना नहीं की जा सकती। 'क्लीं' यह कामराज कहलानेवाला बीजमन्त्र बड़ा ही विलक्षण है। जो पुरुष किसी अच्छे गुरुसे इसकी दीक्षा लेकर शान्तचित्तसे पवित्रतापूर्वक इसका जप करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। महाराज! पृथ्वी अथवा स्वर्गमें भी कोई अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ नहीं है, जो भगवती जगदम्बाकी कृपासे सुलभ न हो सके। वे बड़े ही मूर्ख, भाग्यहीन और रोगोंसे व्यथित प्राणी हैं, जिनके चित्तमें भगवती जगदम्बिकाके पूजनमें अटल श्रद्धा नहीं हो पाती। कुरुनन्दन! जो पूर्व युगसे ही देवताओंकी जननी होनेके कारण आदिमाता नामसे प्रसिद्ध हैं, वे ही भगवती बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति और स्मृति आदि रूपोंसे सम्पूर्ण प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये पधारी हैं—यह बिलकुल स्पष्ट बात है। जो मनुष्य इन रूपोंमें भगवतीको नहीं पहचानते, उनकी बुद्धि अवश्य ही मायासे हरी गयी है। इसीसे वे अन्य वाद-विवादोंमें अपनी बुद्धि खपाते रहते हैं, परंतु विश्वपर शासन करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासना नहीं करते। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम, कुबेर, वायु, अग्नि, त्वष्टा, पूषा, अश्विनीकुमार, भग, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव एवं मरुद्गण—ये सब-के-सब सृष्टि, पालन और संहार करनेमें निपुण देवगण उन भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करते हैं। कौन ऐसा विद्वान् है, जो उन परब्रह्म-स्वरूपिणी आदिशक्तिकी आराधना न करता हो? सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली उन कल्याणमयी देवीको सुदर्शनने अपने ज्ञानका

विषय बना लिया था, जिससे उसके सभी कार्य सिद्ध हो गये। वे विद्या और अविद्यारूपसे विराजमान भगवती जगदम्बा साक्षात् परब्रह्म ही हैं। सुगमतासे सभी उनके दर्शन नहीं प्राप्त कर सकते। योगाभ्यासद्वारा ही उन पराशक्तिके दर्शन होते हैं। वे भगवती मुमुक्षुओंके अत्यन्त प्रिय हैं। भगवतीका कृपाप्रसाद प्राप्त हुए बिना परमात्माके स्वरूपको कोई भी नहीं जान सकता। त्रिविध सृष्टिकी व्यवस्था करके सारी शक्तिको जो स्वयं अपनेमें दिखा रही हैं, उन्हीं भगवतीका मन-ही-मन चिन्तन करता हुआ सुदर्शन वनमें रहता था। उस समय राज्य मिलनेसे भी कहीं अधिक सुखकी अनुभूति उसके मनमें होती थी।

उधर शशिकलाके पिता राजा सुबाहुने कन्याकी विवाहके योग्य आयु समझकर बड़ी सावधानीके साथ स्वयंवरकी तैयारी करायी। विद्वानोंने विवाहके लिये समुचित स्वयंवर तीन प्रकारके बतलाये हैं। राजाओंके लिये हो अथवा अन्य वर्णोंके लिये—सबके नियम एक ही हैं। एक 'इच्छा-स्वयंवर'—जिसमें कन्या अपनी इच्छासे किसी वरको चुन ले। दूसरा 'प्रण-स्वयंवर' कोई प्रण ठान लिया जाय—जैसे भगवान् रामने शंकरका धनुष तोड़कर जानकीजीको ब्याहा था। तीसरा 'शौर्यशुल्क'—अर्थात् जो सबसे बढ़कर शूरवीर हो, वही कन्याको ले जा सकता है। यह स्वयंवर विशेषतः वीरोंके लिये है। महाराज सुबाहुके दरबारमें 'इच्छा-स्वयंवर'की योजना बनी। शिल्पियोंद्वारा बहुत-से मञ्च बनवाये गये। मञ्चोंको सुखदायी बिछौनोंसे सजाया गया। सभाभवनमें भाँति-भाँतिके मण्डप तैयार कराये गये। इस प्रकार स्वयंवर-विवाहकी पूरी सामग्री जुट जानेपर सुन्दर नेत्रवाली शशिकलाका मन उद्विग्न हो गया। उसने अपनी एक सखीसे कहा—'तुम एकान्तमें जाकर मेरी मातासे यह बात कह दो कि मैं अपने मनमें ध्रुवसंधिके कुमारको पतिरूपसे वरण कर चुकी हूँ। उस सुदर्शनके सिवा दूसरे किसीको मैं पति नहीं बनाऊँगी। भगवती जगदम्बाकी कृपासे वह राजकुमार मेरा पति बन चुका है।'

व्यासजी कहते हैं—शशिकलाकी वह सखी बड़ी मधुरभाषिणी थी। शशिकलाके कहनेपर तुरंत वह उसकी माताके पास गयी और एकान्त स्थान पाकर सरस वाणीमें कहने लगी—'साध्वी ! आपकी पुत्री दुःखी है। कल्याणी ! उसने मेरे द्वारा आपसे प्रार्थना की है। आप उसकी बात सुनें और शीघ्र ही उसका हित-साधन करनेके प्रयत्नमें लग जायँ। उसका कथन है कि भरद्वाजजीके पवित्र आश्रममें जो राजा ध्रुवसंधिका कुमार सुदर्शन है, उसको मैं अपने मनमें पतिरूपसे वरण कर चुकी हूँ। अतः मैं दूसरे किसी भी राजाको अपना पति बनाना नहीं चाहती।'

व्यासजी कहते हैं—शशिकलाकी सखीके वचन सुननेके पश्चात् रानीने राजाके आनेपर पुत्रीकी सभी बातें उनको कह सुनायीं। सुनकर महाराज सुबाहु बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। बार-बार हँसते हुए वे अपनी भार्या विदर्भराजकुमारीसे सच्ची बात कहने लगे—'सुन्दरी ! तुम उस बालकके विषयमें जानती हो न ? वह राज्यसे निकाल दिया गया है, निर्जन वनमें अकेले ही अपनी माँके साथ रहता है। राजा वीरसेन उसके पक्षमें था, उसे युधाजित्ने मार डाला। सुन्दर

नेत्रवाली प्रिये ! भला, वह निर्धन छोकरा मेरी कन्याका पति होनेका अधिकारी कैसे बन सकता है ? सम्भव है, यह बात उसके मनके अनुकूल न हो; तब भी तुम उससे कह दो कि एक-से-एक बढ़कर सम्पत्तिशाली नरेश स्वयंवरमें आनेवाले हैं !'

व्यासजी कहते हैं—पतिके आज्ञानुसार रानीने उस सुकुमारी कन्याको अपनी गोदमें बिठा लिया और उसे आश्वासन देकर मीठे स्वरमें कहा—'बेटी ! तुम क्यों मुझसे यह अप्रिय और निष्प्रयोजन बात कहती हो ?
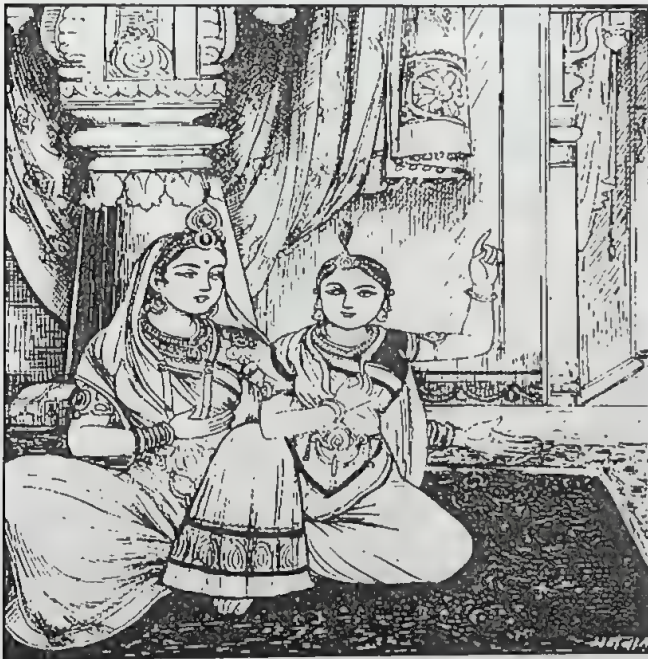
सुव्रते ! तुम्हारे पिताको तुम्हारे इस कथनसे महान् कष्ट हो रहा है, क्योंकि सुदर्शन बड़ा ही मन्दभागी, राज्यच्युत और आश्रयहीन बालक है। उसके पास पैसा भी नहीं है। उसे बन्धु-बान्धवोंने घरसे निकाल दिया है। अपनी माँके साथ वह वनमें रहता है। फल-मूलसे ही उसकी क्षुधा शान्त होती है। ऐसा भाग्यहीन एवं दुर्बल वनवासी वर तुम्हारे लिये निश्चय ही अयोग्य है। पुत्री ! सुदर्शनके सिवा दूसरे बहुतेरे बुद्धिमान्, सुन्दर, सम्माननीय और राजोचित चिह्नोंसे सुशोभित राजकुमार तुम्हारे योग्य वर हैं। इस सुदर्शनका ही एक सुकोमल भाई है, जो इस समय कोशल देशमें राज्य करता है। वह बड़ा ही सुन्दर है। उसमें सभी उत्तम लक्षण विद्यमान हैं। सुन्दर भौंहोंवाली मेरी बेटी ! मैंने और भी एक बात सुनी है, जिसे कहती हूँ, सुनो—राजा युधाजित् सुदर्शनका वध करनेके लिये निरन्तर सचेष्ट रहता है। उसने भयंकर युद्धमें सफलता प्राप्त करके अपने दौहित्र शत्रुजित्को राज्यपर अभिषिक्त किया है। उस युद्धमें इसका नाना राजा वीरसेन मारा गया। इसके बाद मन्त्रियोंसे सलाह लेकर युधाजित् सुदर्शनको मारनेके लिये भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचा था। मुनिके मना करनेपर वह अपने घर लौटा। अतएव ऐसा वर तुम्हारे योग्य कैसे हो सकता है ?'

शशिकलाने कहा—माँ ! मुझे तो वह वनवासी राजकुमार ही अभीष्ट है। जैसे शर्यातिकी आज्ञा मानकर उनकी पतिव्रता पुत्री सुकन्या च्यवन मुनिके पास गयी और उन्हें पतिरूपमें वरण करके सेवा-शुश्रूषामें तत्पर हो गयी, वैसे ही मैं भी सेवामय जीवन व्यतीत करूँगी; क्योंकि स्वामीकी सेवासे स्त्रियाँ स्वर्ग और मोक्षतक पा जाती हैं। निष्कपट कार्य अवश्य ही स्त्रीके लिये सुखकर होता है। उस उत्तम वरको वरण करनेके लिये भगवती जगदम्बा मुझे स्वप्नमें आज्ञा दे चुकी हैं। अतः अब उसके अतिरिक्त दूसरे राजकुमारको मैं कैसे वरण करूँ ? भगवतीने मेरी चित्तरूपी भित्तिपर सुदर्शनका ही वर होना लिख दिया है। इसलिये उसे छोड़कर मैं दूसरे किसी भी सुन्दर राजकुमारको अपना स्वामी नहीं बनाऊँगी।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! उस समय

शशिकलाने अनेक प्रमाण सामने रखकर अपनी माताको समझा दिया। तब रानीने उसकी कही हुई सारी बातें राजाको बतला दीं। फिर भी स्वयंवर-विवाहकी व्यवस्था बंद नहीं हुई। अब स्वयंवरका दिन संनिकट आ गया— यह सुनकर शशिकलाने उसी क्षण एक ब्राह्मणको भरद्वाज मुनिके आश्रमपर भेजा। उसने उस ब्राह्मणसे प्रार्थना की कि ''आप इस प्रकार सुदर्शनके पास जाइये, जिससे मेरे पिताजी इस समाचारको न जान सकें। महाराज ! आप मेरे वचनपर ध्यान देकर बहुत शीघ्र भरद्वाजजीके आश्रमपर पधारिये और सुदर्शनको मेरी ओरसे कह दीजिये—

'मेरे माता-पिताकी सारी तैयारी मेरे स्वयंवर-विवाहके लिये हो चुकी है। उस स्वयंवरमें बहुत-से बलशाली राजा आनेवाले हैं; किंतु मैं तो बड़ी प्रसन्नताके साथ सब तरहसे आपको ही पतिरूपमें वरण कर चुकी हूँ। भगवतीने स्वप्नमें बतला दिया है कि आप देवतुल्य राजकुमार मेरे पति होंगे। विष खा लेना अथवा जलती हुई अग्निमें अपनेको होम देना मेरे लिये सम्भव है; किंतु माता-पिताके कहनेपर भी मैं आपको छोड़कर किसी दूसरेको पति नहीं बना सकती; क्योंकि मैं मन, वाणी और कर्मसे आपको वर चुकी हूँ। भगवती जगदम्बाकी कृपासे हमलोगोंका कल्याण अवश्य होगा। दैवबलको सर्वोपरि मानकर आप आज ही यहाँ पधार जायँ। यह सारा चराचर जगत् जिनके अधीन है, वे भगवती जो आज्ञा दे चुकी हैं, वह बात कभी असत्य नहीं हो सकती। शंकर प्रभृति सम्पूर्ण देवता भी उन भगवतीके अधिकारमें रहते हैं।''

''द्विजवर ! आप एकान्तमें ले जाकर उस राजकुमारको मेरी ये सारी बातें भलीभाँति समझा दें। पुण्यात्मा प्रभो ! जिस प्रकार मेरा काम बन सके, वैसा ही उद्योग करनेकी कृपा करें।''

इस प्रकार कहनेके पश्चात् दक्षिणा देकर शशिकलाने उस ब्राह्मण देवताको भेज दिया। उस ब्राह्मणने शीघ्र ही भरद्वाजजीके आश्रमपर जाकर सुदर्शनको सारी बातें बता दीं और फिर वह लौट आया। उसने बड़े आदरके साथ राजकुमारके मनमें आनेकी उत्सुकता उत्पन्न कर दी।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! अपने पुत्र सुदर्शनको स्वयंवरमें जानेकी तैयारी करते देख उसकी माता मनोरमाके मनमें महान् कष्ट होने लगा। उसके शरीरमें कँपकँपी छूट गयी। उसे सामने तरह-तरहके भय दीखने लगे। आँखोंसे आँसू गिराती हुई वह कहने लगी—'पुत्र ! आज तुम कहाँ जानेकी तैयारी कर रहे हो ? अरे ! वह समाज तो राजाओंका है। तुम्हारे पास एक भी सहायक नहीं है और प्रबल शत्रु तो हैं ही। क्या सोचकर तुम ऐसा करने जा रहे हो ? देखो, उस स्वयंवरमें तुम्हें मारनेकी इच्छा रखनेवाला राजा युधाजित् आयेगा। तुम्हारी सहायता करनेवाला दूसरा कोई वहाँ है नहीं। अतः बेटा ! तुम वहाँ मत जाओ। मेरे तुम एक ही पुत्र हो। मैं बहुत दुःखी हूँ। तुम्हीं मेरे जीवनाधार हो। तुम्हारे चले जानेपर मैं निराश्रय हो जाऊँगी। महाभाग ! जिससे मुझे निराश होना पड़े, वह कार्य करना तुम्हें कभी शोभा नहीं देता। जिसने मेरे पिताको मार डाला था, वह राजा भी स्वयंवरमें आयेगा। वहाँ अकेले जानेपर सम्भव है, वह तुम्हें भी मार डाले।'

सुदर्शनने कहा—कल्याणमयी माँ ! होनी तो होकर ही रहेगी। इस विषयमें विचार करना बिलकुल व्यर्थ है। भगवती जगदम्बाकी आज्ञा मानकर ही आज मैं स्वयंवरमें जा रहा हूँ। जननी ! तुम क्षत्राणी हो। तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। भगवतीकी कृपासे मेरे मनमें तो भयका नामतक नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर सुदर्शन रथपर बैठा और जानेको तैयार हो गया। माता मनोरमाने उसे अनेकों आशीर्वाद देनेके साथ ही उसके कार्यका अनुमोदन किया। वह कहने लगी—'भगवती जगदम्बा अग्र-भागसे तेरी रक्षा करें। पार्वती पृष्ठभागकी रक्षक हों। दोनों पार्श्वभागोंमें भी पार्वती रक्षा करें। भगवती शिवा सर्वत्र रक्षक रहें। किसी कठिन मार्गमें पड़नेपर भगवती वाराही सहायक हों। यदि कोई दुःख सामने आ जाय तो दुर्गा रक्षा करें। कलह मच जानेपर कालिका और भय उपस्थित होनेपर भगवती परमेश्वरी तेरी रक्षा करें। उस मण्डपमें जानेपर भगवती मातङ्गी तथा स्वयंवरमें भगवती सौम्या तेरी रक्षा करें। जगत्के बन्धनको काटनेवाली भगवती भवानी राजाओंके बीचमें तेरी रक्षा करें। पर्वतीय विषम स्थानोंमें देवी गिरिजा, चौराहोंमें भगवती चामुण्डा तथा जंगलोंमें सनातनी श्रीकामगा देवी तेरी रक्षा करें। रघुके वंशका विस्तार करनेवाले मेरे प्यारे पुत्र ! विवाद छिड़ जानेपर भगवती वैष्णवी तेरी रक्षा करें। संग्राममें शत्रुओंके भिड़ जानेपर भगवती भैरवी तेरी रक्षा करें। महामाया भगवती भुवनेश्वरी अखिल जगत्की जननी हैं। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय है। सभी समय सम्पूर्ण देवताओंके समाजमें वे तेरी रक्षा करें।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार सुदर्शनसे कहकर उसकी माता मनोरमा अत्यन्त भयभीत होनेके कारण काँप उठी। उसने कहा—'बेटा ! मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। वत्स ! तुम्हें छोड़कर मेरे लिये आधे क्षण भी कहीं रहना सर्वथा असम्भव है। अतः तुम्हारी जहाँ जानेकी इच्छा हो, वहीं मुझे भी साथ ले चलो।' यों कहकर वह अपनी दासीको साथ लेकर घरसे निकल पड़ी। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। अब वे सभी हर्षपूर्वक वहाँसे चल पड़े। रघुवंशी सुदर्शन मनोरमा और धाय —तीनों एक ही रथपर चढ़कर समयानुसार काशी पहुँच गये। उनके आनेका समाचार पाकर वहाँके राजा सुबाहुने समुचित प्रकारसे उनका स्वागत किया। ठहरनेके लिये सुन्दर भवनका तथा अन्न और जल आदिका उचित प्रबन्ध कर दिया। उनकी सेवा करनेके लिये सेवकोंकी व्यवस्था कर दी। वहाँ देश-देशान्तरके राजालोग आये थे जिनसे सुदर्शनकी भेंट हुई। राजा युधाजित् भी अपने दौहित्रके साथ वहाँ आया था। करूष, मद्र, सिन्धु और माहिष्मती आदि देशोंके सुप्रसिद्ध नरेश वहाँ पधारे हुए थे। वे सब-के-सब शूरवीर थे। पाञ्चाल, कर्णाटक, चोल, विदर्भ तथा अन्य पर्वतीय प्रान्तोंसे बहुत-से महान् प्रतापी योद्धा उस स्वयंवरमें सम्मिलित हुए थे। उन सबके पास तिरसठ अक्षौहिणी सेनाएँ थीं। चारों ओर सैनिक-ही-सैनिक भरे थे। अतः वह नगरी सेनाओंसे घिर गयी थी। ये तथा इनके अतिरिक्त भी बहुत-से नरेश स्वयंवरका दृश्य देखनेके विचारसे वहाँ उपस्थित थे। वे उत्तम हाथियोंपर बैठकर वहाँ पधारे थे।

उस समय बहुत-से राजकुमार आपसमें मिलकर यों कहने लगे —'अजी, देखो न, राजकुमार सुदर्शन अत्यन्त शान्तिपूर्वक यहाँ आया हुआ है। इस रघुवंशी राजकुमारके साथ एक भी सहायक नहीं है। केवल अपनी माताके साथ रथपर बैठकर यह आया है। क्या इस समय इसका यहाँ विवाहके लिये आना हुआ है ? यहाँ इतने राजकुमार सेना और आयुधोंके साथ विराजमान हैं। इन्हें छोड़कर वह राजकुमारी भला, इस निर्धन सुदर्शनको कैसे पसंद करेगी। इतनेमें प्रसिद्ध नरेश युधाजित् उपस्थित राजाओंसे कहने लगा—'राजकुमारीके लिये इस सुदर्शनको मैं मृत्युके मुखमें झोंक दूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है।' तब नीति-शास्त्रके पूर्ण विद्वान् महाराज केरलनरेशने

युधाजित्से कहा—'राजन् ! कन्याको अपनी इच्छासे पतिका वरण करनेके लिये यह स्वयंवर रचा गया है। यहाँ युद्ध करना सर्वथा अनुचित है। यहाँ बलपूर्वक कन्याको नहीं प्राप्त किया जा सकता। अधिक धन देनेसे भी काम बनना असम्भव है। यहाँ तो कन्या अपनी इच्छासे चाहे जिसे वर सकती है। फिर न्यायतः विवादका अवसर ही कहाँ रहा ? राजेन्द्र ! आपने अन्याय-पूर्वक इस राजकुमारको राज्यसे निकाल दिया और अपने दौहित्रको राजगद्दीपर बैठा दिया है। महाभाग ! रघुवंशमें उत्पन्न यह राजकुमार सुदर्शन महाराज कोसलनरेशका सुपुत्र है। भला, इस निरपराधी कुमारको आप कैसे मारेंगे ? ऐसा करेंगे तो अन्यायका जो फल होता है, वह आपको अवश्य भोगना पड़ेगा। देखिये, सबपर शासन करनेवाला कोई और भी जगत्पिता परमेश्वर विराजमान है। धर्मकी ही विजय होती है, न कि अधर्मकी। जहाँ कहीं भी हो, सत्यका ही मस्तक ऊँचा रहेगा, न कि असत्यका। राजेन्द्र ! आप अन्याय न करें। निश्चय ही अपनी पापबुद्धिका त्याग कर दें। सुन्दर रूपवाला आपका दौहित्र भी तो यहाँ आया है। इस समय राज्यलक्ष्मी उसकी शोभा बढ़ा रही है। भला, उसे ही वह राजकुमारी क्यों न स्वीकार कर लेगी ? इतना ही नहीं, इस राजकुमारीके स्वयंवरमें अत्यन्त पराक्रमी अन्य भी अनेकों राजकुमार आये हुए हैं। कन्या स्वेच्छासे किसीको भी स्वीकार कर सकती है, फिर इसमें विवादका कहाँ अवसर रहा ? विवेकी पुरुषोंका इस विषयमें परस्पर द्वेषभाव करना सर्वथा अनुचित है।'

(अध्याय १८-१९)

☆

# शशिकलाके स्वयंवरमें राजाओंका परस्पर विवाद, शशिकलाका सुदर्शनसे विवाह करनेका पूर्ण निश्चय, राजाओंके कोलाहल करनेपर सुबाहुका शशिकलासे सम्मति लेना

व्यासजी कहते हैं—महाभाग ! उस समय केरलनरेशके यों कहनेपर राजा युधाजित्ने कहा—'राजन् ! आप निश्चय ही राजाओंमें सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। नीति यही है, जिसे आप कह चुके हैं; परंतु कुलीनवंशसे सम्बन्ध रखनेवाले राजन् ! सम्भ्रान्त राजाओंके रहते हुए इस कन्यारत्नको कोई अयोग्य व्यक्ति ले जाय—क्या यही न्याय आपको पसंद है ? सिंहके भागको सियार खा ले—इसे कैसे उचित माना जा सकता है ? आप ही सोचिये, यह सुदर्शन क्या इस कन्यारत्नको पानेके लिये योग्य है ? महाराज ! ब्राह्मणोंका बल वेद है और राजाओंका बल धनुषसे सम्बन्ध रखता है। इस अवसरपर मैं अभी जो कह रहा हूँ, यह क्या अन्याय है ? राजाओंके विवाहमें बलके मूल्यकी ही प्रधानता विख्यात है; अतः यहाँ भी जो अधिक बलवान् है, वह इस कन्यारत्नको अपना ले। शक्तिहीन कभी भी इसे नहीं पा सकता। अतएव प्रण करके राजकुमारीका विवाह हो—यहाँ यही नीति काममें लेनी चाहिये; अन्यथा राजाओंके समाजमें निश्चय ही घोर कलह मच जायगा।'

इस प्रकार राजाओंमें परस्पर विवाद हो रहा था; उसी समय सभाभवनमें महाराज सुबाहु बुलाये गये। उनके आ जानेपर सारदर्शी कुछ राजाओंने कहा—'राजन् ! इस विवाहमें आप राजोचित नीतिका अनुसरण कीजिये। महाराज ! आप क्या करना चाहते हैं, सावधान होकर स्पष्ट बतानेकी कृपा करें। राजन् ! इस पुत्रीको आपने किसे देनेकी बात मनमें सोची है ?

राजा सुबाहुने कहा—मान्य राजाओ ! निश्चित बात तो यह है कि मेरी वह कन्या मन-ही-मन सुदर्शनको वर चुकी है। मेरे बार-बार समझानेपर भी मेरी बात उसके हृदयमें स्थान नहीं पा सकी। मैं क्या करूँ ? अब मेरी उस कन्यापर मेरा कोई वश नहीं चलता। सुदर्शन यहाँ आ भी गया है। यद्यपि उसके साथ एक भी सहायक नहीं है, फिर भी उसके मनमें चिन्ताका नामतक नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तत्पश्चात् उन सभी सम्माननीय नरेशोंने सुदर्शनको बुलाया। सुदर्शन अकेले ही आया और शान्त स्वभावसे बैठ गया। सब राजाओंने सजग होकर उससे पूछा—'राजकुमार ! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुमने उत्तम व्रतका पालन किया है। पर यहाँ तुम्हें किसने बुलाया है जो तुम इस राजाओंके समाजमें अकेले ही चले आये हो ? तुम्हारे पास न सेना है न मन्त्री हैं, न खजाना है और न तुम अधिक बलवान् ही हो। महामते ! फिर किसलिये तुम यहाँ आ गये ? सच्ची बात बतानेकी कृपा करो। युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले बहुत-से नरेश यहाँ पधारे हुए हैं। उनके साथ पर्याप्त सेना है। सभी इस राजकुमारीको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे आये हैं। तुम क्या करना चाहते हो ? राजकुमारीको पानेके लिये तुम्हारा भाई शूरवीर शत्रुजित् भी यहाँ आया हुआ है। उसकी सहायता करनेके विचारसे महाबाहु युधाजित् यहाँ विद्यमान हैं।

सेनारहित तुम्हारे यहाँ आनेका वास्तविक रहस्य क्या है ? बतानेके पश्चात् तुम जाओ या रहो। सुव्रत ! तुम्हारी जो इच्छा हो, तुम वैसे ही करनेमें स्वतन्त्र हो।'

सुदर्शनने कहा—शक्ति, सहायक, खजाना, सुरक्षित किला, मित्र, सुहृद् और रक्षक राजा —इन सभी साधनोंके अभावमें भी स्वयंवरका समाचार सुनकर देखनेके लिये मैं यहाँ आ गया हूँ। भगवती शक्तिने स्वप्नमें मुझे ऐसी आज्ञा दी है। मैं उनके वचनमें संदेह नहीं करता। मेरे मनमें दूसरी कोई अभिलाषा नहीं है। मैं केवल भगवती जगदम्बाकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ। उन जगदीश्वरीने जो रच रखा है, वह तो अब होकर ही रहेगा—इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। राजाओ ! इस सारे संसारमें मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। मेरी दृष्टिमें सर्वत्र भगवती जगदम्बाकी ही झाँकी आया करती है। राजाओ ! यदि कोई मुझसे शत्रुता करनेके लिये तैयार है तो उसपर भी शासन करनेवाली भगवती महामाया विराजमान हैं; अतः उसकी शत्रुतापर मैं ध्यान ही नहीं देता।

आदरणीय राजाओ ! जो होना है, वह तो अवश्य ही होगा। उसे कौन मिटा सकता है। फिर इस विषयमें क्या चिन्ता की जाय। मैं सर्वदा माँके अधीन हूँ। राजाओ ! देवता, दानव और मानव आदि सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवती जगदम्बा ही शक्ति प्रदान करती हैं। अन्यथा कोई कुछ भी नहीं कर सकता। वे जिसे राजा बनाना चाहती हैं, उसे राजा बना देती हैं और जिसको रंक बनाना चाहती हैं, वह तुरंत रंक बन जाता है। तब फिर मुझे क्या चिन्ता लगी है। भगवती जगदम्बा परम आराध्या शक्ति हैं। उनकी कृपाके बिना बड़े-बड़े देवता भी हिल-डुलतक नहीं सकते। राजाओ ! तब मैं एक साधारण व्यक्ति क्यों चिन्ता करूँ ? मुझमें सामर्थ्य है अथवा नहीं, मैं जिस किसी परिस्थितिमें भी हूँ—इसकी मुझे कोई परवा नहीं है। राजाओ ! मैं भगवतीकी आज्ञाके अनुसार आज इस स्वयंवरमें आ गया हूँ। वे भगवती जगदम्बा जो चाहती हैं, उसके होनेमें मुझे कोई संदेह नहीं है। फिर मेरे चिन्ता करनेसे हो ही क्या सकता है। इस विषयमें आपको कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये। मैं बिलकुल सत्य बता रहा हूँ। राजाओ ! हार या जीतमें मुझे रञ्चमात्र भी संकोच नहीं है। संकोच तो वे भगवती जगदम्बा करें, जिन्होंने मुझको इस काममें नियुक्त किया है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सुदर्शनकी बात सुनकर वहाँके सभी सम्भ्रान्त नरेश उसके विचारोंसे परिचित हो गये। सब एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। तदनन्तर उन राजाओंने सुदर्शनसे कहा— 'राजकुमार ! तुम बड़े सज्जन हो। तुम्हारी वाणी बिलकुल सत्य है। यह कभी मिथ्या नहीं हो सकती। परंतु देखो, उज्जयिनीके स्वामी राजा युधाजित् तुम्हें मारना चाहते हैं। हमें तुमपर दया आ रही है, इसीलिये हम कह रहे हैं। अतएव महामते ! अब तुम अपने मनमें खूब सोच-समझकर जो उचित जान पड़े, वही करो।'

सुदर्शन बोला—आप सब निःस्वार्थ प्रेम रखनेवाले बड़े ही दयालु सज्जन हैं। आपने बहुत उचित बात कही है। किंतु महानुभाव राजाओ ! मैं अपनी कही हुई बातको फिरसे क्या दुहराऊँ ? कभी भी कोई प्राणी किसीके मारनेसे नहीं मर सकता; क्योंकि यह सारा चराचर जगत्

दैवके अधीन है। संसारका एक भी प्राणी अपनी स्वतन्त्रता सिद्ध करनेमें असमर्थ है। उसे सदा अपने किये हुए कर्मकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। तत्त्वदर्शी विद्वानोंने कर्मके तीन भेद बतलाये हैं—संचित, वर्तमान और प्रारब्ध। काल, कर्म और स्वभाव—इन तीनसे ही यह सारा विस्तृत जगत् स्थिर है। काल आये बिना देवतातक भी किसी मनुष्यको नहीं मार सकते। यदि किसीके हाथ कोई मारा गया तो वह केवल निमित्तमात्र है। सबको मारनेवाला तो अविनाशी काल है—जैसे शत्रुओंको शमन करनेवाले मेरे पिताजी सिंहके द्वारा मारे गये और वैसे ही मेरे नानाजी भी युधाजित्‌के कारण संग्राममें प्राणोंसे हाथ धो बैठे। करोड़ों उपाय करते रहनेपर भी, यदि प्रारब्ध पूरा हो गया है तो मृत्यु निश्चित है। दैवके अनुकूल रहनेपर बिना किसी रक्षकका मानव भी हजारों वर्षोंतक जीवित रह सकता है। धर्ममें आस्था रखनेवाले राजाओ ! मैं कभी भी युधाजित्‌से नहीं डरता ! दैवकी प्रधानता मानकर मेरे मनमें सदा शान्ति बनी हुई है। भगवती जगदम्बाका चिन्तन मेरे चित्तसे क्षणमात्र भी अलग नहीं होता। विश्वको उत्पन्न करनेवाली वे भगवती मेरा कल्याण अवश्य करेंगी। पूर्वजन्ममें जिसने अच्छा अथवा बुरा जो कर्म किया है, उसका फल भोगना तो अनिवार्य ही है। फिर अपने किये हुए कर्मके भोगसे विवेकी पुरुष क्यों भय करे ? अपने उपार्जित कर्मके फलस्वरूप दुःख आनेपर घबराहट उत्पन्न हो जाती है, इस कारण वह मानव निमित्त कारणके साथ वैर करने लगता है। उस बुद्धिहीन जनकी भाँति मैं कभी अपने हृदयमें वैर, शोक और भयको स्थान नहीं देता। अतः राजाओंके इस समाजमें मैं निर्भीक होकर आ गया हूँ। भगवती जगदम्बाकी आज्ञासे इस सर्वोत्तम स्वयंवरको देखनेकी इच्छासे मैं अकेला ही चला आया। मैं भगवतीके वचनको ही प्रमाण मानता हूँ। दूसरे किसीको मैं नहीं जानता। उन्होंने जो सुख-दुःखका विधान कर दिया है, वह अवश्य भोगना पड़ेगा। माननीय राजाओ ! युधाजित् सुखी रहें। मेरी उनसे कोई भी शत्रुता नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार सुदर्शनके कहनेपर राजाओंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी अपने स्थानोंपर पधार गये और सुदर्शन भी डेरेपर आकर शान्तचित्तसे बैठ गया। दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें राजा सुबाहुने अपने भव्य भवनपर राजाओंको बुलाया। अनेकों उत्तम मञ्च बने थे। उन्हें अद्भुत बिछौनोंसे सजाया गया था। मनोहर अलंकारोंसे अलंकृत नरेश आकर उन मञ्चोंपर बैठ गये। अलौकिक वेषधारी वे राजालोग ऐसे प्रतीत होते थे, मानो विमानपर बैठे हुए देवता हों। बैठनेपर उनकी छवि खिल उठी। सभी स्वयंवर देखनेकी इच्छासे बैठे थे। सबके मनमें इस बातकी विशेष आतुरता थी कि 'कब वह राजकुमारी आयेगी और किस प्रख्यातपुण्य भाग्यवान् श्रेष्ठ नरेशको वरेगी ? राजकुमारी यदि संयोगवश सुदर्शनके गलेमें माला डाल देगी तो निस्संदेह राजाओंमें युद्ध छिड़ जायगा।' मञ्चपर बैठे हुए राजालोग यों सोच रहे थे, इतनेमें महाराज सुबाहुके भवनपर बाजोंकी गगनभेदी ध्वनि होने लगी। उस समय वह राजकुमारी स्नान करके आयी थी। वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित थी। उसके गलेमें दोपहरियाके फूलका हार सुशोभित था। उसने रेशमी साड़ी पहन रखी थी। विवाहमें

धारण करनेयोग्य सभी पदार्थ उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह ऐसी दिव्यमूर्ति बन गयी थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी हो। तब पिता सुबाहुने मुसकराकर उससे कहा—'बेटी! उठो और हाथमें फूलोंकी माला लेकर सभाभवनमें चलो। देखो, आज वहाँ बहुत-से राजा आये हुए हैं। सुमध्यमे! उनमें जो गुणवान्, रूपवान् और उत्तम वंशसे सम्बन्ध रखनेवाला श्रेष्ठ राजा तुम्हारे मनमें जँच जाय, उसीको तुम वर लो। बेटी! देश-देशान्तरके सभी नरेश सजाये हुए मञ्चोंपर विराजमान हैं। उन्हें देखकर अपनी इच्छाके अनुसार किसीको पति चुन लो।'

व्यासजी कहते हैं—राजकुमारी शशिकला स्वाभाविक कम बोलती थी। पिता अपना विचार व्यक्त कर रहे थे। फिर उसने उनके प्रति मधुर वाणीमें अपना धार्मिक भाव स्पष्ट कर दिया।

शशिकला बोली—पिताजी! मेरा यह निश्चय है कि मैं उपस्थित राजाओंके सामने नहीं जाऊँगी। कामके सजीव पुतले उन नरेशोंके समक्ष दूसरी स्त्रियाँ भले ही जाया करें। पिताजी! मैंने धर्मशास्त्रमें यह वचन सुना है कि स्त्री केवल एक पतिपर ही अपनी दृष्टि डाले, किसी भी दूसरेपर कदापि नहीं। अनेकों पुरुषोंके सामने जानेवाली स्त्रीका सतीत्व सुरक्षित नहीं रह सकता; क्योंकि उसे देखकर सभीके मनमें संकल्प उठने लगता है कि यह मेरी पत्नी बन जाय। जब कुलीन स्त्री भी हाथमें हार लेकर स्वयंवरमें पहुँचती है, तब ठीक उसकी वही स्थिति हो जाती है, जैसी किसी कुलटाकी होती है। जिस प्रकार वेश्या हाटमें जाकर वहाँके पुरुषोंको देखनेके पश्चात् उनके गुण-दोषपर अपने मनमें विचार करने लगती है और जैसे उसके मनमें तरह-तरहके भाव उठा करते हैं, निष्प्रयोजन भी वासनायुक्त पुरुषको देखना उसका स्वभाव बन जाता है, क्या वैसे ही मैं भी स्वयंवरमें जाकर वेश्यावृत्ति अपना लूँ? क्या अब मैं पूर्वजोंके बनाये हुए धर्मका पालन नहीं कर सकूँगी? मेरा वहाँ जाना असम्भव है—मैं तो नियममें अटल रहकर साध्वी स्त्रीका जो धर्म है, उसका अवश्य पालन करूँगी। जिस प्रकार कोई साधारण स्त्री स्वयंवरमें जाकर अनेक पुरुषोंको पति बनानेका संकल्प उठनेके पश्चात् किसी एकको चुनती है, आज वैसे ही मैं भी जाकर सबको देखूँ और किसीको पति चुन लूँ—यह मुझसे नहीं हो सकता। पिताजी! आप राजाओंके सिरमौर हैं। आप जानते हैं, मैं सुदर्शनको स्वामी बना चुकी हूँ। निश्चितरूपसे मैं दूसरा विचार ही नहीं कर सकती। अतः आप यदि मेरा कल्याण चाहते हैं तो किसी अच्छे दिन विवाहकी विधि सम्पन्न करके सुदर्शनके हाथ मुझे समर्पण कर दीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तब शशिकलाकी बात सुनकर राजा सुबाहुका मन चिन्तित हो उठा। सोचा—कन्याने कहा तो ठीक ही है, पर अब मुझे क्या करना चाहिये। अनेकों नरेश अपने सेवक और सैनिकोंके साथ यहाँ आये हुए हैं। उनमें असीम बल है। सब मञ्चोंपर बैठे हैं। उन्हें युद्ध करना भी अभीष्ट है। इस अवसरपर यदि मैं उनसे कह दूँ कि कन्या स्वयंवरमें नहीं आती तो वे खोटी बुद्धिवाले नरेश मुझे मार ही डालेंगे; क्योंकि वे सब बड़े क्रोधी हैं। मेरे पास उनके समान न तो सेनाका बल है और न सुरक्षित किला ही, जिससे इस उत्सवके अवसरपर मैं उन सभी राजाओंको हराकर भगा

सकूँ। ये छोटे कदके सुदर्शन भी बेचारे निस्सहाय, निर्धन और अकेले हैं। मैं सम्यक् प्रकारसे दुःखके संसारमें डूब चुका हूँ। अब मेरे लिये क्या करना आवश्यक है?

इस प्रकार चिन्तित होकर तथा मन-ही-मन कुछ सोचकर राजा सुबाहु नरेशोंके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बड़ी नम्रताके साथ कहने लगे— 'महानुभाव राजाओ! मैं क्या करूँ, मेरी पुत्री स्वयंवरमें नहीं आ रही है, यद्यपि मैंने तथा उसकी माताने भी उसे आनेके लिये बहुत समझाया-बुझाया है। मैं आप सभी राजाओंका सेवक हूँ, आपके चरणोंपर मेरा मस्तक पड़ा है, अतः अब आप पूजा आदि स्वीकार करके अपने-अपने भवनपर पधारनेकी कृपा करें। मैं बहुत-से रत्न, वस्त्र, हाथी और रथ देता हूँ। इन्हें लेकर आप मुझपर कृपा करके अपने-अपने भवनको पधारें। कन्या मेरे वशमें नहीं है। उसे दण्ड दिया जाय तो वह मरनेको तैयार है; उस स्थितिमें भी मुझे महान् क्लेश भोगना पड़ेगा। अतएव मैं बहुत ही चिन्तित हूँ। आप सभी बड़े दयालु, अत्यन्त भाग्यशाली और अपार तेजस्वी हैं। फिर मेरी इस नम्रताशून्य एवं भाग्यहीन कन्यासे आपको क्या फल मिलेगा, जिससे आपलोग इतना आग्रह कर रहे हैं। मैं आपलोगोंका कृपापात्र हूँ। मुझे सब तरहसे आपकी सेवा स्वीकार है। अब आपको चाहिये कि मेरी कन्याको आप अपनी कन्याके समान समझ लें।'

व्यासजी कहते हैं—महाराज सुबाहुकी बात सुनकर कुछ राजा तो चुप हो गये, किंतु युधाजित्की आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। अत्यन्त कुपित होकर वह सुबाहुसे कहने लगा—'राजा! तू बड़ा मूर्ख है। ऐसा घोर निन्दनीय काम करनेके बाद भी कैसे तेरे मुखसे यह बात निकल रही है? कन्याके विषयमें तुझे संदेह था तो तूने अज्ञानवश स्वयंवरकी योजना ही क्यों की? क्यों तूने स्वयंवरमें राजाओंको बुलाया? सब आये, मेल-मिलाप हुआ। अब वे यों ही अपने घर लौट जायँ—यह कैसे उचित माना जा सकता है। क्या तू सम्पूर्ण राजाओंका अपमान करके सुदर्शनके साथ अपनी कन्याका विवाह करना चाहता है? इससे बढ़कर नीचता और क्या हो सकती है? सुबाहु! कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि पहले विचारकर तब किसी काममें प्रवृत्त हो। तूने बिना सोचे-समझे ही यह काण्ड कर डाला है।

भला, बता तो—सेना और वाहनोंसे सम्पन्न इतने राजाओंको छोड़कर अब सुदर्शनको जामाता बनानेकी कैसे तेरी इच्छा हो गयी? मैं अभी तुझ पापी नरेशको मार डालता हूँ। इसके बाद सुदर्शन भी मेरे हाथसे कालके गालमें जायगा। फिर मैं इस कन्याका अपने दौहित्रके साथ विवाह करूँगा—इसमें कोई संदेह नहीं

है। मेरे रहते हुए दूसरा कौन है, जिसके मनमें इस कन्याको हरण करनेकी इच्छा उत्पन्न हो सके ? फिर यह तनिक-सा निर्धन और निर्बल छोकरा सुदर्शन किस गिनतीमें है ? जब यह लड़का भरद्वाजजीके आश्रमपर था, तभी मैं इसे मार डालता; किंतु मुनिके कहनेसे मैंने छोड़ दिया था। किंतु अब इसे नहीं छोड़ूँगा। अब किसी प्रकार इस छोकरेके प्राण नहीं बच सकते। अतएव तू अपनी स्त्री और पुत्रीसहित भलीभाँति विचार कर ले एवं अपनी इस लाड़ली सुन्दरी कन्याका मेरे दौहित्रके साथ विवाह कर दे। मनको मुग्ध करनेवाली यह कन्या सौंपकर तू मेरा सम्बन्धी बन जा; क्योंकि कल्याणकामी पुरुष सदा यही चाहते हैं, किसी महान् व्यक्तिके आश्रयमें रहा जाय। सुदर्शन राज्यहीन और असहाय है। प्राणोंके समान प्यारी अपनी इस सुन्दरी कन्याको उसे देकर तू किस सुखकी इच्छा करता है ? कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग और सुहृद्वर्ग—यह सब देखकर ही कन्याका विवाह करना चाहिये। अन्यथा सुखकी इच्छा सर्वथा व्यर्थ है। धर्म तथा सदा स्थिर रहनेवाली राजनीतिपर विचार करनेके पश्चात् तुझे यथोचित काम करना चाहिये। बिना सोचे-समझे सहसा ऐसा काम मत कर। तू मेरा बड़ा ही सुहृद् है। अतएव मैं तेरे हितकी बात कह देता हूँ। राजन् ! तू अपनी कन्याको सखियोंसहित स्वयंवरमें अवश्य ले आ। एक तो सुदर्शनके सिवा किसीको भी वह कन्या वर लेगी तो तेरे साथ मेरा कोई विवाद नहीं रहेगा। विवाह वह होना चाहिये, जिससे तेरा भी मनोरथ पूर्ण हो। राजेन्द्र ! अन्य सभी नरेश श्रेष्ठ कुलसे सम्बन्ध रखनेवाले और महान् शक्तिशाली हैं। वे सब प्रकारसे अनुकूल हैं। यदि इनमें किसीको भी कन्या वरण कर लेती है तो विरोध ही क्या है। अन्यथा, अब इस सुन्दरी कन्याका हरण किये बिना मुझसे रहा नहीं जायगा। राजेन्द्र ! तू जा और इस कार्यको सम्पन्न कर। असाध्य कलहमें पड़ना उचित नहीं है।'

व्यासजी कहते हैं—युधाजित्के उत्तेजनापूर्ण वचन कहनेपर सुबाहुके शोकका पारावार न रहा। लम्बी साँस छोड़ता हुआ वह भवनमें गया और दुःखी होकर अपनी पत्नीसे कहने लगा—'सुन्दर नेत्रोंसे शोभा पानेवाली प्रिये ! तुम्हें सभी धर्म ज्ञात हैं। तुम पुत्रीसे कहो कि ऐसा भयंकर कलह मच गया है। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये ? मैं स्वयं कुछ कर नहीं सकता; क्योंकि मैं तो तुम्हारे वशमें हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—राजा सुबाहुकी बात सुनकर रानी पुत्रीके पास गयी और बोली—'बेटी ! महाराज अत्यन्त दुःखी हैं। वे तुम्हारे पिता हैं। उनका दुःख अभीतक शान्त नहीं हो पाया है। तुम्हारे लिये आये हुए नरेशोंके कारण यह घोर कलह दुःखका हेतु बन गया है। सुन्दरी ! तुम सुदर्शनको छोड़कर किसी दूसरे राजकुमारका वरण कर लो। बेटी ! यदि हठ करके सुदर्शनको ही वरोगी तो पराक्रमी युधाजित् तुमको और हमलोगोंको भी अवश्य ही मार डालेगा। सुदर्शनके प्राण भी नहीं बचेंगे; क्योंकि वह नरेश बड़ा प्रतापी है। उसे अपने बलका अभिमान है। अतः मृगलोचने ! यदि तुम मेरा और अपना सुख चाहती हो तो सुदर्शनको छोड़कर किसी दूसरे श्रेष्ठ राजाको पतिके रूपमें चुन लो।' रानीके यों समझानेके पश्चात् राजा सुबाहुने भी शशिकलाको बहुत

समझाया। पिता-माताकी बात सुनकर शशिकलाको कुछ भी भय नहीं हुआ। वह निर्भीकतासे बोली।

कन्याने कहा—महाराज ! आपने सत्य कहा है; किंतु मेरी प्रतिज्ञा तो आप जानते ही हैं। मैं सुदर्शनको छोड़कर कभी किसी दूसरे नरेशको वरण नहीं कर सकती। राजेन्द्र ! आप यदि राजाओंसे डरते हैं और आपके मनमें अत्यन्त घबराहट उत्पन्न हो गयी है तो मुझे सुदर्शनको सौंपकर नगरसे निकल जानेकी आज्ञा दे दीजिये। वे मुझे रथपर बैठाकर चुपचाप आपके नगरसे निकल जायँगे। इसके बाद जैसा प्रारब्ध होगा, वह सामने आ जायगा। महाराज ! दैवके विधानको कोई टाल नहीं सकता। इस विषयमें आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जो भावी है, वह तो सब तरहसे होकर रहेगी— इसमें कोई संशय नहीं है।

राजा बोले—बुद्धिमान् व्यक्तिको कभी ऐसा दुस्साहस नहीं करना चाहिये। वेदके पारगामी विद्वान् कहते हैं कि बहुतोंसे विरोध करना अनुचित है। फिर तुझ पुत्रीको कैसे उस राजकुमारके साथ सम्बन्ध करके मैं निकाल दूँ ? इसके पश्चात् ये राजालोग शत्रु बनकर मेरा कौन-सा अनिष्ट नहीं करेंगे ? पुत्री ! तुम यदि सम्मति प्रकट करो तो मैं वैसा स्वयंवर निश्चित कर दूँ, जैसा राजा जनक सीताके लिये कर चुके हैं। उन्होंने भगवान् शंकरका धनुष तोड़नेकी बाजी लगायी थी। वैसे ही इस समय मैं भी कोई एक महान् कठिन कार्य सामने रख दूँ, जिससे राजाओंमें विवाद उत्पन्न न हो सके। ऐसा करनेपर ही कल्याण दीखता है। जिसमें उस प्रतिज्ञाका पालन करनेकी योग्यता होगी, वही तुम्हारा पति होगा। सुदर्शन हो अथवा दूसरा ही कोई अत्यन्त बलवान् वीर हो। प्रतिज्ञा-पालन करनेके पश्चात् वह अवश्य ही भलीभाँति तुम्हें प्राप्त कर सकता है। यों करनेपर राजाओंमें विवादका कारण नहीं रह सकेगा। तदनन्तर आनन्दपूर्वक मैं तुम्हारा विवाह-संस्कार कर दूँगा।

राजकुमारीने कहा—पिताजी ! मेरे मनमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि संदेह करना तो मूर्खताका लक्षण है। मैंने अपने चित्तमें कभीसे सुदर्शनको पति बना लिया है। महाराज ! पुण्य अथवा पाप —कोई भी काम हो, उसमें प्रवृत्त करानेका श्रेय एकमात्र मनको है। पिताजी ! जब मैं मनसे एक बार एकको वरण कर चुकी, तब फिर उसे त्यागकर दूसरेको कैसे वरूँ ? महाराज ! स्वयंवर होनेपर तो मुझे सभीके वशमें होकर रहना पड़ेगा। सम्भव है कोई एक राजा उस प्रतिज्ञाका पालन कर दे अथवा दो नरेश पालन करनेमें समर्थ हो जायँ या बहुतेरे पालन करनेवाले मिल जायँ। पिताजी ! फिर तो विवाद उपस्थित हो ही जायगा। तब क्या कर्तव्य होगा ? राजेन्द्र ! मैं संदिग्ध कार्यमें नहीं पड़ना चाहती। अतः आप निश्चिन्ततापूर्वक वैवाहिक विधिका पालन करते हुए मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये। जिनके नामका कीर्तन करनेसे अनेकों दुःख टल जाते हैं, वे ही भगवती चण्डिका कल्याण करेंगी। उन्हीं परमशक्ति भगवतीको स्मरण करके सावधानीके साथ ऐसा कार्य कीजिये। अभी आप उपस्थित राजाओंके पास जाइये और उनसे हाथ जोड़कर कहिये —'आप सभी नरेश कल यहाँ स्वयंवरमें पधारें।' यों कहकर आप सम्पूर्ण राजाओंको हटा दीजिये। राजन् ! फिर आज रातमें वैदिक विधिसे

सुदर्शनके साथ मेरा पाणिग्रहण-संस्कार कर दीजिये और समुचित दहेज देकर विदा भी कर दीजिये। इसके बाद ध्रुवसंधिकुमार सुदर्शन मुझे लेकर अवश्य चले जायँगे। सम्भव है, वे राजालोग कुपित होकर युद्ध करनेको तैयार हो जायँ। ऐसा होगा तो उस स्थितिमें भगवती चण्डिका हमारी सहायता अवश्य करेंगी; और भगवतीकी सहायता पाकर सुदर्शन भी उन राजाओंका सामना कर लेंगे। संयोगवश संग्राममें यदि राजकुमार सुदर्शन काम आ गये तो मैं उनके साथ तुरंत सती हो जाऊँगी। पिताजी! आपका कल्याण हो, आप मुझे सुदर्शनको सौंपकर सेनासहित सुखसे घरपर रहें। मैं अकेली ही सुदर्शनके साथ चली जाऊँगी।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! शशिकलाका यह कथन सुनकर काशीनरेशने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। पुत्रीकी कही बात उनके मनमें जँच गयी। वैसा ही करनेके लिये उन्होंने शशिकलाको विश्वास भी दिला दिया।

(अध्याय २०-२१)

☆

## शशिकलाका सुदर्शनके साथ विवाह, सुदर्शनका नवविवाहिता पत्नी शशिकलाको लेकर जाना, राजाओंसे संग्राम, देवीका प्राकट्य, देवीके द्वारा युधाजित् और शत्रुजित्‌का वध तथा सुबाहुके द्वारा देवीकी स्तुति

व्यासजी कहते हैं—राजा सुबाहुका अन्तःकरण बड़ा पवित्र था। अपनी पुत्रीकी बात सुनकर वह राजाओंके पास गया और बोला—'राजाओ! आज आपलोग अपने डेरेपर पधारें, विवाहका कार्यक्रम कलके लिये टल गया। खाने-पीनेकी चीजें आपकी सेवामें उपस्थित कर दी गयी हैं, मुझपर कृपा करके आप सभी महानुभाव इन वस्तुओंको स्वीकार करें। फिर कल इस सभाभवनमें पधारिये। हम सब मिलकर विवाहका कार्य सम्पन्न करेंगे। राजाओ! मेरी कन्या शशिकलाका आज स्वयंवरमें आना बिलकुल असम्भव है। अतः चाहते हुए भी मैं इस कार्यमें सर्वथा असमर्थ हूँ। कल सबेरे समझा-बुझाकर मैं उसे सभाभवनमें ले आऊँगा। अतएव आप महानुभाव आज अपनी-अपनी छावनीमें पधारनेकी कृपा करें। बुद्धिमानोंके समाजमें विग्रहको स्थान नहीं रहता। अपने आश्रित जनपर—विशेषतः जो अपनी ही संतान है, उसपर कृपा करना तो नितान्त आवश्यक है। अतः आपलोग शशिकलापर कृपा करके आज अपने-अपने स्थानको सिधारें। कल प्रातःकाल मैं पुत्रीको यहाँ उपस्थित कर दूँगा। इच्छा-स्वयंवर किया जायगा—अर्थात् राजकुमारी अपनी इच्छासे किसी भी नरेशको पति चुन ले—ऐसी घोषणा कर दी जायगी। सभी नरेश यहाँ उपस्थित रहेंगे। उनकी सम्मतिसे यह कार्य सम्पन्न होगा।'

राजा सुबाहुकी बात सुननेके पश्चात् उपस्थित सभी नरेश अपने-अपने स्थानपर चले गये। 'नगरके संनिकट रहकर देख-भाल करते रहें, ताकि इस कार्यमें छल न हो'—इसकी व्यवस्था उन लोगोंने कर ली। इधर सुबाहुने विवाहका समय निश्चित किया, अन्तःपुरमें ही गुप्तस्थान बनाया गया। मण्डपमें पुत्री

शशिकलाको बुलाकर वेदके पारगामी विद्वान् पुरोहितगणके साथ वह विवाहका कार्य सम्पन्न करनेमें लग गया। वरको स्नान आदि कराया गया और विवाहमें पहननेयोग्य भूषण और वस्त्र दिये गये। मण्डपमें वेदी बनी हुई थी। वरको बुलाकर उसपर बैठाया और स्वयं उसकी पूजा की। राजा सुबाहु प्रतापी नरेश थे, उन्होंने विवाहके अवसरपर विष्टर, आचमन, अर्घ्य, दो वस्त्र, गौ और दो कुण्डल देनेके पश्चात् अपनी कन्या शशिकलाका विधिपूर्वक सुदर्शनके साथ पाणिग्रहण-संस्कार कर दिया। उदार हृदयवाले सुदर्शनने सभी वस्तुएँ स्वीकार कर लीं। उस समय सुदर्शन कुबेरकी कन्याका सामना करने-वाली शशिकलाको अपनेसे उत्तम मान रहा था। विवाहके समय मन्त्रियोंने भी राजाके पूजा कर लेनेपर उस उत्तम वरकी वस्त्र आदिसे पूजा की। सभी निर्भीक होकर मण्डपमें वरको ले आये थे। विधिकी जानकार स्त्रियोंने शशिकलाको भूषणोंसे खूब सजा-धजाकर सुन्दर पालकीपर बैठाया और वरके पास उपस्थित कर दिया। मण्डपमें अग्नि-स्थापनके लिये चतुष्कोण वेदी बनी थी। पुरोहितने उसपर अग्नि स्थापित की। विधिपूर्वक हवन किया गया, फिर वर और वधूको हवन करनेके लिये कहा गया। दोनों बड़े प्रेमके साथ हवनमें तत्पर हो गये। विधिवत् लाजाहवन करनेके पश्चात् वर-वधूने अग्निकी प्रदक्षिणा की। उस कुल और गोत्रकी जो प्रथा थी, उसका सम्यक् प्रकारसे पालन किया गया। महाराज सुबाहुने घोड़े जुते हुए दो सौ रथ सुदर्शनको विवाहमें दहेज दिये, वे रथ खूब सजाये गये थे। उनपर बाणोंका भरपूर संचय था। महाराज काशीनरेशके पास पर्वतशिखरके समान मतवाले हाथी थे। सुवर्णके भूषणोंसे उन हाथियोंको सजाया गया था। प्रेमपूर्वक महाराजने सवा सौ हाथी सुदर्शनको भेंट किये। सोनेके भूषणोंसे भूषित सौ दासियाँ और उतनी ही सुन्दर हथिनियाँ दहेजमें सुदर्शनको दीं। फिर सम्पूर्ण आयुधों और भूषणोंसे सुसज्जित एक हजार सेवक, बहुत-से रत्न, वस्त्र और कम्बल आदि यथोचित दिव्य पदार्थ सुदर्शनको दिये। अत्यन्त मनोहर एवं विशाल अनेकों विचित्र भवन रहनेके लिये अर्पित किये। साथ ही राजा सुबाहुने सिन्धु देशमें उत्पन्न दो हजार उत्तम घोड़े सुदर्शनको दिये। भार ढोनेमें कुशल तीन हजार ऊँट तथा अन्न एवं घी आदिसे भरी हुई दो सौ बढ़िया बैलगाड़ियाँ दहेजमें सुदर्शनको समर्पण कीं।

तदनन्तर राजा सुबाहुने रानी मनोरमाके सामने जाकर हाथ जोड़े हुए प्रणाम किया और यों कहा—'राजकुमारी! आप श्रेष्ठ कुलसे सम्बन्ध रखनेवाली क्षत्राणी हैं। मैं आपका सेवक हूँ। अब आपके मनमें जो बात हो, वह बतानेकी कृपा करें।' तब मनोरमाने भी सुबाहुसे मधुर वचनोंमें कहा—'राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे कुलकी वृद्धि हो। तुम्हारे द्वारा मेरा खूब सम्मान हो गया; क्योंकि तुमने अपनी रत्नमयी उत्तम कन्या मेरे पुत्र सुदर्शनको प्रदान की है। राजन्! यश गानेमें कुशल वन्दीजन और मागध हैं। मैं उनकी पुत्री तो हूँ नहीं, जो सम्यक् प्रकारसे तुम्हारी प्रशंसा गा सकूँ। अपने ही जनकी प्रशंसा गायी भी क्या जाय। तुम एक प्रख्यात नरेश हो। तुमसे सम्बन्ध होनेके कारण मेरा पुत्र सुदर्शन सुमेरुके समान उच्च अधिकार पा गया। अवश्य ही तुम बड़े

सदाचारी नरेश हो। मैं तुम्हारे शुद्ध व्यवहारका क्या वर्णन करूँ। तुमने राज्यसे निकाले हुए मेरे पुत्रको अपनी कुलीन कन्या प्रदान कर दी, यह कैसी विचित्र बात है ! सुदर्शन वनमें रहता है, उसके पास एक भी पैसा नहीं है। उसके पिता कभी स्वर्ग सिधार गये थे। साथमें सेना भी नहीं है। वह केवल फल खाकर गरीबीसे जीवन व्यतीत करता है। फिर भी, इन सभी नरेशोंको छोड़कर तुमने अपनी गुणवती सुन्दरी कन्याका इसके साथ विवाह किया है। यह क्या साधारण बात है ? धन, कुल और बलमें जो बराबर होता है, उसीके साथ सम्बन्ध करनेका नियम है। इस स्थितिमें मेरे निर्धन पुत्रको भला, कौन अपनी कन्या दे सकता था। अत्यन्त आदरणीय और पराक्रमी इतने नरेश आये हुए हैं। तुमने उन सभीसे वैर मोल लेकर मेरे पुत्रको अपनी कन्या दी है। तुम्हारी इस धीरताका मैं क्या सराहना करूँ।

मनोरमाके वचन सुनकर सुबाहुके मनमें अपार प्रसन्नता हुई। हाथ जोड़कर वह पुनः मनोरमासे कहने लगा—'मेरा यह राज्य अत्यन्त प्रसिद्ध है, आप इसे स्वीकार करें। अबसे मैं सेनाध्यक्ष होकर रहूँगा। ऐसा करना असम्भव हो तो आधा राज्य ही ले लें। फिर अपने पुत्रके साथ रहकर राजसी भोग भोगें। अब काशीमें न रहकर किसी वन या ग्राममें रहें—यह मेरी सम्मतिसे विरुद्ध है। हाँ, राजाओंका कोप करना निश्चित है। किंतु मैं पहले जाकर उन्हें समझा-बुझाकर शान्त करूँगा। इसके बाद दान और दण्ड—ये दो उपाय हैं, इन्हें काममें लूँगा। इतनेपर भी वे अनुकूल न होंगे तो संग्राम छिड़ जायगा। यद्यपि हार और जीत प्रारब्धके अनुसार होती है, तथापि जिस पक्षमें धर्म रहता है, उसीकी विजय सम्भव है। अधर्मके पक्षवाले विजयी नहीं हो सकते। अतः अधर्मका अनुसरण करनेवाले उन राजाओंकी मनचाही बात कैसे सफल हो सकती है।'

सुबाहुकी वाणी बड़ी सारगर्भित थी। उसे सुनकर मनोरमा हितकारक वचन कहने लगी। सुबाहुने मनोरमाका पर्याप्त सम्मान किया था। अतएव वह आनन्दमें निमग्न थी। मनोरमाने कहा—'राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, तुम निर्भय होकर अपने पुत्रोंके साथ राज्य करो। मेरा पुत्र भी अयोध्यामें राज्य करेगा—यह बिलकुल निश्चित बात है। अब मुझे यहाँसे अपने घर जानेके लिये आज्ञा दो। भगवती जगदम्बिका तुम्हारा कल्याण करेगी। राजन्! परम आराध्या भगवती जगदम्बाका मैं भलीभाँति चिन्तन करती हूँ। मेरे विषयमें तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।'

इस प्रकार राजा सुबाहु और मनोरमाकी बातें होती रहीं। उनकी वाणी अमृतके समान मधुर थी। बातचीत होते-होते ही रात बीत गयी। सबेरा हो गया। जब नरेशोंको यह पता लगा कि विवाह हो गया, तब तो उनकी क्रोधाग्नि धधक उठी। वे नगरसे बाहर निकलकर कहने लगे—'सुदर्शन निश्चय ही राजकुमारी शशिकलाके साथ विवाह करनेमें अयोग्य है। हम आज ही उस कलङ्की राजा सुबाहु और कुमार सुदर्शनको मारकर राज्यलक्ष्मीसहित शशिकलाको छीन लेंगे। अन्यथा लज्जित होकर कैसे अपने भवनोंपर जायँगे। आप सब लोग सुन लें—ढोल, मृदङ्ग और शङ्ख बज रहे हैं। गीत गाये जा रहे हैं। अनेकों प्रकारकी वेदध्वनियाँ गूँज रही हैं। इससे यह स्पष्ट सूचित हो रहा है कि राजा सुबाहुने विवाहकी विधि पूरी कर दी। हमें

बातोंसे ठगकर वैवाहिक विधिका सम्पादन करके अवश्य ही पाणिग्रहण-संस्कार कर दिया गया है। राजाओ ! अब हमारा क्या कर्तव्य है—इस विषयमें सब सोचें और फिर जो निर्णय हो, वही करें।'

इस प्रकार राजाओंमें परस्पर बातचीत हो रही थी। इतनेमें ही अप्रतिम प्रभावशाली काशीनरेश महाराज सुबाहु कन्याका पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न करके निमन्त्रित करनेके लिये राजाओंके पास पहुँचे। महाराजके साथ बहुत-से प्रसिद्ध प्रतापी सुहृद् भी थे। काशीनरेश सुबाहुको आते देखकर उपस्थित नरेशोंने कुछ भी नहीं कहा। क्रोधसे मौन होकर चुपचाप वे बैठे रहे। राजा सुबाहु सामने गये, उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'सभी महाभाग भोजन करनेके लिये मेरे घरपर पधारनेकी कृपा करें। कन्याने तो उस राजकुमार सुदर्शनको पति बना लिया। मैं इस विषयमें अच्छा-बुरा क्या कर सकता हूँ? अब कृपा करके आपलोग शान्तिपूर्वक कार्य करें; क्योंकि महान् पुरुषोंका स्वभाव ही दया करना है।'

महाराज सुबाहुकी बात सुनकर राजाओंका सर्वाङ्ग क्रोधसे तमतमा उठा। वे बोले—'राजन्! हम भोजन कर चुके। अब तू अपने घर जा। तुझे जो कुछ जँचा, वह तूने कर लिया। जो कार्य अभी बाकी हैं, जाकर उन्हें भी कर ले।' राजा सुबाहु शङ्कित होकर घरकी ओर मुड़े। 'ये सभी प्रख्यात नरेश कुपित हो गये और इनके भीतर क्रोधकी आग भभक रही है। पता नहीं, ये क्या कर डालेंगे'—इस प्रकारकी चिन्ताधारामें सुबाहु गोता खाने लगे। सुबाहुके चले जानेपर राजाओंने अपना आगेका यह कर्तव्य निश्चय किया कि 'हमलोग रास्ता रोककर डट जायँ और सुदर्शनको मारकर कन्याको छीन लें।' कुछ ऐसे न्यायशील नरेश भी थे, जिन्होंने कहा—'हाँ, हाँ—अरे, उस राजकुमार सुदर्शनसे हमें क्या वैर चुकाना है। यहाँका सब दृश्य देख लिया, अब जैसे आये थे, वैसे ही घर लौट चलना चाहिये।'

तदनन्तर विरोधी राजा मार्ग रोककर डट गये। उधर महाराज सुबाहु अपने भवनपर जाकर आगेकी जो विधियाँ शेष थीं, उन्हें पूर्ण करनेमें लग गये।

व्यासजी कहते हैं—उस समय महाराज सुबाहु भक्तिपूर्वक विधिके साथ छः दिनोंतक सुदर्शनको प्रीतिभोज देनेमें व्यस्त रहे। यों विवाहके सभी कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् राजा सुबाहुने मन्त्रियोंसे परामर्श करके समुचित दहेज दिया। इधर उन अमित प्रतापी नरेशको जब दूतोंद्वारा पता लगा कि विरोधी राजाओंने मार्ग रोक रखा है, तब उनके मुखपर उदासी छा गयी। यह देखकर श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले सुदर्शनने अपने श्वसुर महाराज सुबाहुसे कहा—'आप अभी हमें जानेकी आज्ञा दीजिये, हम निःशङ्क होकर चले जायँगे। श्रीभरद्वाजजीके पवित्र आश्रमपर जाकर वहीं सावधानीके साथ सदा रहनेके लिये स्थानका विचार कर लेंगे। अनघ ! आप राजाओंसे कुछ भी भय न करें। भगवती जगन्माता सदा ही हमारी सहायता करेंगी।'

व्यासजी कहते हैं—महाराज सुबाहुने अपने जामाता सुदर्शनकी बातपर विचार किया और और माँ जगदम्बाके भरोसे तुरंत धन देकर उसकी विदाईकी व्यवस्था कर दी। सुदर्शन वहाँसे चल पड़े। पीछेसे महाराज सुबाहु भी एक विशाल सेना लेकर साथ हो लिये। उस समय

सुदर्शन विवाह-संस्कारसे संस्कृत होकर निर्भीकतापूर्वक मार्गसे जा रहे थे। सुदर्शनमें भी असीम शक्ति थी। अपनी पत्नीके साथ वे रथपर बैठे थे। उनका रथ अन्य रथोंसे घिरा हुआ था। जाते समय सुदर्शनकी दृष्टि राजाओंकी सेनापर पड़ी। सुबाहुके नेत्र भी उन सेनाओंपर पड़े। देखकर उनके मनमें बड़ी घबराहट उत्पन्न हो गयी। किंतु सुदर्शन ज्यों-के-त्यों प्रसन्न रहे। उन्होंने विधिपूर्वक भगवती जगदम्बिकाका ध्यान किया और वे सर्वतोभावसे उनके शरणापन्न हो गये। एक अक्षरवाला कामबीज-मन्त्रोंमें अपना सर्वोत्तम स्थान रखता है। सुदर्शनने इसी मन्त्रका जप आरम्भ कर दिया और उसके प्रभावसे वे नवविवाहिता पत्नीके साथ निर्भय बने रहे। उनका शोक-भय सदाके लिये शान्त हो गया था। इतनेमें विरोधी सभी नरेश अत्यन्त कोलाहल करके राजकुमारीको छीननेके विचारसे सेनासहित आगे उमड़ आये। काशीनरेश महाराज सुबाहु उन्हें देखकर उनपर प्रहारके लिये तैयार हो गये। किंतु विजयाभिलाषी सुदर्शनने उन्हें इस कार्यसे रोक दिया। फिर भी, एक-दूसरेको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले राजाओंमें और सुबाहुमें युद्धकी योजना बन गयी। शङ्ख, नगारे और भेरियाँ बज उठीं। शत्रुजित् अपने सैन्यबलसे सम्पन्न होकर सुदर्शनको मारनेके लिये समराङ्गणमें उपस्थित हुआ। उसका नाना युधाजित् सहायक बनकर कवच पहने हुए खड़ा था। तदनन्तर युधाजित् आगे बढ़कर सुदर्शनके पास जा पहुँचा। शत्रुजित् सुदर्शनका भाई था। फिर भी सुदर्शनको मारनेके लिये वह भी युधाजित्के साथ वहाँ पहुँच गया। क्रोधके वशीभूत होकर वे तीनों तीक्ष्ण बाणोंसे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे! घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। तुरंत काशीनरेश महाराज सुबाहु भी अपने जामाता सुदर्शनकी सहायता करनेके लिये विशाल सेनाके साथ वहाँ पहुँच गये। इस प्रकार रोमाञ्चकारी भीषण संग्राम होने लगा। इतनेमें अकस्मात् सिंहपर बैठी हुई भगवती दुर्गा वहाँ साक्षात् प्रकट हो गयीं। उनकी भुजाएँ भाँति-भाँतिके आयुधोंसे विभूषित थीं। उनका मनोहर विग्रह उत्तम आभूषणोंसे अलंकृत था। वे दिव्य वस्त्र पहने हुई थीं। मदारके फूलोंकी माला गलेमें शोभा पा रही थी। उस समय भगवतीको देखकर वे सब-के-सब नरेश अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। कहने लगे—'सिंहपर बैठी हुई ये देवी कौन हैं और कहाँसे प्रकट हो आयी हैं?' सुदर्शनने भगवतीके दर्शन पाकर महाराज सुबाहुसे कहा—'राजन्! देखिये, ये परम आराध्या मा भगवती मुझपर कृपा करनेके लिये यहाँ पधारी हैं। इनकी झाँकी बड़ी अनुपम है। ये अत्यन्त दयालु हैं। महाराज! मैं इनकी कृपासे निर्भय हूँ।' तत्पश्चात् सुदर्शन और सुबाहु—दोनों निर्भय होकर प्रसन्नवदना भगवती दुर्गाका दर्शन करके प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम करने लगे। सिंह बड़े जोरसे गर्ज उठा। उसकी गर्जनासे सेनाके हाथी काँपने लगे। भीषण आँधी चलने लगी। दिशाएँ अत्यन्त भयंकर हो गयीं। तब सुदर्शनने अपने सेनाध्यक्षसे कहा—'उस मार्गसे आगे बढ़ो, जहाँ राजालोग डटे हैं। वे दुराचारी नरेश कुपित होनेपर भी अब मेरा क्या कर सकेंगे? क्योंकि भगवती जगदम्बा हमपर कृपा करनेके लिये यहाँ स्वयं पधार गयी हैं। यद्यपि विपक्षी नरेशोंसे मार्गका कोना-कोना भरा है, तब भी निर्भीक होकर हमें उसी मार्गसे चलना

चाहिये। मैंने महादेवीका स्मरण किया है और वे यहाँ स्वयं विराज रही हैं। फिर कोई भी भय नहीं है।'

सुदर्शनकी उपर्युक्त बात सुनकर सेनाध्यक्ष उसी मार्गसे आगे बढ़ा। तब युधाजित् अत्यन्त कुपित होकर अपने पक्षके राजाओंसे कहने लगा—'अरे! तुमलोग भयसे घबराकर क्यों खड़े हो? राजकुमारीके साथ ही इस सुदर्शनको मार डालो। इस निर्बल छोकरेने हम बलशाली वीरोंका बड़ा अपमान किया है और अब कन्याको लेकर निर्भयतापूर्वक चला जा रहा है! सिंहपर बैठी हुई एक स्त्रीको देखकर क्या तुमलोग डर गये? महाभागो! हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। सावधान होकर इस राजकुमारको मार डालनेका यत्न कीजिये। इसको मारनेके पश्चात् सुन्दर भूषणोंसे विभूषित इस कन्याको छीन लिया जायगा। सिंहके भागको पानेका सियार कैसे अधिकारी हो सकता है?'

इस प्रकार कहकर युधाजित्ने सेना एकत्रित की। वह क्रोधसे तमतमा उठा था। शत्रुजित्को साथ लेकर वह युद्ध करनेके लिये सामने उपस्थित हो गया। तुरंत बहुत-से तीक्ष्ण बाण धनुषपर चढ़ाये और धनुषको कानतक खींचकर उसने बाणोंको छोड़ना आरम्भ कर दिया। युधाजित्की बुद्धि बड़ी ही खोटी थी। मार डालनेकी इच्छासे सुदर्शनपर वह भीषण बाण-वर्षा करने लगा। सुदर्शन भी आते ही उन बाणोंको अपने बाणोंसे काटनेमें संलग्न हो गये। जब इस प्रकार युद्ध होने लगा, तब भगवती दुर्गा क्रोधसे तमक उठीं। उन्होंने युधाजित्को लक्ष्य करके बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। उस समय भगवती जगदम्बा अनेक रूपोंसे विराजमान थीं। उन्होंने अपने हाथोंमें तरह-तरहके आयुध धारण कर रखे थे। अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ। कुछ ही देरमें युधाजित् और शत्रुजित् दोनों रथसे गिर पड़े और उनकी

जीवन-लीला समाप्त हो गयी। युधाजित् और शत्रुजित्—दोनों जब युद्धमें काम आ गये, तब अन्य सभी राजाओंको महान् आश्चर्य हुआ। उन दोनोंका निधन देखकर सुबाहुके आनन्दकी सीमा न रही। फिर दुःख दूर करनेवाली भगवती दुर्गाको प्रसन्न करनेके लिये महाराज सुबाहु उनकी स्तुति करने लगे।

सुबाहु बोले—जगत्को धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। भगवती शिवाको निरन्तर नमस्कार है। भगवती दुर्गा सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर देती हैं। उन्हें बार-बार नमस्कार है। कल्याणमयी माता! शिवा, शान्ति और विद्या—ये सभी तुम्हारे नाम हैं। जीवको मुक्ति देना तुम्हारा स्वभाव है। तुम जगत्में व्याप्त हो और सारे संसारका सृजन तुम्हारे हाथका खेल है। तुम्हें बार-बार नमस्कार है। भगवती जगन्माता! मैं अपनी बुद्धिसे विचार करनेपर

भी तुम्हारी गतिको नहीं जान पाता। निश्चय ही तुम निर्गुणा हो और मैं एक सगुण जीव हूँ। तुम परमा शक्ति हो। भक्तोंका संकट टालना तुम्हारा स्वभाव ही है। आज तुम्हारा स्वभाव प्रकट हो गया। मैं क्या स्तुति करूँ? तुम भगवती सरस्वती हो। तुम बुद्धिरूपसे सबके भीतर विराजमान हो। सम्पूर्ण प्राणियोंमें विद्यमान मति, गति, बुद्धि और विद्या— सब तुम्हारे ही रूप हैं। मैं तुम्हारी क्या स्तुति करूँ, जब कि सबके मनोंपर तुम्हारा ही शासन विद्यमान है। तुम सर्वव्यापक हो। अतः तुम्हारी क्या स्तुति की जाय? माता! ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये प्रधान देवता माने जाते हैं। ये सभी तुम्हारी निरन्तर स्तुति गाते रहे, फिर भी तुम्हारा पार नहीं पा सके। फिर मन्दबुद्धि, अप्रसिद्ध, अवगुणोंसे ओत-प्रोत मैं एक तुच्छ प्राणी कैसे तुम्हारे चरित्रका वर्णन कर सकता हूँ? अहा! संत पुरुषोंकी संगति क्या नहीं कर डालती; क्योंकि इससे चित्तके विकार दूर हो ही जाते हैं। मेरे जामाता सुदर्शन तुम्हारे भक्त हैं और उनके सङ्गके प्रभावसे आज मुझे भी तुम्हारे दिव्य दर्शन प्राप्त हो गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्रसहित सभी देवता और मुनि रहस्योंके पूर्ण जानकार हैं। माता! वे भी तुम्हारे जिस दुर्लभ दर्शनके लिये लालायित रहते हैं, वही दर्शन शम, दम और समाधिसे शून्य मुझ साधारण व्यक्तिको सुलभ हो गया। भवानी! कहाँ तो मैं प्रचण्ड मूर्ख और कहाँ तुरंत संसारसे मुक्त कर देनेवाली अद्वितीय औषध तुम्हारी झाँकी। देवी! तुमसे कोई बात छिपी नहीं है—सबके सभी भाव तुम्हें ज्ञात हैं। देवगण सदा तुम्हारी आराधना करते हैं। भक्तोंपर दया करना तुम्हारा स्वभाव है, इसीसे मुझे भी यह अवसर सुलभ हो गया। देवी! मैं तुम्हारे चरित्रका क्या बखान करूँ, जब कि ऐसी कठिन परिस्थितिमें तुमने इस सुदर्शनकी रक्षा कर ली। सुदर्शनके वे दोनों शत्रु बड़े ही पराक्रमी थे। तुमने तुरंत उनके प्राण हर लिये। भक्तोंपर दया करनेवाला तुम्हारा यह चरित्र परम पावन है। देवी! विचार करनेपर तुम्हारे लिये यह कोई अद्भुत कार्य नहीं जान पड़ता; क्योंकि चराचर अखिल जगत्‌का पालन तो तुम करती ही हो। अतएव इस समय दयालुतावश तुमने शत्रुको मारकर सुदर्शनको बचा लिया है। भगवती! तुमने सेवापरायण भक्तके यशको अत्यन्त उज्ज्वल बनानेके लिये ही यह चरित्र रचा है। अन्यथा, मेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करके यह अयोग्य सुदर्शन युद्धमें कैसे सफलता प्राप्त कर सकता था। माता! तुम अपने भक्तको जन्म, मरण आदिके भयसे मुक्त कर देनेमें समर्थ हो, फिर उसके लौकिक मनोरथ पूर्ण कर देनेमें कौन-सी बड़ी बात है। भक्तजन तुम्हें असीम पाप और पुण्यसे रहित, सगुण एवं निर्गुण बताते हैं। समस्त भूमण्डलपर शासन करनेवाली देवी! निश्चय ही तुम्हारे दर्शन पाकर मैं बड़भागी, कृतकृत्य और सफल-जीवन बन गया। माता! न मैं तुम्हारा बीजमन्त्र जानता हूँ और न भजन ही। आज तुम्हारा प्रभाव सामने प्रकट होनेसे मैं इससे पूर्ण परिचित हो गया।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा प्रसन्न हो गयीं। तब उन्होंने महाराज सुबाहुसे कहा—'सुव्रत! वर माँगो।' (अध्याय २२-२३)

☆

# सुबाहुको देवीका वरदान और आदेश, सुदर्शनके द्वारा देवीकी स्तुति और देवीका वरदान, राजाओंके पूछनेपर सुदर्शनके द्वारा देवीकी महिमाका वर्णन, सुदर्शनके द्वारा अयोध्यापुरीमें देवीकी स्थापना, राज्याभिषेक और सुबाहुके द्वारा काशीमें दुर्गाजीकी प्रतिष्ठा

व्यासजी कहते हैं—उस समय भगवती जगदम्बाके वचन सुनकर महाराज सुबाहु भक्ति-भावसे सम्पन्न होकर कहने लगे।

सुबाहु बोले—एक ओर भूलोक एवं देवलोकका राज्य रख दिया जाय और एक ओर तुम्हारे पुण्य-दर्शन तो वह राज्य तुम्हारे दर्शनकी तुलना कभी नहीं कर सकता। तुम्हारे दर्शनके साथ जिसकी तुलना की जाय, ऐसा कोई भी पदार्थ त्रिलोकीमें नहीं है। देवी ! मैं क्या वर माँगूँ। मेरा जगत्में जन्म लेना सफल हो गया। माता ! मैं यही चाहता हूँ और इसी अभिलषित वरकी याचना भी करता हूँ कि तुम्हारी अविचल भक्ति मेरे हृदयमें निरन्तर बनी रहे। माता ! अब तुम मेरी इस काशी नगरीमें सदा विराजनेकी कृपा करो। भगवती 'दुर्गा' नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि हो। यहाँ तुम शक्तिरूपसे तो विराजमान हो ही। तुम्हें इस काशीपुरीकी निरन्तर रक्षा करनी चाहिये। जिस प्रकार शत्रुओंके समूहसे तुमने सुदर्शनकी रक्षा की है, माता ! वैसे ही तुम वाराणसीकी भी रक्षा करती रहो। भगवती दुर्गे ! तुम कृपाकी समुद्र हो। काशीपुरी जबतक धराधामपर रहे, तबतक तुम्हारा यहाँ रहना परम आवश्यक है। बस, मुझे यही वर देनेकी तुम कृपा करो। इसके सिवा दूसरे किस वरकी मैं याचना करूँ ?

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार प्रार्थना करके महाराज सुबाहु दुर्गतिको दूर भगानेवाली भगवती दुर्गाके सामने बैठ गये। तब जगदम्बा उनसे कहने लगीं।

भगवती दुर्गाने कहा—राजन् ! काशीपुरीमें मेरा निरन्तर निवास होगा। सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिये जबतक पृथ्वी रहेगी, तबतक मैं वहाँ रहूँगी।

इसके बाद सुदर्शन सामने आया। उसका सर्वाङ्ग आनन्दसे विह्वल हो रहा था। उत्तम भक्तिके साथ भगवती जगदम्बाको प्रणाम करके उसने उनकी स्तुति आरम्भ कर दी—'अहो, मैं तुम्हारी कृपाकी क्या महिमा गाऊँ, मेरे-जैसे सर्वथा भक्तिशून्यकी भी तुमने आश्चर्यरूपसे रक्षा कर ली। सारा जगत् तुम्हारी शक्तिकी कृपासे विद्यमान है। जिसमें कुछ भी भक्ति नहीं है, उसका भी पालन करना तुम्हारा स्वभाव बना हुआ है। देवी ! सुना जाता है, तुम सारे प्रपञ्चमय जगत्की सृष्टि करती हो। सृष्टि हो जानेपर उसका पालन करना और संहारका समय उपस्थित होनेपर नाश कर डालना भी

तुम्हारा ही काम है। तब तुमने मेरी रक्षा की है—इसमें कौन-सी विचित्र बात है। देवी! आज्ञा दो, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ और कहाँ जाऊँ? शीघ्र ही आदेश देनेकी कृपा करो। माता! अब तुम्हारी आज्ञापर मेरा कहीं जाना, रहना और विहार करना निर्भर है।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार सुदर्शनने जब प्रार्थना की, तब भगवती जगदम्बाने दयाके वशीभूत होकर उससे कहा—'महाभाग! तुम अयोध्या जाओ और कुलकी मर्यादाके अनुसार राज्य करना आरम्भ कर दो। राजेन्द्र! तुम सदा मुझे याद रखना और यत्नपूर्वक मेरी पूजा भी करते रहना। मैं तुम्हारा कल्याण करूँगी और तुम्हारे राज्यको सदा स्थिर रखूँगी। अष्टमी, चतुर्दशी तथा विशेष करके नवमीके दिन विधिके साथ मेरी पूजा करना परम आवश्यक है। अनघ! तुम्हें चाहिये कि नगरमें मेरी प्रतिमा स्थापित करा दो और भक्तिपूर्वक यत्नके साथ तीनों समय उसकी पूजा होती रहे। शरद् ऋतुमें अर्थात् आश्विनमें नवरात्रकी विधिसे मेरी विशिष्ट पूजा होनी चाहिये। भक्तिपूर्वक पूजा की जाय। महाराज! चैत्र, आश्विन, आषाढ़ और माघमें नवरात्रके अवसरपर मेरा महोत्सव मनाना चाहिये। उस समय विशेषरूपसे पूजन होना भी आवश्यक है। राजेन्द्र! विज्ञ पुरुष कृष्णपक्षकी चतुर्दशी और अष्टमीको भक्तिपूर्वक निरन्तर मेरी पूजा करते रहें।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार आदेश देकर दुःखोंको दूर करनेवाली भगवती दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं। उस समय सुदर्शनने अत्यन्त नम्र होकर बड़े विस्तारके साथ उनकी स्तुति की थी। भगवती वहाँसे पधार गयीं—यह देखकर उपस्थित वे सभी नरेश सुदर्शनके पास आये और उसे प्रणाम करने लगे, मानो देवता इन्द्रको प्रणाम करनेमें लगे हों। सुबाहुने भी सुदर्शनको प्रणाम किया और वे फिर प्रसन्नतापूर्वक सामने खड़े हो गये। फिर सभी राजालोग अयोध्या-नरेश सुदर्शनसे कहने लगे—'महाराज! आप हमारे शासक एवं स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं। आप अयोध्यामें राज्य करें। हमारी रक्षा आपपर निर्भर है। महाराज! आपकी ही कृपासे जगदीश्वरी भगवती जगदम्बाके दर्शन हमें प्राप्त हुए हैं। ये कल्याणमयी देवी आदिशक्ति हैं। इनकी कृपासे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फल सुलभ हो जाते हैं। आप बड़े पुण्यात्मा एवं यशस्वी हैं। धरातलपर आपका जन्म लेना सफल हो गया; क्योंकि आपके लिये ही सनातनी देवी दुर्गा प्रकट हुई हैं।

'राजेन्द्र! हम सब लोग भगवती चण्डिकाके प्रभावसे अपरिचित थे; क्योंकि हमारा अन्तःकरण तमोगुणसे आच्छन्न है तथा हम सदा ही मायासे मोहित हैं। धन, स्त्री और पुत्रके चिन्तनमें ही हम निरन्तर व्यस्त हैं। काम-क्रोधरूपी मछलियोंसे परिपूर्ण भयंकर अथाह समुद्रमें बार-बार हमें गोता खाना पड़ता है। महाभाग! आप पूर्ण ज्ञानी हैं। आपकी बुद्धि बड़ी विलक्षण है। हम आपसे जानना चाहते हैं कि ये शक्ति कौन थीं, कहाँसे प्रकट हुईं और इनका क्या प्रभाव है? हमें बतानेकी कृपा कीजिये। आप नौका बनकर संसारसागरसे हमारा उद्धार कीजिये; क्योंकि दया करना संतका स्वभाव ही है। अतएव रघुकुलको सुशोभित करनेवाले राजन्! आप भगवतीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करनेकी कृपा करें। राजेन्द्र! देवीकी जो महिमा है, उनका जो स्वरूप है तथा जैसे वे प्रकट होती हैं, यह सब हम सुनना
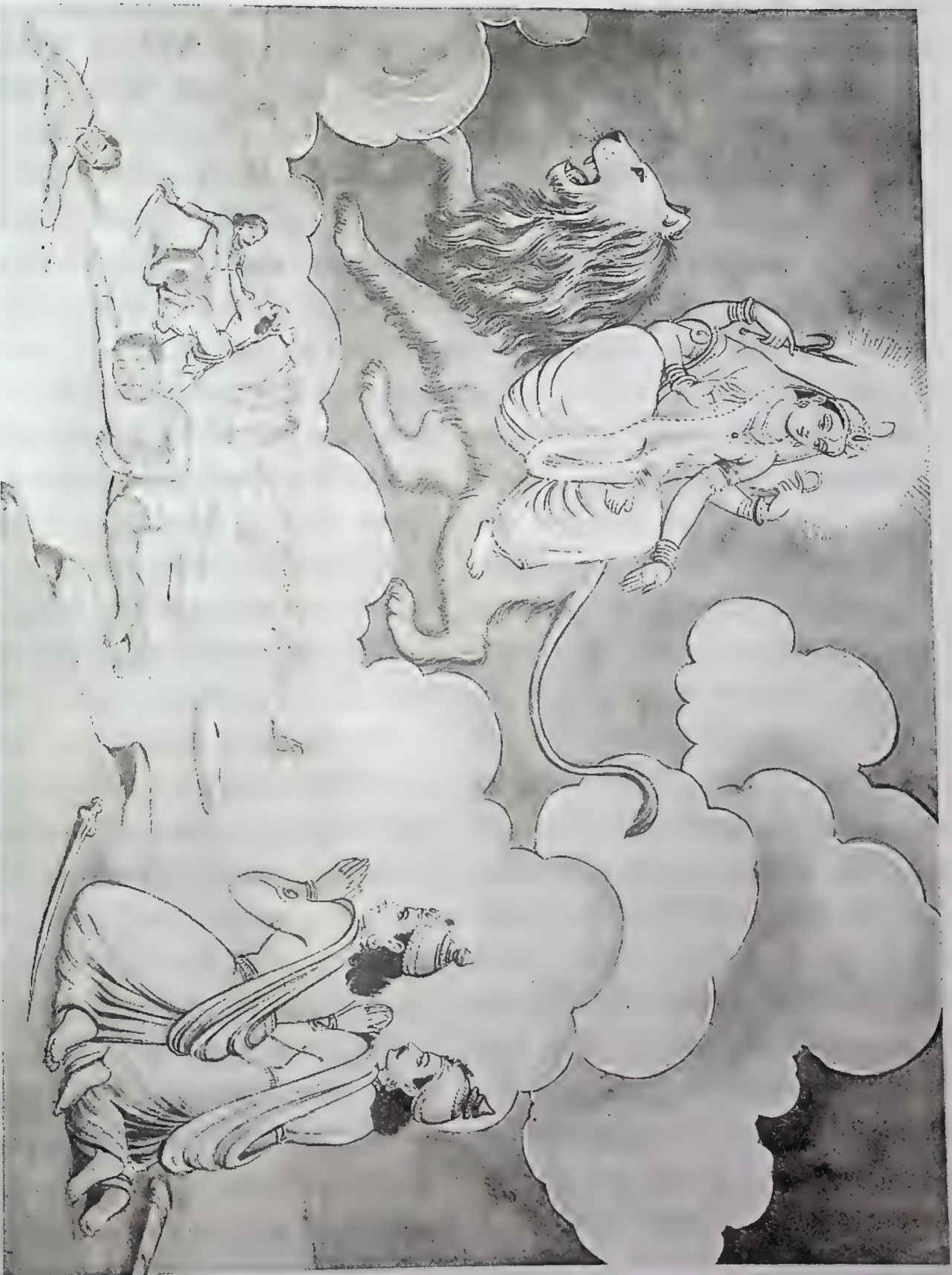
सुदर्शनको देवीके दर्शन

चाहते हैं; आप बतानेकी कृपा कीजिये।'

व्यासजी कहते हैं—राजाओंके यों पूछनेपर ध्रुवसंधिकुमार राजा सुदर्शन मन-ही-मन भगवतीका स्मरण करके अत्यन्त प्रसन्नताके साथ उनसे कहने लगे।

सुदर्शनने कहा—राजाओ ! उन भगवती जगदम्बाके विषयमें मैं क्या कह सकता हूँ, उनके उत्तम चरित्रको तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तथा ब्रह्मा प्रभृति भी जाननेमें असमर्थ हैं। राजाओ ! भगवती आदिस्वरूपा हैं। वे आदि-शक्ति महालक्ष्मीरूपसे विराजमान होकर सर्वत्र सुपूजित होती हैं। ये ही भगवती सात्त्विक रूप धारण करके जगत्‌के पालनमें तत्पर रहती हैं। इनका जो रजोगुणी रूप है, उससे संसारकी सृष्टि होती है। सात्त्विक रूपसे पालन होता है और तामसी रूपसे संहार-लीला सम्पन्न होती है। यों भगवतीको त्रिगुणात्मिका माना गया है। परमशक्ति भगवतीका निर्गुण रूप भी है, जिससे सम्पूर्ण कामनाएँ सुलभ हो जाती हैं। नृपवरो ! ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंकी भी भगवती आदिकारण हैं। राजाओ ! भगवतीके निर्गुण रूपको जाननेके लिये योगीगण सब तरहसे यत्न करते रहते हैं, फिर भी उन्हें जान नहीं सकते। अतः विज्ञ पुरुष भगवतीके सगुण रूपका ही सदा सुखपूर्वक आराधन और चिन्तन करते हैं।

राजाओंने कहा—आप तो बचपनसे ही वनमें हैं। आप भयसे अत्यन्त घबरा गये थे, फिर परमशक्ति भगवती जगदम्बाको आप कैसे जान गये ? आपने कैसे उनकी उपासना एवं पूजा की, जो भगवती तुरंत प्रसन्न होकर आपकी सहायता करनेमें संलग्न हो गयीं ?

सुदर्शन बोले—राजाओ ! मैं बालक था, तभी भगवतीका कामबीज—'क्लीं' यह मन्त्र जो सर्वसम्मत-श्रेष्ठ है, मुझे मिल गया। मैं निरन्तर उसके जपके साथ ही भगवतीका स्मरण किया करता हूँ। ऋषियोंने कल्याणमयी भगवती जगदम्बाके विषयमें मुझे जानकारी प्राप्त करायी। तबसे उत्तम भक्तिके साथ मैं दिन-रात उन देवीको स्मरण करता रहता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—सुदर्शनकी बात सुनकर वे सभी राजा भक्तिभावसे ओत-प्रोत हो गये। उनके मनमें यह बात जँच गयी कि भगवतीसे बढ़कर दूसरी कोई शक्ति नहीं है। तत्पश्चात् वे अपने-अपने स्थानोंको चले गये। महाराज सुबाहु सुदर्शनसे आज्ञा लेकर काशीको प्रस्थित हुए। धर्मात्मा सुदर्शनने भी अयोध्याकी यात्रा की। राजा शत्रुजित् संग्राममें काम आ गया और सुदर्शनको विजयश्री प्राप्त हुई है—यह समाचार सुनकर मन्त्रियोंके मनमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी। अयोध्या नगरके निवासियोंने जब सुना कि राजा सुदर्शन आ रहे हैं, तब भेंटकी सामग्री लेकर अगवानी करनेके लिये वे सुदर्शनके सामने चल पड़े। इसी प्रकार सारा प्रजामण्डल ध्रुवसंधिकुमार सुदर्शनको राजा मानकर आनन्दमें विह्वल हो उठा और भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री लेकर सभी आगे बढ़े। तदनन्तर सुदर्शन अपनी पत्नी तथा माताके साथ अयोध्या पहुँचे। सभीका यथोचित सम्मान करके उन्होंने राजभवनमें पैर रखा। उस समय वन्दीजन सुदर्शनकी प्रशंसा गा रहे थे, मन्त्रियोंने अभिवादन आरम्भ कर दिया था और कन्याएँ फूलों एवं लाजाओंकी वर्षा कर रही थीं।

व्यासजी कहते हैं—अयोध्या जानेपर सर्वप्रथम महाराज सुदर्शन अपने सुहृदोंके साथ राजभवनमें गये। वहाँ शत्रुजित्‌की माता शोकमें डूब रही थी। उन्होंने उसे प्रणाम करके कहा—

'माताजी ! मैं तुम्हारे चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे पुत्र शत्रुजित् एवं पिता
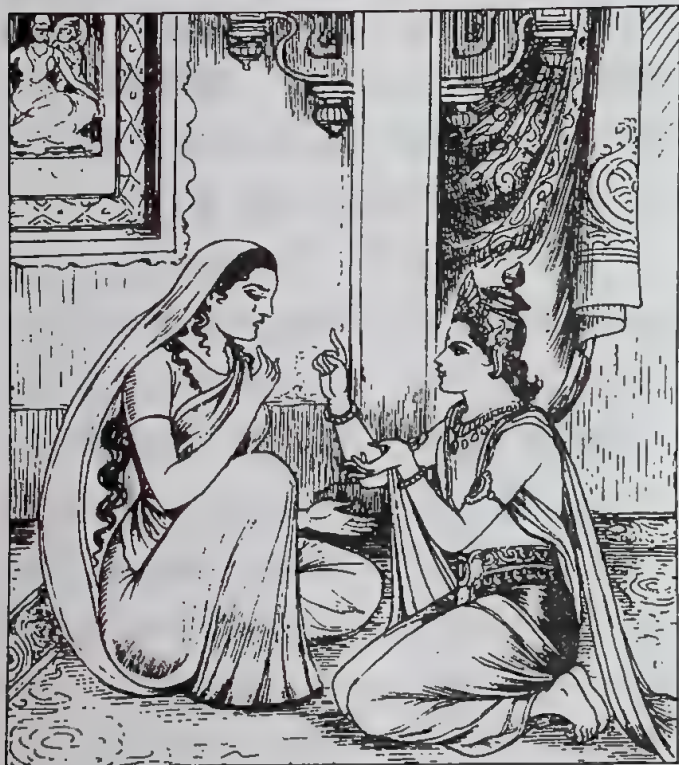
युधाजित् संग्राममें मेरे हाथों नहीं मारे गये हैं। वे युद्धभूमिमें पहुँचे ही थे कि भगवती दुर्गाने उनके प्राण हर लिये। इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं है। होनी किसीके टाले नहीं टलती, वह होकर ही रहती है। मानिनी ! अब तुम्हें मरे हुए पुत्रके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव अपने किये हुए पूर्वकर्मके अधीन होकर सुख-दुःखरूपी भोग भोगता रहता है। धर्मके रहस्यको जाननेवाली माताजी ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। जैसे मनोरमा मेरी माता है, ठीक वैसे ही तुम भी हो। मैं तुम दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं मानता। पूर्वजन्ममें जो अच्छा और बुरा कर्म किया जाता है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। अतएव सुख-दुःखके विषयमें तुम्हें कभी क्षोभ नहीं करना चाहिये। दुःखमें पड़नेपर अधिक-से-अधिक दुःख तथा सुखकी घड़ीमें सुख देख ले; किंतु सुख और दुःखको शत्रुके समान समझकर इनमें अपनी आत्माको न फँसाये। ये सब प्रारब्धके अनुसार होते हैं। इनपर आत्माका किंचिन्मात्र अधिकार नहीं है, न तो कोई सम्बन्ध ही है। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुष शोकसे आत्माको नहीं सुखाते। जिस प्रकार कठपुतली नट आदि जो नचानेवाले होते हैं, उनके संकेतके अनुसार नाचती है, वैसे ही जीवको भी अपने किये हुए कर्मके वशीभूत होकर रहना पड़ता है।

'माताजी ! वन जानेपर भी मेरे मनमें दुःखका समावेश नहीं हुआ। अपना किया हुआ कर्म अवश्य भोगना है—इसकी स्मृति सदा जाग्रत् रही। अब भी मैं यही जानता हूँ। मेरे नानाकी मृत्यु हो गयी। माताकी घबराहटका पार नहीं था। अत्यन्त भयभीत होनेके कारण मुझे लेकर वह एक घोर वनमें चली गयी। रास्तेमें चोरोंने उसपर आक्रमण कर दिया। शरीरपर साड़ीतक नहीं छोड़ी। रास्तेके काम आनेवाला सारा सामान छिन गया। मैं उसका पुत्र अभी बालक ही था, अतः वह बिलकुल निराश्रय थी। उस समय मेरी माँ मुझे लेकर भरद्वाज मुनिके आश्रमपर चली गयी। यह विदल्ल और एक अबला दासी—ये दो व्यक्ति साथ रहे। वहाँ मुनि और उनकी पत्नियाँ—सभी बड़े दयालु थे। उन्होंने नीवार (तिन्नीके चावल) और फलद्वारा भलीभाँति हमारा भरण-पोषण किया। हम तीनों आदमी वहाँ ठहर गये। पर वह स्थिति भी मेरे लिये दुःखदायिनी नहीं हुई। आज राज्य-धन मिलनेपर भी मैं सुखमें नहीं फूलता। मेरे चित्तमें कभी वैर और मत्सरताका प्रवेश नहीं हो पाता। परम तपस्विनी माताजी ! राजसी भोजन करनेकी अपेक्षा साँवा अथवा तीनीके चावलका भोजनमें उपयोग कर लेना उत्तम है; क्योंकि राजस अन्न खानेवाला नरकमें

जा सकता है, किंतु नीवार खानेवालेको कभी नरकका द्वार नहीं देखना पड़ता; अतएव विज्ञ पुरुषको चाहिये कि इन्द्रियोंको वशमें करके सदा धर्मका पालन करे, जिससे नरककी यातना न भोगनी पड़े। माताजी ! यह भारतवर्ष पुण्य-भूमि है। इसमें आकर मनुष्यका जन्म पाना बड़ा ही दुर्लभ है। आहार-विहार आदिके सुख तो निश्चय ही सभी योनियोंमें मिल सकते हैं। ऐसे अलभ्य मानवदेहको पाकर धर्मका संचय करना चाहिये, जो मनुष्योंको स्वर्ग और मोक्षतक देनेवाला है। दूसरी योनियोंमें यह सुयोग मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।'

व्यासजी कहते हैं—सुदर्शनके यों कहनेपर लीलावती लज्जित-सी हो गयी। पुत्र-शोकका परित्याग करके आँखोंसे आँसू बहाती हुई वह सुदर्शनसे कहने लगी—'पुत्र ! मैं बड़ी अपराधिनी हूँ। मुझे ऐसी दशा प्राप्त होनेमें मेरा पिता युधाजित् ही कारण बना। उसीने तुम्हारे नानाको मारकर राज्य छीन लिया था। पुत्र ! मैं उस समय अपने पिता युधाजित् और पुत्र शत्रुजित् दोनोंको रोकनेमें असमर्थ थी। जो कुछ घटना घटी, उसका कर्ता मेरा पिता ही था। अतः उसमें मेरा अपराध भी नहीं है। उन्होंने अपने किये कर्मका फल पाया, जिससे उन्हें मृत्युके मुखमें जाना पड़ा। उनकी मृत्युमें तुम कारण नहीं हो। मुझे उस पुत्रकी चिन्ता नहीं है। मुझे तो निरन्तर चिन्ता उसके बुरे कर्मोंकी लगी हुई है। पुत्र ! तुम और मेरी बहन मनोरमा सदा कल्याणके भागी बने रहें। बेटा ! तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी क्रोध अथवा शोक नहीं है। महाभाग ! अब तुम राज्य करो। प्रजाकी रक्षा परम आवश्यक है। सुव्रत ! भगवती जगदम्बाकी कृपासे तुम्हें यह निष्कण्टक राज्य मिल गया है।'

विमाता लीलावतीकी यह बात सुनकर राजकुमार सुदर्शनने उसके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तदनन्तर वे अपने भव्य भवनमें गये, जहाँ पहलेसे ही मनोरमा जाकर ठहरी थी। वहाँ जाकर सम्पूर्ण मन्त्रियों और ज्यौतिषियोंको बुलाया। उत्तम दिन और शुभ मुहूर्त बतानेकी प्रार्थना की। सर्वप्रथम सुवर्णका बहुत सुन्दर सिंहासन बनवाया और कहा कि देवीको सिंहासनपर पधराकर मैं सदा उनकी पूजा करूँगा। ये भगवती धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों फल प्रदान करती हैं। इन्हें आसनपर पधरानेके पश्चात् मैं राज्य करूँगा, जिस प्रकार राम प्रभृति राजाओंने किया है। नगरके सभी लोग इन कल्याणमयी भगवती जगदम्बाकी उपासना करें। इन आदरणीया आदिशक्तिकी आराधना करनेसे काम, अर्थ और सिद्धि—सभी सुलभ हो जाते हैं।

सुदर्शनके यों कहनेपर मन्त्रीगण राजाज्ञाके पालनमें तत्पर हो गये। उन्होंने शिल्पियोंद्वारा अत्यन्त भव्य भवनका निर्माण करवाया। भगवतीकी सुन्दर प्रतिमा बनवायी। तब राजा सुदर्शनने उत्तम दिन और मुहूर्त शोधवाकर उस समय वेदके पारगामी ब्राह्मणोंको बुलाया और विधि तथा श्रद्धापूर्वक देवीकी स्थापना की। राजन् ! उस अवसरपर महान् उत्सव मनाया गया। अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे। ब्राह्मणोंने वेदध्वनि आरम्भ कर दी। तरह-तरहके गाने होने लगे।

व्यासजी कहते हैं—राजा सुदर्शनने वेदवादी ब्राह्मणोंद्वारा कल्याणस्वरूपिणी भगवतीकी विधिवत् स्थापना कराके विधि-पूर्वक भाँति-भाँतिसे उनकी पूजा की। उन्होंने

भगवतीकी अर्चा करनेके पश्चात् अपनी पैतृक सम्पत्ति एवं राज्यपर अधिकार स्वीकार किया। तभीसे भगवती जगदम्बिका कोसल देशमें विराजने लगीं। शासन आरम्भ होनेपर राजा सुदर्शनने छोटे-छोटे धार्मिक राजाओंको अपने अधीन कर लिया। धर्मकी मर्यादाका पालन करते हुए वे विजय प्राप्त करते थे। जिस प्रकार रामराज्यमें हुआ तथा जैसे महाराज दिलीपकी गद्दीपर बैठनेपर रघुने सारी प्रजाको सुख पहुँचाया और मर्यादाकी रक्षा की, वैसा ही सुदर्शनने भी किया। उस समय वर्णाश्रम-धर्मके चारों चरण विद्यमान थे। पृथ्वीपर कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जिसका मन पापमें लगता हो। कोसल देशके सभी राजाओंने प्रत्येक गाँवमें मन्दिर बनवाये और देवीको स्थापित करके पूजा प्रारम्भ कर दी।

उधर महाराज सुबाहुने काशीमें भगवती दुर्गाकी श्रेष्ठ प्रतिमा बनवाकर उसे मन्दिरमें भक्तिपूर्वक पधराया। सब लोग प्रेम और भक्तिमें निमग्न होकर विधिके साथ भगवती दुर्गाकी पूजा करने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शंकरको पूजते थे। राजेन्द्र ! वे ही भगवती दुर्गा धरातलपर देश-देशमें विख्यात हो गयीं। उनपर लोगोंकी श्रद्धा बढ़ने लगी। उस समय भारतवर्षमें सब जगह सभी वर्णोंके लोग भवानी देवीकी उपासना करने लगे। राजन् ! शक्तिकी उपासनामें सबकी श्रद्धा हो गयी। उन्हें सभी मानने लगे। वेद-वर्णित स्तोत्रोंके द्वारा जप और ध्यान करनेमें लोग निरत हो गये। भक्ति-भाव रखनेवाले पुरुषोंने सभी नवरात्रोंमें विधिके साथ देवीका अर्चन, हवन और यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। (अध्याय २४-२५)

☆

## व्यासजीद्वारा नवरात्रव्रत-विधिका वर्णन तथा पूजामें निषिद्ध कन्याओंका विवेचन, सुशील वैश्यको देवीकी प्रसन्नता-प्राप्ति

जनमेजयने पूछा—द्विजवर ! नवरात्र आनेपर क्या करना चाहिये ? विशेष करके शरत्कालके नवरात्रका क्या विधान है ? इसे विधिपूर्वक बतानेकी कृपा करें। विप्रवर ! आपकी बुद्धि बड़ी विलक्षण है। मुझे विस्तारके साथ यह बतलाइये कि नवरात्र-व्रत करनेका क्या फल है और किस विधिका पालन करना चाहिये ?

व्यासजी बोले—राजन् ! कल्याणप्रद नवरात्र-व्रतके विषयमें कहता हूँ, सुनो ! शरत्कालके नवरात्रमें जैसे विशेषरूपसे विधि-पूर्वक भगवतीकी उपासना करनी चाहिये, वैसे ही वसन्त ऋतुके नवरात्रमें भी प्रेमपूर्वक पूजा करनी चाहिये। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये शरद् और वसन्त—ये दोनों ऋतुएँ यमदंष्ट्र नामसे कही गयी हैं। ये दोनों ऋतुएँ जगत्के प्राणियोंको महान् कष्टप्रद हैं। अतएव कल्याणकामी पुरुष यत्नपूर्वक दुर्गार्चनमें तत्पर हो जाय। वसन्त और शरद्—ये दोनों ही अत्यन्त भयंकर ऋतुएँ मनुष्योंको रोगी बनानेमें कुशल हैं। इनके प्रभावसे बहुत-से प्राणी प्राणोंसे हाथ धो बैठते हैं। अतएव इन ऋतुओंके आनेपर पण्डितजनको चाहिये कि भगवती चण्डीकी आराधनामें संलग्न हो जायँ।

राजन् ! चैत्र और आश्विनके पवित्र महीनोंमें भक्तिपूर्वक यह पूजा होनी चाहिये।

अमावस्याके दिन ही उत्तम सामग्री एकत्रित कर लेनी चाहिये। उस दिन एक ही बार हविष्यान्नका भोजन करे। किसी समतल भूमिपर मण्डप बनवाये। मण्डप सोलह[1] हाथके विस्तारमें बनना चाहिये। खंभों और ध्वजाओंसे मण्डपको सजाया जाय। सफेद मिट्टी और गोबरसे उसे लिपवा दे। तदनन्तर मण्डपके मध्यभागमें एक स्वच्छ समतल वेदी बनानी चाहिये। वह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और एक हाथ ऊँची हो। भगवतीको पधरानेके लिये वही उत्तम आसन होता है। सुन्दर बंदनवार और चाँदनीसे उसे सुशोभित करे। उसी रात ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करे। वे ब्राह्मण देवीके रहस्यको भलीभाँति जाननेवाले, सदाचारी, संयमशील तथा वेद-वेदाङ्गके पारगामी होने चाहिये। प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल समुद्र, नदी, सरोवर, बावली, कुँए अथवा घरपर ही सविधि स्नान करे। प्रतिदिनके प्रातःकालके जो नियम हों, उन्हें पहले कर ले। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंका वरण करे। पाद्य, अर्घ्य और आचमनीयसे ब्राह्मणोंकी पूजा होनी चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार वरणमें वस्त्र और भूषण आदि अर्पण करे। घरमें सम्पत्ति हो तो कृपणता करना अनुचित है। संतुष्ट ब्राह्मणों-द्वारा ही सम्यक् प्रकारसे कार्य परिपूर्ण हो सकता है।

देवीका पाठ करनेके लिये ब्राह्मणोंके विषयमें कहा गया है—नौ, पाँच, तीन अथवा एक ही ब्राह्मणका वरण करे; किंतु वह ब्राह्मण शान्तिपूर्वक पारायण करनेवाला हो। वैदिक विधिसे स्वस्तिवाचन करना चाहिये। वेदीपर रेशमी वस्त्रसे आच्छादित सिंहासन स्थापित करे। उसपर भगवती जगदम्बाकी प्रतिमा पधराये। भगवतीकी चार भुजाएँ हों और हाथोंमें आयुध विराजमान हों। भगवती रत्नमय भूषणोंसे सुशोभित हों। गलेमें मोतीकी माला लटक रही हो। सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे सम्पन्न सौम्यमूर्ति वे देवी दिव्य वस्त्र पहने हों। वे कल्याणमयी भगवती सिंहपर बैठी हों और भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म सुशोभित हो रहे हों। अथवा आठ भुजावाली भगवती सनातनीकी भी प्रतिष्ठा करनेका विधान है। भगवतीकी प्रतिमाके अभावमें नवार्णमन्त्रसे लिखे हुए यन्त्रको पूजाके लिये पीठपर स्थापित कर लेना चाहिये। पासमें ही कलशस्थापन कर ले। कलशको तीर्थके पवित्र जलसे भरना, उसमें सुवर्ण और पञ्चरत्न छोड़ना तथा पञ्चपल्लव रखना—ये सभी काम वेदके मन्त्रोंका उच्चारण करके होने चाहिये। पासमें चारों ओर पूजाकी सामग्री रख ले। मङ्गलके लिये गीत और वाद्य भी कराना आवश्यक है। नन्दा तिथि अर्थात् प्रतिपदामें हस्त नक्षत्र हो तो उस समयका पूजन उत्तम माना जाता है। राजन्! पहले दिन उत्तम विधिसे किया हुआ पूजन मनुष्योंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला होता है। उपवास-व्रत, एकभुक्त-व्रत अथवा नक्त-व्रत—किसी भी एक व्रतका नियम करनेके पश्चात् पूजाकी व्यवस्था करनी चाहिये। फिर यों प्रार्थनायुक्त प्रतिज्ञा करे—'देवी! तुम जगत्की माता हो। मैं उत्तम नवरात्र-व्रत करूँगा। माता! तुम मेरे सभी कार्योंमें सहायता करनेकी कृपा करो।' नवरात्र-व्रतकी पूर्तिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार नियम-पालन करना आवश्यक है। तदनन्तर विधिके साथ

---

१—मण्डपका परिमाण नौ हाथ लम्बा और सात हाथ चौड़ा—यों सोलह हाथ है।

मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, कपूर, मदार, कमल, अशोक, चम्पा, कनेर, मालती, ब्रह्मपुष्प आदि सुगन्धित फूलों तथा सुन्दर बिल्वपत्रों एवं धूप-दीपसे भगवती जगदम्बाकी पूजा करे। अनेक प्रकारके फल भोग लगाये। अर्घ्य देना परम आवश्यक है। नारियल, नीबू, अनार, केला, नारंगी और कटहल आदि सभी फलोंसे देवीकी अर्चा करे। राजन्! फिर भक्तिपूर्वक अन्न भोग लगाना चाहिये।

हवन करनेके लिये त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिये अथवा उत्तम वेदी भी बनायी जा सकती है, किंतु वह भी त्रिकोण ही हो। प्रतिदिन भाँति-भाँतिके मनोहर द्रव्योंसे प्रातः, संध्या और मध्याह्न—तीनों समयमें भगवतीकी पूजा करे। गाकर, बजाकर और नाचकर—बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाना चाहिये। नीचे भूमिपर सोना चाहिये। दिव्य वस्त्र, भूषण और अमृतके समान मधुर भोजनादिसे कुमारी कन्याओंकी पूजा करनी चाहिये। पहले दिन एककी पूजा करे, फिर प्रतिदिन क्रमशः एक-एक बढ़ाता जाय। दूसरे दिन दो एवं तीसरे दिन तीन—इस प्रकार नवें दिन नौ कन्याओंका पूजन होना चाहिये। अपने धनके अनुसार पूजनमें खर्च करना चाहिये। राजन्! शक्ति रहते हुए यज्ञमें धनकी कृपणता करना अत्यन्त निषिद्ध है। राजन्! पूजाविधिमें एक वर्षकी अवस्थावाली कन्या नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि गन्ध और भोग आदि पदार्थोंके स्वादसे वह बिलकुल अनभिज्ञ रहती है। 'कुमारी' वही कहलाती है, जो कम-से-कम दो वर्षकी हो चुकी हो। तीन वर्षकी कन्याको 'त्रिमूर्ति' और चार वर्षकी कन्याको 'कल्याणी' कहते हैं। पाँच वर्षवालीको 'रोहिणी', छः वर्षवालीको 'कालिका', सात वर्षवालीको 'चण्डिका', आठ वर्षवालीको 'शाम्भवी', नौ वर्षवालीको 'दुर्गा' और दस वर्षवालीको 'सुभद्रा' कहा गया है। इससे ऊपर अवस्थावाली कन्याकी पूजा नहीं करनी चाहिये। वह सभी कार्योंमें निन्द्य मानी जाती है। इन्हीं नामोंसे विधिपूर्वक पूजन करे। उन नवों कन्याओंके पूजनका फल भी बतलाया है। दुःख और दारिद्र्यके शमनके लिये कुमारीकी पूजा करनी चाहिये। इस पूजनसे शत्रुका शमन और धन, आयु एवं बलकी वृद्धि होती है। भगवती 'त्रिमूर्ति' की पूजासे त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि मिलती है। साथ ही धन-धान्यका आगमन एवं पुत्र-पौत्रोंका संवर्द्धन भी होता है। जिस राजाको विद्या, विजय, राज्य एवं सुख पानेकी अभिलाषा हो, वह सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाली भगवती 'कल्याणी' की निरन्तर पूजा करे। शत्रुका शमन करनेके लिये भगवती 'कालिका' की भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये। भगवती 'चण्डिका' की पूजासे ऐश्वर्य एवं धनकी पूर्ति होती है। राजन्! किसीको मोहित करने, दुःख-दारिद्र्यको हटाने तथा संग्राममें विजय पानेके लिये भगवती 'शाम्भवी' की सदा पूजा करनी चाहिये। किसी कठिन कार्यको सिद्ध करते समय अथवा यदि दुष्ट शत्रुका संहार करना हो तो भगवती 'दुर्गा' की पूजा करनी चाहिये। इनकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे पारलौकिक सुख भी सुलभ होता है। मनोरथकी सफलताके लिये भगवती 'सुभद्रा' की सदा उपासना होनी चाहिये। मानव रोगनाशके लिये 'रोहिणी' की निरन्तर पूजा करे। भक्तिभावसे सम्पन्न होकर 'श्रीरस्तु' या श्रीयुक्त मन्त्र अथवा बीजमन्त्रसे पूजा करनेका विधान है।

मन्त्रार्थ इस प्रकार है—जो स्कन्दके तत्त्वों एवं ब्रह्मादि देवताओंकी भी लीलापूर्वक रचना करती हैं, उन कुमारी देवीकी मैं पूजा करता हूँ। जो सत्त्व आदि तीनों गुणोंसे तीन रूप धारण करती हैं, जिनके अनेकों रूप हैं तथा जो तीनों कालोंमें व्याप्त हैं, उन भगवती त्रिमूर्तिकी मैं पूजा करता हूँ। निरन्तर सुपूजित होनेपर भक्तोंका कल्याण करना जिनका स्वभाव ही है, उन सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली भगवती कल्याणीकी मैं पूजा करता हूँ, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके संचित बीजोंका रोहण (रोपण) करती हैं, उन भगवती रोहिणीकी मैं उपासना करता हूँ। कल्पके अन्तमें चराचरसहित अखिल ब्रह्माण्डको जो अपनेमें विलीन कर लेती हैं, उन भगवती कालिकाकी मैं पूजा करता हूँ। जिनका रूप अत्यन्त प्रकाशमान है, जो चण्ड एवं मुण्डका संहार करनेवाली हैं, तथा जिनकी कृपासे घोर पाप तत्काल नष्ट हो जाता है, उन भगवती चण्डिकाकी मैं पूजा करता हूँ। वेद जिनके स्वरूप हैं, वे ही वेद जिनके प्राकट्यके विषयमें कारणका अभाव बतलाते हैं तथा सबको सुखी बनाना जिनका स्वाभाविक गुण है, उन भगवती शाम्भवीकी मैं पूजा करता हूँ। जो भक्तको सदा संकटसे बचाती हैं, दुःख दूर करनेमें जिनका मनोरञ्जन होता है तथा देवता-लोग भी जिन्हें जाननेमें असमर्थ हैं, उन भगवती दुर्गाकी मैं पूजा करता हूँ। जो सुपूजित होनेपर भक्तोंका कल्याण करनेमें सदा संलग्न रहती हैं, उन अशुभविनाशिनी भगवती सुभद्राकी मैं पूजा करता हूँ।* पण्डितजन इन्हीं मन्त्रोंसे कन्याओंकी पूजा करें। वस्त्र, भूषण, माला और चन्दन आदि श्रेष्ठ वस्तुओंसे पूजन करना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—जिसके शरीरमें किसी अङ्गकी कमी हो, जिसके अङ्गमें कहीं छिद्र हो तथा जो दुर्गन्धयुक्त एवं नीच कुलमें उत्पन्न हुई हो, ऐसी कन्याको पूजामें नहीं लेना चाहिये। जन्मसे अंधी, तिरछी नजरसे ताकनेवाली, कानी, कुरूपा, बहुत रोमवाली, रोगिणी तथा रजस्वला कन्याका पूजामें परित्याग कर दे। जो अत्यन्त दुर्बल हो, जिसकी एक वर्षके भीतर उत्पत्ति हुई हो, विधवा स्त्रीसे जिसका जन्म हुआ हो तथा विवाहसे पहले ही माता जिसे जन्म दे चुकी हो, ऐसी कन्याएँ सम्पूर्ण पूजाओंमें त्याज्य हैं। किसी प्रकारके रोगसे रहित, श्रेष्ठ रूपवाली, सुन्दरी, छिद्ररहित तथा अपनी माता एवं पितासे उत्पन्न कन्याका ही सम्यक् प्रकारसे पूजन करना चाहिये। सभी कार्यकी सिद्धिके लिये ब्राह्मणकी

---

* कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया। कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम्॥
सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी। त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥
कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजितानिशम्। पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम्॥
रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसंचितानि वै। या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥
काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्। कल्पान्तसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्॥
चण्डिकां चण्डरूपां च चण्डमुण्डविनाशिनीम्। तां चण्डपापहरिणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम्॥
अकारणात् समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता। यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥
दुर्गात् त्रायति भक्तं या सदा दुर्गार्तिनाशिनी। दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्॥
सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा। अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥
(३।२६।५३—६१)

कन्या, युद्धमें विजय पानेके लिये क्षत्रियकी कन्या तथा व्यापारमें लाभके लिये वैश्य अथवा शूद्रकी कन्याका पूजन करना चाहिये—ऐसी मान्यता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय ब्राह्मणकी कन्याकी पूजा करें। वैश्यके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंकी कन्याकी पूजा करनेका विधान है। शूद्रके लिये चारों वर्णोंकी कन्याएँ पूजनीय हैं। शिल्पकर्म करनेवाले मनुष्य यथायोग्य अपने-अपने वंशकी कन्याओंका पूजन करें। नवरात्रविधिसे भक्तिपूर्वक निरन्तर पूजा होनी चाहिये। यदि नवरात्रमें प्रतिदिन पूजा करनेके लिये असमर्थ हो तो अष्टमीके दिन विशेषरूपसे पूजन करना परम आवश्यक है।

प्राचीन समयकी बात है—दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेवाली भगवती भद्रकालीका अवतार अष्टमीको हुआ था। उनकी आकृति बड़ी भयंकर थी। उनके साथ करोड़ों योगिनियाँ थीं। अतएव भाँति-भाँतिके उपहारों, गन्ध एवं मालाओंद्वारा अष्टमीको विशेष विधानके साथ भगवतीकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये। उस दिन हविष्य-हवन, ब्राह्मणभोजन तथा फल-पुष्पका उपहार-दान आदि कार्योंसे भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करे। राजन्! यदि पूरे नवरात्रमें उपवास-व्रत न कर सकता हो तो तीन दिन उपवास करनेपर भी मनुष्य यथोक्त फलका अधिकारी हो जाता है—ऐसा कथन है। सप्तमी, अष्टमी और नवमी— इन तीन रातोंमें उपवास करके देवीकी पूजा करनेसे सभी फल प्राप्त हो जाते हैं। देवी-पूजन, हवन, कुमारी-पूजन और ब्राह्मणभोजन—इन चार कार्योंके सम्पन्न होनेसे साङ्गोपाङ्ग नवरात्र-व्रत पूरा होता है—ऐसी उक्ति है। जगत्‌में अन्य जितने व्रत एवं विविध प्रकारके दान हैं, वे इस नवरात्र-व्रतकी तुलना कदापि नहीं कर सकते; क्योंकि यह व्रत धन एवं धान्य प्रदान करनेवाला, सुख और संतान बढ़ानेवाला; आयु और आरोग्यवर्धक तथा स्वर्ग और मोक्षतक देनेमें समर्थ है। अतएव जिसे विद्या, धन या पुत्र पानेकी इच्छा हो, वह मनुष्य इस सौभाग्यदायी मङ्गलमय व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करे। विद्याकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको इस व्रतके प्रभावसे सम्पूर्ण विद्याएँ सुलभ हो जाती हैं। जिसका राज्य छिन गया हो, ऐसे नरेशको पुनः गद्दीपर बैठानेकी क्षमता इस व्रतमें है, यह सर्वथा सत्य है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें इस उत्तम नवरात्रका पालन नहीं किया है, वे ही दूसरे जन्ममें रोगी, दरिद्र और संतानहीन होते हैं। जो स्त्री वन्ध्या, विधवा अथवा धनहीन है, उसके विषयमें ऐसा अनुमान कर लेना चाहिये कि अवश्य ही इसने पूर्वजन्ममें नवरात्र-व्रत नहीं किया है। जिसने जगत्‌में आकर उक्त नवरात्र-व्रतका पालन नहीं किया, वह कैसे धनी हो सकता है तथा कैसे उसे स्वर्गमें जाकर आनन्द भोगनेकी सुविधा मिल सकती है। जिसने कोमल बिल्वपत्रोंमें रक्तचन्दन लगाकर उनसे भवानीकी पूजा की है, वही पृथ्वीपर राजा होता है। भगवती कल्याणस्वरूपिणी हैं। इनका कभी जन्म-मरण नहीं होता। दुःख दूर करनेमें ये सदा तत्पर रहती हैं। सिद्धि प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्‌में सबसे श्रेष्ठ हैं। जिस मनुष्यने इनकी उपासना नहीं की, वह निश्चय ही इस जगत्‌में दुःखी, शत्रुग्रस्त एवं दरिद्र होता है। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, सूर्य, अग्नि, वरुण, कुबेर एवं इन्द्रप्रभृति देवता बड़े हर्षके साथ जिनका ध्यान करते हैं, उन्हीं भगवती चण्डिकाको मानव क्यों नहीं भजते। मनुने कहा है कि इनके 'स्वाहा'

और 'स्वधा'—इन नामोंका उच्चारण करनेसे देवता और पितर तृप्त हो जाते हैं। इसीसे श्रेष्ठ मुनिगण सम्पूर्ण यज्ञोंमें हर्षपूर्वक मन्त्रोंके साथ इसका प्रयोग करते हैं। जिनकी इच्छासे ब्रह्मा इस जगत्की सृष्टि करते हैं, विष्णु अनेक अवतार धारण करके पालन करते हैं तथा शंकर संहार करनेमें तत्पर होते हैं, उन कल्याणदायिनी भगवतीको मानव क्यों नहीं भजता ? नर, नाग, पक्षी, पिशाच, राक्षस और देवता—इनमें कोई एक भी ऐसा नहीं है, जिसमें भगवतीकी शक्ति न हो और वह हिलडुलतक सके। घर-घरकी यही स्थिति है। मङ्गलमयी भगवती चण्डिका सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध कर देती हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों फलोंकी अभिलाषा करनेवाला कौन ऐसा पुरुष है, जो उन भगवतीकी उपासना न करे अथवा उनके व्रतसे वञ्चित रह जाय ? महान्-से-महान् पापी भी यदि नवरात्र-व्रत कर ले तो सम्पूर्ण पापोंसे उसका उद्धार हो जाता है।

प्राचीन समयकी बात है—एक निर्धन वैश्य था। वह महान् दुःखी था। राजन् ! कोसलदेशके किसी सज्जनने उसका विवाह भी कर दिया था। उसके बहुत-से बाल-बच्चे हो गये थे, पर उनकी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती थी। उसके लड़के सायंकालमें किसी प्रकार कुछ भोजन पाते थे। वैश्य भी कुछ खा लेता था। भूखे रहते हुए वह सर्वदा दूसरेके कार्यमें तत्पर रहता था। यों बड़ी कठिनतासे कुटुम्बका भरण-पोषण चलता था। उस वैश्यके मनमें अपार चिन्ता रहती थी, परंतु वह सदा धर्ममें तत्पर रहता था। उसकी इन्द्रियाँ शान्त थीं। वह बड़ा सदाचारी था। कभी झूठ नहीं बोलता था। उसके मनमें क्रोध नहीं आने पाता था। वह सदा धैर्यसे काम लेता। मनमें अहंकार और डाह नहीं आने देता था। देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी पूजा करनेके पश्चात् अपने आश्रितजनोंको खिलाकर तब स्वयं कुछ भोजन करता था। यह उस वैश्यके प्रतिदिनका नियम था। यों उसका समय व्यतीत हो रहा था। उत्तम गुणोंके कारण उसका नाम भी 'सुशील' रख दिया गया था। दरिद्रतासे अत्यन्त घबराकर उस भूखे वैश्यने एक शान्तस्वभाव मुनिसे पूछा।

सुशीलने कहा—ब्राह्मणदेवता ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी विलक्षण है। आज मुझपर कृपा करके यह बताओ कि मेरी दरिद्रता निश्चयपूर्वक कैसे दूर हो सकती है। मानद ! मुझे धनकी इच्छा नहीं है; मैं खूब सम्पन्न हो जाऊँ—यह नहीं चाहता। द्विजवर ! तुमसे पूछनेका मेरा इतना ही अभिप्राय है कि कुटुम्बका भरण-पोषण करनेकी शक्ति मुझमें आ जाय। मेरी छोटी बच्ची और बच्चे भोजन पानेके लिये सदा रोते रहते हैं। घरमें इतना भी अन्न नहीं है कि मैं उन्हें एक-एक मुट्ठी भी दे सकूँ। रोते हुए मेरे बालक घरसे निकल गये। मैंने उन्हें त्याग दिया है। अतः अब मेरे हृदयमें आग-सी लग गयी है। परंतु धनके अभावमें मैं कर ही क्या सकता हूँ। मेरी लड़की विवाहके योग्य हो गयी है। मेरे पास धन है नहीं, मैं क्या करूँ ? द्विजवर ! इसीसे मेरा मन चिन्ताके समुद्रमें गोते खा रहा है। दयानिधे ! तुमसे कोई बात छिपी नहीं है। विप्र ! अब तुम तप, दान, व्रत, मन्त्र एवं जप—कोई भी ऐसा उपाय बताओ, जिससे मैं अपने आश्रितजनोंका भरण-पोषण सुचारुरूपसे कर सकूँ। बस, मुझे इतना ही धन चाहिये। अधिक धनके लिये मैं प्रार्थना नहीं करता। महाभाग ! तुम्हारी कृपासे अब मेरा परिवार सुखी हो जाय—एतदर्थ

सोच-समझकर कोई उपाय बतलाओ।

व्यासजी कहते हैं—राजेन्द्र ! इस प्रकार सुशील वैश्यके पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उस ब्राह्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने वैश्यसे कहा—'वैश्यवर ! तुम अब श्रेष्ठ नवरात्र-व्रत करो। इसमें भगवती जगदम्बाकी पूजा, हवन और ब्राह्मण-भोजन कराना होगा। वेदका पारायण, भगवतीके मन्त्रका जप और होमादि सभी कार्य होते हैं। किंतु इस समय तुम अपनी शक्तिके अनुसार करो, तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा। वैश्य ! जगत्में इससे बढ़कर दूसरा कोई व्रत नहीं है। इस परम पावन सुखदायी व्रतको नवरात्र-व्रत कहते हैं। इस व्रतके सर्वदा पालन करनेसे ज्ञान और मोक्षतक सुलभ हो जाते हैं, सुख और संतानकी वृद्धि होती है तथा शत्रुके पैर नहीं टिक सकते। भगवान् राम राज्यसे च्युत हो गये थे। उन्हें सीताका वियोग हो गया था। उस समय किष्किन्धामें उन्होंने यह व्रत किया था। उस अवसरपर सीताके विरहसे भगवान् राम अत्यन्त संतप्त हो उठे थे। उन्होंने नवरात्र-व्रत करके भगवती जगदम्बाकी विधिवत् उपासना की। तब उन्हें जनकनन्दिनी सीता प्राप्त हुई। उन्होंने विशाल समुद्रपर पुल बाँधा। महाबली रावण और कुम्भकर्ण मारे गये। रावणकुमार मेघनादकी जीवनलीला समाप्त हुई। विभीषणको उन्होंने लङ्काका राजा बनाया, इसके पश्चात् अयोध्यामें आकर निष्कण्टक राज्य भोगा। वैश्यवर ! अमित तेजस्वी भगवान् श्रीरामको धरातलपर इस प्रकारकी सुख-सुविधा इस नवरात्रके प्रभावसे ही सुलभ हुई थी।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणकी यह बात सुनकर उस वैश्यने उसे अपना गुरु बना

लिया। साथ ही मायाबीज नामक भुवनेश्वरी-मन्त्रकी उससे दीक्षा ले ली। फिर नवरात्र-व्रत करके संयमपूर्वक उत्तम भक्तिके साथ उसने जप आरम्भ कर दिया। अनेकों प्रकारके सामान यथाशक्ति एकत्रित करके उनसे उसने भवानीकी आदरपूर्वक पूजा की। नौ वर्षोंके प्रत्येक नवरात्रमें भगवतीके मायाबीज-मन्त्रका वह जप करता रहा। नवें वर्षके नवरात्रमें अन्तिम अष्टमीके दिन आधी रातके समय भगवती प्रकट हुईं और उन्होने उस वैश्यको अपने दर्शन दिये। साथ ही विविध प्रकारके वर देकर उसे कृतकृत्य कर दिया। (अध्याय २६-२७)

☆

## नवरात्र-व्रतके प्रसङ्गमें श्रीरामचरित्रका वर्णन

जनमेजयने पूछा—भगवान् रामने देवीका सुखदायी नवरात्र-व्रत क्यों किया था ? उनका राज्याधिकार छिन जानेमें क्या कारण था तथा सीताजीका हरण हो जानेपर उनको प्राप्त करनेके

लिये क्या किया ?

व्यासजी कहते हैं—प्राचीन समयकी बात है—श्रीमान् राजा दशरथ अयोध्यामें राज्य करते थे। सूर्यवंशी राजाओंमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनके यहाँ देवता और ब्राह्मण सदा आदर पाते थे। उनके चार पुत्र हुए, जो राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके नामसे जगत्में प्रसिद्ध हैं। राजाको प्रसन्न रखनेवाले वे बालक रूप और गुणमें
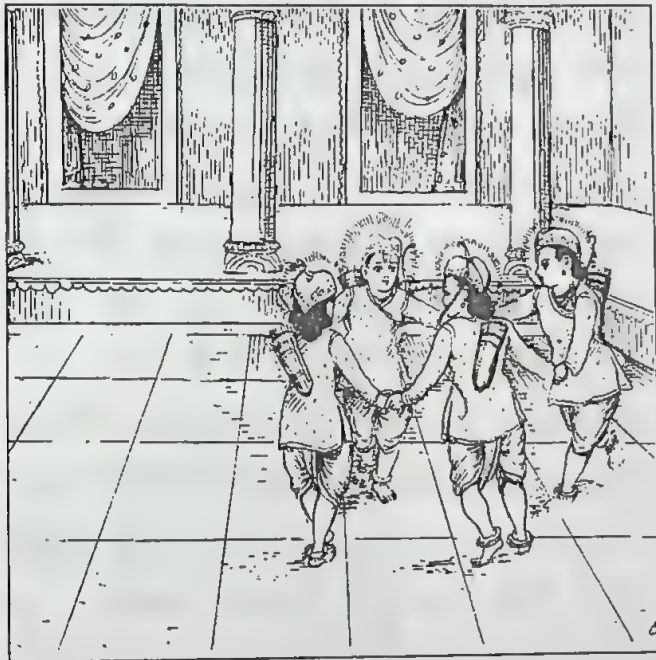
समान थे। रामकी माता कौसल्या थीं। कैकेयीसे भरतका जन्म हुआ था और सुमित्रासे लक्ष्मण और शत्रुघ्न—ये दो सुन्दर बालक एक साथ उत्पन्न हुए थे। ये बाल-अवस्थामें ही धनुष और बाण लेकर खेला करते थे। तदनन्तर इनका संस्कार किया गया। इनके कारण राजाके सुखकी वृद्धि हो रही थी। इतनेमें विश्वामित्रजी आये और यज्ञकी रक्षा करनेके लिये कुमार श्रीरामको उन्होंने महाराज दशरथसे माँगा। तब भगवान् श्रीरामकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। राजाने लक्ष्मणसहित श्रीरामको मुनिके साथ जानेकी आज्ञा दे दी। प्रियदर्शन राम और लक्ष्मण मुनिके साथ चले गये। उन्होंने रास्तेमें ही भयंकर रूपवाली ताड़का नामक राक्षसीको मार डाला। वह राक्षसी मुनियोंको सदा सताया करती थी। भगवान् रामके एक ही बाणसे उसका काम तमाम हो गया। यज्ञकी रखवाली करते समय श्रीरामने पापी सुबाहुके प्राण हर लिये। मारीचको भी मृतप्राय करके बाणके सहारे दूर फेंक दिया। इस प्रकार मुनि-यज्ञकी रक्षाके इस गुरुतर कार्यको उन्होंने सहज ही सम्पन्न किया।

फिर श्रीराम, लक्ष्मण और विश्वामित्र—ये सभी मिथिलाके लिये प्रस्थित हुए। मार्गमें इन्होंने अहल्याका शापसे उद्धार किया। भगवान् श्रीरामकी कृपासे वह परम पावन बन गयी। फिर श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रजीके साथ जनकपुरमें पहुँच गये। वहाँ भगवान् शंकरके धनुषको, जिसे तोड़नेके लिये जनकने प्रतिज्ञा की थी, तोड़ दिया। तदनन्तर लक्ष्मीकी अंशभूता जानकीका भगवान् श्रीरामके साथ विवाह हुआ। महाराज जनककी एक दूसरी पुत्री उर्मिला थी; उसे उन्होंने लक्ष्मणको सौंप दिया। उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, सुशील भरत एवं शत्रुघ्न—ये दोनों भाई कुशध्वजकी कन्याओंके स्वामी बने। राजन्! इस प्रकार इन चारों भाइयोंका विवाह-संस्कार उत्तम विधिके साथ जनकपुरमें सम्पन्न हुआ। महाराज दशरथने देखा—मेरा पुत्र राम राज्य सँभालनेके योग्य हो गया है। अतः उनके मनमें भगवान् रामपर राज्यका भार डालनेकी इच्छा हो गयी। तैयारियाँ होने लगीं। उन्हें देखकर कैकेयीने महाराज दशरथसे अपने पहलेके दो वर माँगे। उसने अपने पतिदेव महाराज दशरथको वशमें कर लिया था। उसने एक वरसे तो अपने पुत्र

महाभाग भरतको राजा बनाया जाय—यह माँगा और दूसरा वर था कि श्रीराम चौदह वर्षके लिये वन जायँ। तदनन्तर कैकेयीके कथनानुसार सीता और लक्ष्मणके सहित भगवान् राम दण्डकारण्यमें पधार गये। वहाँपर बहुत-से राक्षस रहते थे। अमेयात्मा महाराज दशरथको पुत्रके विरहसे अपार दुःख हुआ। पूर्व शापकी बात उन्हें याद थी ही। अतः उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। भरतजीने देखा—पिताजी स्वर्ग सिधार गये, इनकी मृत्युमें माता कारण हुई है। अतः भाई श्रीरामका प्रेम-भाजन बननेकी इच्छासे उन्होंने राज्य करना अस्वीकार कर दिया।

भगवान् राम पञ्चवटीमें निवास कर रहे थे। वहाँ रावणकी छोटी बहन शूर्पणखा आयी। कामदेव उसे सता रहा था। उन्होंने उसे विरूप बना दिया। नाक-कान कटी हुई उस राक्षसी शूर्पणखाको देखकर खर-दूषण आदि दैत्योंने अमित तेजस्वी भगवान् रामके साथ घोर संग्राम किया। वे खर प्रभृति राक्षस असीम बलशाली थे। फिर भी मुनियोंके हितकी इच्छा रखनेवाले सत्यपराक्रमी श्रीरामके हाथ उन्हें प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। शूर्पणखा बड़ी दुष्टा थी। वह लङ्का गयी और रामके द्वारा खर-दूषणके मारे जानेका समाचार उसने रावणके पास पहुँचाया। रावण भी बड़ा नीच था। खर-दूषणकी मृत्यु सुनकर क्रोधसे तमतमा उठा। तुरंत रथपर बैठा और मारीचके स्थानपर चला गया। मारीच बड़ा मायावी था। सीताको लुभानेके लिये सोनेका मृग बनकर जानेके लिये रावणने उसे आज्ञा दी। वह मायावी राक्षस तुरंत सुवर्णमय मृग बनकर सीताके सामने पहुँच गया। उसके सभी अङ्ग अत्यन्त अद्भुत जान पड़ते थे। वह कुटीके पास जाकर चरने लगा। उसे देखकर दैवकी प्रेरणासे विवश हो भगवती सीताने रामसे कहा—'स्वामिन्! इस मृगका चर्म लानेकी कृपा कीजिये।' भगवान् रामने भी कुछ विचार नहीं किया। वहाँ लक्ष्मणको रहनेकी आज्ञा देकर धनुष-बाण उठाया और वे उस मृगके पीछे चल पड़े। वह मृग भी करोड़ों मायाओंका पूर्ण जानकार था। भगवान् रामको देखकर वह कभी दीख पड़ता और कभी अदृश्य हो जाता था। यों वह एक वनसे दूसरे वनमें चला गया। अब यह मृग एक ही हाथकी दूरीपर रह गया है—यह मानकर भगवान् रामने धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढ़ाया और उससे उस मायामय मृगको मार डाला। मरते समय मायावी नीच मृग अत्यन्त दुःखके साथ बलपूर्वक बड़े जोरसे चिल्लाया 'हा लक्ष्मण! अब मैं मारा गया।' वह चिल्ला रहा था, तभी उसका वह गगनभेदी शब्द सीताने सुन लिया। 'यह राघवेन्द्रकी करुण पुकार है'—यह मानकर वे घबरा गयीं। उन्होंने अपने देवर लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! तुम अभी जाओ। देखो, तुम्हारे भाई रघुनन्दनको किसीने मारा है। सौमित्रे! तुम्हें वे बुला रहे हैं। शीघ्र उनकी सहायतामें जुट जाओ।' तब लक्ष्मणने भगवती सीतासे कहा—'माता जनक-नन्दिनी! राघवेन्द्रकी यह आज्ञा है कि तुम यहीं रहना। उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेसे मैं डरता हूँ। अतः तुम्हारे पाससे नहीं जा सकता। तुम धैर्य रखो। मेरी समझसे भगवान् रामको मारनेमें समर्थ पृथ्वीपर कोई भी नहीं है। अतः तुम्हें यहाँ अकेली छोड़कर राघवेन्द्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके मैं नहीं जाऊँगा।'

व्यासजी कहते हैं—उस समय सीताकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। यद्यपि उनका स्वभाव बड़ा ही सौम्य था, फिर भी लीलावश

सदाचारी लक्ष्मणके प्रति वे कुछ कठोर वचन कह गयीं। भगवती जानकीका कथन सुनकर लक्ष्मणका मन क्षुब्ध हो उठा। कुछ समयतक वे चुप रहे। फिर जनकनन्दिनी जानकीसे कहा— 'क्षितिजे ! आपने मेरे प्रति कितने कठोर वचन कह डाले ! इतनी अहितकर बात आपके मुखसे क्यों निकल रही है ? इसका अन्तिम परिणाम मेरी समझमें आ गया।' राजन् ! इस प्रकार कहनेके पश्चात् वीरवर लक्ष्मण सीताको वहीं छोड़कर अपने बड़े भाई श्रीरामको खोजते हुए चल पड़े। उस समय लक्ष्मणकी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बह रही थी। वे बड़े दुःखी थे। उनके जाते ही उस आश्रममें रावणका प्रवेश हो गया। रावणने मायासे अपना भिक्षुकका वेष बना रखा था। जानकीने उस दुरात्मा रावणको संन्यासी समझकर आदरपूर्वक अर्घ्य और फल निवेदन करनेके उपरान्त उसके सामने भोजन-सामग्री उपस्थित की, तब उस नीच रावणने नम्रताके साथ बड़े मधुर स्वरमें सीतासे पूछा—'कमलके समान सुन्दर नेत्र-वाली ! तुम अकेली ही इस वनमें कौन हो ? वामोरु ! तुम किसकी पुत्री हो, कौन तुम्हारा भाई है और किससे तुम्हारा विवाह हुआ है ? सुन्दरी ! तुम क्यों एक गँवारिन स्त्रीकी भाँति बिना किसीको साथ लिये यहाँ ठहरी हुई हो ? प्रिये ! तुम देवकन्याके समान श्रेष्ठ प्रतिभावाली हो ? तुम्हें ऊँचे महलोंमें रहना चाहिये। मुनि-पत्नीकी भाँति इस निर्जन वनमें तुम्हारे रहनेका क्या कारण है ?'

व्यासजी कहते हैं—रावणके उक्त कथनको सुनकर जनककुमारी जानकी उत्तर देने लगीं। दैववश उस समय भी उनको मन्दोदरी-पति रावण दिव्य यति ही जान पड़ा। सीताने कहा—''एक समृद्धिशाली राजा हैं। उनका नाम महाराज दशरथ है। उनके चार लड़के हैं। उनमें सबसे बड़े लड़के, जिनकी 'राम' नामसे प्रसिद्धि है, मेरे पतिदेव हैं। राजाने मेरे स्वामीको चौदह वर्षके लिये वनवास दे दिया। इसमें कैकेयी निमित्त हुई थीं। अतः लक्ष्मणके साथ वे यहाँ निवास करते हैं। मैं जनककी पुत्री हूँ। मुझे लोग जानकी कहते हैं। भगवान् शंकरका धनुष तोड़कर श्रीरामने मुझे अपनी पत्नी बनाया है। उन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित मैं इस निर्जन वनमें रहती हूँ। सुवर्णमय मृग देखकर उसे मारनेके लिये अभी मेरे पतिदेव गये हैं। फिर भाईकी पुकार सुनकर लक्ष्मणका भी इसी क्षण उधर जाना हो गया है। उन राम और लक्ष्मणकी भुजाके प्रतापसे ही मैं यहाँ निर्भय रहती हूँ। मेरे वनवासी जीवन व्यतीत करनेका यही सब वृत्तान्त है। मेरे पतिदेव और देवर दोनों महानुभाव अब आते ही होंगे। वे आकर आपकी विधिपूर्वक पूजा करेंगे। संन्यासी भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। अतः आप मेरे पूजाके पात्र बन चुके; किंतु इस भयंकर वनमें बहुत-से राक्षस रहते हैं। यहींपर यह आश्रम बना है। इसीसे मैं आपसे पूछती हूँ, आप मेरे सामने सच्ची बात बतानेकी कृपा करें। आप संन्यासीके वेषमें इस जंगलमें पधारे हुए कौन हैं ?''

रावणने कहा—मैं लङ्काका समृद्धिशाली राजा रावण हूँ। मेरी स्त्रीका नाम मन्दोदरी है। सुन्दरी ! तुम्हें पानेके लिये ही मैंने ऐसा रूप बना लिया है। वरारोहे ! अभी बहन शूर्पणखाके प्रेरणा करनेपर मैं यहाँ आया हूँ। खर और दूषण दोनों भाई जनस्थानमें मारे गये, यह समाचार मुझे मिल गया था। अतः अब तुम उस मानव पतिको छोड़कर मुझ नरेशको अपना स्वामी

बनाओ। राम राज्यसे च्युत हो गया है। उसके मुखपर सदा उदासी छायी रहती है। शक्तिहीन होकर वह वनमें रहता है। सुन्दरी ! तुम मेरी पटरानी बनो। मन्दोदरी तुमसे नीचे होकर रहेगी ! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम मेरी स्वामिनी बननेकी कृपा करो। सम्पूर्ण लोकपालोंपर मुझे विजय मिल चुकी है। फिर भी मेरा मस्तक तुम्हारे चरणोंको चूम रहा है। जानकी ! अब तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे सनाथ बनानेकी कृपा करो। अबले ! तुम्हारे लिये पहले भी मैंने तुम्हारे पितासे याचना की थी। उस समय जनकने यों कहा था कि 'मैंने धनुष तोड़नेकी शर्त रखी है।' 'भगवान् शंकरका धनुष मेरे हाथ टूट जायगा' इस भयसे मैं स्वयंवरमें गया ही नहीं। परंतु तभीसे मेरा विरहातुर मन तुममें आसक्त होकर बार-बार गोते खा रहा है। तुम इस वनमें रहती हो—यह सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। अब तुम मेरे परिश्रमको सफल बनानेकी कृपा करो।

(अध्याय २८)

☆

## सीताहरण और दैवके विषयमें राम-लक्ष्मणकी बातचीत, श्रीनारदजीद्वारा नवरात्र-व्रतोपदेश और श्रीरामका व्रत करना

व्यासजी कहते हैं—रावणके ये कुत्सित वचन सुनकर माता जानकी भयसे व्याकुल हो उठीं। उनका सारा शरीर काँप गया। फिर मनको स्थिर करके उन्होंने कहा—'पुलस्त्य-कुमार रावण ! तू कामके चंगुलमें फँसकर क्यों इस प्रकारकी घृणित बातें बक रहा है ? अरे, मैं हाटकी वेश्या नहीं हूँ। महाराज जनकके कुलमें मेरा जन्म हुआ है। रावण ! तू लङ्का चला जा। भगवान् राम तुझे अवश्य मारेंगे, मेरे लिये ही तेरी मृत्यु होगी—यह बिलकुल निश्चित बात है।'

इस प्रकार कहकर भगवती जानकी पर्णशालामें, जहाँ अग्नि-स्थापन किया हुआ था, चली गयीं। उस समय जगत्को रुलानेवाले रावणके प्रति 'दूर हो, दूर हो'—यह आवाज उनके मुखसे निकल रही थी। तत्पश्चात् रावण असली रूपमें आकर पर्णशालाके पास पहुँच गया और उसने जबर्दस्ती सीताको पकड़ लिया। सीता भयसे घबराकर रोने लगीं। 'हा राम, हा राम, हा लक्ष्मण !'—इस प्रकारकी करुण ध्वनि उनके मुखसे निरन्तर निकल रही थी। उधर नीच रावणने उन्हें पकड़ा और रथपर बैठाकर वह तुरंत चल पड़ा। जाते समय मार्गमें अरुणनन्दन जटायुने उसे घेर लिया। फिर उस वनमें ही रावण और जटायुका भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। तात ! रावणके हाथों जटायुकी सत्ता शिथिल हो गयी। तब वह राक्षस सीताको लेकर लङ्का चला गया। बेचारी सीता कुररी पक्षीकी भाँति विलाप कर रही थीं। दुष्ट रावणने अशोकवाटिकामें सीताके रहनेकी व्यवस्था कर दी। उनके पास राक्षसियोंका पहरा लगा दिया। साम, दान, दण्ड, भेद—सभी नीतियाँ बरतनेपर भी रावण सीताको अपने सदाचारसे न डिगा सका। उधर भगवान् राम भी सुवर्णमय मृगको तुरंत मारकर उसे ले आश्रमकी ओर बढ़े। उनकी आँखें सामने आते हुए लक्ष्मणपर पड़ीं। तुरंत भगवान् रामने कहा—'अरे भैया ! तुमने यह विषम कार्य क्यों कर डाला ? प्रेयसी सीताको असहाय छोड़कर

तुम्हारे यहाँ आनेका क्या कारण है ? क्या तुम इस नीचकी पुकार सुनकर चले आये ?'

उस समय सीताके वचनरूपी बाणसे लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी थे। उन्होंने भगवान् रामसे कहा—'प्रभो ! समय बलवान् है। उसीकी प्रेरणासे मैं यहाँ आ गया। यही निश्चित बात है।' फिर श्रीराम और लक्ष्मण दोनों पर्णशालामें गये। उन्होंने वहाँकी स्थिति देखी। अब उनके दुःखकी सीमा न रही। फिर तो जानकीको खोजनेमें दोनों भाई तत्पर हो गये। खोजते हुए वे उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ पक्षिराज जटायु गिरे पड़े थे। पृथ्वीने पक्षिराजको गोदमें

लिटा लिया था। अभी शरीरमें प्राण थे। जटायुने कहा—'थोड़ी देरकी बात है—रावण-द्वारा जनकनन्दिनी जानकी हरी गयी हैं। मैंने उस नीच राक्षसको रोक लिया था; परंतु अन्तमें उसकी शक्ति सफल हो गयी, जिससे मुझे समराङ्गणमें लेट जाना पड़ा।'

इस प्रकार कहनेके पश्चात् जटायुके शरीरसे प्राण प्रयाण कर गये। भगवान्के स्पर्शसे उनका शरीर पवित्र हो चुका था। राम और लक्ष्मणने अपने हाथों पक्षिराजकी पारलौकिक क्रिया सम्पन्न की। तदनन्तर वे वहाँसे आगे बढ़े। फिर उन्होंने कबन्धको मारकर उसका शापसे उद्धार किया। कबन्धके प्रस्तावपर ही सुग्रीवसे राघवेन्द्रकी मित्रता हुई। वीरवर वाली भगवान्के हाथ स्वर्ग सिधार गया। कार्य साधन करानेकी आशासे श्रीरामने किष्किन्धाका वह उत्तम राज्य सुग्रीवको सौंप दिया। वहीं लक्ष्मण-सहित भगवान् राम बहुत समयतक ठहरे रहे। रावणद्वारा हरी गयी प्रेयसी सीताके विषयमें उनका चित्त सदा चिन्तित रहता था।

एक समयकी बात है—सीताके विरहसे अत्यन्त व्याकुल होकर भगवान् रामने लक्ष्मणसे कहा—'सौमित्रे ! जानकीका कुछ भी पता न चला। उसके बिना मेरी मृत्यु बिलकुल निश्चित है। जानकीके बिना अयोध्यामें मैं पैर ही न रख सकूँगा। राज्य हाथसे चला गया। वनवासी जीवन व्यतीत करना पड़ा। पिताजी सुरधाम सिधारे। स्त्री हरी गयी। पता नहीं, दैव आगे क्या करेगा। मनुके उत्तम वंशमें हमारा जन्म हुआ। राजकुमार होनेकी सुविधा हमें निश्चित सुलभ थी। फिर भी वनमें हम असीम दुःख भोग रहे हैं। सौमित्रे ! तुम भी राजसी भोगका परित्याग करके दुर्दैवकी प्रेरणासे मेरे साथ निकल पड़े। लो, अब यह कठिन कष्ट भोगो। लक्ष्मण ! विदेहकुमारी सीता बचपनके स्वभाववश हमारे साथ चल पड़ी। दुरात्मा दैवने उस सुन्दरीको भी ऐसे गुरुतर दुःख देनेवाली दशामें ला पटका। रावणके घरमें वह सुन्दरी सीता कैसे दुःखदायी समय व्यतीत करेगी ? उस साध्वीके सभी आचार बड़े पवित्र हैं। मुझपर वह अपार प्रेम रखती है। लक्ष्मण !

सीता रावणके वशमें कभी भी नहीं हो सकती। भला, जनकके घर उत्पन्न हुई वह सुन्दरी दुराचारिणी स्त्रीकी भाँति कैसे रह सकती है। भरतानुज ! यदि रावणका घोर नियन्त्रण हुआ तो जानकी अपने प्राणोंको त्याग देगी; किंतु उसके अधीन नहीं होगी—यह बिलकुल निश्चित बात है। वीर लक्ष्मण ! कदाचित् जानकीका जीवन समाप्त हो गया तो मेरे भी प्राण शरीरसे बाहर निकल जायँगे—यह ध्रुव सत्य है।'

इस प्रकार कमललोचन भगवान् राम विलाप कर रहे थे। तब धर्मात्मा लक्ष्मणने उन्हें आश्वासन देते हुए सत्यतापूर्वक कहा—'महाबाहो ! सम्प्रति इस दैन्यभावका परित्याग करके धैर्य रखिये। मैं उस नीच राक्षस रावणको मारकर माता जानकीको ले आऊँगा। जो विपत्ति और सम्पत्ति—दोनों स्थितियोंमें धैर्य धारण करके एक समान रहते हैं, वे ही बुद्धिमान् हैं। कष्ट और वैभव प्राप्त होनेपर उसमें रचे-पचे रहना, यह मन्दबुद्धि मानवोंका काम है। संयोग और वियोग तो होते ही रहते हैं, इसमें शोक क्यों करना चाहिये। जैसे प्रतिकूल समय प्राप्त होनेपर राज्यसे वञ्चित होकर वनवास हुआ है, सीता हरी गयी हैं। वैसे ही अनुकूल समय आनेपर संयोग भी हो जायगा। भगवन् ! इसमें कुछ भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। अतः अब आप शोकका परित्याग कीजिये। बहुत-से वानर हैं। श्रीजानकीको खोजनेके लिये वे चारों दिशाओंमें जायँगे। उनके प्रयाससे माता सीता अवश्य आ जायँगी; क्योंकि रास्तेके विषयमें जानकारी प्राप्त हो जानेपर मैं वहाँ जाऊँगा और पूरी शक्ति लगाकर उस नीच रावणको मारनेके पश्चात् जानकीको ले आऊँगा। अथवा भैया ! सेना और शत्रुघ्नसहित भरतजीको बुलाकर हम तीनों एक साथ हो शत्रु रावणको मार डालेंगे। अतः आप शोक न कीजिये। राघव ! प्राचीन समयकी बात है—महाराज रघु एक ही रथपर बैठे और उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली। उन्हींके कुलदीपक आप हैं, अतः आपका शोक करना किसी प्रकार शोभा नहीं देता। मैं अकेले ही अखिल देवताओं और दानवोंको जीतनेकी शक्ति रखता हूँ। फिर मेरे सहायक भी हैं, तब कुलाधम रावणको मारनेमें क्या संदेह है ? मैं जनकजीको भी सहायकरूपमें बुला लूँगा। रघुनन्दन ! मेरे इस प्रयाससे देवताओंका कण्टक दुराचारी वह रावण अवश्य ही प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। राघव ! सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख—चक्रेकी भाँति निरन्तर आते-जाते ही रहते हैं। सदा कोई एक स्थिति नहीं रह सकती। जिसका अत्यन्त दुर्बल मन सुख और दुःखकी परिस्थितिमें तदनुकूल हो जाता है, वह शोकके अथाह समुद्रमें डूबा रहता है। उसे कभी भी सुख नहीं मिल सकता। आप तो इनसे परे हैं।

'रघुनन्दन ! बहुत पहलेकी बात है—इन्द्रको भी दुःख भोगना पड़ा था। सम्पूर्ण

देवताओंने मिलकर उनके स्थानपर नहुषकी नियुक्ति कर दी थी। वे अपने पदसे वञ्चित होकर डरे हुए कमलके कोषमें बैठे रहे। बहुत वर्षोंतक उनका अज्ञातवास चलता रहा। पर समय बदलते ही इन्द्रको फिर अपना स्थान प्राप्त हो गया। मुनिके शापसे नहुषकी आकृति अजगरके समान हो गयी और उसे धरातल-पर गिर जाना पड़ा। जब उस नरेशके मनमें इन्द्राणीको पानेकी प्रबल इच्छा जाग उठी और वह ब्राह्मणोंका अपमान करने लगा, तब अगस्त्यजी कुपित हो गये। इसके परिणाम-स्वरूप नहुषको सर्पयोनि मिली। अतएव राघव ! दुःखकी घड़ी सामने आनेपर शोक करना समीचीन नहीं है। विज्ञ पुरुषको चाहिये, इस स्थितिमें मनको उद्यमशील बनाकर सावधान रहे। महाभाग ! आपसे कोई बात छिपी नहीं है। जगत्प्रभो ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, फिर साधारण मनुष्यकी भाँति मनमें क्यों इतना गुरुत्तर शोक कर रहे हैं ?'

व्यासजी कहते हैं—लक्ष्मणके उपर्युक्त वचनसे भगवान् रामका विवेक विकसित हो उठा। अब वे अत्यन्त शोकसे रहित होकर निश्चिन्त हो गये।

इस प्रकार भगवान् राम और लक्ष्मण परस्पर विचार करके मौन बैठे थे। इतनेमें ही महाभाग नारद ऋषि आकाशसे उतर आये। उस समय उनकी स्वर और ग्रामसे विभूषित विशाल वीणा बज रही थी। वे रथन्तर सामको उच्च स्वरसे गा रहे थे। मुनिजी भगवान् रामके पास पहुँच गये। उन्हें आया देखकर अमित तेजस्वी श्रीराम उठ खड़े हुए। उन्होंने मुनिको श्रेष्ठ पवित्र आसन दिया। पाद्य और अर्घ्यकी व्यवस्था की। भलीभाँति पूजा करनेके उपरान्त हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर मुनिके आज्ञा देनेपर उनके पास ही भगवान् बैठ गये। उस समय छोटे भाई लक्ष्मण भी उनके पास थे। उन्हें मानसिक कष्ट तो था ही। मुनिवर नारदने प्रीतिपूर्वक उनसे कुशल पूछी। साथ ही कहा—'राघव ! तुम साधारण जनोंकी भाँति क्यों इतने दुःखी हो ? दुरात्मा रावणने सीताको हर लिया है—यह बात तो मुझे ज्ञात है। मैं देवलोकमें गया था। वहीं मुझे यह समाचार मिला। अपने मस्तकपर मँड़राती हुई मृत्युको न जाननेसे ही मोहवश उसकी इस कुकार्यमें प्रवृत्ति हुई है। रावणका निधन ही तुम्हारे अवतारका प्रयोजन है। इसीलिये सीताका हरण हुआ है।

'जानकी पूर्वजन्ममें मुनिकी पुत्री थी। तप करना इसका स्वाभाविक गुण था। यह साध्वी वनमें तपस्या कर रही थी। उसे रावणने देख लिया। राघव ! उस दुष्टने मुनिकन्यासे प्रार्थना की—'तुम मेरी भार्या बन जाओ।' मुनिकन्या-द्वारा घोर अपमानित होनेपर दुरात्मा रावणने उस तापसीका जूड़ा बलपूर्वक पकड़ लिया। अब तो तपस्विनीकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। मनमें आया, इसके स्पर्श किये हुए शरीरको छोड़ देना ही उत्तम है। राम ! उसी समय उस तापसीने रावणको शाप दिया—'दुरात्मन् ! तेरा संहार करनेके लिये मैं धरातलपर एक उत्तम स्त्रीके रूपमें प्रकट होऊँगी। मेरे अवतारमें माताके गर्भसे कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।' इस प्रकार कहकर उस तापसीने शरीर त्याग दिया। वही ये सीता हैं, जो लक्ष्मीके अंशसे प्रकट हुई हैं। भ्रमवश सर्पको माला समझकर अपनानेवाले व्यक्तिकी भाँति अपने वंशका उच्छेद करानेके लिये ही रावणने इनको हरा है। राघव ! देवताओंने रावण-वधके लिये सनातन भगवान्

श्रीहरिसे प्रार्थना की थी। परिणामस्वरूप रघुकुलमें तुम्हारे रूपमें श्रीहरिका प्राकट्य हुआ है। महाबाहो ! धैर्य रखो। सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाली साध्वी सीता किसीके वशमें नहीं हो सकतीं। उनका मन निरन्तर तुम्हारे ध्यानमें संलग्न है। सीताके पीनेके लिये स्वयं इन्द्र एक पात्रमें रखकर कामधेनुका दूध भेजते हैं और उस अमृतके समान मधुर दूधको वे पीती हैं। कमलपत्रके समान विशाल नेत्रवाली सीताको स्वर्गीय सुरभि गौका दुग्धपान करनेसे भूख और प्यासका किंचिन्मात्र भी कष्ट नहीं है—यह स्वयं मैंने देखा है।

'राघव ! अब मैं रावणवधका उपाय बताता हूँ। इस आश्विन महीनेमें तुम श्रद्धापूर्वक नवरात्रका अनुष्ठान करनेमें लग जाओ। राम ! नवरात्रमें उपवास, भगवतीका आराधन तथा सविधि जप और होम सम्पूर्ण सिद्धियोंका दान करनेवाले हैं। बहुत पहले ब्रह्मा, विष्णु, महेश और स्वर्गवासी इन्द्रतक इस नवरात्रका अनुष्ठान कर चुके हैं। राम ! तुम सुखपूर्वक यह पवित्र नवरात्र-व्रत करो। किसी कठिन परिस्थितिमें पड़नेपर पुरुषको यह व्रत अवश्य करना चाहिये। राघव ! विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ और कश्यपद्वारा इस व्रतका अनुष्ठान हो चुका है—यह निश्चित बात है। अतएव राजेन्द्र ! तुम रावणवधके निमित्त इस व्रतका अनुष्ठान अवश्य करो। वृत्रासुरका वध करनेके लिये इन्द्र तथा त्रिपुरवधके लिये भगवान् शंकर भी इस सर्वोत्कृष्ट व्रतका अनुष्ठान कर चुके हैं। महामते ! मधुको मारनेके लिये भगवान् श्रीहरिने सुमेरुगिरिपर यह व्रत किया था। अतएव राघव ! सावधानीपूर्वक विधिके साथ तुम्हें भी वह व्रत अवश्य करना चाहिये।'

भगवान् रामने पूछा—दयानिधे ! आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं। विधिपूर्वक यह बतानेकी कृपा करें कि वे कौन देवी हैं, उनका क्या प्रभाव है, वे कहाँसे अवतरित हुई हैं तथा उन्हें किस नामसे सम्बोधित किया जाता है ?

नारदजी बोले—राम ! सुनो, वह देवी आद्याशक्ति है। सदा-सर्वदा विराजमान रहती है। उसकी कृपासे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। आराधना करनेपर दुःखोंको दूर करना उसका स्वाभाविक गुण है। रघुनन्दन ! ब्रह्मा प्रभृति सम्पूर्ण प्राणियोंकी निमित्त कारण वही है। उस शक्तिके बिना कोई भी हिल-डुलतक नहीं सकता। मेरे पिता ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शंकर संहार करते हैं। इनमें जो मङ्गलमयी शक्ति भासित होती है, वही यह देवी है। त्रिलोकीमें जो सत्-असत् कहीं कोई भी वस्तु सत्तात्मक रूपसे विराजमान है, उसकी उत्पत्तिमें निमित्त कारण इस देवीके अतिरिक्त और कौन हो सकता है। जिस समय किसीकी भी सत्ता नहीं थी, उस समय भी इस प्रकृति-शक्ति देवीका परिपूर्ण विग्रह विराजमान था। इसीकी शक्तिसे एक पुरुष प्रकट होता है और उसके साथ यह आनन्दमें निमग्न रहती है। यह युगके आरम्भकी बात है। उस समय यह कल्याणी निर्गुण कहलाती है। इसके बाद यह देवी सगुणरूपसे विराजमान होकर तीनों लोकोंकी सृष्टि करती है। इसके द्वारा सर्वप्रथम ब्रह्मा आदि देवताओंका सृजन और उनमें शक्तिका आधान होता है। इस देवीके विषयमें जानकारी प्राप्त हो जानेपर प्राणी जन्म-मरणरूपी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस देवीको जानना परम आवश्यक है। वेद इसके बाद प्रकट हुए हैं—अर्थात् वेदोंकी रचना

करनेका श्रेय इसीको है। ब्रह्मा आदि महानुभावोंने गुण और कर्मके भेदसे इस देवीके अनन्त नाम बतलाये हैं और वैसे ही कल्पना भी की है। मैं कहाँतक वर्णन करूँ। रघुनन्दन ! 'अ'कारसे 'क्ष'कारपर्यन्त जितने वर्ण और स्वर प्रयुक्त हुए हैं, उनके द्वारा भगवतीके असंख्य नामोंका ही संकलन होता है।

भगवान् रामने कहा—विप्रवर ! आप इस व्रतकी संक्षिप्त विधि बतलानेकी कृपा करें, क्योंकि अब मैं प्रीतिपूर्वक श्रीदेवीकी उपासना करना चाहता हूँ।

श्रीनारदजी बोले—राम ! समतल भूमिपर

एक सिंहासन रखकर उसपर भगवती जगदम्बाको पधराओ और नौ राततक उपवास करते हुए उनकी आराधना करो। पूजा सविधि होनी चाहिये।

राजन् ! मैं इस कार्यमें आचार्यका काम करूँगा; क्योंकि देवताओंका कार्य शीघ्र सिद्ध हो, इसके लिये मेरे मनमें प्रबल उत्साह हो रहा है।

व्यासजी कहते हैं—परम प्रतापी भगवान् रामने मुनिवर नारदजीके कथनको सुनकर उसे सत्य माना। एक उत्तम सिंहासन बनवानेकी व्यवस्था की और उसपर कल्याणमयी भगवती जगदम्बाके विग्रहको पधराया। व्रती रहकर भगवान्ने विधि-विधानके साथ देवी-पूजन

किया। उस समय आश्विन मास आ गया था। उत्तम किष्किन्धा-पर्वतपर यह व्यवस्था हुई थी। नौ दिनोंतक उपवास करते हुए भगवान् राम इस श्रेष्ठ व्रतको सम्पन्न करनेमें संलग्न रहे। विधिवत् होम, पूजन आदिकी विधि भी पूरी की गयी। नारदजीके बतलाये हुए इस व्रतको राम और लक्ष्मण—दोनों भाई प्रेमपूर्वक करते रहे। अष्टमी तिथिको आधी रातके समय भगवती प्रकट हुईं। पूजा होनेके उपरान्त भगवती सिंहपर बैठी हुई पधारीं और उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको दर्शन दिये। पर्वतके ऊँचे शिखरपर विराजमान होकर भगवान् राम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंके प्रति मेघके समान गम्भीर वाणीमें वे कहने लगीं। भक्तिकी भावनाने भगवतीको परम प्रसन्न कर दिया था।

देवीने कहा—विशाल भुजासे शोभा पानेवाले श्रीराम ! अब मैं तुम्हारे व्रतसे अत्यन्त

संतुष्ट हूँ। जो तुम्हारे मनमें हो, वह अभिलषित वर मुझसे माँग लो। तुम भगवान् नारायणके अंशसे प्रकट हुए हो। मनुके पावन वंशमें तुम्हारा अवतार हुआ है। रावण-वधके लिये देवताओंके प्रार्थना करनेपर ही तुम अवतरित हुए हो। इसके पूर्व भी मत्स्यावतार धारण करके तुमने भयंकर राक्षसका संहार किया था। उस समय देवताओंका हित करनेकी इच्छासे तुमने वेदोंकी रक्षा की थी। फिर कच्छपरूपसे प्रकट होकर मन्दराचलको पीठपर धारण किया। यों समुद्रका मन्थन करके देवताओंको अमृतद्वारा शक्तिसम्पन्न बनाया। राम ! तुम वराहरूपसे भी प्रकट हो चुके हो, उस समय तुमने पृथ्वीको दाँतके अग्रभागपर उठा रखा था। तुम्हारे हाथों हिरण्याक्षकी जीवन-लीला समाप्त हुई थी। नृसिंहरूप धारण करके तुम हिरण्यकशिपुको मार चुके हो। रघुकुलमें प्रकट होनेवाले श्रीराम ! तुमने नृसिंहावतारमें प्रह्लादकी रक्षा की और हिरण्यकशिपुको मारा। प्राचीन समयमें वामनका विग्रह धरकर तुमने बलिको छला। उस समय देवताओंका कार्य साधन करनेवाले तुम इन्द्रके छोटे भाई होकर विराजमान थे। भगवान् विष्णुके अंशसे सम्पन्न होकर जमदग्निके पुत्र होनेका अवसर तुम्हें प्राप्त हुआ। उस अवतारमें क्षत्रियोंको मारकर तुमने पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी। रघुनन्दन ! उसी प्रकार इस समय तुम राजा दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट हुए हो। तुम्हें अवतार लेनेके लिये सम्पूर्ण देवताओंने प्रार्थना की थी; क्योंकि उन्हें रावण महान् कष्ट दे रहा था। राजन् ! अत्यन्त बलशाली ये सभी वानर देवताओंके ही अंश हैं, ये तुम्हारे सहायक होंगे। इन सबमें मेरी शक्ति निहित है। अनघ ! तुम्हारा यह छोटा भाई लक्ष्मण शेषनागका अवतार है। रावणके पुत्र मेघनादको यह अवश्य मार डालेगा—इस विषयमें तुम्हें कुछ भी संदेह नहीं करना चाहिये। अब तुम्हारा परम कर्तव्य है, इस वसन्त ऋतुके नवरात्रमें असीम श्रद्धाके साथ उपासनामें तत्पर हो जाओ। तदनन्तर पापी रावणको मारकर सुखपूर्वक राज्य भोगो। ग्यारह हजार वर्षोंतक धरातलपर तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा। राघवेन्द्र ! राज्य भोगनेके पश्चात् पुनः तुम अपने परमधामको सिधारोगे।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। भगवान् रामके मनमें प्रसन्नताकी सीमा न रही। नवरात्र-व्रत समाप्त करके दशमीके दिन भगवान् रामने यात्रा कर दी। प्रस्थानके पूर्व विजयादशमीकी पूजाका कार्य सम्पन्न किया। जानकीवल्लभ भगवान् श्रीरामकी कीर्ति जगत्प्रसिद्ध है। वे पूर्णकाम हैं। प्रकट होकर परमशक्तिकी प्रेरणा करनेपर सुग्रीवके साथ श्रीराम समुद्रके तटपर गये। साथमें लक्ष्मणजी थे। फिर समुद्रमें पुल बाँधनेकी व्यवस्था करके देवशत्रु रावणका वध किया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवीके इस उत्तम चरित्रका श्रवण करता है, उसे प्रचुर भोग भोगनेके पश्चात् परमपदकी उपलब्धि होती है।

(अध्याय २९-३०)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका तीसरा स्कन्ध समाप्त

==★==

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## चौथा स्कन्ध

### जनमेजय और व्यासजीके अवतारविषयक प्रश्नोत्तर, कश्यपजीको वरुण और ब्रह्माका शाप तथा अदितिको दितिका शाप

जनमेजयने कहा—'मुनिवर व्यासजी ! आप सम्पूर्ण ज्ञानोंके अटूट भण्डार हैं। आपका अन्तःकरण परम पवित्र है। आपकी कृपासे ही हमारे कुलकी वृद्धि हुई है। प्रभो ! मैंने सुना है—जो बड़े प्रतापी थे, जिनके यहाँ स्वयं भगवान्‌का पुत्ररूपसे अवतार हुआ था, देवगण भी जिनका सत्कार करते थे और आनकदुन्दुभि नामसे जिनकी प्रसिद्धि थी, वे शूरसेननन्दन महाभाग वसुदेवजी सदा धर्मका पालन करते हुए भी कंसके कारागारमें बंदी बनाये गये। अपनी धर्मपत्नी देवकीके साथ उन्होंने कौन-सा ऐसा अपराध कर दिया था ? फिर देवकीके छः बालक क्यों मारे गये ? कंस भी तो ययातिका वंशज था। उसके द्वारा यह घृणित काम कैसे बन गया ? कारागारमें भगवान् श्रीहरिके अवतार लेनेका क्या कारण है ?' इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके अवतार तथा पाण्डवोंके सम्बन्धमें बहुत-सी शङ्काएँ करके जनमेजय फिर बोले—'क्षत्रियके वंशसे उत्पन्न कोई भी मानव ब्राह्मणसे द्वेष नहीं करता। मुने ! फिर मेरे पिताजी मौन रहकर तपस्वी जीवन व्यतीत करनेवाले ब्राह्मणके द्वेषी कैसे बन गये ? दयानिधे ! ये तथा अन्य भी बहुत-से संशयग्रस्त प्रसङ्गोंसे मेरा मन बहुत व्याकुल हो गया है। साधो ! आप पितातुल्य हैं। सम्पूर्ण विषयोंकी जानकारी आपको सुलभ है। अतः अब मेरे चित्तको शान्त करनेकी कृपा कीजिये।'

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार परीक्षित्‌कुमार जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे पूछा और चुप होकर बैठ गये। तब पुराणोंके पूर्ण जानकार एवं प्रवचन करनेमें कुशल व्यासजीने उनके प्रति संदेह दूर करनेवाले इस प्रकार वचन कहे।

व्यासजी बोले—राजन् ! इस विषयमें क्या कहा जाय—कर्मकी गति बड़ी गहन है। देवता-तक इसकी जानकारी प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। जबसे यह त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, तभीसे कर्मका सम्बन्ध है। सबकी उत्पत्तिमें कर्म ही कारण है। यद्यपि जीव स्वरूपतः जन्म और मरणसे रहित हैं, फिर भी कर्मरूपी बीजके प्रभावसे अनेक योनियोंमें बार-बार जन्मते और मरते रहते हैं। कर्म समाप्त हो जानेपर जीवका देहसे सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता। उत्तम, निन्द्य और उत्तम-निन्द्य-मिश्रित—इन तीनों गुणोंसे यह जगत् व्याप्त है। जो तत्त्वके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् हैं, उनके द्वारा भी कर्मोंका भेद तीन प्रकारसे ही बताया गया है। वे तीन प्रकारके कर्म संचित, प्रारब्ध और वर्तमान हैं। इस देहमें कर्मोंकी तीन गतियोंका सम्मिश्रण

रहता है। राजन्! ब्रह्मा आदि सभी उस कर्मके अधीन हैं। महाराज! सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध तथा लोभ—ये सभी देहसे सम्बन्ध रखनेवाले गुण हैं। प्रारब्धकी प्रेरणासे सबपर ये अपना प्रभाव डालते हैं। राग-द्वेष आदि भावोंसे स्वर्ग भी खाली नहीं है; क्योंकि देवताओं, मनुष्यों और पशुओं—सबसे ये सम्बन्ध रखते हैं। इन सभी विकारोंका देहसे ही सम्बन्ध रहता है। पूर्वजन्मके किये हुए वैर और स्नेहके अनुसार वे शरीरमें आश्रय पाते हैं। कर्म शेष न रहनेपर प्राणियोंकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। कर्मके विषयमें यह कारण नित्य माना जाता है। इसीसे चराचर सम्पूर्ण जगत्को साधारण जन नित्य समझते हैं। किंतु जगत् नित्य है या अनित्य—इस विचारमें मुनिगण निरन्तर निमग्न रहते हैं, फिर भी जान नहीं पाते कि यह जगत् नित्य है अथवा अनित्य ही। क्योंकि मायाके साम्राज्यमें यह जगत् नित्य प्रतीत होता है। कारणके रहते हुए कार्यका अभाव कैसे कहा जा सकता है। राजन्! कर्मबन्धनमें जकड़ा हुआ यह अखिल जगत् परिवर्तनशील तो है ही, जीवको नीच योनियोंमें भी जाना पड़ता है। यदि जीव स्वतन्त्र होता तो यह परिस्थिति सामने क्यों आती। भला, स्वर्गमें रहने और अनेक प्रकारके सुख भोगनेकी सुविधाको छोड़कर विष्ठा एवं मूत्रके भण्डारमें भयभीत होकर रहना कौन चाहता है। फूलोंसे खेलने, जलविहार करने और सुखदायी आसनपर बैठनेके आनन्दका परित्याग करके किस बुद्धिमान् व्यक्तिको गर्भमें वास करना अभीष्ट है। दिव्य शय्या और कोमल तकियेको छोड़कर गर्भमें औंधे मुख लेटे रहना किस विज्ञ पुरुषको अभीष्ट है। अनेक भावोंसे सम्पन्न संगीत, नृत्य और वाद्यको छोड़कर कौन ऐसा है, जिसके मनमें भी नरकवासका विचार उठ सकता है। कौन ऐसा विवेकी मानव है, जो लक्ष्मीकी कृपासे प्राप्त उत्तम रसको छोड़कर अत्यन्त त्याज्य विष्ठा-मूत्रसे संयुक्त रस पीना चाहता हो। त्रिलोकीमें गर्भवाससे बढ़कर दूसरा कोई नरक नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्यामें तत्पर हो जाते हैं। राज्य और उत्तम भोगका परित्याग करके वनमें जानेकी प्रवृत्ति इसीलिये मनस्वी व्यक्तियोंके मनमें हो जाती है। उपर्युक्त सुयोग्य व्यक्ति भी जिससे डर जाते हैं, उस गर्भवासको और कौन चाहेगा? गर्भमें कीड़े काटते हैं! नीचेसे जठराग्नि ताप पहुँचाती है। निर्दयतापूर्वक बँधे रहना पड़ता है। राजन्! ऐसे गर्भमें कैसा सुख। कारागारमें रहना उत्तम, लोहेकी जँजीरोंसे बँधे रहना ठीक, किंतु क्षणभर भी गर्भमें रहना कदापि उत्तम नहीं है। गर्भमें दस महीनेतक रहकर महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

गर्भसे बाहर निकलते समय भी वैसी ही कठिन परिस्थिति सामने आती है; क्योंकि निकलनेका मार्ग जो योनियन्त्र है, वह स्वयं दारुण है। फिर बचपनमें भी बोलने और जाननेकी शक्ति न रहनेके कारण दुःख भोगने पड़ते हैं। भूख और प्यासकी वेदना अलग सताती है। स्वयं वह कुछ कर नहीं सकता, अत्यन्त घबराया रहता है। जब बालक भूखसे रोता है, तब माता-पिताके मनोंमें बेचैनी हो जाती है। वे समझते हैं, कोई कठिन रोग हो गया है, जिसकी व्यथासे बच्चा रो रहा है। इससे माताके मनमें बच्चेको दवा पिलानेकी इच्छा

उत्पन्न हो जाती है। यों बचपनमें नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। फिर विवेकी पुरुष किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा कर सकते हैं। देवताओंके साथ निरन्तर सुख भोगनेकी सुविधा छोड़कर सुखविघातक एवं खेद उत्पन्न करनेवाला काम करना कौन मूर्ख चाहता है। नृपवर ! देवता, मनुष्य एवं पशु आदिका शरीर धारण करके किये हुए अच्छे-बुरे कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। तप, यज्ञ और दानके प्रभावसे मनुष्य इन्द्र बन सकता है और पुण्य समाप्त हो जानेपर इन्द्र भी धरातलपर आते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है।

जब भगवान्ने श्रीरामावतार धारण किया था, तब उनके सम्पर्कसे देवता वानर बनकर पृथ्वीपर विचरे। श्रीकृष्णावतारमें सहायता करनेके लिये देवताओंको यादव बनना पड़ा था। इस प्रकार विविध योनियोंमें भगवान्के अनेकों अवतार होते हैं। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे धर्मकी रक्षाके लिये प्रकट होते हैं। राजन् ! रथके चक्रेकी भाँति भगवान्के अवतारक्रमकी गति बड़ी ही विलक्षण है। दैत्योंका वध करना भगवान्का निजी काम है। ये महान् पुरुष हैं, कभी अंशसे तथा कभी अंशके अंशसे पृथ्वीपर पधारकर इस कार्यको सम्पन्न करते हैं। अतः अब मैं श्रीकृष्णावतारकी पवित्र कथा कहूँगा। स्वयं भगवान् विष्णु ही यदुकुलमें अवतरित हुए थे। प्रतापी वसुदेवजी कश्यप मुनिके अंश हैं। इन्हें पूर्व समयमें शाप लग गया था। राजन् ! उसीके फलस्वरूप इन्हें गोवृत्ति स्वीकार करनी पड़ी। नरेन्द्र ! मुनिवर कश्यपके दो पत्नियाँ थीं—अदिति और सुरसा। भरतश्रेष्ठ ! ये ही देवकी और रोहिणी—इन दोनों बहिनोंके रूपमें प्रकट हुईं। वरुणने क्रोधवश इन्हें घोर शाप दे दिया था। इसी शापके कारण इन स्त्री-पुरुष सभीको इस धरातलपर जन्म लेना पड़ा।

राजा जनमेजयने पूछा—महामते ! मुनिवर कश्यपजीके द्वारा कौन-सा अपराध हो गया, जिससे उन्हें वरुणने शाप दे दिया और पत्नियों-सहित वे जगत्में क्यों पधारे—यह बतानेकी कृपा करें। रमापति भगवान् विष्णु सदा वैकुण्ठमें विराजमान रहते हैं। वे पूर्णब्रह्म परमेश्वर हैं। गोकुलमें उनके अवतरित होनेका क्या कारण है ? भगवान् नारायण अविनाशी परम प्रभु हैं। सम्पूर्ण देवताओंपर उनका आधिपत्य है। युगके आदिमें सबको वे धारण किये रहते हैं, उनपर किसका शासन रहता है ? वे भगवान् श्रीहरि अपना दिव्य धाम छोड़कर क्यों कर्मशील व्यक्तिकी भाँति आचरण करने लगते हैं ? मानव-कुलमें उनके प्रकट होनेका क्या कारण है ? इस विषयमें मुझे महान् शङ्का उत्पन्न हो रही है। भगवान् विष्णु शाश्वत सुखका परित्याग करके मानव-शरीर स्वीकार करते हैं—इसका क्या प्रमाण है ? मुनिवर ! किस मानव-सुखको उत्तम समझकर भगवान् भूमिपर पधारे ? परम ब्रह्म श्रीहरिने रामावतार धारण किया था। उस समय वे भयंकर वनमें गये और वहाँ उन्हें गुरुतर दुःख भोगना पड़ा। सीतासे वियोग हुआ, इसका दुःख, संग्रामजनित दुःख तथा फिर सीता त्याग दी गयीं—यह दुःख; इस प्रकार वे महान् पुरुष होते हुए ही बार-बार दुःखका अनुभव करते रहे। वैसे ही श्रीकृष्णावतारमें भी हुआ। कारागारमें जन्म हुआ, फिर वे गोकुलमें पहुँचाये गये। वहाँ उन्हें गौएँ चरानी पड़ीं। कितना कष्ट सहकर

कंसको मारा और फिर द्वारकाके लिये प्रस्थित हुए। यों भगवान्‌ने अनेक दुःखोंका सामना किया—यह क्यों ? मुने ! आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं। मेरे चित्तमें उठे हुए संदेहको शीघ्र दूर करनेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् विष्णुका अवतार होता है—इसमें विविध कल्पोंमें लीलाजगत्‌के बहुत-से कारण होते हैं। भगवान्‌के साथ देवता भी अपने अंशसे धरातलपर आते हैं—इसमें भी कारण होते हैं। पहले वसुदेव, देवकी और रोहिणीके अवतारका कारण बताता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। एक समयकी बात है, श्रीमान् कश्यपजी यज्ञ सम्पन्न करनेके लिये वरुणकी दिव्य गाय ले आये थे। वरुणने बहुत प्रार्थना की, किंतु कश्यपने गौको लौटाया नहीं। तब वरुण जगत्प्रभु ब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने उनको प्रणाम किया और अत्यन्त कातर होकर विनयपूर्वक अपना दुःख प्रकट करते हुए कहा—'महाभाग ! मैं क्या करूँ ? बहुत प्रार्थना करनेपर भी कश्यप मेरी गौ नहीं लौटा रहे हैं। अतः मैंने उनको शाप दे दिया है कि तुम मानववंशमें गोपाल होकर जीवन व्यतीत करो। तुम्हारी दोनों स्त्रियाँ भी वहीं जन्म ग्रहण करें। इस समय मेरी गायके अभावमें बछड़े अत्यन्त दुःखी होकर डकरा रहे हैं, उसीके फलस्वरूप अदितिको मृतवत्सा होकर धरातलपर जाना पड़ेगा। वह कारागारमें रहेगी। इसके कारण भी उसे अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे।'

व्यासजी कहते हैं—वरुणकी यह बात सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने कश्यप मुनिको बुलाया और कहा—'महाभाग ! तुम लोकपाल वरुणकी गौ उन्हें देते क्यों नहीं ? महाभाग ! तुमसे कोई बात अविदित नहीं है। तुम बड़े बुद्धिमान् हो। न्याय जानते हुए भी ऐसे कार्यमें तुम्हारी प्रवृत्ति कैसे हो गयी ? लोभ बड़ा बलवान् है। यह किसीको नहीं छोड़ता। इसके प्रभावसे नरककी प्राप्ति होती है, अनेकों पाप बन जाते हैं। किसीने भी इसका समर्थन नहीं किया है। कश्यप भी उस लोभका परित्याग करनेमें असमर्थ रहे। उन शान्तस्वभाव मुनियोंको धन्यवाद है, जिन्होंने लोभको जीत लिया है। वे वनमें रहते हैं, उनके मनमें सदा शान्ति बनी रहती है। कभी दान स्वीकार नहीं करते। संसारमें सबसे बलवान् शत्रु लोभ है। यह सदा अपवित्र बनाये रखता है। इस नीच लोभसे स्नेह होनेके कारण कश्यपका विचार भी भ्रष्ट हो गया है।' यों कहनेके पश्चात् ब्रह्माने भी मुनिवर कश्यपको शाप दे दिया। यद्यपि कश्यपजी ब्रह्माजीके प्रीतिभाजन पौत्र थे, फिर भी धर्मकी मर्यादाका रक्षण करनेके लिये ब्रह्माजीकी इस कार्यमें प्रवृत्ति हो ही
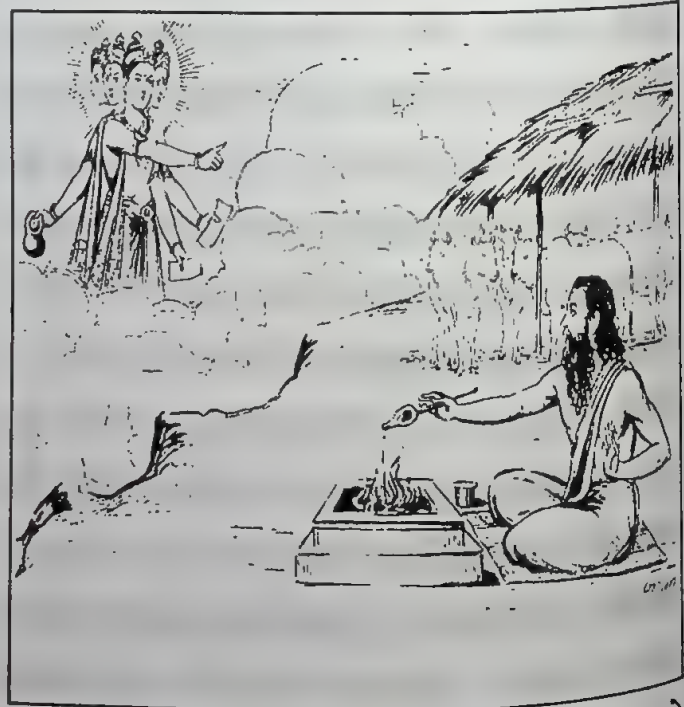
गयी। कहा—'कश्यप ! तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर जाओ। तुम्हें यदुकुलमें जन्म लेना

होगा। दोनों पत्नियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी। वहाँ तुम गोपाल बनकर रहोगे।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार वरुण और ब्रह्मा—दोनोंके शाप देनेपर भूमिका भार हलका करनेके निमित्त कश्यपजी अपने अंशसे अवतरित हुए। ऐसे ही अत्यन्त शोकसे संतप्त होकर दितिने अदितिको शाप दे दिया—'जन्म लेते ही तुम्हारे सात पुत्र प्राणोंसे हाथ धो बैठें।'

जनमेजयने पूछा—मुनिवर! दिति और अदिति दोनों सगी बहनें थीं। फिर अत्यन्त शोकातुर होकर दितिने अदितिको शाप क्यों दे दिया? मुने! इसका कारण बतानेकी कृपा कीजिये। उन्हें शोक क्यों हुआ था?

सूतजी कहते हैं—राजा जनमेजयके पूछनेपर व्यासजी सम्यक् प्रकारसे सावधान होकर शापका कारण बताने लगे।

व्यासजी बोले—राजन्! दक्ष प्रजापतिकी दो कन्याएँ थीं—दिति और अदिति। दोनोंका स्वभाव बड़ा उत्तम था। कश्यपजीकी प्रेयसी भार्या होनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ। अदितिके पुत्र प्रतापी इन्द्र हुए। जैसे इन्द्र थे, वैसे ही पुत्रके लिये दितिके मनमें भी इच्छा उत्पन्न हुई। तब सुन्दरी दितिने कश्यपजीसे प्रार्थना की—'मानद! आप मुझे इन्द्रके समान पराक्रमी, धर्मात्मा एवं शक्तिशाली वीर पुत्र देनेकी कृपा करें।' मुनिवर कश्यपने कहा—'प्रिये! धैर्य रखो। मेरे कहे अनुसार व्रत करनेपर इन्द्रके समान पराक्रमी पुत्र तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।' मुनिकी उपर्युक्त बात सुनकर दिति उस उत्तम व्रतके पालनमें तत्पर हो गयी। मुनिके प्रसादसे उसके सुन्दर गर्भ स्थापित हो गया। उस पयोव्रतमें संलग्न होकर दिति भूमिपर सोती थी। पवित्रताका पूर्णरूपसे पालन करती थी। यों क्रमशः जब वह महान् तेजस्वी गर्भ पूर्ण हो गया, तब दितिके शरीरसे ज्योति फैलने लगी। उसे देखकर अदितिके मनमें अपार दुःख हुआ। उसने सोचा—'यदि दिति इन्द्रके समान महान् पराक्रमी पुत्रकी जननी हो गयी तो मेरा पुत्र अवश्य ही निस्तेज हो जायगा।' इस चिन्तासे चिन्तित होकर मानिनी अदितिने अपने पुत्र इन्द्रसे कहा—'अब तुम्हारा अत्यन्त प्रतापी शत्रु दितिके गर्भसे उत्पन्न हो रहा है। तुम अभीसे समझ-बूझकर उपायमें लग जाओ। प्यारे पुत्र! तुम्हारे द्वारा ऐसा यत्न होना चाहिये कि दितिकी गर्भोत्पत्ति ही उच्छिन्न हो जाय। वह सुन्दरी दिति सौतियाडाह करनेपर आ तुली है। उसे देखकर मैं चिन्तित हो गयी हूँ। सुखके मर्मको मिटा देनेवाली भारी चिन्ता मेरे हृदयमें चोट पहुँचा रही है। बेटा! तुम बड़े भाग्यशाली हो। यदि तुम मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हो तो साम, दान अथवा बल—किसी भी उपायका प्रयोग करके दितिके गर्भका संहार कर डालो।'

व्यासजी कहते हैं—माता अदितिकी बात सुनकर देवराज इन्द्रने कुछ समयतक मनमें विचार किया। तत्पश्चात् वे अपनी विमाता दितिके पास चले गये। राजन्! उस समय इन्द्रकी बुद्धिमें पाप बस गया था। उन्होंने विनयपूर्वक दितिके चरणोंमें मस्तक झुकाया और जिनके भीतर कूट-कूटकर विष भरा हुआ था, ऐसे बाह्य-मधुर वचनोंमें नम्रताके साथ वे कहने लगे।

इन्द्र बोले—'माता! तुम व्रत कर रही हो। तुम्हारा शरीर क्षीण हो चुका है। तुममें अत्यन्त दुर्बलता आ गयी है। मैं सेवा करनेके विचारसे

यहाँ आया हूँ। आज्ञा दो, मैं तुम्हारी कौन-सी उचित सेवा करूँ ? पतिव्रते ! मैं तुम्हारे चरण दबाऊँगा। बड़ोंकी सेवासे पुरुषको वह पवित्र गति मिलती है, जो कभी नष्ट नहीं हो सकती। जैसे मेरी माता अदिति है, वैसे ही तुम भी हो।' यह वचन कहकर इन्द्रने दितिके दोनों पैर पकड़ लिये और उन्हें सहलाने लगे। दिति परम साध्वी थी। उसके नेत्र बड़े सुन्दर थे। इन्द्रद्वारा धीरे-धीरे पैर दबाये जानेपर व्रत करनेसे थकी हुई दितिको बड़ा आराम मिला। अतः उसे नींद खींचने लगी। उस समय इन्द्र उसके पूर्ण विश्वासपात्र बन चुके थे। इधर इन्द्रने दितिको नींदमें अचेत देखकर अपना एक अत्यन्त छोटा-सा रूप बनाया और हाथमें अस्त्र लेकर बड़ी सावधानीके साथ वे उसके शरीरमें घुस गये। योगबलके प्रभावसे वे उदरमें चले गये और तुरंत वज्रद्वारा उस गर्भको सात भागोंमें उन्होंने काट डाला। वज्रसे चोट पहुँचाये जानेपर वह गर्भस्थ बालक रोने लगा। तब इन्द्रने बड़े धीमे स्वरमें कहा—'मा रुद' अर्थात् रोओ मत ! राजन्! वे सातों टुकड़े इन्द्रके द्वारा पुनः सात-सात भागोंमें काट दिये गये। फिर तो उनचास पवनोंके रूपमें उस गर्भस्थ बालककी सत्ता स्थिर हो गयी। इतना काण्ड हो जानेपर सुन्दरी दितिकी नींद टूटी। गर्भके काटे जानेका वास्तविक रहस्य उसे ज्ञात हो गया। समझ लिया, इन्द्रने धोखा दिया है। उसके मनपर बड़ा आघात पहुँचा। वह क्रोधसे भर गयी। इस घृणित कार्यमें मेरी बहन अदितिका हाथ है—यह जानकर सत्यव्रतमें संलग्न रहनेवाली देवी दितिने अदिति और इन्द्र दोनोंको क्रोधवश शाप दे दिया—'जिस प्रकार तेरे पुत्र इन्द्रने छल करके मेरे गर्भको काट दिया है, वैसे ही इसका भी नाश हो जाय अर्थात् यह त्रिलोकीके राज्यसे वञ्चित हो जाय। जिस प्रकार पापात्मा अदितिने घृणित कर्मके द्वारा मेरे गर्भका संहार करा दिया है—मेरे गर्भस्थित बच्चेकी हत्या करा दी है, वैसे ही उसके भी बालक उत्पन्न होते ही बार-बार मृत्युके ग्रास बन जायँ। साथ ही, पुत्रशोकसे

अत्यन्त शोकाकुल होकर उसे कारागारमें रहना पड़े। दूसरे जन्ममें इसे मृतवत्सा होना पड़े।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार दिति शाप दे रही थी। उसके वचन कश्यपजीके कानोंमें पड़े। प्रेमवश दितिको शान्त करते हुए-से वे कहने लगे—'कल्याणी ! क्रोध मत करो। तुम्हारे गर्भसे अत्यन्त बलवान् पुत्र होंगे। उन्हें देवता होनेका सुअवसर प्राप्त होगा। उन सबकी 'मरुत्' संज्ञा होगी और वे इन्द्रके मित्र होंगे। वामोरु ! तुमने जो अभी शाप दिया है, यह अट्ठाईसवें द्वापरमें फलित होगा। यह सुन्दरी अदिति मानवयोनिमें उत्पन्न होकर इसका फल भोगेगी। वरुणने भी संतप्त होकर मुझे शाप दे दिया है। दोनों शाप एक साथ चलेंगे।

इनके फलस्वरूप अदितिका मानुषी बनना अवश्यम्भावी है।'

व्यासजी कहते हैं—जब पतिदेव कश्यपजीने यों आश्वासन दिया, तब देवी दितिके मुखकी म्लानता दूर हो गयी। इसके बाद उस सुन्दरीके मुखसे कोई कटु वचन नहीं निकला। राजन्! पूर्वशापका यही कारण है, जो तुम्हें बता दिया। राजेन्द्र! वही देवी अदिति अपने अंशसे देवकी हुई थी।

(अध्याय १—३)

☆

## जनमेजयके पूछनेपर व्यासजीके द्वारा मायाकी महिमाका कथन

राजा जनमेजयने कहा—महाभाग! इस उपाख्यानको सुनकर मैं बड़े ही आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। महामते! यह संसार पापका साकार विग्रह ही है। इसके बन्धनसे छूटनेका क्या उपाय है? इन्द्र कश्यपजीकी संतान थे। फिर भी उन्होंने ऐसा निन्दित कर्म कर डाला, गर्भमें पैठकर बालककी निर्मम हत्या कर डाली। भला, जो सबके शासक, धर्मके रक्षक और त्रिलोकीके स्वामी थे, उनसे ऐसा घृणित कर्म हो गया तो फिर दूसरे कौन बच सकते हैं। जगद्गुरो! कुरुक्षेत्रमें युद्ध छिड़ा था। संसार मिथ्या है—इस बातको कौरव-पाण्डव दोनों पक्षके लोग जानते थे। पाण्डवोंको देवताका अवतार माना जाता था। धर्ममें उनकी अटल श्रद्धा भी थी, फिर भी वे निन्द्य कर्ममें क्यों लग गये? भगवती श्रुति कहती है कि धर्मका पहला चरण सत्य, दूसरा चरण शौच, तीसरा चरण दया और चौथा चरण दान है। पुराणके जानकार पुरुष भी यही कहते हैं। उन पैरोंके अभावमें धर्मका ठहरना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। किया हुआ धर्महीन कार्य कैसे उत्तम फल दे सकता है। जगत्प्रभु भगवान् विष्णु भी छल करके बलिको ठगनेके लिये वामनरूप धारण कर चुके हैं। महाराज बलि सौवें यज्ञमें प्रवृत्त थे। वेदकी आज्ञाका पालन करना उनका स्वाभाविक गुण था। वे बड़े धर्मात्मा, दानी, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय थे। शक्तिशाली श्रीविष्णुके उद्योगसे उन्हें अनायास अपने स्थानसे वञ्चित हो जाना पड़ा। व्यासजी! मैं यह जानना चाहता हूँ, इसमें किसकी विजय हुई—बलिकी अथवा वामनकी? द्विजवर! आप निष्कपटभावसे सच्ची बात बतानेकी कृपा करें। आप पुराणके रचयिता हैं। धर्मका रहस्य आपको भलीभाँति विदित है। आपकी बुद्धि भी बड़ी विमल है।

व्यासजी बोले—राजन्! महाराज बलि ही विजयी हुए, जिन्होंने पृथ्वी दान कर दी। नरेन्द्र! जो त्रिविक्रम नामसे प्रसिद्ध थे, उन्हें भी कपटके प्रभावसे वामन होना पड़ा और फिर वे भगवान् बलिके यहाँ द्वारपाल होकर रहे। अतएव राजन्! सत्यके सिवा दूसरा कोई भी धर्मका मूल नहीं है। परंतु राजन्! सम्यक् प्रकारसे सत्यका पालन करना प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है; क्योंकि त्रिगुणात्मिका माया बहुरूपिणी है और इसमें अपार बल है। इसीसे यह जगत्, जो तीनों गुणोंसे रँगा हुआ है, बना है। अतः राजन्! जिसमें छलका किंचिन्मात्र भी समावेश न हो, ऐसे सत्यकी कैसे सम्भावना की जाय। सत्यमें कुछ-न-कुछ कपट मिला ही रहता है। हाँ, जो निरन्तर वनमें रहते हैं, जिनका

किसीसे लगाव नहीं है, किसीसे कुछ लेते नहीं, किसीके प्रति आसक्ति नहीं तथा जिनकी तृष्णाएँ सर्वथा शान्त हो चुकी हैं, ऐसे मुनिगण अवश्य सत्यवादी सिद्ध होते हैं। उनका वैसा ही वातावरण बना हुआ है, जिससे उन्हें कभी झूठ बोलनेका अवसर ही नहीं आता। सत्यके विषयमें वे उदाहरणस्वरूप हैं। राजन्! शेष सम्पूर्ण जगत्पर सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणोंकी गहरी छाप पड़ी हुई है। सत्त्व, रज और तम—ये सभी गुण परस्पर सम्मिलित हैं। ये सब अलग-अलग नहीं रह सकते। धर्म सत्य है और सदा रहता है, किंतु किसीकी बुद्धि इसपर ठहरने नहीं पाती; क्योंकि प्राणीपर मायाका अमिट आवरण पड़ा हुआ है। महाराज! इन्द्रियाँ प्रमथनशील हैं। इनके विषयोंमें मन निरन्तर उलझा रहता है। उन गुणोंकी अत्यन्त प्रेरणासे प्राणीमें भाँति-भाँतिके भाव उठते रहते हैं।

राजन्! ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जितने चर और अचर प्राणी हैं, उन सबपर मायाका अधिकार है। जगत्में सभीके साथ माया मनोरञ्जन किया करती है। सबको निरन्तर मोहमें डाले रखना इसका स्वाभाविक गुण है। राजन्! मनुष्य कार्यवश सदा असत्यका आश्रय लेता है। अतः सर्वप्रथम पुरुषका कर्तव्य यह है कि जिस समय वह कार्य करनेमें प्रवृत्त हो, मनको विषय-चिन्तनमें न उलझने दे; क्योंकि विषय-भोगके लिये ही मनुष्य कपट कर बैठता है और कपटसे पापका उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। फिर तो प्रबल वैरी काम, क्रोध और लोभ जग उठते हैं। इनके वशमें हो जानेपर मनुष्य यह नहीं जान पाते कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। धन हो गया तो मनमें असीम अहंकार उत्पन्न हो जाता है। अहंकारसे मोह और मोहसे मरण होना बिलकुल निश्चित है। उस स्थितिमें अनेक प्रकारके संकल्प और विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं। मनमें ईर्ष्या, असूया और द्वेषकी उत्पत्ति हो जाती है। प्राणियोंके मनमें आशा, तृष्णा, दम्भ, दीनता और नास्तिकता आदि भाव मोहसे ही उत्पन्न होते हैं। अहंकारसे भरा हुआ पुरुष 'मैं', 'मैं' किया करता है। उसका सबमें मेरापन छाया रहता है। किंतु यह विचार उत्तम नहीं माना जा सकता; क्योंकि राग और लोभसे किये हुए कर्ममें सर्वत्र अपवित्रता रहती है। अतः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि किसी भी कार्यको आरम्भ करते समय पहले द्रव्यपर दृष्टिपात कर ले। जिसके उपार्जन करनेमें किसीसे द्रोह न करना पड़े, वही धन धार्मिक कार्यमें श्रेष्ठ माना जाता है। राजेन्द्र! द्रोहपूर्वक उपार्जन किये हुए द्रव्यके द्वारा मनुष्य जो उत्तम कार्य करता है, उसका समयपर उलटा फल ही सामने आता है*।

इसलिये मनकी पवित्रता परम आवश्यक है। जिसके मनमें किसी प्रकारके अपवित्र भाव नहीं हैं, वही समीचीन फलका भागी हो सकता है। मनमें अशुद्ध विचार भरे रहनेपर यथार्थ फल मिलना बिलकुल असम्भव है। यज्ञादि कर्मोंमें आचार्य एवं ऋत्विक् प्रभृति जितने कार्यकर्ता हों, उन सबका अन्तःकरण पवित्र होना चाहिये;

* अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि॥ × × × ×
द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत् करोति शुभं नरः। विपरीतं भवेत् तत् तु फलकाले नृपोत्तम॥ (४।४।४१-४२)

तभी यज्ञका पूर्ण फल सुलभ हो सकता है। देश, काल, क्रिया, कर्ता, द्रव्य और मन्त्र—इन सबकी शुद्धता वाञ्छनीय है। इनमें शुद्धता रहती है तो कर्मके सम्पूर्ण फल भोगे जा सकते हैं। शत्रु मर जायँ और मेरी सबसे बढ़कर उन्नति हो—इस उद्देश्यसे मनुष्य जो यज्ञ-दान आदि पुण्य कार्य करता है, उसका फल उसे उलटा ही मिलता है। स्वार्थी मनुष्य यह नहीं जानता कि कौन-सा कार्य उत्तम है और कौन निषिद्ध। वह निरन्तर पापकर्ममें संलग्न रहता है, एक भी उत्तम कर्म उससे नहीं हो पाता। वेद कहते हैं कि देवताओंकी सत्त्वगुणसे, मनुष्योंकी रजोगुणसे और पशु प्रभृतिकी तमोगुणसे उत्पत्ति होती है। इससे देवता सत्त्वप्रधान ठहरते हैं, फिर भी वे परस्पर वैरभाव बनाये रखते हैं। तब फिर पशु परस्पर वैर रखते हों—इसमें कौन-सी विचित्र बात है। देवता भी निरन्तर द्रोहमें तत्पर रहते हैं, किसीकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित कर देना उनका स्वाभाविक गुण बन गया है। उनके मनमें कभी प्रसन्नता नहीं रहती। वे सदा द्वेषी बनकर परस्पर वैर ठाने रहते हैं। राजन् ! यह संसार ही अहंकारसे उत्पन्न हुआ है। अतः राग-द्वेष इससे अलग हो ही कैसे सकते हैं।

(अध्याय ४)

☆

## श्रीनर-नारायणको तपसे डिगानेमें इन्द्रकी असफलता और इन्द्रके द्वारा कामदेव एवं वसन्तका अप्सराओंसहित वहाँ भेजा जाना, नारायणके द्वारा उर्वशी आदिकी उत्पत्ति और नारायणके साथ अप्सराओंका संवाद

व्यासजी कहते हैं—राजेन्द्र ! अब बहुत कहनेसे क्या मतलब—बस, इस संसारमें कहीं बिरला ही ऐसा सच्चा धर्मात्मा पुरुष मिल सकता है, जिसकी बुद्धि द्रोहसे वञ्चित हो; क्योंकि यह चराचर सारा जगत् राग और द्वेषसे ओत-प्रोत है। जो वैर करता हो, उसके प्रति वैर करना तो समान कोटिमें माना जा सकता है; किंतु जो अद्वेषी और शान्त स्वभावका पुरुष है, उसके साथ द्वेष करनेको नीचता कहते हैं। सात्त्विक स्वभाववालोंके लिये सत्ययुग, राजस स्वभाववालोंके लिये त्रेतायुग और तामस स्वभाववालोंके लिये कलियुग सदा सामने है। क्रियासे युगका सम्बन्ध कहा गया है। सत्य-धर्मका पालन करनेवाला कोई भी पुरुष कभी भी सत्ययुगी कहला सकता है। अन्यथा अन्य युगोंके धर्ममें तो सभी तत्पर हैं ही। राजन् ! धर्मकी स्थितिमें वासना प्रधान कारण मानी जाती है। वासनामें मलिनता रहना स्वाभाविक है। उसीके प्रभावसे धर्ममें भी मलिनता आ जाती है। मलिन वासना कभी भी धर्मको शुद्ध-रूपमें नहीं रहने देती।

धर्म ब्रह्माके पुत्र कहे जाते हैं। ब्रह्माके हृदयसे उनकी उत्पत्ति हुई थी। सत्य-धर्मका पालन करनेवाले धर्म ब्राह्मणरूपसे विराजमान थे। उनके द्वारा वैदिक धर्मका निरन्तर पालन होता रहा। उन महात्मा धर्मने दक्ष प्रजापतिकी दस कन्याओंसे अपना विवाह किया। विवाह-संस्कारके समय जितने नियम ग्रहण किये जाते हैं, उन सबका पालन करते हुए उनका गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत होने लगा। फिर सत्यव्रतियोंमें श्रेष्ठ धर्मने उन कन्याओंसे बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। राजन् ! उन पुत्रोंके नाम हरि, कृष्ण, नर

और नारायण रखे गये। हरि और कृष्णके द्वारा निरन्तर योगाभ्यास चालू रहा। नर और नारायण हिमालय पर्वतपर गये और बदरिकाश्रम नामक पवित्र स्थानमें उन्होंने उत्तम तपस्या आरम्भ कर दी। वे प्राचीन मुनिवर नर-नारायण तपस्वियोंमें सबसे प्रधान गिने जाने लगे। गङ्गाके विस्तृत तटपर रहकर ब्रह्मका चिन्तन करना उनका स्वभाव ही बन गया था। भगवान् श्रीहरिके अंशावतार उन नर-नारायण नामक दोनों ऋषियोंने वहाँ रहकर पूरे एक हजार वर्षोंतक उत्तम तप किया। उनके तपजनित तेजसे चराचरसहित सम्पूर्ण संसार संतप्त हो उठा। फिर तो इन्द्रके मनमें नर-नारायणके प्रति डाह उत्पन्न हो गया। वे चिन्तासे घिर गये। उन्होंने विचार किया, 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? ये धर्मनन्दन नर-नारायण बड़े तपस्वी और ध्यानपरायण हैं। इन्हें सिद्धि सुलभ हो चुकी है। अब अवश्य ही ये मेरे उत्तम आसनको छीन लेंगे। किस प्रकार विघ्न उपस्थित करूँ, जिससे इनकी तपस्या रुक जाय।' यों विचार करते ही अत्यन्त भयंकर काम, क्रोध और लोभ—इन्द्रके मनमें उत्पन्न हो गये। उन्हें उद्देश्य बनाकर वे तुरंत ऐरावतपर सवार हुए और तपमें विघ्न उपस्थित करनेके विचारसे गन्धमादन पर्वतपर पहुँच गये। वहाँ एक परम पवित्र आश्रम था, जहाँ नर-नारायण विराजमान थे। उनपर इन्द्रकी दृष्टि पड़ी। तपके प्रभावसे नर-नारायणका शरीर इस प्रकार चमक रहा था, मानो सूर्य उगे हुए हों। सोचा, 'अरे, क्या ये स्वयं विष्णु प्रकट हुए हैं अथवा साथ ही दो सूर्योंका उदय हो गया है ? पता नहीं, धर्मके ये दोनों श्रेष्ठ कुमार तपस्याके प्रभावसे क्या कर डालेंगे।' यों मनमें विचार करनेके पश्चात् शचीपति इन्द्रने नर-नारायणकी ओर दृष्टि डाली और कहा—'धर्मनन्दन ! तुम अवश्य ही महान् भाग्यशाली हो। बताओ, तुम्हें कौन-सा कार्य अभीष्ट है ? ऋषियो ! मैं उत्तम एवं श्रेष्ठ वर देनेको तैयार हूँ और इसीलिये यहाँ आया हूँ। तुम्हारी तपस्याके प्रभावसे संतुष्ट होकर जो नहीं देने योग्य है, वह भी वर मैं तुम्हें दे दूँगा।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार देवराज इन्द्र नर-नारायणके सामने खड़े होकर बार-बार कहते रहे। परंतु उन ऋषियोंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे ध्यानमें निमग्न थे। उनके चित्तमें किसी प्रकारकी हलचल नहीं थी। तब इन्द्रने भय उत्पन्न करनेवाली मोहिनी माया फैलायी। बहुत-से भेड़िये, सिंह और बाघ उत्पन्न हो गये। उनसे नर-नारायणको भयभीत करनेकी चेष्टा

की। आँधी, वर्षा और आग लगनेका दृश्य बार-बार उपस्थित किया। यों इन्द्र अत्यन्त मोहमें डालनेवाली मायाकी रचना करके धर्मनन्दन मुनिवर नर-नारायणको डरानेमें लगे रहे; किंतु उनपर भयका किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़

सका। वे वशमें न हो सके। उनकी ऐसी स्थिति देखकर इन्द्र अपने घर लौट गये। वर पानेकी बात नर-नारायणको लुब्ध न कर सकी। आँधी आदिसे वे नहीं डरे। सिंह और बाघ बार-बार आते रहे; किंतु मुनिका एक डग भी अपने आश्रमसे इधर-उधर न हुआ। उस समय नर-नारायणके ध्यानको भङ्ग करनेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सका। इन्द्र अपने घर लौटकर कष्टसे समय व्यतीत करने लगे। सोचा, इन श्रेष्ठ मुनियोंको भय और लोभ दिखाकर कोई विचलित नहीं कर सकता। आदिशक्ति भगवती जगदीश्वरी महाविद्या नामसे विख्यात हैं। उन परा प्रकृति देवीका रूप बड़ा ही विलक्षण है। वे सदा रहती हैं। नर और नारायण उन्हींका चिन्तन कर रहे थे। भला, भगवतीका ध्यान करनेवालेका चाहे कोई कितनी ही माया क्यों न जानता हो, प्रतीकार करनेमें कौन समर्थ हो सकता है, क्योंकि देवताओं और दानवोंके पास जितनी मायाएँ हैं, उन सबकी उत्पत्ति तो देवीसे ही होती है। फिर वे देव एवं दानव सम्बन्धिनी मायाएँ देवीके उपासकको कैसे अटका सकती हैं। देवीका ध्यान करनेवालेके पापका अत्यन्त अभाव हो जाता है। भगवतीके प्रधान मन्त्र वाग्बीज, कामबीज और मायाबीज हैं। जिसके चित्तमें भगवतीके उपर्युक्त मन्त्रको स्थान प्राप्त हो चुका है, उसके कार्यमें बाधा पहुँचानेके लिये कोई समर्थ नहीं हो सकता। किंतु इन्द्र मायावश अपनी विवेक-शक्तिसे हाथ धो बैठे थे। अतः नर-नारायणका प्रतीकार करनेके लिये उन्होंने पुनः कामदेव एवं वसन्त-ऋतुको बुलाया और यह वचन कहा—'कामदेव ! तुम वसन्त-ऋतु और रतिके साथ अभी प्रस्थित हो जाओ। अप्सराओंको साथ लेकर तुरंत गन्धमादन पर्वतपर जाओ। वहीं बदरिकाश्रम नामक निर्जन स्थानमें पुराणपुरुष नर-नारायण, जिनकी ऋषियोंमें प्रधानता है, बैठकर तपस्या करते हैं। मन्मथ ! उनके पास पहुँचकर उनके चित्तको कामातुर कर देना परम आवश्यक है। इस समय मेरे कार्य-साधक तुम्हीं हो। उन्हें मोहित और उच्चाटित करके शीघ्र अपने बाणोंसे व्यथित कर दो। महाभाग ! तुम धर्मके पुत्र उन दोनों मुनियोंको निश्चय ही वशमें कर लो। इस सम्पूर्ण संसारमें कौन ऐसा देवता, दानव अथवा मानव है, जो तुम्हारे बाणके वशीभूत होकर अत्यन्त कष्टका भागी न बन जाय। कामदेव ! जब ब्रह्मा, मैं, शंकर, चन्द्रमा और अग्निदेवतक तुम्हारे बाणोंके प्रभावसे विवेक-शक्ति खो चुके हैं, तब इन मुनियोंकी क्या गणना है। अप्सराओंका यह झुण्ड तुम्हारी सहायता करनेके लिये प्रस्तुत है। मनको मुग्ध करनेवाली यह मण्डली वहाँ अवश्य आ जायगी। केवल तिलोत्तमा अथवा रम्भा ही इस कार्यको सम्पन्न करनेमें कुशल है अथवा तुम्हीं अकेले इस कार्यको कर सकते हो। फिर सभी मिलकर कर लेंगे—इसमें क्या संशय है। महाभाग ! तुम मेरा कार्य सिद्ध करनेमें संलग्न हो जाओ। मैं तुम्हें अभिलषित वस्तु देनेको तैयार हूँ। मैंने उन तपस्वियोंको वर देनेकी बात कहकर लुभानेकी बहुत चेष्टा की; परंतु वे शान्त बैठे रहे। अपने स्थानसे हिले-डुलेतक नहीं। मेरा यहाँ परिश्रम विफल चला गया। फिर मैंने माया फैलाकर उन्हें डरानेका यत्न किया। तब भी वे अपने स्थानसे नहीं हटे। देहकी रक्षा आवश्यक है—इसे वे जानते ही नहीं।

व्यासजी कहते हैं—इन्द्रका उपर्युक्त वचन सुनकर उनसे कामदेवने कहा—'वासव ! इस अवसरपर मैं आपका अभीष्ट कार्य अवश्य करूँगा; यदि वे मुनि किसी भी देवताके उपासक होंगे, तब तो वे मेरे वशमें हो जायँगे; पर देवीकी आराधना करनेवालेको मैं किसी प्रकार भी वशीभूत करनेमें असमर्थ हूँ। 'क्लीं' देवीका कामबीज महान् मन्त्र है। अपने मनमें इस मन्त्रका चिन्तन करनेवाला मेरी शक्तिसे बाहर है। अतः यदि वे तपस्वी उन महाशक्तिका भक्तिपूर्वक उपासना करनेवाले होंगे, तब तो उनपर मेरे बाणोंका प्रभाव पड़ना सर्वथा असम्भव है।'

इन्द्रने कहा—महाभाग ! तुम उपयुक्त जितनी सामग्रियाँ हैं, उनके साथ वहाँ जाओ। तुम मेरे अनन्य हितैषी हो। अतः इस अत्यन्त दुर्लभ कार्यको सिद्ध कर देना तुम्हारा परम कर्तव्य है।

व्यासजी कहते हैं—इन्द्रके यों आज्ञा देनेपर कामदेव प्रभृति सभी पूरी तैयारीके साथ वहाँके लिये प्रस्थित हो गये, जहाँ धर्मके वे दोनों पुत्र नर-नारायण कठिन तपस्या कर रहे थे।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सर्वप्रथम उस श्रेष्ठ पर्वतपर वसन्त-ऋतु पहुँचा। सभी वृक्ष पुष्पोंसे लद गये। उनपर भौंरोंकी कतारें मँडराने लगीं। आम, बकुल, तिलक, पलाश, साखू, ताड़, तमाल और महुआ—ये सब-के-सब फूलोंसे सुशोभित हो गये। पेड़ोंकी डालियोंपर कोयलोंकी मनोहर काकली आरम्भ हो गयी। फूलोंसे लदी हुई श्रेष्ठ लताएँ ऊँचे पर्वतोंपर चढ़ने लगीं। प्राणियोंमें कामवेग सीमाको पार कर गया। वे प्रेमासक्त होकर परस्पर हास-विलास करने लगे। उनमें पर्याप्त उन्मत्तता छा गयी। पुष्पोंकी उत्तम गन्ध लेकर दक्षिणी पवन मन्दगतिसे चलने लगा, जिसके स्पर्श होते ही आनन्दका अनुभव होता था। उस समय मुनियोंकी भी इन्द्रियाँ काबूसे बाहर होने लगीं। तत्पश्चात् रतिके सहित कामदेवने अपने पाँचों बाणोंको लेकर बहुत शीघ्र बदरिकाश्रममें डेरा डाल दिया। रम्भा और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ भी उस पावन आश्रमपर पहुँच गयीं। संगीतकी कलामें वे बड़ी प्रवीण थीं। अतः स्वर और तालके साथ गान आरम्भ हो गया। उस मधुर गीत, कोयलोंके कलरव और भौंरोंके गुंजारको सुनकर मुनिवर नर और नारायणकी समाधि टूट गयी। सोचा, इस असमयमें ही वसन्तका आगमन कैसे हो गया ? वन पुष्प-राशिसे सुशोभित हो रहा है। अतः वे मनमें सोचने लगे—'क्या आज अवधि पूरी हुए बिना ही शिशिर-ऋतु समाप्त हो गयी ? कालकी गतिमें नियमका उल्लङ्घन हो जाय—यह महान् कठिन कार्य आज कैसे सम्भव हो गया ?' फिर नारायण नरसे कहने लगे। उस समय नारायणकी आँखें विस्मयवश पलक गिराना-तक भूल गयी थीं।

नारायणने कहा—'भाई ! देखो, ये वृक्ष पुष्पोंसे लदे अत्यन्त शोभा पा रहे हैं। सर्वत्र कोयलोंकी मीठी बोली सुनायी पड़ रही है। झुंड-के-झुंड भौंरे इन वृक्षोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं। मुने ! शिशिर-ऋतु भयंकर आतङ्क फैलाये हुए था। इतनेमें सिंहरूपी वसन्त-ऋतु अपने तीखे नखोंसे उसे फाड़ते हुए पलाश आदि फूलोंको लिये-दिये आ धमका। ब्रह्मन् ! इस समय यह बदरिकाश्रम साक्षात् वसन्तमयी

लक्ष्मीका निवासस्थान बन गया है। मुझे आश्चर्य तो यह है कि समय प्राप्त हुए बिना ही कैसे इसका आगमन हो गया ! देवर्षे ! यह निश्चय ही तपमें विघ्न उपस्थित करनेवाली माया है। आप इस विषयमें विचार कर लें। दिव्य अप्सराओंका संगीत, जिसे सुनते ही ध्यान टूट जाय, सुनायी पड़ रहा है। कहीं हमलोगोंकी तपस्या भङ्ग करनेके लिये इन्द्रकी तो यह करतूत नहीं है ? अन्यथा, ऋतुराज वसन्त अकालमें कैसे प्रीति प्रकट कर सकता था ? जान पड़ता है, डरे हुए इन्द्रने यह विघ्न उपस्थित किया है ! सुगन्ध, शीतल एवं मनको मुग्ध करनेवाला पवन शरीरका स्पर्श कर रहा है। इन्द्रके षड्यन्त्रके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण इसमें नहीं है।' भगवान् नारायण व्यापक पुरुष हैं। वे यों कह ही रहे थे, इतनेमें ही सारी मण्डली सामने दिखायी दी। उस समय सबमें प्रमुख कामदेव था। नर और नारायण—दोनोंने आश्चर्यसे सबको देखा। कामदेव, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी, महाश्वेता, मनोरमा, प्रमद्वरा, घृताची, गीतज्ञा, चारुहासिनी, चन्द्रप्रभा, शोभा, विद्युन्माला, अम्बुजाक्षी और काञ्चनमालिनी तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-सी अप्सराएँ नर-नारायणको दृष्टिगोचर होने लगीं। उन सबकी संख्या सोलह हजार पचास थी। कामदेवकी यह विशाल सेना देखकर नर और नारायण बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। तदनन्तर वे सभी अप्सराएँ उन्हें प्रणाम करके सामने खड़ी हो गयीं। वे अप्सराएँ दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थीं। दिव्य हार उनके गलेकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन सभीके मुखसे कपटपूर्ण ऐसे गीत निकल रहे थे, जिनका सुलभ होना धरातलपर असम्भव था। मुनिवर नारायणने प्रसन्नतापूर्वक उन अप्सराओंसे कहा— 'सुमध्यमाओ ! तुमलोग बड़े आनन्दसे यहीं ठहरो। मैं तुम्हारा अद्भुत प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये तैयार हूँ। तुम सभी अतिथिके रूपमें स्वर्गसे यहाँ आयी हो।'

व्यासजी कहते हैं—उस समय मुनिवर नारायणने मनमें अभिमानपूर्वक सोचा, इन्द्रने हमारे तपमें विघ्न उपस्थित करनेके विचारसे ही इन्हें यहाँ भेजा है। किंतु इन बेचारी नगण्य अप्सराओंसे हमारा क्या बनना-बिगड़ना है। मैं अभी इन सबको आश्चर्यमें डालनेवाली नयी अप्सराओंकी सृष्टि किये देता हूँ। इन अप्सराओंकी अपेक्षा उन सबके रूप बड़े ही विलक्षण होंगे। इस समय तपस्याका बल दिखलाना परमावश्यक है। इस प्रकार मनमें सोचकर नारायणने अपना हाथ जङ्घापर पटका और तुरंत एक सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्रीको उत्पन्न कर दिया। नारायणके ऊरुभागसे निकली हुई वह नारी 'उर्वशी' बड़ी सुन्दरी थी। वहाँ उपस्थित अप्सराओंने उसे देखा तो उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। उस समय मुनिवर नारायणका मन बिलकुल निश्चिन्त था। जितनी अप्सराएँ वहाँ थीं, उतनी ही अन्य अप्सराएँ सेवा करनेके लिये उन्होंने तुरंत उत्पन्न कर दीं। वे सभी अप्सराएँ हाथोंमें तरह-तरहकी भेंट-सामग्री लिये हँसती और गाती हुई आयीं। उन्होंने मुनिवर नर और नारायणके चरणोंमें मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयीं। तब स्वर्गसे आयी हुई अप्सराओंने नर और नारायणसे कहा—'अहो ! हम मूर्ख स्त्रियाँ आपके तपकी

महिमा और धीरता देखकर ही आश्चर्यमें डूब गयी हैं। महाभाग मुनियो ! हमें आपके स्वरूपके विषयमें विदित हो गया। आप परम पुरुष भगवान् श्रीहरिके अंशावतार हैं। आप शम-दम आदि सद्गुणोंसे सदा परिपूर्ण रहते हैं। आपकी सेवाके लिये नहीं; परंतु शतक्रतु इन्द्रका कुछ कार्य था, उसे सिद्ध करनेके विचारसे ही हमारा यहाँ आना हुआ था। किस भाग्यसे हमें आपके दर्शन सुलभ हो गये ? हमने कौन-सा पुण्य कार्य कर रखा था, उसे जाननेमें हम असमर्थ हैं। किंतु यह मानना तो अनिवार्य है कि कोई संचित प्रारब्ध अवश्य था। हम निश्चय ही अपराधिनी हैं। फिर भी, हमें अपना जन समझकर आपने मनमें शान्ति रखी और हमें तापमुक्त रखा। ठीक ही है, विवेकशील महानुभाव पुरुष तुच्छ शापरूपी फलदानके व्याजसे अपनी तपस्याके बलका अपव्यय नहीं करते।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार अप्सराएँ नम्रतापूर्वक प्रणाम करती हुई अपनी बात कह रही थीं। उनके वचन सुनकर मुनिवर नर और नारायण उत्तर देनेमें उद्यत हो गये। उस समय उन मुनिश्रेष्ठके मुखपर प्रसन्नता छायी हुई थी। काम और लोभपर वे विजय प्राप्त कर चुके थे। अपनी तपस्याके प्रभावसे उनके सर्वाङ्गकी अनुपम शोभा हो रही थी।

भगवान् नारायणने कहा—कहो, हम प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें अभीष्ट वर देनेको तैयार हैं। तुम सब लोग सुन्दर नेत्रवाली इस उर्वशीको साथ लेकर स्वर्ग सिधारो। यह बाला तुम्हें भेंटस्वरूप समर्पित है। अतः मनको मुग्ध करनेवाली यह अप्सरा अब जानेको तैयार हो जाय। जाँघसे उत्पन्न हुई उस उर्वशीको इन्द्रके प्रसन्नतार्थ हमने उनको दे दिया है। सभी देवताओंका कल्याण हो। अब सब लोग इच्छानुसार यहाँसे पधारनेकी कृपा करें।

अप्सराएँ बोलीं—महाभाग ! आप देवाधिदेव भगवान् नारायण हैं। परमभक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक हम आपके चरणकमलपर निछावर हो चुकी हैं। अब हम कहाँ जायँ ? मधुसूदन ! आपकी आँखें कमलपत्रके समान विशाल हैं। प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं और अभिलषित वर देना चाहते हैं तो हम अपना मनोरथ आपके सामने रखती हैं। उत्तम तप करनेवाले देवेश ! आप हमारे पति बननेकी

कृपा करें। बस, हमारा यही वर है, जिससे देवेश्वर ! हम प्रसन्नतापूर्वक आपकी सेवा करनेमें संलग्न हो जायँ। और आपने सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी आदि जिन अन्य स्त्रियोंको उत्पन्न किया है, वे आपकी आज्ञा मानकर स्वर्ग सिधारें। उत्तम तप करनेवाले मुनियो ! हम सोलह हजार पचास अप्सराएँ यहाँ रहें। हम सब आपकी समुचित सेवा करेंगी। देवेश ! आप हमारी अभिलाषा पूर्ण करके अपने सत्य व्रतका

पालन कीजिये। हम भाग्यवश आपके प्रेममें पगकर स्वर्गसे यहाँ आ गयीं। देवेश ! हमें त्याग देना आपको शोभा नहीं देता; जगत्प्रभो ! आप सर्वसमर्थ पुरुष हैं।

भगवान् नारायणने कहा—पूरे एक हजार वर्षतक हमने यहाँ तपस्या की है। सुन्दरियो ! हमारी इन्द्रियाँ वशमें हैं। फिर हम उस तपको कैसे नष्ट कर सकते हैं ? काम-सम्बन्धी सुखके लिये तो हमारी किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं है; क्योंकि उससे सात्त्विक सुखका सत्यानाश हो जाता है। पाशविक धर्मकी तुलना करनेवाले मिथुन-धर्ममें बुद्धिमान् पुरुष कैसे अपने मनको रमा सकता है ?

अप्सराएँ बोलीं—शब्द आदि पाँच गुणोंके बीचमें स्पर्श आता है। इसीसे स्पर्शजनित सुखको सर्वोत्तम माना गया है। अतएव महाराज ! हमें सब तरहसे स्पर्शसुख देनेके लिये आप वचनबद्ध होनेकी कृपा करें। फिर निर्भरतापूर्वक सुख भोगकर गन्धमादनपर विचरें।

(अध्याय ५-६)

☆

## नारायणसे नरकी बातचीत, च्यवन-प्रह्लादका संवाद, प्रह्लादका नैमिषारण्य-गमन तथा प्रह्लादके साथ नारायणका युद्ध

व्यासजी कहते हैं—अप्सराओंके उपर्युक्त वचन सुनकर धर्मनन्दन प्रतापी नारायण मन-ही-मन सोचने लगे—अब मुझे क्या करना चाहिये ? अहंकारसे ही यह प्रसङ्ग सामने उपस्थित हुआ है। इसमें अधिक क्या विचार किया जा सकता है। धर्मकी धज्जी उड़ानेमें प्रधान कारण अभिमान ही है, जिसकी सृष्टि मैं पूर्वकालमें कर चुका हूँ। अतएव महात्माओंने कहा है—यह संसार एक वृक्ष है, इसकी जड़ अहंकार है। जिस समय अप्सराओंका समाज आया, उस समय उन्हें देखकर बिना कुछ बातचीत किये ही मुझे शान्त होकर बैठ जाना चाहिये था। किंतु मैं उनके साथ सम्भाषण करनेमें प्रवृत्त हो गया। परिणामस्वरूप मैं स्वयं दुःखका भाजन बन गया। फिर मैंने धर्मका अपव्यय करके उन स्त्रियोंकी रचना की। मेरी ठीक वही दशा हो गयी, जैसे अपने ही बनाये हुए जालमें जकड़ी हुई मकड़ी हो। बड़े ही दृढ़ बन्धनसे मैं बँध गया। अतः अब इसके बाद मुझे क्या करना चाहिये—यह विषय विचारणीय है। यदि निश्चिन्त होकर इन स्त्रियोंको ठुकरा दूँ तो विफलमनोरथ होनेपर ये सभी मुझे शाप देकर यहाँसे चली जायँगी ! तब मैं उनसे मुक्त हो इस निर्जन वनमें पुनः उत्तम तप कर लूँगा। अतएव कुपित होकर इन सुन्दरी स्त्रियोंको त्याग देना श्रेयस्कर है।

व्यासजी कहते हैं—उस समय मुनिवर नारायणके मनमें ऐसा निश्चय होनेके पश्चात् फिर विचार उत्पन्न हुआ—अरे, सुखी बननेके लिये जो साधन है, उसमें क्रोध भी एक महान् शत्रु ही है। पहला नम्बर अहंकारका है और दूसरा इस क्रोधका। इसके प्रभावसे अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है। जगत्में काम और लोभ—इन दोनोंसे भी बढ़कर इस क्रोधको भयंकर बतलाया गया है। क्रोधमें भरकर मानव हिंसातक कर बैठता है। प्राणीकी निर्मम हत्याको ही हिंसा कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये यह बड़ी दुःखद है। इसे नरककी विस्तृत नदी ही समझना चाहिये। जिस

प्रकार काष्ठका मन्थन करनेसे निकली आग उस काष्ठको ही जलाकर राख कर डालती है, उसी प्रकार देहसे उत्पन्न हुआ भयंकर क्रोध उस देहको ही सर्वप्रथम जलानेमें तत्पर हो जाता है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार नारायणके मनमें चिन्ताकी काली घटा घिरी थी। वे अत्यन्त घबरा उठे थे। तब धर्मके पुत्र नरने उन अपने भाई नारायणसे सच्ची बात कहनी आरम्भ की।

महात्मा नर बोले—नारायण ! आप महान् भाग्यशाली पुरुष हैं। महामते ! क्रोध दूर कीजिये। मनमें शान्ति स्थापित करके इस प्रबल अहंकारको हटा देना परम आवश्यक है। आपको स्मरण होगा, पूर्व समयमें अहंकारके दोषसे ही हम दोनों व्यक्ति अपनी तपस्या खो बैठे थे। उस समय अहंकार और क्रोध—दोनों भाव जाग्रत् हो गये थे। उन्हींके प्रभाववश दैत्यराज प्रह्लादसे हमारा महान् अद्भुत युद्ध छिड़ गया था। देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षतक हम लड़ते रहे। सुरोत्तम ! उस अवसरपर हमें असीम क्लेश भोगना पड़ा था। अतएव मुनीश्वर ! आप क्रोधका परित्याग करके शान्त होनेकी कृपा कीजिये; क्योंकि मनमें शान्तभाव बनाये रखना तपका मूल कारण है—ऐसा मुनिगण कहते हैं।

व्यासजी कहते हैं—महात्मा नरका यह वचन सुनकर धर्मनन्दन नारायण शान्त हो गये।

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! मेरे मनमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया—प्रह्लादजी महात्मा पुरुष थे, भगवान् विष्णुमें उनकी अटल श्रद्धा थी। वे सदा शान्त रहते थे। फिर प्राचीन कालमें ऋषिवर नर और नारायणसे उनका युद्ध क्यों छिड़ गया ? धर्मके वे दोनों पुत्र नर और नारायण तपस्वी पुरुष थे। उनके मनमें क्षोभ कभी उत्पन्न ही नहीं हो पाता था। फिर प्रह्लादके साथ उनका संग्राम होनेमें क्या कारण हुआ ? प्रह्लाद तो चरम कोटिके धर्मात्मा, ज्ञानी और भगवान् विष्णुके अनुपम उपासक हैं। नर और नारायणमें भी उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हैं। तप करना ही उनका काम है। उनके मुखसे कभी असत्य वाणी नहीं निकलती। फिर यदि प्रह्लाद और नर-नारायणके सदृश सच्चरित्र पुरुषोंमें कलह मच गया तो उनकी तपस्या और धर्मपालनका केवल परिश्रम ही उनके हाथ लगा। उस सत्ययुगके समयमें भी उनका जप-तप कहाँ चला गया था ? सुयोग्य पुरुष भी क्रोध और अहंकारसे आवृत मनको काबूमें न ला सके। अहंकाररूपी बीजके अङ्कुरित हुए बिना क्रोध और मात्सर्य—इनका उत्पन्न होना असम्भव है। अहंकारसे ही काम-क्रोध आदि दुर्गुण उत्पन्न होते हैं—यह बिलकुल निश्चित है। करोड़ों वर्षोंतक महान् कठिन तपस्या की गयी। फिर भी यदि अहंकार उत्पन्न हो गया तो सब किया-कराया व्यर्थ है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अँधेरा नहीं टिक सकता, वैसे ही अहंकारके अङ्कुरित हो जानेपर पुण्यकी सत्ता समाप्त हो जाती है। ऐसे शक्तिशाली पुरुष भी यदि अहंकारपर विजय प्राप्त न कर सकें तो फिर मुने ! मुझ-जैसे साधारण मनुष्योंकी कौन-सी बात है।

व्यासजी कहते हैं—भारत ! यह निश्चय है कि कार्य किसी प्रकार भी कारणसे भिन्न नहीं हो सकता। जैसा सुवर्ण, वैसा ही कड़ा और कुण्डल। ठीक वैसा ही अहंकारसे बना हुआ यह चराचरसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। वस्त्रको सूत्रके अधीन कहा गया है, बिना सूत्रके वस्त्र बनना

सम्भव नहीं। वैसे ही त्रिगुणात्मक मायासे बने हुए इस स्थावर-जङ्गम समस्त संसारको समझना चाहिये। जब छोटेसे लेकर बड़ेतक सबकी यही हालत है, तब इस विषयमें क्या कहा जाय ? काम, क्रोध, लोभ और मोह—ये सभी अहंकारसे उत्पन्न होते हैं। कुरुनन्दन ! काम, मोह और मदसे युक्त प्राणी कार्य आरम्भ करनेके पूर्व कुछ विचारता ही नहीं। जब प्रायः सभी युगोंमें मायाविद्ध धर्म ही व्यवहृत होता था, तब इस कलिके लिये कौन-सी बात कही जाय। स्पर्धा, द्रोह और लोभ तथा अमर्ष सभी समय डेरा जमाये रहते हैं। जगत्में बिरले ही ऐसे साधु पुरुष हैं, जिनका अन्तःकरण इन दोषोंसे खाली है।

जनमेजयने कहा—सचमुच ही वे धन्य और महान् पुण्यात्मा हैं, जिन्होंने मद और मोहका त्याग कर दिया है; जो जितेन्द्रिय एवं सदाचारी हैं, उन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। मूर्ख मनुष्यकी आँखें मधुपर तो जाती हैं, किंतु उस विषम स्थानको नहीं देखतीं, जहाँसे मधु निकलता है। मानव बुरा कर्म करनेमें प्रवृत्त हो जाता है, उसके मनमें नरकका भय उत्पन्न ही नहीं होने पाता। अस्तु ! प्राचीन समयमें क्यों युद्ध ठन गया था, वह प्रसङ्ग मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें। बहुधा देखा जाता है, धन अथवा स्त्रीके लिये ही परस्पर कलह मच जाया करता है। नर और नारायणमें तो कोई स्पृहा थी ही नहीं। फिर क्यों उनके द्वारा ऐसा रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया ? नर और नारायण सनातन परम पुरुष हैं—इस बातसे धर्मात्मा प्रह्लाद भी पूर्वपरिचित थे। तब उन्होंने मुनिवर नर-नारायणका सामना किया ही क्यों ? ब्रह्मन् ! इस कारणको मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार जब राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन विप्रवर व्यासजीसे पूछा, तब उन्होंने सारी बातोंका विशदरूपसे वर्णन आरम्भ कर दिया।

व्यासजी बोले—राजन् ! जब भयंकर हिरण्यकशिपुकी मृत्यु हो गयी, तब उसके पुत्र प्रह्लादको राजगद्दीपर बैठाया गया। दानवराज प्रह्लाद देवताओं और ब्राह्मणोंके सच्चे उपासक थे। उनके शासनकालमें भूमण्डलके सभी नरेशोंद्वारा यज्ञोंमें श्रद्धापूर्वक देवताओंकी उपासना होती थी। तपस्या करना, धर्मका प्रचार करना और तीर्थोंमें जाना—यही उस समयके ब्राह्मणोंका कार्य था। वैश्य अपनी व्यापार-वृत्तिमें संलग्न थे। शूद्रोंद्वारा सबकी सेवा होती थी। उस अवसरपर भगवान् नृसिंहने दैत्यराज प्रह्लादको पातालमें रहनेका आदेश दे रखा था। वहीं उनकी राजधानी थी। बड़ी तत्परताके साथ वे प्रजाका पालन कर रहे थे।

एक समयकी बात है—महान् तपस्वी भृगुनन्दन च्यवनजी स्नान करनेके विचारसे नर्मदाके तटपर, जो व्याहृतीश्वर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है, गये। इतनेमें रेवा नामक महान् नदीपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। वे उसके तटपर नीचे उतरने लगे, तबतक एक भयंकर विषधर सर्पने उन्हें पकड़ लिया। मुनिवर च्यवन उसके प्रयाससे पातालमें पहुँच गये। सर्पसे पकड़े जानेपर उनके मनमें आतङ्क छा गया। अतएव उन्होंने मन-ही-मन देवाधिदेव भगवान् विष्णुका स्मरण आरम्भ कर दिया। उन्होंने ज्यों ही कमललोचन भगवान् श्रीहरिका चिन्तन किया कि उस महान् विषधर सर्पका सारा विष समाप्त हो गया। तब अत्यन्त घबराये हुए एवं शङ्काशील

उस सर्पने च्यवन मुनिको छोड़ दिया और सोचा—ये मुनि महान् तपस्वी हैं, अतः कहीं कुपित होकर मुझे शाप न दे दें। नागकन्याएँ मुनिवरकी पूजा करनेमें संलग्न हो गयीं। तदनन्तर च्यवनजीने नागों और दानवोंकी विशाल पुरीमें प्रवेश किया। एक बारकी बात है, भृगुनन्दन च्यवन उस श्रेष्ठ पुरीमें घूम रहे थे। धर्मवत्सल दैत्यराज प्रह्लादकी उनपर दृष्टि पड़ गयी। देखकर उन्होंने मुनिकी पूजा की और पूछा—'भगवन् ! आप यहाँ पातालमें कैसे पधारे ? बतानेकी कृपा करें। इन्द्र हम दैत्योंसे शत्रुता रखते हैं। हमारे राज्यका भेद लेनेके लिये तो उन्होंने आपको यहाँ नहीं भेजा है ? द्विजवर ! आप सच्ची बात बतायें।

च्यवन मुनिने कहा—राजन् ! मुझे इन्द्रसे क्या प्रयोजन कि उनकी प्रेरणासे मैं यहाँ आऊँ और उनके दूतका काम करते हुए आपके नगरमें प्रवेश करूँ। दैत्येन्द्र ! आपको विदित होना चाहिये, मैं भृगुका धर्मात्मा पुत्र च्यवन हूँ। ज्ञानरूपी नेत्र मुझे सुलभ है। मैं इन्द्रका भेजा हुआ हूँ—इस विषयमें आप किंचिन्मात्र भी संदेह न करें। राजेन्द्र ! मैं स्नान करनेके लिये नर्मदाके पावन तीर्थमें पहुँचा। नदीमें पैठ रहा था, इतनेमें एक महान् सर्पने मुझे पकड़ लिया। उस समय मेरे मनमें भगवान् विष्णुकी स्मृति जाग्रत् हो गयी। परिणामस्वरूप वह सर्प अपने भीषण विषसे रहित हो गया। यों भगवान् विष्णुके चिन्तनके प्रभावसे उस सर्पसे मेरा छुटकारा हो गया। राजेन्द्र! फिर मैं यहाँ आ गया और आपके दर्शनकी सुन्दर घड़ी सामने आ गयी। दैत्येन्द्र ! आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं। मेरे विषयमें भी वैसी ही कल्पना कर लेनी चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—च्यवन मुनिकी वाणी बड़ी मधुर थी। उसे सुनकर अनेक तीर्थोंके विषयमें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रह्लाद उनसे प्रश्न करने लगे।

प्रह्लादने पूछा—मुनिवर ! पृथ्वीपर कितने पावन तीर्थ हैं ? उन्हें बतायें। साथ ही आकाश और पातालमें जो तीर्थ हों, उन्हें भी विशदरूपसे बतानेकी कृपा करें।

च्यवनजी बोले—राजन् ! जिनके मन, वचन और तन शुद्ध हैं, उनके लिये पग-पगपर तीर्थ समझना चाहिये। दूषित विचारवालोंके लिये गङ्गा भी कहीं मगधसे अधिक अपवित्र हो जाती है। यदि मन पवित्र हो गया और इससे उसके सभी कलुषित विचार नष्ट हो गये तो उसके लिये सभी स्थान पावन तीर्थ बन जाते हैं। अन्यथा गङ्गाके तटपर सर्वत्र बहुत-से नगर बसे हुए हैं। इसके सिवा अन्य भी प्रायः सभी ग्राम, गोष्ठ और छोटे-छोटे टोले बसे हैं। दैत्येन्द्र ! निषादों, धीवरों, हूणों, वङ्गों एवं खस आदि म्लेच्छ जातियोंकी बस्ती वहाँ कायम है, परंतु निष्पाप राजन् ! उनमेंसे किसी एकका भी अन्तःकरण पवित्र नहीं हो पाता। फिर जिसके चित्तमें विविध विषय भरे हुए हैं, उसके लिये तीर्थका क्या फल हो सकता है ? राजन् ! इस विषयमें मनको ही प्रधान कारण मानना चाहिये, इसके सिवा दूसरा कुछ नहीं। अतः शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि मनको परम पवित्र बना ले। यदि उसमें दूसरोंको ठगनेकी प्रवृत्ति है तो तीर्थवासी भी महान् पापी माना जा सकता है। तीर्थमें किये हुए पाप अनन्त कुफलरूपसे सामने आते हैं। अतः कल्याणकामी पुरुष सबसे पूर्व मनको शुद्ध कर

ले। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वयं ही हो जाती है। इसमें कुछ भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार आचारशुद्धि भी आवश्यक है। फिर तो सभी पवित्र हैं—यह प्रसिद्ध बात है। अन्यथा जो कुछ किया जाता है, उसे उसी समय नष्टप्राय समझना चाहिये। तीर्थमें जाकर नीचका साथ कभी नहीं करना चाहिये। कर्म और बुद्धिसे प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। राजेन्द्र ! यदि पूछते हो तो और भी उत्तम तीर्थ बताऊँगा। प्रथम श्रेणीमें पुण्यमय नैमिषारण्य है। चक्र-तीर्थ, पुष्कर-तीर्थ तथा अन्य भी अनेकों तीर्थ धरातलपर हैं, जिनकी संख्याका निर्देश करना असम्भव है। नृपसत्तम ! बहुत-से ऐसे पवित्र स्थान हैं।

व्यासजी कहते हैं—च्यवन मुनिका यह वचन सुनकर राजा प्रह्लाद नैमिषारण्य जानेको तैयार हो गये। उन्होंने हर्षके उल्लासमें भरकर दैत्योंको आज्ञा दी।

प्रह्लाद बोले—महाभाग दैत्यो ! उठो, आज हम नैमिषारण्य चलेंगे। वहाँ कमललोचन भगवान् श्रीहरिके हमें दर्शन प्राप्त होंगे। पीताम्बर पहने हुए वे वहाँ विराजमान रहते हैं।

व्यासजी कहते हैं—जब विष्णुभक्त प्रह्लादने यों कहा, तब वे सभी दानव उनके साथ अपार हर्ष मनाते हुए पातालसे निकल पड़े, सम्पूर्ण महाबली दैत्यों और दानवोंका झुंड एक साथ चला। नैमिषारण्यमें पहुँचकर आनन्दपूर्वक सबने स्नान किया। फिर प्रह्लाद दैत्योंके साथ वहाँके तीर्थोंमें भ्रमण करने लगे। महान् पुण्यमयी सरस्वती नदीपर उनकी दृष्टि पड़ी।

उस नदीका जल बड़ा ही स्वच्छ था। राजेन्द्र ! उस पवित्र स्थानमें पहुँचनेपर महात्मा प्रह्लादके मनमें बड़ी प्रसन्नता उत्पन्न हुई। अतः उन्होंने सरस्वतीके विमल जलमें स्नान किया और दान आदि क्रियाएँ सविधि सम्पन्न कीं। वह परम पावन तीर्थ प्रह्लादकी अपार प्रसन्नताका साधन बन गया था।

व्यासजी कहते हैं—प्रह्लाद नैमिषारण्यमें तीर्थके समुचित कार्य-क्रमको पूर्ण कर रहे थे। उन्हें सामने एक वटका वृक्ष दिखायी पड़ा। उस वृक्षकी छाया बहुत दूरतक फैली हुई थी। दानवेश्वरने वहाँ बहुत-से बाण देखे। वे बाण भिन्न-भिन्न प्रकारसे बने हुए थे। उनमें गीधकी पाँखें लगी हुई थीं। उन्हें शानपर चढ़ाकर तेज कर दिया गया था। वे अत्यन्त चमक रहे थे। उन बाणोंको देखकर प्रह्लादके मनमें विचार उत्पन्न हुआ—जिसके ये बाण हैं, वह व्यक्ति ऋषियोंके आश्रमपर इस परम पावन पुण्यतीर्थमें रहकर क्या करेगा ? प्रह्लादके मनमें इस प्रकारकी कल्पना अभी शान्त नहीं हुई थी, इतनेमें ही धर्मनन्दन नर और नारायण सामने दृष्टिगोचर हुए। उन मुनियोंने काले मृगका चर्म धारण कर रखा था। सिरपर बड़ी विशाल जटाएँ सुशोभित हो रही थीं। नर और नारायणके सामने दो चमकीले धनुष पड़े थे। उत्तम चिह्नवाले वे धनुष शार्ङ्ग और आजगव नामसे प्रसिद्ध थे। वैसे ही दो तरकस थे, जिनमें बहुत-से बाण भरे थे। उधर महान् भाग्यशाली धर्मनन्दन नर और नारायणका मन ध्यानमें मग्न था। उन ऋषियोंको देखकर प्रह्लादकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। वे ऋषियोंको लक्ष्य बनाकर कहने लगे—'तुमलोग यह क्या ढकोसला कर रहे हो ? इसीसे तो धर्म धूलमें मिल रहा है। ऐसी व्यवस्था तो कभी इस

संसारमें देखने अथवा सुननेमें नहीं आयी। कहाँ तो उत्कट तप करना और कहाँ धनुष हाथमें उठाना। इन दोनों कार्योंका सामञ्जस्य तो पूर्वयुगमें भी नहीं था। ब्राह्मणोंके लिये जहाँ तपस्या करनेका विधान है, वहाँ उन्हें धनुष रखनेकी क्या आवश्यकता? कहाँ तो मस्तकपर जटा धारण करना और कहाँ तरकस रखना—ये दोनों कार्य व्यर्थ आडम्बर सिद्ध कर रहे हैं। तुम दोनों दिव्य पुरुष हो। तुम्हें धर्माचरण ही शोभा देता है।'

व्यासजी कहते हैं—भारत! प्रह्लादके उपर्युक्त वचन सुनकर नारायणने उत्तर दिया—'दैत्येन्द्र! हमारे तथा हमारी तपस्याके विषयमें तुम क्यों व्यर्थ चिन्तित हो रहे हो? हम समर्थ हैं—इस बातको जगत् जानता है। युद्ध और तपस्या—दोनोंमें ही हमारी गति है। तुम इसमें क्या करोगे? इच्छानुसार अपने रास्ते चले जाओ। क्यों इस बकवादमें पड़ते हो? ब्रह्मतेज बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है। सुखकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणियोंका कर्तव्य है कि ब्राह्मणोंकी व्यर्थ चर्चा न छेड़ें।'

प्रह्लादने कहा—तपस्वियो! तुम्हें व्यर्थ इतना अभिमान हो गया है। मैं दैत्योंका राजा हूँ। मुझपर ही धर्म टिका है। मेरे शासन करते हुए इस पवित्र तीर्थमें इस प्रकारका अधर्मपूर्ण आचरण करना सर्वथा अनुचित है। तपोधन! तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी शक्ति है? यदि हो तो उसे अब समराङ्गणमें मुझे दिखाओ।

व्यासजी कहते हैं—प्रह्लादकी बात सुनकर मुनिवर नरने कहा—'अच्छी बात है; तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो आज युद्धमें मेरे सामने डट जाओ।'

व्यासजी कहते हैं—दैत्यराज प्रह्लाद महाभाग नरके वचन सुनकर क्रोधसे तमतमा उठे। प्रह्लाद अप्रतिम-बलशाली वीर थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की—'यद्यपि नर और नारायण सदा तपस्यामें लगे रहते हैं, उन्होंने इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है, तथापि मैं इन दोनों ऋषियोंको जिस-किसी भी उपायसे अवश्य पराजित कर दूँगा।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर प्रह्लादने हाथमें धनुष उठा लिया। उसपर डोरी चढ़ाकर तुरंत खींचा, जिससे बड़े जोरकी टंकार फैल गयी। नरने भी धनुष उठाया और चिकने किये हुए बहुत-से तीखे तीर उसपर चढ़ाये। राजन्! क्रोधमें भरकर उन्होंने वे सभी बाण प्रह्लादपर चला दिये। प्रह्लादने अपने चमकीले पंखवाले बाणोंसे नरके बाणोंको आते ही काट डाला। अपने छोड़े हुए बाणोंको खण्ड-खण्ड हुए देखकर नरने उसी क्षण अन्य अनेक तीरोंको चलाना आरम्भ कर दिया। मुनिवर नरके वे सभी सायक प्रह्लादके तीव्रगामी बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न हो गये, साथ ही प्रह्लादने नरकी छातीमें चोट पहुँचायी। नरने भी कुपित होकर शीघ्रगामी पाँच बाणोंसे दैत्यराजकी भुजापर आघात किया। उस समय उनका युद्ध देखनेके लिये इन्द्रसहित बहुत-से देवता विमानपर चढ़कर आकाशमें आ गये और समराङ्गणमें विराजमान मुनिवर नर और दैत्यराज प्रह्लादके पराक्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। प्रह्लादके पैने बाण इस प्रकार बरस रहे थे, मानो मेघ जलकी धारा गिरा रहा हो। उस अवसरपर नारायणने अपना अप्रतिम शार्ङ्गधनुष हाथमें उठा लिया और सुनहरे पंखवाले बाणोंकी झड़ी लगा दी। अब

प्रह्लादने धर्मनन्दन नारायणपर अत्यन्त तीव्रगामी बहुसंख्यक बाण चलाये। साथ ही नारायणके धनुषसे भी सुतीक्ष्ण धारवाले बहुत-से बाण छूटे, जिनसे टकराकर प्रह्लादके बाण टुकड़े-टुकड़े हो गये। उस समय सनातन भगवान् श्रीहरि धर्मके यहाँ पुत्ररूपसे अवतरित थे। वे वीर बनकर समराङ्गणमें खड़े थे और दैत्यराज प्रह्लादके प्रयाससे तीखे तीरोंकी वर्षा उनपर हो रही थी। फिर नारायणने तीक्ष्ण धारवाले अपने बाण चलाये और उनसे प्रह्लादको—जो सामने ही डटे थे—गहरी चोट पहुँचायी। दोनों पक्षोंकी बाण-वर्षासे आकाश आच्छन्न हो गया था।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार दैत्यराज प्रह्लाद और तपस्वी नर-नारायणमें घोर युद्ध होता रहा। नारायणने अपने एक तीव्रगामी बाणसे प्रह्लादके धनुषको काट डाला। तब दैत्यराजने

दूसरा धनुष उठाया। फिर नारायणने उसी क्षण अन्य बाणको हाथमें लिया और उससे अपने हाथकी सफाई दिखाते हुए उस धनुषके भी दो टुकड़े कर दिये। यों नारायण प्रह्लादके धनुषको बार-बार काटते रहे; तब दानवेश्वरने परिघ उठाया और शीघ्रतापूर्वक उस परिघको नारायणकी भुजापर चला दिया। प्रतापी नारायणने अभी वह भयंकर परिघ आ ही रहा था कि अपने नौ बाणोंसे उसे काट दिया और दसवें बाणसे प्रह्लादपर चोट की। अब दानवराजने लोहमयी सुदृढ़ गदा उठा ली और उस गदासे तुरंत नारायणकी जाँघपर आघात किया। परंतु नारायण पर्वतकी भाँति अविचल भावसे खड़े रहे। उनकी मानसिक शान्ति भङ्ग नहीं हो सकी। वे परम पराक्रमी पुरुष थे। उन्होंने तुरंत बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी। अतः प्रह्लादकी उस सुदृढ़ गदाके भी खण्ड-खण्ड हो गये। तब शत्रुओंको संतप्त करनेवाले प्रह्लादने हाथमें शक्ति उठा ली और उसे नारायणके वक्षःस्थलपर चला दिया। सामने शक्ति आ रही है—यह देखकर नारायणने कौतूहलसे ही एक बाण फेंका, जिससे वह शक्ति सात भागोंमें विभक्त हो गयी। फिर प्रह्लादपर भी सात बाण मारे। देवताओंके एक हजार वर्षतक प्रह्लाद और नर-नारायणका वह भीषण संग्राम समाप्त नहीं हो सका। राजन्! तदनन्तर भगवान् विष्णु उस आश्रमपर पधारे। उनका श्रीविग्रह चार भुजाओंसे सुशोभित था। वे पीताम्बर पहने हुए थे। उन शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए चारों भुजाओंसे सुशोभित रमारमण भगवान् विष्णुने प्रह्लादके आश्रमपर पदार्पण किया। वहाँ उन्हें पधारे हुए देखकर दैत्यराजने चरणोंमें मस्तक झुकाया और अपार भक्ति दिखाते हुए हाथ जोड़कर वे कहने लगे।

प्रह्लादने कहा—माधव! आप देवताओंके भी आराध्य हैं। जगत्का शासनसूत्र आपके हाथमें है। भक्तोंपर दया करना आपका स्वभाव

ही है। भगवन् ! इन दोनों तपस्वियोंका संग्राममें सामना करते रहनेपर भी मेरी विजय नहीं हो रही है—इसका क्या कारण है। मैं पूरे सहस्र वर्षतक इन देवताओंके साथ लड़ता रहा, किंतु अभीतक इन्हें जीत नहीं सका—इसका मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है।

भगवान् विष्णु बोले—आर्य ! ये दोनों सिद्ध पुरुष हैं। मेरे अंशसे इनका अवतार हुआ है। इनके विषयमें तुम्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। ये दोनों जितात्मा तपस्वी नर और नारायण नामसे विख्यात हैं। तुम इन्हें नहीं जीत सकते। अतः राजन् ! तुम पातालमें चले जाओ और मनमें मेरी अविचल भक्ति रखो। महामते ! इन तपस्वियोंसे विरोध करना सदा अवाञ्छनीय है।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके यों आज्ञा देनेपर दैत्यराज प्रह्लाद असुरोंको साथ लेकर वहाँसे प्रस्थित हो गये। उधर नर और नारायणकी भी तपस्या आरम्भ हो गयी।

(अध्याय ७—९)

☆

## देवताओंके साथ दैत्योंका युद्ध और हारे हुए दैत्योंको शुक्राचार्यके द्वारा अभयदान, शंकरकी तपस्या, देवताओंका दैत्योंपर आक्रमण, दैत्योंका शुक्र-माताकी शरणमें जाना, शुक्र-माताकी देवताओंको निद्रावश कर देना, भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रसे शुक्र-माताका वध

जनमेजयने कहा—व्यासजी ! तपको ही अपना सर्वस्व माननेवाले नर और नारायण भगवान् विष्णुके अंशावतार थे। उनका चित्त सदा शान्त रहता था। सात्त्विक गुणोंका पालन करते हुए वे तीर्थमें रहते थे। जंगलके फल-मूल ही उनके नित्यके आहार थे। उन धर्मनन्दन तपस्वियोंने कभी असत्यका व्यवहार नहीं किया। वे महात्मा पुरुष थे। तब फिर वे युद्ध-भूमिमें उपस्थित हो परस्पर लड़नेके लिये क्यों उद्यत हो गये ? किस कारण उन्होंने तप-जैसी उत्तम क्रियाका त्याग कर दिया ? शान्तिके महान् सुखका परित्याग करके उन मुनियोंने क्यों प्रह्लादके साथ युद्ध ठान लिया ? देवताओंके वर्षसे पूरे सौ वर्षतक वे लड़ते रहे। महाभाग ! नर-नारायण और प्रह्लादका परस्पर संघर्ष क्यों छिड़ गया ? आप इस विग्रहका कारण बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! धर्मका निर्णय करते समय सर्वज्ञ मुनियोंने संसारके मूल कारण अहंकारको सत्त्वादि भेदसे तीन प्रकारका बतलाया है। अतएव मुनिवर नारायण शरीर-धारी होकर इसका परित्याग कर दें—यह उनके लिये अवैध (लीला-विरुद्ध) काम था। बिना कारण कार्यकी सम्भावना नहीं होती—यह निर्धारित विषय है। जब हृदयमें सात्त्विक भाव उत्पन्न होता है, तब यज्ञ, तप और दान होते हैं। महाभाग ! रज और तमके प्रभावसे मनमें कलहकी भावना उत्पन्न हो जाती है। राजेन्द्र ! अहंकारके बिना एक छोटी-सी क्रिया भी, चाहे वह उत्तम हो या मध्यम, कदापि कार्यरूपमें परिणत नहीं हो सकती। जगत्में अहंकारसे बढ़कर बन्धनमें डालनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। अहंकारसे बना हुआ यह विश्व उसे त्यागकर स्थित रह जाय—यह भला कैसे हो

सकता है। राजन्! समस्त प्राणी अपने कर्मके अनुसार विवश होकर बार-बार संसारमें जन्मते और मरते रहते हैं। देवता, मानव और पशु आदि अनेक योनियोंमें उन्हें भटकना पड़ता है। रथके चक्रकी भाँति इस संसारको सदासे परिवर्तनशील बताया गया है, प्रत्येक युगमें जगत्प्रभु जनार्दन नियमानुसार अनेक अवतार धारण करते हैं। महाराज! सातवें—वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान् श्रीहरिके जो अवतार हुए हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो। एक बार भृगु मुनिने भगवान्‌को शाप देना चाहा। उनकी बात सत्य करनेके लिये श्रीहरिने अवतार लेनेका वर दे दिया। महाराज! फिर अखिल जगत्‌के अधिष्ठाता भगवान् श्रीहरि अनेक रूपसे धरातलपर पधारने लगे।

राजा जनमेजयने पूछा—महाभाग! भृगुने भगवान् विष्णुको क्यों शाप दे दिया? मुने! भगवान् तो चराचर जगत्‌के स्रष्टा हैं। उनके द्वारा भृगु मुनिका कौन-सा अप्रिय कार्य बन गया था, जिससे मुनि कुपित हो गये और भगवान् विष्णुको जिन्हें सभी देवता नमस्कार करते हैं, शाप देनेमें उन्होंने कुछ भी संकोच नहीं किया?

व्यासजी कहते हैं—राजन्! भृगुजीने जो शाप दे दिया, उसका कारण बतलाता हूँ; सुनो! प्राचीन समयकी बात है, हिरण्यकशिपु नामका एक राजा था। कश्यपजी उसके पिता थे। उस समय जब कभी भी दैत्योंके साथ देवताओंका परस्पर संघर्ष छिड़ जाया करता था और युद्ध आरम्भ हो जानेपर सारे जगत्‌में खलबली मच जाती थी। हिरण्यकशिपुके मर जानेपर प्रह्लाद उत्तराधिकारी राजा हुए। उनके साथ भी इन्द्रकी भयंकर लड़ाई आरम्भ हो गयी। राजन्! पूरे सौ वर्षोंतक युद्ध होता रहा। उसे देखकर लोग आश्चर्य मानने लगे। देवताओंने इतनी तत्परताके साथ युद्ध किया कि प्रह्लादको हार जाना पड़ा। उस समय प्रह्लादके मनमें सहज ही बड़ा विचार हुआ। सनातनधर्मकी विशेषता उनकी समझमें आ गयी। अतएव राजन्! विरोचनकुमार बलिको राज्यपर अभिषिक्त करके वे स्वयं तपस्या करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर चले गये। राज्य पानेपर श्रीमान् बलिका भी देवताओंके साथ ही विरोध हो गया। कुछ समयके बाद फिर अत्यन्त भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ गया! देवताओं एवं अमित तेजस्वी इन्द्रके पराक्रमसे इस बार भी दैत्योंकी हार हो गयी। राजन्! उस समय इन्द्रके सहायक बनकर भगवान् विष्णुने दैत्योंको राज्यसे च्युत किया था। हार जानेपर वे सभी दैत्य शुक्राचार्यकी शरणमें गये और बोले—'ब्रह्मन्! आप ऐसे प्रतापी होते हुए भी हमारी सहायता क्यों नहीं कर

रहे हैं? भगवन्! आप मन्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आप हमारे सहायक न हुए तो धरातलपर हम नहीं रह सकते। हमें विवश होकर पातालमें

जाना पड़ेगा।'

व्यासजी कहते हैं—मुनिवर शुक्राचार्य बड़े दयालु पुरुष थे। दैत्योंके कहनेपर उन्होंने उत्तर दिया—'दैत्यो ! डरो मत। मैं अपने तेजसे तुम्हारे लिये यहाँ रहनेकी व्यवस्था कर दूँगा। मन्त्रों और ओषधियोंसे मैं निरन्तर तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम मनमें उत्साह बनाये रखो। निश्चिन्त हो जाओ।'

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर शुक्राचार्यका सहारा पाकर दैत्य निर्भय हो गये। गुप्तचरोंने यह निश्चित समाचार देवताओंके पास पहुँचा दिया। यह सुनकर सभी देवता इन्द्रके साथ आपसमें विचार करने लगे। शुक्राचार्यके मन्त्रमें महान् शक्ति है—यह समझकर देवताओंके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। उन्होंने परस्पर विचार किया—'जबतक दैत्य मन्त्रका बल पाकर हमारी शक्तिका ह्रास करनेमें लगें, उसके पहले ही हम युद्ध करनेमें तत्पर हो जायँ और उन्हें हठपूर्वक मारकर जो बचे-खुचे रहें, उनको पाताल भेज दें।' यों राय करनेके पश्चात् देवताओंने शस्त्र उठा लिये और क्रोधमें उबलकर दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर देवता दैत्योंपर टूट पड़े। भीषण मारसे दैत्योंके हृदयमें महान् आतङ्क छा गया। वे भयसे घबरा उठे। तब उन्होंने शुक्राचार्यकी शरण ली और 'हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—यों बार-बार कहने लगे। यद्यपि दैत्योंमें भी अपार बल था, फिर भी उस समय वे देवताओंद्वारा महान् कष्ट भोग रहे थे। उनकी दुर्दशा देखकर शुक्राचार्यने कहा—'डरो मत।' मन्त्र और औषधके बलसे शुक्राचार्य सब कुछ कर सकते थे। अतएव उन्हें देखते ही समस्त देवसमुदाय दैत्योंको छोड़कर भाग चला।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार देवताओंके हट जानेपर शुक्राचार्यने दैत्योंसे कहा—'महाभाग दानवो ! पूर्व समयमें ब्रह्माजीने मुझसे जो बात कही थी, वह सुनो। भगवान् विष्णु दैत्योंका वध करनेके लिये सदा सतर्क रहते हैं। उनके हाथ अभी दैत्य-वध होनेवाला है। उन्होंने जिस प्रकार वाराहरूप धारण करके हिरण्याक्षको मारा तथा नृसिंहावतार लेकर हिरण्यकशिपुकी जीवन-लीला समाप्त की, वैसे ही अब भी सम्पूर्ण दानवोंको मार डालेंगे। वे बड़े उत्साही हैं, इसमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। यह जान पड़ता है कि वैसा समुचित मन्त्रबल अभी मेरे पास नहीं है, जिससे मेरे द्वारा सुरक्षित होकर तुम इन्द्र एवं देवताओंको जीतनेमें समर्थ हो सको। अतएव प्रधान दानवो ! तुमलोग कुछ समयतक प्रतीक्षा करो। मैं अब मन्त्रकी प्राप्ति—अभ्यासके लिये भगवान् शंकरके पास जाता हूँ। दानवेश्वरो ! मैं महादेवजीसे मन्त्रोंकी सम्यक् जानकारी प्राप्त करके जब लौटूँगा, तब उनको भलीभाँति तुम्हें सिखा दूँगा।'

दैत्य बोले—मुनिवर ! हमारी हार हो गयी है। हम बिलकुल निर्बल हो गये हैं। उतने समयतक प्रतीक्षा करनेके लिये हम पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे ? सम्पूर्ण पराक्रमी दानव कालके ग्रास बन गये। जो शेष बचे हैं, वे वैसे सुखके साधन हो नहीं सकते; क्योंकि युद्धमें ठहरनेकी उनमें योग्यता ही नहीं है।

शुक्राचार्यने कहा—मैं जबतक भगवान् शंकरके पाससे मन्त्र लेकर आऊँ—तबतक तो तुम्हारा किसी तरह रुके रहना आवश्यक है।

ऐसे सम्भव न हो तो तपस्वी बनकर समयकी प्रतीक्षा करो। विद्वानोंने कहा है—समयानुसार साम, दाम आदि सभी उपायोंका प्रयोग करना चाहिये। बुद्धिमान् वीर पुरुष देश, काल और शक्तिका ज्ञान प्राप्त करके अपना सामर्थ्य दिखलाते हैं। मनीषी पुरुषोंका कर्तव्य है कि यदि भविष्यमें कल्याण होनेकी आशा हो तो कुछ समयतक शत्रुओंकी सेवा भी कर ले। समयानुसार शक्तिका संचय हो जानेपर ही शत्रु मारे जा सकते हैं। इसलिये अब देवताओंकी विनती करके सामनीतिका प्रयोग करते हुए अपने स्थानपर रहनेकी व्यवस्था कर लो, मेरे आनेकी प्रतीक्षा करते रहना। दानवो ! भगवान् शंकरकी कृपासे मन्त्रोंके पा जानेपर मैं तुरंत लौटूँगा और उनकी शक्तिका आश्रय लेकर देवताओंसे हम पुनः लड़ाई ठान देंगे।

महाराज ! दैत्योंसे यों कहकर मुनिवर शुक्राचार्य मन्त्र प्राप्त करनेके लिये भगवान् शंकरके पास चल पड़े। उनका कार्यक्रम बिलकुल निश्चित हो चुका था। तब दानवोंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक देवताओंसे बातचीत आरम्भ कर दी और विनीत भावसे यह वचन कहा—'देवताओ ! हम सभी अब अपने अस्त्र-शस्त्रका परित्याग करके युद्धके उद्योगसे बिलकुल रहित हो गये हैं। वृक्षोंकी छाल पहनकर हम भी तपस्वी-जीवन व्यतीत करेंगे।'

देवताओंने मान लिया और वे लौट पड़े। उनकी सारी चिन्ताएँ दूर हो गयीं। प्रसन्नतापूर्वक समय व्यतीत करने लगे। जब दैत्योंने अपने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये, तब देवता वहाँ एक क्षण भी नहीं रुके। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था। वे अपने भवनपर चले गये और रहनेकी समुचित व्यवस्था करके क्रीडामें आसक्त हो गये। उधर दैत्योंने तपस्वीका स्वाँग बनाकर तप आरम्भ कर दिया था। शुक्राचार्यके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए वे कश्यपजीके आश्रमपर निवास कर रहे थे। कुछ समयके बाद शुक्राचार्य कैलासपर पहुँच गये। उन्होंने भगवान् शंकरको प्रणाम किया। 'किस कामसे पधारे ?'—यों पूछनेपर वे कहने लगे—'भगवन् ! मुझे उन मन्त्रोंके पानेकी अभिलाषा है, जो बृहस्पतिके पास न हों। देवताओंकी पराजय और दैत्योंकी विजयके लिये मैं यह उद्योग कर रहा हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—शुक्राचार्यकी बात सुनकर सर्वज्ञ भगवान् शंकरने मन-ही-मन विचार किया कि 'इसके सम्बन्धमें मेरा क्या कर्तव्य है ? यह शुक्राचार्य दैत्योंका गुरु है। उन्हें विजय प्राप्त करनेके लिये देवताओंसे द्वेष रखकर मन्त्र प्राप्त करनेके विचारसे इस समय यह मेरे पास आया है; किंतु देवताओंकी रक्षा तो मुझे करनी ही है।' इस प्रकार विचार करके भगवान् शंकरने एक अत्यन्त कठिन व्रत करनेके लिये मुनिको आदेश दिया और कहा—'पूरे एक

हजार वर्षोंतक नीचे सिर करके कणमात्र धूम्रपान करते हुए व्रत करना है। यदि इसमें तुम सफल हो गये तो तुम्हारे लिये मन्त्र सुलभ हो जायँगे।' इस प्रकार कहनेपर शुक्राचार्यने भगवान् शंकरके सामने मस्तक झुका दिया और कहा—'बहुत ठीक। देवेश्वर ! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं अभीसे व्रतमें लग जाता हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—शुक्राचार्य भगवान् शंकरसे यों कहकर मन्त्र प्राप्त करनेके विचारसे उस श्रेष्ठ व्रतमें संलग्न हो गये। केवल धुएँके आहारपर रहने लगे। मनमें शान्ति रखी। उन्होंने अपना कार्य बिलकुल निश्चित कर लिया था। शुक्राचार्य कठिन व्रत कर रहे हैं और दैत्योंने केवल दिखानेके लिये तपस्वीका रूप बना लिया है—इस बातकी पूरी जानकारी प्राप्त हो जानेपर देवता भी मन्त्रकी प्राप्तिके उपायमें लग गये। राजन् ! तदनन्तर मनमें विचारकर उन सभीने युद्धकी तैयारी कर ली। वे हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर जहाँ प्रधान दानव रहते थे, वहाँ पहुँच गये। उस समय आयुधधारी देवताओंको आया देखकर दानव भयसे घबरा उठे। उन्हें चारों ओरसे देवताओंने घेर लिया था। भयातुर दानव तुरंत उठकर खड़े हो गये और बलाभिमानी देवताओंसे सत्य वचन कहना आरम्भ कर दिया। कहा—'हमने अपने शस्त्र रख दिये हैं, अत्यन्त भयभीत हैं। हमारे गुरुदेव इस समय व्रत कर रहे हैं, देवताओ ! ऐसी स्थितिमें आप हमें मारनेके लिये आ गये। भला, आप हमें अभयदान भी दे चुके हैं। देवताओ ! आपलोगोंका वह सत्य और श्रुतिप्रतिपादित धर्म अब कहाँ चला गया, जो सबको सूचित करता है कि निःशस्त्रों, भयभीतों और शरणागतोंको नहीं मारना चाहिये।'

देवताओंने कहा—तुमने शुक्राचार्यको मन्त्र प्राप्त करनेके लिये भेज दिया है और स्वयं हृदयमें कपट रखकर तप कर रहे हो। हमने तुम्हारा अभिप्राय जान लिया। इसलिये हम युद्ध करनेको उद्यत हुए हैं। तुम भी शस्त्र लेकर लड़नेकी तैयारी कर लो। जब कभी भी अवसर मिले, शत्रुको परास्त कर डालना चाहिये—यह नियम सदासे चला आ रहा है।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर दैत्योंने कुछ समयतक आपसमें विचार किया। पश्चात् वे सभी वहाँसे निकले और भाग चले। भयसे उनके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी थी। वे अत्यन्त डरकर शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें गये। उन्हें महान् दुःखी देखकर माताने अभय कर देनेका वचन दिया।

शुक्राचार्यकी माता बोली—दानवो ! डरो मत, डरो मत। निर्भय हो जाओ। मेरे संनिकट रहनेपर तुम्हारे पास भय आ ही नहीं सकता।

काव्य-माताकी बात सुनकर दानवोंकी मनोव्यथा शान्त हो गयी। वे उसी उत्तम आश्रमपर रहने लगे। पासमें कोई शस्त्र नहीं रखा। वे संदेहरहित समय व्यतीत कर रहे थे। भागते समय दैत्योंको देवताओंने देख लिया था। अतः वे उनके पैरोंके चिह्नको लक्ष्य करके जाते-जाते वहाँ पहुँच गये। उस समय बलाबलका कुछ भी विचार नहीं किया। वहाँ आकर उन सब देवताओंने दैत्योंको मारनेके लिये क्रिया आरम्भ कर दी। शुक्राचार्यकी माताके मना करनेपर भी देवता आश्रमवासी दानवोंको मारते रहे। दैत्योंको मार खाते हुए देखकर काव्य-माताका कलेजा काँप उठा। वे बोलीं—'मैं अभी इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको

नींदके चंगुलमें फँसा देती हूँ' यों कहकर उन्होंने निद्राको आज्ञा दी। वह देवताओंके पास गयी और उनपर तुरंत अपना प्रभाव डाल दिया। समस्त देवता नींदके वशीभूत होकर मूककी भाँति पड़े रहे। नींदके प्रभावसे इन्द्रकी शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी। वे घबरा उठे थे। उन्हें देखकर भगवान् विष्णुने कहा—'देवेश्वर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे पास आ जाओ। मैं तुम्हें अन्यत्र भेजता हूँ।' इस प्रकार कहनेपर इन्द्र भगवान् श्रीहरिके समीप चले गये। भगवान्‌की छत्रछाया पाकर उनका सारा भय दूर हो गया। निद्रा भी उनके पास न आ सकी। विष्णुद्वारा सुरक्षित होनेके कारण इन्द्र ज्यों-के-त्यों स्वस्थ ही रह गये—यह देखकर शुक्राचार्यकी माता क्रोधसे तमतमा उठीं। उन्होंने यह वचन कहा—'मघवन्! मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे विष्णुसहित तुम्हें निगल जाऊँगी। मेरे ऐसे तपोबलको सम्पूर्ण देवता देखते रह जायँगे—किसीका कुछ वश न चल सकेगा।'

व्यासजी कहते हैं—शुक्राचार्यकी माता योगविद्याकी पूर्ण जानकार थीं। उनकी उस शक्तिके प्रभावसे भगवान् विष्णु और इन्द्रकी सारी शक्ति कुण्ठित हो गयी। वे बिलकुल फीके पड़ गये। यों अत्यन्त क्लेशमें पड़े हुए उन महात्माओंको देखकर देवताओंके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा। उन्हें दुःखी देखकर इन्द्रने भगवान् विष्णुसे कहा—'मधुसूदन! मैं आपकी अपेक्षा अधिक दुःखी हूँ। प्रभो! अब आप इस दुष्टाको तुरंत दबानेकी कृपा कीजिये। माधव! इसे अपनी तपस्याका अभिमान हो गया है। यह हमारेपर आक्रमण करे, इसके पहले ही आप उपाय करें। विष्णो! विचार करना इस समय अवाञ्छनीय है।' महात्मा इन्द्रके यों कहनेपर भगवान् विष्णुने तुरंत सुदर्शनचक्रको याद किया। सुदर्शनचक्र निरन्तर भगवान्‌के अधीन रहता है। स्मरण करते ही पहुँच गया। देवराजके प्रेरणा करनेपर कुपित होकर शुक्राचार्यकी माताको मारनेके लिये भगवान्‌ने चक्र उठा लिया और तुरंत ही शुक्र-माताका मस्तक धड़से अलग कर दिया।

उनकी मृत्यु देखकर इन्द्रके आनन्दकी सीमा न रही। देवता भी अत्यन्त संतुष्ट होकर भगवान्

विष्णुकी जय-जयकार मनाने लगे। सभीके मन हर्षोत्फुल्ल थे। उनका मानसिक संताप सदाके लिये शान्त हो गया था; किंतु तभीसे भगवान् विष्णु और इन्द्रके हृदयको स्त्री-हत्या और भृगु मुनिका दुर्धर्ष शाप—ये दोनों विषय सशङ्कित कर रहे थे। (अध्याय १०-११)

☆

## भगवान् विष्णुको भृगुका शाप, शुक्र-माता या भृगु-पत्नीका पुनर्जीवन, इन्द्रकन्या जयन्तीके द्वारा तपोनिरत शुक्राचार्यकी सेवा, बृहस्पतिका शुक्राचार्य बनकर दैत्योंको छलना, दैत्योंके द्वारा शुक्राचार्यका तिरस्कार, शुक्राचार्यके द्वारा दैत्योंको शाप, दैत्योंका पुनः शुक्राचार्यकी शरणमें जाना तथा शुक्राचार्यका प्रसन्न होना

व्यासजी कहते हैं—उस दारुण हत्याको देखकर महाभाग भृगु क्रोधसे आगबबूला हो उठे। उनके सारे शरीरमें कँपकँपी छूट गयी। उन्हें असीम दुःख हुआ। उन्होंने जाकर भगवान् विष्णुसे कहा।

भृगु बोले—विष्णो! तुम्हें सर्वोत्तम बुद्धि

सुलभ है। तुमने पाप जानते हुए भी नहीं करनेयोग्य काम कर डाला। यह ब्राह्मणीका वध हो गया, जिसकी मनसे भी कल्पना करना अनुचित है। यह प्रसिद्ध है कि तुम सत्त्वगुणी हो, ब्रह्मामें रजोगुण है और शंकर तमोगुणी हैं। फिर आज तुम क्यों तामसी बन गये? विष्णो! निरपराध स्त्री अवध्य मानी जाती है। तुम कैसे इसकी हत्यामें प्रवृत्त हो गये? तुम्हारे लिये अब और क्या करूँ—शाप दे रहा हूँ। तुमने इन्द्रकी भलाई करनेके लिये मुझे स्त्रीसे वञ्चित कर दिया। अतः विष्णो! मेरे शापके प्रभावसे मर्त्यलोकमें तुम्हारे बहुत-से अवतार होंगे और तुम्हें लीलासे गर्भमें रहना पड़ेगा।

व्यासजी कहते हैं—अब उस शापके अनुसार ही धरातलपर भगवान् पधार रहे हैं। धर्मका ह्रास होनेपर जगत्का कल्याण करनेके लिये भगवान्का बार-बार अवतार हुआ करता है। वे मानवरूपमें प्रकट होते हैं।

राजा जनमेजयने पूछा—अमित तेजस्वी चक्रके द्वारा महात्मा भृगुकी पत्नीके मारे जानेपर फिर उनके गार्हस्थ्य जीवनका निर्वाह कैसे हुआ?

व्यासजी कहते हैं—मुनिवर भृगु बड़े कार्यकुशल थे। क्रोधवश भगवान् विष्णुको शाप देनेके पश्चात् उन्होंने तुरंत पत्नीका मस्तक उठा लिया और उसे धड़से जोड़कर कहा—'देवी! तुम विष्णुद्वारा मारी जा चुकी हो; किंतु

अब मैं तुम्हें जीवित कर रहा हूँ।' यदि मैं सम्पूर्ण धर्म जानता हूँ तथा मेरे द्वारा उनका सम्यक् आचरण हुआ है तो उस सत्यके प्रभावसे यह देवी पुनः जीवित हो जाय। मैं सत्य कहता हूँ। सभी देवता मेरी तपस्याका महान् बल देख लें। पहले उस शवको शीतल जलसे सिञ्चन किया और फिर कहा—'यदि मैं सदाचारी, सत्यभाषी, वेदाभ्यासी और तपस्वी हूँ तो तपोबलसे तुम्हें जीवित किये देता हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—जल-सिञ्चन करते ही भृगुपत्नीके मृत शरीरमें प्राण लौट आये। अत्यन्त प्रसन्न होकर वह उठकर बैठ गयी। उसका मुखमण्डल पवित्र मुसकानसे भर गया। वहाँके जनसमाजने देखा, मानो वह सोकर उठी हो। मुनिवर भृगु और उनकी पत्नीको लोग धन्यवाद देने लगे। उनकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। इस प्रकार भृगु मुनिके उद्योगसे उनकी सुन्दरी स्त्रीके मृत शरीरमें पुनः प्राण आ गये। यह देखकर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके मनमें आश्चर्यकी सीमा न रही। तब इन्द्रने देवताओंसे कहा—'भृगु मुनिके प्रयाससे उनकी साध्वी पत्नी जीवित हो गयी। उधर मन्त्र-ज्ञानी शुक्राचार्य कठिन तप कर रहे हैं। तपमें सफल होकर पता नहीं, वे क्या कर डालेंगे।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! शुक्राचार्य मन्त्रप्राप्तिके लिये अत्यन्त कठिन तप कर रहे हैं—यह समाचार सुनकर इन्द्र व्याकुल हो उठे। उन्हें अब नींदतक नहीं आती थी। तब मन-ही-मन विचार करके उन्होंने अपनी सुन्दरी कन्या जयन्तीसे कुछ मुसकराते हुए यह वचन कहा—'पुत्री! शुक्राचार्य बड़े तपस्वी पुरुष हैं। मैं तुमको उन्हें दे चुका। तुम उनके पास जाओ। सुकुमारी! मेरे कल्याणार्थ तुम उनकी समुचित सेवा करके उन्हें वशमें कर लो। जो व्यवहार उनके मनके अधिक अनुकूल हों, उन सबका उपयोग करके मुनिको संतुष्ट करना परम आवश्यक है। बेटी! तुम शीघ्र मुनिके उस उत्तम आश्रमपर जाकर मेरा भय दूर करो।' जयन्तीका रूप बड़ा चित्ताकर्षक था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। पिताकी आज्ञा पाकर वह मुनिके आश्रमपर चली गयी। देखा, मुनि धूम्रपान कर रहे थे। उनके सर्वाङ्गपर दृष्टिपात करते ही पिताकी बात याद आ गयी। तब उसने केलेकी एक डहुँगी लेकर उससे मुनिके ऊपर पंखा झलना आरम्भ कर दिया। अत्यन्त भक्ति-पूर्वक पीनेके लिये ठंडा जल सामने उपस्थित किया। वह जल सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित कर दिया गया था। मध्याह्नकालमें वह वस्त्रको ही छत्ता मानकर उससे मुनिपर छाया करनेकी व्यवस्था कर देती थी। उस सुन्दरीने पूर्णरूपसे पातिव्रत्य-धर्मका पालन आरम्भ कर दिया। मुनिका नित्यकर्म समीचीनरूपसे सम्पन्न

हो—एतदर्थ सुगेके समान प्रादेशमात्र कुशाएँ और फूल आगे रख देना उसका नित्यनियम बन

गया था। सोनेके लिये वह पल्लवोंकी सुखदायी शय्या तैयार कर देती थी। मुनिके सो जानेपर वह धीरे-धीरे हवा करती थी। यों मुनिपर वह अपनी श्रद्धा प्रकट करने लगी। पर जयन्ती किसी भी समय ऐसा कोई भी हाव-भाव नहीं करती थी, जिससे कामवासना उत्पन्न हो। सुन्दरी जयन्तीकी वाणी बड़ी मधुर थी। मुनिको प्रसन्न करना उसे अभीष्ट था। अतः अनुकूल वाणीद्वारा वह महात्मा शुक्राचार्यकी स्तुति करने लगी। मुनि जब सोकर उठते थे, तब आचमन करनेके लिये वह जल रख देती थी। यों जयन्तीका सारा व्यवहार मुनिके अनुकूल निरन्तर होता रहा। शुक्राचार्य इन्द्रियविजयी महात्मा थे। उनकी मनोवृत्ति जाननेके लिये बुद्धिमान् इन्द्रने उनके पास सेवकोंको भी भेज रखा था। इस प्रकार जयन्ती बहुत वर्षोंतक शुक्राचार्यकी सेवा करती रही। उस साध्वीके मनमें विकारका नितान्त अभाव था। क्रोधपर भी वह विजय पा चुकी थी। ब्रह्मचर्यके सभी नियमोंका सुचारुरूपसे पालन करती थी। पूरे एक हजार वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् मुनिपर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने मनको मुग्ध करते हुए वर माँगनेके लिये मुनिसे अनुरोध किया।

भगवान् शंकर बोले—भृगुनन्दन ! जगत्में जो कुछ भी है तथा तुम जिसको देखते हो एवं जो किसीकी भी वाणीका अविषय है, ऐसे सभी पदार्थोंसे तुम सम्पन्न हो जाओगे—ब्रह्मन् ! इसमें कोई संशय नहीं है। ब्राह्मणों और प्रजाओंमें तुम्हारी प्रधानता स्थिर रहेगी। सम्पूर्ण प्राणी तुम्हें मारनेमें असमर्थ सिद्ध होंगे।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार वर देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर शुक्राचार्यने जयन्तीको देखकर बड़े सद्भावसे उससे यह वचन कहा—'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? तुम्हारी क्या अभिलाषा है ? किसलिये तुमने यहाँ आनेका कष्ट उठाया ? तुम्हारा कौन-सा कार्य है और तुम क्या चाहती हो—सुलोचने ! मुझे बताओ। मैं तुम्हारे कठिन-से-कठिन कामको भी अभी करनेको तैयार हूँ। सुव्रते ! आज मैं तुम्हारी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। वरोरु ! अभिलषित वर माँग लो।'

मुनिके यों कहनेपर जयन्तीका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने कहा—'भगवन् ! आप तपस्याके प्रभावसे मेरा मनोरथ जान सकते हैं।'

शुक्राचार्यने कहा—मुझे ज्ञात हो गया है; फिर भी तुम्हें अपनी अभिलाषा तो व्यक्त करनी ही चाहिये। मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। सब तरहसे तुम्हारा कल्याण करना मेरा परम कर्तव्य है।

जयन्ती बोली—ब्रह्मन् ! मैं इन्द्रकी पुत्री हूँ। मेरा नाम जयन्ती है। जयन्तकी मैं छोटी बहिन हूँ। मुने ! पिताजीने मुझे आपको समर्पण कर दिया है। विभो ! आप मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

शुक्राचार्यने कहा—सुन्दरी ! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य रहकर अपने इच्छानुसार दस वर्षोंतक मेरे साथ आनन्दका अनुभव करो।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर शुक्राचार्यने जयन्तीका हाथ पकड़ लिया और वे घर चले गये। जयन्तीके साथ रहनेकी व्यवस्था कर ली। दस वर्षोंतक वे घरसे बाहर नहीं

निकले। उन्होंने ऐसी मायासे अपनेको आच्छादित कर लिया था कि कोई भी प्राणी उन्हें देख नहीं सकता था। दैत्योंने सुना, गुरुदेव मन्त्रप्राप्तिमें सफलीभूत होकर आ गये हैं। अतः प्रसन्न होकर वे शुक्राचार्यसे मिलनेके लिये उनके घरपर गये। किंतु वे उन्हें देख न सके; क्योंकि उस समय मुनि जयन्तीके साथ थे। अतः सम्पूर्ण दैत्योंके मुखपर उदासी छा गयी। उनका सारा उद्योग नष्ट हो गया। उनके मनपर चिन्ताकी काली घटा घिर आयी। अत्यन्त कातर होकर वे बार-बार इधर-उधर निहारने लगे। जब आवरणमें छिपे हुए मुनिको किसी प्रकार न देख सके, तब जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। उस समय उन प्रधान दैत्योंका चित्त चिन्तासे घिर गया था। वे भयसे अत्यन्त घबरा उठे थे, इधर इन्द्रने अपने गुरु महाभाग बृहस्पतिसे कहा—'अब इसके बाद क्या करना आवश्यक है? ब्रह्मन्! आप अभी दानवोंके पास जाइये और उन्हें मायाके प्रभावसे फँसा लीजिये। मानद! आप बुद्धिपूर्वक विचार करके हमारे कार्य-साधनमें तत्पर हो जाइये।' जब इन्द्रकी बात सुनकर उन्हें विदित हो गया कि शुक्राचार्य गुप्त रह रहे हैं, तब देवगुरु बृहस्पति स्वयं शुक्रका वेष बनाकर दैत्योंके पास गये। वहाँ जाकर बड़ी श्रद्धा दिखाते हुए उन्होंने दानवोंको बुलाया। सभी असुर सामने आये और देखा, हमारे गुरु शुक्राचार्यजी आ गये हैं। तब वे प्रणाम करके उनके सामने खड़े हो गये। बृहस्पतिको ही शुक्राचार्य मानकर वे अत्यन्त आनन्दमें भर गये। उन सबको विदित न हो सका कि यह बृहस्पतिकी माया है, जो गुरुदेवके रूपमें प्रकट है। तब मायासे छिपे हुए शुक्राचार्यरूपी बृहस्पतिने दानवोंसे कहा—'मेरे यजमानोंका स्वागत है। मैं तुम्हारा कल्याण करनेके लिये ही आया हूँ। मैंने जो विद्याएँ प्राप्त की हैं, वे सभी सच्चे मनसे तुम्हें पढ़ा दूँगा। तपस्या करके भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेका उद्देश्य एकमात्र तुम्हारा कल्याण ही था।' यह वचन सुनकर वे श्रेष्ठ दानव हर्षोल्लाससे भर गये। गुरुदेव कार्यमें सफल हो गये—यह मानकर उनके मुखपर प्रसन्नताकी किरणें छा गयीं। उनकी अधिक सोचने-समझनेकी शक्ति कुण्ठित थी। बड़े आनन्दके साथ गुरुदेवके चरणोंमें उन्होंने मस्तक झुकाया। उनके मनमें किंचिन्मात्र भी भय और क्लेशका समावेश नहीं था। देवताओंद्वारा प्राप्त होनेवाले भयका परित्याग करके वे शान्तचित्तसे समय व्यतीत करने लगे।

जनमेजयने पूछा—बड़े दादाजी! अब मुझे यह बताइये, बृहस्पतिने शुक्राचार्यका वेष बनाकर क्या किया और शुक्राचार्य पुनः कब लौटे?

व्यासजी बोले—राजन्! महात्मा बृहस्पति मायिक शुक्राचार्य बन गये। उस समय स्वयं अव्यक्त रहकर उन्होंने जो काम किया, वह बताता हूँ; सुनो। सर्वप्रथम उन्होंने ऐसा प्रयत्न किया कि दैत्योंकी यह निश्चित धारणा हो गयी, ये हमारे गुरुदेव शुक्राचार्य हैं। अब दैत्यों और बृहस्पतिमें पूर्ण एकता हो गयी। तदनन्तर बृहस्पतिको गुरुदेव शुक्राचार्य मानकर उनसे पढ़नेके लिये वे उनकी शरणमें गये। सभी दैत्य स्वार्थान्ध थे। लोभसे किसीकी भी बुद्धि कुण्ठित हुए बिना नहीं रह सकती। इधर जयन्तीके साथ क्रीडा करनेका जो दस वर्षका समय निश्चित था, वह पूरा हो गया। तब

शुक्राचार्य यजमानोंके विषयमें विचार करने लगे—'वे सभी यजमान मेरे आनेकी आशासे मार्ग देखते हुए खड़े होंगे। उनका हृदय अत्यन्त आतुर हो गया होगा। अतः चलकर उनसे मेरा मिलना परम आवश्यक है। वे मेरे अनन्य भक्त हैं। मैं ऐसा प्रयत्न करूँ कि उनके सामने देवताओंका भय न रह सके।' तब उन्होंने जयन्तीसे कहा—'सुलोचने ! इस समय मेरे दैत्यपुत्र देवताओंके पास कालक्षेप कर रहे हैं। तुम्हारे साथ रहनेकी दस वर्षकी जो अवधि निश्चित थी, वह पूरी हो चुकी है। अतः देवी ! अब मैं उन पुत्रोंसे मिलनेके लिये जा रहा हूँ। सुमध्यमे ! फिर शीघ्र तुम्हारे पास आनेकी चेष्टा करूँगा।' जयन्ती धार्मिक विषयकी पूर्ण विदुषी थी। उसने शुक्राचार्यसे कहा—'बहुत ठीक। धर्मज्ञ ! आप स्वेच्छापूर्वक वहाँ पधार सकते हैं। आपके धार्मिक कृत्यमें रोड़ा अटकाना मुझे अभीष्ट नहीं है।'

जयन्तीके वचन सुनकर शुक्राचार्य उसी क्षण वहाँसे प्रस्थित हो गये। आकर देखा, दानवोंके निकट बृहस्पतिजी विराजमान हैं। उन्होंने मायासे अपना सुन्दर वेष बना लिया था। वे यज्ञनिन्दापरक विविध वचन कह रहे थे। इससे शुक्राचार्यको महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'मेरे प्रति बृहस्पति अवश्य वैमनस्य रखते हैं। इन्होंने मेरे यजमानोंको ठग लिया है, इसमें कोई संशय नहीं है। लोभ पापका मूल कारण है। इसे धिक्कार है। यह ऐसा पाप है कि जिसके कारण बृहस्पतिको भी झूठ बोलना पड़ रहा है। जिनकी वाणी प्रमाण मानी जाती है तथा जो सम्पूर्ण देवताओंके गुरु एवं धर्मशास्त्रके प्रवर्तक हैं, वे भी पाखण्डके पोषक बन गये—यह लोभकी ही विशेषता है। लोभसे मनुष्यके मनमें गंदे विचार भर जाते हैं। फिर वह क्या-क्या नहीं कर डालता। तभी तो ये ब्राह्मण-श्रेष्ठ होते हुए भी सारी धूर्तविद्याओंसे सम्पन्न होकर मेरे यजमानोंको ठग रहे हैं और ये मेरे यजमान भी बड़े मूर्ख हैं।,

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार मनमें सोचकर शुक्राचार्यने मानो मुस्कराते हुए दैत्योंसे कहा—'दैत्यो ! मेरा वेष धारण करनेवाले इन बृहस्पतिके भुलावेमें तुम क्यों पड़ रहे हो ? मैं शुक्राचार्य हूँ। ये तो बृहस्पति हैं। ये देवताओंका काम बनानेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। यह निश्चित है कि मेरे तुम सभी यजमानोंपर इनकी धूर्तता काम कर गयी। आर्यो ! तुम्हें इनकी बातपर श्रद्धा नहीं करनी चाहिये। इनसे अलग होकर तुम मेरे अनुयायी बन जाओ।' शुक्रोचार्यकी यह बात सुनकर दैत्योंने उनपर तथा बृहस्पतिपर दृष्टि डाली। दोनों एक समान प्रतीत हुए। अब दैत्योंके आश्चर्यकी सीमा न रही। फिर तो उन्होंने निश्चय किया—ये ही शुक्राचार्यजी हैं; किंतु अभी उनका मन आश्चर्यसे मुक्त न था। ऐसी स्थितिमें उन दैत्योंको देखकर उनसे बृहस्पतिने, जो शुक्राचार्यके वेषमें उपस्थित थे, यह वचन कहा—'ये बृहस्पति तुम्हें ठग रहे हैं, ठगनेके लिये ही इन्होंने मेरी आकृति बना ली है। देवताओंका कार्य सम्पन्न हो जाय, एतदर्थ तुम्हें ठगनेके निमित्त इनका यहाँ आना हुआ है। दैत्यवरो ! तुम इनकी बातपर बिलकुल विश्वास मत करना। मैंने भगवान् शंकरसे मन्त्र-विद्याका अध्ययन किया है। उसे तुम्हें पढ़ा रहा हूँ; मैं देवताओंको अवश्य परास्त करा दूँगा—इसमें कोई संदेह नहीं है।' शुक्राचार्यके वेषमें

उपस्थित बृहस्पतिकी बात सुनकर उन दैत्योंके मनमें पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने निश्चय कर लिया, ये ही गुरुदेव शुक्राचार्य हैं। जो वास्तविक शुक्राचार्य थे, उन्होंने दानवोंको बहुत तरहसे समझाया-बुझाया; किंतु विपरीत कालके प्रभावसे बृहस्पतिकी मायाके वे इतने विवश थे कि कुछ भी न समझ सके, बल्कि ऐसा निश्चय हो जानेके उपरान्त वे असली शुक्राचार्यसे कहने लगे—'ये ही हमारे गुरुदेव

हैं। इनके द्वारा हमें सद्बुद्धि प्राप्त हुई है। ये बड़े धर्मात्मा एवं हितैषी हैं। इन शुक्राचार्यजीने हमें दस वर्षोंतक निरन्तर विद्याध्ययन कराया है। तुम जाओ, बड़े धूर्त जान पड़ते हो। हम तुम्हारे शिष्य नहीं हैं।'

दैत्य महान् मूर्ख थे। उन्होंने वास्तविक शुक्राचार्यसे उपर्युक्त बातें कहनेके पश्चात् उन्हें डाँटा और फटकार भी सुनायी। साथ ही वे बृहस्पतिकी शरणमें चले गये। उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। इस प्रकार बृहस्पतिके प्रभावसे प्रभावित दैत्योंको देखकर शुक्राचार्यके मनमें निश्चय हो गया कि बृहस्पतिने इन्हें खूब समझाकर पक्का कर दिया है और उनकी वञ्चनासे ये विवश हैं। अतः अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने दैत्योंको शाप दे दिया—'तुमलोग समझानेपर भी मेरी बातका तिरस्कार कर रहे हो, इसके फलस्वरूप तुम्हारे सामने महान् संकट उपस्थित होगा। तुम्हारी हार अवश्यम्भावी है। तुमने मेरा जो अपमान किया है, इसका फल अभी थोड़े ही समयमें तुम्हें प्राप्त होगा। तब इनके सम्पूर्ण कपटसे तुम परिचित हो जाओगे।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर अत्यन्त कुपित हो शुक्राचार्य तुरंत वहाँसे चल पड़े। अब बृहस्पतिका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया। कुछ समयतक तो सावधान होकर वे वहीं रहे। तत्पश्चात् शुक्राचार्यने दैत्योंको शाप दे दिया है—यह जानकर वे शीघ्र ही चल दिये। जाते समय बृहस्पतिने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया था। स्वर्गमें जाकर बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा—मेरे द्वारा निश्चय ही तुम्हारा काम बन गया; क्योंकि शुक्राचार्यने दैत्योंको शाप दे दिया है और फिर मुझसे भी वे त्याग दिये गये हैं। इस प्रकार उनको मैंने निराधार बना दिया है। महाभाग ! अब सभी प्रधान देवता युद्ध करनेकी तैयारी कर लें। वे दैत्य तो मेरे प्रयाससे शापद्वारा स्वयं जल-भुन गये हैं।

उस समय बृहस्पतिकी बात सुनकर इन्द्रके मनमें प्रसन्नताकी सीमा न रही। सम्पूर्ण देवता ठहाका मारकर हँसने लगे। सबने बृहस्पतिका बड़ा स्वागत किया। फिर युद्ध करनेकी राय की और बैठकर आपसमें विचारने लगे। निश्चित हो जानेपर सभी देवता एक साथ निकले और दानवोंके सामने पहुँच गये। देवता अमित

बलशाली तो थे ही, उनमें उत्साहकी भी कमी न थी। बड़े उमंगके साथ युद्ध करनेके लिये वे पहुँचे थे। गुप्तरूपसे बृहस्पतिकी सहायता उन्हें प्राप्त थी। उनकी स्थिति जानकर दैत्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे। बृहस्पतिकी मायाने उनकी बुद्धिको हर लिया था। वे आपसमें कहने लगे—'महात्मा शुक्राचार्य हमारे आराध्यदेव हैं, किंतु वे कुपित होकर चले गये; बृहस्पति महान् नीच एवं कपट करनेमें परम प्रवीण है। वह भी हमें ठगकर चला गया। अब हम क्या करें, कहाँ जायँ ? शुक्राचार्यजी अत्यन्त क्रोधमें भर गये हैं, सहायता प्राप्त करनेके लिये हम किस प्रकार उन्हें हर्षित एवं संतुष्ट करें ?'

इस प्रकार विचार करके सभी दानव एक साथ पुनः शुक्राचार्यके पास गये। उस समय दानवोंका सर्वाङ्ग भयसे काँप रहा था। मुनिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर वे चुपचाप खड़े हो गये। उस अवसरपर शुक्राचार्यकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठी थीं। उन्होंने दैत्योंसे कहा—'यजमानो ! मैंने तुम्हें सम्यक् प्रकारसे समझानेकी चेष्टा की; किंतु उस क्षण तुमने कपटी बृहस्पतिकी मायासे मोहित होकर मेरे हितकर, पवित्र एवं उचित वचनोंका भी अनादर कर दिया। तुम बृहस्पतिके वशीभूत हो गये। अभिमानके मदने तुम्हें मतवाला बना दिया था। अतएव मुझे अपमानित करनेके लिये तुम तत्पर हो गये। अब उस अनादर करनेका बुरा फल तुम्हें भोगना पड़ रहा है। तुम्हारा सर्वस्व छिन गया। तुम वहाँ चले जाओ, जहाँ वह छलिया बृहस्पति देवताओंका काम बनानेके लिये धूर्तता किये बैठा है। मैं उसके-जैसा वञ्चक नहीं हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार शुक्राचार्य संदेहयुक्त वचन बोल रहे थे। इतनेमें प्रह्लादने उनके दोनों पैर पकड़कर प्रार्थना आरम्भ कर दी।

प्रह्लादने कहा—शुक्राचार्यजी ! आपके हम सभी यजमान सेवामें उपस्थित हैं, हमें महान् कष्ट हो रहा है। सर्वज्ञ ! आप हमलोगोंका परित्याग कर दें—यह उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि हम आपके पुत्र-तुल्य हैं। मन्त्रका अभ्यास करनेके लिये आपके चले जानेपर दुरात्मा बृहस्पति छल करके आपके रूपमें आया और उसने हमें ठग लिया। वह बड़ी मीठी-मीठी बातें कर रहा था। बिना जानकारीके जो अपराध बन जाता है, उसके कारण शान्तचित्त पुरुष क्रोध नहीं किया करते। सर्वज्ञ ! आप सभी बातोंसे पूर्ण परिचित हैं। हमारा अहंकारशून्य चित्त सदा आपमें अटका रहता है। महामते ! आप तपस्याके प्रभावसे हमारे सच्चे अभिप्रायको जानकर क्रोध त्यागनेकी कृपा कीजिये; क्योंकि सभी मुनिगण कहा करते हैं, साधुपुरुषोंका क्रोध अधिक देरतक नहीं ठहरता। जलका स्वाभाविक गुण ठंडापन है। आगपर चढ़ा देनेसे वह गरम हो जाता है, किंतु आगका संयोग दूर होते ही फिर उसमें शीतलता आ ही जाती है। क्रोध चाण्डाल-स्वरूप है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये भलीभाँति इसे त्याग दे* । अतएव सुव्रत ! आप रोषशून्य होकर प्रसन्न होनेकी कृपा कीजिये। महाभाग ! हम असीम कष्ट भोग रहे हैं; यदि आप क्रोध

* ब्रुवन्ति मुनयः सर्वे क्षणकोपा हि साधवः। जलं स्वभावतः शीतं वह्न्यातपसमागमात्॥
भवत्युष्णं वियोगाच्च शीतत्वमनुगच्छति। क्रोधश्चण्डालरूपो वै त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः॥
(४। १४। ३५—३७)

नहीं त्यागकर उलटा हमें ही त्याग देते हैं तो फिर हमारे पैर रसातलमें ही जाकर ठहरेंगे।

व्यासजी कहते हैं—प्रह्लादकी बात सुननेके पश्चात् शुक्राचार्य ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देखकर प्रसन्न हो गये। उनका मुख मुसकानसे भर गया। उन्होंने दैत्योंसे कहा—'दानवो ! तुम मेरे यजमान हो। तुम्हें न तो डरना चाहिये और न पातालमें ही जाना चाहिये। अपने सत्य मन्त्रोंके प्रभावसे मैं तुम्हारी रक्षा कर लूँगा। धर्मके मर्मज्ञ महाशयो ! प्राचीन समयमें ब्रह्माजीके मुखसे मैंने जो बात सुनी है, उसे बता रहा हूँ; सुनो ! यह वचन बड़ा ही हितकर, सत्य और अटल है। उन्होंने कहा था—'होनेवाली बातें अवश्य होकर रहती हैं। धरातलपर कोई भी ऐसा सुयोग्य पुरुष नहीं है, जो प्रारब्धको विफल बनानेमें समर्थ हो सके। विपरीत समयके कारण इस समय तुम्हारी शक्ति क्षीण हो गयी है। अतः एक बार तो तुम्हें देवताओंसे परास्त होकर पातालमें जाना ही पड़ेगा। समय सदा बदलता रहता है। कुछ ही दिन पूर्व तुम सम्राट् रह चुके हो। सारी राजलक्ष्मी तुम्हें प्राप्त थी। प्रारब्धने उत्तम फल दे रखा था, जिससे पूरे दस युगोंतक तुम निष्कण्टक राज्य भोगते रहे। देवताओंका मस्तक तुम्हारे पैरोंके नीचे दबा था, फिर आगे भी आनेवाले सावर्णि मन्वन्तरमें तुम्हें राज्य प्राप्त होगा। तुम्हारे पौत्र बलि त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करके राज्य भोगेंगे।' जिस समय भगवान् विष्णु वामनरूप धारण करके तुम्हारे पौत्र बलिसे राज्य छीननेके लिये धरातलपर पधारे थे, उसी अवसरपर उन्होंने बलिके प्रति ये बातें कही थीं। जिन्होंने देवताओंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये बलिका राज्य छीन लिया था, उन श्रीहरिने बलिसे कहा, 'तुम आगे होनेवाले सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होओगे।'

शुक्राचार्यने कहा—प्रह्लाद ! जिस बलिसे

वामन-रूपधारी विष्णुने बात की थी वह तुम्हारा पौत्र इस समय सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य है। डरकर गुप्तरूपसे समय व्यतीत कर रहा है। एक समयकी बात है—वह गदहेका रूप धारण करके किसी सूने घरमें खड़ा था। इन्द्रके भयसे मनमें घबराहट मची थी। इतनेमें इन्द्र पहुँचे और बार-बार बलिसे पूछने लगे—'दैत्यशिरोमणे ! तुमने गदहेका रूप क्यों बना लिया ? तुम सम्पूर्ण लोकोंके भोक्ता और दैत्योंके अधिष्ठाता हो। राक्षसेश्वर ! क्या तुम्हें गदहेका रूप बनानेमें लाज नहीं लगती ?' इन्द्रका उपर्युक्त वचन सुननेके पश्चात् दैत्यराज बलिने उनका उत्तर दिया था—'शतक्रतो ! इसमें शोक और लज्जाकी क्या बात है। जैसे महान् तेजस्वी भगवान् विष्णु मछलीका रूप धारण करके यहाँ पधारे थे, वैसे ही मैंने गदहेका रूप बना लिया है। यह सब कुछ

समझका हेर-फेर है। जिस प्रकार तुम भी ब्रह्महत्याके डरसे कमलमें छिपकर समय व्यतीत कर चुके हो, उस समय तुम्हें महान् क्लेश भोगना पड़ा था, 'वैसे ही मैं भी गदहेका वेष बनाकर स्थित हूँ। पाकशासन ! दैवकी अधीनता स्वीकार करनेवालेको क्या दुःख और क्या सुख— सभी समान हैं। यह निश्चय है, दैव स्वतन्त्र है। वह जैसा चाहता है, वैसा ही कर लेता है।'

शुक्राचार्य कहते हैं—इस प्रकार बलि और इन्द्रने परस्पर सारगर्भित बातें कीं। उस बातचीतसे उनके मनमें पूर्ण संतोष हो गया। तदनन्तर वे अपने-अपने स्थानको पधार गये। प्रारब्धको प्रबल सिद्ध करनेवाली यह कथा मैंने तुम्हें कह सुनायी। देवता, दैत्य और मानवोंसे भरा-पूरा यह सारा जगत् दैवके अधीन है।

(अध्याय १२—१४)

☆

## देव-दानव-युद्ध और देवीके द्वारा देवासुर-संग्रामका निवारण

व्यासजी कहते हैं—शुक्राचार्य एक महान् पुरुष थे। उनकी बात सुनकर महाराज प्रह्लादको अपार आनन्द हुआ। दैव अत्यन्त बलवान् है— इस बातको वे समझ गये। उन्होंने दैत्योंसे कहा—'कदाचित् युद्ध किया जाय, तब भी विजय होनेकी सम्भावना नहीं है।' उस समय विजयाभिलाषी दानवोंने अभिमानमें चूर होकर प्रह्लादसे कहा—'युद्ध करना परम आवश्यक है। दैव क्या है—इसे हम नहीं जानते। दानवेश्वर ! निरुद्यम व्यक्ति ही दैवकी प्रधानतापर आस्था रखते हैं। दैवको किसने देखा है, कहाँ देखा है, दैव कैसा है और उसे किसने बनाया है ? यह कोरी कल्पना है। इसलिये अब हम सेना सजाकर युद्ध अवश्य करेंगे। दैत्यवर ! आपकी बुद्धि बड़ी विमल है। आप सभी बातें जानते हैं। केवल हमारे आगे आप रहनेकी कृपा कीजिये।' राजन् ! प्रबल शत्रुको भी मारनेकी शक्ति प्रह्लादमें थी। दानवोंके उत्तेजित करनेपर वे सेनाध्यक्ष बन गये और समराङ्गणमें पहुँचकर उन्होंने देवताओंको ललकारा। युद्धभूमिमें दानव डट गये हैं—यह देखकर सम्पूर्ण देवताओंने भी अपनी पूरी तैयारी कर ली और वे दानवोंके साथ युद्ध करने लगे। तदनन्तर इन्द्र और प्रह्लादका वह भीषण संग्राम चलने लगा। पूरे सौ वर्षोंतक युद्ध हुआ। इस महायुद्धमें प्रह्लादकी प्रधानता रही। शुक्राचार्यसे सुरक्षित दानव विजयी हो गये। तब इन्द्रने बृहस्पतिके आदेशानुसार भगवतीका मानसिक चिन्तन किया। भगवती सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाली, परम कल्याणस्वरूपिणी एवं मुक्ति प्रदान करनेमें बड़ी कुशल हैं।

इन्द्र बोले—देवी ! तुम्हारी जय हो। महामाये ! तुम जगज्जननी हो। तुम्हारे हाथमें त्रिशूल, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और खड्ग आदि आयुध विराजमान रहते हैं। सबको अभय कर देना तुम्हारा स्वभाव ही है। माता ! तुम्हें नमस्कार है। सारा भूमण्डल तुम्हारा आधिपत्य मानता है। छः प्रकारके दर्शन-शास्त्रों एवं दस तत्त्वोंकी तुम अधिष्ठातृ-देवी हो। महाबिन्दु तुम्हारा स्वरूप है। तुम महाकुण्डलिनीरूपा हो। सच्चिदानन्दमय तुम्हारा विग्रह है। प्राण और अग्निहोत्रसंज्ञक दोनों महायज्ञ तुम्हारे रूप हैं। दीपककी शिखाकी भाँति तुम प्रकाशमान हो। तुम्हें मेरा नमस्कार है। माता ! तुम्हारा पञ्चकोशात्मक

विग्रह है। तुम आनन्दमय कोशपुच्छभूत ब्रह्म-स्वरूपिणी हो। लोग तुम्हें आनन्द-कलिका कहते हैं। सम्पूर्ण उपनिषदोंद्वारा तुम्हारी ही स्तुति गायी जाती है। माता ! प्रसन्न होनेकी कृपा करो। जगदम्बे ! हम अत्यन्त निर्बल हो गये हैं। हमें दैत्योंने परास्त कर दिया है। देवी ! तुम हमारी शरणदात्री हो। अतः इस संकटसे हमें बचाओ। तुम्हारी शक्ति जगत्प्रसिद्ध है। कष्ट काटनेवाली देवी ! तुम्हें सभी शक्तियाँ सुलभ हैं। जो भी तुम्हारा ध्यान करते हैं, उन्हें अविनाशी सुख मिल जाता है तथा तुम्हारी उपासनासे उपेक्षा रखनेवाले दूसरे लोग अनेक प्रकारके दुःख, शोक और भयके शिकार बने रहते हैं। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले वीतराग एवं अहंकारशून्य महात्मा पुरुष तुम्हारी उपासना करके संसाररूपी समुद्रसे तर जाते हैं। देवी ! तुम विश्वकी माता हो। तुम्हारे प्रतापके सामने दुःख ठहर नहीं सकते। अखिल जगत्का संहार करनेके लिये तुम कालरूप धारण कर लेती हो। माता ! कौन मन्दबुद्धि साधारण जन तुम्हारे चरित्रको जान सकता है। जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, पवन, निगम, आगम एवं मुनिगण—ये सब भी आपकी अनुपम महिमामें असमर्थ रहते हैं। वे ही महात्मा पुरुष बड़भागी माने जा सकते हैं, जिनके हृदयमें तुम्हारा भक्तिभाव बस गया है; वे सांसारिक तापोंसे मुक्त होकर सुखके अगाध समुद्रमें गोता लगाते हैं। उमे ! तुम्हारी भक्तिसे वञ्चित मन्दभागी जन तो जन्म-मरणरूपी तरङ्गों-वाले दुःखमय संसारको कभी पार नहीं कर सकते। जिन बड़भागी पुरुषोंके ऊपर स्वच्छ चँवर डुलाये जा रहे हैं, जिन्हें हास्य-विलासका सुअवसर प्राप्त है तथा चढ़नेके लिये सुन्दर यान प्राप्त हैं, मैं सोच रहा हूँ कि उन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक प्रकारके उपचारोंद्वारा तुम्हारी पूजा अवश्य की है। जो सबसे सम्मान प्राप्त करके उत्तम हाथीपर बैठे हुए विचरते हैं तथा सामन्त नरेशोंने नम्रतापूर्वक जिनका साथ दे रखा है, मैं मानता हूँ कि उन्होंने अवश्य ही तुम्हारी आराधना की है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार इन्द्रके स्तुति करनेपर भगवती भुवनेश्वरी तुरंत वहाँ प्रकट हो गयीं। उस समय वे सिंहपर सवार थीं। उनका विग्रह चार भुजाओंसे सुशोभित था। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे उनके हाथ सुशोभित थे। सुन्दर आँखें थीं। लाल वस्त्र पहिन रखा था। दिव्य हार गलेकी शोभा बढ़ा रहा था। मुखपर प्रसन्नताकी किरणें छिटक रही थीं। उन्होंने सुरगणसे कहा—'देवताओ ! निर्भय हो जाओ। अब मैं अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करूँगी।' यों कहकर अत्यन्त सुन्दरी भगवती दुर्गा सिंहपर बैठी हुई तुरंत वहाँ चल पड़ीं, जहाँ मदके अभिमानमें चूर रहनेवाले दानव थे। जब प्रह्लादकी प्रधानतामें रहनेवाले उन सभी दैत्योंने देखा, देवी सामने आकर खड़ी हो गयीं, तब भयभीत होकर वे आपसमें विचार करने लगे—'अब आगे हमें क्या करना चाहिये ? हो-न-हो, भगवान् नारायणसे मिलकर यह चण्डिका यहाँ पधारी है। इसी शक्तिने महिषासुर तथा चण्ड और मुण्डको मार डाला था। जिसकी तिरछी नजर पड़ते ही मधु और कैटभ प्राणोंसे हाथ धो बैठे, वह भगवती जगदम्बा अब हम सभीके प्राण अवश्य हर लेगी।' दैत्य यों चिन्तातुर थे। उन्हें देखकर प्रह्लादने कहा—'श्रेष्ठ दानवो ! इस

समय युद्ध करना ठीक नहीं है। हम भागकर यहाँसे चले जायँ।' अब तो दैत्योंमें भगदड़ मच गयी। तब नमुचिने उन दानवोंसे कहा—'ऐसे कारण उपस्थित हैं कि यह जगन्माता कुपित होकर हमारा संहार अवश्य कर देगी।' फिर प्रह्लादसे कहा—'महाभाग ! आप ऐसा यत्न करें, जिससे दुःख सामने न आ सके ! हम इसी क्षण उस शक्तिकी स्तुति करके उससे आज्ञा ले पातालकी ओर चलनेकी व्यवस्था कर दें।'

प्रह्लादने कहा—मैं अभी भगवती शक्तिकी स्तुति करता हूँ। वे महामाया हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार—यह सब उन्हींकी लीला है। वे अखिल विश्वकी जननी हैं। भक्तोंको अभय कर देना उनका स्वाभाविक गुण है।

व्यासजी कहते हैं—प्रह्लाद भगवान् विष्णुके भक्त थे। उन्हें परोपकारका रहस्य ज्ञात था। वे हाथ जोड़कर भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे— जिनमें यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मालामें सर्पकी भाँति प्रतीत हो रहा है तथा जो सबकी अधिष्ठानस्वरूपा हैं, उन 'ह्रीं' मूर्तिधारिणी भगवतीको नमस्कार है। यह स्थावर-जङ्गम अखिल विश्व तुम्हींसे उत्पन्न हुआ है। जो दूसरे कर्ता प्रतीत हो रहे हैं, वे केवल निमित्तमात्र हैं, क्योंकि उनका भी निर्माण करनेवाली तुम्हीं हो। देवी ! तुम्हें नमस्कार है। महामाये ! तुम सम्पूर्ण जगत्की जननी कहलाती हो। देवता और दानव दोनोंको स्वयं तुमने ही बनाया है। फिर अपने ही कार्यमें यह कैसा भेद-भाव ? माताके अच्छे-बुरे सभी प्रकारके पुत्र होते हैं, किंतु क्या उनमें उसका भेद रहता है ? उसी प्रकार हममें और देवताओंमें इस समय तुम्हारा भेद रखना अनुचित है। माता ! दानव चाहे किसी प्रकारके क्यों न हों, किंतु हैं तो तुम्हारे पुत्र ही; क्योंकि पुराणोंमें तुम्हें विश्वजननी बताया गया है। हमारे ही समान वे देवता भी तो स्वार्थी हैं। हममें और उनमें कुछ भी अन्तर नहीं। यह मोहवश भेदका अवसर उपस्थित हुआ है। देवेश्वरी ! जैसे स्त्री-पुत्र प्रभृति विषयभोगोंमें हम निरन्तर आसक्त हैं, वैसे ही अपने परिवारमें देवताओंकी भी आसक्ति है। फिर देवता और दानवमें क्या भेद रहा ? वे भी कश्यपजीकी संतान हैं और हमारी उत्पत्ति भी कश्यपजीसे ही हुई है। माता ! ऐसी स्थितिमें हमारे प्रति तुम्हें कैसे द्वेष उत्पन्न हो गया है ? माता ! जब सबकी सृष्टि तुम्हींसे है, फिर यह भेद रखना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम्हें तो देवताओं और हम दानवोंमें समान व्यवहार ही रखना चाहिये। गुणसे सम्बन्ध होनेके कारण ही सम्पूर्ण देवताओं और दानवोंकी उत्पत्ति हुई है। फिर गुणोंके भण्डार वे देहधारी देवता क्यों तुम्हारे प्रिय हो जायँ और हम क्यों नहीं ? काम, क्रोध और लोभ—ये सदा समस्त प्राणियोंके भीतर रहते हैं। अतएव कोई भी व्यक्ति अविरोधी नहीं सिद्ध हो सकता। हम समझते हैं, हमारे और देवताओंके बीच तुम्हारा यह विरोध काल्पनिक है; निश्चय ही तुम फूट डालकर युद्ध देखना चाहती हो, अन्यथा अनघे ! भाइयों-भाइयोंमें ऐसा विरोध क्यों किया जाय। चामुण्डे ! यदि तुम्हें हमारी लड़ाई देखनेकी इच्छा न होती तो यह बात कहाँ सम्भव थी। धर्मके रहस्यको जाननेवाली देवी ! धर्म और इन्द्र—सभी हमसे परिचित हैं; किंतु विषयभोगकी आसक्तिके कारण हम सदा लड़ते-भिड़ते रहते हैं। अम्बिके ! तुम्हारे सिवा संसारमें कोई भी एकमात्र शासक नहीं है।

सम्पूर्ण दानव शरणमें आये हैं। चाहे इन्हें त्याग दो या रक्षा करो।'

श्रीदेवी बोलीं—दानवो ! तुम सबलोग निर्भय एवं क्रोधरहित होकर पातालमें चले जाओ और वहीं रहनेके लिये इच्छानुसार व्यवस्था कर लो। अभी तुम्हें कालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। अच्छे अथवा बुरे कार्यमें वही कारण है। जिनके हृदयमें श्रेष्ठ वैराग्यका उदय हो गया है, उन्हें तो सभी समय और सर्वत्र सुख-ही-सुख है। लोभी जनको त्रिलोकीका राज्य मिलनेपर भी सुखका मुख नहीं दीखता। अनेक इच्छा रखनेवाले लोग सत्ययुगमें भी फलोंको भोगकर पूर्ण सुखी नहीं हो सके*। अतएव इस पृथ्वीका परित्याग करके तुम अभी पातालमें चले जानेकी तैयारी कर लो। तुम सभी निर्दोष हो, मेरी आज्ञा मानकर उसीके अनुसार आचरण करो।

व्यासजी कहते हैं—भगवतीके वचन सुनकर समस्त दैत्योंने उनका अनुमोदन किया और चरणोंमें मस्तक झुकाकर पातालकी राह पकड़ ली। देवीने उनकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया था। फिर भगवती अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी अपने लोकको चले गये।

उस समय देवता और दानव सबने वैरभाव त्याग दिया। वे सुखसे समय व्यतीत करने लगे। जो बड़भागी पुरुष इस परम पावन उपाख्यानको कहता अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर परम पदका अधिकारी हो जाता है।

(अध्याय १५)

☆

## जनमेजयके पूछनेपर व्यासजीके द्वारा भगवान्‌के विविध अवतारोंका वर्णन तथा नारायणके आश्रमपर आयी हुई अप्सराओंका पूर्ववृत्तान्त

जनमेजयने पूछा—मुनिवर ! भगवान् विष्णुके सभी कर्म बड़े ही अद्भुत हैं। प्रभो ! श्रीहरिने भृगुजीका शाप सत्य करनेके लिये किस प्रकार अवतार धारण किये और किस मन्वन्तरमें उनका पधारना हुआ ? धर्मके रहस्यको जाननेवाले ब्रह्मन् ! भगवान्‌के अवतारकी पापनाशिनी एवं सर्व-सुखदायिनी कथाका विशदरूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी बोले—राजन् ! जिस मन्वन्तर एवं जिस युगमें भगवान् श्रीहरिके जैसे-जैसे अवतार हुए हैं, उन सबको मैं बतलाता हूँ; सुनो। नृपवर ! चाक्षुष मन्वन्तरमें भगवान् श्रीहरिका

---

* सुनिर्वेदपराणां हि सुखं सर्वत्र सर्वदा। त्रैलोक्यस्य च राज्येऽपि न सुखं लोभचेतसाम्॥
कृतेऽपि न सुखं पूर्णं सस्पृहाणां फलैरपि। (४।१६।६७-६८)

'धर्मावतार' हुआ था। उस समय वे 'धर्म' नामक ब्राह्मणके पुत्र होकर 'नर और नारायण' नामसे धरातलपर प्रसिद्ध हुए। इस वैवस्वत मन्वन्तरके दूसरी चतुर्युगीमें अत्रिके पुत्र बनकर भगवान् धराधामपर पधारे थे। वह उनका 'दत्तात्रेयावतार' था। अत्रिकी पत्नी अनसूयाने ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर—इन तीन प्रधान देवताओंसे पुत्र बननेका वर माँगा था। उसीको सत्य करनेके लिये वे उनके यहाँ अवतरित हुए थे। उन अत्रिपत्नी अनसूयाका पतिव्रताओंमें सबसे प्रमुख स्थान है, जिनके प्रार्थना करनेपर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर—तीनों देवताओंने पुत्र बननेकी बात स्वीकार कर ली थी। ब्रह्माजी चन्द्रमाके रूपमें पधारे। स्वयं भगवान् श्रीहरिने दत्तात्रेयका रूप धारण किया। शंकरजी दुर्वासा बने। इस प्रकार तीनों महानुभावोंने अनसूयाको माता बननेका गौरव प्रदान किया था। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये चौथे चतुर्युगमें भगवान्‌का 'नृसिंहावतार' हुआ था। उनके मनोहर विग्रहमें मनुष्य और सिंह—दोनोंके रूप लक्षित होते थे। उनके उस अवतारका उद्देश्य हिरण्यकशिपुको मारना था। उन्होंने ऐसा नारसिंहरूप बनाया था, जिसे देखकर देवता भी आश्चर्यमें डूब गये थे। श्रेष्ठ त्रेतायुगमें बलिका शासन करनेके लिये भगवान्‌ने 'वामन' रूपसे वसुधाको पवित्र किया था। उस समय वे मुनिवर कश्यपके घर पधारे थे। महाराज बलि यज्ञ कर रहे थे। भगवान् श्रीहरि वामनका वेष बनाकर यज्ञमें पहुँच गये और छल करके बलिका राज्य छीन लिया। साथ ही उन्हें पातालमें रहनेकी आज्ञा प्रदान कर दी। उन्नीसवें चतुर्युगके त्रेतामें भगवान् श्रीहरिका 'परशुरामावतार' हुआ था। उस समय वे मुनिवर जमदग्निके पुत्र बने थे। वे बड़े बलवान् थे। कई बार उन्होंने क्षत्रियोंका संहार कर डाला। वे श्रीमान्, सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। समूची पृथ्वीपर महात्मा कश्यपका अधिकार करा दिया। राजेन्द्र! त्रेतायुगमें भगवान्‌का 'रामावतार' हुआ था। वे भगवान् महाराज रघुके वंशमें प्रकट हुए थे। उन्होंने दशरथको पिता होनेका सुअवसर दिया था। भगवान् श्रीहरिके अंशसे जिन महाबली नर और नारायणका भूमण्डलपर पहले अवतार हो चुका था, वे ही अट्ठाईसवें युगके द्वापरमें पुनः धराधामपर पधारे। नर अर्जुन हुए और नारायण श्रीकृष्ण। भगवान्‌ने पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये मर्त्यलोकमें आनेका कष्ट उठाया था। वे शासकके पदपर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त भयंकर एक महान् युद्ध करवाया था।

राजन्! इस प्रकार प्रत्येक युगमें भगवान्‌के बहुत-से अवतार हुआ करते हैं। भगवती प्रकृतिके आदेशानुसार अवतारोंका होना निश्चित है; क्योंकि यह सारी त्रिलोकी उसीके वशीभूत है। वे प्रकृति अपनी इच्छाके अनुसार ही जगत्‌को निरन्तर नचाया करती हैं। परम पुरुष परमात्माको प्रसन्न रखनेके लिये देवी प्रकृति अखिल जगत्‌की सृष्टिमें संलग्न रहती हैं। सर्वप्रथम परब्रह्मने इस चराचर जगत्‌का सृजन किया। वह ब्रह्म आदिपुरुष है। उसका सर्वत्र प्रवेश है। उसे कोई जान नहीं सकते। वह अविनाशी है। वह न तो किसीके आश्रित रहता है और न उसका कोई रूप ही है। वह सदा शान्त और सबसे महान् है। उपाधिभेदसे वही तीन प्रकारका प्रतीत होता है। उससे योगमायाका अभिन्न सम्बन्ध है, जिससे यह परा प्रकृति लक्षित हो रही है। उत्पत्ति और कालके योगसे

यह प्रकृति उससे भिन्न प्रतीत होती है; किंतु है एक ही। यही प्रकृति स्वेच्छापूर्वक विश्वके सृजन एवं संरक्षणमें तत्पर रहती है। सबका मनोरथ पूर्ण करना इसका स्वाभाविक गुण है। कल्पके अन्तमें संहार करना भी इसीका कार्य है। विश्वको मोहित करनेकी योग्यता रखनेवाली यह प्रकृति तीन रूपोंसे विराजमान है। इसीके एक-एक रूपसे सम्बन्धित होकर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर क्रमशः विश्वके सृजन, संवर्धन तथा संहाररूपी कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं। इसी परा प्रकृतिने राजाधिराज भगवान् श्रीरामको रघुकुलमें प्रकट होनेकी प्रेरणा की थी। दानवोंको परास्त करनेके लिये जहाँ कहीं भी भगवान् अवतार ले सकते हैं—ऐसी उस प्रकृति देवीकी व्यवस्था है। ऐसे ही इस संसारमें भी प्राणियोंकी सृष्टि होती है। कोई सुख भोगते हैं तो कोई दुःख। सभीपर विधि-विधान लागू है। कोई स्वतन्त्र नहीं है।

जनमेजयने पूछा—मुने ! नर और नारायणके आश्रमपर अप्सराएँ जुटी थीं, यह प्रसङ्ग आप कह चुके हैं। नारायण शान्तचित्त होकर अकेले बैठे थे। अप्सराओंद्वारा घृणित प्रस्ताव हो रहे थे। वे कामसे आतुर थीं। उस अवसरपर मुनिवर नारायणके मनमें आया, इन अप्सराओंको शाप दे दूँ; किंतु दूसरे भाई धर्मवेत्ता नरने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। मुने ! उस समय बड़ी विकट समस्या सामने उपस्थित थी। नारायणने वहाँ कैसे निर्वाह किया; क्योंकि अप्सराएँ बारम्बार अपनी अभिलाषाएँ व्यक्त कर रही थीं। इन्द्रने अत्यन्त प्रार्थना करके उन अप्सराओंको वैसा करनेके लिये ही कहा था। जब अप्सराओंने नारायणसे स्पष्ट कह दिया—'आप हमारे पतिदेव बन जाइये' तब नारायणने क्या किया ? दादाजी ! मैं मुनिवर नारायणका यह मोक्षदायी चरित्र सुनना चाहता हूँ। आप बतानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी बोले—धर्मज्ञ राजन् ! धर्मनन्दन महात्मा नारायणकी कथाका कुछ प्रसङ्ग अभी बता रहा हूँ, सुनो। जब नारायण अप्सराओंको शाप देनेके लिये बिलकुल तैयार हो गये, तब नरने इसका निषेध किया और उन्हें शाप देनेसे रोक दिया। तब मुनिवर नारायण मान गये और उन्होंने अप्सराओंको आश्वासन देना आरम्भ किया। धर्मनन्दन नारायण एक प्रसिद्ध मुनि और परम तपस्वी थे। उनके क्रोधका वेग तुरंत शान्त हो गया। मुखपर मुसकराहट छा गयी। वे इस प्रकार मधुर वचन कहने लगे—'सुन्दरियो ! हमने इस जन्ममें नियम ले रखा है। किसी प्रकार भी विवाह न करें, यह हम दोनोंकी प्रतिज्ञा है। अतएव तुमलोग हमपर कृपा करके स्वर्ग पधारो। धर्मज्ञ व्यक्ति दूसरेके नियमको भंग नहीं किया करते, यह निश्चित है। महाभागाओ ! अब तुम कृपापूर्वक हमारे व्रतकी रक्षा होने दो। मैं दूसरे जन्ममें तुम्हारा पति बनूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है। सुन्दरियो ! देवताओंका कार्य सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न करनेके लिये अट्ठाईसवें युगके द्वापरमें मैं भूमण्डलपर प्रकट होऊँगा। उसी समय तुम सभी अलग-अलग जन्म लेकर मेरी पत्नी बनोगी। राजाओंके घर तुम्हारी उत्पत्ति होगी। पश्चात् तुमसे मेरा सम्बन्ध हो जायगा।' यों भगवान् नारायणने उन्हें पत्नी बनानेकी बात सुनाकर आश्वासन देनेके पश्चात् जानेका प्रस्ताव उपस्थित किया। वे निश्चिन्त होकर वहाँसे चल पड़ीं। इस प्रकार नारायणसे विदा पाकर वे अप्सराएँ स्वर्ग पहुँचीं और उन्होंने इन्द्रको सारा वृत्तान्त कह

सुनाया। अप्सराओंके मुखसे नारायणका विशद वृत्तान्त सुनने और उर्वशीको देखनेके बाद इन्द्रने उन महान् पुरुष नारायणकी बड़ी प्रशंसा की।
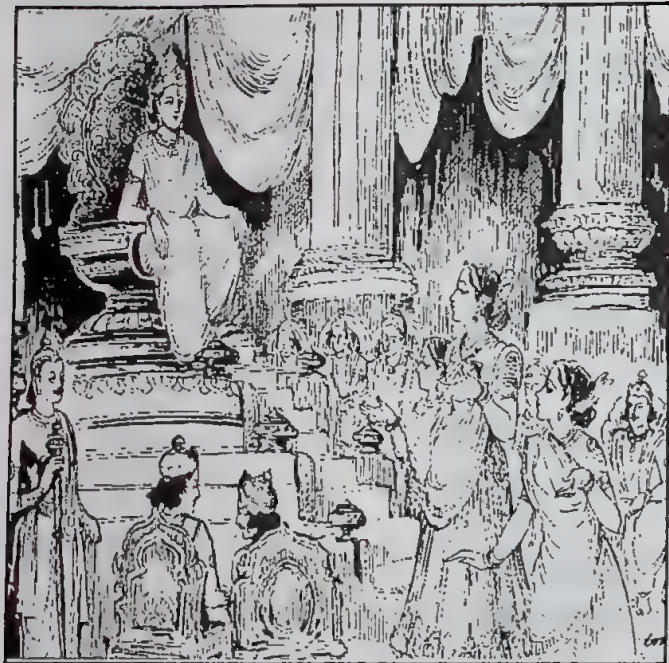
इन्द्रने कहा—मुनिके अपार धैर्य और तपोबलको धन्यवाद है, जिन्होंने अपनी तपस्याके प्रभावसे ऐसी उर्वशी आदि अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं।

इस प्रकार धन्यवाद देकर देवराज इन्द्र प्रसन्नमनसे अपने कार्यमें संलग्न हो गये और धर्मात्मा नारायणकी भी अक्षुण्ण तपस्या आरम्भ हो गयी। महामुने ! नर और नारायणका यह उपाख्यान बड़ा ही अद्भुत है। मैं इसका वर्णन कर चुका। भरतश्रेष्ठ ! वे ही नर और नारायण भृगुमुनिके शापवश पृथ्वीका बोझ हलका करनेके लिये अर्जुन एवं श्रीकृष्णके रूपमें भूमण्डलपर अवतरित हुए थे।

तदनन्तर राजा जनमेजयने सब प्रकारके संदेहोंका निवारण करते हुए श्रीकृष्णावतारकी कथा विस्तारपूर्वक सुनानेकी श्रीव्यासजीसे प्रार्थना की।

(अध्याय १६-१७)

☆

## भाराक्रान्त पृथ्वीका भगवान्‌की शरणमें जाना, योगमायाका आश्वासन देना

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णकी लीला बहुत विस्तृत है। उसे कहता हूँ, सुनो। देवीका अद्भुत चरित्र अवतारमें कारण हुआ करता है अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूपिणी आदिशक्तिके मनमें सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई कि अवतार-कार्य आरम्भ हो गया। एक समयकी बात है—पृथ्वी दुष्टोंके भारसे अत्यन्त दब गयी थी। उसे असीम कष्ट हो रहा था। वह दीन और भयभीत होकर गायका रूप धारण करके आँखोंसे आँसू बहाती हुई स्वर्गमें पहुँची। इन्द्रने पूछा—'वसुंधरे ! इस समय कौन-सा भय तुम्हारे सामने उपस्थित हो गया है ? किसके प्रयाससे तुम इतनी दुःखी हो रही हो ? अरी, तुम्हें क्या कष्ट है ?' देवराज इन्द्रकी बात सुनकर पृथ्वी बोली—'देवेश ! आप मुझसे पूछते हैं तो मैं सारा दुःख बताती हूँ; सुननेकी कृपा करें। मानद ! इस समय दुष्ट राजाओंका भार मेरे लिये असह्य हो गया है। महान् पापी जरासंध मगधमें तथा शिशुपाल चेदिदेशमें मेरा स्वामी बन बैठा है। प्रतापी काशिराज, शक्तिशाली रुक्मी, कंस, महाबली नरकासुर, सौभपति शाल्व, दुरात्मा केशी, धेनुकासुर एवं बकासुर—ये सभी लोग सम्पूर्ण शुभधर्मोंसे विमुख हैं। इनमें परस्पर लाग-डाँट लगी रहती है। ये बड़े दुराचारी, सदा अभिमानमें चूर रहनेवाले तथा कालस्वरूप हैं। देवेन्द्र ! इनसे मुझे बड़ी व्यथा हो रही है। विभो ! मैं इनके भारसे बहुत ही दब गयी हूँ। इस भारका वहन
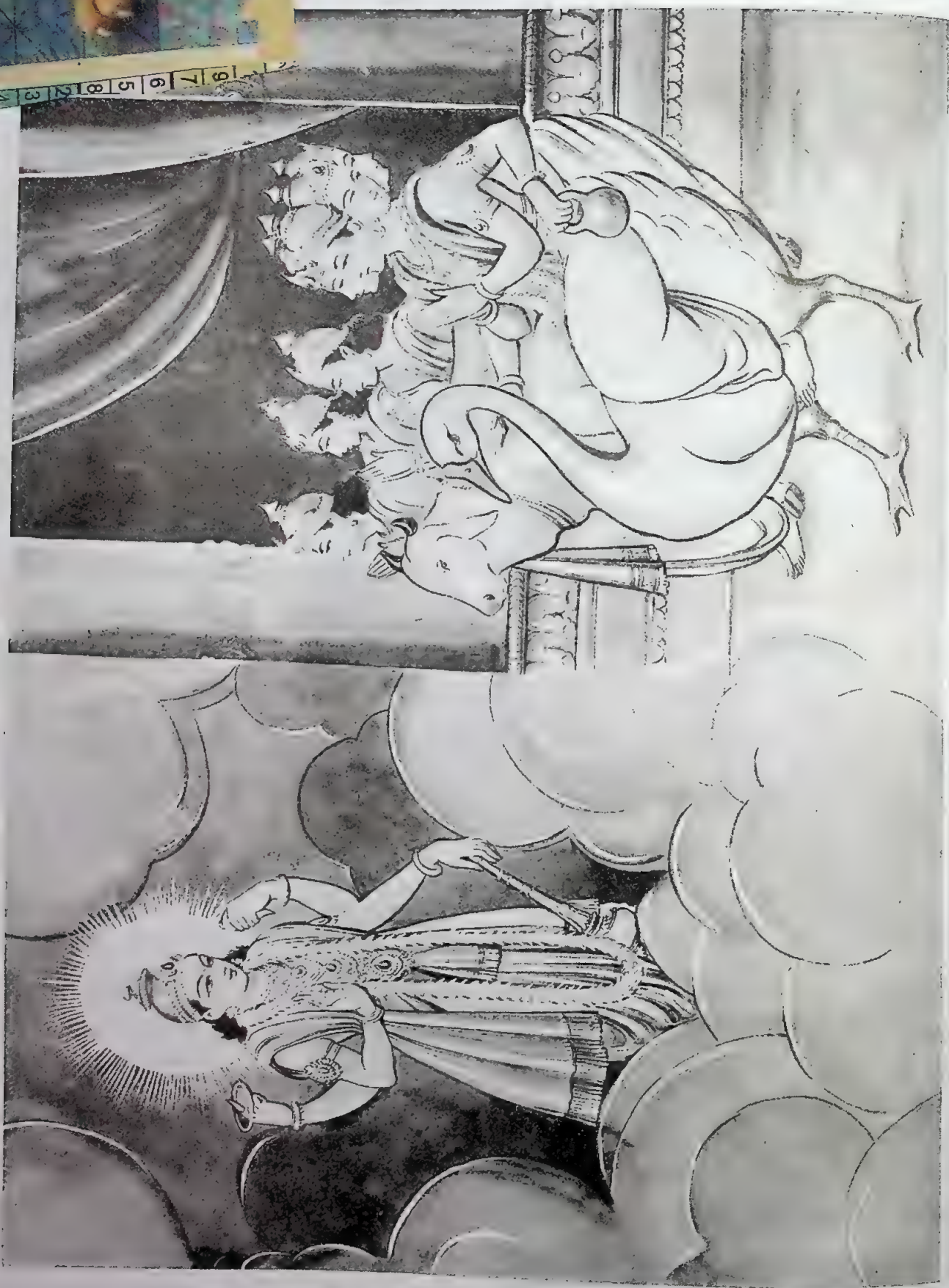
भगवान् विष्णुकी सेवामें पृथ्वीसहित देवता

करना अब मेरी शक्तिसे बाहर हो गया है। मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? बस, मेरे मनमें यही बड़ी चिन्ता है।

'देवराज ! आपको विदित है, पहले भी मुझपर विपत्ति पड़ी थी। शक्तिशाली श्रीहरिने वाराहावतार धारण करके मेरा उद्धार किया था। उस समय वे मेरे उद्धारक न हुए होते तो इस समय उससे भी अधिक दुःख भोगनेका अवसर ही कैसे आता ? क्योंकि उस समय कश्यप-नन्दन दुराचारी हिरण्याक्षने मुझे चुराकर अगाध जलमें डुबो दिया था। उस अवसरपर भगवान् विष्णुने शूकरका रूप धारण करके उस दुष्ट दैत्यको मारा और मुझे जलसे बाहर निकाला। साथ ही मेरे स्थिर रहनेकी व्यवस्था कर दी। अन्यथा मैं पातालमें शान्तचित्त रहकर सुखकी नींद सोयी रहती। देवेश ! अब मैं दुराचारी राजाओंका भार ढोनेमें बिलकुल असमर्थ हूँ। अतएव देवेन्द्र ! आपके चरणोंमें मेरा मस्तक झुका है। आप चतुर नाविक बनकर मेरा दुःखरूपी अपार समुद्रसे उद्धार कीजिये।'

तदनन्तर इन्द्रकी सम्मतिसे पृथ्वी ब्रह्माजीके पास गयी। फिर ब्रह्माजीने उनको भगवान् विष्णुके पास चलनेको कहा। समस्त सुरगण एवं पृथ्वीको आगे करके वे भगवान् विष्णुके भव्य भवनपर पहुँचे। और वेदवाक्योंद्वारा उन्होंने भगवान् श्रीहरिकी स्तुति आरम्भ कर दी। उनके मनमें भक्ति और नम्रताका भाव भरा था।

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो ! आप हजार मस्तकवाले हैं। हजारों नेत्रों और चरणोंसे आप सुशोभित हैं। आप देवाधिदेव सनातन वेदपुरुष हैं। रमापते ! आप सर्वत्र विराजमान हैं। हमें जो अमरत्व प्राप्त था, आगे होगा या सम्प्रति विद्यमान है, वह आपका ही कृपा-प्रसाद है। आपकी इतनी विशाल महिमा है ! भला, त्रिलोकीमें इसे कौन नहीं जानता। आप ही सबके कर्ता, धर्ता और संहर्ता हैं। आप अपार शक्तिशाली पुरुषकी गति सर्वत्र अबाधित रहती है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये। उनका हृदय महान् पवित्र है। ब्रह्मादिको उन्होंने अपने दर्शन दिये और उपस्थित सभी देवताओंका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। साथ ही उनके आनेका विस्तृत कारण भी पूछा। तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और कहा—'जनार्दन ! पृथ्वी बड़ी दुःखी है। विष्णो ! इस बातपर ध्यान रखते हुए इसका भार दूर कर देना आपका परम कर्तव्य है। दयानिधे ! अब द्वापर समाप्त हो रहा है। आप भूमण्डलपर पधारें और दुष्ट राजाओंको मारकर पृथ्वीका भार हरण करनेकी कृपा करें।'

भगवान् विष्णु बोले—इस विषयमें मैं बिलकुल परतन्त्र हूँ। मैं ही नहीं, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य एवं वरुण—सभी स्वतन्त्रतारहित हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् योगमायाके अधीन है। ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब-पर्यन्त सब-के-सब उन्हींमें गुँथे हुए हैं। सुव्रत ! वह योगमाया सर्वप्रथम स्वेच्छापूर्वक जैसा काम करना चाहती है, हमलोग उसी प्रकारके कार्यमें केवल सहकारी बन जाते हैं। सभीपर उसका पूर्ण अधिकार है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहनेके पश्चात् जिसकी मायासे मोहित हुए सम्पूर्ण प्राणी उस जगद्गुरुको जाननेमें असमर्थ रहते हैं, उस परब्रह्मका प्रसङ्ग भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे

बतलाना आरम्भ किया। वे बोले—'हमपर मायाकी इतनी गहरी छाप पड़ी है कि हम उस जगद्गुरुका ध्यान ही नहीं कर पाते। वे परम पुरुष शान्तस्वरूप हैं। उनका विग्रह सत्, चित् एवं आनन्दमय है। उनका कभी अन्त नहीं होता। उन परब्रह्मकी शक्ति बड़ी ही विलक्षण है! कल्पके आरम्भ होते समय सुधासागरमें तुम उस शक्तिको देख भी चुके हो। उस समय शंकरसहित मैं भी उनकी झाँकी कर रहा था। फिर मणिद्वीपमें भी उस शक्तिका दर्शन हुआ था। उस समय पारिजात नामक वृक्षके नीचे रासमण्डल था। सारा समाज जुटा था। वह अद्भुत शक्ति सबके आगे विराज रही थी। यह देखी हुई बात है, न कि केवल सुनी हुई! अतएव इस अवसरपर सभी देवता उसी परमा शक्तिका चिन्तन करें। वह आद्याशक्ति कल्याणमयी, सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करनेवाली एवं मायास्वरूपिणी है। परब्रह्मसे उसका अभेद सम्बन्ध है।'

व्यासजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके यों कहनेपर ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता, जो सदा विराजमान रहनेवाली तथा योगमाया नामसे प्रसिद्ध हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीका एकाग्र मनसे ध्यान करने लगे। स्मरण करते ही भगवती साक्षात् सामने प्रकट हो गयीं। उनके हाथ पाश, अंकुश एवं अभयमुद्रासे सुशोभित थे। उनका श्रीविग्रह लालिमा लिये हुए था। देखनेमें वे अत्यन्त अद्भुत थीं। उनके दर्शन पाकर देवताओंको असीम आनन्द हुआ। अतः वे उनकी स्तुति करने लगे—

देवता बोले—जिस प्रकार मकड़ीकी नाभिसे सूत तथा आगसे चिनगारियाँ निकलती

हैं, उसी प्रकार जिनसे यह जगत् प्रकट हुआ है, उन परमा शक्तिको हम प्रणाम करते हैं। जिनकी मायिक शक्तिके प्रभावसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् स्थित है, उन भगवती भुवनेश्वरीका हम चिन्तन करते हैं। उनका विग्रह चिन्मय है। वे करुणाकी समुद्र हैं। जिन्हें न जाननेसे जगत्का प्रपञ्च सामने बना रहता है और जान लेनेपर जगत्की नश्वरता प्रत्यक्ष हो जाती है, उन ज्ञान-स्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरीका हम ध्यान करते हैं। वे हमें सद्बुद्धि प्रदान करें। वे महालक्ष्मी हमारे ध्यानका विषय बनें। उनमें सारी शक्तियाँ वर्तमान हैं। उनके चरणोंमें हम मस्तक झुकाते हैं। वे देवी हमें सत्कर्ममें लगानेकी प्रेरणा प्रदान करें*। माता! तुम्हें हमारा नमस्कार है। भूमण्डलका भार दूर करनेमें कुशल भवानी! प्रसन्न होकर हमें कल्याणके भागी बनाओ। दयासे द्रवित रहनेवाली देवी! इस समय यह कार्य सामने उपस्थित है। यह

* 'महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।' [महालक्ष्मी-गायत्री] (४।१९।१३)

पृथ्वी भारसे अत्यन्त व्याकुल है। महेश्वरी ! तुम दैत्योंको मारकर इसका भार दूर करो। साथ ही साधुपुरुषोंका कल्याण करना भी तुम्हारा परम कर्तव्य है। माता ! इस समय जो कंस, भौमासुर, कालयवन, केशी, जरासंध, बकासुर, पूतना, खर और शाल्व प्रभृति प्रधान नरेश हैं तथा इनके अतिरिक्त भी जो भूमण्डलके राजा हैं, उन्हें यथाशीघ्र मारकर पृथ्वीको उनके भारसे मुक्त करनेकी कृपा करो। कमललोचने ! जिन्हें कोई भी पराजित नहीं कर सके थे, वे सभी दैत्य युद्धमें तुम्हारे आनन्ददायी मुखके सामने आते ही बाणोंके लक्ष्य बन गये। तुम्हारी लीलासे ही वे प्राणोंसे हाथ धो बैठे। द्वितीयाके चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाली देवेश्वरी ! शक्तिसे वञ्चित होनेपर विष्णु एवं शंकर आदि जितने प्रमुख देवता हैं, वे भी हिल-डुलतक नहीं सकते ! शेषनाग भी तुम्हारी शक्तिके अभावमें पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं।

इन्द्रने कहा—क्या सरस्वतीरहित ब्रह्मा विश्वकी रचनामें, लक्ष्मीरहित विष्णु जगत्‌के संरक्षणमें तथा उमारहित रुद्र संसारके संहारमें समर्थ हो सकते हैं ? कदापि नहीं। किंतु जब सरस्वती, लक्ष्मी और उमा संज्ञक तुम्हारी शक्तियोंका सहयोग उन्हें प्राप्त होता है, तभी वे अपना कार्य सम्पादन करनेमें समर्थ हो पाते हैं।

भगवान् विष्णुने कहा—अखिल भूमण्डलकी व्यवस्था करनेमें पूर्ण स्वतन्त्र देवी ! यदि तुम्हारी शक्तिका सहयोग प्राप्त न हो तो कभी भी त्रिलोकीकी रचना करनेमें ब्रह्मा; पालन करनेमें विष्णु तथा संहार करनेमें रुद्र समर्थ नहीं हो सकते। अनघे ! निश्चितरूपसे सबमें शक्तिरूपसे केवल तुम्हीं भास रही हो।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्मा प्रभृति प्रधान देवताओंने देवीकी स्तुति की, तब वे कहने लगीं—'देवताओ ! संतापरहित होकर बताओ—अभी मेरे करनेयोग्य वह कौन-सा कार्य है। इस जगत्‌में कोई कैसा भी असाध्य काम क्यों न हो और उसकी पूर्ति देवता चाहते हों तो मैं उसे करनेको तैयार हूँ। श्रेष्ठ देवताओ ! आप सब लोग अपना तथा पृथ्वीका दुःख बताइये।'

देवता बोले—यह पृथ्वी भारसे अत्यन्त व्याकुल होकर हमलोगोंके पास आयी है। दुष्ट राजाओंने इसे महान् क्लेश पहुँचाया है। इसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं और इसका शरीर काँप रहा है। भुवनेश्वरी ! सर्वप्रथम इसका भार दूर करनेकी कृपा करें। शिवे ! सम्प्रति देवताओंका भी यही अभिलषित कार्य है। माता ! तुम पहले भी महिषासुरको मार चुकी हो। वह दानव बड़ा ही बलवान् था। करोड़ों दैत्य उसके सहायक भी थे। वैसे ही पराक्रमी शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, अपार बलशाली चण्ड, मुण्ड तथा वैसी ही शक्तिसे सम्पन्न धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुस्सह—जो अत्यन्त भयंकर एवं प्रतापी थे—तथा दूसरे भी बहुत-से दुष्ट दैत्य तुम्हारे ही हाथों कालके ग्रास बन चुके हैं। पहलेकी ही भाँति अब भी सम्पूर्ण दुष्ट दैत्योंको—जो जगत्‌में राज्य कर रहे हैं—मारकर उन दुराचारोंके दुस्सह भारसे पृथ्वीको मुक्त करनेकी कृपा करें !

व्यासजी कहते हैं—जब कल्याणमयी भगवती जगदम्बासे देवताओंने यों प्रार्थना की, तब देवी उनसे कहने लगीं। उस समय भगवतीका मुख मुसकानसे भर गया था। काली भौंहें उनके श्रीमुखकी शोभा बढ़ा रही थीं। मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें वे बोलीं।

श्रीदेवीने कहा—देवताओ ! मैं अंशावतार धारण करूँ, जिससे सम्पूर्ण दुष्ट राजाओंके भारसे पृथ्वीका उद्धार हो जाय—यह विचार मेरे मनमें पहले ही हो चुका है। जितने दानव राज्य कर रहे हैं, उन सबको मार डालना मैंने अपना परम कर्तव्य मान रखा है। जरासंध प्रभृति सभी मूर्ख नरेश मारे जायँगे। महाभाग देवताओ ! आपलोग भी अपने-अपने अंशोंसे शक्तिसहित धरातलपर पधारें। मेरे अवतार लेनेसे पूर्व स्वर्गके व्यवस्थापक कश्यपजी अपनी पत्नीके साथ यदुकुलमें जन्म लेकर वसुदेव नामसे विख्यात हों। वैसे ही अविनाशी भगवान् विष्णु भी भृगुमुनिके शापानुसार अपने अंशसे वसुदेवके घर पुत्र बनकर पधारनेकी कृपा करेंगे। मैं उसी गोकुलमें यशोदाके उदरसे प्रकट होऊँगी। सुप्रतिष्ठित देवताओ ! मेरे द्वारा तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध हो जायँगे। विष्णुका अवतार कारागारमें होगा ! उस समय मैं उन्हें गोकुल ले जानेकी व्यवस्था कर दूँगी ! महाभाग शेषको देवकीके गर्भसे खींचकर रोहिणीके उदरमें उपस्थित करना भी मेरा कर्तव्य होगा। मेरी शक्तिका सहयोग पाकर वे दोनों महानुभाव दुष्टोंका दलन करनेमें लग जायँगे ! द्वापरके व्यतीत होते ही सम्पूर्ण दुराचारी राजाओंका संहार कर डालना बिलकुल निश्चित हो चुका है। साक्षात् इन्द्र भी अर्जुन बनकर धरातलपर पधारें और दुष्ट राजाओंकी सेनाके संहारमें लग जायँ ! धर्मके अंशसे प्रकट होकर महाराज युधिष्ठिर धराधामपर विराजमान होंगे। वायुके अंशसे भीमसेनका तथा अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल एवं सहदेवका भी प्राकट्य होगा। उस अवसरपर वसुके अंशसे प्रकट होकर भीष्म राक्षससेनाका संहार करेंगे। अब आपलोग यहाँसे पधारें और पृथ्वी भी सुस्थिर होकर समय व्यतीत करें ! महानुभाव देवताओ ! मैं इस भूमिका भार अवश्य दूर कर दूँगी। सभी देवता केवल निमित्तमात्र होंगे ! सारा काम मेरी शक्तिके ऊपर निर्भर रहेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। क्षत्रियोंका यह घोर संहार मैं कुरुक्षेत्रके मैदानमें करूँगी। दूसरेकी वस्तुको पानेकी इच्छा करना, सबको परास्त करनेकी अभिलाषा रखना तथा काम एवं मोहको अपनाये रखना—इन दोषोंके कारण सारे यादव भी कालके ग्रास बन जायँगे। ब्राह्मणके शापसे उनके वंशका ही उच्छेद हो जायगा। भगवान् भी शापको सत्य करनेके लिये अपने उस कलेवरका त्याग कर देंगे ! अतः अब आप सभी देवता भगवान् विष्णुके सहायक बनकर अपनी पत्नियोंके साथ मथुरा एवं गोकुलमें जन्म धारण करें !

व्यासजी कहते हैं—परब्रह्मकी योगमाया उपर्युक्त बातें कहकर अन्तर्धान हो गयीं। सब देवता पृथ्वीको साथ लिये हुए अपने-अपने स्थानपर चले गये। योगमायाकी वाणीसे पृथ्वीके मनका विषाद दूर हो गया ! वह शान्तचित्त होकर समयकी प्रतीक्षा करने लगी। जनमेजय ! उसपर ओषधियों और लताओंका अत्यन्त विस्तार हो गया। प्रजा सुखी हो गयी और द्विजातियोंके लिये महान् अभ्युदयका अवसर प्राप्त हो गया। समस्त मुनिजन अत्यन्त आनन्दके साथ धार्मिक कृत्य करनेमें तत्पर हो गये। (अध्याय १८-१९)

☆

## देवीकी महिमाका वर्णन तथा श्रीकृष्णावतारके कथाप्रसङ्गमें वसुदेवजीकी बुद्धिमत्तासे देवकीकी कंसकी तलवारसे रक्षा, देवकीके बालकका कंसके द्वारा मारा जाना

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय ! पृथ्वीके भारमुक्त होनेकी कथा तथा कुरुक्षेत्र एवं प्रभास-क्षेत्रमें योगमायाद्वारा सेनाके संहारका प्रसङ्ग भी बताता हूँ, सुनो ! अमिततेजस्वी भगवान् विष्णु यदुकुलमें प्रकट हुए थे, इसमें दो कारण हैं—मुनिवर भृगुका शाप एवं योगमायाकी प्रबल इच्छा। मेरी समझसे तो योगमायाकी इच्छा ही प्रधान है। पृथ्वीका भार दूर करना तो निमित्तमात्र था। योगमायाका विधान मानकर भगवान् विष्णु धरातलपर प्रकट हुए थे।

राजन् ! मैंपन और मेरापन बन्धनमें डालनेवाली सुदृढ़ रस्सियाँ हैं। इनसे न बँधकर मुक्तिकामी और भुक्तिकामी—दोनों ही प्रकारके योगी उन कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करते हैं, जिनकी किंचिन्मात्र भक्ति प्राप्त हो जानेपर भी प्राणी मुक्त हो सकता है; फिर ऐसा कौन पुरुष है, जो उनकी उपासना न करे ? किसी व्यक्तिके मनमें यह आकाङ्क्षा भी उठती है कि 'भुवनेशि मां पाहि' कहूँ, तो उसके मुँहसे 'भुवनेशि' इस शब्दके उच्चारण होते ही भगवती जगदम्बा उसे त्रिलोकीका वैभव प्रदान कर देती हैं। फिर 'मां पाहि' कहनेपर तो देनेयोग्य कुछ भी न रहनेके कारण भगवती अपने ऊपर भक्तका ऋण स्वीकार कर लेती हैं। राजन् ! यह जान लेना परम आवश्यक है कि विद्या और अविद्या—ये दोनों रूप उन भगवतीके ही हैं। विद्यास्वरूपा भगवतीके प्रसादसे प्राणीका उद्धार हो जाता है और अविद्या बन्धनमें डाल देती है।

राजन् ! प्राणीका मरना और मरे हुएका जन्म पाना—यह बिलकुल निश्चित है। सम्पूर्ण प्राणियोंकी यह स्थिति चक्केकी भाँति चक्कर काटती रहती है। मोहजालसे भलीभाँति बँधा हुआ प्राणी उससे मुक्त हो जाय—यह कदापि सम्भव नहीं है; क्योंकि मायाकी विद्यमानतामें मोहजालका अभाव होना बिलकुल असम्भव है। राजन् ! सृष्टिके समुचित अवसरपर जन्म लेना और निधनके अवसरपर मर जाना—यह अनिवार्य नियम है। ब्रह्मा आदितक सब-के-सब इस नियमका पालन करते हैं। नृपवर ! जिसके वधमें जो निमित्त बन चुका है, उसीके द्वारा उसकी मृत्यु होती है। विधिने जो रच रखा है, वह अवश्य होकर रहता है; उसे कोई विफल नहीं बना सकता। जन्म, मरण, बुढ़ापा, रोग अथवा सुख एवं दुःख—जिसके लिये जो विधान निश्चित है, उसे वह भोगना ही पड़ता है। जगत्में ऐसा कोई भी नहीं है, जो उस निर्णयको काट सके, प्रमाण प्रत्यक्ष दीख रहा है—ये महाभाग सूर्य और चन्द्रमा सबको सुखी बनानेमें संलग्न रहते हैं, किंतु अवसर पाकर इन्हें भी शत्रु सताया करता है। ये उसकी पीड़ासे सदाके लिये मुक्त नहीं हो सकते। राजन् ! देखो, सूर्यनन्दन शनिको क्षयरोगका शिकार होना पड़ा है। चन्द्रमा कलङ्की होकर समय काटते हैं। इससे सिद्ध है कि महान्-से-महान् व्यक्तिके लिये भी विधिके विधानको मिटा देना अत्यन्त असम्भव है। महाराज ! योगमाया महान् बलवती है। उसके विषयमें मैं कहाँतक क्या कहूँ, जिसका

नचाया हुआ यह सारा विश्व अब भी चक्कर काट रहा है ! भगवतीकी इच्छासे भगवान् विष्णुके अनेक अवतार होते हैं। प्रत्येक अवतारमें वे भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्यरूप धारण करके धरातलपर पधारे थे। उन्होंने जो कार्य किये हैं, वे भी तुमसे संक्षेपमें कहूँगा।

प्राचीन समयकी बात है—यमुनाके मनोहर तटपर मधुवन नामका एक वन था। वहाँ लवणासुर नामसे विख्यात एक प्रतापी दानव रहता था। उसके पिताका नाम मधु था। वरके प्रभावसे लवणासुरके अभिमानकी सीमा नहीं थी। उस दुष्टसे द्विजातिमात्र कष्ट पा रहे थे। महाभाग ! लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नने उस महाभिमानी दैत्यको संग्राममें मार डाला और वहीं मथुरा नामकी एक अत्यन्त रमणीय नगरी बसा दी। मेधावी शत्रुघ्नके दो कुमार थे, जिनकी आँखें कमलके समान थीं। उन्होंने उन दोनों पुत्रोंको मथुराके राज्यका व्यवस्थापक बना दिया। आयु समाप्त होनेपर वे स्वयं स्वर्ग सिधार गये। समयानुसार सूर्यवंशी राजाओंकी सत्ता मिट गयी। तब यादव उस मुक्तिदायिनी मथुराके शासक हुए। राजन् ! ये सब बातें आजसे बहुत पूर्वकी हैं। ययातिके एक वंशजका नाम शूरसेन था। महाराज ! वे मथुराके राजा हुए थे और वहाँकी सारी सम्पत्ति भोगनेका सुअवसर उन्हें प्राप्त था। वरुणके शापानुसार कश्यपजी उन्हींके वंशज दूसरे शूरसेनके पुत्र बनकर उस पावन पुरीमें पधारे ! वसुदेवके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। पिताका स्वर्गवास हो जानेपर वसुदेवजी वैश्यवृत्तिसे जीवन व्यतीत करने लगे। उन्हींके घर भगवान् विष्णुका पधारना हुआ था। उस समय वहाँके राजा उग्रसेन थे। उनके पुत्रोंमें जो सबसे बड़ा था, उसकी कंस नामसे ख्याति थी। वरुणने अदितिको भी शाप दे दिया था। अतः वे भी कश्यपजीकी अनुगामिनी बनकर जगत्में पधारीं। उन्होंने देवकको पिता बननेका सुअवसर प्रदान किया था। वे देवकी नामसे प्रसिद्ध हुईं। महात्मा देवकने अपनी पुत्री देवकीका विवाह वसुदेवके साथ कर दिया। विवाह हो जानेपर विदा होते समय आकाशवाणी हुई—'महाभाग कंस ! इस देवकीका आठवाँ पुत्र महान् शक्तिशाली पुरुष होगा, उसके हाथ तुम कालके कलेवा बन जाओगे।' यों आकाशवाणी सुनकर महापराक्रमी कंसके आश्चर्यकी सीमा न रही। उस देववाणीको सत्य मानकर वह अत्यन्त चिन्तित हो उठा। कर्तव्यके विषयमें विचार करनेके पश्चात् उसने यह निश्चय किया कि 'यदि मैं देवकीको अभी मार डालूँ तो सम्भव है, मृत्यु मेरे पास न आ सके। मृत्युका भय उपस्थित करनेवाले इस कठिन अवसरपर दूसरा कोई उपाय लागू नहीं हो सकता। किंतु देवकजी मेरे पितातुल्य हैं। यह देवकी उनकी पुत्री है। अतः इस पूज्य बहनको कैसे मारूँ—यह विचार उसके मनमें उत्पन्न हो गया। फिर सोचा, 'यही मेरी साक्षात् मृत्यु है। विद्वान् पुरुष घृणित कर्म करके भी शरीरकी रक्षा किया करते हैं। प्रायश्चित्त कर लेनेपर पाप धुल जाता है। ज्ञानीजनोंने यह नियम बना दिया है कि नीच कर्म करके भी शरीरकी रक्षा करनी चाहिये।' यों विचार करनेके पश्चात् दुरात्मा कंसने तुरंत तलवार उठा ली और बहिन देवकीके केश पकड़ लिये। उसने म्यानसे तलवार निकालकर

उसे हाथमें ले लिया और नवविवाहिता देवकीको

अपनी ओर खींचकर उसे मार डालना चाहा। सारी जनता इस घृणित कार्यको देख रही थी। देवकी मारी जा रही है, यह देखकर बड़े जोरका हाहाकार मच गया। वसुदेवजीका साथ देनेवाले बहुत-से वीर युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये। उन्होंने हाथमें धनुष उठा लिये। वसुदेवजीके वे सभी सहायक बड़े अद्भुत उत्साही थे। उनकी दृष्टिमें देवमाता देवकी कंसकी कृपा-पात्र थी। अतः उन्होंने कंससे कहा—'इसे छोड़ दो—छोड़ दो।' कंसको लाचार होकर उसे छोड़ देना पड़ा। कंसके साथ वे महान् भयंकर युद्ध करने लगे। उन सबकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। कंस भी साधारण व्यक्ति नहीं था। उस महान् भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्धके आरम्भ हो जानेपर यदुकुलके जो प्रसिद्ध वृद्ध पुरुष थे, उन्होंने कंसको युद्ध करनेसे रोकनेकी बहुत चेष्टा की और कहा—'वीर ! तुममें ऐसी मूर्खता कहाँसे आ गयी ! यह तुम्हारी आदरणीया बहन है; इसे मार देना सर्वथा अनुचित है, सो भी विवाहके इस उत्तम अवसरपर। वीर ! स्त्रीकी हत्या अत्यन्त दुस्सह कार्य है; इससे जगत्में अपयश फैलता है और घोर पाप तो लगता ही है। केवल आकाशवाणी सुनकर बिना कुछ सोचे-समझे ऐसा करना बिलकुल अनुचित है। सम्भव है, तुम्हारे अथवा इसके ही किसी शत्रुने तुमलोगोंकी अपकीर्ति फैलानेके लिये आकाशमें छिपकर ऐसी अनर्थकर बात सुना दी हो। राजन् ! तुम्हारे अथवा वसुदेवके सुयशको नष्ट करनेके विचारसे ही किसी मायाके जानकार शत्रुने यह बात घोषित की है। अरे, तुम वीर पुरुष होकर भी इस आकाशवाणीसे भयभीत हो रहे हो ? तुम्हारे यशको जड़से उखाड़ फेंकनेके लिये ही यह किसी शत्रुकी करतूत है। जो कुछ भी हो, विवाहके इस उत्तम अवसरपर बहनको तो नहीं ही मारना चाहिये। महाराज ! जो होनेवाली बात है, वह तो अवश्य होकर रहेगी। उसे कौन टाल सकता है।'

जब इस प्रकार वृद्ध यादवोंके समझानेपर भी कंस उस पापकर्मसे विरत नहीं हुआ, तब नीतिके पूर्ण जानकार वसुदेवजी भी चुप नहीं रह सके। उन्होंने उस दुष्टसे कहा—'कंस ! इस अवसरपर मैं तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ। सत्यपर ही तीनों लोक टिके हुए हैं। देखो, देवकीके बच्चे उत्पन्न होते ही मैं उन सबको लाकर तुम्हें सौंप दूँगा। राजन् ! यदि जन्म होते ही बच्चा आपको न ला दूँ तो उस पापके परिणामस्वरूप मेरे पूर्वज भयंकर कुम्भीपाक नरकमें गिर जायँ।'

वसुदेवजीके इस अन्तिम निर्णयको सुनकर नागरिकगण तुरंत कंसके प्रति बोल उठे—बहुत ठीक, बहुत ठीक ! फिर कहा, 'वसुदेवजी बड़े महात्मा पुरुष हैं। ये कभी झूठ नहीं बोलते।

महाभाग ! तुम देवकीका जूड़ा छोड़ दो। ऐसा करनेसे तुम्हें स्त्री-हत्याका पाप भी नहीं लगेगा।'

व्यासजी कहते हैं—वृद्ध यादव बड़े धर्मज्ञ पुरुष थे। उनके उपर्युक्त ढंगसे समझानेपर कंसने क्रोध त्याग दिया। उस समय वसुदेवजीके सत्य वचनपर उसे पर्याप्त विश्वास हो गया था। फिर उच्च स्वरसे दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस सभा-मण्डपमें जितने लोग थे, सभी जय-जयकार करने लगे। इस प्रकार यशस्वी वसुदेवजी कंसको प्रसन्न करके उससे देवकीको छुड़ाकर उस नवोढाके साथ अपने इष्ट-मित्रोंसहित निर्भीकतापूर्वक शीघ्र घर चले गये।

व्यासजी कहते हैं—देवीस्वरूपा देवकी वसुदेवजीके साथ मर्यादाके अनुसार रहने लगीं। उपयुक्त समय आनेपर उन्हें गर्भ रह गया। दसवें महीनेके अन्तमें उन्होंने एक श्रेष्ठ पुत्र प्रसव किया। उस बालकके सभी अङ्ग बड़े ही सुडौल थे। पुत्रके पैदा होते ही प्रसिद्ध सत्यवादी महाभाग वसुदेवजीने भावीको प्रधान मानकर देवमाता देवकीसे कहा— 'वामोरु ! मैं पुत्र-समर्पणकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, यह बात तुमसे छिपी नहीं है। महाभागे ! उस समयकी कठिन परिस्थितिमें प्रतिज्ञा करके ही मैंने तुम्हें बचाया था, अतः सुन्दर चोटीसे शोभा पानेवाली प्रिये ! तुम्हारे चचेरे भाई कंसको मैं यह पुत्र दे देनेका विचार कर रहा हूँ। कंस महान् नीच है अथवा दैव ही नाश करनेपर आ तुला है—ऐसी स्थितिमें तुम क्या कर सकोगी ? विचित्र कर्मोंके परिपाकको आत्मज्ञान-शून्य प्राणी किसी प्रकार भी नहीं जान सकते। यह निश्चय है, सम्पूर्ण प्राणी कालके पाशमें जकड़े हुए हैं। अपना किया हुआ कर्मफल उन्हें अवश्य भोगना पड़ता है, चाहे वह कर्म शुभ हो अथवा अशुभ। जीवके प्रारब्धकी रचना ब्रह्माके द्वारा हुई है। वे भलीभाँति सोच-समझकर ही सब कराते हैं।

देवकीने कहा—स्वामिन् ! पूर्वजन्मके पापोंका परिमार्जन करनेके लिये प्रायश्चित्त किया जा सकता है, महात्मा पुरुषोंने धर्म-शास्त्रोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। अतएव अनघ ! आप ही बतलाइये कि प्रायश्चित्त करने-पर मनुष्य पापोंसे छूट सकता है या नहीं ? यदि नहीं, तब तो धर्मशास्त्रके प्रणेता याज्ञवल्क्यादि मुनियोंके वचनोंका कोई मूल्य ही नहीं रह जाता। यही नहीं ? किंतु दैवके अमिट मान लेनेपर तो आयुर्वेद, मन्त्रवाद तथा अनेक प्रकारके उद्यम—सभी व्यर्थ हो जाते हैं; फिर तो जितने आप्तवाक्य हैं, सभी प्रमाणशून्य हो जाते हैं। उद्यम करनेपर सफलता प्राप्त हो जाती है—इस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल रहा है; अतएव इस अवसरपर सोच-समझकर कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिसके परिणामस्वरूप मेरे इस दयापात्र बच्चेकी प्राण-रक्षा हो जाय।

वसुदेवजी बोले—महाभागे ! मैं तुमसे यह सच्ची बात बता रहा हूँ, सुनो—'उद्यम अवश्य करना चाहिये, परंतु फल दैवकी कृपापर निर्भर है। इस जगत्में जितने प्राणी हैं, उनका तीन प्रकारके कर्मोंसे सम्बन्ध है। प्राचीन रहस्यके वेत्ता विद्वान् वेदों और शास्त्रोंमें इस विषयका प्रतिपादन करते हैं। सुमध्यमे ! उन तीन प्रकारके कर्मोंके नाम हैं—संचित, प्रारब्ध और वर्तमान। वामोरु ! जितने प्राणी हैं, उनके जन्म लेनेमें शुभाशुभ कर्म ही बीज हैं; अनेक जन्मोंके उपार्जित कर्म समय पाकर फल देनेके लिये सामने उपस्थित हो जाते हैं। प्राणी पूर्वशरीरका परित्याग करके कर्मानुसार स्वर्ग अथवा नरक भोगनेमें परतन्त्र रहता है। उसे दिव्य देहकी प्राप्ति

हो अथवा यातनादेहकी—इसमें उसका अपना कर्म ही कारण है। स्वर्ग अथवा नरकमें जाकर जीव विविध भोग भोगनेमें प्रवृत्त हो जाता है। भोग समाप्त होते ही उत्पन्न होनेका समय सामने आ जानेके कारण उसे जन्म लेना पड़ता है। स्थूलदेहके साथ संयोग होनेपर उसकी 'जीव' संज्ञा हो जाती है। उसी क्षण संचित कर्मोंसे उसका सम्बन्ध हो जाता है। अतएव शुभ एवं अशुभ—सभी कर्मफल इस शरीरसे भोगने ही पड़ते हैं। सुलोचने ! प्राणीके लिये प्रारब्ध कर्मोंका भोग अनिवार्य है। प्रिये ! प्रायश्चित्तके द्वारा वर्तमान कर्म नष्ट हो सकते हैं। यदि यथार्थ रूपसे प्रायश्चित्त किया जाय तो संचित कर्मोंका नाश भी यथाशीघ्र हो सकता है। किंतु प्रारब्ध कर्मोंका नाश तो भोगपर ही निर्भर है। अतएव सब प्रकारसे विचार करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि तुम्हारा यह बालक कंसको सौंप ही दिया जाय। यों करनेपर मेरी बात भी मिथ्या नहीं होगी। झूठी बात जगत्‌में निन्दा करानेवाली होनेसे सर्वथा निषिद्ध है। इस अनित्य संसारमें केवल धर्म ही सार है। प्रिये ! जिसके मुखसे सत्य वाणी नहीं निकलती, उसका जीवन धारण करना ही निष्फल समझा जाता है। जिस असत्यके प्रभावसे लोकमें मानवकी मान्यता घट जाती है, उसे परलोकमें सुखदायी कैसे माना जाय ? अतएव सुभ्रु ! तुम पुत्रको दे दो, ताकि मैं इसे कंसको सौंप आऊँ। देवी ! सत्यकी रक्षा करनेसे भविष्यमें कल्याण निश्चित है। प्रिये ! सुख अथवा दुःख— किसी भी परिस्थितिमें पुरुषको उत्तम कार्य ही करना चाहिये। सत्य-पालनसे मेरा अवश्य कल्याण होगा।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार अपने पतिदेवके कहनेपर देवकीने अत्यन्त शोकके साथ नवजात पुत्र वसुदेवजीको दे दिया। पुत्रको देते समय मनस्विनी देवकीके सभी अङ्ग काँप उठे। धर्मात्मा वसुदेवने अपने उस बच्चेको ले लिया और वे कंसके महलकी ओर चल पड़े। मार्गमें जाते समय जनताने उनकी बड़ाई आरम्भ कर दी।

दर्शकोंने कहा—भाइयो ! ऐसे उत्तम विचारसे सम्पन्न वसुदेवजीको देखो। केवल सत्य वचनसे बँध जानेके कारण ये इस बच्चेको मृत्युके मुखमें झोंकनेके लिये लेकर जा रहे हैं। ये महान् सत्यवादी हैं, कभी दूसरोंकी निन्दा नहीं करते। इन्हींका जीवन सफल है। अजी देखो, इनका यह कैसा अद्भुत कर्म है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार मार्गके लोगोंके मुखसे वसुदेवजीकी बड़ाईके शब्द निकल रहे थे। वसुदेवजी यथावसर कंसके महलपर पहुँच गये और तुरंतके उत्पन्न हुए उस बच्चेको कंसके सामने उपस्थित कर दिया। वह बालक मानव नहीं, बल्कि कोई देवता था। उस समय महात्मा वसुदेवजीके इस धैर्यको देखकर कंसके मनमें भी अत्यन्त आश्चर्य हो गया। उसने बच्चेको ले लिया और हँसते हुए यह वचन कहा—'शूरसेनकुमार वसुदेव ! तुम धन्य हो। तुमने मुझे पुत्र दे दिया, इससे तुम्हारी साधुता मैं जान गया। यह बालक मेरा काल नहीं है। आकाशवाणीने आठवें पुत्रसे मेरी मृत्यु बतायी है। इस बालकको मारना मेरा अभीष्ट नहीं है। अतः यह कुमार तुम्हारे घर जाय। महामते ! तुम्हें चाहिये कि आठवाँ पुत्र मुझे अवश्य दे दो।' यों कहकर दुराचारी कंसने उस बालकको वसुदेवजीके हाथमें सौंप दिया और कहा—'यह बालक सकुशल घर लौट जाय।' तदनन्तर वसुदेवजी प्रसन्नतापूर्वक उस बच्चेको

लेकर अपने घरकी ओर चल दिये। कंसने निश्चिन्त होकर मन्त्रियोंसे कहा—'निष्प्रयोजन इस बालकको क्यों मारा जाय ? देवकीका आठवाँ पुत्र मेरा काल होगा—यह बात आकाशवाणीसे व्यक्त हुई है; अतएव इस पहले बच्चेको मारकर मैं क्यों पापका बोझ सिरपर लादूँ !' उस समय जितने विचारकुशल श्रेष्ठ मन्त्री बैठे थे, उन सबके मुखसे 'हाँ महाराज ! बहुत ठीक है।' ये शब्द निकल पड़े। फिर कंसने सबको जानेकी अनुमति दे दी और सभी अपने-अपने घर चले गये। सबके चले जानेपर मुनिवर नारदजी वहाँ पधारे, उनके आते ही कंसने अपने आसनसे उठकर उनका स्वागत किया तथा पाद्य और अर्घ्य आदिकी समुचित व्यवस्था की। तत्पश्चात् राक्षसराज कंसने मुनिसे कुशल पूछकर कहा—'महाराज ! आपने कैसे पधारनेकी कृपा की ?' तब नारदजीने हँसकर कंससे कहा—'महाभाग कंस ! मैं सुमेरु पर्वतपर गया था, वहाँ ब्रह्मा प्रभृति सभी प्रमुख देवता सावधान होकर बैठे थे। उनमें परस्पर परामर्श हो रहा था कि 'वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भसे देवाधिदेव भगवान् विष्णु तुम्हें मारनेके लिये जन्म धारण करेंगे।' अतएव नीतिज्ञ होते हुए भी तुम देवकीके पुत्रको मारनेसे क्यों चूक गये ?'

कंसने कहा—मैं देवकीके आठवें पुत्रको मारूँगा। आकाशवाणीने उसे ही मेरा काल बतलाया है।

नारदजी बोले—महाराज ! अच्छी-बुरी हर प्रकारकी नीतियोंसे तुम अपरिचित ही रह गये ! देवताओंकी मायाका बल तो तुम जानते ही हो, फिर मैं तुम्हें क्या बताऊँ। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले शूरवीर पुरुषको चाहिये कि एक छोटेसे शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। यदि जोड़ा जाय तो वे सभी बच्चे आठवें कहे जा सकते हैं। यह सब जानते हुए भी तुमने मूर्खतावश इस शत्रुको छोड़ दिया है।

इस प्रकार कहकर श्रीमान् नारदजी तुरंत वहाँसे चल पड़े। उनके चले जानेपर उस प्रचण्ड मूर्ख कंसने बालकको मँगवा लिया और उसे पत्थरपर पटककर स्वयं सुखका अनुभव करने लगा। (अध्याय २०-२१)

☆

## कंसके हाथ मारे जानेवाले देवकीके छः बालकोंके पूर्वजन्मोंकी कथा तथा देवताओं और दानवोंके अंशावतारका वर्णन

जनमेजयने पूछा—दादाजी ! उस बालकने पूर्वजन्ममें कौन ऐसा पाप किया था, जिसके परिणामस्वरूप वह उत्पन्न होते ही दुराचारी कंसके हाथ मृत्युके मुखमें चला गया ? मुनिवर नारदजी भी जो परम ज्ञानी, धर्मपरायण एवं प्रधान ब्रह्मवेत्ता थे ! फिर वे ऐसा पाप क्यों कर बैठे ? स्वयं पाप करनेवाला और कहकर पाप करानेवाला—दोनों समान पापी होते हैं, ऐसा विज्ञजनोंका कथन है। तो फिर नारदमुनिने दुराचारी कंसको इस घोर पापकर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये क्यों प्रेरणा की ? इस विषयमें मुझे महान् संदेह हो रहा है। अतः आप यह बतानेकी कृपा करें कि किस कर्मविपाकसे बालककी तुरंत मृत्यु हो गयी।

व्यासजी कहते हैं—नारदजीकी झूठ बोलनेमें कभी प्रवृत्ति नहीं होती। वे बड़े सत्य-भाषी एवं पुण्यात्मा पुरुष हैं। देवताओंके कार्य-साधनमें वे सदा संलग्न रहते हैं। इसीसे

उत्पन्न होते ही उन्होंने देवकीके छहों पुत्रोंको मरवा डाला। वे मरणशील बालक षड्गर्भ नामक देवता थे। शापके कारण उनका निधन निश्चित था। अतएव वे मर गये। राजन्! उनके शापका कारण भी कहता हूँ, सुनो। स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बात है। ये छहों मुनिवर मरीचिके महान् बलशाली पुत्र थे। मरीचिकी ऊर्णा नामक पत्नीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। ये धर्मशास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् थे। एक समयकी बात है—ब्रह्माजीकी किसी बातको देखकर इन मरीचिकुमारोंको हँसी आ गयी। तब ब्रह्माजीने इन्हें शाप दे दिया—'तुम यहाँ रहने योग्य नहीं हो। धरातलपर जाकर दैत्ययोनिमें जन्म धारण करो।' राजन्! वे ही षड्गर्भ कालनेमि नामक दैत्यके पुत्र हुए थे। अगले जन्ममें हिरण्यकशिपुके पुत्र बनकर इन्हें जगत्में आना पड़ा था। परंतु इनका पूर्वज्ञान अभी बना हुआ था। अतः पूर्वजन्मके शापसे भयभीत होकर उस जन्ममें ये शान्तिपूर्वक सावधानीके साथ तपस्या करने लगे। तब इन षड्गर्भपर प्रसन्न होकर ब्रह्माजी वर देनेको प्रस्तुत हो गये!

ब्रह्माजी बोले—महाभागो! तुम मेरे कृपापात्र पौत्र हो। पूर्वकालमें मैंने तुम्हें शाप दे दिया था, किंतु अब मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम अभीष्ट वर माँग लो।

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजीके वचन सुनकर षड्गर्भोंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे अपना कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर तो थे ही, अतः सबने अपना अभिलषित वर माँग लिया।

षड्गर्भोंने कहा—पितामह ब्रह्माजी! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें यथेष्ट वर देनेकी कृपा करें। हमारी चाह यह है कि जितने देवता, मानव, महोरग, गन्धर्व और सिद्धेश्वर हैं, उन सबसे हम अवध्य हो जायँ, उनमेंसे कोई भी हमें न मार सके।

व्यासजी कहते हैं—तब ब्रह्माजीने षड्गर्भोंसे कहा—'तुम्हारी ये सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी। महाभागो! अब तुम जा सकते हो। मेरी वाणी अमोघ है, इसमें संशय नहीं करना है।' राजन्! जब ब्रह्माजीने षड्गर्भोंको वर दे दिया, तब वे अत्यन्त प्रसन्नतासे खिल उठे; किंतु हिरण्यकशिपु उनके व्यवहारसे जलने लगा। उसने कुपित होकर कहा—'पुत्रो! तुमने मुझको छोड़कर ब्रह्माको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की, ऐसे बलशाली वीर होते हुए भी तुमने वर

पानेके लिये उनका स्तवन भी किया और मेरे स्नेहको बिलकुल ठुकरा दिया। इसके फलस्वरूप अब मैं तुम्हारा त्याग कर देता हूँ। तुम पातालमें चले जाओ। अबतक षड्गर्भ नामसे तुम जगत्में विख्यात रहे; किंतु अब पातालमें जाकर नींदके वशीभूत हो बहुत वर्षोंतक सोये पड़े रहो। इसके बाद प्रतिवर्ष बारी-बारीसे तुम्हें देवकीके गर्भसे जन्म लेना होगा। तुम्हारा पिता कालनेमि

उस समय कंस नामसे प्रसिद्ध होगा और उत्पन्न होते ही तुम उसी कंसके हाथों मार दिये जाओगे।'

व्यासजी कहते हैं—हिरण्यकशिपुके यों शाप देनेके कारण ही षड्गर्भोंका बार-बार देवकीके गर्भमें आना आरम्भ हो गया। शापानुसार वे छहों बालक मार डाले गये। सातवीं बार शेषजी अपने अंशसे देवकीके गर्भमें पधारे। संयोगवश उस गर्भका स्राव हो गया। योगमायाने बलपूर्वक उस गर्भको खींचकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया। पाँच महीनेपर यह गर्भ गिर गया—यह बात सबको विदित हो गयी। देवकीका गर्भपात हो गया—यह बात कंसको भी ज्ञात हो गयी। यह समाचार उस दुरात्माके लिये बड़ा ही सुखप्रद था। सुनकर वह आनन्दमें भर गया। देवकीके आठवें गर्भमें स्वयं भगवान् पधारे। देवताओंका कार्य सिद्ध करना एवं भूमिका भार उतारना उनके पदार्पणका प्रधान प्रयोजन था।

जनमेजयने कहा—मुनिवर! वसुदेवजी कश्यपजीके अंश हैं। इन्हींके यहाँ भगवान् शेष एवं श्रीविष्णु अपने अंशसे प्रकट हुए थे। इस प्रसङ्गका वर्णन तो आप कर चुके। अब पृथ्वीके प्रार्थना करनेपर उसका भार दूर करनेके लिये देवताओंके जो अन्य अवतार हुए थे, उन्हें भी बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—जो-जो देवता एवं दानव अपने-अपने अंशसे धरातलपर विख्यात हो चुके हैं, उन सबका वृत्तान्त संक्षेपरूपसे मैं कहता हूँ; सुनो। वसुदेवजी कश्यपके अंशसे और देवकी अदितिके अंशसे प्रकट थी। बलदेवजी शेषनागके अंश थे। इन सबके प्रकट हो जानेपर जिन धर्मनन्दन नारायणकी बात कही जा चुकी है, वे ही श्रीमान् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण बनकर पधारे। मुनिवर नारायणके श्रीकृष्ण-रूपमें प्रकट हो जानेपर उनके छोटे भाई जो नर हैं, वे अर्जुन बनकर आ गये। धर्मके अंश युधिष्ठिर, वायुके अंश भीमसेन तथा अश्विनी-कुमारोंके अंश महाबली नकुल एवं सहदेव कहे गये हैं। कर्णको सूर्यका अंश बताया जाता है। विदुरजी धर्मके अंशसे प्रकट हुए थे। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंशसे और अश्वत्थामा रुद्रके अंशसे उत्पन्न थे। बुधजन बतलाते हैं कि स्वयं समुद्र शांतनु बने थे और गङ्गा उनकी पत्नी रहीं। पुराणप्रसिद्ध गन्धर्वराज देवक बनकर धराधामको सुशोभित कर रहे थे। भीष्म-पितामहको वसु तथा राजा विराटको मरुद्गणका अंश कहा जाता है। अरिष्टनेमिका पुत्र जो हंस था, वही जगत्में आकर धृतराष्ट्र नामसे प्रसिद्ध हुआ। कृपाचार्यको किसी एक मरुद्गणका अंश और कृतवर्माको किसी दूसरे मरुद्गणका अंश बताया जाता है। राजन्! दुर्योधनको कलिका अंश और शकुनिको द्वापरका अंश समझो। प्रसिद्ध सोमनन्दन सुवर्चा भूमण्डलपर सोमप्ररुयादव नामसे विख्यात हुए। धृष्टद्युम्न और शिखण्डी क्रमशः अग्नि एवं राक्षसके अंश थे। प्रद्युम्न सनत्कुमारके अंश कहे गये हैं। द्रुपद वरुणके अंश थे। स्वयं भगवती लक्ष्मी द्रौपदी बनकर जगत्में पधारी थीं। द्रौपदीके पाँचों पुत्र विश्वेदेवके अंश कहे जाते हैं। सिद्धि, धृति और मति—ये तीनों देवियाँ कुन्ती, माद्री और गान्धारीके रूपमें आकर भूमण्डलकी शोभा बढ़ाने लगीं। जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे सभी स्वर्गकी दिव्य रमणियाँ थीं। इन्द्रके सम्पर्कमें रहनेवाले सभी उनकी प्रेरणासे

धरातलपर आकर दुराचारी नरेश बने थे। शिशुपाल हिरण्यकशिपुका अंश था। विप्रचित्ति जरासंध होकर तथा प्रह्लाद शल्य बनकर आये थे। कालनेमि कंस हुआ। हयशिराने केशीका जन्म पाया। बलिकुमार ककुद्मी अरिष्टासुर बना, जिसने श्रीकृष्णके हाथों गोकुलमें प्राण छोड़े। अनुह्लाद धृष्टकेतु बना, भगदत्त बाष्कल हुआ, लम्बने प्रलम्बासुरका शरीर पाया और खर धेनुकासुर हुआ। वाराह और किशोर नामक जो अत्यन्त भयंकर दो दैत्य थे, वे धरातलपर चाणूर और मुष्टिक नामक प्रख्यात पहलवान हुए। दितिका पुत्र जो अरिष्टासुर था, वह कुवलयापीड हाथीके नामसे विख्यात हुआ। बलिकी पुत्री पूतना बनी और उसका छोटा भाई बकासुर कहलाया। यम, रुद्र, काम और क्रोध—इन चारोंके अंशसे महाबली अश्वत्थामाका जन्म हुआ था।

जिस समय ब्रह्मा प्रभृति प्रधान देवता प्रार्थना करनेके लिये भगवान् श्रीहरिके पास पधारे थे, उस समय भगवान्ने उन्हें काले और सफेद रंगके दो केश दिये थे। तदनन्तर पृथिवीको भारमुक्त करनेके लिये उस काले केशसे भगवान् श्रीकृष्ण और सफेद बालसे महाभाग श्रीबलरामजीका प्राकट्य हो गया। जो पुरुष भक्तिभावपूर्वक इस अंशावतरणके प्रसङ्गको सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पाकर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ आनन्दका भागी होता है। (अध्याय २२)

☆

## कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीके द्वारा श्रीकृष्णको नन्द-भवनमें पहुँचाना, योगमायाके द्वारा कंसको चेतावनी, नवजात बालकोंको मारनेके लिये कंसका राक्षसोंको आदेश, श्रीकृष्णावतारका संक्षिप्त चरित्र—नन्दोत्सवसे लेकर प्रद्युम्नके जन्मतककी कथा

व्यासजी कहते हैं—नारदजीके आदेशानुसार उग्रसेन-पुत्र कंसने जब देवकीके छः बच्चोंको मार डाला और सातवाँ गर्भ गिर गया, तब आठवें गर्भकी रक्षा करनेके लिये अत्यन्त सजग होकर वह प्रयत्नमें लग गया। इसी गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक मेरा काल है—उसके चित्तसे यह चिन्ता क्षणभर भी दूर नहीं हो पाती थी। उचित समय आनेपर भगवान् श्रीहरि वसुदेवजीके अंदर प्रविष्ट होकर लीलासे ही देवकीके गर्भमें विराजमान हो गये। उसी समय भगवती योगमायाने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके विचारसे इच्छानुसार यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया। गोकुलमें रोहिणीजी थीं। उनके गर्भसे बलरामजी प्रकट हो चुके थे। कारण, कंसके भयसे उद्विग्न होकर वसुदेवजीकी वे प्रेयसी भार्या रोहिणी उस समय गोकुलमें कालक्षेप कर रही थीं। तदनन्तर कंसने देववन्दिता देवकीको कारागारमें बंद कर दिया। उसकी रखवाली करनेके लिये बहुत-से सेवक नियुक्त कर दिये गये। अपनी धर्मपत्नीपर वसुदेवजीका अनुपम प्रेम था। प्रेमके सूत्रमें बँधकर वे भी स्त्रीके साथ कैदमें पड़े थे। प्रतिक्षण पुत्रजन्मकी चिन्ता उनके मनमें खटक रही थी ! जब देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णु देवकीके गर्भमें पधारे, तब समस्त देवताओंने आकर उनकी स्तुति की।

क्रमशः गर्भकी अवधि पूर्ण हो गयी। दसवाँ महीना शुभ श्रावण[1] पड़ा था। उसके कृष्णपक्षमें अष्टमी तिथिको रोहिणी नक्षत्रका प्रवेश हो गया था। उस समय कंसके मनमें अत्यन्त घबराहट उत्पन्न हो गयी थी। सम्पूर्ण दानवोंसे उसने कहा—'तुम लोगोंको अब पूरी तत्परताके साथ देवकीकी रखवाली करनी चाहिये; क्योंकि उसके आठवें गर्भसे ही मेरा शत्रु उत्पन्न होनेवाला है। वही बालक मेरा काल है। अतः भलीभाँति प्रयत्न करके रखवालीमें सावधान रहना परम आवश्यक है। दैत्यो ! इस बालकका वध करनेके पश्चात् ही मैं अपने भवनमें सुखकी नींद सोऊँगा। सभी वीर दानव तलवार, भाला और धनुष हाथमें लेकर डटे रहें। कभी भी नींद अथवा आलस्य न आने पाये। सभी स्थानोंमें दृष्टि दौड़ाते रहें।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार दानवोंको आज्ञा देकर कंस तुरंत अपने महलमें चला गया। उसका शरीर दुर्बल हो गया था। भयके कारण उसकी घबराहटकी सीमा न थी। महलमें भी उसे शान्ति नहीं मिली। इधर आधी रातका समय हो गया था। देवकीने वसुदेवजीसे कहा—''महाराज ! मेरा प्रसवकाल आ गया। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये ? यहाँपर बहुत-से भयंकर रक्षक हैं। पूर्वसमयमें मुझसे नन्दरानीकी बात हुई थी। उन्होंने कहा था—'मानिनि ! तुम अपने पुत्रको मेरे घर भेज देना। यह निश्चय जानो, मैं भलीभाँति उसे पाल-पोस दूँगी। कंसके मनमें विश्वास हो जाय कि यह तुम्हारा पुत्र नहीं है, इसीलिये यह प्रयत्न करना है। फिर तुम्हें पुत्र वापिस कर दूँगी।' परंतु प्रभो ! आज तो बड़ी विषम स्थिति सामने आ गयी है। इस समय क्या करना उचित होगा ? शूरनन्दन ! आप संतानको अदल-बदल करनेमें कैसे सफलता प्राप्त कर सकेंगे ? स्वामिन् ! अभी आप मेरे निकट न आइये; क्योंकि दुस्तर लज्जा मुझे संकोचमें डाल रही है। मुख मोड़े ही बात कर लें। इसके अतिरिक्त मैं क्या कर सकती हूँ।''

देवतुल्य वसुदेवजीसे यों कहनेके बाद ठीक आधी रातके समय देवकीसे एक परम अद्भुत बालक प्रकट हुआ। उस सुन्दर पुत्रको देखकर देवकीके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। हर्षके कारण उसका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। फिर उस महाभागाने अपने स्वामी वसुदेवजीसे कहा—'कान्त ! पुत्रका मुख देखिये। प्रभो ! आपका यह पुत्र बड़ा ही दुर्लभ है; क्योंकि आज ही मेरा कालरूपी भाई कंस इसे मार डालेगा।' देवकीके वचनका अनुमोदन करके वसुदेवजीने उस बालकको हाथपर उठा लिया। वे अद्भुत कर्मशाली उस पुत्रके मुखको निहारने लगे, उस होनहार बालकका मुख देखनेके पश्चात् उनका मन चिन्ताके अगाध समुद्रमें गोते खाने लगा। सोचा, क्या करूँ। इस बच्चेके लिये मुझे किसी प्रकार दुःखका सामना न करना पड़े। वे यों व्याकुलतापूर्वक सोच रहे थे। इतनेमें आकाशवाणी हुई। वसुदेवजीको सम्बोधित करके आकाशवाणीने कहा—'वसुदेव ! तुम इस बालकको लेकर अभी गोकुल पहुँचा आओ। सम्पूर्ण रक्षकोंको नींदसे अचेत कर

---

१. श्रावण शुक्ल प्रतिपदासे लेकर भाद्रपद अमावस्यातक श्रावण माननेवालोंके सिद्धान्तसे यह कथन है। गुजरातमें ऐसा ही माना जाता है।

दिया गया है। आठों दरवाजोंके फाटक खुल गये हैं। किसीमें साँकल नहीं है। तुम इस बालकको तुरंत नन्दके भवनमें छोड़कर वहाँसे योगमायाको उठा ले आओ।'

इस प्रकारकी आकाशवाणी सुनकर वसुदेवजी बाहरकी ओर गये। उन्होंने देखा, सभी फाटक खुले पड़े हैं। तब वे तुरंत बालकको लेकर चल पड़े, द्वारपाल उन्हें देख नहीं सके। यमुनाके तटपर पहुँचकर देखा,

इस पारसे उस पारतक अगाध जल भरा हुआ है। सोचा, अब क्या करना चाहिये। इतनेमें ही नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाजी ऐसी हो गयीं कि कहीं भी कमरसे ऊपर पानी नहीं रहा। यह सब योगमायाकी विभूति थी। फिर तो वसुदेवजी सहज ही यमुना पार कर गये। उस आधी रातके समय ही वे गोकुल पहुँच गये। मार्ग बिलकुल सुनसान था। वे नन्दजीके दरवाजेपर पहुँच गये। उसी समय वहाँ यशोदाके गर्भसे योगमाया अवतीर्ण हुई थीं। दिव्यरूप धारण करके वे अपने पूर्ण अंशसे पधारी थीं। उनका विग्रह त्रिगुणमय एवं परम अलौकिक था। वे एक छोटी-सी कन्याके रूपमें विराज रही थीं। उस अवसरपर सर्वेश्वरी भगवतीने स्वयं दासीका वेष बना लिया। अपने कमल-जैसे कोमल हाथपर उस दिव्य कन्याको लेकर वह बाहर आयी और उसे वसुदेवजीको दे दिया। वसुदेवजीने भी दासी-वेष धारण करके पधारनेवाली उस सर्वेश्वरीके करकमलपर अपने पुत्रको रख दिया और उस कन्याको लेकर वे बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चल दिये। कुछ ही क्षणों बाद वे कारागारमें आ पहुँचे और देवकीकी शय्यापर उन्होंने उस कन्याको लेटा दिया। बहुत दूर न जाकर वे स्वयं पास ही बैठ गये और अत्यन्त चिन्तित एवं भयातुर होकर कालक्षेप करने लगे। इतनेमें कन्याने उच्च स्वरसे रोना आरम्भ किया। फिर तो प्रसवके समयको सूचित करनेके लिये नियुक्त किये गये राजकर्मचारी जाग पड़े। कन्याका रुदन सुनकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने तुरंत उस रातमें ही जाकर राजा कंसको सूचित किया—'महामते ! देवकीके बच्चा उत्पन्न हो गया। आप शीघ्र वहाँ पधारिये।' रक्षकोंकी बात सुनकर भोजपति कंस तुरंत चल पड़ा। फाटक बंद थे। यह देखकर उसने वसुदेवजीको पुकारा।

कंसने कहा—महान् बुद्धिशाली वसुदेव ! देवकीके बालकको मेरे सामने उपस्थित करो। उसका यह आठवाँ बालक ही मेरा काल है। मेरे शत्रु श्रीहरि स्वयं बालक बनकर आये हैं। अतः उन्हें मैं अभी मार डालूँगा।

व्यासजी कहते हैं—कंसकी बात सुनकर वसुदेवजी भयभीत हो गये। उनकी आँखें डबडबा आयीं। उन्होंने उस कन्याको उठाकर कंसके हाथमें दे दिया। उनके नेत्र जल बरसा रहे

थे। उस कन्याको देखकर राजा कंस महान् आश्चर्यमें पड़ गया। सोचा, 'आकाशसे देववाणी हुई थी और नारदमुनिने भी कहा था, पर सब-के-सब मिथ्या सिद्ध हुए। यह बेचारा वसुदेव तो महान् कष्टमें रहकर समय व्यतीत कर रहा है। यह भला, झूठी बात कैसे बना सकता है। मेरे सभी रक्षक बड़ी सावधानीके साथ अपने काममें संलग्न थे—इसमें किञ्चिन्मात्र संदेह नहीं है। हो-न-हो, यहाँ जन्मनेवाला बालक कहीं अन्यत्र जन्म पा गया और कहीं अन्यत्र पैदा होनेवाली कन्या यहाँ उत्पन्न हो गयी है। कालकी बड़ी विषम गति है !'

पापी कंस अपने कुलका घोर कलङ्क था। उसके हृदयमें अणुमात्र भी दया नहीं थी। सब कुछ सोचने-समझनेपर भी उसने कन्याको मार डालनेका ही निश्चय किया। अतः उसने कन्याको ले लिया, उसके पैर पकड़े और उसे पत्थरपर दे मारना चाहा। इतनेमें ही वह कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी। आकाशमें जाते ही उसने दिव्यरूप धारण कर

लिया और मधुर स्वरमें कंससे कहा—'अरे पापी ! मुझे मारनेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। तेरा प्रबल शत्रु उत्पन्न हो चुका है। किसी प्रकार भी उसका दमन नहीं किया जा सकता। तुझ नराधमको वह अवश्य मार डालेगा।' यों कहकर कल्याणस्वरूपिणी देवी स्वच्छन्दतापूर्वक आकाशमें विराजमान हो गयी। उस समय कंसके मनमें आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वह अपने घर चला गया। उसके मनमें भयके कारण घबराहट उत्पन्न हो गयी थी। बकासुर, धेनुकासुर और वत्सासुर प्रभृति सम्पूर्ण दानवोंको बुलाकर उसने कहा—'दानवो ! तुम सभी मेरा कार्य सम्पन्न करनेके लिये जाओ। जहाँ कहीं भी बालक जन्मे, उत्पन्न होते ही उसे मार डालना। बालकोंको मारनेवाली पूतना अभी नन्दके गोकुलमें चली जाय। वहाँ अभीके उत्पन्न हुए जितने बच्चे मिलें, उन्हें मेरी आज्ञा मानकर तुरंत मार डालना पूतनाका परम कर्तव्य है। धेनुकासुर, वत्सासुर, केशी, प्रलम्ब और बक—ये समस्त दानव मेरा कार्य सिद्ध करनेके विचारसे गोकुलमें ही डटे रहें।' इस प्रकार सम्पूर्ण दानवोंको आदेश देकर पापी कंस अपने महलमें चला गया। उसके मनपर चिन्ताकी घटा घिरी थी। वह अत्यन्त दीन-सा हो गया था; क्योंकि उसे बार-बार शत्रुरूप श्रीहरिका स्मरण हो रहा था।

व्यासजी कहते हैं—प्रातःकाल होते ही नन्दजीके महलमें पुत्रोत्सव मनाया जाने लगा। यह बात चारों ओर फैल गयी। किसी दूतके मुखसे कंसने भी सुन लिया। वसुदेवजीकी स्त्रियाँ आदि सभी नन्दके गोकुलमें ठहरे हुए हैं—यह बात कंससे अविदित नहीं रही। अतएव भारत ! गोकुलके विषयमें उसे महान्

संदेह उत्पन्न हो गया। इसके पूर्व नारदजी भी सभी कारण बता चुके थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था—'गोकुलमें जो नन्द प्रभृति तथा उनकी स्त्रियाँ हैं, वे सभी देवता हैं। देवकी और वसुदेव आदि भी वे ही हैं। निश्चय ही वे तुम्हारे शत्रु हैं।' नारदजीके इस वचनसे कुलमें कलङ्क लगानेवाला वह कंस वस्तुस्थितिको भलीभाँति समझ गया था। बड़े-से-बड़े पापमें भी उसकी प्रवृत्ति हो जाती थी। राजन्! उसका मन क्रोधसे ओतप्रोत था। समयानुसार पूतना, बकासुर, वत्सासुर, महाबली धेनुकासुर और प्रलम्ब—ये सभी असुर अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके हाथ मृत्युके मुखमें चले गये। श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठा लिया—इस अद्भुत कर्मको सुनकर कंसके मनमें विश्वास हो गया कि इन्हींके द्वारा मेरा मरण निश्चित है। फिर केशीके निधनका समाचार मिलनेपर उसके मनमें अत्यन्त उदासी छा गयी। तब वह धनुष-यज्ञ देखनेके बहाने श्रीकृष्ण और बलरामको बुलानेके यत्नमें लग गया। उस नीच कंसकी बुद्धि सदा पापमें रत रहती थी। उसने अमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामका वध करनेके विचारसे उन्हें ले आनेके लिये अक्रूरजीको जानेकी आज्ञा दे दी। अक्रूरजी कंसका अनुशासन मानकर गोकुल गये और भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामको रथपर बैठाकर मथुरा लौट आये। यहाँ आकर दोनों भाइयोंने धनुष तोड़ दिया। रजक, कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिकके प्राण हर लिये। भगवान् श्रीकृष्णने शल और तोशलको भी मृत्युके मुखमें भेज दिया। लीलापूर्वक कंसकी चोटी पकड़ ली और उसे सदाके लिये जमीनपर सुला दिया। तदनन्तर माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाया, उनके दुःख दूर किये। फिर शत्रुसूदन श्रीकृष्णने उग्रसेनको राजगद्दीपर भी बैठा दिया। वहीं महामना वसुदेवजीने उन दोनों भाइयोंका विधिपूर्वक यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। संस्कार सम्पन्न हो जानेपर वे दोनों महानुभाव सांदीपनिजीके स्थानपर गये। वहाँ रहकर सम्पूर्ण विद्याओंका अध्ययन किया और पुनः मथुरा लौट आये। बारह वर्षकी अवस्थामें ही वसुदेवनन्दन महाबली श्रीकृष्ण और बलरामकी पढ़ाई समाप्त हो गयी थी। अब वे दोनों वीर मथुरामें विराजमान हो गये। उधर मगधनरेश जरासंधने अपने जामाता कंसकी मृत्युसे महान् दुःखी होकर सेना एकत्रित की और मथुरापुरीपर धावा बोल दिया। उसने सत्रह बार चढ़ाई की। प्रत्येक बार मथुरावासी बुद्धिमान् श्रीकृष्ण युद्धभूमिमें पधारकर उसकी सेनाको हराते रहे। इसके बाद जरासंधने सम्पूर्ण म्लेच्छोंके अध्यक्ष कालयवन नामक योद्धाको भगवान् श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये प्रेरणा की। वह राक्षस यादवोंके लिये महान् भयंकर था। कालयवन आ रहा है, यह सुनकर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण प्रसिद्ध यादवोंको तथा बलरामजीको बुलाकर कहा—'महाभागो! महाबली जरासंधसे हमें यहाँ बराबर ही भय बना रहता है। उसीके भेजनेपर कालयवन आ रहा है। ऐसी दशामें हमें क्या करना चाहिये? धन, घर और सेना—सब कुछ छोड़कर भी प्राण-रक्षाका प्रबन्ध कर लेना परम आवश्यक है। जहाँ सुखसे रहनेकी विधि बैठ जाय, उसीको पैतृक भूमि समझना चाहिये। अपने उत्तम कुलके रहने योग्य स्थानमें भी यदि सदा अशान्ति ही बनी रहे तो उससे क्या लाभ। अतएव सुखकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको

चाहिये कि ऐसी स्थितिमें समुद्र अथवा पर्वतके पास रहनेका प्रबन्ध कर ले; क्योंकि जहाँ शत्रुका भय न हो, वहीं निवास करना पण्डितजन उचित समझते हैं। भगवान् विष्णु समुद्रमें शेषनागको शय्या बनाकर सुखपूर्वक सोते हैं। यही स्थिति भगवान् शंकरकी भी है, वे कैलास पर्वतपर चले गये। अतएव शत्रुओंके हाथों संताप सहते हुए हमें भी यहाँ रहना उचित नहीं है। हम सब लोग एकत्रित होकर द्वारका चलनेकी व्यवस्था कर लें। मुझसे गरुड़ने कहा है, इस समय द्वारकापुरी बहुत ही उत्तम स्थान है। मनको मुग्ध करनेवाली वह पुरी समुद्रके तटपर बसी है, उसीके पास रैवताचल शोभा पा रहा है।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णकी इस सत्य और युक्तियुक्त बातको सुनकर सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादवोंने अपने बन्धु-बान्धवों एवं सवारियोंके साथ चलना निश्चित कर लिया। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको आगे करके सब-के-सब सपरिवार मथुरापुरीसे निकल पड़े। जो मुख्य-मुख्य यादव थे, उन सबने प्रजावर्गको आगे चलाकर स्वयं चलनेकी व्यवस्था की। कुछ ही दिनोंमें वे द्वारकापुरी पहुँच गये। भगवान् श्रीकृष्णने शिल्पियोंद्वारा उस पुरीके भवनोंको ठीक करा दिया। उनके प्रबन्धसे यादव वहाँ ठहर गये। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम शीघ्र मथुरा लौट आये। उस समय वह पुरी सुनसान पड़ी थी। वे दोनों महानुभाव उसकी शोभा बढ़ाने लगे। इतनेमें यवनोंका अध्यक्ष पराक्रमी कालयवन वहाँ आ पहुँचा। कालयवन आ गया—यह जानकर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरासे बाहर निकले और लीलासे ही कालयवनके सामनेसे होकर पैदल ही भाग चले। उस समय श्रीमान् कृष्णचन्द्रके शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। मुखपर हँसीकी किरणें छिटक रही थीं। नेत्र मानो कमलकी शोभाको मात कर रहे थे। उन्हें सामनेसे भागते देखकर दुराचारी कालयवन भी अनाप-शनाप बकता हुआ पैदल ही उनके पीछे दौड़ा। अब भगवान् श्रीकृष्ण और कालयवन वहाँ पहुँचे, जहाँ महान् प्रतापी राजर्षि मुचुकुन्द सो रहे थे। राजर्षि मुचुकुन्दको देखकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। कालयवन भी वहीं पहुँच गया। देखा, कोई सो रहा है। उसने समझा, ये ही श्रीकृष्ण हैं। अतः उसने राजर्षिपर पैरसे प्रहार करना आरम्भ कर दिया। तब महाबली मुचुकुन्दकी नींद टूट गयी। क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो गये। उनकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन जलकर राख हो गया। कालयवनको भस्म कर देनेके पश्चात् राजर्षि मुचुकुन्दको कमललोचन भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए। वे भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर वनकी ओर चल पड़े। श्रीकृष्णचन्द्रने भी बलरामजीको साथ लेकर द्वारकाके लिये प्रस्थान किया। द्वारका आकर महाराज उग्रसेनको वहाँका राजा बनाया और स्वयं इच्छानुसार विचरने लगे।

रुक्मिणीके विवाहका स्वयंवर सजा था। शिशुपालसे विवाहकी बात निश्चित हो गयी थी। परंतु भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें हर ले आये। उन्होंने रुक्मिणीके साथ विवाह कर लिया। तत्पश्चात् वे जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा तथा नाग्नजिती प्रभृति दिव्य देवियोंको बारी-बारीसे ले आये और उन सबके साथ पाणिग्रहण-संस्कार कर लिया। राजन्! इस प्रकार उनकी आठ पत्नियाँ हुईं। वे सभी अप्रतिम सुन्दरी थीं। रुक्मिणीके गर्भसे

प्रियदर्शन प्रद्युम्नका जन्म हुआ। भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्नके जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। प्रद्युम्नजी प्रसवगृहमें थे। पराक्रमी शम्बरासुर वहाँसे उन्हें हर ले गया। उसने प्रद्युम्नजीको अपनी नगरीमें ले जाकर मायावतीके पास रहनेकी व्यवस्था कर दी। इधर पुत्रका हरण देखकर भगवान् श्रीकृष्णका मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया। ऐसी दशामें उन्होंने भक्तिभावपूर्वक उन भगवतीकी शरण ली, जिन्होंने वृत्रासुर आदि दैत्योंको खेल-ही-खेलमें मार डाला था। इसके बाद भगवान्ने योगमायाकी उत्तम स्तुति आरम्भ की। स्तुतिके पद्य बड़े ही सुन्दर हैं। सारगर्भित अक्षरों एवं वाक्योंसे उन पद्योंकी पूर्ति हुई है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—माता! पूर्वकालकी बात है—मैं बदरिकाश्रममें धर्मके घर पुत्र बना था। तुममें मेरी अटूट श्रद्धा थी। तपस्याके प्रभावसे मैंने तुम्हें प्रसन्न कर लिया था। फूलोंसे तुम्हारी पूजा होती थी। जननी! क्या तुम्हें वे बातें विस्मृत हो गयीं? बड़े आश्चर्यकी बात है, किस दुराचारीने प्रसवगृहसे मेरे बच्चेको हर लिया? अथवा किसीने कौतूहलपूर्वक मेरा अभिमान दूर करनेके लिये ही यह प्रपञ्च रचा है? चारों ओर दुस्तर खाइयाँ हैं। उनसे भलीभाँति सुरक्षित यह पुरी है। पुरीके मध्यभागमें मेरा भवन है। भवनके बिलकुल भीतर प्रसवगृहकी व्यवस्था हुई है। सदा किवाड़ बंद रहते हैं, इतनेपर भी बालक हर लिया गया। न तो मैं किसी दूसरे नगरमें गया था और न यादव ही कहीं गये थे। पुरीकी रक्षा करनेमें सुप्रसिद्ध वीर नियुक्त थे। जननी! तुम्हारा प्रभाव सर्वविदित है। तुम्हारी ही मायासे यह घटना घटी है, इसीसे किसी मायावीने मेरे पुत्रको हर लिया। जननी! तुम्हारा चरित्र अत्यन्त गुप्त है। इसे जाननेमें मैं भी असमर्थ हो गया, तब फिर सीमित विचार रखनेवाला अल्पबुद्धि कौन प्राणी है, जो तुम्हारा प्रभाव जान सके? पुत्रको चुरानेवाला वह व्यक्ति कहाँ चला गया? मेरे सेवकोंने उसे देखा भी नहीं। अम्बिके! यह तुम्हारी ही रची हुई माया है। तुम्हारे लिये यह कोई विचित्र बात नहीं है। मेरे प्रकट होनेसे पूर्व तुम्हारी मायाने पाँचवें महीनेमें ही मेरी माताके गर्भसे खींचकर बालकको अन्यत्र स्थापित कर दिया था, जो रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुए। हलधर नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। अम्बिके! तुम अपने गुणोंद्वारा जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करनेमें सदा संलग्न रहती हो। तुम्हारे पापनाशक चरित्रको कौन जान सकता है। प्रायः यह सारा विश्व तुम्हारा ही बनाया हुआ तो है। पुत्रोत्सवका आनन्द सामने उपस्थित करके उसके विरहका असह्य दुःख भी सिरपर उड़ेल दिया—इसमें कारण केवल तुम्हारा मनोरञ्जनमात्र है। सांसारिक दुःखोंसे संतप्त प्राणियोंकी माता और उनकी शरण एकमात्र तुम्हीं हो। सारे शोकोंको शमन कर देनेमें तुम पूर्ण समर्थ हो। अतः सम्प्रति मेरा पुत्र कहीं जीवित हो तो उसे सामने उपस्थित करनेकी कृपा करो।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णके लिये कोई काम भी असाध्य नहीं है। उनके इस प्रकार स्तवन करनेपर भगवती जगदम्बा स्वयं सामने प्रकट हो गयीं और जगद्गुरु श्रीकृष्णके प्रति अपना अभिप्राय उन्होंने व्यक्त कर दिया।

श्रीदेवीने कहा—देवेश्वर! शोक मत करो। यह पूर्व जन्मका शाप है, जो इस रूपमें सामने
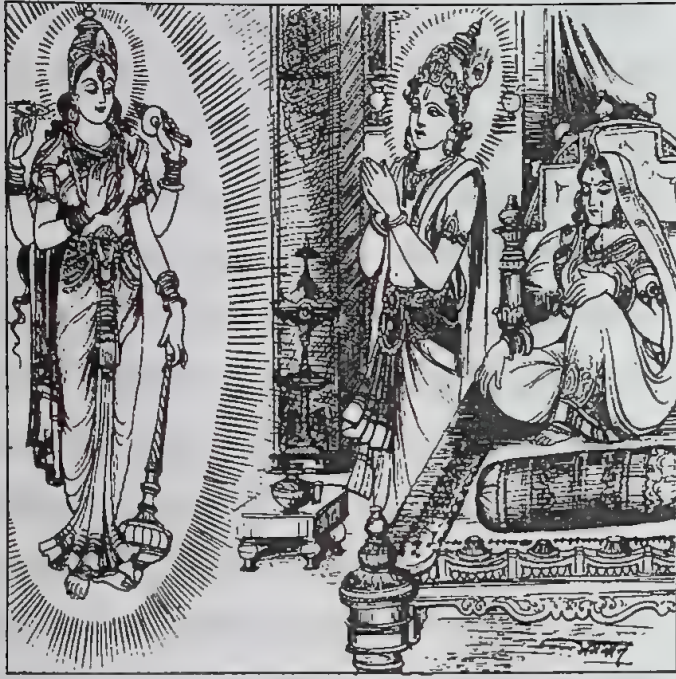
उपस्थित हो गया है। उसीके परिणामस्वरूप शम्बरासुरने तुम्हारे पुत्रको बलपूर्वक हर लिया है, अतएव अधीर होना ठीक नहीं। सोलह वर्षका हो जानेपर वह तुम्हारा पुत्र शम्बरासुरको बलपूर्वक मारकर स्वयं ही घर आ जायगा। मेरे प्रसन्न हो जानेपर किसी स्थितिमें भी संशय करना अनुचित है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर प्रचण्ड पराक्रमसे सम्पन्न भगवती चण्डिका अन्तर्धान हो गयीं।

(अध्याय २३-२४)

☆

## श्रीकृष्णका शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीके द्वारा श्रीकृष्णको वरदान

राजा जनमेजयने कहा—मुनिवर ! आपके मुखारविन्दसे यह प्रसङ्ग सुनकर मुझे महान् आश्चर्य हो गया। जगद्गुरु श्रीकृष्णमें सारी शक्तियाँ निहित थीं; फिर भी उनका पुत्र प्रसवगृहसे हर लिया गया। ऐसी घटना कैसे हो गयी ? नगरकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध था। सुरक्षित अन्तःपुरमें प्रसवगृहकी व्यवस्था थी। फिर भी शम्बरासुरने भीतर प्रवेशकर उस बच्चेको कैसे हर लिया ? सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! इसका जो कारण है, वह स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! मायामें अनुपम शक्ति है। मानवोंको मूढ़ बना देना इसका स्वाभाविक गुण है। लोग इसे शाम्भवी कहते हैं। जगत्में कौन ऐसा है, जो इसके प्रभावमें न आया हो। मनुष्यका जन्म पाते ही सभी मानवोचित गुण उसमें आ जाते हैं। सम्पूर्ण गुण देहसे सम्बन्ध रखते हैं। देवता अथवा दानव—कोई भी इस नियमका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। भूख, प्यास, नींद, भय, आलस्य, मोह, शोक, संशय, हर्ष, अभिमान, बुढ़ापा, मृत्यु, अज्ञान, ग्लानि, वैर, ईर्ष्या, डाह, मद और श्रम—ये सभी देहके साथ ही उत्पन्न होते हैं। राजन् ! सभीपर इनका प्रभाव कुछ-न-कुछ पड़ता है। भगवान् मानवका शरीर धारण करके धराधामपर पधारे थे। अतः उन्होंने भी मानवलीलाके लिये सभी मानवोचित कार्य सम्पन्न किये। इस विषयमें अन्यथा विचार अवाञ्छनीय है। पहले कंसके भयसे भगवान् गोकुल पधारे। कुछ दिनोंके बाद जरासंधसे भयभीत होकर द्वारका चले गये। फिर उन्होंने रुक्मिणीको हर लिया। सनातन-धर्मकी मर्यादा जानते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण उस उत्सवके समय रुक्मिणीहरणमें प्रवृत्त हो गये। शम्बरासुर-द्वारा प्रद्युम्नके हरे जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण शोकाकुल हो उठे। फिर उनका शुभ समाचार

पाकर हर्षित भी हो गये। यों हर्ष और शोक—दोनों परिस्थितियोंका उन्होंने लीलासे वरण किया। सत्यभामाकी आज्ञा मानकर भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्ग पधारे। वे वहाँसे कल्पवृक्ष ले आना चाहते थे। रोके जानेपर इन्द्रसे युद्ध किया। इन्द्र हार गये। अपनी स्त्रीके वश होना प्रकट करते हुए भगवान्ने कल्पवृक्ष छीन लिया था। सत्यभामाजी बड़ी आदरणीया थीं। उनकी प्रतिष्ठा रखनेके लिये भगवान् वृक्षमें बँध गये। उन अपने प्राणनाथको सत्यभामाने दान कर दिया। नारदजी प्रतिग्रह लेने पधारे थे। तत्पश्चात् बराबर सुवर्ण देकर श्रीकृष्णचन्द्रको बन्धनसे मुक्त किया। प्रद्युम्न प्रभृति श्रेष्ठ पुत्रोंको देखकर जाम्बवती अधीर हो उठीं। भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो ! मुझे भी सुयोग्य पुत्र प्रदान करनेकी कृपा करें।' तब तपस्या करनेके लिये निश्चित विचार करके भगवान् पर्वतपर पधारे। वे उस पर्वतपर गये, जहाँ परम तपस्वी शिवभक्त उपमन्युजी विराजमान थे। पुत्राभिलाषी भगवान् श्रीकृष्णने उन महाभाग मुनिको गुरु बनाकर उनसे शैवी दीक्षा ग्रहण की और वहीं रहकर कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। भक्तिपूर्वक

तपस्या करनेपर छठे महीनेमें भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। सौम्य वेशमें पधारकर उन्होंने साक्षात् दर्शन दिये। उस समय द्वितीयाके चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए भूतभावन भगवान् शंकर बैलकी सवारीपर वहाँ पधारे थे। भगवान् शंकरने महामना श्रीकृष्णको सम्बोधित करते हुए कहा—'यदुकुलको आनन्दित करने-वाले महामते श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारी उत्तम तपस्यासे प्रसन्न हो गया। तुम अभिलषित वर माँग लो, मैं देनेको तैयार हूँ। मेरा सामने आ जाना सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिका सूचक है। अब कोई भी मनोरथ शेष नहीं रह सकता।'

व्यासजी कहते हैं—अत्यन्त प्रसन्न होकर सामने पधारे हुए उन भगवान् शंकरको देखकर देवकीनन्दन महाभाग श्रीकृष्ण दण्डकी भाँति उनके चरणोंपर प्रेमपूर्वक पड़ गये। फिर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उन्होंने भगवान् शंकरकी स्तुति की।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्ण अपना मनोभाव व्यक्त कर रहे थे। अभी बात समाप्त नहीं हुई थी कि भगवान् शंकरने उत्तर देना आरम्भ कर दिया—'शत्रुसूदन श्रीकृष्ण ! तुम्हें बहुत-से पुत्र होंगे। सोलह हजार पचास तुम्हारी स्त्रियाँ होंगी। प्रत्येक स्त्रीसे दस-दस बालक होंगे। सबमें असीम बल होगा।' यों कहकर प्रियदर्शन भगवान् शंकर चुप हो गये। महाभाग श्रीकृष्ण हाथ जोड़े खड़े थे। भगवती पार्वती उनसे कहने लगीं—महाबाहो श्रीकृष्ण ! इस जगत्में मानवोंके सिरमौर बनकर तुम विराजमान रहोगे। उच्च श्रेणीकी गृहस्थीमें तुम्हारा वास होगा। जनार्दन ! सौ वर्षोंतक सुखमय जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् ब्राह्मण एवं गान्धारीके शापसे तुम्हारे कुलका संहार हो जायगा। शापके प्रभावसे विवेक नष्ट हो जानेके
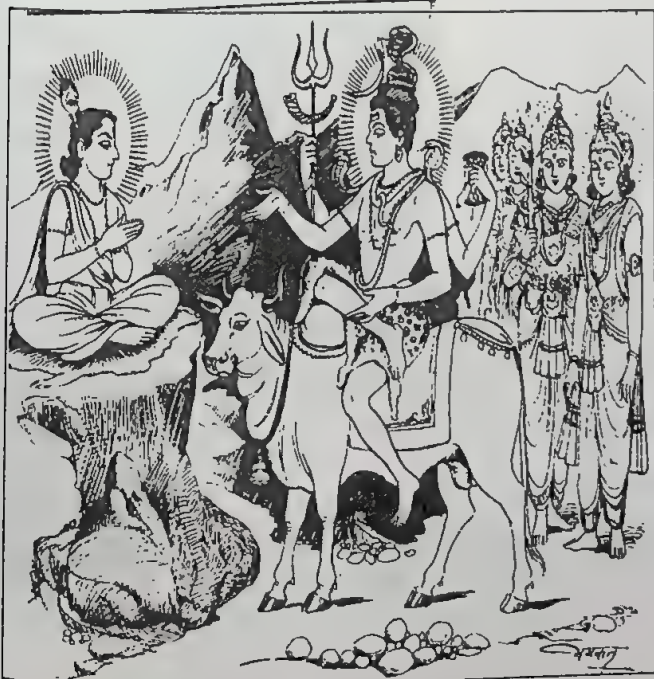
कारण तुम्हारे सभी पुत्र समराङ्गणमें उपस्थित होकर आपसमें ही लड़कर मर मिटेंगे। साथ ही अन्य सम्पूर्ण यादवोंकी भी सत्ता नष्ट हो जायगी। तुम भी अपने भाई बलरामके साथ अपने धाममें पधार जाओगे। प्रभो ! यह आगेका कार्यक्रम पहलेसे निर्धारित है। इस विषयको लेकर कभी चिन्तित नहीं होना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवान् शंकर, उमा एवं देव-वृन्दके साथ अन्तर्धान हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने भी मुनिवर उपमन्युको प्रणाम करके द्वारकाके लिये प्रस्थान किया। माया परब्रह्मस्वरूपिणी है। इन भगवती योगमायाके हृदयमें कभी विषमता एवं निर्दयताका बीज अङ्कुरित नहीं हो पाता। प्राणियोंकी रक्षाके लिये ही इनके सारे प्रयत्न निरन्तर चालू रहते हैं। यदि इस चराचर जगत्की सृष्टि करनेमें ये आलस्य कर जायँ तो सारा संसार जड बन जायगा। अतएव भगवती योगमाया संसारी प्राणियोंपर कृपा करके ही उनकी रचना करती और उन्हें कर्मशील बनानेके लिये उत्तेजित करनेमें निरन्तर संलग्न रहती हैं। देवता और दानव—सभीपर मायाकी गहरी छाप पड़ी है। सभी उसकी अधीनतामें रहकर व्यवहार करते हैं। केवल एक भगवती भुवनेश्वरी ही ऐसी हैं, जिनपर किसीका शासन लागू नहीं होता। स्वच्छन्दतापूर्वक इनका विचरण होता है। अतएव राजन् ! सम्यक् प्रकारसे उन भगवती महेश्वरीकी ही उपासना करनी चाहिये। त्रिलोकीमें उनसे बढ़कर श्रेष्ठ देवता दूसरा कोई नहीं है। उन परब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीके चरणोंमें निरन्तर ध्यान लगा रहे—यही जीवनकी सफलता है। मुझे उस कुलमें जन्म लेनेका अवसर न मिले, जहाँ भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना न होती हो। 'मैं उन परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरीका ही अंश हूँ, न कि दूसरा कोई। जब मैं भी ब्रह्म ही हूँ, तब मेरे पास क्लेश कैसे आ सकते हैं।'—यों अभेदकी कल्पना करके उन भगवती जगदम्बिकाकी उपासना करनी चाहिये। गुरुके मुखारविन्दसे अथवा वेदान्तके श्रवणसे इस विषयको पूर्णरूपसे जान लेना परम आवश्यक है। फिर मनको एकाग्र करके उन परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके चिन्तनमें निरन्तर तत्पर हो जाय। इस उपासनाके प्रभावसे प्राणी शीघ्र ही जगज्जालसे मुक्त हो जाता है, अन्यथा करोड़ों कर्म करनेसे भी मुक्ति नहीं मिल सकती। निर्मल अन्तःकरणवाले श्वेताश्वतर प्रभृति समस्त ऋषिगण उन्हीं परब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका हृदयमें साक्षात्कार करके संसारके बन्धनसे मुक्त हुए हैं। वे भगवती सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं। सभी मुख्य देवता उन्हींकी आराधना करते हैं। निष्पाप राजन् ! प्रपञ्चके तापसे भयभीत होकर तुमने जो पूछा था, उसका समाधान कर दिया। अब तुम क्या सुनना चाहते हो ? राजन् ! मेरा कहा हुआ यह उपाख्यान सर्वोत्तम स्थान रखता है। यह अत्यन्त अद्भुत, परम पावन, सनातन एवं सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। वेदप्रणीत इस पुराणको जो बड़भागी पुरुष सुनता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और वह भगवतीके परमधाममें चला जाता है। (अध्याय २५)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका चौथा स्कन्ध समाप्त।

══ ★ ══

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## पाँचवाँ स्कन्ध

### रम्भ-करम्भकी कथा तथा महिषासुर और रक्तबीजकी उत्पत्ति, महिषासुरके द्वारा इन्द्रके पास दूत भेजा जाना, दूतका लौटना और महिषासुरका देवताओंपर आक्रमण करनेके लिये दैत्योंको प्रोत्साहन देना

राजा जनमेजयने कहा—प्रभो ! आपने महामाया भगवती योगेश्वरीके प्रभावका वर्णन किया। अब आप उनका चरित्र कहनेकी कृपा कीजिये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मेरा मन अत्यन्त उत्कण्ठित है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सुनो, भगवतीके चरित्र विस्तारके साथ कहता हूँ। महामते ! श्रद्धालु एवं शान्त पुरुषको जो भगवतीकी कथा नहीं सुनाता, उसे प्रचण्ड मूर्ख समझना चाहिये। पूर्व समयकी बात है—धरातलपर महिषासुर नामक एक राजा था। उसके शासनकालमें देवताओं और दानवोंमें बड़ी भीषण लड़ाई ठन गयी थी। राजेन्द्र ! महिषासुरने अत्यन्त कठिन तप किया था। सुमेरु पर्वतपर जाकर उसने तपस्या की थी। देवता उसकी तपस्या देखकर अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये थे। दस हजार वर्षोंतक वह अपने इष्टदेवका हृदयमें ध्यान करता रहा। महाराज ! तदनन्तर उसके आराध्यदेव लोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये। वे हंसपर विराजमान होकर वहाँ आये और बोले—'धर्मात्मन् ! वर माँगो, मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उद्यत हूँ।'

महिषासुर बोला—देवाधिदेव महाभाग ब्रह्माजी ! मैं अमरत्व चाहता हूँ। पितामह ! जिस प्रकार मृत्युका भय सामने न आये, वैसा ही वर देनेकी कृपा कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—जन्मे हुए प्राणीका मरना और मरे हुएका जन्म लेना बिलकुल निश्चित है। यह नियम सदा लागू रहता है। सम्पूर्ण प्राणियोंकी जन्म लेने और मरनेकी क्रिया अनिवार्यरूपसे चलती रहती है। दैत्यवर ! समयानुसार सम्पूर्ण प्राणियोंकी मृत्यु हो जाती है। बड़े-बड़े पर्वतों और समुद्रोंका भी एक दिन अन्त हो जाता है। अतएव राजन् ! एक मृत्युके विषयको छोड़कर दूसरा, जो कुछ भी तुम्हारे मनमें जँचे, वर माँग लो।

महिषासुर बोला—पितामह ! देवता, दैत्य और मानव—इनमें किसी भी पुरुषसे मेरी मृत्यु न हो। कोई स्त्री मुझे मारे। अतएव ब्रह्माजी ! स्त्रीके हाथ मेरा मरण निश्चित करनेकी कृपा कीजिये। पर जो स्वयं अबला है, वह मुझे मारनेमें समर्थ ही कैसे हो सकेगी।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्येन्द्र ! ठीक है, जब कभी भी, स्त्रीके हाथ ही तुम्हारा मरण निश्चित है। महाभाग महिषासुर ! पुरुषोंके हाथ तुम कदापि न मर सकोगे।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार महिषासुरको वर देकर ब्रह्माजी अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गये। वह प्रतापी दैत्य महिषासुर भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गया।

राजा जनमेजयने पूछा—महिषासुर किसका पुत्र था ? उस महाबली दैत्यकी उत्पत्ति कैसे हुई थी ? एक महान् आत्मा होते हुए उसे महिषका रूप कैसे मिल गया था ?

व्यासजी कहते हैं—महाराज ! दनुके जगत्प्रसिद्ध दो पुत्र थे। उनके नाम थे—रम्भ और करम्भ। उन दोनोंकी दानवोंमें बड़ी प्रतिष्ठा थी। महाराज ! वे दोनों संतानहीन थे। अतः पुत्र होनेके लिये तपस्या करने लगे। बहुत वर्षोंतक कठिन तपस्या की। पञ्चनदके पावन जलमें तपस्या आरम्भ हुई। करम्भ जलमें डूबकर दुष्कर तप करने लगा। रम्भ प्रशस्त दूधवाले वट-वृक्षके नीचे गया और पञ्चाग्निकी व्यवस्था करके तपस्यामें लीन हो गया। जब रम्भ पञ्चाग्नि तापता हुआ साधनमें तत्पर हो गया, तब उन दोनों दैत्योंकी स्थितिका पता लगनेपर शचीपति इन्द्र महान् दुःखी हो गये। वे स्वयं पञ्चनद पहुँचे। ग्राहका वेष धारण करके उन्होंने जलमें प्रवेश किया तथा तपस्या करते हुए करम्भके पैर पकड़ लिये। उनके इस प्रयाससे दुराचारी करम्भकी जीवनलीला समाप्त हो गयी। अपने भाईका मरण सुनकर रम्भके क्रोधकी सीमा न रही। उसके मनमें ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि अपना मस्तक अग्निको भेंट कर दूँ। अतः उसने सहसा बायें हाथसे अपने सिरकी चोटी पकड़ी और दाहिने हाथमें तीखी तलवार लेकर मस्तकको धड़से अलग कर देना चाहा, इतनेमें ही उसे समझानेके लिये अग्निदेव प्रकट हो गये। अग्निदेवने रम्भसे कहा—'दैत्य ! तुममें बड़ी मूर्खता भरी हुई है। तभी तो अपना मस्तक काटनेको तैयार हो गये हो ! भला, आत्महत्या-जैसे अत्यन्त अधम कर्ममें तुम्हारी प्रवृत्ति कैसे हो गयी ? तुम्हारा कल्याण हो। मुझसे वर माँग लो। मनमें जो भी इच्छा हो, माँग सकते हो। शरीरका त्याग मत करो। यों प्राणत्याग करनेसे भी तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध होगा ?'

व्यासजी कहते हैं—अग्निदेवकी वाणी बड़ी सरस थी। उसे सुनकर रम्भने अपनी चोटी छोड़ दी और कहा—'देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अभीष्ट वर देनेकी कृपा कीजिये। मैं त्रिलोकीपर विजय पानेवाला पुत्र चाहता हूँ। मुझे ऐसा पुत्र चाहिये, जिसके प्रयाससे शत्रुकी सेना प्राणोंसे हाथ धो बैठे। देवता, दानव और मानव —कोई भी किसी प्रकार भी उसे पराजित न कर सकें। वह अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण कर सके। उसमें असीम शक्ति हो। सब लोग उसके चरणोंमें मस्तक झुकायें।' तब अग्निदेवने रम्भसे कहा—'बहुत ठीक, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी। महाभाग ! तुम्हें वैसा ही पुत्र होगा। अब आत्महत्याका विचार छोड़ दो। महाभाग रम्भ ! जिस सुन्दरी भार्यापर तुम्हारा मन डिग जाय, उसीके गर्भसे महान् पराक्रमी पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा।'

व्यासजी कहते हैं—अग्निदेवका वचन चित्तको आह्लादित कर देनेवाला था। उनकी बात सुनकर दैत्यवर रम्भने चरणोंमें मस्तक झुका दिया और वह अपने स्थानकी ओर चल दिया। रम्भका स्थान सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न था, वहाँ अनेकों यक्ष मौजूद थे। पशुभावापन्न राक्षस तो था ही; कामभावसे एक महिषीपर उस

दानवराजकी दृष्टि पड़ गयी। उस समय वह भैंस भी जवानीके मदमें चूर थी। रम्भ उसपर आसक्त हो गया। होनी बड़ी प्रबल है। उसके वीर्यसे वह महिषी गर्भवती हो गयी। एक समयकी बात है—कोई एक दूसरा भैंसा उस भैंसपर टूट पड़ा, अतएव उस भैंसेको मारनेके लिये रम्भ स्वयं सामने आ गया और उसपर झपटा। वह बलवान् भैंसा भी कामान्ध था। उसने तुरंत अपने सींगोंसे रम्भपर चोट पहुँचानी शुरू कर दी। उसके सींग बड़े तीखे थे। उस भैंसेने उन तीखे सींगोंके द्वारा रम्भके हृदयमें गहरी चोट पहुँचायी। इससे वह दानव मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा और उसके प्राण शरीरसे अलग हो गये। अपने स्वामी रम्भके मर जानेपर वह बेचारी महिषी भयसे अत्यन्त घबराकर वहाँसे भाग चली। वह वेगपूर्वक एक वट-वृक्षके नीचे जाकर यक्षोंकी शरणमें चली गयी। उसके पीछे लगा हुआ वह भैंसा भी वहाँ पहुँच गया। बलके अभिमानमें तो वह चूर था ही। यक्षोंने देखा, वह महिषी अत्यन्त कातर होकर आँखोंसे आँसू गिरा रही है और भयसे उसका कलेजा काँप रहा है। साथ ही पीछे दौड़कर आता हुआ भैंसा उन्हें दिखायी दिया। अतः उस भैंसकी रक्षा करनेके लिये यक्ष भैंसेका सामना करनेके लिये तत्पर हो गये। अब उस भैंसेके साथ उन यक्षोंका रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। यक्ष बाण बरसाने लगे। एक ऐसा बाण लगा कि उससे आहत होकर भैंसा तुरंत प्राणहीन होकर पृथ्वीपर पड़ गया। रम्भ यक्षोंका परम प्रेमी था। अतः उन्होंने उसकी लाश लेकर दाहसंस्कार करनेके लिये चितापर रख दी। पतिके मृतशरीरको चितापर देखकर उस महिषीके मनमें भी निश्चित विचार हो गया कि मैं भी पतिके साथ सती हो जाऊँ। यक्षोंके रोकते रहनेपर भी उसके विचारमें परिवर्तन नहीं हुआ, वह जलती हुई चितामें पैठ गयी। उसने अपने प्रेमी पतिको हृदयसे चिपका लिया। उसी समय चिताके मध्यभागसे महाबली महिषासुर निकल आया। पुत्रपर कृपा करनेवाला स्वयं रम्भ भी एक दूसरा शरीर धारण करके रक्तबीजके रूपमें चितासे निकला। यों महिषासुर और रक्तबीज इन दोनोंकी उत्पत्ति

महाबली रम्भसे ही हुई। तदनन्तर मुख्य-मुख्य दानव एकत्र हुए और उन्होंने महिषासुरको वहाँकी राजगद्दीपर अभिषिक्त कर दिया। राजन्! महिषासुर देवताओं, दानवों और मानवों —सबसे अवध्य था। महाराज! महान् आत्मा महिषासुरके जन्मका तथा उसके वरदानका यही प्रसङ्ग है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार महिषासुर नामसे प्रसिद्ध वह दानव सम्पूर्ण जगत्पर शासन करने लगा। वर पा जानेके कारण उस पराक्रमी दैत्यको अत्यन्त अभिमान हो गया था। समस्त प्राणी उसके अधीन रहते थे। उसने समुद्रपर्यन्त

सारी पृथ्वीको अपने बाहुबलसे जीतकर स्वयं उसकी रक्षाका भार सँभाल लिया था। उसका एकच्छत्र राज्य हो गया। उस समय उसका कोई भी शत्रु न रहा। उसके सेनाध्यक्षका नाम चिक्षुर था, जो महान् प्रतापी एवं मदसे सदा चूर रहता था। ताम्र नामसे विख्यात राक्षस उसके कोषाध्यक्षका काम करता था। उसके पास दस हजार सैनिक थे। असिलोमा, उदर्क, बिडाल, बाष्कल, त्रिनेत्र और कालबन्धक नामसे प्रसिद्ध सम्पत्तिशाली अन्य बहुत-से नरेश थे। उनके पास प्रचुर सेना थी। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर प्राचीन कालसे ही उनका राज्य था। उन सबने महिषासुरको कर देना स्वीकार कर लिया। जो बलाभिमानी नरेश कर देनेके पक्षमें नहीं थे, वे वीर-धर्मके अनुसार युद्धमें काम आ गये। महाराज ! ब्राह्मणोंने भी महिषासुरकी अधीनता स्वीकार कर ली। यज्ञमें वे उस दानवको भी भाग देने लगे। अखिल भूमण्डलमें महिषासुर एकच्छत्र राज्यका उपभोग करने लगा। वरदानके अभिमानमें चूर होकर उसने स्वर्गपर विजय पानेका निश्चय किया। फिर तो उस दानवराजने एक दूतको इन्द्रके पास जानेकी आज्ञा दे दी। उसने शीघ्र संदेशवाहक दूतको पहले अपने पास बुलाया और उससे कहा—'वीर ! तुम्हारा व्यवहार बहुत शुद्ध है। महाबाहो ! आज तुम्हें यह दूतका काम करना होगा। तुम निर्भीक होकर स्वर्गमें इन्द्रके पास जाओ और उससे मेरा यह संदेश कह दो। कहना—'देवराज इन्द्र ! स्वर्ग छोड़कर जहाँ भी जी चाहे, अभी चले जाओ। अथवा यदि रहना हो तो महामना महिषासुरके सेवक बनकर रह सकते हो। शचीपते ! यदि तुम महाराज महिषासुरके शरणागत हो गये तो वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे। इसलिये अच्छा है कि तुम उनकी शरणमें चले जाओ। तुम्हें यदि यह बात अस्वीकार हो तो शीघ्र युद्ध करनेके लिये हाथमें वज्र उठा लो। बलसूदन ! तुम पहले भी परास्त हो चुके हो। तुम्हारा पुरुषार्थ मुझे विदित है। तुम्हारी शक्ति मुझसे छिपी नहीं है। युद्ध करो अथवा जहाँ तुम्हारा मन माने, वहाँ तत्काल चले जाओ।' आज्ञानुसार दूतने इन्द्रके पास जाकर महिषासुरका संदेश उन्हें सुना दिया।

व्यासजी कहते हैं—महाराज ! उस अवसरपर दूतकी बात सुनकर इन्द्रकी क्रोधाग्नि भभक उठी। फिर सँभलकर मुसकराते हुए उन्होंने अपना वक्तव्य दूतके प्रति व्यक्त करना आरम्भ किया। उन्होंने दूतसे कहा—'अरे प्रचण्ड मूर्ख ! क्या मैं तुझे नहीं जानता, जो तू अभिमानमें चूर होकर यों अनाप-शनाप बक रहा है ? तेरे स्वामीको यह अभिमानका रोग हो गया है, अतः मैं उसकी चिकित्सा अवश्य करूँगा। फिर ऐसी व्यवस्था की जायगी कि उसकी जड़ ही कट जाय। दूत ! तू जा और मैं जो कुछ कहूँ, जाकर अपने स्वामीसे कह दे। सदाचारी पुरुष दूतोंपर कभी हाथ नहीं उठाते। अतः मैं तुझे छोड़ देता हूँ। उससे कहना—अरे भैंसके बच्चे ! यदि तुझे युद्ध करनेकी इच्छा हो तो अभी सामने आ जा। अरे घोड़ोंके दुश्मन ! तेरा बल मुझे ज्ञात है। तेरी जड़ आकृति है। घास खाकर तू रहता है। तेरे सींगोंका मैं सुदृढ़ धनुष बनाऊँगा। तेरे सींगोंमें कुछ बल अवश्य है। मैं जानता हूँ, इसी कारणसे तुझे अभिमान हो गया है। मैं तेरे उन दोनों सींगोंको तोड़कर तेरा बल नष्ट कर दूँगा। नीच महिष ! मेरे द्वारा

तेरे वे सींग काट लिये जायँगे और तेरा वह सारा बल छीन लिया जायगा, जिसके कारण तू पूर्ण अभिमानी बन बैठा है। सींगसे मारनेमें ही तू कुशल है, न कि मोर्चेपर हथियार चलानेमें।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार इन्द्रके कहनेपर वह दूत तुरंत वहाँसे चल दिया। वह मदाभिमानी महिषासुरके पास गया और प्रणाम करके उससे कहने लगा।

दूतने कहा—राजन्! देवराज इन्द्र पूर्ण स्वतन्त्र है। उसके पास देवताओंकी विशाल सेना है। अपनेको वह महान् बलवान् समझता है। आपको तो वह कुछ भी नहीं गिनता। उस मूर्खकी कही हुई बातें मैं किस प्रकार बदलकर आपसे कहूँ; क्योंकि सेवकका कर्तव्य होता है कि वह स्वामीके सामने प्रिय सत्य कहे। महाराज! कल्याणकामी दूतको चाहिये कि स्वामीके मुखपर सत्य और प्रिय बोले। परंतु मैं यदि केवल प्रिय ही बोलता हूँ तो वह असत्य होनेसे आपका कार्य सिद्ध होनेमें बाधा पड़ेगी और कल्याणकामी दूतको कभी कठोर वचन नहीं कहना चाहिये। अतः मैं वैसी बात कह नहीं सकता। प्रभो! ठीक ही है, शत्रुके मुखसे तो विषतुल्य वचन निकलते ही हैं; पर वैसी बातें सेवकके मुखसे कैसे निकल सकती हैं? राजन्! इस समय इन्द्रने जिस प्रकारके घृणित वचन कहे हैं, वैसे वचन मेरी जीभसे कभी नहीं निकल सकते।

व्यासजी कहते हैं—दूतकी बातमें रहस्य छिपा हुआ था। उसे सुनकर महिषासुरका सर्वाङ्ग अत्यन्त क्रोधसे तमतमा उठा। उसकी आँखें लाल हो गयीं। वह दैत्योंको बुलाकर उनसे कहने लगा—'महाभाग दैत्यो! वह देवराज युद्ध करना चाहता है। तुमलोग भलीभाँति बल-प्रयोग करके उस नीच शत्रुको परास्त कर दो। मेरे सामने दूसरा कौन शूरवीर कहला सकता है? इन्द्र-जैसे करोड़ों वीर हों, तब भी कोई परवा नहीं। फिर इस अकेले इन्द्रसे मुझे क्या डर है? आज मैं उसे किसी प्रकार भी जीवित नहीं छोड़ूँगा। जो शान्त रहते हैं, उन्हींके प्रति वह शूरवीर कहलाता है। क्षीणकाय तपस्वीलोग ही उसे अधिक बलवान् मानते हैं। अप्सराएँ उसकी सहायिका हैं। उन्हींका बल पाकर वह नीच सदा तपस्यामें विघ्न उपस्थित करता रहता है। अवसर पाकर प्रहार कर देना उसका स्वभाव बन गया है। वह बड़ा ही विश्वासघाती है। यह वही छली इन्द्र है, जिसने नमुचिको मार डाला था। पहले तो नमुचिके साथ विवाद छिड़ जानेपर भयभीत होकर संधि करनेमें राजी हो गया। उसने तरह-तरहकी प्रतिज्ञाएँ कर लीं। बादमें कपट करके उसे मार डाला। जालसाज विष्णु तो कपट-शास्त्रका पारंगत विद्वान् ही है। जब इच्छा होती है, नाना प्रकारके रूप धारण कर लेता है। बल भी है और दम्भ करनेकी सारी कलाएँ भी उसे ज्ञात हैं। दानवो! जिसने सूअरका रूप धारण करके हिरण्याक्षको तथा नृसिंहका वेष बनाकर हिरण्यकशिपुको मार डाला, उस विष्णुकी भी मैं अधीनता नहीं स्वीकार कर सकता। मुझे तो विश्वास ही नहीं होता कि देवताओंमें भी कहीं कोई है, जो मेरे सामने ठहर सके। विष्णु अथवा महान् बलशाली इन्द्र मेरा क्या कर सकेंगे? मैं समराङ्गणमें खड़ा हो जाऊँगा तब शंकर भी मेरा सामना करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे। इन्द्रको हराकर स्वर्ग छीन लूँगा। वरुण, यमराज, कुबेर,

अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य—सभी मुझसे परास्त हो जायँगे। अब हम सब दानव ही यज्ञमें भाग पायेंगे। हमें सोम-रस पीनेका अधिकार प्राप्त हो जायगा। देवताओंके समाजको कुचलकर मैं दानवोंके साथ सुखपूर्वक विचरूँगा। दानवो! मुझे वर मिल चुका है। अतएव देवताओंसे मैं बिलकुल नहीं डरता। पुरुषमात्र मुझे मारनेमें असमर्थ हैं, फिर स्त्री बेचारी क्या कर सकेगी? शीघ्रगामी दूतो! तुम्हारा परम कर्तव्य है, पाताल एवं पर्वत आदि विभिन्न स्थानोंसे प्रधान-प्रधान दानवोंको बुला लाओ और उन्हें मेरी सेनाके अध्यक्ष बना दो। दानवो! सम्पूर्ण देवताओंको जीतनेके लिये अकेला मैं ही पर्याप्त हूँ; फिर भी मेरा गौरव बढ़ जाय—एतदर्थ इस देवासुर-संग्राममें निमन्त्रण देकर आप सब लोगोंको सम्मिलित करता हूँ। निश्चय ही मैं सींगों और खुरोंसे देवताओंके प्राण हर लूँगा। वरदानके प्रभावसे मुझे देवताओंका रत्तीभर भी भय नहीं है। देवताओं, दानवों और मानवोंसे अवध्य होनेका वर मुझे प्राप्त है। अतएव आज आपलोग स्वर्गलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये तैयार हो जायँ। दैत्यो! स्वर्गपर अधिकार प्राप्त करके मैं नन्दनवनमें विहार करूँगा। मेरे इस उद्योगसे तुम्हें भी पारिजातके फूल सूँघनेको मिलेंगे। देवाङ्गनाएँ तुम्हारी सेवा करेंगी। कामधेनु गौका दूध पीनेको मिलेगा। अमृत पीकर तुमलोग आनन्दका अनुभव करोगे। दिव्य गन्धर्व नाच और गाकर तुम्हारे चित्तको आह्लादित करेंगे। उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा और विप्रचित्ति प्रभृति अप्सराएँ नाचने एवं गानेमें परम प्रवीण हैं। वे अनेक प्रकारकी मदिराओंका सेवन करके तुम सब लोगोंके चित्तको अत्यन्त प्रसन्न करेंगी; अतः देवताओंके साथ संग्राम करनेके लिये स्वर्गलोकमें चलना सबको सम्मत हो तो आज ही सभी तैयार हो जायँ। पहले माङ्गलिक कृत्य कर लेने चाहिये। सबकी सुरक्षाके लिये अपने परम गुरु मुनिवर शुक्राचार्यजीको बुलाकर भलीभाँति उनका स्वागत करें और उन्हें यज्ञमें नियुक्त कर दें।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! महिषासुरकी बुद्धि सदा पापकर्ममें रत रहती थी। दैत्योंको उपर्युक्त आदेश देकर वह तुरंत अपने महलमें चला गया। उस समय उसके मुखपर प्रसन्नताके चिह्न झलक रहे थे। (अध्याय १—३)

☆

## महिषासुरका सामना करनेके विषयमें इन्द्रका देवताओंसे तथा गुरु बृहस्पतिजीसे परामर्श एवं बृहस्पतिजीका इन्द्रके प्रति उपदेश, इन्द्रका भगवान् ब्रह्मा, शंकर तथा विष्णुके पास जाना और इन्द्रादि देवताओंका महिषासुर, बिडाल और ताम्रके साथ युद्ध

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर दूतके चले जानेपर देवराज इन्द्रने भी यमराज, पवनदेव, कुबेर, वरुण आदि देवताओंको बुलाकर उनसे कहा—''महिषासुर नामसे प्रसिद्ध महान् प्रतापी दानव इस समय दैत्योंका राजा है। उसके पिताका नाम रम्भ था। वर पा जानेसे वह सदा अभिमानमें चूर रहता है। उसे सैकड़ों प्रकारकी माया ज्ञात है। देवताओ! आज उसका दूत मेरे

पास आया था। उस लोभी महिषासुरने स्वर्गको छीननेकी इच्छासे दूतको यहाँ भेजा था। उस दूतने मुझसे ये बातें कही हैं—'शक्र ! तुम देवसदन छोड़ दो। वासव ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, तुम्हें चले जाना चाहिये। अथवा महिषासुर नामक दानवराज बड़े विशिष्ट व्यक्ति हैं, उनकी सेवा करना स्वीकार कर लो। वे बड़े दयालु नरेश हैं। तुम्हारे भरण-पोषणकी समुचित व्यवस्था कर देंगे। जो उनकी परिचर्यामें लगे रहते हैं, उन सेवकोंपर वे कभी क्रोध नहीं करते। देवेश ! यदि ये बातें स्वीकार न हों तो स्वयं युद्ध करनेके लिये सेनाकी तैयारीमें लग जाओ। मेरे वहाँ जानेपर दानवराज महिषासुर तुरंत तुमपर चढ़ाई कर देंगे।''

''सुरवरो ! महिषासुर महान् नीच प्रकृतिका दानव है। उसका दूत मुझसे उपर्युक्त बातें कहकर चला गया है। अतएव हमलोगोंको अब क्या करना चाहिये, इस विषयपर आपलोग विचार करें। देवताओ ! बलवान् पुरुषको चाहिये कि कभी किसी दुर्बल शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। विशेषकर जो अपने बलका अभिमान रखते हों, उन बलशाली पुरुषोंको तो सदा ही उद्योगी बने रहना चाहिये, बुद्धि और बलके अनुसार निरन्तर यत्नमें लगे रहना चाहिये। हार और जीत तो प्रारब्धके अधीन है। उसको कोई टाल नहीं सकता। इस समय उससे मैत्री कर लेना भी ठीक नहीं; क्योंकि महिषासुर दुष्ट है। उसके मित्र बन जानेपर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। आपलोग उत्तम विचारशील हैं, अतः इस विषयपर बार-बार विचार करें। अकस्मात् अभी उसपर चढ़ाई कर दी जाय—यह भी ठीक नहीं। सुगमतासे प्रवेश करनेमें कुशल शीघ्रगामी गुप्तचर पहले वहाँ भेज दिये जायँ। गुप्तचर ऐसे होने चाहिये, जो शत्रुके अभिप्रायको पूरा-पूरा समझ सकें, किसीके साथ अधिक प्रेम न रखें, किसी प्रलोभनमें न पड़ें और सत्यवादी हों। यथार्थरूपसे शत्रुकी सेनाकी संख्या तथा उसका सारा रहस्य जानकर फिर चढ़ाई करना समुचित होगा। उसकी सेनामें कितने कैसे वीर हैं, गुप्तचर उनकी संख्या आदिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके शीघ्रतापूर्वक लौट आयें। उनके द्वारा महिषासुर तथा उसकी सेनाके बलाबलको जान लेनेके पश्चात् हमलोग तुरंत धावा बोलने या शक्ति-संग्रह करनेके प्रबन्धमें लग जायँगे। बुद्धिमान् पुरुषको सदा विचार करके ही काम करना चाहिये। सहसा किये हुए कार्यसे सर्वथा दुःखी होनेकी सम्भावना बनी रहती है। अतएव पण्डितजन भलीभाँति सोच-समझकर सुखप्रद कर्ममें ही हाथ डाला करते हैं। अभी दानवोंके साथ युद्ध ठान दिया जाय, यह सर्वथा अनुचित जान पड़ता है। यों करना तो वैसा ही होगा, जैसा बिना जाने हुए औषध सेवन करना; ऐसे कार्यसे तो सर्वथा उलटा फल सामने आ सकता है।''

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! उपस्थित देवताओंके साथ यों बातचीत करके शत्रुका अभिप्राय जाननेके लिये देवराज इन्द्रने कार्यकुशल निपुण गुप्तचरको जानेकी आज्ञा दे दी। वह दूत तुरंत चला गया और सारे भेद जानकर इन्द्रके पास लौट आया। उसने महिषासुरकी सम्पूर्ण सेनाके बलाबलकी सूचना देवराजको दे दी। दानवके सैनिक उद्योगकी जानकारी प्राप्त होनेपर इन्द्र अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने तुरंत देवताओंको आज्ञा दी, देवता

गये और मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरोधा बृहस्पतिजीको बुला लाये। उनके साथ परामर्श होने लगा। अङ्गिरानन्दन बृहस्पतिजी जब उत्तम आसनपर बैठ गये, तब इन्द्रने उनसे कहा।

इन्द्र बोले—विद्वन्! आप देवताओंके गुरु हैं। इस अवसरपर हमें क्या करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करें। आप सर्वज्ञ पुरुष हैं। इस कठिन परिस्थितिमें हमें केवल आपका ही अवलम्ब है। आज महिषासुर नामक दानव बहुत-से दैत्योंको साथ लेकर युद्ध करनेके लिये आ रहा है। उसमें अथाह बल है। वह अभिमानमें मत्त रहता है। आप मन्त्रज्ञ पुरुष हैं। इस अवसरपर कोई ऐसा कार्य करें, जिससे उसकी शक्ति कुण्ठित हो जाय। जैसे दानवोंके पक्षमें शुक्राचार्य हैं, वैसे ही हमारे पक्षके विघ्न शान्त करनेवाले आप हैं। आप सर्वदा श्रेष्ठ सम्मति दिया करते हैं।

व्यासजी कहते हैं—देवराज इन्द्रकी बात सुनकर बृहस्पतिजी उनसे कहने लगे। मनमें खूब सोच-समझकर किसी भी कार्यमें तत्पर होना उनका स्वाभाविक गुण था।

बृहस्पतिजी बोले—देवराज! शान्त रहो। इस समय धैर्य रखना परम आवश्यक है। दुःखकी घड़ी सामने आनेपर तुरंत धैर्य नहीं छोड़ देना चाहिये। देवेन्द्र! हार और जीत तो सदा ही दैवपर निर्भर है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषका कर्तव्य है कि सदा ही धैर्यका आश्रय लेकर अपने स्थानसे विचलित न हो। शतक्रतो! होनी होकर ही रहती है—इस बातपर पूरी आस्था रखनी चाहिये। हाँ, मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार उद्यम करनेमें सर्वथा तत्पर रहे। वीतराग मुनिगण भी तो मुक्ति पानेके लिये निरन्तर उद्यमशील रहते हैं। इसलिये निर्धारित नीतिके अनुसार सदा ही कार्यमें संलग्न रहना परम आवश्यक है। सुख मिले अथवा न मिले—इस विषयमें चिन्ताकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि सुख-दुःख तो दैवपर ही निर्भर है। कभी-कभी बिना पुरुषार्थ किये भी कार्यमें सफलता मिल जाती है, किंतु इस बातको लक्ष्य करके अंधे और पङ्गुकी भाँतिं अकर्मण्य होकर पड़े रहना उचित नहीं। हाँ, यदि पुरुषार्थ करनेपर भी सिद्धि न मिल सके तो इसमें वह बिलकुल निर्दोष है; क्योंकि प्राणी दैवका अनुशासन भङ्ग नहीं कर सकता। देवराज! सेना, मन्त्रि-मण्डल, मन्त्र, रथ और आयुध—ये केवल साधनमात्र हैं। इनके द्वारा कार्य सिद्ध हो ही जाय, यह निश्चित नहीं है। कार्यसिद्धिमें दैवकी सत्ता प्रधान है। कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि बलवान्‌को अनेकों कष्ट भोगने पड़ते हैं और निर्बल सुख भोगता है। बेचारा बुद्धिमान् बिना कुछ खाये-पीये सो जाता है और मूर्ख अनेकों पक्वान्न उड़ाता है। कापुरुषके हाथमें विजयश्री चली जाती है और शूरवीर पुरुष हार

जाते हैं। देवराज ! प्राणीजगत्पर दैवका पूर्ण शासन है। अतः इसमें किसी भी परिस्थितिके सामने आनेपर चिन्ता करना कदापि अभीष्ट नहीं है। हाँ, उद्यमसे कभी भी चूकना नहीं चाहिये। दुःख आनेपर अधिक-से-अधिक दुःखकी ओर सुखके समय सुखके चरम स्थानकी ओर दृष्टि दौड़ानी चाहिये।

हर्ष और शोक शत्रुतुल्य हैं। इन्हें अपने आत्माको न सौंपे। विवेकी पुरुषोंको चाहिये कि इनके उपस्थित होनेपर धैर्यका ही अनुसरण करें। अधीर हो जानेपर दुःखका जैसा भयंकर रूप सामने दिखायी पड़ता है, वैसा धैर्य धारण करनेपर नहीं दीखता। परंतु दुःख और सुखके सामने आनेपर सहनशील बने रहना अवश्य ही दुर्लभ है। जो पुरुष हर्ष और शोककी अवस्थामें अपनी सद्बुद्धिसे निश्चय करके उनके प्रभावसे प्रभावित नहीं होता, उसके लिये कैसा सुख और कैसा दुःख। वैसी परिस्थितिमें वह यह सोचे कि 'मैं निर्गुण हूँ', मेरा कभी नाश नहीं हो सकता। मैं इन चौबीस गुणोंसे पृथक् हूँ। फिर मुझे दुःख और सुखसे क्या प्रयोजन ? भूख और प्यासका प्राणसे, शोक और मोहका मनसे तथा जरा और मृत्युका शरीरसे सम्बन्ध है। मैं इन छहों ऊर्मियोंसे रहित कल्याणस्वरूप हूँ। शोक और मोह—ये शरीरके गुण हैं। मैं इनकी चिन्तामें क्यों उलझूँ। मैं शरीर नहीं हूँ और न मेरा इससे कोई स्थायी सम्बन्ध ही है। मेरा स्वरूप अखण्ड आनन्दमय है। प्रकृति और विकृति मेरे इस आनन्दमय स्वरूपसे पृथक् हैं। फिर मेरा कभी भी दुःखसे क्या सम्बन्ध है।' देवराज ! तुम सच्चे मनसे इस रहस्यको भलीभाँति समझकर ममतारहित हो जाओ। शतक्रतो ! तुम्हारे दुःखके अभावका सर्वप्रथम उपाय यही है। ममता ही परम दुःख है और निर्ममत्व—ममताका अभाव हो जाना परम सुखका साधन है। शचीपते ! कोई सुखी होना चाहे तो संतोषका आश्रय ले। संतोषके अतिरिक्त सुखका स्थान और कोई नहीं है।* अथवा देवराज ! यदि तुम्हारे पास ममता दूर करनेवाले ज्ञानका नितान्त अभाव हो तो प्रारब्धके विषयमें विवेकका आश्रय लेना परम आवश्यक है। प्रारब्ध कर्मोंका अभाव बिना भोगे नहीं हो सकता— यह स्पष्ट है। आर्य ! सम्पूर्ण देवता तुम्हारे सहायक हैं। तुम स्वयं भी बुद्धिमान् हो। फिर भी जो होनी है, वह होकर ही रहेगी। तुम उसे टाल नहीं सकते। ऐसी स्थितिमें सुख और दुःखकी चिन्तामें नहीं पड़ना चाहिये। महाभाग ! सुख और दुःख—ये दोनों क्रमशः पुण्य एवं पापके क्षयके सूचक हैं। अतएव विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि सुखके अभावमें भी सर्वथा आनन्दका ही अनुभव करें। अतएव महाराज ! इस अवसरपर सुयोग्य मन्त्रियोंसे परामर्श लेकर विधिपूर्वक यत्न करनेमें कटिबद्ध हो जाओ। यत्न करनेपर भी, जो होनहार होगा, वह तो सामने आयेगा ही।

व्यासजी कहते हैं—देवगुरु बृहस्पतिका कथन सुनकर इन्द्रने उनसे पुनः कहा—'मैं महिषासुरको मारनेके लिये युद्धकी तैयारी अवश्य करूँगा; क्योंकि निरुद्यम हो जानेपर राज्य, सुख और यश—इनका मिलना असम्भव

* ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम्। संतोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते॥ (५।४।४६-४७)

है। जिनमें कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं होती, वे ही निरुद्यमताके पक्षका समर्थन किया करते हैं, उद्यमशील पुरुष कभी ऐसा नहीं करते। संन्यासियोंके लिये ज्ञान और ब्राह्मणोंके लिये संतोष भूषण है; किंतु जिन्हें ऐश्वर्यकी अभिलाषा है, उनके लिये तो उद्यमशील होकर शत्रुका नाश करना ही भूषण है। मुनिवर ! उद्यमके प्रभावसे ही मेरे द्वारा वृत्रासुर और नमुचि कालके ग्रास बनाये गये। इसी प्रकार मैं इस महिषासुरको भी मार डालूँगा। आप देवगुरु बृहस्पतिका तथा श्रेष्ठ आयुध वज्रका बल मुझे सुलभ है। भगवान् विष्णु तथा उमापति शंकरजी अवश्य मेरी सहायता करेंगे। मुनिवर ! सम्मान प्रदान करना और दूसरेका कार्य साधना आपका स्वभाव ही है। मैं सैनिकोंको लेकर महिषासुरपर चढ़ाई करनेके लिये बिलकुल तैयार हूँ। आप मेरे कल्याणके लिये रक्षोघ्न मन्त्रका जप करनेकी कृपा करें।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार देवराज इन्द्रके कहनेपर बृहस्पतिजी हँसकर उनसे कहने लगे।

बृहस्पतिजी बोले—देवराज ! इस अवसरपर मैं न तो तुम्हें जानेकी प्रेरणा ही कर सकता हूँ और न रोक ही सकता हूँ; क्योंकि युद्ध करनेवालेकी हार और जीत बिलकुल अनिश्चित रहती है। शचीपते ! होनहारके विषयमें तुम्हारा किंचिन्मात्र दोष नहीं है। सुख अथवा दुःख पहलेसे ही निश्चित हो चुके हैं; अतः इनका सामने आ जाना अनिवार्य है। तथापि बुद्धिमान् पुरुषोंको निरन्तर यत्नशील बने रहना चाहिये। कार्य सिद्ध होना या न होना तो सदा दैवके अधीन है।

व्यासजी कहते हैं—शचीपति इन्द्र बृहस्पतिजीके सारगर्भित सत्य वचन सुनकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पितामह ! आप सम्पूर्ण देवताओंके अध्यक्ष हैं। इस समय महिषासुर नामक दैत्य स्वर्गपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये अपने सैनिकबलका विपुल संग्रह करनेके लिये अथक प्रयास कर रहा है। अन्य भी जितने दानव हैं, सब-के-सब महिषासुरकी सेनामें सम्मिलित हो गये हैं। वे सभी युद्धाभिलाषी, महान् पराक्रमी एवं युद्धकी कलाके विशेषज्ञ हैं। महाप्राज्ञ ! महिषासुरके भयसे अत्यन्त घबराकर अब मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आपसे कोई भी बात छिपी नहीं है; अतः आप मेरी सहायता करनेकी कृपा कीजिये।'

ब्रह्माजीने कहा—इस समय हम सब लोग कैलास पर्वतपर चलें। भगवान् शंकर और अपार बलशाली श्रीविष्णुको अगुआ बनाकर युद्धका कार्यक्रम निश्चित किया जाय। सभी देवताओंके साथ बैठकर देश और कालके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करके युद्ध करना समुचित होगा। मूर्खतावश बलाबलका विचार किये बिना ही सहसा कार्य करनेवाले मनुष्यका पतन हो जाता है।

व्यासजी कहते हैं—देवराज इन्द्रने ब्रह्माजीकी बात सुनकर उन्हें अपना अग्रणी बनाया और लोकपालोंको साथ लेकर वे कैलासके लिये चल पड़े। वहाँ पहुँचकर वैदिक मन्त्रोंद्वारा वे भगवान् महेश्वरकी स्तुति करने लगे। शंकरजीके प्रसन्न हो जानेपर उन्हें अपना अग्रगामी बनाकर सबने विष्णुलोकके लिये प्रस्थान किया। वैकुण्ठमें पहुँचकर स्तुति

करनेके पश्चात् देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिसे अपने आनेका उद्देश्य बतलाया और कहा कि 'वर पा जानेके कारण महिषासुरमें असीम अभिमान आ गया है। उसके महान् भयसे मैं व्याकुल हो रहा हूँ।' देवराज इन्द्रके भयकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने उपस्थित ब्रह्मादि देवताओंसे कहा कि 'हमलोगोंका महिषासुरके साथ दुर्जय संग्राम हो और उसमें वह दानव काम आ जाय।'

व्यासजी कहते हैं—ऐसा कार्यक्रम निश्चित करके ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर प्रभृति सभी प्रधान देवता अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर युद्धके लिये चल पड़े। ब्रह्माजी हंसपर बैठे, भगवान् विष्णुके वाहन गरुड़ हुए, शंकरजी वृषभपर सवार हुए, इन्द्रने ऐरावत हाथीकी पीठपर आसन जमाया। स्वामिकार्तिकेय मोरपर चढ़े और यमराजने भैंसेकी सवारी की। अपने सैनिकबलको सँभालकर ज्यों ही ये उपर्युक्त देवता आगे बढ़े कि तुरंत महिषासुरके द्वारा सुरक्षित मदोन्मत्त दानवी सेना सामने मिल गयी। फिर तो वहीं देवताओं और दानवोंकी सेनामें भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। भाँति-भाँतिके भयंकर अस्त्र-शस्त्र लेकर वे परस्पर एक-दूसरेको मारने-काटने लगे। महिषासुरके सेनाध्यक्ष महाबली चिक्षुरने हाथीपर बैठकर पाँच बाणोंसे इन्द्रको मारा। देवराज भी तुरंत उसके प्रतीकारमें लग गये। उन्होंने अपने बाणोंसे चिक्षुरके बाण काट डाले। साथ ही अर्धचन्द्र-संज्ञक बाणसे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी। उस बाणसे व्यथित हो जानेके कारण महिषासुरका सेनानायक चिक्षुर हाथीपर बैठे ही मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर इन्द्रने हाथीकी सूँडपर वज्रसे प्रहार किया। वज्र लगते ही हाथीकी सूँड कट गयी और उसके प्राण प्रयाण कर गये। उसकी सेनामें भगदड़ मच गयी। यह देखकर दानवराज महिषासुर क्रोधसे तमतमा उठा। उसने विडाल नामक पराक्रमी दानवसे कहा—'महाबाहो! तुम बड़े शूरवीर हो। इन्द्रको अपने बलका अभिमान हो गया है। तुम जाओ और उसे परास्त कर दो। वरुण प्रभृति अन्य भी जितने देवता हैं, उन्हें मारकर मेरे पास लौट आना।'

व्यासजी कहते हैं—विडाल असीम बलशाली वीर था। महिषासुरकी बात सुनकर वह मतवाले हाथीपर सवार हुआ और इन्द्रके साथ युद्ध करने चल दिया। उसे आते हुए देखकर इन्द्रने विषधर सर्पकी तुलना करनेवाले बाणोंसे विडालपर प्रहार करना आरम्भ किया। विडालने तुरंत अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा इन्द्रके बाण काट डाले। साथ ही पचास बाणोंसे इन्द्रको चोट पहुँचायी। जिस प्रकार विडालके प्रयाससे देवराजके बाण कट गये थे, वैसे ही उन्होंने भी उसके बाण काट गिराये। इसके बाद इन्द्रने अपने सर्पतुल्य तीखे बाणोंसे क्रोधपूर्वक विडालको मारना आरम्भ किया। उस दानवने इस बार भी अपने धनुषसे छूटे बाणोंसे देवराजके बाणोंको काट दिया। तब इन्द्रने विडालके हाथीकी सूँडपर गदासे प्रहार किया। गदा लगते ही सूँड धड़से अलग हो गया। फिर तो वह हाथी बार-बार चिग्घाड़ने लगा और पीछे मुँड़कर दानवी सेनाको कुचलने लगा। अब सैनिक भयसे घबरा उठे। हाथी युद्धभूमिसे भाग आया—यह देखकर विडाल तुरंत एक सुन्दर रथपर बैठा और समराङ्गणमें देवताओंके सामने

डट गया। इन्द्रने देखा, विडाल रथपर सवार होकर फिर आ धमका है। तब वे विषैले अपने तीखे तीर उसपर छोड़ने लगे। महाबली विडालने भी लगातार बाणवर्षा आरम्भ कर दी। यों इन्द्र और विडाल—दोनोंका महान् भयंकर युद्ध होने लगा। वे दोनों अपने-अपने पक्षकी विजय चाहते थे। उस समय क्रोधके कारण इन्द्रकी इन्द्रियाँ विचलित हो उठी थीं। उन्होंने विडालको विशेष बलवान् देखकर जयन्तको अपना अग्रणी बनाया और वे दानवके साथ लड़ने लगे। जयन्तने अपने चमकीले पाँच बाण धनुषपर चढ़ाकर बलपूर्वक खींचे और उनसे मतवाले विडालकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। बाणोंके लगते ही विडाल गिरने लगा। इतनेमें उसके सारथिने उसे रथपर सँभाल लिया और तुरंत रथ लेकर वह युद्ध-भूमिसे बाहर निकल गया। विडालके मूर्च्छित होकर समराङ्गणसे चले जानेपर देवसेनामें विजयघोषणा आरम्भ हो गयी। विजयके धौंसे बजने लगे। देवताओंके मुखसे निकली हुई विजयघोषणा सुनकर महिषासुरका क्रोध पुनः उभड़ आया। उसी क्षण शत्रुके अभिमानको चूर्ण करनेवाले ताम्र नामक दानवको उसने भेजा। आज्ञा पाकर ताम्र बहुत-से सैनिकोंके साथ समराङ्गणमें आया और इस प्रकार बाण बरसाने लगा, मानो मेघ समुद्रमें जल उँड़ेल रहा हो। उस समय वरुण पाश लेकर तथा यमराज दण्ड हाथमें लिये हुए भैंसेपर सवार हो दानवी सेनापर टूट पड़े। फिर तो देवता और दानव—दोनोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। यमराजके द्वारा फेंके हुए दण्डसे महाबाहु ताम्र घायल हो गया। फिर भी युद्धभूमिसे उसके पैर एक कदम भी पीछे नहीं हटे! समराङ्गणमें डटे रहकर ही उसने वेगपूर्वक धनुष खींचा और तीखे बाणोंका प्रयोग करके इन्द्रादि देवताओंको मारना आरम्भ कर दिया। देवताओंको भी असीम क्रोध हो आया था। वे अपने दिव्य बाणोंसे दानवोंको मारने और 'ठहरो-ठहरो' कहकर गर्जने लगे। उनकी मार पड़नेपर ताम्र युद्धभूमिमें ही मूर्च्छित हो गया। दानव-सैनिक बड़े जोरसे हाहाकार मचाने लगे! भयसे उन सबका हृदय थर्रा उठा था। (अध्याय ४-५)

☆

## महिषासुर आदिके साथ भगवान् विष्णु और शङ्करका भीषण युद्ध, भगवान् विष्णु, शङ्कर और ब्रह्माका स्वधाम लौट जाना; इन्द्रादि देवताओंकी पराजय और इन्द्रका ब्रह्माजी तथा शिवजीको साथ लेकर वैकुण्ठमें भगवान्‌के समीप गमन

व्यासजी कहते हैं—ताम्र नामक दैत्यके मूर्च्छित हो जानेपर महिषासुरने कुपित होकर विशाल गदा उठायी और वह स्वयं देवताओंपर टूट पड़ा। 'देवताओ! ठहरो, तुम सब लोगोंको आज मैं गदासे चूर्ण किये देता हूँ। तुम सदासे ही निर्बल हो। जहाँ कहीं भी इच्छानुसार बलि खा लेना तुम्हारा स्वाभाविक काम है।' यों कहकर अभिमानसे चूर रहनेवाला महिषासुर इन्द्रके पास पहुँच गया। इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे थे। महाबाहु महिषासुरने उनके कंधेपर गदासे चोट पहुँचायी। इन्द्र भी सावधान थे, उन्होंने अपने भयंकर वज्रसे दानवकी गदा तुरंत काट डाली।

फिर महिषासुरको मारनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे वे आगे बढ़े। महिषासुर भी साधारण क्रोधी नहीं था, उसने चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली। महान् पराक्रमी इन्द्र सामने पहुँच चुके थे। आगे बढ़कर उस दैत्यने उनपर तलवार चलाना आरम्भ कर दिया। फिर तो, दोनोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाला रोमाञ्चकारी युद्ध ठन गया। तरह-तरहके आयुधोंका प्रयोग करके वे लड़ रहे थे। उस समय शम्बरासुरने एक ऐसी मायाका आविष्कार किया था, जिसमें सम्पूर्ण जगत्को नष्ट कर देनेकी शक्ति थी तथा मुनि भी जिसके चक्करमें पड़ जाते थे। महिषासुरने शीघ्रतापूर्वक उसी मायाका प्रयोग किया। उस विचित्र मायाके प्रभावसे वहाँ एक ही साथ करोड़ों महिषासुर प्रकट हो गये। रूप और पराक्रममें सभी समान दिखायी देते थे। सबकी भुजाएँ आयुधोंसे अलंकृत थीं और वे देवताओंकी सेनापर प्रहार कर रहे थे। ऐसी स्थितिमें दैत्यद्वारा रची गयी उस मोहकारी मायाकी भीषण रचना देखकर इन्द्रके मनमें भयके कारण अत्यन्त घबराहट उत्पन्न हो गयी। वरुण, कुबेर, यमराज, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा—इन सबके मनमें भी महान् त्रास छा गया। अपनी विचारशक्ति खोकर ये सभी देवता भाग चले।

तब उन्होंने दूर जाकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरका चिन्तन किया। स्मरण करते ही वे देवताओंके पास आ गये। हंस, गरुड़ और बलीवर्दपर वे बैठे हुए थे। देवताओंकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने हाथमें श्रेष्ठ आयुध ले रखे थे। मोह उत्पन्न करनेवाली उस आसुरी मायाको देखकर भगवान् विष्णुने अपना प्रज्वलित सुदर्शनचक्र चलाया। उस चक्रके प्रचण्ड तेजसे मायाकी सारी रचना समाप्त हो गयी। उस समय सृष्टि, स्थिति एवं संहारके अधिष्ठाता प्रधान देवता वहाँ उपस्थित थे। महिषासुरने उन्हें देखकर युद्धकी अभिलाषासे परिघ उठा लिया और शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा। महान् बलशाली महिषासुर, उसका सेनाध्यक्ष चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, असिलोमा, त्रिनेत्र, वाष्कल और अन्धक—ये दानव तथा इनके अतिरिक्त भी बहुत-से दैत्य युद्ध करनेके विचारसे निकल पड़े। सभी कवच पहने हुए थे। भुजाएँ धनुषसे सुशोभित थीं। वे मतवाले होकर रथपर बैठे थे, उन्होंने सम्पूर्ण देवताओंको इस प्रकार घेर लिया, मानो सियार सुकोमल बछड़ोंको घेरकर खड़े हों। तदनन्तर वे समस्त दानव मदान्ध होकर देवताओंपर बाण बरसाने लगे। देवताओंद्वारा भी उसी प्रकारकी बाणवर्षा आरम्भ हो गयी। एक दूसरेको मारनेके लिये सब पर्याप्त प्रयत्न कर रहे थे। तदनन्तर भगवान् विष्णुके तथा शंकरके साथ महिषासुर तथा उसके पक्षके दानवोंका भयंकर युद्ध हुआ और कुछ समय पश्चात् सर्वज्ञ भगवान् विष्णु, शंकर तथा ब्रह्मा अपने-अपने लोकोंको लौट गये।

महाबली इन्द्र हाथमें वज्र लेकर युद्धके मैदानमें डटे थे। वरुण हाथमें शक्ति लेकर युद्धमें देवराजका साथ दे रहे थे। यमराज भी दण्ड लेकर युद्ध करनेमें लगे रहे। फिर कुबेर स्वच्छन्दतापूर्वक युद्धके लिये प्रयत्नशील बन गये। अग्निदेवने शक्ति लेकर युद्धमें सहयोग देना आरम्भ कर दिया। युद्ध करनेके लिये उनके मनमें निश्चित विचार हो गया था। नक्षत्रोंके नायक चन्द्रमा और भगवान् सूर्य एक साथ

पधारे। दोनों एक साथ होकर युद्ध करनेके लिये खड़े हो गये। दैत्यवर महिषासुरको देखकर लड़नेके लिये वे मनमें पक्की धारणा कर चुके थे। इतनेमें दानवी सेना सामने पहुँच गयी। प्रत्येक सैनिक क्रोधमें भरकर बाण बरसानेमें तत्पर था। वे बाण ऐसे जान पड़ते थे, मानो क्रूर सर्प हों। सेनाके बीच वह दानवराज भैंसेके रूपमें उपस्थित था। दोनों दलके सैनिकोंद्वारा भीषण गर्जना आरम्भ हो गयी और देवताओं तथा दानवोंकी सेनामें अत्यन्त भयङ्कर संग्राम मच गया ! उस समय उनके धनुष टंकारने और ताल ठोकनेसे ऐसी आवाज निकल रही थी, मानो मेघ गरज रहे हों। महाबली महिषासुर अभिमानमें चूर था। उसने सींगोंसे पर्वतके शिखरोंको फेंकना आरम्भ कर दिया। उसके फेंके हुए पत्थरोंसे देवता घायल हो उठे। वह दैत्य बड़ा ही अद्भुत प्राणी था। उसके सर्वाङ्गमें क्रोध छाया था। उसने खुरोंके आघातसे तथा पूँछके घुमानेसे बहुत-से देवताओंको मार डाला। तब लड़नेके लिये जितने देवता और गन्धर्व एकत्रित थे, वे सभी अत्यन्त डर गये। महिषासुरके इस पराक्रमको देखकर इन्द्रके पैर भी पीछे पड़ने लगे। वे युद्धभूमिसे निकलकर भाग चले। शचीपति इन्द्रके भाग जानेपर वरुण, कुबेर और यमराज—सभी भयसे घबराकर विचलित हो गये। सम्यक् प्रकारसे विजय मानकर महिषासुर अपने महलके लिये प्रस्थित हो गया।

महिषासुरने इन्द्रके ऐरावत हाथी तथा कामधेनु गौ और उच्चैःश्रवा घोड़ेको अपने अधिकारमें कर लिया। फिर उसके मनमें आया कि सेनाको साथ लेकर मैं इसी क्षण स्वर्गपर चढ़ाई कर दूँ। उस समय देवतालोग भयसे कातर होकर इधर-उधर छिपे थे। देवसदन खाली पड़ा था। महिषासुरने तुरंत वहाँ पहुँचकर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। उसने स्वयं देवराजके दिव्य आसनपर बैठनेकी व्यवस्था कर ली। देवताओंके स्थानोंपर दानवोंके बैठनेका प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार पूरे सौ वर्षोंतक अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करनेके पश्चात् महाभिमानी महिषासुर इन्द्रका पद प्राप्त करनेमें सफल हो गया। उसके इस भीषण प्रयत्नसे सम्पूर्ण देवता स्वर्ग छोड़कर पर्वतकी गुफाओंमें वर्षोंतक भटकते रहे। इस भयानक स्थितिमें उन्हें महान् क्लेश भोगने पड़े। राजन् ! निरन्तर दुःख सहनेसे जब देवताओंका साहस टूट गया, तब वे सब मिलकर पुनः ब्रह्माजीकी शरणमें गये; क्योंकि प्रजाका सारा भार चतुर्मुख ब्रह्माजीपर ही रहता है। उनका रूप राजसिक है। उस समय कमलके आसनपर विराजमान होकर वे वेदका निर्माण कर रहे थे। उन्हींके विग्रहसे प्रकट हुए मरीचि आदि प्रमुख मुनिगण, जो सम्पूर्ण वेदोंके पारगामी एवं शान्तस्वभाव हैं, सेवामें प्रस्तुत थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किंनर, पन्नग और उरग— सब-के-सब उन देवाधिदेव जगद्गुरुकी स्तुतिमें संलग्न थे।

देवता बोले—सम्पूर्ण दुःख दूर करनेवाले पद्मयोनि ब्रह्माजी ! इस समय सभी देवता संग्राममें दानवराज महिषासुरसे परास्त होकर पर्वतकी गुफाओंमें कालक्षेप कर रहे हैं। स्थानच्युत हो जानेके कारण उन्हें महान् कष्ट भोगना पड़ रहा है। हमारी ऐसी दयनीय दशा देखकर भी आप दया नहीं करते—यह कैसी विचित्र बात है। सैकड़ों अपराध करनेपर भी शरणमें आये हुए पुत्रोंको क्या निर्लोभी पिता

त्यागकर उनका अधोगतिमें पड़े रहना स्वीकार कर सकता है ? कदापि नहीं। आज दैत्योंके सताये जानेपर हम समस्त देवता दीनतापूर्वक आपकी शरणमें आये हैं और अब भी आपकी उपेक्षा-दृष्टि हो रही है। इस समय महिषासुर स्वर्ग और भूमण्डलका राज्य भोग रहा है। ब्राह्मणों-द्वारा यज्ञोंमें सर्वोत्तम भाग उसीको मिलता है। देववृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजातके पुष्प उसे सेवनके लिये सुलभ हैं। यहाँतक कि वह नीच समुद्रकी अटूट निधि कामधेनु गौसे भी स्वयं लाभ उठा रहा है। देवेश ! हम कहाँतक वर्णन करें। आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं। महिषासुरका सारा वृत्तान्त आपको विदित है। अतएव प्रभो ! हम सभी आपके चरणोंमें मस्तक झुकाये हैं। विभो ! महिषासुर अवश्य ही महान् नीच है। उसके द्वारा निरन्तर घृणित चेष्टाएँ होती रहती हैं। तरह-तरहके निन्दित कर्मोंमें वह निरत है। जहाँ कहीं भी देवता जाते हैं, वहीं वह उन्हें कष्ट पहुँचाता रहता है। देवेश ! हम सब देवताओंके तो आप ही रक्षक हैं। हमें कल्याणके भागी बनानेकी कृपा करें। आप सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। सबकी सृष्टि आपपर निर्भर है। आप आदिपुरुष एवं मङ्गलमय हैं। आपमें अनन्त तेज निहित हैं। सबको शान्ति प्रदान करना आपका स्वभाव ही है। हम सभी देवता प्रज्वलित दावानल-जैसे संतापसे संतप्त हैं। यदि आप हमारे शरण्य नहीं बनते तो भला, आप-जैसे सर्वसमर्थ प्रभुको छोड़कर हम दूसरे किसकी शरणमें जायँ ?

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करके सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर प्रजापति ब्रह्माजीको प्रणाम करने लगे। उनके मुखपर अत्यन्त उदासी छायी हुई थी। उस समय उन्हें अपार पीड़ाका अनुभव हो रहा था। उन्हें दुःखी देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी मधुर वाणीमें मानो देवताओंको सुख पहुँचाते हुए कहने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देवताओ ! मैं क्या करूँ ? महिषासुरको वरका अभिमान है। उसे कोई स्त्री ही मार सकती है, पुरुष नहीं मार सकते। ऐसी स्थितिमें मैं क्या कर सकता हूँ। अतः देवताओ ! हम सब लोग श्रेष्ठ पर्वत कैलासपर चलें। वहाँ सम्पूर्ण कार्योंके विशेषज्ञ भगवान् शंकर विराजमान हैं। उन्हें अपना अगुआ बनाकर हमलोग उस वैकुण्ठमें चलें, जहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं। उनसे मिलकर देवताओंके कार्यके विषयमें विशेषरूपसे विचार किया जायगा।

इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी हंसपर बैठे और देवताओंको साथ लेकर कैलासकी ओर चल पड़े। ब्रह्माजीके पहुँचनेके पूर्व ही ध्यानद्वारा उनके आगमनकी सूचना भगवान् शंकरको मिल गयी थी। ब्रह्माजी देवताओंके साथ आ रहे हैं—यह जानकर वे अपने भवनसे बाहर निकल आये। दोनों महानुभावोंका साक्षात्कार हुआ। परस्पर प्रणाम और आशीर्वाद होने लगा। सभी देवताओंने शंकरजीके चरणोंमें मस्तक झुकाया। दोनों महानुभाव प्रसन्नतापूर्वक मिले। गिरिजापति भगवान् शंकरने सभी देवताओंको बैठनेके लिये अलग-अलग आसन दिये। देवताओंके आसनोंपर विराजनेके पश्चात् भगवान् शंकर अपने आसनपर बैठे। ब्रह्माजीसे कुशल पूछनेके उपरान्त देवताओंके कैलासपर आनेका कारण पूछा।

भगवान् शंकरने पूछा—ब्रह्माजी ! किस

प्रयोजनसे आपने इन्द्र प्रभृति सम्पूर्ण देवताओंको साथ लेकर यहाँ पधारनेका कष्ट किया है? महाभाग! आप आनेका कारण अवश्य प्रकट करें।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश! स्वर्गमें निवास करनेवाले इन इन्द्रादि समस्त देवताओंको महिषासुर महान् क्लेश पहुँचा रहा है। उसके भयसे डरकर ये बेचारे पर्वतोंकी खोहमें घूम रहे हैं। महिषासुर तथा अन्य भी बहुत-से दैत्य देवताओंसे शत्रुता ठाने हुए हैं। इस समय यज्ञमें उन्हींको भाग मिल रहा है। अतः उनसे पीड़ित होकर ये सभी लोकपाल आपकी शरणमें आये हैं। शम्भो! आपके भवनपर इसी गुरुतर कार्यके लिये मेरे साथ इन देवताओंका आना हुआ है। सुरेश्वर! अब इनके कार्यके विषयमें जो उचित जान पड़े, वैसी ही व्यवस्था करनेकी कृपा करें। क्योंकि भूतभावन! सम्पूर्ण देवताओंके कार्यका भार आपपर है।

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजीके वचन सुनकर भगवान् शंकरका मुखमण्डल मुसकानसे भर गया! अत्यन्त मधुर वाणीमें वे ब्रह्माजीसे कहने लगे।

भगवान् शंकरने कहा—विभो! यह आपकी ही तो करामात है। आपने ही तो इसे वरदान दे रखा है। भला, इससे बढ़कर देवताओंके लिये अनिष्टप्रद कार्य और क्या हो सकता है। आपके वरके प्रभावसे ही महिषासुरमें ऐसी असीम शक्ति आ गयी है और वह सभी देवताओंको भयभीत किये रहता है। भला, कौन ऐसी सुयोग्य स्त्री है, जो अभिमानमें चूर रहनेवाले इस दानवको मार सके। संग्राममें पैर रखनेके योग्य न तो मेरी पत्नी है और न आपकी ही। महाभाग्यवती ये देवियाँ यदि संग्राममें चली भी जायँ तो फिर युद्धमें सफलता किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगी। महाभागा इन्द्राणीको भी युद्धकी कला ज्ञात नहीं है। दूसरी किस स्त्रीमें इतनी शक्ति है, जो इस मदोन्मत्त दुष्ट दानवको मार सके। अतः मेरे मनमें यह विचार उठता है कि हमलोग इसी क्षण भगवान् विष्णुके पास चलें और उनकी स्तुति करके देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उन्हींको बार-बार प्रेरित किया जाय; क्योंकि सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेवाले बुद्धिमानोंमें सर्वप्रथम स्थान उन्हींका है। उनसे मिलकर ही कार्यके सम्बन्धमें विचार करना समुचित होगा। वे किसी प्रपञ्चसे अथवा बुद्धिसे कार्य सिद्ध होनेका साधन प्रस्तुत कर देंगे।

व्यासजी कहते हैं—भगवान् शंकरकी उपर्युक्त बात सुनकर ब्रह्मा प्रभृति सम्पूर्ण प्रधान देवताओंने उसका अनुमोदन किया। तुरंत जानेके लिये सब लोग उठ चले। भगवान् शंकरने भी साथ दिया। अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो वे वैकुण्ठको चल पड़े। उस समय कार्यमें सफलताकी सूचना देनेवाले अनेकों शुभ शकुन उन्होंने देखे। शुभकी सूचना देनेवाला कल्याणमय वायु उत्तम गन्ध फैलाता हुआ बहने लगा। रास्तेमें जाते समय जहाँ-तहाँ पवित्र पक्षी उत्तम बोली बोलते हुए मिले। आकाश निर्मल हो गया। दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। इस प्रकार देवताओंके यात्राकालमें मानो सभी शुभ योग सुलभ हो गये।

(अध्याय ६-७)

☆

# भगवान् विष्णुकी सम्मतिसे देवताओंके द्वारा तेज:प्रदान तथा उस सम्मिलित तेज-समूहसे भगवतीका प्राकट्य, देवताओंके द्वारा देवीको आयुध-आभरणादि-दान और महिषासुरकी आज्ञासे उसके मन्त्रीका देवीके पास जाना

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर सभी देवता शीघ्र वैकुण्ठ पहुँच गये। वैकुण्ठ भगवान् विष्णुका परम प्रिय दिव्य धाम है। वहाँ सम्पूर्ण शोभाओंसे सम्पन्न भगवान्‌का दिव्य भवन है। दिव्य सरोवर उसकी अनुपम शोभा बढ़ा रहे हैं। उस भवनके चारों ओर दिव्य चम्पा, अशोक, कह्लार, पारिजात, बकुल, मालती, तिल, आम और कुरबक आदि पुष्पोंके वृक्ष विराजमान हैं, जिनमें कोकिलाएँ कूज रही हैं, मोर नाच रहे हैं तथा भँवर गुंजार रहे हैं। ऐसे दिव्य उपवनोंद्वारा भवन सुसज्जित है। नन्द और सुनन्द आदि पार्षद भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। उनके द्वारा श्रीहरिकी स्तुति हो रही है। वहाँ अन्य भी बहुत-से विशाल भवन हैं। उनमें सुवर्ण एवं मणियाँ जड़े हुए हैं, चित्रकारियाँ की हुई हैं। वे सुन्दर भवन इतने ऊँचे हैं, मानो आकाशको छू रहे हों। उन महलोंसे भगवान्‌का भव्य भवन बिलकुल सटा हुआ है। वहाँ दिव्य गन्धर्व गा रहे हैं। मनको मुग्ध करनेवाले किंनर मीठे स्वरमें आलाप रहे हैं। अतएव भगवान् विष्णुके भवनकी अनुपम शोभा हो रही है। शान्त स्वभाववाले आदरणीय वेदपाठी मुनिगण सूक्तोंका उच्चारण करके भगवान्‌की स्तुतिमें संलग्न हैं। इससे भगवान् विष्णुका वह दिव्य भवन महान् शोभा पा रहा है। उस समय जय और विजय नामक दो द्वारपाल हाथमें सोनेकी छड़ी लेकर पहरा दे रहे थे। विष्णुभवन-पर पहुँचते ही पहले वे ही मिले। तब देवताओंने उनसे कहा—'तुम दोनोंमेंसे कोई भी एक व्यक्ति भगवान् विष्णुके पास जाकर उन्हें सूचित कर दे कि आपके दर्शनकी लालसासे ब्रह्मा और रुद्र प्रभृति देवता आकर द्वारपर ठहरे हैं।'

व्यासजी कहते हैं—वहाँ पधारे हुए देवताओंकी बात सुनकर विजयने उन्हें प्रणाम किया और तुरंत भगवान् विष्णुके पास जाकर वे नमस्कारपूर्वक कहने लगे।

विजय बोले—दैत्योंका दमन करनेवाले देवाधिदेव प्रभो! इस समय सम्पूर्ण देवता आकर द्वारपर ठहरे हुए हैं! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यमराज प्रभृति समस्त देवता आपके दर्शन करनेके लिये विशेष उत्सुक हैं। वे सब वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करके प्रभुकी स्तुति कर रहे हैं।

व्यासजी कहते हैं—विजयकी बात सुनकर रमापति भगवान् विष्णु उसी क्षण अपने भवनसे बाहर निकले। बड़े उत्साहके साथ उन्होंने

देवताओंसे भेंट की। उस समय देवता थके-माँदे द्वारपर खड़े थे। उनके मनमें संतापकी तरङ्गें उठ रही थीं! भगवान् विष्णुने प्रेमकी सरस दृष्टिसे देखकर उन्हें प्रसन्न किया। तब दैत्योंको मारनेवाले वेदवर्णित देवाधिदेव भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण देवताओंने प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवेश्वर! जगत्प्रभो! सृष्टि, स्थिति और संहारकी लीला करनेवाले दयासिन्धो! महाराज! आप हम शरणागतोंकी रक्षा करनेकी कृपा करें।

भगवान् विष्णुने कहा—सभी देवता आसनोंपर बैठ जायँ और अपनी कुशल बतलायें। सबके एक साथ यहाँ पधारनेका क्या प्रयोजन है? आपलोग इतने चिन्तित क्यों हैं? क्यों सबके मुखोंपर उदासी छायी हुई है? ब्रह्मा और शंकरके साथ रहनेपर भी आपकी यह दयनीय स्थिति कैसे हो रही है? अब शीघ्र अपना कार्य बतलाइये।

देवता बोले—महाराज! दुराचारी महिषासुर हमें महान् कष्ट पहुँचा रहा है। उसपर किसीका वश नहीं चलता। वह पापी बड़ा ही दुष्ट है। वर पा जानेके कारण अत्यन्त अभिमानमें भर गया है। यज्ञमें ब्राह्मणोंद्वारा दिये हुए भाग भी अब वही खा लेता है। हम सभी देवता अत्यन्त आतुर एवं भयभीत होकर पर्वतोंकी खोहोंमें भटकते फिरते हैं। मधुसूदन! ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे यह दानव महान् अजेय बन गया है। अतएव इस कामको अत्यन्त कठिन जानकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दानवोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्ण! देवताओंका उद्धार करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं। कोई भी दानवी माया आपसे छिपी नहीं है। अतः महिषासुरको मारनेका आप ही प्रबन्ध कीजिये। ब्रह्माजीने इसे वर दे दिया है—'पुरुषमात्रसे तुम अवध्य रहोगे।' यदि किसी स्त्रीके द्वारा उसके वधकी कल्पना की जाय तो यह सर्वथा असम्भव प्रतीत हो रहा है; क्योंकि किस स्त्रीमें ऐसी शक्ति है, जो समराङ्गणमें उस दुष्टको मार सके। वह महिषासुर नीच तो था ही, वरदानके प्रभावसे उसकी उच्छृङ्खलता और भी बढ़ गयी है। भगवती पार्वती, लक्ष्मी, शची अथवा शारदा—इनमें कौन हैं, जो इस दुष्टको मारनेमें समर्थ हो सकें? भूमण्डलका भार वहन करनेवाले भगवन्! भक्तोंपर दया करना आपका स्वभाव ही है। किस प्रकार इस दैत्यका निधन होगा—इस विषयमें भलीभाँति विचार करके देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर भगवान् विष्णुका मुख-मण्डल मानो मुसकानसे भर गया। वे उनसे कहने लगे—'पूर्व समयकी बात है, हमने भी महिषासुरसे युद्ध किया था; किन्तु उसकी मृत्यु नहीं हो सकी। इस अवसरपर यदि सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे कोई अत्यन्त सुन्दरी एवं सुयोग्य देवी प्रकट हो जाय तो वही समराङ्गणमें बलपूर्वक उसे मार सकती है। महिषासुर सैकड़ों प्रकारकी मायाओंका पूर्ण जानकार है। वर पा जानेसे उसे असीम अभिमान हो गया है। यह बिलकुल निश्चित है कि यदि हमलोगोंकी समवेत शक्तिके अंशसे कोई देवी प्रकट हुई तो वह उसे मारनेमें सफलता प्राप्त कर सकेगी। तुम सब लोग अपनी शक्तियोंसे अनुरोध करो। साथ ही हमारी

देवियाँ भी प्रार्थनामें सम्मिलित हो जायँ, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण शक्तियों तथा तेजोंकी राशिरूपा एक महान् शक्तिशालिनी देवी प्रकट हो जाय। फिर रुद्र प्रभृति हम सम्पूर्ण देवताओंके पास त्रिशूल आदि जितने दिव्य आयुध हैं, वे सब भी उस देवीको दे दिये जायँ। तदनन्तर सम्पूर्ण तेज तथा बलसे सम्पन्न वह देवी सभी प्रकारके आयुध हाथोंमें लेकर उस दुराचारी एवं मदोन्मत्त नीच राक्षसको अवश्य मार डालेगी।

व्यासजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान् विष्णुके उपर्युक्त वचन समाप्त होते ही ब्रह्माजीके शरीरसे स्वयं एक महान् तेजःपुञ्ज प्रकट हो गया। वह अत्यन्त प्रकाशमान तेज बड़ा ही दुस्सह था। उसकी आकृति लाल थी। पद्मराग मणिकी तुलना करनेवाले उस तेजके सभी अवयव अत्यन्त सुन्दर थे। उसमें कुछ शीतलता थी और वह उष्ण भी था। अनेकों किरणें उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। महाराज ! इसके बाद भगवान् शंकरके शरीरसे एक अद्भुत एवं विशाल तेज प्रकट हुआ। गौरवर्णसे शोभा पानेवाला वह तीक्ष्ण तेज अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था। उसपर किसीके नेत्र नहीं ठहर पाते थे। दैत्योंके लिये वह महान् भयंकर एवं देवताओंके लिये अत्यन्त सुखाश्चर्यजनक सिद्ध हुआ। उसकी आकृति बड़ी विकराल थी। मानो तमोगुणसे ओतप्रोत कोई दूसरा पर्वत ही प्रकट हो गया हो। इसके पश्चात् भगवान् विष्णुके शरीरसे एक दूसरी तेजोराशि सामने निकल आयी। श्यामवर्णवाले अत्यन्त प्रकाशमान उस तेजमें सत्त्वगुणकी प्रधानता थी। फिर इन्द्रके शरीरसे एक अलौकिक एवं दुस्सह तेज प्रकट हुआ। सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न उस तेजमें सभी गुण वर्तमान थे। ऐसे ही वरुण, कुबेर, यमराज और अग्निके शरीरसे भी पृथक्-पृथक् तेज प्रकट हुए। इनके अतिरिक्त जितने अन्य देवता थे, उन सबके शरीरोंसे भी तेजका प्रादुर्भाव हुआ। सबके विग्रहसे निकले हुए तेज एकत्र हुए और उनका एक महान् प्रज्वलित पुञ्ज बन गया। वह तेजःपुञ्ज महान् विलक्षण था। जान पड़ता था, मानो कोई दूसरा महान् तेजःपुञ्ज हिमाचल पर्वत ही सामने आ गया हो। सब देख रहे थे—इतनेमें ही देवताओंका वह तेजःपुञ्ज एक परम सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया।

वह सर्वश्रेष्ठ नारी ऐसी विलक्षण थी कि उसे देखकर सब-के-सब आश्चर्य मानने लगे। वही भगवती महालक्ष्मी हुईं। उनमें सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण वर्तमान थे। सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे प्रकटित वह देवी अठारह भुजाओंसे शोभा पा रही थीं। उनके तीन वर्ण थे। अखिल विश्वको मोहित कर देना उनका स्वाभाविक गुण था। स्वच्छ मुख था। काले नेत्र थे। दोनों ओठोंमें लालिमा छायी थी। हाथोंके तलवे लाल थे। अलौकिक अलंकारोंसे सभी अङ्गोंकी छवि बढ़ रही थी। महिषासुरको मारनेके लिये प्रचुर देव-तेजसे प्रकट हुई वे देवी अठारह भुजाओंसे सम्पन्न होनेपर भी समयानुसार हजारों भुजाओंसे सुशोभित हो जाती थीं।

जनमेजयने कहा—महाभाग मुनिवर व्यासजी ! आप सर्वज्ञानी पुरुष हैं। भगवन् ! देवताओंके शरीरसे प्रकट हुई देवीके चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। सम्पूर्ण देवताओंका तेज एकत्रित होकर देवीके रूपमें

परिणत हुआ अथवा उसके अलग-अलग रूप बन गये ? मुँह, नाक और आँख आदि भेदसे जितने अङ्ग थे, वे सब एकत्रित होनेपर एक विग्रहकी ही तो पूर्ति करते हैं। व्यासजी ! जिस देवताके शारीरिक तेजसे देवीका जो अद्भुत अङ्ग प्रकट हुआ, उसका विशद वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। देवताओंने देवीको जिस प्रकार आयुध और आभूषण अर्पण किये, वे सब प्रसङ्ग भी क्रमशः आपके मुखारविन्दसे सुननेके लिये मुझे उत्कट इच्छा लगी हुई है। ब्रह्मन् ! आपके मुख-कमलसे निकला हुआ भगवती महालक्ष्मीका यह चरित्र अमृतके समान मधुर है। इसे बार-बार पान करते रहनेपर भी मेरा मन तृप्तिका अनुभव नहीं करता।

सूतजी कहते हैं—महाराज जनमेजयकी उपर्युक्त बातें सुनकर सत्यवतीनन्दन व्यासजीने मानो उन्हें संतुष्ट करते हुए मधुर वाणीमें अपना प्रवचन आरम्भ किया।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तुम बड़े भाग्यशाली पुरुष हो। कुरुश्रेष्ठ ! देवीके श्रीविग्रहके रूपविषयक प्रसङ्गमें मैं अपनी बुद्धिके अनुसार विस्तारपूर्वक तुमसे कहता हूँ, सुनो। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र भी भगवतीके यथार्थ रूपको किसी कालमें भी नहीं बता सकते; फिर मेरी क्या गणना है ? देवीके जो रूप हैं, जैसे हैं और जिस उद्देश्यसे हुए हैं, उन्हें मैं कैसे जान सकता हूँ। बस, मेरी वाणी केवल इतना ही कहनेमें समर्थ है कि अखिलदेव-शक्तिरूपा भगवती प्रकट हुईं। वस्तुतः देवी तो नित्यस्वरूपा हैं, सदा ही विराजमान रहती हैं। देवताओंका अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये कार्यकी अधिकता पड़नेपर एकरूपा होनेपर भी वे कभी नाना प्रकारके रूप धारण कर लेती हैं, जैसे नट स्वभावतः एक होनेपर भी जनताको प्रसन्न करनेके लिये भाँति-भाँतिके वेष बनाकर रंगमञ्चपर आता है, वैसे ही ये भगवती वास्तवमें निर्गुणा और अरूपा होते हुए भी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपनी लीलासे सगुण रूप धारण कर लेती हैं। जहाँ वे जैसा कार्य सम्पादन करती हैं, उसीके अनुसार उनके अनेक नाम पड़ जाते हैं, उनके जितने गौण नाम हैं, उन सबमें धातुके अर्थका सम्बन्ध है।

राजन् ! अब जिस प्रकार तेजसे भगवतीका मनोहर रूप प्रकट हुआ, अपनी बुद्धिके अनुसार उसका वर्णन करता हूँ। भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे भगवतीके मुख-कमलकी रचना हुई। श्वेतवर्णसे सुशोभित वह मुख-मण्डल अत्यन्त विशाल एवं मनोहर आकृतिवाला हुआ। यमराजके तेजसे भगवतीके सिरमें सुन्दर बाल निकल आये। सभी केश बहुत लम्बे थे, उनका ऊपरी भाग मुड़ा हुआ था। मेघके समान मनोहर आकृति थी। अग्निके तेजसे उन देवीके तीनों नेत्र प्रकट हुए थे। कृष्ण, रक्त और श्वेत—इन तीनों वर्णोंसे उन नेत्रोंकी शोभा हो रही थी। उनकी सुन्दर भौंहें संध्याके तेजसे उत्पन्न हुईं। वे तेजसे परिपूर्ण काली-टेढ़ी भौंहें ऐसी जान पड़ती थीं, मानो कामदेवका धनुष हो। वायुके तेजसे उत्तम दो कान उत्पन्न हुए। वे न बहुत लम्बे थे और न छोटे ही। कुबेरके तेजसे अत्यन्त मनोहर नासिका प्रकट हुई, उसकी आकृति बड़ी ही आकर्षक थी। तिलके फूलके समान उसका आकार था। राजन् ! उन देवीके अत्यन्त चमकीले एवं मनोहर दाँत प्रजापतिके तेजसे प्रकट हुए थे। कुन्दके अग्रभागके समान

उसका आकार था। राजन्! उन देवीके अत्यन्त चमकीले एवं मनोहर दाँत प्रजापतिके तेजसे प्रकट हुए थे। कुन्दके अग्रभागके समान उनका आकार था। देवीका अत्यन्त लालिमामय अधरोष्ठ अरुणके तेजसे प्रकट हुआ था तथा ऊपरका ओठ स्वामिकार्तिकके तेजसे उत्पन्न हुआ था। भगवान् विष्णुके तेजसे उनकी अठारह भुजाएँ उत्पन्न हुईं। वसुओंके तेजसे लाल वर्णवाली अँगुलियाँ प्रकट हुईं। चन्द्रमाके तेजसे दोनों उत्तम स्तनोंका तथा इन्द्रके तेजसे मध्यभाग—कटिप्रदेशका प्रादुर्भाव हुआ; जिसे तीन रेखाएँ सुशोभित कर रही थीं। वरुणके तेजसे जङ्घाएँ और पिंडलियाँ तथा पृथ्वीके तेजसे नितम्बभाग प्रकट हुआ, जो बड़ा ही विशाल था।

राजन्! इस प्रकार तेजःपुञ्जसे सुन्दर आकारवाली वह देवी प्रकट हो गयीं। उनका स्वर अत्यन्त मधुर था। उनके सभी अङ्ग मनोहर थे, नेत्रोंकी छवि अनुपम थी। मुख मुसकानसे भरा था। महिषासुरके द्वारा सताये हुए सम्पूर्ण देवता उन्हें देखकर आनन्दमें विह्वल हो उठे। तब भगवान् विष्णुने समस्त देवताओंसे कहा—'अब देवतालोग इस देवीको अपने सभी प्रकारके आभूषण और आयुध प्रदान करें। इस अवसरपर सम्पूर्ण देवता तुरंत अपने आयुधोंसे परम तेजस्वी विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र निकालकर इस देवीको अर्पण कर दें!'

व्यासजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके वचन सुनकर सम्पूर्ण देवता आनन्दपूर्वक अपने अस्त्र-शस्त्र, आभूषण और वस्त्र तुरन्त भगवतीको देने लगे। क्षीरसमुद्रने दो दिव्य वस्त्र, जिनका रंग लाल था और जो कभी जीर्ण नहीं होनेवाले थे तथा एक अत्यन्त चमकीला सुन्दर हार देवीको भेंट किया। साथ ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, जिसकी चमक करोड़ों सूर्योंके तेजको परास्त कर रही थी, दो कुण्डल और सुन्दर कड़े देवीको अर्पण किये। विश्वकर्माने प्रसन्नतापूर्वक सब बाहुओंके लिये केयूर और कङ्कण—जो अत्यन्त अद्भुत एवं अनेक प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत थे— देवीको भेंट किये। त्वष्टाने सुन्दर चरणोंमें पहननेके लिये निर्मल नूपुर—जिनसे मधुर ध्वनि निकल रही थी तथा जो रत्नोंसे भूषित एवं सूर्यके समान प्रकाशमान थे—भगवतीको भेंट किये। त्वष्टाका हृदय बड़ा उदार था। उन्होंने कण्ठहार और अँगुलियोंमें पहननेके लिये रत्नोंकी बनी हुई अँगूठियाँ भी दीं। वरुणने कभी न कुम्हलानेवाले कमलोंकी माला भगवतीको भेंट की। वैजयन्ती नामसे विख्यात वह हार उत्तम गन्धोंसे परिपूर्ण था। उसपर भौंरे मँडरा रहे थे। हिमवान्ने संतुष्ट होकर सवारीके लिये सुनहरे रंगका सुन्दर सिंह तथा भाँति-भाँतिके रत्न समर्पित किये, फिर तो सर्वोपरि विराजमान रहनेवाली वे देवी दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत होकर सिंहपर बैठ गयीं। उनमें सभी उत्तम लक्षण वर्तमान थे।

तब भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके भगवतीको अर्पण किया। उस प्रकाशमान चक्रमें हजारों अरे थे। राक्षसोंके सिर काटनेमें वह पूर्ण समर्थ था। भगवान् शंकरने अपने त्रिशूलमेंसे एक त्रिशूल निकालकर देवीको भेंट किया। उस उत्तम त्रिशूलमें देवताओंका भय दूर करनेकी पर्याप्त क्षमता थी। प्रसन्नात्मा वरुणने अपने शङ्खसे एक अत्यन्त चमकीला स्वच्छ एवं सुन्दर शङ्ख उत्पन्न करके भगवतीकी सेवामें समर्पित किया। उससे

निरन्तर ध्वनि हो रही थी। अग्निदेवका मन प्रसन्नतासे खिल उठा था। उन्होंने एक शक्ति तथा दानवी सेनाका संहार करनेमें कुशल एक सुन्दर शतघ्नी भगवतीके सामने उपस्थित की। पवनदेवने बाणोंसे परिपूर्ण तरकस और एक अद्भुत दीखनेवाला धनुष देवीको भेंट किया। वह धनुष अत्यन्त दुर्धर्ष था। उसकी टंकार बड़ी ही तीखी थी। इन्द्रने अपने वज्रसे उत्पन्न करके वज्र और ऐरावत हाथीसे उतारकर एक अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ शब्दवाला घंटा तुरंत देवीको अर्पित कर दिया। संहारका अवसर उपस्थित होनेपर सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश करनेके लिये यमराज जिसका प्रयोग करते थे, उसी काल-दण्डसे प्रकट हुआ एक दण्ड उन्होंने देवीको अर्पण किया। ब्रह्माजीने गङ्गाजलसे भरा हुआ दिव्य कमण्डलु तथा वरुणने प्रसन्नतापूर्वक एक पाश इन देवीको निवेदित किया। राजन्! कालने इन्हें ढाल और तलवार दी। विश्वकर्मा-द्वारा इन्हें अत्यन्त तेज धारवाला फरसा प्राप्त हुआ। कुबेरने मधुसे भरा हुआ सोनेका पानपात्र तथा वरुणने मनको मुग्ध करनेवाला कमलके फूलका दिव्य हार देवीकी सेवामें उपस्थित किया। त्वष्टाने प्रसन्न होकर भगवतीको कौमोदकी गदा भेंट की। उस गदामें शब्द करने-वाली सैकड़ों घंटियाँ लगी थीं। उसके प्रहारसे राक्षसोंका कचूमर निकल जाता था। साथ ही उन्होंने अनेक प्रकारके अन्य बहुत-से अस्त्र तथा एक अभेद्य कवच भी भगवतीको अर्पण किया। सूर्यने जगदम्बाको अपनी किरणें प्रदान कीं। जब कल्याणमयी भगवती आभूषणोंसे अलंकृत होकर हाथमें आयुध लिये हुए विराजमान हुईं, तब त्रिलोकीको मुग्ध करनेवाले उनके दिव्य दर्शन पाकर देवता उनकी स्तुति करनेमें संलग्न हो गये।

देवता बोले—शिवा, कल्याणी, शान्ति, पुष्टि एवं रुद्राणी नामसे प्रसिद्ध दिव्य स्वरूप धारण करनेवाली भगवती जगदम्बाको निरन्तर प्रणाम है। जो कालरात्रि, इन्द्राणी, सिद्धि, बुद्धि, वृद्धि तथा वैष्णवी नामसे विख्यात हैं, उन भगवती अम्बाको निरन्तर नमस्कार है। जो पृथ्वीके भीतर व्याप्त हैं, किंतु पृथ्वी जिन्हें जान नहीं सकती तथा जो पृथ्वीके अन्तरमें विराजमान होकर सदा शासन करनेमें संलग्न हैं, उन भगवती परमेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं। जो मायाके अंदर प्रविष्ट होते हुए भी उससे अज्ञात हैं तथा अन्तःकरणमें रहकर उसे प्रेरणा करनेमें उद्यत रहती हैं, उन कल्याणस्वरूपिणी अजन्मा भगवती जगदम्बाको हम प्रणाम करते हैं। माता! शत्रुसे हम महान् दुःखी हैं। आप कल्याणदायिनी बनकर हमारी रक्षा कीजिये। अत्यन्त दुराचारी महिषासुरको अपने तेजसे मोहित करके उसे परास्त करनेका शीघ्र प्रबन्ध कीजिये। उस नीच, मायावी, भयंकर एवं

अभिमानमें चूर रहनेवाले दानवको कोई स्त्री ही मार सकती है। वह मूर्ख अनेक प्रकारके वेष बनाकर सम्पूर्ण देवताओंको कष्ट पहुँचाया करता है। भक्तोंपर कृपा करनेवाली देवी ! इस अवसरपर समस्त देवताओंके लिये केवल आप ही शरण हैं, आपको नमस्कार है। दानवद्वारा सताये गये हम देवताओंकी आप रक्षा करें।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर सम्पूर्ण सुख प्रदान करनेवाली महादेवीका मुख-मण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। देवताओंके प्रति वे मङ्गलमय वचन कहने लगीं।

देवी बोलीं—देवताओ ! अब उस मूर्ख महिषासुरसे आप निडर हो जाइये। मैं शीघ्र ही उस अज्ञानी एवं वराभिमानी दैत्यको संग्राममें मार डालूँगी।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंसे यों कहकर अत्यन्त स्पष्ट स्वरमें देवी बड़े जोरसे हँस पड़ीं। वे बोलीं—'भ्रम और मोहसे युक्त यह कैसा विचित्र जगत् है! आज समस्त देवता महिषासुरसे अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं, इनका कलेजा थर्रा उठा है; आदरणीय देवताओ ! प्रारब्ध बड़ा ही घोर एवं दुर्जय है; क्योंकि काल और कर्ता होनेका सौभाग्य उसीको प्राप्त है। उसीके विधानानुसार सुख और दुःख प्राप्त होते हैं'—यों कुछ हँसकर बात करनेके पश्चात् देवीने अट्टहासपूर्वक उच्च स्वरसे गर्जना की। उस महान् भयंकर शब्दको सुनकर दानव डर गये। उस अद्भुत शब्दसे पृथ्वी काँप उठी। सम्पूर्ण पर्वत डगमगाने लगे। गम्भीर समुद्रमें तरंगें उठने लगीं। उस गर्जनाके प्रभावसे सुमेरु पर्वत अपने स्थानसे खिसक पड़ा। सम्पूर्ण दिशाएँ भीषण ध्वनिसे गूँज उठीं। उस गगनभेदी उच्च ध्वनिको सुनकर दानवोंके सर्वाङ्गमें भय व्याप्त हो गया। देवताओंको अपार हर्ष हुआ। 'देवी ! आपकी जय हो, आप हमारी रक्षा करें'—यों वे सब-के-सब देवीसे प्रार्थना करने लगे। मदमें चूर रहनेवाले महिषासुरने भी वह गर्जना सुनी, वह क्रोधसे तमतमा उठा। शङ्कित होकर उसने उपस्थित दानवोंसे पूछा—'यह क्या हो रहा है ?' और आज्ञा दी—'इस विशिष्ट ध्वनिके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये दूत अभी जायँ। पता लगायें कि अत्यन्त कठोर एवं कानके पर्देको फाड़नेकी क्षमता रखनेवाला यह शब्द किसके मुखसे निकलता है। ऐसी गर्जना करनेवाला देवता अथवा दानव जो कोई भी हो, दूत उस दुष्टको पकड़कर मेरे पास ले आयें। वह महान् नीच एवं अभिमानी है, तभी तो यों गरज रहा है। मैं उसे मृत्युके मुखमें झोंक दूँगा। निश्चय ही उस मूर्खकी आयु समाप्त हो गयी है, अब मेरे हाथ वह यमराजके घर जाना चाहता है। देवता तो कभीके परास्त हो गये थे। भयसे उनका कलेजा काँप उठा था, अतः वे ऐसी गर्जना नहीं कर सकते। जिन्होंने मेरी अधीनता स्वीकार कर ली है, उन दानवोंका यह काम हो—यह भी असम्भव है। फिर किस मूर्खने ऐसा दुस्साहस किया है, क्यों ऐसी गर्जना हुई ? इस विषयकी समुचित जानकारी प्राप्त करके दूत तुरंत मेरे पास लौट आयें। तब मैं जाकर व्यर्थ परिश्रम करनेवाले उस दुराचारीको मार डालूँगा।'

व्यासजी कहते हैं—महिषासुरके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दूत भगवती जगदम्बाके पास जा पहुँचे। देवीके सर्वाङ्ग अत्यन्त मनोहर थे, अठारह भुजाएँ थीं, उनका दिव्य विग्रह सम्पूर्ण आभूषणोंसे अलंकृत था। उनमें सभी उत्तम

लक्षण विद्यमान थे। उन कल्याणमयी देवीने हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध धारण कर रखे थे। वे हाथमें पानपात्र लेकर निरन्तर मधु पी रही थीं। भगवतीकी ऐसी झाँकी पाकर दूत डर गये। उनके सर्वाङ्गमें त्रास छा गया। अत्यन्त शङ्कित होकर वे वहाँसे लौट पड़े और शीघ्र महिषासुरके पास उपस्थित होकर उन्होंने गर्जनाका कारण व्यक्त करना आरम्भ किया।

दूत बोले—दानवेश्वर! एक कोई सुन्दरी स्त्री दृष्टिगत हो रही है। उस देवीके सर्वाङ्ग तारुण्यसे खिल उठे हैं। उसने सम्पूर्ण अङ्गोंमें आभूषण धारण कर रखे हैं। अखिल रत्न उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उसका विलक्षण रूप बड़ा ही आकर्षक है। न वह मानवी जान पड़ती और न आसुरी ही। उस श्रेष्ठ स्त्रीके अठारह भुजाएँ हैं। हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर वह विशाल सिंहपर सवार है। उसके सभी अङ्गोंसे अभिमान टपक रहा है। हमारे देखनेमें वही ऐसी गर्जना कर रही है। इच्छानुसार वह मधुका पात्र उठाकर अपने मुँहमें उँड़ेला करती है। हमारी समझसे उसका अभी विवाह नहीं हुआ है। देवता बड़े उत्साहके साथ आकाशमें स्थित होकर उसकी स्तुति कर रहे हैं। वे कहते हैं—'देवी! आपकी जय हो। आप हमारी रक्षा करें और शत्रुको परास्त कर दें।' प्रभो! मैं यह नहीं जान सका कि वह श्रेष्ठ स्त्री कौन है और किसके साथ उसका पाणिग्रहण हुआ है, उस सुन्दरीके यहाँ आनेका क्या कारण है और वह क्या चाहती है। उसके शरीरसे इतना प्रकाश निकलकर फैल रहा है कि उधर ताकनेमें भी हम असमर्थ हो गये थे। उसके सभी शृङ्गार वीर-रसके हैं। उसका मुख मुसकानसे भरा है। अद्भुत रसवाली वह सुन्दरी नारी भयानक प्रतीत हो रही है। उसका ऐसा रूप देखकर हम बिना बात किये ही लौट आये हैं। राजन्! हम आपके आज्ञाकारी हैं। अब इसके बाद क्या करना चाहिये?

महिषासुरने मन्त्रीसे कहा—वीर! तुम मेरे प्रधान मन्त्री हो। आदेशानुसार सेना लेकर जाओ। साम, दाम आदि उपायोंका प्रयोग करके उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको लानेका प्रबन्ध करो। यदि साम और दानसे वह आना नहीं चाहती हो तो तीसरे यत्न दण्डका भी प्रयोग किया जा सकता है। हाँ, इतना करना कि उसे आघात न पहुँचे। उस सुन्दरीको सुरक्षितरूपमें मेरे पास ले आना; क्योंकि कजरारे नेत्रोंवाली उस नारीको मैं प्रसन्नतापूर्वक पटरानी बनाना चाहता हूँ। सम्भव है, प्रेमका बर्ताव करनेपर ही वह मृगनयनी आ जाय। तुम मेरी कामना पूर्ण होनेमें यथासाध्य यत्नशील बन जाओ। ऐसा करना, जिससे रंगमें भंग न होने पाये। उसके सौन्दर्यरूपी ऐश्वर्यको सुनकर ही मैं मोहित हो गया हूँ।

व्यासजी कहते हैं—महिषासुरके मधुर वचन सुनकर उसका प्रधान मन्त्री तुरंत हाथी, घोड़े और रथोंके साथ प्रस्थित हो गया। मनस्विनी भगवती जगदम्बाके पास जानेका उसका साहस नहीं हुआ। बहुत दूर खड़ा होकर ही वह कहने लगा। उसने नम्रतापूर्वक मधुर वचनमें भगवतीके प्रति मीठी वाणीसे कहा।

प्रधान मन्त्रीने कहा—महाभागे! मेरे स्वामी जगद्विजयी हैं। उन्हें देवतातक नहीं मार सकते, मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। वे मधुर वचनोंमें पूछ रहे हैं कि तुम कौन हो और किस प्रयोजनसे तुमने यहाँ आनेका कष्ट उठाया है। सुलोचने!

हमारे महाराजको ब्रह्माजी वर दे चुके हैं, इसका उन्हें पूर्ण अभिमान रहता है। सम्पूर्ण दानव उनका शासन मानते हैं। वे बलवान् एवं इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। महिषासुर उनका नाम है। मनको मुग्ध करनेवाला सुन्दर रूप बनाकर तुम आयी हो—यह सुनकर वे तुमसे मिलना चाहते हैं। अभी मनुष्यका रूप धारण करके वे तुम्हारे पास आयेंगे। सुन्दरी ! तुम्हारी जैसी रुचि हो, वही करो। हमें सभी बातें मान्य हैं। मृगलोचने ! मेरे बुद्धिमान् स्वामी तुम्हारे प्रति अटूट श्रद्धा रखते हैं। उचित जान पड़े तो तुम उनके पास चलो; नहीं तो मैं उन्हें ही यहाँ बुला लाऊँ। देवेश्वरी ! तुम्हारी जैसी अभिलाषा हो, वही करनेके लिये मैं प्रस्तुत हूँ। महाराज महिषासुर तुम्हारे रूपकी प्रशंसा सुनकर अत्यन्त वशीभूत हो गये हैं। सुजघने ! शीघ्र आज्ञा दो। मैं उसीका पालन करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। (अध्याय ८-९)

☆

## महिषासुरके मन्त्रीके साथ देवीकी बातचीत और मन्त्रीका लौटकर महिषासुरको देवीका संदेश कहना, महिषासुरका मन्त्रियोंसे परामर्श और महिषासुरके द्वारा ताम्रको देवीके पास भेजा जाना

व्यासजी कहते हैं—महाराज ! भगवती जगदम्बा श्रेष्ठ स्त्रीके रूपमें विराजमान थीं। महिषासुरके मन्त्रीकी बात सुनकर वे मुसकराती हुई मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें उससे कहने लगीं।

देवीने कहा—मन्त्रिवर ! तुम्हें यह निश्चितरूपसे समझ लेना चाहिये कि मैं देवताओंकी जननी हूँ। मेरा नाम महालक्ष्मी है। सम्पूर्ण दैत्योंको मारनेके लिये ही मैं प्रकट होती हूँ। महिषासुरका वध करनेके लिये समस्त देवताओंने मुझसे प्रार्थना की है। उस दानवराजके कारण देवता अत्यन्त कष्ट भोग रहे हैं। इस समय उन्हें यज्ञमें भाग भी नहीं मिल रहा है। इसीलिये आज मेरा यहाँ आना हुआ है। मन्त्रिवर ! मैं महिषासुरको मारनेके प्रयत्नमें लगी हूँ। मैं अकेली ही नहीं हूँ। मेरे साथ विपुल सेना है। अनघ ! तुमने जो सामनीतिका प्रयोग करके आदरपूर्वक मेरा स्वागत किया है, मीठे वचन कहे हैं, इससे मैं तुमपर संतुष्ट हूँ। अन्यथा निश्चय जानो, मेरी दृष्टि प्रलयाग्निकी तुलना करनेवाली है। उसके प्रभावसे तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते। अब तुम मेरी बात मानकर उस पापी महिषासुरके पास जाकर उससे यह वचन कहना—

'यदि तुझे प्राणोंका लोभ हो तो अभी तुरंत पाताल चला जा। तू नहीं जाना चाहेगा तो तुझ अपराधी एवं दुष्टको मैं समराङ्गणमें मार डालूँगी। मेरे बाणसे तेरे शरीरकी धज्जियाँ उड़ जायँगी। तेरे लिये यमराजके घर जाना आवश्यक हो जायगा। मेरी इस दयालुताको समझकर तू इसी क्षण इस लोकसे विदा हो जा। मूढ़ ! तेरे मर जानेपर देवता स्वर्गपर अधिकार प्राप्त कर लेंगे। अतएव सागरपर्यन्त इस पृथ्वीका परित्याग करके तू अकेला ही यहाँसे हट जानेकी व्यवस्था कर ले। मूर्ख ! मेरे बाण तेरे शरीरको लक्ष्य बनायें, इसके पूर्व ही पाताल चले जानेमें तेरी कुशल है। असुर ! यदि तेरे मनमें युद्ध करनेकी इच्छा हो तो अभी अपने सम्पूर्ण महाबली वीरोंके साथ यहाँ चला आ। मैं

तुझे यमराजके घर भेजनेके लिये उद्यत हूँ। अरे प्रचण्ड मूर्ख ! तेरे-जैसे असंख्य दानवोंका प्रत्येक युगमें मैंने वध किया है, वैसे ही तुझे भी समराङ्गणमें मार डालूँगी। तू मेरे शस्त्र-धारणको सफल कर दे। मूर्ख ! तू महान् दुराचारी है। ब्रह्माके द्वारा तुझे जो वर मिल गया है, उसका अभिमान न कर। केवल स्त्री ही तेरा वध कर सकती है—यह निश्चित जानकर तूने प्रधान-प्रधान देवताओंको असीम कष्ट पहुँचाया है। अस्तु, ब्रह्माका वचन सत्य करना परम आवश्यक है। अतएव अनुपम स्त्रीका रूप धारण करके तुझ अपराधीको मारनेके विचारसे ही मैं यहाँ प्रकट हुई हूँ। मूर्ख ! यदि तुझे जीनेकी इच्छा हो तो आज ही देवताओंके स्थानको छोड़कर पातालमें जहाँ साँपोंका साम्राज्य है, स्वेच्छापूर्वक चला जा।'

व्यासजी कहते हैं—महिषासुरका वह प्रधान मन्त्री भी शूरवीर था। देवीकी बात सुनकर उसने सारगर्भित उत्तर देना आरम्भ किया—'देवी ! तुम अभिमानमें चूर रहनेवाली स्त्रीके समान बातें करती हो। कहाँ तुम और कहाँ वे दानवराज। भला, इस प्रकारका अनुचित युद्ध कैसे हो सकता है। तुम अकेली स्त्री हो, अभी जवानीके प्रथम सोपानपर तुम्हारा प्रवेश हुआ है। तुम्हारे सभी अङ्ग कोमल हैं। उन महिषासुरके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल है। अतएव बड़ी कठिनतासे उनके साथ तुम्हारी मित्रता हो सकती है। महिषासुरके पास हाथी, घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण अनेक प्रकारकी सेना है। भाँति-भाँतिके आयुध लिये पैदल सैनिकोंकी संख्या भी अमेय है। वामोरु ! जिस प्रकार मालतीके फूलको मसल डालनेमें गजराजको कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता, वैसे ही महिषासुरके हाथ संग्राममें तुम्हारा अन्त हो जाय—इसके लिये उन्हें कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ेगा। हमारे राजा साहब देवताओंके महान् शत्रु हैं; किंतु तुममें उनकी अटूट श्रद्धा है। अतएव साम और दाननीतिका प्रयोग करके ही मैं तुमसे बातें करना उचित समझता हूँ। नहीं तो, तुम मिथ्या भाषण करती हो, व्यर्थके अभिमानमें भरकर अपनी चतुरता दिखाती हो तथा रूप एवं यौवनका तुम्हें अभिमान हो गया है—यह मानकर मैं तुम्हें आज ही बाणके द्वारा मृत्युके मुखमें झोंक देता। तुम्हारे रूपमें जगत्के रूपोंको तुच्छ करनेकी योग्यता है। इसे सुनकर मेरे महाराज मोहित हो गये हैं। उनकी प्रसन्नताके लिये ही तुम्हारे प्रति मेरे मुखसे अत्यन्त मधुर वाणी निकल रही है। विशाललोचने ! उनके सम्पूर्ण राज्य और धनपर तुम्हारा अधिकार रहेगा। वे तुम्हारे सेवक होकर रहेंगे। मृत्युदायी क्रोधका परित्याग करके तुम उनसे प्रेमभाव बनानेकी कृपा करो। भामिनि ! मैं भक्तिपूर्वक तुम्हारे चरणोंपर पड़ा हूँ। शुचिस्मिते ! तुम्हें शीघ्र ही राजा महिषासुरकी पटरानी बन जाना चाहिये। अविकल रूपसे त्रिलोकीकी सारी सम्पत्ति तुम्हारे अधीन रहेगी। महिषासुरसे सम्बन्ध हो जानेपर संसारजनित समस्त सुख तुम्हारे लिये सुलभ हो जायँगे।

देवीने कहा—मन्त्रिवर ! सुनो, मैं शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार चतुरताका आश्रय लेकर वाक्योंका बिलकुल सार अर्थ तुम्हें बताती हूँ। मेरी समझमें आ गया है, तुम महिषासुरके प्रधान मन्त्री हो। तुम्हारे इन वचनोंसे स्वतः सिद्ध हो रहा है कि तुम्हें भी

पाशविक बुद्धि ही प्राप्त है। जिसके तुम-जैसे मन्त्री हैं, वह भला बुद्धिमान् कैसे हो सकता है। तुम दोनों एक समान हो। ब्रह्माने तुम्हारी अच्छी जोड़ी मिलायी है। मूर्ख ! मेरे विषयमें तुमने जो कहा है, 'स्त्री-स्वभाववाली हो' सो विचारपूर्वक देखो तो क्या मैं पुरुष नहीं हूँ ! मैंने स्वाभाविक गतिसे स्त्रीका वेष धारण कर लिया है। तुम्हारे स्वामी स्त्रीके हाथ अपनी मृत्यु माँग चुके हैं, उसे पूरा करनेके लिये ही मुझे ऐसा करना पड़ा है। इससे मैं समझती हूँ कि वह प्रचण्ड मूर्ख है। वीररसके तत्त्वसे वह निरन्तर अपरिचित रहा है। स्त्रीके हाथसे मरना पराक्रम-हीनके लिये भले ही सुखकर प्रतीत हो, शूरवीरके लिये तो यह महान् कष्टप्रद है। ऐसी ही निन्द्य मृत्यु स्वयं बुद्धिमान् बननेवाले तुम्हारे स्वामी महिषासुरने माँगी है। इसलिये स्त्रीका रूप धारण करके उस कार्यको सम्पन्न करनेके विचारसे ही मैं यहाँ उपस्थित हुई हूँ। तुम्हारे धर्मशास्त्र-विरोधी वाक्योंसे मैं कैसे डर सकती हूँ। जिस समय प्रारब्ध प्रतिकूल हो जाता है, उस समय तृणमें भी वज्र-जैसी अप्रतिहत शक्ति उत्पन्न हो सकती है। साथ ही दैवके अनुकूल होनेपर साक्षात् वज्र भी रूईके समान हलका पड़ जा सकता है। जो स्वयं अभी-अभी मृत्युके मुखमें जा रहा है, उसका अपार सैनिकों, अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों अथवा दुर्गसेवन आदि प्रपञ्चोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। जिस समय देह और देहीका सम्बन्ध होता है, उसी क्षण सुख, दुःख और मरण—ये सभी लिखे जाते हैं। दैव जिसकी मृत्यु जिस प्रकार निश्चित कर देता है, उसकी उसी प्रकार मृत्यु होनी अनिवार्य है। उसे कोई टाल नहीं सकता। इस विषयमें संदेह नहीं करना चाहिये। यहाँतक कि ब्रह्मा प्रभृति महान् देवताओंको भी जीवन और मरण जिस समय जिस प्रकारसे निश्चित है, उस समय उसी प्रकारसे स्वीकार करना पड़ता है; फिर अन्य जीवोंके सम्बन्धमें क्या विचार किया जाय। जो देवता स्वयं मरणधर्मा हैं, उनके वरदानसे जिन्हें यह अभिमान हो जाय कि 'हम मर नहीं सकते', वे निरे मूर्ख ही हैं। उनकी बुद्धि मारी जा चुकी है। अतएव तुम शीघ्र ही अपने राजाके पास जाओ और उसे मेरी बातें सुना दो; फिर वह तुम्हें जो आदेश दे, वैसा ही करना। तुम्हें यदि प्राणोंका मोह हो तो इन्द्र स्वर्गका राज्य करें, देवताओंको हविष्य प्राप्त करनेका सुअवसर मिले और तुमलोग रसातल चले जाओ। मूर्ख ! सम्भव है दुराचारी महिषासुरके विचार इसके विपरीत हों; उस अवस्थामें तुमलोग मेरे साथ युद्ध कर सकते हो। सभी प्रधान देवता संग्राममें परास्त हो चुके हैं—तुम्हारी यह मान्यता निर्मूल है, क्योंकि दैववश ब्रह्माजीने वर दे रखा था, इसी कारण वह परिस्थिति आ गयी थी।

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाकी बात सुनकर महिषासुरके प्रधान मन्त्रीने विचार किया, 'मुझे अब क्या करना चाहिये—युद्ध करना ठीक है अथवा महाराजके पास लौट चलना ? मेरे महाराज अवश्य ही कामातुर हो रहे हैं। उन्होंने इस स्त्रीके साथ विवाह करनेके उद्देश्यसे ही मुझे यहाँ भेजा है। तब मैं उनकी मानसिक सरसताको भङ्ग करके उनके पास कैसे जाऊँ। अतः सर्वोत्तम यही है कि बिना

युद्ध किये ही राजाके पास पहुँचूँ और उनसे निवेदन कर दूँ कि वे शीघ्र स्वयं यहाँ आनेका प्रबन्ध करें। वे महाराज महिषासुर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। उनके पास बहुत-से निपुण मन्त्रियोंका समाज है। उनके साथ बैठकर वे कर्तव्यके विषयमें निश्चित विचार कर लेंगे। सहसा इस स्त्रीके साथ युद्ध करना मेरे लिये अनुचित है; क्योंकि हार और जीत—दोनों ही स्थितियोंमें महाराजका अप्रिय होनेकी ही सम्भावना है। सम्भव है, यह स्त्री मुझे मार डाले। अथवा जिस किसी उपायसे मैं ही इसे मारनेमें सफलता प्राप्त कर लूँ, तब भी तो मैं राजा महिषासुरका कोपभाजन ही बनूँगा। अतएव वहीं चलकर देवीकी कही हुई सब बातें महिषासुरको सुना दूँ—यही मेरे लिये हितकर होगा। फिर उनको जो रुचे, वही करें।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार विचार करके वह बुद्धिमान् मन्त्री राजा महिषासुरके पास लौट आया और प्रणाम करके उसने यों कहना आरम्भ किया।

मन्त्रीने कहा—राजन्! सिंहपर बैठी हुई वह देवी वस्तुतः बड़ी ही सुन्दरी है। अठारह भुजाओंके कारण उसका विग्रह अत्यन्त सुरम्य प्रतीत हो रहा है। उसने भुजाओंमें अस्त्र-शस्त्र धारण कर रखे हैं। महाराज! मैंने उस देवीसे यों कहा—'भामिनि! तुम राजा महिषासुरकी सेवामें चलो। वे त्रिलोकीके स्वामी हैं। तुम उनकी प्रेयसी रानी बननेका सुअवसर प्राप्त करो। तुम्हीं उनकी पटरानी बनोगी—यह बिलकुल निश्चित है। वे तुम्हारे वशवर्ती बनकर आज्ञा-पालन करनेमें सदा तत्पर रहेंगे। सुन्दरी! महिषासुरको अपना स्वामी बनाकर दीर्घ-कालतक त्रिलोकीकी सम्पत्ति भोगो और स्त्रियोंमें सबसे अधिक भाग्यशालिनी बननेका अवसर प्राप्त करो।' मेरी उपर्युक्त बातें सुनकर विशाल नेत्रोंवाली वह देवी पहले तो अहंकारके वश होकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गयी। फिर हँसकर उसने मुझसे कहा—'भैंसके पेटसे पैदा हुआ महिषासुर पशुओंसे भी गया-गुजरा है। मैं देवताओंका हित करनेके विचारसे उसे देवीके बलि चढ़ा दूँगी। अरे मूर्ख! जगत्में कौन ऐसी मूढ़ स्त्री है, जो महिषको पति बनाये। फिर मुझ-जैसी विवेकवती स्त्री उसे कैसे स्वामी बनानेमें विचार कर सकती है। सींगवाली भैंस ही उस सींगवाले भैंसेको अपना पति बनाया करे। मैं उस महिषीकी भाँति डकराती हुई उसे पति नहीं बना सकती। मैं तो समराङ्गणमें उपस्थित होकर उसके साथ युद्ध करूँगी। मेरे हाथ देवताओंसे शत्रुता करनेवाला महिषासुर कालका कलेवा बन जायगा। दुष्ट! यदि तुझे जीनेकी इच्छा हो तो पाताल भाग जा।' राजन्! उस स्त्रीने बड़ी कठोर बातें मुझसे कही हैं। उन्हें सुनकर बहुत विचार करनेके पश्चात् मैं वहाँसे लौट आया हूँ। रसभङ्ग हो जानेकी आशङ्कासे मैंने उसके साथ युद्ध नहीं छेड़ा। आपकी विशेष आज्ञा पाये बिना ऐसा व्यर्थ उद्यम मैं कैसे कर सकता था। राजन्! वह सुन्दरी असीम बलके अभिमानमें चूर है। भविष्यमें क्या होगा—यह बात मेरी समझसे बाहर है। स्वयं आप ही इसका निर्णय करें। युद्ध करना या यहाँसे भाग जाना—कौन-सा काम कल्याणप्रद होगा, इसके अन्तिम निर्णयतक पहुँचनेमें मेरी बुद्धि असमर्थ है।

व्यासजी कहते हैं—मन्त्रीकी बात सुनकर अभिमानमें चूर रहनेवाले महिषासुरने अपने बूढ़े मन्त्रियोंको बुलाया और उनसे मन्त्रणा की।

राजा महिषासुरने कहा—मन्त्रियो! इस अवसरपर हमें क्या करना चाहिये? आपलोग शीघ्र अपना अन्तिम निर्णय व्यक्त करें। शम्बरासुरसे सम्बन्ध रखनेवाली मायाकी भाँति देवताओंकी रची हुई यह माया ही सामने आ गयी है क्या? इस कार्यमें आपलोग परम प्रवीण हैं। तरह-तरहके उपाय सोचनेमें आपकी बुद्धि कुशल है। ऐसी परिस्थिति आ जानेपर साम-दान आदि उपायोंमेंसे किसका अवलम्बन करना चाहिये—यह मुझे सूचित करें।

मन्त्री बोले—महाराज! प्रत्येक समय सत्य और प्रिय वचन ही बोलना चाहिये। विवेकी पुरुष हितकर कार्यके विषयमें भली-भाँति सोच-समझकर ही अपना मत व्यक्त किया करते हैं। राजन्! कुछ बातें तो सत्य और हितकर होती हैं। कितनी ही बातें प्रिय होते हुए भी अहितकर होती हैं। जैसे औषध जगत्‌में मनुष्योंको खाते समय अप्रिय होते हुए भी परिणाममें रोग-नाशरूपी हितका साधक होता है। राजन्! सत्य वचन सुनने और समर्थन करनेवाले दुर्लभ हैं। सत्यभाषीका मिलना भी कठिन है। श्रोताको प्रसन्न करनेके लिये झूठी बातें बकनेवाले वक्ता बहुत मिल सकते हैं। राजन्! यह विचार बड़ा ही गहन है। इस अवसरपर हम कैसे क्या कहें? किस कार्यका परिणाम अच्छा होगा अथवा बुरा, इसे त्रिलोकीमें कौन जान सकता है।

राजा महिषासुरने कहा—एक बार सब लोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार मत व्यक्त करें। सबके विचार सुनकर मैं सोच लूँगा। कार्य-कुशल पुरुषको चाहिये कि बहुत लोगोंके मतको जानकर उसपर बार-बार विचार करे; फिर जो कार्य हितकर जँचे उसे अपनानेकी चेष्टा करे।

व्यासजी कहते हैं—राजा महिषासुरके ऐसे वचन सुनकर महाबली विरूपाक्ष उसे प्रसन्न करते हुए झट बोल उठा।

विरूपाक्षने कहा—राजन्! यह एक साधारण स्त्री है। अभिमानमें भरी होनेके कारण इसके मुखसे ऐसे वचन निकल रहे हैं। केवल डरानेके लिये ही इसकी ऐसी बातें हैं—इसे आप समझ लीजिये। स्त्रियाँ बढ़ा-चढ़ाकर बहुत-सी ऐसी बातें बका करती हैं, ताकि युद्धमें किसी प्रकार परास्त न हो सकें; किंतु उनके असत्यपन और साहसको जाननेवाला कौन पुरुष उनसे डर सकता है। राजन्! आप त्रिलोकीपर विजय प्राप्त कर चुके हैं। इस समय एक साधारण स्त्रीसे भयभीत होना आपके लिये बिलकुल अशोभन है। हाँ, किसी दीनहीनको मारनेपर वीर पुरुषको जगत्‌में कलङ्क अवश्य लग सकता है। अतएव महाराज! मैं अकेले ही चण्डीसे

युद्ध करने जा रहा हूँ। मैं उसे अवश्य मार डालूँगा। अब आप निर्भय हो जायँ। कुछ सैनिक मेरे साथ रहें। मैं अस्त्र-शस्त्रोंसे सज-धजकर जाऊँगा, जिससे प्रचण्ड पराक्रमवाली उस दुर्धर्ष स्त्रीको परास्त कर सकूँ। राजन्! अब आप मेरा बल देखिये— सर्पमय रस्सियोंसे बाँधकर उसे आपके पास ले आऊँगा। फिर तो वह सदा आपके अधीन होकर रहेगी।

व्यासजी कहते हैं—विरूपाक्षकी बात सुनकर दुर्धर्षने उसके वचनका अनुमोदन किया। उसने महिषासुरसे कहा—'राजन्! बुद्धिमान् विरूपाक्षकी वाणी बिलकुल सत्य है। आप तो स्वयं ही विचारकुशल हैं। मेरी भी कुछ प्रिय बातें सुननेकी कृपा करें। अनुमान करनेसे ऐसा जँच रहा है कि इस सुन्दरीको कामदेवने मथ डाला है। अपने रूपके अभिमानमें प्रमत्त रहनेवाली स्त्री प्रायः ऐसा भाव बनाया करती है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि डरा-धमकाकर आपको अपने वशमें कर लिया जाय। स्वाभिमानिनी स्त्रियोंके यही तो हाव-भाव हैं। इनके इस अभिप्रायको रसज्ञ पुरुष भलीभाँति समझ लेते हैं। यह तो उस कामिनीकी वक्रोक्ति-मात्र है। ऐसी युवती अपने प्रियतम पतिके लिये सदा लालायित रहती है। कोई कामशास्त्रका पारगामी पुरुष ही उसके अभिप्रायको समझ सकता है। उसने आपके प्रति जो यह कहा है कि तुम्हें मोर्चेपर बाणोंसे बींध दूँगी, कारणके जाननेवाले विशिष्ट पुरुष इसके इस सारगर्भित वचनपर विचार करें। अपने यौवनका अभिमान रखनेवाली स्त्रियोंके बाण उनके कटाक्ष ही हैं—यह बात जगत्प्रसिद्ध है। उसके व्यङ्ग्य-वचन पुष्पाञ्जलि-जैसे प्रतीत होते हुए भी दूसरे प्रकारके बाणोंका काम करते हैं। राजन्! उसके ऐसे बाण चलानेपर आपमें कौन-सी ऐसी शक्ति है, जो उसका सामना कर सके। उससे तो आप परास्त हो ही जायँगे। उसने जो यह कहा है—'मूर्ख! मैं देखते ही बाणोंसे तुमको मार डालूँगी।' इसका अभिप्राय भी कुछ और ही है। पर इसके अनभिज्ञ पुरुष उसके इस भावको नहीं समझ पाते। वह कहती है—'रणरूपी शय्यापर तुम्हारा स्वामी मुझसे परास्त हो जायगा।' उसका यह कथन विपरीत रतिके अभिप्रायसे हुआ है—यों समझना चाहिये। उसने जो कहा है— 'तुम्हारे स्वामीके प्राण हर लूँगी' वह भी ठीक ही है। राजन्! वीर्यको ही प्राण कहते हैं। वीर्यके अभावमें शरीर नष्टप्राय हो जाता है। इस विशेष व्यङ्ग्योक्तिसे वह सुन्दरी स्त्री आपको पति चुन रही है। रसशास्त्रके पारगामी विद्वान् पुरुष विचारपूर्वक इस कथनके अभिप्रायको समझ लें। महाराज! इस रहस्यको जानकर आपको भी रसयुक्त व्यवहार करना चाहिये। उसके लिये साम और दान—ये दो ही उपाय समीचीन हैं।

'वह सुन्दरी क्रोध अथवा अभिमानमें भरी रहनेपर भी आपके अनुकूल हो जायगी। उसीके समान मीठे वचनोंका प्रयोग करके मैं उसे आपके पास ले आऊँगा। राजन्! बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन। उसे आपके वशमें कर देना अब मेरे लिये परम कर्तव्य हो गया है। मैं अभी जाता हूँ और ऐसा प्रयत्न करूँगा कि वह स्त्री दासीकी भाँति निरन्तर आपकी सेवामें तत्पर हो जाय।'

व्यासजी कहते हैं—विरूपाक्षकी ऐसी बातें सुनकर रहस्यके पूर्ण जानकार ताम्रने महिषासुरसे कहा—'राजन्! आप मेरी कुछ

बात सुननेकी कृपा करें। मैं प्रमाणयुक्त धार्मिक बात कहता हूँ, जो रस और नीतिसे भी संयुक्त है। यह स्त्री पूर्ण विदुषी जान पड़ती है। कामसे आतुर होकर आपसे प्रेम करनेके लिये इसका आगमन नहीं हुआ है। मानद ! उसके कहे हुए कोई भी वचन व्यङ्ग्यात्मक नहीं हैं। महाबाहो ! बिना किसी सहायकको लिये एक नवयुवती स्त्रीने आनेका साहस किया है—यह कैसी विचित्र बात है ! मनको मुग्ध करनेवाली इस देवीका रूप भी बड़ा विलक्षण है। त्रिलोकीमें किसीने भी अठारह भुजावाली स्त्रीको न कभी सुना और न देखा ही है। इस कल्याणीमें असीम पराक्रम भरा है। राजन् ! जितनी भुजाएँ हैं, उतने ही सुदृढ़ आयुधोंको भी इसने धारण कर रखा है। मेरी समझसे ये सारी बातें कालकी करतूत हैं। अब निश्चय ही कुछ प्रतिकूल घटनाएँ घटनेवाली हैं। मैंने रातमें स्वप्न भी अनिष्टसूचक ही देखा है; इससे मुझे जान पड़ता है, अब यमराजका डेरा यहाँ जम गया है। रात बीत चुकी थी, उषाकाल हो गया था। उसी समय मुझे स्वप्नमें दिखायी पड़ा है—'घरके आँगनमें काले रंगकी साड़ी पहने हुए कोई स्त्री विलाप कर रही है।' यह मृत्युसूचक स्वप्न विचारणीय है। रातमें भयंकर पक्षी घर-घर घूमकर रो रहे हैं; इससे मैं जानता हूँ, कोई भयानक अनिष्टका कारण अवश्य उपस्थित होनेवाला है। परिणाम भी दृष्टिगोचर हो रहा है—जो कि वह स्त्री युद्ध करनेके लिये निश्चित विचार करके आपको बुला रही है। राजन् ! यह स्त्री न मानुषी है, न गान्धर्वी और न आसुरी ही। इसे देवताओंकी रची हुई माया समझना चाहिये। मोहित करना इसका स्वाभाविक गुण है। इस अवसरपर मनमें कायरता लाना अवश्य ही अवाञ्छनीय है। जो कुछ भी हो—युद्ध करना ही समुचित है। जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। प्रारब्धसे सम्बन्ध रखनेवाले अच्छे अथवा बुरे फलको कौन जान सकता है। इस विषयमें सभी अनभिज्ञ हैं। अतएव मेधावी पुरुषको चाहिये कि विचारपूर्वक धैर्य धारण करके स्थिर बना रहे। राजन् ! मनुष्योंके जीवन और मरणके विषयमें दैवका अमिट शासन चलता है। त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो उसे विफल करनेमें समर्थ हो सके।'

महिषासुरने कहा—महाभाग ताम्र ! तुम युद्ध करनेके लिये निश्चित विचार करके जाओ। उस स्वाभिमानिनी सुन्दरी स्त्रीको धर्मपूर्वक परास्त करके मेरे पास ले आना। यदि वह सुन्दरी संग्राममें तुम्हारी अधीनता न स्वीकार करे, तब भी उसको तुरंत मार डालना अनुचित होगा। फिर, किसी दूसरे ही प्रयत्नसे उसे वशमें करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। अजी, तुम तो सर्वज्ञानसम्पन्न वीर पुरुष हो। कामशास्त्रमें भी तुमने सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त की है। जिस किसी भी उपायसे उस सुन्दरीको वशमें कर लेना परम आवश्यक है। वीर ! महाबाहो ! तुम अभी एक विशाल सेना साथ लेकर वहाँ पहुँचो। जाकर बार-बार विचार करके उसके हार्दिक अभिप्रायको समझनेकी चेष्टा करना। काम अथवा वैर—किस उद्देश्यको लेकर वह यहाँ आयी है, यह जानना बहुत आवश्यक है। अथवा वह किसकी माया है, सर्वप्रथम यह निश्चय करके उसके अभिलषित कार्यपर विचार करना चाहिये। इसके पश्चात् अपनी योग्यता और बलके अनुसार युद्ध करना समुचित है।

'कायरता' और 'निर्दयता'—दोनों ही बिलकुल अवाञ्छनीय हैं। उसके मनके अनुसार ही तुम्हें भी व्यवहार करना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—ताम्रका मस्तक मृत्युका आसन बन चुका था। उसने महिषासुरकी उक्त बातें सुनकर सेना साथ ले ली और उसे प्रणाम करके वह युद्धके लिये चल पड़ा। जाते समय मार्गमें उस दुरात्मा दानवको यमराजके पथको प्रदर्शित करनेवाले बहुत-से भयंकर अपशकुन दिखायी पड़े। उसका मन भय और चिन्तासे व्याकुल हो गया। आगे बढ़नेपर ताम्रने उन भगवतीको देखा। उस समय देवी सिंहपर सवार थीं। सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। समस्त आयुधोंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। ताम्र सामनीतिका प्रयोग करके विनीत बनकर सामने खड़ा हो नम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें भगवती जगदम्बासे कहने लगा—'देवी ! मस्तकपर सुन्दर सींग धारण करनेवाले दैत्योंके सरदार महिषासुर तुम्हारे रूप और गुणोंपर अपनेको निछावर कर चुके हैं। तुमसे अपना विवाह करनेके लिये उनकी हार्दिक अभिलाषा है। विशाल नेत्रोंसे शोभा पानेवाली सुन्दरी ! महिषासुर देवताओंके लिये भी अजेय हैं। तुम उनका मनोरथ पूर्ण करो। उन्हें पतिरूपसे प्राप्त करके अद्भुत नन्दनवनमें विहरनेका सुअवसर हाथसे मत खोओ। सर्वाङ्गसुन्दर शरीरके लिये सभी सुख सुलभ होते हैं। अतः ऐसे कमनीय कलेवरको पाकर सब प्रकारसे सुख भोगना और दुःखको दूर रखना ही तुम्हारे लिये समीचीन है। करभोरु ! तुम्हें इतने आयुध धारण करनेकी क्या आवश्यकता है ? कमल-जैसे कोमल ये तुम्हारे हाथ पुष्पोंके गेंद पकड़ने योग्य हैं। भौंहरूपी धनुषके रहते हुए इस धनुषकी क्या आवश्यकता रह जाती है। तुम्हारे कटाक्ष अचूक बाण हैं, फिर इन लौकिक बाणोंसे क्या प्रयोजन है। संसारमें युद्धको दुःखका मूल कारण समझा जाता है। इस रहस्यके जानकार मानवको युद्ध नहीं करना चाहिये। लोभासक्त अनुरागी व्यक्ति ही परस्पर लड़ते-भिड़ते हैं। पुष्पोंके द्वारा भी मार-पीट करना अवाञ्छनीय है, फिर तीखे तीरोंसे युद्ध करनेकी तो बात ही क्या है; क्योंकि अपने अङ्गोंका छिद जाना किसीके लिये भी प्रसन्नताका कारण नहीं बन सकता। अतएव सुन्दरी ! तुम्हें कृपा करनी चाहिये। देवता और दानव—सभी हमारे महाराजका सम्मान करते हैं। तुम उन्हें अपना स्वामी बना लो। वे तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करेंगे। सब प्रकारसे तुम उनकी पटरानी बनकर रहोगी। इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। देवी ! मेरी बात मानो। इससे तुम्हें सर्वोत्तम सुख सुलभ होगा। यह निश्चित है कि संग्राममें कष्ट भोगनेके पश्चात् विजयी हो जाना संदेहसे मुक्त विषय नहीं है। सुन्दरी ! तुम्हें राजनीतिका सम्यक् ज्ञान है। हजारों वर्षोंतक सम्पूर्ण राज्य-सुख भोगनेकी कृपा करो। तुम्हारा भावी सुशील पुत्र इस राज्यका उत्तराधिकारी होगा। अतः जवानीमें भोग-विलास करनेके पश्चात् बुढ़ापेमें भी तुम सुखसे जीवन व्यतीत करोगी।'

(अध्याय १०-११)

☆

# ताम्रका भागकर लौट आना, महिषासुरका मन्त्रियोंके साथ परामर्श करना और वाष्कल तथा दुर्मुखको भेजना, देवीके द्वारा वाष्कल और दुर्मुखका वध

व्यासजी कहते हैं—ताम्रकी उपर्युक्त बात सुनकर भगवतीका मुखमण्डल मुसकानसे भर गया। मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें वे उससे कहने लगीं।

देवीने कहा—ताम्र ! तेरा मूर्ख स्वामी महिषासुर अब मृत्युको गले लगाना चाहता है। उस अज्ञानीके ऊपर कामदेवके बाण असर कर गये हैं। तू जा और उससे कह दे कि जैसी तेरी जन्मदाता भैंस है, जो घास-फूस खाकर तगड़ी बनी रहती है, जिसकी लम्बी पूँछ है, बड़ा-सा पेट है और सिरपर सींग सुशोभित हैं, मैं वैसी नहीं हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, कुबेर एवं अग्नितकको भी मैं पति बनाना नहीं चाहती। इन सब प्रधान देवताओंको छोड़कर किस गुणकी विशेषतासे मैं पशुको स्वामी बनानेका निन्दनीय काम करूँगी। मैं पतिको वरण करनेवाली स्त्री नहीं हूँ। मेरे शक्तिशाली पतिदेव विराजमान हैं। वे सबके कर्ता, साक्षी, अकर्ता और निःस्पृह हैं। निर्गुण, निर्मम, अनन्त, निरालम्ब, निराश्रय, सर्वज्ञ, सर्वगामी, पूर्ण, साक्षी, पूर्णाशय एवं कल्याणस्वरूप उनका श्रीविग्रह है। वे सर्वत्र विराजमान हैं। क्षमा और शान्तिके वे साकार विग्रह हैं। सब कुछ देखने और समझनेकी शक्ति उन्हें सुलभ है। ऐसे सुयोग्यतम पतिको छोड़कर मूर्ख महिषासुरकी सेवा करनेके लिये मैं कैसे तैयार हो सकती हूँ। तू सँभलकर युद्ध कर। अभी तुझे यमराजकी सवारीके लिये नियुक्त कर देती हूँ। अथवा तेरी पीठपर पानी लादकर जनताको जल पहुँचानेकी व्यवस्था करूँगी। अरे नीच ! यदि तुझे प्राणोंका लोभ है तो सम्पूर्ण दानवोंके साथ शीघ्र ही पाताल भाग जा। अन्यथा संग्राममें तू मुझसे नहीं बच सकता। दोनों एक समान हों, तभी उनका संयोग संसारमें सुखदायी हो सकता है। अन्यथा अज्ञानसे यदि विषमतामें सम्बन्धकी कल्पना कर ली जाय तो दुःख ही उठाने पड़ते हैं। तेरी बुद्धिपर पत्थर पड़ गये हैं, इसीसे तू कहता है—'भामिनी ! तुम मेरे महाराजकी उपासना करो।' कहाँ मैं और कहाँ सींगवाला महिषासुर। ऐसे दो व्यक्तियोंमें कैसा सम्बन्ध ? जा अथवा युद्ध कर—जैसी तेरी इच्छा हो, कर सकता है। मैं तुझे सपरिवार मृत्युके मुखमें झोंक दूँगी। युद्ध अभीष्ट न हो तो इस लोकको छोड़कर अन्यत्र सुखसे जीवन व्यतीत कर।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवती जगदम्बाने बड़ी अद्भुत घोर गर्जना की। उस अवसरपर उनके कल्पान्त-सदृश गर्जनसे दैत्योंके मनमें आतङ्क छा गया। ऐसी गम्भीर गर्जना हुई कि उसके प्रभावसे पृथ्वी काँपने लगी, पहाड़ डगमगा गये तथा दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भपात आरम्भ हो गया। उस शब्दको सुनकर ताम्रका मन भयसे व्याप्त हो गया और वह वहाँसे भागकर महिषासुरके पास चला गया। यही नहीं; किंतु उस नगरके जितने दैत्य थे, उनका भी मन चिन्तासे आकुल हो उठा। राजन् ! उन सबके कान बहरे हो गये। एकमात्र भाग जाना ही उनका ध्येय रह गया। उसी क्षण क्रोधमें आविष्ट होकर सिंहने भी भीषण गर्जना की। उस भैरव-नादके कारण दैत्योंके रोम-रोममें भय भर गया।

ताम्रको वापस आया देखकर महिषासुरकी बुद्धि भी चौंधिया गयी। तब मन्त्रियोंके साथ बैठकर वह परामर्श करने लगा—'अब क्या करना चाहिये। दुर्गका आश्रय लिया जाय अथवा युद्ध हो या युद्ध-भूमिसे निकलकर भाग चलें ? महानुभाव दानवो ! आपलोगोंको क्या यहाँसे भाग जानेमें ही कल्याणकी सम्भावना दीखती है ? आप सब-के-सब बुद्धिमान्, युद्धमें कभी पीछे पैर न रखनेवाले और शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् हैं। इस अवसरपर कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये कोई अत्यन्त गुप्त मन्त्रणा करना परम आवश्यक है। राज्यकी स्थितिमें मन्त्रणाको ही प्रधान कारण माना गया है। राज्यको सुरक्षित रखनेकी इच्छा हो तो राजाके लिये सदाचारी विद्वान् मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करना अनिवार्य है। मन्त्रणाका भेद फूट जानेपर राज्य तथा राजा दोनोंका विनाश हो सकता है। अपना विचार सबको विदित न हो जाय—इस भयसे कल्याणकामी पुरुष अपने अभिप्रायको भलीभाँति गुप्त रखते हैं। अतएव इस समय मन्त्रिमण्डल देश और कालके अनुसार अपना हेतुयुक्त हितकारक मत प्रकट करे। नीतिपूर्वक विचार करके ही मत व्यक्त करना चाहिये। यहाँ जो यह देवनिर्मित स्त्री आयी है, इसमें अपार पराक्रम है। अकेले ही निराधार इसके यहाँ आनेका क्या कारण है—इसपर सभी विचार करें। यह युवती स्त्री युद्धके लिये बार-बार आह्वान कर रही है, इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा। युद्ध छिड़ जानेपर विजयश्री मिलेगी अथवा नहीं— त्रिलोकीमें यह कौन जान सकता है। बहुतोंकी विजय और एककी हार होती है—यह भी निश्चित बात नहीं है; क्योंकि युद्धमें जय और पराजयकी बात सदा दैवके अधीन समझनी चाहिये। उपायके समर्थक कहते हैं—'अदृष्ट अथवा दैव क्या है और उसे किसने देखा है ?' उस दैवकी सत्तामें क्या प्रमाण माना जाय ? केवल कायर व्यक्ति ही उसका आश्रय लेते हैं। शक्तिशाली पुरुष उस दैवको कहीं भी नहीं देखते।' इससे सिद्ध होता है कि उद्यम और दैव— ये दो पक्ष हैं। शूरवीर पुरुषके मनमें उद्यमकी और कायर व्यक्तिके मनमें दैवकी मान्यता है। बुद्धिपूर्वक इन सब बातोंपर विचार करके उत्तम कार्य करना ही श्रेयस्कर है।

व्यासजी कहते हैं—अपने स्वामी महिषासुरके सारगर्भित वचन सुनकर महान् यशस्वी विडालाक्ष हाथ जोड़कर कहने लगा—'राजन् ! विशाल नेत्रोंवाली इस स्त्रीके विषयमें फिरसे यत्नपूर्वक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये— यह किस उद्देश्यसे और कहाँसे यहाँ आयी है ? किसके साथ इसका पाणिग्रहण हुआ है। स्त्रीके हाथसे आपका निधन निश्चित है, देवता इस विषयको भलीभाँति जानते हैं। जान पड़ता है उन्होंने ही अपने सामूहिक तेजसे उत्पन्न करके इस कमलनयनीको यहाँ भेजा है ! वे सब-के-सब युद्ध देखनेकी अभिलाषासे छिपकर सम्प्रति आकाशमें वर्तमान हैं। उन्हें भी युद्धकी कम लालसा नहीं है। समय आनेपर वे सभी इस स्त्रीके सहायक बन जायँगे। विष्णु प्रभृति वे प्रधान देवता समरभूमिमें इस कामिनीको अग्रसर बनाकर हमारा वध करेंगे। साथ ही, वह स्त्री आपको मार डालेगी। राजन् ! मेरी समझसे उन देवताओंका यही मनोरथ है। भविष्यमें होनेवाले परिणामकी भलीभाँति

जानकारी मेरे लिये सुलभ नहीं है। प्रभो ! आप इस समय युद्ध न करें। बस, अब इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। कार्यकी प्रधानता मानकर हम निरन्तर आपके लिये मर-मिटनेको तैयार हैं। आपके साथ आनन्दका अवसर भी तो हमें मिलता ही है। हम आपके अनुचर हैं। यही हमारा धर्म है। राजन् ! महान् विचारणीय विषय यह है कि जो सर्वथा असहाय होते हुए भी यह स्त्री हमलोगोंके साथ युद्ध करनेके प्रस्तावपर अडिग है। हम बलाभिमानी वीरोंके पास इतने सैनिक हैं, फिर भी इसकी यह कुछ भी परवा नहीं करती।

दुर्मुख बोला—राजन् ! मैं जानता हूँ, आज युद्धमें हमारी विजय अवश्य होगी। पीछे पैर रखना सर्वथा अवाञ्छनीय है। ऐसा करनेसे हमारी कीर्तिमें कलङ्क लगता है। जब इन्द्र आदि देवताओंके साथ लोहा लेना पड़ा था, तब भी तो भागने-जैसे निन्दित कार्यका आश्रय नहीं लिया गया था; फिर इस अकेली स्त्रीके समक्ष ऐसा क्यों किया जाय। अतएव युद्ध करना ही परम आवश्यक है। युद्धमें विजय अथवा मरण—ये दो ही होते हैं। जो होनी है, उसका टलना असम्भव है। फिर जानकार पुरुष क्यों चिन्ता करे। संग्राममें काम आ जानेपर यश मिलता है और जीवित रहनेपर सुखकी प्राप्ति होती है। ये दोनों ही फल मनके अनुकूल हैं—यह मानकर अब युद्ध करनेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये। भाग जानेपर जगत्में निन्दा होगी। आयु समाप्त हो जानेपर मरना तो निश्चित ही है। अतएव जीने और मरनेके विषयमें व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—वाष्कल बातचीत करनेमें बड़ा कुशल था। उसने दुर्मुखकी बात सुननेके पश्चात् हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक महिषासुरसे यह वचन कहा।

वाष्कल बोला—राजन् ! यह कार्य कायर व्यक्तियोंके लिये ही अप्रिय है। आपको इस कार्यके विषयमें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं अकेले ही चञ्चल नेत्रोंवाली चण्डीको मार डालूँगा। नृपवर ! मनमें उत्साह रखिये। राजन् ! मैं निर्भीक होकर अद्भुत युद्ध करूँगा। नरेश्वर ! मेरे प्रयाससे वह चण्डिका यमराजके घर अवश्य पहुँच जायगी। मैं इन्द्र, वरुण, कुबेर, सूर्य, चन्द्रमा, यमराज, अग्नि, वायु एवं विष्णु और शंकरसे भी नहीं डरता। फिर अभिमानमें चूर रहनेवाली यह अकेली स्त्री मेरा क्या कर सकती है ? मेरे चमकीले बाणोंसे उसके प्राणपखेरू उड़ जायँगे। आज आप मेरी भुजाओंका बल देखें। फिर सुखपूर्वक विहार कीजियेगा। इसके साथ युद्ध करनेके लिये आपको स्वयं संग्राममें नहीं जाना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार अभिमानमें प्रमत्त रहनेवाला वाष्कल महिषासुरके प्रति अपना अभिप्राय व्यक्त कर गया। तत्पश्चात् दुर्धर उस राक्षसराजको प्रणाम करके कहने लगा।

दुर्धरने कहा—महाराज ! देवताओंद्वारा रची हुई उस देवीको मैं परास्त कर दूँगा। अठारह भुजा धारण करके वह सुन्दरी अवश्य ही किसी कारणवश यहाँ आयी है। राजन् ! देवताओंकी बनायी हुई यह माया है। आपको भयभीत करनेके लिये ही इसका यहाँ आगमन हुआ है। यह केवल डरानेके लिये ही है—यों जानकर आप अपने मनका मोह त्याग दीजिये। भूपाल ! यह राजनीति है। अब मन्त्रियोंके सम्बन्धमें कुछ

बातें कहता हूँ, सुनिये। कितने ही मन्त्री सात्त्विक और राजस प्रकृतिके होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ तामस भी होते हैं। दानवेश्वर ! यों जगत्‌में मन्त्रियोंके तीन भेद माने जाते हैं। सात्त्विक मन्त्री अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर स्वामीका कार्य सम्पन्न करते हैं। उनके मनमें स्वामीके कार्यसे किंचिन्मात्र भी विरोध नहीं रहता। वे धार्मिक और मन्त्रशास्त्रके पारगामी विद्वान् होते हैं। एकाग्र होकर अपने कर्तव्यमें लगे रहते हैं। राजस मन्त्रियोंके मनमें सदा भेदभाव बना रहता है। समय पाकर वे अपना कार्य साध लेते हैं। स्वामीका कार्य भले ही बिगड़ जाय, इसकी उन्हें परवा नहीं रहती। किसी समय तो शत्रुओंके प्रलोभनमें पड़कर वे विरोधी पक्षमें भी मिल जाते हैं। घरपर रहते हुए ही अपने स्वामीमें जो त्रुटि है, इसका भेद शत्रुके सामने प्रकट कर देना उनका स्वभाव बन जाता है। उनके कार्यमें सदा भेद रहता है। म्यानमें छिपी हुई तलवारकी भाँति वे घातक होते हैं। युद्धका अवसर आनेपर स्वामीके मनमें आतङ्क फैला देना उनका स्वभाव हो जाता है। राजन् ! उन मन्त्रियोंपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। विश्वस्त हो जानेपर काम बिगड़ जानेकी सम्भावना रहती है, मन्त्र-हानि तो सदा ही होती है। दुराचारी मन्त्रियोंपर विश्वास कर लिया जाय तो लोभके वशीभूत होकर वे क्या नहीं कर सकते। तामस प्रकृति-वाले मन्त्रियोंका तो और भी नीच स्वभाव होता है। वे मूर्ख सदा पापमें ही निरत रहते हैं। अतएव राजेन्द्र ! मैं स्वयं मोर्चेपर जाकर इस कार्यका सम्पादन करूँगा। आप सब प्रकारसे निश्चिन्त रहिये। उस दुराचारिणी स्त्रीको लेकर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। आप मेरे स्वामी हैं। मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा। आप मेरे धैर्य और सामर्थ्यको देखें।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर महाबाहु वाष्कल और दुर्मुख वहाँसे चल पड़े। उनके सर्वाङ्गसे अभिमान टपक रहा था। सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके वे पूर्ण जानकार थे, अतएव वे मदोन्मत्त दानव समराङ्गणमें पहुँच गये। वहाँ भगवती जगदम्बा विराजमान थीं। उनसे वे मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें कहने लगे—'देवी ! जिन महात्मा महिषासुरने देवताओंको परास्त कर दिया है, उन्हें तुम पतिरूपमें स्वीकार कर लो। सुन्दरी ! वे नरेश सम्पूर्ण दैत्योंके अधिष्ठाता हैं। सर्वलक्षणसम्पन्न सुन्दर मनुष्यका रूप धारण करके दिव्य भूषणोंसे आभूषित होकर एकान्तमें वे तुमसे भेंट करेंगे। शुचिस्मिते ! त्रिलोकीकी सारी सम्पत्ति यथेच्छ भोगनेका सुअवसर तुम्हें प्राप्त होगा। महिषासुरकी अङ्गकान्ति बड़ी कमनीय है। मनोयोगपूर्वक तुम उनसे प्रेम कर लो। पिकबैनी ! ये नरेश महान् पराक्रमी हैं, इन्हें पति बनाकर तुम सांसारिक उस अद्भुत सुखको, जिसके लिये स्त्रियाँ प्रायः लालायित रहती हैं, प्राप्त करोगी।'

श्रीदेवीने कहा—अरे धूर्तो ! तुम क्या यह समझ रहे हो कि कामके चंगुलमें फँसी हुई यह कोई अत्यन्त अशिक्षित अबला है ? मैं महान् मूर्ख महिषासुरकी सेवा कैसे करूँ ? सम्भ्रान्त कुलकी स्त्रियाँ जो कुल, शील और गुणमें समानता रखता है, वैसे पुरुषकी ही उपासना करती हैं। बल्कि रूप, चातुरी, बुद्धि, शील और क्षमा आदिमें उसे और भी बढ़-चढ़कर होना चाहिये। यह महिषासुर तो पशुका शरीर धारण

किये रहता है। पशुओंमें भी इसकी जाति अधम मानी जाती है, फिर कौन देवरूपिणी ऐसी स्त्री होगी, जो कामके वशीभूत होकर इस पशुको पति बनाना चाहेगी। तुम अभी अपने स्वामीके पास चले जाओ। अरे वाष्कल और दुर्मुख! तुम तुरंत अपने स्वामी महिषासुरके पास, जिसके सिरपर बड़े-बड़े सींग हैं तथा जो हाथीकी भाँति धूल-धूसरित पड़ा रहता है, जाओ और मेरे ये वचन उसे कह दो—'तू पातालमें चला जा अथवा आकर मेरे साथ युद्ध कर। युद्ध होनेपर ही देवराज इन्द्र निर्भय हो सकते हैं—यह ध्रुव सत्य है। मैं तुझे मारकर ही जाऊँगी। बिना मारे नहीं जा सकती। प्रचण्ड मूर्ख! मेरी इस बातपर विचार करके जैसी इच्छा हो, वैसा कर। चार पैरवाले जानवर! मेरे समक्ष विजयी हुए बिना कहीं भी भागमें—चाहे वह पृथ्वीका कोई भाग हो, पर्वतकी गुफा हो अथवा आकाश ही क्यों न हो—तुझे स्थान मिलना असम्भव है।'

व्यासजी कहते हैं—भगवतीके यों कहनेपर वाष्कल और दुर्मुख—दोनों दैत्य क्रोधसे तमतमा उठे। उनकी आँखें नाचने लगीं। वे दोनों वीर हाथमें धनुष और बाण लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। भगवती जगदम्बा गम्भीर गर्जना करके निर्भीकतापूर्वक विराजमान थीं। कुरु-वंशको सुशोभित करनेवाले राजन्! वे दानव पूरी शक्ति लगाकर देवीके ऊपर बाण बरसाने लगे। भगवतीको देवताओंका कार्य सिद्ध करना था। वे सुमधुर गर्जन करके दानवोंके प्रति प्रचुर बाण-वर्षा करनेको उद्यत हो गयीं। उन दोनों दैत्योंमें वाष्कल बड़ा चञ्चल था। वह तुरंत समराङ्गणमें भगवतीके सामने आ गया। अभी दुर्मुख दर्शक बनकर देवीकी ओर दृष्टि लगाये हुए खड़ा था। फिर तो वाष्कल और देवीमें अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। बाण, तलवार और परिघके आघातोंसे भीरुजनोंके मनमें ही भय उत्पन्न होता है। उन भगवती जगदम्बाको क्या डर था। युद्धमें अपना उत्कर्ष दिखानेवाले उस दैत्यको देखकर उन्हें क्रोध हो आया। तेज धारवाले भयानक पाँच बाणोंको धनुषपर चढ़ाकर उन्होंने उसे कानतक खींचा और उन्हें वाष्कलपर चला दिया। दैत्यवर वाष्कलके पास भी वैसे ही तीखे तीर थे। उन तीरोंसे उसने देवीके बाण काट गिराये। साथ ही उसने सात बाणोंसे भगवती सिंहवाहिनीके ऊपर चोट की। देवीने भी अत्यन्त तीखे पीत वर्णवाले दस बाणोंसे उस नीच दानवपर आघात किया, साथ ही दानवके बाण अपने सायकोंसे काट दिये। वे बार-बार अट्टहास करने लगीं। भगवतीके पास एक अर्धचन्द्र नामक बाण था। उससे उन्होंने वाष्कलके धनुषको छिन्न-भिन्न कर दिया। तब वह दैत्य हाथमें गदा लेकर मारनेके लिये देवीपर टूट पड़ा। यह देखकर चण्डिकाने अपने गदा-प्रहारसे उसे धराशायी बना दिया। वाष्कल बड़ा पराक्रमी था। दो घड़ीतक जमीन उसकी शय्या बनी रही। वह फिर उठा और भगवती चण्डीपर गदा चलाने लगा। उस दैत्यको सामने आते देखकर देवी क्रोधसे उबल उठीं। त्रिशूलसे उसकी छातीमें भीषण प्रहार किया। चोट लगते ही वाष्कल जमीनपर गिर पड़ा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उस दुराचारी दानवके गिरते ही उसकी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। आकाशमें स्थित देवताओंको अपार हर्ष हुआ। भगवती जगदम्बाकी वे जय-जयकार मनाने लगे।

वाष्कलके मर जानेपर अत्यन्त शक्तिशाली दुर्मुख समराङ्गणमें देवीके सामने उपस्थित हुआ। क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयी थीं। उस समय श्रीमान् दुर्मुख कवच पहनकर रथपर बैठा था। उसके हाथमें धनुष और बाण थे। 'अरी अबले ! ठहरो-ठहरो।' यों बार-बार उसके मुँहसे आवाज निकल रही थी। उसे आगे बढ़ते देखकर भगवतीने शङ्खध्वनि की। उस दानवका क्रोध बढ़ाती हुई वे अपना धनुष टंकारने लगीं। तब दुर्मुख भी बाण चलानेको उद्यत हो गया। उसके तीखे एवं शीघ्रगामी बाण विषधर सर्पके समान भयंकर थे। भगवती महामायाने अपने सायकोंसे उसके तीर काट डाले और वे गर्जने लगीं। राजन् ! अब दोनोंमें महान् भयंकर संग्राम होने लगा। बाण, शक्ति, गदा, मुसल और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे वे परस्पर प्रहार करने लगे। उस समय युद्धस्थलमें रुधिरकी नदी बह चली। उस नदीके तटपर कटकर गिरे हुए वीरोंके मस्तक इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो तैरनेकी कला सीखनेवाले यमराजके दूत अभ्यास करनेके लिये तूँबी एकत्रित किये हुए हों। उस अवसरपर वहाँकी भूमि बड़ी भयंकर हो गयी थी; क्योंकि सर्वत्र कटी हुई लाशें बिछी थीं। उन्हें खानेवाले शृगाल आदि क्रूर जानवरोंका यूथ जुटा था। सियार, कुत्ते, कौवे, काँक, अयोमुख नामक पक्षी, गीध और बाज उन दुष्ट दानवोंके मृत शरीरोंको नोच-नोचकर खा रहे थे। मृतकोंके संसर्गसे अत्यन्त दुर्गन्धित हवा चलने लगी। मांसभक्षी जानवर बड़े जोरोंसे चिल्ला-चिल्लाकर भयानक आवाज कर रहे थे। तब दुरात्मा दुर्मुख क्रोधसे तिलमिला उठा। कालने उसकी विवेक-शक्ति नष्ट कर दी थी। अपनी सुन्दर भुजा ऊपर उठाकर अभिमानके साथ वह देवीसे कहने लगा—'चण्डी ! तुम्हारे सभी अङ्ग बड़े सुकोमल हैं। सुन्दरी ! तुम अब भी मान जाओ और मद्यपान करके मस्त रहनेवाले दानवेश्वर महिषासुरकी सेवा करना स्वीकार कर लो। अन्यथा आज ही मैं तुम्हें कालका कलेवा बना दूँगा।'

देवी बोलीं—तेरी मौत सिरपर नाच रही है। तू कालसे मोहित है। अतः जी-भरकर अनाप-शनाप बक ले। मैं अभी-अभी तुझे यमराजके घर वैसे ही भेजनेवाली हूँ, जैसे इस वाष्कलको भेज दिया है। मूर्ख ! जा अथवा रह। तुझे मरना ही अभीष्ट हो तो मैं पहले तेरे प्राण हरकर मूढ़बुद्धि महिषासुरको मारनेकी व्यवस्था करूँगी।

दुर्मुख मरनेके लिये उद्यत होकर आया था। भगवती चण्डिकाकी बात सुनकर उसने उनपर बाणोंकी भयंकर वर्षा आरम्भ कर दी। देवीने अपने बाणोंसे दुर्मुखके बाण काट दिये। साथ ही उस दानवपर इस प्रकार बड़े जोरसे प्रहार किया, मानो इन्द्र वृत्रासुरपर वज्र फेंक रहे हों। अब भगवती चण्डिका और दुर्मुख—दोनोंमें परस्पर घमासान लड़ाई होने लगी। देखकर कातरोंका कलेजा दहल उठता था और शूरवीर उत्साहित हो रहे थे। देवीने बड़ी शीघ्रताके साथ दुर्मुखके धनुषको काट दिया। उनके वैसे ही पाँच बाणोंसे दानवका उत्तम रथ भी छिन्न-भिन्न हो गया। रथ टूट जानेपर महाबाहु दुर्मुख दुर्धर्ष गदा हाथमें लेकर पैदल ही भगवतीकी ओर दौड़ा तथा पूरी शक्ति लगाकर सिंहके मस्तकपर उसने गदासे चोट पहुँचायी।

महाबली सिंह प्रहारसे व्यथित होनेपर भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ। गदा लेकर सामने खड़े हुए दुर्मुखको देखकर भगवती जगदम्बाने अपनी तीखी तलवारसे किरीटसहित उसके मस्तकको धड़से अलग कर दिया। मस्तक कट जानेपर दुर्मुखके प्राण प्रयाण कर गये। वह जमीनपर पड़ गया। अब देवता आनन्दसे विह्वल हो उठे। उन्होंने उच्च स्वरसे जयध्वनि आरम्भ कर दी, साथ ही वे देवीकी स्तुति करनेमें संलग्न हो गये। बहुत-से देवता आकाशमें स्थित होकर भगवतीके ऊपर पुष्प बरसाने लगे। उनके मुखसे जय-जयकारकी घोषणा हो रही थी। लड़ाईके मोर्चेपर दुर्मुखकी जीवनलीला समाप्त हो गयी—यह देखकर ऋषियों, सिद्धों, गन्धर्वों, विद्याधरों और किंनरोंके मुखपर प्रसन्नताकी किरणें चमक उठीं। (अध्याय १२-१३)

☆

## चिक्षुराख्य, ताम्राक्ष, असिलोमा और विडालाक्षका वध

व्यासजी कहते हैं—दुर्मुख युद्धमें काम आ गया—यह समाचार सुनकर महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित हो गया। 'यह क्या हो गया'—यों बार-बार वह सम्पूर्ण दानवोंसे पूछने लगा। उसने कहा—'दुर्मुख और वाष्कल बड़े शूरवीर दानव थे। एक सुकुमार कन्याके हाथ वे युद्धभूमिमें सदाके लिये सो गये—यह कितने महान् आश्चर्यकी बात है ! देखो, यही दैवका विधान है। इससे सिद्ध हो रहा है कि मनुष्य सर्वथा परतन्त्र हैं। उन्हें अच्छे-बुरे कर्मोंके अनुसार सुख और दुःखमें लगानेका अधिकार सदा एकमात्र प्रबल कालको ही है। ये दोनों प्रसिद्ध दानव थे, इनकी मृत्यु हो गयी ! इसके बाद अब क्या करना चाहिये ? बड़ी विषम परिस्थिति सामने आ गयी है। सब लोग परस्पर विचार करके जो उचित जान पड़े कहें।'

व्यासजी कहते हैं—राजेन्द्र ! इस प्रकार अमित पराक्रमी महिषासुरके कहनेपर उसका सेनाध्यक्ष महारथी चिक्षुराख्य बोला—'राजन् ! एक स्त्रीके मार डालनेमें कौन-सी चिन्ताकी बात है ? मैं उसका वध कर डालूँगा !' यों कहकर कुछ सैनिकोंको साथ ले वह रथपर बैठा और चल दिया। दूसरे शक्तिशाली ताम्रको उसने अपना अङ्गरक्षक बना लिया। चलते समय उसकी विशाल सेनाकी तुमुलध्वनिसे आकाश और दिशाएँ गूँज उठीं। चिक्षुराख्य आ रहा है—यह देखकर कल्याणमयी भगवती जगदम्बा बड़े अद्भुत ढंगसे शङ्खध्वनि, घण्टाध्वनि और धनुषकी टंकार करने लगीं। उस ध्वनिके प्रभावसे सम्पूर्ण राक्षसोंके हृदयमें आतङ्क छा गया ! 'यह क्या ?' यों कहकर वे भाग छूटे। भयके कारण उनका सर्वाङ्ग काँपने लगा। वे सब-के-सब भाग रहे थे। उनकी यह स्थिति देखकर चिक्षुराख्यके क्रोधकी सीमा नहीं रही। उसने दानवोंसे कहा—'तुम्हारे सामने कौन-सा ऐसा भय आ गया ? दैत्यो ! अभिमानमें चूर रहनेवाली इस स्त्रीको तो मैं आज ही बाणोंके द्वारा यमपुरी भेज दूँगा। तुमलोग निर्भय होकर लड़ाईके मोर्चेपर डटे रहो।' यों कहकर उस पराक्रमी दैत्यवरने हाथमें धनुष उठा लिया और समराङ्गणमें आकर वह निश्चिन्ततापूर्वक देवीसे कहने लगा—'विशाल नेत्रोंसे शोभा पानेवाली सुन्दरी ! तुम अन्य साधारण मनुष्योंको भयभीत करती हुई क्यों व्यर्थ गरज रही हो ? तुम्हारे इस

गर्जनको सुनकर मैं नहीं डर सकता। सुलोचने ! स्त्रीका वध करना दोष है तथा इस कार्यसे जगत्‌में अपकीर्ति फैलती है—यह जानकर मेरा चित्त तुम्हें मारनेसे हट-सा रहा है। सुन्दरी ! तुम-जैसी स्त्रियोंके लिये कटाक्षों और हाव-भावोंसे ही युद्धका काम सम्पन्न हो जाता है। कभी कहीं भी शस्त्रोंद्वारा इनका युद्ध नहीं हुआ है। सुजघने ! तुम्हारे मनमें भी मूर्खता ही भरी हुई है। तभी तो भोगसम्बन्धी सुखका परित्याग करके तुम युद्धकी अभिलाषा प्रकट कर रही हो ! युद्धमें तुम्हें किस गुणकी झलक मिल रही है ? समराङ्गणमें तलवार चलती है, गदासे प्रहार किये जाते हैं और चमकीले बाणोंसे शरीरोंकी धज्जियाँ उड़ा दी जाती हैं। प्राण निकल जानेपर सियार अपने मुँहसे नोच-नोचकर उस देहका अन्तिम संस्कार करते हैं। धूर्त कवियोंने ऐसी मृत्युकी अत्यन्त प्रशंसा गायी है। वे कहते हैं, युद्धभूमिमें प्राण त्यागे हुए वीरोंको स्वर्ग मिलता है। उनका यह कहना केवल अर्थवाद है। अतएव वरारोहे ! तुम्हारा मन जहाँ माने, वहीं चली जाओ। अथवा तुम्हें देवताओंका दमन करनेवाले मेरे स्वामी राजा महिषासुरकी उपासना करनी चाहिये।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार चिक्षुराख्य कह रहा था। भगवती जगदम्बा उसकी बात काटकर कहने लगीं—'अरे मूर्ख ! बुद्धिमान् पण्डितके समान बनकर क्या बक रहा है ? न तो तू नीतिशास्त्र जानता है और न आन्वीक्षिकी विद्या ही। न तूने वृद्ध पुरुषोंकी सेवा ही की और न तुझे धार्मिक बुद्धि ही सुलभ है। आजतक मूर्खकी सेवामें लगा रहा; अतएव तू भी मूर्ख ही रह गया। जब तुझे राजधर्म ज्ञात ही नहीं, तब मेरे सामने क्यों व्यर्थ बक रहा है ? मेरे द्वारा संग्राममें महिषासुर मारा जायगा। समराङ्गणकी भूमि रुधिरसे कीचड़ बन जायगी। यशका स्थिर स्तम्भ स्थापित होगा। इसके पश्चात् मैं सुखपूर्वक प्रयाण कर जाऊँगी। देवताओंको दुःख देनेवाला यह दुराचारी दानव महान् अभिमानी बन गया है। इसको मार देना मेरा परम कर्तव्य है। तू सावधान होकर युद्ध कर।'

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाके उपर्युक्त वचन सुनकर बलके अभिमानमें मतवाले रहनेवाले दानवोंने उनपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी, मानो दूसरे मेघ ही जलकी धारा उँड़ेल रहे हों। भगवतीने अपने तेज बाणोंसे चिक्षुराख्यके बाण काट डाले। साथ ही वे उसे तीरोंसे बींधने लगीं। देवीके बाण ऐसे तीक्ष्ण थे, मानो विषधर सर्प ही हों। उस समय भगवती और चिक्षुराख्य—दोनोंका वह परस्पर युद्ध आश्चर्यप्रद हो रहा था। जगदम्बाने सिंहपर विराजमान रहकर गदासे उस दानवपर चोट की। कठिन गदाघातको न सह सकनेके कारण चिक्षुराख्य मूर्च्छित हो गया। दो मुहूर्ततक अचेतना बनी रही। वह दुराचारी दानव पत्थरकी भाँति रथपर पड़ा रहा। शत्रुसेनाको कुचलनेकी शक्ति रखनेवाले ताम्रमें भी कम चपलता नहीं थी। चिक्षुराख्यको मूर्च्छित देखकर देवीसे लड़नेके लिये वह स्वभावतः युद्धभूमिमें आ डटा। उसे आते देखकर भगवती चण्डिका ठठाकर हँसीं और बोलीं—'दैत्यवर ! आओ, आओ, मैं अभी तुम्हें यमपुरी भेजनेकी व्यवस्था करती हूँ। तुमलोग स्वतः निर्बल हो। तुम्हारी आयु भी समाप्त हो चुकी है। अतः तुमलोगोंके आनेसे क्या काम सिद्ध हो सकता है। मूर्ख

महिषासुर घरपर रहकर जीनेके किस उपायमें लगा है ? तुम मूर्खोंके मर जानेपर भी मेरा क्या काम बनेगा। मेरे परिश्रमकी कोई सफलता नहीं हो सकेगी; क्योंकि देवताओंसे विरोध रखनेवाला नीच, महादुष्ट महिषासुर तो अभी जीवित ही है। अतएव तुमलोग घरपर जाकर महिषासुरको यहाँ भेज दो। मेरी जैसी स्थिति है, उसे आकर वह प्रचण्ड मूर्ख भी देख ले।'

भगवती जगदम्बाके ये वचन सुनकर ताम्र क्रोधमें भर गया। उसने देवीपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। उसके बाण धनुषकी डोरीपर चढ़ाकर कानतक खींचे जाते थे। भगवतीने भी ताम्राक्षका वध करनेके विचारसे धनुषपर बाण चढ़ाया और खींचकर उसपर छोड़ने लगीं। इतनेमें महाबली चिक्षुराख्यकी मूर्च्छा टूट गयी। वह उठकर बैठ गया। फिर तुरंत धनुष और बाण लेकर वह देवीके सामने आकर डट गया। चिक्षुराख्य और ताम्राक्ष—दोनों असीम पराक्रमी एवं महान् शूरवीर दानव थे। अब वे भगवती जगदम्बाके साथ समराङ्गणमें भिड़ गये। ताम्राक्षके पास लोहेका बना हुआ एक बहुत सुदृढ़ मूसल था। उससे उसने सिंहके मस्तकपर चोट की। साथ ही वह ठठाकर हँसा और गर्जने लगा। गर्जते हुए ताम्राक्षको देखकर देवीकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उन्होंने तुरंत अपनी चमचमाती हुई तलवारसे दानवका मस्तक धड़से अलग कर दिया। सिर कट जानेपर भी ताम्राक्षका धड़ हाथमें मूसल लिये हुए एक क्षणतक झूमता रहा। इसके बाद वह समराङ्गणमें पड़ गया। ताम्राक्षकी ऐसी स्थिति देखकर चिक्षुराख्यने झट तलवार उठा ली और वह भगवती चण्डीकी ओर दौड़ा। हाथमें तलवार लेकर सामने आते हुए उस दानवको देखकर भगवतीने उसपर पाँच बाणोंसे प्रहार किया। देवीके एक बाणसे चिक्षुराख्यकी तलवार कट गयी। दूसरे बाणसे उसका हाथ साफ हो गया और अन्य बाणोंसे उसका मस्तक धड़से अलग हो गया।

इस प्रकार चिक्षुराख्य और ताम्राक्ष—इन दोनों राक्षसोंका निधन हो गया। ये बड़े दुष्ट एवं संग्राममें अजेय माने जाते थे। इनके मर जानेपर सारी दानव-सेना भयभीत होकर चारों दिशाओंमें भाग चली। उन दानवोंकी मृत्यु देखकर सम्पूर्ण देवता आनन्दसे विह्वल हो उठे। उन्होंने आकाशमें विराजमान होकर पुष्पोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। वे भगवतीकी जय मनाने लगे। ऋषि, देवता, गन्धर्व, बेताल, सिद्ध और चारण—इन सबके मुँहसे बार-बार भगवती चण्डिकाकी विजय-घोषणा होने लगी।

व्यासजी कहते हैं—देवीने चिक्षुराख्य और ताम्राक्षको मार दिया—यह समाचार सुनकर महिषासुरके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। तब उसने देवीका वध करनेके लिये बहुत-से अमित-बलशाली दैत्योंको जानेकी आज्ञा दी। उन दैत्योंमें असिलोमा और विडालाक्ष—ये प्रमुख दानव थे। युद्धमें कोई इनका सामना नहीं कर सकता था। इन्होंने कवच पहन लिये, हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र ले लिये और विशाल सेनाके साथ समराङ्गणमें जा उपस्थित हुए। वहाँ इन्होंने देखा भगवती सिंहपर विराजमान हैं। उनके अठारह दिव्य भुजाएँ हैं। तलवार और ढाल आदि आयुधोंको उन्होंने धारण कर रखा है और वे दैत्योंका वध करनेके लिये सर्वथा संनद्ध हैं। तब असिलोमा देवीके सामने चला गया और

अत्यन्त नम्रताके साथ शान्तिपूर्वक देवीसे कहने लगा।

असिलोमा बोला—देवी ! सच्ची बात बताओ, तुमने किस प्रयोजनसे यहाँ आनेका कष्ट उठाया है और सुन्दरी ! इन निरपराधी दैत्योंको क्यों मार रही हो ? इसका कारण बतलानेकी कृपा करो। मैं अभी तुम्हारे साथ संधि करनेके लिये तैयार हूँ। वरारोहे ! सुवर्ण, मणि, रत्न और अच्छे-अच्छे पात्र—तुम्हें जिन वस्तुओंकी इच्छा हो, उन्हें लेकर शीघ्र यहाँसे पधारो, क्यों युद्धकी अभिलाषा प्रकट करती हो ? युद्धमें तो दुःख और संतापकी भरमार रहती है। महात्मा पुरुष कहते हैं कि युद्ध सम्पूर्ण सुखोंका विघातक है। तुम्हारा यह शरीर अत्यन्त सुकोमल है। पुष्पका आघात भी इसके लिये असह्य है। ऐसी स्थितिमें मुझे महान् आश्चर्य तो यह है कि तुम शस्त्रोंके आघात कैसे और क्यों सहनेके लिये तैयार हो ? चतुरताका फल है शान्तिपूर्वक निरन्तर सुख भोगना। अतएव तुम दुःखके हेतुभूत संग्रामकी क्यों इच्छा कर रही हो ? इस जगत्में सुख प्राप्त करना और दुःख त्यागना—यह साधारण नियम है। वह सुख भी नित्य और अनित्य-भेदसे दो प्रकारका बतलाया गया है। आत्मज्ञान-सम्बन्धी सुखको नित्य कहते हैं और भोगजनित सुख अनित्य माना गया है। वेद और शास्त्रके अर्थका चिन्तन करनेवाले विशिष्ट पुरुष भोगजनित अनित्य सुखको त्याज्य बताते हैं। वरानने ! यदि तुम्हें चार्वाकका सिद्धान्त मान्य हो, तब भी युद्धसे तो विरत हो ही जाना चाहिये। देवी ! इस जवानीको पाकर सर्वोत्तम भोगोंके भोगनेमें अपना समय सार्थक करो। कृशोदरी ! यदि परलोकके विषयमें तुम्हारी आस्था न हो, तब ऐसा करना चाहिये, नहीं तो शरीरमें यह युवावस्था भी क्षणभङ्गुर ही है—यह जानकर शीघ्र-से-शीघ्र श्रेष्ठ काम बना लेना चाहिये। जिससे दूसरेको दुःख हो, उस कार्यको ज्ञानीजन त्याग देते हैं। अतएव प्रीति-पूर्वक धर्म, अर्थ और कामका सेवन करना चाहिये। इसलिये कल्याणी ! तुम भी निरन्तर धार्मिक बुद्धिका आश्रय लो। अम्बिके ! दैत्योंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं किया है। फिर वे तुम्हारे हाथ क्यों मारे जायँ ? दया और धर्म परम पुरुषके शरीर हैं तथा सत्यको प्राण कहा गया है। अतएव विवेकीजनको चाहिये कि दया और सत्यकी सदा रक्षा करे। सुश्रोणी ! तुम दानवोंका संहार करनेपर तुली हो, इसका कारण तो बतानेकी कृपा करो।

देवीने कहा—महाबाहो ! मैं यहाँ क्यों आयी हूँ—यह तुम्हारा पहला प्रश्न है। इसे स्पष्ट करनेके पश्चात् दानववधका प्रयोजन बतलाऊँगी। दैत्य ! सम्पूर्ण लोकोंमें मेरा निरन्तर विचरण होता रहता है। प्राणियोंके उचित और अनुचित कार्योंको मैं साक्षीरूपसे सदा देखा करती हूँ। मुझे कभी भी न भोगकी इच्छा है, न लोभ है और न किसीके प्रति द्वेषभाव ही है। धर्मकी मर्यादा रखने तथा साधुजनोंका संरक्षण करनेके लिये इस धराधामपर मैं भ्रमण किया करती हूँ। इस नियत व्रतका मेरे द्वारा निरन्तर पालन होता रहता है। संत पुरुषोंकी रक्षा करना, वेदोंको सुरक्षित रखना तथा जो दुष्ट हैं, उन्हें मारना—ये मेरे सहज कार्य हैं। इसलिये मैं अनेकों अवतार धारण करती हूँ। प्रत्येक युगमें जो अवतार होते हैं, उन सबकी व्यवस्था मेरे हाथमें है। महिषासुर महान् नीच है। देवताओंको

मारनेके लिये उसकी सतत चेष्टा चल रही है। यह जानकर उसे मारनेके विचारसे ही इस समय मैं यहाँ उपस्थित हुई हूँ। दानव ! सुरद्रोही महिषासुर बड़ा भारी खल है। मैं उसे मार डालूँगी। तुम जाओ या रहो—जो इच्छा हो कर सकते हो। मैंने सार बातें बतला दीं। अतः जाकर अपने दुराचारी राजा महिषासुरसे कहो—'राजन् ! आप क्यों अन्य दैत्योंको भेजते हैं ? स्वयं जाकर युद्ध कीजिये।' सम्भव है तुम्हारे महाराजको मेरे साथ संधि करनेकी बात जँच जाय। ऐसी स्थितिमें तुम सभीका परम कर्तव्य है कि वैरभावका परित्याग करके सुखपूर्वक पाताल चले जाओ। तुमलोगोंने संग्राममें परास्त करके देवताओंसे जो धन छीन लिया है, वह सब वापस करनेके पश्चात् तुमलोगोंको निश्चय ही उस पातालमें चले जाना होगा, जहाँ इस समय प्रह्लाद विराजमान हैं।

व्यासजी कहते हैं—देवीके उपर्युक्त वचन सुनकर असिलोमाने भगवतीके सामने ही महान् शूरवीर विडालाक्षसे प्रीति प्रदर्शित करते हुए पूछा।

असिलोमा बोला—विडालाक्ष ! अभी-अभी भवानीने जो कहा है, उसे तुमने सुना है न ? ऐसी स्थितिमें संधि अथवा विग्रह क्या करना चाहिये ?

विडालाक्षने कहा—युद्धमें मर मिटना निश्चित है—इस रहस्यको जानते हुए भी स्वाभिमानी नरेश संधिकी इच्छा नहीं कर सकते। बहुत-से वीर युद्धमें काम आ गये—यह देखकर हमारे स्वामी हमें भेजना चाहते हैं। ऐसा ही दैवका विधान है। किसकी शक्ति है, जो इसे मिटा सके। सेवकोंका यह धर्म ही महान् कठिन है। वे सदा निरभिमानी होते हैं। निरन्तर उन्हें स्वामीकी आज्ञा माननी पड़ती है। सूतके संकेतपर नाचनेवाली कठपुतलीकी भाँति वे सदा परतन्त्र रहते हैं। भला, अधिष्ठाता महिषासुरके सामने जाकर मेरे अथवा तुम्हारे मुखसे यह अप्रिय वचन कैसे निकल सकता है कि देवताओंके धन और रत्न वापस करके सब लोग यहाँसे पातालकी राह पकड़ें ? प्रिय वचन बोलना चाहिये, किंतु वह असत्य न हो। हितकारक प्रिय वचन बोलना सर्वोत्तम है। यदि सत्य होनेपर भी अप्रिय हो तो ऐसी स्थितिमें बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि मौनका आश्रय ले लें। नीतिशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि वीर पुरुष झूठे वचनोंद्वारा राजाको धोखेमें न डाले। सच्ची बात यह है कि आदरपूर्वक हितकी बात कहने अथवा पूछनेके लिये वहाँ चलना ही अनुचित है। वहाँ जानेपर राजा महिषासुरकी क्रोधाग्नि भड़क उठेगी। यह सोच-समझकर युद्ध करना ही उचित जान पड़ता है। प्राणोंका जाना और रहना तो संदेहास्पद है ही। अतः मृत्युको तृणके समान तुच्छ मानकर स्वामीके अभिलषित कार्यमें जुट जाना ही उचित है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार विचार करके असिलोमा और विडालाक्ष—वे दोनों वीर युद्ध करनेके लिये तैयार होकर डट गये। उन्होंने हाथमें धनुष और बाण ले रखे थे। वे कवच पहने हुए थे। रथकी सवारी थी। पहले विडालाक्षने देवीके ऊपर सात बाण चलाये। अस्त्र-शस्त्रका सर्वोत्तम वेत्ता असिलोमा दूर दर्शकके रूपमें खड़ा रहा। भगवती जगदम्बाने अपने सायकोंसे विडालाक्षके वे बाण काट डाला। साथ ही अपने तीन तीखे तीरोंसे उसपर

चोट की। बाणकी असह्य व्यथाके कारण विडालाक्ष युद्धभूमिमें गिर पड़ा। उसे मूर्च्छा आ गयी और प्रारब्धके अनुसार उसी क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। देवीके हाथसे छूटे हुए बाणके प्रभावसे विडालाक्ष सदाके लिये समराङ्गणमें सो गया—यह देखकर असिलोमा हाथमें धनुष लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो सामने आ गया। वह अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर देवीके प्रति कुछ परिमित वचन कहने लगा—'देवी ! दानव बड़े दुराचारी हैं। मैं जानता हूँ, अब इनकी मृत्यु सिरपर आ गयी है। फिर भी पराधीन होनेके कारण युद्ध करना मेरे लिये परम कर्तव्य हो गया है। महिषासुर महान् मूर्ख है। प्रिय और अप्रियके विषयमें वह कुछ जान ही नहीं पाता। उसके सामने हितकारक वचन भी यदि अप्रिय हैं तो मुझे नहीं कहने चाहिये। मैं वीरधर्मके अनुसार मर जाना उचित समझता हूँ—फिर चाहे वह शुभ हो अथवा अशुभ ! मेरी समझसे प्रारब्ध ही बलवान् है। पुरुषार्थको धिक्कार है। इससे कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। तभी तो तुम्हारे बाण लगते ही दानव जमीनपर लेटते चले जा रहे हैं।

इस प्रकार कहकर दानवश्रेष्ठ असिलोमाने देवीके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। निकट आते ही भगवतीने अपने बाणोंसे उसके बाण काट डाला। साथ ही शीघ्रगामी अन्य बाणोंसे असिलोमाको गहरी चोट पहुँचायी। उस समय भगवतीका मुखमण्डल क्रोधसे तमतमा उठा था। देवता दूरसे देख रहे थे। असिलोमाका सर्वाङ्ग बाणोंसे बिंध गया था। रुधिरकी धार बह रही थी। इससे वह इस प्रकार शोभा पाता था, मानो फूला हुआ पलासका वृक्ष हो। फिर तो असिलोमाने लोहेकी बनी विशाल गदा हाथमें उठा ली। बड़ी शीघ्रताके साथ वह देवीकी ओर दौड़ा। क्रोधमें आकर उसने सिंहके मस्तकपर वह गदा चला दी। सिंहने असिलोमाके किये हुए गदाघातकी कुछ भी परवा न की। उलटे अपने नखोंसे उसकी छातीको चीर डाला। तब वह विकराल दैत्य हाथमें गदा लिये ही बड़े जोरसे उछला और सिंहके मस्तकपर चढ़कर उसने भगवती जगदम्बापर गदासे चोट की। राजन् ! देवीने असिलोमाके किये हुए प्रहारको रोक लिया और उसी क्षण अपनी तीक्ष्ण तलवारसे उसका मस्तक धड़से काट गिराया। मस्तक कट जानेपर वह दानवराज असिलोमा तुरंत जमीनपर लेट गया। अब तो उस दुरात्मा दानवकी सेनामें हाहाकार मच गया। 'देवीकी जय हो'—इस प्रकारके जयकारे लगाकर देवतागण भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। राजन् ! किंनरगण यशोगान करनेमें संलग्न हो गये। यों विडालाक्ष और असिलोमा—ये दोनों दैत्य मरकर समराङ्गणमें सदाके लिये सो गये। शेष सम्पूर्ण

सैनिकोंको सिंहने अपने पराक्रमसे मार गिराया। जो कुछ बचे थे, उन्हें सिंहने अपना कलेवा बना लिया। कुछ टूटे-फूटे अङ्गवाले मूर्ख दानव दुःखित होकर महिषासुरके पास पहुँचे। वे रोने और गिड़गिड़ाने लगे—'महाराज ! असिलोमा और विडालाक्ष मर मिटे। अब आप हमें बचाइये, बचाइये।' यों उनके मुखसे करुण-पुकार निकल रही थी। उन्होंने साथ ही यह भी कहा कि 'राजन् ! अन्य जितने सैनिक थे वे सब सिंहके ग्रास बन गये।' यों कहकर वे अपने नरेश महिषासुरको युद्धमें भाग लेनेके लिये प्रेरणा करने लगे। उन सैनिकोंकी बात सुनकर महिषासुरका मन अत्यन्त उदास हो गया। उसपर चिन्ताकी काली घटा घिर आयी। वह बड़ा दुःखी हो गया।

(अध्याय १४-१५)

☆

## महिषासुरका देवीके सामने जाकर उनसे बातचीत करना तथा उसी प्रसङ्गमें मन्दोदरीका इतिहास कहना

व्यासजी कहते हैं—सैनिकोंकी बात सुनकर महिषासुरके क्रोधकी सीमा नहीं रही। उसने अपने सारथिको बुलाकर कहा—'जिसमें एक हजार गदहे जोते जाते हैं, जो ध्वजा एवं पताकासे सुशोभित है, जिसपर अनेकों आयुध रखे रहते हैं तथा जिसके चक्के और युगंधर बड़े मजबूत हैं, वह मेरा प्रकाशमान अद्भुत रथ अभी मेरे सामने उपस्थित करो।' आज्ञा पाते ही सारथि तुरंत रथ ले आया और बोला—'राजन् ! मैं खूब सजाकर रथ ले आया हूँ। वह बाहर दरवाजेपर खड़ा है। उस रथपर सम्पूर्ण श्रेष्ठ आयुध सुरक्षित हैं। उत्तम चाँदनीसे उसे छा दिया गया है।' तदनन्तर रथ आ गया—यह जानकर दानवराज महाबली महिषासुर मनुष्यका शरीर धारण करके समराङ्गणमें जानेके लिये तैयार हो गया। उसने मन-ही-मन सोचा—'मैं भैंसेके रूपमें हूँ। मेरा मुख अत्यन्त कुरूप है। मेरे मस्तकपर सींग हैं। इस रूपको देखकर देवी अवश्य ही उदास हो जायगी। स्त्रियोंको प्रसन्न करनेके लिये सुन्दर रूप और चतुरता परम आवश्यक है। अतएव आकर्षक रूप और चतुरतासे सम्पन्न होकर मैं उस युवतीके सामने जाऊँगा, जिससे मुझे देखते ही उसके हृदयमें प्रेमका उदय हो जायगा। मेरे लिये भी सुखकी सम्भावना इसी स्थितिमें है।' यों मनमें विचारकर उस महाबली दानवराजने भैंसेका रूप त्यागकर सुन्दर पुरुषकी आकृति धारण कर ली। उसके हाथोंमें सम्पूर्ण आयुध सुशोभित थे। वह उत्तम अलंकारोंसे अलंकृत था। उसके सुन्दर शरीरको दिव्य वस्त्र सुशोभित कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई दूसरा कामदेव ही हो। हाथमें धनुष-बाण लेकर वह रथपर बैठ गया। केयूर और हार उसकी छबि बढ़ा रहे थे। अभिमानमें चूर होकर सेना साथ लिये हुए वह भगवती जगदम्बाके पास पहुँचा। उस समय उसने ऐसा सुन्दर वेष बना रखा था, जिसे देखकर अपने रूपका अभिमान रखनेवाली स्त्रियोंके मन भी उधर आकर्षित हो जायँ।

जब देवीने देखा, दैत्यराज महिषासुर निकट आ गया और बहुत-से वीर उसके साथ आ रहे हैं, तब उन्होंने शङ्खध्वनि आरम्भ कर दी। जनसमाजमें आश्चर्य प्रकट करनेवाली उस

शङ्खध्वनिको सुनकर महिषासुर भगवतीके पास आ गया और मानो हँसता हुआ उनसे बोला—'देवी ! यह जगत् परिवर्तनशील है। स्त्री अथवा पुरुष—जो भी इसमें रहते हैं, सबके मनमें सब प्रकारसे सुख भोगनेकी ही इच्छा बनी रहती है। मनुष्योंको संयोगमें ही सुख प्राप्त होता है। वियोगमें सुखकी सम्भावना नहीं की जा सकती। संयोग भी अनेक प्रकारके होते हैं; उनके भेद बतलाता हूँ, सुनो। कितने स्थलोंपर उत्तम प्रीति होनेके कारण संयोग हो जाता है। कहीं स्वभावतः संयोगकी विधि बैठ जाती है। सर्वप्रथम प्रीतिजनित संयोगके विषयमें मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ। माता और पिताका पुत्रके साथ जो संयोग है, उसे उत्तम माना गया है। भाईका भाईके साथ संयोग बना रहनेमें कारण प्रधान है, अतः इसे मध्यम कहते हैं। जो सर्वोत्तम सुख देनेमें समर्थ है, उसीके संयोगको श्रेष्ठ कहा गया है। उससे जो कम सुख देनेवाला है, उसे मध्यम मानते हैं। विद्वान् पुरुषोंका कथन है—नावपर बहुत-से लोग बैठते हैं। उनमें सबका एक-दूसरेसे पृथक् विचार रहता है। स्वभाववश वे एकत्रित होते हैं। उनसे जो कुछ भी सुख मिलता है, वह बहुत थोड़े समयके लिये। अतएव ऐसे संयोगको कनिष्ठ माना गया है; क्योंकि इस प्रकारके संयोगसे बहुत ही कम सुख मिलता है। चतुरता, रूप, वेष, कुल, शील और गुण—इन सबमें समानता होनी चाहिये; तभी परस्पर सुखकी वृद्धि कही जाती है। मैं वीर पुरुष हूँ। यदि तुम मेरे साथ संयोग करती हो तो तुम्हें सर्वोत्कृष्ट सुख प्राप्त होना बिलकुल निश्चित है। प्रिये ! मैं अपनी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण कर सकता हूँ। इन्द्र प्रभृति सभी देवता संग्राममें मुझसे परास्त हो चुके हैं। इस समय मेरे महलमें जितने दिव्य रत्न हैं, उन सभीका उपभोग करना तुम्हें सुलभ होगा। अथवा इच्छानुसार तुम उसका दान भी कर सकती हो। सुन्दरी ! अब तुम मेरी पटरानी बननेका प्रस्ताव स्वीकार करो। मैं तुम्हारी दासता स्वीकार करनेके लिये तैयार हूँ। तुम्हारी आज्ञा मानकर मैं देवताओंके साथ वैर करना छोड़ दूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं। तुम्हें जिस प्रकार सुख प्राप्त हो, वही कार्य मेरे लिये शिरोधार्य है। मधुर वचन बोलनेवाली प्रिये ! तुम्हारे नेत्र बड़े ही विशाल हैं। मेरे लिये जैसा आदेश हो, वैसा ही सम्पन्न करनेको मैं समुत्सुक हूँ। तुम्हारे रूपने मेरे मनको मोह लिया है। सुन्दरी ! अब मैं अत्यन्त आतुर होकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ। रम्भोरु ! कामदेवके बाणोंने मुझे बुरी तरह घायल कर दिया है। मुझ शरणागतकी रक्षा करो। शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सम्पूर्ण धर्मोंमें उत्तम धर्म माना गया है। काली भौंहोंसे अनुपम शोभा पानेवाली कृशोदरी ! मैं तुम्हारा निजी चाकर हूँ। मुझे

तुम्हारी चाकरी करना स्वीकार है। जीवनपर्यन्त मैं सत्य वचनका पालन करूँगा, कभी विचलित नहीं होऊँगा। सुन्दरी! मैंने नाना प्रकारके आयुध त्याग दिये हैं। तुम्हारे चरणोंमें मेरा मस्तक झुका है। विशाललोचने! मुझपर दया करो। सुन्दरी! जन्मसे लेकर आजतक ऐसी दीनता मेरे मनमें कभी भी नहीं आयी थी। ब्रह्मा आदि अनेकों शक्तिशाली पुरुषोंसे मुठभेड़ होनेपर भी मैं दब न सका। केवल तुम्हारे ही समक्ष मैं अधीनता स्वीकार कर रहा हूँ। ब्रह्मा प्रभृति सम्पूर्ण देवता समराङ्गणमें मेरे चरित्रसे पूर्ण परिचित हैं। भामिनी! आज वही मैं तुम्हारा सेवक बनकर सामने उपस्थित हूँ। मेरी ओर ताकनेकी कृपा करो।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार महिषासुर अनाप-शनाप बक रहा था। अनुपम छबि धारण करनेवाली भगवती चण्डिकाके मुख-मण्डलपर प्रसन्नताकी किरणें चमक उठीं। उन्होंने मुसकराकर कहना आरम्भ कर दिया।

देवीने कहा—परम पुरुष परमात्माके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष मेरा अभीष्ट नहीं है। दैत्य! मैं केवल उन्हींको चाहती हूँ। अखिल जगत्‌की सृष्टि करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। वे परम पुरुष सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। मुझपर उनकी दृष्टि लगी रहती है; क्योंकि मैं उनकी प्रकृति हूँ। मेरा विग्रह कल्याणमय है। उनका सांनिध्य पानेसे ही मुझमें सदा प्रस्तुत रहनेवाली चेतनता आ जाती है। नहीं तो मैं जड थी। उनके संयोगका यह प्रभाव है कि मैं सचेतन हो गयी हूँ, जिस प्रकार लोहा स्वभावतः जड होनेपर भी चुम्बकका संयोग होते ही उसमें चेतनता आ जाती है। मैं ग्राम्य सुख भोगनेकी कभी इच्छा नहीं करती। मूर्ख! तेरी बुद्धि बड़ी खोटी है। इसीसे तू स्त्री-सम्बन्धी सुखके लिये इतना लालायित है। अरे, पुरुषको बाँधनेके लिये स्त्री एक सुदृढ़ जंजीर कही जाती है। लोहेसे बँधा हुआ छूट भी सकता है; किंतु जो स्त्रीरूपी साँकलसे बँध जाता है, उसका छूटना अत्यन्त दुष्कर है। अरे मूर्ख! जिसमें मूत्र-ही-मूत्र भरा है, उसका सेवन करनेके लिये क्यों इतना लोलुप हो रहा है? सुखी होना चाहता है तो मनमें शान्ति रख। इसीसे सुख प्राप्त कर सकेगा। स्त्रीका सङ्ग करनेमें महान् कष्ट उठाना पड़ता है—इस बातको जानते हुए भी तू क्यों मूर्खता कर रहा है? देवताओंसे वैर छोड़कर स्वतन्त्रता-पूर्वक संसारमें विचरण कर। अथवा तुझे जीनेकी इच्छा हो तो पातालका पथिक बन जा या चाहे तो युद्ध भी कर सकता है। मुझमें शक्तिकी कमी नहीं है। दानव! तेरा वध करनेके लिये ही देवताओंने इस समय मुझसे यहाँ आनेकी प्रार्थना की है। तू वाणीद्वारा आज जो मेरा सुहृद् बन चुका है, इसके फलस्वरूप मैं तुझसे सच्ची बात बता रही हूँ; क्योंकि तेरा यह व्यवहार मेरी प्रसन्नताका कारण बन गया है। तू जीते-जी सुखपूर्वक यहाँसे चला जा। सात परग चलनेपर ही सज्जनोंमें मैत्री हो जाती है; अतएव मैं तुझे जीवन-दान कर रही हूँ। वीर! यदि तुझे मरना ही अभीष्ट हो तो बड़े आनन्दके साथ युद्ध कर। महाबाहो! मेरे हाथों तेरा वध होगा—इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाकी यह बात सुनकर कामसे मोहित हुए महिषासुरने मधुर वाणीमें पुनः मीठी बातें कहना आरम्भ किया—'वरारोहे! प्रसन्नवदने! तुमपर आघात

करनेमें मुझे डर लगता है; क्योंकि तुम नारी हो। तुम्हारे सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर एवं सुकोमल हैं। इन्हें देखकर मनुष्योंका मन मुग्ध हो जाता है। तुम्हारे इस रूपपर विष्णु, शंकर एवं लोकपाल प्रभृति प्रायः सभी निछावर हो चुके हैं। कमललोचने ! तब फिर क्या तुम्हारे साथ युद्ध करना मेरे लिये समुचित होगा ? सुन्दरी ! यदि तुम्हें रुचे तो मेरी सहधर्मिणी बनकर उपासनामें तत्पर हो जाओ, अन्यथा, जहाँसे आनेका कष्ट किया है, उसी देशमें इच्छानुसार वापस जा सकती हो। मैं तुमपर अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाऊँगा; क्योंकि तुम मेरे साथ मैत्री कर चुकी हो। मैंने हितभरी कल्याणकी बातें कही हैं; अतएव आनन्दपूर्वक चले जानेमें ही तुम्हारी भलाई है। ऐसी सुनयनी स्त्रीको मार देनेमें मेरी तनिक भी शोभा नहीं होगी। स्त्री, बालक अथवा ब्राह्मणकी हत्याके लिये प्रायश्चित्तका भी कोई विधान नहीं है। अतएव वरानने ! आज मैं तुम्हें लेकर घर चलनेका विचार कर रहा हूँ। यदि मैं तुम्हारे साथ बलप्रयोग करता हूँ तो इससे किसी उत्तम फलकी सम्भावना नहीं दीखती; क्योंकि वैसी स्थितिमें भोग-सुखका अवसर कैसे मिल सकता है। सुकेशी ! यही कारण है कि मैं नम्र होकर प्रार्थनापूर्वक तुमसे बातें कर रहा हूँ। प्रियाके मुखकमलसे वञ्चित रहनेपर पुरुषके लिये अन्य कोई सुखका साधन नहीं है। ऐसे ही पुरुषके बिना स्त्रियोंके लिये समझना चाहिये। संयोगमें ही सुखकी अनुभूति होती है, वियोगमें दुःख भोगने पड़ते हैं। तुम सुन्दरी स्त्री हो, सम्पूर्ण आभूषण तुम्हारी छबि बढ़ा रहे हैं। तुममें चतुरताका अभाव कैसे हो गया, जिसके परिणामस्वरूप तुम मेरी स्वामिनी बनना अस्वीकार कर रही हो ? किसने तुम्हें भोगोंसे सदा वञ्चित रहनेवाला यह उपदेश दिया है ? मधुर भाषण करनेवाली प्रिये ! किसी शत्रुने तुम्हें ठग लिया है। इसीसे सम्प्रति तुम्हारी ऐसी बुद्धि हो गयी है। अब तुम इस आग्रहको छोड़कर अत्यन्त सुन्दर कार्य करनेमें उद्यत हो जाओ। यह निश्चय है कि सम्बन्ध हो जानेपर तुम्हें और मुझे सभी सुख सुलभ हो जायँगे। विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, शंकर पार्वतीके साथ तथा इन्द्र शचीके साथ रहकर ही सुशोभित होते हैं। कौन ऐसी स्त्री है, जो पतिसे अलग होकर चिरस्थायी सुख प्राप्त कर सके ? सुन्दरी ! तुम्हें कौन-सा ऐसा उपदेश मिल गया है, जिसे सर्वोत्तम समझकर तुम मेरे सदृश श्रेष्ठ पतिको अस्वीकार कर रही हो ? कान्ते ! पता नहीं, इस समय मूर्ख कामदेव कहाँ चला गया, जो अपने सुकोमल पाँच बाणोंसे तुम्हें व्यथित नहीं कर रहा है ? पीछे पछताना पड़ेगा। सुन्दरी ! तुम्हारी भी मन्दोदरी-जैसी दशा होगी। उसे परम सुन्दर अनुकूल नरेश पतिरूपमें प्राप्त हो रहा था; किंतु उसने उसको अस्वीकार कर दिया। फिर जब मन्दोदरीका अन्तःकरण काम-मोहसे व्याप्त हो गया, तब उसे एक प्रचण्ड मूर्खकी स्त्री बनना पड़ा।'

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाने महिषासुरकी बात सुनकर उससे पूछा—'मन्दोदरी नामवाली वह कौन स्त्री थी ? वह कौन राजा था, जिसे उसने त्याग दिया ? और वह कौन धूर्त नरेश था, जिसकी फिर वह स्त्री बन गयी ? उस स्त्रीको पुनः किस प्रकार दुःख भोगने पड़े—यह कथा-प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक मुझसे कहो।

महिषासुर बोला—धरातलपर सिंहलनामसे प्रसिद्ध एक देश है। सघन वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। धन और धान्यसे उस देशका कोई भी भाग खाली नहीं था। चन्द्रसेन नामक राजाकी वहाँ राजधानी थी। वे नरेश बड़े धर्मात्मा, न्यायशील एवं शान्त-स्वभावके थे तथा तत्परतापूर्वक प्रजाका पालन करते थे। वे सदा सत्य बोलते थे। उनका स्वभाव बड़ा कोमल था। वे शूरवीर थे। उन्हें नीतिके सागरोपम शास्त्रको पार करनेकी उत्कट इच्छा लगी रहती थी। शास्त्र एवं सम्पूर्ण धर्मोंके वे पूर्ण जानकार थे। धनुर्वेदमें उनकी अच्छी गति थी। उनकी सुन्दरी स्त्री भी वैसी ही सर्वगुणसम्पन्ना थी। वह सदा श्रेष्ठ आचरणका पालन करती थी। पतिभक्तिमें उसका अटूट अनुराग था। चन्द्रसेनकी वह प्रेयसी भार्या गुणवती नामसे प्रसिद्ध थी। उसमें सभी उत्तम लक्षण विद्यमान थे। उसने प्रथम गर्भसे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्याको उत्पन्न किया। मनको मुग्ध करनेवाली उस पुत्रीको पाकर पिता बड़े ही संतुष्ट हुए। उनका मन आनन्दसे विह्वल हो उठा। उन्होंने नामकरणके अवसरपर उस पुत्रीका नाम 'मन्दोदरी' रख दिया। चन्द्रमाकी कलाके समान प्रतिदिन वह कन्या बढ़ने लगी। चित्तको आकर्षित करनेवाली वह कन्या जब विवाहके योग्य हो गयी, तब पिता चन्द्रसेन उसके लिये वर ढूँढ़ने लगे। इस विषयको लेकर उनका मन सदा चिन्तित रहता था। उस समय सुधन्वा नामसे प्रसिद्ध एक शूरवीर नरेश मद्रदेशमें राज्य करते थे, उनका एक सुयोग्य पुत्र था। कम्बुग्रीव नामसे जगत्में उसकी प्रसिद्धि थी। ब्राह्मणोंने राजा चन्द्रसेनसे कहा, 'इस कन्याके लिये अनुरूप वर कम्बुग्रीव ही है। उसमें सभी उत्तम लक्षण वर्तमान हैं। उसने सम्पूर्ण विद्याओंका पर्याप्त अभ्यास किया है।' तब राजा चन्द्रसेनने गुणवती नामवाली अपनी प्रेयसी रानीसे पूछा—'अपनी इस कन्याके लिये सुयोग्य वर चाहिये। मेरा विचार है कम्बुग्रीवके साथ इसका विवाह कर दिया जाय। तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

स्वामीकी बात सुनकर रानीने आदरपूर्वक अपनी कन्या मन्दोदरीसे पूछा—'तुम्हारे पिता राजकुमार कम्बुग्रीवके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं, तुम्हें पसंद है न ?' माताका यह वचन सुनकर मन्दोदरीने उससे अपना विचार प्रकट किया—'मैं पतिका वरण नहीं करूँगी। विवाह करना मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं कुमारी-व्रतमें अडिग रहकर अपना जीवन व्यतीत करूँगी। माताजी ! स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करनेकी मेरी अभिलाषा है। मेरा प्रतिक्षण तपस्यामें व्यतीत होगा। इस संसाररूपी समुद्रमें परतन्त्र व्यक्तिको अनेकों कष्ट सहने पड़ते हैं। शास्त्रके पारगामी विद्वानोंका कथन है कि मोक्षका साधन स्वतन्त्रता ही है। अतएव मैं मुक्त होऊँगी। मुझे पतिसे कोई प्रयोजन नहीं है। विवाह होते समय अग्निके साक्षित्वमें यह प्रतिज्ञा की जाती है कि 'पतिदेव ! मैं सब तरहसे आपके अधीन बन गयी।' फिर ससुरालमें जाकर सास और देवर प्रभृति जितने हैं, उन सबके अनुकूल होकर रहना पड़ता है। पतिके चित्तमें अपना चित्त सदा मिलाये रखना—इस दुःखको सबसे अधिक माना गया है। यदि पतिदेव किसी दूसरी सुन्दरी स्त्रीके साथ प्रेम कर लें तो सौतसे उत्पन्न होनेवाले दुःखका पहाड़ ही उसपर ढह पड़ता है। उस समय पतिसे ईर्ष्या

उत्पन्न हो जाती है। फिर क्लेश होना तो स्वतः सिद्ध हो गया। माता ! संसारमें सुख कहाँ है ? खास करके स्त्रियोंके लिये तो यह संसार सदा ही सुखसे रहित है। इसलिये मेरी समझसे पतिका वरण करना सर्वथा अवाञ्छनीय है।'

पुत्रीके इस प्रकार कहनेपर उसकी माता राजा चन्द्रसेनसे कहने लगी—'प्रभो ! राजकुमारीको विवाह करना अभिलषित नहीं है। उसे कुमारी-व्रतका पालन करना अभीष्ट है। जप और व्रतमें सदा तत्पर रहकर यह संसारसे विरक्त होना चाहती है। विवाह-सम्बन्धी बहुत-से दोषोंसे वह पूर्ण परिचित है। अतः पति बनानेकी बात उसे बिलकुल रुचती ही नहीं।'

रानीकी बात सुनकर राजा चन्द्रसेनने पुत्रीके इच्छानुसार उसके विवाहका विचार ही छोड़ दिया। वह राजकुमारी माता-पिताकी संरक्षकतामें रहकर घरमें ही समय व्यतीत करने लगी। स्त्रियोंके अङ्गमें जब जवानीके अङ्कुर जमने लगते हैं, तब कामकी उत्पत्ति होने लगती है। अवस्थाके अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक है। पद-पदपर ज्ञानकी बातें करनेवाली जिस राजकुमारीने बार-बार प्रेरणा करनेपर भी पति स्वीकार करना नहीं चाहा था, वही एक दिन सघन वृक्षोंवाले उपवनमें दासियोंके साथ प्रेमपूर्वक विहार करनेके लिये पहुँच गयी। वहाँकी लताएँ पुष्पोंसे सुशोभित थीं। उनपर दृष्टिपात करती हुई वह प्रसन्नवदनवाली सुन्दरी उस उद्यानमें क्रीड़ा करने लगी। वह राजकुमारी पुष्प चुनती हुई विचर रही थी। इतनेमें उसी मार्गसे दैववश कोसलदेशका नरेश आ पहुँचा। वीरसेन नामसे परम प्रसिद्ध वह राजा बड़ा शूरवीर था। उसके साथ कुछ सैनिक भी थे; परंतु उस समय वह अकेले ही रथपर बैठकर आया था। सेना उसके पीछे धीरे-धीरे आ रही थी। दूरसे ही राजा वीरसेन किसी एक युवतीकी दृष्टिमें आ गया। तब उस युवतीने राजकुमारी मन्दोदरीसे कहा—'देखो, इस मार्गसे रथपर बैठा हुआ कोई पुरुष आ रहा है। इस रूपवान् पुरुषकी भुजाएँ बड़ी विशाल हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि भाग्यवश यहाँ किसी राजाका ही शुभागमन हो गया।'

इस प्रकार वह युवती बात कर रही थी। इतनेमें कोसलनरेश वीरसेन निकट आ गया। राजकुमारी मन्दोदरीको देखकर उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। तुरंत वह रथसे नीचे उतर आया और दासीसे बोला—'बड़ी-बड़ी आँखोंवाली यह बालिका कौन है और यह किसकी पुत्री है ? मुझे शीघ्र बतानेकी कृपा करो।' यों पूछनेपर दासीका मुख मुसकानसे भर गया। उसने कोसलनरेश वीरसेनसे कहा—'सुन्दर नेत्रोंसे शोभा पानेवाले वीर ! पहले आप बतलानेकी कृपा करें। मैं आपसे पूछ रही हूँ, आप कौन हैं ? कैसे यहाँ पधारे तथा किस कार्यसे इस समय आनेका कष्ट उठाया है ?' दासीके यों पूछनेपर राजा वीरसेनने उससे अपना परिचय देना आरम्भ किया—'इस भूमण्डलपर एक परम अद्भुत कोसल नामका देश है। प्रिये ! मैं उस देशका रक्षक हूँ। मेरा नाम वीरसेन है। मेरे पास चतुरङ्गिणी सेना है, जो इच्छानुसार पीछे आ रही है। मार्ग भूल जानेसे मैं यहाँ आ गया। मुझे उस देशका राजा समझो।'

सैरन्ध्रीने कहा—राजन् ! महाराज चन्द्रसेनकी यह राजकुमारी है। इसका नाम मन्दोदरी है। यह कुमारी क्रीड़ा करनेके विचारसे

इस उपवनमें आयी है।

दासीकी बात सुनकर राजा वीरसेनने उससे पुनः कहा—'सैरन्ध्री ! तुम बड़ी विदुषी हो। तुम मेरी बात राजकुमारीको समझा दो। मेरा कथन है—'सुलोचने ! मेरा जन्म ककुत्स्थवंशमें हुआ है। मैं वहाँका राजा हूँ। कामिनी ! तुम गान्धर्व-विधिसे मुझे अपना पति बनानेकी कृपा करो। मेरे घर अन्य कोई भार्या नहीं है। युवावस्थासे सम्पन्न सुन्दर रूपवाली सुश्रोणी ! मैं तुम राजकुमारीको चाहता हूँ। तुम कुलीन घरकी कन्या हो ही। तुम्हारे पिता मेरे साथ विधिपूर्वक तुम्हारा विवाह भी कर सकते हैं। मैं तुम्हारा अनुकूल पति होऊँगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

महिषासुर कहता रहा—राजा वीरसेनके उपर्युक्त वचन सुनकर सैरन्ध्री राजकुमारी मन्दोदरीसे यह संदेश कहनेके लिये उद्यत हो गयी। उसने हँसकर मीठे शब्दोंमें कहा—''प्रिय मन्दोदरी ! सूर्यवंशके कुलदीपक ये राजा यहाँ पधारे हैं। ये बड़े सुन्दर और शक्तिसम्पन्न हैं। इनकी अवस्था भी लगभग तुम्हारी-जैसी ही है। सुन्दरी ! सम्यक् प्रकारसे तुम्हारे प्रति इनका प्रेम हो गया है। विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी ! तुम विवाहके योग्य हो ही गयी हो; परंतु तुम्हारे मनमें विराग छाया हुआ है। इस बातको जानकर तुम्हारे पिता भी सर्वथा दुःखी रहते हैं। राजाने लम्बी साँस लेकर इस विषयमें हमसे कहा है कि 'दासियो ! तुमलोग सदा सेवामें संलग्न रहती हो, मेरी इस राजकुमारीको समझाओ;' किंतु तुम्हारी हठधर्मीके कारण हम कुछ कह नहीं सकतीं। फिर भी हम यह बता देना चाहती हैं कि स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही परम धर्म है—यह मनुका कथन है। पतिकी सेवामें संलग्न रहनेवाली नारी स्वर्ग प्राप्त कर सकती है। अतएव विशालाक्षी ! तुम विधि-पूर्वक विवाह कर लो।''

राजकुमारी मन्दोदरीने कहा—बाले ! मुझे पति बनाना बिलकुल अभीष्ट नहीं है। मैं अद्भुत तपस्या करूँगी। तुम इस कोसलनरेशको मना कर दो। यह निर्लज्ज क्यों मुझपर आँख गड़ा रहा है।

सैरन्ध्रीने कहा—देवी ! इस कामदेवपर विजय पाना महान् कठिन है, साथ ही कालकी गतिको भी टालना असम्भव है। अतएव सुन्दरी ! तुम्हें मेरे उचित वचनका पालन अवश्य करना चाहिये। अन्यथा यह निश्चित है कि तुम कभी-न-कभी दुःखके गर्तमें गिर जाओगी।

सैरन्ध्रीकी बात सुनकर राजकुमारीने उससे कहा—'परिचारिके ! दैववश जो होनेवाला है, वह होगा ही; उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। परंतु मेरा यह सब तरहसे निश्चित विचार है कि मैं विवाह नहीं करूँगी।'

महिषासुर कहता रहा—राजकुमारी मन्दोदरीका निश्चित विचार जानकर सैरन्ध्रीने जाकर कोसलनरेश वीरसेनसे कहा—'राजन् ! आप इच्छानुसार यहाँसे पधारनेकी कृपा करें। आप-जैसे सुसभ्य पतिको भी यह राजकुमारी वरण करना नहीं चाहती।' दासीकी बात सुनकर राजा वीरसेनके मुखपर उदासी छा गयी। अपनी सेनाके सहित वे अपने कोसल-देशके लिये प्रस्थित हो गये। राजकुमारीके प्रति अब उनकी स्पृहा नहीं रही।

(अध्याय १६-१७)

☆

## भगवती चण्डिकाद्वारा महिषासुरका वध तथा देवताओंके द्वारा जगदम्बाकी स्तुति

महिषासुर कहता रहा—मन्दोदरीकी एक छोटी बहन थी। उस सुन्दरी कन्याका नाम इन्दुमती था। जब वह सौभाग्यवती कन्या विवाहके योग्य हो गयी, तब राजा चन्द्रसेनने उसके लिये स्वयंवर रचा। उस सभामण्डपमें देश-देशान्तरके राजा उपस्थित हुए। इन्दुमतीने किसी एक शक्तिसम्पन्न राजाके गलेमें हार डाल दिया। वह नरेश बड़ा ही सुन्दर, कुलीन एवं सुशील तथा सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त था। उसी समय मन्दोदरीपर कामके बाण असर कर गये। वह आतुर हो उठी। इतनेमें किसी एक शूद्र नरेशपर उसकी दृष्टि पड़ गयी। वह बड़ा दुष्ट था; किंतु उसके सर्वाङ्गमें चतुरता भरी थी। दैववश राजकुमारीके मनमें वह जँच गया। तब सुन्दरी मन्दोदरीने अपने पितासे कहलाया—'पिताजी ! आप मेरा भी विवाह कर दीजिये। आज इस स्वयंवरके अवसरपर मद्रदेशके राजाको देखकर मुझे ऐसी इच्छा उत्पन्न हो गयी है।' पुत्रीकी इस बातको सुनकर राजा चन्द्रसेन मन-ही-मन हँसे और उस कार्यकी व्यवस्थामें लग गये। मद्रदेशके राजा चारुदेष्णको घरपर बुलाया और वैवाहिक विधि सम्पन्न करके अपनी कन्या मन्दोदरी उसे सौंप दी। दहेजमें बहुत-सा सामान दिया। चारुदेष्ण भी उस सुन्दरी कन्याको पाकर अत्यन्त हर्षित हो अपने घर चला गया। रानी-सहित राजा चन्द्रसेनके मनकी जलन भी शान्त हो गयी। चारुदेष्ण राजाओंमें भी सुप्रसिद्ध था। कामिनी मन्दोदरीके साथ बहुत दिनोंतक उसने आनन्द किया। पर वह दुश्चरित्र था। उसके अति निन्दनीय आचरण मन्दोदरीने स्वयं देख लिये। तब तो उसका मन खेदसे भर गया। उसने सोचा, पूर्वकालमें स्वयंवरके अवसरपर जब इस शठ नरेशको मैंने देखा था, तब इसके स्वभावसे मैं अनभिज्ञ थी। मैंने मोहके कारण यह बड़ा अनर्थ कर डाला। इस धूर्त नरेशने मुझे ठग लिया। अब मैं क्या करूँ, केवल संताप ही मेरे हाथ लगा। यह चारुदेष्ण अत्यन्त निर्लज्ज, निर्दयी और धूर्त है। ऐसे पतिके प्रति प्रेम कैसे ठहर सकता है। आज मेरे इस जीवनको धिक्कार है। आजतक सांसारिक सुखसे मैं विरक्त थी। मुझे जो नहीं करना चाहिये था, वही कार्य मैंने कर डाला ! उसीके परिणामस्वरूप मुझे यह दुःख भोगना पड़ रहा है। अब यदि मैं प्राण त्याग देती हूँ तो यह बड़ी दुसह आत्महत्या हो जायगी। तत्काल पिताके घर चली जाऊँ तो वहाँ भी सुख मिलना असम्भव ही है; क्योंकि सखियोंके लिये मैं उपहासकी सामग्री बन जाऊँगी। इसमें कोई संशय नहीं है। अतएव विरक्त होकर यहीं रहना मेरे लिये परम कर्त्तव्य है। समय बलवान् है। उसके प्रभावसे पुनः काम-सम्बन्धी सुखका परित्याग आवश्यक हो गया।

महिषासुर कहता रहा—इस प्रकार सोच-समझकर वह नारी मन्दोदरी दुराचारी पतिके घरपर रह गयी। उसका प्रत्येक क्षण शोक और संतापसे व्यतीत होने लगा। सांसारिक सुख उसके लिये नहींके बराबर हो गया। अतएव कल्याणी ! तुम भी इस समय मुझ नरेशका अनादर करके फिर कामातुर होकर किसी मूर्ख निन्द्य पुरुषकी सेवामें रहना चाहती हो ? तुम मेरी सच्ची बात मान लो। स्त्रियोंके लिये यह परम हितकारक है ! तुम यदि ऐसा नहीं करती हो तो तुम्हें अपार शोकका सामना करना

पड़ेगा—इसमें कोई संदेह नहीं है।

देवीने कहा—अरे मूर्ख ! तू अब पाताल भाग जा अथवा मुझसे युद्ध कर। तुझे मारनेके पश्चात् सम्पूर्ण असुरोंका वध करके मैं सुखपूर्वक यहाँसे जाऊँगी। दानव ! जब-जब संतपुरुषोंपर कष्ट पहुँचता है, तब-तब उनकी रक्षा करनेके लिये मैं देह धारण करके प्रकट होती हूँ। दैत्य ! तू निश्चय समझ मैं अरूपा और अजन्मा हूँ। फिर भी देवताओंकी रक्षा करनेके लिये रूप और जन्म धारण करना स्वीकार कर लेती हूँ। महिषासुर ! मेरी वाणी अमोघ है, तू इसपर ध्यान दे। देवताओंके प्रार्थना करनेपर तुझे मारनेके लिये ही मैं प्रकट हुई हूँ। तुझे मारनेके पश्चात् मैं पुनः अन्तर्धान हो जाऊँगी। अतएव तू युद्ध कर अथवा तुरंत पातालमें—जहाँ असुर निवास करते हैं—चला जा। अब मैं तुझे मार ही डालना चाहती हूँ। मैं यह बिलकुल सच्ची बात कह रही हूँ।

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाके यों कहनेपर महिषासुर हाथमें धनुष लेकर युद्ध करनेकी अभिलाषासे समराङ्गणमें उपस्थित हो गया। उसने तीक्ष्ण नोकवाले बाणोंको कानतक खींचकर तुरंत चलाना आरम्भ कर दिया। देवीने कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे महिषासुरके बाण काट दिये। तदनन्तर भगवती जगदम्बा और महिषासुरमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। देवता और दानव—दोनों परस्पर विजयके लिये लालायित थे। इतनेमें दुर्धर आ धमका और देवीको लक्ष्य करके तीखे बाण चलाने लगा। उसके वे भयंकर बाण विषमें बुझाये गये थे। तब भगवतीकी क्रोधाग्नि धधक उठी। उन्होंने चमकीले बाणोंसे दुर्धरपर आघात पहुँचाया, जिससे तुरंत उस दानवके प्राण-पखेरू उड़ गये और पर्वत-शिखरकी भाँति वह जमीनपर ढह पड़ा। दुर्धरकी मृत्यु देखकर उत्तम अस्त्रोंका जानकार त्रिनेत्र आया और उसने सात बाणोंसे जगदम्बापर आघात किया। अभी बाण उनपर आ भी न सके थे कि भगवती जगदम्बाने अपने तीखे बाणोंसे उन्हें काट डाला। साथ ही त्रिशूलसे त्रिनेत्रकी धज्जी उड़ा दी। त्रिनेत्र इस लोकसे चल बसा, यह देखकर तुरंत अन्धक आ पहुँचा। उसके पास लोहेकी बनी हुई गदा थी। उससे उसने सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। अन्धक अत्यन्त बलवान् योद्धा था; किंतु सिंहने क्रोधमें भरकर उसे नखोंसे चीर डाला और उसका मांस खाने लगा।

इतने राक्षस संग्राममें काम आ गये, यह देखकर महिषासुरके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। उसने देवीको बाणोंका लक्ष्य बनाया। बाणोंके अपने शरीरपर आनेके पूर्व ही देवीने तीखे तीरोंसे उन सबके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और गदासे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी। देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप वह दैत्य महान् नीच था। गदाकी चोट लगनेसे उसे मूर्छा आ गयी फिर पीड़ा सहन करके वह तुरंत युद्धभूमिमें आ पहुँचा। उसने अपनी गदा सिंहके मस्तकपर चला दी। अब तो सिंहको असीम क्रोध आ गया। अतः अपने नखोंसे उस महान् दानवको फाड़ डालनेमें वह तत्पर हो गया। तब महिषासुर भी पुरुषकी आकृति त्यागकर सिंह बन गया और उसने देवीके मतवाले सिंहको नखोंसे चीरनेकी चेष्टा आरम्भ कर दी। महिषासुर सिंह बन गया है—यह देखकर देवी क्रोधसे तमतमा उठी। अनेकों तीखे तीर देवीके पास थे, जो ऐसे

संघातिक थे मानो क्रूर विषधर सर्प हों। वे महिषासुरपर उन बाणोंकी वर्षा करने लगीं। तब वह दानव सिंहका वेष त्यागकर गण्डस्थलसे मद चुचानेवाला हाथी बन गया। फिर मनुष्य बनकर उसने हाथमें पर्वतका शिखर उठा लिया और उसे भगवती चण्डिकापर फेंकने लगा। जगदम्बाने अपने चमकीले बाणोंसे आते ही पर्वत-शिखरको तिल-तिल काट दिया और वे ठठाकर हँसने लगीं। तब सिंह उछला और पुनः गजराज बने हुए महिषासुरके मस्तकपर विराजमान होकर अपने नखोंसे उसे फाड़ने लगा। इतनेमें महिषासुर हाथीका रूप त्यागकर अत्यन्त बलवान् एवं भयंकर शरभ बन गया और कुपित होकर देवीके सिंहको मारनेके लिये प्रयास करने लगा। उस दानवको शरभ-वेषधारी देखकर देवी क्रोधमें भर गयीं। उन्होंने झट तलवारसे उसके मस्तकपर आघात किया। उस दानवने भी देवीपर चोट की। अब दोनोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा। उसने पुनः भैंसेकी आकृति धारण कर ली और सींगोंसे देवीको मारने लगा। उसका वह रूप बड़ा भयानक एवं विकराल था। उसके पूँछ घुमाने और सींग झाड़नेसे देवीको चोट लगने लगी। वह दुरात्मा बड़ी प्रसन्नताके साथ हँसता हुआ पूँछ और सींगोंके सहारे बलपूर्वक पत्थरोंको घुमा-घुमाकर फेंक रहा था। बलके अभिमानमें चूर रहनेवाले उस असुरने कहा—'देवी ! अब तुम समराङ्गणमें डट जाओ। रूप एवं तारुण्यसे शोभा पानेवाली ! तुम्हें आज मैं अवश्य मार डालूँगा ! तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। इसीसे मदोन्मत्त होकर तुम इस समय मेरे साथ युद्ध करनेमें तत्पर हो रही हो। अत्यन्त मोहमें पड़ जानेसे तुम्हारा सारा बल बिलकुल व्यर्थ जा रहा है। तुम्हें मारनेके बाद मैं उन देवताओंके प्राण भी हर लूँगा, जो कपटसे अपनी प्रतिष्ठा जमाये हुए हैं तथा तुम नारीको अगुआ बनाकर जिन धूर्तोंको विजय पानेकी लालसा लगी हुई है।'

देवी बोलीं—मूर्ख ! व्यर्थ अभिमान न कर। समराङ्गणमें ठहर जा, ठहर जा। मैं तुझे मारकर श्रेष्ठ देवताओंको निर्भय बनाऊँगी।

व्यासजीने कहा—इस प्रकार कहकर भगवती चण्डिका उसी क्षण त्रिशूल उठाकर महिषासुरपर झपटीं। उनके इस प्रयाससे देवताओंमें अपार हर्ष छा गया। वे प्रसन्नतासे भरकर देवीकी स्तुति करने लगे। उन्होंने पुष्प बरसाना आरम्भ कर दिया। उनके मुखसे बार-बार विजयकी घोषणा निकलने लगी। साथ ही दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस समय ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, नाग, चारण और किंनरगण आकाशमें ठहरकर युद्ध देख रहे थे। उनके मनमें बड़ा आनन्द हो रहा था। महिषासुर कपटविद्याका बड़ा अच्छा जानकार था। वह अनेक मायामय शरीर धारण करके समराङ्गणमें भगवती जगदम्बापर चोट कर रहा था। तब चण्डिकाने उस दुरात्माकी छातीपर बलपूर्वक तीखे त्रिशूलसे आघात किया। उस समय देवीकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठी थीं। चोट लगनेपर महिषासुर भूमिपर गिर पड़ा। एक मुहूर्ततक उसकी चेतना लुप्त-सी रही; परंतु वह फिर उठ खड़ा हुआ और पैरोंसे वेगपूर्वक देवीपर प्रहार करने लगा। पैरोंसे मारनेके पश्चात् बार-बार ठहाका मारकर हँसता भी था। उसके मुखसे भयंकर गर्जना निकल रही थी, जिसे सुनकर देवताओंके हृदयमें आतङ्क छा जाता था।

तदनन्तर भगवती जगदम्बाने हजार अरोंवाला श्रेष्ठ चक्र हाथमें उठा लिया। महिषासुर सामने खड़ा था। देवी बड़े उच्च स्वरसे गरजकर उससे कहने लगीं—'अरे मदान्ध ! इस चक्रको देख। तेरे मस्तकको यह धड़से अलग कर देगा। अभी क्षणमात्र तुझे ठहरना है, फिर तो यमलोक जानेकी तैयारी है ही।' यों कहकर भगवती चण्डिकाने उस युद्धस्थलीमें भयंकर चक्र चला दिया। उस चक्रके लगते ही महिषासुरका मस्तक धड़से अलग हो गया। उस समय उसके कण्ठकी नलीसे इस प्रकार गरम खूनकी धारा

बहने लगी, मानो गेरू आदि धातुओंसे युक्त लाल पानीका झरना बड़े प्रबल वेगके साथ पर्वतसे गिर रहा हो। मस्तक कट जानेपर महिषासुरका धड़ चक्कर काटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। देवताओंके मुखसे सुख बढ़ानेवाली विजयघोषणा आरम्भ हो गयी। भगवतीके वाहन सिंहमें भी अप्रतिम बल था। युद्ध-भूमिसे भागनेमें व्यस्त जितने दानव थे, उन्हें वह इस प्रकार खाने लगा, मानो उसे बड़ी भूख सता रही हो। राजन् ! क्रूर महिषासुरके मर जानेपर बचे हुए सम्पूर्ण दानव भयसे संत्रस्त हो उठे। उन सबने पातालकी राह पकड़ ली। उस दानवके चल बसनेपर भूमण्डलपर जितने देवता, मुनि, मानव तथा अन्य साधु पुरुष थे, उनके मनमें अपार हर्ष हुआ। फिर भगवती चण्डिका भी युद्धभूमिसे पृथक् होकर एक पवित्र स्थानमें जा विराजीं। सुरगणको सुखी करना भगवतीका स्वभाव ही है। अतः उन देवीकी आराधना करनेके लिये वे तुरंत वहाँ आ पहुँचे।

व्यासजी कहते हैं—महिषासुरका निधन देखकर इन्द्र प्रभृति समस्त देवताओंके मनमें अपार हर्ष हुआ। वे भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे।

देवताओंने कहा—देवी ! तुम्हारी शक्तिके प्रभावसे ब्रह्मा इस जगत्की सृष्टि करने, विष्णु पालन करने तथा संहारके अवसरपर रुद्र नाश करनेमें सफल होते हैं। उनके पास तुम्हारी शक्तिका अभाव हो जाय तो वे कथमपि समर्थ नहीं हो सकते। अतएव जगत्की सृष्टि, स्थिति और नाशका कार्य तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है। कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, अजपा, पुष्टि, कला, विजया, गिरिजा, जया, तुष्टि, प्रमा, बुद्धि, उमा, रमा, विद्या, क्षमा, कान्ति और मेधा—ये सब नाम तुम्हारे ही हैं। यह बात इस त्रिलोकीभरमें विख्यात है। सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली जगदम्बे ! तुम्हारी इन शक्तियोंसे पृथक् रहकर कौन ऐसा है, जिसमें कार्यकी क्षमता आ जाय—कोई कुछ भी कर सके। भगवती ! यह निश्चित है कि धारणा-शक्ति भी तुम्हीं हो। अन्यथा जो कच्छप और शेषनाग हैं, उनमें पृथ्वीको धारण करनेकी क्षमता कैसे आ सकती

है ? माता ! पृथ्वी भी तुमसे कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं है। यदि ऐसा न मानें तो प्रचुर भारसे सम्पन्न यह जगत् निराधार आकाशमें किस प्रकार ठहर सकता है। जगत्के चराचर प्राणियोंको भोग प्रदान करना भी तुम्हारा ही कार्य है। सात प्रकृतियाँ और सोलह विकार (विकृतियाँ) तुम्हारे अंश हैं, जिनसे युक्त होनेके कारण जीव-जगत् सदा बना रहता है। अतः जीवदात्री भी तुम्हीं सिद्ध हुईं। इसीसे तुम अपने निजजन देवताओंका जिस प्रकार पालन करती हो, वैसे ही दूसरोंका भी पालन-पोषण करती रहती हो। माता ! बगीचोंमें विनोदके लिये बहुत-से वृक्ष लगाये जाते हैं—बहुतोंमें फलकी सम्भावना ही नहीं होती तथा बहुतेरे वृक्ष कटु होते हैं और पत्तोंसे भी रहित होते हैं। परंतु कुशल पुरुष उन अपने लगाये हुए वृक्षोंको कथमपि काटनेमें तत्पर नहीं होते। इसीसे तुम, देवताओंसे भिन्न जो दैत्य हैं उनकी रक्षाके लिये भी व्यस्त रहती हो। देवी ! तुम सदा करुणा-रससे ओत-प्रोत रहती हो। स्वर्गमें रहनेवाली देवाङ्गनाओंके साथ विलास करनेके लिये इच्छुक शत्रुओंको समराङ्गणमें तुम जो बाणोंद्वारा नष्ट करती हो, इस तुम्हारे अद्भुत कार्यमें उन देवस्त्रियोंका मनोरथ ही प्रयोजन है। जननी ! बड़ी विलक्षण बात तो यह है कि उन प्रसिद्ध दानवोंका संहार तुम्हारे संकल्पमात्रसे ही नहीं हो गया, उन्हें मारनेके लिये तुम अवतार धारण करती हो। वास्तवमें यह तुम्हारा मनोरञ्जन है, न कि दूसरी कोई बात। माता ! सुख देनेवाली विद्या और दुःख देनेवाली अविद्या—ये तुम्हारे ही रूप हैं। मनुष्योंका जन्मजात दुःख दूर करना तुम्हारा स्वभाव ही है। जननी ! मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले बड़भागी पुरुष तुम्हारी सेवामें संलग्न रहते हैं। भोगमें रचे-पचे मूर्खोंको ऐसा सुअवसर मिलना असम्भव है। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य सभी देवता तुम्हारे शरणप्रद चरणकमलोंकी निरन्तर उपासना करते हैं। जिन मन्दबुद्धि प्राणियोंके मनमें तुम्हारी आराधनाका भाव जाग्रत् नहीं होता, उन भूले हुए व्यक्तियोंको संसाररूपी सागरमें सदा गिरते रहना ही अभीष्ट है। चण्डिके ! तुम्हारे चरण-कमलसे उत्पन्न हुई धूलके प्रसादसे ही सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्मा अखिल भूमण्डलकी रचना करते हैं तथा विष्णु और रुद्रको पालन एवं संहार-क्रियामें सफलता प्राप्त होती है। जो मनुष्य तुम्हें नहीं भजता, शक्तिकी आराधना नहीं करता, वह अवश्य ही मन्दभागी है। देवी ! देवताओं और दानवोंके लिये भी वाग्देवता तुम्हीं हो। यदि उनके मुखपर तुम्हारा निवास न हो तो सर्वोत्कृष्ट देवता भी बोलनेमें असमर्थ हैं। मुख होनेपर भी तुमसे रिक्त रहकर मानव बोल नहीं सकते।

भगवती ! अद्भुत बात यह है कि शत्रु भी तुम्हारे लिये दयाके पात्र बने रहते हैं। अतएव समराङ्गणमें तुम्हारे तीखे तीरोंसे मरकर वे स्वर्गके अधिकारी बन जाते हैं। अन्यथा अपने बुरे कर्मके फलस्वरूप तो वे निरन्तर नरकमें ही पड़ते रहते और उनपर सदा आपत्ति ही आती रहती। तुम्हारे गुणोंकी महिमा असीम है। भला, उन गुणोंसे भलीभाँति मोहित कौन मानव तुम्हें जाननेमें किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं।

सत्ययुगमें सत्त्वगुणकी प्रधानता रहती है, अतएव असत्-शास्त्रोंपर आस्था नहीं जमने पाती; किंतु कलिमें तो कवित्वके अभिमानी जन तुम्हें ढकनेकी चेष्टा करके तुम्हारे ही बनाये

हुए देवताओंकी स्तुतिमें संलग्न हो जाते हैं। तुम मुक्ति-फल प्रदान करनेवाली परा विद्या एवं योगसिद्धा हो। जो शुद्ध अन्तःकरणवाले सात्त्विक मुनिगण तुम्हारा ध्यान करते हैं, उन्हें माताके उदरमें संकट सहनेका अप्रिय अवसर नहीं मिल सकता। जो मनुष्य तुम्हारे भक्तिभावमें ओत-प्रोत हैं, वे भूमण्डलपर धन्य हैं। तुम चित्-शक्ति हो। वही चित्-शक्ति परमात्मामें विराजमान है। इसी कारण वे परमात्मा नाम और रूपसे अभिव्यक्त होकर प्रपञ्चात्मक संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहाररूपी कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं—यह बात जगत्प्रसिद्ध है। इन परमात्माके सिवा दूसरा कौन पुरुष है, जो तुमसे रहित होकर अपने प्रभावसे इस कार्यभूत संसारको रचने, पालने और समेटनेकी व्यवस्था कर सके। जगदम्बे ! अथवा क्या चित्-शून्य तत्त्व जगत्‌की रचनामें समर्थ हो सकते हैं ? नहीं, क्योंकि वे जड हैं। यद्यपि इन्द्रियाँ गुण और कर्मसे युक्त हैं, फिर भी तुम्हारी चित्-शक्तिसे शून्य रहकर फल प्रदान करनेकी योग्यता वे नहीं प्राप्त कर सकतीं। माता ! यज्ञोंमें मुनियोंके द्वारा विधिपूर्वक होमे हुए पदार्थको देवता पाते हैं। यदि उस अवसरपर 'स्वाहा'—इस तुम्हारे रूपका प्रयोग न किया जाय तो क्या वे अपना भाग प्राप्त कर सकते हैं ? असम्भव है। अतएव यह निश्चय हो गया कि विश्वके पालनका कार्य तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है। सृष्टिके आरम्भमें इस सम्पूर्ण जगत्‌की रचना तुमने ही की है। दिशाओंकी रक्षाके व्यवस्थापक विष्णु और रुद्र प्रभृति जो प्रमुख देवता हैं, वे भी तुमसे ही सुरक्षित हैं। प्रलयकालमें भी तुम्हारी सत्ता नष्ट नहीं होती। तुम्हारा आद्य चरित्र विश्वमें व्याप्त है। देवतालोग भी तुम्हारे इस चरित्रको नहीं जान पाते, फिर हम साधारण बुद्धिवालोंकी तो गणना ही क्या है। माता ! यह महिषासुर महान् निर्दयी था। तुमने इसे मारकर इन देवताओंकी रक्षा की है। जननी ! हम मन्दबुद्धिजन तुम्हारी महिमा कैसे जान सकते हैं; तुम्हारी गतिको यथार्थरूपसे जाननेमें तो वेद भी असमर्थ हैं। सुप्रसिद्ध प्रभाववाली अम्बिके ! तुमने जगत्‌में महान् कार्य किया जो इस दुरात्मा शत्रुके प्राण हर लिये। यह संसारका अचिन्त्य कण्टक था। इस कार्य-जगत्‌में अवश्य ही तुम्हारी कीर्ति फैली है। अब कृपापूर्वक हमारी रक्षा करो।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवीने मधुर स्वरमें उनसे कहा—आदरणीय देवताओ ! इसके अतिरिक्त भी कोई दुस्साध्य कार्य हो तो उसे बताओ। जब-जब देवताओंके सामने कोई अत्यन्त दुर्घट कार्य उपस्थित हो, तब-तब उन्हें मुझे याद करना चाहिये। मैं शीघ्र ही तुम्हारा संकट दूर कर दूँगी।

देवताओंने कहा—देवी ! यह महिषासुर हमारा घोर शत्रु था। आज तुम्हारे हाथ यह कालका ग्रास बन गया। इससे हमारे सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो गये। जगदम्बे ! अब तुम अपने प्रति हमारी ऐसी अविचल भक्ति स्थापन करो, जिसके परिणामस्वरूप हमारे द्वारा निरन्तर तुम्हारे चरण-कमलोंका स्मरण होता रहे। केवल माता ही ऐसी है, जो हजारों अपराधोंको सदा सहा करती है। इस बातको जानकर मनुष्य तुम जगन्माताकी उपासना क्यों नहीं करते। इस देहरूपी वृक्षपर दो पक्षी विराजमान हैं—इनमें निरन्तर सख्यभाव वर्तमान रहता है। तीसरा

कोई सखा नहीं है, जो अपराध क्षमा कर सके। अतः अपने परम सखारूप तुम परमेश्वरीको छोड़कर जीव किसकी कृपासे कल्याण प्राप्त कर सकेगा ? देवताओं अथवा मानवोंमें भी वह प्राणी पापात्मा, मन्दभागी और अधम है, जो अत्यन्त दुर्लभ देह पाकर भी तुम्हारे भजन-स्मरणसे विमुख है। मन, वाणी और कर्मसे बार-बार दुहराकर हम यह सत्य कह रहे हैं। देवी ! सुख अथवा दुःख प्रत्येक परिस्थितिमें तुम्हीं हमारे लिये अद्भुत शरण हो। तुम अपने सम्पूर्ण आयुधोंद्वारा हमारी निरन्तर रक्षा करो। तुम्हारे चरण-कमलकी रजको छोड़कर हमारे लिये और कोई शरण नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार देवताओंके स्तवन करनेपर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और वहाँसे पधार गयीं। यह देखकर देवता असीम आश्चर्यमें पड़ गये।

(अध्याय १८-१९)

☆

## जनमेजयका प्रश्न, श्रीव्यासजीके द्वारा देवीके मणिद्वीप पधारने तथा राजा शत्रुघ्नके राज्यकी सर्वोत्तम स्थितिका वर्णन

जनमेजयने कहा—मुने ! भगवती जगदम्बाका प्रभाव जगत्को शान्ति प्रदान करने-वाला एवं परम आदरणीय है। मुझे अब इसका पता लगा है। द्विजवर ! आपके मुखारविन्द-से निकली हुई इस सुधामयी कथाका रस-पान करते-करते मेरा मन अघाता नहीं। देवीका यह परम पावन चरित्र अल्प पुण्यवाले मानवोंके लिये प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। भगवती जगदम्बाका यह लीलाचरित्र देवताओं और प्रधान मुनियोंके लिये भी रक्षाका परम साधन है। मनुष्योंको संसाररूपी समुद्रसे तारनेके लिये यह सुदृढ़ नौका है। वेदके पारगामी विद्वानोंका कथन है कि धर्म, अर्थ और काममें निरन्तर तत्पर रहनेवाले पुरुषोंको तो विशेषरूपसे इस अमृतका पान करना चाहिये; क्योंकि जब मुक्त पुरुषतक इसे पीनेको उद्यत रहते हैं, तब मुक्तिसे वञ्चित जन इसे क्यों न पीयें। भारतवर्षमें मानवदेह दुर्लभ है। इसे पाकर भी जो भक्तिहीन जन भगवतीकी आराधनामें सम्मिलित नहीं होते, वे धन-धान्यहीन, रोगी और अनपत्य जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें दूसरोंके चाकर बनकर निरन्तर चक्कर लगाने पड़ते हैं। वे आज्ञाकारी होकर दूसरोंका भार ढोया करते हैं। दिन-रात स्वार्थसम्बन्धी चिन्ता उनपर सवार रहती है। कभी उनकी समुचित-रूपसे पेट भरनेकी व्यवस्था नहीं हो पाती। भूमण्डलपर जो अंधे, बहरे, गूँगे, लँगड़े और कोढ़ी होकर दुःख भोग रहे हैं, उनके विषयमें कवियोंको यही अनुमान करना चाहिये कि इन्होंने भवानीकी निरन्तर उपासना नहीं की है। इधर, जो राजोचित भोगसे सम्पन्न, ऐश्वर्यवान्, बहुत-से मनुष्योंद्वारा सुसेवित अथवा धनाढ्य दिखायी पड़ते हैं, उन्होंने भगवती जगदम्बाकी आराधना की है—यही निश्चितरूपसे समझना चाहिये। अतएव सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! आप बड़े दयालु हैं। अब कृपा करके मुझे देवीका उत्तम चरित्र सुनाइये। महिषासुर महान् पापी था। देवताओंके सामूहिक सम्पूर्ण तेजसे प्रकट हुई महालक्ष्मी उसे मारनेके उपरान्त देवताओंद्वारा सुपूजित होकर कहाँ पधारीं ?

महाभाग ! अभी आप कह चुके हैं, भगवती भुवनेश्वरी अन्तर्धान हो गयीं; तो फिर स्वर्गलोक अथवा मर्त्यलोक—कहाँ उनका निवास हुआ ? उन्होंने वहीं अपने दिव्य शरीरका संवरण कर लिया या वे वैकुण्ठमें विराजने लगीं अथवा जाकर सुमेरुगिरिको सुशोभित किया ? मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी बोले—राजन् ! मैं इसके पूर्व तुमसे कह चुका हूँ कि मणिद्वीप एक रमणीय धाम है। वहाँ देवीजी सदा क्रीड़ा किया करती हैं। वह स्थान उनके लिये बहुत प्रिय बतलाया गया है। यह वह स्थान है, जहाँ पहुँचनेपर ब्रह्मा, विष्णु और शंकरको स्त्री हो जाना पड़ा था और पुनः पुरुषत्व पाकर वे अपने कार्यमें संलग्न हुए। वह परम मनोहर द्वीप अमृतमय समुद्रके मध्यभागमें विराजमान है। भगवती जगदम्बा भाँति-भाँतिके रूप धारण करके वहाँ सदा लीला करती हैं। देवताओंद्वारा स्तुत और सुपूजित होनेके पश्चात् कल्याणमयी देवी वहीं पधार गयीं। वे मायाशक्ति और सनातनी हैं। उस दिव्य स्थानपर अविच्छिन्न गतिसे उनका कीर्तन होता है।

सम्पूर्ण चराचरकी अधिष्ठात्री देवी पधार गयीं—यह देखकर देवताओंने एक सूर्यवंशी महाबाहु नरेशको भूमण्डलका अध्यक्ष बना दिया। शत्रुघ्न नामसे विख्यात वह नरेश सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। महिषासुरकी उत्तम राजगद्दी उसे प्राप्त हुई। वह अयोध्यामें रहकर राज्य करने लगा। इन्द्र प्रभृति सम्पूर्ण देवता शत्रुघ्नको राज्यका अधिकारी बनाकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हो गये। राजन् ! उन देवताओंके चले जानेपर भी जगत्में धर्मराज्य स्थापित हो गया। प्रजा सुखसे समय व्यतीत करने लगी। मेघ उचित समयपर जल बरसाते थे। पृथ्वीपर उत्तम धान्य उपजते थे। वृक्ष फलों और फूलोंसे लदे रहते थे। सभी ऋतुएँ सुखदायिनी थीं। घड़ेके समान थनवाली दुधारू गौएँ मनुष्योंको इच्छानुसार दूध दिया करती थीं। स्वच्छ एवं शीतल जलवाली नदियोंका प्रवाह सुगमतापूर्वक बहता था—उनके वेगसे तट छिन्न-भिन्न नहीं हो पाते थे। किनारेपर पक्षियोंका समाज शोभा बढ़ाता रहता था। ब्राह्मण वेदतत्त्वके जानकार तथा यज्ञशील थे। क्षत्रियोंमें धार्मिक भावना जाग्रत् थी। वे दान और अध्ययनमें तत्पर रहते थे। शस्त्रविद्यामें उनकी विशेष अभिरुचि थी। वे प्रजाकी रक्षामें कभी असावधान नहीं होते थे। समस्त राजाओंद्वारा न्यायपूर्वक शासन होता था। किसीमें विषय-तृष्णा नहीं थी। सम्पूर्ण प्राणी परस्पर मेल-मिलाप रखते थे। धन बाँटनेवालोंका एक समाज विद्यमान था। गोठमें झुंड-की-झुंड गौएँ रहती थीं।

नृपवर ! उस समय धरातलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये सब-के-सब देवीके परम उपासक थे। यत्र-तत्र भी यज्ञस्तम्भ और मनोहर मण्डप दृष्टिगोचर होते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंद्वारा सम्पन्न हुए यज्ञोंसे पृथ्वीका प्रत्येक भाग सुशोभित था। स्त्रियाँ सुशील, पतिव्रता और सत्यभाषिणी थीं। पुत्र पितामें श्रद्धा रखनेवाले तथा धर्मशील होते थे। भूमण्डलमें कहीं भी पाखण्ड और अधर्मका नामतक नहीं रह गया था। उस समय वेदवाद और शास्त्रवादके सिवा दूसरे कोई वाद प्रचलित नहीं थे। किन्हींमें विवाद नहीं छिड़ता था। सभी धनी और सुन्दर विचारवाले थे। प्राणियोंमें

सर्वत्र सुखका साम्राज्य था। किसीकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। सुहृदोंमें अटूट स्नेहका सम्बन्ध बना रहता था। कभी किसीपर विपत्ति नहीं आती थी। न कभी अवर्षण होता था और न अकाल ही पड़ता था। दुःखदायिनी महामारी मनुष्योंके सामने फटकने ही नहीं पाती थी। न कोई रोगी था और न किसीका दूसरेके प्रति डाह था और न परस्पर विरोध ही था। स्त्री और पुरुष सर्वत्र सुखपूर्वक समय व्यतीत करते थे। स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति सम्पूर्ण मानव आनन्द भोगते थे। चोरों, पाखण्डियों, धूर्तों और दम्भियोंका नितान्त अभाव था। राजन्! उस समय कोई कृपण और लम्पट नहीं था। वेदद्वेषी और दुराचारियोंका नामतक नहीं था। सभी धर्मात्मा थे। निरन्तर ब्राह्मणोंकी सेवा होती थी। सभी मानव कार्यकुशल, सात्त्विक और वेदके जानकार थे।

ब्राह्मणोंमें दान लेनेकी प्रवृत्ति नहीं थी। सभी दयालु और संयमी थे। धर्ममें तत्पर रहकर सात्त्विक अन्नोंसे यज्ञोंका सम्पादन किया जाता था। पुरोडाश बनाकर हवन किया जाता था। यज्ञमें कभी पशुबलि नहीं होती थी। दान, अध्ययन और यजन—इन तीन कार्योंमें अनुराग रखनेवाले ब्राह्मण सात्त्विक वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते थे। राजन्! राजस स्वभावके ब्राह्मण भी वेदके पूर्ण जानकार थे। क्षत्रियोंकी पुरोहिती ही उनकी वृत्ति थी। वे सभी छः कर्मोंमें निरत थे। यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना तथा वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना—ये छः कर्म हैं। राजाकी आज्ञाके अनुसार सबके कामोंकी व्यवस्था थी। कुछ लोगोंका समय अध्ययनमें ही व्यतीत होता था।

महिषासुरके कारण उनके कार्योंमें जो बाधा आ गयी थी, वह उसके मर जानेपर दूर हो गयी; सबके हृदयकी व्यथा शान्त हो गयी। वे वेद पढ़नेमें संलग्न हो गये। उनके व्रत-नियम और दान-धर्ममें कोई बाधा नहीं रही। क्षत्रियगण प्रजापालन और वैश्यगण व्यापारमें लग गये। कुछ वैश्योंके यहाँ खेती, व्यापार, गो-पालन तथा सूदपर रुपया चलानेका व्यवसाय था। महिषासुरका निधन हो जानेपर इस प्रकार समस्त जगत् सुखी हो गया। प्रजावर्गमें किसी प्रकारका उद्वेग नहीं रहा। सभी मानव बड़ी तत्परताके साथ भगवती चण्डिकाके चरण-कमलोंकी सेवामें परायण रहने लगे।

(अध्याय २०)

☆

## शुम्भ-निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय, देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति और उनका प्राकट्य

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सुनो, देवीका उत्तम चरित्र कहता हूँ। यह कथा सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख देनेवाली तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। शुम्भ और निशुम्भ—ये दो भाई बड़े बलवान् राक्षस थे। किसी भी पुरुषके द्वारा इन शूरवीरोंकी मृत्यु सम्भव नहीं थी। इनके पास बहुत-से सैनिक थे। देवताओंको सदा दुःखी बनाये रखना इनका मुख्य उद्देश्य था। ये बड़े दुराचारी और घमंडी थे। सारा दानव-समाज इनका साथ देनेको तत्पर था। भगवतीके साथ इनकी घमासान लड़ाई हुई और उस अवसरपर ये मार डाले गये। देवताओंका हित

सोचकर अनुचरोंसहित देवीने यह कार्य सम्पन्न किया था। इसी युद्धमें महान् भुजावाले चण्ड और मुण्ड, अत्यन्त भयंकर रक्तबीज एवं धूम्रलोचन नामक राक्षस भी समराङ्गणमें काम आये। देवीने उन दानवोंको मारकर देवताओंको भीषण भयसे मुक्त कर दिया। फिर वे सुरगणके द्वारा सुपूजित होकर पवित्र हिमालय पर्वतपर पधार गयीं।

राजा जनमेजयने पूछा—पूर्वकालवर्ती ये कौन दानव थे ? उन्हें कैसे सर्वोत्कृष्ट बल प्राप्त हुआ ? किसने उनकी प्रतिष्ठा की तथा वे कैसे स्त्रीके हाथों मारे गये ? उन्होंने किसकी तपस्या की अथवा किससे वरदान पाया ? जिसके परिणामस्वरूप वे इतने अपार बलशाली हो गये और फिर वे किस प्रकार मारे गये ? यह सभी प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सुनो, देवीके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा बड़ी विलक्षण है। इसके सुननेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। यह मङ्गलमयी कथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—समस्त फलोंको देनेवाली है। प्राचीन समयकी बात है— शुम्भ और निशुम्भ नामसे विख्यात दो दानव पातालसे भूमण्डलपर आये। वे दोनों सगे भाई थे। उनकी आकृति देखने योग्य थी। पूर्ण वयस्क होनेपर उन्होंने घोर तपस्या आरम्भ की। परम पावन पुष्करतीर्थमें जा अन्न और जलका परित्याग करके वे तप करने लगे। योगसाधनमें तत्पर रहनेवाले शुम्भ और निशुम्भकी वह तपस्या लगातार दस हजार वर्षोंतक चलती रही। वे एक आसनपर बैठकर सर्वोत्कृष्ट तपमें संलग्न हो गये। अन्तमें लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी उनपर संतुष्ट होकर हंसपर सवार हो वहाँ पधारे। देखा, वे दोनों दानव-भ्राता ध्यान लगाये बैठे हैं। तब ब्रह्माजीने कहा—'महाभागो ! उठो, तुम्हारी तपस्यासे मैं परम संतुष्ट हूँ। तुम्हें जो अभीष्ट हो अथवा तुम जो भी वर चाहते हो, उसे व्यक्त करो। मैं उसे देनेके लिये तैयार हूँ। तुम्हारे तपका प्रभाव देखकर तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेके विचारसे ही मेरा यहाँ आगमन हुआ है।'

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजीकी उपर्युक्त बात सुनकर शुम्भ और निशुम्भका ध्यान टूट गया। वे सजग हो गये। प्रदक्षिणा करके उन्होंने ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाया और वे दण्डकी भाँति सामने पड़ गये। उनके शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। दीन होकर गद्गद वाणीमें वे ब्रह्माजीसे मधुर वचन कहने लगे—'देवदेव ! दयासिन्धो ! ब्रह्मन् ! आप भक्त-जनोंको अभय कर देते हैं। विभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें अमर बनानेकी कृपा करें। संसारमें मरणके सिवा दूसरा कोई भी भय हमें नहीं है। केवल इसी भयसे संत्रस्त होकर हम आपकी शरणमें आये हैं। आप देवताओंके अधिष्ठाता, जगत्के रचयिता तथा क्षमाके भंडार हैं। विश्वात्मन् ! हमारी रक्षा आपपर निर्भर है। आप हमारे मरण-जन्मके भयको दूर करनेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—तुम कैसी असम्भव बातके लिये प्रार्थना कर रहे हो ? त्रिलोकीमें कोई भी किसीकी भी इस माँगको पूरी नहीं कर सकता। यह सर्वथा अदेय है। जन्मनेवालेकी मृत्यु और मरनेवालेकी उत्पत्ति—यह बिलकुल निश्चित है। जगन्नियन्ता प्रभुने सदासे ही जगत्में यह मर्यादा स्थापित कर रखी है। सभी प्राणी सर्वथा

मरणशील हैं—इसमें संशय नहीं किया जा सकता। अतएव तुम दूसरा कोई अभिलषित वर माँगो, मैं उसे पूरा कर सकता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजीके वचन सुनकर शुम्भ और निशुम्भ कुछ क्षणतक विचारमें पड़े रहे। पश्चात् वे सामने खड़े होकर नम्रतापूर्वक बोले—'कृपासिन्धो! देवता,

मानव, मृग और पक्षी—किसी भी पुरुषके द्वारा हमारा मरण न हो, यही हमें अभीष्ट है। इसे पूर्ण करनेकी कृपा करें। किसी स्त्रीमें तो ऐसी शक्ति हो ही नहीं सकती, जो हमें मार सके। चराचर त्रिलोकीमें किसी भी स्त्रीका हमें किंचिन्मात्र भय नहीं है। ब्रह्माजी! हम दोनों भाइयोंको 'पुरुष' मात्रके अवध्य होनेका वर मिलना चाहिये। स्त्रीसे हमें कोई डर नहीं है; क्योंकि वह तो स्वाभाविक ही अबला होती है।'

व्यासजी कहते हैं—शुम्भ और निशुम्भकी बात सुनकर ब्रह्माजी उन्हें अभिलषित वर देकर प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानपर पधार गये। ब्रह्माजीके ब्रह्मलोक सिधार जानेपर शुम्भ और निशुम्भ भी अपने घर लौट गये। घर पहुँचकर उन्होंने शुक्राचार्यको पुरोहित बनाया और सम्यक् प्रकारसे उनकी पूजा की। तब उत्तम दिन और नक्षत्र शोधकर मुनिने एक सुन्दर चाँदीका राज्यसिंहासन उन्हें प्रदान किया। शुम्भ बड़ा भाई था, अतएव उसे राजगद्दीपर बैठनेका अधिकार प्राप्त हुआ। अनेकों सुप्रसिद्ध दानव उसी क्षण शुम्भकी सेवामें सम्मिलित हो गये। चण्ड और मुण्ड—ये दोनों भाई महान् पराक्रमी एवं बलाभिमानी वीर थे। ये अपनी सेनाके साथ शुम्भकी सेवामें आ पहुँचे। इनके पास हाथी, घोड़े और रथोंकी भरमार थी। धूम्रलोचन नामक एक प्रचण्ड प्रतापी दैत्य था। शुम्भको दानवी गद्दीपर बैठनेका अधिकार प्राप्त हुआ है, यह सुनकर वह भी सेनासहित आ पहुँचा। इसी प्रकार शूरवीर रक्तबीज भी आ गया। वरदानके प्रभावसे उसे असीम बल प्राप्त था। उसके पास दो अक्षौहिणी सेना थी। राजन्! उसके विशेष बलवान् होनेका एक कारण यह भी था कि समराङ्गणमें लड़ते समय उसके शस्त्राहत शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें भूमिपर गिरती थीं, उतने ही अनेकों तदाकार पुरुष उत्पन्न हो जाते थे। उन क्रूर दानवोंकी भुजाएँ शस्त्रास्त्रोंसे सुशोभित रहती थीं। रक्त-बिन्दुसे उत्पन्न वे दानव आकार, रूप और पराक्रममें बिलकुल एक-से होते थे और वे सभी तुरंत युद्धमें सम्मिलित हो जाते थे। इसलिये रक्तबीज संग्राममें महान् पराक्रमी और अजेय वीर समझा जाता था। उस प्रधान दैत्यको मारनेमें सभी प्राणी असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त भी बहुत-से राक्षस शुम्भको राजा मानकर उसके सेवक बन गये। वे सभी शूरवीर थे और उनके पास चतुरङ्गिणी सेना भी थी। उस समय शुम्भ और निशुम्भकी सेनाकी संख्या-

गणना करना असम्भव था। शुम्भने अखिल भूमण्डलपर अपनी प्रभुता जमा ली थी।

तदनन्तर शत्रुपक्षकी सेनाको कुचल डालनेवाले निशुम्भने अपनी सेना सजाकर इन्द्रको परास्त करनेके लिये स्वर्गपर चढ़ाई कर दी। चारों ओर घूमकर उसने लोकपालोंके साथ घोर युद्ध किया। तब इन्द्रने उसकी छातीमें वज्रसे चोट पहुँचायी। भीषण वज्राघातसे आहत होकर निशुम्भ भूमिपर गिर पड़ा। उसे मूर्च्छा आ गयी। उसकी ऐसी स्थिति देखकर सैनिक भाग चले। मेरा छोटा भाई निशुम्भ मूर्च्छित होकर पड़ा है—यह सुनकर शत्रुसेनाका संहार करनेकी शक्ति रखनेवाला शुम्भ वहाँ आया और बाणोंसे समस्त देवताओंको घायल करने लगा। शुम्भके लिये कोई भी काम कठिन न था। उसने तुमुल युद्ध आरम्भ कर दिया। उसके इस प्रयाससे सम्पूर्ण देवता, लोकपाल और इन्द्र पराजित होकर भाग चले। अब तो शुम्भने बलपूर्वक इन्द्रकी पदवी प्राप्त कर ली। कल्पवृक्ष और कामधेनु गौ—सभी उसके अधिकारमें आ गये। त्रिलोकीभरमें उसीका नाम लेकर यज्ञमें हवन आरम्भ हो गया। नन्दनवनमें विहरनेका अलभ्य अवसर पा जानेके कारण उस महान् दानवके मनमें आनन्दकी लहरें लहराने लगीं। अमृतपान करनेसे उसके सुखकी सीमा नहीं रही।

शुम्भने कुबेरको भी जीतकर उनकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार जमा लिया। सूर्य और चन्द्रमा उसके अधीन बनकर चक्कर लगाते थे। यमराजको हराकर वह पद भी उसने अपने अधिकारमें कर लिया। अपने प्रभुत्वसे शुम्भासुर अग्नि, वरुण और वायु—सबके कार्यका स्वयं व्यवस्थापक बन गया। देवता बेचारे नन्दनवनको छोड़कर पर्वतोंकी खोहोंमें जाकर छिप गये। राज्य छिन जानेके कारण उनकी शोभा नष्ट हो गयी थी। अनधिकारी होकर वे वनोंमें इधर-उधर भटकने लगे। अब देवताओंका कोई भी सहायक नहीं रहा। वे निराधार, निस्तेज और निरायुध होकर समय व्यतीत करने लगे। इस स्थितिमें पर्वतोंकी कन्दराओं, जनशून्य जंगलों और नदियोंकी दरारमें ही समस्त देवताओंका आना-जाना था। स्थानभ्रष्ट हो जानेके कारण वे कहीं भी सुखसे समय व्यतीत नहीं कर पाते थे। महाराज ! यह बिलकुल निश्चित है कि सुख प्रारब्धके अधीन है। अत्यन्त पराक्रमी, महान् भाग्यशाली, प्रचुर ज्ञानी और धनाढ्य व्यक्ति भी विपरीत समय आनेपर दुःख एवं दैन्यके चक्करमें पड़ जाते हैं। महाराज ! कालकी करामात बड़ी ही अद्भुत है, उसके प्रभावसे राज्यका अधिकारी व्यक्ति भी भिक्षुक बन जाता है। दाताको भिखमंगा, बलवान्‌को निर्बल, पण्डितको अज्ञानी तथा शूरवीरको अत्यन्त कातर बना देनेका श्रेय एकमात्र प्रारब्धको ही है। सौ अश्वमेध यज्ञ करनेके पश्चात् इन्द्रको स्वर्गका सर्वोत्कृष्ट अधिकार प्राप्त हुआ था। फिर उन्हें असीम कष्ट भी भोगने पड़े—यह सब कालकी ही अद्भुत करामात थी। कालकी कुचेष्टामें किसी प्रकारका आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—राजेन्द्र ! सम्पूर्ण देवता परास्त होकर भाग गये। स्वर्गपर शुम्भका शासन प्रतिष्ठित हो गया। पूरे एक हजार वर्षतक शुम्भ राज्य करता रहा। राज्यसे भ्रष्ट हो जानेके कारण देवता अत्यन्त चिन्तित थे। उनके दुःखका पार नहीं था। उन्होंने तब बृहस्पतिजीके पास जाकर उनसे पूछा—'गुरो ! अब क्या करना चाहिये,

बतानेकी कृपा करें। महाभाग ! आप सर्वज्ञ एवं मुनियोंके सिरमौर हैं। इस संकटको दूर करनेके लिये उपाय करना आवश्यक है। बहुत-से उत्तम उपचार हैं। हजारों ऐसे वैदिक मन्त्र हैं, जिनके अनुष्ठानसे अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। सूत्रोंने इसका स्पष्टीकरण भी किया है। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तरह-तरहके यज्ञ बताये गये हैं। मुने ! आप उन उपायोंको काममें लेनेकी कृपा करें। उनकी सभी विधियाँ आपको विदित हैं। वेदमें शत्रुका नाश करनेके लिये जो जैसी विधि बतलायी गयी है, अब आप उसीका समुचित रूपसे अनुष्ठान करें, जिससे हमारे संकट टल जायँ। बृहस्पतिजी ! इस अवसरपर आपका परम कर्तव्य है कि आप दानवोंका उच्छेद करनेके लिये अपनी बुद्धिके अनुसार यत्न करनेमें तत्पर हो जायँ।

बृहस्पतिजी कहते हैं—देवेश ! वेदमें प्रतिपादित सभी मन्त्र प्रारब्धके अनुसार ही फल प्रदान करते हैं। उनमें स्वतन्त्रता नहीं है और न वे अकेले कुछ कर ही सकते हैं। मन्त्रोंके प्रधान देवता तो तुम्हीं लोग ठहरे, सो तुम्हें कालके प्रभावसे नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ रहे हैं। ऐसी स्थितिमें मैं क्या उपाय कर सकूँगा। यज्ञोंमें इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि देवताओंके लिये यजन किया जाता है। वे स्वयं तुम सब-के-सब विपत्तिमें पड़े हुए हो, फिर यज्ञ क्या कर सकेंगे। होनहार अवश्य होकर रहती है। उसे कोई टाल नहीं सकता। तब भी उपाय तो करना ही चाहिये—यही शिष्ट पुरुषोंकी आज्ञा है। कुछ विद्वानोंका कथन है कि दैव ही बलवान् है और उपाय-पक्षके समर्थक कुछ विद्वान् दैवको निरर्थक बतलाते हैं। परंतु मनुष्योंको दैव और प्रारब्ध—दोनोंका आश्रय लेना चाहिये। कभी भी केवल दैवके सहारे रहना उचित नहीं। अतएव अपनी बुद्धिसे विचार करके सर्वथा यत्न करनेमें लग जाना चाहिये। इसलिये भलीभाँति सोच-समझकर मैं तुम्हें उपाय बताये देता हूँ।

पूर्व समयमें भगवती जगदम्बा प्रसन्न होकर महिषासुरका वध कर चुकी हैं। तुम्हारे स्तुति करनेपर उन्होंने वर दिया था—'प्रधान देवताओ ! तुम्हें सदा मुझे याद करना चाहिये। दुर्दैववश जब-जब तुमपर आपत्तियाँ आयें, तब-तब मुझे स्मरण करना, मैं तुम्हारे संकट दूर कर दूँगी।' अतः तुमलोग अत्यन्त मनोहर हिमालय पर्वतपर जाकर प्रेमपूर्वक भगवती चण्डिकाकी आराधनामें तत्पर हो जाओ, तुम्हें माया-बीजकी पूर्ण जानकारी प्राप्त है। मैं समझता हूँ, तत्परतापूर्वक तुम्हारे अनुष्ठान करनेपर भगवती अवश्य प्रसन्न हो जायँगी। अब तुम्हारे दुःखका अन्त होनेवाला दिखायी पड़ रहा है— इसमें कोई संदेह नहीं। मैं सुन चुका हूँ, भगवती चण्डिका हिमालयपर सदा विराजमान रहती हैं। उनकी स्तुति और पूजा की जायगी तो वे तुरंत मनोरथ पूर्ण कर देंगी। दृढ़ निश्चय करके तुम सब लोग हिमालयपर चले जाओ। देवताओ ! यों करनेपर तुम्हारे सभी मनोरथ भगवती अवश्य पूर्ण कर देंगी।

व्यासजी कहते हैं—राजेन्द्र ! बृहस्पतिजीके उपर्युक्त वचन सुनकर देवता हिमालय पर्वतपर गये और उन्होंने देवीका आराधन आरम्भ कर दिया। मायाबीजको हृदयमें धारण करके वे सब सदा जपमें संलग्न रहने लगे। भक्तोंको अभय प्रदान करना भगवती महामायाका स्वभाव ही

है। देवताओंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और स्तोत्रके मन्त्र पढ़कर वे स्तुति करने लगे—'विश्वपर शासन करनेवाली देवी ! तुम प्राणशक्ति हो, सदानन्दस्वरूपिणी हो, देवताओंको आनन्दित करनेवाली हो। तुम्हें नमस्कार है। दानवोंका संहार करनेवाली, मानवोंकी अनेक अभिलाषाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिवश प्रकट होनेवाली तुम जगदम्बाको नमस्कार है। आद्या ! तुम्हारे कितने नाम हैं और तुम्हारा कैसा रूप है—इसे जाननेमें कोई भी समर्थ नहीं है। सबमें तुम्हीं विराजमान हो। जीवोंकी सृष्टि और संहारमें सदा तुम्हारी ही शक्ति काम करती है। स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, तुष्टि, पुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति और मेधा—ये सब तुम्हीं हो। तुम्हींको विश्वका सनातन बीज माना गया है। जब जैसा अवसर आता है, तब उसीके अनुसार रूप धारण करके तुम देवताओंका कार्य करती और उनके हृदयकी जलन दूर करती हो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें प्रशस्त स्वरूप धारण करके तुम्हीं क्षमा, योगनिद्रा, दया, विवक्षा आदि नामोंसे विराजमान हो। महिषासुर देवताओंका घोर शत्रु था। तुम्हारे हाथ उस मदान्ध दैत्यके प्राण प्रयाण कर चुके हैं। समग्र देवताओंपर तुम्हारी अक्षुण्ण दया सदा बनी रहती है—देवी ! यह बात पुराणों और वेदोंमें स्पष्ट घोषित है। माता अपने बच्चेका प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् प्रकारसे पालन और पोषण करती ही है—इसमें कौन-सी विचित्र बात है। क्योंकि देवता तुम्हारी संतान हैं, अतः तुम एकाग्रचित्त होकर इनके सम्पूर्ण मनोरथ सफल करनेकी कृपा करो। देवी ! अखिल जगत् तुम्हारी वन्दना करता है। तुम सर्वसमर्थ हो। तुम्हारे गुणोंकी गणना करना एवं तुम्हारा स्वरूप जानना हमारे लिये अशक्य है। बस, हमें तो कृपापात्र मानकर निर्भय करके निरन्तर हमारी रक्षा करती रहो। यद्यपि बिना बाण चलाये, बिना घूँसा मारे तथा बिना त्रिशूल, तलवार, शक्ति और दण्डका प्रयोग किये भी विनोदपूर्वक तुम शत्रुओंका संहार कर सकती हो, तथापि जगत्का उपकार करनेके लिये तुम्हारी यह लीला दृष्टिगोचर हो रही है। तुम्हारा यह रूप सनातन है। अविवेकी जन इस रहस्यसे अपरिचित रहते हैं।

हमारा यही निश्चय है कि इस विश्वकी रचना करनेका श्रेय केवल तुम्हींको है। ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहारमें संलग्न रहते हैं—यह बात पुराणप्रसिद्ध है। किंतु क्या वे तीनों तुम्हारे पुत्र नहीं हैं? क्योंकि युगके आदिमें केवल तुम्हीं रहती हो, अतएव तुम्हीं सबकी माता सिद्ध हुईं। देवी ! पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु और शंकरने तुम्हारी आराधना की थी। तभी तुमने अपनी 'सर्वोत्कृष्ट शक्ति' उन्हें प्रदान की और उसी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारसम्बन्धी कार्यमें संलग्न रहते हैं। जो योगी तुम जगदम्बाकी सेवासे विमुख हैं; क्या उनकी बुद्धि कुण्ठित नहीं है? वे सचमुच अज्ञानी हैं। तुम परम विद्यास्वरूपिणी हो। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देना तुम्हारा स्वभाव है। तुम्हारी कृपासे मुक्ति सुलभ हो जाती है। सम्पूर्ण देवता तुम्हारे चरणकमलोंमें मस्तक झुकाते हैं। तुम कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टि नामसे विख्यात हो। माता ! विष्णु और शंकर प्रभृति

प्रधान देवता तुम्हारी सेवामें संलग्न रहते हैं। जगत्‌में जो मानव तुम्हारे सेवक नहीं बनते, वे मूर्ख हैं ! निश्चय ही उनकी बुद्धि विधाताने हर ली है। भगवान् विष्णुके पास तुम लक्ष्मीरूपसे विराजमान हो। वे तुम्हारे चरणकमलोंमें महावर लगाकर आनन्दका अनुभव करते हैं। यही स्थिति भगवान् शंकरकी भी है, उनके यहाँ तुम पार्वतीरूपसे विराजमान हो और वे निरन्तर तुम्हारी चरण-रजके सेवनमें तत्पर रहते हैं, फिर दूसरे मनुष्यकी क्या बात करें। तुम्हारे दोनों चरण कमलके समान सुकोमल हैं। कौन उनकी उपासना नहीं करते ?—सभी उपासते हैं। घर-गृहस्थीसे विरक्त बुद्धिमान् मुनिगण भी दया एवं क्षमारूपसे तुम्हारी आराधना करते हैं। देवी ! जो जन तुम्हारे चरणकमलकी उपासनासे उदासीन हैं, उन्हें निश्चय ही संसाररूप अगाध कूपमें गिरना पड़ता है। वे ही कुष्ठ, गुल्म और शिरोरोगसे ग्रस्त होकर जगत्‌में दुःख भोगते हैं। दरिद्रता कभी उनका साथ नहीं छोड़ती। वे सदा सुखसे वञ्चित रहते हैं। जननी ! जो धन और दाराहीन मानव लकड़ीका बोझ ढोने एवं तृण आदिका वहन करनेमें कुशल हैं, हमारी समझसे उन मन्द बुद्धिवालोंने पूर्वजन्ममें तुम्हारे चरण-कमलोंकी कभी उपासना नहीं की है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार समस्त देवताओंके स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा करुणासे ओत-प्रोत होकर तुरंत प्रकट हो गयीं। उनका रूप निखर उठा था। वे विचित्र वस्त्र पहने हुए थीं। दिव्य आभूषण उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। गलेमें अद्भुत हार था और वे दिव्य चन्दनसे चर्चित थीं। उनमें ऐसी सुकुमारता थी कि जगत् मोहित हो जाय। उन्हें सभी शुभ लक्षण सुशोभित कर रहे थे। देवताओंके देखनेमें वे अद्वितीयस्वरूपिणी प्रतीत हुईं। उन्होंने ऐसा दिव्य रूप धारण कर रखा था, जिससे जगत्‌को मोहित करनेवाले भी मोहमें पड़ जायँ। कोकिलके समान मधुर भाषण करनेवाली भगवती जगदम्बा हँसकर स्तुति करनेमें लगे हुए देवताओंके प्रति प्रेमपूर्वक गम्भीर वाणीमें कहने लगीं।

देवीने कहा—आदरणीय देवताओ ! तुम इस समय क्यों इतनी स्तुति कर रहे हो ? तुम्हारे मुखोंपर चिन्ता क्यों छायी हुई है ? तुम अपना कार्य मेरे सामने प्रकट करो।

व्यासजी कहते हैं—महाभाग देवता भगवतीके रूप और वैभवको देखकर सम्मोहित हो गये थे। उनकी वाणी सुनकर वे प्रेमपूर्वक अपने स्तवनका रहस्य बतलाने लगे।

देवता बोले—जगत्‌को नियन्त्रणमें रखने-वाली करुणामयी देवी ! हम तुम्हारी शरणमें आकर स्तुति कर रहे हैं। तुम हमें सम्पूर्ण संकटोंसे बचाओ। दैत्योंके सतानेसे हमारा मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा है। महादेवी ! पूर्व समयकी बात है—महिषासुर देवताओंके लिये महान् कण्टक बना हुआ था। तुमने उसे मारकर हमें वर दिया था—'जब कभी तुमपर आपत्ति आये, तब मुझे याद करना; स्मरण करते ही तुम्हारे दुःखोंको मैं दूर कर दूँगी—इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है।' अतएव देवी ! हमने तुम्हें स्मरण किया है। इस समय शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव उत्पन्न हुए हैं। इनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है। हमारे कार्योंमें ये सदा विघ्न डाला करते हैं। किसी भी पुरुषसे ये मारे नहीं जा सकते। ऐसे ही प्रतापी रक्तबीज और चण्ड-मुण्ड भी हैं। इनके अतिरिक्त और
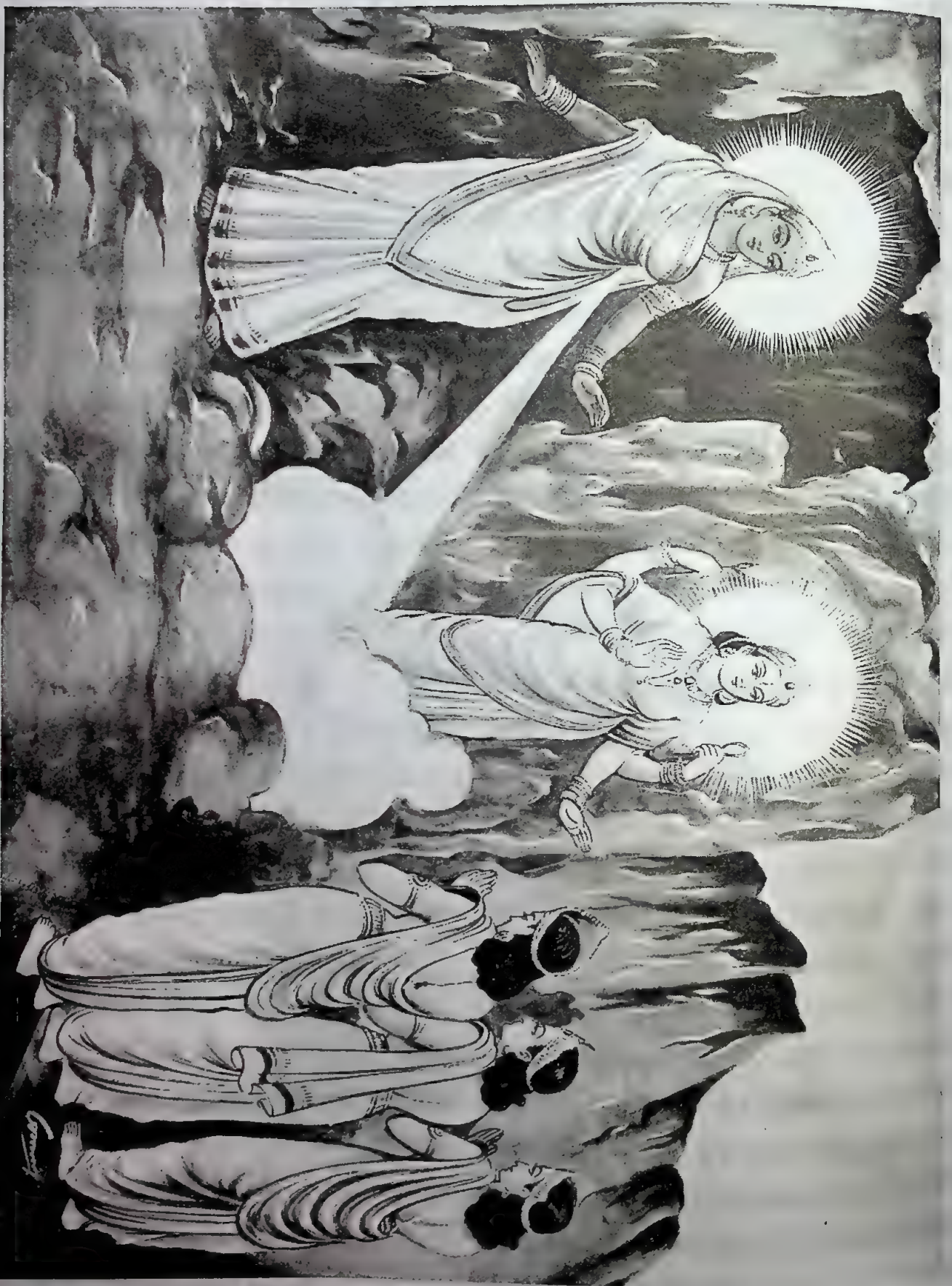
कौशिकी देवीका प्राकट्य

भी बहुत-से महान् बलशाली दानव हैं। इन असुरोंने हम देवताओंका राज्य छीन लिया है। महाबले ! सुमध्यमे ! हमें दूसरा कोई अवलम्ब नहीं है। केवल एक तुम्हीं शरण हो। देवता अवश्य ही महान् कष्ट पा रहे हैं। तुम इनका कार्य सिद्ध करनेकी कृपा करो। देवी ! देवता तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहणकर अत्यन्त बलशाली दानवोंद्वारा प्राप्त दुःख तुम्हें बता चुके। माता ! ये देवता तुम्हारे प्रति अटूट श्रद्धा रखते हैं। इस समय इनपर दुःखके बादल उमड़ रहे हैं। अब तुम इनके लिये शरण्य होकर दुःख दूर करनेकी कृपा करो। देवी ! युगके आरम्भमें तुमने ही इस विश्वकी रचना की थी। तुम अपना बनाया हुआ जानकर अखिल भूमण्डलकी रक्षामें तत्पर हो जाओ। माता ! अभिमानी दानव बलके घमंडमें चूर होकर जगत्को पीड़ा पहुँचा रहे हैं। उनका विनाश करके जगत्को सुख प्रदान करो। (अध्याय २१-२२)

☆

## भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य, देवीकी कालिकारूपमें परिणति, देवताओंको आश्वासन, शुम्भ-निशुम्भको देवीके पधारनेका संवाद प्राप्त होनेपर उनका मन्त्रियोंसे परामर्श, शुम्भके द्वारा प्रेरित दूत सुग्रीवसे जगदम्बाकी बातचीत

व्यासजी कहते हैं—देवता शत्रुओंसे अत्यन्त संतप्त थे। उन्होंने जब इस प्रकार स्तुति की, तब देवीने अपने विग्रहसे एक दूसरा रूप प्रकट कर दिया। जब भगवती पार्वतीके शरीरसे जगदम्बा साकाररूपमें प्रकट हुईं, तब सम्पूर्ण जगत् उन्हें 'कौशिकी' नामसे पुकारने लगा। पार्वतीके शरीरसे भगवती कौशिकीके निकल जानेपर शरीर क्षीण हो जानेके कारण पार्वतीका रूप काला पड़ गया। अतः वे 'कालिका' नामसे विख्यात हुईं। स्याहीके समान काले वर्णसे वे बड़ी भयंकर जान पड़ती थीं। भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देना उनका स्वाभाविक गुण था। वे 'कालरात्रि' नामसे प्रसिद्ध हुईं। भगवती जगदम्बाका एक दूसरा मनोहर रूप भी विराजमान था। सम्पूर्ण भूषण उस श्रीविग्रहकी शोभा बढ़ा रहे थे। लावण्य आदि सभी शुभ गुणोंसे वह सम्पन्न था। तदनन्तर भगवती जगदम्बा हँसकर देवताओंसे कहने लगीं—'अब तुमलोग निर्भय होकर अपने स्थानपर विराजमान रहो। मैं शत्रुओंका संहार कर डालूँगी। तुम्हारा कार्य सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न करनेके लिये मैं समराङ्गणमें विचरूँगी। तुम्हें सुखी बनानेके लिये शुम्भ-निशुम्भ आदि सभी दानवोंका मैं वध कर दूँगी।'

इस प्रकार कहकर बलके अभिमानसे भरी हुई भगवती कौशिकी सिंहपर सवार हुईं और शत्रुके नगरकी ओर चल पड़ीं। उन्होंने कालीको भी साथ चलनेका आदेश दिया। कालिका-सहित भगवती जगदम्बा नगरके संनिकट जाकर जिधरसे हवा आ रही थी, वहीं ठहर गयीं और उन्होंने जगत्को मोहित करनेवाला संगीत आरम्भ कर दिया। उस सुमधुर गानको सुनकर पक्षी और मृगतक मोहित हो गये। आकाशमें रहनेवाले देवताओंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। शुम्भके दो सेवक थे, जिनके नाम थे—चण्ड और मुण्ड। उस समय वे दोनों

भयंकर अनुचर स्वतन्त्रतापूर्वक विचर रहे थे। वे वहाँ आये और उन्होंने देखा, दिव्यरूपधारिणी भगवती जगदम्बा गा रही हैं। उन्होंने कालिकाको अपने सामने स्थान दे रखा था। दिव्यरूपा उन भगवती जगदम्बाको देखकर चण्ड और मुण्ड महान् आश्चर्यमें पड़ गये। राजेन्द्र ! तब वे उसी क्षण शुम्भके पास चल पड़े। उस समय दानवराज शुम्भ अपने घरपर था। उसके पास पहुँचकर चण्ड और मुण्डने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। साथ ही मधुर वाणीमें कहा—'राजन् ! कामदेवको भी मोहित करनेकी योग्यता रखनेवाली एक सुन्दरी स्त्री हिमालय पर्वतसे निकली है। सिंह उसकी सवारीका काम दे रहा है। उसमें सभी शुभ लक्षण वर्तमान हैं। ऐसी उत्तम स्त्री देवलोक अथवा गन्धर्वलोकमें भी मिलनी असम्भव है। जगत्भरमें कहीं भी ऐसी स्त्रीको न तो देखा है और न सुना ही है। राजन् ! वह ऐसा सुन्दर गाना गाती है, जिसे सुनकर सभी जन मुग्ध हो जाते हैं। उसके सुमधुर स्वरसे मोहित हुए मृग सदा उसके पास बने रहते हैं। महाराज ! वह किसकी पुत्री है और उसके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है—इस विषयकी जानकारी प्राप्त करके आप उसे अपने पास स्थान दीजिये। वास्तवमें यह कामिनी आपके योग्य है। उसकी आँखोंसे कल्याण टपक रहा है। उसका पता लगाकर आप अपने घर ले आयें और उसे भार्या बनानेकी कृपा करें। यह निश्चित है कि उसके समान किसी दूसरी सुन्दरी स्त्रीका होना जगत्में नितान्त असम्भव है। राजन् ! देवताओंके सम्पूर्ण रत्नोंपर आपका अधिकार हो चुका है। महाराज ! फिर इस सुन्दरी स्त्रीको अपनानेमें आप क्यों उदासीन हैं ?

'राजन् ! आपने इन्द्रसे बलपूर्वक ऐश्वर्यपूर्ण ऐरावत हाथी, पारिजात वृक्ष और उच्चैःश्रवा अश्व आदि छीन लिये हैं। राजन् ! ब्रह्माका अद्भुत विमान रत्नमय है। राजहंसके चिह्नवाली ध्वजा उसपर फहरा रही है। ऐसे दिव्य विमानको आपने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया है। राजन् ! पद्म नामक निधि आप कुबेरसे छीन लाये हैं। वरुणका शुभ्र छत्र आपने हठपूर्वक ले लिया है। राजेन्द्र ! आपके भाई निशुम्भसे वरुणकी मुठभेड़ हुई थी। वरुण हार गया। तबसे उसका पाश भी निशुम्भके पास ही सुशोभित है। महाराज ! आपके भयसे समुद्रने, जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं, ऐसी माला तथा तरह-तरहके रत्न आपको भेंट किये हैं। राजन् ! मृत्युकी शक्ति और यमराजके अत्यन्त भयंकर दण्डपर भी आपका अधिकार है। उन्हें पराजित करके आपने उनको छीन लिया है। आपके पराक्रमका कहाँतक बखान किया जाय। समुद्रसे प्रकट हुई कामधेनु गौ इस समय आपके घरपर शोभा पा रही है। राजन् ! मेनका प्रभृति अप्सराएँ आपके अधीन रहकर सेवा करती हैं। इस प्रकार सभी श्रेष्ठ रत्नोंको बलपूर्वक आपने अपने अधिकारमें कर लिया है। फिर मनको मुग्ध करनेवाली इस अनुपम स्त्रीरत्नपर क्यों नहीं अधिकार जमाते ? भूपते ! आपके घरमें जितने विपुल रत्न हैं, वे सभी इस सुन्दरी स्त्रीका सहयोग पाकर ही अपने यथार्थ रूपमें परिणत हो सकते हैं। दानवराज ! त्रिलोकीमें कहीं भी ऐसी सुन्दरी स्त्री नहीं है। अतएव इस मनोहारिणी स्त्रीको आप शीघ्र अपने यहाँ लाकर अपनी प्रेयसी भार्या बना लें।'

व्यासजी कहते हैं—चण्ड और मुण्डकी वाणी बड़ी मधुर थी। उसके प्रत्येक अक्षरसे मधु टपक रहा था। सुनकर शुम्भका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने अपने पास बैठे हुए सुग्रीवसे यों कहा—'सुग्रीव ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। दूत बनकर जाओ, इस कार्यको सम्पन्न करो। वहाँ जाकर इस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, जिससे वह सुन्दरी यहाँ आ जाय। शृङ्गार-रसके पारगामी विद्वान् कहते हैं कि स्त्रियोंके विषयमें कार्यकुशल दूतको साम और दान—इन दो उपायोंका प्रयोग करना चाहिये। भेदनीतिका प्रयोग करनेपर रसाभाव दोष उत्पन्न हो जाता है। दण्डनीतिका प्रयोग करनेपर तो रसकी सत्ता ही सर्वथा चौपट हो जाती है। अतएव विवेकीजन इन दोनों उपायोंको दूषित ठहराते हैं। दूत ! साम और दान—इन दो उपायोंको ही प्रमुख मानकर इनका प्रयोग करना चाहिये। वाक्योंमें मधुरता और नम्रता भरी होनी चाहिये। इन उपायोंका प्रयोग करनेपर कौन कामिनी स्त्री वशमें नहीं आ सकती ?

व्यासजी कहते हैं—शुम्भकी बात अत्यन्त प्रिय और चतुरतासे ओत-प्रोत थी। उसे सुनकर सुग्रीव तुरंत वहाँसे चल पड़ा, जहाँ भगवती जगदम्बा विराजमान थीं। वहाँ जाकर उसने देखा—सुन्दर मुखवाली भगवती जगदम्बा सिंहपर बैठी हुई शोभा पा रही हैं, प्रणाम करके मधुर वाणीमें वह उनसे कहने लगा।

दूत बोला—सुजघने ! शुम्भ बड़े शूरवीर पुरुष हैं। उनके सभी अङ्गोंसे सुन्दरता टपकती है। देवताओंके वे परम शत्रु हैं। तीनों लोकोंपर उनका पूर्णाधिकार है। वे सबको जीतकर शोभा पा रहे हैं। उन्हीं महात्माने मुझे तुम्हारे पास भेजा है; क्योंकि तुम्हारे रूपकी प्रशंसा सुनकर उनका मन तुमपर आसक्त हो गया है। तन्वङ्गी ! उन दानवराजकी प्रेमपूर्ण बातें सुननेकी कृपा करो। उन्होंने नम्रतापूर्वक तुमसे कहलाया है—'कान्ते ! मैंने सम्पूर्ण देवताओंको परास्त कर दिया है। मैं त्रिलोकीका एकच्छत्र राजा हूँ। इस समय यज्ञमें दिये हुए हव्य-पदार्थ सब मुझे ही भोगनेको मिलते हैं। मैंने स्वर्गलोककी सभी सार वस्तुएँ छीन ली हैं। अब वहाँ एक भी रत्न नहीं बचा है। देवताओंके पास जितने रत्न थे, वे सब-के-सब मेरे द्वारा हर लिये गये हैं। भामिनी ! देवता, दानव और मानव—सब-के-सब मेरे वशमें होकर पीछे-पीछे चलते हैं। तुम्हारे गुण कानके रास्ते मेरे हृदयमें प्रवेश कर गये हैं। परिणामस्वरूप अब मैं तुम्हारे अधीन होकर तुम्हारा सेवक बन गया हूँ; रम्भोरु ! तुम जो आज्ञा दो, वही करनेको तैयार हूँ। चार्वङ्गी ! मैं तुम्हारे वशीभूत, तुम्हारा अनुचर और दास हूँ। मोरपंखके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली सुन्दरी ! मैं तुम्हारे अधीन हो गया हूँ। तुम मुझे अपना पति बना लो। फिर तुम तीनों लोकोंकी स्वामिनी बनकर सर्वोत्तम भोग भोगो। कान्ते ! मैं जीवनपर्यन्त तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा। वरारोहे ! देवता-दानव और मानव—कोई भी मुझे मार नहीं सकते। वरानने ! तुम सदा सौभाग्यवती बनी रहोगी। सुन्दरी ! जहाँ तुम्हारा जी चाहे, वहीं रहकर आनन्दका उपभोग करो।' महाराज शुम्भका यही संदेश है। इसपर विचार करके प्रेमपूर्वक जो कहना समुचित हो, वही उत्तर मधुर वचनोंमें देनेकी कृपा करो। चञ्चलापाङ्गी ! मैं तुम्हारी बातें यथाशीघ्र महाराजा शुम्भके सामने उपस्थित करनेको प्रस्तुत हूँ।

व्यासजी कहते हैं—शुम्भके दूत सुग्रीवकी बात सुनकर भगवती जगदम्बाके मुखपर बड़ी सुन्दर मुसकान छा गयी। अब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली देवीने मधुर शब्दोंमें दूतसे कहना आरम्भ किया।

श्रीदेवी बोलीं—निशुम्भ तथा अत्यन्त पराक्रमी राजा शुम्भको मैं जानती हूँ। राजा शुम्भने सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया है। सभी शत्रु उनके द्वारा मार डाले गये हैं। वे सम्पूर्ण गुणोंकी राशि हैं। सारी सम्पदाओंके भोगनेका सुअवसर उन्हें प्राप्त है। वे बड़े दानशील, अत्यन्त शूरवीर, सुन्दर तथा कामदेवके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनमें बत्तीसों शुभ लक्षण वर्तमान हैं। देवता अथवा मानव—कोई उन्हें मार नहीं सकते। यह सब मैंने सुना है। उन महान् असुरके विषयमें यह सब सुनकर ही उन्हें देखनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ। जैसे रत्न अपनी शोभा बढ़ानेके लिये सुवर्णके पास आता है, अपने लिये वैसे ही पति चुननेके विचारसे बहुत दूर हिमालयसे मेरा यहाँ आना हुआ है। मैंने सम्पूर्ण देवताओंपर दृष्टि डाली है। मान प्रदान करनेवाले भूमण्डलवासी सभी मानव मेरे दृष्टिगोचर हुए हैं; अन्य भी जितने अत्यन्त सुन्दर कहलानेवाले गन्धर्व और राक्षस हैं, उन्हें भी मैं देख चुकी। सबके हृदयमें शुम्भका आतङ्क छाया हुआ है, सभी काँपते हैं। जान पड़ता है, किसीके शरीरमें प्राण ही नहीं है। शुम्भके गुण सुनकर उन्हें देखनेके लिये आज मैं यहाँ आ गयी हूँ। महाभाग दूत ! तुम जाओ और महाबली शुम्भसे कहो। मेरे ये सभी वचन अत्यन्त मधुर वाणीमें, जहाँ दूसरा कोई न हो, वहाँ एकान्तमें कहना—'राजन् ! तुम बलवानोंमें अत्यन्त बलवान् तथा सुन्दरोंमें सर्वोत्तम सुन्दर हो। तुम दानी, गुणी, शूरवीर, सम्पूर्ण विद्याओंके पारगामी, विजयशील, समस्त देवताओंके विजेता, कुशल, तेजस्वी, उत्तम कुलमें उत्पन्न, सम्पूर्ण रत्नोंके भोक्ता, परम स्वतन्त्र तथा अपनी शक्तिसे समृद्धिशाली बने हो। तुम्हारा यह प्रभाव मुझे ज्ञात हो चुका है। मैं किसीको पति बनाना चाहती हूँ। मेरी बात बिलकुल सत्य है। परंतु राक्षसेन्द्र ! मेरे विवाहमें एक अड़चन है। राजन् ! पूर्व समयमें बालस्वभाववश ही मैंने एक प्रतिज्ञा कर ली है। उस समय समान अवस्थावाली सखियोंके साथ मैं एकान्तमें स्वेच्छानुसार खेल रही थी। मुझे अपने शारीरिक बलका बड़ा अभिमान हो गया था। अतः सखियोंके सामने मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि जो मेरे समान पराक्रम रखनेवाला वीर समराङ्गणमें मुझे जीत लेगा, उसके बलाबलको जानकर ही मैं उसे पति बनाऊँगी।' मेरी यह बात सुनकर सखियोंके मनमें महान् आश्चर्य हुआ। वे ठहाका मारकर हँसने लगीं। उनके मुँहसे निकल पड़ा, 'इसने झटसे यह क्या कठिन नियम ले लिया। यह तो बड़ी अद्भुत प्रतिज्ञा है।' अतएव 'राजेन्द्र ! तुम भी मेरे ऐसे पराक्रमको जानकर सामने डट जाओ और मुझे बलपूर्वक जीतकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लो। तुम अथवा तुम्हारा भाई—कोई भी समराङ्गणमें आ जाय। परंतु युद्धमें मुझे परास्त करके ही विवाह करना होगा।' (अध्याय २३)

☆

# धूम्रलोचन और देवीका संवाद तथा धूम्रलोचन-वध

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाकी बात सुनकर सुग्रीवके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसने कहा—'सुन्दर भौंहोंवाली देवी ! तुम स्त्री-स्वभावके कारण सहसा यह क्या कह रही हो ? अरी भामिनी ! जिन्होंने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा अन्य दुर्दान्त दैत्योंको भी परास्त कर दिया है, उन्हें तुम संग्राममें जीतनेकी इच्छा कैसे रखती हो ? त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो समरमें शुम्भको जीत सके। कमलपत्राक्षी ! ऐसी स्थितिमें तुममें क्या सामर्थ्य है, जो तुम उनके सामने युद्धमें थोड़ी देर भी टिक सको ? सुन्दरी ! बिना सोचे-समझे कभी भी कोई वचन नहीं कहना चाहिये। अपने और विपक्षीके बलको जानकर ही समयके अनुसार बात करना उचित है। त्रिलोकीके अध्यक्ष महाराज शुम्भ तुम्हारे रूपपर मोहित हो जानेके कारण प्रार्थना कर रहे हैं। तुम उनका मनोरथ पूर्ण करो। मूर्खतापूर्ण स्वभाव त्यागकर मेरी बातका आदर करके तुम शुम्भ अथवा निशुम्भ—किसीकी पत्नी बन जाओ। मैं यह तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। बाले ! तुम उनके पास नहीं जाओगी तो राजा शुम्भ अत्यन्त कुपित होकर अन्य बहुत-से दूतोंको भेजेंगे। वे दूत बड़े ही बलाभिमानी हैं। तब वे तुम्हारी चोटी पकड़कर बलपूर्वक तुम्हें ले जाकर शुम्भके सामने उपस्थित कर देंगे। यह बात बिलकुल निश्चित है। अतः तन्वङ्गी ! अपनी लज्जा सुरक्षित रखनेके लिये ही तुम्हें इस दुस्साहसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। तुम एक आदरणीया देवी हो। मेरी बात मानकर शुम्भके पास चलनेकी कृपा करो। कहाँ तीखे तीरोंसे होनेवाली मार-काट और कहाँ रतिसे उत्पन्न होनेवाला सुख। तुम्हें सार-असार बातपर विचार करके मेरे हितकर वचनोंपर ध्यान देना चाहिये। तुम शुम्भ अथवा निशुम्भको स्वामी बना लो। यों करनेमें ही तुम्हारा परम कल्याण है।

देवीने कहा—महाभाग दूत ! तुम बड़े कार्यकुशल और सत्यवादी हो। शुम्भ और निशुम्भ निश्चय ही अत्यन्त बलवान् हैं—यह बात मैं जान गयी। किंतु लड़कपनसे ही मैंने जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे कैसे अन्यथा किया जाय। अतएव तुम निशुम्भ अथवा उससे भी अधिक बलवान् शुम्भसे कह दो कि 'बिना युद्ध किये कोई भी मेरा स्वामी नहीं बन सकेगा, चाहे कोई कितना भी सुयोग्य और सुन्दर क्यों न हो। राजन् ! मुझे जीतकर पाणिग्रहण कर लो। मैं अबला होती हुई भी युद्ध करनेके विचारसे ही इस समय यहाँ आयी हूँ—यह बात तुम्हें समझ लेनी चाहिये। तुममें शक्ति हो तो वीरधर्मका आश्रय लेकर मेरे साथ युद्ध करो और यदि मेरे त्रिशूलसे डरते हो तो अभी-अभी पाताल भाग

जाना तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है। तुम्हें जीनेकी अभिलाषा हो तो स्वर्ग और पृथ्वी—इन दोनों स्थानोंको छोड़कर तुरंत भाग जाओ।'

दूत ! तुम अभी जाओ और आदरपूर्वक अपने स्वामीको मेरी ये बातें सुना दो। फिर, महाबली शुम्भ विचार करके जो उचित होगा, वही करेंगे। संसारमें दूतका यही धर्म है कि जो बात सत्य हो, उसे व्यक्त कर दे। धर्मज्ञ ! शत्रु और स्वामी—दूतको दोनोंके प्रति निष्पक्ष व्यवहार करना चाहिये। अब तुम भी वैसा ही करो। विलम्ब मत करो।

व्यासजी कहते हैं—उस समय भगवती जगदम्बाके मुखसे जो बातें निकलीं, वे नीति-युक्त, शक्तिसम्पन्न, हेतुपूर्ण और अत्यन्त प्रतिभासे युक्त थीं। उन्हें सुनकर शुम्भके दूत सुग्रीवके आश्चर्यकी सीमा न रही। बार-बार विचार करनेके पश्चात् वह अपने स्वामीके पास लौट गया और चरणोंमें मस्तक झुकाकर नम्रता-पूर्वक कहने लगा। उसकी बात नीतिपूर्ण, मृदु और मनोहर थी।

दूतने कहा—राजेन्द्र ! सत्य और प्रिय बात कहना चाहिये, इस नियमके कारण मेरे हृदयसे चिन्ता दूर नहीं हो रही है; क्योंकि जो सत्य हो और प्रिय भी हो, ऐसा वचन अत्यन्त दुर्लभ है। अप्रिय कहनेवाले दूतके प्रति राजा सर्वथा कुपित हो सकते हैं। मैं उस स्त्रीसे भेंट करके आ रहा हूँ, पर यह नहीं जान सका कि वह निर्बल है या सबल। मेरी समझमें नहीं आ सका। अतः मैं क्या कहूँ। मेरे देखनेमें वह युद्ध करना चाहती है। उसके वचन बड़े गर्वपूर्ण और कठोर हैं। महामते ! उस स्त्रीने जो कहा है, उसे भलीभाँति सुननेकी कृपा करें। उसका कथन है—'मैं छोटी लड़की थी, तब एक दिन सखियोंके साथ खेलते-कूदते समय विनोदमें ही मैंने विवाहके विषयमें ऐसी प्रतिज्ञा कर ली थी कि जिसके प्रयाससे युद्धमें मेरी हार हो जायगी तथा जो मेरे बलके अभिमानको चूर्ण कर देगा, उसी समान बलवाले वीरको मैं पतिरूपसे वरण करूँगी। राजेन्द्र ! मेरी वह प्रतिज्ञा व्यर्थ न हो—ऐसी ही चेष्टा करनी चाहिये। अतएव धर्मज्ञ ! तुम युद्धमें जीतकर मुझे अपने अधीन कर लो।' उस स्त्रीके कहे हुए वचन सुनकर मैं आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। महाराज ! अब आपको जो अभीष्ट और प्रिय हो, वही करें। वह स्त्री तो युद्धके लिये निश्चित विचार कर चुकी है। वह सिंहपर चढ़ी हुई है और उसने हाथोंमें आयुध ले रखे हैं। राजन् ! अपने निश्चयसे वह डिग नहीं सकती। अब जो उचित जान पड़े, वही करनेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—अपने दूत सुग्रीवके द्वारा देवीका यह कथन सुनकर राजा शुम्भने पास बैठे हुए महान् शूरवीर भाई निशुम्भसे पूछा।

शुम्भने कहा—भाई ! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। सच्ची बात बताओ—इस अवसरपर हमें क्या करना चाहिये। एक कोई स्त्री युद्धकी अभिलाषासे हमें बुला रही है। अतः अब मैं स्वयं लड़ाईके मैदानमें चलूँ अथवा तुम्हीं सेना साथ लेकर जाओगे ? निशुम्भ ! ऐसी स्थितिमें तुम्हारी जो सम्मति हो, वही मैं करूँगा।

निशुम्भने कहा—वीर ! अभी रणक्षेत्रमें न तो मुझे जाना चाहिये और न आपको ही। महाराज ! शीघ्र ही धूम्रलोचनको भेज दीजिये। वे जायँ और युद्धभूमिमें उस सुन्दर नेत्रवाली स्त्रीको अपने अधीन करके ले आयें। फिर आप

उसके साथ विवाह कर लें।

व्यासजी कहते हैं—छोटे भाई निशुम्भकी बात सुनकर पास ही बैठे हुए धूम्रलोचनको देवीके पास जानेके लिये शुम्भने आज्ञा दी।

शुम्भने कहा—धूम्रलोचन ! तुम एक विशाल सेना लेकर अभी जाओ। अपने बलके अभिमानमें चूर रहनेवाली उस हठीली स्त्रीको पकड़कर यहाँ ले आना तुम्हारा परम कर्तव्य है। देवता, दानव अथवा महाबली मानव—कोई भी उसके अनुचर हों, उन सबको तुरंत मृत्युके मुखमें झोंक देना चाहिये। उसके साथ एक काली रहती है। उसको भी मारकर उस सुन्दरीको ले आना। यह उत्तम कार्य करके तुम बहुत शीघ्र यहाँ लौट आओ। परंतु प्रशंसनीय प्रेम प्रकट करनेवाली उस साध्वी स्त्रीको तुम भलीभाँति सुरक्षित रखना; क्योंकि वीर ! उस सुन्दरीके सभी अङ्ग बड़े ही कोमल हैं। उसके सहायक, जो भी शस्त्र लेकर समराङ्गणमें आयें, उन सबको तो मार डालना चाहिये, परंतु उस स्त्रीको सब तरहसे यत्नपूर्वक बचाना चाहिये। वह सर्वथा अवध्य है।

व्यासजी कहते हैं—शुम्भ दानवोंका राजा था। उसका उपर्युक्त आदेश पाकर धूम्रलोचन तुरंत जानेको तैयार हो गया। उसने शुम्भके सामने मस्तक झुकाया और सेना साथ लेकर वह युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उसकी सेनामें साठ हजार राक्षस थे। उस समय मृगशावकके नेत्रों-जैसे विशाल नेत्रवाली भगवती जगदम्बा मनोहर उपवनमें विराजमान थीं। उनपर धूम्रलोचनकी दृष्टि पड़ी। देखकर नम्रतापूर्वक वह पास चला गया और उसने बातचीत आरम्भ कर दी। उसके वचनसे मधु टपक रहा था। उसका प्रत्येक शब्द हेतुयुक्त और सरस था। उसने कहा—'महाभाग्यवती देवी ! सुनो, शुम्भ तुम्हारे विरहसे अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्हें नीतिशास्त्रका सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त है। इसीलिये उन्होंने तुम्हारे पास दूत भेजा था। रस-भङ्ग न हो जाय—इस डरसे वे स्वयं तुम्हारे पास आना अनुचित समझते हैं। वरानने ! दूतने जाकर कुछ उलटी ही बातें वहाँ कह दीं। उसे सुनकर राजा शुम्भके मनपर चिन्ताकी काली घटाएँ घिर आयी हैं। मैं विशाल वाहिनीके साथ सेवामें उपस्थित हूँ। महाभागे ! तुम बड़ी चतुर हो। मेरे मधुर वचन सुननेकी कृपा करो। देवताओंके अभिमानको चूर्ण करनेवाले शुम्भ त्रिलोकीके शासक हैं। तुम उनकी पटरानी बनकर अनुत्तम सुख भोगनेके सुअवसरको हाथसे मत खोओ ! उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं। कामसम्बन्धी बलका रहस्य उन्हें विदित है। वे अवश्य विजय पा जायँगे। तुम चित्र-विचित्र हाव-भाव करो। वे भी वैसे करनेमें सहमत हो जायँगे। इस विषयके साक्षित्वका काम यह काली करेगी। परमार्थवेत्ता महाराज शुम्भ इस प्रकार संग्राम करके विजयी होनेके पश्चात् सुखशय्यापर सोकर अपना श्रम दूर करेंगे। तुम्हारी बात सुनते ही शुम्भ सम्यक् प्रकार वशीभूत हो गये हैं। मेरा सुन्दर वचन पथ्य एवं हितकारक है। तुम इसका अवश्य पालन करो। गणाध्यक्ष शुम्भकी सेवासे विमुख रहना तुम्हारे लिये अनुचित है। उनके सहयोगसे तुम अत्यन्त ही आदरकी पात्र बन जाओगी। वे अवश्य ही मन्दभागी हैं, जिन्हें तुम्हारे साथ अस्त्र-युद्ध करना अभीष्ट है। सुरतवल्लभे ! कान्ते ! वे तुम्हें पानेके सदा अधिकारी हैं। तुम जैसे अपने मुखके मद्यसे

सिञ्चित करके बकुल और कुरबक वृक्षको विकसित करती हो, वैसे ही अपने स्नेहरसयुक्त पदाघातसे राजा शुम्भको आह्लादित करनेकी कृपा करो।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर धूम्रलोचन चुप हो गया। तब भगवती कालिकाने हँसकर उत्तर दिया—'अरे नीच! तेरी बातें तो ऐसी हैं, मानो तू कोई नट हो। तू मिथ्या मनोरथोंको मनमें स्थान देकर मीठी बातें बक रहा है। अरे मूढ़! यदि तुझ पराक्रमी वीरको सेनासहित दुरात्मा शुम्भने भेजा है तो अब व्यर्थकी बातें छोड़कर युद्धके लिये तैयार हो जा। देवीको क्रोध आ गया है। वे शुम्भ, निशुम्भ तथा तेरे अतिरिक्त अन्य भी जो अत्यधिक बलवान् हैं, उन्हें बाणोंसे मारकर ये अपने स्थानपर पधार जायँगी। कहाँ तो वह प्रचण्ड मूर्ख शुम्भ और कहाँ विश्वको विमोहित करनेवाली भगवती जगदम्बा! इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध संसारमें सर्वथा अयुक्त है। क्या कहीं अत्यन्त कामातुर होनेपर भी सिंहिनी सियारको, हथिनी गदहेको और सुरभि गौ साधारण साँड़को अपना पति बना सकती है? यह असम्भव है। तू जा और शुम्भ एवं निशुम्भसे मेरी सच्ची बात कह दे। उनसे मेरा अनुरोध है कि तुम या तो युद्ध करो नहीं तो अभी तुरंत पातालके लिये प्रस्थान करो।'

व्यासजी कहते हैं—महाभाग! भगवतीका यह कथन सुनकर धूम्रलोचनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उस दैत्यने भगवती कालीसे कहा—'दुर्दर्शे! तुम्हें और इस मतवाले सिंहको सदाके लिये समराङ्गणमें सुलाकर इस स्त्रीको लेकर मैं महाराजके पास चला जाऊँगा—यह बिलकुल निश्चित है। कलहमें प्रेम रखनेवाली कालिके! इस अवसरपर रस-भङ्ग न हो जाय—इसी भयसे मैं डरता हूँ। अन्यथा अभी-अभी अपने तीखे बाणोंसे तुम्हें मृत्युके मुखमें झोंक देता।'

कालिकाने कहा—मूर्ख! क्यों अनाप-शनाप बक रहे हो। धनुष धारण करनेवाले वीरोंका यह धर्म नहीं है। तुम अपनी पूरी शक्ति लगाकर बाण चलानेसे मत चूको। तुम्हारा यमराजकी सभामें उपस्थित होनेका समय बिलकुल समीप है।

व्यासजी कहते हैं—भगवती कालिकाकी बात सुनकर धूम्रलोचनने एक दृढ़ धनुष हाथमें ले लिया और देवीपर बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। उस समय इन्द्र आदि देवता श्रेष्ठ विमानोंपर बैठकर प्रशंसापूर्वक एक स्वरसे 'देवीकी जय हो' यह जयकार लगा रहे थे। अब काली और धूम्रलोचनमें अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा। बाण, तलवार, गदा, शक्ति और मुसल आदि अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। धूम्रलोचनके रथमें गदहे जुते थे। कालिकाने पहले उन्हें बाणोंसे मारकर यमलोक भेज दिया, इसके बाद रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर वे बार-बार ठठाकर हँसने लगीं। भारत! तब धूम्रलोचन दूसरे रथपर बैठ गया। क्रोधसे उसके सर्वाङ्ग जल रहे थे। उसने कालिकाके ऊपर अनगिनत बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। बाण उनके पासतक पहुँच भी नहीं पाते थे कि देवी उन्हें काट डालती थीं। तत्पश्चात् कालिकाने बहुत-से तीक्ष्ण बाण धूम्रलोचनपर चलाये। देवीके उन बाणोंसे उस दानवके हजारों अनुचर निष्प्राण हो गये। रथ कटकर गिर गया। सारथि और रथ खींचनेवाले

गदहे—सभी कालके ग्रास बन गये। कालीके बाण ऐसे प्रचण्ड थे, मानो विषधर सर्प हों। उनके आघातसे धूम्रलोचनके धनुषकी धज्जियाँ उड़ गयीं। देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये भगवती शङ्खध्वनि करने लगीं।

अब रथहीन धूम्रलोचनके क्रोधकी सीमा न रही। उसके पास एक लोहमय सुदृढ़ परिघ था। उसे हाथमें उठाकर वह देवीके रथके संनिकट आ गया। उस समय धूम्रलोचनकी आकृति इतनी भयंकर हो गयी थी, मानो साक्षात् काल

हो। वह कालीकी बातोंसे भर्त्सना करने लगा—'अरी कुरूपे! पिङ्गललोचने! मैं अभी-अभी तुम्हें मार डालता हूँ।' यों कहकर उसने तुरंत आगे बढ़कर देवीपर परिघ फेंका। इतनेमें भगवती जगदम्बाने ऐसा हुङ्कार किया कि उसके प्रभावसे धूम्रलोचन जलकर राख हो गया। धूम्रलोचन जलकर भस्म हो गया—यह देखकर सैनिकोंके हृदयमें अत्यन्त आतङ्क छा गया। वे तुरंत भाग छूटे। 'बाप! रे बाप!' पुकारते हुए वे भागे जा रहे थे। धूम्रलोचनका निधन देखकर देवताओंके मनमें अपार हर्ष छा गया। आकाशमें विराजमान होकर वे देवीके ऊपर पुष्प बरसाने लगे। राजन्! उस समय समराङ्गणका दृश्य बड़ा ही भयानक हो गया था। अनेकों दानव मरे पड़े थे। हाथियों, घोड़ों और गदहोंकी लाशें बिछी थीं। युद्धभूमिमें पड़े हुए निष्प्राण दानवोंको पाकर गीध, कौवे, सियार, बाज और पिशाच नाचने तथा कोलाहल करनेमें व्यस्त थे। अब भगवती जगदम्बा युद्धभूमिसे अलग होकर कुछ दूर चली गयीं और उन्होंने उच्च स्वरसे शङ्खनाद आरम्भ कर दिया। वह ध्वनि विपक्षियोंके लिये अत्यन्त भयप्रद थी। उस समय शुम्भ अपने भवनपर विराजमान था। उसे शङ्खध्वनि सुनायी पड़ी। थोड़ी देरके बाद भागे आते हुए दानव दिखायी पड़े। उनका अङ्ग-अङ्ग छिद गया था। रुधिरसे वे भीगे हुए थे। मञ्चपर बैठकर युद्ध करनेवाले दानवोंके भी हाथ, पैर और नेत्र टूट-फूट गये थे। उनकी पीठ, कमर और गर्दन कट गयी थी। मुँहसे केवल चिल्लाहट निकल रही थी। उनकी स्थिति देखकर शुम्भ और निशुम्भने पूछा—'धूम्रलोचन कहाँ गया? तुमलोग ऐसे छिन्न-भिन्न होकर क्यों आ रहे हो? सुन्दर मुखवाली वह स्त्री क्यों नहीं लायी गयी? अरे मूर्खो! सारी सेना कहाँ गयी? तुम घबरा क्यों रहे हो? ठीक-ठीक बताओ तो सही। यह भय बढ़ानेवाली शङ्खध्वनि अभी किसकी हो रही है?'

गण बोले—सारी सेना मर-खप गयी। धूम्रलोचनके प्राण-पखेरू उड़ गये। संग्राम-भूमिमें यह अमानुषिक घटना कालिकाके द्वारा घटित हुई है और यह आकाशव्यापी शङ्खध्वनि अम्बिकाकी हो रही है। देवताओंका हर्ष बढ़ाना और दानवोंको शोकाकुल करना इस

शङ्खनादका मुख्य प्रयोजन है। राजन् ! जिस समय देवीके सिंहने समस्त सैनिकोंको मार डाला और बाणोंके आघातसे सब रथ टूट गये तथा घोड़ोंकी चेतना समाप्त हो गयी, तब देवताओंके आनन्दकी सीमा न रही। वे आकाशमें विराजमान होकर पुष्प बरसाने लगे। हमने देखा कि सारी सेना युद्धमें काम आ गयी, धूम्रलोचन इस लोकसे चल बसे। तब हमने मनमें निश्चय कर लिया कि हमारी विजय असम्भव है। राजेन्द्र ! आप विचारकुशल मन्त्रियोंके साथ बैठकर परामर्श करनेकी कृपा करें। महाराज ! आश्चर्य तो यह है कि वह जगदम्बिका अभी अकेली है, उसके पास एक भी सैनिक नहीं है; पर यह निश्चय है कि किसी भी विपत्तिग्रस्त समयमें सम्पूर्ण देवता उसकी सहायता करनेके लिये तैयार हो जायँगे। ज्ञात हुआ है, विष्णु और शंकर भी समयानुसार उसके समीप रहते हैं। लोकपालगण आकाशमें रहते हुए भी इस अवसरपर उस देवीके समीपवर्ती बने हुए हैं। सुरतापन ! भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, किंनर और मनुष्य—ये सभी समय आनेपर उसके सहायक बन सकते हैं, ऐसी मान्यता रखनी चाहिये। हम अपनी समझसे ऐसा अनुमान करते हैं कि सभी अम्बिकाके सहायक बन जायँगे। ऐसी स्थितिमें अपने अभीष्ट कार्यकी कोई आशा नहीं करनी चाहिये। वह एक ही देवी चराचरसहित अखिल जगत्का संहार कर सकती है, फिर इन थोड़े-से दानवोंको मार डालना उसके लिये कौन-सी बात है ! महाभाग ! इस बातको समझ-बूझकर आपकी जैसी रुचि हो, करें। सेवकका कर्तव्य है कि जो बात हितकर एवं सत्य हो, वही नपे-तुले शब्दोंमें स्वामीके सामने निवेदन कर दे।

व्यासजी कहते हैं—अपने अनुयायियोंके वचन सुनकर शत्रु-सेनाको कुचल डालनेकी शक्ति रखनेवाला शुम्भ छोटे भाई निशुम्भको लेकर एकान्त स्थानमें चला गया और उससे पूछने लगा—'भाई ! देखो, कालिकाने अभी धूम्रलोचनको मार डाला है। सारे सैनिक मृत्यु-मुखमें चले गये। कुछ टूटे-फूटे अङ्गोंवाले अनुचर भागकर आये हैं। अभिमानमें चूर रहने-वाली वही देवी शङ्खध्वनि कर रही है। इससे सिद्ध होता है कि सम्यक् प्रकारसे कालकी गतिको समझना ज्ञानी पुरुषोंके लिये भी कठिन है। कालकी ऐसी महिमा है कि उसके प्रभावसे तृण वज्रके समान, वज्र तृणके समान तथा अत्यन्त शक्तिशाली भी सर्वदा निर्बल हो जाता है। महाभाग ! मैं तुमसे पूछ रहा हूँ, ऐसी परिस्थितिमें अब आगे क्या करना चाहिये ? दैव हमारे प्रतिकूल है। इसी कारण यह अम्बिका यहाँ आयी है। निश्चय ही इसपर मन गड़ाना अनुचित है। वीर ! बताओ, शीघ्र ही यहाँसे भाग चलनेमें कुशल है या युद्ध करनेमें ? यद्यपि तुम छोटे हो, फिर भी इस दुःखदायी समयमें मैं तुम्हें बड़ा मान रहा हूँ।'

निशुम्भने कहा—अनघ ! इस समय न तो भागना ठीक है और न दुर्गमें छिपे रहना ही। इस स्त्रीके साथ सम्यक् प्रकारसे युद्ध किया जाय—इसीमें अपना परम श्रेय है। मेरे बड़े-बड़े सहायक हैं। मैं अभी सेनासहित समराङ्गणमें जाऊँगा और उस अबलाको मारकर लौट आऊँगा। हाँ, यदि बलवान् प्रारब्धके कारण मेरा अभीष्ट सिद्ध न हुआ तो मेरा वहाँसे लौटना असम्भव है। मेरे मर जानेपर भी, बार-बार

परामर्श करके आपको इस कार्यसे विमुख नहीं होना चाहिये।

अपने छोटे भाई निशुम्भकी उपर्युक्त बात सुनकर शुम्भने उससे कहा—'तुम अभी ठहरो। चण्ड और मुण्ड बड़े पराक्रमी वीर हैं। ये दोनों योद्धा पहले जायँ; क्योंकि खरहेको पकड़नेके लिये हाथीको छोड़ना शोभा नहीं देता। चण्ड और मुण्डमें अपार सामर्थ्य है। उस स्त्रीको वे भलीभाँति मार सकते हैं।'

तदनन्तर राजा शुम्भने चण्ड-मुण्डसे कहा—'चण्ड और मुण्ड! तुम दोनों अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ अभी यात्रा कर दो। मदसे उन्मत्त रहनेवाली वह स्त्री बड़ी निर्लज्ज है। उसे मार डालना तुम्हारी यात्राका मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। वीर! तुम बड़े भाग्यशाली हो। अथवा ऐसा करो कि उस सुलोचना कालीको समराङ्गणमें परास्त करके पकड़ लो और इस अत्यन्त कठिन कार्यको करनेके पश्चात् यहाँ लौट आओ। यदि वह मतवाली अम्बिका पकड़ी जानेपर भी नहीं आती तो उसे भी अत्यन्त तीखे बाणोंसे मार डालना चाहिये। यह युद्धभूमिकी शोभा है।' (अध्याय २४-२५)

☆

## चण्ड-मुण्डका निधन तथा रक्तबीजके साथ देवीकी बातचीत

व्यासजी कहते हैं—महाबली चण्ड और मुण्ड बड़े शूरवीर थे। शुम्भकी उपर्युक्त आज्ञा पाकर वे विशाल सेनाको साथ लिये उसी क्षण समराङ्गणमें जा धमके। देवताओंका हित-साधन करनेवाली भगवती जगदम्बा वहाँ विराजमान थीं। उन्हें देखकर महान् पराक्रमी चण्ड और मुण्ड शान्तिपूर्वक उनसे कहने लगे—'देवी! तुम क्या देवताओंकी शक्ति कुण्ठित करनेवाले शुम्भ और इन्द्रविजयी उग्र स्वभाव-वाले निशुम्भको नहीं जानती? सुन्दरी! तुम इस समय अकेली हो। केवल सिंह तुम्हारी सवारीका काम दे रहा है। दुर्बुद्धे! इस स्थितिमें भी तुम सब प्रकारकी सेनाओंसे सम्पन्न शुम्भको जीतनेकी इच्छा कर रही हो? क्या कोई भी स्त्री अथवा पुरुष तुम्हें उत्तम परामर्श देनेवाला नहीं मिला? देवता तो तुम्हारा ही विनाश करनेके लिये तुम्हें प्रेरित कर रहे हैं। तन्वङ्गी! तुम्हें अपने और शत्रुपक्षके बलके विषयमें विचार करके ही कार्य करना चाहिये। अठारह भुजाएँ होनेके कारण जो तुम अभिमान करती हो, वह बिलकुल व्यर्थ है। शुम्भ युद्धमें बड़े कुशल हैं। उन्होंने देवताओंको परास्त कर रखा है। भला, उनके सामने इन व्यर्थकी बहुत-सी भुजाओंसे अथवा श्रमदायी आयुधोंसे तुम्हारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। इस अवसरपर ऐरावतकी सूँड काट डालनेवाले, हाथियोंको विदीर्ण करनेमें कुशल तथा देवताओंको हरा देनेवाले महाराज शुम्भका मनोरथ पूर्ण करना ही तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। कान्ते! तुम व्यर्थ गर्व करती हो। हमारे प्रिय वचनका अनुमोदन करो। विशाललोचने! यही करनेमें तुम्हारा हित है। यही कार्य तुम्हारे लिये सुखदायी एवं दुःखका नाश करनेवाला है। शास्त्रके रहस्यको भली-भाँति जाननेवाले बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि दुःखदायी कार्योंको दूरसे ही त्याग दे और सुखप्रद कार्योंका सेवन करे। कोयलके समान मीठे वचन बोलनेवाली देवी! तुम बड़ी विदुषी हो। शुम्भके महान् बलपर दृष्टिपात तो करो।

देवताओंका समाज इनके द्वारा कुचल डाला गया है—इसीसे इनका प्रशंसनीय प्रभुत्व प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष प्रमाण छोड़कर अनुमानका आश्रय लेना बिलकुल व्यर्थ है। संदेहास्पद कार्यमें विद्वान् पुरुष प्रवृत्त नहीं होते। दैत्यराज शुम्भको संग्राममें कोई भी जीत नहीं सकता। वे देवताओंके घोर शत्रु हैं। इसीलिये स्वयं न आकर देवतागण उनके समक्ष तुम्हें प्रेरित कर रहे हैं। ये देवता मीठे वचन बोलते हैं। तुम इनके वाग्जालमें फँस गयी हो। इनकी शिक्षाके रग-रगमें स्वार्थ भरा है। इससे तुम्हें महान् क्लेश भोगना पड़ेगा। स्वार्थवश मित्रता करनेवालेको छोड़कर धार्मिक मित्रका ही अवलम्बन करना चाहिये। देवता अत्यन्त स्वार्थी हैं। मैंने तुमसे यह बिलकुल सच्ची बात कही है। इस समय महाराज शुम्भके हाथमें विजयश्री है। अखिल भूमण्डलके ये स्वामी हैं। देवताओंपर भी इनका अधिकार है। ये बड़े सुन्दर, सुयोग्य, शूरवीर और रसशास्त्रके विशेषज्ञ हैं। तुम इनकी सेवामें उपस्थित हो जाओ। महाराज शुम्भकी आज्ञासे सम्पूर्ण लोकोंकी सम्पत्ति भोगनेका सुअवसर सहज ही तुम्हें प्राप्त होगा। तुम भलीभाँति विचार करके इन सुयोग्य स्वामीको पति बनानेका लाभ हाथसे मत जाने दो।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार चण्ड अपना अभिप्राय व्यक्त कर गया। उसकी बात सुनकर भगवती जगदम्बा मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें गरज उठीं और बोलीं—'अरे धूर्त ! तू यहाँसे हट जा। क्यों कपटपूर्ण व्यर्थकी बातें बक रहा है ? विष्णु और शंकर आदिको छोड़कर मैं दानव शुम्भको क्यों पति बनाऊँ ? मैं किसीको भी पति बनाना नहीं चाहती और न किसी पतिसे मेरा कोई काम ही है। अरे, सुन—सम्पूर्ण जगत् मेरा ही शासन मानता है। मैंने असंख्य शुम्भ-निशुम्भ देखे हैं। इससे पूर्व सैकड़ों दैत्यों और दानवोंको मैं मृत्युके घाट उतार चुकी हूँ। प्रत्येक युगमें देवताओं और दानवोंके बहुतेरे समाज मेरे सामने ही कालके गालमें चले गये, अब भी जा रहे हैं और आगे भी जायँगे। इस समय दैत्य-वंशका संहार करनेवाला काल यहाँ उपस्थित है। अपने वंशकी रक्षा करनेके लिये तू जो प्रयत्न कर रहा है, यह बिलकुल व्यर्थ है। महामते ! तू वीर-धर्मकी रक्षाके लिये युद्ध करनेमें तत्पर हो जा। भावी मृत्युको कोई हटा नहीं सकता। अतएव महात्मा पुरुषोंको चाहिये कि यशकी रक्षामें प्रमाद न करें। शुम्भ और निशुम्भ बड़े दुष्ट हैं। उनसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ? तू उत्तम वीर-धर्मका आश्रय लेकर स्वर्ग जानेकी चेष्टा कर। शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य भी जो तेरे बन्धु-बान्धव हैं, वे अभी थोड़े समयके पश्चात् तेरे अनुगामी बनेंगे। मैं अब क्रमशः सम्पूर्ण दैत्योंका संहार कर डालूँगी। मूर्ख ! विषाद मत कर। युद्ध करना ही तेरे लिये समुचित है। मेरे हाथसे तेरा वध हो जानेके पश्चात् तेरा भाई भी कालके मुखमें जानेवाला है। तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भ और मदोन्मत्त रक्तबीज भी प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे। अन्य भी जितने दानव हैं, मैं उन सबका समराङ्गणमें वध करूँगी। इसके बाद अपने स्थानपर चली जाऊँगी। तू रह अथवा शीघ्र भाग जा। रहता है तो तुरंत अस्त्र हाथमें लेकर मेरे साथ लड़नेके लिये तैयार हो जा। क्यों व्यर्थकी बातें बक रहा है ? ऐसी बातें तो कायर जनोंको ही प्रिय होती हैं।'

व्यासजी कहते हैं—देवीके यों उत्तेजित

करनेपर चण्ड और मुण्डके क्रोधकी सीमा न रही। बलके अभिमानमें चूर रहनेवाले उन दानवोंने तुरंत धनुष टंकारना आरम्भ कर दिया। देवीने भी शङ्ख बजाया, जिसकी तुमुल ध्वनिसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं। महाबली सिंह भी क्रोधमें भरकर गरज उठा। उस गर्जनसे इन्द्रादि देवताओं, मुनियों, यक्षों, गन्धर्वों, सिद्धों, साध्यों और किंनरोंके हृदयमें प्रसन्नता छा गयी। तदनन्तर देवीका चण्ड और मुण्डके साथ परस्पर युद्ध आरम्भ हो गया। कातरोंको भयभीत करनेवाले उस युद्धमें गदा, तलवार और बाण आदि विविध आयुध चलने लगे। देवी अपने चमचमाते हुए बाणोंसे चण्डके तीरोंको काटने लगीं। साथ ही उन्होंने सर्पोंकी तुलना करनेवाले बाण चलाने आरम्भ कर दिये। उस समय देवीके बाणोंसे आकाश इस प्रकार छा गया, मानो वर्षा होनेके बाद कृषकोंके लिये कष्टप्रद फतिंगे चारों ओर फैल गये हों।

अब मुण्ड भी सैनिकोंको साथ लेकर युद्ध-भूमिमें फट पड़ा। उसकी आकृति बड़ी भयंकर थी। उसने रोषमें भरकर बाण चलाने आरम्भ कर दिये। महान् बाणजाल देखकर देवीके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया। रोषके कारण उनके मुखकी आकृति ऐसी हो गयी, मानो काली घटा हो। उनके केलेके फूलके समान विशाल नेत्र थे। टेढ़ी भौंहें थीं। यों वे काली-वेषमें विराजने लगीं। उन्होंने बाघका चर्म पहन रखा था। वे हाथीके चर्मकी चादरसे सुशोभित थीं। उनका वक्षःस्थल नरमुण्डकी मालासे अलंकृत था। उदर ऐसा था मानो बिना जलकी बावली हो। खट्वाङ्ग, तलवार और पाश धारण करनेवाली काली इतनी डरावनी जान पड़ती थीं, मानो दूसरी कालरात्रिका प्रादुर्भाव हो गया हो। उनका विशाल मुख था। वे बारम्बार जीभ लपलपा रही थीं। उनकी मोटी जाँघें थीं। उनके द्वारा असुर कालके ग्रास बनने लगे। क्रोधमें भरकर काली पराक्रमी असुरोंको हाथमें पकड़तीं और उन्हें मुखमें डालकर दाँतोंसे चूर-चूर कर देतीं। वे घण्टा और सवारोंसहित हाथियोंको पकड़कर मुखमें डाल लेती थीं। साथ ही अट्टहास करने लगती थीं। ऐसे ही सारथिसहित घोड़ों और रथोंको भी मुखमें डालकर वे दाँतोंसे चबाने लगीं। अब चण्ड और मुण्ड अपनी सेनाका यों संहार होते देखकर बाणोंकी अनवरत वृष्टिसे कालीको ढकनेके प्रयासमें लग गये। चण्डका चक्र सूर्यके समान तेजस्वी था। सुदर्शनचक्रके समान उसमें शक्ति थी। चण्डने तुरंत देवीपर वह चक्र चला दिया। वह बार-बार गरजने लगा। उसे गरजते देखकर कालीने एक बाण चला दिया। अब उस बाणके प्रभावसे चण्डका चक्र, जो सूर्यके समान तेजस्वी और सुदर्शनचक्रकी तुलना करनेवाला था, टूक-टूक होकर गिर पड़ा। साथ ही तीखे तीरोंसे कालीने चण्डपर चोट की। देवीके बाणोंसे अत्यन्त व्यथित होनेके कारण वह मूर्छित होकर भूमिपर पड़ गया। अपने भाईको धराशायी देखकर मुण्डका मन क्षुब्ध हो उठा। वह रोषमें भरकर कालीके ऊपर बाण बरसाने लगा। उसकी बाण-वृष्टि बड़ी ही भयंकर थी, परंतु देवीने ईषिकास्त्रका प्रयोग करके क्षणभरमें ही सारे बाण काट डाले। फिर अर्द्धचन्द्राकार बाणसे मुण्डपर आघात किया। यद्यपि मुण्ड महान् बलशाली था, फिर भी देवीके इस बाणकी चोटको वह सह न सका और तुरंत ही भूमिपर लोट गया। उस समय

दानवी सेनामें बड़े जोरसे हाहाकार मच गया। आकाशमें रहनेवाले सम्पूर्ण देवता शान्त होकर आनन्द मनाने लगे। कुछ देरमें मूर्च्छा दूर होनेपर चण्डने एक विशाल गदा दाहिने हाथमें उठायी और तुरंत उससे देवीपर प्रहार किया। देवीने चण्डके गदाघातको रोककर बाण-पाशका प्रयोग किया, जिससे वह दानव बँध गया। भाईको बँधा देख कवच पहने हुए मुण्ड हाथमें दृढ़ शक्ति लेकर आ गया। उसे देखकर देवीने उसे भी बाँधनेकी व्यवस्था कर दी। अतः वह दूसरा भाई भी बँध गया। चण्ड और मुण्ड दोनों दानवोंको खरहेकी भाँति गलेमें रस्सी डालकर लिये हुए हास्य-विलास करती हुई काली भगवती जगदम्बाके पास आयीं। आकर बोलीं—'प्रिये! इन दोनों पशुओंको लो। युद्धमें बड़ी कठिनतासे परास्त होनेवाले इन दोनों दानवोंको संग्रामरूपी यज्ञमें बलि देनेके लिये लायी हूँ।' भगवती जगदम्बाने देखा— चण्ड और मुण्ड कालीके प्रयाससे उपस्थित थे। उनकी ऐसी दीन-हीन दशा थी, मानो सियार हों। भगवतीने मधुर वचनोंमें कालीसे कहा— 'रणप्रिये! तुम बड़ी विदुषी हो। शीघ्र ही देवताओंका कार्य सिद्ध करना तुम्हारा परम कर्तव्य है।'

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाकी बात सुनकर कालीने उनसे कहा—'युद्धरूपी यज्ञ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें तलवार खम्भेका काम देती है। उसीके द्वारा इनका आलम्भन करूँगी, ताकि हिंसाका रूप भी सामने न आ सके।' यों कहकर कालीने तलवारसे चण्ड और मुण्डके मस्तक काट डाले। तदनन्तर वे आनन्दमें भरकर उनका रुधिर पीने लगीं। इस प्रकार उन प्रबल दानवोंका वध देखकर जगदम्बा प्रसन्नता-

पूर्वक कालीसे कहने लगीं—''कालिके! तुमने देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया है। मैं तुम्हें उत्तम वर देती हूँ। चण्ड और मुण्डका वध करनेके कारण अब जगत्‌में तुम 'चामुण्डा' नामसे विख्यात होओगी।''

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर चण्ड और मुण्डका निधन देखकर मरनेसे बचे हुए सैनिक भागकर अपने स्वामी शुम्भके पास पहुँचे। कितने ही वीरोंके अङ्ग बाणोंसे कट गये थे। कितनोंके हाथ शरीरसे अलग हो गये थे। उनके शरीरसे रुधिरकी धारा बह रही थी। वे रोते हुए सामने उपस्थित हुए और कहने लगे— ''महाराज! हमें बचाइये। अब काली सबको खा जाना चाहती है। उसने देवताओंको कष्ट देनेवाले महान् वीर चण्ड और मुण्डको मार डाला। बहुत-से सैनिक उसके ग्रास बन गये। अङ्ग-भङ्ग हुए हम सब लोग अत्यन्त घबराये हुए हैं। प्रभो! कालीके प्रयत्नसे युद्धभूमि अत्यन्त भयंकर हो गयी है। मालव-देशवासी बहुसंख्यक पैदल सैनिक, हाथी और घोड़े मरे पड़े हैं। रुधिर,

मांस और मज्जाकी एक कृत्रिम नदी बह चली है। कटे केश उसमें सेवारके समान जान पड़ते हैं। रथोंके टूटे हुए चक्के भँवर हैं, बिना बाहुके धड़ मछली और कटे मस्तक तूँबी-फलके समान जान पड़ते हैं। उसे देखकर कातर हृदयवाले काँप उठते हैं, साथ ही शूरवीरोंके हृदयमें उत्साह भर जाता है। महाराज ! अब आप कुलकी रक्षाके लिये शीघ्र पातालमें पधारनेकी कृपा करें। अन्यथा रोषमें भरी हुई वह कालिका हम सब लोगोंका संहार कर डाले—इसमें कोई संशय नहीं है। दनुजेश्वर ! सिंह भी युद्धभूमिमें खड़ा होकर दानवोंको निगले जा रहा है। वैसे ही कालीके अनेकों बाण वीरोंके प्राण हर रहे हैं। अतएव राजेन्द्र ! आप भी निशुम्भ-सहित व्यर्थ ही इस प्रयासमें लगे हैं।

''महाराज ! सम्पूर्ण राक्षस-कुलका उच्छेद करनेवाली यह दयाशून्य स्त्री आपको मिल ही गयी तो आपको क्या सुख देगी, जिसके लिये आप अपने बन्धुओंको मृत्युके मुखमें झोंके चले जा रहे हैं। महाराज ! जगत्‌में जीत और हार प्रारब्धके अनुसार होती है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि थोड़े प्रयोजनके लिये महान् कष्टका अवसर सामने न आने दे। जगत्प्रभो ! दैवकी अद्भुत करामात देखिये, जिसके अधीन होकर केवल एक इस स्त्रीके हाथ ही सम्पूर्ण राक्षस कालके ग्रास बन गये। आप अकेले ही लोकपालोंको परास्त कर सकते हैं। इस समय तो आपके पास सैनिक भी हैं, फिर भी यह एक स्त्री निश्चिन्त होकर युद्ध करनेके लिये आपको ललकार रही है !

''प्राचीन समयकी बात है—पुष्करक्षेत्रमें एक मन्दिरमें बैठकर आपने तपस्या की थी। लोकपितामह ब्रह्माजी वर देनेके लिये आपके पास पधारे। महाराज ! उन्होंने आपसे कहा—'सुव्रत ! वर माँगो।' तब आपने अमर होनेके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। आपने कहा—'देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, यक्ष और किंनर—इनमें कोई भी मुझे न मार सकें। पुरुषमात्रसे मैं अवध्य हो जाऊँ।' इसीलिये प्रभो ! अब आपको मारनेके लिये ही इस विशिष्ट स्त्रीका यहाँ आना हुआ है। राजेन्द्र ! आप बुद्धिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे विचार करके युद्धसे विरत हो जायँ। महाराज ! यह देवी महामाया है। इसे परम प्रकृति समझना चाहिये। कल्पके अन्तमें सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करना इसका प्रधान कार्य है। सबपर शासन करनेवाली यह कल्याणी सम्पूर्ण लोकों एवं देवताओंकी भी जननी है। यों तो इसमें तीनों गुण वर्तमान हैं; किंतु प्रधानतया है यह तामसी प्रकृतिकी। सारी शक्तियाँ इसमें निहित हैं। यह अजेय, अविनाशी, नित्य, सर्वज्ञानसम्पन्न तथा सदा विराजमान रहती है। इसे वेदमाता, गायत्री और संध्या भी कहते हैं। इसकी छत्रच्छायामें अखिल देवता विश्राम पाते हैं। समस्त सिद्धियोंको देनेवाली यह सिद्धस्वरूपिणी देवी निर्गुण और सगुणरूपसे निरन्तर स्थित रहती है। गौरी नामसे विख्यात आनन्दमयी इस देवीका स्वाभाविक गुण आनन्द प्रदान करना है। इसकी कृपासे देवता सदा अभय रहते हैं। महाराज ! यह जानकर आप इससे वैर करना छोड़ दीजिये। राजेन्द्र ! आप इसकी शरणमें चले जायँगे, तभी आपकी रक्षा सम्भव है। इसके आज्ञाकारी बनकर आप अपने कुलके जीवन-रक्षक बन जाइये। मरनेसे बचे हुए जो दैत्य हैं, उन बेचारोंकी आयु तो अभी

खतरेमें न पड़े।''

व्यासजी कहते हैं—देवसेनाको कुचल डालनेवाले शुम्भने दानवोंकी उपर्युक्त बात सुनकर अपना वक्तव्य आरम्भ किया। उसकी प्रत्येक बात प्रधान वीरोंकी-सी थी।

शुम्भने कहा—मूर्खो ! तुम्हारे शरीर छिद गये हैं। अतः तुमलोग भले ही उस स्त्रीका सम्मान करो। तुम्हें जीनेकी विशेष इच्छा है, इसलिये तुम तुरंत युद्धभूमिसे भागकर पातालमें जा सकते हो। विजयके सम्बन्धमें मुझे कोई चिन्ता नहीं है; क्योंकि सारा जगत् प्रारब्धके शासनसूत्रमें बँधा है। हमारी ही भाँति ब्रह्मा आदि देवता भी दैवके अधीन हैं। मूर्खो ! फिर मेरे लिये ही क्या चिन्ता है। जो होनी है, वह तो टल नहीं सकती। जैसी भवितव्यता होती है, उसी प्रकारका उद्यम भी आरम्भ हो जाता है। सर्वथा यों विचार करके ज्ञानीजन कभी शोक नहीं करते—सदा निश्चिन्त रहते हैं। मृत्युके भयसे अपने धर्मका परित्याग करना वे अनुचित समझते हैं। समय आनेपर प्रारब्धकी प्रेरणासे सुख-दुःख, जीवन और मरण—ये सभी घटनाएँ सर्वथा मनुष्यके सामने आया करती हैं। इन्द्र प्रभृति सभी देवता आयु समाप्त हो जानेपर मृत्युकी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते। उसी प्रकार मेरे ऊपर भी कालका शासन अमिट है। संहार होगा अथवा विजय—इसकी मुझे कुछ भी परवा नहीं। मुझे तो अपने धर्मका पालन करना है। अतएव युद्धके लिये इस अबलाके ललकारनेपर मैं भागकर सैकड़ों वर्ष जीनेकी आशा क्यों करूँ। अब मैं अवश्य युद्ध करूँगा—जो होनी है, सो हुआ करे। जीत अथवा हार—जो भी परिस्थिति सामने आयेगी, मुझे स्वीकार है। उद्यमके समर्थक विद्वान् कहते हैं कि दैव बिलकुल व्यर्थ है। भाषण करनेकी योग्यता रखनेवाले उन विद्वानोंकी बात युक्ति-युक्त भी है। बिना उद्यम किये मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। प्रारब्धको बलवान् बतलाना मूर्खोंका काम है, न कि पण्डितोंका। अदृष्टकी सत्ता है—इसमें क्या प्रमाण हो सकता है? क्योंकि जो स्वयं अदृष्ट है, उसका दिखायी पड़ना असम्भव है। आटा पीसनेवाली औरत चक्कीके पास बैठ जाय और उद्यम न करे तो किसी प्रकार भी आटा तैयार नहीं हो सकता। यह सर्वदा देखा जाता है कि उद्यम करनेपर ही सफलता मिलती है। कभी यदि कार्य नहीं सिद्ध होता तो इसमें उद्यमकी कमी ही प्रधान कारण है। देश, काल, अपना बल और शत्रुका बल— इस विषयमें खूब सोच-समझकर काम करनेपर सिद्धि प्राप्त होती है।

व्यासजी कहते हैं—यों निश्चित विचार करके दानवेश्वर शुम्भने राक्षसप्रवर रक्तबीजको युद्ध-भूमिमें जानेकी आज्ञा दी। रक्तबीजके साथ बहुत-से सैनिक थे।

शुम्भने कहा—महाबाहो रक्तबीज ! तुम समराङ्गणमें जाओ। महाभाग ! तुम्हें पूरी शक्ति लगाकर युद्धमें तत्पर हो जाना चाहिये।

रक्तबीज बोला—महाराज ! आपको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं उस स्त्रीको मारकर आपके अधीन कर दूँगा। अब आप मेरी युद्धचातुरी देखें। देवताओंकी प्रेम-भाजन यह एक छोटी-सी लड़की कौन बड़ी वस्तु है? मेरे द्वारा बलपूर्वक युद्धमें परास्त होनेके पश्चात् यह आपकी दासी होकर रहेगी।

व्यासजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार

कहकर राक्षसप्रवर रक्तबीज रथपर बैठकर चल पड़ा। विशाल सेना उसके साथ थी। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक चारों ओर खचाखच भरे थे। रथपर बैठा हुआ रक्तबीज पर्वतपर विराजनेवाली भगवती जगदम्बाकी ओर बढ़ा। उसे आते देखकर देवीने शङ्ख-ध्वनि आरम्भ कर दी। सुनकर सम्पूर्ण दैत्योंका हृदय काँप उठा। देवताओंके आनन्दकी सीमा न रही। शङ्खकी गगनभेदी ध्वनि सुननेके पश्चात् रक्तबीज बड़ी शीघ्रताके साथ देवीके पास जा पहुँचा और मधुर वाणीमें कहने लगा।

रक्तबीज बोला—बाले ! तुम क्या मुझे कातर समझकर शङ्खध्वनिसे भयभीत कर रही हो ? तन्वङ्गी ! तुमने मुझको क्या धूम्रलोचन समझ रखा है। मेरा नाम रक्तबीज है। मीठे वचन बोलनेवाली देवी ! मैं युद्ध करनेके लिये तुम्हारे पास आया हूँ, तुम सावधान हो जाओ। मुझे किंचिन्मात्र भय नहीं है। प्रिये ! आज तुम मेरा पराक्रम देख लो। अबतक तुम्हारे सामने जितने कायर आ चुके हैं, उनकी श्रेणीमें मैं नहीं हूँ। तुम अपने इच्छानुसार मुझसे युद्ध कर सकती हो। तुमने वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की है। नीति-शास्त्र सुननेका अवसर तुम्हें सुलभ हो चुका है। साथ ही अर्थ-विज्ञानका अध्ययन और विद्वद्गोष्ठीका समागम भी तुमने किया है। सुन्दरी ! यदि तुम साहित्य-शास्त्रका पूर्ण ज्ञान रखती हो तो मेरी बात सुनो। मेरा कथन सत्य और युक्तिपूर्ण है। रस नौ हैं। इनमें दो रसोंकी प्रधानता मानी जाती है। विद्वान् पुरुषोंके समाजमें शृङ्गार-रस और शान्त-रस अपना मुख्य स्थान रखते हैं। उन दोनोंमें भी शृङ्गार-रस अधिक महत्त्व रखता है। इसीके प्रभावसे विष्णु लक्ष्मीके साथ और ब्रह्मा सावित्रीके साथ विराजते हैं, इन्द्र शचीके साथ और शंकर पार्वतीके साथ रहते हैं। यहाँतक कि वृक्ष लताके साथ, मृग मृगीके साथ और कबूतर कबूतरीके साथ आनन्दमें मस्त रहते हैं। यों सम्पूर्ण प्राणी संयोग-रसका अनुभव करते हैं। अन्य बहुत-से ऐसे भी मानव हैं; जिन्हें इसके अनुभव करनेका सुअवसर नहीं मिला है; वे अकर्मण्य हैं। मधुर हास्यविलासमें शान्तिरसकी धारा बहती है। भला, इस स्थितिवाले व्यक्तिके लिये कहाँ ज्ञान और कहाँ वैराग्य। काम, क्रोध, लोभ और मोह—इनपर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। अतएव कल्याणी ! तुम्हें अपने मनके अनुकूल पति बना लेना उचित है। महाबली शुम्भ अथवा निशुम्भ इसके लिये सर्वथा योग्य हैं। सम्पूर्ण देवताओंपर इन्होंने अधिकार प्राप्त कर लिया है।

व्यासजी कहते हैं—रक्तबीज यों कहकर भगवती जगदम्बाके सामने चुपचाप खड़ा हो गया। सुनकर चामुण्डा, कालिका और अम्बिका ठठाकर हँसने लगीं।

(अध्याय २६-२७)

☆

## देवताओंकी शक्तियोंका प्राकट्य और महायुद्ध तथा रक्तबीज-वध

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तब देवीने हँसकर रक्तबीजके प्रति मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें यह युक्तिपूर्ण वचन कहा—"अरे मूर्ख ! मैं तो दूतके सामने पहले ही उचित और हितकारक वचन कह चुकी हूँ ! अब तू क्यों व्यर्थ बकवाद कर रहा है ? त्रिलोकीमें कोई भी

पुरुष यदि रूप, बल और विभवमें मेरी समानता रखता हो तो उसे ही मैं पतिरूपसे स्वीकार करूँगी। मैं पहले ही यह प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। तू शुम्भ और निशुम्भसे कह दे कि 'महाराज ! आप युद्धमें परास्त करके उस देवीके साथ विवाह कर लीजिये।' तू भी तो शुम्भ और निशुम्भकी आज्ञा पाकर उनका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही यहाँ आया है। अतः या तो युद्ध कर, नहीं तो अपने स्वामीके साथ पाताल चला जा।''

व्यासजी कहते हैं—देवीका यह कथन सुनकर रक्तबीज अमर्षसे भर गया। फिर तो सिंहके ऊपर उसके भयंकर बाण बरसने लगे। दैत्यके सर्पाकार बाण अभी आकाशमें ही थे कि देवी अपने हाथकी सुन्दर कला प्रदर्शित करती हुई तीखे तीरोंसे उन बाणोंको काटनेमें सफल हो गयीं। साथ ही उन्होंने अन्य बहुत-से बाण कानतक खींचकर रक्तबीजपर चलाये। उनके बाणोंसे आहत होकर वह प्रधान दानव रथपर पड़ गया। उसे मूर्छा आ गयी। उस दुरात्मा रक्तबीजके गिर जानेपर महान् हाहाकार मच गया। सभी सैनिक चीत्कार करने लगे। 'अब हम मारे गये'—इस प्रकारकी करुण-ध्वनि उनके मुँहसे निकलने लगी। उनका अत्यन्त करुण-क्रन्दन सुनकर शुम्भ अपने सैनिकोंको उद्योगशील बननेके लिये उत्साहित करने लगा।

शुम्भने कहा—कम्बोज देशके रहनेवाले सभी दानव अपने सैनिकोंसहित चलनेके लिये तैयार हो जायँ। इनके अतिरिक्त 'कालकेय' संज्ञक जो शूरवीर दैत्य हैं, उन्हें विशेषरूपसे युद्धके लिये चल देना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार शुम्भके आज्ञा देनेपर उसकी सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेना निकल पड़ी। भगवती समराङ्गणमें विराजमान थीं ही। विशाल दानवी सेनाको आते देखकर उन्होंने घण्टा बजाना आरम्भ कर दिया। बारम्बार होती हुई वह भीषण ध्वनि शत्रुदलके हृदयको कँपाने लगी। साथ ही भगवती जगदम्बा धनुष टंकारने और शङ्खध्वनि करनेमें भी तत्पर हो गयीं। उस ध्वनिके प्रभावसे विशाल मुखवाली एक कालीका प्रादुर्भाव हुआ। भयंकर शब्द सुनकर देवीका वाहन महान् पराक्रमी सिंह भी अद्भुत भय उत्पन्न करता हुआ गरज उठा। उसका गर्जन सुनकर दानव क्रोधसे मूर्च्छित हो उठे। फिर सावधान होकर उन सभी शूरवीर दैत्योंने देवीपर हथियार चलाने आरम्भ कर दिये। परस्पर ऐसा भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया कि जिसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे।

उस युद्धमें ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंकी शक्तियाँ भी पधार गयीं। जिस देवताका जैसा रूप, वाहन और भूषण था, उसीके अनुसार रूप, वाहन और भूषणसे सम्पन्न होकर उन शक्तियोंका आगमन हुआ था। ब्रह्माजीकी शक्ति हंसपर बैठकर आयीं। उनके हाथोंमें अक्षसूत्र और कमण्डलु विराजमान थे। वहाँ पधारी हुई उस शक्तिको 'ब्रह्माणी' कहते हैं। भगवान् विष्णुकी शक्ति गरुडपर चढ़कर आयीं। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे उनकी भुजाएँ सुशोभित थीं। उनका दिव्य विग्रह पीताम्बरसे शोभा पा रहा था। भगवान् शंकरकी शक्ति हाथमें त्रिशूल लेकर वृषभपर बैठी हुई पधारीं। उनके ललाटपर अर्द्धचन्द्र चमक रहा था। सर्प वलयका काम दे रहा था। कार्तिकेयजीकी शक्ति कार्तिकेयी उन्हींका रूप

धारण किये मयूरपर आरूढ़ हो हाथमें शक्ति लिये दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये वहाँ आयीं। इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्री वज्र हाथमें लिये गजराज ऐरावतपर आयीं। उनका सुन्दर मुख क्रोधसे तमतमा उठा था। वाराहरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिकी शक्ति वाराहीका वेष बनाकर एक हृष्ट-पुष्ट प्रेतपर बैठी हुई पधारीं। भगवान् नृसिंहके समान शरीर धारण करके भगवती नारसिंहीका आगमन हुआ। यमराजकी भयंकर शक्ति हाथमें दण्ड लिये भैंसेपर बैठकर युद्धभूमिमें आयीं। उनका मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। इसी प्रकार वरुण और कुबेरकी शक्तियोंने भी वहाँ आनेका कष्ट स्वीकार किया। यों सम्पूर्ण देवता ही अपनी-अपनी शक्तियोंके रूपमें होकर वहाँ पधारे थे। आयी हुई इन शक्तियोंको देखकर देवीके मनमें अपार हर्ष हुआ। देवता भी हर्ष मनाने लगे। दैत्योंके हृदयमें आतङ्क छा गया। उन शक्तियोंके बीच जगत्‌का कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर आये और भगवती चण्डिकासे कहने लगे—'देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये इन दैत्योंको अभी मार डालो। शुम्भ, निशुम्भ तथा अन्य जितने भी दानव उपस्थित हैं, उन सबको मारकर सारी दानवी सेना तुरंत समाप्त कर दी जाय। जगत्‌में किसी प्रकारका भय न रहे। अपने-अपने तेजसे सम्पन्न होकर शक्तियाँ यहाँ विराजमान हों। देवतालोग यज्ञमें भाग ग्रहण करें। ब्राह्मण यज्ञमें तत्पर हो जायँ। चराचर सम्पूर्ण प्राणियोंके सामने सुखका अवसर प्राप्त हो। सारे उपद्रव शान्त हो जायँ। मेघ समयानुकूल वर्षा करें। खेती फल-फूलसे सम्पन्न हो जाय।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार संसारके शुभचिन्तक भगवान् शंकर अपना अभिप्राय व्यक्त कर रहे थे। इतनेमें ही भगवती चण्डिकाके शरीरसे एक बड़ी विचित्र शक्ति प्रकट हुई। उस अत्यन्त भयंकर शक्तिके मुखसे ऐसे शब्द निकल रहे थे, मानो सैकड़ों गीदड़ियाँ एक साथ बोल रही हों। भयंकर रूपवाली उस देवीका मुँह मुसकानसे भरा था। उसने भगवान् शंकरसे कहा—'देवेश्वर ! तुम अभी दानवराजके पास जाओ। कामदेवको भस्म करनेवाले शंकर ! उन देवद्रोही शुम्भ और निशुम्भको अत्यन्त अभिमान हो गया है। तुम दूतका कार्य सम्पन्न करनेके विचारसे जाओ और मेरी यह बात उनसे कहो कि 'तुमलोग स्वर्ग छोड़कर शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ। देवता स्वर्गमें आनन्दपूर्वक निवास करें। इन्द्रको अपना उत्तम आसन प्राप्त हो। देवता स्वर्गमें रहने और यज्ञका भाग पानेके अधिकारी बनें। तुम्हें यदि जीनेकी इच्छा हो तो तुरंत पातालमें—जहाँ अन्य दानव रहते हैं—चले जाओ और यदि मरना ही अभीष्ट हो तो पूरी शक्तिके साथ लड़नेके लिये तुरंत युद्धभूमिमें आ जाओ। मेरी शिवाएँ—ये योगिनियाँ तुम्हारे कच्चे मांससे तृप्त हों।'

व्यासजी कहते हैं—भगवती चण्डीका उपर्युक्त वचन सुनकर भगवान् शंकर तुरन्त दानवराज शुम्भके पास पहुँचे। उस समय शुम्भ अपनी सभामें बैठा था।

शंकरजीने कहा—राजन् ! मैं त्रिपुर-विनाशक महादेव हूँ। भगवती जगदम्बाका दूत बनकर तुम्हारा हित करनेके लिये यहाँ आया हूँ। देवीने तुमसे कहलवाया है—'तुमलोग स्वर्ग और भूमण्डल छोड़कर यहाँसे शीघ्र चले जाओ।

बलवानोंमें श्रेष्ठ बलि जहाँ रहता है, उस पातालमें तुम्हें चले जाना चाहिये और तुम्हें यदि मरना ही अभीष्ट हो तो अभी सामने आ जाओ। तुम सभीको मैं संग्राममें मार डालूँगी—इसमें कोई संदेह नहीं है।' तुमलोगोंका कल्याण करनेके विचारसे ही श्रीदेवीजीने यह बात कही है।

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाका यह वचन अमृतके समान मधुर एवं हितसे ओत-प्रोत था। त्रिशूलधारी भगवान् शंकर प्रधान दैत्योंको यह वचन सुनाकर लौट आये। देवीने शंकरको दूत बनाकर दैत्योंके पास भेजा था। अतएव वे सम्पूर्ण लोकोंमें 'शिवदूती' के नामसे प्रसिद्ध हुईं। शंकरके मुखसे निकले हुए देवीके इस संदेशको दैत्य सहन नहीं कर सके। वे युद्धके लिये तुरंत निकल पड़े। उन्होंने कवच पहन रखे थे। उनकी भुजाएँ शस्त्रोंसे सुसज्जित थीं। वे तुरंत युद्धभूमिमें भगवती जगदम्बाके सामने आ पहुँचे और अपने तीखे तीरोंसे उन्होंने देवीपर चोट करना आरम्भ कर दिया। अब कालिका हाथमें त्रिशूल, गदा और शक्ति लेकर दानवोंको मारती हुई विचरने लगीं और दानव उनके ग्रास बनने लगे। भगवती ब्रह्माणी समराङ्गणमें पधारीं। महान् पराक्रमी दानवोंपर वे कमण्डलुका जल फेंकती थीं, जिससे उनके प्राण प्रयाण कर जाते थे। 'माहेश्वरी' वृषभपर बैठी हुई विराजमान थीं। उन्होंने अपने वेगशाली त्रिशूलसे दानवोंको मारकर धराशायी करना आरम्भ कर दिया। 'वैष्णवी' के चक्र और गदाके प्रहारसे बहुत-से दानव निष्प्राण हो गये। उनके मस्तक छिन्न-भिन्न हो गये। 'ऐन्द्री' के वज्रकी चोटसे बहुतेरे दानव धरातलपर लेट गये। ऐरावत हाथीकी सूँड़से भी दानवोंको पर्याप्त क्षति पहुँची। 'वाराही' का सर्वाङ्ग क्रोधसे तमतमा उठा था। उन्होंने अपने थूथुन और दाढ़ोंसे सैकड़ों दानवोंको मार डाला। 'नारसिंही' अपने तीक्ष्णधार नखोंसे बड़े-बड़े दैत्योंको फाड़नेके साथ ही उन्हें निगलने भी लगीं। उन्होंने बार-बार अट्टहास करते हुए विचरना आरम्भ कर दिया। 'शिवदूती' के अट्टहाससे ही दैत्य धरतीपर पड़ जाते थे। 'चामुण्डा' और 'कालिका' उन्हें बड़ी उतावलीके साथ खानेमें जुट जाती थीं। 'कौमारी' का वाहन मोर था। वे समराङ्गणमें विराजमान थीं। देवताओंके कल्याणार्थ वे तीखे बाणोंसे शत्रुओंको मारने लगीं। भगवती 'वारुणी' समराङ्गणमें पाश लेकर पधारी थीं। उस पाशसे बाँधकर दैत्योंको पटक देना उनका सहज कर्म बन गया था। गिरे हुए दैत्य मूर्च्छित होकर निष्प्राण हो जाते थे।

इस प्रकार मातृगणके प्रयाससे दानवोंकी वह ओजस्विनी विशाल सेना युद्धभूमिमें तहस-नहस होकर भाग चली। उस सेनारूपी समुद्रमें अब बड़े जोरसे रोने और चिल्लानेकी आवाज छा गयी। देवता उन देवियोंके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। रक्तबीजने सुना, दानवोंमें भयंकर चीत्कार मचा है और देवता बार-बार जयके नारे लगा रहे हैं। साथ ही देखा, दैत्य भाग भी रहे हैं। अतः अब वह क्रोधसे भर गया। वह महान् बली एवं तेजस्वी दैत्य था। देवता गरज रहे थे—यह देखकर वह युद्धभूमिमें आ डटा। उसके हाथोंमें आयुध थे। वह रथपर बैठा था। उसके धनुषसे बड़ी विचित्र ध्वनि निकल रही थी। क्रोधके कारण उसकी आँखें लाल हो रही थीं। वह देवीके सामने आ पहुँचा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! उस दानवके

शरीरसे जब रक्तकी बूँद भूमिपर गिरती थी, तब उस बूँदसे तुरंत दानव उत्पन्न हो जाते थे। उनके रूप और पराक्रममें बिलकुल समानता रहती थी। भगवान् शंकरने उसे यह बड़ा ही अद्भुत वर दे दिया था कि तुम्हारे रक्तसे असंख्य महान् पराक्रमी दानव उत्पन्न हो जायँगे। इस वरदानके अभिमानमें भरा हुआ वह दैत्य क्रोधवश देवीको मारनेके लिये युद्धभूमिमें आ गया। देवीके साथ कालिका भी विद्यमान थीं। दैत्यने देखा, विष्णुकी शक्ति वैष्णवी गरुड़पर विराजमान हैं। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। दानवने शक्तिसे उनपर प्रहार किया। वैष्णवी देवीने गदासे उस शक्तिको रोक लिया। साथ ही दैत्यराज रक्तबीजको चक्रसे चोट पहुँचायी। चक्रसे छिद जानेके कारण उसके शरीरसे रक्तकी धारा बह चली, मानो वज्रकी चोटसे आहत हुए पर्वतके शिखरसे गेरूकी धारा उमड़ चली हो। उस समय जहाँ-जहाँ भी रक्तबीजके शरीरसे निकलकर रक्तकी बूँदें भूमिपर गिरती थीं, वहीं-वहीं रक्तबीजके समान ही हजारों राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। ऐन्द्रीने कुपित होकर उस भयंकर दैत्य रक्तबीजको वज्रसे मारा। उससे भी रक्तकी बूँदें बह चलीं और उसके रक्तसे असंख्य रक्तबीज उत्पन्न हो गये। पराक्रम और आकारमें सभी मूल रक्तबीजके समान थे। युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले वे दानव आयुध लिये हुए थे। ब्रह्माणी कुपित होकर ब्रह्मदण्डसे उन्हें मारने लगीं। माहेश्वरीने त्रिशूलसे दानवोंको विदीर्ण कर दिया। नारसिंहीके नखोंकी चोटसे महासुरका शरीर छिद गया। वाराही कुपित होकर अपने थूथुनसे उस राक्षसाधमको मारने लगीं और कौमारीने शक्तिसे उसकी छातीमें प्रहार किया।

अब रक्तबीजने भी कुपित होकर अपने पैने बाणोंसे देवियोंको मारना आरम्भ कर दिया। वह अलग-अलग सम्पूर्ण देवियोंको गदा और शक्तिसे चोट पहुँचाने लगा। तदनन्तर देवियाँ क्रोधमें भरकर अपने बाणप्रहारसे रक्तबीजपर आघात करनेमें तत्पर हो गयीं। चण्डिकाने अपने तीखे तीरोंसे दानवके शस्त्र काट डाले। साथ ही क्रोधमें भरकर वे अन्य अनेक बाणोंसे उसे सब ओरसे मारने लगीं। अब रक्तबीजके शरीरसे रुधिरकी मोटी धार बह चली। उससे उस दानवके समान ही असंख्य शूरवीर उत्पन्न हो गये। उस समय रक्तसे उत्पन्न हुए रक्तबीजोंसे पृथ्वी भर-सी गयी। सभी कवच पहने, आयुध लिये हुए अद्भुत युद्ध करनेके लिये लालायित थे। अब उन अनगिनत रक्तबीजोंने देवीपर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर देवता भयभीत हो उठे। उनके मुखपर उदासी छा गयी। शोकसे उनके शरीर दुर्बल होने लगे। वे सोचने लगे—'अब इन असंख्य दैत्योंका संहार कैसे होगा? रक्तसे उत्पन्न हुए इन दानवोंके शरीर बड़े विकराल हैं। ये बड़े शूरवीर हैं। इस समय यहाँ केवल चण्डिका हैं तथा काली और कुछ माताएँ भी विराजमान हैं; किंतु ये लोग इन सम्पूर्ण दानवोंको परास्त कर सकें—यह कहना कठिन है। यदि निशुम्भ और बलशाली शुम्भ भी सहसा समराङ्गणमें आ जायँगे, तब तो महान् अनर्थ हो जानेकी सम्भावना है।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार जब देवता भयसे घबराकर अत्यन्त चिन्तित हो गये, तब भगवती जगदम्बाने कालीसे, जिनकी आँखें कमलके समान थीं, कहा—'चामुण्डे! तुम

अपना मुख फैलाकर मेरे शस्त्राघातके द्वारा रक्तबीजके शरीरसे निकले हुए रुधिरको पीती जाओ। इस कार्यमें बहुत शीघ्रता करनी चाहिये। अब तुम दानवोंको भक्षण करती हुई इच्छानुसार युद्धभूमिमें विचरो। मैं पैने बाणों, गदाओं, तलवारों और मुसलोंसे इन दैत्योंको मार डालूँगी। विशाललोचने ! तुम ऐसे ढंगसे इस दानवका रुधिर पीती रहो कि अब एक बूँद भी पृथ्वीपर न गिरने पाये। इस प्रकार जब तुम सारा रुधिर पीती जाओगी तब दूसरे दानव उत्पन्न नहीं हो सकेंगे। यों करनेसे इन दैत्योंका शीघ्र नाश हो जायगा। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। जब मैं इस दैत्यको मारूँ, तब तुम इसे तुरंत खा जाना। शत्रुसंहाररूपी इस कार्यमें यत्नशील बनकर अब इसका सम्पूर्ण रुधिर पी जाना ही तुम्हारा परम कर्तव्य है। इस प्रकार दैत्य-वध करके स्वर्गका राज्य इन्द्रको देनेके पश्चात् हम आनन्दपूर्वक यहाँसे चल देंगी।'

व्यासजी कहते हैं—भगवती जगदम्बाके यों कहनेपर प्रचण्ड पराक्रम दिखानेवाली देवी चामुण्डा रक्तबीजके शरीरसे निकले हुए समस्त रुधिरको पीनेके लिये तत्पर हो गयीं। जगदम्बाने तलवार और मुसलसे रक्तबीजको मारना आरम्भ किया और भूखी चण्डिका उसके शरीरके कटे हुए अङ्गोंको खाने लगीं। फिर तो रक्तबीज भी कुपित होकर चण्डिकापर गदासे प्रहार करने लगा। तब भी चण्डिका उसका रुधिर पान करनेसे विरत न हुईं। उस दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुए अन्य जितने भी महाबली क्रूर रक्तबीज थे, वे सभी गिरते गये और काली उन सबका रुधिर पीती गयीं। यों सम्पूर्ण कृत्रिम रक्तबीज तुरंत ही चण्डिकाके कलेवा बन गये। जो असली रक्तबीज था, वह भी भयानक चोट खाकर गिर पड़ा। तलवारकी धारसे उसके शरीरके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये। रक्तबीज महान् भयंकर दानव था। उसके मर जानेपर युद्धभूमिमें दूसरे जितने दैत्य थे, सब भागकर शुम्भके पास चले

गये। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। उनकी देह रुधिरसे भीगी हुई थी। उनके अस्त्र पृथ्वीपर गिर गये थे। अचेत-जैसे होकर 'हाय, हाय'—पुकारते हुए व्याकुलतापूर्वक वे शुम्भके प्रति बोले—'राजन् ! वे रक्तबीज भी अम्बिकाके हाथ युद्धमें काम आ गये। उनके शरीरसे जो रुधिर निकलता था, उसे चण्डिका पी जाती थी। जो अन्य शूरवीर दानव थे, उन्हें देवीके वाहन सिंहने मार डाला। बहुत-से दैत्य कालीके ग्रास बन गये। हमलोग युद्धका वृत्तान्त बतलाने तथा देवीने समराङ्गणमें कैसी अत्यन्त भयानक स्थिति उत्पन्न कर दी है, यह सूचित करनेके लिये आ गये हैं। महाराज ! यह देवी दैत्य, दानव, गन्धर्व, असुर, यक्ष, पन्नग, उरग और राक्षस—इन सभीके लिये सर्वथा अजेय है; कोई भी इसे जीत नहीं सकता। महाराज !

इन्द्राणी प्रभृति अन्य भी बहुत-सी प्रमुख देवियाँ आकर युद्धमें सम्मिलित हो गयी हैं। सबके पास वाहन हैं और सबकी भुजाएँ विविध आयुधोंसे सुसज्जित हैं। उत्तम आयुध धारण करनेवाली उन देवियोंने सम्पूर्ण दानवी सेनाको समाप्त कर दिया है। राजेन्द्र ! उन्होंने बहुत ही शीघ्र रक्तबीजको धराशायी कर दिया। एक ही देवी दुस्सह थी; फिर इतनी अन्यान्य देवियोंका सहयोग मिलनेपर तो कहना ही क्या है। उसके वाहन सिंहमें भी बड़ी अनुपम प्रभा है। संग्राममें वह राक्षसोंको मारे डालता है। अतः आप मन्त्रियोंके साथ विचार करके जो उचित हो, वही करनेकी कृपा करें। हमें तो इसके साथ वैर करना ठीक नहीं दीखता। संधि करनेमें ही सुखकी आशा प्रतीत होती है। राजन् ! अन्य जितने दैत्य थे, वे सभी संग्राममें अम्बिकाके हाथ मृत्युके घाट उतर गये। चामुण्डाने उन दैत्योंका मांसतक खा डाला। महाराज ! पातालमें चले जाना अथवा अम्बिकाके अनुचर बनकर रहना ही ठीक है। अब इसके साथ युद्ध करनेमें तो तनिक भी भलाई नहीं दीखती। यह कोई साधारण स्त्री नहीं है। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये स्वयं मायादेवी ही प्रकट होकर पधारी हैं।

व्यासजी कहते हैं—भागकर आये हुए दैत्योंका यह सत्य वचन सुनते ही शुम्भ क्रोधसे ओठ कँपाने लगा। मृत्युको वरण करनेकी इच्छा रखनेवाले उस दैत्यकी बुद्धि कालके प्रभावसे कुण्ठित हो गयी थी। उसने उत्तर दिया।

शुम्भने कहा—भयसे व्याकुल हुए तुम सब लोग पाताल भाग जाओ अथवा उस स्त्रीके दास बनना स्वीकार कर लो। मैं तो अभी उसे मारनेके प्रयत्नमें लगता हूँ। ये देवियाँ भी मृत्युके ग्रास बनकर रहेंगी। संग्राममें सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर मैं निष्कण्टक राज्य करूँगा। एक स्त्रीके भयसे घबराकर मैं पातालमें कैसे चला जाऊँ। रक्तबीज आदि प्रमुख दैत्य मेरे पार्षद थे। मेरे कारण वे युद्धमें काम आ गये। उन सबको मरवाकर मैं अपने प्राण बचानेके लिये पातालमें चला जाऊँ और अपनी विशद कीर्तिका नाश कर दूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता। कालकी व्यवस्थाके अनुसार प्राणियोंकी मृत्यु बिलकुल निश्चित है। ऐसी स्थितिमें कौन पुरुष अपने दुर्लभ यशका त्याग करेगा? निशुम्भ ! मैं रथपर बैठकर समराङ्गणमें जाऊँगा। उस स्त्रीको मारकर ही मेरा आना होगा। यदि मार न सका तो लौटना असम्भव है। वीर ! तुम सेना साथ लेकर मेरे इस कार्यमें सहयोग देते रहना। तीखे तीरोंसे मारकर उस स्त्रीको शीघ्र ही मृत्युके मुखमें झोंक देना—यही तुम्हारा परम कर्तव्य है।

निशुम्भ बोला—मैं अभी जाता हूँ। वह दुष्टा काली मेरे हाथ कालका कलेवा बन जायगी, फिर बहुत शीघ्र मैं उस अम्बिकाको लेकर यहाँ आ जाऊँगा। राजेन्द्र ! आप एक तुच्छ स्त्रीके विषयमें तनिक भी चिन्ता न करें। कहाँ वह साधारण अबला स्त्री और कहाँ मेरी भुजाओंका अमित पराक्रम, जो सारे विश्वको वशमें करनेकी शक्ति रखता है ! भाई साहब ! आप इस बड़ी भारी चिन्ताको छोड़कर सर्वोत्तम राज्यसुख भोगें। उस आदरकी पात्र मानिनीको मैं अवश्य ही आपके पास ला दूँगा। राजन् ! मेरे रहते हुए आप युद्धभूमिमें जायँ—यह अनुचित है। मैं आपका कार्य सिद्ध करनेके लिये समराङ्गणमें जाकर विजयश्री प्राप्त करनेकी चेष्टा करूँगा।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार अपने बड़े भाई शुम्भसे कहकर छोटा भाई निशुम्भ, जो अपने बलका पर्याप्त अभिमान रखता था, कवच पहनकर एक विशाल रथपर जा बैठा। उसने साथमें सेना ले ली। मङ्गलाचार कराकर वह तुरंत युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उसकी भुजाएँ आयुधोंसे अलंकृत थीं। पार्श्वरक्षक विद्यमान थे। सूत और वन्दीजन उसका यशोगान कर रहे थे।

(अध्याय २८-२९)

☆

## निशुम्भ और शुम्भका निधन

व्यासजी कहते हैं—निशुम्भ महान् पराक्रमी योधा था। मरना अथवा विजय पाना—दो ही कार्य सामने हैं, ऐसा निश्चय करके वह मोर्चेपर देवीके सामने जाकर डट गया। सेनाको साथ लेकर वह पर्याप्त प्रयास कर रहा था। दैत्यराज शुम्भ युद्धकलाका पूर्ण विद्वान् था, वह भी अपनी सेनाके साथ दर्शक बनकर युद्ध-भूमिमें आ गया। उस समय युद्ध देखनेके विचारसे इन्द्रसहित यक्षसमूह और सम्पूर्ण देवता आकाशमें उपस्थित थे। मेघोंने उन्हें छिपा रखा था। निशुम्भने युद्धस्थलमें पहुँचकर अपना धनुष उठाया और भगवती जगदम्बिकाके ऊपर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। वह दानव निरन्तर बाण चला रहा था। भगवती चण्डिकाने उसे देखकर श्रेष्ठ धनुष हाथमें ले लिया और वे उच्च स्वरसे बार-बार अट्टहास करने लगीं। फिर कालीको सम्बोधित करके बोलीं—'अरे, इन दोनोंकी मूर्खता तो देखो। आज ये दोनों मौतको गले लगानेके लिये यहाँ मेरे सामने उपस्थित हुए हैं। रक्तबीज महाभयंकर दैत्य था। उसका वध देखकर भी मेरी मायासे मोहित होनेके कारण ये विजयकी आशा करते हैं। आशामें अपार बल है। तभी तो अङ्गहीन, निर्बल, नीच, निष्पक्ष और अचेत मनुष्य भी इसके प्रभावसे छूट नहीं सकते। काली ! शुम्भ और निशुम्भ—ये दोनों दानव आशाकी मजबूत रस्सीमें बँधकर युद्धके लिये समरभूमिमें आये हैं। अब मेरे द्वारा इनकी मृत्यु अनिवार्य है। इनके जीवनकी अवधि समाप्त हो चली है। प्रारब्धकी प्रेरणासे ये आ गये हैं। सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही आज इन्हें मैं मार डालूँगी।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कालिकासे कहकर भगवती चण्डीने बाण उठाये और कानोंतक खींचकर उनके द्वारा सामने खड़े हुए निशुम्भको ढक दिया। उस दैत्यने अपने चमकीले बाणोंसे देवीके बाण काट डाले। फिर दोनोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा। बलवान् सिंह अयालोंको झाड़ता हुआ सैनिकोंको इस प्रकार पकड़ रहा था, जैसे हाथी गन्नेको पकड़ रहा हो। सामने खड़े हुए दैत्योंको वह मतवाले हाथियोंकी भाँति नखों और दाँतोंके प्रहारसे तोड़-मरोड़कर खा जाता था। जब यों सिंहद्वारा सेना चबा डाली गयी, तब निशुम्भ अपना सर्वोत्तम धनुष चढ़ाकर दौड़ा। उसीके साथ अन्य भी बहुत-से प्रधान दैत्य रोषमें आकर देवीके ऊपर टूट पड़े। क्रोधवश दाँतोंसे उनकी जीभें कटी जाती थीं। उनके नेत्र लाल हो रहे थे। उसी अवसरपर शुम्भ भी सैनिकोंसहित सहसा आ गया और कालिकापर वार करके भगवती जगदम्बाको पकड़नेके लिये आगे बढ़ा। उसने

आकर देखा, भगवती जगदम्बा युद्ध-भूमिमें सामने खड़ी हैं। उनका कमनीय विग्रह भीषण रौद्ररस और सुन्दर शृङ्गाररससे सुशोभित है। उनकी भौंहें बड़ी विकट हैं। त्रिलोकीमें वे अनुपम सुन्दरी हैं। क्रोधके कारण उन रमणीकी आँखें लाल हो रही हैं। दूरसे ही देवीका ऐसा रूप देखकर शुम्भकी विवाह-विषयक इच्छा और विजयसम्बन्धी आशा दोनों ही शान्त हो गयीं। मरणका निश्चय करके वह धनुष हाथमें लिये हुए खड़ा रहा। तब देवीने मोर्चेपर उपस्थित सभी दैत्योंको सुनाते हुए हँसकर शुम्भके प्रति यह वचन कहा— 'अरे पामरो ! यदि तुम जीनेकी इच्छा रखते हो तो अभी अस्त्र-शस्त्र डालकर पाताल अथवा समुद्रमें चले जाओ। नहीं तो युद्धभूमिमें मेरे बाणोंके प्रहारसे निष्प्राण होकर स्वर्ग सिधारो और निश्चिन्ततापूर्वक वहाँका सुख भोगकर सभी आनन्दका अनुभव करो। कायरताको अपनाये हुए शूरता दिखाना कदापि सम्भव नहीं है। मैं तुम्हें अभयदान दे रही हूँ—सभी सुखपूर्वक जा सकते हो।'

व्यासजी कहते हैं—देवीकी बात सुनकर अभिमानमें प्रमत्त रहनेवाला निशुम्भ तेज धारवाली तलवार तथा अष्टचन्द्र नामक ढाल लेकर दौड़ा। उसमें असीम बल था। उसने तुरंत तलवारसे सिंहके मस्तकको चोट पहुँचायी। पैतरे बदलते हुए भगवती जगदम्बिकापर भी वार करना आरम्भ किया। तब देवीने अपनी गदासे निशुम्भकी तलवारके प्रहारको रोककर फरसेसे उसके कंधेपर आघात किया। उस महाभिमानी दैत्यका कंधा तलवारसे आहत हो गया, फिर भी उसने उस पीड़ाको सहकर चण्डिकापर शस्त्र चलाना चालू रखा। तब देवीने सबको भयभीत करनेवाली अपनी घोर घण्टाध्वनि की। साथ ही निशुम्भका वध करनेकी इच्छा प्रकट करती हुई वे बारम्बार मधु पीने लगीं। इस प्रकार अत्यन्त भयंकर देवासुर-संग्राम होने लगा। सभी परस्पर दूसरेको जीतनेके लिये लालायित थे। मांस खानेवाले गीध और कौवे आदि पक्षी तथा कुत्ते और सियार प्रभृति भयंकर जानवर अत्यन्त तृप्त होकर नाच रहे थे। उस समय दानवोंके मृत शरीरोंसे तथा रुधिर बहाते हुए हाथियों और घोड़ोंकी लाशोंसे पटी हुई वह युद्धस्थली अनुपम शोभा पा रही थी। धराशायी दानवोंको देखकर निशुम्भके क्रोधकी सीमा नहीं रही। अपनी भयंकर गदा लेकर वह बड़ी शीघ्रताके साथ देवीपर झपटा। अभिमानमें चूर रहनेवाले उस दैत्यने गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। फिर गदा उठायी और हँसकर देवीपर प्रहार करने दौड़ा। अब देवीके मनमें भी अपार क्रोध छा गया। निशुम्भ सामने खड़ा होकर मारनेको उद्यत था। उसे देखकर भगवती जगदम्बा कहने लगीं—

देवीने कहा—मूर्ख ! मैं तलवार चला रही हूँ; जबतक यह तेरे गलेके पास न पहुँच जाय, तबतक ठहर जा। फिर तो तेरा यमराजके घर जाना सर्वथा निश्चित है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भीषण तलवारसे भगवती चण्डिकाने तुरंत निशुम्भके मस्तकको धड़से अलग कर दिया। देवीके प्रयाससे मस्तक कट जानेपर वह अत्यन्त विकराल धड़ हाथमें गदा लिये देवताओंको भयभीत करता हुआ नाचने लगा। तब देवीने अपने चमकीले बाणोंसे उस दानवके हाथ-पैर काट डाले। अब पर्वतकी तुलना करनेवाला वह

नीच दैत्य प्राणहीन होकर पृथ्वीपर पड़ गया।

उस दैत्यमें अत्यन्त भयंकर पराक्रम था। उसके गिर जानेपर सेनामें भीषण हाहाकार मच गया। सैनिक भयसे काँप उठे। सभी सैनिक रुधिरसे भीग चुके थे। हथियार फेंककर चीत्कार करते हुए वे राजभवनपर जाकर ठहरे; क्योंकि इस बीचमें शुम्भ लौट गया था। तब शत्रुके संहारकी शक्ति रखनेवाले शुम्भने आये हुए दैत्योंको देखकर उनसे पूछा—'निशुम्भ कहाँ है ? घायल होकर तुम्हारे भागनेका क्या कारण है ?' शुम्भ दानवोंका राजा था। उसकी बात सुनकर भागकर आये हुए दैत्य नम्रतापूर्वक कहने लगे—'राजन् ! आपके भाई निशुम्भ प्राणोंसे हाथ धोकर युद्धभूमिमें सो गये हैं। उनके जितने अनुचर थे, उन्हें भी उस स्त्रीने मार डाला है। वहाँके ये समाचार जनानेके लिये हम आपके पास आ गये हैं। राजन् ! जिसने संग्राममें निशुम्भको मार डाला है, उस चण्डिकाके साथ अब युद्ध करनेका अवसर नहीं है। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे ही यह कोई अद्भुत देवी प्रकट हुई है। दैत्यकुलका संहार करना ही इस देवीके अवतारका प्रयोजन है—यह निश्चित जान लेना चाहिये। यह साधारण स्त्री न होकर सर्वोत्कृष्ट शक्ति रखनेवाली कोई महादेवी है। इसके चरित अचिन्त्य हैं। देवतालोग भी कभी इसे नहीं जान सकते। भाँति-भाँतिके रूप धारण करनेवाली यह देवी मायाके रहस्यको सम्यक् प्रकारसे जानती है। इसके भूषण बड़े अद्भुत हैं। यह हाथमें सम्पूर्ण आयुध लिये हुए है। गूढ़ चरित्रवाली इस देवीको जानना साधारण बात नहीं है। जान पड़ता है, मानो दूसरी कालरात्रि ही हो। सबके गुप्त रहस्यको जाननेवाली वह पूर्णतामयी देवी सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है। देवता आकाशमें रहकर निर्भीकतापूर्वक उसकी स्तुति कर रहे हैं। परम अद्भुतस्वरूपिणी वह श्रीदेवी देवताओंका ही कार्य सिद्ध कर रही है। आप यदि शरीरको सुरक्षित रखना चाहते हैं तो इस समय भाग जाना ही परम धर्म है। इस समय हम सुरक्षित रह गये तो अत्यन्त आनन्द मानना चाहिये।

'राजन् ! काल समय पाकर कभी सबलको भी अबल बना देता है, तथा समयपर पुनः बलवान् बनाकर उसके हाथमें विजयश्री भी उपस्थित कर देता है। कभी तो यह काल दाताको याचक बना देता है और कभी याचकको दाता बनानेमें सफल हो जाता है। इन्द्र प्रभृति सभी देवता कालके अधीन हैं। सबपर प्रभुत्व स्थापित किये रखनेवाला एक काल ही है। अतः आप कालकी प्रतीक्षा कीजिये। इस समय यह आपके विपरीत है। यह देवताओंके लिये अनुकूल और दैत्योंके लिये प्रतिकूल चल रहा है। राजन् ! इस कालकी गति सर्वथा एक-सी नहीं रहती। इसके अनेक रूप होते हैं।

अतः इस कालकी चेष्टापर विचार करना परम आवश्यक है। कभी मनुष्य उत्पन्न होते हैं और कभी उनके मरणका क्षण भी उपस्थित हो जाता है। एक काल उत्पत्तिमें निमित्त बनता है तो दूसरा विनाशका हेतु बन जाता है। महाराज! आपके सामने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। देवीके पक्षपाती इन्द्र प्रभृति ये सभी देवता आपको भेंट देते थे; क्योंकि उस समय काल आपके अनुकूल था। किंतु अब उसी कालके प्रतिकूल हो जानेपर उलटी बात दृष्टिमें आ रही है। शूरवीर दैत्य निर्बल होकर मरे जा रहे हैं। अतः सबको मारनेवाला काल ही प्राणियोंको शुभ और अशुभका भागी बनाया करता है। इसमें न काली कारण है और न सनातन देवता ही। राजन्! अब आपको जो उचित जान पड़े, विचारकर वही करें। यह काल आपके तथा दानवोंके लिये भी अनुकूल नहीं है। राजेन्द्र! यह सारा जगत् कालके अधीन है—यह देखकर अब आप भी शीघ्र ही पातालकी राह पकड़ें। जीवन सुरक्षित रहा तो फिर कभी सुखकी घड़ी सामने आयेगी। महाराज! कहीं आपका निधन हो गया तब तो शत्रुगण आनन्दमें भरकर मङ्गल-गान करते हुए सर्वत्र अपनी विजयपताका फहराने लगेंगे।'

व्यासजी कहते हैं—भागकर आये हुए सैनिकोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर दैत्यराज शुम्भ तुरंत उनसे कहने लगा। उसकी आँखें क्रोधसे नाच रही थीं।

शुम्भ बोला—अरे मूर्खो! तुम्हारे मुखसे इस प्रकारके खोटे वचन क्यों निकल रहे हैं? मुझे जीवन ही प्रिय नहीं है। क्या भाइयों और मन्त्रियोंको मरवाकर निर्लज्ज होकर मैं भाग जाऊँ? प्राणियोंका शुभ और अशुभ अत्यन्त बलवान् कालके हाथमें है। यह सत्य है कि गुप्तरूपसे सबपर शासन करनेवाला वह काल हटाया नहीं जा सकता। इस स्थितिमें मुझे क्यों चिन्ता करनी चाहिये? जो होना है, वह होता रहे। काल जो कर रहा है, वह करता रहे। जीवन और मरणकी उलझनमें पड़कर मेरा मन कभी चिन्तित नहीं हो सकता। जो सम्पूर्ण देवताओंको जीतनेवाला था, वह निशुम्भ इस स्त्रीके हाथ मर मिटा। रक्तबीज महान् शूरवीर था, वह भी इस लोकसे चल बसा। जब ये सभी मृत्युके मुखमें चले गये, तब अपनी कमनीय कीर्ति खोकर मैं ही जीनेकी आशा क्यों करूँ? जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मा सर्वसमर्थ हैं; परंतु जब उनके दोनों परार्ध समाप्त हो जाते हैं, तब स्वयं वे भी यह शरीर छोड़ देते हैं। ब्रह्माके एक दिनमें हजार चतुर्युग समाप्त हो जाते हैं। इतनेमें चौदह इन्द्र शासन करके स्वर्गसे चले जाते हैं। मूर्खो! दैवकी बनायी हुई यह मृत्यु एक पग भी इधर-उधर नहीं हो सकती, फिर इस विषयमें क्या चिन्ता है? सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, पहाड़—सबकी मृत्यु निश्चित है। जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मरनेवालेका जन्म बिलकुल निश्चित है। यह शरीर क्षणभङ्गुर है ही। इसे पाकर अपने स्थिर सुयशकी रक्षा करनी चाहिये। बहुत शीघ्र मेरा रथ तैयार करो। मैं युद्धभूमिमें जाऊँगा। जय अथवा मरण प्रारब्धानुसार जो भी होनेवाला हो, हो जाय।

इस प्रकार सैनिकोंसे कहकर शुम्भ तुरंत रथपर सवार हुआ और हिमालय पर्वतके लिये—जहाँ भगवती जगदम्बा विराजमान थीं—चल दिया। उस अवसरपर हाथी, घोड़े,

रथ और पैदल चलनेवालोंसे सुसज्जित चतुरङ्गिणी सेना भी उसके साथ चल पड़ी। सभी नाना प्रकारके आयुध लिये हुए थे। उस पर्वतपर जाकर शुम्भने भगवती जगदम्बाको देखा। उस समय सिंहपर सवारी करनेवाली वे त्रिभुवनमोहिनी देवी एक परम सुन्दरी स्त्रीके रूपमें विराजमान थीं। सम्पूर्ण भूषण उनके शरीरको विभूषित कर रहे थे। सभी शुभ लक्षणोंसे वे सुशोभित थीं। देवता, यक्ष, गन्धर्व और किंनर आकाशमें खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। पारिजातके फूलोंसे उनका पूजन हो रहा था। शङ्ख और घंटेकी मनोहर ध्वनि निकल रही थी। देवीको देखकर शुम्भ मोहित हो गया। मन-ही-मन वह सोचने लगा—अहो, इसका रूप कैसा सुन्दर है। अरे, इसमें कैसी अद्भुत चातुरी है ! सुकुमारता और धीरता—ये दोनों धर्म परस्पर-विरोधी होनेपर भी इसमें एक साथ विद्यमान हैं। अत्यन्त पतले शरीरवाली यह सुकुमारी अभी-अभी अपनी तरुणावस्थापर पहुँची है, परंतु इस स्त्रीका मन कामभावसे बिलकुल शून्य है—यह एक विलक्षण बात दृष्टिगोचर हो रही है। रूपमें यह रतिकी तुलना करनेवाली है। सभी शुभ लक्षणोंसे यह सम्पन्न है। क्या यह साक्षात् अम्बिका ही तो नहीं है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण महाबली दानव मारे जा रहे हैं ? इस अवसरपर मुझे कौन-सा उपाय करना चाहिये जिससे यह मेरे वशमें हो जाय ? इस मरालाक्षीको वश करनेके उपयुक्त कोई भी मन्त्र मेरे पास नहीं है; क्योंकि अभिमानमें मत्त रहनेवाली यह मोहिनी देवी ही सर्वमन्त्रमयी है। सुन्दर वर्णवाली यह सुन्दरी किस प्रकार मेरे अनुकूल हो जाय ? अब मेरे लिये समराङ्गणसे पृथक् होकर पातालमें जाना उचित नहीं है। यदि साम, दान और भेद— इन उपायोंसे भी यह अपार शक्ति रखनेवाली देवी वशमें न हुई तो ऐसी कठिन परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये और मैं जाऊँ भी कहाँ ? स्त्रीके हाथ मरना भी उपयुक्त नहीं है; क्योंकि इससे अपकीर्ति फैलती है। ऋषियोंने बतलाया है कि श्रेयस्कर मृत्यु वह है जो समरभूमिमें समान बलवाले योद्धाके साथ लड़ते-लड़ते प्राप्त हो। दैवके विधानसे ऐसी स्त्री सामने आ गयी है जो सैकड़ों-हजारों वीरोंसे भी अधिक बलवान् है। अत्यन्त बलशालिनी यह नारी हमारे कुलका सम्यक् प्रकारसे संहार करनेके लिये ही उपस्थित हुई है। इस समय यदि सामनीतिसे युक्त वचन कहे जायँ तो वे बिलकुल निष्फल हैं; क्योंकि यह तो मारनेके लिये ही आयी है। तब फिर शान्तिसे यह कैसे प्रसन्न हो सकती है। भाँति-भाँतिके शस्त्रोंसे विभूषित होनेके कारण कुछ धन देकर भी इसे विचलित नहीं किया जा सकता। भेदनीति भी नहीं काम दे सकती; क्योंकि सभी देवता इसके वशमें हैं। अतएव भागनेकी अपेक्षा संग्राममें मर जाना ही ठीक है। अब विजय अथवा मृत्यु—प्रारब्धके अनुसार जो भी हो, कोई चिन्ता नहीं।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार मनमें विचार करके शुम्भने अपनी धीरताको बनाये रखा। युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध होकर सामने खड़ी हुई देवीसे कहा—'देवी ! युद्ध करो। प्रिये ! इस समय तुम्हारा यह परिश्रम बिलकुल व्यर्थ है। तुम बुद्धिसे काम नहीं ले रही हो। अरे, स्त्रियोंके लिये यह धर्म कभी शोभा नहीं देता। स्त्रियोंके नेत्र ही बाण हैं। भौंहें ही धनुषका काम देती हैं। हाव-भाव उनके शस्त्र हैं। विद्वान् पुरुष

भी उसका लक्ष्य बन जाता है। अपने अङ्गोंको चन्दन आदिसे सजाना ही उद्योग है। मनोरथ ही रथका काम करता है। धीरे-धीरे मधुर वचन बोलना ही भेरीध्वनि है, इसके सिवा अन्य कुछ नहीं। स्त्रियाँ इसके अतिरिक्त अन्य अस्त्र हाथमें लें—यह उनके लिये केवल विडम्बना ही है। प्रिये ! लज्जा ही तुम्हारा भूषण है। धृष्टता कभी तुम्हें शोभा नहीं देती। युद्धकी इच्छा करनेवाली श्रेष्ठ नारी कर्कशाके सदृश दिखायी पड़ती है। धनुष खींचते समय स्त्री अपने स्तनोंको छिपानेमें कैसे सफलता पा सकती है ? कहाँ धीरे-धीरे पृथ्वीपर पैर रखना और कहाँ गदा लेकर दौड़ना। इस समय यह कालिका और दूसरी स्त्री चामुण्डा—ये ही तुम्हारी बुद्धिदात्री हैं। बीच-बीचमें चण्डिका भी तुम्हें उपाय बताया करती हैं। रूखी बोली बोलनेवाली शिवा तुम्हारी शुश्रूषामें रहती है। सम्पूर्ण प्राणियोंमें भयंकर सिंह तुम्हारा वाहन है। वरवर्णिनी ! तुम वीणा न बजाकर शङ्खध्वनि कर रही हो ! ये सभी कर्म तुम्हारे रूप और यौवनके विरुद्ध हैं। भामिनी ! यदि तुम्हें युद्ध ही अभीष्ट हो तो विकराल रूप धारण कर लो। जिसके लम्बे ओठ हों, नखोंमें कुरूपता भरी हो, शरीरकी कान्ति धूमिल हो, भयानक मुख हो, बड़ी-बड़ी टाँगें हों, दाँत कुरूप हों और बिल्लीकी आँखोंके समान पिङ्गलवर्णकी भयानक आँखें हों। ऐसा वेष बनाकर युद्धभूमिमें तुम स्थिरतापूर्वक खड़ी हो जाओ। साथ ही, तुम्हारे मुखसे वचन भी कठोर निकलने चाहिये। तब मैं युद्धमें तत्पर होऊँगा। सुन्दरतामें रतिकी तुलना करनेवाली मृगलोचने ! तुम-जैसी सुन्दरी स्त्रीको सामने देखकर युद्धमें प्रहार करनेके लिये मेरा हाथ नहीं उठ रहा है।'

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय ! शुम्भ कामसे व्याकुल होकर यों बक रहा था। उसे देखकर भगवती जगदम्बा मुसकराकर यह वचन कहने लगीं।

देवीने कहा—अरे मूर्ख ! कामके बाणसे अपनी विवेकशक्ति खोकर क्यों व्यर्थ प्रलाप कर रहा है ? मूढ़ ! तू कालिका अथवा चामुण्डाके साथ ही युद्ध कर ले। मैं तो केवल देखनेके लिये खड़ी हूँ। ये दोनों देवियाँ समराङ्गणमें तेरे साथ लड़नेके लिये पूर्ण समर्थ हैं। तू अपनी इच्छाके अनुसार इनपर प्रहार कर। मैं तेरे साथ युद्ध करना नहीं चाहती।

इस प्रकार कहकर भगवती जगदम्बाने मधुर स्वरमें कालिकासे कहा—'कालिके ! तुम कुरूपाके साथ लड़नेकी अभिलाषावाले इस दैत्यको युद्धमें मार डालो।'

व्यासजी कहते हैं—कालिका स्वयं कालरूपिणी हैं। कालकी प्रेरणासे ही उनका पधारना होता है। जगदम्बाकी आज्ञा पाकर उन्होंने तुरंत गदा उठा ली और सावधान होकर वे मोर्चेपर डट गयीं। अब दोनोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। सम्पूर्ण देवता, महात्मा और मुनि यह घटना देख रहे थे। तदनन्तर शुम्भने गदा हाथमें लेकर उससे कालिकापर प्रहार किया। तब भगवती कालिका भी दैत्यराज शुम्भपर बारम्बार गदाका प्रहार करने लगीं। दानवका सुवर्णमय चमकता हुआ रथ देवीकी गदासे चूर-चूर हो गया। चण्डीने रथ खींचनेवाले गदहे और सारथिके भी उसी क्षण प्राण हर लिये। अब क्रोधमें भरा हुआ शुम्भ विशाल गदा लेकर पैदल युद्ध करने लगा। उसके मुखपर प्रसन्नताकी किरणें झलक रही थीं। उसने

भगवती कालिकाकी छातीपर गदा चलायी। देवीने गदाको रोक लिया और झट तलवार उठा ली। उससे शुम्भकी बायीं भुजाको, जो चन्दनसे चर्चित एवं आयुधयुक्त थी, शरीरसे अलग कर दिया। रथ टूट गया था, बायीं भुजा कट गयी थी और रुधिरसे सर्वाङ्ग भीग चुका था— इस स्थितिमें भी वह दैत्य गदा हाथमें लिये आगे बढ़ा और कालिकापर प्रहार करने लगा। तब देवीने हँसते-हँसते तलवारसे उसकी दाहिनी भुजा भी काट डाली। बाजूबंद और गदासे सुशोभित उस भुजाको भी शरीरसे अलग हो जाना पड़ा। अब वह दैत्य पैरोंसे मारनेके लिये रोषपूर्वक आगे बढ़ा। देवीने तलवारसे तुरंत उसके पैर भी काट डाले। फिर तो बिना हाथ-पैरके ही उस दानवके मुखसे 'ठहरो-ठहरो' की आवाज निकलने

लगी। भगवती कालिकाको भयभीत करते हुए वह वेगपूर्वक लुढ़ककर चला। उसे आते देखकर कालिकाने कमलकी भाँति शोभा पानेवाले उसके मस्तकको झटसे काट दिया। कण्ठसे रुधिरकी अजस्र धाराएँ बहने लगीं। मस्तक कट जानेपर वह शुम्भ जिसका शरीर पर्वतके समान विशाल था, जमीनपर पड़ गया। अब उसके प्राण शरीरसे निकलकर तुरंत प्रयाण कर गये। उस समय शुम्भके मृत शरीरको देखकर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भगवती चण्डिका और कालिकाकी स्तुति करने लगे। सुखदायिनी वायु चलने लगी। दिशाओंमें अत्यन्त प्रकाश छा गया। होम करते समय अग्निसे पवित्र ज्वालाएँ निकलने लगीं। राजन्! मरनेसे बचे हुए जितने दानव थे, उन्होंने भगवती जगदम्बाको प्रणाम करनेके पश्चात् अपने आयुध त्यागकर पातालकी यात्रा की। देवीका यह सम्पूर्ण उत्तम चरित्र मैंने सुना दिया। इसमें शुम्भ आदि दानवोंके वध और देवताओंके रक्षणका प्रसङ्ग आया है। भूमण्डलपर रहनेवाले जो मानव भक्तिपूर्वक निरन्तर इन समस्त उपाख्यानोंका पठन अथवा श्रवण करते हैं, उनकी सारी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। भगवतीकी कृपासे पुत्रहीन पुत्रवान् और निर्धन प्रचुर धनवान् हो जाता है। रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। इसके प्रभावसे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो सकती हैं। इस पवित्र आख्यानको सुननेवाला मानव शत्रुसे भयभीत नहीं हो सकता और निरन्तर इसका अध्ययन एवं श्रवण करनेवाला मनुष्य मुक्तिका अधिकारी होता है।

(अध्याय ३०-३१)

☆

# राजा सुरथ और समाधि वैश्यका सुमेधा मुनिके आश्रमपर गमन और सुमेधाके द्वारा देवीमहिमाका वर्णन

जनमेजयने पूछा—मुने ! आपने भगवती जगदम्बाकी महिमाका प्रसङ्ग भलीभाँति वर्णन किया। कृपानिधे ! अब यह बताइये कि तीन चरित्रोंका प्रयोग करके पहले किसने देवीकी आराधना की थी, सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली ये देवी सुपूजित होकर पहले किसपर प्रसन्न हुई थीं और किसे महान् फलभागी होनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था ? ब्रह्मन् ! महाभाग ! साथ ही आप भगवतीकी उपासना, पूजा तथा होमकी विधिका भी वर्णन करने की कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—राजा जनमेजयकी बात सुनकर सत्यवतीनन्दन व्यासजी प्रसन्नतापूर्वक महामायाकी महिमाका प्रसङ्ग महाराजको सुनाने लगे।

व्यासजी कहते हैं—प्राचीन समयकी बात है—स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे। उनका स्वभाव बड़ा उदार था। प्रजा-पालनमें उनकी बड़ी तत्परता थी। वे सत्यवादी, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणोंके उपासक, गुरुमें श्रद्धा रखनेवाले और सदा अपनी पत्नीसे ही प्रेम करनेवाले थे। उन दानशील नरेशका किसीसे कोई विरोध नहीं था। धनुर्विद्याके वे पारंगत थे। यों राज्यकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले राजा सुरथका कुछ पर्वतवासी म्लेच्छोंसे सामना हो गया। उन म्लेच्छोंने अनायास उनसे शत्रुता ठान ली। मदके अभिमानमें चूर रहनेवाले वे म्लेच्छ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे सुसज्जित अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर आ पहुँचे। अब उन भयंकर म्लेच्छोंके साथ सुरथका भयानक युद्ध होने लगा। यद्यपि म्लेच्छ निर्बल थे और उनकी अपेक्षा राजामें अद्भुत बल था, फिर भी, दैववश राजा सुरथ युद्धमें उनसे हार गये। उत्साहहीन होकर उन्होंने अपने नगरकी राह पकड़ ली। नगरमें सुरथका दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित था। उसके चारों ओर किले थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि उनके प्रधान सहयोगी शत्रुपक्षके अधीन हो चुके हैं। विचार किया—'इस किलोंसे सुरक्षित विस्तृत दुर्गमें रहकर समयकी प्रतीक्षा की जाय अथवा युद्ध किया जाय। मन्त्री शत्रुपक्षके समर्थक हो गये हैं। अतः उनसे परामर्श करना सर्वथा अनुचित है।' वे फिर सोचने लगे—'कहीं शत्रुके आश्रयमें रहनेवाले ये मेरे दुराचारी मन्त्री ही यदि मुझे शत्रुओंके सामने उपस्थित कर देंगे तब क्या होगा। इन नीच बुद्धिवालोंके प्रति कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो लोभके अधीन हो गये हैं उन मनुष्योंद्वारा कौन-सा काम नहीं हो सकता। लोभमें भरा हुआ मानव पिता, भ्राता, मित्र, सुहृद्, बान्धव, पूजनीय गुरु एवं ब्राह्मणका भी निरन्तर द्वेषी बन जाता है। इस समय मेरा दुराचारी मन्त्रिमण्डल शत्रुवर्गके आश्रयमें चला गया है। अतः इन दुष्टोंके प्रति मुझे कभी पूरा विश्वास नहीं करना चाहिये।'

यों भलीभाँति विचार करनेके पश्चात् राजा सुरथ अत्यन्त निराश होकर घोड़ेपर चढ़े और अकेले ही नगरसे निकल पड़े। उनके साथ एक भी सहायक नहीं था। वहाँसे वे एक बीहड़ वनमें चले गये। फिर उन बुद्धिमान् नरेशने सोचा—अब कहाँ चलना चाहिये। यहाँसे तीन योजनकी

दूरीपर सुमेधा नामक एक महान् तपस्वी मुनिका पवित्र आश्रम है—यह बात उनके ध्यानमें आ गयी। अतः वे वहीं चले गये। नदीके तटपर वह सुरम्य स्थान था। बहुत-से वृक्ष उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ सभी पशु वैरशून्य होकर विचरते थे। कोयलोंकी मधुर कूक सुनायी दे रही थी। अध्ययनशील विद्यार्थियोंके स्वर गूँज रहे थे। सैकड़ों मृगोंसे वह आश्रम सुशोभित था। सुन्दर फूल और फलवाले अनेक वृक्षोंसे वह स्थान भरा-पूरा था। वह आश्रम अग्निहोत्रके धुएँसे प्राणियोंको सदा प्रसन्न किये रहता था। नित्य तुमुल वेदध्वनिके कारण वह स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर जान पड़ता था। उस आश्रमको देखकर राजा सुरथके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने निर्भय होकर मुनिके उस आश्रमपर विश्राम करनेका निश्चय कर लिया। घोड़ेको एक वृक्षमें बाँध दिया और वे आश्रममें चले गये। वहाँ देखा, साखू-वृक्षकी छायामें मृगचर्मके आसनपर सुमेधा मुनि विराजमान हैं। मुनिजी शान्त होकर विद्यार्थियोंको वेदान्त पढ़ा रहे थे। तपस्यासे उनका शरीर दुर्बल हो गया था। क्रोध, लोभ आदि द्वन्द्वभाव उनमें बिलकुल नहीं थे। मनमें डाहका नितान्त अभाव था। वे सत्यवादी मुनि शान्तिपूर्वक निरन्तर आत्मज्ञानका चिन्तन करते रहते थे। उन्हें देखकर राजाके मनमें उनके प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। वे उनके सामने दण्डकी भाँति भूमिपर पड़ गये और साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे। उस समय सुरथकी आँखें आँसुओंसे डबडबा गयी थीं। तब मुनिने बार-बार उठनेके लिये आग्रह करके उनसे कहा—'तुम्हारा कल्याण हो।' मुनिका संकेत पाकर विद्यार्थीने राजाको एक आसन दे दिया। आदेशानुसार राजा उठे और उस आसनपर बैठ गये। मुनिजीने अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा महाराज सुरथका विधिवत् स्वागत किया। पूछा—'आप कौन हैं? कहाँसे पधारे हैं और क्यों इतने चिन्तित हैं? अब आप इच्छानुसार अपना मनोभाव व्यक्त करें। आप किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं? मनमें कौन-सा विचार उपस्थित है? अवश्य बतावें। आपका कोई असाध्य भी मनोरथ होगा तो मैं उसे भी पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा।'

राजाने कहा—मैं सुरथ नामका एक राजा हूँ। शत्रुओंसे मेरी पराजय हो चुकी है। अतः महल, स्त्री और राज्य—सब कुछ छोड़कर मैं अकेला आपकी शरणमें आया हूँ। ब्रह्मन्! अब आप जो कुछ आज्ञा दें, वही श्रद्धापूर्वक करनेके लिये मैं तैयार हूँ। धरातलपर आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी मेरा रक्षक नहीं है। मुनिवर! शरणागतोंपर कृपा करना आपका स्वभाव ही है। मैं शत्रुओंसे अत्यन्त भयभीत होकर आपके पास आया हूँ। मुझे बचानेकी कृपा करें।

मुनिवर बोले—महाराज! आप निर्भीक होकर यहाँ विराजें। तपस्याका ऐसा प्रभाव है कि आपके अत्यन्त पराक्रमी शत्रु भी कदापि यहाँ नहीं आ सकेंगे। राजेन्द्र! यहाँपर हिंसा करना निषिद्ध है। अतः आपको वनवासी जीवन व्यतीत करना चाहिये। तीनीके चावल, फल और मूल खाकर आप जीवननिर्वाह करें।

व्यासजी कहते हैं—सुमेधा मुनिकी बात सुनकर राजा सुरथके मनसे भय दूर हो गया। वे फल-मूल खाकर बड़ी पवित्रताके साथ उसी आश्रमपर रहने लगे। एक समयकी बात है—

राजा उसी आश्रममें एक वृक्षके नीचे बैठे थे। उनके मनपर चिन्ताकी घटा घिर आयी थी। चित्त घरपर चला गया था। वे सोच रहे थे—'निरन्तर नीच कर्म करनेवाले म्लेच्छ शत्रुओंने मेरा राज्य हड़प लिया है। वे निर्लज्ज बड़े दुराचारी हैं। उनके व्यवहारसे प्रजाको महान् कष्ट होनेकी सम्भावना है। सम्पूर्ण हाथी और घोड़े भोजन न पानेसे तथा शत्रुसे सताये जानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये होंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है। जिन्हें मैं पाल-पोस चुका था उन मेरे सेवकोंपर अब शत्रुओंका अधिकार हो गया है। निश्चय ही वे सभी कष्टका अनुभव करते होंगे। वे शत्रु असीम दुराचारी हैं। अपव्यय करना उनका स्वभाव ही है। यह निश्चित है कि उनके द्वारा मेरा धन जुआड़खानों और शराबखानोंमें चला गया होगा। खोटी बुद्धिवाले वे शत्रु व्यसन करके मेरे सारे कोषको नष्ट कर डालेंगे। उन म्लेच्छोंमें ऐसी योग्यता तो है नहीं कि वे सुपात्रोंको दान दें। मेरे मन्त्री भी वैसे ही हो गये हैं।'

महाराज सुरथ वृक्षके नीचे बैठकर इस प्रकारकी चिन्ता कर ही रहे थे कि इतनेमें कोई एक वैश्य वहाँपर आ पहुँचा। उसके मनमें भी महान् क्लेश था। उस वैश्यपर राजाकी दृष्टि पड़ी। वह पास ही बैठ गया। तब राजा सुरथ उससे पूछने लगे—'तुम कौन हो और वनमें कहाँसे अकेले आ गये? महाभाग! तुम्हारे मनपर क्यों इतनी दीनता छायी हुई है? शोकसे तुम्हारा शरीर दुर्बल हो गया है। तुम सच-सच बताओ। सात पग एक साथ चलनेपर ही मैत्री समझ ली जाती है।'

व्यासजी कहते हैं—महाराज सुरथकी बात सुनकर वह आदरणीय वैश्य अपना वृत्तान्त कहने लगा। अब वह शान्त-चित्त होकर बैठ गया था। मुझे अच्छे महात्मा पुरुष मिल गये—यह बात उसकी समझमें आ गयी थी।

वैश्यने कहा—मित्र! वैश्य जातिमें मेरा जन्म हुआ है। लोग मुझे समाधि नामसे पुकारते हैं। मेरे पास पर्याप्त धन था। धर्ममें मेरी बड़ी आस्था है। मैं कभी झूठ नहीं बोलता। किसीसे कोई ईर्ष्या नहीं करता। फिर भी मेरे पुत्र और स्त्री—धनके बड़े लोभी हैं। उन दुष्टोंने मुझे कृपण बताकर घरसे निकाल दिया है। अपने कहलानेवाले उन व्यक्तियोंसे त्यागे जानेके कारण, जो बड़ी कठिनतासे त्यागी जा सकती है—ऐसी प्रचुर सम्पत्तिको छोड़कर मैं शीघ्र ही वनमें चला आया। प्रियवर! आप कौन हैं? देखनेसे बड़े भाग्यशाली प्रतीत होते हैं। अब अपना वृत्तान्त बतानेकी कृपा करें।

राजाने कहा—मैं सुरथ नामका एक राजा हूँ। डाकुओंने मुझे महान् कष्ट दिया है। साथ ही मन्त्रियोंने भी मेरे साथ धोखा किया है। अतः राज्यच्युत होकर मैं यहाँ समय व्यतीत कर रहा हूँ। वैश्यवर! भाग्यवश तुम भी मित्ररूपसे यहाँ मेरे पास आ गये। महाबुद्धे! इस वनमें बड़े सुन्दर वृक्ष हैं। अब हम दोनों व्यक्ति यहीं सुखपूर्वक समय व्यतीत करेंगे। विशोत्तम! चिन्ता दूर करके स्वस्थ हो जाओ। यहीं इच्छानुसार आनन्द मनाते हुए मेरे साथ रहो।

वैश्य बोला—मेरा परिवार अब असहाय हो गया है। मेरे बिना वे अत्यन्त कष्ट पा रहे होंगे। दुःख और शोकसे संतप्त होकर वे महान् चिन्तित हो जायँगे। राजन्! मेरी पत्नी और पुत्र शारीरिक सुख पा रहे हैं अथवा नहीं—इस

प्रकारकी चिन्तासे आतुर मेरा चित्त सदा अशान्त बना रहता है। राजन्! अपने पुत्र, स्त्री, घर और बन्धु-बान्धवोंको मैं फिर कब देखूँगा। गृहकी चिन्तामें अत्यन्त आकुल मेरा मन किसी प्रकार भी स्वस्थ नहीं हो पाता।

राजा सुरथने कहा—महामते! जिन दुराचारी एवं प्रचण्ड मूर्ख पुत्रोंने तुम्हें निकालकर घरसे बाहर कर दिया है, उन्हें देखकर अब तुमको कौन-सा सुख प्राप्त होगा? दुःख देनेवाले सुहृद्की अपेक्षा शत्रुको उत्तम माना जाता है। अतः मनको स्थिर करके तुम मेरे साथ आनन्द करो।

वैश्यने कहा—राजन्! असीम दुःखसे संतप्त मेरा मन किसी प्रकार भी स्थिर नहीं हो रहा है; क्योंकि दुराचारी भी बड़ी कठिनतासे जिसका त्याग करते हैं, उस कुटुम्बकी चिन्ता मुझे सता रही है।

राजाने कहा—राज्यसम्बन्धी मानसिक दुःखके कारण मैं भी दुःखी हूँ। ये मुनिजी बड़े शान्तस्वरूप हैं। अब हम दोनों व्यक्ति इन्हींसे इस शोक-नाशकी औषध पूछें।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार विचार करके राजा सुरथ और समाधि वैश्य—दोनों अत्यन्त नम्र होकर शोकका कारण पूछनेके लिये सुमेधा मुनिके पास गये। उस समय वे परमादरणीय ऋषि आसन लगाकर शान्त बैठे थे। राजाने सामने जाकर मस्तक झुकाया और शान्तिपूर्वक बैठकर कहना आरम्भ किया—

राजा सुरथने कहा—मुनिवर! अभी इन वैश्यसे वनमें मेरी मित्रता हो गयी है। स्त्री और पुत्रोंके द्वारा ये घरसे निकाल दिये गये हैं। संयोगवश मुझसे इनकी भेंट हो गयी। कुटुम्बसे अलग होनेके कारण इनके मनमें अपार दुःख हो रहा है। इन्हें किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिल रही है। इस समय यही स्थिति मेरी भी है। महामते! राज्य मेरे हाथमें नहीं है। मैं दुःखसे शोकातुर रहता हूँ। व्यर्थकी चिन्ता मेरे हृदयसे बाहर नहीं निकल पाती। सोचता रहता हूँ—'अब मेरे घोड़े दुर्बल हो गये होंगे। हाथियोंपर शत्रुओंका अधिकार हो गया होगा। मेरी अनुपस्थितिमें सेवकगण कष्टसे समय व्यतीत करते होंगे। क्षणमात्रमें शत्रुओंद्वारा मेरा सारा कोष-भण्डार नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।' इस प्रकारकी चिन्तासे चिन्तित रहनेके कारण मुझे रातमें सुखकी नींद नहीं आ रही है। मैं जानता हूँ, यह सम्पूर्ण संसार स्वप्नकी भाँति मिथ्या है। प्रभो! इस विषयकी पूर्ण जानकारी होनेपर भी निरन्तर संसारमें चक्कर काटनेवाला मेरा मन स्थिर नहीं हो पाता। मैं कौन, घोड़े कौन, हाथी कौन और ये बन्धु-बान्धव कौन? पुत्र कौन और मित्र कौन—जिनका दुःख मेरे हृदयको संतप्त कर रहा है? जानता हूँ—यह बिलकुल भ्रम है, फिर भी मेरे मनसे सम्बन्ध रखनेवाला मोह दूर नहीं हो पाता। इसमें कौन-सा ऐसा कारण है? स्वामिन्! आपको सभी बातें विदित हैं। सम्पूर्ण संदेहोंका निवारण करनेकी आपमें योग्यता है। दयानिधे! अब मेरे तथा इन वैश्यके मोहका कारण बतानेकी आप कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार राजा सुरथके पूछनेपर मुनिवर सुमेधाने उनके प्रति शोक और मोहका विनाश करनेवाले उत्तम ज्ञानका उपदेश देना आरम्भ कर दिया।

ऋषि बोले—राजन्! सुनो, मैं बन्ध और मोक्षका कारण बताता हूँ। संसारके सभी

प्राणियोंको मोहमें डालनेवाली महामाया हैं—यह बात प्रसिद्ध है। समस्त देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, वृक्ष, लता, पशु, मृग और पक्षी—ये सब-के-सब मायाके अधीन हैं। उसी महामायाके प्रभावसे प्राणी मोहमें जकड़ा रहता है। मानवी सृष्टिमें एक क्षत्रियके यहाँ तुम्हारा जन्म हुआ है। तुममें रजोगुणकी विशेषता मानी जाती है। बड़े-बड़े ज्ञानियोंके चित्तको भी ये माया सदा मोहित किये रहती हैं। इसके अनन्तर ऋषिने भगवती महामायाकी और भी शक्ति, महत्ता तथा गुणावलीका वर्णन किया।

राजा सुरथने कहा—भगवन् ! आप अब उन भगवती महामायाका स्वरूप और उत्तम बल मुझे बतानेकी कृपा करें। साथ ही उनके प्राकट्यका कारण और जहाँ वे पधारती हैं, उस स्थानका परिचय भी करायें।

सुमेधा ऋषिने कहा—राजन् ! ये भगवती महामाया अनादि हैं। अतएव कभी भी इनकी उत्पत्ति नहीं होती। सर्वोपरि विराजमान रहनेवाली ये देवी नित्यस्वरूपिणी हैं। कारणोंकी भी ये कारण हैं। राजन् ! ये शक्तिमयी देवी सर्वात्मारूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर विराजमान रहती हैं। यदि अन्तःकरणसे ये अपना आसन हटा लें तो प्राणी मुर्देके समान प्रतीत होने लगता है, क्योंकि समस्त देहधारियोंमें जो चित्-शक्ति है, वह इन्हींका रूप है। इनके प्रकट और अन्तर्धान होनेमें देवताओंके कार्य निमित्त होते हैं। राजन् ! जिस समय देवता अथवा मनुष्य इनकी स्तुति करते हैं, तब सम्पूर्ण प्राणियोंका दुःख दूर करनेके लिये ये भगवती जगदम्बा अनेक प्रकारके रूप धारण करके भाँति-भाँतिकी शक्तियोंसे सम्पन्न हो कार्य-सम्पादन करनेके विचारसे स्वेच्छापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। भूपाल ! अन्य समस्त देवताओंकी भाँति इनपर दैवका प्रभाव नहीं पड़ सकता—ये पूर्ण स्वतन्त्र हैं। पुरुषार्थकी व्यवस्था करनेवाली ये देवी नित्यस्वरूपा हैं। कालका साहस नहीं कि इनके पास आ सके। यह सारा जगत् दृश्य है। ब्रह्मा प्रभृति पुरुष इसके कर्ता न होकर केवल दर्शक हैं। उन सदसदात्मिका भगवतीपर ही इस दृश्यात्मक जगत्की रचनाका भार है। मनोरञ्जन करनेके लिये ब्रह्माण्ड बनाकर उसमें ये ब्रह्माजीको पुरुषरूपसे स्थापित कर देती हैं। ब्रह्मा अवधिपर्यन्त रंगमञ्चपर रहते हैं। फिर शीघ्र संहार-लीला भी सम्पन्न हो जाती है। इन सभी कार्योंकी कर्त्ता-धर्त्ता भगवती जगदम्बा ही हैं। इन्हींकी कृपासे ब्रह्मा, विष्णु और शंकरको शक्तियाँ मिली हैं जिन्हें सावित्री, लक्ष्मी और गिरिजा कहा जाता है। अतः ब्रह्मादि महानुभाव देवेश्वरकी उपाधि पानेपर भी इन भगवतीका प्रसन्नतापूर्वक ध्यान एवं पूजन किया करते हैं। सृष्टि, स्थिति और विनाश करनेवाली भगवती जगदम्बा ही हैं। सब इन्हींके अधीन हैं।

राजन् ! भगवती जगदम्बाका यह उत्तम माहात्म्य मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हें सुना दिया। इनके चरित्रका थाह पाना मेरे लिये भी असम्भव है। (अध्याय ३२-३३)

☆

## सुमेधाके द्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन एवं सुरथ-समाधिकी तपस्या तथा देवीकृपासे सुरथको राज्य-लाभ और समाधिको ज्ञानप्राप्ति

राजा सुरथने कहा—भगवन्! अब भगवती जगदम्बाके आराधनकी विधि सम्यक् प्रकारसे मुझे बतानेकी कृपा करें। साथ ही पूजाविधि, होम-विधि और मन्त्र भी स्पष्ट करके बता दें।

सुमेधाजी कहते हैं—राजन्! सुनो, मैं भगवतीकी पूजाका उत्तम प्रकार बताता हूँ। इसके प्रभावसे मनुष्योंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वे परम सुखी, ज्ञानी और मोक्षके अधिकारी बन जाते हैं। मनुष्यको चाहिये कि पहले विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र हो स्वच्छ वस्त्र धारण कर ले। सावधानीसे आचमन करे। यों सर्वप्रथम अपना शरीर पवित्र कर लेना चाहिये। तदनन्तर धुली और लिपी हुई भूमिपर उत्तम आसन बिछा ले। उसपर बैठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ तीन बार विधिवत् आचमन करे। अपनी शक्तिके अनुसार पूजनकी सामग्रियाँ पास रख ले। प्राणायाम करनेके पश्चात् भूतशुद्धि करे। मन्त्र पढ़कर सभी सामग्रियोंपर जलके छींटे दे। फिर प्राणप्रतिष्ठा करे। समयका ज्ञान अवश्य रखना चाहिये। विधिपूर्वक मातृका-न्यास करे। ताँबेका एक पवित्र पात्र चाहिये। उसमें श्वेतचन्दन अथवा अष्टगन्धसे षट्कोण यन्त्र लिखे। उसके बाहर अष्टकोण यन्त्र लिखना चाहिये। नवार्ण-मन्त्रके आठ बीज अक्षर आठों कोणोंमें लिखे जायँ। नवाँ अक्षर कर्णिकाके मध्य भागमें लिखा जाता है। फिर वेदमें बतायी हुई विधिके अनुसार उस यन्त्रकी प्राणप्रतिष्ठा होनी चाहिये। यन्त्रके अभावमें भगवतीकी धातुमयी प्रतिमा बनवानेका विधान है। राजन्! यामल आदि तन्त्र-ग्रन्थोंमें पूजनके जो मन्त्र कहे गये हैं, उनका उच्चारण करके यत्नपूर्वक भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। खूब सावधान होकर वेदोक्त विधिसे विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् नवार्ण-मन्त्रका जप करे। मन भगवतीके ध्यानसे कभी विरत न हो। दशांश हवन करे। हवनका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन और उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन होना चाहिये। प्रतिदिन तीन चरित्रोंका पाठ होना आवश्यक है। फिर विसर्जन करना चाहिये।

विधिके साथ नवरात्र-व्रत करनेका भी विधान है। राजन्! कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये, आश्विन और चैत्रके शुक्ल पक्षमें नवरात्र-व्रत करे। हवन विस्तारपूर्वक होना चाहिये। अनुष्ठानमें लिये हुए मन्त्र पढ़कर पवित्र खीरसे हवन करे। उस खीरमें घी, चीनी और शहद मिला लेने चाहिये। उत्तम बिल्वपत्रसे भी हवन होता है। शक्करमिश्रित तिलसे भी हवन करनेकी बात मिलती है। अष्टमी, नवमी और चतुर्दशीके दिन भगवतीकी विशेषरूपसे पूजा होनी चाहिये। उस अवसरपर ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये। ऐसा करनेसे निर्धन व्यक्ति धनवान् हो जाता है, रोगीके रोग दूर हो जाते हैं, संतानहीनको सदा पिताकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले सुपुत्र प्राप्त होते हैं, राज्यच्युत नरेशको अखिल भूमण्डलका राज्य सुलभ हो जाता है। भगवती महामायाकी कृपासे शत्रुद्वारा पीड़ित व्यक्तिमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह उसे परास्त कर देता है। जो विद्यार्थी इन्द्रियोंको वशमें करके भगवतीकी आराधना करता है,

उसे पुण्यमयी उत्तम विद्या मिल जाती है—इसमें कोई संशय नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—सभी भगवती जगदम्बाकी पूजाके अधिकारी हैं। भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये, फिर तो वह सम्पूर्ण सुखका भागी हो सकता है। जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तिमें तत्पर होकर नवरात्र-व्रत करता है, उसका मनोरथ कभी विफल नहीं रह सकता। आश्विन शुक्ल पक्षके उत्तम नवरात्रको जो भक्तिभावके साथ करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। विधिवत् मण्डल बनाकर पूजाके स्थानका निर्माण करना चाहिये। फिर वेदके मन्त्रकी विधिसे कलश-स्थापन करे। यन्त्रको भली-भाँति ठीक करके उस कलशके ऊपर रख दे। कलशके चारों ओर उत्तम जौ बो दिये जायँ। ऊपर चाँदनी लगा देनी चाहिये। फूलके हारोंसे चाँदनी सुशोभित हो। जहाँ भगवतीकी स्थापना की जाय, वह घर धूप-दीपसे सदा सम्पन्न रहना चाहिये। प्रातः, मध्याह्न और संध्या—तीनों समय भगवतीकी पूजा करे। देवी चण्डिकाके पूजनमें शक्तिके अनुसार पर्याप्त धन व्यय करे। कृपणता न करे। धूप, दीप, नैवेद्य, फल, फूल, गीत, वाद्य, स्तोत्रपाठ और वेद-पारायण—इन सभी उपचारोंसे देवीका पूजन सम्पन्न होता है। अनेक प्रकारके बाजे बजें और उत्सव मनाया जाय। कन्याओंका विधिवत् पूजन करे। वस्त्र, भूषण, चन्दन, अनेक प्रकारके भोज्यपदार्थ, सुगन्धित तैल और हार—मनको प्रसन्न करनेवाली इन सामग्रियोंसे कन्याओंकी पूजा करे ! इस प्रकार पूजाकी विधि सम्पन्न करके मन्त्र-द्वारा हवन करना चाहिये। अष्टमी तथा नवमी—किसी दिन भी विधिके साथ हवन कर सकते हैं। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। नवरात्र-व्रतका पारण दसवें दिन करना चाहिये। भक्तिनिष्ठ राजा अपनी शक्तिके अनुसार धन दान करें।

इस प्रकार जो पुरुष श्रद्धापूर्वक नवरात्र-व्रत करता है अथवा सधवा या विधवा पतिव्रता स्त्री करती है तो उन्हें इस लोकमें सुख एवं मनोऽभिलषित भोग सुलभ हो जाते हैं और शरीर छोड़नेपर वे दिव्य स्थान प्राप्त करते हैं। दूसरे जन्ममें भी भगवती जगदम्बाकी ठीक वैसी ही भक्ति हृदयमें स्फुरित हो जाती है। व्रती पुरुषका उत्तम कुलमें जन्म होता है। वह सदाचारी जीवन व्यतीत करता है। यह नवरात्र-व्रत सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ कहा गया है। इस व्रतके करनेसे प्राणी समस्त सुखोंके भागी हो जाते हैं। राजन् ! तुम इसी विधिके अनुसार भगवती चण्डिकाकी आराधना करो। फिर तो तुम्हारे सम्पूर्ण शत्रु परास्त हो जायँगे और तुम सर्वोत्तम राज्य पा जाओगे। भूपाल ! तुम्हारा शरीर परम सुखी हो जायगा। तुम्हारे भवनमें दुःख नहीं ठहर सकेंगे। फिर तुम्हारे स्त्री और पुत्र तुम्हें मिल जायँगे—इसमें कोई संदेह नहीं है।

आदरणीय वैश्य ! अब तुम भी इन्हीं भगवती महामायाकी आराधना करो। ये विश्वकी अधिष्ठात्री हैं। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करना इनका स्वभाव ही है। सृष्टि और संहार-कार्य इन्हींसे सम्पन्न होते हैं। भगवतीके प्रसादसे घर जानेपर बन्धु-बान्धव तुम्हारा आदर करेंगे, फिर सांसारिक यथेष्ट सुख भोगनेके पश्चात् देवीके पावन लोकमें तुम वास करोगे—इसमें कोई संशय नहीं मानना चाहिये। जो भगवतीकी उपासना नहीं करते हैं, उन्हें नरकमें जाना पड़ता है। राजन् ! अनेक प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त होकर वे संसारमें दुःख भोगते हैं। शत्रुओंसे उनकी हार

हो जाती है। स्त्री और पुत्रसे वियोग हो जाता है। तृष्णा सताने लगती है। वे बुद्धिसे कुछ भी निर्णय नहीं कर पाते। जो बिल्वपत्र, करवीर, कमल और चम्पा आदि फूलोंसे भगवती जगदम्बाकी पूजा करते हैं, उन्हें अत्यन्त सुखी जीवन भोगनेका शुभ अवसर प्राप्त होता है। भगवतीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले वे पुरुष धन्यवादके पात्र हैं। जो वेदोक्त मन्त्रोंद्वारा देवीकी आराधना करते हैं, वे मानव इस लोकमें प्रचुर धनी, समस्त शुभ गुणोंके भंडार तथा राजाओंके सिरमौर होते हैं।

व्यासजी कहते हैं—समाधि वैश्य और राजा सुरथ बड़े दुःखी थे। सुमेधा मुनिकी बात सुनकर उन्होंने मस्तक झुका दिया। उनके रोम-रोममें नम्रता भर गयी। हर्षके कारण उनके नेत्र खिल उठे और हृदयमें भक्ति जग उठी। फिर बात करनेमें परम कुशल वे दोनों व्यक्ति शान्तिपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे—'भगवन्! आपके मुखारविन्दसे निकली हुई वाणीने हमें पवित्र कर दिया है। हम अनाथोंके अन्तःकरणकी जलन शान्त हो गयी है। गङ्गासे पवित्र हुए राजा भगीरथकी भाँति हम पावन बन गये। जगत्में साधु पुरुषोंका उद्देश्य दूसरोंका उपकार करना ही होता है। उन आत्माराम पुरुषोंमें कोई कृत्रिम गुण नहीं होते। वे सम्पूर्ण प्राणियोंको सहज ही सुखी बनाया करते हैं। महाभाग! पूर्व पुण्यके प्रसादसे हमें आपका यह पवित्र आश्रय प्राप्त हुआ है। इसमें महान् दुःख दूर करनेकी क्षमता है। अपने स्वार्थमें तत्पर रहनेवाले मानव तो जगत्में बहुतेरे हैं। आप-जैसे दूसरोंका उपकार करनेमें निपुण व्यक्ति कहीं कोई ही मिलते हैं। मुनिवर! हम दोनों व्यक्ति संसारमें अत्यन्त संतप्त थे। आपके आश्रमपर आते ही हमारा खेद दूर हो गया। विद्वन्! आपके दर्शनमात्रसे हमारे दुःख दूर हो गये। आपकी वाणी सुननेसे अब हमारा शारीरिक और मानसिक संताप भी शान्त हो गया। ब्रह्मन्! आपकी अमृतमयी वाणीसे हम धन्य और कृतार्थ हो गये। कृपासिन्धो! आपकी कृपाने हमारा अन्तःकरण पवित्र बना दिया। साधो! इस संसार-सागरमें थककर हम डूब रहे हैं, यह जानकर मन्त्र-प्रदानद्वारा हाथ पकड़कर आप हमारा उद्धार कर दें। अब कठिन तपस्या करनेके पश्चात् सुखदायिनी भगवती जगदम्बाकी आराधना करके फिर हम आपके दर्शन करेंगे। आपके श्रीमुखसे देवीका नवाक्षर-मन्त्र हमें मिल जाना चाहिये। तदनन्तर व्रतमें लगकर उपवास करते हुए हमलोग उस मन्त्रका जप करेंगे।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार राजा सुरथ और समाधि वैश्यके प्रार्थना करनेपर मुनिवर सुमेधाने ध्यानबीजके साथ नवाक्षरमन्त्रका उन्हें उपदेश दिया। मन्त्र मिल जानेपर मुनिके प्रति उनकी गुरुनिष्ठा बन गयी। तदनन्तर वे एक श्रेष्ठ नदीके तटपर चले गये और वहाँ उन्होंने एक निर्जन एकान्त स्थानमें आसन लगा लिया। वे चित्त स्थिर करके बैठ गये और शान्त होकर जपमें तत्पर हो गये। तीन चरित्रोंका पाठ करना उनका नित्य-नियम बन गया। यों ध्यान करते हुए उन्होंने एक महीनेका समय व्यतीत कर दिया। तदनन्तर भगवतीके चरणकमलोंमें उनकी अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। उनकी बुद्धिमें किसी प्रकारका संकल्प-विकल्प नहीं रहा।

सुमेधा मुनि बड़े महात्मा पुरुष थे। कभी-कभी सुरथ और समाधि उनके पास जाते और

चरणोंमें मस्तक झुकाकर लौट आते थे। फिर आसन लगाकर बैठ जाते थे। उनके लिये कभी कहीं भी दूसरा काम नहीं रह गया था। देवीके ध्यानमें निरन्तर लगे रहकर वे सदा मन्त्रका जप किया करते थे। राजन्! इस प्रकार तपस्या करते हुए एक वर्षका समय पूरा हो गया। अबतक वे कुछ फल खा लेते थे। पर अब वे फल छोड़कर केवल सूखे पत्ते खाकर रहने लगे। यों सूखे पत्ते खाकर राजा सुरथ और समाधि वैश्यने एक वर्षतक तपस्या की। वे इन्द्रियोंको वशमें करके जप और ध्यानमें संलग्न रहते थे। दो वर्षकी अवधि समाप्त हो जानेपर एक समय स्वप्नमें भगवती जगदम्बाके मनोहर दर्शन उन्हें प्राप्त हुए। भगवती जगदम्बा लाल रंगका वस्त्र पहने हुए थीं। सुन्दर भूषणोंसे उनके सर्वाङ्ग विभूषित थे। स्वप्नमें देवीके दर्शन पाकर राजा सुरथ और समाधिके मनमें प्रीतिकी धारा उमड़ पड़ी। अब वे निर्जल रहकर तपस्या करने लगे। तीसरा वर्ष यों समाप्त हो गया। इस प्रकार तीन वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् समाधि और राजा सुरथका मन भगवती जगदम्बाका साक्षात् दर्शन करनेके लिये छटपटा उठा। अब वे इस निर्णयपर पहुँचे कि देवीका प्रत्यक्ष दर्शन ही मनुष्योंको शान्ति प्रदान करनेवाला है। हमें यदि वह नहीं प्राप्त हुआ तो हम अत्यन्त दुःखी होकर शरीरका त्याग कर देंगे। यों निश्चय करके कठिन तप करनेपर भगवतीने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको प्रत्यक्ष दर्शन दिये! उस समय वे अत्यन्त दुःखी थे और प्रीतिके कारण उनका चित्त विक्षिप्त-सा हो रहा था।

देवी बोलीं—राजन्! तुम्हारे मनमें जो पानेकी इच्छा हो, वह वर माँगो। मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हो गयी हूँ। मैं समझ गयी हूँ कि तुम मेरे भक्त हो। तदनन्तर देवीने समाधि वैश्यसे कहा—'महामते! मैं प्रसन्न हो गयी। तुम्हारे मनकी क्या अभिलाषा है, कहो। मैं अब उसे पूर्ण करनेके लिये तत्पर हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—देवीकी बात सुनकर राजा सुरथका सर्वाङ्ग प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने कहा—'अब आप बलपूर्वक मेरे शत्रुका वध करके उससे मेरा राज्य लौटानेकी कृपा कीजिये।' तब देवीने राजासे कहा—'राजन्! तुम अब अपने घर लौट जाओ। तुम्हारे शत्रुओंकी शक्ति समाप्त हो चुकी। अब वे पराजित होकर भाग जायँगे। तुम्हारे मन्त्री आकर पैरोंपर गिरेंगे। महाभाग! तुम अपने नगरमें जाकर सुखपूर्वक राज्य करो। राजन्! दस हजार वर्षतक अखिल भूमण्डलका राज्य करनेके पश्चात् तुम्हारा यह शरीर शान्त हो जायगा। इसके बाद सूर्यके यहाँ उत्पन्न होकर तुम मनुके पदको प्राप्त करोगे।'

व्यासजी कहते हैं—उस समय पुण्यात्मा वैश्यने हाथ जोड़कर देवीसे यह कहा—'मुझे घर, स्त्री और सम्पत्तिसे कोई प्रयोजन नहीं है। ये सभी फँसानेवाले हैं। स्वप्नकी भाँति इनकी नश्वरता स्पष्ट है। माता! मुझे तो आप बन्धनसे मुक्त करनेवाला विशुद्ध ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा करें। यह जगत् असार है। मूर्ख और पामरजन ही इसमें फँसे रहते हैं। इसीलिये तरनेकी इच्छावाले पण्डितजनोंके मनमें इस संसारसे विराग हो जाता है।'

व्यासजी कहते हैं—समाधि वैश्यने भगवती महामायाके सामने खड़े होकर अपना मनोरथ प्रकट किया। उसके वचन सुनकर भगवतीने कहा—'वैश्यवर! तुम्हें अवश्य ज्ञान उत्पन्न होगा।'

राजा सुरथ और समाधि वैश्यको यों वर देकर देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। भगवतीके

अप्रत्यक्ष हो जानेपर महाराज सुरथने मुनिवर सुमेधाजीको प्रणाम किया। तदनन्तर घोड़ेपर सवार होकर वे राजधानीको जाना ही चाहते थे कि इतनेमें ही उनके कुछ मन्त्री और प्रजावर्ग वहाँ आ पहुँचे तथा हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। वे नम्रतापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे— 'राजन्! आपके सम्पूर्ण शत्रु पापी होनेके कारण संग्राममें मर मिटे। महाराज! अब आप नगरमें विराजमान होकर अपना निष्कण्टक राज्य भोगें!' यह शुभ समाचार पाकर राजाने मुनिवरको प्रणाम किया। उनसे आज्ञा ली और मन्त्रियोंके साथ आश्रमसे चल पड़े तथा शीघ्र ही अपनी राजधानीमें पहुँच गये। पत्नी और बन्धु-बान्धवोंसे पूर्ववत् सम्बन्ध हो गया। फिर तो वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका राज्य भोगने लगे। वैश्य भी परम ज्ञानी बन गया। उसके मनमें पूर्ण विरक्ति आ गयी। वह जगत्के जंजालसे छूटकर अपना ज्ञानमय जीवन व्यतीत करने लगा एवं भगवतीके चरित्रोंका गान करता हुआ तीर्थोंमें भ्रमण करने लगा।

इस प्रकार भगवती जगदम्बाके परम अद्भुत चरित्रका वर्णन मैंने कर दिया। देवीकी आराधनासे राजा सुरथ और समाधि वैश्यको समुचित फल मिल गया—यह कथा स्पष्ट हो गयी। इस उपाख्यानमें दैत्योंका वध और देवीके परम पवित्र अवतारका वर्णन है। यों भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली देवी प्रकट हुईं। जो मनुष्य इस उत्तम प्रसङ्गको निरन्तर सुनता है, उसे सांसारिक अद्भुत सुख प्राप्त होते हैं—यह बात सर्वथा सत्य है। इस अत्यन्त अलौकिक पवित्र उपाख्यानके सुननेसे ज्ञान, मोक्ष, यश और सुख—सभी सुलभ हो जाते हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मनुष्योंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली यह कथा समस्त धर्मोंसे ओत-प्रोत है। इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका परम कारण माना गया है।

सूतजी कहते हैं—सत्यवतीनन्दन व्यासजी सम्पूर्ण अर्थतत्त्वके पूर्ण जानकार थे। राजा जनमेजयके प्रश्न करनेपर उन्होंने इस दिव्य संहिताका उद्घाटन किया है। महाभाग व्यासजी बड़े दयालु थे। उनके प्रवचनमें भगवती चण्डिकाका वह चरित्र स्पष्ट हो गया, जो शुम्भके वधसे सम्बन्ध रखता है। मुनिवरो! पुराणोंकी यह सार बात तुम्हें बतला दी गयी।

(अध्याय ३४-३५)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका पाँचवाँ स्कन्ध समाप्त

═ ★ ═

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## छठा स्कन्ध

### वृत्रासुरके प्रसंगमें ऋषियोंका प्रश्न, सूतजीका उत्तर, इन्द्रके द्वारा विश्वरूपका वध, त्वष्टाके यज्ञसे वृत्रका प्रादुर्भाव

ऋषिगण बोले—महाभाग सूतजी ! वेदव्यासजी जिस कथाके रचयिता हैं, उस पावन प्रसंगको स्पष्ट करनेवाले आपके ये अमृतमय वचन बड़े ही मधुर हैं। इन्हें पीकर अभी हम तृप्त नहीं हुए। अतः इस पौराणिक पवित्र कथाको हम पुनः आपसे पूछना चाहते हैं। इसे सुननेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। सुना है—वृत्रासुर नामका एक प्रतापी असुर था। उसके पिता त्वष्टा थे। महात्मा इन्द्रने युद्धमें उसे क्यों मार डाला ? त्वष्टा देववर्गके सदस्य थे। उन्हींका अत्यन्त शूरवीर पुत्र वृत्रासुर था। ब्राह्मणवंशमें उसकी उत्पत्ति हुई थी। उसके शरीरमें अथाह बल था। इन्द्रके हाथ उसका वध होनेमें क्या कारण है ? इन्द्रने छल करके जलफेनद्वारा उस महाबली असुर वृत्रासुरका वध कर दिया। ऐसा क्यों किया गया ? उस समय ब्राह्मणकी हत्यासे उत्पन्न पाप इन्द्रको लगा या नहीं ? और एक दूसरी बात यह है—आप बहुत पहले कह चुके हैं कि श्रीदेवीने वृत्रासुरका वध किया है। इसमें यह क्या रहस्य है ?

सूतजी कहते हैं—मुनिगण ! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्ध रखनेवाला यह प्रसंग कहता हूँ, सुनो ! ब्रह्महत्यासे उत्पन्न दुःख जिस प्रकार इन्द्रको भोगना पड़ा था, वह विषय भी इसमें आ जायगा। प्राचीन समयमें राजा जनमेजयने भी सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे ऐसा ही प्रश्न किया था। उस समय उन्होंने उनसे जो बताया था, वही मैं बतला रहा हूँ।

जनमेजयने पूछा—मुने ! इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया—यह प्राचीन कथा है। फिर उस दैत्यको देवीने कैसे मारा ? किस कारण इस कार्यमें देवीकी प्रवृत्ति हुई ? मुनिवर ! एक ही वृत्रासुरके विनाशक दो कैसे हुए ? इस प्रसंगको मैं सुनना चाहता हूँ। मुने ! आप भगवती जगदम्बाका ऐश्वर्य—जो वृत्रासुरके वधसे सम्बन्ध रखता है—बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तुम धन्य हो, तुम महान् यशस्वी हो; क्योंकि प्रतिदिन कथाके प्रति तुम्हारे मनमें भक्तिका प्रवाह बढ़ता रहता है। जब श्रोता एकाग्र होकर कथा सुननेमें तत्पर रहता है, तभी वक्ता प्रसन्न होकर स्पष्ट भाषण करता है। प्राचीन समयमें वृत्रासुर और इन्द्रका युद्ध हुआ था। यह कथा बह्वृच ब्राह्मण और पुराणमें भी प्रसिद्ध है। वृत्रासुरको शत्रु मानकर इन्द्रने मार डाला, इससे उन्हें महान् क्लेश उठाने पड़े। राजन् ! इन्द्रने कपट-वेष बनाया, तब वृत्रासुरकी मृत्यु हुई। इस विषयमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवती महामायाके प्रभावसे मुनियोंकी बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती

है। सत्त्वमूर्ति भगवान् विष्णु माया फैलाकर दैत्योंको निरन्तर मारा करते हैं। फिर उनके सिवा दूसरा कौन है, जो जगत्‌को मोहित करनेवाली भगवती महामायाको मनसे भी जीत सके। इन्हीं महामायाकी प्रेरणासे श्रीहरि मत्स्य आदि योनियोंमें प्रकट होते रहते हैं। हजारों युगोंकी यही स्थिति है। यह शरीर, धन, घर, बान्धव, पुत्र और स्त्री—सब 'मेरे' हैं—इस प्रकारके मोहमें पड़कर सम्पूर्ण प्राणी पुण्य एवं पापमय कर्मोंमें रचे-पचे रहते हैं, क्योंकि अपार गुणवाली महामाया सबको मोहित किये हुए है। कभी कोई भी मनुष्य इस मायाको मिटा नहीं सकता। इसी मायाके प्रभावसे महान् देवता भी अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये छलपूर्वक वृत्रासुरको मारनेमें तत्पर हो गये। वृत्रासुर और इन्द्रमें परस्पर जिस कारण विरोध हो गया था, वह प्रसंग अब मैं बताता हूँ।

त्वष्टा प्रजापतिके पदपर नियुक्त थे। उन महान् तपस्वीको देवताओंमें प्रधान माना जाता था। उन्हींके हाथमें देवताओंके कार्यकी सारी व्यवस्था थी। वे बड़े कार्यकुशल और ब्राह्मण-प्रेमी थे। इन्द्रके साथ कुछ वैमनस्य हो जानेपर त्वष्टाने एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसके तीन मस्तक थे। उस पुत्रकी 'विश्वरूप' नामसे प्रसिद्धि हुई। उसका रूप बड़ा ही आकर्षक था। तीन मनोहर एवं श्रेष्ठ मुखोंसे युक्त होनेके कारण उसकी शोभा विशेष बढ़ गयी थी। उसके तीन मुखोंसे अलग-अलग तीन कार्य सम्पन्न होते थे। वह एक मुखसे वेदका पाठ करता था, दूसरे मुखसे मधु-पान करता था और तीसरेसे एक ही साथ सम्पूर्ण दिशाओंका निरीक्षण करता था। उसने भोगोंकी ओरसे उदासीन होकर अत्यन्त कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। वह संयमपूर्वक तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगा। उसके मनमें सदा धार्मिक निष्ठा बनी रहती थी। वह गरमीके दिनोंमें पञ्चाग्नि तपता था, वर्षा-ऋतुमें वृक्षोंके नीचे रहता और शरद् एवं हेमन्त-ऋतुमें जलमें रहकर तपस्या करता था। सदा निराहार रहता। इन्द्रियाँ उसके वशमें थीं। वह सम्पूर्ण संग्रह-परिग्रहोंसे मुक्त था। यों विवेकी विश्वरूप घोर तपस्या करने लगा। परंतु उसकी बुद्धिमें कुछ कालिमा अवश्य थी।

विश्वरूपको यों तपस्या करते देखकर इन्द्र दुःखी हो गये। उन्हें दुःख इस बातका हुआ कि कहीं यह विश्वरूप मेरा पद न ग्रहण कर ले। उस समय विश्वरूपमें असीम तेज आ गया था। तपस्याके प्रभावसे शक्ति बढ़ गयी थी। उस सत्यवादीको देखकर इन्द्र दिन-रात अत्यन्त चिन्ता करने लगे! सोचा, इतना आगे बढ़ा हुआ यह त्रिशिरा मेरा अस्तित्व ही मिटा देगा। विद्वानोंका कथन है कि बढ़ते हुए पराक्रमी शत्रुकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अतएव इसकी तपस्या नष्ट करनेके लिये मुझे कोई उपाय करना परम आवश्यक है। कामदेव तपका शत्रु है। यह निश्चय है कि इसके प्रभावसे त्रिशिराकी तपस्या नष्ट हो जायगी। आज मुझे वही करना चाहिये जिससे यह तपस्वी भोग भोगनेमें आसक्त हो जाय। शत्रुकी शक्ति न सहनेवाले बुद्धिमान् इन्द्रने मनमें यों विचार करनेके पश्चात् त्रिशिराको प्रलोभनमें डालनेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी। उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा आदि अप्सराओंको बुलाया और कहा—'अपने रूपका अभिमान रखनेवाली अप्सराओ! तुम सब मिलकर मेरा

एक प्रिय कार्य करो। आज मेरे सामने एक कठिन समस्या उपस्थित है। कारण, मेरा महान् शत्रु तपस्या कर रहा है। तुमलोग अब इस दुर्जय शत्रुके पास जाओ और ऐसा प्रयत्न करो जिससे वह प्रलोभनमें आ जाय। देर करना उचित नहीं है। भलीभाँति शृङ्गार और वेष-भूषा बनाकर जाओ। सम्पूर्ण शारीरिक हाव-भाव दिखाओ। उसे लुभानेमें सभी उपायोंसे काम लो। तुम्हारा कल्याण हो। मेरा संताप दूर करना अब तुम्हारे हाथमें है। असीम भाग्यशालिनी अप्सराओ! त्रिशिराका तपोबल जानकर मेरे शरीरमें दुर्बलता आ गयी है। उसका पराभव न हुआ तो वह बलवान् शत्रु बहुत शीघ्र मेरे आसनपर अधिकार जमा लेगा। आज इस कठिन कार्यके उपस्थित होनेपर तुम सबको मिलकर मेरी सहायता करनी चाहिये।'

देवराज इन्द्रकी उपर्युक्त बातें सुनकर अप्सराएँ नतमस्तक होकर बोल उठीं—'देवेश! आप निर्भय रहें। त्रिशिराको लुभानेके लिये हम पर्याप्त प्रयत्न करेंगी। महाद्युते! जिस किसी प्रकारसे भी, उसके द्वारा भय न पहुँचे, वैसा ही हमारा प्रयत्न होगा। उस मुनिको लुभानेमें नाचने, गाने, विहरनेकी सारी विधियाँ की जायँगी। विभो! अपनी भाव-भङ्गियों एवं कटाक्षोंसे मोहितकर हम उसे वशमें कर लेंगी। फिर तो वह लोलुप होकर हमारे चंगुलमें फँस जायगा।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार इन्द्रसे कहकर वे अप्सराएँ त्रिशिराके पास गयीं। त्रिशिरा मुनिके सामने उपस्थित होकर वे अनेक प्रकारके ताल बजाकर स्वरसहित गाने लगीं। उन्होंने मनोहर नृत्य आरम्भ कर दिया। उस समय उस मुनिको लुभानेके लिये उन अप्सराओंने भाँति-भाँतिके भावोंका प्रदर्शन किया। किंतु उनकी विडम्बनापर त्रिशिरा मुनिकी तनिक भी दृष्टि नहीं पड़ी। वह तपस्याका भंडार बन गया था। उसने इन्द्रियोंपर विजय पा ली थी। वह गूँगे और बहरेके समान अविचल भावसे बैठा रहा। अत्यन्त मोहमें डालनेवाले अनेक प्रपञ्च करने, नाचने और गानेमें तत्पर वे अप्सराएँ कुछ दिनोंतक त्रिशिरा मुनिके आश्रमपर रहीं। परंतु जब वह मुनि ध्यानसे विचलित न हो सका, तब वे लौटकर इन्द्रके पास आ गयीं। अब वे थक गयी थीं। उनके मनमें निराशा छा गयी थी। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। मुखपर म्लानता छायी हुई थी। वे सभी स्त्रियाँ हाथ जोड़कर देवराज इन्द्रसे कहने लगीं—'महाराज! देवेश्वर! प्रभो! हमने बहुत प्रयत्न किया; किंतु वह दुर्धर्ष तपस्वी अपने धैर्यसे जरा भी विचलित न हो सका। पाकशासन! अब आपको सर्वथा किसी दूसरे उपायका अनुसरण करना चाहिये। यह तपस्वी जितेन्द्रिय है। उसके सामने हमारा बल कुछ भी काम नहीं कर सकता। वह मुनि कोई महान् पुरुष है। वह तपके प्रभावसे अग्निके समान तेजस्वी हो गया है। सौभाग्य-वश उसके द्वारा शापित होनेसे हम बच गयी हैं।'

तदनन्तर खोटी बुद्धिवाले इन्द्रने अप्सराओंको विदा कर दिया और वे स्वयं चिन्तामें पड़े रहे। 'त्रिशिरा किस उपायसे मारा जायगा'—यही उनकी चिन्ताका एक विषय था। उनके मनमें बहुत पहलेसे यह घृणित बात खटक रही थी। राजन्! लोकलज्जा तथा पापसे होनेवाले महान् भयकी कुछ भी परवा न करके उसे मारनेके लिये इन्द्र बुरे विचारमें लगे रहे।

व्यासजी कहते हैं—उस समय देवराज इन्द्र

लोभाविष्ट होनेके कारण घृणित विचारवाले हो गये थे। ऐरावतपर सवार होकर वे त्रिशिरा मुनिके पास स्वयं गये। वहाँ जानेपर उन्हें अमित-पराक्रमी मुनि दिखायी पड़ा। वह स्थिर आसन लगाकर बैठा था। वाणी उसके अधीन थी। वह ध्यानमग्न होकर तप कर रहा था। तेजके कारण सूर्य और अग्निके साथ उसकी तुलना हो रही थी। उसे देखकर इन्द्रके मनमें अत्यन्त खेद उत्पन्न हो गया। सोचा—अहो ! इस मुनिको मारनेमें कैसे सफल हो सकूँगा। निश्चय ही यह परम धर्मात्मा है। तपोबलसे इसकी कान्ति चमक रही है। पर मेरे आसनपर अधिकार जमानेकी इच्छावाले इस शत्रुकी अब उपेक्षा भी तो कैसे की जा सकती है ? यों विचार करनेके पश्चात् देवगणोंके अध्यक्ष इन्द्रने स्वयं अपना सर्वोत्तम वज्रास्त्र, जो सूर्य एवं चन्द्रमाके समान प्रकाश फैला रहा था, त्रिशिरा मुनिपर चला दिया। उस समय मुनिकी समाधि लगी थी। अब वज्रकी चोटसे घायल होकर वह तपस्वी जमीनपर गिर पड़ा। उसके प्राण प्रयाण कर गये। वह घटना देखनेमें बड़ी ही आश्चर्यजनक थी। जान पड़ता था, मानो कुलिशसे कटा हुआ पर्वतका शिखर गिर पड़ा हो। उसे मारकर देवराजको अपार हर्ष हुआ। वहाँ उपस्थित मुनिगण हाहाकार करने लगे। उनके मुखसे निरन्तर करुणध्वनि निकलने लगी—'हाय ! शतक्रतु इन्द्र बड़ा पापी है। इसने इस तपस्वीको मारकर बहुत बड़ा अनर्थ कर डाला। इस समय यह इन्द्र महान् दुष्ट और पापी बन गया है। तभी तो इसने इस निरपराधी मुनिकी निर्मम हत्या कर डाली। हत्यासे प्रकट हुआ पापफल इस पापीको अवश्य भोगना पड़ेगा।'

तदनन्तर त्रिशिरा मुनिका वध करके इन्द्र अपने भवनकी ओर चले। वह मुनि महान् आत्मा तथा तपका भंडार था। इन्द्रद्वारा मारे जानेपर भी ऐसा प्रकाशमान हो रहा था मानो जीवित पुरुष हो। जमीनपर निर्जीव पड़ा था, परंतु प्राणधारी व्यक्तिकी भाँति उसके द्वारा चेष्टा हो रही थी—यह देखकर इन्द्र अत्यन्त चिन्तित हो गये। उनके सभी अङ्गोंपर उदासी छा गयी। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'यह फिर जीवित तो नहीं हो जायगा ?' उस समय सामने तक्षा नामक एक व्यक्ति खड़ा था। उसपर दृष्टि डालकर देवराजने अपना काम सिद्ध हो जानेके लिये कहा—'तक्षा ! तुम मेरी बात मानकर इस महान् तेजस्वी मुनिके मस्तकको धड़से अलग कर दो। ऐसा जान पड़ता है मानो यह जीवित हो। ऐसा प्रयत्न करो कि यह जी न सके।' इन्द्रकी बात सुनकर उन्हें निन्द्य सिद्ध करते हुए तक्षा कहने लगा।

तक्षाने कहा—इस मुनिका कंधा बड़ा विशाल प्रतीत हो रहा है। मेरी कुल्हाड़ी उसे मार नहीं सकेगी। फिर मैं इस घृणित कार्यमें प्रवृत्त भी नहीं होऊँगा। तुमने यह अत्यन्त निन्दित कर्म किया है। अच्छे पुरुषोंने ऐसे कार्यकी घोर निन्दा की है। जो मरा हुआ है, उसे पुनः मारनेमें केवल पापका भागी ही होना पड़ता है। मैं इस पापसे बहुत डरता हूँ। यह मुनि तो मर ही गया है; फिर इसका सिर काटनेसे क्या प्रयोजन ? पाक-शासन ! भला, बताओ तो इस कलुषित कार्यमें क्या तुम्हें भय नहीं लगता है ?

इन्द्र बोले—इस मुनिका यह विशाल शरीर ऐसा जान पड़ता है मानो अभी इसमें प्राण वर्तमान हैं। अतएव मैं डर रहा हूँ; कहीं मेरा यह

विपक्षी मुनि जीवित न हो जाय।

तक्षाने कहा—विद्वन्! ऐसी निर्मम हत्या कितना नीच कर्म है। क्या तुम्हारे हृदयको यह आतङ्कित नहीं कर रहा है? इस ऋषिकुमारके मारनेसे ब्रह्महत्या हुई है। क्या तुम्हें इसका भय नहीं है?

इन्द्रने कहा—इस पापको दूर करनेके लिये मैं फिर प्रायश्चित्त कर लूँगा। महामते! छल करके भी शत्रुको मार डालना सर्वथा उचित है।

तक्षाने कहा—मघवन्! तुम्हें महान् लोभ घेरे हुए है, इसीसे इस समय यह पाप कर रहे हो। किंतु विभो! भला बताओ तो तुम्हारे सिवा मैं इस नीच कर्ममें सम्मिलित क्यों होऊँ?

इन्द्र बोले—अबसे सदाके लिये मैं निश्चय कर देता हूँ कि समस्त यज्ञोंमें मैं तुम्हें भी भाग दूँगा। यज्ञ करते समय मनुष्य तुम्हें बलि चढ़ाया करेंगे। तुम्हारे लिये यह मूल्य निर्धारित हो गया। इसके बदलेमें त्रिशिराके मस्तकोंको काटकर तुम मेरा प्रिय कार्य करो।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इन्द्रकी यह बात सुनकर तक्षाके मनमें भी लोभ आ गया। लोभ पापका मूल है ही। फिर तो उसने मजबूत टाँगी उठायी और उससे त्रिशिराके मस्तक धड़से अलग कर दिये। उन तीनों मस्तकोंके कटकर जमीनपर गिरते ही तुरंत उनसे हजारों पक्षियोंका जन्म हो गया। उस अवसरपर मुनिके मुखसे गौरैया, कबूतर और तित्तिर आदि पक्षिगण पृथक्-पृथक् उत्पन्न हो गये। त्रिशिरा मुनि जिस मुखसे वेदका स्वाध्याय करता और सोमरस पीता था, उससे तुरंत कबूतर निकल आये। सोमरस पीते समय समस्त दिशाओंपर दृष्टिपात करनेके लिये जिस मुखसे काम लिया करता था, उससे अत्यन्त चमकीले तित्तिर उत्पन्न हुए। मधु पीनेवाले मुखसे गौरैयोंकी उत्पत्ति हुई। राजन्! इस प्रकार त्रिशिरासे इन पक्षियोंका निष्क्रमण हुआ है। राजन्! त्रिशिराके मस्तकसे यों पक्षी निकल गये—यह देखकर इन्द्रके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर वे स्वर्गको सिधार गये। उनके चले जानेपर तक्षा भी तुरंत वहाँसे अपने घर चल दिया। राजन्! यज्ञमें भाग पानेका अधिकार मिलनेसे उसका मन अत्यन्त प्रसन्न था। 'महान् पराक्रमी शत्रु मार डाला गया'—यह समझकर इन्द्र भी भवनपर पहुँचे और अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। ब्रह्महत्याकी कुछ भी चिन्ता नहीं की।

उधर त्वष्टाने जब सुना कि मेरा परम धार्मिक पुत्र मार डाला गया, तब उनके मनमें क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने यह वचन कहा—'मेरा पुत्र एक पुण्यात्मा मुनि था। जिसके द्वारा वह मारा गया है, उससे बदला अवश्य लेना है। अतः उसके वधके लिये मैं पुनः पुत्र उत्पन्न करूँगा। देवता मेरा पराक्रम और तपोबल देखें। वह पापी अपने किये हुए पापके सारे कुफलपर ध्यान दे।' इस प्रकार कहनेके पश्चात् त्वष्टाने पुत्र उत्पन्न होनेके उद्देश्यसे अथर्ववेदके मन्त्रोंका उच्चारण करके अग्निमें हवन करना आरम्भ किया। उस समय क्रोधने उनको व्याकुल कर दिया था। आठ रात्रियोंतक हवन होता रहा, अग्नि प्रचण्ड लपटोंसे धधकती रही। तदनन्तर उस अग्निसे एक पुरुष प्रकट हो गया, जो अग्निके समान ही प्रकाशमान था। अग्निसे प्रकट हुआ वह पुत्र महान् तेजस्वी एवं बलवान् था। उसके शरीरसे अग्निके समान प्रकाश फैल रहा था। वह त्वष्टाके सामने खड़ा हो गया।

उसपर उनकी दृष्टि पड़ी। तब त्वष्टा उस पुत्रकी

ओर आँखें करके कहने लगे—'इन्द्रशत्रो ! तुम मेरी तपस्याके प्रभावसे अत्यन्त शक्तिशाली बन जाओ।' उस समय क्रोधके कारण त्वष्टाके शरीरमें आग-सी लग रही थी। उनके कहनेपर अग्निके समान तेजस्वी वह पुत्र अपना कलेवर बढ़ाने लगा। ऐसा बढ़ा, मानो आकाश छू लेगा। उसका विकराल शरीर पर्वतके समान दीखने लगा। जान पड़ता था मानो स्वयं मूर्तिमान् काल ही प्रकट हो गया हो। अत्यन्त घबराये हुए पितासे उसने कहा—'पिताजी ! मुझे क्या करनेकी आज्ञा देते हैं। उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले प्रभो ! मेरा नाम बतानेके साथ ही कार्यका भी निर्देश कर दें। आप इतने चिन्तित क्यों हैं? इसका कारण मैं सुनना चाहता हूँ। मैं अभी-अभी आपकी चिन्ता दूर कर दूँगा। मेरे जीवनका प्रधान उद्देश्य यही है। उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ है, जब कि पिताको दुःख ही झेलना पड़े। मैं अभी समुद्र पी डालता हूँ। मेरे प्रयाससे सम्पूर्ण पर्वत छिन्न-भिन्न हो जायँगे। मैं तेज किरणोंको बिखेरनेवाले इस उगे हुए सूर्यको अभी रोके देता हूँ। आज ही देवताओंसहित इन्द्र और यमराजको मार डालता हूँ। इनके अतिरिक्त और भी कोई विपक्षी नहीं बच सकता। इन सबको तथा पृथ्वीको भी उखाड़कर मैं समुद्रमें फेंक देता हूँ।'

पुत्रके ऐसे अनुकूल वचन सुनकर त्वष्टाके आनन्दकी सीमा न रही। अतः पर्वताकार शरीरवाले उस पुत्रसे वे कहने लगे—'पुत्र ! तुम इस समय मुझे वृजिन अर्थात् संकटसे बचानेमें समर्थ हो; इसलिये 'वृत्र' नामसे जगत्में तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। महाभाग ! तुम्हारा त्रिशिरा नामसे विख्यात तपस्वी भाई था। उसके तीन सामर्थ्यशाली मस्तक थे। वह तुम्हारा भ्राता वेद और वेदाङ्गका पूर्ण ज्ञाता था। उसे सभी विद्याएँ ज्ञात थीं। त्रिलोकीको चकित करनेवाली तपस्यामें वह प्रायः संलग्न रहता था। अभी आज ही इन्द्रने वज्रसे मारकर उसके मस्तक काट डाले हैं। मेरा वह पुत्र सर्वथा निरपराध था। सहसा यह अप्रिय घटना घट गयी। अतएव पुरुष-व्याघ्र ! अब तुम पापी इन्द्रको परास्त करो; क्योंकि वह ब्रह्मघाती, नीच, निर्लज्ज, दुर्बुद्धि और महान् शठ है।' पुत्रके शोकसे अत्यन्त आकुल त्वष्टा यों कहकर भाँति-भाँतिके दिव्य आयुधोंके निर्माणमें लग गये। फिर, इन्द्रका वध करनेके लिये उन आयुधोंसे वृत्रासुरको उन्होंने सुसज्जित कर दिया। उन्होंने मेघके समान प्रतिभाशाली तथा भार सहनेमें समर्थ शीघ्रगामी एक अत्यन्त सुन्दर सुदृढ़ रथ वृत्रासुरको दे दिया और उसे युद्ध करनेकी आज्ञा दे दी।

(अध्याय १-२)

☆

## वृत्रासुरके द्वारा इन्द्रकी पराजय

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर महाबली वृत्रासुर वेदके पारगामी विद्वानोंद्वारा स्वस्त्ययन कराकर रथपर बैठा और इन्द्रको मारनेके लिये चल पड़ा। देवताओंने जिन बहुत-से दैत्योंको परास्त कर दिया था, वे क्रूर स्वभाववाले दानव भी वृत्रासुरको महान् बली समझकर उसकी सेवा करनेके लिये साथ हो लिये। यह दानव युद्ध करनेके विचारसे आ रहा है—यह देखकर इन्द्रके गुप्तचर बड़ी शीघ्रताके साथ देवराजके पास पहुँचे और वृत्रासुर क्या करना चाहता है, उन्होंने यह सूचना दी।

दूतोंने कहा—'स्वामिन्! वृत्रासुर नामका दानव आपका घोर शत्रु है। त्वष्टाने इस बलवान् राक्षसको उत्पन्न किया है। अब बहुत शीघ्र ही रथपर बैठकर वह यहाँ आ रहा है। पुत्रकी मृत्युसे संतप्त होनेके कारण त्वष्टाके मनमें क्रोधका संचार हो गया था। उन्होंने आपका संहार करनेके लिये मन्त्र-प्रयोगसे इस दुर्धर्ष दैत्यको उत्पन्न किया है। इसके साथ बहुत-से राक्षस भी हैं। महाभाग! भयंकर शब्द करनेवाला यह शत्रु बड़ा ही विकराल है। इसकी आकृति ऐसी है मानो मन्दराचल अथवा सुमेरु पर्वत हो। अब इसके आनेमें किंचिन्मात्र विलम्ब नहीं है। आप अपनी रक्षाका प्रयत्न करें। उसी अवसरपर अत्यन्त डरे हुए देवता भी वहाँ आ पहुँचे। अभी इन्द्र गुप्तचरोंकी बात सुन ही रहे थे—इतनेमें वे भी अपनी बात सुनाने लगे।

देवताओंने कहा—मघवन्! इस समय स्वर्गमें अनेक प्रकारके अपशकुन हो रहे हैं। पक्षियोंकी बोलीसे जान पड़ता है कि कोई महान् भय सामने आना चाहता है। कौवे, गीध, बाज और कंक नामवाले भयंकर पक्षी घरोंपर आते हैं और विकृत बोली बोलकर रुदन करने लगते हैं। चिड़ियोंकी चींचीं-कूकू शब्दोंकी तो कोई गणना ही नहीं है। हाथी और घोड़े आदि वाहन आँखोंसे आँसुओंकी धारा गिरा रहे हैं। महाभाग! रातमें भवनोंपर रोती हुई राक्षसियाँ आती हैं और उनका अत्यन्त भयंकर शब्द सुनायी पड़ता है। मानद! बिना आँधीके ही ध्वजाएँ टूटकर गिर रही हैं। आकाश, पाताल और मर्त्यलोक—सर्वत्र उत्पात-ही-उत्पात दृष्टिगोचर हो रहे हैं। रातमें सियारिनियाँ घरके आँगनमें आती हैं और उनका करुण-क्रन्दन आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक घरमें गिरगिटोंके जाले लगे हैं। प्रायः अनिष्टकी सूचना देनेवाले सभी अङ्गोंमें फड़कन आरम्भ हो गयी है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! देवताओंकी ये बातें सुनकर इन्द्र चिन्तित हो गये। उन्होंने बृहस्पतिजीको बुलाया और उनसे वे मनोगत बात पूछने लगे।

इन्द्रने पूछा—ब्रह्मन्! बड़े आश्चर्यकी बात है कि ये भयंकर अपशकुन क्यों हो रहे हैं? महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं। इस विघ्नको दूर करनेकी आपमें पूर्ण योग्यता है। आप बुद्धिमान्, शास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले तथा देवताओंके गुरु हैं। विधियोंके ज्ञाता ब्रह्मन्! आप शत्रुक्षय करनेवाली कोई शान्ति करनेकी कृपा करें। जिससे मुझे दुःख न देखना पड़े, वैसा ही प्रयत्न आपको करना चाहिये।

बृहस्पतिजी बोले—सहस्राक्ष! मैं क्या करूँ; इस समय तुम्हारे द्वारा अत्यन्त घोर निन्दित कर्म हो गया है। निरपराधी मुनिको मारकर तुम क्यों इस बुरे फलके भागी बन गये? अत्यन्त

उग्र पुण्य और पापोंका अमिट फल शीघ्र भोगना ही पड़ता है। अतएव कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि खूब सोच-समझकर कार्य करे। जिससे दूसरे कष्ट पायें, वैसा कर्म कभी भी न करे। दूसरोंको पीड़ा देनेवाला स्वयं सुखी रहे, यह असम्भव है*। शक्र ! तुमने मोह और लोभमें पड़कर ब्रह्महत्या कर डाली है। अब सहसा किये हुए उसी पापकर्मका यह फल तुम्हारे सामने आया है। सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उस वृत्रासुरको नहीं मार सकते। तुम्हें मारनेके लिये ही वह आ रहा है। उसके साथ बहुत-से दानव भी आ रहे हैं। वासव ! दिव्य आयुधोंको लेकर वह सामने आ रहा है। देवेन्द्र ! वह प्रतापी दुर्धर्ष दैत्य जगत्का संहार करनेकी इच्छासे आ रहा है। यह किसी प्रकार मारा नहीं जा सकेगा।

राजन् ! इस प्रकार बृहस्पतिजीके कहनेपर वहाँ कोलाहल मच गया। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, तपको ही सार समझनेवाले मुनि तथा देवता—सब-के-सब घर छोड़कर भाग चले। यह देखकर इन्द्र अत्यन्त चिन्तित हो गये। फिर तो सेना सजानेके लिये उन्होंने सेवकोंको आज्ञा दी और कहा—'तुमलोग वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों एवं आदित्योंको यहाँ बुला लाओ। पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यम आदि समस्त प्रधान देवता अस्त्र-शस्त्र लेकर विमानोंपर बैठें और शीघ्र यहाँ आ जायँ; क्योंकि इस समय शत्रु हमपर चढ़ाई कर रहा है।'

इस प्रकार सेवकोंको आदेश देकर देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर सवार होकर अपने भवनसे चल पड़े। ऐसे ही सम्पूर्ण देवता भी अपने-अपने वाहनोंपर चढ़े और युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा करके हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर निकल पड़े। तबतक वृत्रासुर भी दानवोंको साथ लिये हुए मानस पर्वतकी उत्तरी सीमापर पहुँच गया। इन्द्र भी देवताओंके साथ उस स्थानपर पहुँचे और युद्ध आरम्भ हो गया। फिर तो, उस स्थलपर इन्द्र और वृत्रासुरमें बड़ी भयंकर लड़ाई होने लगी। मानवी वर्षसे सौ वर्षतक युद्ध होता रहा। मनुष्य तथा आत्मानुभवी ऋषि—सबके मनमें आतङ्क छा गया। पहले वरुणका उत्साह भङ्ग हुआ। फिर वायुगण विचलित हुए। तत्पश्चात् यम, अग्नि और इन्द्र सब-के-सब युद्धस्थलसे भाग चले। इन्द्र प्रभृति समस्त देवता भाग गये—यह देखकर वृत्रासुर भी अपने पिता त्वष्टाके पास लौट गया। उस समय त्वष्टा प्रसन्नतापूर्वक आश्रमपर विराजमान थे। वृत्रासुरने उन्हें प्रणाम करके कहा—'पिताजी ! मैंने आपका कार्य सिद्ध कर दिया। इन्द्र आदि जितने देवता युद्धभूमिमें उपस्थित थे, वे सभी परास्त हो गये। वे इस प्रकार भाग चले, जैसे सिंहके सामने हाथियों और मृगोंमें भगदड़ मच जाती है। इन्द्र पैदल ही भाग गया है। उसके श्रेष्ठ हाथीको मैं पकड़ लाया हूँ। भगवन् ! अब आप हाथियोंमें प्रशंसनीय इस ऐरावतको स्वीकार कीजिये। डरे हुए प्राणियोंको मारना अन्याय है—यह समझकर मैंने उनके प्राण छोड़ दिये हैं। पिताजी ! आज्ञा दीजिये, अब मैं आपका कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ। सम्पूर्ण देवताओंके हृदयमें घोर आतङ्क छा गया था। थक जानेसे

* परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन। न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः॥ (६।३।२३)

व्याकुल होकर वे भाग गये। इन्द्र भी निर्भय नहीं रह सका। उसने अपने ऐरावत हाथीको छोड़कर स्वर्गकी राह पकड़ ली।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वृत्रासुरकी उपर्युक्त बात सुनकर त्वष्टाके आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने कहा—'बेटा! आज मैं अपनेको पुत्रवान् समझता हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। पुत्र! तुमने मुझे पवित्र कर दिया। आज मेरा मानसिक संताप दूर हो गया। तुम्हारे अद्भुत पराक्रमको देखकर अब मेरे मनमें किसी प्रकारकी हलचल नहीं रही। पुत्र! अब मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, सुनो और उसपर ध्यान दो। महाभाग! बड़ी सावधानीके साथ आसन जमाकर तपस्या करना परम आवश्यक है। किसीका भी निरन्तर विश्वास नहीं करना चाहिये। तुम्हारा शत्रु इन्द्र महान् कपटी है। इसे तरह-तरहकी भेद-विद्याएँ भलीभाँति विदित हैं। तपस्यासे लक्ष्मी प्राप्त होती है। उत्तम राज्य पानेके लिये तपस्या परम साधन है। तपके प्रभावसे ही प्राणीमें बुद्धि और बल आते हैं। इसीके आचरणसे प्राणी संग्राममें विजय पाता है। अतएव तुम महाभाग ब्रह्माजीकी आराधना करके श्रेष्ठ वर पानेकी चेष्टा करो। वर पा जानेपर दुराचारी एवं ब्रह्मघाती इन्द्रकी सत्ता नष्ट कर देनी चाहिये। शंकरजी बड़े दानी हैं। सावधान होकर स्थिरतापूर्वक उनकी भी उपासना करो। तुम्हें वे अभीष्ट वर दे सकते हैं। जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजीमें असीम सामर्थ्य है। उन्हें संतुष्ट करके तुम अमरत्व प्राप्त कर लो। फिर पापी इन्द्रको परास्त कर देना।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वृत्रासुरने जब पिताकी ये बातें सुनीं, तब पिताजीसे आज्ञा लेकर उसने सहर्ष तपस्याके लिये प्रस्थान कर दिया। वह गन्धमादन पर्वतपर पहुँचा। वहाँ पुण्यसलिला गङ्गाजी बह रही थीं। स्नान करके उसने कुशका आसन बिछाया और शान्तचित्त होकर वह उसपर बैठ गया। उसने अन्न और जलका बिलकुल परित्याग कर दिया। योगाभ्यासमें उसकी वृत्ति एकनिष्ठ हो गयी। स्थिर आसनपर बैठकर वह निरन्तर ब्रह्माजीका ध्यान करने लगा। वृत्रासुर तपस्या कर रहा है—यह जानकर इन्द्र अत्यन्त चिन्तित हो गये। उन्होंने तपमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये गन्धर्वोंको भेजा। यक्ष, पन्नग, सर्प, किन्नर, विद्याधर, अप्सराएँ तथा अन्य भी अनेक प्रकारके देवदूत इन्द्रकी प्रेरणासे वहाँ पहुँचे। सभी मायाके जानकार थे। तपस्या नष्ट करनेके लिये उन्होंने सम्यक् प्रकारसे यत्न किये। किंतु वह परम तपस्वी वृत्रासुर अपने लक्ष्यसे तनिक भी विचलित न हुआ। (अध्याय ३)

☆

## वृत्रासुरकी तपस्या तथा वर-प्राप्ति, वृत्रके द्वारा देवताओंपर विजय, वृत्रको मारनेकी योजना

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वृत्रासुर अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये चित्त एकाग्र करके तपस्या कर रहा था। उसे देखकर विघ्न उपस्थित करनेके विचारसे गये हुए देवता निराश होकर वापस लौट आये। तपस्याके सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी हंसपर बैठे हुए तुरंत वहाँ पधारे। आकर उन्होंने कहा—'त्वष्टानन्दन! शान्त रहो। अब ध्यान करनेकी

आवश्यकता नहीं है। वर माँगो। मैं तुम्हारे

मनोरथ पूर्ण करनेके लिये तैयार हूँ। तप करते हुए तुम अत्यन्त दुर्बल हो गये हो। यह देखकर अब मैं परम संतुष्ट हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, अपना अभीष्ट वर माँग लो।'

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजी जगत्के अद्वैत कर्ता हैं। वृत्रासुरके समक्ष उन्होंने जो अत्यन्त विशद वाणी कही, वह अमृतके समान मधुर थी। उसे सुनकर वृत्रासुरने तपस्याका साधन बंद कर दिया और वह अविलम्ब उठकर सामने खड़ा हो गया। उस समय हर्षके उद्रेकसे उसके नेत्र आँसुओंसे भर गये थे। वह दोनों हाथ जोड़े नम्रतापूर्वक मस्तक झुकाकर ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। नम्रताके कारण उसका शरीर झुका हुआ था। फिर वरदाता ब्रह्माजीसे, जो तपस्यासे परम संतुष्ट थे, अत्यन्त गद्गद वाणीमें कहने लगा—'प्रभो! आज आपका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन मिल जानेसे मुझे सम्पूर्ण देवताओंका पद प्राप्त हो गया। किंतु नाथ! मेरा प्रवृद्ध मन एक बड़ी कठिन अभिलाषासे युक्त है। कमलासन! उस अभिलाषाको मैं निवेदन करता हूँ, यद्यपि आपसे कोई भाव छिपा नहीं है। मैं चाहता हूँ भगवन्! लोहे अथवा काठसे बने हुए, सूखे एवं भीगे तथा इसके सिवा अन्य भी किसी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मेरी मृत्यु न हो सके। मेरा पराक्रम सदा बढ़ता रहे, जिससे परम बलशाली देवता युद्धमें मुझे कभी जीत न सकें।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वृत्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजी उसके प्रति बोले—'वत्स! उठो, तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, तुम्हारी अभिलाषा सदा सफल रहेगी। सूखे-गीले अस्त्र-शस्त्रसे तथा किसी कठोर पदार्थ आदिसे तुम्हारा मरण नहीं हो सकेगा। मेरी यह बात अमिट है।' वृत्रासुरको यों वर देकर ब्रह्माजी स्वलोकमें पधार गये। वर पा जानेपर वृत्रासुरके हर्षकी सीमा न रही। वह अपने घर लौट गया। उस महान् मेधावी दैत्यने अपने पिता त्वष्टाके सामने ब्रह्माजीसे वर पानेकी बात स्पष्ट कर दी। वरयुक्त पुत्रको पाकर त्वष्टा परम प्रसन्न हो गये। उन्होंने उससे कहा—महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो। अब मेरे शत्रु इन्द्रको परास्त करो। इन्द्र बड़ा पापी है। इसने मेरे पुत्र त्रिशिराका वध कर डाला है। तुम जाओ और इसके प्राण हर लो। तदनन्तर युद्धमें विजयी होनेके पश्चात् स्वर्गका शासन-सूत्र भी तुम्हारे हाथमें रहना परम आवश्यक है। बेटा! पुत्र-वधसे उत्पन्न हुए मेरे अपार दुःखको दूर करनेमें तुम तत्पर हो जाओ। पिताके जीवित रहते उनकी आज्ञाका पालन करे। मृत्यु होनेपर भूरि-भोजन करावे—मृत्यु-दिवसपर बहुसंख्यक ब्राह्मणोंको भोजन करावे और फिर गयामें जाकर पिण्डदान करे—इन तीन कर्मोंसे पुत्रकी

पुत्रता सार्थक होती है* ! अतएव बेटा ! मेरा घोर संताप शान्त करना तुम्हारा परम कर्तव्य है; क्योंकि मेरे चित्तसे त्रिशिरा कभी भी दूर नहीं हो पाता। वह मेरा पुत्र सुशील, सत्यवादी, तपस्वी और वेदका अद्वितीय जानकार था। उस बेचारे निरपराधी पुत्रको कलुषित विचारवाले इन्द्रने मार डाला।'

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! त्वष्टाकी ऐसी बातें सुनकर अत्यन्त दुर्जय वृत्रासुर रथपर सवार हो तुरंत पिताके भवनसे निकल पड़ा। युद्धमें उत्साह बढ़ानेवाले धौंसे पिटवाये गये। शङ्खध्वनि हुई। यों उस अभिमानी दैत्यने नियमपूर्वक यात्रा की। वह सेवकोंसे कह रहा था—'मैं इन्द्रको मारकर स्वर्गका अकण्टक राज्य भोगूँगा।' यों घोषित करते हुए वह आगे बढ़ा। सैनिक उसके चारों ओर घिरे हुए थे। उस समय उसकी विशाल सेनाकी गर्जनासे अमरावती भयभीत हो उठी। भारत ! 'वृत्रासुर आ रहा है'—यह जानकर इन्द्रने बड़ी शीघ्रताके साथ सेना सजाना आरम्भ कर दिया। शत्रुसूदन इन्द्रने तुरंत सम्पूर्ण लोकपालोंको बुलाया और उन्हें युद्ध करनेकी आज्ञा दी। गृध्रव्यूहका निर्माण करके इन्द्र स्वयं उसके बीचमें विराजमान हो गये। शत्रुकी सेनाको कुचल देनेकी शक्ति रखनेवाला वृत्रासुर तुरंत वहाँ आ पहुँचा। तदनन्तर देवताओं और दानवोंमें भयंकर लड़ाई छिड़ गयी। युद्धमें उपस्थित इन्द्र और वृत्रासुर—दोनोंके मनमें विजयकी अभिलाषा भरी हुई थी। देवता और दानव—दोनों एक-दूसरेके रहस्यको जानते हुए बड़े उत्साहके साथ लड़ रहे थे। अपने-अपने उत्तम आयुधोंसे एक-दूसरेपर प्रहार करनेमें व्यस्त थे। इस प्रकारका भयंकर संग्राम छिड़ जानेपर वृत्रासुरकी क्रोधाग्नि धधक उठी। उसने अकस्मात् इन्द्रको पकड़ा और उन्हें वस्त्र एवं कवच आदिसे रहित करके मुखमें डाल लिया और स्वयं ज्यों-का-त्यों डटा रहा। महाराज ! उस समय उसके हर्षकी सीमा नहीं रही। इन्द्रके वृत्रासुरके मुँहमें चले जानेपर देवताओंके मनमें अपार आश्चर्य और दुःख हुआ। 'हा ! इन्द्र मारे गये'—यों बार-बार विलाप करते हुए वे चिल्ला उठे। देवराज मुखमें छिप गये—यह जानकर सम्पूर्ण देवता अत्यन्त व्याकुल होकर दीनता-पूर्वक प्रणाम करके बृहस्पतिजीसे कहने लगे—'द्विजवर ! आप हमारे परम गुरु हैं—बताइये, अब क्या करना चाहिये। हम सभी देवता रक्षा कर रहे थे, फिर भी, वृत्रासुरने इन्द्रको निगल लिया है। उनके न रहनेसे हम सब लोगोंका पराक्रम समाप्त हो गया। अतः अब हम क्या कर सकते हैं। विभो ! आप इन्द्रका उद्धार होनेके लिये शीघ्र ही कोई अनुष्ठान करनेकी कृपा करें।'

बृहस्पतिजीने कहा—देवताओ ! क्या किया जाय। वृत्रासुर प्रबल शत्रु है। इसने इन्द्रको मुखमें डाल लिया है। वे उसीमें पड़े हुए हैं। परंतु अभी वे जीवित हैं।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! देवराजकी यह दशा देखकर देवता चिन्ताके कारण अत्यन्त घबरा उठे। फिर आपसमें विचार करके इन्द्रको छुड़ानेके लिये वे तुरंत यत्न करने लगे। उन्होंने (बृहस्पतिकी सम्मतिसे) शत्रुका संहार करने-

* जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥ (६।४।१५)

वाली महान् बलवती जँभाईका सृजन किया। वृत्रासुरको जँभाई आयी और उसका मुख खुल गया। ऐसी स्थितिमें कुछ समयतक उसका मुँह फैला रहा। इन्द्र अपने अङ्गोंको समेटकर उसके मुखसे तुरंत बाहर निकल आये। तभीसे जगत्में जँभाईकी उत्पत्ति हुई। देवराज बाहर निकल आये—यह देखकर समस्त देवताओंके मुखपर हँसी छा गयी। इसके बाद फिर युद्ध आरम्भ हो गया। देवताओं और दानवोंका वह रोमाञ्चकारी घोर संग्राम दस हजार वर्षोंतक चलता रहा। सम्पूर्ण संसार त्रस्त हो उठा। अभिमानमें चूर रहनेवाले वृत्रासुरकी शक्ति जब अधिक बढ़ गयी, तब उसके तेजसे फीके पड़ जानेके कारण इन्द्र परास्त हो गये। युद्धमें हार जानेपर उन्हें महान् क्लेश हुआ। उनकी पराजय देखकर देवताओंके विषादकी सीमा नहीं रही। फिर तो इन्द्र प्रभृति सब देवता युद्धभूमि छोड़कर भाग चले। तुरंत वृत्रासुर आया और देवसदनपर उसने अपना अधिकार जमा लिया। स्वर्गके समस्त उपवन अब उसके उपभोगमें आने लगे। उसने श्रेष्ठ हाथी ऐरावतको भी अपनी सवारीमें ले लिया। राजन्! अब सम्पूर्ण देव-विमानोंकी व्यवस्था वृत्रासुरके हाथमें आ गयी। सर्वोत्तम उच्चैःश्रवा घोड़ेका स्वामी स्वयं वही हो गया। कामधेनु गौ, पारिजात पुष्प, अप्सराएँ तथा जो कुछ भी रत्न थे, उन सबपर वृत्रासुरका अधिकार हो गया। अपने स्थानसे च्युत हुए सारे देवता पर्वतोंकी कन्दराओंमें जाकर बड़े कष्टके साथ समय व्यतीत करने लगे। अब उन्हें यज्ञमें भाग मिलना भी बंद हो गया था।

भारत! तदनन्तर इन्द्रसहित वे देवता कैलासपर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकर विराजमान थे। उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बड़ी नम्रताके साथ वे कहने लगे—'देवदेव, महादेव, कृपासिन्धो, महेश्वर! हम वृत्रासुरसे परास्त हो गये हैं। भयसे हमारा कलेजा काँप रहा है। आप हमारी रक्षा करें। कल्याणकर्ता भगवान् शम्भो! उस बली दानवने हमारा घरतक छीन लिया है। अतः अब हमें क्या करना चाहिये— इसे स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये। महेश्वर! स्थानभ्रष्ट हम सभी देवता अब क्या करें और कहाँ जायँ? प्रभो! हमारे दुःखका पार नहीं है। अतः आप इससे उद्धारका उपाय बताइये। प्राणियोंपर शासन करनेवाले कृपासिन्धो! भगवन्! हम घोर कष्ट पा रहे हैं। वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर अत्यन्त अभिमानी हो गया है। हमारी सहायता करनेके विचारसे आप उसे मार डालनेकी कृपा करें।'

भगवान् शिवने कहा—ब्रह्माजीको आगे करके सम्पूर्ण देवता श्रीहरिके स्थानपर चलें और हम सब मिलकर उनसे पूछें कि वृत्रासुरका वध किस उपायसे होगा; क्योंकि वे जनार्दन भगवान् वासुदेव सर्वसमर्थ, कूटनीतिके जानकार, बलवान्, अत्यन्त बुद्धिमान्, शरण देनेमें कुशल तथा कृपाके समुद्र हैं। उन देवेश्वरकी शरणमें गये बिना यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। अतः सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न होनेके लिये उनके पास चलना परम आवश्यक है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! यों विचार करके ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भगवान् विष्णुके स्थानको प्रस्थित हुए; क्योंकि भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाला वह स्थान सभीको शरण प्रदान करता है। वहाँ जाकर सबने जगत्पर शासन करनेवाले परम प्रभु

भगवान् विष्णुकी वेदमें कहे हुए पुरुषसूक्त-मन्त्रसे स्तुति आरम्भ कर दी। तब रमापति श्रीहरि उनके सामने प्रकट हुए। उन्होंने समस्त देवताओंका यथोचित सत्कार किया। फिर सामने विराजमान होकर उनसे पूछने लगे—'आदरणीय देवताओ ! तुम सभी एक-एक लोकके अधिष्ठाता हो। ब्रह्मा और शंकरजीको साथ लिये हुए यहाँ कैसे पधारे ? तुम सब लोगोंके आनेका क्या कारण है ?'

व्यासजी कहते हैं—लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर देवता कुछ भी उत्तर न दे सके। प्रायः सब-के-सब चिन्तामें पड़कर हाथ जोड़े खड़े रहे।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! भगवान् विष्णुसे किसी भी रहस्यकी बात छिपी नहीं है। सम्पूर्ण देवताओंको इस प्रकार चिन्तित एवं प्रेम-विभोर देखकर वे उनसे कहने लगे।

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ ! तुम-लोग मौन क्यों हो ? कहो। उसे सुनकर भला अथवा बुरा—जो भी कार्य हो उसे पूरा करनेके लिये मैं यत्न करूँगा।

देवता बोले—विभो ! त्रिलोकीमें कौन-सी ऐसी बात है, जो आपसे अविदित है। आप सब कुछ जानते हुए भी कार्यके विषयमें हमसे क्यों बारम्बार पूछ रहे हैं ?

भगवान् विष्णुने कहा—श्रेष्ठ देवताओ ! तुम्हें डरना नहीं चाहिये। मुझे एक सर्वसम्मत उपाय मालूम है। वृत्रासुरको मारनेके लिये वही उपाय मैं तुम्हें बताता हूँ, जिससे तुम परम सुखी हो जाओगे। तुमलोगोंका परम कर्तव्य है कि बल, बुद्धि, अर्थ अथवा छल जिस-किसी प्रकारसे भी अपना हित-साधन हो, आप उसी उपायसे काम लें। तत्त्वदर्शी पुरुषोंने कहा है कि सुहृदों तथा विशेषतः दुर्हृदोंके प्रति किये जानेवाले उपाय साम, दान आदि भेदोंसे चार प्रकारके होते हैं। इस दैत्यने तपपूर्वक ब्रह्माकी आराधना की है। ब्रह्मा इसे वर दे चुके हैं। अतः वरके प्रभावसे अब यह दुर्जय हो गया है। त्वष्टाके बनाये हुए इस दैत्यको जीतनेमें सम्पूर्ण प्राणी असमर्थ हैं। बलमें उनसे भी अधिक हो जानेके कारण शत्रुकी राजधानीपर अधिकार प्राप्त करनेकी योग्यता इसने पा ली है। देवताओ ! वह वृत्रासुर अत्यन्त अजेय शत्रु है। सामनीतिका प्रयोग किये बिना सफलता असम्भव है। पहले किसी प्रकारके प्रलोभनसे उसे वशमें करें। फिर अवसर पाकर उसे मार डालना चाहिये। अतः गन्धर्वो ! तुम सब-के-सब उस प्रचुर पराक्रमी दानवके स्थानपर जाओ और सामनीतिका आश्रय लो। मैं इन्द्रकी सहायता अवश्य करूँगा। एतदर्थ इनके श्रेष्ठ आयुध वज्रमें गुप्तरूपसे मैं प्रवेश कर जाता हूँ। देवताओ ! अभी सम्यक् प्रकारसे समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। आयु समाप्त होनेपर ही उसका मरण होगा। इसके अतिरिक्त इस कार्यमें सफलता मिलनी असम्भव है। गन्धर्वो ! तुमलोग वृत्रासुरके पास जाओ। उससे वार्तालाप करके इन्द्रके साथ उसकी मैत्री स्थापित करा दो। अन्यथा यह कार्य असम्भव है। स्वयं मैं वामनरूप धारण करके बलिको वञ्चित कर चुका हूँ। एक बार मैंने मोहिनी-वेष बनाया था, जिससे सम्पूर्ण दैत्य धोखेमें आ गये थे।

अतः अपने हितपर दृष्टि रखते हुए आपलोग मङ्गलमयी भगवती योगमायाके पास जायँ। देवताओ ! उनके शरणापन्न होकर

भावनापूर्वक मन्त्रोंको पढ़कर स्तुति करें। तब वे देवी आपकी सहायता अवश्य करेंगी। उन परा प्रकृतिमयी सत्त्वस्वरूपा भगवतीको हम निरन्तर प्रणाम करते हैं। वे कामरूपिणी हैं। उनकी कृपासे सिद्धि एवं कामनाएँ सुलभ हो जाती हैं। दुराचारियोंके लिये उनके दर्शन दुर्लभ हैं। उनकी आराधना करनेपर केवल इन्द्र ही संग्राममें शत्रुओंको मार डालेंगे; क्योंकि मोहिनीस्वरूपा भगवती योगमायाके प्रभावसे उस समय वृत्रासुर मोहित हुआ रहेगा। ऐसी स्थितिमें बड़ी सुगमताके साथ वह दैत्य मारा जायगा। परंतु यह सब कुछ तभी हो सकता है, जब परमपूज्या भगवती जगदम्बा प्रसन्न हो जायँ। अन्यथा किसीके भी मनकी अभिलाषा पूर्ण न हो सकेगी। सम्पूर्ण कारणोंके कारणको अपनेमें तिरोहित रखनेवाली वे देवी गुप्तरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं। अतएव महाभाग देवताओ ! तुम शत्रुका संहार करनेके लिये अत्यन्त आदरके साथ उन विश्वजननी देवीकी उपासनामें तत्पर हो जाओ। सात्त्विक वृत्ति रखते हुए उन प्रकृति देवीकी आराधना करो।

पूर्व समयकी बात है—मुझे भी मधु और कैटभके साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध करना पड़ा था। पाँच हजार वर्षोंतक लड़ाई होती रही। तब वे मारे गये। उस समय मैंने इन परम प्रकृति भगवती जगदम्बाकी स्तुति की थी। अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्होंने मधु और कैटभको मोहित कर लिया था। तब उन्हें मैं मार सका। भगवतीके माया-जालमें पड़े हुए वे दानव बड़े मदाभिमानी थे। उनकी भुजाएँ बड़ी विशाल थीं। देवताओ ! उसी प्रकार तुमलोग भी भावनापूर्वक प्रकृति देवीकी निरन्तर उपासना करो। तुम्हारा कार्य वे अवश्य सिद्ध कर देंगी।

इस प्रकार परम प्रभु भगवान् विष्णुने देवताओंके सामने अपना विचार प्रकट किया। तब देवता सुमेरुगिरिके शिखरपर चले गये। पारिजातके वृक्ष उस शिखरकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस एकान्त स्थानमें बैठकर देवताओंने जप, तप और ध्यान आरम्भ कर दिया। जो सृष्टि एवं संहारमें संलग्न रहती हैं, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करना जिनका स्वाभाविक गुण है तथा जिनकी सेवा करनेसे सांसारिक क्लेश दूर हो जाते हैं, उन भगवती जगदम्बाकी स्तुति करनेमें देवता संलग्न हो गये।

देवता बोले—देवी ! प्रसन्न होओ और देवताओंकी रक्षा करो। वृत्रासुरद्वारा हम अत्यन्त दुःखी हैं। उसने संग्राममें हमें बहुत कष्ट पहुँचाया है। दीनोंका दुःख दूर करनेवाली देवी ! तुम परमार्थस्वरूपा हो। देवता सदासे तुम्हारे चरण-कमलोंकी छत्रच्छायामें आश्रय पा चुके हैं। अतः तुम अखिल विश्वकी जननी हो। इस समय प्रबल शत्रु हमपर आक्रमण किये हुए हैं। ऐसी स्थितिमें अपने पुत्रकी भाँति हमारी रक्षा करो। त्रिभुवनमें कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो तुमसे अविदित हो। फिर असुरोंद्वारा संतप्त देवताओंकी तुम उपेक्षा क्यों कर रही हो ? इस चराचर त्रिलोकीका सृजन केवल तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है। देवी ! तुम करुणाकी समुद्र हो। पुत्र साक्षात् अपराधी ही क्यों न हों, किंतु यदि वे कष्ट पा रहे हों तो माताका कर्तव्य है कि उन्हें बचा लें—यह नियम तुम्हारा ही बनाया हुआ है। हमने तो कोई अपराध भी नहीं किया है और हम तुम्हारे चरणकमलोंके आश्रयमें आकर पड़े हैं। फिर भी क्यों नहीं रक्षा करतीं ? करुणा करनेवाली

देवी! तुम हमपर दया क्यों नहीं करतीं?

जननी! पूर्व समयकी बात है—एक अत्यन्त पराक्रमी दैत्य था। भैंसेका रूप धारण करके वह संग्राममें उपस्थित था। सम्पूर्ण प्राणी उससे भयभीत थे। हमारा हित सोचकर तुमने उसके प्राण हर लिये थे। माता! फिर भय उत्पन्न करनेवाले इस वृत्रासुरका वध तुम क्यों नहीं करतीं? महिषासुरके समान ही शुम्भ भी बड़ा बलवान् था। उसके भाई निशुम्भमें भी वैसी ही शक्ति थी। वे दोनों भाई तथा उनके बहुत-से अनुचर तुम्हारे हाथ मौतके घाट उतर गये। जैसे तुमने उक्त दानवोंका वध किया है, वैसे ही इस दुराचारी वृत्रासुरको भी तुम परास्त कर दो। यह प्रतापी दैत्य मदमें मस्त रहता है। इसे मोहित कर दो, ताकि उन दैत्योंकी तरह सामना न कर सके। माता! हम देवता वृत्रासुरसे अत्यन्त संतप्त हैं। हमें असीम कष्ट हो रहा है। हम बहुत डर गये हैं। अब तुम हमारी रक्षा करो। तुम्हारे सिवा त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो देवताओंका दुःख दूर करे और अपनी शक्तिसे विविध क्लेशोंको शमन करनेमें सफलता प्राप्त कर सके।

जगदम्बिके! इस अवसरपर हम तुम्हारी पूजा भी किस प्रकार करें; क्योंकि फूल-पत्ते आदि जो कुछ भी पूजाकी सामग्री है, वह सब तुम्हारे हाथकी बनायी हुई है। मन्त्रमें, हम पूजकोंमें तथा अन्य समस्त पदार्थोंमें परम शक्तिरूपसे तुम्हीं विराजमान हो। अतएव भवानी! हम केवल तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाना ही अपना अधिकार समझते हैं। वे पुरुष अवश्य ही धन्यवादके पात्र हैं, जिनकी तुम्हारे चरणकमलमें अटल भक्ति है; क्योंकि काम-क्रोधादि विकारोंसे रहित योगीलोग भी मुक्ति पानेकी अभिलाषासे मन-ही-मन निरन्तर जिनका चिन्तन किया करते हैं, वे तुम्हारे चरण संसाररूपी समुद्रको पार करनेके लिये सुदृढ़ नौका हैं। सम्पूर्ण वेदके पारगामी यज्ञ करानेवाले जो ब्राह्मण हैं, उन्हें भी धन्यवाद है; कारण, होम करते समय उनके द्वारा सदा तुम्हारा स्मरण होता रहता है। देवताओंको संतुष्ट करनेके लिये 'स्वाहा' और पितरोंको संतुष्ट करनेके लिये 'स्वधा'—इन शब्दोंका जो उच्चारण होता है, वे तुम्हारे ही नाम तो हैं। मेधा, कान्ति, शान्ति तथा मनुष्योंके महान् मनोरथ पूर्ण करनेवाली विख्यात बुद्धि भी तुम्हीं हो। इस त्रिलोकीका सारा वैभव एकमात्र तुम्हारा है। अपने सेवकोंपर कृपा करके तुम उन्हें सदा शक्तिशाली बनाया करती हो।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा सुन्दर रूप धारण करके उनके सामने प्रकट हो गयीं। उनके पतले शरीरको सम्पूर्ण भूषण विभूषित कर रहे थे। पाश, अङ्कुश और अभयमुद्रासे सम्पन्न उनकी चार भुजाएँ थीं। किंकिणियोंसे शब्द हो रहे थे। रेशमी सूत्रसे बँधा हुआ कटिभाग अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था। कोयलके समान मधुर उनकी बोली थी। उनके पैरमें घुँघरू बज रहे थे। खण्ड चन्द्रमा जिसे सुशोभित कर रहा था, ऐसा मुकुट वे मस्तकपर धारण किये हुए थीं। उनका मुखकमल मन्द मुसकानसे भरा था। उनके तीन नेत्र अनुपम छवि बढ़ा रहे थे। उनके प्रायः सर्वाङ्ग पारिजातके फूलोंसे ढके थे। वे लाल रंगके वस्त्र पहने हुए थीं। उनका शरीर रक्तचन्दनसे चर्चित

था। दयाकी समुद्र वे देवी प्रसन्न होकर हँस रही थीं। समस्त शृङ्गार उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहे थे। सम्पूर्ण द्वैत भावको प्रकट करनेवाली उन परा शक्तिसे किञ्चिन्मात्र अविदित नहीं है। सबकी रचना करनेवाली वे देवी अखिल अधिष्ठानस्वरूपिणी हैं। सम्पूर्ण वेदान्त उन्हींको सिद्ध करनेमें सार्थक होते हैं। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय है। देवता सामने खड़े हुए भगवतीकी ऐसी झाँकी पाकर उन्हें प्रणाम करने लगे। तब जगदम्बाने उन देवताओंसे कहा—'मुझसे बताओ, तुम्हारे सामने कौन-सा कठिन कार्य उपस्थित है।'

देवता बोले—देवी! देवताओंको अत्यन्त दुःख देनेवाले इस प्रबल शत्रु वृत्रासुरको मोहित करनेकी व्यवस्था करो। इसकी बुद्धिपर ऐसा पर्दा डाल दो कि यह देवताओंके प्रति विश्वास करने लग जाय और हमारे आयुधोंमें इतनी शक्ति निहित कर दो, जिससे यह शत्रु मारा जा सके।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! 'बहुत अच्छा—ऐसा ही होगा'—यों कहकर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। सम्पूर्ण देवता भी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। (अध्याय ४-५)

☆

## वृत्रासुरका वध, ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका मानसरोवरमें छिप जाना, नहुषको इन्द्र-पदकी प्राप्ति और नहुषकी शचीपर आसक्ति

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वर पाकर देवता तथा मुनि वृत्रासुरके श्रेष्ठ स्थानपर गये। वहाँ देखा, मानो वह दैत्य तेजसे चमक रहा था। वह ऐसा प्रबल जान पड़ता था मानो त्रिलोकीको भस्म कर देगा और देवता इसके ग्रास बन जायँगे। तब वे लोग वृत्रासुरके समीप जाकर प्रिय वचन कहने लगे। उन्होंने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये सामनीतिका आश्रय लिया था। अतएव उनके मुखसे बड़ी ही सरस वाणी निकल रही थी। उन्होंने कपटभरी बड़ी ही मधुर तथा सरस वाणीसे वृत्रासुरको संधि करनेके लिये प्रसन्न कर लिया।

उनकी बात सुनकर वृत्रने कहा—'महाभाग! सूखे अस्त्र, गीले अस्त्र, पत्थर तथा भयंकर वज्रसे दिनमें एवं रातमें देवताओंसहित इन्द्र मुझे न मारें। इस प्रकारकी शर्तपर इन्द्रके साथ संधि की जा सकती है। अन्यथा संधि बिलकुल असम्भव है।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर उन्होंने वृत्रासुरसे कहा—'बहुत ठीक, ऐसा ही होगा।' इन्द्रने आकर सारी शर्तोंको स्वीकार कर लिया। तबसे वृत्रासुर इन्द्रकी बातोंपर विश्वास करने लगा। उनके साथ उनकी मित्रवत् बातचीत होने लगी। कभी दोनों एक साथ नन्दनवनमें चले जाते और कभी गन्धमादन पर्वतपर। कभी समुद्रके तटपर जाकर बड़े आनन्दके साथ घूमने लगते। इस प्रकारकी मित्रता हो जानेपर वृत्रासुरके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर भी वृत्रासुरको मारनेकी इच्छा इन्द्रके मनमें बनी हुई थी। वे उपाय ढूँढ़ रहे थे। उनका मन सदा उद्विग्न रहता था। कोई ऐसा अवसर आ जाय इस बातका अन्वेषण वे कर रहे थे।

एक समयकी बात है, इन्द्रके प्रति पूर्ण विश्वास करनेवाले अपने पुत्र वृत्रको सम्बोधित

करके त्वष्टाने उससे कहा—'महाभाग ! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, उसे सुनो। जिससे एक बार बड़ा वैर हो चुका है, उसके प्रति कभी किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिये। इन्द्र तुम्हारा पूर्व-वैरी है। दूसरोंसे डाह करनेकी वृत्ति उसके मनसे कभी अलग नहीं होती। लोभसे मतवाला होकर वह सदा द्वेष करता रहता है। उसके मनमें सदा पाप-बुद्धि बनी रहती है। दूसरोंका छिद्र ढूँढ़ना, द्वेष करना, कपट करना तथा अभिमानमें चूर हो जाना उसके स्वाभाविक गुण हैं। बेटा ! किसी प्रकार भी इस इन्द्रके प्रति विश्वास मत करना। पुत्र ! जो एक बार पाप कर चुका है, उसे फिर पाप करनेमें क्या संकोच होगा ?'

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकारकी हितपूर्ण बातें कहकर त्वष्टाने वृत्रासुरको भली-भाँति समझाया; किंतु मौतके सिरपर सवार हो जानेके कारण उसने उन बातोंपर ध्यान नहीं दिया। एक समयकी बात है—इन्द्रने वृत्रासुरको समुद्रके तटपर देखा। उस समय अत्यन्त भयंकर संध्याकालकी बेला बीत रही थी। तदनन्तर महात्माओंने जो वर दिया था, वे बातें इन्द्रके ध्यानमें आ गयीं। सोचा, 'इस समय भयंकर संध्या सामने उपस्थित है। इसे न रात माना जाता है और न दिन ही। अब इसी अवसरपर इस शत्रुको बल-प्रयोग करके मार डालना चाहिये—यह बात बिलकुल ठीक जँच रही है। यहाँ निर्जन स्थानमें यह अकेला ही मिल भी गया है। इससे बढ़कर उपयुक्त समय और कौन-सा होगा ?' यों मन-ही-मन विचार करके इन्द्रने उसे तुरंत मार डालनेका विचार किया। परंतु उनके मनमें इस प्रकारकी चिन्ता उठने लगी कि 'इस शत्रुको मैं कैसे मारूँ; क्योंकि यह अजेय है।' इन्द्र यों सोच रहे थे कि समुद्रमें बहते हुए पानीके फेनपर देवराजकी दृष्टि पड़ी। वह फेन ऐसा जान पड़ता था मानो पर्वतका टुकड़ा हो। सोचा, यह फेन न सूखा है और न गीला ही। इसे शस्त्र भी नहीं कहा जा सकता। फिर तो कौतूहलवश इन्द्रने उस फेनको हाथमें उठा लिया। साथ ही अपार श्रद्धा प्रकट करते हुए उन्होंने परमाशक्ति भगवतीको ध्यानका लक्ष्य बनाया। चिन्तन करते ही भगवती वहाँ पधारीं और उन्होंने उस फेनमें अपना अंश स्थापित कर दिया। भगवान् विष्णु तो वज्रमें प्रवेश कर ही चुके थे, उस वज्रको फेनसे ढक दिया गया। इन्द्रने ऐसे

फेनयुक्त वज्रको वृत्रपर फेंका। उसके लगते ही वज्रसे कटे हुए पर्वतकी भाँति वह दानव एकाएक जमीनपर गिर पड़ा और उसी क्षण उसके प्राण प्रयाण कर गये। अब इन्द्रके आनन्दकी सीमा न रही।

शत्रुका नाश हो जानेपर इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ देवताओंको एकत्रित किया और वे उन भगवती जगदम्बाकी आराधनामें

संलग्न हो गये, जिनकी कृपासे शत्रुको मारनेकी सफलता प्राप्त की थी। अनेक प्रकारके स्तोत्रोंका उच्चारण करके वे देवीको प्रसन्न करने लगे। पद्मरागमणिसे भगवतीकी मूर्ति बनायी। उसे अपने दिव्य उपवनमें स्थापित कराया और उसीमें उन पराशक्तिकी भावना करके देवीको प्रसन्न करनेका सुअवसर प्राप्त किया। सम्पूर्ण देवता भी तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न एवं सायं—विशेषरूपसे देवीकी अर्चना करते थे। तभीसे भगवती 'श्रीदेवी' देवताओंकी कुलदेवी हो गयीं—घर-घर उनकी उपासना अनिवार्य हो गयी। फिर त्रिलोकीमें सर्वाधिक आदर पानेवाले भगवान् विष्णुकी भी इन्द्रने पूजा की। महान् पराक्रमी वृत्रासुर देवताओंके लिये बड़ा ही भयंकर था। उसके मर जानेपर देवगण प्रसन्न हो गये। सुखदायी पवन चलने लगा। गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर सब-के-सब उत्सव मनाने लगे। इस प्रकार पराशक्तिके प्रवेश किये हुए फेनद्वारा वृत्रासुरको मारनेमें इन्द्र बड़ी सुगमतासे सफलता प्राप्त कर सके। देवीने पहले ही उस दानवकी बुद्धि कुण्ठित कर दी थी। तदनन्तर त्रिलोकीमें यह बात फैल गयी कि देवी ही वृत्रासुरका संहार करनेवाली हैं। उन्होंने इन्द्रके द्वारा इसे मरवाया था। अतएव इन्द्रने इसका वध किया है—यों कहा जाता है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वृत्रासुरकी जीवन-लीला तो समाप्त हो गयी, पर वृत्र-वधकी हत्याके भयसे इन्द्र अत्यन्त घबराये हुए अमरावती सिधारे। मुनियोंके मनमें भी आतङ्क छा गया था। वे सोचने लगे—'इस शत्रुको मारनेके लिये हमने यह कितना नीच कर्म कर डाला। निश्चय ही हमारे धोखेमें पड़कर यह मारा गया है। आज इस इन्द्रके सम्पर्कमें आनेसे हम जो मुनि कहलाते थे, वह 'मुनि' शब्द ही व्यर्थ हो गया। आज हम भी विश्वासघाती बन गये। पापको पैदा करनेवाली तथा अनर्थोंकी जननी इस ममताको धिक्कार है। पापियोंको परामर्श देनेवाला, बुद्धि देनेवाला, प्रेरित करनेवाला और समर्थन करनेवाला भी पापका भागी होता ही है*। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पदार्थोंमें धर्म एवं मोक्ष—ये दो ही सार पदार्थ हैं, सो नष्ट हो गये।'

इस प्रकारकी मानसिक चिन्तासे अत्यन्त संतप्त होकर वे मुनिलोग भी अपने आश्रमपर चले गये। उनके मुखपर उदासी छायी हुई थी।

भारत! इन्द्रने मेरे पुत्र वृत्रको मार डाला है—यह अप्रिय समाचार सुनकर त्वष्टा रो पड़े। दुःखसे उनका हृदय संतप्त हो उठा। वे बार-बार शोक प्रकट करने लगे। फिर अत्यन्त शोकाकुल होकर जहाँ वृत्रकी लाश थी, वहाँ गये। उसे देखा और उसके पारलौकिक संस्कारकी व्यवस्था विधिवत् सम्पन्न की। उन्होंने जलमें पैठकर स्नान किया, तिलाञ्जलि दी और महान् शोकाकुल होकर मित्रघाती पापात्मा इन्द्रको शाप देनेको तैयार हो गये। उन्होंने कहा—'जिस प्रकार अनेक प्रतिज्ञाओंके प्रलोभनमें डालकर इन्द्रने मेरे पुत्रका वध कर दिया है, वैसे ही यह भी महान् दुःखका भागी बने—यह ब्रह्मरेखा है अर्थात् इसे कोई टाल नहीं सकता।' इन्द्रको यों शाप देकर अत्यन्त संतप्त हुए त्वष्टा सुमेरु पर्वतके

* मन्त्रकृद् बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम्। पापभाक् स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च॥ (६। ७६)

शिखरपर चले गये और वहीं रहकर उन्होंने महान् दुष्कर तपस्या आरम्भ कर दी।

राजा जनमेजयने पूछा—पितामह ! वृत्रका वध करनेके पश्चात् इन्द्रकी क्या दशा हुई ? आगे वे दुःख ही भोगते रहे अथवा कभी उन्हें सुखका अवसर भी सुलभ हुआ ? मुझे यह प्रसंग बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—महाभाग ! प्राणीको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। यह नियम देवता, दानव और मानव—सभीके लिये अनिवार्य है। कोई बलवान् हो अथवा दुर्बल—उसके द्वारा जो भी थोड़ा या बहुत कर्म बन गया है, उसका फल भोगना उसके लिये सर्वथा अनिवार्य है। इस संसारमें प्रायः देखा जाता है कि अच्छे समयपर सभी अपने बन जाते हैं, परंतु जब दैव प्रतिकूल हो जाता है, तब कोई किसीका सहायक नहीं होता। दुर्भाग्यके अवसरपर माता, पिता, भाई, स्त्री, सेवक, मित्र अथवा पुत्र—इनमेंसे किसीके द्वारा भी कोई सहायता नहीं मिलती। कर्ताको ही पाप और पुण्यके फल भोगने पड़ते हैं—यह सर्वथा सिद्ध है। वृत्र-वधके बाद सब लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। उस समय इन्द्रका तेज बिलकुल क्षीण हो गया था। 'यह इन्द्र ब्रह्मघाती है'—यों धीरे-धीरे कहकर सम्पूर्ण देवता उनकी निन्दा करने लगे। 'कौन ऐसा व्यक्ति है, जो प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचनसे बँध जानेपर भी अपने विश्वस्त एवं मित्र बने हुए मनुष्यके प्राण-हरणमें उद्यत हो जाय'—यह बात देवताओंके समाजमें, दिव्य उपवनमें तथा गन्धर्वोंकी गोष्ठीमें—सर्वत्र विस्तारके साथ फैल गयी। सब लोग कहने लगे—'वृत्र-वधकी कामनामें फँसकर इन्द्रने यह कैसा दुष्कर्म कर डाला।'

अपनी कीर्ति नष्ट करनेवाली तरह-तरहकी बातें इन्द्र भी सुनते रहे। जगत्‌में जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी, उस व्यक्तिके कलुषित जीवनको धिक्कार है। रास्तेमें जाते हुए ऐसे व्यक्तिको देखकर शत्रु हँस पड़ते हैं। इन्द्रद्युम्न राजर्षि माने जाते थे। उन्होंने कुछ भी पाप नहीं किया था; किन्तु कीर्ति नष्ट हो जानेके कारण वे भी स्वर्गसे ढकेल दिये गये। फिर जो स्वयं पापकर्म कर चुका है, वह कैसे नहीं गिरेगा ? राजा ययाति भी बहुत थोड़े अपराधपर स्वर्गसे बहिष्कृत कर दिये गये थे। ऐसे ही एक राजा थे, जिन्हें अठारह युगोंतक कर्कटकी योनिमें रहना पड़ा। सम्पूर्ण सिद्धियोंके घरमें रहते हुए भी इन्द्रके मनमें शान्ति नहीं थी। वे सभामें बिलकुल बैठते ही नहीं थे। वे भयसे घबराकर जोर-जोरसे श्वास लिया करते और कभी-कभी मूर्च्छित भी हो जाते थे। यह स्थिति देखकर इन्द्राणीने उनसे पूछा—'प्रभो ! आपका भयंकर शत्रु तो मार ही डाला गया; फिर आप इतने भयभीत क्यों हैं ? शत्रुपर विजय प्राप्त करनेवाले स्वामिन् ! कौन-सी चिन्ता आपको बेचैन कर रही है ? लोकेश ! आप एक साधारण प्राणीकी भाँति क्यों लम्बी साँस खींचते हुए सदा सोचमें डूबे रहते हैं ? दूसरा कोई बलवान् शत्रु तो दीखता भी नहीं, जिससे आप इतने चिन्तातुर हो गये।'

इन्द्रने कहा—राज्ञी ! यद्यपि कोई बलवान् शत्रु मेरे सामने नहीं है, तथापि ब्रह्महत्याके भयसे मैं इतना डर गया हूँ कि घरमें रहते हुए भी न मुझे सुख है और न शान्ति ही। मेरे लिये न तो नन्दनवन सुखदायी प्रतीत हो रहा है और न

अमृत तथा न यह देवप्रासाद ही। गन्धर्वोंके गान और अप्सराओंके नृत्य भी मुझे सुखकर प्रतीत नहीं होते। तुम-जैसी सहधर्मिणी तथा अन्य अनेक देवाङ्गनाएँ भी मुझे सुखी नहीं कर सकतीं। कामधेनु गौ और कल्पवृक्षसे भी मैं सुख नहीं पा रहा हूँ। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कहाँ जानेसे मेरा कल्याण होगा? प्रिये! इसी चिन्तासे व्यग्र रहनेके कारण मेरे अन्तःकरणमें आग धधक रही है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! अत्यन्त घबरायी हुई अपनी प्रेयसी भार्या शचीसे उपर्युक्त बातें कहकर इन्द्र घरसे निकल पड़े और मानसरोवरपर चले गये। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। शोकके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। वे उस उत्तम सरोवरमें जाकर एक कमलके नालमें छिप गये। उस समय इन्द्रको कर्तव्यका ज्ञान नहीं रहा; क्योंकि घृणित कर्म करनेसे उनकी प्रतिभा नष्ट हो चुकी थी। वे जलमें छिपकर समय व्यतीत करते थे, मानो साँप जीवन-रक्षाके लिये प्रयत्नशील हो। उस अवसरपर उनका कोई भी सहायक न था। चिन्तासे व्याकुलता बढ़ गयी थी। इन्द्रियोंमें क्षोभ उत्पन्न हो गया था। राजन्! जब ब्रह्महत्याके भयसे दुःखी होकर इन्द्र वहाँसे चले गये, तब देवताओंका मन चिन्तासे अत्यन्त संतप्त हो उठा। अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। उपद्रवोंसे अभिभूत सारे जगत्में कोई शासक नहीं रहा। मेघोंने पानी बरसाना बंद कर दिया। पृथ्वीमें धान्य उपजानेकी शक्ति नहीं रही। नदियोंकी धाराएँ टूट गयीं। तालाब बिना जलके हो गये। इस प्रकारकी अराजकता फैल जानेपर सम्पूर्ण देवताओं और मुनियोंने परस्पर विचार करके नहुषको इन्द्र-पदपर नियुक्त किया। भारत! यद्यपि नहुष धर्मात्मा था, फिर भी इन्द्र बन जानेपर उसके मनमें राजसी वृत्ति उत्पन्न हो गयी। फलस्वरूप वह विषयोंमें आसक्त हो गया।

एक समयकी बात है, शचीके गुणोंको सुनकर उन्हें पानेके लिये नहुषके मनमें इच्छा उत्पन्न हो गयी। अतः उसने ऋषियोंसे कहा—'मेरे पास इन्द्राणी क्यों नहीं आती? देवताओ! आप सम्पूर्ण लोगोंने ही इस समय मुझे इन्द्र बनाया है। अतः मेरी सेवा करनेके लिये शचीको भी यहाँ भेज दें। इस अवसरपर देवताओं और मुनियोंको सम्यक् प्रकारसे मेरा प्रिय कार्य करना चाहिये; क्योंकि मैं उनका इन्द्र हूँ। सम्पूर्ण लोकपर मेरा शासन है। अतएव मुझे प्रसन्न करनेके लिये शची शीघ्र ही मेरे महलमें आ जाय।' नहुषकी यह दोषपूर्ण बात सुनकर देवताओं और ऋषियोंके मनमें चिन्ताके कारण घबराहट उत्पन्न हो गयी। वे इन्द्राणीके पास गये और मस्तक झुकाकर कहने लगे—'इन्द्राणीजी! दुरात्मा नहुष अब आपको पानेकी इच्छा प्रकट कर रहा है। उसने कुपित होकर हमसे यह वचन कहा है कि शचीको यहाँ भेज दो। उसके अधीन रहनेवाले हम कर ही क्या सकते हैं; क्योंकि इस दुरात्माको इन्द्र बना दिया गया है।' देवताओं और ऋषियोंद्वारा नहुषकी यह अप्रिय बात सुनकर शचीका मुख मुरझा गया। वे बृहस्पतिजीसे कहने लगीं—'ब्रह्मन्! मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। नहुषसे मेरी रक्षा कीजिये।'

बृहस्पतिजीने कहा—देवी! पापान्ध नहुषसे तुम किंचिन्मात्र भय मत करो। वत्से! सनातन धर्मका परित्याग करके मैं तुम्हें उसके पास नहीं जाने दूँगा। शरणमें आये हुए दुःखी व्यक्तिको

जो नीच मानव आश्रय नहीं देता, उसे युगपर्यन्त नरककी यातना भोगनी पड़ती है। पृथुश्रोणी ! तुम शान्तचित्त होकर विराजमान रहो। मैं कभी भी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। (अध्याय ६-७)

☆

## देवताओंका बृहस्पतिजीसे परामर्श, बृहस्पतिजीकी सम्मतिके अनुसार कार्य-सम्पादन, इन्द्राणीपर देवीकी कृपा, नहुषका मुनियोंकी पालकीपर सवार होना और मुनिके शापसे नहुषका पतन तथा उसे सर्प-योनिकी प्राप्ति

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर नहुषने सुना कि शची बृहस्पतिजीकी शरणमें चली गयी है, तब वह उनके ऊपर भी झल्ला उठा। उसने देवताओंसे कहा—'यह बिलकुल निश्चित है कि मेरे हाथ बृहस्पतिका वध होकर रहेगा। कारण, मैंने सुना है, इस मूर्खने अपने घरमें शचीको सुरक्षित रहनेकी व्यवस्था कर रखी है।' उस समय नहुषकी आकृति महान् भयंकर हो गयी थी। वह क्रोधसे जल उठा था। उसकी ऐसी स्थिति देखकर देवता और ऋषि सामनीतिका प्रयोग करते हुए नहुषसे कहने लगे—'राजेन्द्र! प्रभो! तुम क्रोध दूर करो। यह खोटी बुद्धि सर्वथा त्याज्य है। परायी स्त्रीके साथ प्रेम करनेकी धर्मशास्त्रोंमें घोर निन्दा की गयी है। शची परम पतिव्रता हैं। उनका आचरण बड़ा ही पवित्र है। राजन्! इस समय तुम्हें त्रिलोकीका राज्य सुलभ है। तुम बड़े धार्मिक राजा हो। यदि तुम-जैसा नरेश धर्मसे विचलित हो जायगा तो निश्चय है कि प्रजा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। राजाको चाहिये कि सम्यक् प्रकारसे सदाचारका पालन करे। राजेन्द्र! जब पति-पत्नी दोनोंमें समान प्रेम होता है, तभी दोनों अत्यन्त सुखी होते हैं। अतएव देवेन्द्र! तुम्हारे मनमें परायी स्त्रीसे मिलनेकी जो इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे त्याग दो। श्रेष्ठ आचरणका पालन करो; क्योंकि इस समय तुम एक महान् श्रेष्ठ पदपर प्रतिष्ठित हो। राजन्! पाप-कर्म करनेसे सम्पत्ति क्षीण होती है और पुण्य करनेसे बढ़ती है। इसलिये नीच कर्मका परित्याग करके तुम्हें सात्त्विक बुद्धिका आश्रय लेना चाहिये।'

नहुषने कहा—देवताओ! शची मेरे पास आ जाय। ऐसा करनेसे तुम्हारी तो बड़ी भलाई होगी ही, वह भी परम सुखी हो जायगी। ऐसा न होगा तो मेरी अशान्तिका शमन नहीं हो सकता। यह मैं तुम्हारे सामने बिलकुल सच्ची बातें कह रहा हूँ। विनय अथवा बल—किसी भी उपायका प्रयोग करके तुम अति शीघ्र शचीको यहाँ लानेका प्रयत्न करो।

उस समय नहुष कामसे आतुर हो गया था। उसकी यह बात सुनकर अत्यन्त भयभीत हुए देवताओं और मुनियोंने उससे कहा—'ठीक है, शान्तिपूर्वक इन्द्राणीको हम तुम्हारे पास ले आयेंगे।' यों कहकर वे देवता और मुनि बृहस्पतिजीके आश्रमपर गये और उन्होंने सब बातें उनको सुना दीं।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर बृहस्पतिजीने उन्हें उत्तर दिया—''परम साध्वी शची मेरे यहाँ शरणार्थी बनकर आयी हैं। मैं इनका त्याग नहीं करूँगा। एक उपाय है—एक बार शची राजा नहुषके सामने जायँ

और उससे कहें कि 'मैं तुम्हारी सेवा अवश्य करूँगी; परंतु पहले यह पता लगा लूँ कि मेरे पति जीवित तो नहीं हैं। सम्भव है, मेरे पतिदेव इन्द्र जीवित हों; ऐसी स्थितिमें मैं दूसरेको कैसे स्वामी बना सकती हूँ। अतः उन महाभागको खोजनेके लिये एक बार मेरे लिये वापस लौटना आवश्यक है।' इन्द्राणीको चाहिये कि इस प्रकार कहकर नहुषको धोखेमें डाल दे, फिर जैसा मैं बताऊँ, उसके अनुसार पतिदेवको ले आनेका प्रयत्न करना चाहिये।''

इस प्रकार आपसमें परामर्श करके जितने भी देवता थे, वे सब-के-सब शचीको साथ लेकर नहुषके पास पहुँचे। जब उस बनावटी इन्द्र नहुषने देखा कि देवता आ गये और साथमें शची भी है, तब उसके हर्षकी सीमा न रही। वह ठहाका मारकर हँसा और शचीसे कहने लगा—'प्रिये ! चारुलोचने ! इस समय मैं इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हूँ। देवताओंने मुझे यह गौरव प्रदान किया है। अखिल भूमण्डलका शासन-सूत्र मेरे हाथमें है। अतः अब तुम मेरी सेवामें आ जाओ।' नहुषके यों कहनेपर इन्द्राणीके शरीरमें कँपकँपी छूट गयी। उसका हृदय आतङ्कित हो गया। फिर सँभलकर वे उससे कहने लगीं—'देवेश्वरके पदपर शोभा पानेवाले नरेश ! आपसे मैं एक अभिलषित वरकी याचना करती हूँ। उस समयतक आप प्रतीक्षा करें—जबतक कि मैं यह निर्णय न कर लूँ कि मेरे पति इन्द्र जीवित हैं या नहीं; क्योंकि इस बातका संदेह मेरे मनमें बना हुआ है। अभीतक मुझे ठीक-ठीक पता ही नहीं कि उनका मरण हो गया अथवा वे कहीं चले गये।' शचीने जब इस प्रकार नहुषसे कहा, तब उसके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। 'बहुत ठीक है, ऐसा ही हो' कहकर बड़े उत्साहके साथ नहुषने शची देवीको वहाँसे जानेकी आज्ञा दे दी। उससे छुटकारा पानेपर इन्द्राणी तुरंत देवताओंके पास गयीं और उनसे कहा—'आपलोग बड़े उद्यमशील पुरुष हैं। अब मेरे पतिदेवको यहाँ लौटा लानेका प्रयत्न कीजिये।' शची देवीके इस पवित्र एवं मधुर वचनको सुनकर देवता बड़ी सावधानीके साथ इन्द्रके विषयमें विचार करने लगे। राजेन्द्र ! कर्तव्य निश्चित हो जानेपर वे परम प्रभु भगवान् विष्णुके धाममें गये और उनकी स्तुति करने लगे। आदिदेव भगवान् विष्णु अखिल जगत्के स्वामी हैं। शरणमें आये हुए व्यक्तिपर कृपा करना उनका स्वभाव ही है। अपनी वाणी व्यक्त करनेमें परम कुशल देवताओंने अत्यन्त उदास होकर उनसे यह वचन कहा—'भगवन् ! देवराज इन्द्र ब्रह्महत्याके दुःखसे अत्यन्त दुःखी होकर कहीं अन्यत्र कालक्षेप कर रहे हैं। हमपर घोर संकट आ पड़ा है, इससे आप हमारी रक्षा करें और साथ ही इन्द्र ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जायँ—इसका उपाय भी बतलानेकी आप ही कृपा करें।' देवताओंकी यह करुण प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'देवताओ ! इस अवसरपर ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिये इन्द्रको अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये। इस परम पावन यज्ञके प्रभावसे सम्पूर्ण कल्मष धुल जानेपर वे फिर तुम्हारे इन्द्र बन जायँगे। फिर किसी प्रकारका कोई भय नहीं रह सकेगा। यह अश्वमेध यज्ञ भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करनेके लिये एक अचूक साधन है। यह निश्चय है कि इस यज्ञसे संतुष्ट होकर भगवती जगदम्बा ब्रह्महत्या प्रभृति सारे पापोंको नष्ट कर देंगी और इन्द्राणी भी

शचीपर देवीकी कृपा

नियमपूर्वक भगवती जगदम्बाकी आराधनामें लग जायँ। भगवती जगदम्बा कल्याणमयी हैं। इनकी आराधना करनेपर सुखी होनेमें कोई संदेह नहीं है। देवताओ! अब अपने ही किये हुए पापसे नहुषका बहुत शीघ्र संहार हो जायगा। इन्द्र भी अश्वमेध यज्ञके प्रभावसे पुण्यात्मा बनकर अपनी सम्पत्ति प्राप्त कर लेंगे। उन्हें अपना सर्वोत्तम आसन पुनः सुलभ हो जायगा।'

अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुकी यह पवित्र वाणी सुनते ही बृहस्पतिजीको अपना अगुआ बनाकर वे उस अविगत स्थानपर चले गये, जहाँ इन्द्र कालक्षेप कर रहे थे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर इन्द्रको आश्वासन दिया और सर्वोत्तम यज्ञ करानेकी समुचित व्यवस्था की। उस यज्ञके सम्पन्न हो जानेपर भगवान् श्रीहरि पधारे और उनके द्वारा ब्रह्महत्याको विभाजित करके वृक्षों, नदियों, पर्वतों और स्त्रियोंपर फेंक दिया गया। यों ब्रह्महत्यासे मुक्त होकर इन्द्र पुनः शुद्ध हो गये। यद्यपि उनकी चिन्ता शान्त हो गयी थी, फिर भी अपने अच्छे दिनकी प्रतीक्षा करते हुए वे जलमें ही ठहरे रहे। एक कमलका नाल उनका आश्रय बना था। कोई भी प्राणी उन्हें देख नहीं सकता था। अतः इन्द्राणीके दुःखका अन्त नहीं हुआ। इन्द्रके विरहमें व्याकुल होकर वे बृहस्पतिजीसे कहने लगीं—'महाराज! अश्वमेध यज्ञ कर चुकनेपर भी मेरे पतिदेव सामने क्यों नहीं आते? मैं अपने उन प्राणनाथको कैसे देखूँगी—इसका उपाय मुझे बतानेकी कृपा करें।'

बृहस्पतिजीने कहा—पौलोमि! अब तुम कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी आराधना करो। उन्हींकी कृपासे तुम्हारे पुण्यात्मा पतिदेव सामने आ सकेंगे। तुम्हारे द्वारा सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा नहुषकी शक्ति कुण्ठित कर देंगी। भगवतीके प्रयाससे मोहित होकर वह नरेश इन्द्रपदसे च्युत हो जायगा।

राजन्! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर इन्द्राणीने उनसे मन्त्रका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा पूजनकी विधियाँ भी समझ लीं। यों गुरुके अनुग्रहसे मन्त्रका ज्ञान हो जानेपर शचीने भगवती भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे आराधना आरम्भ कर दी। उस समय इन्द्राणी पूर्ण तपस्विनी बन गयी थीं। उन्होंने अन्य प्रकारके समस्त भोग त्याग दिये थे। अपने प्राणनाथके दर्शनकी लालसासे देवी-पूजनमें ही उनका सारा समय व्यतीत होने लगा। कुछ दिनोंतक आराधना करनेके पश्चात् भगवती जगदम्बा प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने इन्द्राणीको साक्षात् दर्शन दिये। वर देनेके लिये पधारी हुई देवीका रूप बड़ा ही मनोहर था। वे हंसपर विराजमान थीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। उनमें इतनी शीतलता थी, मानो करोड़ों चन्द्रमा हों। करोड़ों बिजलियोंके एक साथ चमकनेके समान उनके शरीरसे चमचमाहट निकल रही थी। उन्हें चारों वेद पूर्ण अभ्यस्त थे। उनकी भुजाएँ पाश, अङ्कुश और अभयमुद्रासे सुशोभित थीं। उन्होंने मोतीका स्वच्छ हार पहन रखा था, जिसकी लम्बाई पैरोंतक थी। उनका मुख मुस्कानसे भरा था। तीन नेत्र मस्तककी शोभा बढ़ा रहे थे। ब्रह्मासे लेकर कीटतक जितने प्राणी हैं, इन सबकी जननी कहलानेका सौभाग्य एकमात्र इन्हींको प्राप्त है। ये करुणारूपी अमृतकी अगाध समुद्र हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंपर इन परमेश्वरीका नियन्त्रण चालू रहता है। इनमें अनन्त सौम्य रस भरे पड़े

हैं। जो सबकी स्वामिनी, सर्वज्ञ, कूटस्थ एवं अक्षरमयी हैं, वे भगवती जगदम्बा प्रसन्न होकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करती हुई मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें इन्द्राणीसे कहने लगीं।

देवीने कहा—सुन्दर कटिभागसे शोभा पानेवाली इन्द्रप्रिये! अपना अभिलषित वर माँगो; मैं प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिये तैयार हूँ, क्योंकि तुमने सम्यक् प्रकारसे मेरी आराधना की है। तुम्हें वर देनेके लिये ही मेरा यहाँ आना हुआ है। मैं सुगमतापूर्वक किसीके सामने प्रकट नहीं होती हूँ। अनन्त कोटि जन्मोंके पुण्य-संचय होनेपर ही प्राणी मेरे दर्शनका अधिकारी होता है।

उस समय इन्द्राणी भगवती जगदम्बाके सामने हाथ जोड़े खड़ी थीं। देवीके आज्ञा देनेपर अत्यन्त प्रसन्न होकर विराजनेवाली उन परमेश्वरीसे इन्द्राणीने कहा—'माता! पतिदेवका दर्शन मुझे परम दुर्लभ हो गया है। मैं उसीको प्राप्त करना चाहती हूँ। साथ ही मैं यह भी चाहती हूँ कि पापी नहुषसे मुझे तनिक भी भय न रहे और पूर्ववत् अपना स्थान प्राप्त हो जाय।'

देवीने कहा—तुम इस मेरी दूतीके साथ मानसरोवर जाओ, जहाँ मेरी एक अचल मूर्ति प्रतिष्ठित है। मेरी उस मूर्तिको लोग 'विश्वकामा' कहते हैं। वहाँ इन्द्रसे तुम्हारी भेंट हो जायगी। इस समय वे भयसे घबराकर महान् दुःखका अनुभव कर रहे हैं। विशालाक्षी! कुछ ही समयके बाद मैं राजा नहुषको मोहित करनेकी व्यवस्था करूँगी। अब तुम स्वस्थ हो जाओ। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेमें मैं सचेष्ट हूँ। मेरे प्रयाससे मोहित हुआ राजा नहुष तुरंत ही इन्द्रासनसे च्युत हो जायगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवती जगदम्बाकी एक दूती इन्द्राणीको साथ लेकर तुरंत उनके पतिदेवके पास पहुँच गयी। शचीने पतिदेवका साक्षात्कार किया। भगवती परमेश्वरीका वह विग्रह भी उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। उस समय वहीं देवराज छिपकर कालक्षेप कर रहे थे। इन्द्राणीके मनमें बहुत दिनोंसे पतिदेवके दर्शनकी लालसा लगी हुई थी। अभीष्ट कार्य सिद्ध हो गया—इससे वे प्रसन्नतासे गद्गद हो गयीं।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! विशाल नेत्रवाली इन्द्राणीका हृदय चिन्तासे भरा था। ऐसी अपनी प्राणप्रियाको सामने उपस्थित देखकर इन्द्र आश्चर्य प्रकट करते हुए उनसे कहने लगे—'प्रिये! तुम यहाँ कैसे आ गयीं? मैं यहाँ हूँ—यह रहस्य तुम्हें कैसे मालूम हो गया? शुभानने! मेरे यहाँ रहनेकी बात जाननेमें सम्पूर्ण प्राणी असमर्थ हैं।'

शचीने कहा—प्रभो! इस समय भगवती जगदम्बाके कृपाप्रसादसे मुझे आपकी जानकारी प्राप्त हुई है। देवेश्वर! उन्हींकी कृपाके सहारे मैं आपको पा सकी हूँ। देवताओं और मुनियोंने नहुष नामवाले एक राजर्षिको आपके स्थानपर नियुक्त कर दिया है। उसके द्वारा मैं अत्यन्त कष्ट पा रही हूँ। बलार्दन! वह नीच मुझसे यों कहता है कि 'सुन्दरी! तुम मुझे पतिरूपसे स्वीकार कर लो। मैं ही देवताओंका अध्यक्ष इन्द्र हूँ।' पतिदेव! अब मैं क्या करूँ?

इन्द्रने कहा—वरारोहे! कल्याणी! जिस प्रकार अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करते हुए मैं यहाँ ठहरा हूँ, वैसे ही तुम भी अपने मनमें धैर्य रखकर कालक्षेप करो।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! परम आदरणीय पतिदेवके यों कहनेपर भी इन्द्राणीके मनका संताप दूर नहीं हुआ। काँपती तथा लम्बी

साँस खींचती हुई वे इन्द्रसे कहने लगीं—'महाभाग ! मैं कैसे रहूँ ? नहुष अत्यन्त दुराचारी है। वर पा जानेसे वह अभिमानमें प्रमत्त रहता है। अब इस आपत्तिकालमें पतिविहीन रहकर मैं कैसे समय व्यतीत करूँगी ?'

इन्द्र बोले—वरानने ! मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ, उसे करो। तभी इस दुःखप्रद समयमें तुम्हारे शीलकी रक्षा हो सकेगी। राजा नहुष बड़ा पापी है। जब बलपूर्वक वह तुम्हें प्राप्त करनेकी चेष्टा करे, तब प्रतिज्ञा करवाकर उसे धोखेमें डाल देना। मदालसे ! तुम एकान्तमें नहुषके पास जाकर कहना कि 'जगत्प्रभो ! आप ऐसी दिव्य सवारीसे पधारकर मुझे स्वीकार कीजिये, जिसे ऋषि ढोते हों। ऐसा होनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी; क्योंकि मैं इस प्रकारका नियम बना चुकी हूँ।' उस कामान्ध नरेशद्वारा मुनिलोग पालकी ढोनेमें नियुक्त किये जायँगे। ऐसी स्थितिमें यह निश्चित है कि उन तपस्वियोंके शापसे नहुष जलकर भस्म हो जायगा। इस कार्यमें भगवती जगदम्बा तुम्हारी सहायता करेंगी। भगवती जगदम्बाको स्मरण करनेवाला व्यक्ति कभी भी संकटमें नहीं पड़ सकता। यदि कभी दुःखदायी समय सामने आ जाय तो यही समझना चाहिये कि इसमें भी हमारा कल्याण ही हेतु है। अतएव तुम मणिपर्वतपर विराजमान रहनेवाली भगवती भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे आराधनामें तत्पर हो जाओ और बृहस्पतिजीके कथनानुसार उनका पूजन करती रहो।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर शची नहुषके पास चली गयीं और देवराजके कथनानुसार नहुषसे बोलीं—'इन्द्रके वेषमें विराजनेवाले राजन् ! तुम्हारे कृपा-प्रसादसे मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो गये हैं। परंतु देव ! तुम बड़े शक्तिशाली पुरुष हो ! मेरे मनमें अभी एक मनोरथ छिपा हुआ है, उसे सुनो। राजन् ! मेरी यही अभिलाषा पूर्ण कर दो, फिर तो तुम्हारे अधीन रहना मैं स्वीकार कर लूँगी।' तब नहुषने कहा—'चन्द्रवदने ! तुम अपना वह कार्य बतलाओ। तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करनेके लिये मैं अभी तैयार हूँ। सुभ्रु ! तुम मुझे बता भर दो, मैं परम दुर्लभ वस्तु भी तुम्हारे लिये सुलभ कर दूँगा।'

शचीने कहा—राजेन्द्र ! मैं कैसे कहूँ; क्योंकि तुम्हारे प्रति मेरा मन अभी पूरा विश्वासी नहीं है। तुम प्रतिज्ञा करके सत्यके बन्धनमें बँध जाओ, तभी मैं अपना अभिप्राय व्यक्त करूँगी। राजन् ! यदि तुम्हारे द्वारा मेरी साध पूर्ण हो गयी तो मैं सदाके लिये तुम्हारी दासी बन जाऊँगी।

नहुष बोला—सुन्दरी ! मैं तुम्हारे वचनका पालन अवश्य करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं है। यदि मैं तुम्हारी बातोंका अनादर करूँ तो आजतक यज्ञ और दानके फलस्वरूप मेरा जो संचित पुण्य है वह सब नष्ट हो जाय।

शचीने कहा—हाथी, घोड़े और रथ इन्द्रकी सवारीमें काम आते हैं। विष्णुके गरुड यमराजके महिष, शंकरके वृषभ और ब्रह्माके हंस वाहन हैं। कार्तिकेय मोरपर तथा गणेश चूहेपर चढ़कर यात्रा करते हैं। सुराधिप ! मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा वाहन इन सभी वाहनोंसे विलक्षण हो। तुम्हारा वाहन वह होना चाहिये, जो आजतक विष्णु, रुद्र तथा असुरों और राक्षसोंके लिये अलभ्य रहा हो। महाराज ! मैं चाहती हूँ कि अपने व्रतमें अटल रहनेवाले प्रधान-प्रधान मुनिगण तुम्हारी पालकी ढोवें। राजन् ! ये सभी मुनि सवारीमें जोड़ दिये जायँ। बस यही मेरा

मनोरथ है; क्योंकि नरेन्द्र ! मेरी समझसे तुम्हारी प्रभुता सम्पूर्ण देवताओंसे बढ़-चढ़कर है। ऐसा करनेसे तुम्हारा तेज निखर उठेगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! शची देवीकी उक्त बातें सुनकर वह प्रचण्ड मूर्ख नहुष हँस पड़ा। कारण, महामायाके प्रभावसे उसकी बुद्धि मारी जा चुकी थी। उसने तुरंत इन्द्राणीकी प्रशंसा करते हुए कहा।

नहुषने कहा—सुन्दरी ! तुमने बहुत ठीक कहा है। मुझे भी यही सवारी पसंद है। मैं सम्यक् प्रकारसे तुम्हारे कथनका पालन करूँगा। जिसमें थोड़ा पराक्रम हो, वह भले ही मुनियोंको सवारी ढोनेके काममें न लगा सके; किंतु मैं तो ऐसा नहीं हूँ। अतः शुचिस्मिते ! मैं इसी सवारीपर चढ़कर तुम्हारे पास आऊँगा। मुझमें तपस्याका अपार बल है। मैं त्रिलोकी-भरमें सबसे अधिक सामर्थ्य रखता हूँ। मेरे विषयकी यह जानकारी प्राप्त हो जानेपर सम्पूर्ण देवता तथा सप्तर्षिगण मेरी प्रशंसा करेंगे।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार वार्तालाप करनेके पश्चात् उस परम संतुष्ट नहुषने शचीको अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा दे दी। वह कामान्ध हो रहा था। उसने समस्त मुनियोंको बुलाकर उनके सामने अपनी बात रख दी।

नहुषने कहा—विप्रो ! अब इन्द्र कहलानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। मेरे पास सारी शक्तियाँ हैं। इस अवसरपर आपलोग प्रसन्नतापूर्वक मेरे कार्यसाधनमें तत्पर हो जायँ। इन्द्रका आसन मुझे मिल चुका है; परंतु इन्द्राणी अभी मेरे पास नहीं आ सकी। उसके आनेका क्या साधन है—इस विषयमें पूछनेपर उसने प्रेमपूर्वक मुझसे कहा है—'देवेन्द्र ! मुनिगण जिस सवारीको चलावें, उसपर चढ़कर आप मुझे पानेके लिये पधारिये।' आदरणीय मुनियो ! मेरा यह कार्य अत्यन्त कठिन है। पर आप बड़े दयालु हैं। मेरा यह कार्य सम्यक् प्रकारसे सिद्ध हो, आप वही करें; क्योंकि शचीमें आसक्त मेरा मन निरन्तर संतप्त है। इस अवसरपर मेरे परम आश्रय केवल आप ही हैं। अतः इस महान् कार्यको सम्पन्न करनेकी अवश्य कृपा करें।

राजन् ! उन श्रेष्ठ ऋषियोंमें अगस्त्यजी सबसे प्रमुख थे। कृपालु होनेके कारण अथवा होनहारवश नहुषकी यह खोटी बात सुनकर वैसा ही करनेके लिये वे सहमत हो गये। जब उन तत्त्वदर्शी मुनियोंने शचीमें आसक्त हुए उस नरेशकी बात स्वीकार कर ली, तब तो उसके हर्षकी सीमा नहीं रही। वह तुरंत एक परम मनोहर पालकीपर बैठा और दिव्य मुनियोंको उसे ढोनेके लिये नियुक्त करके 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो-चलो'—यों कहने लगा। उस समय कामातुर हो जानेसे नहुषकी बुद्धि मारी जा चुकी थी। उसने अगस्त्यजीके मस्तकपर अपने

पैरसे मार दिया। लोपामुद्राके प्राणपति अगस्त्यजी परम श्रेष्ठ तपस्वी माने जाते हैं। वातापि नामक राक्षस उनका भक्ष्य बन चुका है। एक बार वे समुद्रको पी गये थे। पापी नहुषने ऐसे सुयोग्य अगस्त्यजीपर कोड़ेसे भी चोट पहुँचा दी। इन्द्राणीके चिन्तनमें अत्यन्त व्याकुल उस नरेशके मुखसे मुनियोंके प्रति 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो-चलो' यही शब्द बारम्बार निकल रहे थे। फिर तो अगस्त्यजीने कुपित होकर नहुषको शाप दे दिया। कहा—'अरे नीच ! तू वनमें भयंकर शरीरवाला एक महान् सर्प बन जा। इस सर्पयोनिमें अनेक हजार वर्षोंतक तुझे अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे। तू शक्तिसम्पन्न होकर वनमें विचरेगा। धर्मके अंशसे युधिष्ठिर नामक एक पुण्यात्मा पुरुष प्रकट होंगे। उनसे तेरी भेंट होगी। तब उनके मुखसे प्रश्नोंके उत्तर सुन लेनेके पश्चात् तू मुक्त हो जायगा।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार मुनिवर अगस्त्यजीके शाप दे देनेपर राजर्षि नहुषने उनकी स्तुति की। तुरंत ही उसकी आकृति सर्पके समान बन गयी और वह स्वर्गसे गिर पड़ा ! तदनन्तर बृहस्पतिजी बड़ी शीघ्रताके साथ मानसरोवरपर गये और उन्होंने वहाँके सब समाचार विस्तारपूर्वक इन्द्रको सुना दिये। नहुष स्वर्गसे गिर गया—इत्यादि बातें सुनकर देवराजके मनमें प्रसन्नता छा गयी। राजन् ! नहुष अब धरातलपर चला गया—यह देखकर सभी देवता भी मुनियोंसहित उसी मानसरोवरपर इन्द्रके पास गये और देवराजको आश्वासन देकर उन्होंने इन्द्रको स्वर्गमें ले आनेकी व्यवस्था की। उनके द्वारा बड़े सम्मानके साथ इन्द्र स्वर्गमें लौट आये। इसके बाद देवताओं और मुनियोंने उन्हें आसनपर विराजित कर मङ्गल-अभिषेक किया। इन्द्र भी अब अपने आसनके अधिकारी बनकर शचीके साथ स्वर्गमें विराजने लगे।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार इन्द्रको अत्यन्त भयंकर कष्ट सहने पड़े हैं। भगवती जगदम्बाके कृपाप्रसादसे इन्द्र पुनः अपने स्थानपर प्रतिष्ठित हुए। राजन् ! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सारी कथाएँ मैं तुम्हें सुना चुका। तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, यह कथा बड़ी ही विलक्षण है। जो जैसा कर्म करता है, उसके सामने वैसे ही फल आते हैं; क्योंकि अपने किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल भोगना प्राणियोंके लिये अनिवार्य है—इसे कोई टाल नहीं सकता।

(अध्याय ८-९)

☆

## त्रिविध कर्म, युगधर्म, तीर्थ, चित्तशुद्धि, तीर्थकी महत्ता और वसिष्ठ-विश्वामित्रके कलहका वर्णन

राजा जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! आपने अद्भुत कर्म करनेवाले इन्द्रकी कथा मुझे सुनायी है। इन्द्र अपने स्थानके अनधिकारी हो गये थे और उन्हें भी कष्ट भोगना पड़ा था—इसका विशेषरूपसे विवेचन किया है। उसी प्रसंगमें देवताओंपर भी नियन्त्रण रखनेवाली भगवती जगदम्बाकी महिमा भी वर्णित हुई है। परंतु अब मुझे यह संदेह हो रहा है कि महान् तपस्वी एवं देवराजके पदपर प्रतिष्ठित होते हुए भी इन्द्र दुःसह दुःखके पचड़ेमें कैसे पड़े ? सौ अश्वमेध यज्ञ

करनेके पश्चात् उन्हें वह अनुपम आसन प्राप्त हुआ था। सभी देवता उनका अनुशासन मानते थे। फिर अपने स्थानसे वे कैसे च्युत हो गये ? करुणानिधे ! आप इसका सम्पूर्ण कारण बतलानेकी कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे यों पूछा, तब वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके प्रश्नोंके क्रमशः उत्तर देने लगे।

व्यासजी बोले—राजेन्द्र ! मैं इसका परम अद्भुत कारण बतलाता हूँ, सुनो। तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी हैं। अनेक जन्मोंसे संचय किये हुए पुराने कर्मको 'संचित' कर्म कहते हैं। फिर कर्म भी तीन प्रकारके होते हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। राजन् ! बहुत समयसे संचित किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म वर्तमान जन्ममें पुण्य एवं पापके रूपमें सामने आता है। उसे भोगनेमें प्राणी परवश हैं—उन्हें वह अवश्य भोगना पड़ता है। प्रत्येक जन्ममें प्राणियोंद्वारा कर्मसंचय होता रहता है। जो क्रियमाण कर्म है, उसीको 'वर्तमान' कर्म कहते हैं। देहधारी जीव शुभ अथवा अशुभ-रूप कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं। शरीर धारण कर लेनेपर कालकी प्रेरणासे कर्मके क्रम चालू हो जाते हैं। प्रारब्धकर्म उसे समझना चाहिये, जिसका फल भोग लेनेपर फिर कुछ शेष नहीं रह जाता। प्राणियोंको प्रारब्धकर्म अवश्य भोगना पड़ता है—इसमें कोई संशय नहीं। राजेन्द्र ! बिलकुल निश्चित है कि पूर्वजन्ममें किये गये जितने अच्छे और बुरे कर्म हैं, उनके फल वर्तमान जन्ममें सामने आते हैं। उन्हें भोगना प्राणियोंके लिये अनिवार्य हो जाता है। महाराज ! मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और किन्नर सब-के-सब कर्म-भोगमें परवश हैं। देह धारण करनेमें कर्म ही मुख्य कारण है। कर्मके पूर्णतया समाप्त हो जानेपर प्राणियोंके जन्मकी गति समाप्त हो जाती है—इस विषयमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं करना चाहिये। राजन् ! इन्द्रादि देवता, दानव, यक्ष और गन्धर्व—ये सब-के-सब कर्मके अधीन हैं। प्राणी जीवनमें जो सुख और दुःख भोगता है, इसमें पूर्वजन्मकृत कर्मजनित प्रारब्ध ही कारण है। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि अनेक जन्मोंसे संचित जितने कर्म हैं, उनमेंसे क्रमशः एक-एक कर्मका भोग प्राणीके सामने समयानुसार आया करता है। यही नियम देवताओंके लिये भी है। प्रारब्धके इसी नियमके अनुसार इन्द्रको कष्ट भोगने पड़े।

राजन् ! नर और नारायण—ये दोनों धर्मके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार ले चुके हैं। भगवान् नारायणके ये अंश हैं। इन्हींका श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें प्राकट्य हुआ है। मुनिगण इस पौराणिक कथाका विवेचन कर चुके हैं। जिसमें अधिक शक्ति हो, उसे किसी देवताका अंश समझना चाहिये। जगत्में जो कोई भी बलवान्, भाग्यवान्, भोगवान्, विद्वान् अथवा दानशील होता है, उसे लोग देवताका अंश कहते हैं ! राजन् ! यही बात इन पाण्डवोंके विषयमें भी कही गयी है। केवल सुख और दुःख भोगनेके लिये ही प्राणियोंको देह धारण करना पड़ता है। शरीर पाकर सुख और दुःखके पचड़ेसे प्राणी कभी बच नहीं सकते। कोई भी प्राणी स्वतन्त्र नहीं है। प्रायः प्रतिक्षण दैव

अपना शासन जमाये रहता है। अतः पराधीन प्राणी जन्मने और मरनेके सुख एवं दुःखको भोगते रहते हैं। इस दैवका ही प्रभाव है कि पाण्डव वनवासी हुए थे। फिर उन्हें घरपर रहनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने अपनी भुजाओंके प्रतापसे राजसूय यज्ञ किया, जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। फिर वनमें जानेकी समस्या सामने आ गयी। उस समय उन्हें अपार कष्ट झेलने पड़े। राजन् ! देवता, मनुष्य सभीको कर्मफल भोगना पड़ता है। कर्मकी गति बड़ी गहन है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! समयके अनुसार जैसा युग होता है, वैसी ही प्रजा होती है। इस बातको कोई अन्यथा नहीं कर सकता; क्योंकि इसमें युगका धर्म ही प्रधान कारण है। जिन जीवोंका धर्ममें अनुराग था, उन्हें सत्ययुगमें जन्म प्राप्त हुआ था। जो धर्म तथा अर्थके अनुरागी थे, उनका जन्म त्रेतामें हुआ। धर्म, अर्थ और कामके प्रेमी जीवोंका द्वापरमें जन्म हो चुका है और अर्थ तथा कामके अनुरागी समस्त जीव इस कलियुगमें जन्मे हैं। राजेन्द्र ! युगका धर्म बार-बार बदला नहीं जा सकता। धर्म और अधर्मकी व्यवस्था काल ही करता है।

राजा जनमेजयने पूछा—महाभाग ! सत्ययुगसे सम्बन्ध रखनेवाले धार्मिक पुण्यात्मा जीव इस समय कहाँ ठहरे हैं ? परम आदरणीय पितामहजी ! साथ ही यह भी बताइये कि दान और व्रतमें निष्ठा रखनेवाले जो त्रेता एवं द्वापरके मुनि थे, वे इस समय कहाँ हैं ? दुराचारी, निर्लज्ज, पापमें रचे-पचे रहनेवाले, वेदकी निन्दा करनेवाले प्राणी जो इस कलियुगमें जन्म पाये हुए हैं, वे सत्ययुगमें कहाँ चले जायँगे ? महामते ! इन सभी प्रश्नोंका समाधान करनेकी कृपा कीजिये; क्योंकि युगधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले इस विषयको सम्यक् प्रकारसे सुननेकी मुझे बड़ी इच्छा लगी हुई है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! जो सत्ययुगी मानव इस जगत्में जन्म पाते हैं, वे बहुत-से पवित्र कार्य करनेके पश्चात् पुनः देवलोकमें ही चले जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—सभी वर्णके मानव अपने-अपने धर्ममें तत्पर रहकर उत्तम कर्मके फलस्वरूप देवलोकोंमें स्थान पाते हैं। सत्य, दया, दान, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम, किसीसे भी द्वेष न रखना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें समताका व्यवहार करना—यही सत्ययुगके धर्मकी साधारण परिभाषा है। इसके अनुसार आचरण करके प्राणी पुनः स्वर्गमें प्रस्थित हो जाते हैं। यहाँतक कि धोबी आदि नीच वर्णवालोंको भी धर्मपालन करनेसे स्वर्ग सुलभ हो जाता है। राजन् ! त्रेता और द्वापर-युगमें भी इसी प्रकारकी व्यवस्था होती है। इस कलिमें प्रायः पापी मनुष्य जन्म पाते हैं। इनके लिये नरक ही ठौर है। ये नरकमें तबतक रहते हैं, जबतक दूसरा युग नहीं आता। फिर मानव होकर मर्त्यलोकमें भूतलपर आते हैं। राजन् ! जब कलिकी अवधि पूरी हो जाती है और सत्ययुगका आरम्भ होता है, उस समय पुण्यात्मा मानव स्वर्गसे आकर पृथ्वीकी शोभा बढ़ाने लगते हैं। ऐसे ही जब द्वापर समाप्त हुआ और कलि आ गया, तब सम्पूर्ण पापी मानव नरकसे खिसककर पृथ्वीपर छा जाते हैं। कलिका स्वरूप ही पापमय है, अतः इस युगकी प्रजा भी उसी प्रकारकी होती है। कभी-कभी प्राणियोंमें दैवयोगसे विपरीत व्यवस्था भी हो सकती है।

कितने ही मानवोंका भी आचरण भ्रष्ट हो जानेसे कलिमें जन्म पाना अनिवार्य हो जाता है और अपने कर्मके प्रभावसे उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

जनमेजयने पूछा—महाभाग ! किस युगमें कैसा धर्मका स्वरूप है—इस सम्पूर्ण विषयको विशेषरूपसे बतानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी बोले—नृपशार्दूल ! सुनो, मैं इस विषयमें तुम्हें एक दृष्टान्त दे रहा हूँ। साधु पुरुषोंके चित्त भी युगके प्रभावसे प्रभावित होकर भ्रममें पड़ जाते हैं। राजेन्द्र ! जैसे तुम्हारे पिताजी थे। यद्यपि धर्ममें उनकी निष्ठा थी, महात्मा पुरुष थे। राजन् ! फिर भी कलिके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी और वे ब्राह्मणका तिरस्कार करनेमें तत्पर हो गये; अन्यथा ययातिके उच्च कुलमें उत्पन्न हुए वे क्षत्रिय नरेश एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प क्यों लपेटते ? राजन् ! यह सब युगका प्रभाव है। राजन् ! यह निश्चय है कि सत्ययुगमें ब्राह्मण वेदके पूर्ण विद्वान् थे। उनके द्वारा निरन्तर भगवती जगदम्बाकी आराधना होती थी। भगवतीका दर्शन करनेके लिये उनका मन सदा लालायित रहता था। गायत्रीके ध्यान, प्राणायाम और जपमें वे अपना सारा समय व्यतीत करते थे। मायाबीजका जप करना उनका प्रधान कार्य था। प्रत्येक गाँवमें शक्ति-मन्दिरका उद्घाटन हो—इस विषयकी उनके मनमें बड़ी उत्सुकता थी। प्रायः सब लोग सत्य, दया और शौचसे युक्त होकर अपना कार्य सम्पन्न करते थे। तत्त्वज्ञानके पारगामी उन ब्राह्मणोंद्वारा जो भी कर्म होता था, उसमें सत्य, शौच और दया—ये तीनों गुण निहित रहते थे। सत्ययुगके क्षत्रियोंका प्रधान कर्म था—प्रजाओंका भरण-पोषण करना। वैश्य-लोग सदा खेती, व्यापार और गौकी सेवामें तत्पर रहते थे। राजन् ! उस पुण्यमय सत्ययुगके शूद्रोंके मनमें सदा यही भावना रहती थी कि हम दूसरोंकी सेवा करें। उस श्रेष्ठ युगमें प्रायः सभी वर्ण भगवती शक्ति जगदम्बाकी पूजा करते थे।

धर्मकी यही स्थिति त्रेतामें भी रही; परंतु कुछ ह्रास हो गया था। सत्ययुगकी जो स्थिति थी, वह द्वापरमें विशेषरूपसे कम हो गयी। राजन् ! उन प्राचीन युगोंमें जो राक्षस समझे जाते थे, वे कलिमें ब्राह्मण माने जाते हैं, क्योंकि अबके ब्राह्मण प्रायः पाखण्ड करनेमें तत्पर रहते हैं। दूसरोंको ठगना, झूठ बोलना और वैदिक धर्म-कर्मोंसे अलग रहना—कलियुगी ब्राह्मणोंका स्वाभाविक गुण बन गया है। वे कभी वेद नहीं पढ़ते। शूद्रोंकी सेवामें तत्पर रहते हैं। दम्भ करनेवाले लोग कलियुगमें चतुर कहलाते हैं। ब्राह्मणोंमें अभिमान भरा रहता है। अनेक प्रकारके असत्-धर्मोंके प्रचार करनेवाले कितने ही ब्राह्मणोंका ऐसा स्वभाव बन गया है कि वे वेदोंकी निन्दा करते हैं, उनके मनमें क्रूरता भरी रहती है, वे धर्मका कभी पालन नहीं करते और व्यर्थ वाद-विवादमें लगे रहते हैं। राजन् ! जैसे-जैसे कलिकी वृद्धि होती है, वैसे-वैसे ही सत्यमूलक धर्मका अभाव होता चला जाता है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी इसी प्रकारसे अधार्मिक हो जाते हैं। यही दशा कलियुगमें इतर वर्णोंकी भी है। पाप करने और झूठ बोलनेमें किसीको कोई हिचक नहीं रहती।

राजन् ! शूद्रके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कलियुगी ब्राह्मण सदा प्रतिग्रह लेनेमें तत्पर

रहेंगे। कलिके अधिक समय व्यतीत हो जानेपर स्त्रियोंमें स्वेच्छाचार बढ़ जायगा। वे काम, लोभ और मोहमें रची-पची रहेंगी। राजन्! नीच स्वभाववाली वे स्त्रियाँ झूठी और फूहर बातें बका करेंगी। उन्हें निरन्तर क्लेश भोगने पड़ेंगे। अपने पतिसे वञ्चना करनेवाली कलियुगी स्त्रियोंके मुखसे धर्मकी बड़ी-बड़ी ऊँची बातें निकलेंगी। कलियुगकी दुराचारिणी स्त्रियोंके ये लक्षण हैं। राजन्! खान-पान शुद्ध होनेसे चित्तकी शुद्धि होती है। राजेन्द्र! चित्त शुद्ध होनेपर धर्मका विकास होना अनिवार्य है। जब सदाचारमें संकरता आ जाती है, तब इस दोषसे धर्म भी संकर हो जाता है और जब धर्म संकर हो गया, तब वर्णसंकरकी उत्पत्ति बिलकुल निश्चित है। राजन्! सम्पूर्ण धर्मोंसे हीन कलियुगमें इसी प्रकारके प्राणी होते हैं। कलिका यह स्वभाव ही है। राजेन्द्र! इस कलिके स्वभावसे प्रभावित निरन्तर पाप करनेवाले मनुष्योंका साधारण उपायसे प्रायश्चित्त भी नहीं हो सकता।

जनमेजयने पूछा—भगवन्! आप समस्त धर्मोंके ज्ञाता हैं। आपने सम्पूर्ण शास्त्रोंका गहरा अध्ययन किया है। इस अधर्मबहुल कलिमें मनुष्योंकी क्या गति होगी? यदि इसके परिमार्जनका कोई उपाय हो तो मुझे दया करके उसे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—महाराज! इसके लिये केवल एक ही उपाय है, दूसरा नहीं। वह उपाय यह है कि सम्पूर्ण दोषोंसे छूटनेके लिये भगवती जगदम्बाके चरण-कमलोंका चिन्तन करे। राजन्! पापोंको भस्म करनेके लिये भगवतीके नाममें जितनी शक्ति है, उतने तो पाप हैं ही नहीं, फिर डरनेकी क्या आवश्यकता है। यदि खेल-ही-खेलमें विवशतापूर्वक किसीके मुखसे भगवती जगदम्बाका नाम उच्चरित हो गया तो उस नामके प्रभावसे प्राणीको क्या-क्या मिल सकता है—इसे जाननेमें रुद्र आदि सभी देवता असमर्थ हैं।* राजन्! श्रीदेवीके नामोंका स्मरण करना ही पापोंका प्रायश्चित्त है, अतएव कलिके भयसे भीत होकर मानव किसी पुण्य-क्षेत्रमें निवास करे। वहाँ रहकर निरन्तर भगवती जगदम्बाके नामका चिन्तन करता रहे। सम्पूर्ण प्राणी-पदार्थोंसे विरक्त होकर इस संसारसे मुक्त हो जाय। जो प्राणी भक्तिपूर्वक भगवती जगदम्बाको प्रणाम करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। राजन्! समस्त शास्त्रोंके इस रहस्यका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर चुका। तुम इन सभी विषयोंपर भलीभाँति विचार करके भगवतीके चरण-कमलकी आराधनामें लग जाओ। अजपा नामसे विख्यात गायत्री-मन्त्र भगवती जगदम्बाका ही नाम है। प्रायः सम्पूर्ण मानव इसका निरन्तर जप करते हैं, किंतु मायासे मोहित होनेके कारण इसकी विशिष्ट महिमा समझमें नहीं आती। इसे जो साधारण मन्त्र जानकर जप करते हैं, उनकी मुक्ति नहीं होती। ब्राह्मण अपने हृदयमें स्थान देकर इस गायत्री-

---

* न सन्त्यघानि तावन्ति यावती शक्तिरस्ति हि। नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद् भीतिः कुतो नृप॥
अवशेनापि यन्नाम लीलयोच्चरितं यदि। किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः॥
(६।१२।५८-५९)

मन्त्रका जप करते हैं, परंतु महिमा न जाननेसे वे अभीतक मुक्त नहीं हुए—इसमें महामायाके प्रभावकी ही विशेषता है।

राजन्! तुमने युगधर्मकी व्यवस्थाके विषयमें जो कुछ पूछा था, उसके उत्तरमें ये सारी बातें बता दीं। फिर आगे क्या सुनना चाहते हो?

राजा जनमेजयने कहा—मुनिवर! अब आप मुझे पृथ्वीके उन पवित्र तीर्थों, क्षेत्रों और नदियोंको बतलानेकी कृपा करें, जहाँ देवताओं और मानवोंको जाना उचित है। साथ ही जिन तीर्थोंमें स्नान और दान करनेसे जैसा फल मिलता है तथा तीर्थयात्राकी जो विधि एवं विशेष नियम हैं, वे भी बतला दें।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सुनो, मैं उन विविध तीर्थोंका वर्णन करूँगा, जहाँ देवियोंके विशाल मन्दिर शोभा पा रहे हैं। नदियोंमें गङ्गाको सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, कावेरी, चन्द्रभागा, पुण्या, वेत्रवती, चर्मण्वती, सरयू, तापी और साभ्रमती भी गङ्गा-जैसी बड़ी नदियाँ हैं। राजन्! इन नदियोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों छोटी-छोटी नदियाँ हैं। इन नदियोंमें समुद्रतक पहुँचनेवाली नदियाँ अधिक पवित्र मानी जाती हैं। जो समुद्रतक नहीं जातीं—उन्हें अल्पपुण्या माना है। समुद्रगामिनी नदियोंमें भी जिनमें सदा अथाह जल भरा रहता है, वे अधिक पवित्र हैं। सावन और भादों—इन दो महीनोंमें सभी नदियाँ रजस्वला हो जाती हैं; क्योंकि बरसातके ग्रामीण गंदे जल बहकर उनमें चले आते हैं।

पुष्कर, कुरुक्षेत्र और धर्मारण्य—ये परम पवित्र क्षेत्र माने जाते हैं। ऐसी ही महिमा प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदारण्यकी भी बतायी गयी है। श्रीशैल, गन्धमादन और सुमेरु—ये पुण्यमय पर्वत हैं। अनेक सरोवरोंमें मानसरोवर सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है। बिन्दुसर और अच्छोदसरको भी परम पावन मानते हैं। आत्मचिन्तन करनेवाले मुनियोंके बहुत-से आश्रम उन सरोवरोंकी शोभा बढ़ाते हैं। बदरिकाश्रम अत्यन्त पवित्र स्थान है—यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसी स्थानपर रहकर नर और नारायण नामक दो मुनियोंने कठोर तपस्या की है। वामनाश्रम और शतयूपाश्रम भी प्रसिद्ध हैं। जो मुनि जहाँ रहकर तपस्या कर चुके हैं, वह स्थान उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। राजन्! इस प्रकार असंख्य पवित्र स्थान भूमण्डलपर हैं। मुनियोंने इन सबको अत्यन्त पावन बतलाया है। भूपते! इन स्थानोंमें प्रायः सर्वत्र भगवती जगदम्बाके मन्दिर हैं। कुछ ऐसे तीर्थ भी हैं, जिनका नियमतः दर्शन कर लेनेसे पापोंका उच्छेद हो जाता है। उन तीर्थोंका प्रसङ्ग आगे चलकर वर्णन करूँगा।

राजन्! दान, व्रत, यज्ञ और तपस्या—ये सभी पुण्यमय कर्म हैं—इनका भी संक्षेपसे निरूपण होगा। तीर्थ, तप और दान द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मनः-शुद्धिके ऊपर निर्भर हैं अन्यथा ये समुचित फल नहीं दे सकते। राजन्! द्रव्यशुद्धि और क्रियाशुद्धि तो कदाचित् मिल भी सकती है, परंतु मनकी शुद्धि प्रायः सबके लिये दुर्लभ है; क्योंकि यह चञ्चल मन अनेक विषयोंमें चक्कर लगाया करता है। राजन्! जो मन भाँति-भाँतिके दुर्भावोंमें अटका हुआ है, वह शुद्ध कैसे हो सकता है? काम, क्रोध, लोभ, मद और अहंकार—ये सभी तप,

तीर्थ एवं व्रतमें विघ्न डालनेवाले हैं। अतः ऐसा व्यवहार बना लेना चाहिये कि अपने द्वारा प्राणियोंकी हिंसा न हो, मुखसे सत्य वाणी निकले, कभी चोरी न हो, मन पवित्र रहे और इन्द्रियाँ काबूमें रहें। राजन्! यदि अपने धर्मका पालन किया जाय तो उससे सम्पूर्ण तीर्थोंका फल मिल सकता है। मार्गमें जाते समय संसर्ग-दोषके कारण नित्यकर्मका परित्याग कर देनेसे तीर्थयात्रा निष्फल हो जाती है। अधिक नहीं, तो पाप ही पल्ले बँध जाते हैं। राजन्! यह निश्चय है कि तीर्थ देहसम्बन्धी मैलको धोकर साफ कर देते हैं; किंतु मनके मैलको धो देनेके लिये उनमें शक्ति नहीं है। चित्तशुद्धि-तीर्थ गङ्गा आदि तीर्थोंसे भी अधिक पवित्र माना जाता है। यदि भाग्यवश चित्तशुद्धि-तीर्थ सुलभ हो जाय तो मानसिक मलके धुल जानेमें कोई संदेह नहीं। परंतु राजन्! इस चित्तशुद्धि-तीर्थको प्राप्त करनेके लिये ज्ञानी पुरुषोंके सत्सङ्गकी विशेष आवश्यकता है। वेद, शास्त्र, व्रत, तप, यज्ञ और दानसे चित्तशुद्धि-तीर्थका प्राप्त होना बहुत कठिन है। वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र थे। उन्होंने वेद और विद्याका सम्यक् प्रकारसे अध्ययन किया था। गङ्गाके तटपर निवास करते थे। तथापि द्वेषके कारण विश्वामित्रके साथ उनका वैमनस्य हो गया और दोनोंने परस्पर शाप दे दिये थे और उनमें भयंकर युद्ध होने लगा था।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! दोनों मुनि आपसमें लड़-झगड़ रहे थे—यह देखकर लोक-पितामह ब्रह्माजी वहाँ पधारे। परम दयालु सम्पूर्ण देवतागण भी ब्रह्माजीके साथ आये थे। पितामह ब्रह्माजीने वसिष्ठ और विश्वामित्र—दोनोंको समझा-बुझाकर युद्धसे विरत किया। साथ ही, वे दोनों मुनि आपसमें जो एक-दूसरेको

शाप दे चुके थे, उसका भी परिमार्जन कर दिया। तदनन्तर समस्त देवता अपने स्थानपर पधार गये। वसिष्ठ और विश्वामित्र भी अपने-अपने आश्रमपर चले गये। ब्रह्माजीके उपदेशके प्रभावसे उन दोनों मुनियोंमें फिर प्रेमभाव हो गया।

राजन्! इस प्रकार वसिष्ठ और विश्वामित्रका परस्पर युद्ध छिड़ गया था, जिससे उन दोनोंको ही महान् कष्ट भोगना पड़ा। नरेन्द्र! दानव, मानव एवं देवयोनिसे सम्बन्ध रखनेवाला कौन ऐसा व्यक्ति जगत्‌में है, जो अहंकारपर विजय प्राप्त करके निरन्तर सुखसे समय व्यतीत करता हो। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये भी चित्तका शुद्ध होना बड़ा कठिन है। अतः सम्यक् प्रकारसे चित्तको शुद्ध कर लेना ही परम आवश्यक है। अन्यथा तीर्थ, सत्य, दान तथा धर्मके जितने साधन हैं, वे सब-के-सब कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते।

श्रद्धा भी तीन प्रकारकी बतलायी गयी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। धर्म और कर्ममें संलग्न प्राणियोंके हृदयमें इनका स्थान

निश्चित रहता है। यथोक्त फल देनेवाली सात्त्विकी श्रद्धा जगत्में प्रायः दुर्लभ है। राजसी श्रद्धा भी विधिपूर्वक बनी रहे तो सात्त्विकी श्रद्धाका आधा फल उसे मिल सकता है। राजेन्द्र ! काम और क्रोधके परायण मनुष्योंमें जो तामसी श्रद्धा स्थान जमाये रहती है, उससे किसी प्रयोजनकी सिद्धि नहीं हो सकती। उससे किसी प्रकारकी बड़ाई मिलना भी असम्भव है। अतएव सत्संग एवं वेदान्त-श्रवण आदिके प्रभावसे चित्तकी वासनाओंको दूर करके तीर्थोंमें रहनेकी व्यवस्था करनी चाहिये। वहाँ रहकर भगवती जगदम्बाकी निरन्तर आराधना करनी चाहिये। कलिके दोषसे भयभीत होकर सदा भगवतीके नामोंका उच्चारण करते रहना चाहिये। भगवतीके लीला-यशोंका गान और उनके चरणकमलोंका ध्यान करना ही प्रधान कर्तव्य है। इस प्रकारका सत्-कर्मशील मनुष्य कभी भी कलिके भयसे आक्रान्त नहीं हो सकता। यह साधन पातकी जनको भी बड़ी सुगमताके साथ संसारसे मुक्त कर देनेवाला है।

(अध्याय १०—१३)

☆

## वसिष्ठजीके मैत्रावरुणि नामका कारण और निमिके नेत्र-पलकोंमें रहनेकी कथा

राजा जनमेजयने पूछा—महाभाग ! वसिष्ठजी तो ब्रह्माजीके पुत्र माने जाते हैं। उनका नाम मैत्रावरुणि कैसे पड़ गया ? क्या उन्होंने ऐसा कर्म किया था अथवा उनमें ऐसे ही गुण थे, जिससे उनकी यह संज्ञा पड़ गयी ? मुनिवर ! आप सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। वसिष्ठजी मैत्रावरुणि क्यों कहलाते हैं—इसका कारण मुझे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजेन्द्र ! सुनो, वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र होते हुए भी निमिके शापसे पुनर्जन्म लेनेके लिये विवश हो गये और उन महान् तेजस्वी मुनिको वह शरीर त्याग देना पड़ा। राजन् ! मित्र और वरुणके यहाँ उनकी उत्पत्ति हुई थी। इसीसे इस जगत्में सर्वत्र 'मैत्रावरुणि' के नामसे वे विख्यात हुए।

राजाने पूछा—ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर वसिष्ठ बड़े धार्मिक पुरुष थे। उन्हें राजा निमिने क्यों शाप दे दिया ? मुने ! वसिष्ठजी कभी किसीका कुछ भी अनिष्ट नहीं करते थे, फिर राजाने उन्हें कैसे शाप दिया ? प्रभो ! आप बड़े धर्मज्ञ पुरुष हैं। शापका मूल कारण बतानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इसका निर्णीत कारण तो मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। तीन प्रकारके मायिक गुणोंसे यह सारा जगत् व्याप्त है। राजा धर्मपूर्वक राज्य करें। तपस्वी लोग तपस्या करें—यह स्वाभाविक कर्म है। किंतु मायिक गुणोंसे विद्ध होनेके कारण जैसा शुद्ध भाव होना चाहिये, वैसा नहीं हो पाता। शासक राजाओंमें काम और क्रोध भरे रहते हैं। कठिन तपस्या करनेवाले मुनियोंके हृदयसे भी लोभ और अहंकारकी मात्रा पूरी नष्ट नहीं हो पाती। फिर उत्तम फल कैसे मिले ? राजन् ! जैसे ब्राह्मण थे वैसे ही क्षत्रिय। दोनों राजस गुणोंसे ओत-प्रोत होकर यज्ञ कर रहे थे; इसी बीच वसिष्ठने निमिको और निमिने वसिष्ठको शाप दे दिया और इस प्रकार वे दोनों अपार संकटमें पड़ गये। भूपाल ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मनःशुद्धि प्राणियोंके लिये बड़ी दुर्लभ वस्तु है।

महामायाकी अदम्य शक्तिका यह प्रभाव है। कोई कभी भी उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जिसके हृदयमें जिस क्षण भगवतीकी कृपापर विश्वास हो जाता है, उसका उसी क्षण उद्धार हो जाता है। त्रिलोकीमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो भगवती महामायाका रहस्य पूरा समझता हो, तथापि वे भक्तके वशमें हो ही जाती हैं—यह निश्चित बात है। अतएव भगवती जगदम्बाकी भक्ति करना परम आवश्यक है। इससे अन्तःकरणका दोष भी समूल नष्ट हो जाता है। हाँ, कहीं भक्तिमें राग-द्वेष और दम्भ आ गया तब तो वह उलटे नाशका कारण बन जाती है। इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुए एक राजा थे, उनका नाम निमि था। वे बड़े सुन्दर, गुणी, धर्मज्ञ और प्रजाके प्रेमी थे। कभी झूठ नहीं बोलते थे। दान करना उनका नित्यनियम था। यज्ञ करनेमें उनकी विशेष रुचि थी। वे बड़े दानी और पुण्यात्मा थे। उन बुद्धिमान् निमिको इक्ष्वाकुका बारहवाँ पुत्र माना जाता है। वे सदा प्रजाकी रक्षामें तत्पर रहते थे। गौतम मुनिके आश्रमके पास ही जयन्तपुर नामक एक नगर था। उसीमें उन्होंने अपने निवासकी व्यवस्था की थी; क्योंकि वे ब्राह्मणोंके बड़े शुभ-चिन्तक थे। जिसमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी जाती हैं तथा जो बहुत समयतक पूरा होता है, ऐसा राजसी यज्ञ करनेका उनके मनमें विचार उत्पन्न हो गया। राजन्! तब निमिने अपने पिता इक्ष्वाकुसे आज्ञा लेकर महात्माओंके कथनानुसार यज्ञकी सारी सामग्री तैयार करवा ली। भृगु, अङ्गिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह और क्रतु आदि जितने विशेषज्ञ, वेदके पारगामी, यज्ञ करानेमें कुशल तपस्वी मुनि थे, उन सबके यहाँ निमन्त्रण भेज दिया। जब सम्पूर्ण उपयोगी सामान एकत्रित हो गया, तब धर्मज्ञ राजा निमिने अपने गुरु वसिष्ठजीकी पूजा की और बड़ी नम्रताके साथ कहा—'मुनिवर! कृपासिन्धो! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। आप इसके आचार्य हो जाइये। आप सर्वज्ञानी पुरुष मेरे गुरु हैं। अतः अब यह मेरा कार्य आपके ऊपर निर्भर है। यज्ञ-सम्बन्धी सभी वस्तुओंका संग्रह कराकर मैंने इनकी शुद्धि करा ली है। मेरे मनमें ऐसा विचार है कि मैं पाँच वर्षके लिये यज्ञमें दीक्षित हो जाऊँ। मैं विधिपूर्वक वह यज्ञ करना चाहता हूँ, जिसमें भगवती जगदम्बाकी विशेषरूपसे आराधना की जाय; क्योंकि उनकी प्रसन्नता ही मेरे यज्ञका उद्देश्य है।'

राजा निमिकी उपर्युक्त बातें सुनकर वसिष्ठजीने उनसे कहा—'राजेन्द्र! तुमसे पहले ही मुझको इन्द्रने यज्ञ करानेके लिये वरण कर लिया है। पराशक्ति नामक यज्ञ करनेके लिये वे तैयार हैं। उन्होंने पाँच सौ वर्षतक यज्ञ करनेकी दीक्षा ले ली है। अतएव राजन्! तबतक तुम इन सामग्रियोंको सुरक्षित रखो। इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर उस कार्यसे निवृत्त होकर मैं तुरंत तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगा। उस समयतक तुम्हें सब सामग्री सुरक्षित रखनी चाहिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! यज्ञके निमित्त मैं बहुत-से अन्य मुनियोंको भी निमन्त्रित कर चुका हूँ। यज्ञकी सारी वस्तुएँ भी जुट गयी हैं। फिर इतने लम्बे समयतक मैं कैसे उन्हें सँभाले रहूँगा। गुरुदेव! आप इस इक्ष्वाकुवंशके नित्य आचार्य हैं। वेदोंका कोई भी अंश आपसे अविदित नहीं है। द्विजवर! आप क्यों इस समय मेरा कार्य न कराकर अन्यत्र जानेके लिये तैयार हो रहे हैं? ऐसा काम करना तो आपके लिये शोभा नहीं देता।

राजा निमिके इस प्रकार रोकनेपर भी वे इन्द्रके यज्ञमें चले गये। इससे राजाका मन बिलकुल उदास हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने गौतम मुनिको अपना आचार्य बनाया और हिमालय पर्वतके संनिकट समुद्रके किनारे जाकर वे यज्ञमें दीक्षित हो गये। राजन्! महाराज निमिने उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटीं। उन्होंने बहुत-सा धन और गौएँ देकर ऋत्विजोंकी पूजा की। प्रायः सभी बड़े प्रसन्न थे। इधर, पाँच सौ वर्षोंकी अवधिवाला इन्द्रका यज्ञ जब समाप्त हो गया, तब वसिष्ठजी राजा निमिका यज्ञ देखनेके विचारसे वहाँ आये। 'राजासे भेंट कर लूँ'—यों सोचकर कुछ देरतक वे वहाँ रुके रहे। उस समय राजा निमि सोये हुए थे। उन्हें गहरी नींद आ गयी थी। नौकरोंने राजाको जगाया नहीं, जिससे वे मुनिके पास नहीं आ सके। इससे वसिष्ठजीने सोचा कि राजा मेरा अपमान कर रहा है। अतः उनके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया। निमिका सेवामें उपस्थित न होना ही मुनिके रोषका कारण बन गया था। क्रोधके वशीभूत होकर उन्होंने राजाको शाप दे दिया। कहा—'तुमने मुझ-जैसे अपने गुरुको छोड़कर दूसरेको गुरु बना लिया। राजन्! यों मेरा अपमान करके तुम यज्ञमें दीक्षित हो गये हो। अरे मूर्ख! मेरे मना करनेपर भी तुम रुक न सके, अतः आजसे तुम विदेह हो जाओगे। राजन्! तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय—विदेह हो जाओ।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! मुनिका यह शाप सुनकर सेवकोंने तुरंत महाराज निमिको जगाया और वसिष्ठजी बड़े कुपित हो गये हैं—इसकी सूचना उन्हें दी। राजाके अन्तःकरणमें कोई दुर्भावना नहीं थी। वे तुरंत क्रोधमें भरे हुए मुनिके पास आ गये। उन्होंने मीठे शब्दोंमें युक्तिपूर्वक सारगर्भित बातें आरम्भ कीं। कहा—'धर्मके पूर्ण ज्ञाता गुरुदेव! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं आपका यजमान हूँ। मेरे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी आपने मुझे ठुकरा दिया और लोभमें पड़कर आप अन्यत्र चले गये। द्विजवर! ऐसा निन्दित कर्म करनेपर भी आपके मनमें संकोच नहीं हुआ? विप्रवर! ब्राह्मणको तो सदा संतुष्ट रहना चाहिये—इस धार्मिक सिद्धान्तको आप भलीभाँति जानते हैं। आप साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं। वेद और वेदाङ्गका सर्वोत्कृष्ट ज्ञान आपको प्राप्त है। ब्राह्मणके धर्मकी गति बड़ी गहन है—इसे समझना अत्यन्त कठिन कार्य है। आप इस सूक्ष्म धर्मको न समझनेके कारण ही मुझे अपना अपराधी जानकर व्यर्थ शाप दे रहे हैं। विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि क्रोधको सदाके लिये त्याग दें; क्योंकि वह चाण्डालसे भी बढ़कर अस्पृश्य है। इस क्रोधका ही परिणाम है कि आपने अकारण मुझे शाप दे दिया। अतः मैं भी आपको यह शाप दे रहा हूँ कि 'आपका भी यह

क्रोधभाजन शरीर शीघ्र नष्ट हो जाय'। इस प्रकार मुनिवर वसिष्ठ और राजा निमि—दोनों परस्पर शापके भागी बन गये। शाप लग जानेपर उन दोनोंके चित्त चिन्तित हो उठे। वसिष्ठजीके मनमें बड़ी खलबली मच गयी। अतः वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये और राजाने जो कठिन शाप दे दिया था, वह उनसे प्रार्थनापूर्वक कह सुनाया।

वसिष्ठजीने कहा—पिताजी ! राजा निमिने मुझे शाप दे दिया है कि तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय। शरीरके शान्त होनेमें कष्ट होना स्वाभाविक है, किंतु यह विषम परिस्थिति मेरे सामने आ ही गयी। अतः अब मुझे क्या करना चाहिये ? मैं पुनः शरीर धारण करूँगा, तो उस समय मेरे पिता कौन होंगे— यह बतानेकी कृपा करें। मैं चाहता हूँ दूसरे शरीरसे सम्बन्ध होनेपर भी मेरी स्थिति पूर्ववत् ही रहे। मेरे इस शरीरमें जैसा ज्ञान सुलभ है, वैसा ही दूसरा शरीर पानेपर भी मुझे प्राप्त रहे। महाराज ! आप बड़े शक्तिशाली हैं। अतः मेरी प्रसन्नताके लिये आप ऐसी ही व्यवस्था करनेकी कृपा करें !

वसिष्ठजीकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उन अपने मानस पुत्रसे कहा—'मुने ! तुम मित्रावरुणके तेजमें प्रविष्ट होकर शान्त पड़े रहो। समय आनेपर उन्हींके द्वारा तुम प्रकट हो जाओगे। तुम अयोनिज पुत्र होओगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है एवं नवीन देह पानेपर भी तुम्हें ऐसी ही धार्मिक बुद्धि प्राप्त होगी। तुम प्राणियोंके सुहृद्, वेदवेत्ता, सर्वज्ञानी और सबसे सम्मान प्राप्त करनेके अधिकारी होओगे।'

लोकपितामह ब्रह्माजीके श्रीमुखसे इस प्रकारकी बातें स्पष्ट हो जानेपर वसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और प्रदक्षिणा करके वे वरुणके आश्रमपर चले गये। सदा एक साथ रहनेवाले मित्र और वरुण—दोनों ऋषि वहाँ विराजमान थे। वसिष्ठजी उनके शरीरमें प्रविष्ट हो गये—वे अपने श्रेष्ठ स्थूल शरीरका परित्याग करके केवल सूक्ष्म शरीरसे मित्रावरुणके शरीरमें प्रवेश कर गये। राजन् ! एक समयकी बात है—उर्वशी नामक परम सुन्दरी अप्सरा अपनी सखियोंके साथ स्वेच्छापूर्वक मित्रावरुणके आश्रमपर आयी। उसे देखकर मित्रावरुणका चित्त चलायमान हो गया। वे उससे कहने लगे—'सुन्दरी ! तुम्हारा रूप बड़ा ही आकर्षक है। तुम देवकन्या हो, अतः तुम हमें वरण कर लो। वरवर्णिनी ! इस आश्रमपर स्वच्छन्दता-पूर्वक आनन्दका अनुभव करो।'

इस प्रकार कहनेपर वह उर्वशी अप्सरा कुछ समयतक वहाँ ठहर गयी। उस सुन्दरी अप्सरासे मुनिका अभिप्राय अविदित न रहा। उनके प्रति प्रेम प्रकट करते हुए उसने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया। संयोगवश वहीं एक खुले मुखका घड़ा पड़ा हुआ था। उर्वशीसे बातचीत हो रही थी, इतनेमें ही मित्रावरुणका वीर्य स्खलित होकर उस घड़ेमें गिर पड़ा। राजन् ! उसीसे अत्यन्त मनोहर दो मुनिकुमार प्रकट हो गये। प्रथम बालकका नाम अगस्ति पड़ा और दूसरेका वसिष्ठ !

मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्न ये दोनों मुनि महान् तपस्वी एवं ऋषियोंमें प्रधान हुए। अगस्तिमें तपस्याकी अटूट श्रद्धा थी। अतः बचपनमें ही वे वनमें चले गये। दूसरे बालक वसिष्ठको इक्ष्वाकुने पुरोहितके रूपमें वरण कर

लिया। राजन्! तुम्हारा यह वंश सुखी रहे—इस विचारसे महाराज इक्ष्वाकुने वसिष्ठके

पालन-पोषणकी समुचित व्यवस्था कर दी। राजन्! ये सब कथाएँ तुम्हें सुना चुका। इस प्रकार शाप लग जानेके कारण वसिष्ठजीको मित्रावरुणके कुलमें दूसरा शरीर धारण करना पड़ा—यह प्रसंग इससे स्पष्ट हो जाता है।

राजा जनमेजयने कहा—मुने! आपने वसिष्ठके देहधारण करनेकी बात तो बतला दी। अब निमिको पुनः शरीर कैसे मिला—यह प्रसंग भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! जैसे वसिष्ठजीको पुनः शरीर प्राप्त हो गया, वैसे ही शाप लगनेके पश्चात् राजा निमि पुनः शरीरधारी नहीं हुए। जिस समय मुनिने शाप दिया, उस समय राजा यज्ञमें दीक्षित थे। उन्होंने जितने ब्राह्मणोंको ऋत्विज्‌के रूपमें वरण किया था, वे सभी आपसमें विचार करने लगे—'अहो! ये धर्मात्मा नरेश यज्ञमें दीक्षित हैं। अभी यज्ञका काम अधूरा ही है। इसी बीच ये मुनिके शापसे जले जा रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थितिमें अब हमें क्या करना चाहिये।' तदनन्तर उन ऋत्विजोंने अनेक प्रकारके मन्त्रोंका प्रयोग करके महामना निमिके शरीरको सुरक्षित रखा। उनके श्वासकी गति समाप्त नहीं हो सकी। मन्त्रकी शक्तिसे निर्विकार आत्मा शरीरमें प्रतिष्ठित रहा। ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिकी पुष्पमालाओं और चन्दनोंसे उस आत्माको सुपूजित कर रखा था।

यज्ञ समाप्त हो जानेपर इन्द्रादि समस्त देवता वहाँ पधारे। राजन्! ऋत्विजोंने आये हुए उन सम्पूर्ण देवताओंकी समुचित स्तुति की। इससे वे परम प्रसन्न हो गये। तब उन ब्राह्मणोंने प्रार्थनापूर्वक राजाकी स्थिति देवताओंके सामने उपस्थित कर दी। अतः दुःखी नरेशके प्रति देवताओंने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन्! हम प्रसन्न हैं, तुम वर माँग लो। राजर्षे! तुम्हारे इस यज्ञके प्रभावसे तुम्हें सर्वोत्तम जन्म मिल सकता है। देवशरीर अथवा मानवशरीर जो भी तुम्हें अभीष्ट हो—प्राप्त कर सकते हो। जैसे तुम्हारे पुरोहित वसिष्ठ अपने सुख एवं सुविधाके अनुसार मर्त्यलोकमें शरीर धारण किये हुए हैं।' देवताओंके यों कहनेपर निमिकी आत्मा परम संतुष्ट होकर बोल उठी—'महाभाग देवताओ! मैं सदा जन्मने और मरने-वाले इस शरीरमें रहना बिलकुल पसंद नहीं करता। मैं चाहता हूँ, सम्पूर्ण प्राणी जिसके द्वारा देखते हैं, उसी वस्तुमें रहनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हो। अखिल प्राणियोंके नेत्रोंमें वायु बनकर मैं विचरा करूँ!' राजन्! जब निमिकी आत्माने देवताओंके सामने यों अपनी अभिलाषा प्रकट की, तब वे उससे कहने लगे—'महाराज! इसके लिये तुम सबपर शासन करनेवाली कल्याण-स्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी

प्रार्थना करो। तुम्हारे इस यज्ञसे वे परम प्रसन्न हैं। उन्हींकी कृपासे तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा।' देवताओंके यों कहनेपर निमिने अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंके द्वारा भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें देवीसे प्रार्थना की। इससे प्रसन्न होकर देवीने राजा निमिको साक्षात् दर्शन दिये। उनके विग्रहसे ऐसा प्रकाश फैल रहा था, मानो करोड़ों सूर्य एक साथ चमक रहे हों। प्रत्येक अङ्गसे सुकुमारता प्रकट हो रही थी। देवीकी ऐसी अपूर्व झाँकी पाकर सब-के-सब आनन्दमें निमग्न हो गये। सभी अपनेको सफल-मनोरथ समझने लगे। राजन्! देवीको प्रसन्न जानकर

निमिने उनसे वर माँगा—'माता! आप मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान देनेकी कृपा कीजिये, जिससे मैं मुक्त हो सकूँ और मेरी यह अभिलाषा है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके नेत्रोंमें ठहरनेका सुयोग मुझे प्राप्त हो।' भगवती जगदम्बिका निमिपर प्रसन्न तो थीं ही। उन्होंने उनसे कहा—'राजन्! तुम्हें शुद्ध ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा। अभी तुम्हारा प्रारब्ध-भोग समाप्त नहीं हुआ है। अतः समस्त चराचर प्राणियोंके नेत्रोंमें तुम्हें रहना होगा। तुम्हारे प्रभावसे ही प्राणियोंकी आँखोंमें पलक गिरनेकी शक्ति रहेगी। अतएव मनुष्य, पशु और पक्षी—ये पलक गिरानेवाले प्राणी कहलायेंगे। देवता इस स्थितिसे पृथक् हैं—पलकें न गिरनेसे उनकी 'अनिमिष' संज्ञा होगी।' राजन्! वर देनेके लिये पधारी हुई भगवती जगदम्बा यों निमिका मनोरथ पूर्ण करके मुनियोंसे मिलनेके पश्चात् वहीं अन्तर्धान हो गयीं।

देवीके पधार जानेपर वहाँ उपस्थित सम्पूर्ण मुनियोंने सम्यक् प्रकारसे परामर्श करके निमिके नष्ट होते हुए स्थूल शरीरको रखा और कोई राजकुमार उत्पन्न हो जाय, इस विचारसे उस शरीरके भीतर काष्ठ डालकर मन्त्र पढ़ते हुए उसे मथने लगे। साथ-ही-साथ मन्त्रपूर्वक हवन भी होता रहा। यों अरणि-मन्थन करनेपर एक सर्वलक्षणसम्पन्न बालककी उत्पत्ति हुई। वह

ऐसा जान पड़ता था, मानो दूसरे निमि ही स्वयं प्रकट हो आये हों। वही बालक अरणि-मन्थनसे प्रकट होनेके कारण मिथि और पिताके शरीरसे निकलनेके कारण जनक नामसे जगत्में विख्यात हुआ। निमिके विदेह होनेसे उनके

कुलमें जितने नरेश हुए, वे सभी 'विदेह' कहलाने लगे। इस प्रकार निमिसे राजा जनककी उत्पत्ति कही गयी है। उन्होंने गङ्गाके तटपर एक नगरी बसा ली, जो बड़ी ही मनोहर है। मिथिला नामसे वह नगर जगत्प्रसिद्ध है। इस वंशमें जो-जो राजा उत्पन्न होते हैं, उन सभीको 'जनक' की उपाधि मिलती है। उन परम ज्ञानी राजाओंको लोग 'विदेह' भी कहते हैं। राजन्! निमिकी यही उत्तम कथा है, जो मैं वर्णन कर चुका। इन्हें शाप लग जानेसे 'विदेह' हो जाना पड़ा था। ये बातें विशदरूपसे बतला दीं।

राजा जनमेजयने कहा—भगवन्! निमिने वसिष्ठजीको शाप दे दिया था, इसका कारण अभी आप बता चुके हैं। परंतु वसिष्ठजी ब्राह्मण थे और राजाने उन्हें अपना पुरोहित बना रखा था। फिर, ऐसे मुनिको राजाने शाप क्यों दे दिया। वसिष्ठजीको ब्राह्मण और गुरु समझकर भी राजा निमि अपना क्षमाभाव नहीं रख सके। इक्ष्वाकुकुलभूषण उन नरेशने धर्मके रहस्यको जानते हुए भी क्रोधवश वसिष्ठजीको, जो ब्राह्मण एवं गुरुके पदपर प्रतिष्ठित थे, क्यों शाप दे दिया ?

व्यासजी कहते हैं—राजन्! अजितेन्द्रिय व्यक्तिके लिये क्षमा बड़ी ही दुर्लभ वस्तु है। जगत्में क्षमाशील पुरुष मिल जायँ—यह कठिन बात है, सो भी अपकार करनेकी शक्ति रखते हुए। मुनिका स्वभाव होना चाहिये कि वह किसीमें आसक्ति न रखे तथा तपस्या करे। निद्रा और भूख-प्यासको जीतकर योगके अभ्यासमें तत्पर रहे। काम, क्रोध, लोभ और अहंकार—ये प्रबल शत्रु मानवके शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। मानव इन्हें समझ नहीं पाते। मुनि, ब्रह्माजीके पुत्र तथा अन्य बहुत-से तपस्वी हो चुके हैं। परंतु वे भी तीनों गुणोंसे अछूते नहीं रह सके। फिर मर्त्यलोकके मानवोंकी क्या चर्चा करें। महात्मा कपिलजी सांख्यशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता माने जाते हैं। योगाभ्यासमें ही उनका समय सदा व्यतीत होता था; किंतु दैवका विधान टाल न सकनेके कारण उनके द्वारा भी सगरके पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। अतएव राजन्! कार्य-कारणरूप अहंकारसे ही त्रिलोकीकी उत्पत्ति सिद्ध है, तो फिर मानव उसके गुणोंसे मुक्त कैसे हो सकता है।

सम्पूर्ण प्राणियोंके गुणोंके व्यवस्थापक भगवान् शंकर माने जाते हैं। उनकी इच्छाके अनुसार प्राणियोंमें कभी सत्त्वगुणकी अधिकता होती है, कभी राजस गुणकी तथा कभी तमोगुणकी। कभी सभी गुण समान होकर ही रहते हैं। यह परम प्रभु परमात्मा निर्गुण, निर्लेप, अविनाशी, अप्रमेय और सनातनस्वरूप हैं। इनकी झाँकी पानेमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी आँखें प्रायः असफल रहती हैं। इन्हींके समान इनके साथ विराजमान रहनेवाली परमाशक्ति भी हैं। चराचर जगत्की व्यवस्था करनेवाली इन देवीके मनपर तीनों गुणोंका प्रभाव नहीं पड़ सकता। अल्पबुद्धि मानवोंके लिये ये दुर्ज्ञेय हैं। परब्रह्म परमात्मा और पराशक्ति—इनमें किंचिन्मात्र भेद नहीं है। ये सदासे एक-स्वरूप हैं। यह जानकर मानव सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। यह ज्ञान मुक्तिका अचूक साधन है। वेदान्त इसे मुक्तकण्ठसे कह रहा है। इस त्रिगुणात्मक संसारमें जो इस रहस्यको जान गया, उसके मुक्त होनेमें कोई संदेह नहीं। ज्ञान भी दो प्रकारके बताये गये हैं। इनमें शाब्दिक ज्ञानको प्रथम

माना गया है। बुद्धिपूर्वक वेद और शास्त्रके अर्थपर पूर्ण विचार किया जाय तो यह ज्ञान सुलभ हो जाता है। बुद्धिकी कल्पनाके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुत-से अवान्तर भेद हो जाते हैं। राजन्! 'अनुभव' नामक दूसरे ज्ञानको बड़ा दुर्लभ मानते हैं। वह ज्ञान तब मिल सकता है, जब उसके जानकार पुरुषके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हो। भारत! केवल शब्द-ज्ञानसे कार्य सिद्ध होना असम्भव है। अतएव अनुभव-ज्ञानको दिव्य माना जाता है। शब्द-ज्ञानमें ऐसी योग्यता नहीं है कि उसके द्वारा अन्तःकरणका अन्धकार नष्ट हो सके। जैसे दीपककी चर्चा करनेसे अन्धकारका अभाव असम्भव है। कर्म वह है, जिससे प्राणी बन्धनमें न पड़े और विद्या उसे कहते हैं, जो मुक्तिकी साधिका हो। अन्य कर्म करनेसे केवल परिश्रम ही हाथ लगता है तथा विद्या केवल कारीगरी-मात्र सिखा देती है—प्राणी इनसे वास्तविक लाभ नहीं उठा पाते। सदाचारका पालन करना, दूसरेके हितमें तत्पर रहना, मनमें क्रोध न आने देना, क्षमा, धैर्य एवं संतोष रखना—ये विद्याके परम उत्तम फल माने गये हैं। राजन्! विद्या, तपस्या अथवा योगाभ्यासके बिना कामादि शत्रुओंका संहार कदापि नहीं हो सकता। काम-क्रोधादिका उद्गमस्थान चित्त बतलाया गया है। जब मन वशमें रहता है, तब ये सब विकार उत्पन्न नहीं हो पाते। राजन्! यही कारण है कि राजा निमि मुनिवर वसिष्ठके प्रति क्षमा नहीं कर सके। जिस प्रकार ययातिने अपराध करनेपर भी शुक्राचार्यको शाप नहीं दिया, वैसी स्थिति निमिकी नहीं थी।

पूर्व समयकी बात है—शुक्राचार्यने महाराज ययातिको शाप दे दिया था कि 'तुमपर अभी बुढ़ापा छा जाय।' राजाने कुछ भी न कहकर उनके शापजनित बुढ़ापेको स्वीकार कर लिया। ठीक ही है—कुछ राजा शान्त-स्वभावके होते हैं और किन्हींका हृदय बड़ा कठोर होता है। राजन्! सभीका स्वभाव एक-सरीखा नहीं होता। अतः किसको दोषी ठहराया जाय। प्राचीन समयकी बात है, बहुत-से भृगुवंशी ब्राह्मण हैहय-कुलके क्षत्रियोंके पुरोहित थे। क्रोधमें आकर उन क्षत्रियोंने कुछ भी नहीं सोचा और धनके लोभसे सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका सत्यानाश ही कर डाला। ब्रह्महत्या करनेसे महान् पाप होगा, इसपर भी उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। (अध्याय १४-१५)

☆

## हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार, देवीकी कृपासे एक भार्गव ब्राह्मणीकी जाँघसे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति

राजा जनमेजयने पूछा—पितामह! जिन्होंने ब्रह्महत्याकी बिलकुल परवा न करके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका वध कर दिया, उन क्षत्रियोंमें ऐसा वैरभाव क्यों उत्पन्न हो गया था? आदरणीय व्यक्ति अवश्य ही अकारण क्रोध कैसे कर सकते हैं? अतः इस वैरमें कोई महान् कारण होगा। अन्यथा पापसे डरनेवाले ये शूरवीर क्षत्रिय निरपराधी पूज्य ब्राह्मणोंकी हत्या करनेमें क्यों तत्पर होते? अतः उक्त घटनामें क्या कारण है? सो बतानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यासजी

परम प्रसन्न होकर कहने लगे।

व्यासजी बोले—राजन्! क्षत्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली यह परम प्राचीन एवं आश्चर्यजनक कथा सम्यक् प्रकारसे मुझे ज्ञात है। उसे कहता हूँ, सुनो। हैहयवंशमें एक राजा हो चुके हैं। उनका नाम 'कार्तवीर्य' था। धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाले उन बलशाली राजाके हजार भुजाएँ थीं, अतः लोग उन्हें 'सहस्त्रार्जुन' भी कहते थे। उन्होंने दत्तात्रेयजीसे मन्त्रकी दीक्षा ली थी। उस समय वे भगवान् विष्णुके अवतार माने जाते थे। भगवती जगदम्बा उन नरेशकी इष्ट देवता थीं। वे परम सिद्ध, सब कुछ देनेमें समर्थ एवं भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान थे। उन परम धार्मिक नरेशका अधिकतर समय दान करनेमें ही व्यतीत होता था। उन्होंने बहुत-से यज्ञ करके अपनी प्रचुर सम्पत्ति ब्राह्मणोंको बाँट दी थी। उस समय राजा कार्तवीर्यके दानसे वे भृगुवंशी ब्राह्मण बड़े धनी कहलाने लगे। घोड़े और रत्न आदि प्रचुर सम्पत्तिसे जगत्में उनकी अपार ख्याति हो गयी। राजन्! सहस्त्रार्जुनने बहुत समयतक पृथ्वीपर राज्य किया। उनके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् हैहयवंशी क्षत्रिय बिलकुल निर्धन हो गये।

एक समयकी बात है, उन क्षत्रियोंको धनकी विशेष आवश्यकता पड़ी। नरेन्द्र! धन माँगनेके विचारसे वे उन भृगुवंशी ब्राह्मणोंके पास गये। नम्रतापूर्वक उन्होंने ब्राह्मणोंसे बहुत-से धनकी याचना की, किंतु उन लोभी ब्राह्मणोंने कुछ भी धन नहीं दिया। वे बार-बार यही कहते कि 'हमारे पास धन नहीं है'। ये हैहयवंशी क्षत्रिय हमें अवश्य भय पहुँचायेंगे—यह समझकर कितने ही ब्राह्मणोंने तो अपनी प्रचुर सम्पत्ति जमीनमें गाड़ दी थी और बहुतोंने दूसरे ब्राह्मणोंके यहाँ छिपाकर रख दी थी। यों लोभके कारण उन ब्राह्मणोंका विचार नष्ट हो चुका था। अतएव अपने यजमानोंको दुःखी देखकर भी वे धन देनेके लिये प्रस्तुत नहीं हुए। तात! तदनन्तर बहुत-से हैहयवंशी प्रधान क्षत्रिय, जो धनके अभावसे महान् कष्ट पा रहे थे, द्रव्य-प्राप्तिके लिये भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आश्रमोंपर पहुँचे। देखा, ब्राह्मण आश्रम छोड़कर चले गये थे। तब उन क्षत्रियोंने द्रव्य पानेके लिये वहाँकी जमीनको खोदना आरम्भ कर दिया। इसी बीच किसी एक व्यक्तिकी दृष्टि घरमें गाड़े हुए धनपर पड़ गयी। अब सबने धन देख लिया। जहाँ भी पता चलता, वहीं जमीन खोदकर वे सारा धन ले लेते! धनके लोभसे उन क्षत्रियोंने पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंके घर भी खोद डाले और वहाँ भी उन्हें सम्पत्ति हाथ लगी। बेचारे ब्राह्मण रोने-गिड़गिड़ाने लगे। अन्तमें उन्होंने क्षत्रियोंकी अधीनता स्वीकार कर ली; क्योंकि उनके घरसे प्रायः सभी धन निकल चुका था।

यद्यपि वे ब्राह्मण शरणमें चले गये थे, फिर भी क्रोधी क्षत्रियोंद्वारा उनपर मार पड़ती रही। क्षत्रियगण बराबर उनपर बाण बरसाते रहे। तब भृगुवंशी ब्राह्मण भागकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें चले गये। हैहयवंशी क्षत्रिय वहाँ भी पहुँच गये। भृगुकुलका संहार करते हुए वे इस भूमण्डलपर घूमने लगे। जहाँ कहीं भी भृगुके वंशज मिलते थे, उन्हें तीखे तीरोंसे मारकर मौतके मुखमें डाल देना उनका प्रधान कर्तव्य बन गया था। वे हत्यारे क्षत्रिय पाप करनेपर ही तुले हुए थे। उनके घृणित कर्मसे जिन स्त्रियोंका गर्भ नष्ट हो जाता

था, वे बेचारी अत्यन्त दुःखी होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करने लगती थीं। तब तीर्थवासी अन्य मुनियोंने उन अभिमानी हैहयोंसे कहा—'क्षत्रियो ! तुम ब्राह्मणोंपर इतना भयंकर क्रोध मत करो। यह बड़ा ही अनुचित कर्म है। तुम्हें ऐसा निन्द्य कर्म नहीं करना चाहिये, जो भृगुकुलकी स्त्रियोंके गर्भका भी उच्छेद करनेमें तुम तत्पर हो गये हो। क्षत्रियो ! जब पुण्य अथवा पाप उग्र और असीम हो जाता है, तब उसका फल इस जन्ममें ही सामने आ जाता है। अतः कल्याणकामी पुरुषको ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये।

तब क्रोधमें भरे हुए वे हैहयसंज्ञक क्षत्रिय उन परम दयालु मुनियोंसे कहने लगे—'आप सब लोग साधु पुरुष हैं। ये पापकर्म क्यों किये जाते हैं, इसका रहस्य आप नहीं जानते। हमारे पूर्वज बड़े महात्मा पुरुष थे। कूटनीतिके विशेषज्ञ इन ब्राह्मणोंने उन्हें धोखेमें डालकर सारा धन इस प्रकार छीन लिया, जैसे किसी पथिककी सम्पत्ति ठग छीन ले। बगुलेके समान स्वभाववाले ये ब्राह्मण महान् दम्भी हैं। कार्यवश हमने प्रार्थनापूर्वक इनसे धन माँगा, किंतु इन्होंने देना स्वीकार नहीं किया। हम इनके यजमान हैं। हम महान् कष्ट भोग रहे थे। यह बात इनसे छिपी नहीं थी। हमने थोड़े-से पैसे तक माँगे; किंतु उनके मुखसे बार-बार यही निकलता रहा कि 'हमारे पास कुछ भी नहीं है।' धन पास रहनेपर भी हमारी प्रार्थनाको इन्होंने बिलकुल ठुकरा दिया। महाराज कार्तवीर्यने जब इन्हें अपनी सम्पत्ति सौंप दी, तब किस प्रयोजनसे ये उस धनकी इतनी सार-सँभाल करते रहे। न इन्होंने कोई यज्ञ किया और न याचक ही माँगनेपर इनसे कुछ पा सके। ब्राह्मणोंका तो कर्तव्य यह है कि कभी किसी प्रकार भी धनका संचय न करें। विधिपूर्वक यज्ञ करें, दान दें तथा सुख-सुविधाके लिये खाने-पीनेमें व्यय करें। विप्रो ! ऐसा बताया गया है कि धन रहनेपर राजा, चोर, अग्नि और धूर्तोंद्वारा महान् भय उपस्थित हुआ करता है। जिस-किसी प्रकारसे भी धन अपने रक्षकको त्याग ही देना चाहता है। अथवा धनका संग्रह करनेवाला व्यक्ति स्वयं मरकर उससे अलग हो कठिन दुर्गति भोगता है। इन सभी नियमोंसे परिचित रहनेपर भी हमारे ये पुरोहित लोभके कारण संशयग्रस्त रहे। दान, भोग और नाश—इस प्रकार धनकी तीन गतियाँ हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंका धन दान और भोगमें खर्च होता है तथा पापी यों ही अपनी सम्पत्तिसे वञ्चित हो जाते हैं* । जो कृपण मानव न तो धन दान करता, न खाने-पीनेमें खर्च करता—केवल संचय किये रहता है, उसे महान् क्लेश भोगने पड़ते हैं। राजाको चाहिये कि उसे भलीभाँति दण्ड दे। इसीलिये गुरु कहलानेवाले इन अधम ब्राह्मणोंको मारनेके लिये हम प्रस्तुत हुए हैं। ये बड़े ही धूर्त हैं। आप महात्मा पुरुष हैं। इस विषयमें क्रोध न करें।'

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार सहैतुक वचन कहकर मुनियोंको आश्वासन देनेके पश्चात् उन हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंने अपना कुकार्य चालू रखा। धनके लोभी उन क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंको बहुत सताया। मनमाना पापकर्म करनेवाले वे

* दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी। दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल॥ (६।१६।४०)

दुष्ट ब्राह्मणोंका संहार करनेमें सफल-प्रयास हो गये। मनुष्योंके अन्तःकरणमें रहनेवाला लोभ ही महान् शत्रु है। इसे सम्पूर्ण दुःखोंकी खान कहा गया है। यह दुःखदायी लोभ प्राणका वियोग भी करा देता है। सम्पूर्ण पापोंकी जड़ यह लोभ ही है। लोभमें पड़कर मानव तीनों वर्णोंका निरन्तर शत्रु बना रहता है। इसीके कारण उसे सम्पूर्ण दुःख भोगने पड़ते हैं। मानव लोभसे अपने सदाचार और कुलधर्मका त्याग कर देते हैं। माता-पिता और भाई-बन्धुओंको भी मार डालते हैं। गुरु, मित्र, भार्या और बहनके प्राण हरनेमें भी लोभी मानव नहीं हिचकते। लोभमें भरे हुए मानवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह पापी व्यक्ति कौन-सा ऐसा दुष्कर्म है, जो नहीं कर सकता*। काम, क्रोध और अहंकार—ये तीनों शत्रु हैं। किंतु यह लोभ इनसे भी बढ़कर शत्रु है। इसके वशीभूत होकर मानव प्राण तक खो देता है। फिर इसकी विशेषता कहाँतक बतलायी जाय। लोभी मनुष्य क्या नहीं कर सकता। तभी तो हैहयवंशी क्षत्रियोंने खोटी बुद्धिवाले बनकर समस्त भार्गव ब्राह्मणोंका संहार कर डाला।

जनमेजयने पूछा—मुने! फिर भार्गव-वंशकी स्त्रियोंका दुःखमय समुद्रसे कैसे उद्धार हुआ? उन ब्राह्मणोंकी वंश-परम्परा जगत्में कैसे कायम रही? लोभमें रचे-पचे वे हैहयवंशी क्षत्रिय बड़े ही दुराचारी थे। ब्राह्मणोंको मारनेके पश्चात् उन्होंने कौन-सा कार्य किया? उसे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सुनो, जब हैहयवंशी क्षत्रिय भार्गववंशकी स्त्रियोंको अपार पीड़ा पहुँचाने लगे, तब वे भयके कारण अत्यन्त घबराकर जीवनसे निराश हो हिमालय पर्वतपर चली गयीं। वहीं नदीके तटपर उन्होंने मिट्टीकी गौरी बनाकर स्थापित की और निराहार रहकर उपासना करने लगीं। उन्हें अपने मरणमें अब बिलकुल संदेह नहीं रहा। उस समय उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके पास स्वप्नमें देवी पधारीं और उनसे

बोलीं—'तुमलोगोंमेंसे किसी एक स्त्रीकी जाँघसे एक पुरुष उत्पन्न होगा। मेरा अंशभूत वह पुरुष तुमलोगोंका कार्य सम्पन्न करेगा।' यों कहकर भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं।

---

* लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महान् रिपुः। सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः॥
सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयान्वितः। विरोधकृत् त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा॥
लोभात् त्यजन्ति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि। मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा॥
गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा। लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः॥
(६। १६। ४६—४९)

नींद टूटनेपर उन सभी स्त्रियोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उनमेंसे किसी एक चतुर स्त्रीने गर्भ धारण किया। उसका हृदय भी भयसे वञ्चित न था। वंशवृद्धिके लिये वह वहाँसे भाग चली। क्षत्रियोंने उसे भागते देख लिया। जब उन्होंने देखा कि तेजसे इस ब्राह्मणीका मुखमण्डल चमक रहा है, तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े और कहने लगे—'बहुत शीघ्र इस नारीको पकड़ो और मार डालो; क्योंकि गर्भ धारण करके यह यहाँसे भागी जा रही है'—इस प्रकार कहते हुए हाथमें तलवार लेकर वे उस स्त्रीके निकट पहुँच गये। भयसे अत्यन्त घबरायी हुई वह स्त्री सामने आये हुए उन क्षत्रियोंको देखकर रोने लगी। गर्भमें रहनेवाले बालकने सुना—माता रो रही है। इसकी अवस्था बड़ी ही दयनीय है। कोई भी इसका रक्षक नहीं है। यह बिलकुल निराधार है। क्षत्रियोंसे संतप्त होनेके कारण इसके नेत्र जलकी धारा बहा रहे हैं। जान पड़ता है, मानो गर्भवती हिरनी सिंहके पंजेमें पड़ गयी हो। यों आँखोंमें आँसू भरकर काँपती हुई माताको देखकर गर्भस्थित बालकके क्रोधकी सीमा नहीं रही। वह जाँघ चीरकर तुरंत बाहर निकल आया, मानो कोई दूसरा सूर्य ही प्रकट हो गया हो। उस मनोहर बालकने अपने तेजसे तुरंत ही क्षत्रियोंके नेत्रकी ज्योति हर ली ! उस बालककी ओर देखते ही वे सब-के-सब क्षत्रिय अंधे-जैसे हो गये। जन्मान्ध प्राणीकी भाँति पर्वतकी गुफाओंमें वे इधर-उधर भटकने लगे। तब सबने मनमें विचार किया कि इस समय यह विचित्र परिस्थिति किस कारण सामने आ गयी है। हम सब लोग इस बालकको देखते ही अन्धे हो गये। इससे मालूम होता है इस ब्राह्मणीका ही यह प्रभाव है; क्योंकि इसके पास सतीत्वका महान् बल है। पतिव्रताओंका संकल्प कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। दुःखी होनेपर वे क्षणभरमें ही क्या नहीं कर सकतीं। यों सोचकर वे दृष्टिहीन एवं निराश्रय हैहयसंज्ञक क्षत्रिय उस पतिव्रता ब्राह्मणीके शरणागत हो गये। उन्होंने अपनी सुध-बुध खोकर दोनों हाथ जोड़ लिये और भयसे घबरायी हुई उस ब्राह्मणीको प्रणाम किया। साथ ही नेत्रमें ज्योति पानेके लिये उन्होंने उस ब्राह्मणीसे प्रार्थना भी की। कहा—'सुभगे ! माता ! अब तुम प्रसन्न हो जाओ। हम तुम्हारे सेवक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। रम्भोरु ! पापमय बुद्धि हो जानेके कारण हम क्षत्रियोंद्वारा महान् अपराध हो गया है। इसीके फलस्वरूप तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही हम सब-के-सब अन्धे हो गये। भामिनि ! जन्मान्ध व्यक्तिकी भाँति हम तुम्हारे मुखको भी देखनेमें असमर्थ हो गये हैं। तुम अद्भुत तपोबलसे सम्पन्न हो। अतः हम तुम्हारा सामना क्या कर सकते हैं ? मानदे ! अब हम तुम्हारी शरणमें आये हैं। अन्धा हो जाना मरणसे भी अधिक कष्टप्रद है, अतः हमें नेत्र प्रदान करनेकी कृपा करो। पुनः दृष्टि प्रदान करके हम सब क्षत्रियोंको अपना सेवक बना लो; फिर खोटी बुद्धिवाले हम शान्त होकर अपने स्थानपर चले जायँगे। इसके बाद कभी भी हम ऐसा घृणित कार्य नहीं करेंगे। आजसे हम सम्पूर्ण भार्गवोंके सेवक हो गये—इसमें कोई संदेह नहीं। अज्ञानवश हमारे द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करो। अबसे कभी भी भार्गवोंके साथ क्षत्रियोंका वैरभाव नहीं होगा। हमारे इस प्रतिज्ञा कर लेनेके पश्चात् हम हैहयवंशी क्षत्रियोंके साथ तुम्हें सुखपूर्वक

समय व्यतीत करना चाहिये। सुश्रोणि ! तुम पुत्रवती होकर रहो। हम तुम्हारे शरणापन्न हैं। कल्याणि ! तुम प्रसन्न हो जाओ। अब हम कभी भी तुमसे द्वेष नहीं करेंगे।'

व्यासजी कहते हैं—राजन् हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर ब्राह्मणीके आश्चर्यकी सीमा न रही। हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए नेत्रहीन उन क्षत्रियोंको आश्वासन देकर क्षमाशीला ब्राह्मणीने उनसे कहा—'क्षत्रियो ! मेरेद्वारा तुम्हारी दृष्टि नहीं हरी गयी है—यह निश्चित है। मैं तुमपर कुपित भी नहीं हूँ। इसका वास्तविक कारण बता रही हूँ, सुनो ! इस समय यह जो भृगुकुलका दीपक बालक मेरी जाँघसे उत्पन्न हुआ है, तुम इसीके कोपभाजन बन गये हो। रोषमें आकर इस बालकने ही तुम्हारे नेत्र स्तम्भित कर दिये हैं; क्योंकि इसे पता चल गया है कि मेरे सभी बान्धव—यहाँतक कि गर्भमें रहनेवाले बालक भी इन क्षत्रियोंके हाथ मृत्युके ग्रास बन गये हैं। भृगुके ये वंशज निरपराधी, धर्मात्मा तथा तपस्वी थे। जब तुम इनको मार रहे थे, तभी मेरे गर्भमें यह बालक आ गया था। इसे सौ वर्षोंसे मैं अपने गर्भमें धारण किये रही हूँ। इसने छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन बड़ी सुगमतासे कर लिया है। भृगुवंशका उत्थान करनेके लिये प्रकट हुआ यह बालक गर्भमें ही सुशिक्षित हो चुका है। यही पितरोंके वधसे कुपित होकर तुम्हें मारनेके लिये उत्सुक है। मेरा यह पुत्र भगवती जगदम्बाकी कृपासे उत्पन्न हुआ है। इसीके दिव्य तेजसे तुम्हारी आँखें देखनेमें असमर्थ हो गयी हैं। अतएव तुमलोग मेरे इस पुत्रसे ही बड़ी नम्रताके साथ नेत्र पानेकी प्रार्थना करो। प्रार्थना करनेपर यदि मेरा यह बालक प्रसन्न हो गया तो तुम्हें नेत्रज्योति अवश्य ही प्राप्त हो जायगी।'

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! वह बालक एक श्रेष्ठ मुनिके रूपमें विराजमान था। ब्राह्मणीकी बात सुनकर हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंने उसके चरणोंमें मस्तक झुका दिया और बड़ी नम्रताके साथ नेत्रोंमें ज्योति पानेके लिये वे प्रार्थना करने लगे। इससे वह मुनिकुमार प्रसन्न हो गया और अन्धे क्षत्रियोंसे बोला—'राजाओ ! ठीक है, तुम मेरी कही हुई बातपर विश्वास करके अपने घर लौट जाओ। देखो, दैवने जो कुछ निश्चित कर दिया है, वह अवश्य होकर रहता है। इस विषयमें विद्वान् पुरुषको शोक नहीं करना चाहिये। सभी ऋषिलोग पहलेकी ही भाँति सुखपूर्वक समय व्यतीत करें। जितने क्षत्रिय हैं, वे सब भी क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर जायँ।'

इस प्रकार उस तेजस्वी बालकके उपदेश देनेपर वे हैहयसंज्ञक क्षत्रिय आज्ञा लेकर इच्छानुसार अपने घर चले गये। अब उनके नेत्रोंमें पूर्ववत् ज्योति आ गयी थी। ब्राह्मणी भी तेजस्वी एवं पृथ्वीके रक्षकरूपमें प्रकट हुए उस

दिव्य बालकको लेकर अपने आश्रमपर लौटी और बड़ी सावधानीके साथ उसका पालन-पोषण करने लगी। राजन्! इस प्रकार भार्गवोंके विनाशकी कथा मैं तुम्हें सुना चुका। लोभके वशीभूत होकर क्षत्रियोंने जो कर्म कर डाला, वह अवश्य ही घोर पाप था।

जनमेजयने कहा—अत्यन्त लोभमें पड़कर क्षत्रियोंने जो महान् नीच एवं भयंकर कर्म कर डाला है, वह सुन लिया। ऐसे कर्मके फलस्वरूप इहलोक और परलोकमें भी दुःख भोगने पड़ते हैं। सत्यवतीनन्दन व्यासजी! इस विषयमें मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि ये जो हैहयसंज्ञक क्षत्रिय थे, सो जगत्में इस नामसे क्यों विख्यात हुए? जैसे यदुसे यादवोंकी तथा भरतसे भारतोंकी प्रसिद्धि हुई है, वैसे ही कोई हैहय भी राजा रहे होंगे, जिनके वंशमें उत्पन्न होनेसे ये हैहय कहलाते हैं। करुणानिधे! उन हैहयोंकी उत्पत्ति कैसे हुई और किस कर्मके प्रभावसे उनका यह नाम पड़ा? इसका कारण मैं सुनना चाहता हूँ। (अध्याय १६-१७)

☆

## भगवान् शंकरद्वारा लक्ष्मीको वरदान, अश्वरूप बने हुए भगवान् विष्णुके द्वारा अश्वीरूपा लक्ष्मीको पुत्रकी प्राप्ति, लक्ष्मीका पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त होना

व्यासजी बोले—राजन्! हैहयोंकी उत्पत्तिका इतिहास बतलाता हूँ। सुनो! एक बार लीलामय भगवान् विष्णुने लक्ष्मीजीको घोड़ी बननेका शाप दे दिया था। उनकी प्रत्येक लीलामें रहस्य होता है। उसको वे ही जानते हैं। श्रीलक्ष्मीजीको इससे क्लेश तो बहुत ही हुआ, परंतु वे भगवान्‌को प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर मर्त्यलोकमें चली गयीं और जहाँ सूर्यकी पत्नीने पूर्व-समयमें अत्यन्त कठिन तप किया था, वहीं भगवती लक्ष्मी घोड़ीका रूप धारण करके रहने लगीं। वहीं सुपर्णाक्ष नामक स्थानके उत्तर-तटपर यमुना और तमसा नदीका संगम था। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले उस स्थानको सुन्दर वन सुशोभित कर रहे थे। वहीं रहकर भगवती लक्ष्मी, जो सबकी कामनाएँ पूर्ण करते हैं तथा जिनका मस्तक चन्द्रमासे अलंकृत रहता है, उन त्रिशूलधारी भगवान् शंकरका एकाग्रचित्तसे ध्यान करने लगीं। जिनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं; भगवती गौरी अर्द्धाङ्गिनी बनकर जिनकी शोभा बढ़ा रही हैं; जिनका कर्पूरके समान गौर शरीर अत्यन्त प्रकाशमान है; जिनका कण्ठ नीला है और तीन आँखें हैं; जो बाघंबर पहने और हाथीके चर्मकी चादर ओढ़े हुए हैं; जिनके गलेमें नरमुण्डकी माला सुशोभित है तथा जो साँपका यज्ञोपवीत पहने हुए हैं, उन भगवान् शंकरके ध्यानमें लक्ष्मीजी संलग्न हो गयीं। उस पावन तीर्थमें रहकर सुन्दर घोड़ीका रूप धारण करके उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की। राजन्! भगवान् शंकरका ध्यान करते हुए लक्ष्मीके मनमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो गया था। देवताओंके वर्षसे हजार वर्षतक उनकी तपस्या चलती रही।

तदनन्तर तीन नेत्रवाले भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बैलपर चढ़े हुए पधारे और उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। साथ पार्वतीजी भी विराजमान थीं। उस समय विष्णुप्रिया महामाया लक्ष्मीजी घोड़ीके रूपमें विराजमान होकर तप

कर रही थीं। भगवान् शंकरने अपने गणोंसहित वहाँ पहुँचकर उनसे कहा—

'कल्याणी, जगदम्बे ! तुम क्यों तपस्या कर रही हो, मुझे इसका कारण बताओ; क्योंकि तुम्हारे पतिदेव सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेमें समर्थ एवं अखिल लोकके अध्यक्ष हैं। देवी ! श्रीहरिको जगत्का स्वामी माना जाता है। ऐसे मुक्ति प्रदान करनेवाले जगत्प्रभु भगवान् वासुदेवको छोड़कर तुम मेरी आराधना क्यों कर रही हो ? पतिकी सेवा करना स्त्रियोंके लिये सनातन धर्म माना गया है। पति चाहे कैसा भी हो, कल्याणकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्री उसकी सेवामें सदा तत्पर रहे; फिर नारायण तो सबके लिये निरन्तर परम पूज्य हैं। सिन्धुजे ! ऐसे देवेश्वर श्रीहरिको छोड़कर तुम क्यों मेरी उपासना कर रही हो ?'

लक्ष्मीजीने कहा—आशुतोष, महेशान, शिव और देवेश कहलानेवाले दयासिन्धो ! मेरे पतिदेवने मुझे शाप दे दिया है। आप उस शापसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिये। शम्भो ! उन्होंने शापसे छुटकारा पानेका उपाय भी बतला दिया है। उन्होंने कहा है—'कमलालये ! जब तुमसे पुत्र उत्पन्न हो जायगा, तब शापसे मुक्त होकर वैकुण्ठमें स्थान पा जाओगी।'

भगवन् ! पतिदेवके यों कहनेपर मैं तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें आ गयी। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले आप परम प्रभुको मैंने अपना आराध्य बना लिया ! देवदेव ! इस समय मैं पतिदेवके सांनिध्यसे वञ्चित हूँ। मुझ धर्मपत्नीको छोड़कर वे वैकुण्ठमें विराज रहे हैं, फिर उनके अभावमें मैं पुत्रवती कैसे हो सकती हूँ। देवेश ! शंकर ! यदि आप प्रसन्न हों तो वर देनेकी कृपा करें। आपमें और श्रीहरिमें कभी किंचिन्मात्र भी भेद-भाव नहीं है। गिरिजाको प्रेम प्रदान करनेवाले प्रभो ! मैं पतिदेवके पास थी, तभीसे मुझे यह रहस्य ज्ञात है। जो आप हैं, वही वे हैं और जो वे हैं, वही आप हैं—इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है। महादेव ! आप दोनों महानुभाव एक ही हैं—यह समझकर मैंने आपका चिन्तन किया है; अन्यथा आपकी सेवा करनेसे मैं दोषकी भागिनी बन जाती।

भगवान् शिव बोले—देवी ! मैं और श्रीहरि बिलकुल एक हैं—तुमको इस रहस्यका कैसे पता लगा ? सुन्दरी सिन्धुजे ! मुझसे सच्ची बातें बतानेकी कृपा करो। देवता, मुनि, ज्ञानी और वेदके पारगामी पुरुष भी तर्क-वितर्कमें पड़े रहकर इस एकत्वके रहस्यको नहीं समझ पाते हैं। मेरे बहुत-से भक्त भगवान् विष्णुकी और उनके भक्त मेरी निन्दा करनेमें सदा तत्पर रहते हैं। देवी ! कलियुगमें इस बातकी बड़ी विशेषता रहेगी ! समयके भेदसे यह भेदभाव बढ़ता चला जा रहा है। भद्रे ! मुझमें और श्रीहरिमें सम्यक् प्रकारसे एकता है—यह भाव जानना प्रायः सबके लिये महान् कठिन है। फिर तुम कैसे जान गयीं।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार प्रसन्न होकर जब भगवान् शंकरने लक्ष्मीजीसे पूछा, तब उन्होंने इस ज्ञात प्रसंगको बतलाना आरम्भ किया। उस समय वे भी कम प्रसन्न न थीं।

लक्ष्मीने कहा—देवदेवेश ! एक समयकी बात है—भगवान् विष्णु एकान्तमें पद्मासन लगाये बैठे ध्यान कर रहे थे। जब वे यों तप कर रहे थे, तब उन्हें देखकर मुझे महान् आश्चर्य

हुआ। थोड़ी देरके बाद उनकी समाधि टूट गयी। उनके मुखपर प्रसन्नताकी किरणें झलक रही थीं। तब मैंने अनुकूल जानकर विनयपूर्वक उनसे पूछा—'प्रभो ! आप देवताओंके अध्यक्ष एवं जगत्के स्वामी हैं। जिस समय देवता, दानव और ब्रह्मा प्रभृति सबने मिलकर समुद्रका मन्थन किया था और जब मैं उससे निकली थी, तब मेरे मनमें विचार आया किसीको पति चुन लूँ। अतः मैंने सब ओर दृष्टि दौड़ायी। उस समय, आप ही सम्पूर्ण देवताओंसे श्रेष्ठ हैं—इस निर्णयपर पहुँचकर मैंने आपको पतिदेव बना लिया। सर्वेश ! आप फिर किसका ध्यान कर रहे हैं ? यह प्रसंग मेरे मनको महान् आश्चर्यमें डाल रहा है। कैटभारे ! आप मेरे परम प्रेमी हैं। मेरी इस मानसिक उलझनको दूर करनेकी कृपा कीजिये।

भगवान् विष्णु बोले—प्रिये ! मैं हृदयमें जिनका ध्यान कर रहा हूँ, उनका परिचय देता हूँ, सुनो। पार्वतीपति भगवान् शंकर सबसे प्रधान माने जाते हैं। तुरंत प्रसन्न हो जाना उनका स्वाभाविक गुण है ! उन देवाधिदेवके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। कभी तो ऐसा होता है कि त्रिपुरासुरका वध करनेवाले वे देवेश मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं उनका करता हूँ। उनका प्रिय प्राण मैं हूँ और मेरे प्रिय प्राण वे हैं। हम दोनोंका चित्त परस्पर गुँथा हुआ है। अतः दोनोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं समझना चाहिये। विशाललोचने ! जो भगवान् शंकरसे द्वेष करते हैं, वे मेरे भक्त ही क्यों न हों; किंतु नरकमें जाना उनके लिये अनिवार्य है*। मैं यह बिलकुल सत्य बता रहा हूँ।

पार्वतीपते ! एकान्तमें मेरे पूछनेपर सर्वसमर्थ देवाधिदेव भगवान् विष्णु यह प्रसंग स्पष्टरूपसे मुझे सुना चुके हैं। अतएव श्रीहरिके अभिन्न प्रेमी जानकर मैं आपका ध्यान कर रही हूँ। महेशान ! आप ऐसा कीजिये जिससे मेरे पतिदेवका मिलन सुलभ हो जाय।

व्यासजी कहते हैं—लक्ष्मीजीका यह कथन सुनकर निपुण वक्ता भगवान् शंकरने मधुर वचनोंसे उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'सुन्दरी ! धैर्य रखो। मैं तुम्हारी तपस्यासे परम संतुष्ट हूँ। तुम्हारे पतिदेव तुमसे अवश्य मिलेंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है। वे जगदीश्वर मुझसे प्रेरित होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके लिये अश्वका रूप धारण करके यहीं पधारेंगे। मैं उन मधुसूदन श्रीहरिको इस प्रकार उत्साहित करूँगा, जिससे वे अश्व-रूप धारण करके यहाँ आ जायँ। सुभ्रु ! तुम उनके-जैसे पुत्रकी जननी अवश्य होओगी। तुम्हारे पुत्रके सामने सभी लोग मस्तक झुकायेंगे और वह भूमण्डलका राजा होकर रहेगा। महाभागे ! पुत्र प्रसव करनेके पश्चात् तुम तुरंत अपने पतिदेवके साथ वैकुण्ठ चली जाओगी और पुनः तुम्हें उनकी प्राणप्रिया-रूपमें रहनेका सौभाग्य सुलभ हो जायगा। तुम्हारा वह पुत्र 'एकवीर' नामसे प्रसिद्ध होगा। उसीसे भूमण्डलपर हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंकी वंशावली विस्तृत होगी। सिन्धुजे !

---

* कदाचिद् देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः। ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरान्तकम्॥
शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम। उभयोरन्तरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसः॥
नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम्। भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥
(६।१८।४५—४७)

तुम हृदयमें विराजमान रहनेवाली परम देवी भगवती जगदम्बाकी सम्यक् प्रकारसे शरण ग्रहण करो।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार लक्ष्मीजीको वरदान देकर गौरीपति भगवान् शंकर पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये। लक्ष्मी वहीं रहकर भगवती जगदम्बाके अत्यन्त मनोहर चरण-कमलका ध्यान करनेमें तत्पर हो गयीं। पतिदेव हयका रूप धारण करके यहाँ कब पधारेंगे—इस प्रतीक्षामें प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे वे बार-बार श्रीहरिकी स्तुति करती रहीं।

व्यासजी कहते हैं—लक्ष्मीको वर देकर भगवान् शंकर तुरंत कैलास चले गये। वहाँ पहुँच जाते ही भगवान् शंकरने परम बुद्धिमान् चित्ररूपको दूत बनाकर लक्ष्मीका कार्य सिद्ध करनेके लिये वैकुण्ठ भेज दिया।

भगवान् शिवने कहा—चित्ररूप! तुम श्रीहरिके पास जाकर उनसे मेरी बातें कहो। तुम्हें ऐसा यत्न करना चाहिये, जिससे वे अपनी पत्नी श्रीलक्ष्मीदेवीका शोक दूर करनेमें संलग्न हो जायँ।

भगवान् शंकरके कहनेपर चित्ररूप तुरंत वहाँसे वैकुण्ठके लिये चल दिया। वैकुण्ठ बड़ा ही उत्तम धाम है। वहाँ बहुत-से वैष्णव पुरुष निवास करते हैं। भाँति-भाँतिके दिव्य वृक्षों और सैकड़ों बावलियोंसे उसकी अनुपम शोभा हो रही है। वहाँ सर्वत्र दिव्य हंस, सारस, मोर, सुगे और कोयल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पताकाओंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे भवन उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। नाचने और गानेवाले दिव्य कलाकारोंसे वह स्थान परिपूर्ण है। पारिजात उसे सुशोभित किये हुए हैं। बकुल, अशोक, तिल और चम्पाकी पंक्तियाँ उसे मनोहर बनाये हुए हैं। पक्षीगण कानोंको सुख देनेवाली मीठी बोली बोल रहे हैं। वहाँ जानेपर चित्ररूपको भगवान् विष्णुका भवन दिखायी पड़ा। वहाँ जय और विजय नामक दो द्वारपाल हाथोंमें छड़ी लेकर विराजमान थे। चित्ररूप उन्हें प्रणाम करके कहने लगा।

चित्ररूपने कहा—द्वारपालो! तुमलोग शीघ्र परमप्रभु श्रीहरिको समाचार दो कि शंकरका भेजा हुआ दूत द्वारपर आया खड़ा है।

चित्ररूपकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् द्वारपाल जय अंदर गया। श्रीहरिको प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर कहने लगा— 'देवदेव! रमाकान्त, करुणाकर केशव! इस समय भगवान् शंकरका दूत द्वारपर आकर ठहरा है। गरुड़ध्वज! आप आज्ञा दीजिये उसे यहाँ आने दिया जाय या नहीं। किस कामसे आया है—मैं नहीं जानता; उसका नाम चित्ररूप है!' भगवान् विष्णु अन्तर्यामी हैं। दूतके आनेका कारण उनसे छिपा नहीं रहा। जयकी बात सुनकर उन्होंने कहा— 'ठीक है, उसे यहाँ ले आओ।' भगवान् शंकरके सेवक चित्ररूप बड़े ही विलक्षण पुरुष थे। श्रीहरिकी आज्ञा पाकर जय तुरंत बाहर गये और चित्ररूपसे बोले—'आइये, अंदर पधारिये।' चित्ररूपका जैसा नाम था, वैसी ही आकृति थी। जयके साथ भीतर जानेपर उन्होंने भगवान् विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने अत्यन्त अद्भुत रूप बना लिया था। उनके प्रत्येक अङ्गसे नम्रता टपक रही थी। भगवान् विष्णुने हँसकर चित्ररूपसे पूछा— 'अनघ! देवाधिदेव भगवान् शंकर सपरिवार कुशलसे हैं न? उन्होंने तुम्हें

यहाँ कैसे भेजा है ? स्वयं उनका कोई कार्य है अथवा देवताओंका कोई कार्य सामने उपस्थित हो गया है ?'

दूतने कहा—गरुड़ध्वज ! इस जगत्की कौन-सी बात आपसे छिपी है। आप तीनों कालोंकी बातें जानते हैं। फिर भी, इस समय जो समस्या उपस्थित है, वह आपसे कहता हूँ।

विभो ! भगवान् शंकरने आपको उसे जनानेके लिये मुझे यहाँ भेजा है। प्रभो ! मैं उन्हींके कथनानुसार आपसे कह रहा हूँ। देवेश ! उन्होंने यह कहा है कि 'विभो ! आपकी भार्या लक्ष्मी-देवी यमुना और तमसा नदीके संगमपर तपस्या कर रही हैं। सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध करनेवाली वे देवी घोड़ीका रूप धारण करके इस समय वहाँ पधारी हैं। देवता, मानव, यक्ष और किन्नर प्रायः सभी उनका ध्यान करते हैं। जगत्में कोई भी मनुष्य उनकी कृपाके बिना सुखी नहीं हो सकता। पुण्डरीकाक्ष हरे ! फिर आप अपनी इन पत्नीका परित्याग करके क्या सुख पा रहे हैं ? जगत्पते ! दुर्बल और निर्धन व्यक्ति भी अपनी स्त्रीकी रक्षा करता है। विभो ! फिर आपने जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली लक्ष्मीदेवीका त्याग क्यों कर दिया है ? जगद्गुरो ! जिसकी भार्या जगत्में दुःखसे समय व्यतीत करती है, संसारमें उसके जीवनको धिक्कार है। शत्रु भी ऐसे व्यक्तिकी निन्दा करते हैं। आप अपनी पत्नीसे दूर हैं, ऐसी स्थितिमें अत्यन्त खिन्न उन देवीको तथा आपको देखकर स्वार्थी शत्रु रात-दिन हँसेंगे। देवेश ! लक्ष्मीमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। वे बड़ी सुन्दरी और सुशीला हैं। उचित तो यही है कि वे आपके पास रहें और उनके साथ आपका आनन्दपूर्वक समय व्यतीत हो। सुन्दर मुसकानवाली उन प्रिय पत्नीको पाकर आप सुखसे रहें। आप महाभागा लक्ष्मीके पास जायँ और उन्हें आश्वासन देकर अपने स्थानपर ले आवें ! जगत्में किसीकी भी सत्ता लक्ष्मीके बिना स्थिर नहीं रह सकती। आप कृपया अभी अश्वका रूप धारण करके रमादेवीके पास पधारें। पुत्र उत्पन्न हो जानेके पश्चात् उन देवीको लेकर वैकुण्ठमें आ जायँ।

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय ! चित्र-रूपकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'बहुत ठीक, ऐसा ही होगा'। फिर उन्होंने चित्ररूपको शंकरके पास जानेकी आज्ञा दे दी। दूतके चले जानेपर भगवान् विष्णु सुन्दर अश्वका रूप धारण करके वैकुण्ठसे चल पड़े। लक्ष्मीजी अश्वीका रूप बनाकर जहाँ तपस्या कर रही थीं, वे वहाँ पहुँच गये। जाकर देखा, लक्ष्मीदेवी वहाँ अश्वीरूपमें विराजमान थीं। लक्ष्मीकी दृष्टि भी भगवान् विष्णुपर पड़ी। वे तुरंत पहचान गयीं कि ये मेरे पतिदेव साक्षात् विष्णु ही मुझपर कृपा करके अश्वका रूप धारण करके पधारे हैं। उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये। यमुना और

तमसाके संगमको सब लोग पवित्र मानते हैं। उसी स्थानपर भगवान् विष्णु और लक्ष्मीका परस्पर मिलन हुआ। अतः अश्वीरूपधारिणी लक्ष्मीजी अन्तःसत्त्वा हो गयीं। वहीं उन्होंने एक अनुपम गुणसम्पन्न सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुने हँसकर लक्ष्मीजीसे कहा—'अब तुम अश्वीका शरीर त्यागकर पूर्ववत् दिव्य देह धारण कर लो। हम दोनों अपने वास्तविक दिव्य शरीर धारण करके वैकुण्ठ चलेंगे। सुलोचने ! तुमसे उत्पन्न हुआ यह कुमार यहीं रहे।'

तदनन्तर भगवती लक्ष्मी और भगवान् नारायण—दोनों दिव्य शरीर धारण करके एक उत्तम विमानपर विराजमान हुए। देवताओंने यशोगान आरम्भ किया। भगवान् अपने परम धाममें पधारना ही चाहते थे कि भगवती लक्ष्मीने उन प्राणपति श्रीहरिसे कहा—'नाथ ! इस बालकको भी साथ ले लीजिये। मैं इसका त्याग नहीं करना चाहती। प्रभो ! आपके समान प्रतिभायुक्त यह मेरा पुत्र प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। मधुसूदन ! इसे लेकर ही हमलोग वैकुण्ठ चलें।'

श्रीहरि बोले—प्रिये ! वरानने ! इस अवसरपर खेद प्रकट करना तुम्हारे लिये अवाञ्छनीय है। यह बालक आनन्दपूर्वक यहाँ रह सकता है; क्योंकि इसके भरण-पोषणकी व्यवस्था पहलेसे ही मैं कर चुका हूँ। वामोरु ! इस पुत्रत्यागमें जो एक प्रधान कारण है, उसे अब मैं बताता हूँ, सुनो। भूमण्डलपर ययातिके वंशमें तुर्वसु नामके एक राजा हैं। उनके पिताने उनका लोकप्रसिद्ध नाम हरिवर्मा रखा था। इस समय वे नरेश पुत्रकी इच्छासे पवित्र तीर्थमें तपस्या कर रहे हैं। उन्हें तप करते पूरे एक सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कमलालये ! उन्हीं राजा हरिवर्माके लिये मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है। सुभ्रु ! राजाके पास जाकर हमलोग उन्हें यहाँ भेज देंगे। प्रिये ! पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले उन्हीं नरेशको यह बालक सौंप देना है। वे स्नेहपूर्वक इसे अपने घर ले जायँगे।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार प्रेयसी भार्या लक्ष्मीको आश्वासन देकर तथा बालककी रक्षाका समुचित प्रबन्ध करके भगवान् विष्णु उत्तम विमानपर बैठे हुए वैकुण्ठ पधारे। श्रीलक्ष्मीजी भी साथ विराजमान थीं।

(अध्याय १८-१९)

☆

## लक्ष्मीपुत्र एकवीरका चरित्र

जनमेजयने कहा—मुनिवर व्यासजी ! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य है कि भगवान्के द्वारा जन्मते ही बालक त्याग दिया गया। निर्जन वनमें इस असहाय पुत्रको किसने सँभाला ? उस छोटे-से बालकको बाघ, सिंह आदि हिंसक पशु क्यों नहीं उठा ले गये ? कृपया बतलाइये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! ज्यों ही भगवान् लक्ष्मीनारायण उस स्थानसे ओझल हुए कि चम्पक नामक एक विद्याधर वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ मदनालसा नामकी उसकी सुन्दरी पत्नी भी थी। घूमते-फिरते हुए ही उत्तम रथपर बैठे हुए वे वहाँ आ गये थे। उसने देखा, एक अनुपम बालक पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। उसका कोई सहायक नहीं दीखता। देवकुमारके

समान उसकी कान्ति है। वह बड़े आनन्दसे खेल रहा है। तब चम्पकने रथसे उतरकर तुरंत उस बालकको उठा लिया। उस समय उसे इतना हर्ष हुआ, मानो कोई निर्धन व्यक्ति धनकी निधि पाकर प्रसन्न हो गया हो। कामदेवकी तुलना करनेवाला वह बालक उत्पत्तिके समय ही अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था। चम्पकने उसे उठाकर अपनी पत्नी मदनालसाको सौंप दिया। मदनालसाने जब उस बालकको लिया, तब प्रेमसे उसका शरीर पुलकित हो गया। उसके आनन्दकी सीमा न रही। उसने मुँह चूमकर उस बालकको हृदयसे चिपका लिया। भारत! प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे चिपकाने और चूमनेके पश्चात् मदनालसाने उसे अपना पुत्र मानकर गोदमें ले लिया। तदनन्तर वे दोनों स्त्री-पुरुष रथपर जा बैठे। बालक मदनालसाकी गोदमें था। तब उस सुन्दरी भार्याने हँसकर अपने पतिदेव चम्पकसे पूछा—'कान्त! यह बालक किसका है? इसे किसने वनमें छोड़ दिया है? हो-न-हो, भगवान् शंकरने ही मुझे यह पुत्र प्रदान किया है।'

चम्पकने कहा—प्रिये! इन्द्र सर्वज्ञ पुरुष हैं। मैं अभी जाकर उनसे पूछता हूँ कि यह बालक देवता है, दानव है अथवा गन्धर्व। उनसे आज्ञा पाकर ही वनमें मिले हुए इस बालकको मैं अपना पुत्र बनाऊँगा; मेरे विचारसे उनसे बिना पूछे कोई भी कार्य करना अनुचित है।

इस प्रकार कहकर चम्पक अपनी स्त्री और उस बालकके सहित तुरंत अमरावतीको प्रस्थित हो गया। हर्षके उद्रेकसे उसके नेत्र खिल उठे थे। वहाँ पहुँचकर चम्पकने इन्द्रके चरणोंमें प्रीति-पूर्वक मस्तक झुकाया और बालकको सामने उपस्थित करके हाथ जोड़कर बैठ गया। तदनन्तर उसने उनसे पूछा—'देवेश्वर! यमुना और तमसा नदीके संगमको परम पावन तीर्थ मानते हैं। वहीं कामदेवके समान कान्तिवाला यह बालक मुझे प्राप्त हुआ है। शचीपते! यह बालक किसका पुत्र है? इसे क्यों वहाँ छोड़ दिया गया है? आपकी आज्ञा हो तो मैं इस बालकको अपना पुत्र बना लूँ। इस अत्यन्त सुन्दर बालकसे मेरी पत्नी भी स्नेह करती है। धर्मशास्त्रोंमें ऐसा कथन है कि सर्वथा कृत्रिम पुत्र भी बनाया जा सकता है।'

इन्द्र बोले—महाभाग! यह बालक अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका पुत्र है। इसकी जननी स्वयं भगवती लक्ष्मी हैं। इस परम तपस्वी बालकका नाम 'हैहय' है। ययातिके वंशज राजा तुर्वसुको वे यह पुत्र प्रदान करना चाहते हैं। तुर्वसु बड़े धार्मिक नरेश हैं। श्रीहरि उन्हें पुत्रप्राप्तिके लिये अभी पवित्र तीर्थमें जानेकी आज्ञा देंगे। भगवान्‌की आज्ञा पाकर राजा तुर्वसुके वहाँ पहुँचनेसे पहले ही तुम इस मनोहर बालकको लेकर वहाँ पहुँच जाओ और इसे वहीं रख दो। विलम्ब करनेसे ठीक नहीं होगा। कारण, बालक न मिलेगा तो राजा तुर्वसु अत्यन्त दुःखी हो जायँगे। भूमण्डलपर यह बालक 'एकवीर' नामसे प्रसिद्ध होगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! देवराज इन्द्रकी बातें सुनकर चम्पक उसी क्षण बालकको लेकर वहाँसे चल पड़ा और उसे जहाँसे उठाया था, वहीं ले जाकर रख दिया। तदनन्तर विमानपर बैठकर वह अपने घर लौट गया। उसी समय जगद्गुरु भगवान् नारायण लक्ष्मीजीके साथ विमानपर बैठ तप करते हुए

राजाके पास पधारे। राजा हरिवर्माने देखा—'भगवान् विष्णु विमानसे उतर रहे हैं।' अब राजाके हर्षकी सीमा नहीं रही। वे दण्डके समान भगवान्‌के सामने पृथ्वीपर पड़ गये। पृथ्वीपर पड़े हुए अपने उस भक्तको भगवान्‌ने आश्वासन दिया और कहा—'वत्स ! उठो !' तब राजा हरिवर्माने भी भक्तिपूर्वक स्पष्ट शब्दोंमें श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की—'देवेश्वर ! अखिललोक-प्रभो ! कृपानिधे ! जगद्गुरो ! रमेश ! मुझ अज्ञानी जनके लिये आपका दर्शन अवश्य ही अत्यन्त दुर्लभ था; क्योंकि योगीलोग भी इसे पानेमें असफल रहते हैं। जिनकी स्पृहा शान्त हो चुकी है तथा जो विषयोंसे सर्वथा विरक्त हैं, उन्हींको आपका दर्शन मिलना सम्भव है। भगवन् ! अनन्त ! देवदेव ! मैं केवल आशा लगाये बैठा था। वस्तुतः मैं आपके दर्शन पानेका अधिकारी नहीं था।'

इस प्रकार राजा हरिवर्माके स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने अमृतमयी वाणीमें उनसे कहा—'राजन् ! मैं तुम्हारी तपस्यासे परम संतुष्ट हूँ। तुम्हें अभिलषित वर दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करो।' उस समय भगवान् श्रीहरि राजा हरिवर्माके सामने विराजमान थे। राजाने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'मुरारे ! मैंने पुत्रके लिये तप किया है। आप अपने-जैसा पुत्र मुझे देनेकी कृपा करें।' राजा हरिवर्माकी प्रार्थना सुनकर देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुने उनसे यों कहा—'ययातिनन्दन ! तुम यमुना और तमसा नदीके पावन संगमतीर्थपर अभी चले जाओ। तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही पुत्र मैंने वहाँ रख छोड़ा है। राजन् ! मेरे वीर्यसे उत्पन्न उस पुत्रमें असीम शक्ति है। लक्ष्मी स्वयं उसकी जननी हैं। तुम्हारे लिये ही उसे उत्पन्न किया गया है। अतः उसे स्वीकार करो'।

भगवान् विष्णुकी वाणी बड़ी ही मधुर थी।

उसे सुनकर राजा हरिवर्माके मनमें प्रसन्नताकी लहरें उठने लगीं। उधर भगवान् उन्हें वर देकर लक्ष्मीजीके साथ वैकुण्ठ पधार गये। भगवान्‌के चले जानेपर ययातिनन्दन राजा हरिवर्मा एक अत्यन्त सुदृढ़ रथपर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये, जहाँ वह बालक विराजमान था। भगवान्‌के मुखारविन्दसे वे सब बातें सुन ही चुके थे। वहाँ जानेपर हरिवर्माने उस अत्यन्त मनोहर बालकको देखा, जो जमीनपर खेल रहा था तथा एक हाथसे पकड़कर पैरके अँगूठेको धीरे-धीरे चूस रहा था। उसकी कामदेवके समान कान्ति थी। लक्ष्मीके उदरसे प्रकट वह बालक भगवान् नारायणका अंश था। श्रीहरिके तुल्य ही उसमें शक्ति भी थी। उसे देखकर हरिवर्माके नेत्रकमल हर्षसे खिल उठे। प्रेमके समुद्रमें गोता खाते हुए उन नरेशने तुरंत उस बालकको अपने करकमलोंसे उठा लिया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक पुत्रका मस्तक सूँघा।

उसे गोदमें लेकर वे अत्यन्त आनन्दित हुए। उसके अत्यन्त सुन्दर मुखको देखते ही उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु गिरने लगे।

राजाने उस बालकसे कहा—'पुत्र ! माता लक्ष्मी और भगवान् विष्णुके कृपा-प्रसादसे तुम मुझे प्राप्त हुए हो; क्योंकि नरक-भोगके दुःखसे डरकर मैंने तुम-जैसे पुत्रके लिये कठिन तपस्या की है। तपस्याके सौ वर्ष पूरे होनेपर लक्ष्मीकान्त भगवान् नारायणने सांसारिक सुख भोगनेके लिये तुमको पुत्र बनाकर मुझे सौंपा है। लक्ष्मी तुम्हारी जननी हैं। उन्होंने तुम्हें उत्पन्न करके मेरे लिये छोड़ दिया है। स्वयं भगवान् विष्णुके साथ वे वैकुण्ठ पधार गयी हैं। उस माताको धन्यवाद है, जो तुम-जैसे हँसमुख बालकको गोदमें लेकर आनन्द मनायेगी। पुत्र ! तुम संसार-सागरसे पार करनेके लिये नौका-स्वरूप हो। भगवान् नारायण तुम्हारे निर्माता हैं।'

इस प्रकार कह राजा हरिवर्मा प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रको लेकर नगरके लिये प्रस्थित हुए। अभी राजा नगरके निकट पहुँचे ही थे कि यह समाचार पाकर उनका मन्त्रिमण्डल और प्रजावर्ग अगवानीके लिये तैयार हो गया। पुरोहितोंको साथ लेकर भेंटकी सामग्री लिये तथा सूत, वंदीजन और गायकोंके साथ सब उनके सामने अगवानीके लिये पहुँचे। नगरमें पहुँचनेपर राजा हरिवर्माने बातचीत करके तथा सबकी ओर दृष्टि दौड़ाकर प्रायः सबको आश्वासित किया। नागरिक सम्यक् प्रकारसे उनका स्वागत करनेके लिये तैयार थे। जब राजा हरिवर्माने पुत्रको लेकर नगरमें प्रवेश किया, तब मार्गमें उनके ऊपर चारों ओरसे खीलों और फूलोंकी वर्षा होने लगी। प्रजाके द्वारा यों सम्मानित होकर वे नरेश मन्त्रियोंके साथ अपने समृद्धिशाली महलमें गये। हर्षपूर्वक उस अभिनव पुत्रको हाथोंमें लेकर उन्होंने रानीको सौंप दिया। उस सद्यःप्रसूत पुत्रकी कान्ति कामदेवकी तुलना कर रही थी। महाराज हरिवर्माकी रानी भी बड़ी साध्वी थी। उन्होंने उस अभिनव पुत्रको गोदमें लेकर राजासे पूछा—'महाराज ! कामदेवके समान सुन्दर यह सुजन्मा पुत्र आपको कहाँसे प्राप्त हुआ है ? कान्त ! आप शीघ्र बतानेकी कृपा करें कि आपको किसने यह सुन्दर पुत्र प्रदान किया है ? इसको देखकर अब मेरा मन अपने वशमें नहीं रहा।' तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ रानीसे कहा—'प्रिये ! भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणने मुझे यह पुत्र प्रदान किया है। लोलाक्षी ! इस महान् शक्तिशाली पुत्रकी जननी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। भगवान् विष्णुके अंशसे इसका प्राकट्य हुआ है।' रानी उस बालकको लेकर आनन्दमें निमग्न हो गयी। राजाने बड़े समारोहके साथ पुत्रोत्सव मनाया। याचकोंको प्रचुर दान दिया। बहुत-से बाजे बजे और गीत गाये गये। यों उत्सव करके राजा हरिवर्माने अपने पुत्रका नाम 'एकवीर' रखा। महाराज हरिवर्मा इन्द्रके समान पराक्रमी थे। विष्णुके सदृश गुणवाले पुत्रको पाकर उनके मनमें अपार हर्ष हुआ। अब पितृ-ऋणसे मुक्त होकर वे आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

इस प्रकार अखिल देवाधिदेव भगवान् नारायणकी कृपासे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र पाकर इन्द्रतुल्य पराक्रमी महाराज हरिवर्मा अपने भवनमें भार्याके साथ आनन्दका अनुभव करने लगे। उनके यहाँ भाँति-भाँतिकी सभी सुख-

सामग्रियाँ प्रस्तुत रहती थीं।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! फिर महाराज हरिवर्माने बालकके जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। उसके लालन-पालनकी पूर्ण व्यवस्था की। यों वह बालक बड़ी शीघ्रतासे प्रतिदिन बढ़ने लगा। इस प्रकार पुत्रजनित सांसारिक सुख पाकर उन महात्मा नरेशने अपने मनमें यह अनुभव किया कि अब मेरे तीनों ऋण चुक गये। छठे महीनेमें बालकका विधिपूर्वक अन्नप्राशन किया। तीसरे वर्षमें मुण्डन-संस्कार हुआ। प्रत्येक संस्कारमें ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की गयी। उन्हें तरह-तरहके धन दिये गये। गौएँ दी गयीं। विविध दानोंसे अन्य याचकोंको भी संतुष्ट किया गया। ग्यारहवें वर्षमें राजाने यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर उसको धनुर्वेद पढ़ानेकी व्यवस्था की। जब राजा हरिवर्माने देखा, राजकुमारने धनुर्विद्या सीख ली और राजधर्मके सभी प्रकार इसे भलीभाँति अवगत हो गये, तब उनके मनमें आया कि अब इसका राज्याभिषेक कर देना चाहिये। फिर तो, पुष्यार्क-योगमें बड़े आदरके साथ अभिषेकमें आनेवाली सभी सामग्रियाँ एकत्र की गयीं। सम्पूर्ण शास्त्रके पारगामी वेदज्ञ ब्राह्मण बुलाये गये। यों उन नरेशने राजकुमारका विधिवत् अभिषेक सम्पन्न किया। उस शुभ अवसरपर स्वयं राजाने तीर्थों और समुद्रके जलसे राजकुमारका अभिषेक किया। ब्राह्मणोंको धन देनेके पश्चात् राजाने कुमारको राजगद्दीपर बैठानेकी व्यवस्था की। यों एकवीरको राजा बनाकर और सुयोग्य मन्त्रियोंको नियुक्त करके महाराज हरिवर्मा रानीसहित वनमें चले गये।

उन्होंने इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। मैनाक पर्वतके शिखरपर उनका तृतीय वानप्रस्थ आश्रम व्यतीत होने लगा। वे जंगली पत्ते और फल खाकर निरन्तर भगवान् शंकरकी आराधनामें जुटे रहे। इस प्रकार रानी-सहित राजाकी दिनचर्या चलने लगी। प्रारब्ध-कर्म शेष होनेपर उनका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया। अपने शुभ कर्मके प्रभावसे उन्होंने स्वर्ग-लोकमें स्थान प्राप्त किया। पिताजीका स्वर्गवास हो गया—यह सुनकर हैहय (एकवीर)-ने वैदिक विधिके अनुसार उनका और्ध्वदेहिक संस्कार किया। पिताकी सभी क्रियाएँ सम्पन्न हो जानेपर वे मेधावी राजकुमार उनसे मिले हुए राज्यपर शासन करने लगे। वे बड़े धर्मज्ञ पुरुष थे। सर्वोत्कृष्ट राज्यके अधिकारी होनेपर उन्हें तरह-तरहके भोग सुलभ हो गये। मन्त्रिमण्डल उनका बड़ा सम्मान करता था।

एक समयकी बात है—प्रतापी राजा एकवीर बहुत-से मन्त्रिकुमारोंके साथ घोड़ेपर सवार होकर गङ्गाके तटपर गये। देखा, फलों और फूलोंसे लदे हुए मनोहर वृक्ष वहाँ शोभा पा रहे थे। कोकिलोंकी ध्वनि और भौंरोंकी गुनगुनाहटसे उन वृक्षोंकी अनुपम शोभा हो रही थी। वहाँ मुनियोंके अनेक दिव्य आश्रम थे। निरन्तर वेदध्वनि हो रही थी। हवनके धुएँसे आकाश भर गया था। जहाँ-तहाँ मृगोंके छोटे-छोटे बच्चे छलाँग मार रहे थे। धानकी बहुत-सी पकी हुई क्यारियाँ थीं। ग्वालिनियाँ उन खेतोंकी रक्षापर नियुक्त थीं। फूले हुए कमलोंसे सुशोभित बहुत-से सरोवर और मनको लुभाने-वाले वन भी दृष्टिगोचर हुए। अशोक, चम्पा, कटहल, बकुल, तिल, नीम, फूले हुए पारिजात, साखू, ताल और तमाल आदि वृक्षोंपर उनकी

दृष्टि पड़ी। कुछ दूर आगे बढ़नेपर उन्हें एक खिला हुआ कमल दिखायी दिया। उस कमलसे बड़ी उत्कट गन्ध निकल रही थी।

राजा एकवीरने देखा, वहीं जलजके दक्षिण भागमें कमलके समान नेत्रवाली एक सुन्दरी कन्या रो रही है। उसके शरीरकी कान्ति सुवर्ण-जैसी थी। मनोहर केश थे। शङ्खके समान ग्रीवा थी। ओठ ऐसे जान पड़ते थे, मानो बिम्बाफल हों। कमर पतली थी। नासिका बड़ी सुन्दर थी। उसके प्रायः सभी अङ्ग मनोहर थे। वह सखीसे दूर होकर अत्यन्त दुःखपूर्वक विलाप कर

रही थी। उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। उस निर्जन वनमें वह फूट-फूटकर रो रही थी। जान पड़ता था, मानो कुररी पक्षी विलाप कर रही हो। ऐसी स्थितिमें पड़ी हुई उस कन्याको देखकर राजा एकवीरने उससे शोकका कारण पूछा—'सुनसे ! तुम अपना परिचय दो, कौन हो ? शुभानने ! तुम्हारे पिता कौन हैं ? सुन्दरी ! बताओ, तुम गन्धर्व अथवा देवताकी कन्या तो नहीं हो ? तुम्हारे रोनेका क्या कारण है ? बाले ! तुम कैसे अकेली खड़ी हो ? पिकस्वरे ! तुम्हें यहाँ किसने छोड़ रखा है ? इस समय तुम्हारे पतिदेव अथवा पिता कहाँ चले गये हैं ? अब तुम मेरे सामने अपने दुःखका कारण व्यक्त करनेकी कृपा करो। मैं सम्यक् प्रकारसे तुम्हारा दुःख दूर करनेके लिये तैयार हूँ। तन्वङ्गी ! निश्चित है, मेरे राज्यमें किसीको भी दुःख नहीं सताते। इसमें न चोरका भय है और न राक्षसका ही। मैं इस भूमण्डलका नरेश हूँ। मेरे शासनकालमें भयंकर उत्पातोंका होना असम्भव है। कहीं किसीको बाघ अथवा सिंह भी किञ्चिन्मात्र भय नहीं पहुँचा सकते। वामोरु ! असहाय होकर तुम क्यों विलख रही हो ? तुम्हें क्या दुःख है—मुझसे बतलाओ। कान्ते ! जगत्में प्राणियोंके दैविक एवं मानुषिक अत्यन्त कठिन दुःखको दूर करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। इस अद्भुत व्रतका मैं बड़ी तत्परतासे पालन करता हूँ। विशाललोचने ! बताओ, तुम्हारी मानसिक चिन्ता मैं अवश्य दूर कर दूँगा।'

इस प्रकार राजा एकवीरके कहनेपर उनकी बात सुनकर उस मधुरभाषिणी कन्याने उनसे कहा—'राजेन्द्र ! सुनिये, मैं अपने शोकका कारण बता रही हूँ। राजन् ! विपत्ति न हो तो प्राणी क्यों रोये ? महाबले ! मैं अपने रोनेका कारण बता रही हूँ। आपके राज्यसे अन्यत्र एक परम धार्मिक राजा रहते हैं। उनका नाम 'रैभ्य' है। उनकी स्त्री रुक्मरेखा नामसे प्रसिद्ध है। राजाको कोई संतान नहीं थी। रानी रुक्मरेखा बड़ी सुन्दर, कार्यकुशल, पतिव्रता और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। पुत्रके अभावसे दुःखी होकर उन्होंने राजा रैभ्यसे कहा—'स्वामिन् ! मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन है। इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है; क्योंकि संतानहीन वन्ध्या

स्त्री जगत्में कभी सुख नहीं पा सकती।'

इस प्रकार पत्नीसे प्रेरणा पाकर राजा रैभ्य उत्तम पुत्रेष्टि यज्ञ करनेके लिये तत्पर हुए। उन्होंने यज्ञके विशेषज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाया और विधिपूर्वक सब यज्ञ-क्रियाएँ सम्पन्न कीं। पुत्रकी अभिलाषासे उन नरेशने शास्त्रोक्त प्रकारसे प्रचुर धन दान किया। यज्ञमें निरन्तर घीकी आहुतियाँ दी जाती थीं। अग्निदेव बड़ी तेजीसे प्रज्वलित हो रहे थे। तदनन्तर यज्ञाग्निसे एक सुन्दरी कन्या निकल आयी। वह सभी शुभ लक्षणोंसे पूर्णतया सम्पन्न थी। जब वह मनोहर कन्या अग्निसे प्रकट हो गयी, तब होताने उसे अपने पास बैठा लिया। तत्पश्चात् उन्होंने उस सुन्दरी कन्याको लेकर राजा रैभ्यसे कहा—"राजन्! इस पुत्रीको लो। यह सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न है। हवन करते समय अग्निसे इसकी उत्पत्ति हुई है। यह ऐसी जान पड़ती है, मानो मणियोंकी एक लड़ी हो। जगत्में यह कन्या 'एकावली' नामसे प्रसिद्ध होगी। भूपाल! पुत्रकी तुलना करनेवाली इस कन्याको पाकर तुम सुखी हो जाओगे। राजेन्द्र! भगवान् विष्णुने तुम्हें यह कन्या प्रदान की है। इसे पाकर संतुष्ट होना तुम्हारे लिये श्रेयस्कर होगा।"

होताकी बात सुनकर राजा रैभ्यने उस सुन्दरी कन्याकी ओर देखा और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे गोदमें ले लिया और उसे अपनी पत्नी रुक्मरेखाको सौंप दिया। देते समय उन्होंने कहा—'सुभगे! तुम इस कन्याको पुत्रीरूपसे स्वीकार करो।' मनको मुग्ध कर देनेवाली उस कन्याकी आँखें कमलके समान सुन्दर थीं। उसे पाकर रानी रुक्मरेखाके मनमें बड़ा आनन्द हुआ; वे ऐसी सुखी हुईं मानो पुत्र ही उत्पन्न हो गया हो। जातकर्म आदि सभी शुभ एवं माङ्गलिक संस्कार विधिपूर्वक कराये गये। यज्ञान्तमें राजाने ब्राह्मणोंको अच्छी-अच्छी वस्तुएँ दक्षिणामें प्रदान कीं। तदनन्तर ब्राह्मण वहाँसे विदा हो गये। राजा रैभ्यके हर्षकी सीमा न रही। पुत्रके सयाने होनेसे जैसे प्रतिदिन माताको हर्ष होता है, रानी रुक्मरेखा भी वैसे ही आनन्दका अनुभव करने लगीं। उस समय पुत्रवती रानीके मनमें हर्षका पार न था। राजाके महलमें ऐसा उत्सव मनाया गया, जैसा पुत्रके जन्ममें मनाया जाता है। पुत्री और पुत्रमें किञ्चिन्मात्र भेद नहीं है—यह मानकर माता-पिता उस कन्याको अत्यन्त स्नेहकी दृष्टिसे देखने लगे।

सुबुद्धे! मैं उन्हीं राजा रैभ्यके मन्त्रीकी कन्या हूँ। मेरा नाम यशोवती है। मैं और एकावली—दोनों समान अवस्थाकी हूँ। महाराज रैभ्यने राजकुमारीके साथ खेलनेके लिये मुझे नियुक्त कर रखा था। एकावली सदा मेरे साथ रहती थी। हम दोनों रात-दिन प्रेमपूर्वक जहाँ-तहाँ घूमा करती थीं। एकावलीको जहाँ सुगन्धित कमल दिखायी पड़ते, वह प्रायः वहीं चली जाती थी। अन्यत्र कहीं भी उसे सुख नहीं मिलता था। एक समयकी बात है—गङ्गाके तटपर बहुत दूर कमल खिले हुए थे। राजकुमारी सखियोंसहित मेरे साथ घूमती हुई वहाँ चली गयी, तब मैंने महाराज रैभ्यसे कहा—'राजन्! आपकी लाडली कन्या एकावली कमलोंको देखती हुई बहुत दूर निर्जन वनमें चली जाती है।' इससे राजा रैभ्यने अपनी कन्याको दूर जानेके लिये मना कर दिया। साथ ही उन्होंने घरपर ही बहुत-से जलाशय तैयार करवा दिये और उनमें

कमल लगवा दिये। कमल खिल गये, उनपर चारों ओर भौंरे गूँजने लगे। इतनेपर भी कमलोंमें आसक्ति होनेके कारण राजकुमारी बाहर चली जाती थी। उस समय राजा रैभ्यकी आज्ञासे बहुत-से रक्षक हाथोंमें शस्त्र लेकर उसके साथ जाया करते थे। मैं तथा दूसरी सखियाँ भी साथ रहती थीं। इस प्रकार वह सुन्दरी राजकन्या मनोरञ्जनके लिये गङ्गाके तटपर निरन्तर आती-जाती रहती थी।

(अध्याय २०-२१)

☆

## राजकुमारी एकावलीका चरित्र, एकावलीका कालकेतुके द्वारा हरण, एकवीरके द्वारा कालकेतुका वध और एकावली-एकवीरका विवाह

यशोवतीने कहा—एक समयकी बात है—सुन्दरी एकावली प्रातःकाल अपनी सखियोंके साथ महलसे निकल पड़ी। उसके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे। रक्षकोंकी पूर्ण व्यवस्था थी। राजेन्द्र ! उस सुन्दरी राजकुमारीके साथ चलनेवाले रक्षक पूरे सावधान थे। उनकी भुजाएँ आयुधोंसे सुशोभित थीं। मैं भी साथ थी। सुन्दर कमल देखकर मनोरञ्जनके लिये राजकुमारीका यहाँ आना हुआ था। साथ बहुत-सी सखियाँ भी थीं। जब मैं और एकावली खेलनेमें व्यस्त थीं, उसी समय अकस्मात् एक प्रचण्ड दानव वहाँ आ पहुँचा। उसका नाम कालकेतु था। बहुत-से राक्षस उसके साथ थे। सहचारी राक्षसोंकी भुजाएँ परिघ, तलवार, गदा, धनुष-बाण और तोमरोंसे सुसज्जित थीं। राजकुमारी एकावलीका रूप बड़ा मनोहर है। दुष्ट कालकेतुकी आँखें उसपर गड़ गयीं।

राजन् ! उस समय मैंने एकावलीसे कहा—'कमललोचने ! देखो, यह कोई दानव आ गया। अतः हमलोग रक्षकोंके बीच भाग चलें।' राजन् ! यों विचार करके सखी एकावली और मैं भयभीत होकर तुरंत भगीं और जहाँ अस्त्र-शस्त्र लिये सैनिक खड़े थे, उनके बीच चली आयीं। कालकेतुने हाथमें विशाल गदा उठायी और वह दौड़कर पास आ गया। उस दानवके प्रभावसे रक्षक दूर हट गये। फिर तो, कमलनयनी एकावली उसके हाथ लग गयी। उस समय राजकुमारीके हृदयमें अत्यन्त आतङ्क छा गया। उसका शरीर काँप गया और वह रोने लगी। मैंने उस दानव कालकेतुसे कहा—'तुम इस राजकुमारीको छोड़ दो; मैं साथ चलनेको तैयार हूँ—मुझे स्वीकार करो।' परंतु मेरी बातें अनसुनी करके, एकावलीको लेकर वह दैत्य चल दिया। रक्षकोंने 'ठहरो, ठहरो'—कहकर जब महाबली कालकेतुको रोका तब भयंकर लड़ाई छिड़ गयी। उस दैत्यके साथ बहुत-से भयंकर राक्षस हाथमें शस्त्र लिये प्रस्तुत थे। अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करनेके लिये बड़ी तत्परताके साथ वे युद्धभूमिमें उतर आये। यों उन हमारे रक्षकोंके साथ कालकेतुका युद्ध होने लगा। उस महाबली दैत्यने सभी रक्षकोंको मार डाला। राजकुमारी उसके अधिकारमें आ गयी।

तदनन्तर दानवी सेनाके साथ वह राक्षस राजकुमारीको लेकर अपने नगरको जाने लगा। कालकेतुके अधिकारमें पड़ी हुई वह राजकुमारी रो रही थी। उसे देखकर मैं भी साथ लग गयी।

कालकेतु उसे जहाँ ले जाता था, मैं भी वहाँ चली जाती थी। मेरा अभिप्राय था, जैसे भी हो, रोती हुई सखी मुझे देखकर धैर्य धारण कर सके। हुआ भी ऐसा ही। जब सखी एकावलीने मुझे अपने साथ देखा, तब उसके हृदयमें कुछ शान्ति आ गयी। अब मैं राजकुमारीके पास चली गयी। उससे बार-बार बातें करने लगी। राजेन्द्र ! मेरी सखी एकावली दुःखसे अत्यन्त घबरा गयी थी। उसके शरीरसे पसीना टपक रहा था। मेरे पास जानेपर कण्ठसे चिपटकर बड़े दुःखके साथ वह विलाप करने लगी। उधर कालकेतुने प्रीति प्रदर्शित करते हुए मुझसे कहा—''चञ्चल नेत्रवाली ! तुम्हारी सखी एकावली डर गयी है। तुम उसे आश्वासन देकर मेरा संदेश कहो कि प्रिये ! मेरा नगर स्वर्गके समान सुखदायी है। अब तुम उसके समीप आ गयी हो। मैं तुम्हारा दास बन गया हूँ। फिर तुम इतनी करुणाके साथ क्यों विलाप कर रही हो ? सुलोचने ! स्वस्थ हो जाओ।'' इस प्रकार कहकर दुरात्मा कालकेतु मुझे भी, जो एकावलीके पास खड़ी थी, उत्तम रथपर बैठाकर बड़ी उतावलीके साथ अपनी मनोहर नगरीमें चला गया। बड़ी भारी सेना उसके पास थी। उस दैत्यका मुख ऐसा प्रसन्न था, मानो खिला हुआ कमल हो। वहाँ पहुँचनेपर उस दानवने मुझको और एकावलीको एक भव्य भवनमें ठहराया। उस भवनकी रक्षाके लिये उसके द्वारा बहुसंख्यक राक्षस नियुक्त हो गये।

राजन् ! अब दूसरे दिनकी बात है—कालकेतुने मुझसे कहा कि 'तुम्हारी सखी एकावली विरहसे घबरा गयी है। यह बालिका निरन्तर चिन्तामें डूबी रहती है।' तुम इसे समझा दो—'सुन्दर कमरवाली कान्ते ! तुम मेरी पत्नी बनकर इच्छानुसार सुख भोगो। चन्द्रवदने ! अब इस राज्यपर तुम्हारा अधिकार रहेगा। मैं सदाके लिये तुम्हारा सेवक बन गया।' वह दानव बार-बार यही वाक्य कह रहा था। उसे सुनकर मैंने खरा जवाब दे दिया। मैंने कहा—'राजन् ! ऐसी अप्रिय बात मेरे मुखसे नहीं निकल सकती। तुम स्वयं ही इससे कहो।' मेरे कथनके पश्चात् उस दुरात्माने मेरी प्यारी सखी एकावलीसे विनयपूर्वक कहा—'कृशोदरी ! तुमने मुझपर मन्त्रप्रयोग कर रखा है। कान्ते ! उस मन्त्रसे अत्यन्त आहत मेरा हृदय अब तुम्हारे अधीन है। अतः अब मैं तुम्हारे वशीभूत हो चुका हूँ—इसमें कोई संशय नहीं है। कल्याणी ! तुम मुझे पति बनाकर इसे सफल करो।'

एकावलीने कहा—राजकुमार हैहय बड़े भाग्यशाली पुरुष हैं। उन्हींके साथ मेरा विवाह करनेके लिये पिताजीने निश्चय कर लिया है। मैं अपने मनमें उन्हें वरण भी कर चुकी हूँ। फिर, कन्याके लिये जिस सनातनधर्मका पालन करना अनिवार्य है, उसका परित्याग करके अब मैं कैसे दूसरेको पति बनाऊँ ! हमारा यह शास्त्रीय सिद्धान्त तुमसे भी छिपा नहीं है कि पिता कन्याको जिसे सौंपना चाहे, उसीको कन्या अपना पति बनाये। कन्या सदाके लिये परतन्त्र है, अपनी इच्छासे वह कभी भी कुछ भी नहीं कर सकती।

राजन् ! एकावलीके इस प्रकार कहनेपर भी दुरात्मा कालकेतु अपने निश्चयसे नहीं डिगा। कारण, वह राजकुमारीपर आसक्त हो चुका था। अतः विशाल नेत्रोंवाली एकावली और उसके पास रहनेवाली मैं—दोनों उस पापीके

हाथसे मुक्त नहीं हो सकीं। कालकेतुका नगर पातालकी एक कन्दरामें है। वहाँ अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वहीं कालकेतुका किला है। चारों तरफ खाइयाँ बनी हैं, अनेकों पहरेदार पहरा दे रहे हैं। वहीं मेरी प्राणप्यारी सखी एकावली अत्यन्त कष्टके साथ समय व्यतीत कर रही है। उसीके विरहसे असीम दुःखमें पड़ी हुई मैं यहाँ इस प्रकार विलख रही हूँ!

एकवीरने कहा—वरानने! मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि उस दुराचारी कालकेतुके नगरसे तुम यहाँ कैसे आ सकी? मैं इसका रहस्य तुमसे सुनना चाहता हूँ। राजकुमारीका कथन है कि मेरे पिताने हैहयके साथ कन्यादान करनेकी बात निश्चित कर ली है। तुम्हारी यह उक्ति भी मुझे महान् संदेहास्पद प्रतीत हो रही है। मेरा ही नाम राजा हैहय है। इस नामके दूसरे कोई नरेश नहीं हैं। तुम्हारी सुन्दर आँखोंवाली सखी मेरे लिये ही तो नहीं कह रही है? सुभ्रु! भामिनी! तुम मेरे इस संदेहको दूर करो। तदनन्तर मैं उस अधम राक्षसको मारकर एकावलीको अवश्य ले आऊँगा। सुव्रते! तुम यदि कालकेतुका स्थान जानती हो तो उसे मुझे दिखा दो। एकावलीके पिता राजा रैभ्यको तुमने यह समाचार जनाया है या नहीं। राजकुमारी बड़ा ही कष्ट सह रही है। जिसकी ऐसी प्यारी कन्याका अपहरण हो जाय और वह जान न सके—यह कितने आश्चर्य तथा दुःखकी बात है। अथवा राजा रैभ्य यदि जानते हैं तो फिर उन्होंने राजकुमारीको छुड़ानेके लिये यत्न क्यों नहीं किया? कन्या कारागारमें कष्ट भोग रही है—यह जानकर राजा कैसे स्थिर बैठे हैं? वे शक्तिहीन तो नहीं हो गये हैं? सुव्रते! तुम शीघ्र इसका कारण बतानेकी कृपा करो। अब मेरे हृदयमें यह अभिलाषा जाग उठी है कि मैं उस सुन्दरीको अत्यन्त संकटसे छुड़ाकर कब सुखी देखूँ। मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ, कालकेतुकी अत्यन्त दुर्गम नगरीमें जानेका क्या उपाय है? पर पहले यह तो बताओ कि तुम उस असीम कष्टको पार करके यहाँ कैसे आ गयी?

यशोवती बोली—राजन्! मैं बचपनसे ही भगवती जगदम्बाके बीजमन्त्रका ध्यानपूर्वक जप करना चाहती हूँ। एक सिद्ध ब्राह्मणकी कृपासे मुझे यह मन्त्र प्राप्त हुआ था। राजन्! मैं जब कालकेतुके बन्दीगृहमें थी, तब वहाँ मैंने इस बीजमन्त्रका चिन्तन आरम्भ कर दिया। यों तो प्रचण्ड पराक्रमवाली देवी चण्डीका आराधन मैं निरन्तर करती ही रहती हूँ। उपासना करनेपर भगवती बन्धनसे मुक्त कर देंगी—यह निश्चित है। भक्तोंपर कृपा करनेवाली वे शक्तिदेवी सब कुछ देनेमें पूर्ण समर्थ हैं। जो अपनी सामर्थ्यसे जगत्का सृजन और पालन करती हैं तथा कल्पके अन्तमें संसारका संहार भी जिनपर ही निर्भर है; वे भगवती निराकार और निराश्रय हैं—वे सर्वरूपमयी एवं सर्वव्यापक भी हैं। मैं ऐसा मनमें सोचकर, जो विश्वकी अधिष्ठात्री हैं, जिनका कल्याणमय सौम्य विग्रह है, जो लाल रंगके वस्त्र धारण किये रहती हैं तथा जिनकी आँखोंसे लालिमा झलकती रहती है, उन भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगी। मन-ही-मन भगवतीके उक्त रूपका स्मरण करके मैं बीजमन्त्रका जप करने लगी। समाधि लगाकर देवीकी उपासनामें एक महीनेतक मैं बैठी रही। फिर तो, मेरी भक्तिसे संतुष्ट होकर भगवती

चण्डिकाने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिये। उन्होंने अमृतमयी वाणीमें मुझसे कहा—'क्यों सोयी हो। उठो और अभी गङ्गाके पावन तटपर चली जाओ। प्रधान नरेश हैहय वहीं पधारनेवाले हैं। उन महाबाहु नरेशका नाम एकवीर है। सम्पूर्ण शत्रुओंको कुचल देनेकी शक्ति रखनेवाले वे नरेश बड़े अच्छे विद्वान् हैं। मुनिवर दत्तात्रेयने मेरे बीजमन्त्रका उन्हें भलीभाँति अभ्यास करा दिया है। अतः अपार भक्तिके साथ राजा एकवीर मेरी उपासनामें निरन्तर लगे रहते हैं। उनके मनसे मैं कभी अलग नहीं होती। वे सदा मेरी पूजामें संलग्न रहते हैं। सम्पूर्ण भूतोंमें एकमात्र मुझे ही देखना उनकी निश्चित धारणा है। मेरी उपासनाके सिवा वे और कुछ जानते ही नहीं। उन्हीं महामति भूपालके द्वारा तुम्हारा संकट दूर होगा। भगवती लक्ष्मी उनकी माता हैं। घूमते हुए गङ्गाके तटपर आकर वे तुम्हारे रक्षक बन जायँगे। उन राजा एकवीरके हाथों कालकेतु मृत्युका ग्रास बन जायगा और मानिनी एकावली बन्धनसे मुक्त हो जायगी। तत्पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रके पारगामी उन्हीं सुन्दर राजकुमारके साथ एकावलीके विवाहकी व्यवस्था तुम करवा देना।'

इस प्रकार स्वप्नमें मुझसे कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मेरी भी नींद तुरन्त टूट गयी। तदनन्तर स्वप्नकी सारी घटना तथा देवीके आराधनकी बातें मैंने राजकुमारी एकावलीको कह सुनायी। सुनकर उस कमलनयनीका मुख-मण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। अत्यन्त संतुष्ट होकर पवित्र मुसकानवाली उस सखीने मुझसे कहा—'प्रिये ! तुम शीघ्र वहाँ पहुँचकर मेरा कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर हो जाओ। भगवतीकी वाणी अमोघ है। उनकी कृपासे हम दोनों अवश्य ही बन्धनसे मुक्त हो जायँगी।' राजन् ! सखी एकावलीके यों प्रेमपूर्वक आदेश देनेपर मैंने निश्चय कर लिया कि अब इस स्थानसे चल देना ही श्रेयस्कर है। राजकुमार ! फिर मैं तो उसी क्षण चल पड़ी, मुझे किसीने रोका-टोका नहीं। परम आराध्या भगवतीकी कृपासे मार्गकी जानकारी तथा शीघ्र चलनेकी शक्ति भी मुझे तुरंत प्राप्त हो गयी थी। ये ही सब मेरे दुःखके कारण हैं, जो मैं बता चुकी। वीर ! जैसे मैंने अपना परिचय दे दिया, वैसे ही अब तुम भी बताओ कि 'तुम कौन हो और तुम्हारे पिताका क्या नाम है ?'

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! प्रतापी नरेश एकवीर भगवती लक्ष्मीके सुपुत्र हैं। यशोवतीकी बात सुनकर उनका कमल-जैसा मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उससे कहने लगे।

राजा एकवीरने कहा—रम्भोरु ! तुमने विशदरूपसे जो मेरा वृत्तान्त पूछा है, वह सुनो—मैं ही हैहय हूँ। मेरा नाम एकवीर है। लक्ष्मीजी मेरी ही माता हैं। तुमने सर्वप्रथम अपनी सखी एकावलीके सम्पूर्ण जगत्के रूपको तिरस्कृत करनेवाले रूपका वर्णन किया है, उससे मेरा मन विह्वल हो उठा है। तदनन्तर तुमने जो यह कहा कि 'कालकेतु दैत्यके सामने एकावलीने कहा कि मैं हैहयको वरण कर चुकी हूँ। उनके सिवा दूसरे किसीको मैं स्वीकार नहीं कर सकती—यह बिलकुल निश्चित है।' तन्वङ्गी ! राजकुमारीके इस कथनसे तो मैं अब उसका दास ही बन गया। सुकेशान्ते ! बताओ, इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये ? सुलोचने ! दुरात्मा कालकेतुके स्थानसे मैं बिलकुल

अपरिचित हूँ। विशालाक्षी ! मैं तुमसे उपाय जानना चाहता हूँ। मुझे वहाँ पहुँचानेमें तुम पूर्ण समर्थ हो। अतः तुम्हारी सुन्दरी सखी एकावली जहाँ रहती है, वहाँ मैं शीघ्र जा सकूँ—ऐसी व्यवस्था करो। राजकुमारी एकावली तुम्हारी प्रिय सखी है। राक्षसके अधीन होकर उसे अत्यन्त दुःख सहने पड़ते हैं। तुम निश्चय समझो कि मैं अभी उस राक्षसको मारकर उसे छुड़ा लाऊँगा। मेरे प्रयाससे राजकुमारीके सभी संकट टल जायँगे और वह तुम्हारे नगरमें लौट आयेगी। फिर मैं राजकुमारी एकावलीको उसके पिताके पास पहुँचा दूँगा। इसके बाद परम तपस्वी राजा रैभ्य अपनी पुत्रीका विधिवत् विवाह कर सकेंगे। प्रियंवदे ! तुम्हारे सहयोगसे मेरी ये मनचाही बातें पूर्ण हो सकती हैं। अतः तुम शीघ्र कालकेतुकी नगरी दिखाकर मेरा पराक्रम देख लो। वरवर्णिनी ! परायी स्त्रीको अपनानेवाले उस पापी राक्षसको जिस किसी प्रकार भी मारनेमें मैं सफल हो सकूँ, वैसा ही यत्न करो। सबसे पहले तो तुम कालकेतुके दुर्गम नगरका मार्ग मुझे दिखा दो।

व्यासजी कहते हैं—राजकुमार एकवीरकी यह प्रिय वाणी सुनकर यशोवतीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। कालकेतुकी नगरीमें जानेके लिये बड़े आदरके साथ अब यशोवती एकवीरको उपाय बतलाने लगी। उसने कहा—'राजेन्द्र ! भगवतीका बीजमन्त्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है। तुम इसकी दीक्षा ले लो। तत्पश्चात् मैं अभी तुम्हें कालकेतुकी नगरी, जिसमें बहुत-से राक्षस पहरा दे रहे हैं, दिखाऊँगी। महाभाग ! वहाँ मेरे साथ चलनेके लिये तुम्हें तैयार हो जाना चाहिये। साथमें विशाल सेना भी ले लेनी चाहिये; क्योंकि वहाँ युद्ध होनेकी निश्चित सम्भावना है। कालकेतु बड़ा पराक्रमी दैत्य है। बहुत-से बलवान् राक्षस उसके पास हैं। अतएव मन्त्रका अभ्यास करके ही तुम मेरे साथ चलो। मैं पापी कालकेतुकी नगरीका मार्ग दिखानेकी पूरी चेष्टा करूँगी। राजन् ! अब उस दुराचारीको शीघ्र ही मारकर मेरी सखीको बन्धनसे मुक्त कराना तुम्हारा परम कर्तव्य है।'

यशोवतीका कथन सुनकर एकवीरने उसी क्षण मन्त्रकी दीक्षा ले ली। दत्तात्रेयजी ज्ञानियोंमें शिरोमणि माने जाते हैं। संयोगवश वहाँ उनका शुभागमन हो गया था। उन्होंने योगेश्वरीके महामन्त्रका उपदेश किया था। भगवतीके इस मन्त्रको त्रिलोकीका तिलक कहते हैं। इस मन्त्रके प्रभावसे राजा एकवीरको सब कुछ जानने तथा सर्वत्र जानेकी योग्यता प्राप्त हो गयी। अतः कालकेतुके अत्यन्त दुर्गम नगरके लिये वे तुरंत प्रस्थित हो गये। वह नगर राक्षसोंद्वारा इस प्रकार सुरक्षित था, मानो सर्प पातालकी रक्षा कर रहे हों। यशोवती और एक विशाल सेनाके साथ एकवीर उसके समीप पहुँच गये। उन्हें आते देखकर कालकेतुके दूत भयसे घबरा उठे। अतः बड़ी उतावलीके साथ चिल्लाते हुए वे सभी कालकेतुके पास पहुँचे। उस समय वह दैत्य एकावलीके पास बैठकर तरह-तरहसे प्रार्थना कर रहा था। दूतोंने समझ लिया, हमारा यह स्वामी कामसे मोहित हो गया है, अतः उससे वे कहने लगे।

दूत बोले—राजन् ! इस कामिनीके साथ आनेवाली यशोवती नामक एक स्त्री आ रही है। उसके साथ कोई एक राजकुमार भी है।

महाराज ! पता नहीं, वह इन्द्रपुत्र जयन्त है अथवा शंकरकुमार कार्तिकेय। एक बड़ी भारी सेना लेकर बलके अभिमानसे मत्त हुआ वह आ रहा है। राजेन्द्र ! अब आप सावधान हो जायँ। युद्धका अवसर सामने आ गया है। उस देवपुत्रके साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनीसे स्नेह छोड़िये। राजन् ! शत्रुसेना निकट आ गयी है। केवल तीन ही योजन दूर है। आप शीघ्र सजग हो जाइये। रणदुन्दुभी बजानेकी आज्ञा दे दीजिये।

व्यासजी कहते हैं—दूतोंकी बात सुनकर कालकेतु क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया। उसके पास बहुत-से राक्षस शस्त्रधारी सैनिकोंके साथ विद्यमान थे। उनसे उसने कहा—'राक्षसो ! तुम सब लोग हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर शत्रुके सामने जाओ।' यों राक्षसोंको जानेकी आज्ञा देकर कालकेतुने बड़ी नम्रताके साथ एकावलीसे पूछा। उस समय वह राजकुमारी अत्यन्त दुःखी होकर विवशतापूर्वक उसके निकट ही बैठी हुई थी। कालकेतुने उससे कहा—'तन्वङ्गी ! यह कौन आ रहा है ? तुम्हारे पिता हैं अथवा कोई अन्य पुरुष ? कृशोदरी ! तुम्हें लेनेके लिये सेनासहित आनेवाले इस व्यक्तिका सच्चा परिचय बतानेकी कृपा करो। सम्भव है, तुम्हारे पिता विरहसे आतुर होकर तुम्हें लेनेके लिये आ रहे हों। मैं यदि जान जाऊँगा कि ये तुम्हारे पिताजी हैं तो मैं संग्राम नहीं करूँगा। बल्कि, उन्हें सादर घरपर ले आऊँगा और रत्न, वस्त्र एवं सुन्दर घोड़े भेंट देकर उनका स्वागत करूँगा। मेरे घर पधारनेपर सम्यक् प्रकारसे उनका आतिथ्य-सत्कार होगा। और यदि कोई दूसरा राजा होगा तो तीखे तीरोंसे उसके प्राण हर लिये जायँगे। यह निश्चय है कि महात्मा कालकी प्रेरणासे मरनेके लिये ही वह यहाँ आ रहा है। अतएव विशालाक्षी ! बताओ, मैं साक्षात् काल हूँ, मुझमें अपार बल है, कोई मुझे जीत नहीं सकता। मेरे इस प्रभावको न जानकर किस मूर्खका यहाँ आना हो गया ?'

एकावलीने कहा—महाभाग ! इतनी शीघ्रतासे यह कौन आ रहा है, मैं नहीं जानती। अभीतक किसीको भी मालूम नहीं कि मैं तुम्हारे यहाँ बन्धनमें पड़ी हूँ। न ये मेरे पिता हैं और न मेरे भाई ही। दूसरा ही कोई महान् पराक्रमी पुरुष हो सकता है। किस उद्देश्यसे वह यहाँ आ रहा है—यह भी निश्चितरूपसे मैं नहीं जानती।

कालकेतु दैत्यने कहा—ये दूत इस प्रकार कह रहे हैं कि तुम्हारी सखी यशोवतीका ही सारा प्रयत्न है। वही इस वीरको साथ लेकर आ रही है। कान्ते ! तुम्हारी वह सखी कार्य करनेमें बड़ी कुशल जान पड़ती है। वह कहाँ गयी है ? दूसरे किसीसे तो मेरी शत्रुता है नहीं, जो मेरे विरोधमें खड़ा हो सके।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि दूसरे दूत वहाँ आ पहुँचे। कालकेतु घरपर बैठा था। अत्यन्त भयके साथ उन दूतोंने उससे कहा—'महाराज ! आप कैसे निश्चिन्त बैठे हुए हैं ? अब शत्रुसेना बिलकुल संनिकट आ पहुँची है। आप एक बहुत विशाल सेनाके साथ शीघ्र नगरसे बाहर पधारिये।' दूतोंकी बातें सुननेके पश्चात् महाबली कालकेतु तुरंत रथपर सवार होकर अपने नगरसे निकल पड़ा। इतनेमें प्रतापी एकवीर भी घोड़ेपर चढ़े हुए सामने आ पहुँचे। अब दोनोंमें इस प्रकार युद्ध छिड़ गया, मानो इन्द्र और वृत्रासुर लड़ रहे हों।

युद्ध आरम्भ होनेपर भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। उन अस्त्रोंसे दिशाएँ चमकने लगीं। उस समय कातरोंके हृदयमें महान् आतङ्क छा गया था। तदनन्तर एकवीरने गदासे मारकर

कालकेतुके प्राण हर लिये। वह दानव इस प्रकार पृथ्वीपर गिरा, मानो वज्रका मारा हुआ पर्वत हो। कालकेतुकी मृत्यु होते ही शेष सभी राक्षस भागकर जहाँ-तहाँ छिप गये। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। तब यशोवती शीघ्र ही एकावलीके पास आ पहुँची। उसके मनमें असीम आनन्द भरा था। उसने मधुर वाणीमें एकावलीसे आश्चर्ययुक्त वचन कहा—'सखी ! इधर पधारो। देखो, यह दानव महाभाग एकवीरके प्रयाससे सदाके लिये सो गया। ये बड़े बुद्धिमान् पुरुष हैं। इन्होंने बड़ी कठिन लड़ाई लड़ी है। इस समय वे राजा एकवीर अत्यन्त थक जानेके कारण बाहर द्वारपर ही विराज रहे हैं; उनके मनमें तुम्हें देखनेकी प्रतीक्षा लगी हुई है। कारण, तुम्हारे रूप और गुणोंकी बात वे सुन चुके हैं। राजकुमारी ! उन परम सुन्दर राजकुमारको देखनेकी कृपा करो। इन परम राजकुमारसे तुम्हारे विषयमें गङ्गाके तटपर मैं बात कर चुकी हूँ। बातचीतके प्रभावसे ही वे तुमपर पूर्ण अनुरक्त हो गये हैं और तुमको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं।'

यशोवतीकी बात सुनकर राजकुमारी एकावलीके मनमें जानेकी बात तो जँच गयी; परंतु अभी वह कुमारी थी, अतएव भयसे घबरा उठी। उसके मनमें पर्याप्त संकोच था। उसने सोचा, मैं एक कुमारी कन्या कैसे राजकुमारका मुख देखूँगी। यों वह साध्वी चिन्तामें व्यस्त हो यशोवतीको साथ लेकर पालकीपर बैठी और चल दी। वह द्वारपर पहुँच गयी। उसका मुख उदास था। वह मैली साड़ी पहने थी। विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी आ गयी—यह देखकर राजकुमार एकवीरने उससे कहा—'तन्वङ्गी ! दर्शन दो, तुम्हें देखनेके लिये मेरे नेत्र प्यासे हैं।' एकवीर अत्यन्त आतुर थे और एकावली लज्जासे गड़ी जा रही थी—यह देखकर नीतिकी पूर्ण जानकार तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करनेवाली यशोवतीने एकवीरसे कहा—'राजकुमार ! इसके पिता भी इसे तुम्हींको देना चाहते हैं। यह राजकुमारी तुम्हारे अधीन होगी और इसके साथ तुम्हारा मिलन होगा—यह निश्चित है। किंतु राजेन्द्र ! कुछ समयकी प्रतीक्षा करके तुम पहले इसे इसके पिताके पास पहुँचानेकी व्यवस्था करो। इसके पिता ही वैवाहिक विधि सम्पन्न करके तुम्हारे साथ इसका विवाह कर देंगे।'

यशोवतीकी बात धर्मात्मा एकवीरने सत्य मान ली। अतः यशोवती और एकावलीको साथ लेकर वे सेनासहित राजा रैभ्यके स्थानपर गये। पुत्रीके आनेका समाचार सुनकर रैभ्य

प्रेमपूर्वक मन्त्रियोंके साथ उसकी अगवानीके लिये आगे बढ़े। बहुत दिनोंके पश्चात् मलिन वस्त्र धारण करनेवाली वह पुत्री उन्हें दृष्टिगोचर हुई। फिर यशोवतीने विस्तारपूर्वक सभी बातें अपने पिताको बतलायीं। तदनन्तर एकवीर और राजा रैभ्यका परस्पर मिलन हुआ। राजा उन्हें लेकर अपने घर पधारे। शुभ मुहूर्तमें विवाहका आयोजन किया गया। विधिपूर्वक पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हुआ। दहेज देकर राजाने भलीभाँति एकवीरका सम्मान किया। तत्पश्चात् कन्याको विदा कर दिया। साथमें यशोवतीको भी भेज दिया।

इस प्रकार विवाह हो जानेपर महाराज एकवीरके हर्षकी सीमा नहीं रही। अब वे अपने भवनपर पहुँचे और प्रेयसी भार्या एकावलीके साथ रहकर भाँति-भाँतिके भोग भोगने लगे। उन्होंने एकावलीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया,

जो 'कृतवीर्य' नामसे विख्यात हुए। उन्हीं कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य हैं। इस प्रकार मैं इस वंशावलीका वर्णन कर चुका।

(अध्याय २२-२३)

☆

## व्यास-नारद-संवाद, नारद और पर्वतका परस्पर शाप-प्रदान, नारदको वानर-मुखकी प्राप्ति और दमयन्तीसे विवाह, दोनों ऋषियोंका परस्पर शाप-मोचन तथा मेल

राजा जनमेजयने कहा—भगवन्! आपके मुखकमलसे निकला हुआ दिव्य कथारूपी रस अमृतके समान मधुर है। इसका निरन्तर पान करते रहनेपर भी मैं तृप्त नहीं हो सका। आपने हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्तिका प्रसंग मुझसे विस्तारपूर्वक जो कहा है, वह बड़ा ही विचित्र एवं आश्चर्यजनक है। इस विषयमें मुझे सबसे बढ़कर आश्चर्ययुक्त शङ्का तो यह हो रही है कि बड़े-बड़े देवताओंको मोह क्यों हो जाता है? ब्रह्मन्! आप सर्वज्ञानी पुरुष हैं। आप मेरे इस संदेहको दूर करनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सुनो, इस शङ्काका निर्णीत उत्तर पूर्व समयमें मैंने मुनिवर नारदजीके मुखसे जैसा सुना है, ठीक वैसा ही बता रहा हूँ। ब्रह्माजीके मानस पुत्रका नाम नारद है। वे परम तपस्वी, सर्वज्ञानी, शान्तस्वरूप, सर्वत्र जानेकी योग्यता रखनेवाले, सम्पूर्ण जगत्के प्रेमी एवं प्रकाण्ड विद्वान् हैं। एक समयकी बात है, मुनिवर नारदजी स्वर और तानके साथ वीणा बजाते हुए इस भूमण्डलपर विचर रहे थे। साथ ही उनके द्वारा बृहद्रथन्तर और साम आदि अनेक प्रकारके भेदसे अमृतमयी गायत्रीका गान चल रहा था। यों गाते-बजाते वे मेरे आश्रमपर पधारे। उस समय

मैं शम्याप्रास नामक महान् तीर्थमें था। वह परम पावन स्थान सरस्वती नदीके तटपर है। कल्याण और ज्ञान प्रदान करनेवाले उस तीर्थमें बहुत-से सुप्रसिद्ध मुनि निवास करते हैं। ब्रह्माजीके मानस पुत्र महान् तेजस्वी मुनिवर नारदजीका आगमन देखकर मैं उठकर खड़ा हो गया और सम्यक् प्रकारसे मैंने उनकी पूजा की। जब पाद्य-अर्घ्य आदि स्वीकार करके नारदजी शान्तभावसे आसनपर विराज गये, तब मैं भी उनके पास बैठ गया। राजन्! मैंने देखा, ज्ञानकी चरम सीमातक पहुँचानेमें कुशल मुनिजीका मार्गश्रम अब दूर हो गया, उनका चित्त शान्त है, तब अभी जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है, वही मैंने उनसे किया था। मैंने कहा—'मुने! इस मिथ्या जगत्में प्राणियोंको क्या सुख है? सम्यक् प्रकारसे विचार करनेपर कहीं भी किंचिन्मात्र भी सुख मुझे दिखायी नहीं पड़ता।' तदनन्तर व्यासजीने अपना सारा पूर्ववृत्तान्त तथा उसीके

प्रसंगमें कौरव-पाण्डवोंकी बात सुनाकर अन्तमें नारदजीसे कहा—

'नारदजी! मेरा मन सदा अशान्त बना रहता है। झूलेपर बैठा हुआ यह अशान्त मन कहीं भी स्थिर नहीं रह पाता। मुनिवर! आप सर्वज्ञ पुरुष हैं। मेरा संदेह दूर करनेकी कृपा कीजिये।'

तब परमार्थ-ज्ञानी नारदजी मेरी बात सुननेके पश्चात् मुसकराकर मुझसे प्राणियोंको मोह होनेका कारण बताने लगे।

नारदजीने कहा—पराशरनन्दन व्यासजी! आप क्या पूछते हैं? पुराणवेत्ता मुनिवर! यह बिलकुल निश्चित है कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी प्राणी मोहसे अछूता नहीं रह सका। बड़े-बड़े देवता तथा ऋषि-मुनि सब-के-सब मोहके अधीन होकर संसारमार्गमें निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं। मैं स्वयं अपने ऊपर बीती हुई बातें बताता हूँ; सुननेकी कृपा करें। व्यासजी! मुझे जैसे महान् दुःखका अनुभव करना पड़ा था, उसमें मोहवश स्त्रीकी प्राप्तिके लिये अपना फँस जाना ही कारण था।

एक समयकी बात है—मैं और पर्वत मुनि उत्तम भारतवर्षको देखनेके विचारसे स्वर्गसे पृथ्वीपर उतरे। तीर्थोंको देखते हुए हम दोनों एक साथ धरातलपर घूमने लगे। हमें मुनियोंके बहुत-से पवित्र आश्रम दृष्टिगोचर हुए। स्वर्गसे चलते समय हम दोनोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'जिसके मनमें जैसा विचार उत्पन्न हो, वह एक-दूसरेसे कह दे। मनोभाव चाहे पवित्र हो अथवा अपवित्र, किंतु एक-दूसरेसे कभी उसे छिपाकर न रखा जाय। स्त्री, धन अथवा भोजनविषयक जैसी भी इच्छा जिसके मनमें उत्पन्न हो, वह परस्पर एक-दूसरेसे अवश्य कह दे।' इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके हम दोनों स्वर्गसे पृथ्वीपर आये और एकचित्त होकर इच्छानुसार

भूमण्डलपर विचरने लगे। हम दोनों इस लोकमें भ्रमण कर रहे थे—इतनेमें ग्रीष्म-ऋतु समाप्त होकर वर्षा-ऋतुका आगमन हो गया। तब हमलोग राजा संजयकी सुरम्य नगरीमें चले गये। राजा संजय बड़े सज्जन पुरुष थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक हमारा भलीभाँति स्वागत-सम्मान किया। उन्हींके भवनपर रहकर हमारा चौमासा व्यतीत हुआ। वर्षा-ऋतुके चार महीने मार्गमें बहुत कष्टप्रद होते हैं। अतएव विज्ञ पुरुष उतने समयतक एक जगह रहना ही उचित समझते हैं। सुखकी आशा रखनेवाला पुरुष कार्यवश आठ महीने सदा विदेशकी यात्रा कर सकता है; किंतु वह वर्षा-ऋतुमें बाहर जानेका दुःसाहस न करे। इस प्रकार मनमें सोचकर हम दोनों व्यक्ति राजा संजयके यहाँ रह गये। उन महानुभाव नरेशने बड़े आदरके साथ हमारा आतिथ्य किया। राजा संजयकी एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम दमयन्ती था। राजाकी आज्ञासे वह परम सुन्दरी कन्या सदा हमारे सत्कारमें संलग्न रहती थी। वह बड़ी विदुषी थी। उसके नेत्र बड़े विशाल थे। उसका उद्यमी स्वभाव था। वह किसी भी समय हम दोनोंकी सेवासे मुख नहीं मोड़ती थी। हम दोनोंके सामने सदा अभिलषित पदार्थ उपस्थित किया करती थी। उसके द्वारा मनके अनुकूल भोजन, आसन आदिका पूरा प्रबन्ध हो जाया करता था।

इस प्रकार हम दोनों मुनि राजा संजयके भवनपर सत्कृत होकर रहने लगे। वेदका स्वाध्याय करना हमारा स्वाभाविक गुण है ही। अतः हम अपने वेदव्रतमें सदा संलग्न रहते थे। मैं हाथमें वीणा लेकर उत्तम स्वरसे सामवेद गाया करता था। कानको सुख पहुँचानेवाले उस गानमें मधुरता भरी हुई थी। मेरे मनोहर सामगानको सुनकर राजकुमारी दमयन्ती मुझपर आसक्त हो गयी। उस परम विदुषीके मनमें अब मेरे प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हो गया और उस प्रेमकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गयी। ऐसी स्थितिमें प्रेम करनेवाली उस सुन्दरीके प्रति मेरा मन भी चलायमान हो गया। अब तो मुझमें विशेष अनुराग रखनेवाली राजकुमारी मेरे और पर्वत मुनिके लिये जो भी सेवा-कार्य या वस्तु उपस्थित करती थी, उसमें कुछ भेदभाव होने लगा। वह मुझे जिस प्रकार प्रेमसे देखती थी, वैसे ही पर्वत मुनिको भी देखना उसके लिये सम्भव नहीं रहा। राजकुमारी दमयन्तीके ऐसे सहेतुक प्रेमको देखकर पर्वत मुनिने मनमें विचार किया कि ऐसा क्यों हो रहा है। उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। तदनन्तर उन्होंने एकान्तमें मुझसे पूछा—'नारद ! बात क्या है ? स्पष्टरूपसे बतानेकी कृपा करो। राजकुमारी तुम्हारे प्रति जैसा अधिक अनुराग रखती है, मेरे प्रति उसका वैसा प्रेम नहीं है। यह भेद मेरे मनमें संदेह उत्पन्न कर रहा है। जान पड़ता है, राजकुमारीके मनमें तुम्हें पति बनानेकी इच्छा सर्वथा निश्चित हो गयी है। लक्षणोंको देखकर मेरी समझमें आ रहा है कि तुम्हारा अभिप्राय भी वैसा ही है; क्योंकि आँख और मुखके भाव प्रेमके कारणको सूचित कर देते हैं। मुने ! सच्ची बात कहो। स्वर्गसे चलते समय हमलोगोंने जो प्रतिज्ञा की थी, इस समय तुम्हें उसपर ध्यान रखना चाहिये।'

नारदजी कहते हैं—जब पर्वत मुनिने अत्यन्त आग्रहके साथ मुझसे कारण पूछा, तब बड़े संकोचमें भरकर मैं उनसे कहनेके लिये

उद्यत हुआ। मैंने कहा—'पर्वत! विशाल नेत्रों-वाली यह राजकुमारी मुझे पति बनाना चाहती है यह सत्य है और इसके प्रति मेरी भी मानसिक भावना वैसी ही बन चुकी है।' मेरे इस सत्य वचनको सुनकर मुनिवर पर्वतके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया। उन्होंने मुझसे कहा—'नारद! तुम्हें बार-बार धिक्कार है; क्योंकि पहले प्रतिज्ञा करके तुमने मुझे बड़े भारी धोखेमें डाल दिया है। अरे मित्रद्रोही! मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ—तुम अभी बंदरके मुखवाले बन जाओ!'

पर्वत मुनि महात्मा पुरुष थे। जब रोषमें भरकर उन्होंने शाप दे दिया, तब तुरंत मेरे मुखकी आकृति बंदरकी हो गयी। सम्बन्धमें वे मुनि मेरी बहिनके लड़के थे। पर क्रोधवश मैं भी उन्हें क्षमा न कर सका। मैंने भी शाप दे दिया कि 'अबसे तुम भी स्वर्गके अनधिकारी हो जाओ। पर्वत! तुम्हारी बुद्धि बड़ी खोटी है। इतने थोड़े-से अपराधपर तुमने मुझे शाप दे दिया। अतएव तुम भी अब मर्त्यलोककी ही हवा खाते रहो।' तदनन्तर पर्वत मुनि अत्यन्त उदास होकर नगरसे निकल पड़े। मेरा मुख भी बंदरके मुँह-जैसा हो गया। राजकुमारी परम विदुषी थी। वीणाका स्वर सुननेमें वह बड़ा उत्साह रखती थी। जब उसने मुझ क्रूर बंदरको देखा, तब उसके मुखपर अप्रसन्नताकी घनी घटाएँ छा गयीं।

व्यासजीने पूछा—ब्रह्मन्! इसके बाद क्या हुआ? आपने शापसे कैसे छुटकारा पाया? फिर आपकी मुखाकृति मानवाकार कैसे हुई? यह प्रसङ्ग पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें। फिर आप दोनों महानुभावोंका कब, कहाँ और कैसे सम्मिलन हुआ? ये सभी बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

नारदजीने कहा—महाभाग! क्या कहूँ—मायाकी गति बड़ी ही विचित्र है। कुपित होकर पर्वत मुनिके चले जानेपर मैं प्रायः दुःख ही भोगता रहा। यद्यपि राजकुमारी दमयन्ती सेवामें तत्पर होकर सदा मेरा सहयोग ही करती रही। पर्वत मुनि चले गये और मैं स्वेच्छापूर्वक वहीं ठहर गया। वानरके समान मुख हो जानेके कारण मेरे मनमें दीनता छा गयी। मेरे दुःखका पार नहीं रहा। यह कैसी घटना सामने घट गयी—इस प्रकारकी चिन्ता मुझे सदा कष्ट देने लगी। अब राजकुमारी दमयन्तीके शरीरमें कुछ जवानीके चिह्न स्पष्ट होने लगे। राजा संजयने देखकर उसके विवाहके लिये अपने मन्त्रीसे कहा—'अब मेरी कन्या विवाहके योग्य हो गयी। आप मुझे कोई सुयोग्य वर बतलाइये। इसके लिये ऐसा राजकुमार चाहिये, जो सब प्रकारसे श्रेष्ठ हो। उसे सुन्दर, उदार, गुणी, शूरवीर और कुलीन होना चाहिये। ऐसा वर मिलनेपर मैं उस राजकुमारके साथ अपनी कन्याका विधिवत् पाणिग्रहण-संस्कार कर दूँगा।' संजयकी बात सुनकर प्रधान मन्त्रीने कहा—'राजन्! आपकी पुत्रीके अनुकूल बहुत-से सुयोग्य एवं सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त राजकुमार भूमण्डलपर विद्यमान हैं। महाराज! जो राजकुमार आपको पसंद हो, उसीको बुलाकर बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ आदि धनके साथ कन्यादान कर दीजिये।'

नारदजी कहते हैं—राजकुमारी दमयन्ती बातचीत करनेमें बड़ी कुशल थी। राजाका अभिप्राय जानकर उसने अपनी धायके द्वारा एकान्तमें उनसे कहलाया।

धायने कहा—महाराज ! आपकी कन्या दमयन्तीने मुझसे कहा है कि धाय ! तुम मेरे पिताजीसे विनयपूर्वक मेरी हितकर बातें कह दो। उसका कथन है—'मैं बुद्धिमान् नारदजीका वरण कर चुकी हूँ। उनकी वीणाके स्वरने मेरे मनको मोहित कर लिया है। अतः अब दूसरा कोई पुरुष मुझे अभीष्ट नहीं है। पिताजी ! आप मेरी रुचिके अनुसार इन मुनिवरके साथ ही मेरा विवाह कर दीजिये। धर्मज्ञ ! मैं इनके सिवा दूसरे किसीको पति नहीं बनाऊँगी; क्योंकि मुनिके रसस्वरूप नादमय मधुर समुद्रमें मैं डूब चुकी हूँ। यह सुखदायी सागर नाक, घड़ियाल, मत्स्य आदि जानवरोंसे बिलकुल शून्य है।'

नारदजी कहते हैं—धायद्वारा कहलायी हुई पुत्री दमयन्तीकी बात सुनकर राजा संजयने पास बैठी हुई अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली रानी कैकेयीसे कहा।

राजा बोले—प्रिये ! धायने जो बात कही है, वह तो तुम सुन ही चुकी हो। बंदर-जैसे मुखवाले नारद मुनिको उसने पतिरूपमें वरण कर लिया है। उसकी यह मूर्खतापूर्ण दुश्चेष्टा है। भला, बंदरके समान मुखवाले उस मुनिको मैं अपनी यह कन्या कैसे दूँगा। कहाँ भीख माँगने-वाला वह कुरूप मुनि और कहाँ मेरी लाडिली परम सुन्दरी कन्या दमयन्ती। ऐसा बेमेल सम्बन्ध कभी भी नहीं किया जा सकता। प्रिये ! तुम्हारी वह भोली कन्या मुनिपर आसक्त हो गयी है। तुम उसे एकान्तमें शास्त्रकी आज्ञा तथा वृद्ध पुरुषोंकी मर्यादा बतलाकर युक्तिपूर्वक समझाकर इस हठसे मुक्त करो।

पतिदेवकी यह बात सुनकर रानी कैकेयीने राजकुमारी दमयन्तीसे कहा—'बेटी ! कहाँ तो तुम-जैसी रूपवती राजकन्या और कहाँ बंदरमुहाँ निर्धन मुनि ! तुम्हारा शरीर लताके समान सुकोमल है और यह मुनि देहमें सदा राख लपेटे रहता है। फिर तुम चतुर होती हुई भी इस भिक्षुक मुनिपर कैसे आसक्त हो गयी हो ? अनघे ! इस बंदरमुँहेके साथ तुम्हारा सम्बन्ध कैसे शोभा पा सकता है ? शुचिस्मिते ! इस निन्दनीय पुरुषके प्रति तुम्हारी प्रीति कैसे हो सकेगी ? तुम्हारा वर तो कोई सुन्दर राजकुमार होना चाहिये। बेटी ! तुम व्यर्थ हठ मत करो। धायके मुखसे बात सुनकर तुम्हारे पिता अपना दुःख प्रकट कर रहे हैं। ठीक ही है, बबूरके वृक्षपर फैली हुई कोमल मालती-लताको देखकर किस चतुर पुरुषका मन दुःखी न होगा। जगत्‌में मूर्ख कहलानेवाला मानव भी ऊँटको खानेके लिये कोमल पानके पत्ते नहीं देता है। विवाहके अवसरपर तुम इस नारदके पास बैठो और यह तुम्हारा पाणिग्रहण करे, इसे देखकर किसका चित्त नहीं जलेगा ? ऐसे घृणित मुखवालेके साथ तो बातचीतमें भी रुचि उत्पन्न करनेकी सम्भावना नहीं होती। अतएव इस नारदके साथ अन्ततक तुम अपना जीवन कैसे व्यतीत कर सकोगी ?'

नारदजी कहते हैं—सुकुमारी दमयन्ती मेरे विषयमें अपनी पक्की धारणा बना चुकी थी। माताकी बात सुनकर अत्यन्त घबराहटके साथ उसने कहा—'माताजी ! जब ये मुनि रसमार्गसे बिलकुल अनभिज्ञ हैं और सांसारिक विषय-वासनाका इन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है, तब इन्हें सुन्दर मुख, धन और राज्यसे क्या प्रयोजन है ? माताजी ! वनमें रहनेवाली उन हरिणियोंको भी धन्यवाद है, जो वीणाका मधुर स्वर सुनकर

प्राण तक देनेको तैयार हो जाती हैं। जो मूर्ख मानव इस स्वरसे प्रेम नहीं करते, वे जगत्में धिक्कारके पात्र समझे जाते हैं। माँ ! नारदजीको जिस सप्तस्वरमयी विद्याका ज्ञान है, उसे शिवजीको छोड़कर तीसरा कोई भी पुरुष नहीं जानता। माँ ! मूर्खके साथ रहनेपर तो प्रतिक्षण ही मृत्युका सामना करना पड़ता है। अतः रूपवान् और धनवान् होनेपर भी यदि कोई मूर्ख है तो उस पुरुषको सदा त्याग देना चाहिये। व्यर्थ गर्व करनेवाले मूर्ख राजाकी मैत्रीको धिक्कार है। गुणी भिक्षुककी मैत्रीको मैं श्रेष्ठ मानती हूँ। कारण, उसके वचनमात्रसे सुखकी अनुभूति होती रहती है। स्वर, ग्राम और मूर्च्छना आदि आठ प्रकारके भेदोंको जाननेवाला दुर्बल पुरुष भी मिलना कठिन है। स्वरके ज्ञानमें परम प्रवीण पुरुष कैलासतक पहुँचानेवाली गङ्गा और सरस्वतीकी तुलना कर सकता है। जो स्वरके प्रमाणको जानता है, उसे मनुष्य होते हुए भी देवता समझना चाहिये। स्वरभेदसे अनभिज्ञ इन्द्र भी पशुके तुल्य है। मूर्च्छना आदि स्वरोंको सुनकर जिसके मनमें आह्लाद उत्पन्न नहीं होता, उसे ही सर्वथा पशु समझना चाहिये, न कि हरिणको ही। मैं तो विषधर सर्पको भी श्रेष्ठ मानती हूँ। कारण, कान न रहनेपर भी मनोहर नाद सुनकर वह मस्त हो जाता है। कानवाले मानव यदि मनोहर नाद सुनकर हर्षित नहीं होते तो उन्हें धिक्कार है। बालक भी उत्तम स्वरसे गाये हुए गीतको सुनकर प्रसन्न हो जाता है। इस गानके रहस्यको न समझनेवाले वृद्धतक अधम समझे जाते हैं। क्या मुनिवर नारदके इन अपार अप्रतिम गुणोंको पिताजी नहीं जानते ? त्रिलोकीमें नारदके समान सामवेदका दिव्य गान करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अतएव मैंने अच्छी तरह समझ-बूझकर ही इन मुनिका वरण कर लिया है। सुप्रसिद्ध गुणी इन मुनिके मुखकी आकृति पहले बंदर-जैसी नहीं थी। बादमें शापके कारण इनका ऐसा मुँह हो गया है और वह भी मेरे ही कारण हुआ है। अतएव मैं कैसे दूसरा विचार कर सकती हूँ। किन्नर घोड़े-जैसे मुखवाले होनेपर भी किसको प्रिय नहीं होते—उनसे सभी प्रेम करते हैं ! कारण, सामवेदके वे बड़े अच्छे जानकार हैं। किसीके सुन्दर मुखसे ही क्या प्रयोजन है। माँ ! तुम पिताजीसे कह दो, मैं निश्चितरूपसे मुनिवरको वर चुकी हूँ। अतः आग्रह छोड़कर वे प्रसन्नतापूर्वक मेरा विवाह मुनिजीके साथ कर दें।'

नारदजी कहते हैं—पुत्रीकी बात सुनकर रानीने राजासे सब कह सुनाया। मेरी पुत्री दमयन्तीका नारद मुनिमें पूर्ण अनुराग हो चुका है—यह समझकर उस परम सुन्दरी रानी कैकेयीने राजा संजयसे कहा—'आप किसी शुभ मुहूर्तमें नारद मुनिके साथ ही दमयन्तीका विवाह कर दीजिये; क्योंकि अपनी यह कन्या उन सर्वज्ञानी मुनिको मन-ही-मन वर चुकी है।'

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार रानी कैकेयीके प्रेरणा करनेपर राजा संजय विधि-पूर्वक विवाह करनेको प्रस्तुत हो गये। उन्होंने सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करके मेरे साथ दमयन्तीका विवाह कर दिया। परमतपस्वी व्यासजी ! इस तरह विवाह होनेके पश्चात् मैं वहीं रहने लगा। बंदरका मुख होनेके कारण मेरी मानसिक चिन्ता सीमाको पार कर रही थी। जब राजकुमारी दमयन्ती सेवा करनेके लिये मेरे पास आती, तब मैं दुःखसे संतप्त हो उठता। परंतु खिले हुए

कमलके समान मुखवाली वह राजकुमारी मुझे देखकर कभी भी, कहीं भी, तनिक-सा भी खेद प्रकट नहीं करती थी। मेरे बंदरके मुखसे उसके
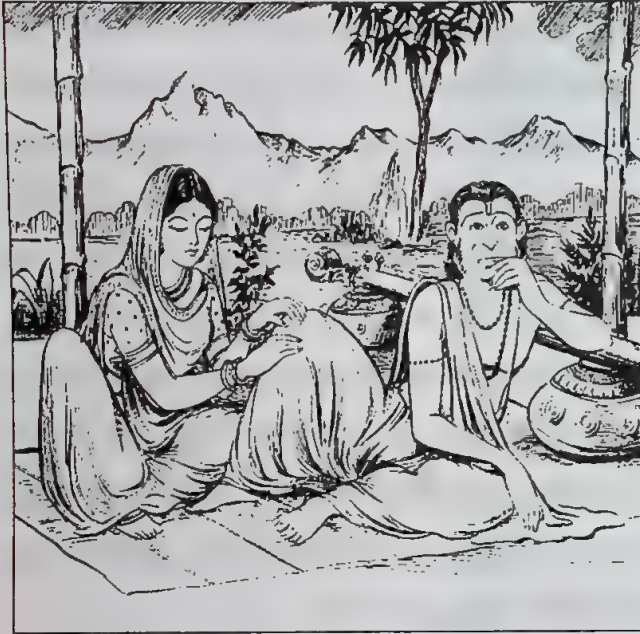
मनमें जरा भी उद्वेग नहीं था।

यों कुछ समय व्यतीत होनेके पश्चात् सहसा एक दिन पर्वत मुनि मेरे स्थानपर पधारे। अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मुझसे मिलनेके विचारसे ही वे आ गये थे। मैंने उनका पर्याप्त सम्मान किया। उनकी विधिवत् पूजा की। एक दिन वे आसनपर बैठे थे, उस समय मुझको और दमयन्तीको देखकर उनका मन दुःखी हो गया; क्योंकि मेरी स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। बंदरका मुख होनेके कारण विवाह करके मैं अत्यन्त चिन्तित हो कालक्षेप कर रहा था। मुझ अपने मामाको ऐसा दुःखी देखकर उन परम दयालु मुनिने कहा—'मुनिवर नारद ! क्रोधमें आकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया था; किंतु सुनो, मैं अब उसे दूर कर देता हूँ। नारद ! अब तुम मेरे पुण्यके प्रभावसे पुनः सुन्दर मुखवाले बन जाओ; क्योंकि इस समय राजकुमारीको देखकर मेरा मन करुणासे ओत-प्रोत हो गया है।'

नारदजी कहते हैं—मुनिवर पर्वतकी बात सुनकर मेरा मन भी नम्रता और कृतज्ञतासे भर गया। उसी क्षण मैंने भी जो उन्हें शाप दिया था, उसका मार्जन कर दिया। मैंने कहा—'मुनिवर पर्वत ! तुम मेरी बहनके सुयोग्य पुत्र हो। तुमको मैंने शाप दे दिया था, उसे स्वेच्छापूर्वक सानन्द वापस ले रहा हूँ, अतः तुम स्वर्गमें जा सकते हो।'

फिर तुरंत पर्वत मुनिके कथनानुसार उनके देखते-देखते ही मेरा मुख अत्यन्त सुन्दर बन गया। अब राजकुमारीके हर्षकी सीमा नहीं रही। उसने तुरंत अपनी मातासे कहा—'माँ ! तुम्हारे परम तेजस्वी जामाता अब सुन्दर मुखवाले बन गये हैं। पर्वत मुनिकी आज्ञाके अनुसार उनके शापसे इनका उद्धार हो गया है।' पुत्रीकी बात सुनकर रानीने राजासे यह प्रसंग कह सुनाया। सुनते ही राजा संजय परम प्रसन्न होकर मुझे देखनेके लिये वहाँ पधारे। उस समय उन महाभाग नरेशके मनमें अपार आनन्द हो रहा था। उन्होंने मुझे उपहारमें बहुत-सा धन दिया और मेरे भागिनेय पर्वत मुनिको भी सादर उपहार समर्पित किया। मेरे इसी जीवनमें ये सब

प्रसङ्ग घट चुके हैं। मेरे अनुभवसे यह महामायाका ही प्रभाव एवं माहात्म्य है। महाभाग ! मायाके गुणसे विरचित यह संसार बिलकुल असत् है। इसमें आसक्त होकर रहनेवाला कोई भी प्राणी न सुखी हो सका है, न है और न होगा। काम, क्रोध, लोभ, मत्सर, ममता, अहंकार और मद—ये सभी असीम बलशाली हैं। इनपर किसने विजय पायी है ? मुने ! सत्त्व, रज, तम—ये तीन गुण ही प्राणियोंके देह धारण करनेमें सर्वथा कारण होते हैं। व्यासजी ! एक समयकी बात है—मैं भगवान् विष्णुके साथ वनमें घूम रहा था। आपसमें कुछ विनोदकी बातें चल रही थीं। उसी क्षण मुझे अनायास ही स्त्री हो जाना पड़ा। प्रभुकी मायाके बलसे मोहित हो जानेके कारण मैं एक राजाकी स्त्री बन गया और उस राजभवनमें रहकर मैंने बहुत-से पुत्र प्रसव किये।

व्यासजीने पूछा—मुने ! आप इतने बड़े ज्ञानी पुरुष होते हुए भी कैसे स्त्री-रूपमें परिणत हो गये ? साधो ! आपकी बात सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है। बताइये, आप पुनः पुरुष कैसे हुए ? ये सभी बातें बतानेकी कृपा करें। साथ ही यह भी बतायें कि किस राजाके घरमें रहकर आपने कैसे पुत्र उत्पन्न किये ? महामायाके इस अद्भुत चरित्रको कहनेकी कृपा कीजिये, जिसने चराचरसहित इस अखिल विश्वको मोहित कर रखा है।

(अध्याय २४—२७)

☆

## मुनि नारदको मायावश स्त्रीके रूपकी प्राप्ति, राजा तालध्वजसे विवाह, अनेकों पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति, सबका मरण और शोक, भगवत्कृपासे नारदजीको पुनः स्वरूप-प्राप्ति

नारदजी कहते हैं—मुनिवर ! मैं इस पावन कथाका प्रसंग कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। वस्तुतः मायाके अत्यन्त गूढ़ रहस्यको योगवेत्ता मुनि भी जाननेमें असमर्थ हैं। चर-अचर सम्पूर्ण जगत् तथा ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त—सब-के-सब मायाके अधीन हैं; क्योंकि यह अजेय और दुश्चिन्त्य है। एक समयकी बात है—अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई, अतः मैं स्वर्गसे चल दिया। मैं मनोहर श्वेतद्वीपमें जा रहा था। मेरे द्वारा स्वर और तानसे सुशोभित विशाल वीणा बज रही थी। साम आदि सात स्वरोंके साथ मैं संगीतका गायन कर रहा था। श्वेतद्वीपमें पहुँचनेपर मुझे देवाधिदेव भगवान् विष्णुके दर्शन हुए। वे हाथमें चक्र और गदा धारण किये हुए थे। कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रही थी। मेघके समान श्यामल वर्णवाले श्रीहरि चार भुजाओंसे सुशोभित थे। उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। मुकुट और बाजूबंद विग्रहको विभूषित किये हुए थे। उस समय मनोहारिणी लक्ष्मीके साथ वे क्रीड़ा कर रहे थे। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त अलंकारोंसे अलंकृत भगवती लक्ष्मी मुझे देखकर वहाँसे हट गयीं। लक्ष्मीजीको भवनमें गयी देखकर मैंने वनमाला धारण करनेवाले देवाधिदेव जगत्प्रभु भगवान् विष्णुसे पूछा—'देव-शत्रुओंका संहार करनेवाले पद्मनाभ भगवन् ! मुझे आते हुए देखकर भगवती लक्ष्मीजी आपके पाससे क्यों

चली गयी हैं ? जगद्गुरो ! मैं न कोई नीच हूँ

और न धूर्त। जनार्दन ! मैं एक तपस्वी हूँ। इन्द्रियाँ मेरे वशमें रहती हैं ! मैंने क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है। मायाका मुझपर कभी कुछ भी वश नहीं चलता।'

मैंने उस समय जो कुछ भी कहा, उसके प्रत्येक शब्दमें अभिमान भरा था। उसे सुनकर भगवान् श्रीहरिका मुखमण्डल मुसकानसे भर गया। वीणाके समान मधुर वाणीमें वे मुझसे कहने लगे।

भगवान् विष्णुने कहा—नारद ! यह काम नीतिके विरुद्ध है। स्त्रीको चाहिये कि पतिके सिवा कभी किसी दूसरे पुरुषके समक्ष ऐसा व्यवहार न करे। विद्वन् ! जो पवनपर अधिकार पा चुके हैं, जिन्होंने सांख्य-शास्त्रका गहरा अध्ययन किया है, जो बिना कुछ खाये-पीये निरन्तर तपस्यामें रत रहते हैं तथा इन्द्रियाँ जिनके सदा वशमें रहती हैं, उन योगियोंके लिये भी माया अत्यन्त अजेय है। संगीतकी उत्तम जानकारी रखनेवाले मुनिवर ! आपने अभी जो कहा है कि मैं मायापर विजय पा चुका हूँ, सो यह बात कभी भी किसीके सामने भी नहीं कहनी चाहिये। जब सनकादि मुनि भी मायाको जीतनेमें असफल रहे, तब तुम तथा दूसरे किसी देवताकी क्या गणना की जाय ? देवता, मानव अथवा पशुका शरीर धारण करनेवाले प्राणी भला अजन्मा मायाको कैसे जीत सकते हैं ? वेदके ज्ञाता, योगसाधनमें निपुण, सर्वज्ञ एवं जितेन्द्रिय सत्त्व-रज-तमोमय किसी भी पुरुषके लिये मायापर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है। काम भी मायाका ही रूप है। उसकी कोई पृथक् आकृति नहीं है। छिपे रूपमें रहकर वह विद्वान् मूर्ख अथवा मध्यम श्रेणीके सभी प्राणियोंको अपने वशमें किये रहता है। कभी-कभी तो वह काम धर्मज्ञ पुरुषके चित्तमें भी क्षोभ उत्पन्न कर देता है। फिर स्वभाव अथवा कर्मसे उसकी चेष्टा समझ ली जाय—यह बड़ा ही कठिन काम है।

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये। मेरा मन संदेहसे भर गया। अतः उन जगत्प्रभु सनातन श्रीहरिसे मैंने पूछा—'रमापते ! मायाका कैसा रूप है, उसकी कैसी आकृति है, उसमें कितनी शक्ति है, वह कहाँ रहती है और किसके आधारपर ठहरी है ? यह मुझे बतानेकी कृपा करें। जगत्को धारण करनेवाले लक्ष्मीकान्त भगवन् ! मुझे उस मायाको देखने और जाननेकी उत्कट इच्छा लगी हुई है। आप शीघ्र ही उसे दिखा और समझाकर मुझे प्रसन्न करनेकी कृपा करें।'

भगवान् विष्णु बोले—अखिल जगत्को धारण करनेकी शक्ति रखनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया और अनेकरूपा है। यह सम्पूर्ण संसारमें व्यापक

होकर रहती है। नारद ! तुम्हें यदि उसे देखनेकी इच्छा हो तो अभी गरुड़पर चढ़ो; हम दोनों एक अन्य लोकमें चलें। ब्रह्मपुत्र नारदजी ! वहाँ मैं तुम्हें अजितात्माओंके लिये अजेय उस मायाका दर्शन कराऊँगा। उसे देखनेके पश्चात् फिर तुम्हें अपने मनमें विषादको स्थान नहीं देना चाहिये।

इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् विष्णुने मुझसे कहकर विनतानन्दन गरुड़को याद किया। स्मरण करते ही गरुड़ उनके सामने आ गये। गरुड़को आये देखकर भगवान् विष्णु उनपर सवार हुए और मुझे भी चलनेके लिये आदरपूर्वक पीछे बैठा लिया। वायुके समान तीव्रगामी गरुड़ने अब वैकुण्ठसे यात्रा कर दी। भगवान् श्रीहरि जिस ओर जाना चाहते, उधरके लिये ही संकेत कर देते और वही गरुड़का लक्ष्य बन जाता था। यों बहुत-से विशाल वन, दिव्य सरोवर, नदियाँ, ग्राम, नगर, पर्वतके आस-पासके गाँव, गौओंके गोष्ठ, मुनियोंके मनोहर आश्रम, सुन्दर बावलियाँ, छोटे-बड़े अनेक तालाब, कमलसे सुशोभित अगाध जलवाली अनेक झीलें तथा मृगों एवं वराहोंके बहुत-से झुंड हमें दृष्टिगोचर हुए। गरुड़पर बैठकर इन सबपर दृष्टि डालते हुए हम दोनों कान्यकुब्जके पास पहुँच गये। वहाँ एक दिव्य सरोवर दिखायी पड़ा। कमल उस सरोवरकी शोभा बढ़ा रहे थे। हंस, सारस और चक्रवाकोंसे वह बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था। अनेक प्रकारके विकसित कमलोंसे वह सुशोभित था। उसका जल बड़ा ही पवित्र एवं मधुर था। झुंड-के-झुंड भ्रमर गूँज रहे थे। उसे देखकर भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा।

श्रीभगवान् बोले—नारद ! सारसोंकी बोलीसे शोभा पानेवाले इस अगाध सरोवरको देखो। इसमें चारों ओर कमल खिले हुए हैं। यह निर्मल जलसे परिपूर्ण है। यहाँ स्नान करनेके पश्चात् श्रीहरिने हँसकर मेरी तर्जनी अँगुली पकड़ ली। उस सरोवरकी बार-बार प्रशंसा करते हुए वे मुझे तीरपर ले आये। अत्यन्त मनोहर छायासे उसका तट सुशोभित था। कुछ समयतक वहाँ विश्राम किया। तदनन्तर भगवान्‌ने मुझसे कहा—'मुने ! अब तुम पहले इस स्वच्छ जलमें स्नान करो। साधुपुरुषोंके चित्तकी भाँति इसका जल अत्यन्त स्वच्छ है; विशेषता यह है कि कमलोंके परागसे इसका जल सुवासित हो चुका है।'

इस प्रकार कहकर भगवान्‌ने मुझसे वीणा और मृगचर्म ले लिये। स्नान करनेकी बात मेरे मनमें जँच गयी। मैं प्रेमपूर्वक तटपर चला गया। हाथ-पैर धोनेके पश्चात् मैंने शिखा बाँधी। हाथमें कुश ले लिया और आचमन करके मैं उस पवित्र जलमें स्नान करने लगा। भगवान् श्रीहरि सामने विराजमान थे। उस मनोहर जलमें मैंने ज्यों ही डुबकी लगायी कि मेरी पुरुषाकृति विलुप्त हो गयी और मैं एक सुन्दरी रमणीके रूपमें परिणत हो गया। उसी क्षण भगवान् मेरी वीणा और पवित्र मृगचर्म लेकर आकाशमार्गसे अपने धामपर पधार गये। तदनन्तर सुन्दर भूषणोंसे भूषित होकर मैं स्त्रीके रूपमें समय व्यतीत करने लगा। उसी क्षणसे पूर्वशरीरकी स्मृति भी मेरे मनसे जाती रही। जगत्प्रभु भगवान् विष्णुकी भी मुझे याद नहीं रही। मनमें अपार अज्ञान छा गया। अत्यन्त लुभावने स्त्री-वेषको पाकर मैं उस सरोवरसे बाहर निकला था। कमलसे भरे-पूरे शुद्ध

जलवाले उस सरोवरकी ओर मेरी आँखें चक्कर काटने लगीं। नारीके वेषमें परिणत होकर मैं विचार कर रहा था। इतनेमें राजा तालध्वज अकस्मात् मेरे सामने पधारे। उनके साथ बहुत-से हाथी, घोड़े और रथ थे। वे रथपर बैठे थे। उनकी युवा-अवस्था थी। वे भूषण पहने हुए थे, जान पड़ता था, मानो कामदेव ही शरीर धारण करके उपस्थित हुए हों। मैं अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत था। सुन्दरी स्त्रीकी मेरी आकृति थी। चन्द्रमाके समान मेरा मुखमण्डल था। मुझे देखकर राजा तालध्वजके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने मुझसे पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो? कौन देवता तुम्हारे पिता हैं? कान्ते! मानव, गन्धर्व अथवा उरग—किसे तुम्हारा पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है? रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली तुम अबला क्यों अकेली भटक रही हो? सुलोचने! तुम्हारा विवाह हो चुका है अथवा तुम अभी कुमारी हो? सच्ची बात बताना। उत्तम वेणीसे शोभा पानेवाली सुमध्यमे! तुम इस तालाबपर क्या देख रही हो? कामदेवको मोहित करनेकी

योग्यता रखनेवाली पिकवयनी प्रिये! तुम अपना अभिप्राय व्यक्त करो। मरालाक्षी! कृशोदरी! यदि तुम कुमारी हो तो मुझ श्रेष्ठ पतिको पाकर मेरे सहयोगसे मनोऽभिलषित भोग प्राप्त कर सकती हो—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार राजा तालध्वजके पूछनेपर मैंने मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार किया। तदनन्तर उनसे कहा—'राजन्! मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती कि मैं किसकी कन्या हूँ। मेरे माता-पिता कहाँ हैं और कौन हैं। मुझे इस तालाबपर कौन लाया है—इसका भी मुझे कुछ पता नहीं है। राजेन्द्र! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कैसे मुझे सुखकी घड़ी सुलभ हो सकेगी, मेरा कोई भी आश्रय नहीं है—इस प्रकारकी चिन्ताएँ मेरे मनमें छायी हुई हैं। राजन्! दैवकी महिमा सर्वोपरि है। मेरा कोई भी पुरुषार्थ काम नहीं कर पाता। भूपाल! आप धर्मज्ञ पुरुष हैं। जो इच्छा हो, कर सकते हैं। मैं आपके अधीन हूँ। दूसरा कोई भी मेरा रक्षक नहीं है। मेरे न पिता हैं, न माता हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न कोई स्थान ही है।'

मुझसे उपर्युक्त बातें होनेके पश्चात् एक बार उन्होंने मेरे विशाल नेत्रोंपर दृष्टि फैलायी, फिर अपने सेवकोंसे यह वचन कहा—'तुमलोग एक उत्तम पालकी ले आओ। उसे ढोनेवाले निपुण कहार होने चाहिये। वह पालकी रेशमी ओहारसे ढकी हुई हो। कारण, उसीपर यह सुन्दरी स्त्री सवार होगी। उसमें कोमल विस्तर लगे हों। मोतियोंकी झालरसे वह सजायी गयी हो। सोनेकी बनी हुई वह चौकोर शिविका खूब लंबी-चौड़ी होनी चाहिये।'

राजा तालध्वजकी बात सुनकर शीघ्रगामी सेवकोंने ओहारयुक्त दिव्य पालकी मेरे लिये तुरंत लाकर उपस्थित कर दी। उन नरेशका प्रिय कार्य करनेके विचारसे मैं उस शिविकापर जा बैठी। वे मुझे अपने घर ले जाकर बड़े आनन्दित हुए। उत्तम दिन और लग्न उपस्थित होनेपर वैवाहिक विधिके अनुसार अग्निके साक्षित्वमें राजाने मेरे साथ अपना विवाह कर लिया। उस समय मैं परम सुन्दरी स्त्रीके वेषमें था। राजा तालध्वज प्राणोंसे भी बढ़कर मुझसे प्रेम करते थे। उन्होंने मेरा नाम रख दिया 'सौभाग्य-सुन्दरी।' मेरे साथ रमण करते हुए राजाके सुखकी सीमा न रही। कामशास्त्रके अनुसार भाँति-भाँतिके भोग-विलास हमें सुलभ रहे। राज्यका प्रबन्ध छोड़कर मेरे साथ क्रीड़ा करनेमें ही राजाका सारा समय व्यतीत होने लगा। कामकलामें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण, जाते हुए समयपर उनका कुछ भी ध्यान न रहा। अनेकों उपवन, मनोहर बावलियाँ, सुन्दर भवन और उत्तम अटारियाँ—ये सभी हमारे विहार-स्थलका काम देते थे। व्यासजी ! उस समय राजा तालध्वजपर मेरा असीम अनुराग हो गया था। क्रीड़ाके रसने मेरी सारी विवेक-शक्ति नष्ट कर दी थी। पहले मेरा शरीर पुरुषका था एवं मुनिकुलमें मेरी उत्पत्ति हुई थी—यह बात मुझे तनिक भी याद नहीं रही। 'ये मेरे पतिदेव हैं, मैं इनकी भार्या हूँ, अनेकों स्त्रियोंकी अपेक्षा मैं इन्हें अधिक प्रिय हूँ, मुझे पटरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त है, मैं सती-साध्वी एवं विलासज्ञा हूँ, मेरा जीवन सफल है' —प्रेममें आबद्ध होकर इस प्रकारके विचार मैं रात-दिन किया करता था। उन नरेशके अधीन होकर क्रीड़ामें आसक्त हो सुखका अनुभव करना ही मेरा स्वभाव बन गया था। राजा तालध्वजके पास रहते समय मनमें प्रबल आसक्ति आ जानेके कारण ब्रह्मसम्बन्धी सनातन ज्ञान-विज्ञान एवं धर्म-शास्त्रका रहस्य मुझे बिलकुल भूल गया था।

मुने ! इस प्रकार क्रीड़ामें आसक्त हुए मेरे बारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गये। मेरे गर्भवती होनेपर राजा तालध्वजको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विधिपूर्वक गर्भ-संस्कार कराया। गर्भके समय मेरी किस चीजपर इच्छा है—इस विषयमें प्रेमपूर्वक राजा बार-बार मुझसे पूछा करते थे, किंतु लज्जाके कारण मैं कुछ कह नहीं सकता था। दस महीने पूरे होनेपर मुझे पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय दिन, ग्रह, नक्षत्र, लग्न और तारा—सभी श्रेष्ठ थे। राजभवनमें बड़े समारोहके साथ पुत्रोत्सव मनाया गया। पुत्र-जन्मसे राजाके मनमें असीम प्रसन्नता उत्पन्न हुई। सूतक समाप्त हो जानेपर जब राजाने पुत्रका मुख देखा, तब उनके हर्षकी सीमा नहीं रही। परम तपस्वी व्यासजी ! यों मैं राजा तालध्वजकी प्रिय पत्नी बन चुका। दो वर्षके बाद मुझे पुनः गर्भ रह गया। समयानुसार सर्वलक्षणसम्पन्न दूसरे पुत्रकी मुझसे उत्पत्ति हुई। ब्राह्मणोंकी आज्ञासे राजाने बड़े पुत्रका नाम वीरवर्मा और छोटेका नाम सुधन्वा रखा। इस प्रकार राजाके सम्पर्कमें रहकर मैंने बारह पुत्र उत्पन्न किये। उस समय मोहवश उन बच्चोंके लालन-पालनमें ही मैं प्रेमपूर्वक लगा रहा। समय-समयपर मुझसे पुनः आठ सुन्दर पुत्रोंकी भी उत्पत्ति हुई। फिर तो सुखका साधनभूत मेरा गार्हस्थ्य-जीवन साङ्गो-पाङ्ग पूरा हो गया। राजाने समयानुसार उचित रूपसे लड़कोंके विवाह कर दिये। घरमें बहुएँ

आ गयीं। पुत्रों और बहुओंको मिलाकर एक महान् परिवार बन गया; फिर लड़कोंके भी

लड़के हुए। खेलने, कूदने एवं नाना प्रकारके भोग भोगनेमें ही मेरा समय व्यतीत होने लगा। निरन्तर मेरे मोहकी वृद्धि हो रही थी। कभी सुख और सम्पत्ति सामने उपस्थित होती और कभी लड़के बीमार पड़ते तथा उन्हें कष्ट भोगना पड़ता तो मेरे मनमें अत्यन्त अशान्ति फैल जाती थी। कभी-कभी पुत्रों और बहुओंमें परस्पर अत्यन्त दारुण कलह मच जाता था, जिससे मैं दुःखी हो उठता। मुनिवर ! संकल्पसे उत्पन्न हुई सुख एवं दुःखमयी चिन्ता बिलकुल व्यर्थ और दुष्परिणामी है। फिर भी, मैं उसमें उलझा रहता था। पूर्व समयकी उत्तम जानकारी और शास्त्र-ज्ञान कुछ भी नहीं रहा। स्त्री बनकर घरेलू कार्योंमें मैं सर्वथा व्यस्त रहता था। मोह बढ़ानेवाले अहंकारकी मनमें सीमा नहीं रही। सोचता था, ये मेरे पराक्रमी पुत्र हैं और ये कुलीन घरमें उत्पन्न होनेवाली मेरी बहुएँ हैं। मेरे ये लड़के बढ़िया वस्त्र पहनकर घरपर खेल-कूद रहे हैं। अहो ! जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबमें मैं अवश्य ही बहुत भाग्यशालिनी हूँ। मैं नारद हूँ, भगवान्‌की मायाने मेरी बुद्धि हर ली है—इस प्रकारका विचार मेरे मनमें कभी उठता ही नहीं था। व्यासजी ! मायासे मोहित होनेके कारण मुझे यही धारणा बनी रहती थी कि मैं उत्तम आचरणवाली एक पतिव्रता रानी हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं और इस जगत्में मेरा जीवन धन्य है।

मानद ! इसके बाद दूर देशवासी कोई एक प्रसिद्ध नरेश मेरे स्वामीके साथ शत्रुता ठानकर नगरपर चढ़ आया। उसने हाथियों और रथोंके द्वारा अपनी सेना सजा ली थी। वह मनमें युद्ध करनेकी बात सोच रहा था। अपनी सेनासे उसने मेरा नगर घेर लिया। तब मेरे लड़के और पोते भी नगरसे बाहर निकल पड़े। अब उस शत्रु नरेशसे भयंकर संग्राम छिड़ गया। विकराल कालके प्रभावसे मेरे सभी पुत्र संग्राममें शत्रुके द्वारा मार दिये गये। राजा हतोत्साह होकर युद्ध-स्थलसे घर लौट आये। मैंने सुना, अत्यन्त भयावह संग्राममें मेरे सब लड़के-पोते मर मिटे। शत्रु राजा बड़ा बलवान् था। पुत्रों और पौत्रोंको मारकर वह निकल गया। अब मेरी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा गिरने लगी। मैं युद्धभूमिमें पहुँचा। जमीनपर पड़े हुए पुत्रों और पौत्रोंको देखकर मेरे दुःखकी सीमा न रही। आयुष्मन् ! शोकरूपी सागरमें डूबकर मैं जोर-जोरसे रोने लगा। 'हा मेरे पुत्रो ! तुम कहाँ चले गये ? इस दुष्ट नरेशने तेरी निर्मम हत्या कर डाली। हाय ! दैव अत्यन्त दुर्दान्त है। उसे कोई भी टाल नहीं सकता।' मैं इस प्रकार विलाप कर रहा था—इतनेमें भगवान् विष्णु एक बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पधारे। देखनेमें वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। वेदज्ञ !

उन प्रभुका विग्रह सुन्दर वस्त्रसे सुशोभित था। उन्होंने स्वयं मेरे सामने आनेकी कृपा की। मैं अत्यन्त कातर होकर रो रहा था। वे मुझसे कहने लगे।

ब्राह्मणरूपी भगवान्ने कहा—'कोयलके समान मधुर बोलनेवाली सुन्दरी ! तुम क्यों रो रही हो ? यह एकमात्र भ्रम है। पति-पुत्रादियुक्त गृहमें मोहवश ऐसी स्थिति आ जाती है; तुम अपने परम आत्मस्वरूपके ऊपर तो विचार करो। सोचो, कौन तुम हो, ये किसके पुत्र हैं और ये हैं कौन ? सुलोचने ! उठो और रोना-धोना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ। कामिनी ! मर्यादाकी रक्षाके लिये स्नान करके परलोकवासी पुत्रोंको तिलाञ्जलि देनी चाहिये। धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बान्धवोंके निमित्त सर्वथा तीर्थमें स्नान करके तर्पण करे। यह कार्य घरपर कभी नहीं किया जा सकता।'

नारदजी कहते हैं—वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें पधारे हुए भगवान् विष्णुने यों कहकर मुझे समझाया। तब मैं राजाको साथ लेकर चल पड़ा। बहुत-से बान्धव भी हमारे साथ हो लिये। विप्र-वेषधारी भूतभावन भगवान् आगे-आगे चले। तत्पश्चात् मैं तुरंत परम पावन तीर्थके लिये चल पड़ा। द्विजरूपी भगवान् विष्णु कृपापूर्वक मुझे पुंतीर्थमें ले गये। वहाँ एक पवित्र सरोवर था। भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा—'गजगामिनी ! कार्य करनेका समय उपस्थित है। तुम इस पवित्र तीर्थमें स्नान करके पुत्र-सम्बन्धी निरर्थक शोकसे रहित हो जाओ। जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भ्राता और जामाता मर चुके हैं। उनमें तुम किसका शोक मनाती हो ? यह सब मनका भ्रम है। स्वप्नकी तुलना करनेवाला यह व्यर्थ चिन्तन प्राणियोंके लिये केवल कष्ट ही देनेवाला है।'

नारदजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके मुखसे निकली हुई इस बातको सुनकर उनकी प्रेरणाके अनुसार मैं पुरुषसंज्ञक तीर्थमें स्नान करनेके लिये प्रविष्ट हुआ। उस तीर्थमें डुबकी लगाते ही मेरी आकृति तुरंत पुरुषाकार बन गयी। भगवान् विष्णु वीणा लेकर तटपर विराजमान थे। द्विजवर ! स्नान करनेके पश्चात् मुझे कमललोचन भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए। फिर तो मेरे मनकी विस्मृति दूर हो गयी। सोचने लगा, भगवान्के साथ मैं नारद यहाँ उपस्थित हूँ। मायाके प्रभावसे स्त्री-जैसी मेरी आकृति हो गयी थी। मैं इस प्रकारकी बातें सोच ही रहा था कि भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा—'नारद ! यहाँ आओ, जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो ?' मैंने सोचा, मैं अभी अत्यन्त दारुण स्त्रीके वेषमें था; फिर कैसे पुरुष हो गया ? मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। (अध्याय २८-२९)

☆

## भगवान् विष्णुके द्वारा महामायाका महत्त्व-वर्णन, व्यासजीके द्वारा जनमेजयके प्रति भगवतीकी महिमाका कथन

नारदजी कहते हैं—मुझ ब्राह्मण नारदको देखकर राजा तालध्वज अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। सोचा, मेरी पत्नी कहाँ चली गयी और वे मुनिवर नारद कहाँसे आ गये। उन्होंने बारम्बार विलाप करना आरम्भ किया। कहा—'हा प्रिये ! मैं तेरे वियोगमें पड़कर विलाप कर रहा हूँ। मुझे छोड़कर तू कहाँ चली गयी। शुचिस्मिते ! तेरे नेत्र कमलपत्रके समान विशाल हैं। विपुलश्रोणी ! मैं अब क्या करूँ। तेरे बिना मेरा जीवन, गृह और राज्य—सब-के-सब व्यर्थ हैं। तेरे विरहसे अब मेरे प्राण क्यों नहीं निकल रहे हैं ? तू न रही तो जीवन-धारण करनेसे भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं रहा। विशालाक्षी ! मैं रो रहा हूँ। तू प्रिय उत्तर देनेकी कृपा कर। तूने प्रथम मिलनमें मेरे प्रति जो प्रेम दिखलाया था, वह अब कहाँ चला गया ? सुभ्रु ! क्या तू जलमें डूब गयी अथवा तुझे मछली एवं कछुए खा गये ? या मेरे दुर्भाग्यवश तू वरुणके हाथ लग गयी। अमृतके समान मधुर भाषण करनेवाली प्रिये ! तेरे सभी अङ्ग बड़े मनोहर थे। तुझे धन्यवाद है, जो पुत्रोंके प्रति तूने सच्चा प्रेम दिखलाया। मैं तेरा पति होकर दीनभावसे विलाप कर रहा हूँ। पुत्रस्नेहके पाशसे तू बँधी भी है। ऐसी स्थितिमें मुझे छोड़कर तेरा स्वर्ग सिधारना शोभा नहीं देता। कान्ते ! मेरे दोनों ही सर्वस्व छिन गये। पुत्र मर ही चुके थे और तू प्राणप्यारी भी मेरे साथ न रह सकी। प्रिये ! मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। फिर भी मेरे प्राण शरीरसे अलग नहीं हो रहे हैं। मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? जगत्में प्रतिकूल घटना उपस्थित करनेवाले ब्रह्मा अवश्य ही बड़े निष्ठुर हैं, जो समान चित्तवाले स्त्री-पुरुषका मरण सर्वथा विभिन्न समयमें क्यों किया करते हैं। मुनियोंने स्त्रियोंके लिये अवश्य ही बड़ा उपकार किया है कि जो उन्होंने स्पष्ट कह दिया है, 'पतिके मर जानेपर स्त्री उसके साथ चितामें जल जाय।'

इस प्रकार राजा तालध्वज विलाप कर रहे थे। तब भगवान् श्रीहरिने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्ण वचन कहकर उन्हें चुप कराया।

श्रीभगवान् बोले—राजेन्द्र ! क्यों रोते हो ? तुम्हारी प्राणप्यारी स्त्री कहाँ गयी ? क्या तुम्हें शास्त्र-श्रवणका अवसर नहीं मिला अथवा तुम

ज्ञानी पुरुषोंके सम्पर्कसे सदा वञ्चित ही रहे ? वह कौन स्त्री थी, तुम कौन हो, कैसा संयोग और वियोग है ? वेगपूर्वक बहनेवाले इस संसाररूपी समुद्रमें मनुष्योंका सम्बन्ध वैसा ही है, जैसे नौकापर चढ़े हुए पथिकोंका। महाराज ! अब तुम घर जाओ। तुम्हारे इस व्यर्थ रोने-धोनेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।

मनुष्योंका संयोग-वियोग सदा दैवके विधानपर निर्भर है। राजन्! विशाल नेत्रोंवाली इस सुन्दरीसे सम्बन्ध होनेपर भोग-विलास करनेका अवसर तुम्हें प्राप्त हो चुका है। एक सरोवरपर इसके साथ तुम्हारा संयोग हुआ था। उस समय इसके माता-पिता तुम्हें दिखायी नहीं पड़े थे। यह अवसर काकतालीय-न्यायसे जैसे आया था, वैसे ही अब चला भी गया। राजेन्द्र! शोक मत करो। कालकी गतिको रोकना बड़ा ही कठिन काम है। अब समयानुसार घर जाओ और वहाँ यथेच्छ भोग भोगो। उस सुन्दरीसे जैसा तुम्हारा संयोग हुआ था, वैसे ही वियोग भी हो गया। तुम जैसे-के-तैसे रह गये। राजन्! अब घर जाकर राज-काज सँभालो। भूपेन्द्र! इस समय तुम्हारे रोनेसे वह स्त्री आ जाय—यह सर्वथा असम्भव है। तुम व्यर्थ ही इस शोकके पचड़ेमें पड़े हो। अब कुछ योगसाधन करनेका यत्न करो। भोग समयानुसार जैसे आता है, उसी प्रकार चला भी जाता है। अतः इस असार संसारमार्गमें शोक करना अनुचित है। न तो एक जगह सर्वथा सुख ही रहता है और न दुःख ही। घटिकायन्त्रकी भाँति सुख और दुःखका आना-जाना लगा रहता है। राजन्! स्वस्थचित्त होकर सुखपूर्वक राज्य करो। अथवा अब बन्धु-बान्धवोंका परित्याग करके वनमें रहनेकी व्यवस्था कर लो। प्राणियोंका दुर्लभ मानव-देह क्षणभङ्गुर है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये। जिह्वा और जननेन्द्रियके भोग तो पशु-योनियोंमें भी मिल जाते हैं; ज्ञान अधिक होनेसे मानव-योनिको उत्तम मानते हैं। अन्य योनियोंमें यह शक्ति सुलभ नहीं रहती। अतएव तुम स्त्रीजनित शोकका परित्याग करके घर चले जाओ। भगवती जगदम्बाकी यह महामाया है, जिससे सम्पूर्ण जगत् मोहित है।

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके कहनेपर राजा तालध्वजने उन्हें प्रणाम करके भलीभाँति स्नानकी विधि सम्पन्न की। तत्पश्चात् वे अपने घर चले गये। अब उन नरेशके अन्तःकरणमें अद्भुत वैराग्योदय हो चुका था। अतः अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वे वनमें सिधारे। उन्होंने तत्त्वज्ञानकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली।

राजा तालध्वजके चले जानेपर मधुर मुसकानसे भरे मुखमण्डलवाले जगत्प्रभु भगवान् विष्णुके दर्शन प्राप्त कर मैंने उनसे कहा—'भगवन्! आपने मुझे ठग लिया था। किंतु मायाकी असीम शक्ति अब मेरी समझमें आ गयी। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर मेरे द्वारा जो घटनाएँ घटी थीं, उन सबको अब मैं याद कर रहा हूँ। हरे! आप देवाधिदेव परम पुरुष हैं। मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि जब मैं सरोवरमें प्रवेश करके स्नान करने लगा, तब गोता लगाते ही मेरी पूर्वस्मृति क्यों नष्ट हो गयी? स्त्रीका शरीर पाकर मैं मोहित हो गया था। जगद्गुरो! प्रतापी नरेशको मैंने पतिरूपमें वरण कर लिया, मानो इन्द्रको पति बनानेवाली शची हो। देवेश! उस समयका वह मन, चित्त, देह और चिह्न स्मृतिसे दूर कैसे हो सकता है? वे बार-बार याद आते रहते हैं। रमाकान्त प्रभो! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि मेरा ज्ञान उस समय सर्वथा विलीन हो गया था। अब आप इसका कारण बतानेकी कृपा करें। स्त्रीका शरीर पाकर मैंने अनेक प्रकारके भोग भोगे। मैं

निरन्तर मदिरा-पान करता रहा। निषिद्ध भोजन करनेमें मुझे कोई हिचक न रही। मैं यह कभी भी स्पष्ट नहीं जान सका कि मैं नारद हूँ। उस समय जो घटनाएँ उपस्थित हुईं, वे सभी अब मुझे आद्योपान्त स्मरण आ रही हैं।'

भगवान् विष्णु बोले—महामते नारद! देख, यह सब महामायाका मनोरञ्जन है। उन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी दशाएँ उपस्थित होती रहती हैं। जैसे शरीर-धारियोंमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि चार प्रकारकी दशाओंका क्रम निरन्तर चालू रहता है, वैसे ही दूसरा शरीर प्राप्त होना भी स्वाभाविक है। इसमें संदेह कैसा? सोया हुआ मनुष्य जानने, सुनने और बोलनेमें भी असमर्थ रहता है। वही जब जग जाता है, तब सारी वस्तुएँ उसे ज्ञात हो जाती हैं। उसका नींदसे चित्त विचलित हो जाता है। मनमें अनेक प्रकारके बहुत-से स्वप्न उठा करते हैं। मनुष्य स्वप्नमें देखता है कि हाथी मुझे मारने आ रहा है। मैं भागनेमें असमर्थ हूँ, क्या करूँ, मेरे लिये दूसरा कोई स्थान भी तो नहीं है जहाँ तुरंत भाग चलूँ। कभी स्वप्नमें देखता है कि मेरे पितामह अपने घरपर पधारे हुए हैं। उनसे मिलता हूँ, कभी परस्पर बातचीत होती है और एक साथ बैठकर हमलोग भोजन करते हैं। जागनेपर उसे मालूम हो जाता है कि ये सुख-दुःख-सम्बन्धी बातें मैंने स्वप्नमें देखी हैं। उन सभी बातोंको याद करके वह जनताके समक्ष विस्तारपूर्वक कहता भी है! जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति स्वप्नमें निश्चय नहीं जान पाता कि यह भ्रम है, वैसे ही महामायाका ऐश्वर्य समझमें आ जाना बड़ा ही कठिन काम है।

नारद! महामायाके गुणोंकी दुर्लङ्घ्य सीमाको जाननेमें शंकर और ब्रह्मा भी असफल हैं। फिर मन्दबुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य इसके वास्तविक रहस्यको जान सकता है? जगत्में महामायाके गुणोंकी इयत्ता किसीकी भी समझमें नहीं आ सकी है। उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंद्वारा रचा है। उक्त गुणोंके अभावमें यह संसार तनिक देर भी स्थित नहीं रह सकता। मुझमें सत्त्वगुण प्रधान है। रजोगुण और तमोगुण गौणरूपसे रहते हैं। यदि तीनों गुण न रहें तो मैं कभी भी भूमण्डलका शासक नहीं बन सकता। इसी प्रकार तुम्हारे पिता ब्रह्मामें रजोगुण प्रधान है। तमोगुण और सत्त्वगुण भी उनमें हैं ही। इन दोनों गुणोंसे रहित होकर वे कुछ भी नहीं कर सकते। वैसे ही शिवमें तमोगुणकी विशेषता है। रजोगुण और सत्त्वगुण उनमें अप्रधान-रूपसे रहते हैं। कोई भी ऐसा नहीं है, जिसमें ये तीनों गुण न हों। अभी-अभी मायाका प्रभाव तुम देख चुके हो। अनेक प्रकारके कितने भोग तुम्हारे सामने उपस्थित हुए और तुम्हारे द्वारा भोगे गये थे। महाभाग! फिर महामायाके इस अद्भुत चरित्रके विषयमें तुम मुझसे क्या पूछते हो?

व्यासजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! मैंने योगमायाके जिस माहात्म्यको नारदजीके द्वारा सुना है, उसे विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। मुनिवर नारदजी सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर उनके सामने जो प्रसंग उपस्थित हुआ था, उसे सुन लेनेके पश्चात् मैंने उनसे पूछा—'नारदजी! अब यह बतानेकी कृपा करें कि इसके बाद जगत्प्रभु भगवान् विष्णुने आपसे क्या कहा तथा आपके

साथ वे किधर पधारे ?'

नारदजी बोले—उस अत्यन्त मनोहर सरोवरपर बातचीत होनेके पश्चात् भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठे और उन्होंने वैकुण्ठ जानेकी बात सोच ली। उस समय उन्होंने मुझसे कहा—'नारद ! अब तुम अपने अभीष्ट स्थानपर पधारो; अथवा मेरे परम धाममें चल सकते हो या तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करनेमें स्वतन्त्र हो।' तब मैं श्रीहरिसे आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चला गया। वे प्रभु भी मुझे उपदेश देनेके उपरान्त तुरंत गरुड़पर बैठे और आनन्दपूर्वक वैकुण्ठ पधारे। जब भगवान् विष्णु चले गये, तब परम अद्भुत सुख-दुःखके सम्बन्धमें विचार करता हुआ मैं अपने पिता ब्रह्माजीके भवनपर पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और सामने बैठ गया। मुने ! उस समय मुझे चिन्ताके कारण आतुर देखकर पिताजीने पूछा।

ब्रह्माजीने पूछा—महाभाग ! तुम कहाँ गये थे ? बेटा ! क्यों इतने घबराये हुए हो ? मुनिवर ! तुम्हारे मनको मैं इस समय स्थिर नहीं देख रहा हूँ। किसने तुम्हें धोखेमें डाल दिया है ? क्या कोई अद्भुत दृश्य तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ है ? बेटा ! मैं देखता हूँ, तुम अत्यन्त उदास हो। तुम्हारी विवेक-शक्ति कुण्ठित है। इसका क्या कारण है ?

नारदजी बोले—जब मेरे पिता ब्रह्माजीने मुझसे इस प्रकार पूछा, तब मैंने आसनपर बैठकर महामायाके प्रभावसे उत्पन्न हुआ सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। मैंने कहा—'पिताजी ! अपार शक्तिशाली भगवान् विष्णुकी प्रवञ्चनामें मैं फँस गया था। बहुत वर्षोंतक स्त्रीके वेषमें रहनेकी विवशता मेरे सामने उपस्थित थी। पुत्र-शोकसे उत्पन्न हुए महान् क्लेश मुझे भोगने पड़े हैं। फिर उन्हींकी अमृतमयी कोमल वाणीने मेरे अन्तःकरणमें ज्ञानका संचार भी किया है। उनकी आज्ञासे सरोवरमें स्नान करते ही मैं पुरुषाकार नारदके रूपमें परिणत हो गया। ब्रह्मन् ! उस समय मेरे मनमें जो इस प्रकारका मोह उत्पन्न हो गया था, इसका क्या कारण है ? स्त्री-वेष प्राप्त होते ही मेरा पूर्व-ज्ञान, पता नहीं, कहाँ चला गया। ब्रह्मन् ! यह मायाबल मेरी समझसे बाहर है। कारण, यह माया अत्यन्त दुरूह, ज्ञानसंहारक एवं मोहकी स्पष्ट प्रवर्तिका जो ठहरी। सम्पूर्ण शुभ और अशुभ परिस्थितियाँ सामने आयीं और उनका अनुभव करके मैं सम्यक् प्रकार समझ भी गया। पिताजी ! इस मायाको कैसे जीता जाय, इसका उपाय आप बतानेकी कृपा करें।'

नारदजी कहते हैं—व्यासजी ! जब मैंने अपने पिता ब्रह्माजीको ये सारी बातें बतला दीं, तब वे हँसकर प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—सम्पूर्ण देवता, महात्मा, मुनि, तपस्वी, ज्ञानी तथा वायु पीकर योगके अभ्यासमें तत्पर योगी भी इस मायाको सुगमतापूर्वक जीतनेमें असमर्थ हैं। इस असीम शक्तिशालिनी मायाको सम्यक् प्रकारसे जाननेमें मेरी बुद्धि भी असफल है। सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली यह महामाया प्रायः सभीके लिये दुर्विज्ञेय है। काल, कर्म और स्वभाव आदि निमित्त कारण इसके सहयोगी हैं। विद्वन् ! इस प्रकारकी अपरिमित शक्ति रखनेवाली महामायाके विषयमें तुम शोक मत करो। साथ ही, तुम्हें आश्चर्य भी नहीं करना चाहिये, कारण, हम सभी इसके प्रभावसे मोहित हैं।

नारदजी कहते हैं—व्यासजी ! पिताजीके वचन सुनकर मेरा आश्चर्य दूर हो गया। तब मैं उनसे आज्ञा लेकर उत्तम तीर्थोंको देखता हुआ यहाँ आ पहुँचा; अतएव कौरवोंमें सर्वोत्तम व्यासजी ! तुम भी कौरवोंके नाशसे उत्पन्न हुए मोहका परित्याग करके भगवती जगदम्बामें चित्त लगाकर यहाँ सुखपूर्वक समय व्यतीत करो। अपने द्वारा ऊँच अथवा नीच जो कर्म बन चुके हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है—इस बातका हृदयमें निश्चय करके आनन्दपूर्वक विचरण करना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कहकर मुझे समझानेके बाद नारदजी वहाँसे पधार गये। उनकी कही हुई बातोंपर विचार करता हुआ मैं सरस्वती नदीके तटपर ठहर गया। उस समय उत्तम सारस्वत-कल्प चल रहा था। समय व्यतीत करनेके विचारसे मैंने श्रीमद्देवी-भागवतकी रचना आरम्भ कर दी। राजन् ! यह श्रेष्ठ पुराण सम्पूर्ण संदेहोंको दूर करनेवाला, अनेक प्रकारके उपाख्यानोंसे संयुक्त तथा वेदके प्रमाणसे ओत-प्रोत है। राजेन्द्र ! इसमें संदेह करना सर्वथा अनुचित है। जिस प्रकार कोई इन्द्रजाल करनेवाला व्यक्ति काठकी पुतली हाथमें लेकर उसे अपने अधीन इच्छानुसार नचाया करता है, वैसे ही यह माया चराचर सम्पूर्ण जगत्‌को नचानेमें लगी रहती है। ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जितने पाँच इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता, दानव एवं मानव हैं, वे सभी मन और चित्तका अनुसरण करते हैं। राजन् ! सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही सर्वथा सबमें कारण होते हैं। कार्य कारणको लेकर ही होता है—यह बिलकुल निश्चित है। मायासे उत्पन्न हुए तीनों गुण पृथक्-पृथक् स्वभावके होते हैं; क्योंकि शान्त, रौद्र और मूढ़—तीन प्रकारका भेद इनमें पाया जाता है। भला, सदा इन गुणोंका आश्रित पुरुष इनके अभावमें कैसे कायम रह सकता है ? जिस प्रकार संसारमें तन्तुविहीन पटकी सत्ता मानना असम्भव है, वैसे ही तीनों गुणोंसे हीन प्राणीके विषयमें समझना चाहिये—यह बिलकुल निश्चित बात है।

नरेन्द्र ! देवता, मानव अथवा पशु किसीका भी शरीर गुणरहित होनेपर वैसे ही कायम नहीं रह सकता, जैसे मिट्टीके बिना घड़ा नहीं रह सकता। गुणोंका संयोग होनेसे ही इन ब्रह्मादि-प्रधान देवताओंके मनमें कभी प्रसन्नता होती है, कभी उदासीनता छा जाती है और ये कभी विषादग्रस्त भी हो जाते हैं। ऐसे ही सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी चौदहों मनु प्रत्येक युगमें गुणोंके अधीन रहकर कार्यभार सँभालते हैं। तब फिर राजेन्द्र ! इस जगत्‌में रहनेवाले अन्य साधारण व्यक्तियोंके लिये कौन-सी बात है ? देवता, दानव, मानव आदि सारा प्राणिजगत् मायाके अधीन है। अतएव राजन् ! इस विषयमें कदापि संदेह नहीं करना चाहिये। प्राणी मायाकी अधीनतामें रहकर उसके आज्ञानुसार ही चेष्टा करता है। वह माया परम तत्त्वके रूपमें सदा सम्मिलित रहती है। उस परम तत्त्वकी आज्ञा पाकर प्राणियोंको प्रेरित करना इसका नित्यका कार्य है। उस मायाको सहचरीरूपमें स्वीकार करनेवाली भगवती परमेश्वरी सदा उसे साथ लिये रहती हैं। इसीलिये सच्चिदानन्दमय विग्रह धारण करनेवाली उन भगवतीको 'मायेश्वरी' कहा जाता है। उनके ध्यान, पूजन, नमस्कार और जपमें सदा तत्पर रहना चाहिये।

इससे अपनी दयालुताके कारण वे प्राणीको मायारहित बना देती हैं—अपनी अनुभूति प्रदान करके वे मायाको हर लेती हैं। अतएव इन भगवती परमेश्वरीको 'भुवनेशी' कहा गया है। इनके समान त्रिलोकीमें कोई सुन्दरी नहीं है। राजन्! यदि इनके रूपका ध्यान करनेमें चित्त निरन्तर लग जाय तो सदसत्स्वरूपिणी माया अपना क्या प्रभाव डाल सकती है? अतएव यदि मायाको दूर करनेकी इच्छा हो तो सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी आराधना छोड़कर अन्य किसीकी उपासना करना अनुचित है। जिस प्रकार अन्धकार किसी दूसरे सघन अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; किंतु उसे मिटानेमें सूर्य, चन्द्रमा, बिजली अथवा अग्निके तेज ही समर्थ हैं, उसी प्रकार मायेश्वरी भगवती जगदम्बा ही अपनी प्रभासे मायाको दूर करती हैं—ऐसा जानना चाहिये। अतः मायिक गुणोंसे निवृत्त होनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी उपासना करनी चाहिये।

राजेन्द्र! वृत्रासुर-वध आदि कथाके विषयमें तुमने जो प्रश्न किया था, उसका वर्णन मैं सम्यक् प्रकारसे कर चुका। अब दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हो? सुव्रत! श्रीमद्देवीभागवत-पुराणके इस पूर्वार्द्धको मैंने कह सुनाया। इसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक कही गयी है। भगवती जगदम्बाका यह रहस्य जिस-किसीको नहीं सुनाना चाहिये। जो भक्त, शान्तस्वभाव, देवीभक्तिका प्रेमी, शिष्य, अपना बड़ा पुत्र अथवा गुरुभक्तिसे युक्त हो, उसके सामने ही इसका वर्णन करे। यह पुराण सम्पूर्ण पुराणोंका सार, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाला एवं प्रमाणोंसे परिपूर्ण है। जो मानव भक्तिपूर्वक उच्च विचारसे इसका पाठ एवं श्रवण करता है, वह निश्चय ही इस जगत्में ज्ञानी और धनी होनेका सुअवसर प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ३०-३१)

☆

## श्रीमद्देवीभागवत महापुराणका छठा स्कन्ध समाप्त।

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## सातवाँ स्कन्ध

### व्यासजीके प्रति जनमेजयका सृष्टिविषयक प्रश्न

सूतजी कहते हैं—तपस्वियो! इस दिव्य कथाको सुननेके पश्चात् परीक्षित्-नन्दन धर्मात्मा राजा जनमेजयने प्रसन्नतापूर्वक पुनः व्यासजीसे पूछा।

जनमेजयने कहा—स्वामिन्! सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विशद वर्णन सम्यक् प्रकारसे मैं सुनना चाहता हूँ। अनघ! आप सर्वज्ञ हैं, पाप शमन करनेवाली यह कथा कहनेकी कृपा कीजिये। इन दोनों वंशोंके राजाओंका परिचय कराइये। मैंने सुना है, वे सभी भगवती जगदम्बाके उपासक थे।

इस प्रकार राजर्षि जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यासजी उनसे कहने लगे।

व्यासजी बोले—महाराज! सूर्यवंश, चन्द्र-वंश तथा अन्य वंशोंसे भी सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंका वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी प्रकट हुए। तपस्या करनेके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त कठिनतासे साक्षात्कार होनेवाली महादेवीकी उपासना की। भगवतीने उन लोकपितामह ब्रह्माजीको वर प्रदान किया। तब वे सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। फिर भी, मानवी सृष्टिमें उन्हें सफलता न मिल सकी। इस मानवी सृष्टिके लिये उनके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हुए। किंतु तुरंत विस्तार कर देना उनकी शक्तिसे बाहर ही रहा। तब ब्रह्माजीने सात मानस पुत्र उत्पन्न किये। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य—इन नामोंसे उन मानस पुत्रोंकी प्रसिद्धि हुई। ब्रह्माजीके रोषसे रुद्रका और गोदसे नारदका प्राकट्य हुआ; अँगूठेसे दक्ष-प्रजापति निकले। ऐसे ही अन्य भी सनकादि मानस पुत्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। बायें हाथके अँगूठेसे दक्षपत्नी प्रकट हुईं, जिनके सभी अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे। राजन्! पुराणोंमें वे 'वीरिणी' नामसे विख्यात हैं। उन्हें असिक्नी भी कहा जाता है। ब्रह्माजीके मानस पुत्र देवर्षिप्रवर नारदजी उन असिक्नीके उदरसे उत्पन्न हुए हैं।

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! इस विषयमें मुझे बड़ा संदेह हो रहा है। अभी आप कह चुके हैं कि दक्षके सहयोगमें रहकर वीरिणी महान् तपस्वी नारदजीकी जननी हुईं। यह बात कैसे संगत हुई; क्योंकि धर्मके पूर्ण वेत्ता परम तपस्वी नारदजी तो ब्रह्माके मानस पुत्र कहे जाते हैं। फिर दक्षपत्नी वीरिणी उनकी माता कैसे हुईं? आप इसे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये। मुने! प्रचुर ज्ञानी महात्मा नारदजीने किसके शापसे और क्यों अपने पूर्व शरीरका त्याग करके किस कारण पुनः जन्म धारण किया?

व्यासजी कहते हैं—स्वयम्भू ब्रह्माजीने सर्वप्रथम दक्ष-प्रजापतिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी कि तुम प्रजाकी रचनामें तत्पर हो जाओ, जिससे बहुसंख्यक प्रजा उत्पन्न हो जायँ। उनकी आज्ञा पाकर दक्ष-प्रजापतिने वीरिणीके गर्भसे पाँच हजार अत्यन्त पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये। उन सभी पुत्रोंमें प्रजाकी सृष्टिका अदम्य उत्साह भरा था। बलवान् कालकी प्रेरणाके अनुसार देवर्षि नारद उन पुत्रोंको देखकर हँसते हुए कहने लगे—'अजी ! यह पृथ्वी कितनी लम्बी-चौड़ी है—इसका पता लगाये बिना ही प्रजाकी सृष्टिमें तुम कैसे तत्पर हो गये ? ऐसा करनेसे जगत्‌में तुम्हारा उपहास होगा—इसमें कोई संदेह नहीं। अतएव पहले पृथ्वीकी सीमा जानकर ही तुम्हें इस कार्यमें लगना चाहिये। ऐसा करनेसे ही तुम्हें इस कार्यमें सफलता प्राप्त होगी। अन्यथा तुम्हारा सारा प्रयास व्यर्थ है।'

व्यासजी कहते हैं—नारदजीके यों कहनेपर दैववश दक्षकुमार हर्यश्वोंके मनमें यह बात जँच गयी। वे एक-दूसरेकी ओर देखते हुए सहसा कहने लगे—'मुनिवरने बहुत ठीक कहा है। अतः पृथ्वीका प्रमाण जान लेनेके पश्चात् ही हम प्रजाकी सृष्टिमें सुखपूर्वक लगें।' इस प्रकार परामर्श करके वे सभी पृथ्वीका पता लगानेके लिये चल पड़े। नारदजीके कथनानुसार पृथ्वीके सर्वाङ्गकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये कुछ लोग पूर्व दिशामें, कुछ दक्षिणमें, कुछ पश्चिम और कुछ उत्तर दिशाकी ओर उत्साहपूर्वक चल पड़े। पुत्रोंको चला जाता देखकर दक्ष-प्रजापतिके मनमें महान् कष्ट हुआ। वे बड़े दृढ़प्रतिज्ञ थे। अतः प्रजा-सृष्टिके विचारसे उन्होंने पुनः बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये, वे लड़के भी प्रजाकी सृष्टि करनेके प्रयत्नमें संलग्न

हो गये। नारदजीने पहलेकी ही भाँति उन पुत्रोंको भी समझाकर भेज दिया। उन पुत्रोंका भी चला जाना देखकर दक्षके मनमें रोष उत्पन्न हो गया और उन्होंने क्रोधमें आकर नारदजीको शाप दे दिया।

दक्षजीने कहा—नारद ! तुमने जिस प्रकार मेरे बहुत-से पुत्रोंको नष्ट कर दिया है, उसी प्रकार तुम भी नष्ट हो जाओ। इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें गर्भमें रहना पड़ेगा। कारण, तुमने मेरे बहुत-से पुत्र नष्ट कर दिये हैं।

इस प्रकारके शापसे ग्रस्त होकर नारदजी वीरिणीके गर्भसे प्रकट हुए। इसके बाद दक्ष-प्रजापतिने वीरिणीके उदरसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। प्रजापति दक्ष धर्मज्ञ पुरुष थे। उन्होंने उन साठ कन्याओंमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह महात्मा कश्यपके साथ कर दिया। राजन् ! उनकी आज्ञासे दस धर्मकी, सत्ताईस चन्द्रमाकी, दो भृगुकी और चार अरिष्टनेमिकी पत्नी बनीं। दो कन्याओंका विवाह अङ्गिराके साथ किया गया। शेष दो रहीं। उन्हें भी पुनः अङ्गिराको ही

सौंप दिया। सभी देवता और दानव उन्हीं कन्याओंके पुत्र और पौत्र हैं। सभी बड़े पराक्रमी हुए। किसीसे किसीको प्रेम नहीं था। द्वेषके कारण परस्पर शत्रुता ठनी रहती थी। सभी शूरवीर थे। पर मायाके अत्यन्त प्रभाववश वे मोहमें पड़े रहते थे। (अध्याय १)

☆

## राजा शर्यातिकी कथाका आरम्भ, सुकन्याके द्वारा महर्षि च्यवनके नेत्रोंका छेदा जाना, महर्षिके कोपसे शर्यातिका ससैन्य अस्वस्थ होना, च्यवनका अपने साथ सुकन्याका विवाह करनेके लिये कहना और सुकन्याकी प्रसन्नतासे च्यवनके साथ उसका विवाह

जनमेजयने कहा—महाभाग ! अब आप राजाओंके वंशका वर्णन विस्तारपूर्वक सुनानेकी कृपा कीजिये। धर्मके पूर्णवेत्ता सूर्यवंशी राजाओंकी वंशावलीका विशदरूपसे वर्णन कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—भारत ! ऋषिसत्तम नारदजीके मुखसे मैं जैसे सुन चुका हूँ, उसीके अनुसार सूर्यवंशका विस्तृत वर्णन करता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। एक समयकी बात है, श्रीमान् नारदजी स्वेच्छापूर्वक विचरते हुए सरस्वती नदीके पावन तटपर पधारे। वहीं एक पवित्र आश्रमपर मैं रहता था। मैंने सामने उपस्थित हो सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। बैठनेके लिये सामने आसन बिछा दिया और आदरपूर्वक मुनिकी पूजा की। विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् मैंने उनसे कहा—'मुनिवर ! आप मेरे परम पूज्य हैं। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया। मुने ! आपसे कोई बात अविदित नहीं है। अब इन सातवें मनुके वंशमें जो विख्यात राजा हो चुके हैं, उनके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली पवित्र कथा सुनाइये।

नारदजी कहते हैं—सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! राजाओंकी अत्यन्त उत्तम वंशावली सुनो। कानोंको सुख पहुँचानेवाला यह प्रसंग धर्म और ज्ञान आदिसे सम्पन्न है। पुराणोंमें ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि सर्वप्रथम जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट हुए। सम्पूर्ण जगत्के रचयिता स्वयम्भू ब्रह्माजी सर्वज्ञानी एवं सर्वशक्तिसम्पन्न थे। सृष्टि करनेके विचारसे उन विश्वात्मा विभुने पहले श्रेष्ठ शक्तिकी आधारभूता भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। तदनन्तर उत्तम लक्षणवाले मानस पुत्रोंको प्रकट किया। उन मानस पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि प्रकट हुए। मरीचिसे परम प्रसिद्ध कश्यपजीका जन्म हुआ। दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ उन कश्यपजीकी पत्नी हुईं। देवता, दानव, यक्ष, सर्पगण, पशु और पक्षी—सब उन्हींसे उत्पन्न हुए। अतएव 'काश्यपी सृष्टि' कही जाती है।

देवताओंमें श्रेष्ठ सूर्य हुए। उन्हींका नाम विवस्वान् भी है। उन्हींके पुत्र वैवस्वत मनुको जगत्का शासन-कार्य सौंपा गया। वैवस्वत मनुसे सूर्यवंशकी वृद्धि करनेमें परम कुशल इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। फिर उनके नौ भाई और हुए। राजेन्द्र ! उन नवों भाइयोंके नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो—नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करूष और पृषध्र—ये ही नौ 'मनुपुत्र' नामसे विख्यात हैं।

इन मनुके पुत्रोंमें सर्वप्रथम इक्ष्वाकुका जन्म हुआ था। अतएव वे सबसे बड़े कहे जाते हैं। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उन सबमें आत्मज्ञानी विकुक्षी श्रेष्ठ माने जाते हैं। मनुके ये नवों पुत्र बड़े शूरवीर थे। मनुके पश्चात् इनकी जो वंशावली बढ़ी, उसका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ, सुनो। नाभागके पुत्र परम प्रतापी अम्बरीष हुए। ये धर्मज्ञानी, सत्यवादी और प्रसिद्ध प्रजापालक थे। धृष्टसे धार्ष्टका जन्म हुआ। धार्ष्ट क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण बन गये। संग्राम-विषयक उत्साह उनके हृदयसे जाता रहा। उनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे ब्राह्मणका कर्म होने लगा। शर्यातिसे आनर्तका जन्म हुआ, जिनका नाम सभी जानते हैं। सुकन्या नामकी एक परम सुन्दरी पुत्री भी उत्पन्न हुई। राजा शर्यातिने अपनी उस सुन्दरी कन्याका विवाह नेत्रहीन च्यवन मुनिके साथ कर दिया। बादमें उस कन्याके शील और गुणके प्रभावसे मुनिको आँखें सुलभ हो गयीं। सूर्यनन्दन अश्विनीकुमारोंने मुनिको नेत्र प्रदान कर दिये।

राजा जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! आपने इस कथाके प्रसंगमें जो यह बात कही है कि राजा शर्यातिने अन्धे मुनिके साथ अपनी सुलोचना कन्याका विवाह कर दिया, सो यह विषय बहुत संदेह उत्पन्न कर रहा है। उनकी वह कन्या कुरूप, गुणहीन, शुभ लक्षणोंसे रहित होती, तब तो उसका सम्बन्ध राजा एक अन्धेके साथ कर भी सकते थे, परंतु ऐसी परम सुन्दरी कन्याका विवाह च्यवन मुनिको नेत्रहीन जानते हुए भी उनके साथ कैसे कर दिया। ब्रह्मन्! मुझे इसका कारण बतानेकी कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्-नन्दन राजा जनमेजयकी यह बात सुनकर व्यासजी राजासे कहने लगे।

व्यासजी बोले—वैवस्वत मनुके पुत्रका नाम श्रीमान् राजा शर्याति था। उनके चार हजार भार्याएँ थीं। वे सभी राजकुमारियाँ अत्यन्त सुन्दरी एवं सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। उन सबके बीचमें एक परम सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था—सुकन्या। वह कन्या पिता और समस्त माताओंके लिये अत्यन्त स्नेहपात्री थी। नगरसे थोड़ी दूरपर मानसरोवरकी तुलना करनेवाला एक सरोवर था। उसमें उतरनेके लिये सीढ़ियाँ बँधी थीं। वह निर्मल जलसे परिपूर्ण था। हंस और चक्रवाक उसकी अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे। जलकाक और सारस आदि पक्षियोंसे उस तालाबका सारा भाग भरा था। उसमें पाँच प्रकारके कमल खिले थे और उनपर भौंरोंका झुंड मँडरा रहा था। बहुत-से सुन्दर वृक्ष उस सरोवरके तटको घेरे थे। साखू, तमाल, देवदारु, जायफल और अशोक उसे सुशोभित कर रहे थे। वट, पीपल, कदम्ब, केला, नीबू, अनार, खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल, केतकी, कचनार, जुही और मालती आदि सुन्दर एवं स्वच्छ वृक्षोंसे वह सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न था। जामुन, आम, तिन्तिणी, करज, कोरया, पलाश, नीम, खैर और बेल आदिके वृक्षोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी। कोकिल और मोरोंकी ध्वनिसे वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था।

उस सरोवरके बिलकुल पासमें ही वृक्षोंसे घिरे हुए एक पवित्र स्थानपर च्यवन मुनि निवास करते थे। उन तपस्वी मुनिके चित्तमें सदा शान्ति बनी रहती थी। उस स्थानको निर्जन समझकर उन्होंने मनको एकाग्र करके तपस्या आरम्भ कर

दी थी। वे आसन जमाकर बैठे थे। उन्होंने मौन धारण कर रखा था। प्राणोंपर उनका पूरा अधिकार था। सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं। उन तपोनिधिने भोजन भी बंद कर दिया था। वे निर्जल रहकर भगवती जगदम्बाका ध्यान करते थे। राजन्! उनके शरीरपर चारों ओरसे लताएँ चढ़ गयी थीं। दीमकोंने उन्हें अपना घर बना लिया था। राजन्! बहुत दिनोंतक यों बैठे रहनेके कारण चींटियाँ उनपर चढ़ गयी थीं और उनसे वे घिर गये थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो केवल मिट्टीके धूहे हों।

राजन्! एक समयकी बात है—राजा शर्याति इस श्रेष्ठ स्थानपर आये। सरोवरका जल सर्वथा स्वच्छ था। कमल खिले हुए थे। लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली सुकन्या बालसुलभ चपलताके कारण अपनी सखियोंके साथ वनमें जाकर पुष्प तोड़ती हुई घूमने लगी। इधर-उधर चक्कर काटती हुई वह राजकुमारी च्यवन मुनिके निकट पहुँच गयी। मुनिका शरीर दीमकोंका घर बन गया था। उसीके समीप सुकन्या खेल रही थी। उसे वल्मीकके छिद्रसे चमकनेवाली दो ज्योतियाँ दिखायी पड़ीं। यह क्या है—'ऐसी जिज्ञासा उठनेपर उस सुन्दरी राजकुमारीके मनमें आया कि आवरण हटाकर देखा जाय। फिर तो, तुरंत ही एक नोकदार काँटा लेकर उससे वह ऊपरकी मिट्टी हटाने लगी। अब पास आकर उद्यम करनेवाली उस कन्यापर मुनिके नेत्र पड़ गये। वह राजकुमारी च्यवन मुनिके देखनेमें आ गयी। अन्न और जलका परित्याग कर देनेसे परम तपस्वी मुनिवर च्यवनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो चुका था। कल्याणी सुकन्याको देखकर वे उससे कहने लगे—'सुन्दरी! दूर चली जाओ। मैं तो एक तपस्वी हूँ। इस दीमककी मिट्टीको काँटेसे हटाना ठीक नहीं है।' मुनिके कहनेपर भी राजकुमारी उनकी बातें नहीं सुन सकी। यह कौन-सी अद्‌भुत वस्तु झलक रही है—यह कहकर उसने मुनिके नेत्र काँटेसे

छेद दिये। दैवकी प्रेरणासे खेल-ही-खेलमें राजकुमारीके द्वारा यह अप्रिय घटना घट गयी। आँख फूट जानेसे मुनिको असीम कष्ट होने लगा। फिर तो उसी क्षणसे समस्त सैनिकोंके मल-मूत्र बंद हो गये। मन्त्रीसहित राजापर भी यह कष्ट छा गया, यहाँतक कि हाथी, घोड़े और ऊँट—जितने प्राणी थे, सभी इस व्याधिसे ग्रस्त हो गये। ऐसी स्थितिमें राजा शर्याति बड़े चिन्तित हुए। तब राजा शर्यातिने इस कष्टके कारणपर विचार किया। कुछ समय विचार करनेके पश्चात् राजा घरपर आये और अपने परिजनों तथा सैनिकोंसे अत्यन्त आतुर होकर पूछने लगे—'किसके द्वारा यह अप्रिय कार्य हुआ है। इस तालाबके पश्चिम तटपर वनमें महान् तपस्वी मुनिवर च्यवन कठिन तपस्या कर रहे हैं। वे अग्निके समान तेजस्वी हैं। हो-न-हो किसीके

द्वारा उन्हींका कोई अपकार हो गया है। इसीसे सबके शरीरोंमें ऐसी व्याधि उत्पन्न हो गयी है—यह बिलकुल निश्चित है। भृगुनन्दन महात्मा च्यवनजी परम वृद्ध एवं विशिष्ट आदरणीय पुरुष हैं। मेरी समझसे अवश्य ही किसीने उनका अनिष्ट कर दिया है। यह अनिष्ट काम जानकर किया गया हो अथवा अनजानमें, इसका फल तो भोगना ही पड़ेगा।'

राजाके यों कहनेपर दुःखसे घबराये हुए सैनिकोंने कहा—'मन, वाणी और कर्मद्वारा हमसे तो मुनिका कोई अपकार हुआ है, इसे हम बिलकुल नहीं जानते।'

व्यासजी कहते हैं—राजा शर्याति अत्यन्त चिन्तित हो उठे थे। इस प्रकार सबसे पूछनेके पश्चात् उन्होंने बड़ी शान्तिके साथ अपने मन्त्रि-मण्डलसे भी पूछा। तब राजकुमारी सुकन्याने सारी जनता तथा पिताजीको भी दुःखी देखकर विचार किया कि मेरे द्वारा उन छेदोंमें सूई चुभा दी गयी थी, यही कारण हो सकता है। अतः उसने कहा—'पिताजी! मैं उस वनमें खेल रही थी। वहीं मिट्टीका एक मजबूत धूहा-सा दिखायी पड़ा। उसके चारों ओर लताएँ फैली थीं। उसमें दो छिद्र दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन छेदोंमेंसे बड़ा प्रकाश निकल रहा था। महाराज! मैंने कौतूहलवश उन छिद्रोंमें सूई चुभो दी। पिताजी! उस समय मैंने देखा, वह सूई जलसे भींग गयी थी। साथ ही उस वल्मीकमेंसे 'हा, हा' की एक धीमी आवाज भी मुझे सुनायी पड़ी। पिताजी! तब मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गयी। यह क्या हो गया—इस शङ्कासे मेरा हृदय भर गया। पता नहीं, मेरे द्वारा उस वल्मीकमें कौन-सी वस्तु छिद गयी थी।'

राजा शर्याति सुकन्याकी यह कोमल वाणी सुनकर समझ गये कि यही मुनिकी अवहेलना हुई है। अब वे तुरंत वल्मीकके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने महान् कष्टमें पड़े हुए परम तपस्वी च्यवन मुनिको देखा। मुनिके शरीरपर दीमककी मिट्टी चढ़ी हुई थी। उन्होंने उसे धीरेसे दूर हटाया और धरतीपर पड़कर मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनकी स्तुति की और नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर वे कहने लगे—'महाभाग! मेरी कन्या खेल रही थी। उसीके द्वारा यह भारी दुष्कर्म हो गया है। ब्रह्मन्! वह अभी बिलकुल अबोध बालिका है। उसने अज्ञानवश ऐसा कर दिया है। आप उसके इस अपराधको क्षमा करें। मुनियोंका स्वभाव ही क्षमा करना है—मैंने यह सुन रखा है। अतः आप भी इस अवसरपर इस बालिकाका अपराध क्षमा कीजिये।'

व्यासजी कहते हैं—राजा शर्याति अत्यन्त दुःखी होकर नम्रतापूर्वक सामने खड़े थे। उनकी बात सुनकर च्यवन मुनि यह वचन बोले।

च्यवन मुनिने कहा—राजन्! मैं कभी किञ्चिन्मात्र भी क्रोध नहीं करता। यद्यपि तुम्हारी पुत्रीने मुझे कष्ट पहुँचाया है; परंतु मैंने कोई शाप नहीं दिया। महीपते! मुझ निरपराधी व्यक्तिकी आँखोंमें बड़ी पीड़ा हो रही है। मैं जानता हूँ, इस नीच कर्मके प्रभावसे तुमपर कष्ट आ गया है। ठीक ही है, देवीभक्तके प्रति घोर अपराध करके कौन व्यक्ति सुखी रह सकता है? यदि स्वयं शंकर भी उसके रक्षक हों, तब भी उसका सुखी रहना असम्भव है। राजन्! मैं क्या करूँ। मेरी आँखोंने जवाब दे दिया। मुझे बुढ़ापा घेरे हुए है। भूपाल! अब मुझ अन्धेकी सेवा कौन करेगा?

राजा शर्यातिने कहा—मुनिवर! बहुत-से

सेवक आपकी सेवामें उपस्थित रहेंगे। आप अपराध क्षमा करें। कारण, तपस्वीजन अल्पक्रोधी होते हैं।

च्यवनजी बोले—राजन् ! मैं नेत्रहीन हो अकेले रहकर तपस्या करनेमें कैसे सफलता पा सकता हूँ ? तुम्हारे सेवक मेरी मनचाही बातें कैसे कर सकेंगे ? राजन् ! यदि तुम मुझसे क्षमा करनेके लिये कहते हो तो मेरी बात मानो। तुम अपनी कमलनयनी कन्याको मेरी सेवाके लिये सौंप दो। महाराज ! मैं तुम्हारी इस कन्यासे प्रसन्न हूँ। इसके साथ रहकर मैं तपस्या करूँगा और यह मेरी सेवामें लगी रहेगी। राजेन्द्र ! इस प्रकार करनेसे मैं और तुम—दोनों ही सुखी हो सकते हैं। मेरे संतुष्ट हो जानेपर सारे सैनिक भी सुखसे समय व्यतीत करेंगे— इसमें कोई संशय नहीं है। ऐसा करनेमें तुम्हें कुछ भी दोष नहीं लगेगा। कारण, मैं संयमशील तपस्वी हूँ।

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय ! च्यवन मुनिकी बात सुनकर राजा शर्याति चिन्तातुर हो गये। दूँगा अथवा नहीं दूँगा—यह कोई भी बात उस समय उनके मुखसे नहीं निकल सकी। सोचा, 'ये मुनि अंधे, बूढ़े और कुरूप हैं। इन्हें मैं देवकन्याकी तुलना करनेवाली अपनी इस कन्याको सौंपकर कैसे सुखी हो सकूँगा ? भला ऐसा मूर्ख एवं पापी कौन है, जो शुभाशुभ कर्मकी जानकारी रखते हुए भी स्वयं सुखी होनेके लिये अपनी पुत्रीके संसारजनित सुखपर आघात पहुँचानेमें तत्पर हो जाय ? इन अंधे एवं बूढ़े च्यवन मुनिके समीप मेरी कन्या किस प्रकार समय व्यतीत करेगी ? अतएव मुझे दुःख भले ही हो; किंतु मैं अपनी सुकन्या इन मुनिको नहीं दे सकता।'

इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त राजा शर्याति उदास होकर अपने घर लौट गये। उनके मनमें असीम संताप छाया था। उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर परामर्श किया और उनसे पूछा—'मन्त्रियो ! तुम अब अपनी सम्मति प्रकट करो। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये। मुनिको कन्या दे दूँ अथवा दुःख ही सह लूँ ?'

मन्त्रियोंने कहा—महाराज ! यह बड़े ही संकटकी समस्या सामने उपस्थित है। हम इस अवसरपर क्या कहें ? इस भाग्यहीन व्यक्तिको यह परम सुकुमारी सुकन्या देना तो कैसे उचित हो सकता है ?

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर पिता तथा मन्त्रियोंको अत्यन्त चिन्तित देखकर सब रहस्य राजकुमारी सुकन्याकी समझमें आ गया। अतः वह हँसकर बोली—'पिताजी ! इस समय आप इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हैं ? मैं समझ गयी, आप मेरे लिये इतने दुःखी एवं उदास हैं। पिताजी ! मैं भयसे घबराये हुए मुनिके पास जाकर उन्हें आश्वासन दूँगी और आत्मदान करके उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करूँगी।'

सुकन्याकी बातें सुनकर राजा शर्यातिका हृदय द्रवित हो गया; साथ ही उनके मुखपर प्रसन्नताकी रेखा भी आ गयी। मन्त्रियोंको सुनाते हुए वे उससे कहने लगे—'बेटी ! तुम अत्यन्त सुकुमारी अबला कन्या वनमें इन अंधे मुनिकी सेवा कैसे कर सकोगी ? ये अत्यन्त बूढ़े एवं विशेष क्रोधी भी हैं। भला, रूपमें रतिकी तुलना करनेवाली तुम-जैसी कन्याका विवाह मैं इन अंधे मुनिके साथ कैसे करूँ ? अपने सुखके लिये बुढ़ापेसे ग्रस्त शरीरवाले मुनिको

तुम्हें सौंपना उचित नहीं है। पिताका कर्तव्य है कि अवस्था, जाति और बलमें समानता रखनेवाले धन-धान्यसे सम्पन्न सुयोग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह करे। निर्धनके साथ सम्बन्ध करना कदापि उचित नहीं है। कहाँ तो तुम्हारा रूप और कहाँ वनमें रहनेवाला वह बूढ़ा मुनि। भला, एक अयोग्य वरके साथ मेरे द्वारा पुत्रीका विवाह कैसे किया जा सकता है ? जो पर्णशालामें रहकर निरन्तर वनवासी जीवन व्यतीत करता है, उसके साथ तुम्हारे सम्बन्धकी कल्पना ही कैसे की जाय ? मेरी तथा सैनिकोंकी मृत्यु मुझे श्रेयस्कर प्रतीत हो रही है, किंतु एक अंधेके हाथमें तुम्हें सौंप दूँ—यह मुझे पसंद नहीं। जो होनेवाला होगा, वह तो होगा ही; मैं अपना धैर्य नहीं छोड़ सकता। तुम शान्तचित्तसे रहो। मैं तुम्हें नेत्रहीनको कदापि नहीं सौंपूँगा। राज्य एवं यह देह रहे अथवा चला जाय—परवाह नहीं। बालिके ! उस नेत्रहीनको मैं तुम्हें देनेमें असहमत हूँ।' पिताकी यह बात सुनकर सुकन्या उनसे विनय तथा प्रेमपूर्वक कहने लगी।

सुकन्या बोली—पिताजी ! आपको मेरे विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अब आप मुझे मुनिको सौंप दीजिये। मेरे इस कार्यसे सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख हो—यह मेरे लिये कितनी अच्छी बात है। मैं संतुष्ट रहकर उन परमपावन मुनिकी पतिरूपसे सेवा करूँगी। ये वृद्ध मुनि निर्जन वनमें मेरे द्वारा अत्यन्त भक्तिपूर्वक सुसेवित होंगे। कारण, मैं सतीधर्मको अच्छी प्रकार जानती हूँ। पिताजी ! भोगमें मेरी बिलकुल ही रुचि नहीं है। अनघ ! आप मेरे विषयमें सर्वथा निश्चिन्त हो जाइये।

व्यासजी कहते हैं—सुकन्याकी यह बात सुनकर मन्त्रिमण्डल अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गया। अन्तमें राजाने सुकन्याकी बात मान ली और वे मुनिके पास जानेको तैयार हो गये। उन तपोधन मुनिके निकट पहुँचते ही मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया और कहा—'स्वामिन् ! मेरी कन्या आपकी सेवामें उपस्थित है। विभो ! आप इसे विधिपूर्वक स्वीकार करनेकी कृपा करें। इस प्रकार कहकर राजा शर्यातिने वैवाहिक विधि सम्पन्न करके अपनी पुत्री सुकन्याका विवाह मुनिके साथ कर दिया। उस राजकुमारीको पाकर मुनि परम प्रसन्न हो गये। राजा दहेजकी सामग्री दे रहे थे; किंतु मुनिने लेना अस्वीकार कर दिया। अपनी सेवाका कार्य सम्पन्न हो जाय—इस विचारसे उन्होंने केवल कन्याको ही लेना स्वीकार किया। अब मुनिके प्रसन्न हो जानेपर सब सैनिकोंका रोग दूर हो गया। उसी समयसे राजा भी परम आह्लादित रहने लगा। जब राजा शर्यातिने मुनिको पुत्री सौंपकर घर चलनेका विचार किया, तब सुकन्याके मनमें उनसे कुछ कहनेकी इच्छा हुई।

सुकन्याने कहा—पिताजी ! आप मेरे वस्त्र और आभूषण ले लें तथा मुझे वृक्षोंकी छाल एवं उत्तम मृगचर्म देनेकी कृपा करें। मैं मुनिपत्नियोंका वेष बनाकर तपस्यामें निरत हो मुनिकी सेवा करूँगी, जिससे धरातल, रसातल एवं स्वर्गमें भी आपकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सके। परलोकमें सुखी होनेके लिये मैं निरन्तर मुनिकी सेवामें संलग्न रहूँगी। 'मैंने अपनी सुन्दरी एवं तरुणी कन्या नेत्रहीन बूढ़े मुनिको सौंप दी और कहीं इसका आचरण भ्रष्ट हो जायगा तो बड़ा ही अनिष्ट हो जायगा' इस प्रकारकी आप बिलकुल

चिन्ता न करें। जिस प्रकार वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती तथा अत्रिकी साध्वी भार्या अनसूया स्वर्गमें प्रसिद्ध हैं, वैसे ही मैं भी धरातलपर प्रतिष्ठा प्राप्त करूँगी। इस विषयमें तनिक भी चिन्ता करना सर्वथा अवाञ्छनीय है।

राजा शर्याति महान् धर्मज्ञ पुरुष थे। अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर उन्होंने उसे वल्कल-वस्त्रादि दे दिये। परंतु उसपर दृष्टि डालते ही उनकी आँखोंमें जल भर आया। सुकन्याने तुरंत वस्त्र और आभूषण उतारकर मुनि-पत्नीका वेष धारण कर लिया। महाराज शर्याति उदास होकर कुछ समयतक वहीं ठहरे रहे। राजकुमारी वृक्षकी छाल और मृगचर्म धारण किये है—यह देखकर उपस्थित सारी जनता रो पड़ी। सब काँपने लगे। सबके मनमें असीम संताप होने लगा। राजन्! फिर अपनी पुण्यमयी साध्वी कन्यासे पूछकर उसे वहीं छोड़ राजा शर्याति मन्त्रियोंके साथ अपने नगरको प्रस्थित हो गये।

(अध्याय २-३)

☆

## सुकन्याद्वारा च्यवन मुनिकी सेवा, अश्विनीकुमारोंका आगमन, उनके द्वारा च्यवन ऋषिको नेत्र तथा यौवनकी प्राप्ति

व्यासजी कहते हैं—राजा शर्यातिके चले जानेपर सुकन्या सर्वतोभावसे च्यवन मुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी। धर्ममें तत्पर रहनेवाली उस राजकुमारीके प्रयत्नसे आश्रमकी आग कभी बुझने नहीं पाती थी। वह स्वादिष्ट फल और भाँति-भाँतिके कन्द-मूल लाकर मुनिको अर्पण करती थी। पतिकी सेवामें ही उसका सारा समय व्यतीत होने लगा। जाड़ेके दिनोंमें वह पानी गरम करके उससे मुनिको स्नान कराती, मृगचर्म पहनाती और पवित्र आसनपर बैठा देती थी। उनके आगे तिल, जौ, कुशा और कमण्डलु रखकर प्रार्थना करती कि 'मुनिवरजी! अब आप नित्यकर्म कीजिये।' पतिदेवका जब नित्यकर्म समाप्त हो जाता, तब राजकुमारी उनका हाथ पकड़कर उठाती और किसी आसन अथवा बिस्तरपर उन्हें बिठा देती थी। तदनन्तर पके हुए फल एवं भलीभाँति सिद्ध किये गये तीनीके चावल लाकर च्यवन मुनिको भोजन कराती थी। जब पतिदेव भोजनसे तृप्त हो जाते, तब आदरपूर्वक वह उन्हें आचमन कराती। फिर बड़े प्रेमसे पान और सुपारी सामने रख देती। मुखशुद्धि ले लेनेके बाद च्यवनजीको वह सुन्दर आसनपर पधरा देती। तत्पश्चात् मुनिसे आज्ञा लेकर वह अपनी शारीरिक क्रिया सम्पन्न करती थी। उसका भी भोजन केवल फलाहार ही रहता। फलाहार करके फिर वह मुनिके पास जाती और अत्यन्त नम्रताके साथ उनसे कहती—'प्रभो! मुझे क्या आज्ञा दे रहे हैं। आपकी सम्मति हो तो मैं अब चरण दबाऊँ।' इस प्रकार सुकन्या अपने पतिदेव च्यवन मुनिकी सेवामें निरन्तर लगी रहती।

सायंकालका हवन समाप्त हो जानेपर वह सुन्दरी कन्या पुनः कोमल एवं स्वादिष्ट फल लाकर मुनिको अर्पण कर देती थी। मुनिके भोजनसे बचे हुए फल उनकी आज्ञा लेकर स्वयं प्रेमपूर्वक खा लेती। सुन्दर बिछौना बिछाकर उसपर बड़े हर्षके साथ मुनिको सुला देती। परम प्रेमी पति जब सुखपूर्वक शय्यापर लेट जाते,

तब सुकन्या उनके चरण दबानेमें लग जाती। उस समय वह कुलकी स्त्रियोंके धार्मिक विषयमें मुनिसे पूछा करती। पैर दबानेके उपरान्त जब वह भक्तिपरायणा सुकन्या यह जान जाती कि मुनिजी सो गये, तब स्वयं भी उनके चरणोंके पास ही सो जाती। गरमीके दिनोंमें अपने पति च्यवन मुनिको बैठे देखकर वह राजकुमारी ताड़के पंखेसे ठंडी हवा करके उनकी सेवामें जुटी रहती। जाड़के दिनोंमें लकड़ी इकट्ठी करके मुनिके आगे आग जला देती। साथ ही बार-बार पूछा करती, 'स्वामिन्! आप सुखसे तो हैं न?'

वह ब्राह्ममुहूर्तमें उठती और लोटा, जल एवं मिट्टी मुनिके पास उपस्थित करके उन्हें शौच जानेके लिये उठाती। आश्रमसे कुछ दूर ले जाकर बैठा देती। जब मुनि बैठ जाते, तब स्वयं वहाँसे दूर हटकर उनकी प्रतीक्षामें बैठ जाती। स्वामी शौच कर चुके होंगे—यह जानकर मुनिके पास जाती और हाथ पकड़कर पुनः उन्हें आश्रमपर ले आती। एक पवित्र आसनपर उन्हें बैठा देती। जल और मिट्टीसे विधिपूर्वक मुनिके पैर धोती। फिर राजकुमारी सुकन्या च्यवन

मुनिको कुल्ले कराकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दँतुअन तोड़ती और लाकर उनके पास रख देती। शुद्ध जल गरम करती और स्नान करनेके लिये मुनिके सामने रख देती। साथ ही बड़ी नम्रताके साथ पूछती—'ब्रह्मन्! क्या आज्ञा दे रहे हैं। आपने दन्तधावन तो कर ही लिया। अब गरम जल तैयार है। मन्त्रका उच्चारण करते हुए आप स्नान कर लीजिये। हवन और प्रातःसंध्याका यह समय उपस्थित है। अब विधिवत् हवन करके देवताओंकी उपासना करनी चाहिये।'

राजकुमारी सुकन्याका अन्तःकरण परम पवित्र था। तपस्वी च्यवन मुनिको पतिके रूपमें वरण करके वह तप एवं नियमकी मर्यादाका पालन करती हुई प्रेमपूर्वक उपर्युक्त रीतिसे मुनिकी निरन्तर सेवा करती रही। उसके द्वारा अग्नि और अतिथि सदा सम्मान पाते थे। प्रसन्न-मुखवाली वह राजकुमारी बड़े हर्षके साथ सदा-सर्वदा च्यवन मुनिकी परिचर्यामें लगी रहती थी। यही उसके जीवनका एकमात्र काम था।

एक समयकी बात है, सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार च्यवन मुनिके आश्रमके समीप पधारे। उन्होंने देखा—सुकन्या जलमें स्नान करके अपने आश्रमपर लौटी जा रही है। उसके सभी अङ्ग बड़े ही मनोहर हैं। देवकन्याकी तुलना करनेवाली उस राजकुमारीको देखकर अश्विनी-कुमार उसके पास पहुँच गये और आदरपूर्वक उससे कहने लगे—'वरारोहे! थोड़ी देर ठहरो। हमलोग सूर्यदेवके पुत्र हैं। शुचिस्मिते! तुमसे कुछ पूछनेके लिये हमारा यहाँ आना हुआ है। तुम सच्ची बात बतानेकी कृपा करो। चारुलोचने! तुम किसकी पुत्री हो, तुम्हारे

पतिदेव कौन हैं और तुम यहाँ अकेली ही उद्यानमें इस जलाशयपर स्नान करनेके लिये कैसे आयी हो ? कमललोचने ! तुम्हारी प्रभासे ऐसा जान पड़ता है, मानो स्वयं दूसरी लक्ष्मीका ही पदार्पण हो गया है। शोभने ! हम ये सब बातें जानना चाहते हैं। तुम बतानेकी कृपा करो। जब तुम्हारे कोमल चरण विषम भूमिपर ठहरते और आगे बढ़ते हैं, तब उन्हें देखकर हमारे हृदयमें पीड़ा होने लगती है। तुम्हारे लिये समुचित सवारी विमान है। फिर तुम कैसे इस कठोर धरतीपर पैदल भटक रही हो ? इस वनमें तुम्हारे नंगे पैरों घूमनेका क्या कारण है ? तुम राजपुत्री अथवा अप्सरा—दोनोंमें कौन हो, सच कहो। तुम्हारी माता धन्य है, जिससे तुम उत्पन्न हुई हो। तुम्हारे उन पिताजीको भी धन्यवाद है। अनघे ! तुम्हारे पति कितने बड़े भाग्यशाली हैं, इसे तो हम कह ही नहीं सकते। सुलोचने ! यह भूमि देवलोकसे भी बढ़कर मानी जा सकती है। इस समय तुम्हारा पैर इसपर पड़कर इसे और भी गौरवान्वित कर रहा है। उन मृगोंका भाग्योदय समझना चाहिये, जो तुम्हें वनमें देख रहे हैं। ये अन्य सम्पूर्ण पक्षी भी पूर्ण भाग्यशाली हैं। तुम्हारे पदार्पणसे यहाँकी भूमि परम पवित्र बन गयी है। सुलोचने ! तुम असीम प्रशंसनीय हो। तुम्हारे पिता और पति कौन हैं ? तुम्हारे पतिदेव कहाँ रहते हैं ? हम आदरपूर्वक उन्हें देखना चाहते हैं।'

व्यासजी कहते हैं—अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुननेके पश्चात् परम सुन्दरी राजकुमारी सुकन्या अत्यन्त लज्जित होकर उनसे कहने लगी—'मुझे राजा शर्यातिकी कन्या समझें। मुनिवर च्यवनजी मेरे पतिदेव हैं। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। पिताने स्वेच्छासे मुझे इनको सौंप दिया है। देवताओ ! मेरे पतिकी आँखें जवाब दे चुकी हैं। वे परम तपस्वी मुनि बूढ़े हो चुके हैं। मैं प्रसन्न-मनसे रात-दिन इन्हीं पतिदेवकी सेवामें तत्पर रहती हूँ। आप दोनों कौन हैं और आपका यहाँ कैसे पधारना हुआ है ? मेरे पतिदेव आश्रममें विराजमान हैं। आप वहाँ चलकर उस आश्रमको पवित्र कीजिये।'

राजन् ! तब अश्विनीकुमारोंने सुकन्याका कथन सुनकर उससे कहा—'कल्याणी ! तुम्हारे पिताने इन तपस्वी मुनिके साथ तुम्हारा विवाह कैसे कर दिया ? तुम तो बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति इस वनमें शोभा पा रही हो। तुम-जैसी सुन्दरी स्त्री देवताओंके घर भी नहीं दिखायी पड़ती। तुम्हें दिव्य वस्त्र पहनने चाहिये। ये वल्कल तुम्हें सुशोभित करनेमें असमर्थ हैं। तुम्हें वह नेत्रहीन पति कैसे मिल गया ? निश्चय जान पड़ता है कि ब्रह्माकी भी बुद्धि कुण्ठित थी, जो उन्होंने तुमको इनकी भार्या बनानेका विधान किया। सुन्दरी ! तुम इनके योग्य नहीं हो। तुम राजाकी सुकुमारी कन्या हो। तुम्हारे शरीरमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। भाग्यकी कमीके कारण ही इस निर्जन वनमें तुम्हारा आगमन हो गया है।'

व्यासजी कहते हैं—अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर मितभाषिणी सुकन्याके शरीरमें कँपकँपी छा गयी। उसने धैर्य धारण करके उनसे कहा—'देवताओ ! आपलोग भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। आप सर्वज्ञ एवं देवशिरोमणि हैं। मैं धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाली एक सती स्त्री हूँ। मेरे प्रति आपको ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिये। सुरवरो ! जब पिताजीने मुझे इन

योगधर्मी मुनिको सौंप दिया, तब दुराचारिणी स्त्रियाँ जिस मार्गका अनुसरण करती हैं, उसपर मैं पैर कैसे रखूँ ? ये कश्यपनन्दन भुवनभास्कर सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंके कार्योंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। अतः आपके मुखसे ऐसी बात कभी नहीं निकलनी चाहिये। भला, एक उत्तम वंशकी कन्या अपने पतिसे विमुख कैसे हो सकती है ? इस मिथ्याभूत जगत्के धार्मिक निर्णयको जाननेवाले आप महानुभाव जहाँ इच्छा हो, पधार जायँ। अन्यथा मैं शाप दे दूँगी। मैं पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली शर्यातिकुमारी सुकन्या हूँ।'

व्यासजी कहते हैं—सुकन्याकी उपर्युक्त बातें सुनकर अश्विनीकुमारोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। मुनिवर च्यवनके भयने उनके हृदयको सशङ्कित बना दिया। उन्होंने सुकन्यासे पुनः कहा—'उत्तम अङ्गोंसे शोभा पानेवाली राजकुमारी ! तुम्हारे इस धर्मपालनसे हमारा हृदय गद्‌गद हो उठा है। तुम अपने कल्याणार्थ वर माँगो, हम देनेको तैयार हैं। प्रमदे ! तुम निश्चय समझ लो कि हम देवताओंके वैद्य हैं। तुम्हारे पतिको सुन्दर युवक पुरुष बना देनेकी हममें योग्यता है। परम बुद्धिमती बाले ! तुम्हारे पतिको जब हम अपने समान स्वरूप बना देते हैं, तब तुम हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लो।' अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुनकर सुकन्याके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने पति च्यवन मुनिके पास जाकर वह उनसे उनकी बात कहने लगी।

सुकन्याने कहा—भार्गववंशको आनन्दित करनेवाले स्वामिन् ! इस समय आपके आश्रम-पर सूर्यके सुपुत्र अश्विनीकुमारद्वय पधारे हुए हैं। मैंने देखा, उनके शरीरकी आकृति बड़ी ही भव्य है। मुझ सुन्दरी स्त्रीको देखकर वे दोनों कामातुर हो गये हैं। स्वामिन् ! उन्होंने मुझसे कहा है—'हम तुम्हारे पतिको नवयुवक, दिव्य शरीरधारी और नेत्रयुक्त बना देंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। परंतु एक शर्त है कि जब हम तुम्हारे पतिको समान रूपवाला बना देंगे, तब तुम्हें हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना होगा।' साधो ! उनकी बात सुनकर इस अद्भुत कार्यके विषयमें पूछनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ। ऐसे आपत्ति-युक्त कार्यके उपस्थित होनेपर मुझे क्या करना चाहिये, यह आप बतानेकी कृपा करें। देवताओंकी माया शीघ्र समझमें आ जाय—यह असम्भव है। उनका अभिप्राय जाननेमें मैं असमर्थ हूँ। अतः सर्वज्ञ प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दीजिये। आपके इच्छानुसार मैं करनेको तैयार हूँ।

च्यवनजी बोले—कान्ते ! मैं कहता हूँ, तुम अभी दिव्य चिकित्सक अश्विनीकुमारोंके पास जाओ। सुव्रते ! तुम्हें उनको शीघ्र ही मेरे पास ले आनेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनकी बात तुरंत स्वीकार कर लो। इस विषयमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार च्यवन मुनिकी आज्ञा पा जानेपर सुकन्या देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंके पास गयी और उसने उनसे कहा—देववरो ! आपकी शर्त मुझे स्वीकार है; आप कार्य-सम्पादनमें प्रवृत्त हो जायँ।' अब सुकन्याके वचन सुनकर अश्विनीकुमार आश्रममें आ गये। उन्होंने राजकुमारीसे कहा—'तुम्हारे पति इस जलमें उतर जायँ।' रूपवान् बननेकी इच्छा थी ही, अतः च्यवनजी तुरंत जलमें पैठ

गये। तत्पश्चात् वे अश्विनीकुमार भी उस उत्तम सरोवरमें प्रविष्ट हो गये। फिर तुरंत वे तीनों व्यक्ति उस तालाबसे बाहर निकल आये। अब उन तीनोंकी दिव्य आकृतिमें कोई अन्तर नहीं रहा। सभी एक समान नवयुवक बन गये। सबकी एक-सी अवस्था थी। दिव्य कुण्डलों और आभूषणोंसे वे तीनों व्यक्ति अनुपम शोभा पा रहे थे। वे सभी एक साथ बोल उठे—'वरवर्णिनी ! भद्रे ! अमलानने ! तुम्हें हमलोगोंमेंसे जो भी अभीष्ट हो, उसे पति बना लो। वरानने ! जिसके प्रति तुम्हारा विशेष प्रेम हो, उसे वरण कर लेना चाहिये।'

व्यासजी कहते हैं—देवकुमारकी तुलना करनेवाले वे तीनों व्यक्ति रूप, अवस्था, स्वर और वेषभूषामें बिलकुल एक-जैसे थे। सबकी आकृति एक समान थी। उन्हें देखकर सुकन्या महान् असमञ्जसमें पड़ गयी। मेरे पति कौन हैं—यह भलीभाँति वह समझ नहीं पाती थी। अत्यन्त घबराकर सोचने लगी—'मैं क्या करूँ, तीनों एक समान हैं। समझमें नहीं आता कि किसको पति बनाऊँ। ओह, मेरे सामने यह बड़ा ही संशयग्रस्त विषय उपस्थित हो गया। देवताओंद्वारा सम्यक् प्रकारसे फैलाया हुआ यह इन्द्रजाल है। मेरे लिये तो यह मृत्यु ही सामने उपस्थित हो गयी। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये—अपने पतिको छोड़कर दूसरेको मैं किसी प्रकार भी वरण नहीं कर सकती।' इस प्रकार मनमें सोचकर सुकन्या कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके ध्यानमें तत्पर हो गयी। साथ ही उनका स्तवन भी आरम्भ कर दिया।

सुकन्या बोली—जगन्माता ! मैं असीम दुःखसे संतप्त होकर तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। कमलके आसनपर विराजनेवाली शंकरप्रिये

देवी ! मैं तुम्हारे चरणोंमें बार-बार मस्तक झुकाती हूँ। अब मेरे सतीधर्मकी रक्षा तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है। विष्णुप्रिये ! लक्ष्मी ! वेदमाता ! सरस्वती ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। इस चराचर सम्पूर्ण जगत्‌की रचना तुमने ही की है। सावधान होकर इस जगत्‌की रक्षा करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। जब संसारको शान्त करनेका विचार होता है, तब तुम इसे अपनेमें लीन कर लेती हो। ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी तुम जननी हो—यह सभी अनुमोदन करते हैं। तुम अज्ञानियोंको उत्तम बुद्धि प्रदान करती हो। ज्ञानीजन तुम्हारी उपासनासे सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं। परम पुरुषको प्रिय दीखनेवाली तुम पूर्ण प्रकृतिस्वरूपा देवीको सब लोग जान नहीं सकते। श्रेष्ठ विचारवाले व्यक्तियोंको तुम्हारी कृपासे भुक्ति और मुक्ति सदा सुलभ हो जाती है। तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये सुखकी साधन हो। अज्ञानीजन दुःख पाते हैं—यह भी तुम्हारी ही व्यवस्था है। माता ! तुम योगियोंको सिद्धि, विजय और कीर्ति प्रदान करती हो। मैं अत्यन्त

विस्मयमें पड़ गयी हूँ। इस अवसरपर केवल तुम्हीं मेरे लिये शरण्य हो। माता ! मैं इस शोकके अगाध समुद्रमें गोते खा रही हूँ। मुझे मेरे पतिदेवको दिखानेकी कृपा करो। कारण, ये देवतालोग कपट-जाल फैलाये हुए हैं। मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। मैं स्वयं किसको पति स्वीकार करूँ। सर्वज्ञे ! तुम मेरे पतिदेवका साक्षात्कार करा दो। मैं सतीत्व-व्रतका पूर्णतया पालन करती हूँ—यह बात तुमसे अविदित नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार जब सुकन्याने त्रिपुरसुन्दरी भगवती जगदम्बाकी स्तुति की, तब देवीने शीघ्र सुख पहुँचानेवाला ज्ञान उसके हृदयमें उत्पन्न कर दिया, जिससे वह साध्वी सुकन्या समान रूपवाले उन पुरुषोंमें अपने पतिको मन-ही-मन निश्चित करनेमें सफलता पा गयी। अब उसने उन तीनों पुरुषोंपर दृष्टि दौड़ायी और उनमें जो अपने वास्तविक पति च्यवनजी थे, उन्हें चुन लिया। यों सुकन्याद्वारा पतिरूपसे च्यवन मुनिके स्वीकृत हो जानेपर अश्विनीकुमार संतुष्ट हो गये। सुकन्याके सतीधर्मको देखकर उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। वे उसे वर देने लगे। कारण, भगवती जगदम्बाकी कृपासे वे प्रधान देवता अश्विनीकुमार परम प्रसन्न थे। च्यवन मुनिसे आज्ञा लेकर उन दोनों कुमारोंने तुरंत वहाँसे चलनेकी तैयारी कर ली। सुन्दर रूप, नेत्र और युवती भार्या पा जानेके कारण च्यवन मुनि बड़े ही हर्षित हुए। उन महान् तेजस्वी मुनिने अश्विनीकुमारोंसे यह वचन कहा—'देववरो ! आपने मेरा बड़ा ही उपकार किया है। क्या कहूँ, इस संसारमें सर्वोत्तम सुन्दरी भार्या पाकर भी मैं कोई सुख नहीं पा रहा था; वरं मुझे एक-पर-एक दुःख ही झेलने पड़ते थे; क्योंकि मेरे आँख थी नहीं। मैं अत्यन्त बूढ़ा हो गया था। मन्दभागी बनकर निर्जन वनमें पड़ा था। ऐसी स्थितिमें आपलोगोंने मुझे नेत्र, युवावस्था और अद्भुत रूप प्रदान किया है। अतः मैं भी आपका कुछ उपकार करनेके लिये प्रार्थना कर रहा हूँ; क्योंकि उपकारी पुरुषके प्रति जो किसी प्रकारका उपकार नहीं करता, उस मानवको धिक्कार है। संसारमें देवता भी ऋणी हो सकते हैं—मानवकी तो बात ही क्या है। अतएव मेरी हार्दिक इच्छा है कि आपलोगोंको कोई अभीष्ट पदार्थ प्रदान करूँ। देवेश्वरो ! आपने मुझे नूतन शरीर प्रदान किया है, इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये माँगनेपर मैं आपलोगोंको वह पदार्थ भी दे सकूँगा, जो देवताओं तथा दानवोंके लिये भी अलभ्य है। आपके इस उत्तम कार्यसे मैं बड़ा ही प्रसन्न हूँ। आप अपना मनोरथ व्यक्त करें।'

च्यवन मुनिके वचन सुनकर अश्विनीकुमारोंने परस्पर परामर्श किया। तत्पश्चात् सुकन्यासहित बैठे हुए उन मुनिश्रेष्ठसे वे कहने लगे—'मुनिवर ! पिताजीकी कृपासे हमारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हैं। परंतु देवताओंकी पंक्तिमें बैठकर सोमपान करनेकी हमारी अभिलाषा अभी पूरी नहीं हुई है। जब यज्ञमें सोमरस पीनेका अवसर आता है, तब देवता हमें वैद्य मानकर निषिद्ध कर देते हैं। सुमेरु पर्वतपर ब्रह्माजीका यज्ञ हो रहा था। इन्द्रकी प्रेरणासे हमें वहाँ सोमरस नहीं मिल सका। अतएव धर्मके जाननेवाले तपस्वीजी ! आपमें कोई शक्ति हो तो हमारी यह अभिलाषा पूर्ण कर दीजिये। हमें सोमरस पीनेका अधिकार प्राप्त हो जाय।

ब्रह्मन् ! हमारी इस सुसम्मत इच्छापर विचार करके आपको इस कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। सोमरस पीनेकी प्यास बुझना हमारे लिये बड़ा ही कठिन हो गया है। आप चाहेंगे तो वह प्यास शान्त हो जायगी।'

अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर च्यवन मुनिने बड़े मधुर शब्दोंमें उनसे कहा—'मैं अत्यन्त वृद्ध हो गया था। आपलोगोंने मुझे रूपवान् और नवयुवक बना दिया है। आपकी कृपासे गुणवती भार्या भी मेरे पास है। अतएव मैं प्रसन्नतापूर्वक आप दोनोंको सोमरस पीनेका अधिकारी अवश्य बना दूँगा। इन्द्र छल लिये जायँगे। मेरी यह बात बिलकुल सत्य है। अभी अमित तेजस्वी राजा शर्यातिके यहाँ यज्ञ हो रहा है।' फिर तो च्यवन मुनिकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार आनन्दपूर्वक स्वर्ग सिधारे। च्यवनजी भी सुकन्याको लेकर अपने आश्रमपर चले गये। (अध्याय ४-५)

☆

## च्यवनको नेत्रयुक्त तरुण देखकर शर्यातिका संदेह; संदेहभङ्ग; शर्यातिके द्वारा यज्ञानुष्ठान और उसमें च्यवनकी कृपासे अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकार प्राप्त होना; राजा रेवतका ब्रह्मलोकमें जाना

राजा जनमेजयने पूछा—महात्मा च्यवन मुनिने दिव्य चिकित्सक अश्विनीकुमारोंको किस प्रकार सोमरस पीनेका अधिकारी बनाया? उनकी बात कैसे सत्य सिद्ध हुई ? देवराज इन्द्रके बलके सामने मानवी शक्तिकी क्या तुलना की जा सकती है। इन्द्रने जिन्हें सोमरस पीनेका अनधिकारी सिद्ध कर दिया था, उन वैद्योंको फिर अधिकारी बनानेमें च्यवन मुनि कैसे सफलता पा सके? धर्ममें आस्था रखनेवाले प्रभो ! इस आश्चर्यपूर्ण विषयको विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—महाराज ! राजा शर्यातिने जब भूमण्डलपर यज्ञ किया, तब च्यवन मुनि उसमें पधारे थे। इस विषयकी पूरी कथा कहता हूँ—सुनो। च्यवन मुनि देवताके समान तेजस्वी थे। सुन्दरी सुकन्याको पाकर उनका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा था। उन्होंने सुकन्यापर इस प्रकार अधिकार जमा लिया, मानो कोई देवता देवकन्याको प्राप्त कर रहा हो। एक समयकी बात है—महाराज शर्यातिकी पत्नी अपनी कन्याके विषयमें अत्यन्त चिन्तातुर हो उठी। काँपती और रोती हुई वह अपने पतिसे बोली—'राजन् ! आपने एक अंधे मुनिको पुत्री सौंप दी थी। पता नहीं, वनमें वह जीवित है अथवा उसके प्राण निकल गये। आपको सम्यक् प्रकारसे उसे देखना चाहिये। नाथ ! आप एक बार सुकन्याको देखनेके लिये आदरपूर्वक च्यवन मुनिके आश्रमपर जाइये। देखिये, वैसे अयोग्य पतिको पाकर वह कैसे अपना जीवन बिता रही है। राजर्षे ! पुत्रीके दुःखसे मेरे हृदयमें आग धधक रही है। तपसे दुर्बल शरीरवाली मेरी उस विशालनयनी कन्याको एक बार मेरे पास लानेकी कृपा कीजिये। नेत्रहीन पति पाकर उसे अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते होंगे। वह वृक्षोंकी छाल पहनती होगी। मैं अपनी उस क्षीणकाय पुत्रीको तुरंत देखना चाहती हूँ।'

राजा शर्यातिने कहा—विशालाक्षी !

वरारोहे ! मैं अभी प्रिय पुत्री सुकन्याको देखनेके लिये उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले मुनिके पास आदरपूर्वक जा रहा हूँ।

व्यासजी कहते हैं—शोकसे अत्यन्त घबरायी हुई अपनी पत्नीसे इस प्रकार कहकर राजा शर्याति रानीको साथ लेकर तुरंत रथपर बैठे और मुनिके आश्रमकी ओर चल पड़े। आश्रमके निकट पहुँचनेपर उन्हें एक नवयुवक मुनि दिखायी पड़े। जान पड़ता था, मानो देवकुमार हों। देवताके आकारमें च्यवन मुनिको देखकर महाराज शर्याति बड़े विस्मयमें पड़ गये। उन्होंने सोचा—'मेरी पुत्रीने यह लोकमें निन्दा करानेवाला कोई नीच कर्म तो नहीं कर डाला है। च्यवन मुनि बूढ़े थे। सम्भव है वे मर गये हों और इसने कोई दूसरा पति चुन लिया हो। कोई कितना भी शान्तचित्त अथवा निर्धन क्यों न हो, किंतु कामकी पीड़ासे कुत्सित कर्म कर ही बैठता है। यह कामदेव बड़ा ही दुःसह है। युवा अवस्थामें तो इसका वेग और भी बढ़ जाता है। पवित्र मनुवंशमें इसने यह अत्यन्त अमिट कलङ्क लगा दिया। जिसकी ऐसी नीच कर्म करनेवाली पुत्री हो, उस पुरुषको धिक्कार है। मेरे द्वारा भी स्वार्थवश ही यह अनुचित कर्म बन गया था; क्योंकि मैंने समझ-बूझकर भी नेत्रहीन और वृद्ध मुनिको पुत्री सौंप दी। पिताको चाहिये कि भलीभाँति सोच-समझकर किसी योग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह करे। मैंने जैसा कर्म किया, वैसा ही फल मेरे सामने आ गया। इस समय मैं यदि इस नीच कर्म करनेवाली दुश्चरित्रा कन्याको मार डालता हूँ तो कभी न मिटनेवाली स्त्री-हत्याका दोष लगेगा। विशेषतः यह अपनी ही तो पुत्री भी है। इस परम प्रसिद्ध मनुवंशको मैंने कलङ्कित कर दिया। जगत्में मेरी घोर निन्दा होगी। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता ?'

इस प्रकार राजा शर्याति चिन्ताके अगाध सागरमें गोते खा रहे थे। संयोगवश सुकन्याकी उनपर दृष्टि पड़ गयी। उसने देखा, पिताजी अत्यन्त व्याकुल हैं। फिर तो, महाराज शर्यातिकी यह स्थिति देखकर सुकन्या तुरंत उनके पास आ गयी और आदरपूर्वक उनसे पूछने लगी—'पिताजी ! मालूम होता है, कमलके समान नेत्रवाले इन नवयुवक मुनिको देखकर आपके मनमें विचार उत्पन्न हो रहा है ? चिन्तासे आपकी आँखें घबरायी हुई जान पड़ती हैं। मनुवंशको सुशोभित करनेवाले राजेन्द्र ! आप श्रेष्ठ पुरुष हैं। आइये—मेरे इन पतिदेवको प्रणाम कीजिये। इस समय विषाद करना बिलकुल अवाञ्छनीय है।'

व्यासजी कहते हैं—अपनी पुत्री सुकन्याकी यह बात सुनकर राजा शर्याति, जो दुःख तथा क्रोधसे संतप्त हो रहे थे, सामने उपस्थित सुकन्याके प्रति बोले।

राजाने कहा—'बेटी ! वे परम तपस्वी बूढ़े च्यवन मुनि कहाँ गये ? यह मदोन्मत्त नवयुवक पुरुष कौन है ? इस विषयमें मुझे महान् संदेह हो रहा है। दुराचारमें रत रहनेवाली पापिनी ! तूने क्या मुनिको मार डाला है ? कुलनाशिनी ! क्या कामके वशीभूत होकर तू इस नवयुवक पुरुषकी दासी बन गयी है ? आश्रममें बैठे हुए इस पुरुषको देखना ही मेरे लिये विशेष चिन्ताका कारण बन गया है। तूने यह क्या नीच कर्म कर डाला ? दुश्चरित्र स्त्रियाँ ही ऐसा व्यवहार किया करती हैं। दुराचारमें प्रेम रखने-

वाली कन्ये ! इस समय तेरे ही निमित्त मैं शोक-समुद्रमें डूब रहा हूँ। कारण, तेरे पास यह एक नवयुवक पुरुष दिखायी दे रहा है और वृद्ध मुनि कहीं दीखते नहीं !

अपने पिता शर्यातिकी बात सुनकर सुकन्याका मुँह मुसकानसे भर गया। पिताजीको साथ लेकर वह तुरंत च्यवन मुनिके पास पहुँची और आदरपूर्वक राजासे कहने लगी—'पिताजी ! आपके जामाता वे च्यवन मुनि यही हैं। अश्विनीकुमारोंकी कृपासे इनकी ऐसी कमनीय कान्ति बन गयी है। उन्होंने ही इन्हें कमल-जैसे नेत्र प्रदान किये हैं। दोनों अश्विनी-कुमार स्वयं मेरे इस आश्रमपर पधारे थे। उन्होंने ही दयालुतावश इन मुनिवरको ऐसा बना दिया है। पिताजी ! मैं आपकी पुत्री हूँ। राजन् ! पतिदेवका रूप देखकर इस विषयमें मोहवश आपके मनमें जैसा विचार उत्पन्न हो रहा है, वैसा घृणित कर्म मेरे द्वारा होना सर्वथा असम्भव है। राजन् ! भृगुवंशको सुशोभित करनेवाले इन च्यवन मुनिको आप प्रणाम कीजिये। पिताजी ! आप इनसे सब बातें पूछ लीजिये। ये सारी बातें आपको विस्तारपूर्वक बतला देंगे। तब आपका संदेह दूर हो जायगा।'

पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर राजा शर्याति तुरंत मुनिके पास गये। उनके चरणोंपर मस्तक झुकाया। तदनन्तर उन्होंने आदरपूर्वक पूछा।

राजाने कहा—भृगुकुलभूषण मुने ! आप शीघ्र ही अपना समस्त वृत्तान्त बतानेकी कृपा करें। आपकी आँखें कैसे ठीक हुईं और कैसे आपका बुढ़ापा चला गया ? ब्रह्मन् ! आपके इस अत्यन्त सुन्दर रूपको देखकर मुझे महान् संदेह उत्पन्न हो रहा है। आप विस्तारके साथ इस रहस्यका उद्घाटन कीजिये, जिसे सुनकर मैं सुखी हो सकूँ।

च्यवनजी बोले—राजेन्द्र ! अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं। वे यहाँ पधारे थे। उन्होंने ही कृपापूर्वक मेरा यह उपकार किया है। उस उपकारके बदलेमें मैंने उन्हें वर दिया है—'आप दोनों सज्जनोंको राजाके यज्ञमें मैं सोमरस पीनेका अधिकारी बना दूँगा।' महाराज ! इस प्रकार देववैद्योंके द्वारा मुझे तरुण अवस्था और ये विमल नेत्र प्राप्त हुए हैं। आप शान्तचित्त होकर इस पवित्र आसनपर विराजिये।

च्यवन मुनिके इस प्रकार कहनेपर राजा शर्याति सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये। पास ही रानी भी बैठ गयीं। महात्मा च्यवनजीसे

कल्याणमयी बातें होने लगीं। उन्होंने विस्तारसे सारी घटनाएँ आद्योपान्त राजाको सुना दीं। तत्पश्चात् मुनिवर च्यवनने सान्त्वना देते हुए राजा शर्यातिसे कहा, 'महाराज ! मैं आपके यहाँ यज्ञ कराऊँगा, आप सामग्री संग्रह कीजिये। 'मेरे प्रयाससे आपलोग सोमरसका पान कर सकेंगे।' इस प्रकारकी प्रतिज्ञा मैं अश्विनीकुमारोंके प्रति

कर चुका हूँ। नृपश्रेष्ठ ! आपके विशाल यज्ञमें ही मेरी वह प्रतिज्ञा पूरी होगी। राजेन्द्र ! आपके सोममख यज्ञमें यदि इन्द्र कुपित होंगे तो मैं उन्हें अपने तपके तेजसे शान्त कर लूँगा। फिर अश्विनीकुमार सुगमतापूर्वक सोमरस पी सकेंगे।'

महाराज ! उस समय च्यवन मुनिका यह कथन सुनकर राजा शर्यातिका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। वे मुनिके सत्कारमें संलग्न हो गये। च्यवनजीका सम्मान करके रानीके साथ परम संतुष्ट होकर वे अपने नगरको प्रस्थित हो गये। मुनिकी बात मिथ्या नहीं हो सकती—यही चर्चा रास्तेभर होती रही। तदनन्तर, सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न राजा शर्यातिने शुभ मुहूर्तमें एक उत्तम यज्ञशालाका निर्माण कराया। वसिष्ठ प्रभृति प्रधान मुनिगण उस यज्ञमें निमन्त्रित हुए। इस प्रकार सारी व्यवस्था सम्पन्न हो जानेपर भृगुवंशी च्यवन मुनिने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराना आरम्भ किया। उस महायज्ञमें इन्द्र आदि सभी देवता आये थे। सोमरस पीनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंका भी वहाँ आगमन हुआ था। अश्विनीकुमारोंको देखकर वहाँ उपस्थित इन्द्रका मन सशङ्कित हो उठा। वे समस्त देवताओंसे पूछने लगे—'ये अश्विनीकुमार यहाँ क्यों आये हैं ? ये चिकित्साका काम करते हैं; अतः सोमरस पीनेका तो इन्हें अधिकार नहीं है। इनको यहाँ किसने बुलाया है ?'

राजा शर्यातिके उस महान् यज्ञमें इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर किसी देवताने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसके बाद जब मुनिवर च्यवनजी अश्विनीकुमारोंको सोमरस देने लगे, तब इन्द्रने उन्हें रोककर कहा—'इन्हें सोमरस मत दो।' तब च्यवन मुनिने देवराज इन्द्रसे कहा—'शचीपते ! ये सूर्यकुमार सोमरसके अनधिकारी कैसे हैं, आप इस बातको सत्यतापूर्वक सिद्ध कीजिये। ये वर्णसंकर नहीं हैं। सूर्यकी धर्मपत्नीके उदरसे इनका जन्म हुआ है। देवेन्द्र ! इन प्रधान वैद्योंमें ऐसा कौन-सा दोष है, जिसके कारण आप इन्हें सोमरस पीनेके लिये अयोग्य बता रहे हैं। शक्र ! इस यज्ञमें पधारे हुए ये सम्पूर्ण देवता ही इस बातका निर्णय कर दें। मैं इन अश्विनीकुमारोंको सोमरस पिलाकर रहूँगा। कारण, मेरे द्वारा ये इसके अधिकारी बनाये जा चुके हैं। मघवन् ! मेरी ही प्रेरणासे ये नरेश यज्ञ कर रहे हैं। विभो ! मैं सत्य कहता हूँ, अश्विनीकुमारोंको सोमरस पान करनेका अवसर प्राप्त हो जाय—इसीलिये मेरा यह समस्त प्रयास है। नयी तरुण अवस्था देकर इन्होंने मेरा महान् उपकार किया है। शक्र ! इस उपकारके बदलेमें उपकार करना मेरा परम कर्तव्य है।

इन्द्रने कहा—मुने ! चिकित्साका व्यवसाय करनेके कारण देवताओंने इन अश्विनीकुमारोंकी घोर निन्दा की है। ये दोनों सोमरसके अधिकारी नहीं हैं। अतः इनके लिये आप भाग बचाकर मत रखिये।

च्यवनजी कहते हैं—वृत्रघ्न ! शान्त रहो। इस समय तुम्हारा रोष करना बिलकुल व्यर्थ है; क्योंकि ये देवपुत्र अश्विनीकुमार सोमरसके अनधिकारी समझे जायँ—इसमें मुझे कोई भी कारण नहीं दीखता।

राजन् ! इस प्रकार इन्द्र और च्यवन मुनिमें विवाद छिड़ जानेपर उपस्थित कोई भी देवता मुनिसे कुछ नहीं कह सके। फिर तो तपस्याके प्रभावसे अत्यन्त तेजस्वी च्यवनने सोमरसका भाग लेकर अश्विनीकुमारोंको पिला दिया।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! च्यवन मुनिने जब अश्विनीकुमारोंको सोमरस दे दिया, तब इन्द्रके क्रोधकी सीमा न रही। अपना पराक्रम दिखाते हुए उन्होंने मुनिसे कहा—'ब्रह्मबन्धो ! ऐसी मर्यादा स्थापित कर देना तुम्हारे लिये सर्वथा अनुचित है। मेरा विरोध करना ही तुम्हें अभीष्ट हो तो मैं तुम्हें एक दूसरा विश्वरूप समझकर उसीकी भाँति तुम्हारा भी वध कर डालूँगा।'

च्यवनजीने कहा—मघवन् ! जिन्होंने मुझे एक-दूसरे कामदेवके समान कमनीय बना दिया है, उन रूपकी सम्पत्तिसे अनुपम शोभा पानेवाले महात्मा अश्विनीकुमारोंका आप अपमान मत करें। देवेन्द्र ! आपके सिवा ये अन्य देवतालोग क्यों सोमरस पाते हैं ? आपको ध्यान रखना चाहिये कि ये परम तपस्वी अश्विनीकुमार भी देवता हैं।

इन्द्रने कहा—मन्दात्मन् ! चिकित्सा करनेवाले व्यक्ति किसी प्रकार भी यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी नहीं माने जाते हैं। तुम हठ करके इन्हें सोमरस देना ही चाहते हो तो मैं अभी तुम्हारा सिर धड़से अलग कर दूँगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! च्यवन मुनिने इन्द्रकी बातका अनादर करके उन्हें उपालम्भ देते हुए-से अश्विनीकुमारोंको यज्ञका भाग दे दिया। अश्विनीकुमार सोमरस पीनेके इच्छुक थे ही, उन्होंने जब पात्रमें ले लिया, तब इन्द्रने रोषमें भरकर च्यवन मुनिसे कहा—'मुने ! तुम इन्हें सोमरस दे डालोगे तो मैं स्वयं वैसे ही तुमपर वज्र-प्रहार करूँगा, जैसे विश्वरूपपर करके उसे मार डाला था।'

इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर तपोऽभिमानी च्यवनजी कुपित हो उठे। उन्होंने विधिपूर्वक सोमरस अश्विनीकुमारोंको दे ही डाला। तब क्रोधके आवेशमें आकर इन्द्रने भी करोड़ों सूर्योंके समान चमकते हुए अपने अस्त्र वज्रको सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही च्यवनजीपर चला दिया। इन्द्रके तेजकी सीमा नहीं थी। फिर भी उनके चलाये हुए वज्रको देखकर च्यवनजीने अपने तपके प्रभावसे उसे स्तम्भित कर दिया। साथ ही उन महातेजा मुनिवरने कृत्या उत्पन्न करके उसके द्वारा इन्द्रको मरवा डालनेके विचारसे अग्निमें मन्त्रपूर्वक आहुति देना आरम्भ कर दिया। उनकी तपस्याके प्रभावसे आहुति पड़ते ही कृत्या उत्पन्न हो गयी। उसका भयंकर प्रबल पुरुषके रूपमें आविर्भाव हुआ था। उस महान् दैत्यके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल थी। उसका नाम 'मद' था। बड़ी डरावनी सूरत थी। संसारके सभी प्राणी उसे देखकर डर गये। पर्वतके समान उसका शरीर था। दाँत बड़े तीखे थे। उसके चार दाँत तो बहुत ही लम्बे थे। इन चारोंके अतिरिक्त अन्य जो दाँत थे, उनकी लम्बाई भी बहुत अधिक थी। उसकी दूरतक फैली हुई भयंकर भुजाएँ पर्वतका सामना कर रही थीं। अत्यन्त भयभीत करनेवाली उसकी जीभ मानो आकाश और पातालको चाट रही थी। उसकी असीम भयावनी एवं कठोर गर्दन जान पड़ती थी, मानो पर्वतकी चोटी हो। नख बाघके नखकी तुलना कर रहे थे। केशोंकी भयंकरताका पार न था। उसका शरीर काजलके समान काला था। मुखकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। अत्यन्त भय उपजानेवाले दोनों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो दावानल हैं। उसका एक ओठ पृथ्वीपर और दूसरा आकाशपर पहुँचा हुआ था। इस प्रकार विशाल

शरीरवाले उस मद नामक दानवकी उत्पत्ति हो गयी। उसे देखकर सम्पूर्ण देवता डर गये। इन्द्रके मनमें भी आतङ्क छा गया। अब युद्ध करनेकी बात मनसे जाती रही। वह दैत्य वज्रको मुखमें लेकर आकाशको व्याप्त करते हुए सामने खड़ा था। जान पड़ता था, मानो क्रूर दृष्टिवाला यह दानव त्रिलोकीको खा जायगा। निगल जानेके विचारसे कुपित हो वह इन्द्रके ऊपर टूट पड़ा। हा, अब हम मारे गये—यों कहकर सम्पूर्ण देवता जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। इन्द्र उस दैत्यपर वज्र चलाना चाहते थे; परंतु उनकी भुजाएँ कुण्ठित थीं। अतः वे उसे मारनेमें असमर्थ रहे। अब वज्रधारी देवराजने कालकी तुलना करनेवाले उस दानवको देखकर सामयिक समस्या सुलझानेमें कुशल अपने आचार्य बृहस्पतिका मन-ही-मन स्मरण किया। स्मरण करते ही उदार-बुद्धि बृहस्पतिजी तुरंत वहाँ आ गये। देखा, महान् विपत्ति-जैसी दयनीय दशामें इन्द्र उलझे हुए हैं। कर्तव्यके विषयमें कुछ समयतक मन-ही-मन विचार करके उन्होंने शचीपति इन्द्रसे कहा—'वासव! 'मद' नामधारी यह महान् बलशाली दानव मन्त्रोंसे अथवा वज्रसे मार डाला जाय—यह असम्भव है; क्योंकि च्यवन ऋषिकी तपस्याका प्रतीकभूत यह भयानक दैत्य यज्ञकी वेदीसे उत्पन्न हुआ है। देवेश! यह शत्रु मेरे, तुम्हारे तथा देवताओंके रोकनेसे नहीं रुक सकता। अतः तुम महात्मा च्यवनजीकी शरणमें जाओ। वे अवश्य ही अपने द्वारा उत्पन्न की हुई कृत्याका शमन कर देंगे। भगवती जगदम्बाके भक्तके रोषको विफल करनेमें कहीं कोई भी समर्थ नहीं हो सकता।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बृहस्पतिके कहनेपर भयभीत हुए इन्द्र च्यवन मुनिके पास गये। नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर! क्षमा कीजिये और इस प्रचण्ड असुरको शमन करनेकी कृपा कीजिये। सर्वज्ञ! आप प्रसन्न हो जाइये। मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये तैयार हूँ। भार्गव! आजसे ये अश्विनीकुमार सोमरस-पानके अधिकारी मान लिये जायँगे। ब्राह्मणदेवता! आप प्रसन्न हो जायँ। मेरी बात सर्वथा सत्य है। तपोधन! आपने अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकारी बनानेके लिये जो परिश्रम किया है, वह सफल हो गया। धर्मज्ञ! मैं जानता हूँ, आप कोई निष्प्रयोजन कार्य नहीं करेंगे। अब ये अश्विनीकुमार आपकी कृपासे यज्ञमें निरन्तर सोमरस पान करेंगे। साथ ही, राजा शर्यातिकी कीर्ति भी जगत्में फैल जायगी। मुनिवर! मेरे द्वारा जो यह कार्य हुआ है, इसमें आपके प्रचण्ड पराक्रमकी परीक्षा लेना ही मेरा उद्देश्य था, ऐसा समझ लेना चाहिये। ब्रह्मन्! आप मेरे हितचिन्तक होकर इस उन्नतिशील 'मद' नामक असुरको तुरंत छिपा लीजिये। सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण करना आपके ऊपर निर्भर है।'

इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परम अर्थके ज्ञाता च्यवन मुनिने विरोधसे उत्पन्न हुए प्रचण्ड क्रोधको शान्त कर दिया। साथ ही घबराये हुए देवराजको आश्वासन देकर स्त्री, मदिरापान, जूआ और शिकार प्रभृति स्थानोंमें मदके रहनेकी व्यवस्था कर दी। उस समय इन्द्र भयके कारण चकित-से हो गये थे। यों इन्द्रको आश्वासन देकर सम्पूर्ण देवताओंको कार्यमें नियुक्त करके च्यवन मुनिने राजा शर्यातिका यज्ञ

पूरा किया। यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर उसमें जो

संस्कृत सोमरस था, उसे महान् धर्मात्मा श्रीच्यवनजीने पहले महात्मा इन्द्रको पिलाया। इसके बाद अश्विनीकुमारोंको पीनेकी आज्ञा दी।

राजन्! इस प्रकार च्यवन मुनिकी तपस्याके प्रभावसे सूर्यनन्दन महानुभाव अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकार सम्यक्-रूपसे प्राप्त हो गया। यज्ञस्तम्भसे शोभा पानेवाला वह सरोवर भी तबसे विख्यात हो गया। मुनिके आश्रमकी प्रसिद्धि भूमण्डलपर सर्वत्र फैल गयी। इस कार्यसे राजा शर्याति भी बहुत प्रसन्न हुए। यज्ञ समाप्त होनेके पश्चात् उन्होंने अपने मन्त्रियोंके साथ नगरकी यात्रा की। उन प्रतापी धर्मज्ञ नरेशने राजधानीमें जाकर अपना कार्यभार सँभाल लिया। उनके पुत्र आनर्त हुए और आनर्तके रेवत। शत्रुओंको परास्त करनेवाले रेवतने बीच समुद्रमें कुशस्थली नामक नगरी बसायी और वहीं रहकर वे आनर्त देशसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका उपभोग करने लगे। उनके सौ पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी था। उनके रेवती नामक एक पुत्री हुई। वह बड़ी ही सुन्दरी और सम्पूर्ण शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न थी। जब वह विवाहके योग्य हो गयी, तब महाराज रेवत किसी कुलीन राजकुमारके विषयमें विचार करने लगे। उस समय राजा रेवत आनर्त देशमें रैवत नामक पर्वतपर रहकर राज्य कर रहे थे। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'यह कन्या किसे देना उचित होगा। अच्छा तो यह होता कि सर्वज्ञानी देवपूज्य ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हींसे पूछा जाता।'

इस प्रकार विचार करके राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर पितामह ब्रह्माजीसे पूछनेके लिये तुरंत ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे। उस समय ब्रह्मलोकमें देवता, यज्ञ, छन्द, पर्वत, समुद्र और नदियाँ दिव्य रूप धारण करके विराजमान थे। ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग और चारण—सब-के-सब हाथ जोड़कर ब्रह्माजीकी स्तुति कर रहे थे। (अध्याय ६-७)

☆

## राजा रेवतका ब्रह्माजीके पास जाना और उनकी सम्मतिसे रेवती-बलरामका विवाह, इक्ष्वाकुवंशका तथा यौवनाश्वकी दक्षिण कुक्षिसे मान्धाताके जन्मका वर्णन

राजा जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मेरे मनमें महान् संदेह हो रहा है कि स्वयं राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको लेकर ब्रह्मलोकमें कैसे चले गये? क्योंकि मैं बहुत बार सुन चुका हूँ कि ब्रह्मज्ञानी शान्तस्वभाववाले ब्राह्मण ही ब्रह्म-लोकतक पहुँच पाते हैं। सत्यलोक भूलोकसे

बहुत दूर और दुष्प्राप्य है। राजा रेवत अपनी पुत्री रेवतीके साथ वहाँ कैसे जा सके? सम्पूर्ण शास्त्रोंका यह निर्णय है कि मृत्युके पश्चात् ही प्राणी स्वर्गमें जाता है। मानव-शरीरसे ब्रह्म-लोकमें कोई कैसे जा सकता है? और यदि वहाँ चला भी गया तो फिर वहाँसे लौटकर मनुष्यलोकमें आ जाय—यह कैसे सम्भव है?

व्यासजी बोले—राजन्! दिव्य सुमेरु पर्वतके शिखरपर इन्द्रलोक, वह्निलोक, संयमनीपुरी, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठ आदि लोक विद्यमान हैं। वैकुण्ठको ही वैष्णव-पद कहते हैं। जैसे धनुष धारण करनेवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन इन्द्रके लोकमें गये थे और वहाँ पाँच वर्षतक ठहरे रहे, इस मानवशरीरसे ही इन्द्रके पास उनका जाना हुआ था, ऐसे ही ककुत्स्थ प्रभृति दूसरे बहुत-से नरेश भी स्वर्गलोकमें पहुँच चुके हैं। अतएव राजेन्द्र! इस विषयमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं करना चाहिये। पुण्यात्मा और तपस्वी समर्थ पुरुष प्रायः सभी लोकोंमें आ-जा सकते हैं। मनुजेन्द्र! जैसे पुण्य और सद्भावको ही ब्रह्मादि लोकोंमें जानेकी योग्यता प्राप्त होनेमें कारण माना जाता है, वैसे ही यज्ञशील पवित्रात्मा पुरुष यज्ञके प्रभावसे वहाँ जानेके अधिकारी हो जाते हैं।

राजा जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! महाराज रेवतने अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली कन्या रेवतीको साथ लेकर ब्रह्मलोकमें जानेके पश्चात् क्या किया? ब्रह्माजीने उन्हें क्या आज्ञा दी? फिर उन नरेशने अपनी पुत्रीका विवाह किसके साथ किया? भगवन्! अब आप इन सब प्रसंगोंको विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सुनो। महाराज रेवत अपनी पुत्रीके वरके विषयमें पूछनेके लिये जिस समय ब्रह्मलोकमें पहुँचे, उस समय वहाँ गन्धर्वोंका संगीत हो रहा था। राजा कुछ देरतक वहीं ठहर गये। उस संगीतने उन्हें पूर्ण तृप्त और आह्लादित कर दिया। गान समाप्त होनेपर सभाभवनमें विराजमान परम प्रभु ब्रह्माजीके समक्ष पहुँचकर उन नरेशने उन्हें प्रणाम किया और कन्या रेवतीको उन्हें दिखाकर अपना अभिप्राय उनके सामने प्रकट कर दिया।

राजा रेवतने कहा—देवेश! यह कन्या मेरी पुत्री है। आप इसके योग्य वर बतानेकी कृपा कीजिये। ब्रह्मन्! मैं किसके साथ इसका विवाह करूँ, यही पूछनेके लिये आपके पास आया हूँ। मैंने बहुत-से उत्तम कुलके राजकुमारोंको देखा है, परंतु मेरे चञ्चल मनके लिये कोई भी कुमार अनुकूल नहीं पड़ा। अतएव देवेश्वर! इस विषयमें आपसे सम्मति प्राप्त करनेके लिये मैं शरणमें आया हूँ। सर्वज्ञ प्रभो! आप किसी ऐसे सुयोग्य राजकुमारको बतलाइये, जो कुलीन, बलवान्, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, दानी और धर्मात्मा हो।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! राजा रेवतकी बात सुनकर संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी मुसकुराये। ब्रह्मलोकके थोड़ेसे समयमें ही भूमण्डलका बहुत लम्बा काल बीत चुका था। अतएव ब्रह्माजी राजासे कहने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! तुम्हारे हृदयमें जो-जो राजकुमार वरके रूपमें उपस्थित थे, वे सभी अब कालके गालमें चले गये। उनके पिता, पौत्र एवं बन्धु-बान्धव भी अब कोई बचे नहीं हैं; क्योंकि इस समय वहाँ सत्ताईसवें युगका द्वापर चल रहा है। तुम्हारे सभी वंशज कालके

कलेवा हो गये। अब वह पुरी भी नहीं है। दैत्योंने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इस समय वहाँ चन्द्रवंशी राजा राज्य कर रहे हैं। वह पुरी अब मथुरा कहलाती है। राजा उग्रसेन वहाँके शासक हैं। ययातिके वंशमें उनका जन्म हुआ है। पूरा मथुरा-मण्डल उनके अधीन था, परंतु उन्हीं नरेशका एक पुत्र कंस नामसे विख्यात हुआ। देवताओंसे द्रोह करनेवाला वह महाबली पुत्र दैत्यके अंशसे उत्पन्न था। उसने अपने पिता उग्रसेनको कारागारमें डालकर राज्यका प्रबन्ध स्वयं अपने हाथमें ले लिया था। राजाओंमें वह सबसे बढ़-चढ़कर अहंकारी था। तब पृथ्वी अत्यन्त असह्य भारसे घबराकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। श्रेष्ठ देवताओंका कथन है कि जब पृथ्वी दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रान्त हो जाती है तब भगवान् प्रकट होते हैं। अतएव उस समय कमलके समान नेत्रसे शोभा पानेवाले भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ। वे अवतरित होकर भगवान् 'वासुदेव' के नामसे प्रसिद्ध हुए। राजन्! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे उस दुराचारी कंसका निधन हुआ। उन भगवान्‌की आज्ञासे दुष्ट पुत्रके परलोकवासी हो जानेपर राजा उग्रसेन पुनः राज्यपर प्रतिष्ठित हुए।

कंसके श्वशुरका नाम जरासंध था। वह पापात्मा एवं महान् पराक्रमी था। वह कुपित हो मथुरामें आकर उल्लासपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा। उस समय उस महान् पराक्रमी राक्षसको भगवान्‌के साथ युद्धमें असफल हो जाना पड़ा। तब उसने सेनासहित कालयवनको भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा। यवनोंका अध्यक्ष कालयवन महान् शूरवीर है, सेना लेकर वह आ रहा है—यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने मथुराको छोड़ दिया और वे द्वारकामें चले गये। उस समय वह पुरी नष्टप्राय हो गयी थी। भगवान्‌ने शिल्पियोंद्वारा उसका जीर्णोद्धार कराया। उसके चारों ओर दुर्ग बन गये हैं। प्रतापी श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनको द्वारकाका अध्यक्ष बना दिया है। भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार वे वहाँका प्रबन्ध करते हैं। यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने सम्पूर्ण यादवोंके लिये द्वारकामें व्यवस्था कर दी है। इस समय अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ वे भगवान् वहीं विराजमान हैं। उनके बड़े भाईका नाम 'बलराम' है। हल और मूसलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले बलरामजी महान् शूरवीर और शेषके अवतार माने जाते हैं। इस समय वे ही तुम्हारी इस कन्याके लिये समुचित सुयोग्य वर हैं। उन्हींको तुम अपनी कमलनयनी कन्या रेवती अर्पण कर दो। वैवाहिक विधिके अनुसार बलभद्रजीके साथ इस कन्याका विवाह होना चाहिये। राजेन्द्र! इसका कन्यादान होनेके पश्चात् तप करनेके लिये तुम बदरी-आश्रममें चले जाओ। कारण, तपसे मनुष्योंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उनका अन्तःकरण पवित्र हो जाता है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! पद्मयोनि ब्रह्माजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर राजा रेवत उसी क्षण अपनी कन्या रेवतीके साथ द्वारका चले गये। जाकर शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रीका विवाह बलदेवजीके साथ कर दिया। तबतक बहुत समय व्यतीत हो चुका था। तदनन्तर गङ्गाके तटपर रहकर अत्यन्त कठिन तपस्या करके वे नश्वर शरीरको त्यागकर दिव्यलोकको चले गये।

राजा जनमेजयने कहा—भगवन् ! आपने बतलाया है कि राजा रेवत कन्याके योग्य वर जाननेके उद्देश्यसे ब्रह्मलोकमें गये और वहाँ वे एक सौ आठ युगतक ठहरे रहे। मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि तबतक वह कन्या तथा वे राजा ही बूढ़े क्यों नहीं हुए ? अथवा इतने दिनोंकी पूर्ण आयु ही उन्हें कैसे प्राप्त हुई ?

व्यासजी कहते हैं—निष्पाप नरेश ! ब्रह्मलोकमें भूख, प्यास, मृत्यु, भय, बुढ़ापा एवं ग्लानि—ये कदापि अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। राजा रेवत जब वहाँ चले गये, तब राक्षसोंने शर्याति-वंशकी सत्ता ही नष्ट कर दी। प्रायः सभी अत्यन्त भयभीत हो कुशस्थली छोड़कर इधर-उधर कालक्षेप करने लगे। फिर क्षुव नामक मनुसे एक अत्यन्त प्रतापी पुत्रका जन्म हुआ। इक्ष्वाकु नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वे ही इक्ष्वाकु सूर्यवंशके मुख्य प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने वंशकी वृद्धि होनेके लिये भगवतीके ध्यानमें सदा संलग्न होकर कठिन तपस्या की। नारदजी उनके उपदेशक थे। उन्हींसे उन्होंने अनुपम दीक्षा प्राप्त की थी। राजन् ! मैंने सुना है, उन्हीं इक्ष्वाकुसे सौ पुत्र हुए। उन सभी पुत्रोंमें सबसे बड़े विकुक्षि थे। उनमें बल और वीर्यका पूर्ण समावेश था। महाराज इक्ष्वाकु अयोध्याके राजा थे—यह बात प्रसिद्ध है। शकुनि प्रभृति अत्यन्त बलशाली जो उनके पचास पुत्र थे, उन्हें उन्होंने उत्तर देशकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया। राजन् ! उनके अड़तालीस लड़के आज्ञानुसार दक्षिण देशकी रक्षामें उद्यत हो गये। इनके अतिरिक्त जो दो शेष पुत्र थे, वे राजा इक्ष्वाकुकी सेवाके लिये उनके पास रहने लगे।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि हुए। वे ही राजकुमार विकुक्षि शशाद नामसे विख्यात हुए। पिताकी मृत्युके पश्चात् पुनः उन महात्मा विकुक्षिको राज्यका अधिकार प्राप्त हो गया। स्वयं अयोध्याके राजा होकर वे शासन करने लगे। उस समय राजा शशादके द्वारा सरयूके तटपर बहुत-से यज्ञ साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न हुए थे। उनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ हुआ—ऐसा सुना जाता है। उन ककुत्स्थके ही दूसरे नाम इन्द्रवाह और पुरंजय भी हैं।

राजा जनमेजयने पूछा—निष्पाप मुनिवर ! एक ही व्यक्तिके कई नाम कैसे हुए ? जिन-जिन कारणोंसे पृथक्-पृथक् नाम रखे गये, वे सब कारण मुझे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! शशादके स्वर्गवासी हो जानेपर धर्मके ज्ञाता ककुत्स्थ अयोध्याके राजा हुए। उन्होंने पिता और पितामहसे सम्बन्ध रखनेवाले राज्यपर बलपूर्वक शासन किया था। इसी समय सम्पूर्ण देवता दैत्योंसे परास्त होकर त्रिलोकीके स्वामी सनातन भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब भगवान् श्रीहरिने उन्हें आज्ञा दी।

भगवान् विष्णु बोले—प्रधान देवताओ ! तुमलोग शशादकुमार राजा ककुत्स्थसे मित्र बननेके लिये प्रार्थना करो। वे ही संग्राममें दैत्योंको मार सकेंगे। वे बड़े धर्मात्मा नरेश हैं। भगवती जगदम्बाकी कृपासे उन्हें अतुलित शक्ति सुलभतासे प्राप्त है।

महाराज ! भगवान् विष्णुकी यह सुस्पष्ट वाणी सुनते ही इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता अयोध्यामें विराजनेवाले शशादकुमार ककुत्स्थके पास जा पहुँचे। राजाने धर्मपूर्वक

बड़ी सावधानीके साथ उनका स्वागत किया और आनेका कारण बतानेके लिये आदरसे पूछा।

राजा ककुत्स्थने कहा—देवताओ ! मैं धन्य और पवित्र हो गया। मेरे जीवनकी साध पूरी हो गयी; क्योंकि आज आपने मेरे घरपर पधारकर मुझे दुर्लभ दर्शन दिये। देवेश्वरो ! अब आप कर्तव्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिये। आपका बड़े-से-बड़ा कार्य अन्य मनुष्योंके लिये भले ही दुःसाध्य हो, मैं उसे सर्वथा सम्पन्न कर दूँगा।

देवता बोले—राजेन्द्र ! हम तुमसे सहायता चाहते हैं। तुम इन्द्रके सखा बनकर संग्राममें सुप्रसिद्ध दैत्योंको परास्त करो। इस समय वे दानव देवताओंके लिये अजेय हो गये हैं। तुम्हें भगवती जगदम्बाकी कृपा प्राप्त है। अतएव कहीं कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जो तुमसे असाध्य हो। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे ही हम तुम्हारे पास आये हैं।

राजाने कहा—सुरसत्तमो ! मैं अभी सहायक बननेके लिये तैयार हूँ; परंतु देवराज इन्द्र युद्धके अवसरपर मेरे वाहन बनें तभी सफलता मिल सकती है। मैं सत्य कहता हूँ, इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं इन इन्द्रपर ही चढ़कर संग्राममें जाऊँगा और दैत्योंके साथ मेरा युद्ध होगा। मेरी यह बात बिलकुल सत्य है।

देवताओंने इस अद्भुत कर्तव्यके विषयमें इन्द्रसे कहा—'शचीपते ! आप लज्जा छोड़कर इन नरेशका वाहन बननेकी कृपा कीजिये।' यह सुनकर इन्द्र बड़े भारी संकोचमें पड़ गये। फिर भी, भगवान् विष्णुके बारम्बार प्रेरणा करनेपर उन्होंने तुरंत वृषभका रूप धारण कर लिया, मानो भगवान् शिवके कोई दूसरे नन्दीश्वर ही हों। संग्राममें जानेके लिये राजा उन्हींपर सवार हुए। वृषभरूपधारी इन्द्रके ककुद्पर बैठे थे, जिससे इनका एक नाम 'ककुत्स्थ' पड़ गया। इन्द्रको अपना वाहन बनाया था, इससे इनका एक दूसरा नाम 'इन्द्रवाह' हुआ। दैत्योंके पुरपर विजय प्राप्त की थी, जिससे 'पुरंजय'— इस तीसरे नामसे ये प्रसिद्ध हुए। तदनन्तर महाबाहु ककुत्स्थने दैत्योंको जीतकर उनकी सम्पत्ति देवताओंको सौंप दी। यों राजर्षि ककुत्स्थके अनेक नाम हुए। महाराज ककुत्स्थ बड़े सुविख्यात नरेश थे। उनके वंशज राजाओंकी भूमण्डलपर 'काकुत्स्थ'के नामसे प्रसिद्धि है। ककुत्स्थकी धर्मपत्नीके उदरसे महाबली अनेना नामक पुत्रका जन्म हुआ। अनेनाके सुविख्यात परम पराक्रमी पुत्र पृथु हुए। पृथुको भगवान् विष्णुका साक्षात् अंश कहा जाता है। भगवती जगदम्बाके चरणकी उपासनामें उनकी अटूट श्रद्धा थी। पृथुसे जो पुत्र हुए, उन्हें राजा विश्वरन्धि समझना चाहिये। विश्वरन्धिसे श्रीमान् राजा चन्द्रका जन्म हुआ। अपने वंशके वे प्रसिद्ध प्रवर्तक माने जाते हैं। चन्द्रके तेजस्वी एवं असीम पराक्रमी पुत्रका नाम युवनाश्व पड़ा। युवनाश्वसे परम धार्मिक शावन्तकी उत्पत्ति हुई। उन शावन्तने ही शावन्ती नामक नगरी बसायी, जिसकी तुलना अमरावतीसे की जा सकती है। महात्मा शावन्तके पुत्र बृहदश्व हुए। बृहदश्वसे राजा कुवलाश्वका जन्म हुआ। कुवलाश्वने धुन्धु नामक दैत्यका संहार कर डाला। तबसे धुन्धुमार नामसे वे विख्यात हुए—यह बात परम प्रसिद्ध है। कुवलाश्वके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने पृथ्वीकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा की थी। दृढाश्वके सुयोग्य पुत्र श्रीमान् हर्यश्व कहे गये हैं। हर्यश्वके पुत्रको

राजा निकुम्भ कहा गया है। निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व और बर्हणाश्वके पुत्र कृशाश्व हुए। कृशाश्वके बलशाली एवं सत्यपराक्रमी पुत्रका नाम प्रसेनजित् हुआ। प्रसेनजित्के पुत्र महान् भाग्यशाली यौवनाश्वका नाम सर्वप्रसिद्ध है। यौवनाश्वसे श्रीमान् राजा मान्धाताकी उत्पत्ति हुई है, जिन्होंने एक सौ आठ भव्य भवनोंका निर्माण कराया था। मानद ! भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करनेके लिये उन्होंने महान् तीर्थस्थानोंमें वे मन्दिर बनवाये थे। माताके गर्भमें न रहकर पिताके उदरसे ही उनकी उत्पत्ति हुई थी। पिताके पेटको फाड़कर उन्हें निकाला गया था।

राजा जनमेजयने कहा—महाभाग ! राजा मान्धाताके जन्मके विषयमें यह कैसी कल्पनातीत बात आपने कही है, ऐसी बात तो कहीं भी सुनने-देखनेको नहीं मिली थी। अब आप उन नरेशके जन्मका कारण विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये। वह सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र राजा यौवनाश्वके उदरसे जैसे उत्पन्न हुआ, कृपया वह पूरा प्रसंग स्पष्ट करके कहिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! परम धार्मिक राजा यौवनाश्वके सौ रानियाँ थीं; परंतु किसीसे कोई संतान नहीं हुई। इस कारण वे प्रायः चिन्तातुर रहते थे। तदनन्तर संतानके लिये अत्यन्त खिन्न होकर वे वनमें चले गये और ऋषियोंके पवित्र आश्रमपर उनका समय व्यतीत होने लगा। वहाँ बहुत-से ब्राह्मण तपस्या कर रहे थे। उन नरेशको उदास देखकर ब्राह्मणोंके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी। अतः उन ब्राह्मणोंने राजा यौवनाश्वसे पूछा—'नरेश ! तुम इतने चिन्तित क्यों हो ? महाराज ! कौन-सा मानसिक संताप तुम्हें इतना कष्ट दे रहा है ? अपनी सच्ची बात बतानेकी कृपा करो। तुम्हारा दुःख दूर करनेके लिये हम यथासाध्य भली-भाँति यत्न करेंगे।'

राजा यौवनाश्वने कहा—मुनियो ! मेरे पास राज्य, धन एवं उत्तम श्रेणीके बहुत-से घोड़े विद्यमान हैं। महलमें सैकड़ों साध्वी रानियाँ हैं। त्रिलोकीभरमें कोई भी ऐसा शत्रु नहीं है, जो मुझसे बलवान् हो। मन्त्री और सामन्त नरेश—सब-के-सब मेरी आज्ञाके पालनमें तत्पर रहते हैं। तपस्वियो ! संतान न होनेका ही एकमात्र दुःख मुझे सता रहा है। इसके सिवा दूसरा कोई भी दुःख नहीं है। तपस्वियो ! आपलोगोंने महान् परिश्रम करके वेद और शास्त्रके रहस्यको जान लिया है। अब आपकी समझमें मुझ संतानकामी व्यक्तिके लिये जो उचित हो, वह बतानेकी कृपा करें। तापसो ! आपकी यदि मुझपर कृपा है तो मेरे इस कार्यको सम्पन्न करनेमें आप तत्पर हो जायँ।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! महाराज यौवनाश्वकी बात सुनकर उन ब्राह्मणोंका मन कृपासे भर गया। उन्होंने बड़ी सावधानीके साथ राजासे एक यज्ञ करवाया, जिसमें प्रधान देवता इन्द्र माने गये थे। ब्राह्मणोंने जलसे भरा हुआ एक कलश वहाँ रखवाया था। राजाको संतान हो जाय—इस उद्देश्यको लेकर वैदिक मन्त्रोंद्वारा उस कलशका अभिमन्त्रण किया गया था। राजा यौवनाश्वको रातमें बड़ी प्यास लग गयी। वे उस यज्ञशालामें चले गये। देखा, सभी ब्राह्मण सोये हैं। कहीं भी जल नहीं है। तब प्यासके मारे वे उस अभिमन्त्रित जलको ही स्वयं पी गये। ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक मन्त्रोंसे संस्कृत करके वह जल रानीके लिये रखा था। राजेन्द्र !

अज्ञानवश वह जल राजाके पेटमें चला गया। प्रातःकाल जब ब्राह्मणोंने देखा कि कलशमें जल बिलकुल नहीं है, तब उन्होंने महान् सशङ्कित होकर राजासे पूछा—'किसने यह जल पिया है ?' राजा ही जल पी गये हैं—यह बात जानकर वे समझ गये कि दैव सबसे बढ़कर बलवान् है। तदनन्तर यज्ञकी पूर्णाहुति कराकर वे सभी मुनिगण अपने घर पधारे। मन्त्रके प्रभावसे स्वयं राजाके पेटमें ही गर्भ स्थित हो गया। समय पूर्ण होनेपर इन महाराज यौवनाश्वका दाहिना कोख चीरा गया, जिससे पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पुत्र निकालनेका सारा श्रेय राजाके सुयोग्य मन्त्रियोंके ऊपर निर्भर था। देवताओंकी कृपासे राजाके प्राण नहीं जा सके। उस समय मन्त्रीलोग बड़े जोरसे चिल्ला उठे—'यह कुमार अब किसका दूध पियेगा।' इतनेमें इन्द्रने झट उसके मुखमें अपनी तर्जनी

अँगुली देकर यह वचन कहा कि 'मैं इसकी रक्षा करूँगा।' समय पाकर वे ही महान् प्रतापी राजा मान्धाता हुए। राजन् ! उन नरेशकी उत्पत्तिका यही प्रसंग है। (अध्याय ८-९)

## सत्यव्रतका त्रिशंकु नाम होनेका कारण, भगवतीकी कृपासे सत्यव्रतकी शापमुक्ति, सत्यव्रतका सदेह स्वर्ग जानेका आग्रह, वसिष्ठके द्वारा सत्यव्रतको शाप, हरिश्चन्द्रकी कथाका प्रारम्भ

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! वे महाराज मान्धाता सत्यप्रतिज्ञ चक्रवर्ती नरेश हुए। सम्पूर्ण भूमण्डलपर उनकी विजय-पताका फहरा रही थी। उनके डरसे लुटेरे और डाकू पर्वतोंकी गुफाओंमें जा छिपे थे। इसी अभिप्रायसे इन्द्रने उन्हें त्रसद्दस्यु नामसे विख्यात कर दिया। मान्धाताकी धर्मपत्नीका नाम विन्दुमती था। ये शशविन्दुकी लाड़िली पुत्री थीं। ये पतिव्रता, परम सुन्दरी एवं सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। राजन् ! मान्धाताने विन्दुमतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न किये। एक पुत्र पुरुकुत्स नामसे परम प्रसिद्ध हुए और दूसरेका नाम मुचुकुन्द पड़ा। पुरुकुत्ससे परम धार्मिक पुत्र अरण्यका जन्म हुआ। ये राजकुमार पिताके अनन्य भक्त थे। इनके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ। बृहदश्वके धर्मात्मा एवं परमार्थ ज्ञानी पुत्र हर्यश्व, हर्यश्वके त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके अरुण हुए। अरुणका पुत्र सत्यव्रत नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके पास अटूट सम्पत्ति थी। वह स्वेच्छाचारी, कामी, मूर्ख और अत्यन्त लोभी निकल गया। उस नीच राजकुमारको एक अपराधके कारण पिताजीने घरसे निकाल दिया। फिर अन्यान्य अपराधोंके

कारण वसिष्ठजीने उसको यह शाप दे दिया कि 'भूमण्डलपर तेरी त्रिशंकु नामसे प्रसिद्धि होगी। तू सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना पैशाचिक रूप ही दिखा सकेगा।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वसिष्ठजीके द्वारा शापग्रत होनेपर सत्यव्रतने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। किसी एक मुनिपुत्रने उसे श्रेष्ठ मन्त्र बता दिया। परम कल्याणस्वरूपिणी प्रकृतिमयी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वह उस मन्त्रका जप करने लगा।

राजा जनमेजयने कहा—महामते! वसिष्ठजीके शाप दे देनेपर वह राजकुमार त्रिशंकु शापसे कैसे मुक्त हुआ? यह प्रसंग मुझे बतानेकी कृपा करें।

व्यासजी बोले—राजन्! शापके कारण सत्यव्रतमें पिशाचके सभी लक्षण आ गये थे। परंतु उसने भगवतीकी आराधना आरम्भ कर दी। एक समयकी बात है—सत्यव्रत नवाक्षर-मन्त्रका जप समाप्त करके हवन करानेके लिये ब्राह्मणोंके पास गया और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणामकर कहने लगा— 'भूदेवो! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आपलोग मेरी बात सुनिये। इस समय आप सभी महानुभाव मेरे यज्ञमें ऋत्विज होनेकी कृपा कीजिये। आपलोग वेदके ज्ञाता एवं परम कृपालु हैं। कार्यमें सफलता प्राप्त होनेके लिये विधिपूर्वक जपके दशांश हवनकी व्यवस्था आपपर निर्भर है। वेदज्ञशिरोमणि ब्राह्मणो! मेरा नाम सत्यव्रत है। मैं एक राजकुमार हूँ। मैं सम्यक् प्रकारसे सुखी हो जाऊँ—एतदर्थ मेरे इस कार्यका सम्पादन आपलोगोंको करना चाहिये।' राजकुमार सत्यव्रतकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने उससे कहा—'भाई! तुम्हारे गुरुदेव तुम्हें शाप दे चुके हैं। इस समय तुममें पूरी पैशाचिकता आयी हुई है। तुम्हारा वेदमें अधिकार नहीं रह गया है। अतएव तुम यज्ञ नहीं कर सकते; क्योंकि पैशाचिकता आ जानेपर प्राणी सम्पूर्ण लोकोंमें निन्द्य समझा जाता है।'

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय! ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजा सत्यव्रतके दुःखकी सीमा नहीं रही। उसने सोचा, 'आज मेरे इस जीवनको धिक्कार है। वनमें रहकर मैं क्या करूँ? पिताने मुझे त्याग दिया है। गुरुसे मैं अत्यन्त शापग्रस्त हूँ। राज्यपर मेरा किंचित् भी अधिकार नहीं रहा। घोर पैशाची वृत्ति मुझे घेरे है। ऐसी स्थितिमें अब मैं क्या करूँ।' यों विचारकर उस राजकुमारने लकड़ी बटोरकर एक बहुत बड़ी चिता तैयार की। भगवती जगदम्बाका स्मरण करके वह उस चितामें पैठनेकी बात सोचने लगा। आग लगा देनेपर चिता प्रज्वलित हो उठी। राजकुमार सत्यव्रतने पहले स्नान किया। तदनन्तर चिताके सामने हाथ जोड़कर भगवती महामायाका स्मरण करके वह चितामें पैठनेके लिये प्रस्तुत हो गया। राजकुमार मरनेपर तुल गया है—यह जानकर स्वयं भगवती जगदम्बा उसके सामने आकर आकाशमें प्रकट हो गयीं। महाराज! उस समय भगवती सिंहपर सवार थीं। उन्होंने राजकुमार सत्यव्रतको दर्शन देकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा।

देवी बोलीं—साधो! तुम यह क्या कर रहे हो? अग्निमें शरीरको मत होमो। महाभाग! अभी शान्त रहो। अब तुम्हारे पिता वृद्ध हो चुके

हैं। वीर ! वे तुम्हें राज्य सौंपकर तपस्या करनेके लिये वनमें जाने ही वाले हैं। राजन् ! खेद प्रकट

करना छोड़ दो। आजसे तीसरे दिन तुम्हारे पिताके मन्त्रीगण तुम्हें ले जानेके लिये आयँगे। मेरी कृपाके वशीभूत राजाके द्वारा राज्यपर तुम्हारा अभिषेक होगा। इसके बाद तुम्हारे निष्कामी पिता ब्रह्मलोकमें सिधारेंगे—यह बिलकुल निश्चित है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार सत्यव्रतसे कहकर भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राजकुमार जो चितामें जलनेके लिये तैयार था, रुक गया। उसी समय महात्मा नारदजी अयोध्यामें पधारे ! उन्होंने आदिसे अन्ततक सारी बातें राजाको कह सुनायीं। जब उन महात्मा नरेशने सुना कि पुत्र इस प्रकार मरनेको तैयार है, तब उनके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। वे तरह-तरहकी बातें सोचने लगे। फिर महाराज अरुणने मन्त्रियोंसे कहा—'आपलोग मेरे पुत्र सत्यव्रतके अनुपम कार्यसे पूर्ण परिचित हैं। उस बुद्धिमान् पुत्रको मैंने वनमें जानेकी आज्ञा दे दी थी। यद्यपि परमार्थकी अच्छी जानकारी रखनेवाला वह पुत्र राज्यका अधिकारी था, फिर भी मेरी आज्ञासे वह तुरंत जंगलमें चला गया। मुझे पता लगा है कि मेरा वह क्षमाशील कुमार अभी उस जंगलमें ही निर्धन होकर कालक्षेप कर रहा है। वसिष्ठजीने शाप देकर उसे पिशाचके समान बना दिया है। वह दुःखसे अत्यन्त घबराकर आगमें जल जानेके लिये तैयार हो गया था; परंतु भगवती जगदम्बाने उसे इस कार्यसे रोक दिया है। फिर वह वहीं रहता है। अतएव आपलोग शीघ्र जाइये और मेरे उस पुत्रको आश्वासन देकर तुरंत यहाँ लानेका प्रयत्न कीजिये। मेरा वह औरस पुत्र प्रजाकी रक्षा करनेमें पूर्ण कुशल है। मैंने अब तपस्या करनेका निश्चय कर लिया है। अतः राज्यपर सत्यव्रतका अभिषेक करके मैं शान्तिपूर्वक वनमें चला जाऊँगा।'

यों कहकर राजा अरुणने मन्त्रियोंको भेज दिया। उस समय राजकुमारको लानेकी ही धुन उन्हें लगी थी। उनके मनमें सत्यव्रतके प्रति अपार प्रेम उमड़ रहा था। तदनन्तर मन्त्रीगण गये और उन्होंने राजकुमार महात्मा सत्यव्रतको आश्वासन देकर सम्मानपूर्वक अयोध्यामें लाकर उपस्थित कर दिया। राजा अरुणने देखा, सत्यव्रत अत्यन्त दुर्बल हो गया है। उसके शरीरपर मैले-कुचैले वस्त्र हैं। बढ़े हुए केशोंकी जटा बँध गयी है। वह अति चिन्तातुर और भयंकर जान पड़ता है। फिर तो, राजाने सोचा, मैंने इस पुत्रको वनवासी बनाकर कितना निष्ठुर कर्म कर डाला। धर्मको निश्चितरूपसे जानते हुए भी मैंने इस विद्वान् एवं राज्यके अधिकारी पुत्रकी यह दुर्दशा कर डाली।

राजन् ! इस प्रकार मन-ही-मन सोचनेके

पश्चात् महाराज अरुणने राजकुमार सत्यव्रतको हृदयसे चिपटा लिया। सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर उसे अपने पास ही एक आसनपर बैठाया। जब राजकुमार बैठ गया, तब नीतिशास्त्रके पारगामी विद्वान् राजा अरुण प्रेमपूर्वक उससे प्रेम-गद्गद वाणीसे कहने लगे।

राजा अरुणने कहा—पुत्र ! तुम्हारी बुद्धि धर्ममें अटल रहे। तुम्हें बड़ोंका सदा सम्मान करना चाहिये। न्यायपूर्वक मिले हुए धनको ही अपने खजानेमें रखना चाहिये। तुम्हारे प्रयत्नसे प्रजा निरन्तर सुरक्षित रहे। तुम न कभी झूठ बोलना और न निन्दित मार्गपर पैर रखना। श्रेष्ठ पुरुषोंके आज्ञानुसार ही तुम्हें कार्य करना चाहिये। तपस्वीलोग तुमसे सदा सम्मान पाते रहें। दुष्ट लुटेरोंका दमन करना। इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये रहना। पुत्र ! कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये राजाको चाहिये कि वह मन्त्रियोंके साथ सदा आवश्यक गुप्त मन्त्रणा करता रहे। पुत्र ! राजा सबका आत्मा समझा जाता है। छोटे शत्रुकी भी वह उपेक्षा न करे। नम्र मन्त्री भी यदि शत्रुसे मिला हो तो उसपर विश्वास नहीं करना चाहिये। शत्रु और मित्र—सबमें सर्वदा गुप्तचर नियुक्त रखे जायँ। तुम धर्ममें आस्था रखना। प्रतिदिन दान करना। कोरी बात न करना। दुष्टोंका साथ कभी मत करना। भाँति-भाँतिके यज्ञोंमें संलग्न रहना। महर्षिगणका सदा सत्कार करते रहना। स्त्री, जुआरी और नपुंसकपर कभी भी विश्वास न करना। शिकारमें अत्यन्त आदरबुद्धि रखना सर्वथा निषिद्ध है। जुआ, मदिरा, अश्लील गान और वेश्या— इनसे स्वयं बचना और प्रजाको भी इनसे सदा बचाना। सदा-सर्वदा ब्राह्ममुहूर्तमें उठ जाना। स्नान आदि सभी नित्य-नियमोंसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक परम आराध्या आद्याशक्ति भगवती जगदम्बाकी पूजा करना। दीक्षित होकर भक्तिके साथ उनका अर्चन करना। पुत्र ! इन पराशक्तिके चरणोंकी आराधना करना ही इस जन्मकी सफलता है। जो एक बार भी भगवतीकी प्रधान पूजा करके चरणोदक पीता है, वह पुनः कभी माताके गर्भमें नहीं जा सकता—यह बिलकुल निश्चित है। सारा जगत् दृश्य है और भगवती जगदम्बा द्रष्टा एवं साक्षी हैं—इस प्रकारके भावसे भावित होकर निर्भीकतापूर्वक स्थित रहना।

प्रतिदिनके नित्य-नियमका सम्यक् प्रकारसे पालन करके सभामें जाना और ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रसम्बन्धी निर्णीत विषय पूछना। वेद और वेदाङ्गके पारगामी आदरणीय ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन सुयोग्य पात्रोंको गौ, सोना आदि दान देना। किसी भी मूर्ख ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना। कभी किसी मूर्ख ब्राह्मणको कुछ देना ही पड़ जाय तो भोजनसे अधिक न देना। पुत्र ! तुम किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लङ्घन कभी मत करना। इसके सिवा तुम्हारा एक परम कर्तव्य यह है कि 'तुम्हारे द्वारा कभी भी ब्राह्मणोंका अपमान न हो जाय; क्योंकि ब्राह्मण भूदेव हैं—पृथ्वीपर वे साक्षात् देवता माने जाते हैं।' अतः उनका यत्नपूर्वक सम्मान करना ही वाञ्छनीय है। क्षत्रियोंके कारण ब्राह्मण ही हैं—इसमें कोई संदेह नहीं। जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लौहकी उत्पत्ति मानी गयी है। उनका सर्वव्यापी तेज अपनी योनिमें ही शान्त होता है। अतएव कल्याणकी

इच्छा रखनेवाले राजाको चाहिये कि वह विशेषरूपसे विनयपूर्वक दान देकर ब्राह्मणोंका सत्कार करे। धर्मशास्त्रके अनुसार सदा दण्ड-नीतिका व्यवहार करे। न्यायसे प्राप्त हुए धनका ही संग्रह करे।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकुने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें पितासे कहा—'बहुत ठीक है पिताजी! मैं ऐसा ही करूँगा।' फिर महाराज अरुणने वेद एवं शास्त्रके पारगामी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाया। अभिषेककी सारी सामग्रियाँ एकत्रित करायीं। सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगवाया। मन्त्रिमण्डल और सभी सामन्त नरेश आमन्त्रित हुए। शुभ मुहूर्तमें राजाने अपने उस कुमारको विधि-विधानके साथ श्रेष्ठ राज्यासनपर आरूढ़ कर दिया। यों पिता अरुणने पुत्र त्रिशंकुका विधिवत् राज्याभिषेक करके अपनी धर्मपत्नीके साथ पवित्र वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश किया। वे वनमें गङ्गाके तटपर चले गये और वहाँ उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। आयु समाप्त हो जानेपर वे स्वर्गमें सिधारे। देवताओंने भी उनका स्वागत किया। इन्द्रासनके समीप ही उन्हें स्थान मिला। वहाँ रहकर वे निरन्तर सूर्यके समान शोभा पाने लगे।

राजा जनमेजयने कहा—प्रभो! आप अभी कथाके प्रसंगमें बता चुके हैं कि गुरुदेव वसिष्ठने अत्यन्त कुपित होकर सत्यव्रतको शाप दे दिया। फलस्वरूप सत्यव्रतमें पैशाचिकता आ गयी तो फिर इस पिशाचत्वसे उसका उद्धार कैसे हुआ? यही मेरे प्रश्नका विषय है। शापग्रस्त प्राणी सिंहासनपर बैठनेका अनधिकारी हो जाता है। सत्यव्रतसे दूसरा कौन ऐसा उत्तम कर्म बन गया, जिसके कारण उसे शापमुक्त करनेमें मुनिवर वसिष्ठ तैयार हो गये? विप्रर्षे! आप शापसे मुक्त होनेका कारण बतानेके साथ ही कृपापूर्वक यह भी स्पष्ट करें कि ऐसी निन्द्य प्रकृतिवाले पुत्रको पिताने अपने पास फिर क्यों सम्मानपूर्वक बुला लिया?

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वसिष्ठका शाप लगते ही सत्यव्रतमें पिशाचके सभी लक्षण आ गये। वह अत्यन्त दुर्धर्ष, महान् कुरूप एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये भयप्रद हो गया। परंतु उसने भगवती जगदम्बाकी भक्तिपूर्वक आराधना आरम्भ कर दी। राजन्! देवीके प्रसन्न होते ही उसकी आकृतिमें महान् परिवर्तन हो गया—वह दिव्यरूपसे शोभा पाने लगा। उसकी पिशाचता सर्वथा नष्ट हो गयी। लेशमात्र भी पाप उसमें नहीं रह सका। अब उस परम पवित्र नरेशके शरीरमें तेजकी सीमा नहीं रही; क्योंकि भगवतीकी अमृतमयी कृपा उसे सुलभ हो गयी थी। इतना ही नहीं, भगवतीकी कृपासे वसिष्ठ भी सत्यव्रतपर प्रसन्न हो गये तथा वह पिताका भी पूर्ण प्रेमपात्र बन गया। पिताके मर जानेपर वह धर्मात्मा नरेश राज्यका प्रबन्धक हुआ। उसने अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा सनातनस्वरूपा देवेश्वरी भगवती जगदम्बाका पूजन किया था। उन राजा त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए। उनकी आकृति असीम सुन्दर थी। शास्त्रोक्त सभी शुभ लक्षण उनमें विद्यमान थे।

कुछ दिनों बाद अपने पुत्रको युवराज बनाकर मानव-शरीरसे ही स्वर्गका सुख भोगनेकी इच्छा राजा त्रिशंकुको व्यग्र करने लगी। तब वह नरेश वसिष्ठजीके आश्रमपर

गया। विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके प्रीति प्रदर्शित करते हुए हाथ जोड़कर उसने कहा।

राजा त्रिशंकुने कहा—सम्पूर्ण मन्त्रोंके रहस्यवेत्ता महाभाग! ब्रह्मपुत्र तापस! आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी आदरयुक्त प्रार्थना सुननेकी कृपा करें। अब मैं स्वर्गका सुख भोगना चाहता हूँ। मेरी ऐसी इच्छा है कि उन दिव्य भोगोंको मैं इसी मानव-शरीरसे ही भोगूँ। अतएव महामुने! आप मुझसे कोई ऐसा यज्ञ कराइये कि जिसके फलस्वरूप इसी शरीरसे मुझे स्वर्गलोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाय। मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ कर सकते हैं। अतः अब मेरा यह कार्य करनेकी कृपा अवश्य कीजिये। देवलोकके लिये भी जो कठिन है, ऐसे महान् यज्ञको सम्पन्न कराकर आप शीघ्र ही मुझे स्वर्ग प्राप्त करा दीजिये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! मनुष्य-देहसे स्वर्गमें स्थान पाना अत्यन्त दुर्लभ है। कारण, ऐसी स्पष्ट घोषणा है कि मर जानेपर ही पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें रहनेकी सुविधा मिलती है। अतएव सर्वज्ञ नरेश! तुम्हारे इस दुर्लभ मनोरथको पूर्ण करानेसे मैं डरता हूँ; क्योंकि जीते हुए पुरुषको अप्सराओंके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हो जाय—यह कदापि सम्भव नहीं। महाभाग! तुम यज्ञ करो; इस शरीरके शान्त हो जानेपर तुम्हें स्वर्ग मिलेगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! वसिष्ठजीकी बात सुनकर राजा त्रिशंकुका मन अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। अतः उसने क्रोधपूर्वक मुनिवरसे पुनः कहा—'ब्रह्मन्! आप यदि अभिमानवश मेरा यज्ञ नहीं कराना चाहते हैं तो मैं किसी दूसरेको पुरोहित बनाकर यज्ञ सम्पन्न करूँगा।'

त्रिशंकुका यह कथन सुनकर मुनिवर वसिष्ठने उसे तुरंत शाप दे दिया—'दुर्मते! तू अभी चाण्डाल हो जा। इसी शरीरमें अभी-अभी तेरी चाण्डाली वृत्ति बन जाय। सन्मार्गको दूषित करनेवाले 'धर्मध्वजी नरेश! तू बड़ा पापी है। मरनेपर भी तू किसी प्रकार स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! गुरुदेव वसिष्ठके मुखसे यह वचन निकलते ही उसी शरीरसे त्रिशंकु तुरंत चाण्डाल हो गया। उसके कानमें जो रत्नमय कुण्डल थे, उनके पत्थर-जैसे हो जानेमें कुछ भी देर न लगी। देहमें लगा हुआ सुगन्धपूर्ण चन्दन तुरंत दुर्गन्धित हो गया। उसके पहने हुए दिव्य पीताम्बर काले रंगमें परिणत हो गये। महात्मा वसिष्ठके शापने उसे गजकर्ण बना दिया। राजन्! वसिष्ठजी भगवती जगदम्बाकी उपासना किया करते थे। अतः उनके रोषका यह फल प्रकट हो गया। इसलिये भगवतीके भक्तका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। मुनिवर वसिष्ठजी बड़ी निष्ठाके साथ गायत्रीका जप करते थे।

राजन्! उस समय अपना निन्दनीय शरीर देखकर राजा त्रिशंकु खिन्न हो गया। उसकी बड़ी दयनीय दशा हो गयी। अतः मुनिके आश्रमसे घर न लौटकर वह जंगलमें ही चला गया। शोकसे विह्वल होकर उसने मन-ही-मन सोचा—'क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा यह शरीर सर्वथा निन्द्य हो गया। मैं कोई भी ऐसा उपाय नहीं देखता कि जिसके प्रभावसे मेरा यह दुःख दूर हो जाय। ऐसी स्थितिमें मैं घर जाता हूँ तो मुझे देखकर मेरा पुत्र भी दुःखी हो जायगा। चाण्डाल-वेषमें देखकर स्त्री भी मुझे स्वीकार

नहीं करेगी। इस दशामें देखकर मन्त्रीलोग भी मेरा अनादर करने लगेंगे। जाति और कुटुम्ब-वाले मेरा साथ छोड़ देंगे। सबसे पृथक् होकर ही मुझे रहना पड़ेगा। ऐसी दशामें जीनेसे मर जाना ही अच्छा है।'

आत्महत्याका विचार आते ही दूसरा विचार यह आया कि 'आत्महत्या तो कर लूँगा; परंतु यह निश्चय है कि आत्महत्या करनेसे मुझे जन्म-जन्मान्तरमें पुनः चाण्डाल होना पड़ेगा। हत्या-दोषके परिणामस्वरूप मैं शापसे भी कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा।' यों सोचनेके पश्चात् उस नरेशने पुनः सावधान होकर विचार किया कि 'इस समय आत्महत्या करना तो मेरे लिये सर्वथा ही अनुचित है। जंगलमें रहकर इसी शरीरसे अपना किया हुआ कर्म भोग लेना ठीक है; क्योंकि भोग लेनेपर इस बुरे कर्मका फल सर्वथा समाप्त हो जायगा। भोगसे ही प्रारब्ध-कर्म समाप्त होते हैं। अन्यथा इनसे छुट्टी पाना सर्वथा असम्भव है। इसलिये किये हुए शुभ और अशुभ कर्म तो मुझे भोग ही लेने चाहिये। अतः अब मैं इस पवित्र आश्रमके समीप रहकर ही तीर्थोंका सेवन, भगवती जगदम्बाका स्मरण और संत पुरुषोंका सत्कार करूँगा। वनमें रहकर इस प्रकार आचरण करनेसे मेरा संचित कर्म अवश्य ही समाप्त हो जायगा और यह भी सम्भव है, भाग्यवश किसी महात्मा पुरुषसे कभी मिलनेका अवसर सुलभ हो जाय।'

इस प्रकार सोचकर राजा त्रिशंकु अपने नगरका परित्याग करके गङ्गाके तटपर चला गया और उसने वहीं रहनेकी व्यवस्था कर ली। उस समय पिताके शापका कारण जानकर हरिश्चन्द्रके मनमें बड़ी अशान्ति छा गयी। उसने अपने मन्त्रियोंको जंगलमें त्रिशंकुके पास भेजा। मन्त्री शीघ्र उस नरेशके समीप पहुँचे और नम्रतापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे। उस समय चाण्डाल-वेषवाला त्रिशंकु बार-बार लम्बी साँस छोड़ रहा था। मन्त्री बोले—'राजन्! तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे हमलोग यहाँ आये हैं। हम हरिश्चन्द्रके आज्ञापालक मन्त्री हैं—ऐसा समझ लेना चाहिये। राजन्! तुम्हारे पुत्र हरिश्चन्द्र इस समय युवराजके पदपर प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने जो कहा है, वह सुनो। हमारे प्रति उनका कथन है कि तुमलोग मेरे पिताजीको सम्मानपूर्वक यहाँ ले आओ। अतएव राजन्! अब तुम सारी चिन्ताएँ छोड़कर अपने राज्यमें चलनेकी कृपा करो। सम्पूर्ण मन्त्री और प्रजावर्ग तुम्हारी सेवा करेंगे। हमलोग गुरु वसिष्ठको भी प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगे, जिससे उनकी दया प्राप्त हो जाय। सम्भव है, वे महान् तेजस्वी गुरुदेव प्रसन्न होकर तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे। राजन्! तुम्हारे पुत्रने इस बातको बार-बार दुहराया है। अतएव यदि यह बात जँच जाय तो इसी समय अपने महलपर चलनेकी कृपा करो।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! चाण्डालके वेषवाले उस राजा त्रिशंकुने मन्त्रियोंकी उपर्युक्त बातें तो सुन लीं; परंतु अपने नगरको जानेकी उसके मनमें इच्छा उत्पन्न नहीं हो सकी। उसने मन्त्रियोंसे कहा—''सचिवो! तुमलोग नगरको लौट जाओ और मेरे कथनानुसार हरिश्चन्द्रसे कह दो कि 'पुत्र! मैं नहीं आऊँगा। तुम सावधान होकर राज्यका भार सँभालो। उसे अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान और देवताओंका पूजन करते रहना चाहिये।

महात्माओंने इस श्वपच-वेषकी घोर निन्दा की है। मैं इस शरीरसे अयोध्यामें नहीं आऊँगा।' अतः अब तुमलोग यहाँसे लौट जाओ। देर करना ठीक नहीं। मेरा पुत्र हरिश्चन्द्र महान् पराक्रमी पुरुष है। उसे राज्यासनपर बिठाकर राज्यका समुचित प्रबन्ध करनेका प्रयत्न करो। इतनी यह मेरी आज्ञा है।''

इस प्रकार त्रिशंकुके उपदेश देनेपर मन्त्रियोंकी आँखोंमें आँसू भर आये। तदनन्तर वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत करनेवाले राजा त्रिशंकुको प्रणाम करके वे तुरंत वहाँसे लौट गये। अयोध्यामें आकर राजकुमार हरिश्चन्द्रको तिलकधारी नरेश बना दिया। उनके द्वारा एक परम पवित्र दिनमें यह अभिषेकका कार्य सविधि सम्पन्न हुआ था। राजाके आज्ञानुसार मन्त्रियोंने जब हरिश्चन्द्रका अभिषेक कर दिया, तब उस परम तेजस्वी धर्मात्मा नरेशने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। उस समय भी पिताकी दयनीय दशापर उसके मनमें बड़ा विचार हो रहा था। (अध्याय १०—१२)

☆

## त्रिशंकुपर विश्वामित्रकी कृपा, विश्वामित्रके तपोबलसे त्रिशंकुका सदेह स्वर्गगमन, हरिश्चन्द्रकी कथा

राजा जनमेजयने पूछा—मुने! राजाकी आज्ञासे मन्त्रियोंने हरिश्चन्द्रका राज्यपर अभिषेक कर दिया। तदनन्तर राजा त्रिशंकुकी उस चाण्डाल-देहसे मुक्ति कैसे हुई? वह वनमें मरा या गङ्गामें कूद गया अथवा गुरु वसिष्ठने कृपाकर उसका शापसे उद्धार कर दिया? आप यह सारा प्रसङ्ग कहनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय! पुत्रका अभिषेक हो जानेके पश्चात् राजा त्रिशंकु परम प्रसन्न हो गया। कल्याणस्वरूपिणी जगदम्बाका ध्यान करते हुए अपनी आयु बिताने लगा।

इस प्रकार कुछ समय बीत जानेपर विश्वामित्र मुनि तपस्यासे छुटकारा पाकर सावधान हो पुत्रों और स्त्रीको देखनेके विचारसे वहाँ पधारे। आकर देखा कि मेरा परिवार सुखसे समय व्यतीत कर रहा है। अतः उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। उन परम बुद्धिमान् विश्वामित्रने स्वागत करनेके लिये सामने आयी हुई पत्नीसे पूछा—'सुलोचने! देशमें घोर अकाल पड़ गया था। उस अवसरपर तुमने अपने बुरे दिन कैसे बिताये? अन्नके अभावमें इन तुम्हारे बालकोंका पालन किसने किया? यह बतानेकी कृपा करो। सुन्दरी! मैं तपस्यामें बिलकुल संलग्न हो गया था। अतः आ नहीं सका। शोभने! कान्ते! पासमें द्रव्य न रहनेके कारण उस समय तुम कर ही क्या सकती थी?'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! अपने पतिदेव विश्वामित्रकी बात सुनकर मधुर भाषण करनेवाली उस स्त्रीने उनसे कहा—''मुनिवर! आपके चले जानेपर उस घोर अकालमें मैंने जिस प्रकार परम दुःखदायी समय व्यतीत किया है, वह सुनिये। अपने सभी बच्चे अन्नके लिये अत्यन्त दुःखी थे। उन्हें भूखे देखकर कुछ तिन्नीका चावल प्राप्त करनेके लिये मैं वन-वन भटकने लगी, मुझपर चिन्ताके बादल छाये हुए थे। किसी प्रकार कुछ थोड़े-से फलकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार नीवारके सहारे कुछ महीने व्यतीत किये। प्रियवर! नीवार समाप्त हो

जानेपर फिर मेरा मन चिन्तासे घिर गया। जंगलमें उस घोर अकालके समय न अब कहीं नीवार था और न भिक्षा ही मिलनेकी आशा थी। वृक्ष सब फलहीन हो गये थे। धरतीमें उत्पन्न होनेवाले कन्द-मूलोंका नितान्त अभाव हो गया था। भूखसे पीड़ित अत्यन्त घबराये हुए मेरे बालक निरन्तर रोने लगे। मैंने सोचा, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और इन भूखे बच्चोंकी दशा किससे कहूँ। इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर मैंने निश्चय किया कि किसी धनी व्यक्तिको अब एक पुत्र दे दूँ और उसका मूल्य लेकर उसी द्रव्यसे अन्य बालकोंकी रक्षा करूँ। इन भूखों मरते पुत्रोंके भरण-पोषणका दूसरा कोई भी उपाय नहीं है। महाभाग ! ऐसा मनमें सोचकर मैंने बेचनेकी बात इस पुत्रके सामने रखी। यह अत्यन्त डरकर रोने लगा। मैं लोक-लज्जा छोड़ इस रोते हुए बालकको लेकर घरसे निकल पड़ी। तब मार्गमें मुझ अत्यन्त घबरायी स्त्रीको देखकर राजर्षि सत्यव्रतने पूछा—'यह बालक क्यों रोता है ?' मुनिवर ! तब मैंने उनसे यह वचन कहा—'राजन् ! इस समय यह बालक मेरे द्वारा बिकनेके लिये जा रहा है।' मेरी यह बात सुनकर उन नरेशका हृदय दयासे पिघल गया। उन्होंने मुझसे कहा—'तुम इस कुमारको लेकर घर लौट जाओ।' तदनन्तर किसी तरह उन्होंने मेरे बच्चोंका भरण-पोषण किया। मेरे ही कारण वसिष्ठने उन राजा सत्यव्रतको शाप दे दिया। कुपित हुए उन महात्माने राजा सत्यव्रतका नाम 'त्रिशंकु' रख दिया और उन्हें चाण्डाल हो जानेका शाप भी दे दिया। कौशिक ! उन राजकुमारके दुःखी होनेसे मैं भी बहुत दुःखी हूँ; क्योंकि मेरे ही निमित्त उन नरेशको चाण्डाल हो जाना पड़ा है। अतएव अब तपस्या अथवा बलके सहारे—जिस किसी भी उपायसे उन राजाकी रक्षा करना आपका परम कर्तव्य है।''

व्यासजी कहते हैं—शत्रुओंके मान मर्दन करनेवाले राजन् ! मुनिवर विश्वामित्रकी वह परम साध्वी भार्या दयनीय दशाको प्राप्त हो चुकी थी। उसकी बात सुनकर आश्वासन देते हुए विश्वामित्रने उससे कहा।

विश्वामित्रजी बोले—कमललोचने ! जिसने घोर अकालके समय रक्षा करके तुम्हारा परम उपकार किया है, उन नरेशको मैं शापसे अवश्य मुक्त कर दूँगा। मेरे द्वारा विद्या एवं तपस्याके बलसे बहुत शीघ्र उनका संकट दूर हो जायगा।

राजन् ! मुनिवर कौशिक परमार्थ-तत्त्वके पारदर्शी विद्वान् थे। उन्होंने अपनी प्रिय पत्नीको यों आश्वासन देकर मनमें सोचा कि इस राजाका दुःख कैसे दूर हो सकेगा। सम्यक् प्रकारसे विचार करनेके पश्चात्, जहाँ त्रिशंकु था, वहाँ वे चले गये। उस समय वह चाण्डालकी आकृतिमें अत्यन्त दीन होकर एक श्वपचके घरपर ठहरा था। मुनिको आते देखकर वह बड़े आश्चर्यमें पड़ गया। तुरंत दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर उसने मुनिके चरण पकड़ लिये। तब द्विजवर कौशिकने राजा त्रिशंकुको हाथसे पकड़कर उठाया और आश्वासन देकर कहा—'राजन् ! तुम्हें मेरे लिये मुनिद्वारा शापित हो जाना पड़ा है। अतः अब मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा। कहो, इस समय मेरे करनेयोग्य कौन-सा कार्य है।'

राजाने कहा—मुने ! पूर्व समयकी बात है, मैंने यज्ञ करानेके लिये वसिष्ठजीसे प्रार्थना की; उनसे कहा—'मुनिवर ! मैं एक श्रेष्ठ यज्ञ करना चाहता हूँ, आप उसके आचार्य बन जाइये।

विप्रेन्द्र ! आप ऐसा यज्ञ करवाइये, जिसके प्रभावसे मैं स्वर्गमें जा सकूँ।' सुखके परमाश्रय इन्द्रलोकमें इसी शरीरसे जानेका मेरा आग्रह था। तब वसिष्ठजीने कुपित होकर मुझसे कहा—'अरे प्रचण्ड मूर्ख ! तू इस मानवशरीरसे स्वर्गमें स्थान कैसे पा सकता है।' परम पवित्र मुने ! मैंने स्वर्गके लोभमें आकर पुनः उन महाभागसे कहा कि 'तब मैं किसी दूसरेको आचार्य बनाकर अपना उत्तम यज्ञ सम्पन्न कर लूँगा।' ऐसी स्थितिमें उन्होंने मुझे शाप दे दिया 'मूर्ख ! तू चाण्डाल हो जा।' मुनिवर ! इस प्रकार शाप लगनेका समस्त कारण मैं कह चुका। आप मेरे दुःखका अन्त करनेमें परम समर्थ हैं।

राजन्! तदनन्तर आरम्भसे अन्ततक दुःखकी सारी बातें बताकर राजा त्रिशंकु चुप हो गया। विश्वामित्र मुनि भी उसके शापको मिटानेका उपाय सोचने लगे।

व्यासजी कहते हैं—महान् तपस्वी गाधिनन्दन विश्वामित्रने मनमें कर्तव्यके विषयपर विचार करके यज्ञकी सामग्रियाँ जुटायीं और मुनियोंको आनेके लिये निमन्त्रण भेज दिया। निमन्त्रित मुनिगण यज्ञका अभिप्राय समझकर आनेसे अस्वीकार कर गये। वसिष्ठजीने उन सबको मना भी कर दिया था। यह बात जानकर विश्वामित्रजी उदास हो गये। उनके दुःखकी सीमा नहीं रही। तब वे जहाँ राजा त्रिशंकु रहता था, वहाँ चले गये। जाकर उन्होंने त्रिशंकुसे कहा—'राजेन्द्र ! वसिष्ठने सभी ब्राह्मणोंको मना कर दिया है। अतः यज्ञमें कोई भी ब्राह्मण सम्मिलित नहीं हो सका। महाराज ! अब तुम मेरी तपस्याका प्रभाव देखो, जिसके बलपर मैं तुम्हें स्वर्गमें भेज रहा हूँ; क्योंकि तुम्हारा मनोरथ तो मुझे पूर्ण करना ही है।' यों कहकर मुनिश्रेष्ठ कौशिकने हाथमें जल लिया और गायत्री-जपसे उपार्जित अपना सारा पुण्य संकल्पके द्वारा राजाको सौंप दिया। पुण्य प्रदान करनेके पश्चात् उन्होंने राजा त्रिशंकुसे कहा—'राजर्षे ! अब तुम सावधान होकर स्वेच्छापूर्वक स्वर्गमें जा सकते हो। राजेन्द्र ! बहुत दिनोंके परिश्रमसे मुझे यह पुण्य प्राप्त हुआ था। तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ इस पुण्यके बलसे इन्द्रलोक पधारो। वहाँ भी तुम्हारा कल्याण हो।'

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय ! ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्रके यों कहनेपर उनकी तपस्याके पुण्य-प्रभावसे उसी क्षण वेगपूर्वक त्रिशंकु ऊपर उड़ा; मानो पक्षी उड़ रहा हो। वह अत्यन्त क्रूर एवं चाण्डालके वेशमें था। जब आकाश-मार्गसे उड़कर इन्द्रलोकके पास पहुँच गया, तब उसे देखकर देवताओंने इन्द्रसे कहा—'प्रभो ! देवताका अनुकरण करके वायुके समान तीव्र गतिसे आकाशमें उड़ता हुआ यह कौन आ रहा है ? श्वपचकी आकृतिवाला यह व्यक्ति देखनेमें बड़ा ही भयंकर है।' इन्द्र झट उठे और उस नीच पुरुषपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। उसे त्रिशंकु जानकर उन्होंने बड़े जोरसे फटकारा और कहा—'अरे घोर निन्दित चाण्डाल ! तू इस देवलोकमें कहाँ आ रहा है ? अभी पृथ्वीपर चला जा। तेरा यहाँ रहना उचित नहीं है।' शत्रुओंको संताप देनेवाले राजन्! इन्द्रके इस प्रकार कहते ही त्रिशंकु स्वर्गसे खिसककर नीचे गिरने लगा, जैसे पुण्य समाप्त हो जानेपर देवता स्वर्गसे उतर आते हैं। गिरते समय राजा त्रिशंकु बारम्बार विश्वामित्रजीका नाम लेकर चिल्लाते हुए बोला कि 'मुनिवर ! मैं स्वर्गसे गिर रहा हूँ। मुझ-जैसे दुःखी व्यक्तिकी रक्षा कीजिये।'

राजन् ! उस गिरते हुए नरेशका रुदन सुनकर मुनिवर कौशिकने उधर दृष्टि दौड़ायी। देखा, वह जमीनपर आ रहा है। अतः उन्होंने कहा— 'ठहरो'। मनुजेन्द्र ! उस समय त्रिशंकु स्वर्गसे चल चुका था; परंतु कौशिक मुनिके कहनेसे उनकी तपस्याके प्रभाववश आधे मार्गमें ही वह रुक गया। तदनन्तर मुनिने एक दूसरे स्वर्ग-लोककी सृष्टि करनेके विचारसे हाथमें जल लेकर आचमन किया और एक विस्तृत यज्ञकी योजना बनायी। विश्वामित्रके इस प्रयत्नको जानकर शचीपति इन्द्र तुरंत उनके पास आ गये। आते ही कहा—'ब्रह्मन् ! साधो ! यह आप क्या कर रहे हैं ? इतने कुपित होनेका क्या कारण है ? मुनिवर ! सृष्टि करनेसे कोई काम सधनेवाला नहीं है। कहो, मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

विश्वामित्रजी बोले—विभो ! महान् दुःखी राजा त्रिशंकु आपके भवनसे गिर चुका है। आप प्रेमपूर्वक उसे अपने स्थानपर ले जानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—विश्वामित्र मुनिके

निश्चयको जानकर इन्द्रके मनमें असीम शंका हुई। फिर भी, मुनिके प्रचण्ड तपोबलपर ध्यान देकर उन्होंने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन देवराजने उसी समय त्रिशंकुको दिव्य देहधारी बनाया और एक उत्तम विमानपर बैठनेकी आज्ञा दी तथा कौशिक मुनिसे पूछकर अपनी पुरी अमरावतीके लिये प्रस्थित हो गये। त्रिशंकुसहित उनके स्वर्ग पधार जानेपर विश्वामित्र परम सुखी होकर अपने आसनपर विराजमान हो गये।

उस समय हरिश्चन्द्र शासन कर रहे थे। उन्होंने सुना कि 'पिताजी अपनी इच्छाके अनुसार स्वर्ग चले गये हैं। यह परम उपकार विश्वामित्रजीने किया है।' अतः उनके हर्षकी सीमा नहीं रही। उन अयोध्या-नरेशकी पत्नी परम सुन्दरी, युवावस्थासे सम्पन्न तथा बड़ी कार्यकुशल थीं। बहुत समय बीत जानेपर भी रानी गर्भवती नहीं हो सकीं। तब महाराज हरिश्चन्द्रके मनमें संताप होने लगा। अतः वे अपने गुरु वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर गये। मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और संतान न होनेसे उत्पन्न जो चिन्ता थी, वह उन्हें कह सुनायी। उन्होंने कहा—'दूसरोंको मान देनेवाले धर्मज्ञ मुने ! आप ज्योतिष एवं मन्त्रविद्याके पारदर्शी विद्वान् हैं। आप मुझे संतान होनेके लिये कोई उपाय करनेकी कृपा कीजिये।'

व्यासजी कहते हैं—ब्रह्माजीके मानस पुत्र मुनिवर वसिष्ठने राजा हरिश्चन्द्रकी यह खेदभरी बात सुनकर मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार करनेके पश्चात् कहा।

वसिष्ठ बोले—महाराज ! तुम सत्य कहते हो। तुम जलके प्रधान देवता वरुणकी उपासना करो। यत्नपूर्वक आराधना करनेसे वे तुम्हारा

कार्य पूर्ण कर देंगे; क्योंकि वरुणसे बढ़कर संतान देनेमें दक्ष दूसरे कोई देवता नहीं हैं। धर्ममें आस्था रखनेवाले राजेन्द्र ! तुम उनकी आराधना करो। कार्य अवश्य सिद्ध हो जायगा। मनुष्योंको चाहिये प्रारब्ध और पुरुषार्थ—दोनोंको मान्यता दे। भला, बिना उद्यम किये कार्य कैसे सिद्ध हो सकता है। नृपसत्तम ! तत्त्वदर्शी मनुष्योंको न्यायपूर्वक उद्यम करना चाहिये। प्रयत्न करनेपर कार्यमें सफलता मिल सकती है। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है।

राजन् ! अमित तेजस्वी गुरुदेव वसिष्ठकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने तप करनेका निश्चय करके मुनिको प्रणाम किया और वहाँसे यात्रा कर दी। गङ्गाके तटपर एक परम पवित्र स्थान था, वहीं पद्मासन लगाकर वे बैठ गये। चित्तमें वरुणदेवका ध्यान करते हुए उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। महाराज ! इस प्रकार तपमें संलग्न हरिश्चन्द्रपर खिले हुए कमलके समान प्रसन्न मुखवाले वरुणदेवने कृपा कर दी। वे सामने प्रकट हो गये और उन नरेशसे बोले—'धर्मज्ञ ! वर माँगो; मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ।'

राजा हरिश्चन्द्रने कहा—मुझे कोई संतान नहीं है। आप सुखदायी पुत्र देनेकी कृपा कीजिये। तीनों ऋणसे मुक्त होनेके लिये मैंने यह उद्यम किया है। तदनन्तर वरुणदेवने कृपाकर उन्हें पुत्र प्रदान किया।

इसके बाद हरिश्चन्द्रके जीवन-सम्बन्धी और भी कई बातें श्रीव्यासजीने सुनायीं।

(अध्याय १३—१७)

☆

## राजा हरिश्चन्द्रपर विश्वामित्रका कोप तथा विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर हरिश्चन्द्रका राज्यदान, दक्षिणाके लिये हरिश्चन्द्रके साथ विश्वामित्रका दुर्व्यवहार

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! एक समयकी बात है—राजा हरिश्चन्द्र शिकार खेलने जंगलमें गये थे। वहाँ उन्होंने देखा, मनोहर नेत्रोंवाली एक सुन्दरी स्त्री रो रही है। करुणावश उससे उन्होंने पूछा—'कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली वरानने ! तुम क्यों रो रही हो ? अभी बताओ, किसने तुम्हें कष्ट दिया है ? तुम क्यों अपार दुःखमें पड़ी हो ? इस निर्जन वनमें रहनेवाली तुम कौन हो और कौन तुम्हारे पिता एवं पति हैं ? कान्ते ! मेरे राज्यमें तो राक्षस भी दूसरेकी स्त्रीको कष्ट नहीं पहुँचाते। सुन्दरी ! तुम्हें जो दुःख देता हो उसे मैं अभी मार डालूँगा। वरारोहे ! तुम अपना दुःख बताकर शान्तभावसे यहीं रहो। कृशोदरी सुमध्यमे ! मेरे राज्यमें कोई भी दुराचारी नहीं रह सकता।'

महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर अपने मुखपर फैले हुए आँसुओंको पोंछनेके पश्चात् वह स्त्री उनसे कहने लगी।

स्त्रीने कहा—राजन् ! मेरे लिये वनमें रहकर जो कठिन तपस्या कर रहे हैं, उन मुनिवर विश्वामित्रसे ही मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन् ! आपके राज्यमें रहकर मेरे महान् कष्ट पानेका यही कारण है। मुनिसे अत्यन्त सतायी जानेवाली मैं कमना नामकी स्त्री हूँ—यही मेरा साधारण परिचय है।

राजाने कहा—विशालाक्षी ! तुम अपने स्थानपर आनन्दसे रहो। अब तुम्हें कष्टका सामना नहीं करना पड़ेगा। तपस्यामें तत्पर

रहनेवाले उन मुनिको मैं मना कर दूँगा।

इस प्रकार उस स्त्रीको आश्वासन देकर राजा हरिश्चन्द्र तुरंत विश्वामित्रके पास गये। नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। साथ ही कहा—'मुनिवर ! आप इतनी कठिन तपस्यासे शरीरको क्यों संकटग्रस्त बना रहे हैं ? महामते ! किस प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये आपकी यह तैयारी है ? यथार्थ बात बतानेकी कृपा करें। गाधिनन्दन मुने ! मैं आपका अभिलषित कार्य सफल करनेके लिये तैयार हूँ। अब इससे आगे तपस्या करनेका विचार छोड़कर आप इसी क्षण उठ जानेकी कृपा करें। सर्वज्ञ मुने ! मेरे राज्यमें रहकर कभी किसीको भी इस प्रकारकी कठिन तपस्या नहीं करनी चाहिये; क्योंकि लौकिक शरीरके लिये ऐसा तप महान् कष्टप्रद होता है।'

इस प्रकार विश्वामित्रको तप करनेसे रोककर राजा हरिश्चन्द्र घर चले गये। हरिश्चन्द्रकी इस क्रियासे मुनिके मनमें क्रोध छा गया। वे अपने स्थानको चले गये और बदला लेनेकी बात सोचने लगे। तरह-तरहसे सोचनेके पश्चात् उन्होंने एक भयंकर दानवको राजा हरिश्चन्द्रके पास जानेकी आज्ञा दी। मुनिके प्रयाससे उस समय वह दानव सूअरके रूपमें परिणत हो गया था। उसके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल थी। वह महाकाल-जैसा जान पड़ता था। वह भयंकर शब्द करता हुआ राजा हरिश्चन्द्रके उपवनमें पहुँच गया। रक्षकोंको भयभीत करना मानो उसका स्वभाव बन गया था। उसने उपवनको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तब हाथमें शस्त्र लेकर उस उपवनकी रखवाली करनेवाले सभी रक्षक वहाँसे भाग चले। मालियोंने अत्यन्त डरकर 'हा हा' की आवाजके साथ चिल्लाना आरम्भ कर दिया। कालकी तुलना करनेवाला वह सूअर जब बाणोंसे मारे जानेपर भी निर्भीकतापूर्वक रक्षकोंको पीड़ित करनेमें लगा रहा, तब तो उन रखवालोंके भयकी सीमा नहीं रही। वे राजा हरिश्चन्द्रकी शरणमें गये। भयसे अधीर होकर काँपते हुए उन्होंने कहा—'हमें बचाइये, बचाइये।' तब डरसे अत्यन्त घबराये हुए उन उपस्थित रक्षकोंको देखकर राजाने पूछा—'रक्षको ! तुम्हें किससे क्या भय है ? शीघ्र बताओ। रक्षको ! मैं देवताओं और राक्षसोंसे नहीं डरता। किसने तुम्हें भय पहुँचाया है, मेरे सामने सब कहो। उस भाग्यहीन शत्रुको अभी एक ही बाणसे मैं मार डालता हूँ।'

मालियोंने कहा—राजन् ! देवता, दानव, यक्ष अथवा किन्नर—इनमेंसे वह कोई नहीं है। विशाल शरीरवाला कोई एक सूअर उपवनमें आ घुसा है। इस सूअरने अपने दाँतोंसे पुष्पोंके समस्त वृक्षोंको रौंद डाला है। उपवनमें पैठते ही उसने सब तोड़-ताड़कर चौपट कर दिया है। महाराज ! हमारे बाण, लाठी और पत्थरसे चोट पहुँचानेपर भी वह निर्भीकतापूर्वक हमें मारनेके लिये टूट पड़ा।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! महाराज हरिश्चन्द्र मालियोंका यह वचन सुनकर क्रोधसे तमतमा उठे। उसी क्षण घोड़ेपर चढ़कर वे उपवनकी ओर चल पड़े। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त एक विशाल सेना साथ लेकर वे झट उस श्रेष्ठ उपवनमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने विशाल शरीरवाले एक भयंकर सूअरको गुर्राते हुए देखा। उसने उपवनको चौपट कर दिया था—यह देखकर वे कुपित हो उठे। तदनन्तर उन्होंने धनुषपर बाण

चढ़ाकर उसे खींचा और उस पापी सूअरको मारनेके लिये उसपर छोड़ दिया। क्रोधसे व्याकुल उन धनुर्धर नरेशको देखकर वह सूअर अत्यन्त भयजनक शब्द करता हुआ तुरंत सामने दौड़ आया। उस विकृत मुखवाले वराहपर दृष्टि पड़ते ही राजा उसे मारनेके लिये बाणोंका प्रयोग करने लगे। उस समय उनके बाणोंको विफल करके बलपूर्वक बड़ी शीघ्रताके साथ वह सूअर वहाँसे निकल भागा। उसने राजाकी बिलकुल परवा न की। अब हरिश्चन्द्रके क्रोधकी सीमा नहीं रही। भागते हुए उस सूअरको देखकर उन्होंने धनुषपर यत्नपूर्वक तीक्ष्ण बाण चढ़ाये और खींचकर उसपर छोड़ने लगे। कभी वह दिखायी पड़ता और कभी झट ओझल हो जाता था और कभी अनेक प्रकारके शब्द करते हुए राजाके पास पहुँच जाता। महाराज हरिश्चन्द्र क्रोधवश उस सूअरके पीछे पड़ गये। वे वायुकी तुलना करनेवाले शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़े और हाथमें धनुष लेकर उन्होंने उसका पीछा करना आरम्भ किया। एक वनसे दूसरे वनतक तो सेना साथ दे सकी। फिर वह पीछे रह गयी और राजा उस भागते हुए सूअरका पीछा करनेमें लगे रहे। ठीक मध्याह्नकालमें राजा हरिश्चन्द्र एक निर्जन वनमें जा पहुँचे। भूख-प्याससे उनका चित्त घबरा रहा था। वे थक भी गये थे। सूअर आँखोंसे ओझल हो चुका था। अतः वे चिन्तासे अधीर हो गये। उस बीहड़ वनमें कौन रास्ता किधर जाता है यह जाननेमें भी वे असमर्थ हो गये। उनकी दशा बड़ी ही दयनीय हो गयी। वे सोचने लगे—'अब क्या करें, किधर जायँ। इस बीहड़ निर्जन वनमें कौन मेरी सहायता करेगा तथा मार्ग भूल जानेसे मैं जा भी कहाँ सकता हूँ।'

इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र उस जनशून्य वनमें चिन्ता कर रहे थे। उनकी घबराहटकी सीमा नहीं थी। इतनेमें एक स्वच्छ जलवाली नदी उन्हें दिखायी पड़ी, देखकर वे बड़े हर्षित हुए। वे घोड़ेसे उतर गये। उसे स्वादिष्ट जल पिलाया और स्वयं भी पीया। जब जल पी लेनेपर उनका चित्त परम शान्त हो गया, तब वे नगरमें जानेका विचार करने लगे, परंतु दिग्भ्रम होनेके कारण कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये। इतनेमें विश्वामित्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके उनके सामने आ गये। श्रेष्ठ ब्राह्मणको सामने देखकर राजाने आदरपूर्वक प्रणाम किया। वे प्रणाम कर ही रहे थे कि विश्वामित्रने उनसे कहा—'महाराज ! तुम्हारा कल्याण हो। यहाँ कैसे आनेका कष्ट किया ? राजन् ! किस अभिप्रायसे इस निर्जन वनमें तुम अकेले आ गये ? राजेन्द्र ! शान्तचित्त होकर अपने आगमनका सम्पूर्ण कारण बतानेकी कृपा करो।'

राजा हरिश्चन्द्रने कहा—मुनिवर ! एक स्थूल शरीरवाला बलवान् सूअर मेरे उपवनमें पहुँचकर पुष्पोंके कोमल वृक्षोंको रौंदने लगा। उसीको रोकनेके लिये हाथमें धनुष लेकर मैं सेनासहित अपने नगरसे निकल पड़ा। अब वह मायावी सूअर आँखोंसे ओझल हो गया है। पता नहीं, इतनी शीघ्रतासे वह कहाँ चला गया। मैं भी उसके पीछे लग गया था। मेरी सेना किसी दूसरी ओर चली गयी। सैनिकोंसे साथ छूट जानेपर भूख और प्याससे आतुर हो मैं यहाँ आ गया। मुने ! मैं नगरमें जानेका मार्ग भूल गया हूँ। सेना किधर चली गयी—इसका भी मुझे पता नहीं। विभो ! आप कृपया मार्ग बता

दें, जिससे मैं नगरमें जा सकूँ। मेरे सौभाग्यसे ही इस जनशून्य वनमें आपका दर्शन हुआ है। मैं अयोध्याका राजा हूँ। मेरा नाम हरिश्चन्द्र है। इस समय मैं राजसूय यज्ञके नियमका पालन करता हूँ। जिसकी जिस वस्तुकी इच्छा हो, वही वस्तु वह मुझसे पा सकता है। ब्रह्मन्! द्विजवर! यदि आप यज्ञ करनेके लिये धन चाहते हों तो आपको अयोध्यामें पधारनेकी कृपा करनी चाहिये। मैं आपकी सेवामें प्रचुर सम्पत्ति उपस्थित कर दूँगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर विश्वामित्र मुनिके मुखपर मुसकान छा गयी। वे उनसे कहने लगे—'राजन्! यह पुण्यमय पवित्र तीर्थ पापोंका नाश करनेवाला है। महाभाग! इसमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करो। भूपते! यह समय भी बहुत उत्तम है। इस शुभ अवसरपर इस परम पावन तीर्थमें स्नान करके तुम्हें अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये। स्वायम्भुव मनुने कहा है, जो महान् पवित्र तीर्थमें पहुँचकर वहाँ स्नान किये बिना ही लौटकर चला जाता है, वह आत्महत्यारा है। अतएव राजन्! तुम इस उत्तम तीर्थमें अपनी शक्तिपर ध्यान रखते हुए स्नान-दान-पुण्य अवश्य करो। इसके पश्चात् मैं तुम्हें मार्ग दिखला दूँगा, तुम अपने नगरको चले जाना।'

विश्वामित्रके इस वचनमें कपट भरा हुआ था। सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने अपने वस्त्र उतारे और विधिवत् स्नान करनेके लिये वे नदीके तटपर आ गये। घोड़ेको उन्होंने एक वृक्षमें बाँध दिया। विश्वामित्रके कपट-वाक्यसे राजाकी बुद्धि विमोहित हो गयी थी, अथवा होनी टाली नहीं जा सकती— इसे सत्य करनेके लिये उस समय राजा मुनिके वशीभूत हो गये थे। उन्होंने विधिवत् स्नान करके पितरों और देवताओंका तर्पण किया। तदनन्तर विश्वामित्रसे कहा—'स्वामिन्! मैं आपको दान देनेके लिये तैयार हूँ। महाभाग! आपकी जो इच्छा हो, वही मैं उपस्थित कर दूँगा। गौ, पृथ्वी, सोना, हाथी, घोड़ा और रथ आदि वाहन—आप चाहे जो ले सकते हैं। मेरे पास कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। सर्वोत्तम राजसूय यज्ञमें मुनिगण पधारे थे। उनकी संनिधिमें इस व्रतका पालन करनेके लिये मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अतएव मुने! इस उत्तम तीर्थमें भाग्यवश आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। आप जो भी वस्तु चाहते हों, उसके लिये आज्ञा दें। मैं आपका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूँ।'

विश्वामित्र बोले—राजन्! तुम्हारी विपुल कीर्ति संसारमें व्याप्त है—इस बातकी जानकारी मुझे बहुत पहलेसे है। वसिष्ठने कहा था कि 'भूमण्डलपर कोई ऐसा दाता नहीं है। ये महाराज हरिश्चन्द्र सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। इनके समान दानशील राजा न पहले हुआ है और न आगे होगा। इनके पिताका नाम त्रिशंकु था। पृथ्वीपर ये परम उदार नरेश माने जाते हैं।' इसलिये राजन्! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे यहाँ पुत्रके विवाहकी समस्या उपस्थित है। महाभाग! इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिये मुझे धन देनेकी कृपा करो।

राजाने कहा—विप्रेन्द्र! आप विवाह कीजिये। मैं आपके आज्ञानुसार धन देनेको तैयार हूँ। जितना धन चाहते हों, उतना आपको दे दिया जायगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार हरिश्चन्द्रके कहनेपर उन्हें ठगनेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील विश्वामित्रने गान्धर्वी माया प्रकट करके सामने उपस्थित कर दी। एक सुकुमार पुत्र और एक दस वर्षकी कन्या—ये दोनों उन्हें दृष्टिगोचर होने लगे। मुनिने कहा—'नृपश्रेष्ठ ! आज इन्हीं दोनोंका विवाह करना परम आवश्यक हो गया है। किसी गृहस्थीके लड़के-लड़कीका विवाह कर दिया जाय तो इसका पुण्य राजसूय यज्ञसे भी बढ़कर है। इस समय तुम यदि इस विवाह-कार्यको सम्पन्न कर देते हो तो अवश्य पुण्यके भागी बन जाओगे।' महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्रकी मायासे अपनी विवेक-शक्ति खो चुके थे। उपर्युक्त बात सुनकर उन्होंने धन देनेकी प्रतिज्ञा कर ली। कहा, 'बहुत अच्छा, मैंने जो कहा है, उसमें किंचिन्मात्र त्रुटि न होगी।' तब मुनिने मार्ग बता दिया और राजा उसी रास्ते अपने नगरको चले गये। उन्हें ठगकर विश्वामित्रने भी अपने आश्रमकी राह पकड़ी। तदनन्तर हरिश्चन्द्रके पास पहुँचकर उनसे कहा—'राजन् ! वेदीका कार्य पूर्ण होनेके लिये इस सुअवसरपर आज तुम मुझे अभिलषित दान देनेकी कृपा करो।'

राजा हरिश्चन्द्रने कहा—द्विजवर ! आप क्या चाहते हैं, बताइये। मैं आपकी अभिलषित वस्तु अवश्य दूँगा, देनेको तत्पर हूँ। मेरे लिये जगत्‌में यदि कोई अदेय वस्तु है, तो यह केवल यश है; क्योंकि जिसने धन पाकर यश नहीं कमाया, उसका जीवन व्यर्थ समझा जाता है। निर्मल यशके कारण परलोकमें भी सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

विश्वामित्र बोले—महाराज ! परम पुनीत वेदीके इस शुभ अवसरपर आप हाथी, घोड़ा, रथ और रत्नोंसे भरा-पूरा सम्पूर्ण राज्य वरको दहेजके रूपमें दे दीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! विश्वामित्रकी मायासे मोहित हो जानेके कारण हरिश्चन्द्रने उनकी बात सुनकर कुछ भी विचार नहीं किया। झट कह दिया 'बहुत ठीक, इच्छानुसार राज्य मैंने आपको दे दिया।' तुरंत ही अत्यन्त कठोर हृदयवाले विश्वामित्र बोले—'हाँ, मैं पा चुका, परंतु राजेन्द्र ! महामते ! अब दानकी साङ्गताके लिये दक्षिणा भी तो चाहिये; क्योंकि मनुने कहा है, बिना दक्षिणाका दान निष्फल समझा जाता है। अतएव दानको सफल बनानेके लिये तुम यथोचित दक्षिणा देनेका प्रबन्ध करो।'

राजन् ! जब विश्वामित्रने यों कहा, तब हरिश्चन्द्रके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वे उनसे कहने लगे—'स्वामिन् ! इस समय आपकी सेवामें मुझे कौन-सा धन उपस्थित करना चाहिये ? साधो ! आप बतावें, जितनी दक्षिणा हो, उसे देनेके लिये मैं तत्पर हूँ। तपोधन ! आप शान्त रहिये। दानकी पूर्तिके लिये मैं दक्षिणा अवश्य दूँगा।'

राजा हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर विश्वामित्र बोले—'राजन् ! अब ढाई भार सोना दक्षिणामें दीजिये।' सुनकर विस्मयविमुग्ध राजाने उत्तर दिया—'हाँ, ठीक है, दूँगा।' उसी समय राजा हरिश्चन्द्रके सैनिक आ पहुँचे। महाराजको देखकर उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु उन्हें चिन्तित देखकर सैनिकोंने प्रार्थनापूर्वक उनसे चिन्ताका कारण पूछा।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सैनिकोंके पूछनेपर महाराज हरिश्चन्द्रने भला-बुरा कुछ भी

उत्तर नहीं दिया। अपने किये हुए कार्यपर विचार करते हुए वे अन्तःपुरमें चले गये। सोचा, अरे ! जिसमें अपना सर्वस्व समर्पण हो जाता है, ऐसा दान देना मैंने स्वीकार ही क्यों किया। इस ब्राह्मणने तो ठगोंकी भाँति वाग्जालमें फँसाकर मुझे ठग लिया। सामग्रियोंसहित सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मणको देनेके लिये मैं वचनबद्ध हो गया; फिर साथमें ढाई भार सोना देनेकी भी मैंने प्रतिज्ञा कर ली। मुनिका यह कपट मेरी समझमें नहीं आ सका। अकस्मात् उस तपस्वी ब्राह्मणके धोखेमें मैं पड़ गया। निश्चय ही विधिका विधान समझमें नहीं आता। पता नहीं, अब भविष्यमें क्या होनेवाला है।

इस प्रकार गहरी चिन्तामें पड़े हुए राजा हरिश्चन्द्र अन्तःपुरमें चले गये। उन्हें चिन्ताग्रस्त उदास देखकर रानीने चिन्ताका कारण पूछा— 'प्रभो ! इस समय आप क्यों इतने उदास हैं ? कौन-सी चिन्ता आपको सता रही है ? मुझे बतानेकी कृपा करें। राजेन्द्र ! आपका पुत्र सकुशल है। राजसूय यज्ञमें आपको सफलता प्राप्त हो गयी है। फिर शोक क्यों करते हैं ? इसका कारण स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिये। इस समय बलवान् अथवा निर्बल कोई कहीं भी आपका शत्रु नहीं है। वरुण भी आपके व्यवहारसे परम संतुष्ट हैं। जगत्में आप धन्यवादके पात्र माने जाते हैं। परम बुद्धिमान् राजेन्द्र ! चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है। चिन्ताके समान दूसरी कोई मृत्यु नहीं है। अतः आप इसे छोड़कर स्वस्थ हो जाइये।'

राजन् ! पत्नीके वचन सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने प्रीतिपूर्वक उसे चिन्ताका कारण बतलाना चाहा, पर बता नहीं सके। उस समय उनका रोम-रोम चिन्तासे व्याप्त था, भोजनतक छूट गया था। वे स्वच्छ शय्यापर सोये थे, परंतु उन्हें नींद नहीं आ सकी। चिन्तातुर महाराज हरिश्चन्द्र प्रातःकाल उठकर जब संध्या-वन्दन आदि क्रिया सम्पन्न कर रहे थे, ठीक उसी समय विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे। उन सर्वस्वहारी मुनिके आनेकी सूचना द्वारपालोंने राजाके पास पहुँचायी। आज्ञा पाकर मुनि अंदर आये।
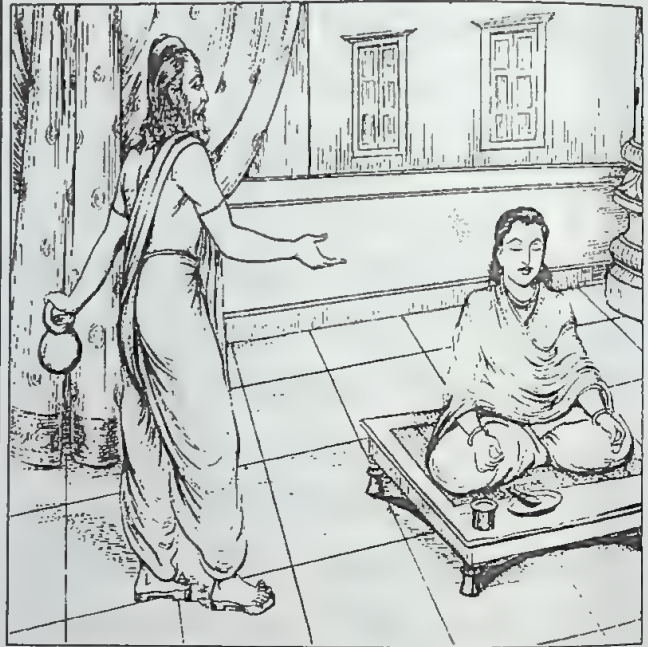
राजाने बार-बार उन्हें प्रणाम किया। उसी क्षण मुनि कहने लगे।

विश्वामित्रने कहा—राजन् ! राज्यकी ममता छोड़कर अब इसे मुझे दे दो; क्योंकि वाणीसे तुम इसे मुझको दे चुके हो। राजेन्द्र ! अब सुवर्ण-दक्षिणा देकर तुम्हें अपनी सत्यवादिता सिद्ध करनी चाहिये।

राजा हरिश्चन्द्र बोले—कुशिक-वंशको सुशोभित करनेवाले प्रभो ! अब यह मेरा राज्य नहीं है। मैं इसे दे चुका। मैं यहाँसे अन्यत्र चला जाऊँगा। आप चिन्ता न करें। ब्रह्मन् ! विभो ! द्विजवर ! मेरा सर्वस्व आपकी सेवामें समर्पित है। आप इसपर अपना अधिकार कर लें। अभी

इस समय दक्षिणावाला सुवर्ण देनेमें मैं असमर्थ हूँ। जिस समय मेरे पास धन आयेगा, उसी क्षण मैं आपकी दक्षिणा अवश्य चुकाऊँगा।

इस प्रकार विश्वामित्रसे बातचीत करके राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहित तथा भार्या माधवीसे कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य इन ब्राह्मणको मैं दान कर चुका हूँ। हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और सुवर्ण आदि—सभी सामान इस दानके अन्तर्गत आ गये। केवल हम तीन व्यक्तियोंके शरीरोंको छोड़कर और सब-का-सब इन्हें समर्पित हो गया। अतः हमलोगोंको अब अयोध्या छोड़कर किसी एक गहन वनमें चले चलना चाहिये। मुनि इस समृद्धिशाली राज्यका भलीभाँति उपभोग करें।'

राजन्! अपने पुत्र और पत्नीसे यों कहकर परम धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र राजभवनसे निकल गये। उस समय भी विश्वामित्रके प्रति उन सदाचारी राजाके मुखसे आदरके ही शब्द निकल रहे थे। उन्हें जाते देखकर पुत्र रोहित तथा रानी माधवी भी उनके साथ हो लिये। इन तीनोंकी यह स्थिति देखकर नगरमें हाहाकार मच गया। अयोध्यामें रहनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंकी आँखें जल बरसाने लगीं। वे पुकार-पुकारकर रोने लगे—'हा राजन्! आपने यह क्या कर डाला? कहाँसे क्लेशकी यह सघन घटा आपके ऊपर घिर आयी। महाराज! यह निश्चय है कि आप दैववश इस धूर्त ब्राह्मणके धोखेमें आ गये।'

महात्मा पुत्र तथा साध्वी रानीके सहित राजा हरिश्चन्द्रकी यह दशा देखकर सभी वर्णके लोग अत्यन्त खेद प्रकट करने लगे। पुरवासियोंने उस दुराचारी ब्राह्मणकी घोर निन्दा आरम्भ कर दी। ब्राह्मणलोग दुःखसे घबराकर कहने लगे—'यह महान् धूर्त है।'

महाराज हरिश्चन्द्र नगरसे निकलकर जा रहे थे। इतनेमें विश्वामित्र आ गये और बड़ी निष्ठुरतासे कहने लगे—''राजन्! मेरी दक्षिणाका सुवर्ण अभी देकर जाओ अथवा कह दो कि मैं नहीं दूँगा; फिर तो मैं वह सोना छोड़ दूँगा। राजन्! तुम्हारे हृदयमें राज्यका लोभ हो तो इसे भी वापस ले सकते हो। 'देनेके लिये प्रतिज्ञा कर चुका हूँ'—इसपर तुम्हारी मान्यता होनी चाहिये; फिर देनेमें क्या हिचक?''

विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर सत्यप्रतिज्ञ राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त दीनता प्रकट करते हुए प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर कहने लगे।

(अध्याय १८-१९)

☆

## विश्वामित्रकी दक्षिणा चुकानेके लिये राजा हरिश्चन्द्रका काशीगमन, रानीसे बातचीत, ब्राह्मणके हाथ रानी और राजकुमारका विक्रय

राजा हरिश्चन्द्रने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिवर! मेरी प्रतिज्ञा है कि आपको बिना सुवर्ण दिये मैं भोजन नहीं करूँगा! आप विषाद न करें। मेरा जन्म सूर्यवंशमें हुआ है। मैं एक क्षत्रिय नरेश हूँ। मनुष्योंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला राजसूय यज्ञ मेरेद्वारा सम्पन्न हो चुका है। स्वामिन्! द्विजसत्तम! इच्छानुसार दान देकर फिर मैं 'नाहीं' कैसे कर सकता हूँ? आपका ऋण चुकाना मेरे लिये परम कर्तव्य है। शान्त रहिये। मैं आपको अभीष्ट सुवर्ण अवश्य

दूँगा। हाँ, जबतक मुझे धन न मिले तबतक कुछ समयके लिये आप कृपया प्रतीक्षा करें।

विश्वामित्र बोले—राजन्! फिर तुम्हें धन कहाँसे मिलेगा? राज्य हाथसे चला गया। खजानोंपर तुम्हारा अधिकार रहा नहीं। अर्थ उपार्जन करनेकी साधनभूता सेना तुम्हारे पास रही नहीं। राजन्! अब तुम्हें धनकी आशा करना बिलकुल व्यर्थ है। मैं क्या करूँ? तुम निर्धन व्यक्तिको धनके लोभसे मैं पीड़ित भी कैसे करूँ? अतएव राजन्! कह दो, 'अब मैं नहीं दे सकूँगा।' तब मैं धन पानेकी अपनी बड़ी आशा छोड़कर चला जाऊँगा। राजेन्द्र! 'मेरे पास सोना नहीं है, आपको क्या दूँ।' यों कहकर स्त्री और पुत्रके साथ अब तुम्हें इच्छानुसार चले जाना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! महाराज हरिश्चन्द्रने विश्वामित्र मुनिकी यह बात सुनकर उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! आप धैर्य रखें। मैं आपको धन अवश्य दूँगा। द्विजवर! मेरा, मेरे पास और कुछ भी नहीं बचा है—यह सत्य है, परंतु स्त्रीका और पुत्रका पवित्र शरीर तो अभी शेष है। इन्हें बेचकर मैं आपका ऋण अवश्य चुकाऊँगा। द्विजेन्द्र! प्रभो! आप काशीपुरीमें किसी ग्राहकका अन्वेषण कीजिये। स्त्री एवं पुत्रसहित मैं उसकी सेवा करूँगा। मुने! हम सब लोग उसके हाथ बिक जायँगे। आप हमारे मूल्यसे ढाई भार सोना लेकर संतुष्ट हो जायँ।'

इस प्रकार कहकर पत्नी और पुत्रके सहित राजा हरिश्चन्द्र उस काशीमें चले गये, जहाँ स्वयं भगवान् शंकर प्राणप्रिया उमाके साथ विराजते हैं। मनमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाली उस दिव्य पुरीको देखकर राजाने कहा—'यह पुरी बड़ी ही देदीप्यमान है। इसके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया।' फिर वे गङ्गाके तटपर गये। स्नान और देवताओंका तर्पण किया। देवार्चनविधि सम्पन्न करके वे चारों ओर घूमकर देखने लगे। उस दिव्य काशीपुरीमें जानेपर राजाने सोचा, यह पुरी त्रिशूलधारी भगवान् शंकरकी सम्पत्ति है। दुःखसे अधीर होकर अत्यन्त घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्र पैदल ही चलकर नगरमें प्रविष्ट हुए थे। रानी साथ थी। काशीपुरीमें प्रवेश हो जानेपर महाराजका मन कुछ आश्वस्त-सा हो गया। इतनेमें दक्षिणा पानेकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिवर विश्वामित्र सामने उपस्थित हो गये। मुनिको देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने विनयपूर्वक नम्रता प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथ जोड़ लिये और कहा—'मुने! ये मेरे प्राण, पुत्र और प्रिय पत्नी सब-के-सब सेवामें उपस्थित हैं। इनमेंसे जिससे आपका काम सध सके, उसे ही आप शीघ्र ही स्वीकार कर लीजिये। मुनिवर! यदि हमसे अन्य भी कोई कार्य होनेकी सम्भावना हो तो वह भी बतानेकी कृपा करें।'

विश्वामित्र बोले—राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। आज महीना पूरा हो रहा है। तुम्हें यदि अपनी प्रतिज्ञा याद हो तो प्रतिश्रुत दक्षिणा देनेका अभी प्रयास करो।

राजाने कहा—ज्ञान और तपके बलसे शोभा पानेवाले ब्रह्मन्! आज अवश्य ही महीना पूरा हो जायगा, परंतु अभी आधा दिन अवशेष है। तबतक आप प्रतीक्षा करें। दूसरे दिन न रुकियेगा।

विश्वामित्र बोले—महाराज! ऐसा ही हो। मैं फिर आ जाऊँगा। परंतु यदि उस समय भी तुम न दे सके तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।

जब यों कहकर विश्वामित्र चले गये तब राजा हरिश्चन्द्रने सोचा—'जिसे देनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, वह दक्षिणा इन मुनिको मैं कैसे चुकाऊँ ? कहाँसे मेरे धनी-मानी मित्र मिल जायँ अथवा इतनी सम्पत्ति ही मुझे कहाँ मिल जाय। किसी दुर्जन व्यक्तिके पास यदि धनका संग्रह भी हो तो मैं उससे माँगूँ कैसे ? धर्मशास्त्रोंमें राजाओंके लिये निश्चितरूपसे तीन वृत्तियाँ बतायी गयी हैं। अर्थात् माँगना राजाका कर्तव्य नहीं है और यदि दक्षिणा चुकाये बिना ही प्राण त्याग दूँ तो ब्राह्मणकी वृत्ति अपहरण करनेके कारण मुझ अत्यन्त अधम एवं पापीको कीड़ेकी योनिमें जाना पड़ेगा। अथवा मैं प्रेत हो जाऊँगा। इससे अच्छा है कि अपनेको बेच ही डालूँ।'

सूतजी कहते हैं—राजा हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर नीचा मुख किये हुए सोच रहे थे। उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उस समय रानी गरम श्वास लेती हुई गद्‌गद वाणीमें उनसे कहने लगी—'महाराज ! चिन्ता छोड़कर अपने सत्यधर्मका पालन कीजिये; क्योंकि सत्यरूपी धर्मसे बहिष्कृत मनुष्य प्रेतके समान त्याज्य समझा जाता है। पुरुषव्याघ्र ! अपने सत्य वचनका पालन करना परम श्रेष्ठ धर्म है। पुरुषके लिये इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जिसकी बात मिथ्या हो उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और दान आदिकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि विवेकी पुरुषोंके उद्धारमें जैसे सत्य परम कारण है, वैसे ही दुराचारियोंके पतनमें असत्य*। सौ अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करनेके पश्चात् एक बार झूठ बोल देनेसे राजाको स्वर्गसे च्युत हो जाना पड़ा था।'

राजा हरिश्चन्द्रने कहा—गजगामिनि ! वंशकी वृद्धि करनेवाला यह पुत्र विराजमान है ही। अतः जो भी इच्छा हो, कहो। मैं उसे करनेके लिये तैयार हूँ।

रानीने कहा—राजन् ! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये। पुरुषोंकी स्त्रियाँ पुत्र प्रसव कर देनेपर सफल हो जाती हैं। अतः अब मुझे धन लेकर दूसरेको दे दें और उसी वित्तसे ब्राह्मणकी दक्षिणा चुकानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! पत्नीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अचेत हो गये। फिर मूर्च्छा दूर होनेपर अत्यन्त दुःखी होनेके कारण विलाप करते हुए कहने लगे—'भद्रे ! यह बहुत ही दुःखद विषय है जो तुम्हारे मुखसे ऐसी बातें निकल रही हैं। तुम्हारे मुसकानभरे वचन क्या मुझ पापीको याद नहीं हैं। हा ! हा ! शुचिस्मिते ! 'मैं तुमको बेच डालूँ'—तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। भामिनी ! तुम यह अप्रिय वचन कैसे कह रही हो।'

राजन् ! स्त्रीके बेचनेकी बात सामने आनेपर महाराज हरिश्चन्द्रके धैर्यका बाँध टूट गया ! उपर्युक्त बातें कहकर वे भूमिपर गिर पड़े

---

* त्यज चिन्तां महाराज स्वधर्ममनुपालय। प्रेतवद् वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य च। यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम्॥
अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः। भवन्ति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत्॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्। तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम्॥
(७।२०।२९—३२)

और उन्हें मूर्च्छा आ गयी। उन्हें पृथ्वीकी गोदमें मूर्च्छित पड़े देखकर राजकुमारीके दुःखकी सीमा नहीं रही। उसने पतिदेवसे करुणापूर्वक यह वचन कहा—'महाराज ! यह किसकी असावधानीसे उत्पन्न हुआ संकट सामने उपस्थित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप आप आज दरिद्रकी भाँति शरणार्थी होकर धरतीपर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ोंकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको सुगमतापूर्वक दे डाली, वे ही पृथ्वीपर शासन करनेवाले मेरे पतिदेव आज पृथ्वीपर पड़े हैं। हा ! महान् दुःखकी बात है। दैव ! इन नरेशने तुम्हारा कौन-सा अप्रिय कार्य कर दिया, जिससे रूठकर तुमने इन्द्र और उपेन्द्रकी तुलना करनेवाले महाराजके जीवनमें ऐसी दयनीय दशा उपस्थित कर दी।'

इस प्रकार कहकर रानी भी मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। स्वामीके दुःखका भार उन्हें असह्य हो गया था। उससे वह अत्यन्त संतप्ता थीं। उस समय कुमार रोहित भूखसे कष्ट पा रहा था। उसने माता और पिताकी ओर देखकर कहा—'पिताजी ! पिताजी ! मुझे अन्न दीजिये। माता ! मुझे भोजन दो। मुझे बहुत जोरकी भूख लगी है। मेरी जीभ सूखी जा रही है।'

राजन् ! इतनेमें महान् तपस्वी विश्वामित्र आ पहुँचे। वे क्रोधमें यमराजकी तुलना कर रहे थे। अपना दक्षिणा-सम्बन्धी धन माँगनेके लिये उनका आना हुआ था। मुनिको देखकर राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छा आ गयी। वे पुनः पृथ्वीपर गिर पड़े। तब विश्वामित्रने जलके छींटे देकर उनसे यह वचन कहा—'राजेन्द्र ! उठो और अपनी अभीष्ट दक्षिणा देनेका प्रयत्न करो; क्योंकि ऋणियोंका ऋणभय प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है।' मुनिने ठंढे जलके जो छींटे दिये थे, उससे होशमें आकर उन्होंने विश्वामित्रकी ओर देखा। तब द्विजवर विश्वामित्र कुपित होकर आश्वासन देनेके साथ ही राजासे कहने लगे।

विश्वामित्रने कहा—राजन् ! तुम्हें यदि धैर्य अभीष्ट हो तो मुझे दक्षिणा देनेकी कृपा करो। कारण, सत्यके प्रभावसे ही सूर्य तपते हैं। सत्यके ऊपर ही यह पृथ्वी स्थित है। सत्यपर परमधर्मकी मान्यता निर्भर है तथा स्वर्गकी प्रतिष्ठा भी सत्यसे ही है। यदि सौ अश्वमेध यज्ञ और सत्य तराजूके पृथक्-पृथक् पलड़ेपर रख दिये जायँ तो उन सौ अश्वमेध यज्ञोंसे एक सत्य ही बढ़ जायगा; परंतु इन सब बातोंके कहने-सुननेसे मुझे क्या प्रयोजन। मुझे तो तुम तुरंत मेरी दक्षिणा दो। राजन् ! यदि तुमसे दक्षिणा न मिली तो देखो, सूर्यके अस्ताचल पधारते ही मैं तुम्हें अवश्य शाप दे दूँगा।

इस प्रकार कहकर विश्वामित्र चले गये। भयसे घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्रके दुःखका पार नहीं रहा।

सूतजी कहते हैं—इसी समयकी बात है—वेदके पारगामी एक ब्राह्मण अपने घरसे बाहर निकले। बहुत-से ब्राह्मणोंकी मण्डली उनके साथ थी। उस समय वे तपस्वी ब्राह्मण इधर ही आ रहे थे। उन्हें सामने स्थित देखकर रानीने महाराज हरिश्चन्द्रसे धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा—'प्रभो ! ब्राह्मण तीन वर्णोंके पिता कहे जाते हैं। पिताके धनपर पुत्रका अधिकार होता ही है—यह बिलकुल निश्चित है। अतः मेरी सम्मति है कि इनसे कुछ धनके लिये प्रार्थना की जाय।'

राजा हरिश्चन्द्रने कहा—सुमध्यमे ! मैं

क्षत्रिय हूँ। मुझे दान लेना अभीष्ट नहीं है। माँगना ब्राह्मणोंके लिये ही शोभा देता है, न कि क्षत्रियोंके लिये। ब्राह्मण सम्पूर्ण वर्णोंके गुरु हैं। उनकी तो सदा पूजा करनी चाहिये। अतः गुरुसे याचना करना उचित नहीं है। क्षत्रिय तो इस नियमके अधिक पोषक हैं। दान देना, पढ़ना, यज्ञ करना, शरणमें आये हुएको अभय बनाना और प्रजाकी रक्षा करना—ये ही कर्म क्षत्रियके लिये विहित हैं। क्षत्रिय इस प्रकारका दीन वचन कभी न कहे कि 'मुझे कुछ दीजिये।' देवी ! 'मैं देता हूँ' यह वचन मेरे हृदयके कोने-कोनेमें भरा है। अतः कहींसे भी धनका उपार्जन करके ब्राह्मणको देनेके लिये मैं तत्पर हूँ।

पत्नीने कहा—स्वामिन् ! कालके प्रभावसे पुरुषके सामने सम और विषम परिस्थिति आया करती है। काल ही मनुष्यको अपमानित और सम्मानित कराता है। पुरुषके दाता और मँगता होनेमें इस कालकी ही महिमा है। एक विद्वान् एवं शक्तिशाली ब्राह्मण राजापर कुपित हो जायँ; फलस्वरूप राजाको राज्यसे निकल जाना पड़े और वे सुखसे हाथ धो बैठें—देखिये, यह सब कालकी ही तो करतूत है।

राजा बोले—तीखे धारवाली तलवारसे जीभके दो टुकड़े हो जाना ठीक है; परंतु सम्मानका परित्याग करके 'दीजिये-दीजिये' कहना मैं उचित नहीं समझता। महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूँ। किसीसे कुछ भी माँग नहीं सकता। बल्कि अपने बाहुबलसे उपार्जित धन देनेके लिये मैं सदा तत्पर हूँ।

पत्नीने कहा—महाराज ! यदि आपका मन याचना करनेमें समर्थ नहीं है तो मैं आपकी सम्पत्ति हूँ। इन्द्रसहित देवताओंने न्यायपूर्वक मुझे आपको सौंपा है। आप स्वामी बनकर मुझ आज्ञाकारिणी पत्नीकी रक्षामें सदा तत्पर रहे हैं। अतएव महाद्युते ! अब आप मेरा मूल्य लेकर गुरु विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका दीजिये।

राजन् ! पत्नीकी बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रके दुःखका पार नहीं रहा। 'महान् कष्ट है, महान् कष्ट है' यों कहकर वे रो पड़े। तब रानीने उनसे फिर कहा—'आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। अन्यथा ब्राह्मणके शापरूपी अग्निसे भस्म हो जानेपर पुनः नीच योनिमें जन्म लेना पड़ेगा। जुआ खेलने, शराब पीने, राज्य बढ़ाने तथा भोग भोगनेके लिये तो आप ऐसा करते ही नहीं हैं। अतः मेरे सहयोगसे गुरुकी दक्षिणा चुकाकर आप अपने सत्यव्रतरूपी धर्मको सफल बनाइये।'

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! रानीके द्वारा बारम्बार प्रेरित किये जानेपर राजा हरिश्चन्द्रने कहा—'भद्रे ! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हें बेचनेकी बात स्वीकार करता हूँ। यदि ऐसे परम निर्दय वचन कहनेके लिये तुम्हारी वाणी तत्पर है तो जिसे नीच-से-नीच व्यक्ति भी नहीं कर सकते, वह जघन्य काम मेरे द्वारा होने जा रहा है।'

इस प्रकार कहकर महाराज हरिश्चन्द्र नगरमें चले गये। वहाँ तमाशा दिखानेका एक स्थान निश्चित था। वहीं अपनी धर्मपत्नीको उन्होंने बैठा दिया। उस समय महाराजकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। कण्ठ रुका जाता था। वे बार-बार लोगोंको सम्बोधित करके बोले—'नागरिको ! आप सब लोग मेरी बात सुननेकी कृपा करें। मेरी यह पत्नी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, परंतु यदि किसीको इससे दासीका काम लेनेकी

आवश्यकता हो तो कहें। मैं जो भी उचित धन पा सकूँ, उतनेमें यह तुरंत बिक सकती है।' वहाँपर बहुत-से विद्वान् पुरुष थे। उन्होंने राजासे पूछा—'अजी, पत्नीको बेचनेके लिये आये हुए तुम कौन हो ?'

राजा बोले—आपलोग पूछते हैं कि 'तुम कौन हो ?' तो सुनिये—'मैं मानवतारहित एक महान् क्रूर व्यक्ति हूँ; अथवा मुझे कठोर राक्षस भी कहा जा सकता है। तभी तो ऐसे नीच कर्ममें मेरी प्रवृत्ति हुई है।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! यह शब्द सुनकर विश्वामित्र बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके अकस्मात् सामने उपस्थित हो गये और बोले—'मैं धन देकर इस दासीको खरीदनेके लिये तैयार हूँ। अतः मुझे दे दो। मेरे पास अपार धनराशि है। मेरी स्त्री परम सुकुमारी है। वह घरका काम नहीं सँभाल सकती। अतः इसे मुझे दे दो। मैं दासीको स्वीकार करता हूँ; परंतु इसके लिये मुझको कितना धन देना पड़ेगा।' यों ब्राह्मणके कहनेपर महाराज हरिश्चन्द्रका मन दुःखसे अस्त-व्यस्त हो गया। वे कुछ भी बोल नहीं सके।

ब्राह्मणने कहा—तुम्हारी स्त्रीके कर्म, अवस्था, रूप और शीलके अनुसार यह धन देता हूँ, स्वीकार करो और इसे मुझे सौंप दो। धर्मशास्त्रोंमें स्त्री और पुरुषका मूल्य जो निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है—यदि स्त्री बत्तीसों लक्षणोंसे सम्पन्न, कार्यकुशल तथा शील एवं गुणोंसे युक्त हो तो उसका मूल्य एक करोड़ मुद्रा होता है। यदि ये सभी शुभ लक्षण पुरुषमें हों तो उसका मूल्य एक अरब मुद्रा हो जाता है।

ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र महान् दुःखसे व्याप्त हो जानेके कारण चुप हो गये। उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकल सकी। तब ब्राह्मणने राजाके सामने मृगचर्मपर धन रखकर रानीके केशोंमें हाथ लगाया और उसे खींचना आरम्भ कर दिया।

रानी बोलीं—आर्य! अभी मुझे छोड़िये, छोड़िये। जबतक मैं पुत्रको न देख लूँ, तबतक क्षमा करें; क्योंकि विप्र! फिर मुझे इस पुत्रका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। तदनन्तर पुत्रसे कहा—'बेटा! देख, आज मैं तेरी माता दासी बन गयी। राजपुत्र! अब तू मेरा स्पर्श मत करना। कारण, मैं तेरे छूने योग्य नहीं रही।' तब वह बालक माताको संकटग्रस्त देखकर 'अम्बा' कहता हुआ दौड़ पड़ा। उसकी आँखोंसे जलकी धाराएँ गिरने लगीं। जब कौवेके पंखके समान काले केशवाला वह राजकुमार रानीका वस्त्र पकड़कर गिरते-पड़ते साथ जाने लगा तब ब्राह्मणने उसे डाँटा। फिर भी वह बालक 'अम्बा, अम्बा' कहता माताको छोड़ न सका।

रानीने कहा—नाथ! आप मुझपर कृपा करके इस बालकको भी खरीद लीजिये; क्योंकि मैं खरीदी हुई होनेपर भी इसके बिना सुचारुरूपसे आपका कार्य सिद्ध नहीं कर सकूँगी। प्रभो! मैं मन्दभागिनी हूँ। अतः मुझपर इस प्रकारकी कृपा अवश्य करें।

सूतजी कहते हैं—उसी तरह बालकके मूल्यका धन भी सामने एक वस्त्रपर पुनः फेंककर मातासहित राजकुमारको ब्राह्मणने खरीद लिया। दोनों एक-से हो गये। फिर बड़े हर्षके साथ रानीको लेकर ब्राह्मण तुरंत अपने घरकी ओर चल दिया। उस समय रानीकी स्थिति बड़ी दयनीय थी। उसके नेत्र जलसे भर

गये थे। उसने जाते समय राजाकी प्रदक्षिणा की और दोनों घुटनोंके सहारे झुककर प्रणाम किया। साथ ही वह यह वचन बोली—'यदि मैंने दान दिया हो, यज्ञ किया हो तथा मेरे व्यवहारसे ब्राह्मण तृप्त हुए हों तो उस पुण्यके प्रभावसे ये महाराज हरिश्चन्द्र मुझे पुनः शीघ्र ही पतिरूपसे प्राप्त हो जायँ।' राजा रानीके प्रति प्राणोंसे भी बढ़कर गौरवबुद्धि रखते थे। ऐसी भार्याको पैरोंमें पड़ी देखकर 'हा ! हा !' करते हुए रो पड़े। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। वे कहने लगे—'सत्य और शील आदि गुणोंसे सम्पन्न यह भार्या मुझसे पृथक् होकर कैसे जा रही है। वृक्षकी छाया वृक्षको छोड़कर चली जाय—यह कदापि सम्भव नहीं है।'

इस प्रकार परस्पर घनिष्ठ प्रणय प्रकट करके रानीसे कहनेके पश्चात् राजाने पुत्रके प्रति यह वचन कहा—'बेटा ! तू मुझे छोड़कर कहाँ जायगा ? फिर मैं किस दिशामें जाऊँगा और कौन मेरा दुःख दूर करेगा।' द्विजवर ! राज्य छोड़ने तथा वनवासी होनेसे मैं महान् दुःखी हूँ। पुनः पुत्रवियोग भी कष्टप्रद हो रहा है। यों कहकर राजा हरिश्चन्द्र रानीको लक्ष्य करके कहने लगे—'स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे संसारमें पतिके पास रहकर सदा उसके सुखकी सामग्री बनी रहें। फिर कल्याणी ! तुम दुःखको अपना साथी बनाकर मुझसे कैसे अलग हो रही हो ? इक्ष्वाकुके पुनीत वंशमें मेरा जन्म हुआ है। मेरे पास राज्योचित सम्पूर्ण सुखकी सामग्रियाँ थीं। आज मुझ ऐसे पतिको पाकर भी तुम दासी बन रही हो। देवी ! मैं पुराण और इतिहासके विशद वाक्यका अनुसरण करके कहता हूँ कि ऐसे शोकरूपी अथाह समुद्रमें मुझ डूबे हुए व्यक्तिका अब कौन उद्धार करेगा।'

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने ही बड़ा कठोर व्यवहार करते हुए रानी और राजकुमारको ले जानेके लिये विप्रवर (विश्वामित्र) तत्पर हो गये। स्त्री और पुत्रको मुनिकी प्रेरणासे जाते हुए देखकर राजाके दुःखकी सीमा नहीं रही।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार हरिश्चन्द्र विलाप कर रहे थे। इतनेमें ब्राह्मण आँखसे ओझल हो गये। उसी समय महान् तपस्वी मुनिवर विश्वामित्र आ पहुँचे। शिष्य साथ था। निष्ठुर स्वभाववाले मुनि देखनेमें बड़े ही क्रूर प्रतीत होते थे।

विश्वामित्र बोले—राजन् ! महाबाहो ! यदि तुम्हारे हृदयमें सत्यकी तनिक भी मान्यता है तो उस समय राजसूय यज्ञकी दक्षिणाका जो वचन दिया था, वह पूर्ण करो।

हरिश्चन्द्रने कहा—निष्पाप राजर्षे ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। राजसूय यज्ञके अवसरपर मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह आपकी दक्षिणा तैयार है। इसे स्वीकार कीजिये।

विश्वामित्र बोले—राजेन्द्र ! कहाँसे मिला हुआ यह धन दक्षिणामें दिया जा रहा है ? जिस प्रकार तुमने धन उपार्जन किया है, वह स्पष्ट बताओ।

राजाने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले विप्रवर ! इसे कहनेसे क्या प्रयोजन है। निष्पाप महाभाग ! इसके सुननेसे तो और शोक ही बढ़ रहा है।

ऋषि बोले—राजन् ! मैं दूषित द्रव्य नहीं लेता; मुझे पवित्र धन ही मिलना चाहिये। अतः द्रव्य आनेका यथार्थ मार्ग मुझे अवश्य बताओ।

राजाने कहा—मुने ! मैंने अपनी परम साध्वी स्त्रीको एक करोड़ मुहर लेकर बेच दिया है। मेरे पुत्रका नाम रोहित है। उसे बेचनेपर मुझे दस करोड़ मुहर मिल गये हैं। विप्र ! इस प्रकार मेरे पास ग्यारह करोड़ मुहरें जुटी हैं, आप इन्हें स्वीकार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—स्त्री-पुत्रको बेचनेसे मिला हुआ धन विश्वामित्रकी दृष्टिमें थोड़ा जान पड़ा। अतः क्रोधमें भरकर वे शोकाकुल महाराज हरिश्चन्द्रसे कहने लगे।

ऋषिने कहा—राजन् ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा इतनी ही नहीं होती है। अतः कोई दूसरा धन उपार्जन करो, जिससे शीघ्र ही वह दक्षिणा पूर्ण हो सके। क्षात्र-धर्मका पालन करनेसे विमुख राजा ! तुम मेरी इस दक्षिणाको इतनेमें ही चुक जानेके योग्य मानते हो तो अभी मैं अपना परम बल प्रकट करता हूँ। देखो, मैं एक परम पवित्र अन्तःकरणवाला तपस्वी ब्राह्मण हूँ। मैंने श्रेष्ठ ग्रन्थोंका शुद्ध अध्ययन किया है। तपस्या की है। मेरे पास सभी शक्तियाँ हैं।

राजाने कहा—भगवन् ! मैं इसके अतिरिक्त भी दक्षिणा दूँगा; परंतु कुछ समयकी प्रतीक्षा कीजिये। अभी मैंने पुत्र और स्त्रीको ही बेचा है। मैं स्वयं तो अभी शेष हूँ।

विश्वामित्र बोले—राजन् ! दिनका यह चौथा प्रहर व्यतीत हो रहा है ! मेरी प्रतीक्षाका अन्तिम समय यही है। (अध्याय २०—२२)

☆

## हरिश्चन्द्रका चाण्डालके हाथ बिककर विश्वामित्रकी दक्षिणा चुकाना और चाण्डालके आज्ञानुसार श्मशानघाटका काम सँभालना

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! हरिश्चन्द्रसे इस प्रकारके करुणाशून्य एवं निष्ठुर वचन कहकर क्रोधी विश्वामित्रने उपस्थित सम्पूर्ण दक्षिणा ले ली और वे वहाँसे चल पड़े। विश्वामित्रके चले जानेपर राजाके कष्टकी सीमा नहीं रही। वे बारम्बार साँस खींचते हुए नीचा मुँह करके उच्च स्वरसे कहने लगे—'मैं धनसे बिक जानेवाला होनेके कारण प्रेत बन गया हूँ। मुझसे जिसका दुःख दूर हो सके, वह अभी—सूर्यके चौथे पहरमें रहते ही मुझसे बात कर ले।' इतनेमें धर्म चाण्डालका रूप धारण करके वहाँ आ गये। उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध फैल रही थी। उसके बड़े-बड़े दाँत थे। बढ़ी हुई दाढ़ी थी। भयंकर छाती थी। वह अत्यन्त निर्दय प्रतीत होता था। उस अत्यन्त नीच पुरुषकी आकृति काले रंगकी थी। उसका लम्बा पेट था। शरीरमें चर्बी लगी थी। वह हाथमें एक पुरानी छड़ी लिये था। मृत व्यक्तियोंकी मालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं।

चाण्डालने कहा—मैं तुम्हें दासके पदपर नियुक्त करना चाहता हूँ। एक नौकरकी मुझे विशेष आवश्यकता है। बताओ, तुम्हारे लिये कितना मूल्य देना चाहिये ?

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! उस चाण्डालका वेष बड़ा ही डरावना था। उसके अङ्ग-अङ्गमें निर्दयता भरी थी। इस प्रकारके दुराचारी चाण्डालको बात करते देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने उससे पूछा—'अजी, तुम कौन हो ?'

चाण्डाल बोला—राजेन्द्र ! मैं एक चाण्डाल हूँ। यहाँ सब लोग मुझे 'प्रवीर' कहते हैं। तुम

सदा मेरी आज्ञामें रहो। मृत व्यक्तिका कफन लेना तुम्हारा काम है।

इस प्रकार चाण्डालने जब राजा हरिश्चन्द्रसे कहा, तब वे उसके प्रति बोले—'मेरा तो ऐसा विचार है कि ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय—इनमेंसे कोई भी मुझे अपना दास बना लें।

व्यासजी कहते हैं—महाराज हरिश्चन्द्र चाण्डालसे यों बातें कर ही रहे थे कि तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे। उनकी आँखें क्रोधसे चढ़ी हुई थीं। उन्होंने राजासे क्रूरतापूर्वक कहा—'यह चाण्डाल तुम्हारे मनके अनुसार धन देनेके लिये तैयार है। फिर तुम इससे लेकर मेरी यह अवशेष रकम क्यों नहीं चुका देते?'

राजाने कहा—भगवन्! कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशमें उत्पन्न समझता हूँ। अतः धनके लोभसे चाण्डालकी दासतामें कैसे जाऊँगा?

विश्वामित्र बोले—यदि तुम स्वयं चाण्डालके हाथ बिककर उससे प्राप्त हुआ धन मुझे नहीं दोगे तो मैं तुम्हें अभी शाप दे दूँगा। चाण्डाल अथवा ब्राह्मण—किसीसे भी लेकर तुम मेरी दक्षिणाकी रकम अभी चुका दो। इस समय चाण्डालके सिवा दूसरा कोई भी व्यक्ति तुम्हें धन नहीं दे सकता और धन पाये बिना मैं जाऊँगा नहीं—यह निश्चित है। मनुजेन्द्र! यदि तुम अभी मेरा धन नहीं दोगे तो दिनके चौथे पहरकी आधी घड़ी और बीत जानेपर मैं शापरूपी अग्निसे तुम्हें भस्म कर दूँगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! उस समय महाराज हरिश्चन्द्र मृतकके समान निश्चेष्ट हो गये। उनके धैर्यका बाँध टूट चुका था। 'प्रसन्न होइये'—यों कहते हुए उन्होंने विश्वामित्रके दोनों चरण पकड़ लिये।

हरिश्चन्द्रने कहा—विप्रर्षे! मैं आपका अत्यन्त दुःखी सेवक हूँ। मेरी स्थिति बड़ी दयनीय है। विशेषता यह है कि मैं आपका भक्त भी हूँ। चाण्डालके सम्पर्कमें रहना मेरे लिये महान् कष्टप्रद है। अतः मुझपर कृपा कीजिये। शेष धन चुकानेके लिये मैं आपके अधीन होकर सेवा-कार्य सम्पन्न करूँगा। मुनिवर! आपका ही सेवक बनकर रहूँगा और मेरा कार्य आपकी इच्छापर निर्भर रहेगा।

विश्वामित्र बोले—महाराज! बहुत ठीक—ऐसा ही हो। तुम मेरे ही सेवक बन जाओ। परंतु राजन्! शर्त यह है कि तुम्हें सदा मेरी आज्ञाका निर्विरोध पालन करना होगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका मुर्झाया हुआ मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने समझा कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है! वे विश्वामित्रसे कहने लगे—'पवित्र अन्तःकरणवाले द्विजवर! मैं आपकी आज्ञाका निरन्तर पालन करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं। आज्ञा दीजिये, आपका कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ?'

विश्वामित्रने कहा—चाण्डाल! आओ, तुम मेरे इस नौकरका क्या मूल्य दोगे। अब मूल्य लेकर इसे मैं दे देता हूँ। तुम स्वीकार कर लो, क्योंकि मुझे नौकरसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो धन चाहता हूँ।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! जब विश्वामित्रने इस प्रकार कहा, तब चाण्डालके मनमें प्रसन्नता छा गयी। उसने तुरंत निकट आकर मुनिसे कहा।

चाण्डाल बोला—प्रयागकी सीमा दस

योजनके विस्तारमें है। विप्रवर ! वहाँकी भूमिको रत्नमयी बनाकर मैं आपको दे दूँगा। आपने इसे बेचकर मेरा महान् दुःख दूर कर दिया।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर चाण्डालने सोना, मणि और मोतियोंसे युक्त हजारों प्रकारके रत्न द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रको दिये तथा उन्होंने स्वीकार कर लिये। राजा हरिश्चन्द्रका मुँह किंचिन्मात्र भी उदास नहीं हुआ। उन्होंने धैर्य धारण करके यह मान लिया कि विश्वामित्र मेरे स्वामी हैं, ये चाहे जो कर सकते हैं। बस, मुझे तो वही कार्य करना है, जिसे करनेके लिये वे आज्ञा देंगे। ठीक उसी समय आकाशवाणी हुई—'महाराज ! तुम दक्षिणा देकर ऋणसे मुक्त हो गये।' इसके बाद राजा हरिश्चन्द्रके मस्तकपर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। इन्द्रसहित सम्पूर्ण शक्तिशाली देवता महाराजको बार-बार धन्यवाद देने लगे। अत्यन्त आनन्दमें भरकर राजा हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रसे कहा।

राजा बोले—महामते ! मेरे माता-पिता और बन्धु आप ही हैं; क्योंकि क्षणभरमें ही आपने मेरे ऋणरूपी बन्धनको काट दिया। आपकी कृपासे अब मैं उऋण हो गया। महाबाहो ! आपका वचन मेरे लिये कल्याणप्रद है। कहिये, कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ ?

इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके कहनेपर उनके

प्रति विश्वामित्र बोले।

विश्वामित्रने कहा—राजन् ! आजसे इस चाण्डालकी आज्ञाका पालन करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। अब तुम्हारा कल्याण हो।

यों कहकर विश्वामित्रने धन ले लिया और वे वहाँसे चल पड़े। (अध्याय २३)

☆

## चाण्डालकी आज्ञासे हरिश्चन्द्रका श्मशानघाटपर जाना

शौनकने पूछा—परम आदरणीय सूतजी ! चाण्डालके घर जाकर राजा हरिश्चन्द्रने क्या किया ? आप मेरे इस प्रश्नका शीघ्र उत्तर देनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—द्विजवर ! विश्वामित्रके चले जानेपर चाण्डालका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने विश्वामित्रको निश्चित रकम दे दी और राजाको बाँध लिया। 'तुम फिर झूठ बोलोगे'—यों कहकर उस चाण्डालने राजा हरिश्चन्द्रको डंडेसे मारा। डंडेकी चोट लगनेसे उनका चित्त चञ्चल हो उठा। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं। प्रिय बन्धुओंका वियोग तो उनके हृदयको संतप्त कर ही रहा था। चाण्डालने उन्हें अपने घर ले जाकर कारागारमें डाल दिया और स्वयं शान्तचित्त होकर वह सो गया। अब राजा हरिश्चन्द्रका समय चाण्डालके घर कारागारमें व्यतीत होने लगा।

उन्होंने अन्न और जलका परित्याग कर

दिया था। वे निरन्तर मनमें सोचते थे—''मेरी दुर्बल स्त्री दयाकी पात्र है। दीन मुखवाले बालकको देखकर उसे असीम कष्ट होता होगा। वह मुझे याद करके सोचती होगी कि 'राजा हमें बन्धनसे मुक्त करेंगे। धन कमाकर प्रतिज्ञा की हुई रकम ब्राह्मणको चुका देंगे। रोते हुए पुत्रको तथा मुझको वे बुलायेंगे।' तब मैं उनके पास चली जाऊँगी। फिर मेरा यह बालक 'पिताजी ! पिताजी !' कहकर रो पड़ेगा। तब उसे भी वे बुला लेंगे। मृगशावकके नेत्रोंके समान सुन्दर आँखोंवाली मेरी उस प्रियाको पता नहीं है कि मैं चाण्डाल हो गया हूँ। राज्य मेरे हाथसे निकल गया। इष्ट-मित्र सब अलग हो गये। मैंने स्त्री एवं पुत्रको बेच दिया। फिर मुझे चाण्डालता स्वीकार करनी पड़ी। अहो ! यह कैसी विधि-विडम्बना सामने आ गयी।''

इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर रहते हुए निरन्तर स्त्री और पुत्रका स्मरण करते रहे। दैवके विधानसे परम दुःखी नरेशके यों चार दिन बीत गये। जब पाँचवाँ दिन आया, तब दोपहरके समय चाण्डालने उन्हें कारागारसे निकाला और श्मशानपर मृत व्यक्तियोंसे कफन लेनेकी आज्ञा दी। उस क्रोधी चाण्डालने अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग करके बारम्बार डाँटते हुए हरिश्चन्द्रसे कहा—'देखो, काशीके दक्षिण भागमें एक विशाल श्मशानघाट है। तुम न्यायपूर्वक वहाँकी रखवाली करो। तुम्हें कभी भी वहाँसे हटना नहीं है। इस पुराने डंडेको लेकर तुम अभी वहाँ चले जाओ। तुम्हें भलीभाँति घोषित कर देना चाहिये कि यह दण्ड महाबाहु प्रवीरका है।'

सूतजी कहते हैं—शौनक ! चाण्डालकी आज्ञा पाकर महाराज हरिश्चन्द्र कफन लेनेके लिये श्मशानघाटपर चले गये। वह श्मशान-घाट काशीपुरीके दक्षिण भागमें था। वहाँ मुर्दे जलाये जाते थे। अत्यन्त दुर्गन्धित धूँआ निकलता रहता था। सर्वत्र भयंकर चीत्कार होता था। सैकड़ों सियार अड्डा बनाये हुए थे। गीधों और गीदड़ोंसे सारा स्थान भरा था। सर्वत्र मुर्दे-ही-मुर्दे दिखायी पड़ते थे। चारों ओर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं। दुर्गन्धका पार नहीं था। आध-जले मुर्दोंके मुख दाँतोंसे बड़े बीभत्स लग रहे थे। मृतकोंके बन्धु-बान्धव चिल्लाते थे, जिससे वहाँ भीषण कोलाहल मचा रहता था। पुत्र, मित्र, बन्धु, भाई, वत्स एवं प्रियाको सम्बोधित करके मनुष्य कहते—'हा ! आज तुम हमें छोड़कर जा रहे हो।' कुछ लोग दादा, नाना, पिता, पोता और बन्धु-बान्धवोंको लक्ष्य करके कहते—'हा ! कहाँ चले गये—आनेकी कृपा करो।' प्राणियोंके इन हृदय-विदारक शब्दोंसे वहाँका सभी स्थान सदा भरा रहता था। मांस, मज्जा, मेदके जलते समय साँय-साँयकी ध्वनि निकलती थी। अग्निमेंसे चट-चटानेका भयंकर शब्द होता था। उस समय भय उत्पन्न करनेवाला वह श्मशानघाट ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलयकाल ही सामने उपस्थित हो।

राजा हरिश्चन्द्र मुर्दोंको देखनेके लिये इधर-उधर घूमने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीरपर मैल जम गयी थी। यत्र-तत्र दौड़ते हुए वे भी छड़ीके समान ही प्रतीत होते थे। इस शवसे यह मूल्य मिला, पुनः उससे मूल्य मिलेगा। यह मेरा है, यह राजाका और यह चाण्डालका—इस प्रकारकी दुस्तर व्यवस्थामें राजा व्यस्त रहने लगे। उनके शरीरपर एक ही पुराना वस्त्र था, जिसमें बहुत-सी गाँठें पड़ी थीं। एक गुदड़ी

उनके पास थी। हाथ, पैर, मुख और उदर चिताकी राख एवं धूलसे धूसरित थे। हाथकी अँगुलियाँ तरह-तरहके मांस, रुधिर और मज्जासे सनी थीं। अनेक प्रकारके मुर्दोंके ही प्रबन्धमें व्यस्त रहनेके कारण उनकी भूख शान्त हो गयी थी। न वे दिनमें सोते थे और न रातमें ही।

इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्रके बारह महीने सौ वर्षके समान बीते। (अध्याय २४)

☆

## साँपके काटनेसे रोहितकी मृत्यु, रानीका विलाप और उनके प्रति चाण्डालका नृशंस व्यवहार

सूतजी कहते हैं—शौनक ! एक समयकी बात है, राजकुमार रोहित खेलनेके विचारसे बाहर चला गया। उसके साथ बहुत-से लड़के भी थे। खेलनेके पश्चात् वह कुशा उखाड़ने लगा। अपनी शक्तिके अनुसार जड़ और अग्रभागसे युक्त बहुत-से कोमल कुश उसने उखाड़े। 'इससे मेरे गुरुदेव प्रसन्न होंगे'—यों कहकर दोनों हाथोंसे यत्नपूर्वक उसने कुशा उखाड़ी। उत्तम लक्षणवाली समिधाएँ और कुशका उसने पर्याप्त संग्रह कर लिया। अग्निहोत्रके लिये आदरपूर्वक पलाशकी लकड़ियाँ भी उसने तोड़ लीं। सबको लेकर एक भार बनाया और मस्तकपर रखकर वह पैदल ही चलने लगा। सुकुमार था ही, चलते-चलते थक गया। उस समय राजकुमार रोहितको प्यास भी लग गयी थी। अतः वह एक जलाशयपर पहुँचा। जलके समीप जमीनपर बोझ उतारकर उसने रख दिया। इच्छानुसार जल पीकर कुछ समयतक विश्राम किया। फिर वल्मीकके ऊपर जो बोझ पड़ा हुआ था, उसे उठाने लगा। इतनेमें विश्वामित्रकी प्रेरणासे एक महान् विषधर काला सर्प बिलसे निकला। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। उसने राजकुमार रोहितको काट लिया। काटते ही रोहित जमीनपर गिर पड़ा। रोहित मर गया—यह देखकर साथी बालक ब्राह्मणके आश्रमपर लौट गये। भयके कारण उन बालकोंके हृदयमें भी घबराहट उत्पन्न हो गयी थी। अत्यन्त उतावलीके साथ रोहितकी माताके सामने जाकर वे कहने लगे—'विप्रदासी ! तुम्हारा पुत्र खेलनेके लिये बाहर गया था, हम सभी साथ थे। वहाँ सर्पने उसको डँस लिया और इससे उसके प्राण चल बसे।' उस समय वज्रपातकी तुलना करनेवाली यह बात सुनकर रानी मूर्च्छित हो जमीनपर गिर पड़ी, मानो जड़ कटा हुआ केलेका वृक्ष हो। तब ब्राह्मणने कुपित होकर रानीपर जलके छींटे दिये। क्षणभरमें रानीको जब चेत हो गया, तब ब्राह्मण उससे कहने लगा।

ब्राह्मण बोला—दुष्टे ! सायंकालके समय रोना अशुभ-सूचक है। इससे घरमें दरिद्रता आती है। इसको जानती हुई तू क्यों रो रही है। क्या तेरे हृदयमें जरा भी लज्जाको स्थान नहीं है ?

इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पुत्र-शोकसे संतप्त होकर वह बेचारी रोती ही रही। उसका मुख आँसुओंसे भींग रहा था। सिरके बाल इधर-उधर बिखरे थे। घोर दयनीय दशाको प्राप्त वह रानी धूलसे धूसरित थी। फिर क्रोधके आवेशमें आकर ब्राह्मणने रानीसे कहा—'दुष्टे ! तुझे धिक्कार है; क्योंकि अपनी कीमत चुकाकर भी तू मेरा कार्य

करनेमें आनाकानी कर रही है। यदि तू इस कामको नहीं कर सकती थी तो मुझसे धन ही क्यों लिया ?'

इस प्रकार बारम्बार निष्ठुर वाक्योंका प्रयोग करके ब्राह्मण रानीको डाँटने लगा। रानीके नेत्रोंसे निरन्तर जल बह रहा था। उसने दुःखभरी वाणीमें अपने रोनेका कारण ब्राह्मणसे बताया—'स्वामिन् ! मेरा छोटा बच्चा बाहर गया था; उसे सर्पने डँस लिया है, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। सुव्रत ! मैं उस बालकको देखनेके लिये जाना चाहती हूँ। मुझे आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये; क्योंकि अब उस पुत्रका दर्शन मेरे लिये परम दुर्लभ हो गया है।'

यों करुणापूर्ण वचन कहकर रानी पुनः रोने लगी। तब उस क्रोधी ब्राह्मणने उससे फिर कहा।

ब्राह्मण बोला—नीच व्यवहारमें तत्पर रहनेवाली मूर्खे ! क्या तुझे पापकी जानकारी नहीं है ? देख, जो व्यक्ति स्वामीसे वेतन लेकर उसका कार्य सुचारुरूपसे नहीं करता, उसे अत्यन्त भयंकर रौरव नामक नरकमें गिरना पड़ता है। एक कल्प नरक भोगनेके पश्चात् मुर्गेकी योनिमें उसकी उत्पत्ति होती है। यदि तेरे हृदयमें किंचिन्मात्र भी परलोकका भय हो तो आकर तुरंत मेरे कार्यमें लग जाना।

उस समय इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर काँपती हुई रानी उसके प्रति बोली—'नाथ ! मुझपर कृपा कीजिये। अब प्रसन्न हो जायँ। मैं बालकको देख सकूँ—केवल इतने समयके लिये ही मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दीजिये।' यों कहकर रानी ब्राह्मणके पैरपर अपना मस्तक झुकाकर गिर पड़ी। पुत्रके शोकसे अत्यन्त दुःखी होनेके कारण वह करुण विलाप करके रोती रही। तदनन्तर रोषसे आँखें लाल करके वह क्रोधी ब्राह्मण रानीसे पुनः कहने लगा।

ब्राह्मण बोला—तेरे पुत्रसे मुझे क्या प्रयोजन ? तू पहले घरका काम कर। क्या तू मेरे कोड़ोंसे ताड़ित करनेवाले क्रोधको नहीं जानती है ?

इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानी धैर्यपूर्वक उसके घरका काम करने लगी। पैर दबाने, तैल मालिश करने आदि कार्योंके सम्पादनमें आधी रातका समय व्यतीत हो गया। तब ब्राह्मणने रानीसे कहा—'अब तू पुत्रके पास जा सकती है। उसका दाह आदि संस्कार करके बहुत शीघ्र लौट आना, जिससे मेरे घरके किसी भी कार्यमें बाधा उपस्थित न हो।'

तब रानी अकेली ही उस आधी रातके समय रोती-बिलखती पुत्रके पास चली गयी। अपने मृत बालकको देखकर शोकसे उसका हृदय संतप्त हो उठा। वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो झुंडसे अलग हुई मृगी अथवा बिना बछड़ेकी गौ हो। काशीसे बाहर निकलनेपर तुरंत ही उसका मृत कुमार दिखायी पड़ा। काठ, कुशा और तृणके सहारे वह बालक जमीनपर रङ्ककी भाँति पड़ा था। उस समय दुःखके कारण अत्यन्त अधीर होकर परम निष्ठुर शब्दका प्रयोग करके रानी यों विलाप करने लगी—''बेटा ! तू मेरे सामने आ जा। बता तो, इस समय तू क्यों रूठ गया है। तू बार-बार 'अम्बा ! अम्बा !' कहकर मेरे सामने सदा आया करता था।'' यों कहकर रानी कुछ डग आगे बढ़ी और मूर्च्छित होकर मृत पुत्रके ऊपर गिर पड़ी; फिर चेत होनेपर उसने दोनों हाथोंसे बालकको पकड़ लिया। उसके मुखसे अपना मुख सटानेके

पश्चात् अत्यन्त हृदय-विदारक शब्दोंका प्रयोग करके वह फुक्का मारकर रोने लगी। हाथोंसे मस्तक और छाती पीटकर वह इस प्रकार करुण विलाप कर रही थी—'हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा मेरे सुकुमार बच्चे ! तू कहाँ चला गया। हा राजन् ! आप कहाँ चले गये। भला, अपने इस बालकको देख लें। प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेमभाजन पुत्र आज मरकर जमीनपर पड़ा है।'

फिर, वह रानी कहीं बालकके प्राण लौट तो नहीं आये, इस भावनासे मृत पुत्रका मुख निहारने लगी। जब मुखकी चेष्टासे मालूम हो गया कि जीवित नहीं है, तब पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। चेत होनेपर उसने पुनः हाथसे बालकका मुख पकड़ लिया और कहा—'बेटा ! इस भयंकर निद्राका त्याग कर दे। शीघ्र जग जा। आधी रातसे भी अधिक समय व्यतीत हो गया। सैकड़ों सियार बोल रहे हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और डाकिनी आदिके झुंडसे भयंकर आवाज श्रवणगोचर हो रही है। सूर्यास्त होते ही तेरे सभी मित्र घर चले गये। केवल तू ही यहाँ कैसे रह गया।'

सूतजी कहते हैं—शौनक ! इस प्रकार विलाप करनेके बाद दुर्बल शरीरवाली वह रानी फिर यों कहकर रोने लगी—'हा शिशो ! तू निरा बालक है। हा सुकुमार वत्स ! तुझे लोग रोहित कहते हैं। रे पुत्र ! तू मेरे कहनेपर कुछ उत्तर क्यों नहीं देता। वत्स ! मैं तेरी माता हूँ—क्या तू यह नहीं जानता। मेरी ओर दृष्टि फैला। पुत्र ! हमें देशसे निकल जाना पड़ा; राज्यकी सत्ता हाथसे चली गयी; पतिदेवने मुझे दूसरेके हाथ बेच दिया और मैं दासीके काममें नियुक्त हो गयी—इतनी विपत्तियोंका सामना करके भी मैं केवल तुझे देखकर अपना जीवन काटती थी। बेटा ! तेरे जन्मके समय ब्राह्मणोंने भविष्यकी बात बतायी थी। उन्होंने कहा था कि यह बालक दीर्घायु, पृथ्वीका शासक, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न, शूरवीर, दानी, पराक्रमी, ब्राह्मण, गुरु एवं देवताका उपासक, माता-पितासे प्रेम रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा। पुत्र ! उनके ये सभी वचन इस समय असत्य हो रहे हैं। वत्स ! तेरे हाथके तलवेमें चक्र, मछली, छत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वजा, कलश एवं चँवर आदिके चिह्न तथा अन्य भी जो शुभ लक्षण विद्यमान हैं, वे सब-के-सब इस समय निष्फल सिद्ध हो रहे हैं। पृथ्वीपर शासन करनेवाले हा राजन् ! आपका राज्य, मन्त्रिमण्डल, सिंहासन, छत्र, तलवार और धन सब कहाँ चले गये ? पुत्र ! अयोध्या, गगनचुम्बी महल, हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा— इन सबके साथ ही तू भी मुझे छोड़कर कहाँ चला गया ? हा कान्त ! हा राजन् ! आप यहाँ पधारकर अपने प्रिय पुत्रको देखें। जो खेलते हुए छातीपर चढ़कर कुङ्कुमसे उसे रँग देता था तथा जिसके शरीरमें लगे हुए कीचड़से कभी आपकी छाती मलिन हो जाती थी और कभी गोदमें बैठकर जो बालचपलताके कारण आपके मस्तकपर लगे हुए कस्तूरीमिश्रित चन्दनको मिटा दिया करता था; जिसके मिट्टी लगे मुखको स्नेहवश आप चूमा करते थे; उसीके मुखपर आज मैं देखती हूँ कि मक्खियाँ भिन्ना रही हैं। हा राजन् ! वही आपका पुत्र आज मरकर अकिञ्चनकी भाँति धरतीपर पड़ा है। उसे देख तो लें।

'हा दैव ! पूर्व-जन्ममें मेरे द्वारा कौन ऐसा कुकृत्य हो गया कि उसके फलभोगका मैं अन्त ही नहीं पा रही हूँ। हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा मेरे सुन्दर कुमार !'

इस प्रकार रानी उच्च स्वरसे विलाप कर रही थी। रोनेके शब्द नागरिकोंके कानमें पड़े। उनकी नींद उचट गयी। अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर वे दौड़े हुए रानीके पास आये।

नागरिकोंने कहा—तुम कौन हो, यह बालक किसका है और तुम्हारे पतिदेव कहाँ हैं ? रातके समय निर्भीकतापूर्वक तुम अकेली ही कहाँसे आकर रो रही हो ? इस प्रकार कहनेपर रानीके मुखसे नागरिक किञ्चिन्मात्र उत्तर न पा सके। तब रानीके प्रति नागरिकोंके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। डरके कारण उनके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। हाथमें आयुध लेकर वे परस्पर कहने लगे—'निश्चय ही यह स्त्री नहीं है; क्योंकि इसके मुखसे कोई भी बात नहीं निकलती। अवश्य ही यह बालकोंको खा जानेवाली पिशाची है। अतएव यत्न करके इसे मार डालना चाहिये। यदि कोई आदरणीय स्त्री होती तो इस घोर रात्रिमें यहाँ बाहर रहती ही क्यों ? हो-न-हो यह पिशाची किसीके पुत्रको खानेके लिये ही यहाँ ले आयी है।'

यों आपसमें परामर्श करके कुछ लोगोंने तुरंत रानीके केश पकड़ लिये। कुछ अन्य व्यक्तियोंने रानीकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं तथा कितनोंके हाथ रानीके गलेमें भिड़ गये। 'राक्षसी ! अब तू नहीं जा सकेगी'—यों कहकर बहुत-से शस्त्रधारी नागरिक रानीको घसीटकर चाण्डालके स्थानपर ले गये और उसे चाण्डालको सौंप दिया। साथ ही कहा—'चाण्डाल ! यह बच्चोंको खा जानेवाली राक्षसी है। हमने इसे बाहर देख लिया है। तुम अभी कहीं बाहर ले जाकर इसे मार डालो, मार डालो।'
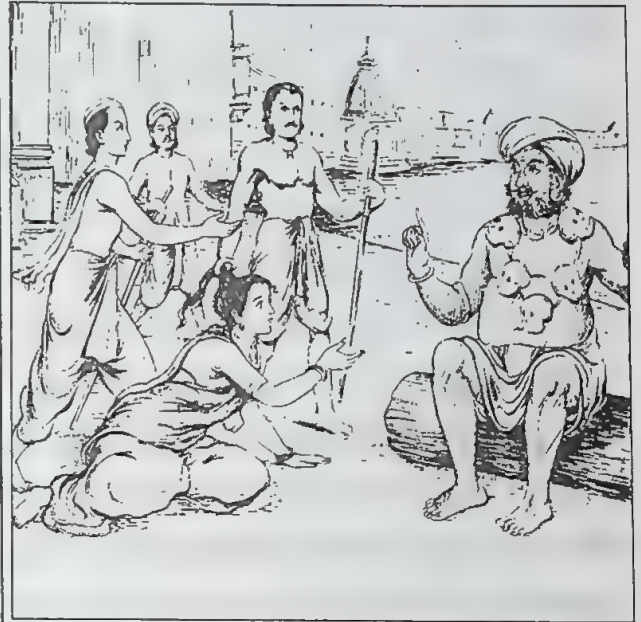
तब चाण्डालने रानीको देखकर कहा—'मैं इसे जानता हूँ। बहुतोंके मुखसे इसकी चर्चा होती है। प्रायः लोगोंके बच्चोंको यह खा जाया करती है; परंतु इसके पहले किसीने भी इसे देखा नहीं। आपलोगोंने इसे पकड़कर बहुत ही पुण्य कमाया है। आपकी कीर्ति जगत्‌में सदा रहेगी। अच्छा, अब आपलोग सुखपूर्वक यहाँसे पधारें। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण, स्त्री और बालकका वध करता हो, सुवर्ण चुराता हो, आग लगाता हो, रास्ता रूँधता हो, शराब पीता हो, गुरुकी शय्यापर सोता हो तथा श्रेष्ठ पुरुषोंका विरोध करता हो तो उसका वध करनेसे पुण्य होता है। ऐसे कार्यमें तत्पर रहनेवाली ब्राह्मणकी स्त्रीको भी मार डालनेमें दोष नहीं लगता। अतः इसका वध मेरे लिये योग्य ही है।'

इस प्रकार कहकर चाण्डालने मजबूत बन्धनोंसे रानीको बाँध दिया। फिर उसके केश पकड़कर रस्सियोंसे बुरी तरह चोट पहुँचायी। इसके पश्चात् चाण्डालने कठोर वचनका प्रयोग

करके हरिश्चन्द्रको बुलाया और उनसे कहा—'रे दास ! तू बिना कुछ विचारे इस दुराचारिणी स्त्रीका तुरंत वध कर डाल।'

चाण्डालका यह वचन वज्रपातकी तुलना कर रहा था। उसे सुनकर स्त्री-वधकी आशंकासे राजा हरिश्चन्द्रका शरीर काँप उठा। उन्होंने चाण्डालसे कहा—'मैं इस कामके करनेमें असमर्थ हूँ। मुझे कोई अन्य कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये। इसके सिवा आपके कहे हुए असाध्य कार्यको भी मैं कर डालूँगा।' राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर चाण्डालने उनसे यह वचन कहा—'अरे, तुम डरो मत। तलवार लेकर इसे मार डालो; क्योंकि इसका वध पुण्यप्रद है। बालकोंको भय पहुँचानेवाली इस राक्षसीकी कभी भी रक्षा नहीं करनी चाहिये।'

चाण्डालकी उपर्युक्त बात सुनकर राजाने उत्तर दिया—'जिस किसी प्रकारसे भी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। स्त्रीको कभी भी मारना नहीं चाहिये; क्योंकि धर्मपरायण मुनियोंका कथन है कि स्त्रीका वध करना महान् पाप है। जो पुरुष जानकर अथवा अनजानमें भी स्त्रीकी हत्या कर देता है, उसे महाभयंकर रौरव नामक नरकमें गिरकर यातना भोगनी पड़ती है।'

चाण्डालने कहा—अरे, इतना कहने-सुननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। बिजलीके समान चमकनेवाली यह तीखी तलवार पड़ी है। इसे हाथमें ले ले; क्योंकि जिस एकके मार डालनेपर बहुतोंके सुखी होनेकी सम्भावना हो, उसकी हिंसा निश्चय ही पुण्यप्रद होती है। यह दुष्टा संसारमें बहुत-से बच्चोंको खा चुकी है; अतएव इसको तुरंत मार डालना चाहिये। इसके मरनेपर जगत्की एक अशान्ति समाप्त हो जायगी।

राजा बोले—चाण्डालराज ! मैं जीवन-पर्यन्त कभी भी स्त्री-वध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अतः इस स्त्री-वधरूपी घोर कार्यके लिये मेरे द्वारा प्रयत्न नहीं हो सकता।

चाण्डालने कहा—दुष्ट ! मुझ स्वामीके इस कार्यको छोड़कर दूसरा काम क्या है। तू अब वेतन लेकर मेरा काम क्यों नहीं करता है ? जो स्वामीसे मूल्य चुकाकर उसका कार्य अधूरा रखता है, उसका करोड़ों कल्पोंतक नरकसे उद्धार नहीं होता।

राजा बोले—चाण्डालनाथ ! मुझे कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये, चाहे वह कितना ही कठिन हो। आप अपने शत्रुका परिचय दें, मैं तुरंत उसे मार डालूँगा। उसे मारकर पृथ्वी आपको सौंप दूँगा—इसमें कोई संशय नहीं। प्रधान देवताओं, नागों, सिद्धों और गन्धर्वोंसे युक्त इन्द्रको भी तीखे तीरोंसे मारकर परास्त कर दूँगा।

तब महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर चाण्डाल क्रोधसे तमतमा उठा। राजा काँपने लगे। उसने उनसे पुनः कहा।

चाण्डाल बोला—नौकरोंके लिये जो बात कही गयी है, वैसा तेरा व्यवहार नहीं हुआ। चाण्डालकी सेवावृत्ति स्वीकार करके तू देवताओंकी-सी बात करता है। दास ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है ? तू मेरी निश्चित बात सुन। निर्लज्ज ! यदि तेरे हृदयमें किंचिन्मात्र भी पापका भय है तो चाण्डालके घरपर आकर तूने दासता ही क्यों स्वीकार की ? अतः इस तलवारको उठा और तुरंत इस स्त्रीके कमल-जैसे मस्तकको धड़से अलग कर दे।

इस प्रकार कहकर चाण्डालने महाराज हरिश्चन्द्रके हाथमें तलवार पकड़ा दी।

(अध्याय २५)

☆

## राजा हरिश्चन्द्र और रानी शैब्याका परस्पर परिचय, शरीरत्यागकी तैयारी, देवताओंका आगमन और हरिश्चन्द्रका अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्गगमन

सूतजी कहते हैं—शौनक ! तदनन्तर महाराज हरिश्चन्द्र नीचा मुँह करके रानीसे कहने लगे—'बाले ! मैं एक पापी व्यक्ति हूँ। तुम यहाँ मेरे सामने बैठ जाओ। यदि मेरा हाथ मारनेमें काम दे सका तो मैं तुम्हारा सिर काटनेका विचार करता हूँ। यों कहकर राजाने हाथमें तलवार ले ली और वे मारनेके लिये तैयार हो गये। अबतक न राजा रानीको पहचान सके थे और न रानी राजाको ही। उस समय अत्यन्त दुःखसे संतप्त होनेके कारण स्वयं मर जानेकी अभिलाषा रखनेवाली रानीने कहा।

रानी बोली—चाण्डाल ! यदि तुम्हें उचित जान पड़े तो कुछ मेरी बात सुननेकी कृपा करो। इस नगरके बाहर थोड़ी ही दूरपर मेरा पुत्र मरा पड़ा है। जबतक उस मरे हुए बालकको तुम्हारे पास लाकर मैं दाह कर दूँ तबतकके लिये तुम प्रतीक्षा करो। इसके बाद मुझे तलवारसे मार डालना।

तब राजा हरिश्चन्द्रने रानीकी बात स्वीकार करके उसे बालकके पास जानेके लिये आज्ञा दे दी। उस समय रानीके दुःखका पार नहीं था। अत्यन्त करुण विलाप करती हुई वह चली गयी। हा पुत्र ! हा वत्स ! हा शिशो ! यों बारम्बार कहती हुई रानी मृत बालकको लेकर श्मशानघाटपर लौट आयी और उसने उसे जमीनपर लिटा दिया। उस समय रानीका प्रत्येक अङ्ग शोककी अग्निसे जल रहा था। उसका शरीर दुर्बल हो गया था। सिरके बाल धूलसे धूमिल हो गये थे।

'राजन् ! आपका प्रिय पुत्र मित्रोंके साथ खेल रहा था। उसे दुष्ट सर्पने काट लिया, जिससे उसके प्राणपखेरू उड़ गये। वही मरा हुआ बालक अब यहाँ जमीनपर पड़ा है। आप उसे देखते हैं।' इस प्रकारके शब्द विलाप करते समय रानीके मुखसे निकल रहे थे। सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शवके पास आये। उसके ऊपरका वस्त्र हटाया। तब भी, तरह-तरहसे विलाप करनेवाली रानीको पहचाननेमें राजा असमर्थ रहे; क्योंकि बहुत दिनोंसे प्रवाससम्बन्धी असह्य दुःख भोगनेके कारण मानो रानीका अब शरीर दूसरा ही हो गया था। महाराज हरिश्चन्द्रके केश पहले बहुत ही सुन्दर थे। वे अब भयानक जटाके रूपमें परिणत हो गये थे। जान पड़ते थे, मानो सूखे हुए वृक्षकी छाल हों। अतः रानी भी उन्हें पहचान न सकी। सर्पके विषसे ग्रस्त होकर मृत बालक धरतीपर पड़ा था। उसे देखकर महाराज हरिश्चन्द्र उसके राजोचित शुभ लक्षणपर विचार करने लगे—'इसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रहा है। कितनी सुघड़ नासिका है। दर्पणके समान चमकीले ऊँचे दोनों कपोल अनुपम शोभा दे रहे हैं। इसके घुँघराले काले केश कुछ भींगकर मस्तकके चारों ओर फैले हैं। आँखें मालूम पड़ती हैं, मानो खिले हुए कमल हों। ओठोंकी छवि बिम्बाफलको तुच्छ कर रही है। चौड़ी छाती, बड़े-बड़े नेत्र, लम्बी भुजाएँ और ऊँचे कंधोंसे यह विचित्र शोभा पा रहा है। बड़े पैरोंमें छोटी-छोटी अँगुलियाँ हैं। यह कैसा गम्भीर जान पड़ता है। इसके चरण कमलके समान कोमल हैं और नाभि गहरी है। हा ! दुःख तो इस बातका है कि यह बालक

किस भाग्यहीन राजाके कुलमें उत्पन्न हुआ कि शीघ्र ही दुरात्मा यमराजने अपने कालपाशसे इसे बाँध लिया।'

सूतजी कहते हैं—माताकी गोदमें लेटे हुए उस मृत बालकको देखकर यों विचार करनेके उपरान्त महाराज हरिश्चन्द्रको पूर्वकी स्मृति हो आयी। अतः वे 'हा ! हा !' कहकर आँखोंसे आँसू गिराने लगे। उनके मुखसे यह आवाज निकल पड़ी कि 'कहीं मेरे बच्चेकी ही तो यह दशा नहीं हो गयी है। वही कहीं क्रूर यमराजके फंदेमें पड़ गया हो तो उसकी भी यही स्थिति हो सकती है।' इस प्रकार सोचकर राजा हरिश्चन्द्र कुछ समयके लिये वहीं ठहर गये। तब रानी महान् दुःखके आवेशमें आकर कहने लगी।

रानीने कहा—हा वत्स ! किस पापके परिणामस्वरूप ऐसा महान् दारुण दुःख सामने उपस्थित हुआ है। इसका कारण समझमें नहीं आता। हा नाथ ! हा राजन् ! आप मुझ अत्यन्त दुःखिनीको छोड़कर किस स्थानको सुशोभित कर रहे हैं ? आपके चित्तमें कैसे शान्ति है ? राज्य हाथसे निकल गया। सुहृद्वर्ग पृथक् हो गये। स्त्री और पुत्रको बेच देना पड़ा। हा दैव ! तुमने राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने यह कैसी दारुण दशा उपस्थित कर दी !

जब महाराज हरिश्चन्द्रने रानीकी यह बात सुनी, तब वे अपने स्थानसे चलकर उसके समीप आ गये; क्योंकि अब उन्हें अपनी साध्वी पत्नी तथा मरे हुए पुत्रके विषयकी पूर्ण जानकारी हो गयी थी। वे कहने लगे—'हाय ! महान् कष्ट है कि यह पत्नी मेरी ही है और यह बालक भी मेरा ही है।' रहस्य खुल जानेपर उनके हृदयमें असीम ज्वाला उत्पन्न हो गयी। अचेत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े। राजा ऐसी दारुण दशाको प्राप्त है—यह जानकर रानी भी महान् दुःखी होकर पृथ्वीपर पड़ गयी। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और मूर्च्छाने उसे धर दबाया। फिर साथ ही राजा और रानी—दोनोंको चेत हुआ। वे अत्यन्त संतप्त होकर विलाप करने लगे।

राजाने कहा—हा वत्स ! टेढ़ी अलकावली-से कुछ घिरे हुए तुम्हारे सुन्दर मुखको मैं देखा करता था। आज वह मुख मेरे कातर हृदयको विदीर्ण क्यों नहीं कर देता ? तुम अपनी मधुर भाषामें 'पिताजी' कहकर स्वयं मेरे पास आ जाते थे। अब फिर कब मैं तुम्हें पाकर प्रेमवश 'वत्स, वत्स' कहकर पुकारूँगा। अब किसके धूलिसे सने हुए घुटने मेरी चादर, गोद और शरीरको मैलसे भर देंगे। मन और हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले पुत्र ! तुम मेरा मनोरथ पूर्ण न कर सके। जिसने साधारण वस्तुकी भाँति तुम्हें बेच दिया था, उसी मुझ पिताको पाकर तुम पितावाले बने थे। मेरा सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो गया था। परिवारमें बहुत-से बन्धु-बान्धव थे, परंतु किसीने साथ नहीं दिया। प्रतिकूल दैवके कारण ऐसी निर्दय दशासे सम्पन्न मुझ व्यक्तिसे आज तुम्हारी भेंट हो गयी। आज विषधर सर्पके काटे हुए पुत्रके कमल-जैसे मुखको देखता हुआ मैं बड़ी ही विषम परिस्थितिमें पड़ गया हूँ।

इस प्रकार विलाप करके राजा हरिश्चन्द्रने मरे हुए पुत्रको उठा लिया। दुःखके कारण उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी। राजाने पुत्रको छातीसे लगाया और स्वयं निश्चेष्ट होकर गिर पड़े। उन्हें मूर्च्छा आ गयी। उस समय पृथ्वीपर पड़े हुए राजाको देखकर रानीके मनमें ऐसा

विचार उत्पन्न हुआ कि ये परम आदरणीय पुरुष वाणीके स्वरसे ही पहचानमें आ जाते हैं कि विद्वानोंके मनको आह्लादित करनेवाले चन्द्रमा-रूपी हरिश्चन्द्र ही हैं। इसमें अब संदेह नहीं रहा। इनकी सुन्दर ऊँची नासिका तिलके पुष्पकी तुलना कर रही है। इन परम यशस्वी महात्मा पुरुषके दाँत जान पड़ते हैं, मानो फूलोंकी अधखिली कलियाँ हों। यदि ऐसी बात है तो ये महाराज श्मशानघाटपर कैसे आये? अब पुत्रशोक छोड़कर रानी गिरे हुए पतिदेवको देखने लगी। उस समय पुत्र और पति—दोनोंके दुःखसे अत्यन्त घबरायी हुई रानीके मनमें कभी भयङ्कर दुःखभरा आश्चर्य उत्पन्न हो जाता था और कभी प्रसन्नता आ जाती थी।

उसके नेत्र पतिकी ओर गये और वह अचेत होकर जमीनपर गिर पड़ी। धीरे-धीरे जब मूर्च्छा दूर हुई, तब वह गद्गद वाणीसे कहने लगी—'अरे निर्दय, मर्यादारहित एवं निन्दाके पात्र दैव! तुम्हें धिक्कार है। तुमने देवताके समान लब्धप्रतिष्ठ इन नरेशको चाण्डाल बना दिया है। ये अपने राज्यसे च्युत हो गये, इष्टमित्रोंने इनका साथ छोड़ दिया। स्त्री और पुत्र भी इन्होंने बेच दिये। तुम्हारे प्रभावसे ऐसी परिस्थितिमें पड़कर ये नरेश चाण्डाल हो गये। आज मैं छत्र अथवा सिंहासन कुछ भी नहीं देखती। पहले जिनके यात्रा करते समय राजालोग सेवा-वृत्ति स्वीकार कर लेते थे तथा अपनी चादरोंसे पथमें पड़ी हुई धूल झाड़ देना राजाओंका काम था, वे ही ये महाराज आज दुःखसे व्यथित होकर इस अपवित्र श्मशानभूमिमें भटक रहे हैं। यहाँ सर्वत्र खोपड़ियाँ बिखरी हैं। कहीं फूटे घड़े हैं तो कहीं फटे कपड़े। मृतकके शरीरोंसे उतरे सूत्रों तथा बिखरे बालोंसे यह जमीन कितनी भयानक लगती है! चर्बी गिरकर सूख गयी हैं, जिनसे इसकी बड़ी क्रूर शोभा हो रही है। राखके ढेरों, अङ्गारों, अधजली हड्डियों और मज्जाओंसे इस स्थानकी भयंकरता अधिक बढ़ गयी है। गीध और सियार बोल रहे हैं। मोटे-ताजे क्षुद्र पक्षियोंकी भरमार है। चिताके धूएँसे चारों ओर अन्धकार छाया है। मुर्दोंके आस्वादसे मस्त गीदड़ सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं।'

इस प्रकार कहकर रानी महाराज हरिश्चन्द्रके कण्ठसे लिपट गयी। दुःख एवं शोकसे रानीका सर्वाङ्ग व्याप्त था। उसने कातर वाणीमें पुनः विलाप आरम्भ कर दिया—'राजन्! यह स्वप्न है अथवा सत्य जिसे आप मान्यता दे रहे हैं। महाभाग! आप स्पष्ट बतानेकी कृपा करें; क्योंकि मेरे मनमें बड़ी घबराहट हो रही है। धर्मज्ञ! यदि यह बात ऐसी ही है तो धर्म और सत्यके पालन तथा ब्राह्मण और देवताके पूजन करनेसे सहायता ही क्या मिली? अब धर्म, सत्य, सरलता और अनृशंसताके लिये कहीं स्थान ही नहीं है। यही कारण है कि आप-जैसे धर्मपरायण सज्जन अपने राज्यसे हाथ धो बैठे।'

सूतजी कहते हैं—शौनक! रानीका यह वचन सुनकर राजाने बड़े जोरसे गरम श्वास छोड़ा। साथ ही गिड़-गिड़ाकर चाण्डाल होनेकी सारी बातें रानीको सुनायीं। सुनकर उसके दुःखकी सीमा नहीं रही। बहुत देरतक रानी रोती रही। इसके बाद रानीने अपने पुत्रके मरणकी सारी बातें राजाको सुनायीं। सुनते ही राजा धड़ामसे धरतीपर गिर पड़े। फिर उठकर उन्होंने मृत पुत्रको उठा लिया। तब धर्मपरायणा रानीने गिड़-गिड़ाकर महाराज हरिश्चन्द्रसे कहा—'राजन्! अब आप अपने स्वामीकी दासता सफल कीजिये। मेरा मस्तक काटकर आप

स्वामिद्रोही और असत्यवादी होनेसे बचिये। राजेन्द्र ! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये तथा दूसरेके प्रति द्रोह भी महान् पाप है।'

रानीकी यह बात सुनकर राजा पृथ्वीपर गिर पड़े और उन्हें मूर्च्छा आ गयी। थोड़ी देरमें जब चेत हुआ, तब अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए वे विलाप करने लगे।

राजा बोले—प्रिये ! तुम्हारे मुखसे ऐसा अत्यन्त निष्ठुर वचन कैसे निकल गया ? भला, जो बात कही भी नहीं जा सकती, उसे कार्य-रूपमें कैसे परिणत किया जाय।

पत्नीने कहा—प्रभो ! मैंने भगवती गौरीकी आराधना की है। देवता और ब्राह्मण भी मुझसे सुपूजित हो चुके हैं। उनके आशीर्वादसे आप इसी जन्ममें पुनः मेरे पति होकर रहेंगे।

रानीकी यह बात सुनकर राजा जमीनपर लुढ़क पड़े। उनके दुःखकी सीमा नहीं रही।

राजाने कहा—प्रिये ! अब बहुत दिनोंतक इस प्रकारका दुःख भोगना मुझे अभीष्ट नहीं है। तन्वङ्गी ! मैं अब इस शरीरको बचाये रखनेमें असमर्थ हूँ। मेरी मन्दभाग्यता तो देखो—यदि मैं चाण्डालसे बिना आज्ञा लिये ही जलती हुई आगमें पैठ जाता हूँ तब तो दूसरे जन्ममें भी मुझे इसकी नौकरी करनी पड़ेगी। मैं घोर नरकमें पड़कर भयंकर दुःख भोगूँगा। भीषण रौरव नामक प्रसिद्ध नरकमें पड़नेपर अनेक संताप सामने आ जायँगे। वंशकी वृद्धि करनेवाला मेरा यह जो एक पुत्र था, वह भी आज बलवान् दैवके प्रकोपसे कालका ग्रास बन गया। पराधीन होनेके कारण ऐसी दुर्दशा सामने आनेपर भी मैं कैसे प्राणोंका त्याग करूँ ? फिर भी, इस असीम दुःखसे ऊबकर मैं अब अपना शरीर त्याग ही दूँगा। फिर जो कुछ होना है, हो जायगा। दुर्बल शरीरवाली प्रिये ! मैं इस प्रज्वलित अग्निमें पुत्रकी देहके साथ स्वयं भी कूद पड़ूँगा। इसलिये अब तुम क्षमा करना। कमललोचने ! तन्वङ्गी ! पुनः कुछ भी कहना तुम्हें उचित नहीं है। मनको निश्चिन्त करके तुम मेरी बात सुन लो। शुचिस्मिते ! मेरी आज्ञाके अनुसार अब तुम ब्राह्मणके घर पधारो। यदि तुमने दान, हवन और ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया है तो उसके फलस्वरूप दूसरे लोकमें अपने पुत्रके साथ तुम्हारा और मेरा समागम होगा। इस लोकमें अभिलषित संगम अब कैसे हो सकेगा ? पवित्र मुसकानवाली प्रिये ! अब मैं इस लोकसे जा रहा हूँ। अतएव एकान्तमें हँसीके रूपमें मैंने तुमसे कभी कुछ अनुचित कह दिया हो तो उन सब बातोंका ध्यान मत रखना। शुभे ! 'मैं राजाकी प्रेयसी भार्या हूँ।'—इस प्रकारके अभिमानमें आकर तुम्हें उन ब्राह्मण-देवताका तिरस्कार नहीं करना चाहिये; क्योंकि स्वामीको देवताके समान समझकर उन्हें सम्यक् प्रकारसे संतुष्ट करना ही तुम्हारा कर्तव्य है।

रानीने कहा—राजर्षे ! अब मैं भी आगकी लपटमें भस्म हो जाऊँगी। कारण, वह दुःखका भार मुझसे भी सहा नहीं जाता। भगवन् ! आपके साथ ही मेरी यात्रा भी निश्चित है। निस्संदेह आपके साथ चलनेमें ही मेरा कल्याण है। मानद ! आपके साथ रहकर स्वर्ग और नरक—सभी कुछ मैं भोग लूँगी।

रानीकी बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने कहा—पतिव्रते ! 'एवमस्तु'—ऐसा ही हो।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रने चिता तैयार की और उसपर अपने पुत्र रोहितको सुला दिया। स्वयं रानीके साथ दोनों हाथ जोड़कर, जो जगतकी अधिष्ठात्री हैं, सौ आँखोंसे

जिनकी अनुपम शोभा होती है, पञ्चकोशोंके भीतर जो सदा विराजमान रहती हैं, ब्रह्म जिनका स्वरूप है, जो लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं, करुणाकी सागर हैं, जिनकी भुजाओंमें भाँति-भाँतिके आयुध शोभा पाते हैं तथा जो जगत्के संरक्षणमें सदा तत्पर रहती हैं, उन परमेश्वरी भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगे। राजा ध्यानमें संलग्न थे। उसी समय इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता धर्मको आगे करके तुरंत वहाँ पधारे।
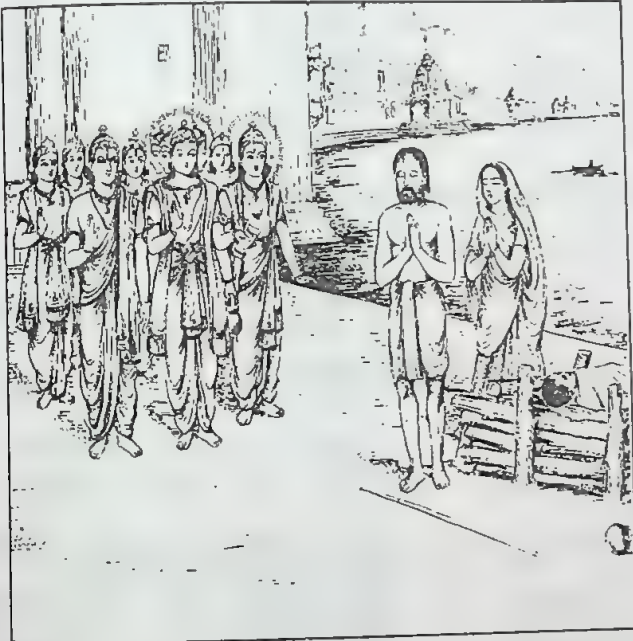
आकर सबने एक स्वरसे कहा—'राजन्! महाप्रभो! सुनो, ये साक्षात् ब्रह्मा, स्वयं भगवान् धर्म, साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेव, चारणोंसहित लोकपाल, नाग, सिद्ध, गन्धर्वोंके साथ रुद्रगण, अश्विनीकुमार तथा ऐसे ही अन्य भी बहुत-से देवता यहाँ उपस्थित हैं। धर्मपूर्वक त्रिलोकीसे मैत्री स्थापित करनेकी इच्छा रखनेके कारण जो 'विश्वामित्र' नामसे विख्यात हैं, वे मुनि भी पधारे हैं और वे तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा प्रकट करते हैं।'

धर्म बोले—राजन्! तुम्हें ऐसा साहस नहीं करना चाहिये; क्योंकि तुममें जो सहनशीलता, इन्द्रियोंको वशमें रखनेकी पूर्ण योग्यता तथा सत्त्व आदि सद्गुण हैं, उनसे परम संतुष्ट होकर मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ।

इन्द्रने कहा—महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। राजन्! आज स्त्री-पुत्रसहित तुमने इस सनातन विश्वपर विजय प्राप्त कर ली। रानी और राजकुमारको साथ लेकर अब तुम स्वर्गमें पधारनेकी कृपा करो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई कर्मशील मनुष्य इस स्वर्गपर विजय प्राप्त कर ले, यह परम दुष्कर है।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर इन्द्रने आकाशमें विराजमान होकर, चिताके मध्यभागमें सोये हुए राजकुमार रोहितपर अपमृत्युको दूर करने-वाली अमृतमयी वर्षा आरम्भ कर दी, साथ ही पुष्पोंकी विपुल वर्षा हुई और दुन्दुभियाँ भी बज उठीं। महाराज हरिश्चन्द्र बड़े महात्मा पुरुष थे। अब उनके मरे हुए सुकुमार पुत्र रोहितमें चेतनता आ गयी। स्वस्थ होकर वह प्रसन्नतापूर्वक उठ बैठा। राजाने अपने उस पुत्रको हृदयसे लगा लिया; उस समय रानी भी वहाँ थीं ही। सारी सम्पत्तियाँ लौटकर उनके पास आ गयीं। दिव्य माला और वस्त्र महाराजको सुशोभित करने लगे। उनके मनमें अपार शान्ति छा गयी। उनके हृदयका कोना-कोना परम आनन्दसे भर गया। क्षणमात्रमें ही परिस्थितिमें इस प्रकार अद्भुत परिवर्तन हो गया। फिर इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—'महाराज! अब तुम स्त्री और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो। यह सर्वोत्कृष्ट उत्तम गति तुम्हारे अपने ही कर्मोंका फल है।'

हरिश्चन्द्रने कहा—देवराज! चाण्डाल मेरा स्वामी है। मैंने उससे आज्ञा नहीं ली है। उससे

छुट्टी पाये बिना मैं स्वर्गलोकमें नहीं जाऊँगा।

धर्म बोले—राजन्! तुम्हारे भावी क्लेशके सम्बन्धमें विचार करके मैं ही मायामय चाण्डाल बन गया था। तुम्हें चाण्डालका स्थान जो दिखायी पड़ा था, वह भी मेरी माया ही थी।

इन्द्रने कहा—हरिश्चन्द्र! भूमण्डलके सम्पूर्ण मनुष्य जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उस परम पुनीत स्थानपर पधारो। पुण्यात्मा पुरुष ही उस पदके अधिकारी हो सकते हैं।

महाराज हरिश्चन्द्र बोले—देवराज! आपको नमस्कार है। मेरी एक प्रार्थना सुननेकी कृपा कीजिये। अयोध्यामें रहनेवाले बहुत-से मानव मेरे दुःखसे परम दुःखी होकर काल व्यतीत कर रहे हैं, उन्हें ऐसी स्थितिमें छोड़कर मैं स्वर्ग कैसे जाऊँगा। गो-वध, स्त्री-वध, ब्राह्मण-वध और मद्यपान—ये घोर पाप हैं। अपने भक्तके त्यागको भी इन्हींके समान महापाप कहा गया है। अतः श्रद्धालु व्यक्तिका त्याग नहीं करना चाहिये। उसे छोड़नेवाला कैसे सुखी हो सकता है। अतएव इन्द्र! मैं इन श्रद्धालु मनुष्योंको छोड़कर स्वर्ग नहीं जाऊँगा। आप यहाँसे पधारनेकी कृपा करें। सुरेश्वर! यदि मेरे साथ ही इन सबके चलनेकी व्यवस्था हो तो मैं भी चला चलूँगा। नरकमें जाना हो तो नरकमें भी चला जाऊँगा।

इन्द्रने कहा—राजन्! अयोध्याके वे नागरिक भाँति-भाँतिके पुण्य और पाप कर चुके हैं। महीपाल! स्वर्ग सर्वसाधारण जनताके उपभोगमें आ जाय, ऐसी इच्छा तुम क्यों प्रकट करते हो?

हरिश्चन्द्रने कहा—देवराज! प्रजा ही राजाका अङ्ग है। उसीकी कृपासे राजाको राज्य-भोगका सुअवसर प्राप्त होता है। प्रजाकी सहायतासे ही बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा देवताओंकी उपासना तथा कुएँ-तालाब आदि धार्मिक प्रतिष्ठानोंकी स्थापनामें राजाको सफलता मिलती है। मैं भी उन नागरिकोंका बल पाकर ही सम्पूर्ण कार्य करता रहा हूँ। इसलिये समयानुसार भेंट देनेवाले उन पुरवासियोंको अपने स्वर्गके लोभसे मैं नहीं छोड़ सकता। अतएव देवेश! मैंने जो कुछ भी उत्तम कार्य किया है—दान, यज्ञ और जप आदि सामान्य कर्मोंके प्रभावसे मुझे जो भी फल मिलनेवाला है तथा जिस उत्तम कर्मके फलस्वरूप बहुत दिनोंतक स्वर्ग भोगनेका जो मैं अधिकारी बनाया जाता हूँ, वे सभी सुकृत बाँटकर एक दिन भी उन नागरिकोंके साथ स्वर्गमें रहनेका मुझे अवसर मिल जाय—वह आपकी कृपापर निर्भर है।

सूतजी कहते हैं—तब सबके अधिष्ठाता इन्द्रने 'ऐसा ही होगा'—कहकर राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। धर्म और गाधिनन्दन विश्वामित्रके मनमें प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। तदनन्तर वे सभी महानुभाव अयोध्यापुरीमें, जो चारों वर्णोंसे खचाखच भरी थी, पहुँच गये। जाकर देवराज इन्द्रने महाराज हरिश्चन्द्रके सामने ही सबसे कहा—'नागरिकजनो! तुम सब लोग परम दुर्लभ स्वर्गमें चलनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ। धर्मकी कृपासे ही तुम सभी व्यक्तियोंको ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ है।' धर्ममें अटूट श्रद्धा रखनेवाले महाराज हरिश्चन्द्रने भी उन नागरिकोंसे कहा—'हाँ, हम सब लोग अब स्वर्गकी यात्रा करें।'

सूतजी कहते हैं—देवराज इन्द्रकी बात

सुनकर राजा हरिश्चन्द्रके प्रति नागरिकोंके मनमें अपार प्रसन्नता उत्पन्न हुई। जो सांसारिक कार्यसे विरक्त हो गये थे, वे गृहस्थीका भार अपने पुत्रोंको सँभलाकर स्वर्ग जानेके लिये तैयार हो गये। सबकी सवारीके लिये विमान आये हुए थे। लोगोंके शरीरोंमें सूर्यके समान प्रभा उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। महामना हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहितका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक कर दिया। उस समय उस रमणीय पुरीमें कोई भी व्यक्ति दीन-हीन नहीं था। फिर राजा अपने पुत्रसे मिले। उन्होंने सुहृदोंका सम्मान और अभिवादन किया। तत्पश्चात् जो पुण्यसे प्राप्त होनेवाली तथा देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है, उस विशद कीर्तिको प्राप्तकर इच्छानुसार चलनेवाले तथा क्षुद्र घण्टिकाओंसे सुशोभित विमानपर वे बैठ गये। इस आश्चर्यमय दृश्यको देखकर महाभाग शुक्राचार्यने, जो दैत्योंके आचार्य एवं सम्पूर्ण शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान् हैं, एक श्लोक कहा* ।

शुक्राचार्य बोले—तितिक्षाकी महिमा और दानका फल सबसे श्रेष्ठ है। अतएव राजा हरिश्चन्द्रको इन्द्रके लोकमें जानेकी सुविधा प्राप्त हो गयी।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! राजा हरिश्चन्द्रके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाले इस सम्पूर्ण प्रसङ्गका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया। जो दुःखी व्यक्ति इसे सुनता है, वह परम सुखी हो जाता है। स्वर्गकी अभिलाषासे इसका श्रवण करनेवाला पुरुष स्वर्गको तथा पुत्रार्थी पुत्रको प्राप्त कर सकता है। इसके प्रभावसे स्त्रीकी इच्छा रखनेवाले स्त्रीको तथा राज्यके अभिलाषी राज्य पा सकते हैं।

(अध्याय २६-२७)

☆

## जगदम्बाके दुर्गा, शताक्षी और शाकम्भरी नामोंका इतिहास; महागौरी, महालक्ष्मीके अन्तर्धान तथा पुनः प्राकट्यकी कथा; सिद्धपीठोंका वर्णन

राजा जनमेजयने पूछा—मुने ! आपने राजर्षि हरिश्चन्द्रकी बड़ी अद्भुत कथा सुनायी है। आपने बतलाया है, उन परम धार्मिक नरेशने भगवती शताक्षीके चरणोंकी उपासना की थी। वे कल्याणस्वरूपिणी भगवती शताक्षी कैसे हुईं ? आप इसका कारण बताकर मेरे जन्मको सफल बनानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! भगवती शताक्षीके प्रकट होनेका पावन चरित्र कहता हूँ, सुनो। तुम भगवतीके परम उपासक हो। अतः मेरी जानकारीमें कोई भी ऐसी कथा नहीं है जो तुम्हें न सुनायी जा सके। प्राचीन समयकी बात है—दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। हिरण्याक्षके वंशमें उसका जन्म हुआ था। उस महानीच दानवके पिता राजा रुरु थे। देवताओंका बल वेद है। वेदके लुप्त हो जानेपर देवता भी नहीं रहेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है। अतः पहले

---

* अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत्। यदागतो हरिश्चन्द्रो महेन्द्रस्य सलोकताम्॥ (७।२७।४१)

वेदको ही नष्ट कर देना चाहिये—यों सोचकर वह दैत्य तपस्या करनेके विचारसे हिमालय पर्वतपर गया। मनमें ब्रह्माजीका ध्यान करके उसने आसन जमा लिया। वह केवल वायु पीकर रहता था। उसने एक हजार वर्षोंतक बड़ी कठिन तपस्या की। उसके तेजसे देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण प्राणी संतप्त हो उठे। तब विकसित कमलके समान सुन्दर मुखसे शोभा पानेवाले चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा प्रसन्नतापूर्वक हंसपर बैठकर वर देनेके लिये दुर्गमके पास पधारे। उस समय दुर्गम समाधि लगाये था। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं। ब्रह्माजीने उससे स्पष्ट स्वरमें कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो वर पानेकी इच्छा हो, वह माँग लो। मैं वरदाताओंका स्वामी हूँ। आज तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं यहाँ आया हूँ।'

राजन्! ब्रह्माजीके मुखसे निकली हुई यह वाणी सुनकर दुर्गम सावधान होकर उठ पड़ा। उसने पितामहकी पूजा करके यह वर माँगा कि 'सुरेश्वर! मुझे सम्पूर्ण वेद देनेकी कृपा कीजिये। सब वेद मेरे पास आ जायँ। महेश्वर! साथ ही मुझे वह बल दीजिये, जिससे मैं देवताओंको परास्त कर सकूँ।'

दुर्गमकी यह बात सुनकर चारों वेदोंके परम अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो' कहते हुए सत्यलोकको चले गये। तबसे ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, संध्या, नित्यहोम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदि वैदिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं। सारे भूमण्डलमें भीषण हाहाकार मच गया। ब्राह्मणगण आपसमें आश्चर्यपूर्वक कहने लगे—'यह क्या हो गया? यह क्या हो गया? अब वेदके अभावमें हमें क्या करना चाहिये।'

इस प्रकार सारे संसारमें घोर अनर्थ उत्पन्न करनेवाली अत्यन्त भयंकर स्थिति हो गयी। देवताओंको हविका भाग मिलना बंद हो गया। अतः निर्जर होते हुए भी वे सजर हो गये—'स्वभावतः जिनके पास बुढ़ापा नहीं आ सकता था, उन्हें अब बुढ़ापेने ग्रस लिया। फिर उस दैत्यके बलसे अमरावती नामक नगरी घेर ली गयी। दुर्गमका शरीर वज्रके समान कठोर था। देवता उसके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ होकर भाग चले। पर्वतकी कन्दराओं और शिखरों-पर—जहाँ कहीं भी स्थान मिला वहीं रहकर वे परा शक्ति भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए समय बिताने लगे। राजन्! अग्निमें हवन न होनेके कारण वर्षा भी बंद हो गयी। वर्षाके अभावसे घोर सूखा पड़ गया। पृथ्वीपर एक बूँद भी जल नहीं रहा। कुएँ, बावलियाँ, पोखरे और नदियाँ बिलकुल सूख गयीं। राजन्! ऐसी अनावृष्टि सौ वर्षोंतक रही। बहुत-सी प्रजा तथा गाय-भैंस आदि पशु प्राणोंसे हाथ धो बैठे। घर-घरमें मनुष्योंकी लाशें बिछ गयीं।

इस प्रकारका भीषण अनिष्टप्रद समय उपस्थित होनेपर कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करनेके विचारसे ब्राह्मण-लोग हिमालय पर्वतपर गये। समाधि, ध्यान और पूजाके द्वारा उन्होंने देवीकी स्तुति की। वे निराहार रहते थे। मन एकमात्र भगवतीमें लगा था। देवीके शरणापन्न होकर वे स्तुति करने लगे—'परमेश्वरी! हम पामर जनोंपर दया करो। अम्बिके! हम सब तरहसे अपराधी हैं। तथापि हमपर कृपा न करना तुम्हें शोभा नहीं देता। सबके भीतर निवास करनेवाली देवेश्वरी!

तुम्हारी प्रेरणाके अनुसार ही वह दुष्ट दैत्य सब कुछ करता है अन्यथा वह कर ही क्या सकता था। महेश्वरी ! तुम बारम्बार क्या देख रही हो ? तुम जैसा चाहो वैसा ही करनेमें पूर्ण समर्थ हो। महेशानी ! घोर संकट उपस्थित है। तुम इससे हमारा उद्धार करो। अम्बिके ! जीवनके अभावमें हमारी स्थिति कैसे रह सकती है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डपर शासन करनेवाली महेश्वरी ! जगदम्बिके ! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ। हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। कूटस्थरूपा, चिद्रूपा, वेदान्तवेद्या तथा भुवनेशी ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। सम्पूर्ण आगम-शास्त्र 'नेति-नेति' वाक्योंसे जिनका संकेत करते हैं, उन सर्वकारणस्वरूपिणी भगवतीके हम सम्यक् प्रकारसे शरणागत हैं।'

इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर भगवती पार्वतीने, जो 'भुवनेशी' एवं 'महेश्वरी' नामसे विख्यात हैं, अपनी अनन्त आँखोंसे सम्पन्न दिव्यरूपके दर्शन कराये। उनका वह विग्रह कज्जलके पर्वतकी तुलना कर रहा था। आँखें ऐसी थीं, मानो नीले कमल हों। कंधे ऊपर उठे हुए थे। विशाल वक्षःस्थल था। हाथोंमें बाण, कमलके पुष्प, पल्लव और मूल सुशोभित थे। जिनसे भूख, प्यास और बुढ़ापा दूर हो जाते हैं, ऐसे शाक आदि खाद्य-पदार्थोंको उन्होंने हाथमें धारण कर रखा था। अनन्त रसवाले फल भी हाथमें थे। महान् धनुषसे भुजा सुशोभित थी। सम्पूर्ण सुन्दरताका सारभूत भगवतीका वह रूप बड़ा ही कमनीय था। करोड़ों सूर्योंके समान चमकनेवाला वह विग्रह करुण-रसका अथाह समुद्र था। ऐसी झाँकी सामने उपस्थित करनेके पश्चात् जगत्की रक्षामें तत्पर रहनेवाली करुणार्द्र-हृदया भगवती अपनी अनन्त आँखोंसे सहस्रों जलधाराएँ गिराने लगीं। उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलके द्वारा नौ राततक त्रिलोकीपर महान् वृष्टि होती रही। सम्पूर्ण प्राणियोंको दुःखी देखकर भगवतीकी आँखोंसे आँसूके रूपमें यह जल गिरा था। जल पानेसे प्राणियोंको बड़ी तृप्ति हुई। सम्पूर्ण ओषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। राजन् ! उस जलसे नदी और समुद्र बढ़ गये। जो देवता पहले लुक-छिपकर रहते थे, वे अब बाहर निकल आये। वे देवता और ब्राह्मण सब एक साथ मिलकर भगवतीका स्तवन करने लगे—

''वेदान्तके अध्ययनसे समझमें आनेवाली ब्रह्मस्वरूपिणी देवी ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। अपनी मायासे जगत्को धारण करनेवाली तथा भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष एवं श्रद्धालु व्यक्तियोंके कल्याणार्थ दिव्य विग्रह धारण करनेवाली देवी ! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। सदा तृप्त रहनेवाली अनुपम रूपोंसे सुशोभित भुवनेश्वरी ! तुम्हें नमस्कार है। देवी ! तुमने हमारा संकट दूर करनेके लिये सहस्रों नेत्रोंसे सम्पन्न अनुपम रूप धारण किया है। अतएव अब तुम 'शताक्षी' इस नामसे विराजनेकी कृपा करो। माता ! भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण तुम्हारी विशेष स्तुति करनेमें हम असमर्थ हैं। अम्बिके ! महेशानी ! तुम दुर्गम नामक दैत्यसे वेदोंको छीन लेनेकी कृपा करो।''

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणों और देवताओंका यह वचन सुनकर भगवती शिवाने अनेक प्रकारके शाक तथा स्वादिष्ट फल अपने हाथसे उन्हें खानेके लिये दिये। भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। पशुओंके खाने योग्य कोमल एवं अनेक रसोंसे सम्पन्न नवीन तृण भी उन्हें देनेकी कृपा की। राजन् ! उसी दिनसे

भगवतीका एक नाम 'शाकम्भरी' भी पड़ गया।

जगत्‌में कोलाहल मच जानेपर दूतके कहनेसे दुर्गम नामक दैत्य इस बातको समझ गया। उसने अपनी सेना सजायी और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर वह युद्धके लिये चल पड़ा। उसके पास एक अक्षौहिणी सेना थी। देवताओंकी सारी सेनाको घेरकर वह दैत्य भगवतीके सामने खड़ा हो गया। ब्राह्मण भी सब प्रकारसे घिर गये। तब देवताओंकी मण्डलीमें कोलाहल मच गया। सभी देवता और ब्राह्मण 'रक्षा करो, रक्षा करो'—इस प्रकारके शब्द उच्चारण करने लगे। तदनन्तर भगवती शिवाने उनकी रक्षाके लिये चारों ओर तेजोमय चक्र खड़ा कर दिया और वे स्वयं बाहर निकल गयीं। तदनन्तर, देवी और दैत्य—दोनोंकी लड़ाई ठन गयी। बाणोंकी वर्षासे अद्भुत सूर्य-मण्डल ढक गया। बाण जब परस्पर टकराते, तब अग्निकी प्रज्वलित चिनगारियाँ निकलने लगतीं। धनुषके कठोर टंकारसे दिशाओंमें बहरापन छा गया।

तत्पश्चात् देवीके श्रीविग्रहसे बहुत-सी उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं। कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बगला, मातङ्गी, त्रिपुर-सुन्दरी, कामाक्षी, देवी तुलजा, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता, गुह्यकाली और दशसाहस्रबाहुका आदि नामवाली बत्तीस शक्तियोंके पश्चात् चौंसठ और फिर अनगिनत शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ। सबकी भुजाएँ आयुधोंसे सुशोभित थीं। युद्ध-स्थलमें मृदङ्ग, शङ्ख आदि बाजे बजने लगे। उन शक्तियोंने दानवोंकी बहुत अधिक सेना नष्ट कर दी। तब सेनाध्यक्ष दुर्गम स्वयं शक्तियोंके सामने उपस्थित होकर उनसे युद्ध करने लगा। जहाँ वह घोर युद्ध हो रहा था, वहाँ रक्त बहानेवाली नदी प्रकट हो गयी। दस दिनोंमें राक्षसकी वे सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेनाएँ मर-खप गयीं। तदनन्तर अत्यन्त भयंकर ग्यारहवाँ दिन उपस्थित हुआ। उस दिन दुर्गमनें स्वयं लड़नेकी तैयारी की। उसने लाल रंगकी माला, लाल वस्त्र और लाल चन्दनसे शरीरको सजाया और महान् उत्सव मनाकर युद्धमें जानेके लिये वह रथपर बैठा। बड़े ही उत्साहके साथ उसने सम्पूर्ण शक्तियोंपर विजय प्राप्त कर ली। इसके बाद वह देवीके रथके सामने अपना रथ ले गया। अब भगवती जगदम्बा और दुर्गम दैत्य—इन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा। हृदयको आतङ्कित करनेवाला वह युद्ध दोपहरतक निरन्तर होता रहा। इसके बाद देवीने दुर्गमपर पंद्रह बाण छोड़े। चार घोड़े चार बाणोंके लक्ष्य हुए। एक बाण सारथिको लगा। देवीके दो बाणोंने दुर्गमके दोनों नेत्रोंको तथा दो बाणोंने दोनों भुजाओंको बींध दिया। एक बाणने ध्वजाको काट दिया। जगदम्बाके पाँच बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर घुस गये। फिर तो रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य भगवती

परमेश्वरीके सामने प्राणोंसे हाथ धोकर गिर पड़ा। उसके शरीरसे तेज निकला और भगवतीके रूपमें जाकर समा गया। उस महान् पराक्रमी दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीके अन्तःकरणकी ज्वाला शान्त हो गयी। तब ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता भगवान् विष्णु और शंकरको अगुआ बनाकर भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—भ्रमणशील जगत्‌की एकमात्र कारण भगवती परमेश्वरी! शाकम्भरी! शतलोचने! तुम्हें अनेकशः नमस्कार है। सम्पूर्ण उपनिषदोंसे प्रशंसित तथा दुर्गम नामक दैत्यकी संहारिणी एवं पञ्चकोशमें रहनेवाली कल्याणस्वरूपिणी भगवती माहेश्वरी! तुम्हें नमस्कार है। मुनीश्वर शान्तचित्तसे जिनका ध्यान करते हैं तथा जिनका विग्रह ही प्रणवका अर्थ है, उन भगवती भुवनेश्वरीकी हम उपासना करते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी जिनसे उत्पत्ति हुई है तथा जो दिव्य विग्रहसे सुशोभित हैं एवं जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु आदिको प्रकट किया है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम सर्वतोभावसे मस्तक झुकाते हैं। सबकी व्यवस्था करनेवाली माता शताक्षी दयासे परिपूर्ण हैं। इनके सिवा कोई भी राजा-महाराजा ऐसा नहीं है, जिसे संकटग्रस्त हीन व्यक्तियोंको देखकर इतनी रुलाई आ सके।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्मा, विष्णु आदि आदरणीय देवताओंके इस प्रकार स्तवन एवं विविध द्रव्योंसे पूजन करनेपर भगवती जगदम्बा तुरंत संतुष्ट हो गयीं। कोयलके समान मधुर भाषण करनेवाली उन देवीने प्रसन्नतापूर्वक वेदोंको दैत्यसे छीनकर देवताओंको सौंप दिया। साथ ही ब्राह्मणोंसे विशेषरूपमें कहा—'जिसके अभावमें आज ऐसा अनर्थकारी समय सामने उपस्थित था, वह यह वेदवाणी मेरे शरीरसे प्रकट हुई है। सम्यक् प्रकारसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। मेरी पूजामें सदा संलग्न रहना तुम्हारा परम कर्तव्य है; क्योंकि तुम मेरे सेवक हो। तुम्हारे कल्याणके लिये इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई उपदेश नहीं है। मेरी इस उत्तम महिमाका निरन्तर पाठ करना। मैं उससे प्रसन्न होकर तुम्हारे सम्पूर्ण संकट दूर करती रहूँगी। मेरे हाथसे दुर्गम नामक दैत्यका वध हुआ है। अतः मेरा एक नाम 'दुर्गा' है। मैं 'शताक्षी' भी कहलाती हूँ। जो व्यक्ति मेरे इन नामोंका उच्चारण करता है, वह मायाको छिन्न-भिन्न करके मेरा स्थान प्राप्त कर लेता है।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा इन वाक्योंसे देवताओंको परम संतुष्ट करके उनके सामने ही सहसा अन्तर्धान हो गयीं। यह सम्पूर्ण परमोत्तम तथा गोपनीय रहस्य मैं तुम्हें सुना चुका। इसके प्रभावसे समस्त कल्याण सुलभ हो जाते हैं। जो भक्तिपरायण बड़भागी पुरुष निरन्तर इस अध्यायका श्रवण करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें वह देवीके परमधामको प्राप्त हो जाता है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके कुछ उत्तम चरित्रका वर्णन मैंने कर दिया। मनुजेन्द्र! भगवती पराशक्तिकी कृपासे उन राजाओंने महान् प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। यह निश्चित समझना कि भगवतीके प्रसन्न होनेपर कुछ भी अलभ्य नहीं रहता; क्योंकि जो-जो भी विभूतियुक्त,

ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त पदार्थ है, उस-उसको तुम भगवतीके तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति समझो। राजन्! ये तथा ऐसे ही अन्य भी बहुत नरेश भगवती जगदम्बाकी उपासना करके संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटनेके लिये कुठारके समान हो चुके हैं। अतएव सम्यक् प्रकारसे भगवती भुवनेश्वरीकी सेवा करो। जैसे धान्य चाहनेवाला व्यक्ति पुआल छोड़ देता है, वैसे ही अन्य सब व्यवसायोंसे पृथक् रहो। राजन्! देवी परमा शक्ति हैं; इनके चरण-कमल दिव्य रत्न हैं। वेदरूपी क्षीरसमुद्रका मन्थन करके इन्हें पा जानेके कारण मैं कृतार्थ हो गया। जब अन्य कोई भी देवता पञ्चब्रह्म[१]-मञ्चपर बैठनेके लिये तैयार न हो सका तब इन महादेवीने उसपर बैठना स्वीकार कर लिया। जो इन पाँच देवताओंसे परेकी वस्तु है, उसे वेदमें 'अव्याकृत' कहते हैं; जिसमें सारा जगत् सूत्रमें मणियोंकी तरह ओत-प्रोत है, उसी अव्याकृत शक्तिका नाम भगवती भुवनेश्वरी है। राजेन्द्र! उन भगवती भुवनेश्वरीके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त किये बिना मनुष्य संसारसे मुक्त नहीं हो सकता।

श्वेताश्वतर-शाखाध्यायी महापुरुषोंने श्रुतिमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है। ध्यान और जप करनेके पश्चात् उन पुरुषोंने परम दिव्य शक्ति भगवती जगदम्बाके, जो अपने गुणोंसे सबके सामने व्यक्त नहीं होतीं, दर्शन प्राप्त किये थे। अतः जन्म सफल करनेके लिये सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके भगवती भुवनेश्वरीके ध्यानमें तत्पर हो जाना चाहिये। भय, भक्ति, लज्जा अथवा प्रेम—जिस किसी कारणसे भी इस कार्यमें प्रवृत्ति हो जानी चाहिये। सबसे आसक्ति हटा ले और मन एवं हृदयको शान्त करके ध्यानमें लीन हो—यह वेदान्तकी स्पष्ट घोषणा है। जो जिस किसी भी बहानेसे सोते, बैठते अथवा चलते समय भगवतीका निरन्तर कीर्तन करता है, उसकी संसार-बन्धनसे मुक्ति हो जाती है—इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः राजन्! तुम भलीभाँति प्रयत्नशील होकर भगवती महेश्वरीकी उपासना करो। भगवती पराशक्ति विराट्रूप, सूत्ररूप, अन्तर्यामीरूप तथा सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपसे विराजती हैं। अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर सोपानक्रमसे इनकी आराधना करो। ये भगवती जगदम्बा जगत्के प्रपञ्चसे आह्लादित नहीं होतीं। भगवतीमें चित्तको लीन करनेका जो व्यापार है, वही उनकी 'आराधना' कहलाता है। राजन्! सूर्य और चन्द्रवंशमें उत्पन्न, भगवती पराशक्तिके उपासक, परम धार्मिक तथा मनस्वी जो राजा हो चुके हैं, उनका यह परम पावन चरित्र यश, धर्म, बुद्धि एवं पुण्य प्रदान करनेवाला है। मैंने इसका वर्णन कर दिया। इसके बाद तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहते हो ?

जनमेजयने कहा—महामुने! तीसरे स्कन्धके छठे अध्यायमें यह प्रसङ्ग आ चुका है कि मणिद्वीपनिवासिनी भगवती जगदम्बाने गौरी, लक्ष्मी और सरस्वतीको प्रकट करके उन्हें क्रमशः शंकर, विष्णु एवं ब्रह्माके पास रहनेकी आज्ञा प्रदान की। साथ ही यह भी कहने और सुननेमें आता है कि गौरी हिमालय तथा दक्ष-प्रजापतिकी कन्या हैं एवं महालक्ष्मी क्षीर-समुद्रकी। फिर, मूलप्रकृति जगदम्बासे प्रकट

---

१-एक समय ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर—ये चारों देवता खंभके रूपमें खड़े हुए। इनके ऊपर एक मञ्च तैयार हुआ। सदाशिव चारोंके ऊपर छप्पररूपसे विराजमान हुए—यह 'पञ्चब्रह्म-मञ्च' है।

हुई इन देवियोंको दूसरोंकी कन्या होनेका अवसर कैसे प्राप्त हुआ ? मुनिवर ! इसका रहस्य बतलानेकी कृपा करें।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सुनो। मैं यह परम अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। तुम भगवती जगदम्बाके अनन्य उपासक हो। अतः तुमसे भगवतीका कोई भी रहस्य छिपानेयोग्य नहीं है। राजन् ! जब भगवती जगदम्बाने तीनों देवियोंको तीनों देवताओंके पास रहनेकी व्यवस्था कर दी, तबसे वे देवता सृष्टिके कार्यमें संलग्न हो गये। मनुजेन्द्र ! एक समयकी बात है—हालाहल नामसे प्रसिद्ध बहुत-से दैत्य उत्पन्न हुए। उन दैत्योंमें अपार बल था। उन्होंने क्षणभरमें ही त्रिलोकीपर विजय प्राप्त कर ली। ब्रह्माजीसे वर पाकर वे अत्यन्त अभिमानी हो गये थे। उन्होंने अपने सैनिकोंके साथ कैलास और वैकुण्ठको घेर लिया, तब भगवान् शंकर और विष्णु उनसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। बहुत लम्बे समयतक बड़ी तेजीके साथ युद्ध होता रहा। देवता और दानव—दोनोंकी सेनामें अत्यन्त हाहाकार मच गया था। तब अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भगवान् शंकर और विष्णु उन दानवोंको मारनेमें सफल हुए। राजन् ! महाशक्तिके प्रभावसे ही उन्होंने दानवोंको मारा था; परंतु वे शक्तिकी अवहेलना करने लगे। तब महागौरी तथा महालक्ष्मी दोनोंको हँसी आ गयी। इससे दोनों महान् ईश्वरोंने शक्तियोंका तिरस्कार कर दिया। तब लीलासे ही उसी क्षण गौरी और महालक्ष्मी दोनों महाशक्तियाँ शंकर और विष्णुसे अलग होकर अन्तर्धान हो गयीं। शक्तियोंके हटते ही दोनों प्रधान देवता शक्ति और तेजसे हीन होनेके कारण विक्षिप्त-से हो गये। उनकी सोचने और विचारनेकी शक्ति भी नहीं रही। तब ब्रह्माजी चिन्तासे अधीर हो गये और घबराकर उन्होंने आँखें बंद कर लीं, ध्यान किया; तब यह बात उनके समझमें आ गयी कि यह पराशक्तिके त्यागका परिणाम है। राजेन्द्र ! इस अभिप्रायको जानते ही ब्रह्माजी सावधान हो गये। तबसे भगवान् शंकर और विष्णुका जो कार्य था, उसकी सँभाल स्वयं ब्रह्माजीने अपने हाथमें ले ली। अपनी शक्तिके बलसे सम्पन्न होकर कुछ समयतक वे इस कार्यको सँभालते रहे। तदनन्तर शंकर और विष्णुके कल्याणार्थ धर्मात्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र मनु और सनक आदिको बुलाया। सभी कुमार आकर मस्तक झुकाये सामने खड़े हो गये। तपोनिधि ब्रह्माजीने उनसे कहा—'इस समय मैं बहुत-से कार्योंमें व्यस्त हूँ। परमेश्वरीको संतुष्ट करनेके लिये तपस्या करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है। जगत्‌का सम्पूर्ण भार मुझपर लदा है; कारण, इस समय भगवती शक्ति परमेश्वरीके हट जानेके कारण शिव और विष्णुमें शक्तिहीनता आ गयी है। अतः पुत्रो ! जैसे भी शिव और विष्णु अपनी शक्तियोंसे सम्पन्न हो सकें, तुम्हें वैसा ही उद्योग करना चाहिये। इससे जगत्‌में तुम्हारा यश फैलेगा। जिसके कुलमें महागौरी और महालक्ष्मी—ये दो शक्तियाँ जन्म धारण करेंगी, वह पुरुष स्वयं कृतकृत्य होनेके साथ ही समस्त संसारको भी पावन बना सकता है।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! पितामह ब्रह्माजीकी बात सुनकर उनके दक्ष प्रभृति जितने परम पवित्र पुत्र थे, वे सब-के-सब भगवती जगदम्बाकी आराधना करनेके लिये वनमें चले गये। (अध्याय २८-२९)

☆

## सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली शक्तियोंकी नामावली

व्यासजी कहते हैं—राजन्! चतुर्मुख ब्रह्माकी आज्ञा पाकर वनमें गये हुए मुनिगण हिमालयके तटपर पहुँचे और चित्तको शान्त करके मायाबीज—भगवती भुवनेश्वरीके मन्त्रका जप करने लगे। राजन्! उनके ध्यानका विषय भगवती परमा शक्ति थीं, दीर्घकालतक ध्यान करनेके पश्चात् भगवती प्रसन्न होकर उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गयीं। पाश, अङ्कुश, वर और अभयमुद्राको उन्होंने अपने चारों हाथोंमें धारण कर रखा था। उनके तीन नेत्र शोभा बढ़ा रहे थे। करुणाके रससे वे परिपूर्ण थीं। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय था। सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली परमेश्वरीको देखकर पवित्र अन्तःकरणवाले मुनि उनकी स्तुति करने लगे—'देवी! तुम विश्वरूपा, वैश्वानररूपा, तेजरूपा और सूत्ररूपा हो; तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा वह दिव्य रूप है, जिसमें समस्त लिङ्गदेह ओत-प्रोत होकर व्यवस्थित हैं, प्राज्ञ, अव्याकृत, प्रत्यक् और परब्रह्मके स्वरूपको धारण करनेवाली देवी! तुम्हें बार-बार प्रणाम है। सर्वरूप और सर्वलक्ष्मीरूपमें शोभा पानेवाली तुम भगवतीको प्रणाम है।'

इस प्रकार भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीसे भगवती जगदम्बाकी स्तुति करके दक्ष प्रभृति पुण्यात्मा मुनिगण देवीके चरणकमलोंमें मस्तक झुकाये रहे। तब कोयलके समान मधुर वचनवाली देवीने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'महाभाग मुनियो! वर माँगो; मैं सदा वर देनेके लिये तैयार हूँ—ऐसा समझ लो।' राजेन्द्र! भगवतीकी अमर वाणी सुनकर मुनियोंने वर माँगा—'देवी! आप यह कृपा करें, जिससे शंकर तथा विष्णु इन महाभाग देवताओंको अपनी शक्तियाँ पुनः प्राप्त हो जायँ।' फिर दक्षने प्रार्थना की—'देवी! अम्बे! मेरे कुलमें तुम्हारा अवतार होना चाहिये, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। भगवती परमेश्वरी! तुम अपने मुखसे केवल जप, ध्यान, पूजा और अपने विविध स्थानोंका परिचय देनेकी कृपा करो।'

देवीने कहा—मेरी शक्तियोंका अपमान करनेसे ही शिव और विष्णुको ऐसी अप्रिय परिस्थिति प्राप्त हुई है, इस प्रकार शक्तिरूपा मेरा अपराध कभी नहीं करना चाहिये। अच्छा, अब मेरी किंचित् कृपासे उनमें स्वस्थता—शक्ति आ जायगी। गौरी और लक्ष्मी नामक मेरी शक्तियोंका तुम्हारे एवं क्षीरसागरके यहाँ जन्म होगा। मेरे प्रेरणा करनेपर वे शक्तियाँ उनके पास चली जायँगी। मुझे सदा प्रसन्न करनेवाला मायाबीज ही मेरा प्रधान मन्त्र है। मेरे विराट् रूपका अथवा तुम्हारे सामने उपस्थित इस रूपका या सच्चिदानन्दमय रूपका ध्यान करना चाहिये। मेरी पूजा करनेके लिये उपयुक्त स्थान सारा जगत् ही है। तुम्हें चाहिये, मेरी पूजा और ध्यानमें सदा संलग्न रहो।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर मणिद्वीपमें विराजनेवाली भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। दक्ष प्रभृति सभी मुनिगण ब्रह्माजीके पास लौट आये और उनको सम्मानपूर्वक सारा समाचार बतला दिया। राजन्! तब भगवान् शिव और विष्णु स्वस्थ हो गये। उनको अपने-अपने कार्य-सम्पादनकी शक्ति एवं योग्यता पुनः प्राप्त हो गयी।

महाराज ! कुछ समय बीत जानेके पश्चात् भगवती जगदम्बाकी एक ज्योतिने दक्षके घर अवतार धारण किया। उस समय तीनों लोकोंमें बधाई बजने लगी। सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। राजन् ! स्वर्गके देवताओंने दुन्दुभियाँ बजानी आरम्भ कर दीं। पवित्र अन्तःकरणवाले साधुपुरुषोंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। नदियाँ निर्मल जलकी धारा बहाने लगीं। भगवान् भास्कर शुद्धरूपसे प्रकाश फैलाने लगे। मङ्गलमयी भगवतीके प्रकट होनेपर सम्पूर्ण जगत् मङ्गलमय हो गया। परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके सत्यांश होनेसे उन देवीका नाम 'सती' रख दिया गया। समयानुसार वे सती शिवकी पत्नी बनीं; क्योंकि पहले भी वे उनकी शक्ति रह चुकी थीं। राजन् ! दैवके प्रभावसे प्रभावित होकर सतीने अपने शरीरको दक्षके यज्ञसम्बन्धी प्रज्वलित अग्निमें भस्म कर दिया।

जनमेजयने पूछा—मुने ! यह बड़ा ही अप्रिय वचन आपने सुनाया है। भला, जिनके नाम-स्मरण-मात्रसे मनुष्य लौकिक अग्निके भयसे मुक्त हो जाते हैं, वैसी वे परम विभूति सती अग्निमें कैसे भस्म हो गयीं ? किस प्रतिकूल कर्मके प्रभावसे दक्ष प्रजापतिके यहाँ ऐसी दुर्घटना घटी ?

व्यासजी बोले—राजन् ! सतीके भस्म होनेका कारण सुनो। यह कथा बहुत प्राचीन है। एक समयकी बात है—मुनिवर दुर्वासा जम्बूनदके तटपर विराजनेवाली प्रधान देवता भगवती जगदम्बाके पास गये। वहाँ मुनिको भगवतीके साक्षात् दर्शन हुए। इसके बाद वे मायाबीज नामक मन्त्रका जप करने लगे। देवेश्वरीने प्रसन्न होकर मुनिको अपने गलेकी पुष्पमाला प्रसादस्वरूप दे दी। दिव्य पुष्पोंके परागसे परिपूर्ण होनेके कारण उस मालापर भ्रमर मँड़राते और गुनगुनाते थे। मुनिने उस मालाको सिर झुकाकर ले लिया। इसके बाद वे परम तपस्वी मुनि वहाँसे तुरंत निकले और आकाशमार्गसे होते हुए जहाँ सतीके पिता दक्ष प्रजापति स्वयं विराजमान थे, वहाँ जा पहुँचे। उस समय दक्षने मुनिसे पूछा—'प्रभो ! यह दिव्य माला किसकी है ? जगत्के मनुष्योंके लिये यह परम दुर्लभ माला आपने कैसे प्राप्त कर ली ?'

दक्ष प्रजापतिका यह वचन सुनकर मुनिवर दुर्वासाकी आँखें आँसुओंसे भर गयीं। प्रेमसे उनका हृदय विह्वल हो उठा। उन्होंने उत्तर दिया—'भगवती जगदम्बाका यह अनुपम प्रसाद है।' तब सतीके पिता दक्षने मुनिसे प्रार्थना की—'यह माला मुझे देनेकी कृपा कीजिये।' त्रिलोकीमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो भगवती जगदम्बाके उपासकको न दी जा सके—यों विचारकर मुनिने वह पुष्पहार दक्षको दे दिया। दक्षने सिर झुकाकर माला ले ली। तदनन्तर अन्तःपुरमें पति-पत्नीके आनन्दके लिये जो अत्यन्त सुन्दर शय्या थी, उसपर उन्होंने उस मालाको रख दिया और उसी शय्यापर रात्रिके समय उन्होंने स्त्री-समागम किया। राजन् ! इस पापकर्मके प्रभावसे भगवान् शंकर तथा देवी सतीके प्रति दक्षके मनमें द्वेष उत्पन्न हो गया। मनुजेन्द्र ! उसी अपराधका परिणाम यह हुआ कि सतीने सतीधर्मको प्रदर्शित करनेके विचारसे दक्षसे उत्पन्न अपने शरीरको योगाग्निद्वारा भस्म कर दिया। फिर वही ज्योति हिमालयके घर प्रकट हुई।

जनमेजयने पूछा—मुने ! जो प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं; उन सतीके भस्म हो जानेपर उनके वियोगसे कातर होकर भगवान् शिवने क्या किया ?

व्यासजी बोले—राजन् ! इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उसे पूर्णरूपसे कहनेमें मैं असमर्थ हूँ। भगवान् शंकरकी कोपाग्निने त्रिलोकीमें प्रलय मचा दिया। जब वीरभद्र प्रकट हो भद्रकालीको साथ लेकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रस्तुत हो गये, तब ब्रह्मादि देवताओंने भगवान् शंकरकी शरण ली। दक्षको मार दिया गया था और उनका यज्ञ सब प्रकारसे नष्ट हो गया था। तब करुणाके सागर भगवान् शिवने देवताओंको अभय प्रदान किया। साथ ही बकरेका सिर जोड़कर दक्षके जीवित होनेकी भी व्यवस्था कर दी। तत्पश्चात् वे महात्मा महेश्वर अत्यन्त उदास होकर यज्ञ-स्थलमें गये। उन्होंने देखा, सतीका चिन्मय शरीर अग्निमें जल रहा था। 'हा सती !' इस शब्दको बार-बार दुहराते हुए शिवने उस शरीरको उठाकर अपने कंधेपर रख लिया और पागल-जैसे होकर वे देश-देशमें भटकने लगे। तब ब्रह्मा आदि देवताओंका मन अत्यन्त चिन्तासे व्याप्त हो गया। उस समय भगवान् विष्णुने तुरंत धनुष उठाया और जिस-जिस स्थानपर भगवती सतीके अङ्ग गिरे थे, वहाँ-वहाँ अन्वेषण करके उन अङ्गोंको काट डाला। तदनन्तर जहाँ-कहीं भी शरीरके टुकड़े थे, वहीं शंकरकी अनेक मूर्तियाँ प्रकट हो गयीं। शिवने देवताओंसे कहा—'जो इन स्थानोंपर उत्तम भक्तिके साथ भगवती शिवाकी उपासना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा; क्योंकि जहाँ सतीके अपने अङ्ग हैं, वहाँ जगदम्बा निरन्तर वास करेंगी। इन स्थानोंमें रहकर जो मनुष्य पुरश्चरण करेंगे, उनके मन्त्रसिद्ध होनेमें कोई संदेह नहीं है। ये स्थान मायाबीज मन्त्र-जपके लिये विशेष उपयोगी हैं।'

राजेन्द्र ! इस प्रकार कहकर भगवान् शंकरने सतीके विरहसे अधीर हो उन-उन स्थानोंमें जप, ध्यान और समाधिमें संलग्न होकर समय व्यतीत किया।

जनमेजयने पूछा—अनघ ! वे सिद्धपीठ स्थान कौन-कौन-से हैं, कितने हैं और उनके क्या नाम हैं ? मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। दयासिन्धो ! महामुने ! उन स्थानोंपर विराजनेवाली देवियोंके नाम भी कृपया बता दें, जिससे मैं कृतार्थ हो सकूँ।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सुनो, मैं अब देवीपीठोंका परिचय देता हूँ, जिनके श्रवण-मात्रसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो सकता है। जिन-जिन पीठोंमें सिद्धि चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा देवीकी उपासना तथा ऐश्वर्य चाहनेवालोंके द्वारा ध्यान होना चाहिये, उन स्थानोंको मैं तत्त्वपूर्वक बताता हूँ। वाराणसीमें गौरीका मुख गिरा था, अतएव उस पीठस्थानमें रूप धारण करनेवाली देवीका नाम 'विशालाक्षी' है। नैमिषारण्यक्षेत्रमें विराजमान देवी 'लिङ्गधारिणी' नामसे प्रसिद्ध हुईं। देवीको प्रयागमें 'ललिता', गन्धमादन पर्वतपर 'कामुकी', मानसमें 'कुमुदा', दक्षिणमें 'विश्वकामा' तथा उत्तरमें भगवती 'विश्वकाम-प्रपूरणी' कहते हैं। गोमन्तपर 'गोमती' तथा मन्दराचलपर 'कामचारिणी' नामसे विख्यात हैं। चैत्ररथमें देवीको 'मदोत्कटा', हस्तिनापुरमें 'जयन्ती', कान्यकुब्जमें 'गौरी' तथा मलयाचल-पर 'रम्भा' कहा गया है। एकाम्रपीठपर वे

'कीर्तिमती' कहलाती हैं। विश्वपीठमें वे 'विश्वेश्वरी' तथा पुष्करमें 'पुरुहूता' नामसे विख्यात हुईं। केदारपीठमें 'सन्मार्गदायिनी', हिमवान्पीठमें 'मन्दा' तथा गोकर्णपीठमें 'भद्रकर्णिका'—ये नाम देवीके हुए हैं। स्थानेश्वरीपीठमें 'भवानी', बिल्वकपीठमें 'बिल्वपत्रिका', श्रीशैलपर 'माधवी' तथा भद्रेश्वरपर 'भद्रा' नामसे देवीकी प्रसिद्धि है। वराहपीठमें 'जया', कमलालयपीठमें 'कमला', रुद्रकोटिमें 'रुद्राणी' तथा कालञ्जरमें ये 'काली' कहलाती हैं। इन्हें शालग्रामपीठमें 'महादेवी', शिवलिङ्गमें 'जलप्रिया', महालिङ्गमें 'कपिला', माकोटमें 'मुकुटेश्वरी', मायापुरीमें 'कुमारी', 'संतानपीठमें 'ललिताम्बिका', गयामें 'मङ्गला' तथा पुरुषोत्तमपीठमें 'विमला' कहा गया है। सहस्राक्षमें 'उत्पलाक्षी', हिरण्याक्षमें 'महोत्पला', विशाखामें 'अमोघाक्षी', पुण्ड्रवर्धनपीठमें 'पाडला', सुपार्श्वमें 'नारायणी', चित्रकूटमें 'रुद्रसुन्दरी', विपुलक्षेत्रमें 'विपुला', मलयाचलपर भगवती 'कल्याणी', सह्याद्रि पर्वतपर 'एकवीरा', हरिश्चन्द्रपीठपर 'चन्द्रिका', रामतीर्थमें 'रमणा', यमुनापीठमें 'मृगावती'। कोटितीर्थमें 'कोटवी', माधववनमें 'सुगन्धा', गोदावरीमें 'त्रिसंध्या', गङ्गाद्वारमें 'रतिप्रिया', शिवकुण्डमें 'शुभानन्दा', देविकातटपीठमें 'नन्दिनी', द्वारकामें 'रुक्मिणी', वृन्दावनमें 'राधा', मथुरामें 'देवकी', पातालमें 'परमेश्वरी', चित्रकूटमें 'सीता', विन्ध्याचल पर्वतपर 'विन्ध्यवासिनी', करवीरक्षेत्रमें 'महालक्ष्मी', विनायकक्षेत्रमें देवी 'उमा', वैद्यनाथधाममें 'आरोग्या', महाकालपीठमें 'माहेश्वरी', उष्णतीर्थमें 'अभया', विन्ध्यपर्वतपर 'नितम्बा', माण्डव्यपीठमें 'माण्डवी' तथा माहेश्वरीपुरीमें ये देवी 'स्वाहा' नामसे विख्यात हैं। छगलण्डमें 'प्रचण्डा', अमरकण्टकमें 'चण्डिका', सोमेश्वर-पीठमें 'वरारोहा', प्रभासक्षेत्रमें 'पुष्करावती', सरस्वतीतीर्थमें 'देवमाता' तथा तट नामक पीठमें 'पारावारा' नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। महालयमें 'महाभागा', पयोष्णीमें 'पिङ्गलेश्वरी', कृतशौचतीर्थमें 'सिंहिका', कार्तिकक्षेत्रमें 'अतिशाङ्करी', वर्तकतीर्थमें 'उत्पला', सुभद्रा एवं शोणाके संगमपर 'लोला', सिद्धवनमें माता 'लक्ष्मी', भरताश्रमतीर्थमें 'अनङ्गा', जालन्धर पर्वतपर 'विश्वमुखी', किष्किन्धा पर्वतपर 'तारा', देवदारुवनमें 'पुष्टि', काश्मीर प्रदेशमें 'मेधा', हिमाद्रि पर्वतपर देवी 'भीमा', विश्वेश्वर-क्षेत्रमें 'तुष्टि', कपालमोचनतीर्थमें 'शुद्धि', कायावरोहणतीर्थमें 'माता', शङ्खोद्धारतीर्थमें 'धरा' तथा पिण्डारकतीर्थमें 'धृति' नामसे ये प्रसिद्ध हुईं। चन्द्रभागानदीके तटपर 'कला', अच्छोद नामक क्षेत्रमें 'शिवधारिणी', वेणा-नदीके किनारे 'अमृता', वदरीवनमें 'उर्वशी', उत्तर कुरुप्रदेशमें 'ओषधि', कुशद्वीपमें 'कुशोदका', हेमकूट पर्वतपर 'मन्मथा', कुमुद-वनमें 'सत्यवादिनी', अश्वत्थतीर्थमें 'वन्दनीया', वैश्रवणालय क्षेत्रमें 'निधि', वेदवदनतीर्थमें 'गायत्री', भगवान् शिवके संनिकट 'पार्वती', देवलोकमें 'इन्द्राणी', ब्रह्मलोकमें 'सरस्वती', सूर्यके बिम्बमें 'प्रभा', मातृकाओंमें 'वैष्णवी', सतियोंमें 'अरुन्धती' तथा रामा प्रभृति अप्सराओंमें 'तिलोत्तमा' नामसे देवी विख्यात हुईं। सम्पूर्ण प्राणियोंके चित्तमें सदा विराजनेवाली शक्तिको 'ब्रह्मकला' कहते हैं।

जनमेजय! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ

और वहाँ विराजनेवाली उतनी देवियाँ कही गयीं। देवी सतीके अङ्गोंसे सम्बन्धित इन पीठोंका परिचय बता दिया। भूमण्डलपर इनके अतिरिक्त जो प्रधान स्थान हैं, प्रसङ्गवश वे भी बता दिये गये। जो पुरुष इन एक सौ आठ सिद्धपीठोंका स्मरण एवं श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवतीके परमधाममें चला जाता है। इन अखिल तीर्थोंकी यात्रा विधिके अनुसार करनी चाहिये। वहाँ जाकर पितरोंका तर्पण और श्राद्ध करनेके पश्चात् भगवतीकी विशिष्ट पूजा विधिपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। पूजनके उपरान्त भगवती जगदम्बाके सामने बार-बार अपराध क्षमा करानेका विधान है। जनमेजय! सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थोंसे तृप्त करना चाहिये। राजन्! सुवासिनी स्त्रियों, कुँआरी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियोंको भोजन कराना उचित है। प्रभो! उस क्षेत्रमें रहनेवाले जो चाण्डाल हैं, उन्हें भी देवीका रूप कहा गया है। अतः उन सबकी भी पूजा होनी चाहिये। उन सिद्धपीठोंमें सभी प्रकारका दान-ग्रहण निषिद्ध है। शक्तिके अनुपम मन्त्रका अनुष्ठान होना चाहिये। मायाबीज मन्त्रराज माना जाता है। समस्त पीठोंमें विराजनेवाली भगवती जगदम्बाकी इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। राजन्! अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि धन खर्च करनेमें कंजूसी न करके देवीके प्रति अटूट श्रद्धा रखे। जो पुरुष इस प्रकार श्रीदेवीके सिद्धपीठोंकी प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करता है, उसके पितर एक हजार कल्पोंतक श्रेष्ठ ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। स्वयं वह भी आयु समाप्त होनेपर देवीके लोकमें स्थान पाता है। फिर उत्तम ज्ञान पाकर वह संसारसागरसे मुक्त हो जाता है। इस अष्टोत्तरशतनामके जपसे बहुत-से पुरुष सिद्धि पा चुके हैं। जहाँ यह अष्टोत्तर-शतनाम स्वयं लिखा गया हो, अथवा रखी हुई पुस्तकमें अङ्कित हो, वहाँ महामारी आदि उपद्रव भय नहीं पहुँचा सकते; बल्कि वहाँ इस प्रकार सौभाग्यमें वृद्धि होती है, जैसे पर्वपर समुद्र बढ़ता है। जो भगवतीकी भक्तिमें तत्पर होकर इस अष्टोत्तरशतनामका जप करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। उसका जीवन निश्चय ही सफल समझना चाहिये। उस जापकके सामने देवतातक मस्तक झुकानेके लिये तैयार रहते हैं; क्योंकि वह जापक भगवतीका रूप माना जाता है। जो देवताओंके सर्वथा पूज्य हैं, श्रेष्ठ मानव उनकी पूजा करें—इसमें कहना ही क्या है। श्राद्धके अवसरपर इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ किया जाय तो श्राद्धकर्त्ताके सम्पूर्ण पितर तृप्त होकर उत्तम गति पा जाते हैं। राजेन्द्र! ये मुक्तिक्षेत्र भगवतीके साक्षात् विग्रह हैं। सिद्धपीठ इनकी संज्ञा है। बुद्धिमान् मनुष्य इनका अवश्य सेवन करे।

राजन्! तुमने भगवती परमेश्वरीके विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब-का-सब रहस्यसहित मैं बता चुका। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो।

(अध्याय ३०)

☆

# तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा हिमालयके घर देवीका प्राकट्य; हिमालयकी प्रार्थनापर देवीका ज्ञानोपदेश प्रारम्भ

जनमेजयने कहा—मुने ! आप पहले कह चुके हैं कि हिमालयके शिखरपर महान् तेजका आविर्भाव हुआ था। इसी प्रसङ्गको अब मुझे विस्तारके साथ बतलानेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तुम धन्य हो, कृतकृत्य एवं परम भाग्यशाली हो। महात्मा पुरुषोंने तुम्हें श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान की है। इसीसे भगवती जगदम्बाके प्रति तुम्हारे हृदयमें ऐसी निष्कपट भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है। राजन् ! सुनो, प्राचीन प्रसङ्ग बता रहा हूँ। जब सतीका शरीर योगाग्निमें भस्म हो गया तब भगवान् शिव देश-देशान्तरोंमें घूमते हुए अन्तमें किसी एक जगह जाकर ठहर गये। मनको सब ओरसे खींचकर भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगे। उस समय त्रिलोकीके जितने चराचर प्राणी थे, प्रायः सभी सौभाग्यसे वञ्चित हो गये। द्वीपों और पर्वतोंसहित सारा संसार शक्तिहीन हो गया। सबके हृदयमें बहनेवाला आनन्दमय रसस्रोत बिलकुल सूख गया। सबके मुखपर उदासी छा गयी। सभी दुःखरूपी समुद्रमें डूब गये। रोगोंने सबको धर दबाया। ग्रहों और देवताओंकी चालमें कोई समुचित नियम नहीं रहा। राजन् ! भगवती सतीकी अनुपस्थितिमें देवता और मानव प्रायः उच्छृङ्खल-से हो गये। उसी समय तारक नामसे प्रसिद्ध एक महान् असुर उत्पन्न हुआ था। त्रिलोकीके अध्यक्ष महाभाग ब्रह्माजीने उसे वर दे दिया था कि 'भगवान् शंकरका जो औरस पुत्र होगा, उसीके हाथ तुम्हारी मृत्यु हो सकेगी।' फिर तो वह महान् असुर देवाधिदेव ब्रह्माद्वारा कल्पित मृत्युका वर पाकर गरजने और डींग हाँकने लगा। कारण, भगवान् शंकरके औरस पुत्रकी तो कल्पना ही नहीं थी। इससे व्याकुल होकर सम्पूर्ण देवता अपने स्थानोंसे भाग चले। शिवका कोई औरस पुत्र नहीं था, इससे देवताओंके मनमें अपार चिन्ता हो गयी। उन्होंने सोचा—'शंकरजीके तो पत्नी ही नहीं है, फिर पुत्रकी सम्भावना कैसे की जाय ? ऐसी स्थितिमें हम भाग्यहीनोंका कार्य किस प्रकार सम्पन्न होगा।' इस प्रकार चिन्तासे अत्यन्त आकुल होकर सभी देवता वैकुण्ठमें गये। एकान्तमें उन्होंने भगवान् विष्णुको अपनी दुःख-कहानी सुनायी। श्रीहरिने उनको उपाय बताते हुए कहा—'तुम सब इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हो ? भगवती शिवा कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये साक्षात् कल्पवृक्ष हैं। मणिद्वीपमें विराजनेवाली वे भगवती भुवनेश्वरी सोयी थोड़े हैं। हमलोगोंके दोषसे ही जगदम्बाने उपेक्षा कर रखी है— दूसरी कोई बात नहीं। उनका यह कार्य हमें शिक्षा देनेके लिये ही समझना चाहिये। जिस प्रकार माता बच्चेको डाँटे या प्यार करे; परंतु प्रत्येक स्थितिमें वह उसपर करुणा ही रखती है; वैसे ही जगदम्बाको भी जानना चाहिये। गुण और दोषके अनुसार उन्हें कार्य तो करना ही पड़ता है। पुत्रसे तो पद-पदमें अपराध होते हैं। एक माताके सिवा जगत्में दूसरा कौन है, जो उस अपराधको सह सके। अतः तुम सब लोग मनको शान्त करके छल-कपटसे शून्य होकर उन भगवती जगदम्बाकी शरण जाओ। देर करना अनुचित है। तुम्हारा कार्य वे अवश्य

पूर्ण कर देंगी।'

राजन्! इस प्रकार देवताओंको उपदेश देनेके उपरान्त भगवान् विष्णु देवताओंके साथ वैकुण्ठसे निकल पड़े। गिरिराज हिमालयपर पहुँचते उन्हें देर न लगी। सभी देवताओंने देवीका भजन और आराधन आरम्भ कर दिया। जिन्हें अम्बायज्ञकी विधि मालूम थी वे अम्बायज्ञ करने लगे। राजन्! समस्त देवताओंके द्वारा उसी समय तृतीयादि[1] व्रतका आयोजन बन गया। कुछ लोग समाधि लगाकर बैठ गये। कुछ देवताओंने नाम-जप आरम्भ कर दिया। कुछ व्यक्ति सूक्तपाठ करने लगे। कुछ लोगोंने मन्त्रका जप आरम्भ किया। कुछ कृच्छ्रव्रती, अन्तर्यागके अभ्यासी और न्यासके परायण बन गये। कुछ देवता सावधान होकर मायाबीज मन्त्रका प्रयोग करके भगवती परमेश्वरीकी पूजा करने लगे। जनमेजय! यों करते-कराते बहुत समय बीत गया। तदनन्तर अपने-आप श्रुतिद्वारा जानने योग्य सर्वोत्कृष्ट ज्योति सबके सामने प्रकट हो गयी। चैत्र शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि थी और शुक्रवार था। चारों वेद मूर्तिमान् होकर चारों दिशाओंमें उसकी स्तुति करने लगे। उस ज्योतिमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश था। वह शीतल ऐसी थी मानो करोड़ों चन्द्रमा हों। करोड़ों बिजलियोंके समान वह ज्योति चमक रही थी। उसका रंग लाल था। न बहुत ऊँची थी और न नीची। मध्यम श्रेणीकी थी। आदि और अन्तसे रहित उस तेजमें हाथ एवं अँगुलियाँ भी नहीं थीं। स्त्री-पुरुष अथवा नपुंसक किसी भी रूपका स्पष्ट भान नहीं होता था।

राजन्! उस तेजके प्रकट होते ही देवताओंकी आँखें मुँद गयीं। फिर धैर्य धारण करके ज्यों ही वे उधर देखनेके लिये उद्यत हुए कि तुरंत उन्हें एक परम दिव्य मनोहर देवी

दृष्टिगोचर हुई। उसके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर थे। उसकी कुमार अवस्था थी। यौवन अभी-अभी खिल रहा था। विशाल वक्षःस्थल था। बजती हुई किङ्किणी, करधनी और पायजेबसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। दिव्य सुवर्णके बाजूबंद, कड़े, कण्ठहार आदि आभूषण उसकी छवि बढ़ा रहे थे। बहुमूल्य मणियोंका चमचमाता हुआ हार उसके गलेमें लटक रहा था। केतकीके नूतन पत्तोंके समान उज्ज्वल कपोलोंपर भ्रमरकी तुलना करनेवाले काले केश शोभा पा रहे थे। उसका कटिप्रदेश बड़ा ही सुघड़ था। रोमावलियाँ शोभा बढ़ा रही थीं। कपूरके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे युक्त पानके बीड़े उसके मुखमें भरे थे। कमल-जैसे मुखपर

१. इन तृतीयादि व्रतोंका स्पष्टीकरण भगवती जगदम्बा हिमालयके प्रति आगे करेंगी।

सुवर्णमय कुण्डलकी मधुर ध्वनि निकल रही थी। ललाटपर फैली हुई भौंहें ऐसी जान पड़ती थीं मानो अष्टमीका चन्द्रमा हो। लाल कमलके समान नेत्र थे। ऊँची नासिका थी। ओठोंसे अमृत टपक रहा था। कुन्दकी खिली हुई कलियों-जैसे सुन्दर दाँत थे। मोतीकी माला उनके गलेको सुशोभित कर रही थी। मस्तकपर रत्नमय मुकुट था, जिसमें चन्द्रमाकी रेखा अङ्कित थी। मल्लिका और मालतीकी माला केशकी वेणीमें गुँथी थी, इससे परम मनोहरता छा रही थी। केसरकी बिंदीसे ललाट सुशोभित था। तीन नेत्र छटा छिटका रहे थे। पाश, अङ्कुश, वर और अभय मुद्रासे युक्त चार भुजाएँ थीं। लाल रंगका दिव्य वस्त्र अनुपम शोभा दे रहा था। शरीरकी कान्ति ऐसी थी मानो अनारका पुष्प हो। शृङ्गारकी सभी वस्तुओंसे वे अलंकृत थीं। समस्त देवता उन्हें नमस्कार कर रहे थे। वे साधारण स्त्री नहीं थीं किंतु सबकी आशा पूर्ण करनेवाली एवं सबको मोहित करनेमें समर्थ तथा सबको जन्म देनेवाली माता जगदम्बा थीं। उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला था। वे मुसकुरा रही थीं। ऐसी शुद्ध करुणाकी साकार मूर्ति भगवती जगदम्बाके देवताओंने भलीभाँति दर्शन किये। फिर वे आदरपूर्वक उन करुणामयी देवीको प्रणाम करने लगे। हर्षके आँसुओंसे उनके कण्ठ रुक गये थे। अतः वे कुछ भी बोलनेमें असमर्थ हो गये थे। किसी प्रकार चित्तमें स्थिरता प्राप्त करनेपर वे नम्रतापूर्वक कंधे झुकाकर भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे। उस समय उनकी आँखें आनन्दके आँसुओंसे भरी थीं।

देवताओंने कहा—देवीको नमस्कार है। महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक भगवती जगदम्बाको नमस्कार करते हैं। उन अग्निके-से वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफलप्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गा देवीकी हम शरणमें हैं। संसार-सागरसे तारनेवाली ! तुम्हें नमस्कार है। प्राण-रूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसीको अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनु-तुल्य आनन्ददायिनी और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप पधारें। कालका भी नाश करनेवाली, वेदोंद्वारा स्तुत हुई विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिव-शक्ति), सरस्वती (ब्रह्मा-शक्ति), देवमाता अदिति और दक्ष-कन्या सती, पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं। हम महालक्ष्मीको जानते हैं, उन सर्वशक्ति-रूपिणीका ही ध्यान करते हैं, वह देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यानमें) प्रवृत्त करें। विराट्‌रूप धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। सूक्ष्म-रूपसे विराजनेवालीको नमस्कार है। अव्याकृत-रूपसे शोभा पानेवालीको नमस्कार है। श्रीब्रह्मकी मूर्ति धारण करनेवालीको नमस्कार है। जिन्हें न जाननेके कारण रस्सीमें सर्पकी भाँति इस मिथ्या जगत्‌का भान होता है और जिनके जानते ही वह भ्रान्त-बुद्धि नष्ट हो जाती है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम मस्तक झुकाते हैं। जो 'तत्' पदकी लक्ष्यार्थ हैं, जिनका रूप एक मात्र चिन्मय है, जो अखण्ड आनन्दकी मूर्तिमान् रूप हैं तथा वेदके तात्पर्यकी जो भूमिका मानी जाती हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको

हम प्रणाम करते हैं। जो पञ्चकोशसे अतिरिक्त हैं, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी हैं, जिनसे 'त्वम्' पदका बारम्बार लक्ष्य होता है तथा जो प्रत्यगात्मस्वरूपा हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं। प्रणवरूपा देवीको नमस्कार है, ह्रींकार मूर्तिको नमस्कार है, नाना मन्त्रमयीको नमस्कार है। करुणामयी देवी ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है।*

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर मणिद्वीपमें विराजनेवाली आनन्दनिमग्न हुई भगवती जगदम्बा मधुर कोकिल-सी वाणीमें यों बोलीं।

श्रीदेवीने कहा—आप सब देवता किस प्रयोजनसे यहाँ पधारे हैं, सो बताइये। मैं भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्ष हूँ। वर देना मेरा स्वाभाविक गुण है। मेरे रहते आप भक्तिपरायण देवताओंको क्या चिन्ता है। मैं अपने भक्तोंका इस दुःखमय संसार-सागरसे उद्धार कर देती हूँ। महाभाग देवताओ ! आपको मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य समझनी चाहिये।

स्नेहसे विह्वल होकर भगवती जगदम्बा यों कह गयीं। उनकी वाणी सुनकर देवताओंका मन हर्षसे भर गया। राजन् ! अब वे निर्भय होकर अपना दुःख सुनाने लगे।

देवता बोले—परमेश्वरी ! त्रिलोकीमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो तुम्हें ज्ञात न हो, क्योंकि तुम सर्वज्ञा एवं सर्वसाक्षिरूपिणी हो। शिवे ! तारक नामवाला महान् दैत्य हमें दिन-रात कष्ट पहुँचा रहा है। शंकरके पुत्रद्वारा उसकी मृत्यु होनेकी बात ब्रह्माने निश्चित कर दी है। महेश्वरी ! तुमसे छिपा नहीं है कि इस समय शिव विधुरजीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम अल्पबुद्धि व्यक्ति तुम-जैसी सर्वज्ञानसम्पन्नाके समक्ष कह ही क्या सकते हैं। अम्बिके ! इसीलिये हमारा आना हुआ है। देवी ! तुम्हारे चरण-कमलमें हमारी अविचल भक्ति हो। देहके रक्षार्थ हमारी दूसरी मुख्य प्रार्थना यही है।

राजन् ! देवताओंकी बात सुनकर—

भगवती परमेश्वरीने कहा—देवताओ ! मेरी शक्ति जो 'गौरी' नामसे विख्यात है, हिमालयके

---

* नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्। सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्॥
नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये। नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्ममूर्तये॥
यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत्। यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम्॥
नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम्। अखण्डानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम्॥
पञ्चकोषातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम्। पुनस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम्॥
नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये। नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः॥
(७।३१।४४—५३)

(इनमें ऊपरके पाँच श्लोक—'देव्यथर्वशीर्षम्' में एक स्थानपर थोड़ेसे पाठभेदके साथ ज्यों-के-त्यों आये हैं।)

घर प्रकट होगी। आपलोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे भगवान् शिवके साथ उसका सम्बन्ध हो जाय। वही आपलोगोंका कार्य सिद्ध करेगी। शर्त यह है कि उनके चरण-कमलमें आदरपूर्वक आपकी भक्ति बनी रहे। हिमालयका भी कर्तव्य है कि भक्तिके साथ मनसे मेरी उपासना करे।

फिर उसके घर गौरीका जन्म, जो मुझे अत्यन्त रुचिकर है, अवश्य होगा।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! हिमालय भी परमेश्वरीके इस अत्यन्त कृपापूर्ण वचन सुन रहे थे। वे गद्गदकण्ठ हो रहे थे। उनकी आँखें डबडबा गयी थीं। देवीके प्रति वे बोले—"जगदम्बे! मुझ जडपर तुम्हारी कितनी महान् कृपा है, जो तुम मुझे एक महान्‌से भी महान् व्यक्ति बनानेके प्रयत्नमें लगी हो; नहीं तो, कहाँ मैं एक जड पर्वत और कहाँ तुम सत् एवं चिन्मयी भगवती। अनघे! सैकड़ों जन्मोंके अश्वमेध-यज्ञ तथा ध्यानसे सम्पन्न होकर भी मैं तुम्हारा पिता बन सकूँ—यह बिलकुल असम्भव है। यह तो तुम्हारी ही अहैतुकी कृपा है। अब जगत्‌में मेरा सुयश फैल जायगा। लोग कहेंगे 'जगदम्बा हिमालयकी पुत्री हुई हैं। अहो, ये बड़े ही भाग्यशाली हैं, इन्हें धन्यवाद है। जिनके उदरमें करोड़ों ब्रह्माण्ड विराजमान हैं, वे ही भगवती जगदम्बा जिसके घर कन्यारूपसे प्रकट हुई हैं, उसकी तुलना जगत्‌में कौन कर सकता है।' मेरे पितर भी ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिनके वंशमें मुझ-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। मैं नहीं जानता कि उनके रहनेके लिये कौन-सा श्रेष्ठ स्थान बना है। जिस प्रकार तुमने स्नेहपूर्ण कृपाके वश होकर मुझे गौरीके पिता होनेका सुअवसर प्रदान किया, वैसे ही सम्पूर्ण वेदान्तके सिद्धान्तभूत उनके स्वरूपका भी वर्णन करो। परमेश्वरी! मुझे भक्तियुक्त, योग और स्मृतिसम्मत ज्ञानका प्राप्त होना भी तुम्हारी ही कृपापर निर्भर है।"

व्यासजी कहते हैं—राजन्! हिमालयकी यह बात सुनकर भगवती जगदम्बाका मुख-कमल प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो गया। वे श्रुतियोंमें छिपे हुए रहस्यका प्रतिपादन करनेको उद्यत हो गयीं।

श्रीदेवी बोलीं—मैं कह रही हूँ, समस्त देवगण मेरी बात सुन लें, इसके श्रवणमात्रसे मेरा सारूप्य प्राप्त हो जाता है। पर्वतराज हिमालय! पहले केवल मैं ही थी। दूसरी किसी वस्तुकी सत्ता नहीं थी। उस समय मेरा रूप सत्, चित् एवं आनन्दमय परब्रह्म था। वह रूप अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, अनौपम्य और अनामय है। उसी रूपसे कोई एक शक्ति स्वयं प्रकट हो गयी। उसका 'माया' नाम पड़ गया। वह माया न सती थी और न असती। इस सती और असतीके भेदसे शून्य वह कोई एक विलक्षण ही वस्तु थी। अग्निमें जो प्रकाश और चन्द्रमामें जो

चन्द्रिका है, वह उस मेरी शक्तिका ही अंश है। उस शक्तिको निश्चितरूपसे मेरी सहचरी समझना चाहिये। जीवोंका जीना और मरना उसी शक्तिके कर्म हैं।

प्रलयके समय कुछ भी भेद नहीं रहा। सब-के-सब उसी शक्तिमें समा गये। फिर अपनी उस शक्तिके सहयोगसे मैं बीजरूपमें परिणत हुई। वह शक्ति ही उस समय मेरा आधार और आवरण थी। इसलिये उसका कुछ दोष मुझमें भी आ गया। मेरा बीजात्मक रूप चैतन्य ब्रह्मके सहयोगसे निमित्त तथा प्रपञ्चके परिणामसे 'समवायिकारण' कहलाने लगा। कुछ लोग उस शक्तिको 'तप' कहते हैं तथा दूसरे लोग 'तम' एवं 'जड' भी कहा करते हैं। शैव-शास्त्रके तत्त्वदर्शी पुरुषोंने उस शक्तिके विषयमें परस्पर परामर्श किया कि इसे 'ज्ञान', 'माया', 'प्रधान', 'प्रकृति', 'शक्ति' अथवा 'अजा' कह सकते हैं। वेदान्तके सिद्धान्तका चिन्तन करनेवाले कुछ अन्य महापुरुषोंने कहा कि नहीं, यह 'अविद्या' कहलाती है। इस प्रकार वेदोंमें उसका विविध नामोंसे वर्णन किया गया। उस शक्तिमें जडता और ज्ञाननाशकता स्पष्ट होनेसे उसका 'असती' नाम संगत हो गया।

चैतन्य दृश्य नहीं होता। उसमें यदि दृश्यता आ जाय तो उसे जड कहते हैं; क्योंकि चैतन्य स्वयं प्रकाश है। वह किसी दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता। यदि कहें कि प्रकाश ही प्रकाशको प्रकाशित करता है तो ऐसा नहीं कह सकते; क्योंकि इसमें अनवस्था दोष आ जायगा। कर्म और कर्ता—ये परस्परविरोधी धर्म एकमें कैसे आ सकते हैं? अतएव मेरा रूप दीपकके समान स्वयंप्रकाश है। पर्वत! प्रकाशक दूसरोंको व्यक्त करनेमें उपयोगी होता है—यह समझ लो। अतएव मेरे संवित् शरीरकी नित्यता स्पष्ट सिद्ध है। यदि दृश्य मानें तो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें व्यभिचारदोष आ जायगा। संवित् और व्यभिचारका कहीं एकमें ही अनुभव होना बिलकुल असम्भव है।

यदि संवित्को अनुभवसिद्ध मानें तो जिस साक्षीसे वह अनुभूत होता है, वह साक्षी ही विशिष्ट माना जायगा और वही संवित् अर्थात् ज्ञानमय शरीरका रूप है। अतएव उत्तम शास्त्र-वेत्ता उसे नित्य कहते हैं। दूसरेका प्रेमभाजन होनेसे उसमें आनन्दरूपता भी आ जाती है। पहले मेरा अभाव था, सो नहीं। मैं तब भी थी। प्रेमीजन मेरे आस्पद थे। अन्य सभी वस्तु मिथ्या हैं। मैं उनका साथ नहीं देती—यह स्पष्ट है। अतएव मेरे रूपमें अपरिच्छिन्नता भी सिद्ध हो जाती है। ज्ञान कभी आत्माका धर्म नहीं होता। अन्यथा उसमें जडता आ सकती है। ज्ञानके किसी एक अंशमें जडता छिपी है—यह न कभी देखा गया और न देखा जा सकता है। ऐसे ही चिद्धर्मके विषयमें भी समझना चाहिये। चिद्धर्मसे दूसरा चित् क्या रहेगा। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा ज्ञानरूप, सुखरूप, सत्य, पूर्ण, असंग और द्वैतरहित है। वही आत्मा फिर काम एवं कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली अपनी मायाके साथ होकर पूर्व अनुभूत संस्कार, काल-कर्मके विपाक एवं तत्त्वके अज्ञानवश सृष्टि करनेके विचारसे शरीर धारण कर लेता है।

हिमालय! मैंने अपने जिस रूपका परिचय दिया है, वह यह रूप अलौकिक, अव्याकृत, अव्यक्त तथा मायाशबल भी है। समस्त शास्त्रोंमें इसे सम्पूर्ण कारणोंका कारण,

तत्त्वोंका आदिभूत तथा सच्चिदानन्दविग्रह बताया जाता है। कहते हैं कि यह दिव्य रूप सम्पूर्ण कर्मोंका समुदाय, इच्छापूर्वक ज्ञानका आश्रय, ह्रींकार-मन्त्रवाच्य तथा आदितत्त्व है। मेरे इसी रूपसे शब्दतन्मात्रक आकाश, स्पर्शतन्मात्रक वायु तथा रूप-तन्मात्रक तेजकी क्रमशः उत्पत्ति हुई है। इसके बाद रसात्मक जल उत्पन्न हुआ। फिर गन्धवाली पृथ्वी प्रकट हुई। आकाशमें केवल एक गुण हुआ—शब्द। स्पर्श और शब्द—ये दो गुण वायुमें हुए। विज्ञ पुरुष, स्पर्श और रूप— इन तीन गुणोंसे युक्त तेजको बताते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण जलके कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध— इन पाँच गुणोंसे युक्त पृथ्वी हुई। उन्हींसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसे लिङ्ग कहते हैं। यही आत्माका सूक्ष्म शरीर है। इसे सर्वात्मक कहते हैं। जिसमें यह जगत् बीजरूपसे स्थित रहता है तथा जिससे लिङ्ग देहकी उत्पत्ति हुई है एवं जिसे पहले कह चुके हैं, वह अव्यक्त परब्रह्मका कारणशरीर है।

तदनन्तर पञ्चीकरण मार्गसे पाँच स्थूल भूत उत्पन्न हुए। उनकी स्थितिका वर्णन करते हैं। उन उपर्युक्त पाँचों भूतोंमें प्रत्येकको दो-दो भागोंमें बाँट दिया गया। फिर एक-एकमेंसे चार-चार भाग पृथक् किये गये। सबका एक इतर अंश था ही; उसे जोड़ देनेपर वे सभी पाँच-पाँच भागवाले बन गये। वही कार्यरूपमें परिणत होकर विराट् देह बन गया। यही परमात्माका स्थूल देह है। पाँचों भूतोंके सत्त्वांशसे श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। राजेन्द्र ! वे सभी इन्द्रियाँ परस्पर सम्बद्ध रहीं। वृत्ति-भेदसे चार प्रकारवाला एक अन्तःकरण उत्पन्न हुआ। जब वह संकल्प-विकल्पके उलझनमें उलझा रहता है तब उस अन्तःकरणको 'मन' कहते हैं। जिस समय संशयरहित सुनिश्चित वस्तु जाननेकी योग्यता प्राप्त होती है, तब अन्तःकरण 'बुद्धि' कहलाता है। अनुसंधान-वृत्तिके आनेपर अन्तःकरणकी 'चित्त' संज्ञा होती है और स्वरूपमें अहंकारवृत्ति उत्पन्न होनेसे इसी अन्तःकरणको 'अहंकार' कहते हैं।

फिर प्रत्येक पञ्चभूतमें जो राजस अंश थे, उनसे क्रमशः तत्-तत् कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई। प्रत्येक इन्द्रियका परस्पर सम्बन्ध हो गया। इसके बाद उन्हींके राजस अंशसे पाँच प्रकारके प्राण उत्पन्न हुए। 'प्राण' हृदयमें, 'अपान' गुदामें, 'समान' नाभिमें, 'उदान' कण्ठमें तथा 'व्यान' सम्पूर्ण शरीरमें विराजमान हुआ। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा बुद्धिसहित मन—ये सत्रह सूक्ष्म-शरीरके रूपमें परिणत हो गये। यही सूक्ष्म-शरीर लिङ्ग-शरीर कहलाता है। यों कारण, सूक्ष्म और लिङ्ग-शरीरके रूपका वर्णन करके अब जीव और ईश्वरके विभागका कारण कहा जाता है।

राजन् ! उस समय जो प्रकृति नामसे विख्यात थी, उसके भी दो भेद हैं—'माया' और 'अविद्या'। शुद्ध सत्त्वप्रधाना माया है और मलिनगुणप्रधाना अविद्या। जो अपने आश्रयमें आनेवालेकी रक्षा करती है, उसे माया कहते हैं। उस शुद्ध-सत्त्व-प्रधाना मायाके साथ जो स्थित रहता है, वही 'ईश्वर' कहलाता है। उस ईश्वरको परब्रह्मकी पूर्ण जानकारी रहती है। वह सर्वज्ञानी, सबका उत्पादक तथा सबपर कृपा करनेवाला है। पर्वतराज ! मलिन-सत्त्वप्रधाना अविद्यामें जो प्रतिबिम्ब पडा, उसे 'जीव' कहते हैं। जीवमें सम्पूर्ण सुख और दुःखका भान हुआ

करता है। पूर्वोक्त तीन शरीरोंसे ईश्वर और जीव—दोनोंका सम्बन्ध है। ये दोनों तीन नामके अभिमानी होनेसे तीन कहलाते हैं। कारण-देहाभिमानी जीव 'प्राज्ञ' कहलाता है, सूक्ष्म-देहाभिमानी 'तैजस' और स्थूल-देहाभिमानी 'विश्व'। इसी प्रकार ईश, सूत्र और विराट्पदसे ईश्वर भी तीन नामसे प्रसिद्ध है। प्रथम अर्थात् जीव 'व्यक्तिरूप' है और द्वितीय यानी ईश्वर 'समष्टि-देहाभिमानी' माना जाता है। वही सर्वेश्वर फिर स्वयं जीवोंपर कृपा करनेके लिये नाना भोगोंके आश्रयभूत इस विविध जगत्को उत्पन्न करता है। राजन् ! वह ईश्वर मेरी शक्तिसे प्रेरित होकर निरन्तर कार्य करता है।

(अध्याय ३१-३२)

☆

## देवीका अपना विराट्रूप दिखाना तथा पुनः सौम्यरूपमें प्रकट हो जाना, तदनन्तर हिमालयको पुनः ज्ञानोपदेश करना

देवीने कहा—हिमालय ! मेरी मायाशक्तिने सम्पूर्ण चराचर जगत्की रचना की है। परमार्थ-दृष्टिसे विचार किया जाय तो वह माया भी मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है। व्यवहारकी दृष्टिसे वही यह विद्या एवं माया नामसे प्रसिद्ध है। तत्त्वदृष्टिसे पृथक् कुछ नहीं। तत्त्व केवल एक ही है। वह तत्त्व मैं हूँ, जो सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके फिर अपने असली स्वरूप-तत्त्वमें विलीन हो जाती हूँ। पर्वतराज ! अपने माया एवं विद्या-संज्ञक कर्मके साथ प्राणोंको आगे करके मेरा प्रवेश होता है। कारण यह है कि यदि मैं ऐसा न करूँ तो प्राणियोंके जन्मने और मरनेकी परम्परा चालू नहीं रहे। मायाके भेदानुसार मेरे तत्-तत् कार्य होते हैं। जैसे एक ही आकाश घटाकाश और मठाकाश आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत होता है, वैसे ही मैं एक होती हुई भी उपाधिभेदसे भिन्न हूँ। जिस प्रकार सूर्य उत्तम और निकृष्ट—सभी वस्तुओंको सदा प्रकाशित करता है; परंतु वह दूषित नहीं होता, वैसे ही मैं भी कभी दोषोंसे युक्त नहीं होती। वस्तुतः जीव और ईश्वरका विभाग मायाद्वारा कल्पित है। घटाकाश और महाकाशकी भाँति जीवात्मा एवं परमात्माके भेदको भी काल्पनिक मानना चाहिये। जैसे मायाके प्रभावसे ही जीव अनेक हैं, न कि अपनी स्वतन्त्रतासे; वैसे ही मायाकी अधीनता स्वीकार करनेवाले ब्रह्मादि शासकोंमें भी विविधताका भान होता है। देह और इन्द्रिय आदि संघातरूपी वासनाके भेदको उत्पन्न करनेवाली अविद्या जीवके भेदमें कारण है। हिमालय ! जो गुण-सम्बन्धी वासनाके भेदको विभाजित करती है, वह माया है।

धरणीधर ! मुझमें ही यह सम्पूर्ण संसार ओत-प्रोत है। कारण-देहाभिमानी ईश्वर मैं हूँ। लिङ्ग-देहाभिमानी विष्णु एवं स्थूल-देहाभिमानी ब्रह्मा मैं हूँ। विष्णु, रुद्र, गौरी, सरस्वती और लक्ष्मी मेरे रूप हैं। मैं सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रगण हूँ। पशु, पक्षी, चाण्डाल, तस्कर, व्याध, क्रूरकर्मी, सत्कर्मी, महाजन, स्त्री, पुरुष और नपुंसक—ये सब कुछ मैं ही हूँ— इसमें कोई संशय नहीं है। जो कोई भी वस्तु जहाँ भी देखने एवं सुननेमें आती है—चाहे वह भीतर हो या बाहर—उन सबमें व्यापकरूपसे सदा मैं ही स्थित रहती हूँ। चराचर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो मुझसे अलग हो। यदि मुझसे रहित मानें

तो उसके साथ वन्ध्यापुत्रका उदाहरण संगत हो सकता है। जिस प्रकार एक ही रस्सी भ्रमवश सर्प अथवा मालाके रूपमें प्रतीत होती है, वस्तुतः वह है एक रस्सी ही। वैसे ही ईशादि-रूपसे मेरा केवल भान होता है—इसमें संदेह नहीं करना चाहिये। अधिष्ठानकी सत्तासे अतिरिक्त कल्पित वस्तुका भान नहीं होता। अतएव मेरी सत्तासे ही यह चराचर जगत् सत्तावान् है, अन्यथा यह कुछ नहीं है।

हिमालयने कहा—देवेशी ! तुम अपने इस सर्वाभिमानी विराट्रूपका जैसा वर्णन करती हो, वैसे ही रूपको मैं देखना चाहता हूँ, मुझपर कृपा हो तो दिखा दो।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! हिमालयकी यह बात सुनकर सम्पूर्ण देवताओंका हृदय आनन्दसे भर गया। वे उनके वचनका आदर करते हुए बोले—'हम सब भी यही चाहते हैं।' तब देवताओंकी इच्छा जानकर भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली भगवती शिवाने अपना रूप सबके सामने प्रकट किया। फिर तो, महादेवीके सर्वोत्तम विराट्रूपका देवता दर्शन करने लगे। देखा, आकाश देवीका मस्तक था। चन्द्रमा और सूर्य नेत्र थे। दिशाएँ कानके रूपमें परिणत थीं। वेद वाणी और वायु प्राण थे। विश्व हृदय था। पृथ्वी जाँघ थी। पाताल नाभि, ज्योतिश्चक्र छाती, महर्लोक ग्रीवा और जनलोक मुख था। सत्यलोकसे नीचे रहनेवाला तपोलोक ललाट था। इन्द्र प्रभृति बाँह थे। शब्द श्रोत्र था। विद्वान् पुरुषोंका कथन है कि अश्विनीकुमार विराट्-रूपिणी भगवतीकी नासिका थे। गन्ध घ्राणेन्द्रिय थी। अग्निमय मुख था। दिन और रात दोनों पलकें थीं। ब्रह्मा भौंहके स्थानमें थे। जल तालु था। रस जिह्वा बना था। यमराज दाढ़ थे, उन महेश्वरीके दाँत स्नेह थे, माया हँसी थी। सृष्टि कटाक्ष थे। लज्जा ओठ थी। उस विराट् महेश्वरीका निचला ओठ लोभ था। अधर्ममार्ग पीठ कहलाता था। जो जगत्में स्रष्टा कहलाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट्रूपमें लिङ्ग थे। समुद्र पेट था। पर्वत हड्डी थे, उन महेश्वरीकी नाड़ियाँ नदी थीं। वृक्षोंको रोमका रूप प्राप्त था। समुचित रूपसे व्याप्त कुमार, यौवन और बुढ़ापा—ये भगवती महेश्वरीके आयु थे। मेघ सिरके बाल थे। प्रातः और सायं—दोनों संध्याएँ दो वस्त्र थीं। राजन् ! उस समय भगवती जगदम्बाका मन चन्द्रमा था। हरि विवेकशक्ति और रुद्र अन्तःकरण थे। अश्व-जातिसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने प्राणी हैं, वे सभी महेश्वरीके कटिभाग थे। अतलसे लेकर पातालतक जितने महान् लोक हैं, वे जगदम्बाके कमरसे नीचेके भाग थे।

भगवती जगदम्बाके ऐसे विराट्रूपके उन श्रेष्ठ देवताओंने दर्शन किये। उनके शरीरसे हजारों प्रकारकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। जीभसे बार-बार ओठ चाटते रहना उनका स्वाभाविक गुण था। कटकटाकर शब्द करना और आँखोंद्वारा आग बरसाना मानो कभी बंद नहीं होता था। भाँति-भाँतिके आयुध उनके हाथोंमें शोभा पा रहे थे। उनका अत्यन्त शूरवीर वेष था। हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणोंसे वह विराट् विग्रह सम्पन्न था। करोड़ों बिजलियों और सूर्योंके समान उससे प्रतिभा फैल रही थी। अत्यन्त भयंकर रूप था। अत्यन्त क्रूर आकृति थी। देखते ही हृदय और नेत्र आतङ्कित हो जाते थे। उस रूपको देखकर

सम्पूर्ण देवता 'हाहाकार' मचाने लगे। उनके हृदय काँप उठे। उन्हें घोर मूर्च्छा आ गयी। स्मरण भी न रहा कि यह भगवती जगदम्बा हैं। उस समय उन महाविभुके चारों ओर जो वेद विराजमान थे, उन्होंने मूर्च्छित देवताओंको चेतना प्रदान की। जब देवता चेतमें आ गये, तब उन्होंने धैर्य धारण करके श्रेष्ठ श्रुतिको याद किया और आँसूसे भरी हुई गद्‌गद वाणीमें स्तुति करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उस समय उनके नेत्रोंमें जल भरा था और कण्ठ रुका जाता था।

देवता बोले—माता ! हम तुम्हारी दीन संतान हैं। अपराध क्षमा करके हमारी रक्षा करो। देवेशी ! हम तुम्हारे रूपको देखकर डर गये हैं। हम-जैसे मन्दबुद्धि देवताओंद्वारा तुम्हारी कौन-सी स्तुति सम्पन्न हो सकती है। तुम्हारा पराक्रम कितना है और कैसा है—इसे वह स्वयं भी नहीं जानता। तब वह पराक्रम हम आधुनिक देवताओंके जाननेका विषय कैसे हो सकता है। भूमण्डलपर शासन करनेवाली, प्रणवरूपसे सुशोभित, समस्त वेदान्तोंसे संसिद्ध तथा ह्रींकाररूपको धारण करनेवाली भगवती भुवनेश्वरी ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। जो अग्निकी उद्गमस्थान हैं, जिनसे सूर्य एवं चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं तथा ओषधियोंकी उत्पत्ति हुई है, उन सर्वस्वरूपिणी भगवतीको प्रणाम है। प्राण, अपान, व्रीहि, यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि—ये जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है। सात सिरवाले प्राण, सात समिधाएँ, सात हवन तथा सात लोक—इनका जहाँसे उत्थान होता है, उन सर्वस्वरूपिणी भगवतीके लिये बार-बार नमस्कार है। जिनसे समुद्र, पर्वत, औषध और सम्पूर्ण रस उत्पन्न होते हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है। यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणा, ऋचा, यजुष् तथा साममन्त्रकी रचना करनेवाली सर्वात्मा भगवतीको बार-बार नमस्कार है। माता ! आगे-पीछे, अगल-बगल, नीचे-ऊपर—चारों ओरसे तुम्हें बार-बार प्रणाम है। देवेशी ! इस अलौकिक रूपका संवरण करके हमें वही परम सुन्दर सौम्य रूप पुनः दिखानेकी कृपा करो।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! भगवती जगदम्बा कृपाकी समुद्र हैं। देवताओंको डरे हुए देखकर उन्होंने अपना भयंकर रूप छिपा लिया और उसी क्षण उन्हें अपने मनोहर रूपके दर्शन कराये। उस समय देवी पाश, अङ्कुश, वर और अभय-मुद्रा धारण किये हुए थीं। उनके सभी अङ्ग कोमल थे। आँखोंमें करुणा भरी थी। कमल-जैसा मुख मुसकानसे शोभा पा रहा था। जब देवताओंने देवीके उस कमनीय रूपको देखा, तब उनका सारा भय भाग गया। शान्तचित्त होकर हर्षपूर्वक गद्‌गद वाणीसे वे भगवतीको प्रणाम करने लगे।

श्रीदेवीने कहा—भक्तवत्सलताके कारण मैंने तुम्हें यह रूप दिखला दिया है। केवल मेरी एक कृपाको छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तप और यज्ञ कोई भी साधन इस रूपको दिखानेमें कारण नहीं हो सकता। राजेन्द्र ! अब प्राकृत विषय अर्थात् ब्रह्मविद्याका जो उपदेश चल रहा था, उसे सुनो।

परमात्मा ही उपाधिभेदसे 'जीव'-संज्ञा प्राप्त करता है। फिर उसमें कर्तव्य गुण आ जाते हैं। धर्म-अधर्म-हेतुक नाना प्रकारके कर्म करनेकी उसमें क्षमता आ जाती है। जीव होनेके कारण

वह नाना योनियोंमें जन्म लेकर सुख-दुःख भोगता है। फिर तत्-तत् संस्कारके प्रभावसे अनेकों प्रकारके कर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। फलस्वरूप उसे भाँति-भाँतिके शरीर धारण करने पड़ते हैं। सुख-दुःखसे कभी छुटकारा नहीं मिलता। घटी नामक यन्त्रकी भाँति इस जीवको कभी विश्राम करनेका अवसर नहीं मिलता। काम और क्रियाका क्रम निरन्तर चालू रहता है। इसमें कारण केवल 'अज्ञान' ही है। अतः अज्ञानका नाश करनेके लिये मनुष्यको सदा प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञानका सर्वथा मिट जाना ही जीवनकी सफलता है। पुरुषार्थकी समाप्ति तथा जीवन्मुक्त दशाकी उपलब्धि अज्ञाननाशपर ही निर्भर है। इसीको 'श्रेष्ठ विद्या' कहते हैं। हिमालय! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानको दूर करनेमें सफल नहीं हो सकता; क्योंकि ये परस्पर विरोधी धर्म हैं। बल्कि कर्मद्वारा अज्ञान नष्ट होनेकी आशा करना ही व्यर्थ है। कारण, अनर्थदायी कर्म अकस्मात् आते रहते हैं। राग, द्वेष और अनर्थका क्रम कभी बंद नहीं होता। अतः मनुष्यका कर्तव्य है कि सारा प्रयत्न ज्ञानोपार्जनमें लगा दे।

समुच्चयवादी कहते हैं—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'—इस श्रुतिके अनुसार कर्म आवश्यक है। साथ ही कैवल्यपदकी प्राप्तिमें साधक होनेके कारण ज्ञानकी भी आवश्यकता है। हितचिन्तक कर्म ज्ञानका सहायक होकर रहता है। पर उनका यह कहना संगत नहीं। कारण, दोनों परस्पर विरोधी हैं; क्योंकि हृदयकी ग्रन्थिका छेदन करनेमें 'ज्ञान' साधक है और ग्रन्थिके बननेमें कर्म। फिर ये दो असहकारी होनेसे एक जगह कैसे रह सकते हैं—जैसे अन्धकार और प्रकाशका साथ-साथ रहना नितान्त असम्भव है।

महामते! सम्पूर्ण वैदिक कर्मोंकी चरम सीमा अन्तःकरणकी शुद्धि है। अतः उनको यत्नपूर्वक करना चाहिये। वे कर्म हैं—शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्वसम्भव अर्थात् चित्तशुद्धि। इतने ही कर्म करनेयोग्य हैं। इसके बाद कुछ शेष नहीं रहता। उक्त कर्म करनेके पश्चात् यानी मनुष्य संन्यासी होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास रहे और विशुद्ध भक्तिसे सम्पन्न हो वेदान्तका श्रवण करे। सदा सावधान रहे। 'तत्त्वमसि' वाक्यके अर्थका विचार करे। 'तत्त्वमसि'—यह वाक्य जीव और ब्रह्मकी एकताका बोधक है। एकताका बोध होनेपर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है। हिमालय! पहले पदार्थका ज्ञान होता है; तत्पश्चात् वाक्यार्थका। 'तत्'-पदका जो वाक्यार्थ है, वह मैं ही हूँ। 'त्वम्'-पदका वाच्यार्थ जीव है—इसमें कोई संशय नहीं। विद्वान् पुरुष 'असि' इस पदसे 'तत्' और 'त्वम्' दोनोंकी एकता बतलाते हैं। वाच्यार्थ पृथक्-पृथक् होनेसे श्रुतिकथित इन दोनों पदोंमें एकता नहीं घट सकती। अतः लक्षणा कर लेनी चाहिये। दोनोंका लक्ष्यार्थ चित् हो, तभी दोनोंकी एकता हो सकती है। इसका बोध हो जानेपर दोनोंमें स्वगतभेद समाप्त होकर एकता आ जाती है। वही यह देवदत्त है—अर्थात् किसी अन्य समय जिसे देखा था, विपरीत होनेपर भी उसे वही मान लेना यही लक्षणा कही जाती है। अतएव स्थूल देहसे रहित ब्रह्मको नर कहते हैं। पाँच महाभूतोंसे उत्पन्न स्थूलशरीर भोगोंका आश्रय होता है। उसे सम्पूर्ण कर्मोंके भोग भोगनेके

लिये वृद्ध एवं रोगी होना पड़ता है।

पर्वतराज ! मायाके प्रभावसे स्पष्ट प्रतीत होनेवाला यह जगत् बिलकुल मिथ्या है; क्योंकि यह स्थूलशरीर मेरे ही आत्माका दूसरा रूप है। जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण एवं मन तथा बुद्धिसे युक्त है, उसे विज्ञपुरुष 'सूक्ष्मशरीर' कहते हैं। अपञ्चीकृत भूतसे उत्पन्न जो यह सूक्ष्मशरीर है, इसे आत्माका शरीर मानते हैं। सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला दूसरा स्थूलशरीर कहलाता है। यह अज्ञान अनादि और अनिर्वचनीय है। पर्वतराज ! आत्माके इस कारण शरीरको तीसरा शरीर कहते हैं। जिस समय सूक्ष्म, स्थूल और कारण—ये तीनों उपाधियाँ समाप्त हो जाती हैं, उस समय केवल 'परमात्मा' ही रह जाता है। तीनों देहोंके भीतर पञ्चकोश सदा स्थित रहते हैं। पञ्चकोशका परित्याग करनेपर 'ब्रह्मपुच्छ' की उपलब्धि होती है। ब्रह्मपुच्छ मेरे उस रूपको कहते हैं, जिसका परिचय देते समय श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर रह जाती हैं। यह आत्मा किसी कालमें न तो जन्मता है और न मरता ही है। यह होकर फिर कभी हुआ भी नहीं; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता। जो आत्माको मारनेवाला अथवा मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह न किसीको मारता है और न मरता है। यह आत्मा अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् है। प्राणोंकी बुद्धिमें यह रहता है। संकल्प-विकल्पसे रहित पुरुष परमेश्वरकी कृपासे इसकी महिमा देख पाते हैं। फिर उनका शोक समाप्त हो जाता है।

हिमालय ! आत्माको रथी समझना चाहिये। शरीर ही रथ है। बुद्धिको सारथि समझे। मन ही लगाम है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रिय और मनके साथ होकर इस रथका उपभोक्ता आत्मा इन्द्रियोंके विषयोंमें विचरता है—ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। जो अज्ञानी, अमनस्वी और अपवित्रात्मा है, उसे परमधामकी प्राप्ति नहीं होती। उसे संसारमें जन्म धारण करना पड़ता है। जिन्हें ज्ञान सुलभ है, जो मनस्वी एवं पवित्र हैं, उन्हें वह उत्तम पद मिल जाता है, जहाँसे लौटकर फिर जगत्में जन्म लेना नहीं पड़ता। जिसका बुद्धिरूपी सारथि चतुर है, जो मनरूपी लगामको सावधानीसे पकड़े हुए है, वही रथी मार्ग पूरा करके मेरे धाममें पहुँच जाता है।

इस विवेचनको सुन और जानकर स्वयं अपने-आपको निश्चितरूपसे पहचान ले। फिर सावधानीके साथ एक आसनपर बैठकर आत्माका चिन्तन करे। राजन् ! पहले योगका अभ्यास करके अक्षरत्रय मन्त्रका चिन्तन करना चाहिये। यह मन्त्र देवीप्रणव कहलाता है। इसके मन्त्र और अर्थ—दोनोंका ध्यान आवश्यक है। इस मन्त्रमें 'ह'कार स्थूल देह है। 'र'कारको सूक्ष्मदेह एवं 'इ'कारको कारणदेह कहते हैं। 'ह्रीं' यह रूप स्वयं मैं हूँ। बुद्धिमान् पुरुष यों समष्टि-शरीरमें क्रमशः तीनों बीजोंको समझकर समष्टि और व्यष्टि—दोनों रूपोंमें एक मेरा ही चिन्तन करे। ध्यानके पूर्व ही मेरे ऐसे स्वरूपकी धारणा कर लेना आवश्यक है। इसके बाद दोनों नेत्र बंद करके मुझ भगवती जगदीश्वरीका ध्यान करे। उस समय प्राण और अपान वायुको समान स्थितिमें रखे। दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे विचलित न हो। ध्यानके समय विषय-भोगकी आकाङ्क्षा बिलकुल नहीं उठनी

चाहिये। किसीमें न तो दोष देखना चाहिये और न किसीसे डाह करना। विशुद्ध भक्तिसे सम्पन्न होकर किसी पर्वतकी गुफामें अथवा एकान्त स्थानमें आसन लगाकर बैठना चाहिये। फिर विश्वमय 'ह'कारको 'र'कारमें, परम तेजस्वी दिव्य 'र'कारको 'इ'कारमें तथा परम ज्ञान-स्वरूप 'इ'कारको 'ह्रीं'कारमें प्रविलापन करे। अन्तमें मेरे सच्चिदानन्दमय अखण्डरूपका, जो वाच्य और वाचकसे रहित तथा द्वैतभावसे शून्य है, चिन्तन करे।

राजन्! इस प्रकारसे ध्यान करके श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार कर लेता है। उसे मेरी सारूप्यता प्राप्त हो जाती है; क्योंकि उसकी बुद्धिमें फिर द्वैतभाव नहीं रहता। इस प्रकारके योगसे सम्पन्न होकर जो मेरे इस सर्वोत्तम रूपके दर्शन प्राप्त कर लेता है, उसका कर्म-सम्बन्धी अज्ञान तुरंत नष्ट हो जाता है।

(अध्याय ३३-३४)

☆

## देवीका हिमालयको ज्ञानोपदेश—विविध योगोंका वर्णन

हिमालयने कहा—भगवती महेश्वरी! अब तुम ज्ञान प्रदान करनेवाले साङ्गोपाङ्ग योगका वर्णन करो, जिसके साधनसे मैं तुम्हारे तत्त्व-दर्शनका पूर्ण अधिकारी बन सकूँ।

श्रीदेवी कहने लगीं—गिरिराज! योग न आकाशमें है, न पृथ्वीमें है और न पातालमें ही है। योगके विशारद लोग कहते हैं कि जीव और आत्माकी जो एकता है, वही योग है। निष्पाप हिमालय! उस योगमें विघ्न करनेवाले छः दोष हैं। उनके नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। अतएव योगी साधक योगके अङ्गोंके द्वारा उन विघ्नोंका उच्छेद करके योगमें सफलता प्राप्त करें। योगके वे आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग-साधकोंको इनका साधन अवश्य करना चाहिये।

'यम' दस कहे गये हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और पवित्रता। पर्वतराज! मेरे द्वारा नियम भी दस बतलाये गये हैं—तप, संतोष, आस्तिकभाव, दान, देवताओंका पूजन, शास्त्रसिद्धान्तका श्रवण, बुरे कामोंमें लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन। पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन— क्रमशः ये पाँच आसन बतलाये गये हैं। दोनों पैरोंके दोनों तलुओंको जाँघोंपर रखे, हाथोंको पीठकी ओर ले जाकर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेको और बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़े। योगियोंके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला यह 'पद्मासन' बतलाया गया है। जाँघ और घुटनोंके बीचमें पैरके तलुओंको अच्छी तरह रखकर शरीरको सीधा रखकर बैठ जानेको योगी 'स्वस्तिकासन' कहते हैं। अण्डकोशकी शिराके नीचे सीवँनके दोनों ओर दोनों एड़ियोंको अच्छी तरह रखकर तथा अण्डकोशके नीचे रखे दोनों पैरोंको हाथोंसे पकड़कर बैठनेका नाम योगियोंने 'भद्रासन' बतलाया है। योगीगण इस आसनका विशेष आदर करते हैं। दोनों पैर क्रमसे दोनों जाँघोंपर रखकर दोनों घुटनोंके निचले भागमें अँगुली रखकर दोनों हाथ स्थापन करके बैठनेको 'वज्रासन' कहा गया है और योगीजन एक जाँघके नीचे एक पैरको और

दूसरी जाँघके नीचे दूसरे पैरको रखकर शरीरको सीधा रखकर बैठते हैं, उसे 'वीरासन' कहते हैं।

योगी सोलह मात्रासे अर्थात् सोलह बार प्रणवका उच्चारण कर सके उतने समयमें इडा—बायीं नासिकाके द्वारा बाहरकी वायुको खींचे। यह 'पूरक प्राणायाम' है। फिर इस पूरित वायुको चौंसठ बार प्रणवका उच्चारण करनेमें जितना समय लगे, उतने समयतक सुषुम्णामें रोके रखे (इसे 'कुम्भक' प्राणायाम कहते हैं)। तदनन्तर बत्तीस बार प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे, उतने समयमें धीरे-धीरे पिंगला—दक्षिण नासिकाके द्वारा उसको बाहर निकाले; इसे 'रेचक' प्राणायाम कहा जाता है। योगशास्त्रके जानकार पुरुष इसको 'प्राणायाम' कहते हैं। इस प्रकार पुनः-पुनः बाहरकी वायुको लेकर पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामका अभ्यास करे और क्रमशः मात्रा (प्रणवके उच्चारणका समय) बढ़ाता रहे। इस प्रकारका प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार और फिर क्रमशः और भी अधिक बार करे। प्राणायाम दो प्रकारके होते हैं—'सगर्भ' और 'विगर्भ'। जो इष्टके जप-ध्यानादिसे युक्त होता है, उसे ज्ञानीजन सगर्भ कहते हैं और जप-ध्यानादिसे रहित प्राणायामको विगर्भ जानना चाहिये। इस प्रकार प्राणायामका अभ्यास करते समय शरीरमें पसीना आ जाय तो उसे 'अधम', कम्प उत्पन्न होनेपर उसे 'मध्यम' और भूमित्याग—पृथ्वीसे ऊपर उठ जानेको 'उत्तम' प्राणायाम कहते हैं। जबतक उत्तम प्राणायामतक न पहुँचा जाय, तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये।

इन्द्रियाँ स्वच्छन्दरूपसे अपने विषयोंमें विचरती रहती हैं। उनको बलपूर्वक विषयोंसे हटानेका नाम 'प्रत्याहार' है। अँगूठे, एड़ी, घुटने, जाँघ, गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य (भौंहोंके बीच) और मस्तक—इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुको विधिपूर्वक धारण किये रखनेको 'धारणा' कहा जाता है। मनको चेतन आत्मामें समाहित करके उसमें अपने अभीष्ट देवताका ध्यान करनेको—'ध्यान' कहा गया है तथा जीवात्मा और परमात्मामें नित्य समत्वभाव—दोनोंके ऐक्यको मुनियोंने 'समाधि' बतलाया है। यह 'अष्टाङ्गयोग' कहा गया। अब तुम्हारे लिये मैं श्रेष्ठ 'मन्त्रयोग'का वर्णन करती हूँ।

पर्वतराज! इस पञ्चभूतात्मक शरीरको (पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उक्तिके अनुसार) 'विश्व' कहा जाता है। चन्द्र, सूर्य और अग्निके तेजसे मुक्त होनेपर (इडा-पिंगला-सुषुम्णामें योगसाधनसे) जीव-ब्रह्मकी एकता होती है। इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं। उनमें दस मुख्य हैं एवं उन दसमें भी तीनको सबसे मुख्य बतलाया गया है। ये मेरुदण्डमें चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपा होकर रहती हैं। बायीं ओर श्वेत-वर्ण चन्द्ररूपिणी 'इडा' नामकी नाड़ी स्थित है। यह साक्षात् अमृतमयी शक्तिरूपा है। दाहिनी ओर 'पिङ्गला' नामकी नाड़ी है। यह पुरुषरूपा सूर्यमूर्ति है। इनके बीचमें सर्वतेजोमयी अग्निरूपिणी 'सुषुम्णा' नामकी नाड़ी है। इसके मध्यमें विचित्र नामकी नाड़ी है। उसमें इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक करोड़ों सूर्योंके सदृश प्रभासम्पन्न 'स्वयम्भू-लिङ्ग' है। उसके ऊपर 'ह्रीं' मायाबीज है तथा उसके ऊपर लाल वर्णवाली शिखाके आकारकी कुण्डलिनी है।

हिमालयराज ! वह देवात्मिका कुण्डलिनी मुझसे भिन्न नहीं है। इसके बाहरी भागमें स्वर्णवर्णकी आभावाले कमलका ध्यान करना चाहिये। इसके चार दल हैं। उनमें व, श, ष, स—इन चार अक्षरोंका ध्यान करे। यह 'मूलाधार' चक्र है। इसके ऊपर षट्कोण (छः कोनोंवाले) कमलका ध्यान करे। यह अग्निके सदृश दलोंसे युक्त हीरेके समान चमकदार है। यह ब, भ, म, य, र, ल—इन छः अक्षरोंसे सम्पन्न उत्कृष्ट 'स्वाधिष्ठान' चक्र है। 'स्व' शब्दसे इसे 'परम लिङ्ग' रूप जानना चाहिये। इसके ऊपर नाभि-देशमें महान् प्रभासे युक्त मेघ तथा बिजलीके समान कान्तिवाला 'मणिपूरक' नामक अत्यन्त तेजोमय चक्र है। मणिके सदृश प्रभा होनेसे इसे 'मणिपद्म' भी कहते हैं। यह दस दलोंसे युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—इन दस अक्षरोंसे समन्वित है। यह कमल विष्णुके द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण विष्णुके दर्शनका साधन है। इसके ऊपर सूर्यके समान प्रभासे सम्पन्न 'अनाहत' चक्र है। यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ—इन बारह अक्षरोंसे युक्त है। इसके मध्यमें दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाला 'बाणलिङ्ग' विराजित है। किसी भी आघातके बिना इसमें शब्द होता है। इससे इस शब्द-ब्रह्ममय चक्रको मुनिगण 'अनाहत' कहते हैं। यह चक्र आनन्द-सदन है और इसमें परम पुरुष अधिष्ठित हैं। इसके ऊपर 'विशुद्ध' नामक सोलह दलोंसे युक्त कमल है। यह अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—इन सोलह स्वरोंसे सम्पन्न है। इसका महान् प्रभासे युक्त धूम्रवर्ण है। इसमें हंस-स्वरूप परमात्माके दर्शनसे जीव विशुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है। इसीसे इसको 'विशुद्धाख्य' चक्र कहा जाता है। इस महान् अद्भुत कमलको 'आकाशचक्र' भी कहते हैं। इसके ऊपर परमात्माका अधिष्ठानरूप 'आज्ञाचक्र' है। इसमें परमात्माकी आज्ञाका संक्रमण होता है, इससे इसको 'आज्ञाचक्र' कहा जाता है। यह ह, क्ष—दो अक्षरोंसे युक्त है और अत्यन्त मनोहर है। इसके ऊपर 'कैलास' नामक चक्र है और उसके ऊपर 'रोहिणीचक्र' है। सुव्रत ! इस प्रकार आधार-चक्रोंका तुम्हारे सामने वर्णन किया गया। उसके और ऊपर 'सहस्रारचक्र' है—यह बिन्दु-मूल परमात्माका स्थान है। इसीसे इसको 'शून्यचक्र' कहते हैं। इसमें सहस्र दल हैं। यह सम्पूर्ण सर्वश्रेष्ठ योगमार्ग कहा गया।

अब क्या करना चाहिये, सो बताती हूँ। पहले पूरक प्राणायामके द्वारा आधारमें मन लगावे, तदनन्तर गुदा और मेढ़के बीचमें उस वायुके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको समेटकर उसे जाग्रत् करे। फिर लिङ्गभेदनके द्वारा स्वयम्भू-लिङ्गसे आरम्भ करके चक्रोंके द्वारा उस कुण्डलिनी शक्तिको 'शून्य-चक्र' सहस्रारतक ले जाय। पश्चात् उस पराशक्तिका सहस्रारमें स्थित परमेश्वर शम्भुके साथ ऐक्यभावसे ध्यान करे। वहाँ शिव-शक्तिके सम्मिलनसे लाक्षारसके सदृश बहनेवाले अमृतको लेकर योगमें सिद्धि प्रदान करनेवाली माया नामकी शक्तिको पान करावे। फिर उस अमृतधाराके द्वारा षट्चक्रोंमें स्थित देवताओंको परितृप्त करे। तदनन्तर उपर्युक्त मार्गसे ही साधक उस कुण्डलिनी शक्तिको मूलाधारतक वापस लौटा लाये। इस प्रकार जो साधक प्रतिदिन अभ्यास करते हैं,

उनके लिये पहलेके दूषित समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं, इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। इसीसे साधक बुढ़ापा, मृत्यु आदि दुःखोंसे युक्त भवबन्धनसे छूट जाता है और उसे मुझ जगज्जननी—देवीमें जो महान् गुण हैं, वे सम्पूर्ण गुण प्राप्त हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। तात ! इस प्रकार वायुके धारण करनेका श्रेष्ठ योग तुमसे कहा गया।

अब तुम मेरे द्वारा सावधानीके साथ 'चित्तधारणा' नामक योग सुनो। दिशा, काल और देश आदिके द्वारा अपरिच्छिन्न मेरे देवी-स्वरूपमें चित्त स्थिर करके तन्मय हो जानेपर बहुत शीघ्र जीव-ब्रह्मके एकत्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। कदाचित् चित्तमें मल-दोष रहनेके कारण शीघ्र सिद्धि न प्राप्त हो तो योगी साधकको अवयव-योगके द्वारा अभ्यास करना चाहिये।

पर्वतराज ! मेरे हस्त-चरणादि मधुर मनोहर अङ्गोंमें चित्तको स्थिर करके एक-एक अङ्गको जय (पूर्णरूपसे अभ्यस्त) करता हुआ फिर विशुद्ध चित्तसे मेरे समग्र रूपमें मनको स्थिर करे। मेरे समस्त स्वरूपका ध्यान करे।

हिमालय ! जबतक मेरे स्वरूपमें मनका लय न हो जाय, तबतक इष्टमन्त्रका जप और हवन आदि करता रहे। मन्त्राभ्यास-योगके द्वारा ज्ञेयतत्त्वका ज्ञान हो जाता है। योगके बिना मन्त्रकी सिद्धि नहीं होती और मन्त्रके बिना योग सिद्ध नहीं होता। अतएव मन्त्र और योग दोनोंका समन्वयरूप अभ्यास ही ब्रह्म-संसिद्धिमें कारण है। जिस घरमें अँधेरा छाया हुआ हो, उसमें घड़ा दिखायी नहीं देता; परंतु दीपक जलानेपर वह दिखायी देने लगता है। इसी प्रकार मायासे आवृत आत्मा भी मन्त्रके द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है।

पर्वतराज ! इस समय मैंने समस्त अङ्गोंके सहित सारी योगकी विधि तुम्हें बतला दी है। पर यह विद्या अनुभवी गुरुके उपदेशसे ही जानी जा सकती है। करोड़ों शास्त्रोंके द्वारा इसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। अतएव योगसिद्ध गुरुदेवकी संनिधिमें रहकर इसका अभ्यास करना चाहिये। (अध्याय ३५)

☆

## देवीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्मस्वरूपका वर्णन

श्रीदेवीजी कहने लगीं—पर्वतराज ! इस प्रकार योगयुक्त होकर मुझ ब्रह्मस्वरूपा देवीका ध्यान करे। यह ध्यान आसनपर भलीभाँति बैठकर अहैतुकी भक्तिके साथ करना चाहिये। उस ब्रह्मका क्या स्वरूप है—यह बतलाया जाता है। जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीपमें स्थित, हृदयरूप गुहामें स्थित होनेके कारण 'गुहाचर' नामसे प्रसिद्ध और महान् पद अर्थात् परम प्राप्य है—जितने भी चेष्टा करनेवाले, श्वास लेनेवाले, आँखोंको खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं, सब उस ब्रह्ममें ही समर्पित हैं, उसीमें स्थित हैं। सत्, असत् सब कुछ वही है, वही सबके द्वारा वरण करनेयोग्य सर्वोत्कृष्ट है। वह समस्त प्रजाके ज्ञानसे परे है—अर्थात् किसीकी बुद्धिमें आनेवाला नहीं है। यह तुम जानो। जो परम प्रकाशरूप है, जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसमें सम्पूर्ण लोक और उन लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणी स्थित हैं, वही यह 'अक्षर ब्रह्म' है, वही सबके प्राण है, वही सबकी वाणी है और वही सबके मन है। वह यह परम सत्य और

अमृत—अविनाशी तत्त्व है। सौम्य! उस वेधनेयोग्य लक्ष्यका तुम वेधन करो—मन लगाकर उसमें तन्मय हो जाओ।

सौम्य! उपनिषद्‌में कथित महान् अस्त्ररूप धनुष लेकर उसपर उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण संधान करो और फिर भावानुगत चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्मको ही लक्ष्य बनाकर वेधन करो। प्रणव (ॐ) धनुष है, जीवात्मा बाण है और ब्रह्मको उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमादरहित—अत्यन्त तत्परतासे साधन-संलग्न होकर उसका वेधन करना चाहिये और बाणके समान उसमें तन्मय हो जाना चाहिये। जिस ब्रह्ममें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष (स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका आकाश), सम्पूर्ण प्राणोंके सहित इन्द्रिययुक्त मनबुद्धिरूप अन्तःकरण ओत-प्रोत है, उस एकमात्र परमात्माको ही जाने, दूसरी सब बातोंको छोड़ दे। यही अमृतरूप परमात्माके पास पहुँचानेवाला पुल है। संसार-समुद्रसे पार होकर अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त करानेका यही सुलभ साधन है। जिस प्रकार रथके चक्केमें अरे लगे होते हैं, उसी प्रकार शरीरकी सम्पूर्ण नाड़ियाँ हृदयमें एकत्र स्थित हैं। उस हृदयमें ही विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाला परब्रह्म संचरण करता है—अन्तर्यामीरूपसे वर्तमान रहता है। इस आत्माका 'ॐ' के जपके साथ ध्यान करो। इससे अज्ञानमय अन्धकारसे सर्वथा परे और संसार-समुद्रसे उस पार जो ब्रह्म है, उसको पा जाओगे। तुम्हारा कल्याण हो। जो सदा जाननेवाला, जो सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है, जिसकी जगत्‌में यह महिमा है, वह यह सबका आत्मा ब्रह्म ब्रह्मलोकरूप दिव्य आकाशमें स्थित है। वह मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीरका नियमन करनेवाला है। सब प्राणियोंके हृदयका आश्रय करके अन्नमय स्थूलशरीरमें स्थित है। धीर—बुद्धिमान् पुरुष विज्ञानके द्वारा जो आनन्दस्वरूप अमृत—अविनाशी ब्रह्म सर्वत्र प्रकाशित है, उसको भलीभाँति देख लेते हैं। उस कार्य-कारणरूप पुरुषोत्तमको देख लेनेपर इस जीवके हृदयकी गाँठ (अविद्या) टूट जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और सब शुभाशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं। वह निर्मल और निष्कल ब्रह्म प्रकाशमय पर-कोश—दिव्य परमधाममें विराजित है। वह शुभ्र—सर्वथा विशुद्ध और सम्पूर्ण प्रकाशमय वस्तुओंका भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। उस स्वप्रकाशरूप परमधाममें—परमात्मामें न यह सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा या तारे ही प्रकाशित होते हैं। न वहाँ ये बिजलियाँ चमकती हैं। फिर, इस अग्निकी तो बात ही क्या है? उसके प्रकाशित होनेपर उसीके प्रकाशसे सब प्रकाशित होते हैं, उसीके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है। वह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर है। वही नीचे-ऊपर फैला हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है*।

जो श्रेष्ठ पुरुष इस प्रकार अनुभव करते हैं,

---

* मुण्डकोपनिषद् द्वितीय मुण्डक द्वितीय खण्डमें ये मन्त्र ज्यों-के-त्यों हैं—

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्॥ १॥

वे ही कृतार्थ हैं। वे ब्रह्मको प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्न अन्तःकरण रहते हैं। न तो वे कोई शोक करते हैं, न किसी विषयकी आकाङ्क्षा ही। पर्वतराज ! भय दूसरेसे हुआ करता है। द्वैतभाव न रहनेपर भय नहीं रहता। वास्तविक बात यह है कि मेरा कभी उस ज्ञानीसे वियोग नहीं होता और उसका मुझसे वियोग नहीं होता। पर्वतराज ! तुम यह निश्चित समझो कि 'वह मैं हूँ और मैं वह है।' जहाँ ऐसा ज्ञानी रहता है, वहीं मेरे दर्शन हो सकते हैं। मैं न तीर्थमें निवास करती हूँ न कैलासमें और न वैकुण्ठमें ही। मैं तो अपने ज्ञानी भक्तके हृदय-कमलमें ही रहती हूँ। जो मेरे ज्ञानपरायण भक्तकी पूजा करता है, वह मेरी पूजासे कोटिगुना अधिक फल पाता है। जिसका चित्त स्वरूपब्रह्ममें लय हो गया है, उसका सारा कुल पवित्र हो गया। उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसको धारण करके पुण्यवती हो गयी। पर्वतश्रेष्ठ ! तुमने जो ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें पूछा था, वह मैंने बता दिया। इसको भक्तिसम्पन्न शीलवान् ज्येष्ठ पुत्रसे कहना चाहिये और इसी प्रकारके शिष्यको बतलाना चाहिये, किसी दूसरेसे नहीं। जिसकी

---

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि॥ २॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥ ३॥
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ ४॥
यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः॥ ५॥
अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्॥ ६॥
यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥ ७॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥ ८॥
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ ९॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १०॥
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ ११॥

इष्टदेवमें पराभक्ति होती है और जैसी देवमें भक्ति होती है, वैसी ही गुरुमें होती है, ऐसे उस महात्माजनके लिये ही श्रेष्ठ पुरुष इस ब्रह्म-विद्याका उपदेश करते हैं। जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्याका उपदेश होता है, वह परमेश्वर ही है। इस विद्याका बदला नहीं चुकाया जा सकता। इसलिये गुरुके समीप शिष्य सदा ऋणी ही रहता है। इस प्रकार ब्रह्म-जन्मदाता—ब्रह्मको प्राप्त करा देनेवाला गुरु जन्मदाता माता-पितासे भी अधिक पूज्य है; क्योंकि पितासे प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है; परंतु ब्रह्मरूप जन्म कभी नष्ट नहीं होता। अतः पर्वतराज ! 'तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्'—इस श्रुतिरूप शास्त्र-सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मदाता परम गुरुसे कभी द्रोह न करे। ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है। शिवके रुष्ट होनेपर गुरु बचा लेते हैं; पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव नहीं बचा पाते। इसलिये हे पर्वतराज ! तन-मन-वचनसे सब प्रकार सदा तत्पर रहकर गुरुको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा न होनेपर कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्नका कहीं भी निस्तार नहीं है।

पूर्व समयकी बात है। इन्द्रसे अथर्वण मुनिने ब्रह्म-विद्याके लिये याचना की। इन्द्रने कहा—'विद्या देता हूँ, पर तुम किसी दूसरेको दे दोगे तो मैं तुम्हारा सिर काट दूँगा।' मुनिने इसके लिये प्रतिज्ञा की। तदनन्तर अश्विनीकुमारोंने मुनिसे विद्या माँगी और सिर काटनेवाली बात बतलानेपर अश्विनीकुमारोंने कहा कि 'इन्द्र सिर काट देगा तो हम फिर सिर जोड़ देंगे।' इसपर मुनिने उनको विद्या प्रदान कर दी, तब इन्द्रने उनका सिर काट डाला। तदनन्तर देववैद्य अश्विनीकुमारोंने मुनिका सिर कटा देखकर उसे फिरसे जोड़कर मुनिको जीवित किया था। इस प्रकार बड़े संकटसे सम्पादित होनेवाली 'ब्रह्म-विद्या' को जिसने प्राप्त कर लिया, वही धन्य है और वही कृतकृत्य हो गया है। (अध्याय ३६)

☆

## देवीके द्वारा ज्ञानोपदेश—भक्तिका प्रकार तथा ज्ञान-प्राप्तिकी महिमा

हिमालयने कहा—माता ! आप अपनी वह भक्ति बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मुझ-जैसे स्वार्थपरायण साधारण मनुष्यके हृदयमें भी सुगमतापूर्वक ज्ञानोदय हो जाय।

देवी बोलीं—राजेन्द्र ! मोक्ष-प्राप्तिके साधनभूत मेरे तीन मार्ग परम प्रसिद्ध हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। तीनोंमें यह भक्तियोग सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न किया जा सकता है; क्योंकि यह परम सुलभ एवं मनके अनुकूल है तथा शरीर एवं चित्तको भी किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचाता। मनुष्योंके गुणभेदके अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकारकी मानी जाती है। जो दूसरेको दुःखी बनानेके उद्देश्यसे दम्भपूर्वक डाह एवं क्रोधसे भरकर भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी है। गिरिराज हिमालय ! जो दूसरेको पीड़ा तो नहीं देता, परंतु अपना ही कल्याण चाहता है तथा जिसका हृदय कामनासे कभी खाली नहीं होता; यश एवं भोगकी लालसा लगी रहती है तथा जो फल पानेकी इच्छासे ही श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है; भेदबुद्धिके कारण मुझे अन्य समझता है; उस मन्दबुद्धि मानवके द्वारा की हुई भक्ति राजसी है। जो अपना कर्म परमात्माको अर्पण कर देता है; पापको धो बहानेके लिये ही कर्म

करता है; वेदकी आज्ञाके अनुसार मुझे निरन्तर सत्कर्ममें लगे रहना चाहिये—यों मनमें निश्चित करके भेदबुद्धिका आश्रय ले मेरी प्रसन्नताके लिये कर्म करता है, उसकी वह भक्ति सात्त्विकी है। सेव्य-सेवककी भेदबुद्धिसे की हुई सात्त्विकी भक्ति मेरी प्राप्तिमें सहायक है। पूर्वोक्त राजस और तामस कर्मसे मैं नहीं प्राप्त हो सकती।

अब मैं श्रेष्ठ भक्तिका विवेचन करती हूँ, सुनो—निरन्तर मेरे गुणका श्रवण और नामका कीर्तन करता रहे। मैं कल्याण एवं गुणमय रत्नोंकी भण्डार हूँ। मुझमें चित्तको तैलधाराकी भाँति सदा लगाये रखे। हेतु अथवा अहेतुकी मनमें कभी कल्पना ही न उठे। सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य और सार्ष्टि—इन चार प्रकारकी मुक्तिकी एषणाओंका कभी मनमें उदय ही न हो। मेरी सेवासे बढ़कर कभी किसी कामको श्रेष्ठ न समझे। सेव्य-सेवक-भावकी ऐसी गहरी छाप हो कि जिससे वह कैवल्य मोक्ष भी न चाहे। अटूट श्रद्धाके साथ सावधान होकर केवल मेरा ही चिन्तन करे। मुझमें और अपनेमें निरन्तर अभेद बुद्धि रखे। 'सभी जीव मेरे रूप हैं'—ऐसी धारणा सदा बनाये रखे। अपने और परायेमें एक समान प्रीति रखे। चैतन्य परब्रह्म समानरूपसे सर्वत्र विराजमान हैं—यह जानकर अभेद दृष्टि रखे। सम्पूर्ण रूपोंमें सर्वत्र सदा मुझे विराजमान समझकर प्रणाम एवं भजन करे। पर्वतराज हिमालय! चाण्डालतक भी भगवतीका रूप है—ऐसी भावना होनी चाहिये। भेद त्यागकर कहीं भी द्वेषभाव न रखे। राजन्! मेरे स्थानके दर्शन करने, मेरे भक्तसे मिलने, मेरे शास्त्रके सुनने तथा मेरे मन्त्र-तन्त्रादिमें श्रद्धा रखे। मेरे प्रति प्रेमके कारण चित्तमें मधुर हलचल मची रहे एवं शरीरमें रोमाञ्च हो जाय। आँखोंसे प्रेमके आँसू बहते रहें। गद्‌गद कण्ठ होनेसे शब्द निकलना बंद हो जाय।

पर्वतराज! मैं जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली परमेश्वरी हूँ। मैं सम्पूर्ण कारणोंकी मूल कारण हूँ। मेरे नित्य और नैमित्तिक सभी व्रत दिव्य हैं। धनके व्ययमें कंजूसी न करके भक्तिके साथ निरन्तर मेरे व्रतोंका पालन करे। हिमालय! मेरा उत्सव देखनेकी अभिलाषा करना तथा उत्सव मनाना पुरुषका स्वभाव ही बन जाय। उच्च स्वरसे मेरे नामोंका कीर्तन और नृत्य करे। मनमें अहङ्कार न आने दे। शारीरिक अभिमान छोड़ दे। जो कुछ जैसा किया था, वही प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हो रहा है, यह माने। शरीरके जाने अथवा रहनेकी कुछ चिन्ता न करे। उपर्युक्त प्रकारसे मेरी जो भक्ति की जाती है, उसे 'पराभक्ति' कहते हैं। जिसमें देवीके अतिरिक्त किसी अन्य देवताका स्मरणतक न हो, वह पराभक्ति है। हिमालय! इस प्रकारकी विशुद्ध भक्ति जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, वह उसी क्षण मेरे चिन्मय रूपमें स्थान पानेका अधिकारी बन जाता है।

भक्तिकी जो पराकाष्ठा है, उसीको 'ज्ञान' कहते हैं। वैराग्यकी भी चरम सीमा ज्ञान ही है; क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भक्ति और वैराग्य दोनों स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। हिमालय! यदि भक्ति करनेपर भी किसी मेरे भक्तको ज्ञान प्राप्त न हो तो वह मेरे दिव्य मणिद्वीपमें जाता है। वहाँ जाकर भोगोंमें आसक्त न होता हुआ वह अपना काल बिताता है। गिरिवर! अन्तमें उसे मेरे रूपका सम्यक् प्रकारसे ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञानके प्रभावसे वह सदाके लिये मुक्त हो जाता

है। ज्ञान मुक्तिका अचूक साधन है—इसमें कोई संदेह नहीं। सभी मेरे रूप हैं और मैं सबमें विराजमान हूँ—मेरे इस रहस्यको जो समझ जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं कर सकते। जो सबमें ब्रह्मका ही ज्ञान रखता है, वह ब्रह्मका चिन्तन करते-करते स्वयं भी ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। जैसे सुवर्णका हार गलेमें है, किंतु भ्रमवश समझ लिया जाता है कि वह खो गया; फिर, बुद्धि ठीक हो जानेपर भ्रम मिटते ही वह मिल जाता है; क्योंकि वह मिला हुआ तो पहलेसे था ही; ऐसे ही पर्वतराज ! वस्तुतः मैं सर्वरूप हूँ, अज्ञानसे ही पृथक्ता प्रतीत होती है।

जिसके हृदयमें वैराग्य तो उत्पन्न हो गया; परंतु ज्ञानका पूर्णोदय नहीं हो सका और मर गया तो वह ब्रह्मलोकमें स्थान पाता है। एक कल्पतक ब्रह्मलोकमें रहनेके बाद उसका पुनः शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म होता है। तत्पश्चात् साधनके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है। राजन् ! अनेक जन्मोंके सत्प्रयत्नसे ज्ञानकी उपलब्धि होती है। अतः ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भलीभाँति यत्न करना चाहिये। प्रयत्नमें शिथिलता रही तो बड़ी भारी हानि है; क्योंकि यह मनुष्य-जन्म पुनः मिलना बड़ा कठिन है। यदि किसी प्रकार मानव-जन्म मिल भी गया तो वर्णोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण और उसमें भी वेदपाठी होना महान् दुर्लभ है। साथ ही शम, दम, तितिक्षा आदि छः सम्पत्तियाँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरु—इन सबका मिलना तो सुलभ है ही नहीं। इन्द्रियोंमें कार्य करनेकी क्षमता आ जाय और शरीरमें सदा पवित्रता बनी रहे—यह भी सहज नहीं है। जब अनेक जन्मोंके पुण्य सहायक होते हैं, तब पुरुषके मनमें मुक्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। जो मनुष्य इस प्रकारके सफल साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म लेना व्यर्थ है; अतएव राजन् ! भक्तिके अनुसार ज्ञान-प्राप्तिके लिये यत्न करनेमें तत्पर हो जाना चाहिये। ज्ञानमार्गपर चलते समय एक-एक पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। दूधमें छिपे हुए घृतकी भाँति प्रत्येक प्राणीके हृदयमें ज्ञान गुप्तरूपसे छिपा है। प्राणीको चाहिये कि मनरूपी मथानीसे निरन्तर मथकर उसे प्राप्त कर ले। वेदान्तने डुग्गी पीटकर यह घोषणा कर दी है कि ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर मानव कृतार्थ हो जाता है।

हिमालय ! ये सब बातें संक्षेपसे कह दीं। अब आगे और क्या सुनना चाहते हो ?

(अध्याय ३७)

☆

## देवीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों, उत्सवों तथा पूजनके प्रकारोंका वर्णन

हिमालयने पूछा—देवेशी ! आपको परम प्रिय लगनेवाले, पवित्र, प्रसिद्ध एवं दर्शनीय स्थान भूमण्डलपर कितने हैं ? यह बताइये। माताजी ! इसीके साथ आपको संतुष्ट करनेवाले जो व्रत एवं उत्सव हैं, उन सबको भी मुझे बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मेरा मानव-जीवन सफल हो जाय।

श्रीदेवी बोलीं—दृष्टिगोचर होनेवाले सभी स्थान मेरे हैं। सम्पूर्ण कालको मेरा व्रत समझना चाहिये तथा सभी समय मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं; क्योंकि मैं सर्वरूपिणी जो ठहरी। फिर भी पर्वतराज ! मैं भक्तवत्सलतावश कतिपय

स्थानोंका परिचय कराती हूँ। तुम सावधान होकर सुनो।

'कोलापुर' नामका एक परम प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ 'लक्ष्मी' सदा निवास करती हैं। दूसरे स्थानका नाम 'मातुःपुर' है, उस पुरीमें भगवती 'रेणुका' रहती हैं। 'तुलजापुर' मेरा तीसरा स्थान है। ऐसे ही एक स्थानका नाम 'सप्तशृङ्ग' है। 'हिंगुला', 'ज्वालामुखी', 'शाकम्भरी', 'भ्रामरी', 'रक्तदन्तिका' और 'दुर्गा'—इन देवियोंके स्थान इन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं। भगवती 'विन्ध्याचली'का सर्वोत्तम स्थान 'विन्ध्य पर्वत'-पर है। 'अन्नपूर्णा-स्थान' और 'काञ्चीपुर-स्थान' अत्यन्त श्रेष्ठ माने जाते हैं। देवी 'भीमा' और 'विमला'के उत्तम स्थान इन्हींके नामसे विख्यात हैं। 'श्रीचन्द्राला'का महान् स्थान 'कर्णाटक' देशमें है। ऐसे ही एक 'कौशिकी' स्थान है। 'नीलाम्बा' देवीका स्थान 'नील पर्वत'के शिखरपर है। 'जाम्बूनदेश्वरी' 'श्रीनगर' स्थानके पास रहती हैं। भगवती 'गुह्यकाली'का महान् स्थान 'नैपाल' देशमें है। भगवती 'मीनाक्षी'का उत्तम स्थान 'चिदम्बरम्'में बताया गया है। देवी 'सुन्दरी'का परम उत्तम स्थान 'वेदारण्य'में है। भगवती 'पराशक्ति' 'एकाम्बर' नामक सुप्रसिद्ध स्थानमें शोभा पाती हैं। भगवती 'महालसा' और 'योगीश्वरी'का स्थान इन्हींके नामसे प्रसिद्ध है। देवी 'नीलसरस्वती'का स्थान 'चीन देश'में है। देवी 'बगला'का सर्वोत्कृष्ट स्थान 'वैद्यनाथधाम'में है। मैं सर्वैश्वर्यसम्पन्न भगवती 'भुवनेश्वरी' हूँ। मेरा स्थान 'मणिद्वीप' पर्वतपर कहा गया है। शंकर सतीके शरीरको लेकर घूम रहे थे। उस समय सतीका योनिभाग जहाँ गिरा, वह स्थान 'कामरू' नामक देशसे प्रसिद्ध हो गया। वहीं भगवती 'त्रिपुरसुन्दरी'का स्थान है। महामायासे सुशोभित यह स्थान जगत्में जितने क्षेत्र हैं, उन सबका रत्न है; धरातलमें इससे बढ़कर प्रसिद्ध स्थान कहीं कोई भी नहीं है। वह इतना जीता-जागता स्थान है कि प्रत्येक मासमें देवी वहाँ रजस्वला हुआ करती हैं। उस समय वहाँके रहनेवाले सभी प्रधान देवता पर्वतपर चले आते और वहाँ ठहरनेकी व्यवस्था कर लेते हैं। विद्वान् पुरुषोंका कथन है कि उस अवसरपर वहाँकी सम्पूर्ण भूमि देवीमय हो जाती है। अतः इस 'कामाख्यायोनिमण्डल'से श्रेष्ठ अन्य कोई स्थान नहीं है।

हिमालय! सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न 'पुष्कर' क्षेत्र भगवती 'गायत्री'का उत्तम स्थान कहा गया है। 'अमरकण्टक' देशमें भगवती 'चण्डिका'का स्थान है। 'प्रभास' क्षेत्रमें भगवती 'पुष्करेक्षिणी' रहती हैं। 'नैमिषारण्य' परम प्रसिद्ध स्थान है, वहाँ सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे शोभा पानेवाली भगवती 'ललिता' विराजती हैं। 'पुष्कर' में देवी 'पुरुहूता'का तथा 'आषाढी'में देवी 'रति'का उत्तम धाम है। 'चण्डमुण्डी' नामक स्थानमें चण्ड और मुण्डको शान्त करनेवाली भगवती 'परमेश्वरी' विराजती हैं। 'भारभूति'में देवी 'भूति'का तथा 'नाकुल'में देवी 'नकुलेश्वरी'का धाम है। 'हरिश्चन्द्र' नामक स्थानमें भगवती 'चन्द्रिका' एवं 'श्रीशैल' पर्वतपर भगवती 'शाङ्करी' प्रसिद्ध हैं। 'जप्येश्वर'में देवी 'त्रिशूला' और 'आम्रकेश्वर'में देवी 'सूक्ष्मा' विराजती हैं। महाकाल[1] नामक

१. महाकाल नामक स्थान उज्जैनमें है।

क्षेत्रमें भगवती 'शाङ्करी', 'मध्यम' संज्ञक स्थानमें 'शर्वाणी' तथा 'केदार' नामसे प्रसिद्ध महान् क्षेत्रमें देवी 'मार्गदायनी' शोभा पाती हैं। 'भैरव' नामक स्थान भगवती 'भैरवी'का तथा 'गया' भगवती 'मङ्गला'का स्थान कहा गया है। देवी 'स्थाणुप्रिया' 'कुरुक्षेत्र'में रहती हैं और देवी 'स्वायम्भुवी' 'नाकुल'में। 'कनखल'में देवी 'उग्रा'का, 'विमलेश्वर'में 'विश्वेशा'का, 'अट्टहास' नामक स्थानमें 'महानन्दा'का, 'महेन्द्र' पर्वतपर 'महान्तका'का, 'भीमा' पर्वतपर भगवती 'भीमेश्वरी'का, 'वस्त्रापथ' नामक स्थानमें भगवती 'शाङ्करी'का, 'अर्द्धकोटि' पर्वतपर 'रुद्राणी'का, 'अविमुक्त' क्षेत्रमें 'विशालाक्षी'का, 'महालय' नामक स्थानमें 'महाभागा'का, 'गोकर्ण'में 'भद्रकर्णी'का, 'भद्रकर्णक'में 'भद्रास्या'का, 'सुवर्णाक्ष' नामक स्थानमें 'उत्पलाक्षी'का, 'स्थाणु' नामक स्थानमें 'स्थाण्वीशा'का, 'कमलालय'में 'कमला'का, 'छागलण्डक'[1]में 'प्रचण्डा'का, 'कुरण्डल'में 'त्रिसंध्या'का, 'माकोट'में 'भृकुटेश्वरी'का, 'मण्डलेश'में 'शाण्डकी'का, 'कालंजर' पर्वतपर 'काली'का, 'शङ्कुकर्ण' पर्वतपर भगवती 'ध्वनि'का तथा 'स्थूलकेश्वर' पर्वतपर देवी 'स्थूला'का धाम कहा गया है। परमेश्वरी 'हल्लेखा'[2] सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंके हृदयरूपी कमलपर विराजमान रहती हैं।

पर्वतराज हिमालय! ये उपर्युक्त सभी स्थान देवीको परम प्रिय हैं। पहले इन सम्पूर्ण क्षेत्रोंका माहात्म्य सुने। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे देवीकी पूजामें लग जाय। अथवा नगराज! ये सम्पूर्ण क्षेत्र काशीमें ही विराजमान हैं। अतः देवीमें श्रद्धा रखनेवाला पुरुष निरन्तर काशीमें रहनेका प्रयत्न करे। वहीं रहकर उक्त स्थानोंका दर्शन करते हुए देवीके मन्त्रका जप एवं उनके चरण-कमलोंका ध्यान करे। इस पुण्यमय कर्मके प्रभावसे पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। हिमालय! जो पुरुष प्रातः-काल उठकर भगवतीके इन नामोंका उच्चारण करता है, उसके सम्पूर्ण पाप उसी क्षण तुरंत भस्म हो जाते हैं। द्विजमात्रका कर्तव्य है कि श्राद्धके अवसरपर सर्वप्रथम इन नामोंका पाठ करे। ऐसा करनेसे उसके समस्त पितर मुक्त होकर परमपदको पा जाते हैं।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हिमालय! अब तुम्हारे सामने व्रतोंकी[3] चर्चा करती हूँ। ये सभी व्रत स्त्री और पुरुष—प्रायः सबको यत्न-पूर्वक करने चाहिये। जो तृतीयाव्रत है, उसके तीन नाम हैं—अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणिनी-व्रत एवं आर्द्रानन्दकरीव्रत। शुक्रवार और चतुर्दशीको देवीका व्रत किया जाता है। भौमवारको भी देवीव्रत मानते हैं। प्रदोष देवीका वह व्रत है, जिस समय निशीथ रातमें भगवान् शंकर अपनी प्रेयसी प्रियाको आसनपर बैठाकर उनके सामने देवताओंसहित नृत्य करते हैं। उस दिन उपवास करके सायंकालके प्रदोषमें देवीकी पूजा करनी चाहिये। देवीको विशेषरूपसे संतुष्ट

१. छागलण्डक स्थान दक्षिण भारतमें समुद्रके तटपर है।

२. इस पदकी स्पष्ट व्याख्या 'यामलतन्त्र'के 'भुवनेश्वरी रहस्य'में की गयी है।

३. तृतीयादि व्रतोंका विशद वर्णन मत्स्यपुराणमें किया गया है।

करनेवाला यह व्रत प्रतिपक्षमें मनाया जाता है। हिमालय ! सोमवार व्रत भी मेरे लिये बहुत प्रिय है। इस व्रतमें दिनभर उपवास करके देवीका पूजन करनेके पश्चात् रात्रिमें भोजन करना चाहिये। चैत्र और आश्विन—दोनों नवरात्र मुझे परम प्रिय हैं।

राजन् ! इसी प्रकार अन्य भी अनेक नित्य और नैमित्तिक व्रत हैं। जो राग-द्वेषसे रहित होकर मेरी प्रसन्नताके लिये इन व्रतोंका अनुष्ठान करता है, उसे मेरा सायुज्यपद प्राप्त हो जाता है। उस पुरुषको मैं अपना भक्त एवं प्रिय मानती हूँ। राजन् ! व्रतोंके अवसरपर झूला सजाकर मेरे उत्सव भी मनाने चाहिये। शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव तथा दमनोत्सव आदि अनेक उत्सव हैं। इन्हें मनाना आवश्यक है। श्रावण महीनेमें एक पवित्रोत्सव होता है। उससे मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ। मेरा भक्त इस व्रतका सदा पालन करे। ऐसे ही अन्य भी बहुत-से महोत्सव हैं, जिन्हें मनाना चाहिये। उत्सवके अवसरपर मेरे भक्तोंको प्रसन्नतापूर्वक भोजन करावे। सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराया जाय। कुमारी कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको मेरा ही स्वरूप समझकर उन्हें भोजन करावे। खुले हाथसे धन व्यय करते हुए ब्राह्मणकी कुमारी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियोंकी पुष्प आदिसे पूजा करे। जो इस प्रकार सावधान होकर प्रीतिपूर्वक प्रतिवर्ष पूजन करता है, वह धन्य, कृतकृत्य तथा निःसंदेह मेरा प्रेमपात्र है। संक्षेपसे मैंने यह सारी बातें बतला दीं। यह प्रसङ्ग मेरे लिये बहुत ही प्रियकर है। जो मेरा अनुशासन न मानता हो तथा मेरे प्रति जिसकी श्रद्धा न हो, उसके सामने यह प्रसङ्ग कभी नहीं कहना चाहिये।

(अध्याय ३८)

☆

## देवी-पूजनके विविध प्रसंगोंका संक्षिप्त वर्णन

हिमालयने कहा—देवेश्वरी ! महेशानी ! करुणानिधे ! अम्बिके ! अब आप अपने पूजनकी समुचित विधि बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीदेवीजी कहती हैं—राजन् ! पर्वतराज ! जगदम्बाको यथार्थ प्रसन्न करनेवाले पूजनकी विधि मैं बताती हूँ। तुम अत्यन्त श्रद्धालु होकर इसका श्रवण करो। मेरी पूजा दो प्रकारकी है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य पूजाके भी दो प्रकार बताये गये हैं—'वैदिकी' और 'तान्त्रिकी'। हिमालय ! मूर्तिभेदसे वैदिकी पूजा भी दो प्रकारसे सम्पन्न होती है। वैदिक मन्त्रोंके अध्ययनशील पुरुष वेदके मन्त्रोंका उच्चारण करके जो पूजा करते हैं, वह 'वैदिकी' तथा तन्त्रोक्त मन्त्रोंसे जो पूजा सम्पन्न होती है, उसे 'तान्त्रिकी' पूजा कहते हैं। इस प्रकार पूजा-रहस्यको न समझकर जो अज्ञानी मानव उलटे ही ढंगसे पूजनमें संलग्न होता है, वह सर्वथा पतनोन्मुख है।

प्रथम जो वैदिकी पूजा है, उसका प्रकार बताती हूँ। हिमालय ! तुम मेरे जिस महान् रूपका साक्षात् दर्शन कर चुके हो, जिसमें अनन्त मस्तक, नेत्र और चरण थे तथा जो सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ एवं परम प्रेरक था, उसी रूपका निरन्तर पूजन, नमन, ध्यान और स्मरण करना चाहिये। पर्वतराज ! प्रथम पूजाका यही रूप बताया गया है। तुम

चित्तको शान्त करके सावधान होकर तथा दम्भ एवं अहंकारसे शून्य हो, उसी रूपकी शरणमें जाओ। यज्ञशील बनकर पूजामें पूरी तत्परता रखना। चित्तके द्वारा वही रूप दीखता रहे। जप और ध्यानकी शृङ्खला कभी टूटे ही नहीं। अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्तिसे मेरे उपासक बनकर यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन तथा तप एवं दानके द्वारा मुझे ही संतुष्ट करनेका प्रयत्न करो। यों करनेसे मेरी कृपा तुम्हें संसार-बन्धनसे अवश्य मुक्त कर देगी। जो सदा मुझपर निर्भर रहते हैं तथा जिनका चित्त निरन्तर मुझमें लगा रहता है, वे उत्तम भक्त माने जाते हैं। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं तुरंत इस भवसागरसे उनका उद्धार कर दूँ।

राजन्! मैं ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग अथवा ज्ञानयोग—इनमेंसे किसीके द्वारा भी प्राप्त हो सकती हूँ न कि केवल कर्मयोगसे ही। कर्म निरर्थक नहीं है; क्योंकि सत्कर्मके प्रभावसे पापका उच्छेद होकर धार्मिक भावना जम जाती है। धर्मसे भक्तिका प्रादुर्भाव होता है और भक्ति परब्रह्मके ज्ञानमें साधन है। श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित सत्कर्म ही धर्म कहा गया है। अन्य शास्त्रोंमें कथित जो धर्म है, उसे तो केवल धर्माभास कहते हैं। मैं ज्ञान एवं सब कुछ करनेकी योग्यतासे सम्पन्न हूँ। मुझसे उत्पन्न होनेके कारण वेदमें भी ये सभी सद्गुण हैं। वेदसे उत्पन्न श्रुति भी अप्रामाणिक नहीं है। श्रुतिके ही अर्थको लेकर स्मृतियोंका प्रकाशन हुआ है, जो मनुस्मृति आदिके नामसे विख्यात हैं। अतः श्रुतियों और स्मृतियोंकी प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध है। अतएव मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको सद्धर्मकी प्राप्तिके लिये सर्वथा वेदका आश्रय लेना चाहिये। जैसे जगत्में राजाकी आज्ञाको कभी कोई नहीं टाल सकता, वैसे ही मुझ सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र शासककी आज्ञा जो श्रुति है, उसे मनुष्य कैसे अमान्य कर सकते हैं? मेरी आज्ञाका पालन हो—एतदर्थ मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंको उत्पन्न किया है। अब मेरी वाणी जो श्रुति है, उसका अभिप्राय समझना चाहिये।

हिमालय! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मेरे अवतार हुआ करते हैं। राजन्! इसीलिये देवताओं और दैत्योंका विभाग भी हुआ है। जो मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले सद्धर्म और सत्-शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं करते, उनके लिये मैंने नरकोंकी सृष्टि कर रखी है। वे नरक ऐसे बीभत्स हैं कि सुननेमात्रसे ही हृदय काँप उठता है। वेदमें कहे गये धर्मका परित्याग करके जो अन्य धर्मका अवलम्ब लेते हैं; राजाको चाहिये कि उन अधार्मिक व्यक्तियोंको अपने राज्यसे निकाल दे। ब्राह्मण लोग उन अधार्मिकोंसे न बात करें और न उन्हें अपनी पङ्क्तिमें बैठावें।

इस जगत्में तरह-तरहके अन्य जितने शास्त्र हैं, वे सभी श्रुति और स्मृतिसे विरुद्ध होनेके कारण तामसी कहे जाते हैं। उन शास्त्रोंके नाम हैं—वाम, कापाल, कौलक और भैरवागम। शिवने मोहमें डालनेके लिये इन शास्त्रोंका प्रतिपादन किया है। उनमें कहीं-कहीं वेदसे अविरुद्ध अंश भी है। वेदज्ञ पुरुष उस अंशको ग्रहण कर लें तो कोई दोष नहीं। वेदसे भिन्न अर्थको स्वीकार करनेके लिये द्विज सर्वथा अनधिकारी है। अतएव वैदिक पुरुष सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके वेदका ही आश्रय ले। यही शाश्वत धर्म है। इसके साथ रहनेवाले ज्ञानसे ही

परब्रह्म प्रकाशित हो सकते हैं। जो सम्पूर्ण इच्छाओंका त्याग करके मेरी ही शरणमें आ गये हैं, समस्त प्राणियोंपर दया करते हैं, मान एवं अहंकारसे रहित हैं, जिनका चित्त मुझमें अनुरक्त रहता है, प्राण भी मुझमें लगे रहते हैं, जिनके द्वारा मेरे स्थानोंकी चर्चा होती रहती है—ऐसे संन्यासी, वानप्रस्थी, गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारी यदि भक्तिपूर्वक मेरे विराट्‌रूपकी सदा उपासना करते हैं तो मैं निरन्तर मुझमें लगे रहनेवाले उन पुरुषोंके अज्ञानजन्य अन्धकारको ज्ञानमय सूर्यके प्रकाशद्वारा तुरंत नष्ट कर देती हूँ—इसमें कोई संदेह नहीं। हिमालय ! इस प्रकार वेदके सिद्धान्तपर निर्भर रहनेवाली मेरी प्रथम पूजा सम्पन्न होती है। इसका स्वरूप मैंने संक्षेपसे बताया है।

अब दूसरी पूजाका प्रसंग बतलाती हूँ। मूर्ति, वेदी, सूर्य अथवा चन्द्रमाका मण्डल, जल, बाणाकार चिह्न, यन्त्र, महान् चित्रपट अथवा हृदयरूपी कमलपर मुझ परमेश्वरीका ध्यान करके पूजन करे। मेरे सगुणरूपका ध्यान यों करना चाहिये—देवी करुणासे परिपूर्ण हैं, तरुण अवस्था है। संध्याकी लालिमा-जैसे ललितवर्णसे ये शोभा पा रही हैं। श्रीविग्रह सुन्दरताकी सीमा है। इनके सम्पूर्ण अङ्ग परम मनोहर हैं। कोई भी ऐसा शृङ्गार नहीं है, जो इनमें न हो। भक्तोंके दुःखसे ये सदा दुःखी हुआ करती हैं। इन जगदम्बाका मुख-मण्डल प्रसन्नतासे भरा रहता है। मुकुटपर बाल-चन्द्रमा तथा मयूरपङ्ख शोभा बढ़ा रहे हैं। इन्होंने पाश, अङ्कुश, वर और अभयमुद्राको धारण कर रखा है। ये आनन्दमय रूपसे सुशोभित हैं। इस प्रकार ध्यान करके वित्तके अनुसार सामग्रियाँ जुटाकर उनसे मेरी पूजाका कार्य सम्पन्न करे। जबतक अन्तःपूजाका अधिकार न मिले तबतक तो बाह्यपूजा करनी चाहिये। अधिकारी होते ही बाह्यपूजा छोड़कर अन्तःपूजामें लग जाय; क्योंकि मेरी जो आभ्यन्तर पूजा है, वह थोड़े समय बाद ज्ञानमें लीन हो जाती है—ऐसा कथन है। उपाधिशून्य ज्ञान ही मेरा परम रूप है। अतः मेरे ज्ञानमय रूपमें अपने आश्रयहीन चित्तको लगा देना चाहिये। इस ज्ञानमय रूपसे अतिरिक्त यह प्रपञ्चमय जगत् सर्वथा असत् है। इसलिये जन्म और मृत्युकी क्रियाको शान्त करनेके उद्देश्यसे एकनिष्ठ होकर मेरा चिन्तन करना चाहिये। मैं सर्वसाक्षिणी एवं आत्मस्वरूपिणी हूँ। ध्यानयोगपूर्वक चित्तसे मेरा स्मरण करना चाहिये।

हिमालय ! इसके बाद बाह्यपूजाका प्रसंग विस्तारपूर्वक मेरे द्वारा वर्णित होगा। तुम मनको सावधान करके सुनो। (अध्याय ३९)

☆

## पूजा-विधि एवं फलश्रुति

श्रीदेवी कहती हैं—हिमालय ! प्रातःकाल उठकर अपने मस्तकमें जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसपर एक स्वच्छ सहस्रदल कमलका चिन्तन करे। ध्यान यों होना चाहिये—'यह कमल कपूरके समान श्वेत वर्णका है। मेरे लौकिक गुरुके समान आकारवाले महाभाग गुरुदेव इस कमलके आसनपर विराजमान हैं। इनका मुख परम प्रसन्न है। तरह-तरहके आभूषण इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इनकी शक्ति भी साथ बैठी हैं।' ध्यानोपरान्त प्रणाम करके पण्डितजन

कुण्डलिनीमें देवीका ध्यान करें—'ये ही देवी प्रथम प्रयाणमें अर्थात् जब ब्रह्मरन्ध्रपर पधारी थीं, तब इनका रूप एक प्रकाशपुञ्ज-सा था। फिर कुण्डलिनीमें पधारनेपर ये अमृतस्वरूपिणी बन गयी हैं। अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजते समय ये ही परम शक्ति एक अबला स्त्रीके रूपमें दर्शन दे रही हैं। इनका रूप परम आनन्दमय है। अतः मैं इनकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

राजन्! इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् कुण्डलिनी शिखाके मध्यमें मुझ सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी देवीका ध्यान करे। ये सभी क्रियाएँ संध्या-वन्दनके अन्तमें पूर्ण करनी चाहिये। इसके बाद श्रेष्ठ द्विज मुझे प्रसन्न करनेके लिये अग्निहोत्र करें। होम करनेके उपरान्त अपने आसनपर बैठकर मेरी पूजामें संलग्न हो जायँ। पहले भूतशुद्धि करके फिर मातृकान्यास करना चाहिये। मातृकान्यासमें पहले 'रं' इस मायाबीजका उल्लेख अनिवार्य है। पूजामें प्रतिदिन यह न्यास होना चाहिये। मूलाधारमें हकार, हृदयमें रकार, भ्रूके मध्यमें ईकार तथा मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करे। तत्-तत् मन्त्रके कथनानुसार अन्य सभी न्यासोंकी विधि सम्पन्न करनी चाहिये। ऐसी कल्पना करे कि 'मेरे इस शरीरमें ही एक दिव्य पीठ है। धर्म आदि सभी मूर्तिमान् होकर साथ विराजमान हैं।' तत्पश्चात् विज्ञ पुरुष यों ध्यान करे—'प्राणायामके प्रभावसे मेरा हृदयरूपी कमल खिल उठा है। यह एक पञ्चप्रेतासन है। इस दिव्य आसनपर महादेवी विराजमान हैं।'

हिमालय! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पाँचों देवता 'पञ्चमहाप्रेत' कहे जाते हैं। मेरे पादमूलमें ये रहते हैं—अर्थात् मेरे मंचके ये चार तो पाये हैं और एक फलक। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश— इन पाँच भूतों तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं अतीत—इन पाँच अवस्थाओंके ये व्यवस्थापक हैं। मेरा चिन्मय रूप तो अव्यक्त है। मैं इन अवस्थाओंसे सर्वथा परे हूँ। शक्ति-तन्त्रमें ब्रह्मा प्रभृतिका विष्टररूपसे परिणत होना प्रसिद्ध है। यों निरन्तर ध्यान करके मानसिक भोग-सामग्रियोंसे मेरी पूजा और जप भी सम्पन्न करे। फिर मुझ श्रीदेवीको जप अर्पण करके अर्घ्य देनेकी व्यवस्था करे। सर्वप्रथम पूजाके सभी पात्र सामने रख ले। पूजामें आनेवाली वस्तुओंको अस्त्रमन्त्र अर्थात् 'ॐ फट्' इस मन्त्रका उच्चारण करके शुद्ध करे। दिग्बन्ध भी इसी मन्त्रसे करना चाहिये। यह सब कृत्य समाप्त करके गुरुदेवको प्रणाम करे। फिर मेरी आज्ञाके अनुसार बाह्यपूजाकी तैयारी करनी चाहिये।

राजन्! साधकके हृदयमें मेरी जो दिव्य मनोहर मूर्ति बसी हो, उसीका बाह्यपीठपर आवाहन करे। फिर, वेदमन्त्रद्वारा प्राणप्रतिष्ठा करना आवश्यक है। आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान और वस्त्रदान—ये विधियाँ क्रमशः सम्पन्न करे। दो वस्त्र अर्पण किये जायँ। भूषणोंसे मूर्तिका शृङ्गार करे। सब प्रकारकी गन्ध, पुष्प आदि यथायोग्य वस्तुएँ अपनी भक्तिके अनुसार देवीको अर्पण करे। इसके बाद मन्त्रमें लिखित आवरण देवताओंका सविधि पूजन होना चाहिये। जो प्रतिदिन पूजा न कर सकते हों, वे शुक्रवारको पूजा करनेका अनिवार्य नियम बना लें।'

अब उपर्युक्त आवरण देवताओंके प्रसंग बताती हूँ—पहले मूल देवीकी भावना करे। ये देवी परम प्रकाशमय हैं। इनका प्रकाशपुञ्ज त्रिलोकीमें व्याप्त है। यों चिन्तन करके आसन-पाद्य आदि यथायोग्य उपचारोंसे अङ्गदेवताओंको सुपूजित करनेके उपरान्त पुनः मुझ मूल देवीकी पूजा करनी चाहिये। पुष्प, चन्दन, धूप, वस्त्र, नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणा आदिसे मुझे संतुष्ट करना आवश्यक है। तुम्हारे बनाये हुए सहस्रनामसे[१] मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ। राजन्! कवच तथा 'अहं रुद्रेभिः' इस सूक्तसे एवं 'देव्यथर्वशीर्ष'के मन्त्रों और महाविद्या-संज्ञक प्रधान मन्त्रोंसे बार-बार मुझे प्रसन्न करे। इसके बाद पुरुषको चाहिये, अपना हृदय प्रेम-रससे स्निग्ध करके मुझ जगदम्बाके प्रति अपराध क्षमा होनेके लिये प्रार्थना करे। सम्पूर्ण अङ्गोंके पुलकित होनेसे आँखोंमें आँसू आ जाय। कण्ठसे बोला न जा सके। बारम्बार नाच और गाकर मुझे संतुष्ट करे। सम्पूर्ण वेद और पुराण मेरे ही सुयशका बखान करते हैं। कारण, मैं उनकी अधिष्ठात्री हूँ। अतः उन वेदों एवं पुराणोंके सहयोगसे मुझे संतुष्ट करना चाहिये। अपना सर्वस्व—यहाँतक कि अपने शरीरको भी मुझे नित्य अर्पण कर दे। तदनन्तर नित्य होम करे। ब्राह्मण तथा सुहागिनी स्त्रियोंको भोजन कराया जाय। छोटे-छोटे अज्ञानी बालकोंको भी देवीका रूप मानकर उन्हें भोजन कराना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् अपने हृदयमें जिस क्रमसे जिसका आवाहन आदि किया हो, ठीक उसीके विपरीत क्रमसे विसर्जन करे।

उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले हिमालय! मेरी सारी पूजा हल्लेखा[२] मन्त्रसे सम्पन्न हो जाती है; क्योंकि यह मन्त्र सम्पूर्ण मन्त्रोंका अधिष्ठाता कहा गया है। यह मन्त्र दर्पण-सा है। मेरा प्रतिबिम्ब निरन्तर इसमें झलकता रहता है। अतः इस मन्त्रका उच्चारण करके दिया हुआ पदार्थ सम्पूर्ण मन्त्रोंसे अर्पित समझा जाता है। फिर भूषण आदि श्रेष्ठ सामग्रियोंसे गुरुदेवकी भलीभाँति पूजा करके स्वयं कृतकृत्य हो जाय। जो इस प्रकार मुझ त्रिभुवनसुन्दरी देवीकी उपासना करता है, उसके लिये कभी कोई वस्तु न दुर्लभ रही और न कभी रह सकती है। आयु समाप्त होनेपर वह बड़भागी व्यक्ति सीधे मेरे मणिद्वीपमें पहुँचता है। उसे मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये। देवतालोग नित्य उसको प्रणाम करते हैं।

राजन्! इस प्रकार महादेवीकी पूजाका प्रसंग मैं तुम्हें सुना चुकी। तुम इन सभी विषयोंपर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकारके अनुसार मेरे पूजनमें संलग्न हो जाओ। इसके उत्तम प्रभावसे तुम कृतकृत्य हो जाओगे। यह प्रसंग मेरा गीता-शास्त्र कहलाता है। जो मेरी आज्ञा न मानता हो, मेरे प्रति जिसकी श्रद्धा न हो तथा जो धूर्त एवं दुष्ट विचारका हो, उसके सामने कभी भी इस प्रसंगका विवेचन नहीं करना चाहिये। ऐसे

१. यद्यपि हिमालयकृत यह देवीसहस्रनाम इस पुराणमें नहीं है, फिर भी प्रसंगवश इसकी चर्चा कर दी गयी है। कूर्मपुराणके बारहवें अध्यायमें यह 'सहस्रनाम' है।

२. ह्रींकारको हल्लेखा-मन्त्र कहते हैं।

अनधिकारी व्यक्तिके प्रकाशमें इस प्रसंगको उपस्थित करना ठीक वैसा ही है, जैसे कोई अपनी माताके गोप्य स्थान स्तनको उघाड़कर दिखा रहा हो। अतएव यत्नपूर्वक निरन्तर इस रहस्यको गोप्य रखना परम आवश्यक है। जो आज्ञाकारी बड़ा पुत्र श्रद्धालु, सुशील, सुन्दर तथा देवीभक्त हो, उसीके प्रति इसका उपदेश करना चाहिये। श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंके समीप इसका पाठ किया जाय, तो श्राद्धकर्ताके समस्त पितर तृप्त होकर परम धामके अधिकारी बन जाते हैं।

व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। उनके दर्शन पाकर सम्पूर्ण देवता आनन्दसे भर गये।

व्यासजी बोले—राजन्! तदनन्तर भगवती सती हिमालयके घर जन्म धारण करके हैमवती नामसे प्रसिद्ध हुईं। ये वे ही देवी हैं, जो पहले गौरी कहलाती थीं और भगवती भुवनेश्वरीने जिन्हें शंकरको सौंपा था। इसके बाद स्वामी कार्तिकेयका जन्म हुआ और उनके हाथ तारकासुरकी जीवनलीला समाप्त हुई। [अब लक्ष्मीके पुनः प्राकट्यका प्रसंग बताया जाता है] राजन्! पूर्व समयकी बात है—समुद्रका मन्थन हो रहा था। बहुत-से रत्न निकले। उस समय लक्ष्मीको प्रकट होनेके लिये देवताओंने आदरपूर्वक भगवती जगदम्बाकी स्तुति की। तब उनपर कृपा करनेके लिये देवी ही पुनः लक्ष्मीरूपसे प्रकट हो गयीं। देवताओंके अनुरोधसे भगवान् विष्णुके साथ रहनेका सौभाग्य लक्ष्मीको प्राप्त हो गया।

राजन्! देवीके इस उत्तम माहात्म्यका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया। गौरी और लक्ष्मीकी उत्पत्तिका यह प्रसंग सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। अन्य किसी साधारण व्यक्तिके सामने यह रहस्य नहीं कहना चाहिये; क्योंकि यह रहस्य सम्यक् प्रकारसे गुप्त रखनेकी वस्तु है। निष्पाप राजन्! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने संक्षेपसे कह दिया। यह चरित्र स्वयं पवित्र, दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला तथा परम दिव्य है। अब आगे कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हो।

(अध्याय ४०)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका सातवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण

═══ ★ ═══

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## आठवाँ स्कन्ध

### सृष्टिके आरम्भमें स्वायम्भुव मनुके द्वारा देवीकी स्तुति तथा वाराहावतारकी संक्षिप्त कथा

जनमेजयने कहा—विप्रर्षे ! आपने सूर्यवंश और चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए राजाओंकी अमृतमयी कथा कही और मैं सुन चुका। अब मैं भगवती जगदम्बाकी विशद कथा सुनना चाहता हूँ। सम्पूर्ण मन्वन्तरोंमें जहाँ-जहाँ, जिस-जिस स्थानपर, जिस-जिस कर्मसे तथा जिस बीज-मन्त्रके द्वारा देवीकी सद्यःफलदायिनी पूजा होती है, इन सब प्रसङ्गोंको सुनाइये, जिससे मैं कल्याणका भागी बन सकूँ। साथ ही देवीके विराट्‌रूपका भी यथार्थ वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! सुनो, अब मैं भगवती जगदम्बाकी श्रेष्ठ पूजाका प्रसंग कहता हूँ, जिसे करने अथवा सुननेमात्रसे ही मनुष्यका कल्याण हो जाता है। प्राचीन कालकी बात है—ऐसे ही प्रसंगको लेकर नारदजीने भगवान् नारायणसे पूछा था। उस समय योगाचार्योंके प्रवर्तक भगवान् नारायणने जो उत्तर दिया था, वही मैं सुनाता हूँ।

एक समयकी बात है—ब्रह्माजीके पुत्र श्रीमान् नारदजी भूमण्डलपर विचरते हुए भगवान् नारायणके आश्रमपर पहुँचे। उन्होंने योगात्मा नारायणसे प्रश्न किया।

नारदजीने कहा—देवेश्वर ! आप पुराण-पुरुषोत्तम, सम्पूर्ण देवताओंके व्यवस्थापक, जगत्‌को धारण करनेवाले, सर्वज्ञानी तथा अशेष सद्‌गुणोंसे सम्पन्न हैं। भगवन् ! इस जगत्‌का जो आद्य तत्त्व है, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। यह जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, कौन इसकी रक्षा करते हैं, किसके द्वारा इसका संहार होता है, कैसे समयमें कर्मोंके फल उदय होते हैं, किस ज्ञानके प्रभावसे इस मोहमयी मायाको दूर किया जा सकता है तथा अन्धकार-पूर्ण जगत्‌में सूर्योदयकी भाँति किस जप, ध्यान अथवा पूजनसे हृदयमें प्रकाश प्रकट हो सकता है ? प्रभो ! आप इन सम्पूर्ण प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर देनेकी कृपा कीजिये, जिसके फलस्वरूप प्राणी इस अत्यन्त अन्धकारमय जगत्‌को सुगमतापूर्वक पार कर सके।

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् नारायण योगीश्वर, मुनियोंके सिरमौर तथा सनातन पुरुष हैं। देवर्षि नारदके इस प्रकार पूछनेपर उन्होंने कहना आरम्भ किया।

भगवान् नारायण बोले—देवर्षि नारद ! तुम अब जगत्‌के उत्तम तत्त्वको सुनो। जगत्‌में एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा हैं। इस बातको

मैं पहले ही कह चुका हूँ। देवता, ऋषि, गन्धर्व तथा अन्य विद्वानोंका भी यही कथन है। वे ही जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करती हैं; क्योंकि त्रिगुणात्मिका होनेसे सम्पूर्ण कार्यका भार उन्हींपर निर्भर है। अब मैं देवीके उस रूपका वर्णन करता हूँ, जिसे सिद्ध पुरुष भी पूजते हैं तथा जो स्मरण करनेवालेके समस्त विघ्नोंको दूर करके उन्हें काम एवं मोक्षतक देनेमें समर्थ है।

ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव आदि मनु कहे जाते हैं। इन प्रतापी मनुकी भार्याका नाम शतरूपा है। इन श्रीमान् मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरोंका प्रवर्तक माना गया है। एक समय ये स्वायम्भुव मनु अपने पुण्यात्मा पिता प्रजापति ब्रह्माजीके पास भक्तिपूर्वक पधारे। तब ब्रह्माजीने उनसे कहा—'बेटा ! तुम्हें भगवती भुवनेश्वरीकी उत्तम उपासना करनी चाहिये। तात ! इन्हींके प्रसन्न होनेपर तुम्हारी यह प्रजासृष्टि सुचारुरूपसे चल सकती है।' परम आदरणीय सर्वसमर्थ स्वायम्भुव मनुसे जब ब्रह्माजीने यों कहा तब वे तपस्याद्वारा जगत्‌की रचना करनेवाली देवीको संतुष्ट करनेके प्रयत्नमें लग गये। देवी देवताओंकी अधिष्ठात्री, आद्या, माया, सर्वशक्तिमयी एवं सर्वकारणकारिणी कहलाती हैं। स्वायम्भुवने बड़ी सावधानीके साथ उनकी स्तुति आरम्भ की।

मनुजी बोले—जगत्‌के कारणके भी कारण, शङ्ख, चक्र एवं गदा हाथमें धारण करनेवाली तथा श्रीहरिके हृदयमें विराजमान भगवती देवेश्वरी ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। वेदमय मूर्ति धारण करनेवाली भगवती जगदम्बिके ! तुम कारणस्थानरूपिणी, तीनों वेदोंके प्रमाणको जाननेवाली, सम्पूर्ण देवताओंकी आराध्या, कल्याणस्वरूपिणी, परब्रह्म परमेश्वरी, महान् भाग्यशालिनी, महामाया, महोदया, महादेवप्रिया, वासा, महादेवप्रियंकरी, गोपेन्द्रप्रिया, ज्येष्ठा, महानन्दा, महोत्सवा तथा महामारीके भयको नष्ट करनेवाली एवं देवताओंके द्वारा सुपूजिता हो। तुम्हें नमस्कार है। नारायणी ! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो; कल्याणदायिनी शिवा, सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो; तुम्हें नमस्कार है।

जिनके सकाशसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है। जो अखिल भूमण्डलमें व्याप्त हैं; चैतन्य, एक, आदि-अन्तसे रहित एवं तेजकी पुञ्ज हैं; जिनका सङ्केत पाकर ब्रह्मा सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं; मधु-कैटभके भयसे अत्यन्त घबराये हुए ब्रह्माने जिनकी स्तुति करके भयंकर दानवमय संसार-समुद्रसे अपना उद्धार किया है, उन भगवती जगदम्बाको नमस्कार है। देवी ! तुम ही कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, बुद्धिदात्री एवं अभया नामसे प्रसिद्ध हो। माता ! मैं तुम्हारी स्तुति, पूजा, प्रणाम, जप, ध्यान, चिन्तन, अवलोकन तथा चरित्र-श्रवण करता हूँ। तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। महान् मङ्गलमय विग्रह धारण करनेवाली लोकेश्वरी ! तुम्हारी ही कृपासे ब्रह्मा वेदके भण्डार, श्रीहरि लक्ष्मीके स्वामी, इन्द्र त्रिलोकीके अध्यक्ष, वरुण जलचरजीवोंके नायक, कुबेर धनके अधिपति, यमराज प्रेतोंके शासक, नैर्ऋत राक्षसोंके नाथ तथा चन्द्रमा रसोंके स्वामी एवं

लोकवन्द्य बने हैं। जगदम्बिके ! तुम्हें बारम्बार अनेकशः प्रणाम है।

भगवान् नारायण कहते हैं—देवर्षि नारद ! ब्रह्मपुत्र स्वायम्भुव मनुने जब इस प्रकार भगवती नारायणीकी स्तुति की, तब वे प्रसन्न होकर उनके प्रति बोलीं।

श्रीदेवीने कहा—राजेन्द्र ! ब्रह्मपुत्र ! तुम्हें जो इच्छा हो, वही वर माँग लो। मैं इस समय तुम्हारी स्तुति, भक्ति और आराधनासे परम प्रसन्न हूँ।

मनु बोले—अनुपम कृपा करनेवाली देवी ! तुम यदि मेरी भक्तिसे प्रसन्न हो तो ऐसी कृपा करो कि यह प्रजासृष्टि निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो सके।

श्रीदेवीने कहा—राजेन्द्र ! मेरे कृपा-प्रसादसे तुम्हारी प्रजासृष्टि अवश्य सम्पन्न होगी और बिना किसी विघ्न-बाधाके यह क्रमशः बढ़ती रहेगी। जो कोई पुरुष मुझमें भक्ति रखकर तुम्हारे बनाये हुए इस स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, उसकी विद्या, प्रजा, कीर्ति और कान्तिमें निरन्तर वृद्धि होगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। 'राजन् ! इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। उनकी शक्ति कभी शिथिल नहीं होती।' वे सर्वत्र विजय पाते हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—परम बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र स्वायम्भुव मनुको इस प्रकारके वर देकर भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं।

तदनन्तर ब्रह्माजीके पुत्र महान् प्रतापी राजा स्वायम्भुव मनु उत्तम वर पाकर ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'पिताजी ! आप मुझे कोई एकान्त स्थान दीजिये, जहाँ रहकर मैं प्रचुर प्रजाकी सृष्टि कर सकूँ। मैं यज्ञोंद्वारा देवेश्वरीकी उपासना करूँगा। अतः शीघ्र आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये।' ब्रह्माजी प्रजापतियोंके भी स्वामी एवं परम शक्तिशाली पुरुष हैं। अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुकी बात सुनकर उन्होंने बहुत देरतक विचार किया। सोचा, यह कार्य कैसे सम्पन्न हो। मैं चिरकालतक इस जगत्‌की सृष्टि करता रहा; परंतु पृथ्वी ठहर नहीं सकी। इसे जल डुबाता रहता है। अतः ऐसी स्थितिमें मेरा यह चिन्तित कार्य तभी सरलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है, जब वे आदिपुरुष भगवान् मेरे सहायक बन जायँ, जिनके आदेशसे मैं इस प्रपञ्चमें लगा हूँ।

नारायण कहते हैं—परम तपस्वी नारद ! पद्मयोनि ब्रह्माके मनमें इस प्रकारकी विचारधारा लहरा रही थी। मनु आदि तथा मरीचि प्रभृति सभी देवता चारों ओर विराजमान थे। निष्पाप नारद ! इतनेमें ब्रह्माकी नासिकाके अग्रभागसे एक छोटा-सा वाराह-शिशु सहसा प्रकट हो गया। उसका प्रमाण केवल एक अङ्गुल था। नारद ! ब्रह्माके सामने ही वह तुरंत विशाल हो गया। उसकी आकृति एक हाथी-जैसी हो गयी। नारद ! उस समय मरीचि प्रभृति सभी प्रमुख देवता, प्रधान ब्राह्मण तथा सनकादि ऋषियोंके साथ बैठे पद्मयोनि ब्रह्माने वाराहके उस आश्चर्यजनक रूपको देखकर मन-ही-मन विचार किया—'अहो ! सूअरके व्याजसे यह कौन दिव्य प्राणी मेरी नासिकासे बाहर निकलकर सामने विराजमान हो गया। यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है। अभी-अभी यह अँगूठेके पोरवेके बराबर था। क्षणमात्रमें ही इसकी आकृति इतनी विशाल हो गयी, मानो पर्वतराज हो। अवश्य ही भगवान् श्रीहरि अथवा यज्ञपुरुष ही इस रूपमें प्रकट हो गये हैं।'

इस प्रकार परम प्रभु ब्रह्माजी तर्क-वितर्क कर रहे थे। ठीक, उसी समय पर्वतकी तुलना करनेवाले वाराहरूपधारी भगवान् श्रीहरि गरज उठे। उन्होंने अपने गर्जनमात्रसे ब्रह्माके तथा समस्त प्रधान ब्राह्मणोंके हृदयमें आनन्द उत्पन्न कर दिया। दिशाएँ उस तुमुल शब्दसे व्याप्त हो गयीं। भगवान् वाराहकी ध्वनि घुरघुराहटके साथ होती थी। जब जन, तप और सत्यलोकके निवासी श्रेष्ठ देवताओंने उस शब्दको सुना, तब उन्होंने ऋक्, साम और यजुर्वेदमें कथित उत्तम वैदिक स्तोत्रोंद्वारा उन आदिपुरुष भगवान् वाराहकी स्तुति की। उनका स्तवन सुनकर सर्वसमर्थ श्रीवाराह अपनी कृपाकी दृष्टिसे उन्हें अनुगृहीत करके जलमें प्रविष्ट हो गये। जब वे जलके भीतर घुसने लगे, तब उनकी भयंकर सटाके आघातसे समुद्रके हृदयमें खलबली मच गयी। उसने इस प्रकार प्रार्थना की—

'शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये।' सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि ही वाराहके रूपमें प्रकट हुए थे। समुद्रकी प्रार्थना सुनकर जलचर जीवोंको इधर-उधर हटाते हुए वे अगाध जलमें चले गये। पृथ्वीको खोजते हुए उन्होंने चारों ओर चक्कर लगाया। धीरे-धीरे वे सब ओर सूँघ-सूँघकर पृथ्वीको खोज रहे थे। तदनन्तर उन सर्वेशको पृथ्वीका पता चल गया। उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेवाली वह पृथ्वी जलके भीतर छिपी थी। वाराहरूपधारी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिने उसे अपनी दाढ़से उखाड़ा और दाँतके अग्रभागपर रख लिया। उस अवसरपर उन यज्ञेश एवं यज्ञपुरुष भगवान् वाराहकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो कोई दिग्गज कमलिनीको दाँतपर लिये हुए हो। देवेश्वर श्रीहरि पृथ्वीको थूथुनपर लिये हुए विराजमान थे। मनुसहित देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी झाँकी पाकर स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—भक्तोंका संकट टालनेवाले कमललोचन भगवान् श्रीहरि! आपकी जय हो। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवन्! आपके सामने अन्य सभी देवता तुच्छ हैं। प्रभो! यह पृथ्वी आपकी दाढ़पर इस प्रकार शोभा पा रही है, मानो पत्रोंसे भरी-पूरी कमलिनी किसी मतवाले हाथीकी सूँडपर विराज रही है। पृथ्वीको लिये रहनेके कारण आपका यह शरीर ऐसे शोभायमान हो रहा है, जैसे कमलको उखाड़कर सूँडपर लिये हुए ऐरावत हाथी हो। सृष्टि एवं संहारके प्रवर्तक देवेश! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके आश्रयभूत एवं बृहद्धाना कहलानेवाले भगवन्! आपको आगे एवं पीछेसे बार-बार नमस्कार है। आपने ही मुझे शक्तिशाली बनाकर प्रजाकी सृष्टि करनेके लिये नियुक्त किया है। मैं तो आपका आज्ञाकारी हूँ।

सृष्टिका चालू रहना या बंद होना आपकी आज्ञापर निर्भर है। हरे ! आपकी सहायतासे ही प्राचीन समयमें सम्पूर्ण देवताओंने बल एवं कालके अनुसार अमृतके विभाजनमें सफलता प्राप्त की थी। आपकी आज्ञासे इन्द्र त्रिलोकीके राज्यपर प्रतिष्ठित हैं, प्रभूत सम्पत्तियोंके आधिपत्यका सुअवसर इन्हें प्राप्त हुआ है और देवसमाज इनकी पूजामें तत्पर रहता है। अग्नि आपकी कृपासे जलानेकी शक्ति पाकर जठराग्नि-भेदसे देवताओं, असुरों और मानवोंको तृप्त करते हैं। पितरोंके अधिष्ठाता, सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी तथा कर्मोंका फल देनेकी व्यवस्था करनेवाले जो धर्मराज हैं, उनको भी आपने ही नियुक्त किया है। नैर्ऋत आपके बनानेपर ही राक्षसोंके स्वामी बने हैं। जिनमें अखिल विघ्नोंको दूर करनेकी शक्ति है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंके कर्मको देखते रहते हैं, वे यज्ञपुरुष भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आपकी आज्ञाका बल पाकर ही जलके स्वामी वरुण जलचर प्राणियोंके अध्यक्ष तथा लोकपालोंके पदपर प्रतिष्ठित हैं। गन्ध प्रवाहित करनेवाले वायु समस्त प्राणियोंके प्राण कहलाते हैं। इन्हें लोकपाल और जगद्गुरु कहलानेकी योग्यता प्राप्त है। प्रभो ! यह सब आपकी ही प्रभुता है। यक्षों और किन्नरोंके प्राणाधार कुबेर आपकी आज्ञाके अधीन रहनेके कारण ही सम्पूर्ण लोकपालोंमें सम्मान पाते हैं। ईशान सम्पूर्ण रुद्रोंमें प्रधान माने जाते हैं, क्योंकि शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंका भी अन्त उनपर निर्भर है। अखिल देवताओंके रक्षक उन ईशानको तीनों लोकोंके स्वामी प्रणाम करते हैं। यह आपकी ही विभूति है। जगत्पर शासन करनेवाले भगवन् ! हम आपको प्रणाम करते हैं।

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने जब आदिपुरुष भगवान् श्रीहरिकी स्तुति की तब वे लीला प्रदर्शित करते हुए उनपर अनुग्रह करनेके लिये तत्पर हो गये। वहीं महान् दैत्य हिरण्याक्ष आ गया। उस भयंकर दानवने मार्ग रोक रखा था। भगवान् श्रीहरिने गदासे मारकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। उसके रक्तसे उन आदिपुरुषका दिव्य विग्रह भींग गया। उन्होंने दाँतके सहारे पृथ्वीको उठाया और खेल-ही-खेलमें उसे आश्चर्यजनकरूपसे जलके ऊपर टिका दिया। तत्पश्चात् वे जगत्प्रभु अपने परम धामको पधार गये। भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके लिये इस प्रकारकी लीला की थी। जो पुरुष इस उत्तम चरित्रका अध्ययन एवं श्रवण करेगा, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे। साथ ही वह विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बन जायगा।

(अध्याय १-२)

☆

## स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका संक्षिप्त परिचय और सातों द्वीपोंके उत्थानका उपक्रम

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! जब भगवान् श्रीहरि इस प्रकार पृथ्वीको यथास्थान स्थापित करके वैकुण्ठ लौट गये तब ब्रह्माजीने अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुसे कहा—'महाबाहो ! तुम परम तेजस्वी पुरुष हो। अब तुम इस स्थलमय स्थानपर विराजमान होकर समुचित-रूपसे प्रजाकी सृष्टि करो। विभो ! सर्वप्रथम देश एवं कालके विभागके अनुसार यज्ञमें काम

आनेवाले उत्तम तथा मध्यम—सभी पदार्थोंको एकत्रित करके उनके द्वारा यज्ञके स्वामी परम पुरुषकी उपासना करो। शास्त्रोक्त धर्मका आचरण करो। वर्णाश्रमकी व्यवस्था मानना परम आवश्यक है। यदि इस कार्यक्रमसे चलोगे तो प्रजाकी वृद्धि अवश्य होगी। तुम अपने गुण, कीर्ति एवं कान्तिके अनुरूप पुत्रोंको उत्पन्न करना। वे पुत्र विद्वान्, विनयशील, सदाचारी और उदार चित्तके हों। कन्याओंका विवाह सावधानीके साथ गुणी और यशस्वी पुरुषोंके साथ करना। प्रधान पुरुष भगवान् श्रीहरिमें मनको सम्यक् प्रकारसे लगाये रखना। भक्ति-पूर्वक साधन करते हुए भगवान्की उपासनामें लगे रहना। यों करनेसे तुम उस अभीष्ट स्थानको पा जाओगे, जिसके लिये योगीगण प्रार्थना करते हैं।'

नारद! प्रजापति ब्रह्माजीने अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको यों उपदेश देकर उन्हें प्रजाकी सृष्टि करनेके कार्यमें नियुक्त कर दिया। तदनन्तर वे अपने धामको चले गये। 'पुत्र! तुम प्रजाकी सृष्टि करो'—पिताकी यह आज्ञा महाराज स्वायम्भुव मनुके हृदयमें स्थान पा चुकी थी। अतः वे इस कार्यमें संलग्न हो गये। उनसे दो परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए—प्रियव्रत और उत्तानपाद। उनके तीन कन्याएँ हुईं। पहली पुत्रीका नाम आकूति था, दूसरी पुत्री देवहूति नामसे प्रसिद्ध हुई और तीसरी जगत्को पवित्र बनानेवाली कन्याका नाम मनुने प्रसूति रखा था। स्वायम्भुव मनुने अपनी प्रथम कन्या आकूतिका रुचिके साथ, द्वितीय कन्या देवहूतिका कर्दमके साथ तथा तृतीय पुत्री प्रसूतिका दक्ष प्रजापतिके साथ विवाह कर दिया, जिनकी सारी प्रजा जगत्में विख्यात है।

रुचिके यहाँ आकूतिके गर्भसे आदिपुरुष भगवान् प्रकट हुए। उनका नाम 'यज्ञपुरुष' हुआ। कर्दमजीके सहयोगसे देवहूति भगवान् कपिलकी माता हुईं। ये महाभाग कपिलजी सांख्यशास्त्रके आचार्य हैं। अखिल जगत् इन्हें जानता है। दक्षसे प्रसूतिके द्वारा बहुत-सी कन्यारूपी संतान हुईं। उन्हीं कन्याओंकी देवता, मानव और पशु आदि संतान जगत्में प्रसिद्ध हैं। यों स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् यज्ञपुरुषका अवतार हुआ। उस समय उन्होंने सामयिक देवताओंसे सहयोग प्राप्त करके अपने पिताजीको राक्षसोंसे बचाया था। महान् योगी भगवान् कपिलने भी अपने आश्रमपर रहकर माता देवहूतिको परम ज्ञानका उपदेश दिया। उनके इस उपदेशके सामने सारी विद्याएँ शिथिल पड़ गयीं। उन्होंने ध्यानयोग तथा अध्यात्मज्ञानके सिद्धान्तका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया। सम्पूर्ण अज्ञानको दूर करनेवाला उनका वह शास्त्र कपिलशास्त्रके नामसे विख्यात है। कपिलजी महान् योगी एवं सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक, बड़े उदार स्वभावके हैं। वे माताको उपदेश देकर पुलह मुनिके आश्रमपर चले गये। इस समय भी वे वहीं विराजमान हैं। जिनके नामका स्मरण करनेमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन समस्त वरप्रदाता योगाचार्य महाभाग कपिलको मैं प्रणाम करता हूँ।

नारद! इस प्रकार स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका उत्तम चरित्र कह दिया। यह पावन प्रसंग अपने श्रोताओं और वक्ताओंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है। अब स्वायम्भुव मनुके पुत्रोंकी पवित्र वंशावलीका वर्णन

करूँगा। मनुपुत्रोंने द्वीप, वर्ष और समुद्र आदिकी जो व्यवस्था की है, वह प्रसंग भी व्यवहारकी जानकारीके लिये अथवा सम्पूर्ण प्राणियोंके सुखार्थ कहा जायगा।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! स्वायम्भुव मनुके बड़े पुत्रका नाम प्रियव्रत था। वे सदा पिताकी सेवामें लगे रहते थे। सत्यधर्म-पर उनकी बड़ी आस्था थी। विश्वकर्मा नामक प्रजापतिकी सुन्दरी कन्या बर्हिष्मतीके साथ प्रियव्रतका विवाह हुआ था। उस कन्याका शील-स्वभाव बिलकुल उन्हींके समान था। पुण्यात्मा प्रियव्रतने बर्हिष्मतीके गर्भसे दस गुणवान् पुत्र उत्पन्न किये। सबसे पीछे एक कन्याका जन्म हुआ, जो ऊर्जस्वती नामसे विख्यात हुई। आग्नीध्र, इध्मजिह्व, तीसरे यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्र, धृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, अग्निहोत्र और कवि—इन नामोंसे ये दसों पुत्र अग्नि कहलाते हैं। इन दस पुत्रोंमेंसे कवि, सवन और महावीर— इन तीन पुत्रोंने तो वैराग्यमार्गका अनुसरण किया। ये तीनों आत्मविद्याके पारगामी विद्वान् हुए। इन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर रखा था। ये निःस्पृह होकर परमहंसाश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे।

प्रियव्रतकी एक दूसरी भार्या थी। उससे उन्होंने तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया। वे पुत्र उत्तम, तापस और रैवत नामसे प्रसिद्ध हुए। ये महान् प्रतापी पुत्र एक-एक मन्वन्तरके अधिष्ठाता बनाये गये। अखिल भूमण्डलपर महाराज प्रियव्रतका शासन विद्यमान था। इन इन्द्रिय-विजयी नरेशने बहुत अधिक समयतक पृथ्वीपर राज्य किया। एक समयकी बात है—जब सूर्य पृथ्वीके प्रथम भागमें उगे तब प्रकाश था और जब द्वितीय भागमें चले गये तब अन्धकार हो गया। इस प्रकारकी अड़चनको देखते ही प्रियव्रतके मनमें विचार उत्पन्न हो गया। उन्होंने सोचा—'मेरे शासनकालमें पृथ्वीपर अन्धकार नहीं ठहरना चाहिये। मैं तपस्याके बलसे इसका निवारण कर दूँगा।' यों निश्चय करके स्वायम्भुव मनुके पुत्र महाराज प्रियव्रतने सूर्यके समान तेजस्वी रथपर बैठकर प्रकाश फैलाते हुए पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणाएँ कीं। प्रियव्रतके चक्कर लगाते समय उनके रथके पहियोंसे जमीनमें जो गड्ढे हो गये थे, वे ही जगत्के कल्याणार्थ सात समुद्र बन गये। उस समय परिक्रमाके बीचकी जो पृथ्वी थी, वही सात द्वीपोंके रूपमें परिणत हो गयी और रथके पहियोंसे छिदकर जो समुद्र बने थे, वे उनकी परिखाका काम देने लगे।

तभीसे पृथ्वीपर सात द्वीपोंकी प्रसिद्धि हुई। उन द्वीपोंके नाम हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर। उन द्वीपोंका परिमाण उत्तर-उत्तरके क्रमसे दुगुना है। उनके बाहर-बाहर चारों ओर विभागके क्रमसे समुद्र हैं। वे समुद्र क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद और शुद्धोद नामसे विख्यात हैं। तभीसे भूमण्डलपर इन सातों समुद्रोंकी प्रसिद्धि हुई है। क्षार-समुद्रसे घिरा हुआ जो पहला द्वीप है, उसे जम्बूद्वीप कहते हैं। महाराज प्रियव्रतने अपने पुत्र आग्नीध्रको इस द्वीपका राजा बना दिया। दूसरे द्वीपका नाम प्लक्षद्वीप है। इस द्वीपको ईखके रससे भरे हुए समुद्रने घेर रखा है। प्रियव्रत-कुमार इध्मजिह्व यहाँके शासक हुए। शाल्मलिद्वीप मदिराके समुद्रसे घिरा हुआ है। प्रियव्रतने अपने पुत्र यज्ञबाहुको यहाँका अध्यक्ष बना दिया। कुशद्वीप बड़ा ही

रमणीय है। इसके बाहरी हिस्से घृतके समुद्रसे शोभा पा रहे हैं। प्रियव्रतनन्दन हिरण्यरेताने इस द्वीपका प्रबन्ध अपने हाथमें लिया। पाँचवेंको क्रौञ्चद्वीप कहते हैं। इसके चारों ओर क्षीर समुद्र है। प्रियव्रतके महाबली पुत्र धृतपृष्ठ इस द्वीपके राजा हुए। शाकद्वीप सभी द्वीपोंसे बढ़कर सुन्दर है। दधिमण्डोद समुद्रने इसे घेर रखा है। प्रियव्रतके सुप्रसिद्ध पुत्र मेधातिथि इस द्वीपके नायक बने। पुष्करद्वीप मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। अपने पिता प्रियव्रतकी अनुमति पाकर वीतिहोत्रने यहाँके शासनकी बागडोर हाथमें ली। महाराज प्रियव्रतने अपनी कन्या ऊर्जस्वतीका विवाह शुक्राचार्यके साथ कर दिया। शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी इस ऊर्जस्वतीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी—यह सभी जानते हैं।

इस प्रकार महाराज प्रियव्रतने अपने पुत्रोंको सातों द्वीप बाँट दिये और वे स्वयं योगमार्गका आश्रय लेकर संन्यासी बन गये।

(अध्याय ३-४)

☆

## भूमण्डलके विस्तारका और आम्र, जाम्बू, कदम्ब एवं वटवृक्षके फलोंके रससे प्रकट हुई नदियोंका वर्णन तथा गङ्गाजीके अवतरणका वृत्तान्त

भगवान् नारायण कहते हैं—देवर्षि नारद ! अब द्वीपोंके वर्ष-विभाजनका प्रसंग विस्तार-पूर्वक सुनो। पहले लाख योजनके परिमाणमें जम्बूद्वीपका निर्माण हुआ है। इस विशाल द्वीपकी आकृति इस प्रकार गोल है, जैसे कमल-बीजका कोश हो। इस द्वीपमें हजार-हजार योजनतक फैले हुए नौ वर्ष हैं। चारों ओरसे पर्वतोंने इन्हें घेर रखा है। आठ बड़े-बड़े पर्वतोंसे ये वर्ष विभाजित हैं। दो वर्षोंको धनुषाकार समझना चाहिये, जो दक्षिणसे उत्तर-तक फैले हैं। वहीं चार और विशाल वर्ष हैं। एक इलावृत नामका वर्ष है, जिसके चारों कोने बराबर-बराबर हैं। इस इलावृतको मध्यवर्ष कहते हैं। यह जम्बूद्वीपकी नाभिके स्थानपर प्रतिष्ठित है। वहीं लाख योजन ऊँचा यह सुमेरु पर्वत है। यह पर्वत ही गोलाकार पृथ्वीरूपी कमलका बीजकोश है। इसकी चोटी बत्तीस योजनके विस्तारमें है। इस पर्वतकी जड़ सोलह हजार योजनकी दूरीमें फैली है और इतने ही योजनतक नीचे जमीनमें धँसी है। इलावृतवर्षके उत्तर सीमाके रूपमें तीन पर्वत कहे गये हैं। उन पर्वतोंके नाम हैं—नील, श्वेत और शृङ्गवान्। दूसरा सुवर्णमय वर्ष रम्यकवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। तीसरा कुरुवर्ष है। उक्त पर्वत इन सभी वर्षोंकी सीमा व्यक्त करते हैं। ये वर्ष आगेकी ओर फैले हुए हैं। दोनों ओरकी सीमा क्षार-समुद्र है। उसकी चौड़ाई दो हजार योजनसे अधिक है। क्रमशः एक-से-एक पूर्वकी ओर बढ़ते गये हैं। उत्तरमें एक-एक दशांशका अन्तर होता गया है और चौड़ाईमें क्रमशः कमी होती गयी है। ये वर्ष बहुत-सी नदियों और समुद्रोंसे सम्पन्न हैं। इलावृतवर्षके दक्षिण ओर निषध, हेमकूट और हिमालय नामक बहुत लम्बे-चौड़े तीन विशाल पर्वत शोभा पाते हैं। कहा जाता है कि ये पर्वत दस हजार योजन ऊँचे हैं। हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष—इन तीन वर्षोंका विभागानुसार यथार्थ वर्णन मिलता है। निषध, हेमकूट और हिमालय—ये तीन पर्वत इनकी

सीमा हैं। इलावृतके पश्चिमभागमें माल्यवान् नामका पर्वत है। पूर्वकी ओर श्रीमान् गन्धमादन पर्वत सुशोभित है। ये दोनों विशाल पर्वत नीलगिरिसे लेकर निषधपर्वततक दो हजार योजनकी दूरीमें फैले हुए हैं। इनकी चौड़ाई भी पर्याप्त है। ये दोनों पर्वत वर्षकी सीमा निश्चित करते हैं। केतुमाल और भद्राश्ववर्षकी सीमा इन माल्यवान् एवं गन्धमादन पर्वतपर निर्भर है।

मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चार पर्वत सुमेरु गिरिके पायेके रूपमें हैं। दस हजार योजन इनका विस्तार है। सुमेरु गिरिकी चारों दिशाओंमें उसे रोककर ये विराजमान हैं। ये चार पर्वत सुमेरु गिरिके लिये मानो खम्भे हैं। इन चारों पर्वतोंपर चार वृक्ष हैं—आम, जामुन, कदम्ब और बड़। ये चारों वृक्ष, जो ग्यारह सौ योजन ऊँचे हैं, ध्वजाका काम देते हैं। चारों वृक्ष और चारों पर्वत समान विस्तारमें फैले हुए हैं। वह स्थान चार अत्यन्त गहरे तालाबोंसे सुशोभित है। वे तालाब दूध, मधु, ईखके रस और स्वादिष्ट जलसे भरे हैं। उस जलसे स्नान, आचमन आदि करनेवाले देवताओंको यौगिक सम्पत्ति प्राप्त होती है। वहीं स्त्रियोंको परम सुखी बनानेवाले चार दिव्य उपवन हैं, उन उपवनोंके नाम हैं—नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र। उनमें अङ्गनाओंसहित देवताओंका निवास होता है। ऐसे महाभाग देवता परम स्वतन्त्र होकर सुखपूर्वक वहाँ यथेच्छ विहार करते हैं।

मन्दराचलके वक्षःस्थलपर एक दिव्य आमका वृक्ष है। उस वृक्षकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है। उसके अमृतमय फल त्रिकूट पर्वतके समान विशाल, अत्यन्त स्वादिष्ट और बड़े कोमल हैं। वे फल वृक्षके ऊँचे सिरेसे गिरते ही बिखर जाते हैं। उनका रस बह चलता है। वह रस ऐसा लाल है, मानो अरुण समुद्रका जल हो। उसी रससे अरुणोदा नामकी एक नदी बह रही है। उसका जल बड़ा ही सुरम्य है। महाराज! उसी पर्वतपर भगवती श्रीअरुणा विराजमान हैं। प्रधान-प्रधान देवता और दैत्य उनकी उपासना करते हैं। सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे देवी सदा पापोंके संहारमें लगी रहती हैं। अनेक प्रकारके उपहार एवं बलिसे प्रसन्न होकर वे सारा कल्मष दूर करके भक्तोंको निर्भय बना देती हैं। उनकी कृपादृष्टिसे साधक कुशलसम्पन्न एवं नीरोग बन जाते हैं। आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी, दुष्टनाशकरी और कान्तिदायिनी—इन नामोंसे वे देवी भूमण्डलपर विख्यात हैं। उन्हीं देवीकी पूजाके प्रभावसे जगत्में सुवर्ण उत्पन्न हुआ है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! मैंने जिस नदीका वर्णन किया है, वह अरुणोदा मन्दर पर्वतसे निकलकर इलावृतवर्षके पूर्वभागमें बहती है। भगवती जगदम्बाकी अनुचरी स्त्रियाँ तथा यक्षों एवं गन्धर्वोंकी पत्नियाँ अरुणोदाके जलमें स्नान करती हैं। स्नान करते समय उनके शरीरकी दिव्य गन्धसे जल सुवासित हो जाता है।

इसी प्रकार जम्बूफल मेरु-मन्दरके वक्षःस्थलपर उगे ऊँचे वृक्षसे गिरे ये फल हाथीके शरीरके समान विशाल हैं। गिरते ही बिखर गये और इनसे रस बह चला। उसी रससे जम्बू नामकी नदी बनकर भूमण्डलपर उतर आयी। यह नदी इलावृतवर्षसे दक्षिणकी ओर बहती है। जम्बू-फलके स्वादसे संतुष्ट होनेवाली वहाँकी देवीको 'जम्ब्वादिनी' कहते हैं। वहाँ रहनेवाले

देवता, नाग, ऋषि और राक्षस—सभी प्राणी इन देवीकी उपासना करते हैं। समस्त प्राणियोंपर दया करना इन आदरणीया भगवतीका स्वभाव ही है। इन्हें स्मरण करनेवाले पापी भी शुद्ध हो जाते हैं और रोगियोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। इनका कीर्तन करनेपर विघ्न नहीं रह सकते। कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, कठोरविग्रहा, धन्या, नाकिमान्या और गभस्तिनी—देवीके इन नामोंका उच्चारण करके मानव निरन्तर जप करे। जम्बू नदीके दोनों तटकी जो मिट्टी है, वह जम्बूके रससे सन जाती है। फिर सूर्य और पवन उसे सुखा देते हैं। उसीसे विद्याधरियों और देवाङ्गनाओंके विविध विशाल भूषण बनते हैं। इसीको जाम्बूनद सुवर्ण कहा जाता है। इसी सुवर्णको स्त्रियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले विबुधगण मुकुट, करधनी और केयूर आदिके रूपमें परिणत करते हैं।

कदम्बका महान् वृक्ष सुपार्श्व पर्वतपर बताया गया है। उस वृक्षमें पाँच खोढ़र अर्थात् पोली जगह थी। उनसे पाँच धाराएँ निकलीं। ये धाराएँ सुपार्श्वगिरिके शिखरसे गिरकर इस भूमण्डलपर आयी हैं। इन पाँचोंका नाम मधुधारा है। इलावृतवर्षसे पश्चिम ये प्रवाहित होती हैं। भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये धारेश्वरी नामकी महादेवी वहाँ विराजती हैं। उस स्थानपर शोभा पानेवाली देवीके नाम हैं—देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महानना, कर्मफलदा, कान्तारग्रहणेश्वरी, करालदेहा, कालाङ्गी और कामकोटिप्रवर्तिनी। इन नामोंसे इन सर्वदेवेश्वरी भगवती जगदम्बाकी पूजा करनी चाहिये।

इसी प्रकार कुमुद पर्वतके ऊपर जो शतबल नामसे प्रसिद्ध वटका वृक्ष है, उसकी शाखाओंसे नीचे लटकते हुए बहुत-से नद धरातलपर आये हैं। कुमुदगिरिके शिखरसे ये नीचे गिरे हैं, दूध, दही, घृत, मधु, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन और आभरण आदि सभी वस्तुओंसे ये परिपूर्ण हैं। ये कामदुघा हैं—अर्थात् सभी अभीष्ट पदार्थ देनेमें इनकी पूर्ण योग्यता है। ये नद इलावृतवर्षसे उत्तरभागमें होकर सब ओरकी भूमिको प्लावित करते हैं। इन्हींके तटपर भगवती मीनाक्षीका मन्दिर है। देवता और दानव—सभी इनकी उपासना करते हैं। स्वर्गवासी देवताओंको फल प्रदान करनेमें तत्पर इन देवीके नाम इस प्रकार हैं—नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलालकयुता, नाकिनी, देवसङ्घा, फलदा, वरदा, अतिमान्या, अतिपूज्या, मत्तमातङ्गगामिनी, मदनोन्मादिनी, मानप्रिया, मानप्रियान्तरा, मारवेगधरा, मारपूजिता, मारमादिनी, मयूरवरशोभाढ्या और शिखिवाहनगर्भभू। इन नामोंसे युक्त पदोंद्वारा देवीकी वन्दना करनी चाहिये। ये मीनलोचना भी कहलाती हैं। परब्रह्मसे सम्पर्क रखनेवाली इन भगवतीका जो जप एवं ध्यान करते हैं, उन्हें सम्मान प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है।

नारद! उपर्युक्त नदोंका जल पीनेसे रग-रगमें चेतनता आ जाती है। इसे पीनेवाले प्राणियोंके पास कभी भी बुढ़ापेके चिह्न नहीं आ सकते। श्रम, पसीना, दुर्गन्धयुक्त होना, जरा, व्याधि, मृत्यु, शीत, उष्ण एवं वातसे मुखपर उदासी छा जाना तथा अनेक प्रकारकी आपत्ति—ये कोई भी विषम परिस्थिति सामने नहीं आ सकती। इस जलके प्रभावसे प्राणी आजीवन सुखी रह सकता है।

अब सुमेरुगिरिके अवान्तर पर्वतोंका वर्णन करूँगा। इस सुमेरु पर्वतको स्वर्णमय पर्वत कहते हैं। इससे पृथक् बीस पर्वतोंका वर्णन आता है। वे पर्वत कर्णिकाके समान हैं। उन सबका मूल सुमेरु पर्वत है। अन्य पर्वतोंने सुमेरुको चारों ओरसे घेर रखा है। उन बीस पर्वतोंके नाम हैं—शृण्वत, कुरङ्ग, कुरग, कुशुम्भ, विकङ्कत, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शितीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, चारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सुमेरु-गिरिके पूर्व दो पर्वत हैं। इनकी लम्बाई अठारह हजार योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है। इन श्रेष्ठ पर्वतोंके नाम हैं—जठर और देवकूट। दो पर्वत सुमेरुगिरिके पश्चिममें हैं। एकका नाम पवमान है और दूसरा पारियात्र कहलाता है। ये दोनों पर्वत जठर और देवकूटके समान ही लम्बे-चौड़े हैं। सुमेरुगिरिके दक्षिण कैलास और करवीर नामसे विख्यात दो पर्वत हैं। इनका भी विस्तार पहलेके समान ही है। ऐसे ही सुमेरुके उत्तर त्रिशङ्ग और मकर नामवाले दो पहाड़ हैं। इन आठ सुप्रसिद्ध पर्वतोंसे सुमेरुगिरि घिरा हुआ है। सुमेरुगिरिको काञ्चनगिरि भी कहते हैं। सूर्यके समान यह प्रकाशित होता रहता है। इस सुमेरुगिरिके शिखरपर पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी है। शिखरके ठीक मध्यभागमें इस पुरीकी प्रतिष्ठा है। इसका दीर्घ विस्तार दस हजार योजन है। स्वर्णमयी इस पुरीके चारों कोने बराबर हैं। तत्त्वके पूर्ण ज्ञाता विद्वान् एवं महात्मा पुरुष इसके विषयमें कहते हैं कि इसी पुरीको लक्ष्य करके आठ लोकपालोंकी भिन्न-भिन्न आठ पुरियाँ और हैं। ये प्रसिद्ध पुरियाँ भी स्वर्णमयी हैं। जिस दिशामें जिसे रहना चाहिये, वैसे ही इनकी प्रतिष्ठा हुई है। इनका रूप भी लोकपालोंकी योग्यताके अनुसार ही है। इनकी लम्बाई और चौड़ाई ढाई हजार योजन है। यों सुमेरुगिरिपर नौ पुरियाँ हुईं। इनके नाम हैं—मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णाङ्गना, श्रद्धावती, गन्धवती, महोदया और यशोवती। ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि एवं यम आदि लोकपाल यथाक्रम इन पुरियोंमें विराजते हैं।

भगवान् विष्णुने राजा बलिके यज्ञके समय वामन अवतार धारण किया था। उनके बायें पैरके अँगूठेसे ब्रह्माण्डमें छेद हो गया। नारद ! वह छिद्र ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुआ था। उसके मध्यभागसे गङ्गा प्रकट हुई। वह स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयी। इस गङ्गामें अखिल जगत्के कल्मषको दूर करनेकी पूर्ण योग्यता है। यह पापका उच्छेद कर देनेवाले जलसे परिपूर्ण है। समस्त संसारमें यह गङ्गा साक्षात् भगवत्पदी कहलाती है। यह सम्पूर्ण दिव्य नदियोंकी स्वामिनी है। बहुत समयके पश्चात् अर्थात् हजार युग बीत जानेपर यह वहाँसे चलकर स्वर्गके शिखरपर—जिसे त्रिलोकीमें विष्णुपदी कहते हैं—आ गयी। यह वह स्थान है, जहाँ उत्तानपाद-कुमार परम पुण्यात्मा पुरुष ध्रुव रहते हैं। श्रीहरिके दोनों चरणकमलोंके परमपावन परागको धारण किये रहना उनका स्वभाव ही बन गया है। अब भी राजर्षि ध्रुव उसी अविचल स्थानपर प्रतिष्ठित हैं। वहीं उदार-स्वभाव सप्तर्षि भी रहते हैं। ये सप्तर्षि गङ्गाके प्रभावसे पूर्ण परिचित हैं। अखिल जगत्के हितकी कामना इनके भीतर भरी रहती है। अतः ये गङ्गाकी प्रदक्षिणा किया करते हैं। ये जानते हैं कि यह गङ्गा अत्यन्त सिद्धिस्वरूपिणी है। इसकी उपासना करनेवाले पुरुष सिद्धि प्राप्त कर लेते

हैं। इसलिये जटा-जूट रखकर वे प्रतिदिन इस गङ्गामें स्नान करते हैं।

तदनन्तर वैकुण्ठसे चलकर असंख्य विमानोंसे भरे हुए देवयानपर होती हुई गङ्गा चन्द्रमण्डलमें पहुँची। वहाँसे ब्रह्मलोकमें आ गयी। नारद ! ब्रह्मलोकमें आनेपर गङ्गाके चार भाग हो गये और चार नामोंसे प्रसिद्ध होकर वह चार दिशाओंमें बह चली। बहते-बहते जाकर समुद्रमें मिल जाती है। गङ्गाके चार नाम हैं—सीता, अलकनन्दा, चक्षुष् और भद्रा। सम्पूर्ण पापोंको शमन करनेवाली सीता नामसे प्रसिद्ध गङ्गा ब्रह्माण्डसे उतरकर केसर नामक पर्वतोंके शिखरपर आयी। वहाँसे गन्धमादन पर्वतके शिखरपर गिरी। उसके बीचसे निकलकर भद्राश्ववर्षकी पूर्व-दिशामें आ गयी। इसके बाद देवताओंसे सुपूजित होकर क्षीरसागरमें मिल गयी। तत्पश्चात् चक्षुष् नामसे प्रसिद्ध दूसरी गङ्गा माल्यवान् पर्वतके शिखरसे निकली। अत्यन्त वेगके साथ बहकर वह केतुमालवर्षमें आ गयी। वहाँसे इसका प्रवाह पश्चिम-दिशामें आ गया। बादमें जाकर वह समुद्रमें मिल गयी। नारद ! तीसरी धाराको पुण्यमयी अलकनन्दा कहते हैं। यह पवित्र नदी ब्रह्माण्डके दक्षिणसे होती हुई हेमकूट नामक प्रधान पर्वतपर पहुँची। इसने बीचमें बहुत-से वनों और पहाड़ोंको आप्लावित किया। जब वहाँसे निकली, तब अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई इस भारतवर्षमें आ गयी। इसके बाद इस तीसरी गङ्गा अलकनन्दाका दक्षिणसागरमें संगम हुआ है। तत्पश्चात् चौथी धारा शृङ्गवान् पर्वतसे निकली। इसका नाम भद्रा है। तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली यह गङ्गा वहाँसे बहती हुई समुद्रमें पहुँची है। इसके प्रवाहसे बीचके उत्तर कुरुप्रदेश परम तृप्त हुए हैं।

नारद ! अन्य भी बहुत-से समुद्र और नदियाँ प्रत्येक वर्षमें हैं। प्रायः इन सबके उद्गम-स्थान मेरु और मन्दर पर्वत हैं। इन नौ वर्षोंमें भारतवर्षको 'कर्मक्षेत्र' कहा जाता है। अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्गके फलको प्रदान करते हैं। नारद ! स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंका जब पुण्य समाप्त हो जाता है, तब वे भोग भोगनेके स्थानमें आते हैं। उनकी आयु दस हजार वर्ष होती है। उनके सभी अङ्ग वज्रके समान कठोर होते हैं। उनमें एक हजार हाथियोंका बल होता है। वे क्रीडाके बड़े प्रेमी होते हैं। उन्हें सभी सुख सुलभ रहते हैं। वहाँ आयु समाप्त होनेके एक वर्ष पूर्वतक स्त्रियोंमें गर्भ धारण करनेकी क्षमता बनी रहती है और सदा ही त्रेतायुगके समान समय वर्तमान रहता है।

(अध्याय ५—७)

☆

## इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी, भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाके द्वारा हयग्रीवरूपकी, हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी, केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी और रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद ! जम्बूद्वीपमें इलावृत आदि नौ वर्ष हैं। सभी वर्षोंमें ब्रह्मा प्रभृति भिन्न-भिन्न देवताओंका निवास है। ये देवता जप, ध्यान और समाधिमें लगे रहकर

पहले बताये हुए स्तोत्रोंके द्वारा श्रीदेवीकी उपासना करते हैं। उन वर्षोंमें कतार-के-कतार वन हैं, जो सभी ऋतुओंमें सुगन्धित पुष्पों, फलों एवं पल्लवोंसे सुशोभित रहते हैं। उन वर्षोंमें बहुत-से जंगल, पर्वत और कन्दराएँ हैं। गुफाओंमें स्वच्छ और प्रभूत जल भरा रहता है। उन नवों वर्षोंमें आदिपुरुष भगवान् नारायण सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे भगवती श्रीदेवीकी उपासना करते हुए विराजमान रहते हैं। इन्हें सबसे पूजा पानेका सुअवसर प्राप्त रहता है। आगे भी पूजा-पद्धति चालू रहे—एतदर्थ अपनी भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ बनाकर रहना इनका स्वभाव है।

इलावृतवर्षमें भगवान् श्रीहरि 'रुद्र' रूपसे विराजते हैं। ब्रह्माके नेत्रसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है। इनकी प्रेयसी प्रिया सदा साथ रहती हैं। उस क्षेत्रमें कोई दूसरा पुरुष नहीं जा सकता और न घूम ही सकता है। यदि कोई पुरुष वहाँ चला भी जाय तो भवानीके शापसे वह तुरंत स्त्रीके रूपमें परिणत हो जाता है। वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न रहनेवाली असंख्य स्त्रियाँ रहती हैं। इन स्त्रियोंसे घिरे रहकर भगवान् रुद्र महाभाग संकर्षणकी उपासना करते हैं। इन संकर्षणको भगवान् श्रीहरिकी तामस प्रकृतिवाली चौथी मूर्ति कहा जाता है। केवल अखिल प्राणियोंके कल्याणार्थ रुद्रद्वारा इन संकर्षणकी पूजा होती है। ये पूजक रुद्रदेव अजन्मा हैं। इनका चित्त सदा शान्त रहता है।

भगवान् शंकर कहते हैं—'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नमः' ॐ जिनसे सभी गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, उन अनन्त और ॐकारस्वरूप परमपुरुष श्रीभगवान्‌को नमस्कार है। भजनीय प्रभो ! आपके चरण-कमल भक्तोंको आश्रय देनेवाले

हैं तथा आप स्वयं ऐश्वर्योंके परम आश्रय हैं। भक्तोंके सामने आप अपना भूतभावनस्वरूप पूर्णतया प्रकट कर देते हैं तथा उन्हें संसार-बन्धनसे भी मुक्त कर देते हैं; किंतु अभक्तोंको उस बन्धनमें डालते रहते हैं। आप ही सर्वेश्वर हैं। मैं आपका भजन करता हूँ। प्रभो ! हमलोग क्रोधके आवेगको नहीं जीत सके हैं तथा हमारी दृष्टि तत्काल पापसे लिप्त हो जाती है; परंतु आप तो संसारका नियमन करनेके लिये निरन्तर साक्षीरूपसे उसके सारे व्यापारोंको देखते रहते हैं। तथापि हमारी तरह आपकी दृष्टिपर उन मायिक विषयों तथा चित्तकी वृत्तियोंका नाममात्रको भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी स्थितिमें अपने मनको वशमें करनेकी इच्छा-वाला कौन पुरुष आपका आदर न करेगा ? वेदमन्त्र आपको जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं; परंतु आप स्वयं इन तीनों विकारोंसे रहित हैं; इसलिये आपको अनन्त कहते हैं। आपके सहस्र मस्तकोंपर यह

भूमण्डल सरसोंके दानेके समान रखा हुआ है। आपको तो यह भी नहीं मालूम होता कि वह कहाँ स्थित है। जिनसे उत्पन्न हुआ मैं अहंकार-रूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय और भूतोंकी रचना करता हूँ, वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत्तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं। महात्मन्! महत्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रियाभिमानी देवता, इन्द्रियाँ और पञ्चभूत आदि हम सभी डोरीमें बँधे हुए पक्षीके सदृश आपकी क्रिया-शक्तिके वशीभूत रहकर आपकी ही कृपासे इस जगत्की रचना करते हैं। सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई तथा कर्म-बन्धनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान भी लेता है; किंतु उससे मुक्त होनेका उपाय उसे सुगमतासे नहीं मालूम होता। इस जगत्की उत्पत्ति और प्रलय भी आपके ही रूप हैं। ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार महाभाग रुद्र भगवान् संकर्षणकी इलावृतवर्षमें उपासना करते हैं।

ऐसे ही भद्राश्ववर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा और उनके कुलके प्रधान-प्रधान सेवक भगवान् वासुदेवकी 'हयग्रीव'-संज्ञक सुप्रसिद्ध मूर्तिको अत्यन्त समाधिनिष्ठाके द्वारा हृदयमें धारण करके उनकी स्तुति करते हैं।

सेवकोंसहित भद्रश्रवा कहते हैं—'ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः'। चित्तको विशुद्ध करनेवाले ॐकारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है। अहो! भगवान्की लीला बड़ी विचित्र है, जिसके कारण यह जीव सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको देखकर भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका सेवन करनेके लिये पापमय विचारोंकी उधेड़-बुनमें लगा हुआ

अपने ही हाथों अपने पुत्र और पितामहादिकी लाशको जलाकर भी स्वयं जीते रहनेकी इच्छा करता है। विद्वान् लोग जगत्को नश्वर बताते हैं और सूक्ष्मदर्शी आत्मज्ञानी ऐसा ही देखते भी हैं; तो भी जन्मरहित प्रभो! आपकी मायासे लोग मोहित हो जाते हैं। आप अनादि हैं तथा आपके कृत्य बड़े विस्मयजनक हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। परमात्मन्! आप अकर्ता और मायाके आवरणसे रहित हैं तो भी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये आपके ही कर्म माने गये हैं। सो ठीक ही है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि सर्वात्मरूपसे इस कार्य-कारणभावसे आप सर्वथा अतीत हैं। आपका श्रीविग्रह मनुष्य और घोड़ेका संयुक्त रूप है। प्रलयकालमें जब तमःप्रधान दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे, तब ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर आपने उन्हें रसातलसे लाकर दिया। ऐसे अमोघ लीला करनेवाले सत्यसंकल्प आपको हम नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार भगवान् हयग्रीवकी स्तुति करते हुए भद्रश्रवस् नामवाले ये महात्मागण भगवान् श्रीहरिके गुणोंका वर्णन करते हैं। जो पुरुष इनके इस पावन चरित्रको पढ़ता या सुनता है, वह पापरूपी केंचुलसे मुक्त होकर देवीके दिव्यधाममें चला जाता है।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद ! हरिवर्ष खण्डमें भगवान् 'नृसिंह' रूपसे रहते हैं। पापोंको नष्ट कर देना इनका स्वभाव ही है। भक्तोंपर ये सदा कृपा करते हैं। महाभागवत प्रह्लादके हृदयमें इनके प्रति अनन्य भक्ति है। वे इनके गुणोंको भलीभाँति जानते हैं। अतः परम योगी भगवान् नृसिंहके इस प्रिय रूपके दर्शन करके दानवश्रेष्ठ प्रह्लादजी इनके गुणोंका वर्णन करते हैं।

प्रह्लाद कहते हैं—'ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ॐ स्वाहा। अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः। ॐ क्ष्रौम्।' ॐकारस्वरूप भगवान् श्रीनृसिंहको नमस्कार है। आप अग्नि आदि तेजके भी तेज हैं, आपको नमस्कार है। हे वज्रनख ! हे वज्रदंष्ट्र ! आप मेरे सामने प्रकट होइये, प्रकट होइये। मेरी कर्मवासनाओंको जला डालिये, जला डालिये। मेरे अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। ॐ स्वाहा, मेरे अन्तःकरणमें अभयदान देते हुए प्रकाशित होनेकी कृपा कीजिये। ॐ क्ष्रौम्। प्रभो ! अखिल जगत्का कल्याण हो; दुष्टोंकी बुद्धिमें शुद्ध भावना उत्पन्न हो; सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना विद्यमान रहे; सभी एक-दूसरेके हितका चिन्तन करें; हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें प्रवेश करे। नाथ ! घर, स्त्री, पुत्र, धन और भाई-बन्धुओंमें हमारी आसक्ति न हो। आसक्ति हो तो केवल भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें ही। जो संयमी पुरुष केवल शरीर-निर्वाहके योग्य अन्नादिसे संतुष्ट रहता है, उसे जितनी शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है, उतनी शीघ्र इन्द्रियलोलुप पुरुषको नहीं होती। उन भगवद्भक्तोंके संगसे भगवान्के तीर्थतुल्य पवित्र चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति एवं प्रभावके सूचक होते हैं। उनका बार-बार सेवन करनेवालोंके कानोंके रास्तेसे भगवान् हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं और उनके सभी प्रकारके दैहिक और मानसिक मलोंको नष्ट कर देते हैं। ऐसे भगवद्भक्तोंका संग कौन नहीं करना चाहेगा ! जिस पुरुषकी भगवान्में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त देवता धर्म-ज्ञान आदि सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त होकर सदा निवास करते हैं; किंतु जो भगवान्का भक्त नहीं है, उसमें महापुरुषोंके वे गुण आ ही कहाँसे सकते हैं ? वह तो तरह-तरहके संकल्प करके निरन्तर तुच्छ

बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है। जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है; क्योंकि उनके जीवनका वह आधार होता है, उसी प्रकार साक्षात् श्रीहरि ही समस्त देहधारियोंके प्रियतम आत्मा हैं। उन्हें त्यागकर यदि कोई महत्त्वाभिमानी पुरुष घरमें आसक्त रहता है तो उस दशामें स्त्री-पुरुषोंका बड़प्पन केवल आयुको लेकर ही माना जाता है; गुणकी दृष्टिसे नहीं। अतः असुरगण ! तुम तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता और मानसिक संतापके मूल तथा जन्ममरणरूप संसार-चक्रका वहन करनेवाले गृह आदिकी आसक्तिको त्यागकर भगवान् नृसिंहके निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लो।

नारद ! इस प्रकार दानवराज प्रह्लाद पापरूपी हाथियोंके लिये सिंहस्वरूप भगवान् नृसिंहको अपने हृदयरूपी कमलपर विराजमान करके भक्तिपूर्वक निरन्तर उनकी स्तुति किया करते हैं।

केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि 'कामदेव'के रूपमें विराजते हैं। वहाँके अधिकारी पुरुषोंद्वारा इनका सदा सम्मान होता है। इस वर्षकी अधीश्वरी समुद्रतनया भगवती लक्ष्मी हैं। महान् पुरुषोंको आदर देना इनका स्वाभाविक गुण है। ये भगवती लक्ष्मी आगे कहे जानेवाले इन स्तोत्रोंसे भगवान् श्रीहरिकी सदा उपासना करती हैं।

भगवती लक्ष्मी कहती हैं—'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं। ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।' ''जो इन्द्रियोंके स्वामी, सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणोंके आश्रय, ज्ञान, क्रिया एवं संकल्पशक्ति तथा इनके विषयोंके व्यवस्थापक, सोलह कलाओंसे युक्त, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त

होनेवाले, अन्नमय, अमृतमय एवं सर्वमय होनेकी योग्यतासे सम्पन्न हैं, उन मन, इन्द्रिय और शरीरके साकार विग्रह परम कमनीय भगवान् कामदेवको 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजमन्त्रोंके सहित सब ओरसे नमस्कार है।'' भगवन् ! आप स्वयं इन्द्रियोंके स्वामी हैं। स्त्रियाँ अन्य लौकिक पतिको पानेके लिये अनेक प्रकारके व्रतोंद्वारा आपकी उपासना करती हैं; किंतु वे पति उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षामें असफल रहते हैं; क्योंकि वे सर्वथा परतन्त्र हैं। प्रभो ! पति वही है, जो स्वयं निर्भय रहकर दूसरे दुःखी जनकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करता है। वैसे पति केवल आप ही हैं। यदि कोई अन्य भी पति हो तो परस्पर भयकी सम्भावना हो सकती है। अतएव आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और किसी लाभको नहीं मानते। भगवन् ! जो स्त्री आपके चरण-कमलोंकी प्राप्ति न चाहकर किसी अन्य वस्तुको पानेके लिये आपकी उपासना करती है, उसे

आप वही अभीष्ट वस्तु देते हैं जो समयपर नष्ट हो जाती है। अतः उसे तो पछताना ही पड़ता है। कभी न पराजित होनेवाले भगवन्! मुझे पानेकी इच्छासे इन्द्रिय-सुख चाहनेवाले ब्रह्मा, रुद्र आदि बहुत-से देवता कठिन तपस्या करते हैं। किंतु आपके चरण-कमलोंकी उपासना करनेवालेके सिवा मैं अन्य किसीको सहजमें प्राप्त नहीं हो सकती; क्योंकि मैं सदा आपके हृदयमें रहती हूँ। अच्युत! भक्तोंके मस्तकपर शोभा पानेवाला आपका जो परम पूज्य चरण-कमल है, वह मेरे सिरपर भी सदा विराजित रहे—ऐसी कृपा कीजिये। पूजनीय प्रभो! आप लाञ्छनरूपसे तो मुझे वक्षःस्थलपर धारण करते ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। मायाद्वारा की हुई आपकी लीलाओंको कौन जान सकता है?

नारद! इस प्रकार कामदेवके रूपमें विराजमान विश्वबन्धु भगवान् श्रीहरिकी लक्ष्मीजी केतुमालवर्षमें उपासना करती हैं। इस वर्षके अन्य भी प्रजापति प्रभृति अधिकारी देवता कामना-सिद्धिके लिये उपासनामें तत्पर रहते हैं।

रम्यकवर्षमें भगवान् श्रीहरि 'मत्स्य-रूप' धारण करके विराजते हैं। उनकी यह सर्वश्रेष्ठ मूर्ति सम्पूर्ण देवताओंके लिये वन्द्य है। वहाँ मनुजी निरन्तर उनका स्तवन करते हैं।

मनुजी कहते हैं—'ॐ नमो मुख्यतमाय नमः सत्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः।' 'सत्त्वप्रधान मुख्य प्राण सूत्रात्मा तथा मनोबल, इन्द्रियबल और शरीरबल ॐकारके अर्थ सर्वश्रेष्ठ भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है।' सबको प्रेरणा प्रदान करनेवाले भगवन्! आप सभी प्राणियोंके भीतर और बाहर प्राण-रूपसे संचरण करते हैं। आपको देखनेमें सारे लोकपालोंकी दृष्टि कुण्ठित रहती है। ईश्वर-

नामसे प्रसिद्ध आप वे परम पुरुष हैं, जिनके वश होकर यह अखिल जगत् इस प्रकार नाचता है, जैसे नटके हाथकी कठपुतली। भगवन्! निश्चय ही लोकपालोंके मनमें आपके प्रति डाह उत्पन्न हो गया था। फलस्वरूप वे आपका सहारा न लेकर अलग एकत्रित हुए और इस प्रयत्नमें लग गये कि हम मनुष्य, पशु, नाग एवं स्थावर आदि प्राणियोंकी स्वयं रक्षा कर लेंगे; परंतु वे इस कार्यको सम्पन्न नहीं कर सके। अजन्मा प्रभो! प्रलयकालका समुद्र उत्ताल तरङ्गोंसे सुशोभित था। उस समय आप ओषधियों और लताओंको स्थान देनेवाली पृथ्वीको तथा मुझको लेकर उस समुद्रमें बड़े उत्साहके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। ऐसे जगत्के प्राणस्वरूप आप भगवान् मत्स्यको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार राजाओंमें उच्च स्थान प्राप्त करनेवाले मनुजी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी, जो मत्स्यके रूपमें अवतरित हैं तथा जिनकी

कृपासे संशय समूल नष्ट हो जाते हैं—स्तुति करते हैं। ये मनुजी भगवत्परायण पुरुषोंमें उत्तम माने जाते हैं। इन्होंने योगसाधन करके समस्त पापोंको नष्ट कर दिया है। ये भक्तिपूर्वक भगवान्‌का ध्यान करते हुए इस रम्यकवर्षमें विराजते हैं। (अध्याय ८-९)

☆

## हिरण्यमयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीदेवीके द्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी और भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासनाका वर्णन तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! हिरण्यमय नामक वर्षमें योगेश्वर भगवान् श्रीहरि 'कच्छप' रूप धारण करके विराजते हैं। अर्यमाके द्वारा इनकी पूजा और स्तुति होती है।

अर्यमा कहते हैं—'ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षित-स्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते।' 'जो समयकी सीमासे रहित, सम्पूर्ण सत्त्वादि गुणोंके विशेषण तथा अलक्षित स्थान-वाले हैं, उन ॐकारस्वरूप सर्वव्यापक भगवान् कच्छपको बार-बार नमस्कार है।' प्रभो! अनेक रूपोंमें दीखनेवाला यह जो अर्थस्वरूप जगत् है, सो आपकी ही मायासे भासित होनेके कारण आपका ही रूप है। यथार्थ प्रतीत न होनेसे इसकी संख्या नहीं की जा सकती। ऐसे अनिर्वचनीय स्वरूप आप श्रीहरिको नमस्कार है। भगवन्! जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जंगम, स्थावर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, सागर, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र आदि नामसे विख्यात जो कुछ है, सो सब एकमात्र आप ही हैं। प्रभो! आपके असंख्य नाम, रूप और आकृतियाँ हैं। कविगण आपमें जो चौबीसों तत्त्वोंका निश्चय कर चुके हैं, वह जिस तत्त्वदृष्टिके सामने निवृत्त होता है, वह भी वस्तुतः आपका ही रूप है। ऐसे सांख्यस्वरूप आप भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है।

इस प्रकार अर्यमा हिरण्यमयवर्षके अन्य अध्यक्षोंके साथ देवाधिदेव सर्वभूतमय भगवान् कच्छपकी स्तुति करते, गुणानुवाद गाते और भजन करते हैं।

फिर उत्तरकुरुवर्षमें यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरि 'वाराह'का रूप धारण करके विराजते हैं। इन भगवान् आदिवाराहकी पृथ्वीदेवी निरन्तर उपासना करती हैं। देवी पृथ्वीका हृदयरूपी कमल कृपारससे परिपूर्ण रहता है।

अतः वे परम भक्तिके साथ विधिपूर्वक दैत्यका उच्छेद करनेवाले भगवान् यज्ञवाराहकी पूजा करके उनके गुणानुवादका कीर्तन करती हैं।

पृथ्वी कहती हैं—'ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।' 'जिनका तत्त्व मन्त्रोंके सहारे समझमें आता है, जो यज्ञस्वरूप हैं, महान् यज्ञ जिनका विग्रह माना जाता है तथा जो शुक्ल-कर्ममय हैं, उन त्रियुगमूर्ति ॐकारस्वरूप भगवान् वराहको अनेकशः नमस्कार है।' भगवन्! काठमें छिपी हुई अग्निको प्रकाशमें आनेके लिये मन्थन करनेवाले ऋत्विजगणोंकी भाँति परम प्रवीण विद्वान् पुरुष जिसके दर्शन प्राप्त करनेके विचारसे मनरूपी मथानीद्वारा शरीरको मथ डालते हैं, तब अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले उन आप श्रीहरिको नमस्कार है। प्रभो! द्रव्य, क्रिया, हेतु, अयन, ईश और कर्ता—ये सभी आपके मायिक गुण हैं। इनके द्वारा यम-नियमादिके प्रभावसे निश्चित बुद्धिवाले पुरुष जिनके यथार्थ स्वरूपको समझनेमें सफल होते हैं, उन आप प्रकृतिसे परे भगवान् श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। भगवन्! सृष्टिके सामने आनेकी इच्छा उत्पन्न होते ही जिनके संकेतमात्रसे निःस्पृह होते हुए भी प्रकृति गुणोंद्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारमें इस प्रकार व्यस्त हो जाती है, जैसे चुम्बकका संयोग पाकर जड लोहा भी चलनेमें समर्थ हो जाता है, उन आप सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी श्रीहरिको नमस्कार है। प्रभो! जिन्होंने एक हाथीको पछाड़नेवाले दूसरे हाथीकी भाँति युद्धके अवसरपर प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्षको लीलापूर्वक दलित करके मुझे अपनी दाढ़ोंके अग्रभागपर उठाया और रसातलसे बाहर निकाल दिया, उन जगत्के आदि-कारणस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वराहको मैं नमस्कार करती हूँ।

किम्पुरुषवर्षमें चराचर जगत्के शासक

दशरथनन्दन भगवान् 'श्रीरामचन्द्रजी' विराजते हैं। भगवती सीता उनके साथ सुशोभित रहती हैं। हनुमान्जी उन आदिपुरुषकी स्तुति करते हैं।

हनुमान्‌जी कहते हैं—'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः, आर्यलक्षणशीलव्रताय नमः, उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः। साधुवाद-निकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नमः।' 'ॐकारस्वरूप पवित्र कीर्ति-वाले आप भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। श्रेष्ठ पुरुषोंके लक्षण, शील और व्रतसे सम्पन्न श्रीरामको नमस्कार है। परम संयत चित्तवाले तथा लोकाराधनमें तत्पर श्रीरामको नमस्कार है। साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीरूप भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। ब्राह्मणोंके परम भक्त एवं महान् भाग्यशाली आप महापुरुष भगवान् श्रीरामको नमस्कार है।' जो एकमात्र विशुद्ध-बोधस्वरूप हैं; सबके अन्तःकरणमें विराजते हैं; अपने तेजसे गुणोंकी जाग्रत् आदि अवस्थाओंका निरसन करते हैं तथा जिनकी मूर्ति परम शान्त एवं निर्मल बुद्धिके द्वारा ग्रहण करने योग्य है, जो नाम और रूपसे रहित हैं, उन अहंकारशून्य आप भगवान् श्रीरामकी मैं शरण लेता हूँ। भगवन्! मनुष्यके रूपमें आपका अवतार केवल राक्षस-वधके निमित्त ही नहीं होता, किंतु प्राणियोंके सामने सुख-दुःख आते रहते हैं— ऐसी शिक्षा देनेके लिये होता है। अन्यथा, अपने ही स्वरूपमें रमण करनेवाले आप परमसमर्थ प्रभुको सीताके वियोगमें इतने दुःख क्यों सहने पड़ते? लक्ष्मणजीके श्रेष्ठ भ्राता भगवान् श्रीराम! निश्चय ही उच्च कुलमें जन्म, परम सुन्दरता, वाणीकी कुशलता, निर्मल बुद्धि तथा उत्तम योनिमें जन्म—इनमेंसे कोई भी गुण आपको प्रसन्न करनेका साधन नहीं हो सकता। प्रभो! आप आत्मज्ञानी पुरुषोंके आत्मा एवं परम सुहृद् हैं। त्रिलोकीमें अनुरक्त रहनेपर भी उसके गुण आपमें लिप्त नहीं हो सकते। सीताके लिये दुःखी होना तथा लक्ष्मणके वियोगसे विषाद प्रकट करना—यह आपके लिये कभी सम्भव नहीं है। फिर भी, जगत्‌को शिक्षा देनेके लिये तथा प्रेमकी महत्ता प्रकट करनेके लिये आप यह सब कर रहे हैं। भगवन्! देवता, दानव, मानव अथवा वानर—कोई भी क्यों न हो; उसे चाहिये कि मनुष्यका वेष बनाकर रामरूपसे पधारे हुए आप भगवान् श्रीहरिका भजन करे। उपकारीके थोड़े उपकारको भी आप बहुत मानते हैं। आपके हृदयमें इतनी असीम दया है कि परम धाम पधारते समय उत्तरकोसलके निवासियों-को भी आप साथ लेते गये।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार किम्पुरुषवर्षमें कपिवर हनुमान् सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रती तथा कमलपत्रके समान विशाल नेत्रवाले भगवान् श्रीरामकी स्तुति करते, उनके गुण गाते तथा भक्तिपूर्वक भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं। जो पुरुष भगवान् श्रीरामके इस अद्भुत कथाप्रसंगको सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और वह श्रीरामके परम धामका अधिकारी बन जाता है।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस भारत-वर्षमें मैं आदिपुरुष विराजमान रहता हूँ और तुम निरन्तर मेरी स्तुति करते हो।

नारदजी कहते हैं—'ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः।' 'जो शान्तस्वभाव, अहंकारशून्य, निर्धनोंके परमधन, ऋषियोंमें प्रधान, परमहंसोंके श्रेष्ठ गुरु तथा आत्मारामोंके अधीश्वर हैं, उन ॐकारस्वरूप भगवान् नारायणको बार-बार नमस्कार है।' जो जगत्‌की उत्पत्तिके समय कर्ता होनेपर भी कर्तृत्वाभिमानसे

नहीं बँधते, देहमें रहते हुए भी दैहिक गुण भूख-प्याससे क्षुब्ध नहीं होते तथा द्रष्टा होते हुए भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती, उन परम असंग एवं विशुद्ध साक्षीस्वरूप आप भगवान् नारायणको नमस्कार है। योगिराज प्रभो ! हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीका कथन है कि योगकी सफलता यही है कि पुरुष अन्त समयमें अहंकारशून्य होकर आप निर्गुण ब्रह्ममें भक्तिपूर्वक अपना मन लगा दे। भगवन् ! जिस प्रकार सांसारिक और पारलौकिक भोगोंकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति स्त्री, पुत्र और धनविषयक चिन्ता करते हुए चल बसता है, उसी प्रकार यदि विद्वान् भी अपने इस कुत्सित शरीरके छूट जानेके भयसे भरा रहे तो उसका विद्याभ्यास करना केवल परिश्रममात्र ही है। अतः इन्द्रियोंके अधिष्ठाता प्रभो ! आप अपनेमें स्वाभाविक रूपसे रहनेवाले उस भक्तियोगको मुझे देनेकी कृपा करें, जिसके सहारे मैं मायारचित अत्यन्त सुदृढ़ ममता एवं अहंकारको तुरंत काट सकूँ।

इस प्रकार अखिल ज्ञातव्य रहस्योंको देखनेवाले मुनिवर नारदजीद्वारा मुझ अप्रमेय-स्वरूप भगवान् नारायणकी सदा स्तुति होती रहती है।

देवर्षे ! इस भारतवर्षमें जितनी नदियाँ और पर्वत हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ; तुम मन एकाग्र करके सुनो। मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यङ्कट, अद्रि, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्ष, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गौरमुख, इन्द्रकील तथा कामगिरि पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य प्रचुर पुण्य प्रदान करनेवाले असंख्य पर्वत हैं। इनसे निकली हुई सैकड़ों या हजारों नदियाँ हैं, जिनके जल पीने, स्नान करने, देखने अथवा नामका उच्चारण करनेसे भी प्राणियोंके तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। इनके नाम हैं—ताम्रपर्णी, चन्द्रवंशा, कृतमाला, वटोदका, वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुङ्गभद्रा, कृष्णवेणा, शर्करावर्तका, गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती, चर्मण्वती, सिन्धु तथा अन्ध एवं शोण नामवाले दो महान् नद, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, महानदी वेदस्मृति, कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती, सुषमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी तथा विश्वा—यों विविध नामोंसे ये प्रसिद्ध हैं।

नारद ! इस भारतवर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुषोंको अपने-अपने सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके प्रभावसे ही दिव्य, मानव एवं

नारकी योनियाँ मिलती हैं। सम्पूर्ण निवासियोंको भाँति-भाँतिके भोग भोगनेको मिलते हैं। अपने वर्णाश्रमके अनुसार व्यवहार करनेपर भारतवासियोंको मोक्षतक मिल जानेकी बात बिलकुल स्पष्ट है। इस मोक्षरूपी परम कार्यकी सिद्धिके साधन होनेके कारण ही इस भारत-वर्षको इतना गौरव प्राप्त हुआ है। स्वर्गके निवासी वेदवादी मुनिगण इस विषयमें अपना उद्गार प्रकट करते हैं। उनका कथन है—

'अहो ! इन प्राणियोंने कौन ऐसा उत्तम कार्य किया है अथवा भगवान् श्रीहरिकी स्वयं ही इनपर कृपा हो गयी है, जिसके फलस्वरूप इन्हें भारतवर्षमें मनुष्यके घर वह जन्म प्राप्त हुआ है, जिसमें रहकर ये भगवान् मुकुन्दकी सदा सेवा करते रहें। हमें भी ऐसा ही सुअवसर मिलना चाहिये। हमने महान् कठोर यज्ञ, तप, व्रत और दानके प्रभावसे सुन्दर स्वर्गपर अधिकार प्राप्त कर लिया तो इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ जब कि भगवान् नारायणके चरणकमलोंकी हमें स्मृतितक नहीं रही।'*

यहाँ इन्द्रियोंके लिये एक-से-एक उत्तम सुखदायी विषय हैं, जिनके भोगसे हमारी विवेकशक्ति ही छिन गयी है। जहाँ रहनेवालोंकी आयु एक कल्प होती है; परंतु पुनः जन्म लेना पड़ता है, उसकी अपेक्षा भारतवर्षमें थोड़ी आयु लेकर जन्म लेनेको ही हम श्रेष्ठ मानते हैं; क्योंकि विद्वान् पुरुष मानव-शरीरसे किये हुए कर्म भगवान् श्रीहरिको समर्पण करके उनके निर्भय पदके परम अधिकारी बन जाते हैं।

जहाँ भगवान् श्रीहरिके अमृतमय गुणानुवादकी सुधा-सरिता नहीं प्रवाहित होती; जहाँके निवासी परोपकारी तथा भगवद्भक्त नहीं होते; जहाँ श्रेष्ठ यज्ञ नहीं किये जाते एवं महान् महोत्सव नहीं मनाये जाते; वह ब्रह्माका लोक ही क्यों न हो; परंतु वहाँ रहना उचित नहीं है।† मानव-योनि उत्तम ज्ञान, क्रिया और द्रव्य आदि विविध सामग्रियोंसे सम्पन्न है। भारतवर्षमें ऐसी योनि प्राप्त करके जो प्राणी मुक्त होनेका प्रयत्न नहीं करते, वे तो फिर जंगली पक्षियोंकी भाँति बन्धनमें ही पड़ना चाहते हैं। सचमुच भारतवासी बड़े भाग्यशाली हैं। अतएव जब वे यज्ञमें अपने विभिन्न इष्ट देवताओंका भक्तिपूर्वक मन्त्रोंद्वारा आवाहन करके उन्हें पृथक्-पृथक् भाग अर्पण करते हैं, तब उनके उस कार्यसे एकमात्र स्वयं पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर ही प्रसन्न होकर उन भागोंको ग्रहण करते हैं।

यह सर्वथा सत्य है कि माँगनेपर भगवान् मनुष्योंको अभीष्ट पदार्थ दे देते हैं, परंतु उनकी

---

* अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥
किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्॥
(८। ११। २२-२३)

† न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥
(८। ११। २५)

वह वास्तविक देन नहीं है; क्योंकि उस पदार्थके मिल जानेपर भी कामनाका अभाव नहीं होता। भगवान् श्रीहरिके चरणकमल सम्पूर्ण इच्छाओंको शान्त कर देते हैं। निष्कामभावसे भजन करनेवाले पुरुष स्वयं श्रीहरिकी कृपासे उन्हीं चरणकमलोंको पाकर सदाके लिये पूर्णकाम हो जाते हैं। अतः जिन पूर्वजन्मकृत यज्ञ, प्रवचन एवं कर्मोंके फलस्वरूप हमें इस समय जो स्वर्गका सुख प्राप्त है, उन कर्मोंके फलभोगका यदि कुछ भी अंश शेष हो तो उसके प्रभावसे हम इस भारतवर्षमें भगवच्चिन्तन करनेवाला मानव-जन्म प्राप्त करें; क्योंकि इस वर्षमें श्रीहरि अपने भक्तोंका परम कल्याण कर देते हैं।

नारद ! जम्बूद्वीपमें अन्य आठ उपद्वीप प्रसिद्ध हैं। अपहत मार्गोंका अन्वेषण करनेवाले समुद्रोंने इन उपद्वीपोंकी कल्पना की है। इनके नाम हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मन्दर, हरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लंका। यों जम्बूद्वीपका परिमाण विस्तारके साथ बता दिया। अब इसके बाद प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन करूँगा। (अध्याय १०-११)

☆

## प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, काक और पुष्करद्वीपोंका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! यह जम्बूद्वीप जैसा और जितने परिमाणवाला बताया गया है, उतने ही परिमाणवाला वहाँ क्षार-समुद्र है, जिससे वह सब ओरसे घिर गया है। जिस प्रकार मेरुपर्वतके चारों ओर यह जम्बूद्वीप है, वैसे ही इसके सभी भागोंमें खारे जलका समुद्र है। क्षार समुद्रको दूने परिमाणवाले प्लक्षद्वीपने घेर रखा है। उपवनसे घिरी हुई खाईकी भाँति यह घिरा है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका वृक्ष है, उतना ही बड़ा यहाँ एक पाकड़का पेड़ है। अतएव इसे 'प्लक्षद्वीप' कहते हैं। सुवर्णमय अग्निदेवताका यह सुनिश्चित स्थान है। सात जीभवाले ये अग्निदेव महाराज प्रियव्रतके पुत्र हैं। इनका नाम 'इध्मजिह्व' है। ये ही प्लक्षद्वीपमें शासन करते हैं। राजा प्रियव्रतने अपने द्वीपके सात विभाग करके सातों पुत्रोंमें बाँट दिये और स्वयं आत्मज्ञानी पुरुषोंके द्वारा मान्य योगसाधनमें लग गये। उसी आत्मयोगके प्रभावसे उन्हें भगवत्प्राप्ति हो गयी।

शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय—इन नामोंसे प्रसिद्ध दर्शनीय ये सात वर्ष प्लक्षद्वीपके हैं। इन सात वर्षोंमें सात नदियाँ और सात ही पर्वत हैं। अरुणा, नृम्णा, अङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—इन नामोंसे नदियाँ विख्यात हैं। मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—ये नाम प्लक्षद्वीपके पर्वतोंके हैं। इन नदियोंके केवल जलका दर्शन और स्पर्श करनेसे वहाँकी प्रजा पवित्र हो जाती है। उसका सारा कल्मष धुल जाता है। इस प्लक्षद्वीपमें हंस, पतङ्ग, ऊर्ध्वायन और सत्याङ्ग नामवाले चार वर्ण रहते हैं। उनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है। देखनेमें ये बड़े ही विलक्षण प्रतीत होते हैं। वे तीनों वेदोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार स्वर्गके द्वारभूत भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं। वे कहते हैं—'जो सत्य, ऋत, वेद एवं सत्कर्मके अधिष्ठाता हैं; अमृत एवं मृत्यु अर्थात् यम जिनके विग्रह हैं; उन

पुराणपुरुष विष्णुमय भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं।' नारद ! प्लक्ष आदि जो पाँच द्वीप हैं, उन सबमें जन्म लेनेवाले प्राणी परिमित आयु, इन्द्रिय, शक्ति, बल, बुद्धि और पराक्रमके साथ उत्पन्न होते हैं।

इक्षुरसका समुद्र प्लक्षद्वीपकी अपेक्षा बहुत बड़ा है। अतः प्लक्षद्वीपसे दूने विस्तारवाला शाल्मलिद्वीप है। जितना लम्बा-चौड़ा यह शाल्मलिद्वीप है, उतने ही आकारका वहाँ मदिराका समुद्र है, जिससे यह द्वीप घिर गया है। वहाँ ऐसा बड़ा एक सेमरका वृक्ष है, जैसे प्लक्षद्वीपमें पाकड़का था। पक्षिराज महात्मा गरुड़जी इस द्वीपमें विराजते हैं। उस शाल्मलिद्वीपका शासनसूत्र राजा यज्ञबाहुके हाथमें है। ये यज्ञबाहु राजा प्रियव्रतके ही पुत्र हैं। उन्होंने ही अपने सात पुत्रोंको यह पृथ्वी बाँट रखी है। शाल्मलिद्वीपके सात वर्षोंके नाम हैं—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन और विज्ञान। उन वर्षोंमें सात पर्वत और सात नदियाँ भी हैं। पर्वतोंके नाम हैं—सरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कन्दक, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति तथा नदियोंके नाम हैं—अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका। उन वर्षोंमें रहनेवाले समस्त पुरुष श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषुन्धर संज्ञक चार वर्णोंमें विभक्त हैं। वेदस्वरूप चन्द्रमाको भगवान् ईश्वर मानकर वे उनकी उपासना करते हैं। कहते हैं—'जो अपनी किरणोंसे पितरोंके लिये शुक्ल और कृष्ण-मार्गका विभाजन कर रहे हैं तथा सम्पूर्ण प्रजा जिनका शासन मानती है, वे भगवान् सोम प्रसन्न हो जायँ।'

इस प्रकार मदिराके समुद्रकी अपेक्षा स्वयं दुगुने विस्तारवाला कुशद्वीप है। यह द्वीप घृतके समुद्रसे घिरा दीखता है। वहाँ कुशकी एक सघन झाड़ी है। अतः उसे 'कुशद्वीप' कहते हैं। अग्निदेव अपनी सुन्दर ज्वालासे काष्ठोंको भस्म करते हुए सर्वव्यापी होकर विराजते हैं। यह कुशद्वीप प्रियव्रतकुमार राजा हिरण्यरेताके शासनमें है। हिरण्यरेताने इस द्वीपमें सात वर्ष करके इसे अपने सात पुत्रोंको सौंप दिया है। पुत्रोंके नाम हैं—वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और भामदेव। उन वर्षोंमें उनकी सीमा निश्चित करनेवाले चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण नामवाले सात पर्वत प्रसिद्ध हैं। नदियाँ भी सात हैं। उनके नाम हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमालिका। कुशद्वीपके समस्त निवासी इन्हीं नदियोंका जल पीते हैं। कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक संज्ञक चार वर्ण वहाँ रहते हैं। वे अग्निको भगवान् श्रीहरिका विग्रह मानकर अपने यज्ञादि कर्म-कौशलद्वारा उनकी उपासना करते हैं। सब लोग वेदके ज्ञाता एवं श्रेष्ठ देवताओंके समान तेजस्वी होते हैं। अग्निदेवसे उनकी प्रार्थना है—'जातवेदा कहलानेवाले भगवान् अग्निदेव ! आप परब्रह्म परमात्माको स्वयं हवि पहुँचाते हैं। अतः श्रीहरिके अङ्गभूत देवताओंके यजनद्वारा आप उन परमपुरुष परमात्माका यजन करें।'

इस प्रकार कुशद्वीपमें रहनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके द्वारा अग्निस्वरूप भगवान् श्रीहरिकी उपासना होती है।

नारदजीने कहा—सर्वार्थदर्शी प्रभो ! अब आप शेष द्वीपोंके परिमाण बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! कुशद्वीप अत्यन्त विस्तृत घृतसमुद्रके द्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ है। इसके बाहर दुगुने परिमाणवाला क्रौञ्चद्वीप है। इस क्रौञ्चद्वीपको इतने ही विस्तारवाले क्षीरसमुद्रने घेर रखा है। यह वह द्वीप है, जहाँ क्रौञ्च नामक पर्वत है। इस पर्वतके कारण ही इस द्वीपको क्रौञ्चद्वीप कहते हैं। प्राचीन समयकी बात है—स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिसे इसका पेट ही फट गया था। क्षीरसमुद्रने इसे खींचा और वरुणने रक्षाकी पर्याप्त व्यवस्था की तब यह पुनः कायम हुआ। प्रियव्रतकुमार श्रीमान् घृतपृष्ठ इस द्वीपके व्यवस्थापक थे। उन नरेशको अखिल जगत्से सम्मान प्राप्त था। उन महाराजने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभाजित किया और इनके पुत्रोंकी संख्या भी सात थी। फिर घृतपृष्ठकी आज्ञासे एक-एक पुत्र एक-एक वर्षका राजा बन गया। इस प्रकार पुत्रोंको वर्षोंकी व्यवस्थामें नियुक्त करके उन्होंने स्वयं भगवान् श्रीहरिकी शरण ले ली। आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति—ये पुत्रोंके नाम हैं। पर्वत और नदियाँ भी सात ही हैं। पर्वतोंके नाम हैं—शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र। अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती वृत्तिरूपवती, शुक्ला और पवित्रवती—इन नामोंसे नदियाँ विख्यात हैं। इन नदियोंके पवित्र जलको चारों वर्णके लोग पीते हैं। पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक—इन चार वर्णोंके पुरुष वहाँ रहते हैं। उन पुरुषोंके द्वारा जलके स्वामी वरुणदेवकी उपासना होती है। वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—'भगवान् वरुणदेव ! पुरुषोत्तम श्रीहरिकी कृपासे आपको असीम शक्ति प्राप्त है। भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों लोकोंको आप पवित्र करते हैं। सम्पूर्ण कल्मषोंको दूर कर देना आपका स्वभाव ही है। हम अपने शरीरसे आपका स्पर्श करते हैं। आप हमें पवित्र करनेकी कृपा करें।' इसे मन्त्र मानकर जप भी करते हैं। फिर भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति की जाती है।

इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे शाकद्वीप है। बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला यह द्वीप क्षीरसमुद्रके चारों ओर विस्तृत है। इसीके बराबर वहाँ मट्ठेका समुद्र है, जिसने इसे घेर रखा है। इस विशिष्ट द्वीपमें शाक नामका एक बहुत बड़ा विशाल वृक्ष है। नारद ! इस वृक्षके कारण ही इस क्षेत्रका नाम शाकद्वीप पड़ गया। प्रियव्रतकुमार मेधातिथि इस द्वीपके राजा थे। उन्होंने सात वर्षोंमें इस द्वीपका विभाजन कर दिया और अपने सात पुत्रोंको प्रत्येक वर्षमें नियुक्त करके स्वयं योगगतिकी प्राप्तिके लिये वनमें चले गये। राजा मेधातिथिके पुत्रोंके नाम हैं—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूमानीक, चित्ररेख, बहुरूप और विश्वधृक्। इसकी सीमा निश्चित करनेवाले सात पर्वत और सात ही नदियाँ हैं। ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महासन—ये सात पर्वत कहे गये हैं। सात नदियोंके नाम हैं—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रश्रुति और निजधृति। उस वर्षके सभी पुरुष महान् प्रतापी होते हैं। इन पुरुषोंके चार वर्ण हैं—सत्यव्रत, क्रतुव्रत, दानव्रत और

अनुव्रत। प्राणायाम करके भगवान् वासुदेवकी ये उपासना करते हैं। ये यों स्तुति करते हैं—'जो प्राणियोंके भीतर विराजमान होकर प्राणादि वृत्तियोंसे प्राणियोंका धारण-पोषण करते हैं तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनके अधीन है, वे अन्तर्यामी भगवान् स्वयं हमारी रक्षा करें।'

नारद ! इसी प्रकार मट्ठेके समुद्रसे आगे उससे बहुत लम्बा-चौड़ा विस्तारवाला पुष्करद्वीप है। यह द्वीप शाकद्वीपसे दूने विस्तारमें है। अपने-जैसे विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रद्वारा यह चारों ओरसे घिरा है। इस द्वीपमें अत्यन्त प्रकाशमान एक कमल है। इसकी प्रभूत पँखुड़ियाँ ऐसी चमकती हैं, मानो आगकी लपटें हों। लाखों स्वर्णमय पत्र इस कमलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। अखिल जगत्‌की सृष्टि करनेका विचार उत्पन्न होनेपर संसारके एकमात्र शासक श्रीहरिने महाभाग ब्रह्माके रहनेके लिये इसी कमलकी स्थापना की है। इस पुष्करद्वीपमें मानसोत्तर नामका यह एक ही पर्वत है। पूर्व और पश्चिमके वर्षोंकी सीमा बताना इसका मुख्य उद्देश्य है। यह दस हजार योजन ऊँचा और इतना ही विस्तृत है। इसकी चार दिशाओंमें चार पुरियाँ हैं। इन पुरियोंमें इन्द्र आदि लोकपाल रहते हैं। इसके ऊपरसे होते हुए सूर्य सुमेरु-गिरिकी प्रदक्षिणा करते हैं। सूर्यके रथका चक्का संवत्सरका प्रतीक है। देवयान और पितृयान मार्गसे यह आगे बढ़ता है। प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र यहाँ राजा थे। उन्होंने इस अपने द्वीपको दो भागोंमें बाँट दिया। उनके दो पुत्र थे। दोनोंको क्रमशः दो वर्षोंमें रहनेकी आज्ञा दे दी। पुत्रोंके नाम हैं—रमण और धातकी। ये दो राजकुमार दोनों वर्षोंमें शासन करते हैं। स्वयं वीतिहोत्र अपने बड़े भाइयोंके समान भगवान् श्रीहरिके परम उपासक बन गये। इस लोकमें रहनेवाले पुरुष ब्रह्माको साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका स्वरूप मानकर उनकी उपासना करते हैं। सकाम कर्मके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हुए वे यों कहते हैं—'जो कर्ममय ब्रह्माके साक्षात् विग्रह, जगत्पूज्य एक एवं अद्वैत हैं तथा जिनका स्वरूप परम शान्त है, उन भगवान् ब्रह्माको हमारा नमस्कार है।'

(अध्याय १२-१३)

☆

## लोकालोकपर्वतकी व्यवस्था तथा सूर्यकी गतिका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—देवर्षि नारद ! इसके आगे लोकालोक नामका एक पर्वत है। प्रकाशित और अप्रकाशित—दो प्रकारके लोक हैं। इनके मध्यभागमें यह लोकालोकपर्वत है। इन लोकोंकी सीमा बताना इसका प्रयोजन है। मानसोत्तरपर्वतसे लेकर सुमेरुतक जितना अन्तर है, उतना ही इस पर्वतका परिमाण है। यहाँकी भूमि सुवर्णमयी है। वह ऐसी स्वच्छ है, मानो दर्पण हो। सर्वसाधारण प्राणी वहाँ नहीं रह सकते अर्थात् वह स्थान केवल देवताओंके लिये है। वहाँ कोई पदार्थ गिर जाय तो फिर वह उससे अलग नहीं हो सकता। अतएव नारद ! वहाँ सब प्रकारके प्राणियोंका समुदाय नहीं ठहरता। इसीसे इसका नाम लोकालोक हुआ है। सूर्य जिसे प्रकाशित करते और जिसे नहीं करते—उन दोनों लोकोंके ठीक मध्यभागमें इस पर्वतकी स्थिति सदा रहती है। भगवान् श्रीहरिने तीनों लोकोंके ऊपर चारों ओरकी सीमा

निर्धारित करनेके लिये इस पर्वतका निर्माण किया है। सूर्यसे लेकर ध्रुवतक—सभी ग्रह इस पर्वतके अधीन हैं। अतः इन ग्रहोंकी किरणें लोकालोकपर्वतके पीछे रहनेवाले तीनों लोकोंको ही प्रकाशित करती हैं। दूसरी ओरके लोक कदापि उन किरणोंसे प्रकाश नहीं प्राप्त कर सकते। नारद ! यह महान् पर्वत जितना ऊँचा है उतना ही लम्बा भी है। इस पर्वतके ऊपर चारों दिशाओंमें स्वयम्भू ब्रह्माने चार दिग्गज नियुक्त कर दिये हैं। इन गजराजोंके नाम हैं—ऋषभ, पुष्पचूड, वामन और अपराजित। समस्त लोकोंको भलीभाँति स्थिति रखनेके लिये ही इन दिग्गजोंकी नियुक्ति हुई है। इस लोकालोकपर्वतपर स्वयं भगवान् श्रीहरि विराजते हैं। इनके यहाँ विराजनेका मुख्य उद्देश्य यह है कि इन दिग्गजोंकी तथा अपनी परम विभूति इन्द्रादि देवताओंकी शक्तिका विकास हो। ये सात्त्विक विशुद्ध गुणसे सम्पन्न हों तथा सदा कल्याणके भागी बने रहें। आठों सिद्धियाँ इनकी सेवामें संलग्न रहती हैं। विष्वक्सेन आदि पार्षद इन्हें घेरकर खड़े रहते हैं। इनकी चारों विशाल भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुधोंसे सुशोभित रहती हैं। सनातन भगवान् श्रीहरि ऐसे वेषमें पूरे कल्पभर यहाँ विराजते हैं। अपनी मायासे रचित इस जगत्की रक्षा इनके यहाँ विराजनेका प्रयोजन है। कहा जाता है कि इस लोकालोकपर्वतके भीतरकी भूमि जितनी लम्बी-चौड़ी है, उतनी ही बाहर भी है। इसके आगे जो विशुद्ध भूमि है, उसमें परम योगी पुरुष ही जा सकते हैं।

नारद ! स्वर्ग और पृथ्वीके बीच जो ब्रह्माण्ड है, उसीके मध्यभागमें सूर्य रहते हैं। सूर्यमण्डल और ब्रह्माण्ड पचीस करोड़ योजनकी दूरीपर हैं। मृत अण्ड अर्थात् चेतना-शून्य अण्डमें विराजनेके कारण सूर्यको 'मार्तण्ड' कहा जाता है। हिरण्यमय ब्रह्माण्डसे ये प्रकट हुए हैं। अतः सूर्य 'हिरण्यगर्भ' भी कहे जाते हैं। दिशा, आकाश, अन्तरिक्षलोक, पृथ्वीलोक, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक और पाताल—इनका सम्यक् प्रकारसे विभाजित होना सूर्यपर निर्भर है। देवता, मनुष्य, पशु, रेंगकर चलनेवाले जन्तु तथा वृक्ष आदि जितने प्राणी हैं, उन सबके आत्मा ये सूर्य हैं। इन्हें नेत्रेन्द्रियका स्वामी कहा जाता है। नारद ! भूमण्डलका इतना ही विस्तार है।

इन दोनों लोकोंके मध्यभागमें अन्तरिक्ष-लोक है। प्रकाश फैलानेवाले ग्रहोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्य इसीके मध्यभागमें विराजते हैं। उत्तरायण होनेपर इनकी गति मन्द पड़ जाती है। अपने प्रचण्ड तेजसे त्रिलोकीको प्रकाशित करते हुए ये सदा तपते रहते हैं। इनका यह उत्तरायण स्थान बहुत ऊँचा है। ये जब इस स्थानपर आते हैं, तब दिन बढ़ने लगता है। फिर जिस समय दक्षिणायन मार्गपर चलते हैं, तब इनकी गतिमें तीव्रता आ जाती है। इनका यह स्थान नीचा है। जब इस स्थानपर चलते हैं, तब दिन छोटे होने लगते हैं। सूर्यका तीसरा स्थान विषुवत् कहलाता है। इसपर चलते समय इनकी गतिमें समानता आ जाती है; क्योंकि यह स्थान सर्वत्र समतल है। इसपर चलते समय दिनके परिमाणमें कोई खास अन्तर नहीं रहता। जिस समय सूर्य मेष और तुला राशिपर आते हैं, उस समय दिन और रातमें प्रायः समानता आ जाती है। जब ये वृष आदि पाँच राशियोंमें रहते हैं, तब दिनके मानमें वृद्धि हो जाती है और रात्रि छोटी होने

लगती है। जब वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं, तब दिन और रातमें विपरीत परिवर्तन होने लगता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! अब सूर्यकी श्रेष्ठ गतिका वर्णन करूँगा। ये शीघ्र और मन्द आदि तीन प्रकारकी गतिसे चलते हैं। मुनिवर! सभी ग्रहोंके स्थान तीन ही हैं। स्थानोंके नाम हैं—जारद्गव, ऐरावत और वैश्वानर। जारद्गव मध्यमें हैं, ऐरावत उत्तरमें और वैश्वानर दक्षिणमें। प्रत्येक स्थानमें तीन वीथियाँ हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाको 'नाग-वीथी' कहते हैं। रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा—ये 'गज-वीथी' कहलाती हैं। पुष्य, पुनर्वसु और आश्लेषा—यह 'ऐरावती-वीथी' कहलाती है। ये तीन वीथियाँ 'उत्तरमार्ग' कही जाती हैं। मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तरा-फाल्गुनी 'आर्षभी-वीथी' है। हस्त, चित्रा एवं स्वाती 'गो-वीथी' कहलाती है। विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठाको 'जारद्गवी-वीथी' माना गया है। ये तीन वीथियाँ 'मध्यममार्ग' कहलाती हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—इनकी संज्ञा 'अज-वीथी' है। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषाको 'मृग-वीथी' मानते हैं। पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती 'वैश्वानरी-वीथी' है। अज-वीथी, मृग-वीथी और वैश्वानरी-वीथी—इन तीन वीथियोंको 'दक्षिणमार्ग' कहा जाता है। जब सूर्यका रथ उत्तरायण मार्गपर रहता है; दोनों पहिये पवनरूपी पाशसे बँधकर ध्रुवद्वारा खींचे जाते हैं, उस समय सूर्यकी 'आरोहण' गति कहलाती है। मण्डलके भीतरसे रथ चलता है। मुनिवर! इस मान्द्य गतिमें दिन क्रमशः बढ़ने लगता है, रात छोटी होने लगती है। यही सौम्यायनका क्रम है।

इसी प्रकार जब सूर्यका रथ दक्षिणायन मार्गपर पाशद्वारा खींचा जाता है, तब उसे 'अवरोहण' कहते हैं। मण्डलके बाहरसे गति होती है। उस समय सूर्यकी चाल बहुत तेज रहती है। दिनका क्रमशः ह्रास और रात्रिकी वृद्धि आरम्भ हो जाती है। विषुव मार्गपर सूर्यका रथ पाशद्वारा किसी ओर नहीं खींचा जाता—साम्य रहता है। मण्डलके मध्यभागमें सूर्य विराजमान रहते हैं। इसलिये रात और दिन—दोनोंका मान बराबर रहता है। जब ध्रुवकी आज्ञा मानकर पवन और पाश सूर्यके रथको खींचते हैं, उस समय भीतरके मण्डलोंमें ही सूर्य चक्कर लगाते हैं। पुनः ध्रुवके पाशसे मुक्त होते ही सूर्यका रथ बाहरके मण्डलोंमें घूमने लगता है। इस मेरु-पर्वतके पूर्वभागमें इन्द्रकी पुरी देवधानी है। यमराजकी महान् पुरी संयमनी मेरुगिरिके दक्षिणभागमें है। निम्लोचनी नामक विशाल पुरीमें वरुण रहते हैं। यह पुरी सुमेरुपर्वतके पश्चिमभागमें है। विभावरी नामसे प्रसिद्ध चन्द्रमाकी पुरी सुमेरुपर्वतसे उत्तर कही गयी है। ब्रह्मवादियोंका ऐसा कथन है कि सूर्य इन्द्रकी पुरीमें उदय होते हैं। वे जब संयमनी पुरीमें पहुँचते हैं तब दोपहर हो जाता है, निम्लोचनी पुरीमें पहुँचनेपर सायंकाल हो जाता है और जब विभावरी पुरीमें सूर्य जाते हैं, तब आधी रातका समय हो जाता है। इन सूर्यका सभी देवता सम्मान करते हैं। उन्हींके नियमको मानकर सम्पूर्ण प्राणी अपने कार्यमें लगते हैं। सुमेरु-पर रहनेवालोंको सदा मध्याह्नकालके समान ही समय प्रतीत होता है। यद्यपि सूर्यका रथ सुमेरुको बायें करके चलता है; किंतु

प्रवहवायुकी प्रेरणासे वह दक्षिणको मुड़ जाया करता है। सूर्यके उदय और अस्तका समय सदा सबके सामने पड़ता है। नारद ! शेष जितनी दिशाएँ और विदिशाएँ हैं, वहाँ रहनेवाले प्राणी जब सूर्यको देखते हैं, तब उनके लिये वही उदयकाल है और जब जहाँ छिप जाते हैं, उसी स्थानको वे अस्तस्थान मानते हैं।

नारद ! जिस समय सूर्य इन्द्र आदि लोकपालोंकी पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय इनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित होने लगते हैं। दो विकर्ण, उनके तीन कोण तथा दो पुरियाँ—सबमें सूर्यकी किरणसे प्रकाश फैल जाता है। सम्पूर्ण द्वीप और वर्ष सुमेरुगिरिके उत्तर स्थित हैं। जो जहाँ सूर्यको उदय होते देखते हैं, उनके लिये वही पूर्व दिशा कही जाती है। ठीक उसके वामभागमें मेरुपर्वत पड़ता है। इसीको सिद्धान्त माना गया है। हजारों किरणोंवाले सूर्य समय और मार्गके प्रदर्शक हैं। जब ये इन्द्रकी पुरीसे संयमनी पुरीको जाते हैं, तब पंद्रह घड़ीमें सवा दो करोड़, बारह लाख और पचहत्तर हजार योजनका मार्ग इन्हें तय करना पड़ता है। इसी प्रकार वरुणलोक, चन्द्रलोक और इन्द्रलोकको जानेमें समय एवं मार्गकी दूरीका नियम है। सूर्यको कालचक्रात्मा और द्युमणि कहते हैं। समयकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये इनका भ्रमण होता रहता है। चन्द्रमा आदि अन्य जितने आकाशचारी ग्रह हैं, वे नक्षत्रोंके साथ उदय और अस्त होते रहते हैं। शक्तिशाली सूर्यको त्रयीमय कहा जाता है। इनका रथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख, आठ सौ योजनका चक्कर काटता है। इसमें चारों दिशाओंकी चारों पुरियाँ पड़ जाती हैं। प्रवह नामकी वायु इनके रथके चक्केको सदा घुमाया करती है। जिस रथपर सूर्य बैठते हैं, उसका एक चक्का एक संवत्सरका रूप है—ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। बारह अरों, तीन धुरों और छः आवनियोंसे यह सम्पन्न है। इस रथकी एक धुरीका सिरा सुमेरुपर्वतके शिखरपर और दूसरा मानसोत्तरपर्वतपर है। सूर्यके रथका पहिया इस प्रकार घूमता है, मानो तेल पेरनेका यन्त्र चक्कर काट रहा हो। यों मानसोत्तरपर्वतके ऊपर सूर्य परिभ्रमण करते हैं। इस धुरीमें एक अन्य धुरी भी है। इसका परिमाण प्रथम धुरीसे चार गुना अधिक है। यह तैलयन्त्रकी भाँति घूमता हुआ ध्रुवलोकतक पहुँच जाता है।

नारद ! सूर्यके रथपर बैठनेके स्थानकी लम्बाई छत्तीस लाख योजन और चौड़ाई नौ लाख योजन है। यों सूर्यके रथका परिमाण कहा गया है। अरुण इस रथके सारथि हैं। गायत्री आदि सात छन्द उत्तम सात घोड़े कहे जाते हैं। सारथिद्वारा जोते जानेपर ये घोड़े जगत्के कल्याणार्थ महाभाग सूर्यको उन-उन स्थानोंपर पहुँचाया करते हैं। अरुण गरुड़के बड़े भाई हैं। सूर्यने इन्हें सारथिके कामपर नियुक्त कर रखा है। ये सूर्यके आगे उन्हींकी ओर मुख करके बैठते हैं ! ऐसे ही अँगूठेके पोरवेके बराबर बालखिल्यादि ऋषिगण सूर्यके सामने उपस्थित रहते हैं। इन ऋषियोंकी संख्या साठ हजार है। सभी सूर्यके सम्मुख होकर परम मनोहर वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणद्वारा स्तुति करते रहते हैं। ऐसे ही अन्य भी जो ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता हैं, उनमेंसे एक देवता एक महीनेमें सूर्यकी उपासना करता है। यों सात महीनोंमें सात देवताओंके द्वारा क्रमशः सूर्यकी

आराधना होती रहती है। सूर्य सर्वव्यापी और सुप्रसिद्ध देवता माने जाते हैं। ये नौ करोड़, पचास लाख योजन पृथ्वीमें नित्य घूमते हैं। प्रत्येक क्षणमें दो हजार योजन पथ पारकर जाना इनकी गतिका नियम है।

(अध्याय १४-१५)

☆

## चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी गतिका, शिशुमार चक्रका तथा राहुमण्डलादिका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! इसके बाद अब चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी अद्भुत गतिका वर्णन सुनो। इनकी गतिसे ही मनुष्योंको शुभ और अशुभ समयका परिज्ञान होता है। जिस प्रकार कुम्हारका चाक घूमता है। तब उसपर बैठे हुए चींटे आदि कीड़े भी घूमते ही हैं; फिर इन घूमनेवाले कीड़ोंकी एक दूसरी गति भी होती है; क्योंकि उस चाकपर ये कीड़े एक स्थानपर नहीं रहते—इधर-उधर चला-फिरा करते हैं; इसी प्रकार राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रके अनुसार सुमेरु और ध्रुवको दाहिने करके घूमनेवाले सूर्य प्रभृति प्रधान ग्रहोंकी गति एक दूसरी भी दृष्टिगोचर होती है। इनकी वह गति नक्षत्रपर निर्भर रहती है। अतः जब एक नक्षत्र समाप्त होकर दूसरा आ जाता है, तब इनकी गतिमें भी परिवर्तन हो जाता है। ये दोनों गतियाँ परस्पर अविरुद्ध हैं—सर्वत्रके लिये यही निर्णय है। वेद और विद्वान् पुरुष जिन्हें जाननेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं, वे ही अखिल जगत्के आधार आदिपुरुष भगवान् नारायण सम्पूर्ण प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये जगत्में घूमते हैं। साथ ही कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रहको बारह भागोंमें विभक्त करके वसन्त आदि छः ऋतुओंमें समुचित रूपसे गुणोंकी व्यवस्था करते हैं। वर्णाश्रमधर्मका पालन करनेवाले सम्पूर्ण पुरुष निरन्तर वेदकी आज्ञाके अनुसार छोटे अथवा बड़े कर्मका सम्पादन करके श्रद्धापूर्वक योगोंके साधनोंद्वारा इन सूर्यरूप भगवान् नारायणकी उपासना करते हैं। जो ऐसा करते हैं, वे बड़ी सुगमतासे कल्याणके भागी बन जाते हैं—यह सिद्धान्त है। ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हैं। द्युलोक और पृथ्वीलोकके मध्यभागसे इनकी गति होती है। ये कालचक्रपर स्थित होकर चलते हैं। बारह महीने वर्षके अङ्ग हैं। मेष आदि राशियोंसे इनकी प्रसिद्धि है। सूर्य क्रमशः इन बारह महीनोंको भोगते हैं। एक महीनेमें दो पक्ष होते हैं—शुक्ल और कृष्ण। पितृमानसे यह एक दिन और रात कहलाता है। सौरमानसे इसे सवा दो नक्षत्र बताते हैं। सूर्य जितने समयमें वर्षके छठे भागको भोगते हैं, उसे विद्वान् पुरुष 'ऋतु' कहते हैं। यह ऋतु वर्षका अवयव कहलाता है। सूर्य आकाशमार्गमें होकर जितने समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसहित सारे आकाशमण्डलका चक्कर लगा जाते हैं, उस समयको 'वर्ष' जानना चाहिये। वर्ष पाँच प्रकारके कहे गये हैं—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। समयकी गति जाननेवाले पुरुषोंका कथन है कि सूर्य सदा समान रूपसे नहीं चलते। इनकी चाल कभी मन्द, कभी तीव्र और कभी सम हो जाती है।

नारद ! अब चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी गतिका प्रसंग सुनो। ऐसे ही चन्द्रमा भी चलते हैं। सूर्यकी किरणोंसे चन्द्रमा एक लाख योजन ऊपर हैं। इन्हें ओषधियोंका स्वामी कहा जाता है।

सूर्यके एक वर्षके मार्गको ये दो पक्षोंमें, एक महीनेके मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक दिनमें पार कर जाते हैं। यों तीव्रगामी चन्द्रमा निश्चितरूपसे भूचक्रमें भ्रमण करते हैं। ये क्रमशः पूर्ण होती हुई कलाओंसे देवताओंको और क्षीण होती हुई कलाओंसे पितरोंको स्वाभाविक ही प्रसन्न करते रहते हैं। ये अपने पूर्व और उत्तर पक्षोंके द्वारा देवताओंके दिन और रातका विभाजन करते हैं। समस्त जीवोंके प्राण और जीवन ये ही हैं। तीस मुहूर्तमें ये प्रत्येक नक्षत्रको भोगते हैं। इनकी कलाएँ सोलह हैं। इनको अनादि श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है। मनोमय, अन्नमय, अमृतधारा और सुधाकर—ये इनके नाम हैं। देवता, पितर, मनुष्य, सरीसृप और वृक्ष आदि प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करना इनका स्वभाव है। अतः ये सर्वमय कहलाते हैं। चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है। ये नक्षत्र अभिजित्‌को लेकर अट्ठाईस माने जाते हैं। भगवान्‌ने इन्हें कालचक्रमें बाँध रखा है। मेरुपर्वतको दाहिने करके ये भ्रमण करते हैं।

नारद ! इन नक्षत्रोंसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र रहते हैं। ये शुक्र सूर्यके साथ-साथ चलते हैं। कभी पीछे हो जाते तो कभी आगे। इनकी भी तीन प्रकारकी गतियाँ हैं—शीघ्र, मन्द और सम। प्राणियोंके लिये प्रायः ये अनुकूल ही रहते हैं। इन्हें शुभ ग्रह कहा जाता है। मुने ! ये भार्गव वर्षाके विघ्नोंको सदा दूर करते रहते हैं। इनके स्थानसे बुधका स्थान दो लाख योजन ऊपर बतलाया जाता है। ये भी शुक्रके समान ही शीघ्र, मन्द और समान गतियोंसे सदा चलते हैं। जिस समय सूर्यको लाँघकर ये चल देते हैं, उस समय प्रायः आँधी चलने, बादल होकर इधर-उधर बिखर जाने और अवर्षणकी सूचना प्राप्त होती है। बुधसे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल रहते हैं। यदि ये वक्री न हों तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षोंमें भोगते हैं। देवर्षे ! यों बारह राशियोंमें मङ्गलका भ्रमण होता है। अमङ्गलसूचक होनेके कारण प्रायः सबके लिये यह ग्रह अनिष्ट ही होता है। मङ्गलसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति रहते हैं। यदि ये वक्री न हों तो एक राशिमें वर्षभर रहते हैं। ये प्रायः ब्राह्मण-कुलके अनुकूल रहते हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर भयंकर शनिका स्थान है। यह घोर ग्रह कहलाता है। सूर्य इसके पिता हैं। यह एक-एक राशिमें तीस-तीस महीनेतक भ्रमण करता है। यों इसके द्वारा सम्पूर्ण राशियाँ भोगी जाती हैं। कालज्ञ पुरुषोंका कथन है कि यह ग्रह प्रायः सबके लिये अनिष्टकारक है। नारद ! इससे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल बताया गया है। ये सप्तर्षिगण सम्पूर्ण प्राणियोंका कल्याण करते हुए ध्रुवलोककी, जिसे 'विष्णुपद' कहा जाता है, प्रदक्षिणा करते हैं।

नारद ! सप्तर्षियोंके स्थानसे तेरह लाख योजन ऊपर उत्तम ध्रुवलोक है। इसे विष्णुपद भी कहते हैं। महान् भागवत श्रीमान् ध्रुव यहाँ रहते हैं। इनके पिताका नाम उत्तानपाद है। सारा जगत् ध्रुवको मस्तक झुकाता है। इन्द्र, अग्नि, कश्यप और धर्म—ये सब मिलकर इनको देखते हुए अत्यन्त सम्मानके साथ निरन्तर इनकी प्रदक्षिणा करते हैं। ये ध्रुव कल्पभरके प्राणियोंके जीवनका आधार बनकर इस लोकमें विराजते हैं। काल कभी सोता नहीं। इसके

वेगको सब नहीं देख सकते। इस प्रभावशाली कालसे प्रेरित होकर ग्रह, नक्षत्र आदि सभी ज्योतिर्गण निरन्तर घूमते रहते हैं। परमेश्वरने ध्रुवको स्तम्भके रूपमें नियुक्त कर रखा है। देवताओंसे सुपूजित ये ध्रुव स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित रहते हैं। जिस प्रकार खलिहानके खंभेमें बँधे हुए बैल चारों ओर घूमते हैं, इसी प्रकार इन भगण आदि समस्त ग्रहोंकी भी गति है। कालचक्रमें नियुक्त होकर ये क्रमशः भीतर और बाहर घूमते रहते हैं। ध्रुवका आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे पूरे कल्पभर ये इस प्रकार चक्कर लगाते हैं, जैसे बाज आदि पक्षी आकाशमें विचर रहे हों। यों चक्कर काटनेवाले सम्पूर्ण ग्रहोंका प्रकृति और पुरुषसे संयोग सुलभ है। अतः उनकी कृपासे ये जमीनपर नहीं गिरते हैं।

नारद ! कुछ लोग तो भगवान् श्रीहरिकी योगमायाके आधारपर स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमारके रूपमें वर्णन करते हैं। मुने ! वे कहते हैं—यह शिशुमार कुण्डली मारे बैठा है। इसका सिर नीचे है। इसकी पूँछके अग्रभागमें इन उत्तानपादकुमार ध्रुवका आसन है। पूँछके मूलभागमें पवित्रात्मा प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म देवताओंसे सत्कृत होकर विराजते हैं। धाता और विधाता पूँछके अन्तमें तथा सप्तर्षिगण कटिभागमें शोभा पाते हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओर अपने शरीरको मोड़कर बैठा है। उत्तरायण-वाले चौदह नक्षत्र इसके दाहिने भागमें हैं। दक्षिणायनवाले नक्षत्र इसके वामभागमें सुशोभित हैं। नारद ! लौकिक शिशुमार भी जब कुण्डली मारकर बैठता है, तब उसके दोनों पार्श्वभागमें समानसंख्यक अवयव रहते हैं। वैसी ही स्थिति वहाँ भी समझ लेनी चाहिये। इसके पृष्ठभागमें अज वीथी-संज्ञक नक्षत्र अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ—ये तीन नक्षत्र हैं। उदरमें आकाशगङ्गा है। बायें और दाहिने कटिप्रदेशमें पुनर्वसु और पुष्य हैं। पिछले बायें और दायें पैरोंमें आर्द्रा और आश्लेषाका निवास है। बायीं और दाहिनी नासिकाओंमें अभिजित् और उत्तराषाढ नक्षत्र रहते हैं। देवर्षे ! इसके वाम और दक्षिण नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढका स्थान है। धनिष्ठा और मूल दाहिने और बायें कानोंमें रहते हैं। मुने ! दक्षिणायनके मघा आदि जो आठ नक्षत्र हैं, वे वामपार्श्वकी हड्डियोंके स्थानमें हैं। इसी प्रकार उत्तरायणके आठ नक्षत्र इसके ठीक विपरीत-क्रमसे दक्षिणपार्श्वकी हड्डियोंके स्थानपर हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा दाहिने तथा बायें कंधोंकी जगह हैं। ऊपरकी ठोडीमें अगस्त्यका, नीचेकी ठोडीमें यमराजका, मुखमें मंगलका और जननेन्द्रियमें शनिका स्थान कहा गया है। ककुद्पर बृहस्पति, छातीपर ग्रहराज सूर्य, हृदयमें भगवान् नारायण तथा मनमें चन्द्रमा विराजते हैं। दोनों स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमारोंका तथा नाभिमें शुक्रका स्थान कहा जाता है। प्राण और अपानमें बुध तथा गलेमें राहु एवं केतु रहते हैं। ऐसे ही सभी अङ्गोंमें और रोमकूपोंमें नक्षत्रमण्डल कहे गये हैं।

नारद ! भगवान् विष्णुका यह सर्वदेवमय दिव्य विग्रह है। संयमशील पुरुष प्रतिदिन सायं-कालके समय मौन रहकर यत्नपूर्वक इस रूपका ध्यान करे तथा ध्यान करते समय इस मन्त्रका जप करना चाहिये—'ॐ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषाम्पतये महापुरुषायाभिधीमहि।' भगवन् ! आप सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय,

कालचक्ररूपसे विराजमान, देवताओंके अधिष्ठाता तथा परमपुरुष हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। ग्रह, नक्षत्र और ताराओंके रूपमें भगवान्‌का जो यह आधिदैविक रूप है, इसका तीनों समय जप करनेवाले पुरुष पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। अथवा जो तीनों कालोंमें इनको नमस्कार करता है, उसका उस समयका पाप तुरंत नष्ट हो जाता है।

सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल कहा गया है। सिंहिकाके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई है। योग्यता न होनेपर भी यह नक्षत्रकी भाँति विचरता है। चन्द्रमा और सूर्यने तो इसे मार डालनेका ही प्रयत्न किया था; किंतु भगवान् विष्णुकी कृपासे इसने अमरत्व और ग्रहत्व प्राप्त कर लिया। तपते हुए सूर्यका जो यह बिम्ब दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका विस्तार दस हजार योजन है। चन्द्रमा बारह हजार योजनके विस्तारमें हैं। तेरह हजार योजनके विस्तारवाला यह राहु-ग्रह सूर्य और चन्द्रमाके बिम्बको ढकनेका प्रयास निरन्तर करता था; क्योंकि पूर्व समयका वैर इसे भूला नहीं था—ऐसा समझना चाहिये। इतनी दूरीसे भी सूर्य और चन्द्रमाके बिम्बको ढकनेके लिये राहु तत्पर रहता है—यह सुनकर भगवान् विष्णुने दोनोंके पास अपना सुदर्शनचक्र भेज दिया। उस भयंकर चक्रमें असीम ज्वाला थी। उसके दुःसह तेजसे सूर्य और चन्द्रमाका मण्डल चारों ओरसे घिरा रहता है। राहु पास तो जा नहीं सकता। वह इनके बिम्बोंके सामने दूर ही रुक जाता है। फिर तुरंत लौट पड़ता है। देवर्षे ! इसी स्थितिको जगत्‌में उपराग (ग्रहण) कहते हैं—यह जाननेका विषय है।

नारद ! राहुसे नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके परम पावन लोक कहे गये हैं। इन लोकोंका विस्तार दस हजार योजन बताया जाता है। यहाँ पुण्यात्मा पुरुष निरन्तर निवास करते हैं। देवर्षे ! इन लोकोंके नीचे यक्षों, राक्षसों, भूतों, प्रेतों एवं पिशाचोंकी श्रेष्ठ विहारस्थली है। इसके नीचे जहाँतक वायु चलती है और बादल दिखायी पड़ते हैं, उसे परम ज्ञानी पुरुषोंने 'अन्तरिक्षलोक' कहा है। द्विजवर ! इसके नीचे सौ योजनकी दूरीपर वह पृथ्वी बतायी जाती है, जहाँतक गरुड़, बाज, सारस और हंस आदि पक्षी उड़ सकते हैं। ये सब पार्थिव पदार्थ हैं। यों पृथ्वीके परिमाण और स्थितिका वर्णन किया गया है।

देवर्षे ! इस पृथ्वीके नीचे सात भू-विवर बताये जाते हैं। प्रत्येक विवरकी लम्बाई और ऊँचाई एक हजार योजन है। ये सभी विवर दस-दस हजार योजनकी दूरीपर हैं। ये भू-विवर सभी ऋतुओंके लिये सुखप्रद हैं। विप्रवर नारद ! इनमें पहलेको अतल, दूसरेको वितल, तीसरेको सुतल, चौथेको तलातल, पाँचवेंको महातल, छठेको रसातल और सातवेंको पाताल कहते हैं। इस प्रकार ये सातों विवर प्रसिद्ध हैं। ये विवर एक प्रकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें कहीं-कहीं तो स्वर्गसे भी अधिक सुखकी सामग्रियाँ हैं। ये विषय-भोग, ऐश्वर्य, सुख एवं समृद्धिके भवन हैं। इनमें अनेकों उद्यान हैं, विहार-स्थलियाँ हैं। जहाँ-तहाँ सुख एवं स्वादका अनुभव होता है। वहाँ रहनेवाले बलशाली दैत्य, दानव एवं नाग अपने स्त्री, पुत्र तथा बान्धवोंके साथ निरन्तर आनन्द करते हैं। वे अपने घरके स्वामी होते हैं। अनुचरों और

सुहृदोंका समाज उनके पास रहता है। ईश्वरकी कृपासे उनकी प्रायः कोई कामना अधूरी नहीं रहती। वे माया जानते हैं। सभी ऋतुओंमें सुखसे सम्पन्न होकर निवास करते हैं। सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं।

उन भू-विवरोंके मायावी वैज्ञानिक मय दानवने बहुत-सी पुरियोंका निर्माण किया है। वे पुरियाँ श्रेष्ठ मणियों, अत्यन्त अद्भुत सहस्रों भवनों तथा अट्टालिकाओंसे सुशोभित हैं। सभाभवन, मन्दिर और प्राङ्गण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे पुरियाँ देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। स्थान-स्थानपर उन्हें विचित्रतासे सजाया गया है। नाग और असुर अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ विहार करते हैं। कबूतर और मैना आदि पक्षी इन पुरियोंको मनोहर बना रहे हैं। विवरके स्वामियोंने उन पुरियोंमें विशाल भवन बनवा रखे हैं। उनसे अलंकृत होकर वे पुरियाँ अत्यन्त प्रकाशित हो रही हैं। वहाँ मनको मुग्ध करनेवाले बहुत-से बड़े-बड़े बगीचे हैं। उन बगीचोंके वृक्ष फूलों और फलोंसे सदा लदे रहते हैं। वहाँ स्त्रियोंके विलासोपयोगी बहुत-से स्थान हैं। अतः उद्यानोंकी शोभा अधिक बढ़ गयी है। अनेक प्रकारके पक्षियोंसे युक्त अगाध जलवाले बहुत-से जलाशय हैं। जल बिलकुल स्वच्छ है। पाठीन नामकी मछलियाँ उन्हें सुशोभित कर रही हैं। इन जलचर जन्तुओंके उछलनेसे जब जल क्षुब्ध हो जाता है, तब कुमुद, कल्हार तथा श्वेत, नील और रक्तवर्णके कमल हिलने लगते हैं। वहाँ स्थान बनाकर रहनेवाले पक्षी अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करते तथा इन्द्रियोंको उत्साहित करनेके लिये भाँति-भाँतिकी मीठी बोली बोलते रहते हैं। उस स्थानपर देवताओंका श्रेष्ठ ऐश्वर्य किसी गिनतीमें नहीं रहता। वहाँके निवासी कभी भयभीत नहीं होते। बड़े-बड़े सर्पोंके मस्तकोंकी मणियाँ वहाँ निरन्तर इतनी अधिक चमकती रहती हैं कि उनके तेजसे अन्धकार ठहर ही नहीं सकता। वहाँके निवासियोंको दिव्य ओषधि, रसायन पदार्थ, रस, अन्नपान एवं स्नान आदिकी कोई आवश्यकता नहीं रहती है। उन्हें रोग कभी होते ही नहीं हैं। बाल पकने, झुर्रियाँ पड़ने, बुढ़ापा आ जाने, शरीर विरूप होने, पसीना आने, दुर्गन्ध निकलने, थकावट एवं शिथिलता आने आदिके रूपमें वृद्धावस्थाके लक्षण कभी उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाते। उनका समय सदा मङ्गलमय बीतता है। भगवान् श्रीहरिके परम तेजस्वी सुदर्शनचक्रके सिवा उन्हें अन्य किसीसे भी मृत्युका भय नहीं रहता है। नारद! जब सुदर्शनचक्र पुरीमें पहुँचता है, तब प्रायः भयभीत होनेके कारण राक्षसियोंके गर्भ गिर जाते हैं। (अध्याय १६—१८)

☆

## अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पातालका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! अतल नामसे विख्यात प्रथम विवर परम मनोहर है। इस विवरमें बल नामक दानव रहता है। इस अत्यन्त अभिमानी दैत्यके पिताका नाम मय है। इसने छियानबे प्रकारकी मायाएँ रची हैं, जिनसे सभी कामनाओंकी सिद्धिमें सहायता मिलती है। मायावी लोग उनमेंसे कुछ मायाओंको तुरंत समझ जाते हैं। वह बलवाला दैत्य बड़ा पराक्रमी है।

नारद! अब वितल नामवाले दूसरे

विवरका प्रसंग सुनो। यह विवर अतलसे नीचे है। यहाँ हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शंकर रहते हैं। ये अपने पार्षदोंको सदा साथ रखते हैं। ब्रह्माकी बनायी हुई सृष्टिको बढ़ाना इनके रहनेका प्रधान उद्देश्य है। देवताओंसे सुपूजित होकर ये भवानीके साथ विराजते हैं। वहाँ भगवान् शंकर और पार्वतीके तेजसे हाटकी नामक एक श्रेष्ठ नदी निकली है। वायुकी प्रेरणासे प्रचण्ड अग्नि उत्साहपूर्वक उसका जल पीते रहते हैं। जल पीते समय अग्निदेव जो जल थूक देते हैं, वही हाटक नामसे प्रसिद्ध सुवर्ण बन जाता है। दैत्य उससे बहुत प्रेम करते हैं। उनकी स्त्रियाँ उसके आभूषण बनवाकर सदा पहना करती हैं।

नारद ! इस वितलके नीचे सुतल नामक विवर कहा गया है। यह सुतल सभी विवरोंसे श्रेष्ठ माना जाता है। यहाँ विरोचनकुमार बलि रहते हैं। बलि बड़े यशस्वी पुरुष हैं। देवराज इन्द्रका परम प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीहरि वामनरूपसे प्रकट हुए थे। उन्होंने ही बलिके इस लोकमें रहनेकी व्यवस्था की है। भगवान्ने पहले तीनों लोकोंकी सम्पत्ति यहाँ भेज दी। तत्पश्चात् दानवराज बलिको यहाँ बसाया। जिसे इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सकते, वह अमित लक्ष्मी इनके पास है। बलि उन्हीं देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं। इनका विचार सदा पवित्र रहता है। इस समय भी सुतललोकमें बलिका आधिपत्य है। नारद ! महात्मा पुरुषोंका कथन है कि भगवान् वासुदेवमें समस्त पुरुषार्थ प्रदान करनेकी पूर्ण योग्यता है। ये अखिल जगत्के स्वामी श्रीहरि कहलाते हैं। ये दानपात्र बनकर बलिके पास पधारे और बलिने इन्हें सारी पृथ्वी दान कर दी। अवश्य ही उस दानके फलस्वरूप सुतललोकका राज्य मिल जाना ही सर्वथा समुचित नहीं माना जा सकता; क्योंकि यदि कोई इन देवाधिदेवके नामका विवश होकर भी उच्चारण कर लेता है तो वह अपने कर्मरूपी बन्धनकी रस्सियोंको अनायास ही काट देता है। ये भगवान् सम्पूर्ण संसारके निपुण शासक हैं। योगी पुरुष क्लेशरूपी बन्धनको काटनेके लिये निरन्तर सांख्य, योग आदि साधन करते हैं। ऐसे प्रभुके द्वारा बलिको सुतललोकका दान कोई उदारता नहीं कही जा सकती। नारद ! हम-लोगोंपर भगवान्की यह कृपा समझनी चाहिये। उन्होंने भोगोंके मायामय ऐश्वर्य इन्द्रको देनेके लिये यह प्रयत्न किया था। यह ऐश्वर्य सम्पूर्ण क्लेशोंका हेतु है। इसके आ जानेपर परमात्माका स्मरण मनसे दूर हो जाता है। भगवान् विष्णु साक्षात् ईश्वर हैं। उन्हें समस्त उपायोंका सहज ही पूर्ण ज्ञान है। छलपूर्वक याचना करके उन्होंने बलिका सर्वस्व छीन लिया। केवल देहमात्र छोड़ दी। कारण, दूसरा कोई उपाय उस समय सुलभ नहीं था। भगवान् सर्वसमर्थ तो हैं ही। वे वरुणके पाशोंसे बाँधकर बलिको इस सुतललोकमें ले गये और उन्होंने उसे वहीं बसा दिया। उस समय बलिने अपना उद्गार इस प्रकार प्रकट किया था—

'बृहस्पतिके सदृश मन्त्री पाकर भी वे इन्द्र बड़े ही नासमझ प्रतीत होते हैं। इसीलिये उन्होंने इन परम प्रसन्न श्रीहरिसे सांसारिक सम्पत्तिकी याचना की। भला, यह त्रिलोकीका ऐश्वर्य कितना नगण्य और तुच्छ है। भगवान्के आशीर्वादकी अपार महिमा है। उसे छोड़कर

संसारकी सम्पत्तिमें प्रेम रखनेवाला अवश्य ही मूर्ख है। मेरे पितामह श्रीमान् प्रह्लादजी भगवान्‌से बहुत प्रेम रखते थे; सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण करना ही उन्हें अभीष्ट था। अतएव उन्होंने भगवान्‌से यही वर माँगा कि मेरे हृदयमें दास्यभक्तिका उदय हो। उनके पिता वीर पुरुष थे। उनकी जीवनलीला समाप्त हो जानेपर भगवान् विष्णु उनकी अतुल सम्पत्ति मेरे पितामह प्रह्लादजीको दे रहे थे; किंतु भगवत्प्रेमी मेरे पितामहजीने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। भगवान्‌के प्रभावकी तुलना नहीं की जा सकती। वे अखिल जगत्‌की उपाधिसे सम्पन्न हैं। मुझ-जैसा दोषोंका भण्डार व्यक्ति भला उनके प्रभावको कैसे जान सकता है।'

इस प्रकारके विचार-सम्पन्न परम आदरणीय वे दानवराज बलि अब भी सुतल-लोकमें विराजमान हैं। स्वयं भगवान् श्रीविष्णुने उनका द्वारपाल होना स्वीकार कर लिया है। एक समयकी बात है—जगत्‌को रुलानेवाला रावण दिग्‌विजयी होनेके विचारसे सुतललोकमें प्रवेश कर रहा था। इतनेमें भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् श्रीहरिने अपने पैरके अँगूठेसे उसे ऐसा झटका दिया कि वह दस हजार योजन दूर चला गया। बलि ऐसे परम उदार श्रेष्ठ पुरुष हैं। सम्पूर्ण सुख भोगनेका सुअवसर उन्हें प्राप्त है। देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी कृपासे वे सुतललोकके राजा होकर विराजमान हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सुतललोकके नीचेके विवरको 'तलातल' कहा जाता है। वहाँ दानवराज मय रहता है। यह महान् दैत्य 'त्रिपुर' नामक नगरका स्वामी रहा है। त्रिलोकीकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने इसकी तीनों पुरियाँ भस्म करके इसके यहाँ रहनेकी समुचित व्यवस्था कर दी थी। देवाधिदेव भगवान् शंकरकी कृपासे इसे यहाँ सुखदायी राज्य प्राप्त हो गया है। यह मायावियोंका गुरु है। इसे अनेक प्रकारका माया-सम्बन्धी विज्ञान भलीभाँति ज्ञात है। सम्पूर्ण कार्योंमें सिद्धि पानेकी इच्छासे भयंकर दानवगण निरन्तर इसका सम्मान-सत्कार करते हैं।

इस तलातलके नीचे परम प्रसिद्ध 'महातल' नामक विवर है। इस विवरमें कद्रूके वंशज क्रोधवश आदि सर्पोंका समाज रहता है। नारद ! इन सर्पोंके बहुत-से मस्तक होते हैं। इनमें प्रधान सर्पोंके नाम तुम्हें बताता हूँ—कुहक, तक्षक, सुषेण और कालिया। इनके बड़े-बड़े फण होते हैं। इनके शरीरमें असीम शक्ति होती है। ये बड़े भयानक होते हैं। इनकी जाति ही भयंकर है। पक्षिराज गरुड़से ये सब प्रायः उद्विग्न रहते हैं। ये सब भाँति-भाँतिसे क्रीड़ा रचनेकी कला जानते हैं। अपनी स्त्रियों, बालकों, सुहृदों और सम्बन्धियोंके साथ सदा आनन्दमग्न होकर ये विहार करते हैं।

इस महातलके नीचेके विवरको 'रसातल' कहते हैं। इस विवरमें बहुत-से दैत्य निवास करते हैं। जो 'पणि' नामसे विख्यात थे, उन दानवोंकी यही बस्ती है। ये दानव निवातकवच, हिरण्यपुरवासी और कालेय नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्हें देवताओंसे सदा शत्रुता बनी रहती है। जन्मसे ही ये महान् पराक्रमी होते हैं। इनमें असीम साहस रहता है। परंतु अखिल जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीहरिके तेजसे इनकी शक्ति कुण्ठित रहती है। अतः बिलमें सोये हुए सर्पोंकी भाँति ये सदा अपने विवरमें ही छिपे रहते हैं।

इन्द्रकी एक दूतीका नाम सरमा है। उसने बहुत-से मन्त्रोंका आविष्कार किया था। उन मन्त्रोंके प्रभावसे बहुत-से असुर महान् दुःख भोग चुके हैं। इस बातको याद करके ये लोग सदा भयभीत रहते हैं।

नारद ! इस रसातलके नीचे 'पाताललोक' है। यहाँ नागलोकके स्वामी बहुत-से सर्प रहते हैं। उनमें वासुकि सबसे प्रधान माना जाता है। उनके नाम हैं—शङ्ख, कुलिक, श्वेत, धनञ्जय, महाशङ्ख, धृतराष्ट्र, शङ्खचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त। इनके बहुत बड़े-बड़े फण हैं। ये बड़े क्रोधी और महान् विषधर हैं। इनमेंसे कितने ही सर्प पाँच, सात, दस, सौ एवं हजार मस्तकोंसे सुशोभित हैं। उनके मस्तककी मणियाँ सदा जगमगाती रहती हैं। देवर्षे ! वे सर्प अपनी मणियोंके तेजसे पातालके घोर अन्धकारको नष्ट कर देते हैं। क्रोधसे उनका शरीर सदा जलता रहता है।

नारद ! इस पाताललोकके नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर भगवान् श्रीहरिकी एक तामसी कला विराजती है। सम्पूर्ण देवताओंसे सुपूजित इस कलाका नाम 'अनन्त' है। इस नित्यकलामें विशेषता यह है कि अहंकाररूपा होनेसे यह द्रष्टा और दृश्यको खींचकर एक कर देती है। अतएव इसे 'संकर्षण' कहते हैं। सहस्र मस्तकसे शोभा पानेवाले भगवान् शेष हैं। इन्हें 'अनन्त' कहा जाता है। इनके मस्तकपर टिका हुआ यह गोलाकार भूमण्डल ऐसा दिखायी पड़ता है, मानो सरसोंका दाना हो। जब समयानुसार इन प्रभुके मनमें जगत्के संहारकी इच्छा उत्पन्न होती है, तब इनकी भौंहोंके विवरसे संकर्षण नामक रुद्र प्रकट हो जाते हैं। ग्यारह रुद्रोंसे सुशोभित उनका यह एक व्यूह है। ये रुद्र तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं। ये स्वयं तीन नोकवाले त्रिशूलको हाथमें लेकर खड़े रहते हैं। इनकी शक्तिकी सीमा नहीं है। महान् भूतोंका अर्थात् समस्त जगत्का संहार ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है।

मुने ! भगवान् शेषनागके दोनों चरण-कमलोंके नख लाल मणिके समान परम सुन्दर हैं। जब बहुत-से नागराज एकान्त भक्तिसे भावित होकर प्रधान-प्रधान नागोंके साथ भगवान् शेषके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं, तब उन्हें भगवान्के मणिमय नखोंमें स्वयं अपने मणिनिर्मित कुण्डलोंसे प्रकाशित मुख एवं सुन्दर कपोल तथा गण्डस्थल दीखने लगते हैं। वहाँ नागराजोंकी बहुत-सी कुमारियाँ भी रहती हैं। उनके सुन्दर अङ्ग शरीरकी कान्ति बढ़ाया करते हैं। उनकी भुजाएँ पर्याप्त लम्बी, मोटी, सुन्दर, स्वच्छ एवं मनोहर होती हैं। उनसे वे परम सुशोभित होकर इधर-उधर घूमा करती हैं। चन्दन, अगुरु और कस्तूरीके आलेपसे वे अपने शरीरको सजाये रहती हैं। वे भगवान् शेषकी कृपापूर्ण दृष्टि तथा उनके आशीर्वादकी आशा लगाये वहाँ निवास करती हैं।

भगवान् अनन्तका हृदय अत्यन्त उदार है। उनके बल एवं पराक्रमका परिमाण नहीं किया जा सकता। उन आदिदेव परम तेजस्वी प्रभुमें अनन्त गुण वर्तमान हैं। जगत्का कल्याण करनेके लिये उन्होंने अमर्ष और क्रोधके वेगको दूर कर दिया है। ऐसे महान् शक्तिके परम आश्रय भगवान् वहाँ विराजते हैं। सभी देवता उनकी उपासनामें संलग्न रहते हैं। देवताओं, सिद्धों, असुरों, नागों, विद्याधरों, गन्धर्वों और

मुनियोंद्वारा निरन्तर उनका ध्यान किया जाता है। उनके नेत्र प्रेमके मदसे मुग्ध एवं विह्वल रहते हैं। अपनी अमृतमयी वाणीसे देवताओं तथा अपने पार्षदोंको भी परम संतुष्ट करना उन प्रभुका स्वभाव ही बन गया है। वे गलेमें वैजयन्तीमाला पहनते हैं। उनकी वह माला कभी कुम्हला न सकनेवाले तुलसीके निर्मल नवीन दलोंसे सुशोभित है। मतवाले भौंरोंका झुंड अपनी मधुर गुंजारसे सदा उसकी शोभा बढ़ाया करता है। वे देवाधिदेव भगवान् शेष नीले रंगका वस्त्र पहनते हैं। केवल एक कानमें कुण्डल धारण करते हैं। उनकी अविनाशी अत्यन्त विशाल भुजा हलके ककुद्पर शोभा पाती है। श्रेष्ठ पुरुषोंका कथन है कि ये भगवान् शेष परम प्रधान देवता हैं। इनका हृदय अत्यन्त उदार है। सुवर्णमयी पृथ्वी इनके ऊपर इस प्रकार सुशोभित है, जैसे मतवाले हाथीकी पीठपर हौदा हो। (अध्याय १९-२०)

☆

## नारदद्वारा भगवान् अनन्तका यशोगान तथा नरक-नामावली

भगवान् नारायण कहते हैं—महाभाग नारद सनातन पुरुष हैं। उन्हें ब्रह्माका मानसपुत्र कहा जाता है। एक समय वे ब्रह्माकी सभामें गये और भगवान् अनन्तकी आराधना करते हुए उनकी महिमा गाने लगे—'जिनका दर्शन पाकर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंमें अपने कार्य करनेकी क्षमता प्राप्त होती है तथा जिनका रूप अनन्त एवं अनादि है और जो अपनेमें प्रपञ्चात्मक नाना प्रकारके जगत्को धारण किये हुए हैं, उन भगवान् संकर्षणके रहस्यको भला, कोई कैसे जान सकता है? जिनमें यह सदसदात्मक अर्थात् कार्य-कारणभूत समस्त प्रपञ्च भास रहा है तथा स्वजन व्यक्तियोंको वशीभूत करनेके लिये की हुई जिनकी पराक्रम-पूर्ण लीलाको मृगराज सिंहने अपनाया है, उन भगवान् संकर्षणने हमपर विशेष कृपा करके यह परम शुद्ध सात्त्विक स्वरूप धारण किया है। कोई दुःखी अथवा पतनोन्मुख व्यक्ति अनायास हँसीके रूपमें भी यदि उनके सुने हुए नामका एक बार उच्चारण कर लेता है तो उसके अशेष पाप नष्ट हो जाते हैं—फिर, ऐसे भगवान् शेषको छोड़कर मुमुक्षु पुरुष दूसरे किस देवताकी शरणमें जायँ? इन भगवान् शेषके सहस्र मस्तक हैं। अनन्त होनेके कारण इन्हें अमित-पराक्रमी कहा जाता है। पर्वतों, नदियों, समुद्रों एवं समस्त प्राणियोंसे सुशोभित यह भूमण्डल इनके एक मस्तकपर इस प्रकार ठहरा हुआ है, मानो धूलका एक सूक्ष्म कण हो। किसीके हजार जीभ भी हों, तब भी वह इन सर्वव्यापी प्रभुके प्रभावका वर्णन नहीं कर सकता। ऐसी अनुपम शक्तिसे शोभा पानेवाले भगवान् अनन्तके वीर्य, अतिशय गुण और प्रभावकी सीमा नहीं की जा सकती। ये रसातलके मूल-भागमें परम स्वतन्त्र होकर विराजमान हैं। चराचर जगत्की स्थिति बनी रहे—एतदर्थ इन्होंने लीलापूर्वक पृथ्वीको धारण कर रखा है।

मुनिवर! मनुष्योंके जैसे कर्म होते हैं, उन्हींके अनुसार उनको ऊँच-नीच गतियोंकी प्राप्ति होती है। इन्हें कर्मका परिपाक कहा गया है। तुम यदि जानना चाहते हो तो मैं बतानेके लिये तैयार हूँ; तुम यह प्रसंग सुन सकते हो।

नारदजीने कहा—भगवन् ! आप प्राणियोंकी विचित्र गतियोंके यथार्थ रहस्यको हमें सुनानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! कर्ताकी श्रद्धाके अनुसार ही गतियाँ भी पृथक्-पृथक् हुआ करती हैं। श्रद्धामें भी सदा तीन प्रकारके भेद होते हैं। अतः उनके फलमें भी विभिन्नता होना स्वाभाविक है। कर्तामें यदि सात्त्विक श्रद्धा हो तो कर्मके फलस्वरूप उसे सुखप्रद गति मिलती है। राजसी श्रद्धा होनेसे वह कष्टप्रद गतिका अधिकारी होता है। तामसी श्रद्धाके प्रभावसे कर्ता दुःखी और मूर्ख बन बैठता है। यों श्रद्धाके तारतम्यसे फलमें भी विचित्रता बतलायी गयी है। द्विजवर ! माया अनादि है। इसके बनाये हुए कर्म ही गतियोंके उत्पादक हैं। ये गतियाँ सहस्रोंकी संख्यामें हैं। नारद ! त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें अग्निष्वात्त नामक पितृगण तथा अन्य पितर भी निवास करते हैं। यह स्थान पृथ्वीसे नीचे और अतललोकसे ऊपर है। ये सत्यस्वरूप हैं। ये परम समाधि लगाकर इस प्रकारकी आशा लगाये बैठे रहते हैं कि शीघ्र हमारे वंशजोंका कल्याण हो जायगा। वहीं पितरोंके स्वामी भगवान् यमराज भी रहते हैं। उन्होंने अपना कार्य सम्पादन करानेके लिये बहुत-से पुरुषोंको नियुक्त कर रखा है। उनके द्वारा नियुक्त वे पुरुष मरे हुए प्राणियोंको वहाँ ले जाते हैं। भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार दण्डविधान करना यमराजका प्रधान कर्तव्य है। अपने गणोंके साथ रहकर वे विचारपूर्वक कर्म और दोषके अनुसार प्राणियोंको यथोचित दण्ड दिया करते हैं। वे परम ज्ञानी हैं। अपने गणोंको सदा सावधान करते रहते हैं। यथास्थान नियुक्त उनके समस्त गण भी धर्मके रहस्यसे पूर्ण परिचित तथा परम आज्ञाकारी हैं।

नारद ! नरकोंकी संख्या इक्कीस बतायी गयी है। कुछ लोग कहते हैं कि इनकी संख्या अट्ठाईस है। मैं क्रमशः इनका वर्णन करता हूँ—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्र, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटारोध, पर्यावर्तन और सूचीमुख। इन नामवाले अट्ठाईस नरकोंको यातना भोगनेका स्थान कहा जाता है। प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार इनमें यातना-शरीर प्राप्त करके जानेको बाध्य होते हैं।

(अध्याय २१)

☆

## तामिस्र आदि नरकोंका वर्णन

नारदजीने कहा—सनातन मुने ! जिनके फलस्वरूप इन नरकोंकी प्राप्ति अनिवार्य है, वे विविध कर्म कौन-से हैं ? इस प्रसंगको मैं सम्यक् प्रकारसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! जो दूसरेके धन, स्त्री और पुत्रका अपहरण करता है, उस दुरात्माको यमराजके दूत पकड़कर ले जाते हैं। उन दूतोंकी आकृति बड़ी भयंकर होती है। उनके द्वारा कालपाशमें बँधा हुआ प्राणी यातना भोगनेके लिये 'तामिस्र' नामक नरकमें गिरता

है। यमदूत हाथमें रस्सी लेकर प्राणीको पीटते हैं, उसे घुड़कते हैं और तरह-तरहके दण्ड दिया करते हैं। उस जीवको महान् क्लेश भोगना पड़ता है।

जो पुरुष किसी स्त्रीके पतिको धोखेमें डालकर स्वयं उसके साथ समागम करता है, यमराजके दूत उसको 'अन्धतामिस्र' नामक नरकमें गिराते हैं। वहाँ गिरे हुए जीवको असह्य वेदना सहनी होती है। उसके नेत्र अन्धे हो जाते हैं। बुद्धि जवाब दे देती है। जड़ कटे हुए वृक्षकी भाँति नरकमें गिरते उसे किञ्चिन्मात्र देर नहीं लगती। इन्हीं विशेषताओंके कारण प्राचीन पुरुषोंने इस नरकका नाम 'अन्धतामिस्र' रखा है।

'यह मेरा है और यह मैं हूँ'—यों ममत्व रखकर जो दूसरेसे द्वेष करता हुआ प्रतिदिन केवल अपने ही परिवारके भरण-पोषणमें व्यस्त रहता है, वह प्राणी मृत्युके पश्चात् अपने अशुभ कर्मके प्रभावसे 'रौरव' नामक नरकमें गिरता है। यह नरक सभी प्राणियोंके लिये भयावह है। इस लोकमें पुरुषके हाथ जिन प्राणियोंकी हिंसा हो गयी है, वे सब भयंकर रुरु नामक जानवर बनकर नरकमें रहते हैं। जब मारनेवाला प्राणी मरकर उस नरकमें पहुँचता है, तब वे उसे अत्यन्त क्लेश देते हैं। इसी विशेषताके कारण पुराणज्ञ विद्वान् पुरुषोंने इसे 'रौरव' कहा है। प्राचीन पुरुष बता चुके हैं कि यह रुरु नामक जानवर सर्पसे भी अधिक भयंकर होता है। इसी प्रकार 'महारौरव' भी है। यातना भोगनेके लिये दूसरा सूक्ष्म यातना-शरीर पाकर प्राणी उस 'महारौरव' में जाता है। मांस खानेवाले रुरु नामक जानवर उस नारकी जीवके मांसमें बहुत बुरी तरह चोट पहुँचाते हैं।

नारद ! जो उग्र स्वभाववाला मूर्ख एवं निर्दयी पुरुष पशु-पक्षी आदि जीवोंको मारकर पकाता है, उसे यमराजके दूत 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें—जहाँ सदा तैल खौलता रहता है—डालकर पकाते हैं। मारे जानेवाले पशुके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मारनेवाला व्यक्ति इसी कुम्भीपाकमें पचता है। पिता और ब्राह्मणसे वैर करनेवाले प्राणीको नारकी कहते हैं। ऐसा व्यक्ति सूर्य एवं अग्निसे सदा संतप्त रहनेवाले 'कालसूत्र' नामक नरकमें स्थान पाता है। उसके भीतर भूख और प्यासकी ज्वाला धधकती रहती है और बाहरसे उसके शरीरको सूर्य एवं अग्निका प्रचण्ड ताप जलाता रहता है। वह अत्यन्त घबराकर कभी बैठता, कभी लेटता, कभी कोई चेष्टा करता, कभी उठकर खड़ा होता और कभी दौड़ने लगता है।

देवर्षे ! किसी विपत्तिका काल न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डका आश्रय लेता है, उस पापी व्यक्तिको यमदूत 'असिपत्र' नामक नरकमें डाल देते हैं। वे जब उसे कोड़ोंसे मारते हैं, तब वह नारकी जीव अत्यन्त उतावला होकर बड़ी तेजीसे इधर-उधर भागने लगता है। ऐसी स्थितिमें 'असिपत्र' से उसका सारा शरीर छिद जाता है। उस असिपत्रमें दोनों ओर तेज धार रहती है। सम्पूर्ण शरीर छिद जानेपर 'हाय ! मैं मारा गया' वह यों चीख उठता है। अपार कष्ट भोगनेसे वह प्राणी पद-पदपर गिरने लगता है। इस प्रकार अपने धर्मसे विमुख होकर पाखण्डका आश्रय लेनेवाले मूर्ख प्राणीको अपने कुकर्मका फल भोगना पड़ता है।

जो पुरुष राजा अथवा राजकर्मचारी होकर

अधर्मपूर्वक शासन करता तथा ब्राह्मणको भी शारीरिक दण्ड देता है, वह नरकका अधिकारी पापी व्यक्ति यमराजके दूतोंद्वारा 'शूकरमुख' नामक नरकमें गिराया जाता है। बलवान् यमदूत उसके अङ्गोंको ईखकी भाँति कोल्हूमें पेरते हैं। वह असह्य पीड़ाके कारण आर्तस्वरसे चिल्लाता रहता है। यों उस प्राणीको अपने कुकर्मके फलस्वरूप अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

नारद ! मच्छर एवं खटमल प्रभृति जन्तु मनुष्यका रक्त चूसते हैं; परंतु वे तो दूसरेकी पीड़ाको स्वयं समझ नहीं सकते। पर जो मनुष्य अन्य व्यक्तियोंकी व्यथासे परिचित है, वह यदि उन्हें कष्ट पहुँचाता है तो उस कुकर्मके फलस्वरूप उसे 'अन्धकूप' नामक नरकमें गिरना पड़ता है। वह नरक बिलकुल अन्धकारमय है। वैर चुकानेवाले पशु, पक्षी, मृग, सर्प, मच्छर, जूँ, खटमल, मधुमक्खी तथा द्वन्द्वशूक आदि जानवरोंसे वह नरक भरा रहता है। निर्दयी व्यक्ति जब नरकमें पहुँचता है, तब वे जन्तु इसे पीड़ित करने लगते हैं। पीड़ासे ग्रस्त होकर वह व्यक्ति इधर-उधर भागने लगता है, मानो शरीरके भयानक रोगग्रस्त हो जानेपर उसमें रहनेवाला जीव चक्कर काट रहा हो। जो कुछ भी भोज्य-पदार्थ प्राप्त हो, उसे पञ्चयज्ञ करके विभाजित करनेके पश्चात् ही भोजन करना चाहिये—यह शास्त्रोक्त नियम है। जो पुरुष ऐसा नहीं करते, उन्हें 'काक' कहा गया है। इस कुकर्मके फलस्वरूप यमराजके भयंकर दूत उस पापमय प्राणीको 'कृमिभोजन' नामक नरकमें गिराते हैं। इस नरकमें एक लाख योजन विस्तृत एक भयंकर कृमिकुण्ड है। भोजन बनाकर अकेला स्वयं ही खा जानेवाला व्यक्ति कीड़ा होकर इस कुण्डमें वास करता है।

देवर्षे ! विपत्तिकाल न होनेपर भी जो ब्राह्मण अथवा अन्य किसी भी वर्णके लोगोंसे चोरी या जबर्दस्ती करके सोना या रत्न छीन लेता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत 'संदंश' नामक नरकमें गिराते हैं। अग्निके समान संतप्त लोहेके पिण्डोंसे उसे दागते हैं। जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ रमण करता है अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ समागम करती है; उसे यमदूत 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं। फिर लोहेकी बनी जलती हुई स्त्रीकी मूर्तिसे पुरुषको और ऐसे ही जलती हुई लौहमयी पुरुष-मूर्तिसे स्त्रीको आलिङ्गन कराते हैं। जो महान् पापी व्यक्ति पशु आदि समस्त प्राणियोंके साथ व्यभिचार करता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत 'शाल्मली' नामक नरकमें रखते हैं। यह वज्रके समान लौहमय काँटोंसे भरा हुआ नरक है।

नारद ! जो राजा या राजाके कर्मचारी पाखण्डी बनकर धर्मकी मर्यादाका पालन नहीं करते, वे मर्यादाभङ्गरूपी पापके कारण मरनेपर 'वैतरणी' नामक नरकमें जाते हैं। नरकोंकी खाईके समान प्रतीत होनेवाली इस भयानक वैतरणी नामक नदीमें यमराजके दूत उन्हें ढकेल देते हैं। नारद ! इस नरकमें पड़े हुए प्राणीको जलचर जन्तु चारों ओरसे खाया करते हैं। वे प्राणी इधर-उधर भागते हैं, प्राण निकलते नहीं और बाध्य होकर अपने बुरे कर्मके फलको भोगनेके लिये सदा संतप्त रहते हैं। वह नदी मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, हड्डी, नख, चर्बी, मांस और मज्जा आदि अपवित्र वस्तुओंसे भरी रहती है। उसीमें गिरकर वे पापी प्राणी छटपटाते हैं। जो उच्च कुलके होते हुए भी शूद्राके स्वामी

नरकपीड़ा—(१)

नरकपीड़ा—(२)

बन जाते हैं, सदाचारसे विमुख हो निर्लज्जता-पूर्वक पशुवत् व्यवहार करते हैं, उन्हें अत्यन्त कष्टप्रद गतियाँ प्राप्त होती हैं। वे मरनेके बाद 'पूयोद' नामक नरकमें गिरते हैं। वह नरक विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे भरा रहता है। यमराजके क्रूर दूत बड़े दुराग्रहके साथ उस नरकमें पड़े हुए प्राणीको ये अपवित्र वस्तुएँ खानेको विवश करते हैं।

जो द्विजजातिके पुरुष श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेकर कुत्ते और गदहे आदि जानवरोंको पालते हैं, शिकारमें बहुत प्रेम रखते तथा अपवित्र स्थानमें जाकर नित्य मृगोंको मारा करते हैं, ऐसे लाखों अधम प्राणियोंको मरनेके बाद यमदूत 'प्राणरोध' नामक नरकमें गिराकर बाणोंसे छेदते हैं। दुर्नीतिपूर्ण मार्गपर चलनेवाले उन व्यक्तियोंकी बड़ी भारी दुर्दशा होती है। जो दम्भी नीच मनुष्य दम्भके लिये यज्ञका आयोजन करके उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें इस लोकसे जानेपर यमराजके दूत 'विशसन' नामक नरकमें गिराकर असह्य कोड़ोंसे पीटते हैं। जो द्विज कामसे मोहित होकर सगोत्र स्त्रीके साथ समागम करता है, उस मूर्ख व्यक्तिको यमराजके दूत वीर्यसे भरे हुए 'लालाभक्ष' नामक नरककुण्डमें गिराकर बलपूर्वक वीर्य पिलाते हैं। जो चोर, राजा अथवा राजपुरुष आग लगाते, विष देते, दूसरेकी सम्पत्ति नष्ट करते तथा गाँवों एवं धनोंको लूटते हैं, उनकी मृत्यु होनेपर यमराजके दूत उन्हें 'सारमेयादन' नामक नरकमें ले जाते हैं। इस नरकमें सात सौ बीस अत्यन्त विचित्र 'सारमेय' रहते हैं। वे उन नारकी प्राणियोंको काटकर खाते हैं। मुने! इसीलिये इस नरकका नाम 'सारमेयादन' पड़ा है। इसके बाद अब 'अवीचि' आदि प्रमुख नरकोंका वर्णन करूँगा।

भगवान् नारायण कहते हैं—देवर्षे! जो दान और धनके लेन-देनमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते हैं—झूठी गवाही देते हैं, वे पाप-बुद्धि मनुष्य मरनेपर सौ योजनके ऊँचे पर्वत-शिखरसे 'अवीचि' नामक नरकमें गिराये जाते हैं। यह नरक बड़ा ही भयंकर है। इस आधार-शून्य नरकमें प्राणियोंको नीचा सिर किये हुए गिरना पड़ता है। इस नरककी पथरीली भूमि जलके समान दीखती है, इसीसे इसे 'अवीचि' कहते हैं। देवर्षे! वहाँ पत्थर-ही-पत्थर बिछे रहते हैं। उनपर गिरनेसे प्राणियोंका सारा अङ्ग एक-एक तिल छिद जाता है; परन्तु उनकी मृत्यु नहीं होती। अतः वे बाध्य होकर उसीमें पड़े-पड़े कष्ट भोगते हैं।

नारद! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य प्रमादवश मदिरा पीते हैं, उन्हें यमदूत 'अयःपान' नामक नरकमें गिराते हैं और आगसे जलते हुए लोहेके सींकचे उनके मुँहमें घुसेड़ देते हैं। मुने! जो स्वयं नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है, किंतु अभिमानवश जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण या आश्रममें अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका सम्मान नहीं करता, वह पुरुष अधम माना जाता है। मरनेके बाद यमराजके दूत उसका सिर नीचा करके 'क्षारकर्दम' नामक नरकमें गिरा देते हैं। वहाँ वह असह्य पीड़ाओंको भोगता है।

मुनिवर! काममोहित मनुष्य नर-बलिके द्वारा भैरव, यक्ष आदिका यजन करते हैं अथवा जो स्त्रियाँ नरपशुका मांस खाती हैं, वे मरनेके पश्चात् 'रक्षोगण-भोजन' नामक नरकमें गिरते हैं। उन्होंने जिन मनुष्योंको इस लोकमें मारा और खाया है, वे सब-के-सब पहलेसे ही राक्षस होकर यमराजके यहाँ रहते हैं। मुने! जब मारने

तथा खानेवाले वे व्यक्ति उस नरकमें पहुँचते हैं, तब जिस प्रकार वे मारे और खाये जा चुके हैं, ठीक वैसे ही कसाईके रूपमें परिणत होकर वे तीखी कुल्हाड़ियोंसे उनके शरीरको काटते हैं। उससे जो रक्त निकलता है, उसे पीकर अनेक प्रकारसे नाचने और गाने लगते हैं।

नारद ! ग्राममें अथवा जंगलमें रहनेवाले प्रत्येक प्राणीको भी जीवनकी इच्छा रहती है। जिन प्राणियोंका जीवन विश्वस्त व्यक्तियोंपर निर्भर है, उनको उन विश्वस्त व्यक्तियोंमें जो फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और मानो अपने मनोरञ्जनके लिये उनके बदनमें काँटे चुभाकर अथवा रस्सी आदिमें बाँधकर कष्ट देते हैं, उन्हें मरनेपर यमदूतोंकी प्रेरणासे 'शूलप्रोत' नामक नरकमें गिरना पड़ता है। उनके सभी अङ्गोंमें शूल आदि चुभाये जाते हैं। उन्हें भूख और प्यासकी असह्य पीड़ा होने लगती है। कङ्क और बटेर आदि तीखी चोंचवाले पक्षी जहाँ-तहाँ उन्हें नोचते रहते हैं। उस समय उन्हें अपने पूर्वकृत पापोंकी स्मृति होती है।

विप्र ! जो क्रूर स्वभाववाले मनुष्य सर्पोंकी भाँति प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं, वे मृत्युके उपरान्त 'दन्दशूक' नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वह पाँच मुख और सात मुखवाले सर्पोंसे पूर्णतया भरा रहता है। क्रूर स्वभाववाले सर्प बिलोंमें रहते हैं। जब प्राणी वहाँ पहुँचते हैं, तब वे तुरंत उन्हें काटने लगते हैं।

जो पुरुष किसी अन्य व्यक्तिको अँधेरी कोठरी अथवा प्रकाशहीन घरोंमें रहनेके लिये विवश करते हैं, वे इस कुकर्मके फलस्वरूप 'अवटारोध' नामक नरकमें पड़ते हैं। उन पापी मनुष्योंको यमराजके दूत स्वयं अपने हाथसे वैसे ही अन्धकारमय स्थानोंमें रखकर विषैली अग्निके धूएँसे कष्ट पहुँचाते हैं।

जो द्विज स्वयं गृहका स्वामी होकर अपने यहाँ समयपर आये हुए अतिथियोंको पापपूर्ण नेत्रसे इस प्रकार देखता है, मानो उन्हें भस्म ही कर डालेगा, मरनेपर उस पापदृष्टिवाले पुरुषको भी यमराजके सेवक नरकमें ढकेल देते हैं। उस नरकमें काक, कङ्क, वट और गीध आदि बहुत-से क्रूर पक्षी वज्रके समान चोंचोंसे सुशोभित होकर रहते हैं। वे सहसा उस नारकी व्यक्तिकी आँखें निकाल लेते हैं। इस परिवर्तनके कारण ही यह नरक 'पर्यावर्तन' नामसे विख्यात हुआ है।

जो इस जन्ममें अपनेको धनाढ्य मानकर अभिमानमें अत्यन्त चूर हो दूसरोंको टेढ़ी आँखोंसे ही देखता है, जो सबके प्रति शंका किये रहता तथा धन कमाने और खर्च करनेकी चिन्ता जिसके मनसे कभी दूर नहीं होती, जिसका हृदय और मुख सदा सूखता रहता है, जिसे कहीं शान्ति नहीं मिलती तथा जो यक्षकी भाँति धनकी संरक्षामें ही लगा रहता है, वह अधम मनुष्य मरनेके पश्चात् अपने किये हुए बुरे कर्मके प्रभावसे यमराजके दूतोंद्वारा 'सूचीमुख' नामक नरकमें गिराया जाता है। यमराजके अनुचर धनमें चिपके रहनेवाले उस व्यक्तिके सम्पूर्ण अङ्गोंको सूत्रोंसे दर्जियोंकी भाँति सी देते हैं।

देवर्षि नारद ! पाप-कर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना भुगतानेके लिये इस प्रकारके सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें बहुत-से नरक हैं—ऐसा समझना चाहिये। कुछ ही बतलाये गये हैं और बहुतोंका नाम ही नहीं लिया है। मुने ! ये सभी नरक महान् दुःखप्रद हैं। पापी मनुष्योंको इनमें जाना पड़ता है।

धर्मपरायण पुरुष सुखदायी लोकोंमें जाते हैं। मुनिवर ! मैंने जिस प्रकार देवीके पूजनका रूप और आराधनका लक्षण तुम्हें बताया है, प्रायः वही अपना धर्म है। इसके अनुष्ठान-मात्रसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा संसाररूपी समुद्रसे मनुष्योंका उद्धार कर देती हैं।

(अध्याय २२-२३)

☆

## देवीकी उपासनाके प्रसङ्गका वर्णन

नारदजीने पूछा—महाराज ! देवीके आराधनरूपी श्रेष्ठ धर्मका क्या स्वरूप है तथा किस प्रकारसे उपासना करनेपर देवी परमपद प्रदान करती हैं ? पूजाकी क्या विधि है तथा कैसे, कब एवं किस स्तोत्रसे आराधना करनेपर भगवती दुर्गा कष्टप्रद नरकसे मनुष्योंका उद्धार करती हैं ?

भगवान् नारायण कहते हैं—परम विद्वान् देवर्षि नारद ! जिस प्रकार धर्मपूर्वक आराधना करनेपर भगवती स्वयं प्रसन्न हो जाती हैं, वह प्रसंग अब तुम मनको एकाग्र करके मुझसे सुनो। नारद ! यह संसार अनादि है। इसमें आकर जो भगवती जगदम्बाकी उपासना करता है, वह चाहे घोर-से-घोर संकटमें ही क्यों न पड़ा हो; परंतु सर्वशक्तिमयी भगवती स्वयं उसकी रक्षा करनेमें संलग्न हो जाती हैं। अतएव प्राणी सम्यक् प्रकारसे देवीकी पूजा करे। यही उसका परम कर्तव्य है। अब पूजाकी विधि सुनो—

प्रतिपदा तिथिमें भगवती जगदम्बाकी गो-घृतसे पूजा होनी चाहिये—अर्थात् षोडशोपचारसे पूजन करके नैवेद्यके रूपमें उन्हें गायका घृत अर्पण करना चाहिये एवं फिर वह घृत ब्राह्मणको दे देना चाहिये। इसके फलस्वरूप मनुष्य कभी रोगी नहीं हो सकता। द्वितीया तिथिको पूजन करके भगवती जगदम्बाको चीनीका भोग लगावे और ब्राह्मणको दे दे। यों करनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है। तृतीयाके दिन भगवतीकी पूजामें दूधकी प्रधानता होनी चाहिये एवं पूजनके उपरान्त वह दूध ब्राह्मणको दे देना उचित है। यह सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त होनेका एक परम साधन है। चतुर्थीके दिन मालपूआका नैवेद्य अर्पण किया जाय और फिर वह योग्य ब्राह्मणको दे दिया जाय। इस अपूर्व दानमात्रसे ही किसी प्रकारके विघ्न सामने नहीं आ सकते। पञ्चमी तिथिके दिन पूजा करके भगवतीको केला भोग लगाये और वह प्रसाद ब्राह्मणको दे दे; ऐसा करनेसे पुरुषकी बुद्धिका विकास होता है। षष्ठी तिथिके दिन देवीके पूजनमें मधुका महत्त्व बताया गया है। वह मधु ब्राह्मण अपने उपयोगमें लें। इसके प्रभावसे साधक सुन्दर रूप प्राप्त करता है। सप्तमी तिथिके दिन भगवतीकी पूजामें गुड़का नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणको दे देना चाहिये। द्विजवर ! ऐसा करनेसे पुरुष शोकमुक्त हो सकता है। अष्टमी तिथिके दिन भगवतीको नारियलका भोग लगाना चाहिये। फिर नैवेद्यरूप वह नारियल ब्राह्मणको दे देना चाहिये। इसके फलस्वरूप उस पुरुषके पास किसी प्रकारके संताप नहीं आ सकते। नवमी तिथिमें भगवतीको धानका लावा अर्पण करके ब्राह्मणको दे देना चाहिये। इस दानके प्रभावसे पुरुष इस लोक और परलोकमें भी सुखी रह सकता है। मुने ! दशमी तिथिके दिन भगवतीको काले तिलका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। पूजनके पश्चात् वह नैवेद्य ब्राह्मण अपने

काममें ले ले। ऐसा करनेसे यमलोकका भय भाग जाता है। जो एकादशीके दिन भगवतीको दहीका भोग लगाकर ब्राह्मणको दे देता है, उसपर भगवती जगदम्बा परम संतुष्ट होती हैं। मुनिवर ! द्वादशीके दिन पूजनमें चिउड़ेका महत्त्व है। जो उस दिन भगवतीको चिउड़ा भोग लगाकर ब्राह्मणको बाँट देता है, उसे भगवती अपना प्रेमभाजन बना लेती हैं। त्रयोदशी तिथिके दिन भगवतीको चनेका नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणको दे दे। इस नियमका पालन करनेवाली प्रजा संतानवान् हो सकती है। देवर्षे ! जो पुरुष चतुर्दशीके दिन भगवती जगदम्बाको सत्तू भोग लगाकर ब्राह्मणको दे देता है, उसपर भगवान् शंकर परम प्रसन्न होते हैं। पूर्णिमाके दिन भगवती जगदम्बाको खीर भोग लगाकर श्रेष्ठ ब्राह्मणको अर्पण करनेवाला पुरुष अपने समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है। पूर्णिमा और अमावास्या तिथिकी पूजामें कोई अन्तर नहीं है। महामुने ! देवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये हवन करनेकी बात भी स्पष्ट है। जिस तिथिमें जो वस्तु नैवेद्यके लिये बतायी गयी है, उसी वस्तुसे उन-उन तिथियोंमें हवन भी करना चाहिये। यह हवन अखिल अरिष्टोंका विनाश कर देता है।

अब दिनके पूजनकी विशेषता बतलाते हैं। रविवारको खीरका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। सोमवारको दूध भोग लगानेकी बात कही गयी है तथा मंगलवारको केला भोग लगावे। नारद ! बुधवारके दिन मक्खन भोग लगानेका आदेश है। बृहस्पतिवारको खाँड और शुक्रवारको चीनीका भोग लगाया जाय। शनिवारको गायका घृत नैवेद्यके रूपमें निवेदन किया जाय।

मुने ! अब सत्ताईस नक्षत्रोंके नैवेद्य सुनो। घृत, तिल, चीनी, दही, दूध, मलाई, लस्सी, लड्डू, तारफेनी, घृतमण्ड, कसार, पापड़, घेवर, पकौड़ी, कोकरस, घृतमिश्रित चनेका चूर्ण, मधु, चूरमा, गुड़, चिउड़ा, दाख, खजूर, चारक, पूआ, मक्खन, मूँगके बेसनका लड्डू और अनार—नारद ! ये सत्ताईस वस्तुएँ हैं। क्रमशः एक-एक नक्षत्रमें एक-एक वस्तुका भगवतीको भोग लगाना चाहिये। इसीको नक्षत्रनैवेद्य अर्थात् नक्षत्रसम्बन्धी नैवेद्य कहा गया है।

नारद ! अब विष्कुम्भ आदि योगोंमें नैवेद्य अर्पण करनेकी बात बताता हूँ। नियमानुसार पदार्थोंका भोग लगानेसे भगवती जगदम्बा परम प्रसन्न होती हैं। वे पदार्थ हैं—गुड़, मधु, घृत, दूध, दही, छाछ, पूआ, मक्खन, ककड़ी, कोहड़ा, लड्डू, कटहल, केला, जामुन, आम, तिल, संतरा, अनार, बेरका फल, आँवला, खीर, चिउड़ा, चना, नारियल, नीबू, कसार और चूरमा। ये नैवेद्य परम पवित्र हैं। भगवतीको क्रमशः इनका अर्पण करना चाहिये। विष्कुम्भादि योगोंमें इन नैवेद्योंका विधान है—इस विषयपर विद्वान् पुरुष निर्णय कर चुके हैं।

मुने ! अब करणसम्बन्धी पृथक् नैवेद्य अर्पण करनेकी बात कहता हूँ। कसार, मण्डक, फेनी, मोदक, पापड़, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घृत और मधु—करणोंके लिये ये ही पदार्थ निर्धारित हैं। भगवतीको आदरपूर्वक इन्हीं वस्तुओंका नैवेद्य समर्पण करना चाहिये।

मुनिवर नारद ! अब भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये दूसरा परम साधन बतलाता हूँ; तुम उसे आदरपूर्वक सुनो। चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें तृतीयाके दिन महुआके वृक्षमें भगवतीकी भावना करके उसकी पूजा करे। नैवेद्यमें पाँच

प्रकारके खाद्य पदार्थ उपस्थित करने चाहिये। इसी प्रकार बारहों महीनेकी तृतीया तिथिके दिन पूजाका विधान है। विधिपूर्वक क्रमशः नैवेद्य अर्पण करे। नारद ! वैशाखमें गुड़से बना हुआ पदार्थ भोग लगाना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें भगवतीके प्रसन्नतार्थ मधु अर्पण करना चाहिये। आषाढ़में महुएके रससे बना हुआ पदार्थ भोग लगावे। श्रावणमें दही, भादोंमें चीनी, आश्विनमें खीर, कार्तिकमें दूध, मार्गशीर्षमें फेनी, पौषमें दधिकूर्चिका, माघमें गायका घृत और फाल्गुनमें नारियल भोग लगानेका विधान है। यों बारह महीनोंमें बारह प्रकारके नैवेद्योंसे भगवतीकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। मङ्गला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मतङ्गी, काली, कमलवासिनी, शिवा, सहस्रचरणा और सर्वमङ्गलरूपिणी—इन नामवाचक बारह पदोंका उच्चारण करके महुएके वृक्षमें भगवतीकी भावनासे पूजा करे*। महुएके वृक्षमें देवदेवेश्वरी भगवती जगदम्बा विराजती हैं। अतः सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये तथा व्रत-समाप्तिके निमित्त पूजाके पश्चात् देवीकी स्तुति करे—

'कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली भगवतीको नमस्कार है। भगवती माहेश्वरी ! तुम महादेवी हो, जगद्धात्री हो तथा तुम्हारा विग्रह मङ्गलमय है, तुम्हें नमस्कार है। परम बुद्धिमती देवी ! परमा, पापहन्त्री, परमार्गप्रदायिनी, परमेश्वरी, प्रजोत्पत्ति, परब्रह्मस्वरूपिणी, मददात्री, मदोन्मत्ता, मानगम्या, महोन्नता, मनस्विनी, मुनिध्येया, मार्तण्डसहचारिणी और जयलोकेश्वरी—ये तुम्हारे नाम हैं। प्रलयकालीन मेघकी भाँति तुम कान्ति धारण करती हो। देवताओं और दानवोंने महान् मोहकी निवृत्तिके लिये तुम्हारी आराधना की है। यमलोकको मिटानेवाली परम आराध्या भगवती जगदम्बे ! तुम यमपूज्या, यमाग्रजा एवं यम-निग्रह-रूपा हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है। भगवती सर्वेश्वरी ! तुम समस्वभावा, सर्वसङ्गविवर्जिता, सङ्गनाशकरी काम्यरूपा, कारुण्यविग्रहा, कङ्कालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदिनी, माधुर्यरूपशीला, मधुरस्वरपूजिता, महामन्त्रवती, मन्त्रगम्या, मन्त्रप्रियंकरी, मनुष्यमानसगमा तथा मन्मथारिप्रियङ्करी—इन नामोंसे विख्यात हो। देवी ! पीपल, वट, नीम, आम, कैथ, बेर, कटहल, मदार, करील और महुआ आदि वृक्ष तुम्हारे रूप हैं। दुग्धवल्लीमें निवास करनेवाली देवी ! तुम परम कृपालु एवं दयाकी भण्डार हो। तुम्हारा श्रीविग्रह करुणासे ओत-प्रोत है। सर्वज्ञ जन तुमपर अधिक श्रद्धा रखते हैं, तुम्हारी जय हो।'†

पूजा करनेके उपरान्त इस प्रकारके स्तवनसे

---

* मङ्गला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया। महामाया मतङ्गी च काली कमलवासिनी॥
शिवा सहस्रचरणा सर्वमङ्गलरूपिणी। एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत्॥
(८।२४।४३-४४)

† नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते। माहेश्वर्यै महादेव्यै महामङ्गलमूर्तये॥
परमा पापहन्त्री च परमार्गप्रदायिनी। परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी॥
मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता। मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्डसहचारिणी॥

देवेश्वरी जगदम्बाकी स्तुति करनेवाले मनुष्यको व्रतसम्बन्धी सम्पूर्ण पुण्य सर्वदा सुलभ हो जाते हैं। यह स्तोत्र भगवतीको प्रसन्न करनेका परम साधन है। जो मनुष्य इसका निरन्तर पाठ करता है, उसे आधि-व्याधि एवं शत्रु भय नहीं पहुँचा सकते। इस स्तोत्रके प्रभावसे धनकी इच्छा करनेवाला धन तथा धर्म चाहनेवाला धर्म पा सकता है। यह स्तोत्र ब्राह्मणको वेदसम्पन्न, क्षत्रियको विजयशाली, वैश्यको प्रचुर धनवान् तथा शूद्रको परम सुखी बना देता है। जो मनुष्य श्राद्धके समय मनको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितरोंको एक कल्पतक स्थिर रहनेवाली अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है।

नारद ! इस प्रकार देवताओंने भगवती जगदम्बाका आराधन एवं पूजन किया है, जो तुम्हें बता दिया गया। जो मानव भक्तिपूर्वक भगवतीकी आराधना करता है, उसे देवीके लोककी प्राप्ति सहज हो जाती है। विप्र ! भगवती जगदम्बाकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे रहित निर्मल बुद्धि प्राप्त कर लेता है। नारद ! पुरुष भगवतीकी कृपासे जहाँ-तहाँ धन अथवा मानके विषयमें आदर एवं सम्मान प्राप्त करता है। स्वप्नमें भी नरक-सम्बन्धी किंचिन्मात्र भय उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। भगवती जगदम्बा महामाया हैं। इनका उपासक इनकी कृपासे पुत्र और पौत्रोंके संवर्धनमें सफलीभूत रहता है।

नारद ! मैंने जो यह भगवतीके चरित्रका प्रतिपादन किया है, इसमें नरकसे उद्धार करनेकी स्वाभाविक शक्ति है। मुने ! महादेवीकी पूजा सम्पूर्ण मङ्गलोंको देनेवाली है।

अब एक दूसरा प्रसङ्ग सुनाता हूँ। इसका नाम प्रकृतिपञ्चक है। यह प्रसंग नाम-रूप और उत्पत्तिसे अखिल जगत्‌को आह्लादित करनेवाला है। मुने ! यह प्रकृतिपञ्चक अत्यन्त अद्भुत एवं मुक्तिका परम साधन है। उदाहरण और माहात्म्यसहित इसका वर्णन करता हूँ। तुम सावधान होकर सुनो। (अध्याय २४)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका आठवाँ स्कन्ध समाप्त

—★—

जयलोकेश्वरि प्राज्ञे प्रलयाम्बुदसंनिभे। महामोहविनाशार्थं पूजितासि सुरासुरैः॥
यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा। यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः॥
समस्वभावा सर्वेशी सर्वसङ्गविवर्जिता। सङ्गनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा॥
कङ्कालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी। माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता॥
महामन्त्रवती मन्त्रगम्या मन्त्रप्रियङ्करी। मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियङ्करी॥
अश्वत्थवटनिम्बाम्रकपित्थबदरीगते। पनसार्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणी॥
दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके। दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे॥

(८।२४।४६—५५)

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## नवाँ स्कन्ध

### पञ्चविध प्रकृतिका स्पष्टीकरण तथा अंश, कला एवं कलांशका विशद विवेचन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! गणेशजननी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा—ये पाँच देवियाँ 'प्रकृति' कहलाती हैं। इन्हींपर सृष्टि निर्भर है।

नारदजीने पूछा—ज्ञानियोंमें प्रमुख स्थान प्राप्त करनेवाले साधो! वह प्रकृति कहाँसे प्रकट हुई है, उसका कैसा स्वरूप है, कैसे लक्षण हैं तथा क्यों वह पाँच प्रकारकी हो गयी? उन समस्त देवियोंके चरित्र, उनकी पूजाके विधान, उनके गुण तथा वे किसके यहाँ कैसे प्रकट हुईं—ये सभी प्रसंग आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—वत्स! 'प्र' का अर्थ है प्रकृष्ट और 'कृति'से 'सृष्टि'के अर्थका बोध होता है। अतः सृष्टि करनेमें जो परम प्रवीण है, उसे देवी 'प्रकृति' कहते हैं। सर्वोत्तम सत्त्वगुणके अर्थमें 'प्र' शब्द, मध्यम रजोगुणके अर्थमें 'कृ' शब्द और तमोगुणके अर्थमें 'ति' शब्द है। जो त्रिगुणात्मकस्वरूपा है, वही परम शक्तिसे सम्पन्न होकर सृष्टिविषयक कार्यमें 'प्रधान प्रकृति' कहलाती है। 'प्र' प्रथम अर्थमें और 'कृति' सृष्टि अर्थमें है। अतः सृष्टिके आदिमें जो देवी विराजमान रहती है, उसे 'प्रकृति' कहते हैं। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुए—प्रकृति और पुरुष। उनका आधा दाहिना अङ्ग 'पुरुष' और आधा बायाँ अङ्ग 'प्रकृति' हुआ। वही प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी है। परब्रह्म परमात्माके सभी अनुरूप गुण इन प्रकृतिमें निहित हैं। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति सदा रहती है। इसीसे परम योगी पुरुष स्त्री और पुरुषमें भेद नहीं मानते हैं। नारद! वे कहते हैं कि 'सत्-असत्' जो कुछ भी है, सब ब्रह्ममय है। भगवान् श्रीकृष्ण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र परम पुरुष हैं। उनके मनमें सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न होते ही तुरंत 'मूल प्रकृति' परमेश्वरी प्रकट हो जाती हैं। तदनन्तर परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार इनके पाँच रूप हो जाते हैं। विभिन्न सृष्टिका सृजन करना इनका प्रधान उद्देश्य है। भगवती प्रकृति भक्तोंके अनुरोधसे अथवा उनपर कृपा करनेके लिये विविध रूप धारण करती हैं।

जो गणेशकी माता 'भगवती दुर्गा' हैं, उन्हें 'शिवस्वरूपा' कहा जाता है। ये भगवान् शंकरकी प्रेयसी भार्या हैं। नारायणी, विष्णुमाया और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी नामसे ये प्रसिद्ध हैं, ब्रह्मादि देवता, मुनिगण तथा मनु प्रभृति—सभी इनकी पूजा करते हैं। वे सबकी व्यवस्था करती हैं। उनका चरित्र परम पावन है। यश, मङ्गल, सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करना

उनका स्वाभाविक गुण है। दुःख, शोक और उद्वेगको वे दूर कर देती हैं। शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें सदा संलग्न रहती हैं। वे तेजःस्वरूपा हैं। उनका विग्रह परम तेजस्वी है। उन्हें तेजकी अधिष्ठातृ देवता कहा जाता है। सूर्यमें जो शक्ति है, वह उन्हींका रूप है। वे शंकरको निरन्तर शक्तिशाली बनाये रखती हैं। सिद्धेश्वरी, सिद्धिरूपा, सिद्धिदा, सिद्धि, ईश्वरी, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, धृति और माया—ये सब इनके नाम हैं। श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। उनके समीप शक्तिरूपसे ये विराजती हैं। श्रुतिमें इनका यश गाया गया है। ये अनन्ता हैं। अतएव इनमें गुण भी अनन्त हैं। अब इनके दूसरे रूपका वर्णन करता हूँ, सुनो।

जो परम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हैं, उन्हें 'भगवती लक्ष्मी' कहा जाता है। परमप्रभु श्रीहरिकी वे शक्ति कहलाती हैं। अखिल जगत्की सारी सम्पत्तियाँ उनके स्वरूप हैं। उन्हें सम्पत्तिकी अधिष्ठातृदेवता माना जाता है। वे परम सुन्दरी, अनुपम संयमरूपा, शान्तस्वरूपा, श्रेष्ठ स्वभावसे सम्पन्न तथा समस्त मङ्गलोंकी प्रतिमा हैं। लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहंकार आदि दुर्गुणोंसे वे सहज ही रहित हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करना तथा अपने स्वामी श्रीहरिसे प्रेम करना उनका स्वभाव है। सम्पूर्ण स्त्रियोंकी अपेक्षा वे श्रेष्ठ पतिव्रता हैं। श्रीहरि प्राणके समान जानकर उनसे अत्यन्त प्रेम करते हैं। वे कभी अप्रिय बात नहीं कहतीं; धान्य आदि सभी शस्य उनके रूप हैं। प्राणियोंका जीवन स्थिर रहे—एतदर्थ उन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। वे परम साध्वी देवी 'महालक्ष्मी' नामसे विख्यात होकर वैकुण्ठमें अपने स्वामीकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं। स्वर्गमें 'स्वर्गलक्ष्मी', राजाओंके यहाँ 'राजलक्ष्मी' तथा मर्त्यलोकवासी गृहस्थोंके घर 'गृहलक्ष्मी' के रूपमें वे विराजमान हैं। प्राणियोंके अखिल द्रव्योंमें सर्वोत्कृष्ट शोभा उन्हींका स्वरूप है; वे परम मनोहर हैं। पुण्यात्माओंकी कीर्ति उन्हींकी प्रतिमा है। वे राजाओंकी प्रभा हैं। व्यापारियोंके यहाँ वे वाणिज्यरूपसे विराजती हैं। पापीजन जो कलह आदि अशिष्ट व्यवहार करते हैं, उनमें भी इन्हींकी शक्ति है। ये हयरूपसे धराधामपर पधारी थीं। यह बात वेदमें कही गयी है। सबने इसका समर्थन भी किया है। सब लोग इनकी आराधना और वन्दना करते हैं।

नारद ! अब मैं अन्य देवीका प्रसंग कहता हूँ, सुनो। परब्रह्म परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञानकी जो व्यवस्था करती हैं, उन्हें 'सरस्वती' कहा जाता है। सम्पूर्ण विद्याएँ उन्हींके स्वरूप हैं। मनुष्योंको बुद्धि, कविता, मेधा, प्रतिभा और स्मरण-शक्ति उन्हींकी कृपासे प्राप्त होती हैं। अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंको पृथक्-पृथक् करना उनका स्वाभाविक गुण है। वे व्याख्या और बोध-स्वरूपा हैं। उनकी कृपासे समस्त संदेह नष्ट हो जाते हैं। उन्हें विचारकारिणी और ग्रन्थकारिणी कहा जाता है। वे शक्तिस्वरूपा हैं। स्वर, संगीत और ताल—सब उन्हींके रूप हैं। वे विषय, ज्ञान और वाणीमयी हैं। प्रत्येक प्राणीको जीविका प्रदान करती हैं। वे परम प्रसिद्ध, वाद-विवादकी अधिष्ठात्री एवं शान्तमूर्ति हैं। वे हाथमें वीणा और पुस्तक लिये रहती हैं। उनका विग्रह

शुद्धसत्त्वमय है। वे सदाचारपरायण तथा भगवान् श्रीहरिकी प्रिया हैं। हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद और कमलके समान उनकी कान्ति है। वे रत्नोंका हार गलेमें पहनाकर भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करती हैं। उनकी मूर्ति तपोमयी है। तपस्वीजनोंको फल प्रदान करनेमें वे सदा तत्पर रहती हैं। सिद्धि-विद्या उनका स्वरूप है। वे सदा सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती हैं। उनके अभावमें ब्राह्मण मूक-जैसे होकर मृतकके समान बना रहता है। ये तृतीया देवी कहलाती हैं। इन्हें श्रुतिमें भगवती जगदम्बा कहा गया है।

नारद ! इनके सिवा कुछ अन्य देवी भी हैं। आगम शास्त्रके अनुसार उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। वे चारों वर्णोंकी माता हैं। छन्द और वेद उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। बुद्धिमान् नारद ! संध्या-वन्दनके मन्त्र और तन्त्रका निर्माण उन्हींपर निर्भर है। द्विजाति वर्णोंके लिये उन्होंने अपना यह रूप धारण किया है। वे जपरूपा, तपस्विनी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न तथा सर्वसंस्कारमयी हैं। उन पवित्र रूप धारण करनेवाली देवीको 'सावित्री' अथवा 'गायत्री' कहते हैं। वे ब्रह्माकी परम प्रिय शक्ति हैं। तीर्थ अपनी शुद्धिके लिये उनके स्पर्शकी कामना करते हैं। शुद्ध स्फटिक मणिके समान उनकी स्वच्छ कान्ति है। वे शुद्धसत्त्वमय विग्रहसे शोभा पाती हैं। उनका रूप परम आनन्दमय है। उनका सर्वोत्कृष्ट रूप सदा बना रहता है। वे परब्रह्मस्वरूपा हैं। मोक्ष प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। वे ब्रह्मतेजसे सम्पन्न परम शक्ति हैं। उन्हें शक्तिकी अधिष्ठात्री माना जाता है। उनके चरणकी धूलि सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देती है।

नारद ! इन चौथी देवीका प्रसंग सुना चुका। अब तुम्हें पाँचवीं देवीका चरित्र सुनाता हूँ। ये परमात्मा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। सम्पूर्ण देवियोंकी अपेक्षा इनमें सुन्दरता अधिक है। इनमें सभी सद्गुण सदा विद्यमान हैं। ये परम सौभाग्यवती हैं। इन्हें अनुपम गौरव प्राप्त है। परब्रह्मका वामार्द्धाङ्ग ही इनका स्वरूप है। ये ब्रह्मके समान ही गुण और तेजसे सम्पन्न हैं। इन्हें परावरा, सारभूता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, मान्या और पूज्या कहा जाता है। ये नित्यनिकुञ्जेश्वरी रासक्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके रासमण्डलमें इनका आविर्भाव हुआ है। इनके विराजनेसे रासमण्डलकी विचित्र शोभा होती है। गोलोक-धाममें रहनेवाली ये देवी 'रासेश्वरी' एवं 'सुरसिका' नामसे प्रसिद्ध हैं। रासमण्डलमें पधारे रहना इन्हें बहुत प्रिय है। ये गोपीके वेषमें विराजती हैं। ये परम आह्लादस्वरूपिणी हैं। इनका विग्रह संतोष और हर्षसे परिपूर्ण है। ये निर्गुणा (लौकिक त्रिगुणोंसे रहित स्वरूपभूत गुणवती), निर्लिप्ता (लौकिक विषयभोगसे रहित), निराकारा (पाञ्चभौतिक शरीरसे रहित दिव्य चिन्मयस्वरूपा), आत्मस्वरूपिणी (श्रीकृष्णकी आत्मा) नामसे विख्यात हैं। इच्छा और अहंकारसे ये रहित हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने अवतार धारण कर रखा है। वेदोक्त विधिके अनुसार ध्यान करनेसे विद्वान् पुरुष इनके रहस्यको समझ पाते हैं। सुरेन्द्र एवं मुनीन्द्र प्रभृति समस्त प्रधान देवता अपने चर्मचक्षुओंसे इन्हें देखनेमें असमर्थ हैं। ये नीले रंगके दिव्य वस्त्र धारण करती हैं। अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये

रहते हैं। इनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है। इनका सर्वाङ्गसम्पन्न विग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। भगवान् श्रीकृष्णकी सेवारति ही सदा इनका स्वभाव है; क्योंकि सम्पूर्ण सम्पत्तियोंमें ये इसीको परम श्रेष्ठ मानती हैं। श्रीवृषभानुके घर पुत्रीके रूपसे ये पधारी हैं। इनके चरणकमलका संस्पर्श प्राप्तकर पृथ्वी परम पवित्र हो गयी है। मुने ! जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके, वही ये देवी भारतवर्षमें सबके दृष्टिगोचर हो रही हैं। ये स्त्रीमय रत्नोंमें सार हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर इस प्रकार विराजती हैं, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघोंमें बिजली चमक रही हो। इन्हें पानेके लिये ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की है। उनकी तपस्याका उद्देश्य यही था कि इनके चरणकमलके नखके दर्शन सुलभ हो जायँ, जिससे मैं परम पवित्र बन जाऊँ; परंतु स्वप्नमें भी वे इन भगवतीके दर्शन प्राप्त न कर सके; फिर प्रत्यक्षकी तो बात ही क्या है। उसी तपके प्रभावसे ये देवी वृन्दावनमें भगवान्‌के सामने प्रकट हुई हैं—धराधामपर इनका पधारना हुआ है। ये ही पाँचवीं देवी 'भगवती राधा' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन प्रकृति देवीके अंश, कला, कलांश और कलांशांश-भेदसे अनेक रूप हैं। प्रत्येक विश्वमें सम्पूर्ण स्त्रियाँ इन्हींकी रूप मानी जाती हैं। ये पाँच देवियाँ परिपूर्णतम हैं। इन्हें भगवती विद्या कहते हैं। इन देवियोंके जो-जो प्रधान अंश हैं, अब उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। भूमण्डलको पवित्र करनेवाली गङ्गा इनका प्रधान अंश है। ये सनातनी 'गङ्गा' जलमयी हैं। भगवान् विष्णुके विग्रहसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है। पापियोंके पापमय ईंधनको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्नि हैं। इन्हें स्पर्श करने, इनमें नहाने अथवा इनका जल पान करनेसे पुरुष कैवल्य-पदके अधिकारी हो जाते हैं। गोलोक-धाममें जानेके लिये ये सुखप्रद सीढ़ीके रूपमें विराजमान हैं। इनका रूप परम पवित्र है। समस्त तीर्थों और नदियोंमें ये श्रेष्ठ मानी जाती हैं। ये भगवान् शंकरके मस्तकपर जटामें ठहरी थीं। वहाँसे निकलीं और पङ्क्तिबद्ध होकर भारतवर्षमें आ गयीं। तपस्वीजन अपनी तपस्यामें सफलता प्राप्त कर सकें—एतदर्थ शीघ्र ही इनका पधारना हो गया। इनका शुद्ध एवं सत्त्वस्वरूप चन्द्रमा श्वेतकमल या दूधके समान स्वच्छ है। मल और अहंकार इनमें लेशमात्र भी नहीं है। ये परमसाध्वी गङ्गा भगवान् नारायणको बहुत प्रिय हैं।

श्री'तुलसी'को प्रकृति देवीका प्रधान अंश माना जाता है। ये विष्णुप्रिया हैं। विष्णुको विभूषित किये रहना इनका स्वाभाविक गुण है। भगवान् विष्णुके चरणमें ये सदा विराजमान रहती हैं। मुने ! तपस्या, संकल्प और पूजा आदि सभी शुभ कर्म इन्हींसे सम्पन्न होते हैं। पुष्पोंमें ये मुख्य मानी जाती हैं। ये परम पवित्र एवं पुण्यप्रदा हैं। अपने दर्शन और स्पर्शमात्रसे ये तुरंत मनुष्योंको परमधामके अधिकारी बना देती हैं। पापमयी सूखी लकड़ीको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्निके समान रूप धारण करके ये कलिमें पधारी हैं। इन देवी तुलसीके चरणकमलका स्पर्श होते ही पृथ्वी परम पावन बन गयी। तीर्थ स्वयं पवित्र होनेके लिये इनका दर्शन एवं स्पर्श करना चाहते हैं। इनके अभावमें अखिल जगत्‌के सम्पूर्ण कर्म निष्फल समझे

जाते हैं। इनकी कृपासे मुमुक्षुजन मुक्त हो जाते हैं। जो जिस कामनासे इनकी उपासना करते हैं, उनकी वे सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भारतवर्षमें वृक्षरूपसे पधारनेवाली ये देवी कल्पवृक्ष-स्वरूपा हैं। भारतवासियोंको प्रसन्न करनेके लिये इनका यहाँ पधारना हुआ है। ये परम देवता हैं।

प्रकृति देवीके एक अन्य प्रधान अंशका नाम देवी 'जरत्कारु' है। ये कश्यपजीकी मानसपुत्री हैं। इन्हें भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या होनेका सौभाग्य प्राप्त है। ये परम विदुषी हैं। नागराज शेषने इन्हें अपनी बहन माना है। सभी नाग इनका सम्मान करते हैं। नागकी सवारीपर चलनेवाली इन अनुपम सुन्दरी देवीको 'नागेश्वरी' और 'नागमाता' भी कहा जाता है। प्रधान-प्रधान नाग इनके साथ विराजमान रहते हैं। ये नागोंसे सुशोभित रहती हैं। नागराज इनकी स्तुति करते हैं। ये सिद्धि और योगकी साक्षात् मूर्ति हैं। इनकी शय्या नाग है। ये विष्णुस्वरूपिणी हैं। भगवान् विष्णुमें इनकी अटल श्रद्धा है। ये सदा श्रीहरिकी पूजामें संलग्न रहती हैं। इनका विग्रह तपोमय है। तपस्वीजनोंको फल प्रदान करनेमें ये परम कुशल हैं। ये स्वयं भी तपस्या करती हैं। इन्होंने देवताओंके वर्षसे तीन लाख वर्षतक भगवान् श्रीहरिकी तपस्या की है। भारतवर्षमें जितने तपस्वी और तपस्विनियाँ हैं, उन सबमें ये श्रेष्ठ हैं। सम्पूर्ण मन्त्रोंकी ये अधिष्ठात्री हैं। ब्रह्मतेजसे इनका विग्रह सदा प्रकाशमान रहता है। इनको 'परब्रह्मस्वरूपा' कहते हैं। ये ब्रह्मके चिन्तनमें सदा संलग्न रहती हैं। जरत्कारु मुनि भगवान् श्रीकृष्णके अंश हैं। इनके द्वारा पातिव्रत धर्मका पूर्ण पालन होता है। मुनिवर आस्तीक, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं, ये देवी उनकी माता हैं।

नारद ! प्रकृति देवीके एक प्रधान अंशको 'देवसेना' कहते हैं। मातृकाओंमें ये परम श्रेष्ठ मानी जाती हैं। इन्हें लोग भगवती 'षष्ठी' के नामसे कहते हैं। पुत्र-पौत्र आदि संतान प्रदान करना तथा त्रिलोकीको जन्म देना इनका प्रधान कार्य है। ये साध्वी भगवती प्रकृतिकी षष्ठांश हैं। अतएव इन्हें 'षष्ठी' देवी कहा जाता है। संतानोत्पत्तिके अवसरपर अभ्युदयके लिये इन षष्ठी योगिनीकी पूजा होती है। अखिल जगत्में बारहों महीने लोग इनकी निरन्तर पूजा करते हैं। पुत्र उत्पन्न होनेपर छठे दिन सूतिकागृहमें इनकी पूजा हुआ करती है—यह प्राचीन नियम है। कल्याण चाहनेवाले कुछ व्यक्ति इक्कीसवें दिन इनकी पूजा करते हैं। मुनियोंके प्रणाम करनेपर ये सदा उनकी अभिलाषा पूर्ण कर देती हैं। अतः इन्हें सर्वोत्तम देवी कहते हैं। इनकी मातृका संज्ञा है। ये दयास्वरूपिणी हैं। निरन्तर रक्षा करनेमें तत्पर रहती हैं। जल, थल, आकाश, गृह—जहाँ कहीं भी बच्चोंको सुरक्षित रखना इनका प्रधान उद्देश्य है।

प्रकृति देवीका एक प्रधान अंश 'मङ्गल-चण्डी'के नामसे विख्यात है। ये मङ्गलचण्डी प्रकृति देवीके मुखसे प्रकट हुई हैं। इनकी कृपासे समस्त मङ्गल सुलभ हो जाते हैं। सृष्टिके समय इनका विग्रह मङ्गलमय रहता है। संहारके अवसरपर ये क्रोधमयी बन जाती हैं। इसीलिये इन देवीको पण्डितजन मङ्गलचण्डी कहते हैं। प्रत्येक मंगलवारके दिन विश्वभरमें इनकी पूजा होती है। इनके अनुग्रहसे साधक पुरुष पुत्र, पौत्र, धन, सम्पत्ति, यश और कल्याण प्राप्त कर

लेते हैं। प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण स्त्रियोंके समस्त मनोरथ पूर्ण कर देना इनका स्वभाव ही है। ये भगवती महेश्वरी कुपित होनेपर क्षणमात्रमें विश्वको नष्ट कर सकती हैं।

देवी 'काली' को प्रकृति देवीका प्रधान अंश मानते हैं। इन देवीके नेत्र ऐसे हैं, मानो कमल हों। संग्राममें जब भगवती दुर्गाके सामने प्रबल राक्षसबन्धु शुम्भ और निशुम्भ डटे थे, उस समय ये काली भगवती दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुई थीं। इन्हें दुर्गाका आधा अंश माना जाता है। गुण और तेजमें ये दुर्गाके समान ही हैं। इनका परम पुष्ट विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान है। सम्पूर्ण शक्तियोंमें ये प्रमुख हैं। इनसे बढ़कर बलवान् कोई है ही नहीं। ये परम योगस्वरूपिणी देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती हैं। श्रीकृष्णके प्रति इनमें अटूट श्रद्धा है। तेज, पराक्रम और गुणमें ये श्रीकृष्णके समान ही हैं। इनका सारा समय भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनमें ही व्यतीत होता है। इन सनातनी देवीके शरीरका रंग भी कृष्ण ही है। ये चाहें तो एक श्वासमें समस्त ब्रह्माण्डको नष्ट कर सकती हैं। अपने मनोरञ्जनके लिये अथवा जगत्को शिक्षा देनेके विचारसे ही ये संग्राममें दैत्योंके साथ युद्ध करती हैं। सुपूजित होनेपर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ देनेमें ये पूर्ण समर्थ हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनिगण, मनु प्रभृति और मानव-समाज—सब-के-सब इनकी उपासना करते हैं।

भगवती 'वसुन्धरा' भी प्रकृति देवीके प्रधान अंशसे प्रकट हैं। अखिल जगत् इन्हींपर ठहरा है। ये 'सर्वशस्या' कही जाती हैं। इन्हें लोग 'रत्नाकरा' और 'रत्नगर्भा' भी कहते हैं। सम्पूर्ण रत्नोंकी खान इन्हींके अंदर विराजमान है। राजा और प्रजा—सभी लोग इनकी पूजा एवं स्तुति करते हैं। सबको जीविका प्रदान करनेके लिये ही इन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। ये सम्पूर्ण सम्पत्तिका विधान करती हैं। ये न रहें तो सारा चराचर जगत् कहीं भी ठहर नहीं सकता।

मुनिवर ! प्रकृति देवीकी जो-जो कलाएँ हैं, उन्हें सुनो और ये जिन-जिनकी पत्नियाँ हैं, वह सब भी मैं तुम्हें बताता हूँ। देवी 'स्वाहा' अग्निकी पत्नी हैं। सम्पूर्ण जगत्में इनकी पूजा होती है। इनके बिना देवता अर्पित की हुई हवि पानेमें असमर्थ हैं। यज्ञकी पत्नीको 'दक्षिणा' कहते हैं। इनका सर्वत्र सम्मान होता है। इनके न रहनेपर विश्वभरके सम्पूर्ण कर्म निष्फल समझे जाते हैं। 'स्वधा' पितरोंकी पत्नी हैं। मुनि, मनु और मानव—सभी इनकी पूजा करते हैं। इनका उच्चारण न करके पितरोंको वस्तु अर्पण की जाय तो वह निष्फल हो जाती है। वायुकी पत्नीका नाम देवी 'स्वस्ति' है। प्रत्येक विश्वमें इनका सत्कार होता है। इनके बिना आदान-प्रदान सभी असम्भव हो जाते हैं। 'पुष्टि' गणेशकी पत्नी हैं। धरातलपर सभी इनको पूजते हैं। इनके बिना पुरुष और स्त्री—सभी शक्तिहीन हो जाते हैं। अनन्तकी पत्नीका नाम 'तुष्टि' है। सब लोग इनकी पूजा एवं वन्दना करते हैं। इनके बिना सम्पूर्ण संसार सम्यक् प्रकारसे कभी संतुष्ट हो ही नहीं सकता। ईशानकी पत्नीका नाम 'सम्पत्ति' है। देवता और मनुष्य—सभी इनका सम्मान करते हैं। इनके न रहनेपर विश्वभरकी जनता दरिद्र कहलाती है। 'धृति' कपिल मुनिकी पत्नी हैं। सब लोग सर्वत्र इनका स्वागत करते हैं। ये न रहें तो जगत्में सम्पूर्ण प्राणी धैर्यसे हाथ धो बैठें। 'सती' को सत्यकी भार्या कहा गया

है। सबसे आदर पानेवाली ये देवी परम लोकप्रिय हैं। इनके बिना जगत् सर्वथा बन्धुता-शून्य हो जाता है। परम साध्वी 'दया' मोहकी पत्नी हैं। ये पूज्य एवं जगत्प्रिय हैं। इनके अभावमें सम्पूर्ण प्राणी सर्वत्र निष्फल माने जाते हैं। पुण्यकी सहधर्मिणी 'प्रतिष्ठा' हैं। पुण्य प्रदान करनेवाली ये देवी सदा सुपूजित होती हैं। मुने ! इनके बिना सारा संसार जीते हुए ही मृतकके समान समझा जाता है। सुकर्मकी पत्नी 'कीर्ति' हैं, जिन्हें सब लोग भलीभाँति जानते हैं। बड़भागी पुरुषोंद्वारा इनका सम्मान होता है। इनके अभावमें अखिल जगत् यशोहीन होकर मृतकके समान हो जाता है। 'क्रिया' उद्योगकी पत्नी हैं। इन आदरणीया देवीसे सब लोग सहमत हैं। नारद ! इनके बिना सारा संसार विधिहीन हो जाता है। अधर्मकी पत्नीको 'मिथ्या' कहते हैं। सभी धूर्त इनका सत्कार करते हैं। सत्ययुगमें ये बिलकुल अदृश्य थीं। त्रेतायुगमें सूक्ष्म रूप धारण करके प्रकट हो गयीं। द्वापरमें अपने आधे शरीरसे शोभा पाने लगीं और कलियुगमें तो इन 'मिथ्या' देवीका शरीर बड़ा ही स्थूल हो गया है। ये हठपूर्वक सर्वत्र अपना आधिपत्य जमाये रहती हैं। इनके भाईका नाम 'कपट' है। उसके साथ ये प्रत्येक घरमें चक्कर लगाती हैं। 'शान्ति' और 'लज्जा'—ये सुशीलकी आदरणीय पत्नियाँ हैं। नारद ! इनके न रहनेपर सारा जगत् उन्मत्तकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगता है। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—'बुद्धि', 'मेधा' और 'धृति'। ये साथ छोड़ दें तो समस्त संसार मूर्ख और पागलके समान हो जाय।

धर्मकी सहधर्मिणीका नाम 'मूर्ति' है। कमनीय कान्तिवाली ये देवी सबके मनको मुग्ध किये रहती हैं। विश्वके व्यवस्थापक परमात्मा इनका सहयोग पाये बिना निराधार रहते हैं। इनके स्वरूपको अपनाकर ही साध्वी लक्ष्मी सर्वत्र शोभा पाती हैं। 'श्री' और 'मूर्ति'—दोनों इनके स्वरूप हैं। ये परम मान्य, धन्य एवं सुपूज्य हैं। रुद्रकी पत्नीका नाम 'कालाग्नि' है। इनको 'योगनिद्रा' भी कहते हैं। रात्रिमें इनका सहयोग पाकर सम्पूर्ण प्राणी आच्छन्न अर्थात् नींदसे व्याप्त हो जाते हैं। कालकी तीन भार्याएँ हैं—'संध्या', 'रात्रि' और 'दिन'। ये न रहें तो ब्रह्मा भी संख्याका परिगणन नहीं कर सकते। 'क्षुधा' और 'पिपासा'— ये दो लोभकी भार्याएँ हैं। ये परम धन्य, मान्य और आदरकी पात्र हैं। ये अनुकूल न हों तो सारा जगत् चिन्तातुर हो सकता है। 'प्रभा' और 'दाहिका'—ये तेजकी स्त्रियाँ हैं। इनके अभावमें जगत्स्रष्टा ब्रह्मा अपना कार्य-सम्पादन करनेमें असमर्थ हैं। ज्वरकी दो भार्याएँ हैं—'जरा' और 'मृत्यु'। ये दोनों कालकी पुत्री हैं। प्रिय होते हुए भी ये अप्रिय हैं। इनकी सत्ता न रहे तो ब्रह्माके बनाये हुए जगत्की व्यवस्था ही बिगड़ जाय। निद्राकी कन्याका नाम 'तन्द्रा' है। यह और 'प्रीति'—ये दो सुखकी प्रियाएँ हैं। ब्रह्मपुत्र नारद ! विधिके विधानमें बना रहनेवाला यह सारा जगत् इनसे व्याप्त है। 'श्रद्धा' और 'भक्ति'—ये दो परम आदरणीय पत्नियाँ वैराग्यकी हैं। मुने ! इनके कृपाप्रसादसे अखिल जगत् सदा जीवन्मुक्त हो सकता है। देवमाता 'अदिति', गौओंको उत्पन्न करनेवाली 'सुरभि', दैत्योंकी माता 'दिति', 'कद्रू', 'विनता' और 'दनु'—ये सभी देवियाँ सृष्टिका कार्य सँभालती हैं। इन्हें भगवती

प्रकृतिकी 'कला' कहा जाता है। अन्य भी बहुत-सी कलाएँ हैं। कुछ कलाओंका परिचय कराता हूँ, सुनो।

चन्द्रमाकी पत्नी 'रोहिणी' और सूर्यकी 'संज्ञा' हैं। मनुकी भार्याका नाम 'शतरूपा' है। 'शची' इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं। बृहस्पतिकी सहधर्मिणी 'तारा' हैं। 'अरुन्धती' वसिष्ठ मुनिकी धर्मपत्नी हैं। 'अहल्या' गौतमकी, 'अनसूया' अत्रिकी, 'देवहूति' कर्दम मुनिकी और 'प्रसूति' दक्षकी पत्नियाँ हैं। पितरोंकी मानसी कन्या 'मेनका' अम्बिकाकी पुत्री भी कहलाती हैं। 'लोपामुद्रा', 'कुन्ती' और कुबेरकी पत्नीको सभी जानते हैं। वरुणकी पत्नी भी प्रसिद्ध हैं। बलिकी भार्याका नाम 'विन्ध्यावली' है। 'कान्ता', 'दमयन्ती', 'देवकी', 'गान्धारी', 'द्रौपदी', 'शैब्या', 'सत्यवती', 'वृषभानुप्रिया' कुलीना राधाकी 'जननी', साध्वी 'यशोदा', 'मन्दोदरी, 'कौसल्या', 'सुभद्रा', 'रेवती', 'सत्यभामा', 'कालिन्दी', 'लक्ष्मणा', 'जाम्बवती', 'नाग्नजिती, 'मित्र-विन्दा, 'रुक्मिणी', 'सीता'—जो स्वयं लक्ष्मी कहलाती हैं, 'काली', व्यासको जन्म देनेवाली महासती 'योजनगन्धा', बाणपुत्री 'उषा', उसकी सखी 'चित्रलेखा', 'प्रभावती', 'भानुमती' 'मायावती', परशुरामजीकी माता 'रेणुका', बलरामकी जननी 'रोहिणी' और 'एकनन्दा'—जो श्रीकृष्णकी बहन परम साध्वी 'दुर्गा' कहलाती हैं, भारतवर्षमें भगवती प्रकृतिकी ये बहुत-सी कलाएँ विख्यात हैं। जो-जो ग्राम-देवियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं।

विश्वभरमें जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबको कलाके अंशका अंश समझना चाहिये। इसीलिये स्त्रियोंके अपमानसे प्रकृतिका अपमान माना जाता है। पति और पुत्रके सहित साध्वी ब्राह्मणीकी वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे जो पूजा करता है, उसके द्वारा भगवती प्रकृति सुपूजित होती हैं। जिसने ब्राह्मणकी अष्टवर्षा कुमारीका वस्त्र, अलंकार एवं चन्दन आदिसे अर्चन कर लिया, उसके द्वारा भगवती प्रकृति स्वयं पूजित हो गयीं। उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—प्रायः सभी स्त्रियाँ भगवती प्रकृतिकी अङ्ग हैं। जो श्रेष्ठ आचरणवाली तथा पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उन्हें प्रकृति देवीका सत्त्वांश समझना चाहिये। इनको 'उत्तम' माना जाता है। जिन्हें भोग ही प्रिय है, वे राजस अंशसे प्रकट स्त्रियाँ 'मध्यम' श्रेणीकी कही गयी हैं। वे सुख भोगनेके लिये विवश होकर सदा अपने कार्यमें लगी रहती हैं। प्रकृति देवीके तामस अंशसे उत्पन्न स्त्रियाँ 'अधम' कहलाती हैं। उनके कुलका कुछ पता नहीं रहता। उनके मुख कुरूप होते हैं। वे धूर्त, स्वेच्छाचारिणी और कलहप्रिया होती हैं। भूमण्डलपर वे कुलटा कहलाती हैं। पुंश्चली स्त्री भी प्रकृतिका तामस अंश कही गयी हैं।

नारद! इस प्रकार प्रकृतिके सम्पूर्ण रूपका वर्णन कर दिया। भारतवर्ष परम पवित्र देश है। भूमण्डलपर पधारकर इस देशमें सभी देवियाँ सुपूजित हुई हैं। दुर्गा दुर्गतिका नाश करती हैं। राजा सुरथने सर्वप्रथम इनकी उपासना की है। इसके पश्चात् रावणका वध करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीरामने देवीकी पूजा की है। तत्पश्चात् भगवती जगदम्बा तीनों लोकोंमें सुपूजित हो गयीं। पहले दक्षके यहाँ ये प्रकट हुई थीं। दैत्योंका वध करनेके पश्चात्

स्वामीका अपमान देखकर इन्होंने यज्ञमें अपना वह शरीर त्याग दिया। फिर ये हिमालयकी पत्नीके उदरसे उत्पन्न हुईं। भगवान् शंकरको अपना पति बनाया। गणेश और स्कन्द—इनके दो पुत्र हुए। गणेशको स्वयं श्रीकृष्ण माना जाता है। स्कन्द विष्णुपुत्र हो चुके हैं। नारद ! इसके बाद राजा मंगलने सर्वप्रथम लक्ष्मीकी आराधना की है। इसके उपरान्त तीनों लोकोंमें देवता, मुनि और मानव इनकी पूजा करने लगे। राजा अश्वपतिने सबसे पहले सावित्रीका अनुष्ठान किया। फिर प्रधान देवता और श्रेष्ठ मुनि इनके उपासक बन गये हैं। ब्रह्माने पहले सरस्वतीका सम्मान किया। इसके बाद ये देवी तीनों लोकोंमें देवताओं और मुनियोंकी पूज्या हो गयी हैं। सर्वप्रथम गोलोकमें रासमण्डलके अवसरपर भगवती राधाकी पूजा हुई है। गोपों, गोपियों, गोपकुमारों और कुमारियोंके साथ सुशोभित होकर श्रीकृष्णने राधाका पूजन किया था। उस समय कार्तिकी पूर्णिमाकी चाँदनी रात थी। गौओंका समुदाय भी इस उत्सवमें सम्मिलित था। फिर भगवान्‌की आज्ञा पाकर ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा मुनिगण बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक पुष्प एवं धूप आदि सामग्रियोंसे निरन्तर इनकी पूजा-वन्दना करने लगे, स्तुति भी की। इस भूमण्डलपर पहले इनकी पूजा राजा सुयज्ञने की है। ये नरेश पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें थे। भगवान् शंकरके आदेशानुसार इन्होंने राधा देवीकी उपासना की थी। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर त्रिलोकीमें मुनिगण पुष्प एवं धूप आदि उपचारोंसे भक्ति प्रदर्शित करते हुए इनकी पूजामें सदा तत्पर हो गये। जो-जो कलाएँ प्रकट हुई हैं, उन सबकी भारतवर्षमें पूजा होती है। मुने ! तभीसे प्रत्येक ग्राम और नगरमें ग्रामदेवियोंकी पूजाका प्रचार हो गया।

इस प्रकार भगवती प्रकृतिका सम्पूर्ण शुभ चरित्र मैं तुम्हें सुना चुका। सभी लक्षण वैदिक प्रमाणसे सम्पन्न हैं। अब पुनः तुम क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय १)

☆

## परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवी और देवताओंके चरित्र

नारदजीने कहा—प्रभो ! देवियोंके सम्पूर्ण चरित्रको मैंने संक्षेपसे सुन लिया। सम्यक् प्रकारसे बोध होनेके लिये पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। सृष्टिके अवसरपर भगवती आद्या देवी कैसे प्रकट हुईं ? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! देवीके पञ्चविध होनेमें क्या कारण है ? यह रहस्य बतानेकी कृपा करें। संसारमें प्राणी जिनके अंश एवं कलासे उत्पन्न हैं, उन्हें त्रिगुणमयी बताया है। अब मैं उनका चरित्र विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। सर्वज्ञ प्रभो ! उन देवियोंके प्राकट्यका प्रसंग, पूजा एवं ध्यानकी विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य तथा मङ्गलमय शौर्य भी सुननेके लिये मैं उत्सुक हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! आत्मा, आकाश, काल, दिशा, विश्वगोलक तथा गोलोकधाम—ये सभी नित्य हैं। कभी इनका अन्त नहीं होता। गोलोकधाममें एक ओर वैकुण्ठधाम है। नम्र पुरुष वहाँ जा सकते हैं। ऐसे ही प्रकृतिको भी नित्य माना जाता है। यह परब्रह्मकी सनातनी लीला है। जिस प्रकार अग्निमें दाहिकाशक्ति, चन्द्रमा एवं कमलमें

कमनीयता तथा सूर्यमें प्रभा सदा वर्तमान रहती है, वैसे ही यह प्रकृति परमात्मामें नित्य विराजमान है। कभी यह उनसे अलग नहीं रह सकती। जैसे स्वर्णकार सुवर्णके अभावमें कुण्डल नहीं तैयार कर सकता तथा कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा बनानेमें असमर्थ है, ठीक उसी प्रकार परमात्माको यदि प्रकृतिका सहयोग न मिले तो वे सृष्टि नहीं कर सकते। जिसके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान् बने रहते हैं, वह प्रकृति देवी ही शक्तिस्वरूपा हैं। इस प्रकृतिमें वाक्चातुरी, शक्ति और पराक्रम विद्यमान हैं। परमात्मामें भी ये इन गुणोंका संनिवेश करा देती हैं। अतएव इसे 'शक्ति' देवी कहते हैं। ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश, बल और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होनेके कारण इसका नाम भगवती शक्ति हुआ है। यह ऐश्वर्यमयी देवी कभी तिरोहित नहीं होती। परमात्मा सदा इस भगवती प्रकृतिके साथ विराजमान रहते हैं। अतएव इन्हें भी भगवान्की उपाधि सुलभ है। ये सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र प्रभु साकार और निराकार भी हैं। इनका निराकार रूप परम तेजोमय है। योगी पुरुष सदा उसका ध्यान करते हैं। साथ ही कहते हैं कि परब्रह्म और ईश्वर एक हैं। इनका विग्रह परम आनन्दमय है। इनको कोई नहीं देख पाता और ये सबको देखते हैं। ये सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वदा और सर्वरूप हैं। वैष्णवजन इनको प्रणाम करते हैं। उनका कथन है, इन परम तेजस्वी ब्रह्मके सिवा अन्य किसका तेज है ? ये ब्रह्म परम तेजोमय मण्डलके मध्यभागमें विराजते हैं। ये स्वेच्छामय, सर्वरूप और सम्पूर्ण कारणोंके भी कारण हैं।

जब इन्हें साकाररूपसे प्रकट होनेकी इच्छा हुई, तब इन्होंने अत्यन्त सुन्दर एवं मनको मुग्ध कर देनेवाला दिव्य रूप प्रकट कर दिया। इनकी किशोर-अवस्था है। ये शान्त-स्वभाव हैं। इनके सभी अङ्ग परम सुन्दर हैं। इनसे बढ़कर जगत्में दूसरा कोई नहीं है ! इनका श्याम विग्रह नवीन मेघकी कान्तिका परम धाम है। इनके विशाल नेत्र शरत्कालके मध्याह्नमें खिले हुए कमलोंकी शोभाको छीन रहे हैं। मोतियोंकी शोभाको तुच्छ करनेवाली इनकी सुन्दर दन्त-पङ्क्ति है। मुकुटमें मोरकी पाँख सुशोभित है। मालतीकी मालासे ये अनुपम शोभा पा रहे हैं। इनकी सुन्दर नासिका है। मुखपर मुसकान छायी है। ये परम मनोहर प्रभु भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये पधारे हैं। प्रज्वलित अग्निके समान विशुद्ध पीताम्बरसे इनका विग्रह परम मनोहर हो गया है। रत्नमय भूषणोंसे भूषित इनकी दो भुजाएँ हैं। इनके हाथमें बाँसुरी सुशोभित है। ये सबके आश्रय, सबके स्वामी, सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त एवं सर्वव्यापी पूर्ण पुरुष हैं। समस्त ऐश्वर्य प्रदान करना इनका स्वभाव ही है। ये परम स्वतन्त्र एवं सम्पूर्ण मङ्गलके भण्डार हैं। इन्हें 'सिद्धि', 'सिद्धेश', 'सिद्धिकारक' तथा 'परिपूर्णतम ब्रह्म' कहा जाता है। इन देवाधिदेव सनातन प्रभुका वैष्णव पुरुष निरन्तर ध्यान करते हैं। इनकी कृपासे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय सब प्रभावरहित हो जाते हैं। ब्रह्माकी आयु इनके एक निमेषकी तुलनामें है। वे ही ये आत्मा परब्रह्म श्रीकृष्ण कहलाते हैं।

'कृषि' तद्भक्तिपरक है और 'न' का अर्थ है 'तद्दास्य'। अतः भक्ति और दास्यभाव देनेकी जिनमें योग्यता है, वे 'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृषि' सर्वार्थवाचक है। 'न' से बीज-अर्थकी

उपलब्धि होती है। अतः इनको आदिस्रष्टा मानते हैं। ये अकेले ही सृष्टि करनेके विचारमें थे। इन्हींके अंश कालने इनको इस कार्यमें उन्मुख कर रखा था। तब इन स्वेच्छामय परम प्रभुने अपनी रुचिके अनुसार विग्रहको दो भागोंमें विभक्त कर दिया। इनके 'वामांश' भागको 'स्त्री' कहा गया और 'दक्षिणांश' भागको 'पुरुष'। सनातन पुरुष उस दिव्यस्वरूपिणी स्त्रीको देखने लगा। उसके समस्त अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे। विकसित कमलके समान उसकी कान्ति थी। दोनों श्रेष्ठ नितम्ब चन्द्रमाके बिम्बको तिरस्कृत कर रहे थे। परम मनोहर श्रोणीके समक्ष कदलीका स्तम्भ नगण्य था। श्रीफलके आकारकी तुलना करनेवाले मनोहर दो उरोज थे। सुन्दर उदरप्रान्त पुष्पोंके हारसे सुशोभित था। क्षीण कटिदेश प्रभुके मनको मुग्ध कर रहा था। उस असीम सुन्दरी देवीने दिव्य स्वरूप धारण कर रखा था। मुसकराती हुई वह बंकिम-भंगियोंसे प्रभुकी ओर ताक रही थी। उसने विशुद्ध वस्त्र पहन रखे थे। रत्नमय दिव्य आभूषण उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह अपनी चकोरीरूपी चक्षुओंके द्वारा श्रीकृष्णके श्रीमुखचन्द्रका निरन्तर हर्षपूर्वक पान कर रही थी। श्रीकृष्णका मुखमण्डल इतना सुन्दर था कि उसके सामने करोड़ों चन्द्रमा भी नगण्य थे ! उस देवीके ललाटके ऊपरी भागमें कस्तूरीकी बिंदी थी। नीचे चन्दनकी छोटी-छोटी बिंदियाँ थीं। साथ ही मध्य ललाटमें सिन्दूरकी बिंदी भी शोभा पा रही थी। प्रेमीजनके चित्तको आकर्षित करनेवाली उस देवीके केश घुँघराले थे। मालतीके पुष्पोंका सुन्दर हार उसे सुशोभित कर रहा था। करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभासे सुप्रकाशित परिपूर्ण शोभासे इस देवीका श्रीविग्रह सम्पन्न था। यह अपनी चालसे राजहंस एवं गजराजके गर्वको नष्ट कर रही थी। श्रीकृष्ण परम रसिक एवं रासके स्वामी हैं। उस देवीको देखकर रासके उल्लासमें उल्लसित हो वे उसके साथ रासमण्डलमें पधारे। रास आरम्भ हो गया। अनेक प्रकारकी सजावट हो रही थी, मानो स्वयं शृङ्गार ही मूर्तिमान् होकर उपस्थित हो। ब्रह्माके पूरे एक दिनतक सुख-सम्भोग होता रहा। तत्पश्चात् जगत्पिता श्रीकृष्णको कुछ श्रम आ गया।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नारद ! रासक्रीड़ा हो जानेपर श्रमित हो जानेके कारण अथवा श्रीकृष्णके असह्य तेजसे उस देवीके शरीरसे दिव्य प्रस्वेद बह चला। उस समय जो श्रमजल था, वह समस्त विश्वगोलक बन गया। निःश्वास वायुरूपमें परिणत हो गया, जिसके आश्रयसे सारा जगत् वर्तमान है। संसारमें जितने सजीव प्राणी हैं, उन सबके भीतर इस वायुका निवास है। फिर वायु मूर्तिमान् हो गया। उसके वामाङ्गसे प्राणोंके समान प्यारी स्त्री प्रकट हो गयी। उससे पाँच पुत्र हुए, जो प्राणियोंके शरीरमें रहकर पञ्चप्राण कहलाते हैं। उनके नाम हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। यों पाँच वायु और उनके पुत्र पाँच प्राण हुए। पसीनेके रूपमें जो जल बहा था, वही जलके अधिष्ठाता देव वरुण हो गये। वरुणके बायें अङ्गसे उनकी पत्नी प्रकट हो आयीं।

उस समय श्रीकृष्णकी वह चिन्मयी शक्ति उनकी कृपासे गर्भस्थितिका अनुभव करने लगी। सौ मन्वन्तरतक ब्रह्मतेजसे उसका शरीर देदीप्यमान बना रहा। श्रीकृष्णके प्राणोंपर उस देवीका अधिकार था। श्रीकृष्ण प्राणोंसे भी बढ़कर उससे प्यार करते थे। वह सदा उनके

साथ रहती थी। श्रीकृष्णका वक्षःस्थल ही उसका स्थान था। सौ मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जानेपर उसने एक सुवर्णके समान प्रकाशमान बालक उत्पन्न किया। उसमें विश्वको धारण करनेकी समुचित योग्यता थी, किंतु उसे देखकर उस देवीका हृदय दुःखसे संतप्त हो उठा। उसने उस बालकको ब्रह्माण्ड-गोलकके अथाह जलमें छोड़ दिया। इसने बच्चेको त्याग दिया—यह देखकर देवेश्वर श्रीकृष्णने तुरंत उस देवीसे कहा—'अरी कोपशीले ! तूने यह जो बच्चेका त्याग कर दिया है, यह बड़ा घृणित कर्म है। इसके फलस्वरूप तू आजसे संतानहीना हो जा। यह बिलकुल निश्चित है। यही नहीं, किंतु तेरे अंशसे जो-जो दिव्य स्त्रियाँ होंगी, वे सभी तेरे समान ही नूतन तारुण्यसे सम्पन्न रहनेपर भी संतानका मुख नहीं देख सकेंगी।' इतनेमें उस देवीकी जीभके अग्रभागसे सहसा

एक परम मनोहर कन्या प्रकट हो गयी। उसके शरीरका वर्ण शुक्ल था। वह श्वेत वर्णका ही वस्त्र धारण किये हुए थी। उसके दोनों हाथ वीणा और पुस्तकसे सुशोभित थे। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी वह अधिष्ठात्री देवी रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थी।

तदनन्तर कुछ समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् वह मूलप्रकृति देवी दो रूपोंमें प्रकट हुई। आधे वाम अङ्गसे 'कमला' का प्रादुर्भाव हुआ और दाहिनेसे 'राधिका' का। उसी समय श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गये। आधे दाहिने अङ्गसे स्वयं 'द्विभुज' विराजमान रहे और बायें अङ्गसे चार भुजावाले विष्णुका आविर्भाव हो गया। तब श्रीकृष्णने सरस्वतीसे कहा—'देवी ! तुम इन विष्णुकी प्रिया बन जाओ। मानिनी राधा यहाँ रहेंगी। तुम्हारा परम कल्याण होगा।' इसी प्रकार संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने लक्ष्मीको नारायणकी सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा प्रदान की। फिर तो जगत्‌की व्यवस्थामें तत्पर रहनेवाले श्रीविष्णु उन सरस्वती और लक्ष्मी देवियोंके साथ वैकुण्ठ पधारे। मूल प्रकृतिरूपा राधाके अंशसे प्रकट होनेके कारण वे देवियाँ भी संतान प्रसव करनेमें असमर्थ रहीं। फिर नारायणके अङ्गसे चार भुजावाले अनेक पार्षद उत्पन्न हुए। सभी पार्षद गुण, तेज, रूप और अवस्थामें श्रीहरिके समान थे। लक्ष्मीके अङ्गसे उन्हीं-जैसे लक्षणोंसे सम्पन्न करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हो गयीं।

मुनिवर नारद ! इसके बाद गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोप प्रकट हो गये। अवस्था, तेज, रूप, गुण, बल और पराक्रममें वे सभी श्रीकृष्णके समान ही प्रतीत होते थे। प्राणके समान प्रेमभाजन उन गोपोंको परम प्रभु श्रीकृष्णने अपना पार्षद बना

लिया। ऐसे ही श्रीराधाके रोमकूपोंसे बहुत-सी गोपकन्याएँ निकल आयीं। वे सभी राधाके समान ही जान पड़ती थीं। उन मधुरभाषिणी कन्याओंको राधाने अपनी दासी बना लिया। वे रत्नमय

भूषणोंसे विभूषित थीं। उनका नया तारुण्य सदा बना रहता था। परम पुरुषके शापसे अनपत्य-दोष तो उनका चिरसाथी बन ही गया था।

विप्र ! इतनेमें श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाली देवी दुर्गाका सहसा आविर्भाव हुआ। ये दुर्गा सनातनी एवं भगवान् विष्णुकी माया हैं। इन्हें नारायणी, ईशानी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है। ये परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सम्पूर्ण देवियाँ इन्हींसे प्रकट होती हैं। अतएव इन ईश्वरीको मूलप्रकृति कहते हैं। इनमें कोई भी अंश अधूरा नहीं है। इन तेज:स्वरूपिणी देवीमें तीनों गुण विद्यमान हैं। तपाये हुए स्वर्णके समान इनका वर्ण है। ये ऐसी प्रतिभावाली हैं, मानो करोड़ों सूर्य चमक रहे हों। इनके मुखपर मन्द-मन्द मुसकराहट छायी रहती है। ये हजारों भुजाओंसे सुशोभित हैं। अनेक प्रकारके अस्त्र और शस्त्रोंको हाथमें लिये रहती हैं। इनके तीन नेत्र हैं। ये विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए हैं। रत्ननिर्मित भूषण इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनके अंशकी कलासे उत्पन्न हैं। इनकी माया जगत्के समस्त प्राणियोंको मोहित करनेमें समर्थ है। गृहस्थ-कामी पुरुषोंको ये सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। इनकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति उत्पन्न होती है। विष्णुके उपासकोंके लिये ये भगवती वैष्णवी हैं। मुमुक्षुजनोंको मुक्ति प्रदान करना और सुख चाहनेवालोंको सुखी बनाना इनका स्वभाव है। स्वर्गमें 'स्वर्गलक्ष्मी' और गृहस्थोंके घर 'गृहलक्ष्मी' के रूपमें ये विराजती हैं। तपस्वियोंके पास तपस्यारूपसे, राजाओंके यहाँ श्रीरूपसे, अग्निमें दाहिकारूपसे, सूर्यमें प्रभारूपसे तथा चन्द्रमा एवं कमलमें शोभारूपसे इन्हींकी शक्ति शोभा पा रही है। सर्वशक्तिस्वरूपा ये देवी परमात्मा श्रीकृष्णके पास विराजमान रहती हैं। इनका सहयोग पाकर आत्मामें कुछ करनेकी योग्यता प्राप्त होती है। इन्हींसे जगत् शक्तिमान् माना जाता है। इनके बिना प्राणी जीते हुए भी मृतकके समान हैं।

नारद ! ये सनातनी देवी संसाररूपी वृक्षके

लिये बीजस्वरूपा हैं। स्थिति, बुद्धि, फल, क्षुधा, पिपासा, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति और कान्ति आदि सभी इन दुर्गाके ही रूप हैं।

ये देवी सर्वेश श्रीकृष्णकी स्तुति करके

उनके सामने विराजमान हुईं। राधिकेश्वर श्रीकृष्णने इन्हें एक रत्नमय सिंहासन प्रदान किया। महामुने ! इतनेमें चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी शक्तिके साथ वहाँ पधारे। विष्णुके नाभि-कमलसे निकलकर उनका पधारना हुआ था। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ परम तपस्वी श्रीमान् ब्रह्मा अपने हाथमें कमण्डलु लिये हुए थे। ब्रह्मतेजसे उनका शरीर देदीप्यमान हो रहा था। अपने चारों मुखोंसे वे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। उस समय सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रभावशाली उनकी परम सुन्दरी शक्ति चिन्मय वस्त्र एवं रत्ननिर्मित भूषणोंसे अलंकृत होकर सर्वकारण श्रीकृष्णकी स्तुति करके पतिदेवके साथ श्रीकृष्णके सामने रत्नमय सिंहासनपर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं। इसी समय भगवान् श्रीकृष्णके दो रूप हो गये। उनका आधा बायाँ अङ्ग महादेवके रूपमें परिणत हो गया। दक्षिण अङ्गसे गोपीपति श्रीकृष्ण रह गये। महादेवकी कान्ति ऐसी थी, मानो शुद्ध स्फटिकमणि हो। एक अरब सूर्यके समान वे चमक रहे थे। भुजाएँ पट्टिश और त्रिशूलसे सुशोभित थीं। वे बाघंबर पहने हुए थे। तपाये हुए सुवर्णके सदृश उनके वर्णकी आभा थी। सिरपर जटाओंका भार छबि बढ़ा रहा था। वे शरीरमें भस्म लगाये हुए थे। मस्तकपर चन्द्रमाकी शोभा हो रही थी। मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। नीले कण्ठसे शोभा पानेवाले वे शंकर दिगम्बर-वेषमें थे। सर्पोंने भूषण बनकर उन्हें भूषित कर रखा था। उनके दाहिने हाथमें रत्नोंकी बनी हुई सुसंस्कृत माला सुशोभित थी। वे अपने पाँच मुखोंसे ब्रह्म-ज्योतिःस्वरूप सनातन श्रीकृष्णके नामका जप कर रहे थे। श्रीकृष्ण सत्य-स्वरूप, परमात्मा एवं ईश्वर हैं। ये कारणोंके कारण, सम्पूर्ण मङ्गलोंके मङ्गल, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयको हरनेवाले और मृत्युके भी मृत्यु हैं। अतएव इन्हें 'मृत्युञ्जय' भी कहा जाता है। महाभाग शंकर इनकी स्तुति करके सामने रखे हुए रत्नमय सुरम्य सिंहासनपर विराज गये।

(अध्याय २)

☆

## परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी श्रीराधासे प्रकट विराट्स्वरूप बालकका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! तदनन्तर वह बालक, जो केवल अण्डाकार था, ब्रह्माकी आयुपर्यन्त समयतक ब्रह्माण्डगोलकके जलमें रहा। फिर समय पूरा हो जानेपर वह

सहसा दो रूपोंमें प्रकट हो गया। एक अण्डाकार ही रहा और एक शिशुके रूपमें परिणत हो गया। उस शिशुकी ऐसी कान्ति थी, मानो सौ करोड़ सूर्य एक साथ प्रकाशित हो रहे हों। माताका दूध न मिलनेके कारण भूखसे पीड़ित होकर वह कुछ समयतक रोता रहा। माता-पिता उसे त्याग चुके थे। वह निराश्रय होकर जलके अंदर समय व्यतीत कर रहा था। ज़ो असंख्य ब्रह्माण्डका स्वामी है, उसीने अनाथकी भाँति, आश्रय पानेकी इच्छासे ऊपरकी ओर दृष्टि दौड़ायी। उसकी आकृति स्थूलसे भी स्थूल थी। अतएव उसका नाम महाविराट् पड़ा। जैसे परमाणु अत्यन्त सूक्ष्मतम होता है, वैसे ही वह अत्यन्त स्थूलतम था। वह बालक तेजमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंशकी बराबरी कर रहा था। परमात्मस्वरूपा प्रकृतिसंज्ञक राधासे उत्पन्न यह महान् विराट् बालक सम्पूर्ण विश्वका आधार है। यही 'महाविष्णु' कहलाता है। इसके प्रत्येक रोमकूपमें जितने विश्व हैं, उन सबकी संख्याका पता लगाना श्रीकृष्णके लिये भी असम्भव है। वे भी उन्हें स्पष्ट बता नहीं सकते। जैसे जगत्के रजःकणको कभी नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार इस शिशुके शरीरमें कितने ब्रह्मा और विष्णु आदि हैं—यह नहीं बताया जा सकता। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव विद्यमान हैं। पातालसे लेकर ब्रह्मलोकतक अनगिनत ब्रह्माण्ड बताये गये हैं। अतः उनकी संख्या कैसे निश्चित की जा सकती है ? ऊपर वैकुण्ठलोक है। यह ब्रह्माण्डसे बाहर है। इसके ऊपर पचास करोड़ योजनके विस्तारमें गोलोकधाम है। श्रीकृष्णके समान ही यह लोक भी नित्य और चिन्मय सत्यस्वरूप है। पृथ्वी सात द्वीपोंसे सुशोभित है। सात समुद्र इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उनचास छोटे-छोटे द्वीप हैं। पर्वतों और वनोंकी तो कोई संख्या ही नहीं है। सबसे ऊपर सात स्वर्गलोक हैं। ब्रह्मलोक भी इन्हींमें सम्मिलित है। नीचे सात पाताल हैं। यही ब्रह्माण्डका परिचय है। पृथ्वीसे ऊपर भूर्लोक, उससे परे भुवर्लोक, भुवर्लोकसे परे स्वर्लोक, उससे परे जनलोक, जनलोकसे परे तपोलोक, तपोलोकसे परे सत्यलोक और सत्यलोकसे परे ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोक ऐसा प्रकाशमान है, मानो तपाया हुआ सोना चमक रहा हो। ये सभी कृत्रिम हैं। कुछ तो ब्रह्माण्डके भीतर हैं और कुछ बाहर। नारद ! ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर ये सभी नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि पानीके बुलबुलेकी भाँति यह सारा जगत् अनित्य है। गोलोक और वैकुण्ठलोकको नित्य, अविनाशी एवं अकृत्रिम कहा गया है। उस विराट्-मय बालकके प्रत्येक रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्ड निश्चितरूपसे विराजमान हैं। एक-एक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। बेटा नारद ! देवताओंकी संख्या तीन करोड़ है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। दिशाओंके स्वामी, दिशाओंकी रक्षा करनेवाले तथा ग्रह एवं नक्षत्र— सभी इसमें सम्मिलित हैं। भूमण्डलपर चार प्रकारके वर्ण हैं। नीचे नागलोक है। चर और अचर सभी प्रकारके प्राणी उसपर निवास करते हैं।

नारद ! तदनन्तर वह विराट्स्वरूप बालक बार-बार ऊपर दृष्टि दौड़ाने लगा। वह गोलाकार पिण्ड बिलकुल खाली था। दूसरी कोई भी वस्तु वहाँ नहीं थी। उसके मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी। भूखसे आतुर होकर वह बालक बार-बार रुदन करने लगा। फिर जब उसे ज्ञान हुआ, तब

उसने परम पुरुष श्रीकृष्णका ध्यान किया। तब वहीं उसे सनातन ब्रह्म- ज्योतिके दर्शन प्राप्त हुए। वे ज्योतिर्मय श्रीकृष्ण नवीन मेघके समान श्याम थे। उनके दो भुजाएँ थीं। उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। उनके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी। मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे कुछ व्यस्त-से जान पड़ते थे। पिता परमेश्वरको देखकर वह बालक संतुष्ट होकर हँस पड़ा। फिर तो वरके अधिदेवता श्रीकृष्णने समयानुसार उसे वर दिया। कहा—'बेटा ! तुम मेरे समान ज्ञानी बन जाओ। भूख और प्यास तुम्हारे पास न आ सके। प्रलयपर्यन्त यह असंख्य ब्रह्माण्ड तुमपर अवलम्बित रहे। तुम निष्कामी, निर्भय और सबके लिये वरदाता बन जाओ। जरा, मृत्यु, रोग और शोक आदि तुम्हें कष्ट न पहुँचा सकें।' यों कहकर भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके कानमें तीन बार षडक्षर महामन्त्रका उच्चारण किया। यह उत्तम मन्त्र वेदका प्रधान अङ्ग है। आदिमें 'ॐ' का स्थान है। बीचमें चतुर्थी विभक्तिके साथ 'कृष्ण' ये दो अक्षर हैं। अन्तमें अग्निकी पत्नी 'स्वाहा' सम्मिलित हो जाती है। इस प्रकार 'ॐ कृष्णाय स्वाहा' यह मन्त्रका स्वरूप है। इस मन्त्रका जप करनेसे सम्पूर्ण विघ्न टल जाते हैं।

ब्रह्मपुत्र नारद ! मन्त्रोपदेशके पश्चात् परमप्रभु श्रीकृष्णने उस बालकके भोजनकी जो व्यवस्था की, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो। प्रत्येक विश्वमें वैष्णवजन जो कुछ भी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करते हैं, उसमेंसे सोलहवाँ भाग विष्णुको मिलता है और पंद्रह भाग इस बालकके लिये निश्चित हैं; क्योंकि यह बालक स्वयं परिपूर्णतम श्रीकृष्णका विराट्-रूप है।

विप्रवर ! सर्वव्यापी श्रीकृष्णने उस उत्तम मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करानेके पश्चात् पुनः उस विराट्-मय बालकसे कहा—'पुत्र ! तुम्हें इसके सिवा दूसरा कौन-सा वर अभीष्ट है, वह भी मुझे बताओ। मैं देनेके लिये सहर्ष तैयार हूँ।' उस समय विराट्-व्यापक प्रभु ही बालकरूपसे विराजमान था। भगवान् श्रीकृष्णकी बात

सुनकर उसने उनसे समयोचित बात कही।

बालकने कहा—प्रभो ! आपके चरणकमलोंमें मेरी अविचल भक्ति हो—मैं यही वर चाहता हूँ। मेरी आयु चाहे एक क्षणकी हो अथवा दीर्घकालकी; परंतु मैं जबतक जीऊँ, तबतक आपमें मेरी अटल श्रद्धा बनी रहे। इस लोकमें जो पुरुष आपका भक्त है, उसे सदा जीवन्मुक्त समझना चाहिये। आपकी भक्तिसे विमुख मूर्ख व्यक्ति जीते हुए भी मुर्दा माना जाता है। जिस अज्ञानी जनके हृदयमें आपकी भक्ति नहीं है, उसे जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत-उपवास, पुण्य अथवा तीर्थसेवनसे क्या लाभ ? उसका जीवन ही निष्फल है। प्रभो ! जबतक शरीरमें आत्मा रहता है, तबतक शक्तियाँ साथ रहती हैं।

आत्माके चले जानेके पश्चात् सम्पूर्ण स्वतन्त्र शक्तियोंकी भी सत्ता वहाँ नहीं रह जाती। महाभाग ! प्रकृतिसे परे वे सर्वात्मा आप ही हैं। आप स्वेच्छामय सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप परमात्मा सबके आदिपुरुष हैं।

नारद ! इस प्रकार अपने हृदयका उद्गार प्रकट करके वह बालक चुप हो गया। तब भगवान् श्रीकृष्ण कानोंको सुहावनी लगनेवाली मधुर वाणीमें उसका उत्तर देने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स ! मेरी ही भाँति तुम भी बहुत समयतक अत्यन्त स्थिर होकर विराजमान रहो। असंख्य ब्रह्माओंके जीवन समाप्त हो जानेपर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अपने स्वल्प अंशसे तुम विराजमान रहोगे। तुम्हारे नाभिकमलसे विश्व-स्त्रष्टा ब्रह्मा प्रकट होंगे। ब्रह्माके ललाटसे ग्यारह रुद्रोंका आविर्भाव होगा। शिवके अंश वे रुद्र सृष्टिके संहारकी व्यवस्था करेंगे। उन ग्यारहों रुद्रोंमें 'कालाग्नि' नामसे जो प्रसिद्ध हैं, वे ही रुद्र विश्वके संहारक होंगे। विष्णु विश्वकी रक्षा करनेके लिये रुद्रके अंशसे प्रकट होंगे। मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारे हृदयमें सदा मेरी भक्ति बनी रहेगी। तुम मेरे परम सुन्दर स्वरूपको ध्यानके द्वारा निरन्तर देख सकोगे, यह निश्चित है। तुम्हारी कमनीया माता मेरे वक्षःस्थलपर विराजमान रहेगी। उसकी भी झाँकी तुम प्राप्त कर सकोगे। वत्स ! अब मैं अपने गोलोकमें जाता हूँ। तुम यहीं ठहरो।

इस प्रकार उस बालकसे कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। उन्हें गोलोक जाते क्या देर ? वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुरंत सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माको तथा संहारकार्यमें कुशल रुद्रको आज्ञा दी।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स ! सृष्टि रचनेके लिये जाओ। विधे ! मेरी बात सुनो। महाविराट्के रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। उनमेंसे जो एक छोटा-सा ब्रह्माण्ड है, उसमें विराजनेवाले विराट्पुरुषकी नाभिसे जो कमल निकला है, उसपर तुम प्रकट हो जाओ। फिर रुद्रको संकेत करके कहा—'महाभाग महादेव ! तुम मेरे परम प्रिय हो। अपने अंशसे जगत्का संहार करनेके लिये ब्रह्माके ललाटसे प्रकट हो जाओ। स्वयं दीर्घकालतक तपस्या करना।'

नारद ! जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण यों कहकर चुप हो गये। तब ब्रह्मा और कल्याणकारी शिव—दोनों महानुभाव उन्हें प्रणाम करके विदा हो गये। महाविराट् पुरुषके रोमकूपमें अब भी ब्रह्माण्डगोलकका जल विराजमान है। उसमें एक साधारण विराट् पुरुष रहते हैं। ये उन महाविराट्के अंश हैं। इनकी सदा युवा-अवस्था रहती है। इनका श्याम रंगका विग्रह है। ये पीताम्बर पहनते हैं। जलरूपी शय्यापर सोये रहते हैं। इनका मुखमण्डल मुसकानसे भरा है। इन प्रसन्नमुख विश्वव्यापी प्रभुको 'जनार्दन' कहा जाता है। इन्हींके नाभि-कमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। तदनन्तर पता लगानेके विचारसे उस कमलदण्डपर एक लाख युगोंतक चक्कर लगाया। नारद ! इतना प्रयास करनेपर भी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलदण्डके अन्ततक जानेमें तुम्हारे पिता सफल न हो सके। तब उनके मनपर चिन्ता घिर आयी। वे पुनः अपने स्थानपर आकर भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलका ध्यान करने लगे। उस स्थितिमें उन्हें दिव्य दृष्टिो द्वारा विराट्पुरुषके कुछ दर्शन

प्राप्त हुए। ब्रह्माण्डगोलकके भीतर जलमय शय्यापर वे पुरुष शयन कर रहे थे। फिर जिनके रोमकूपसे वह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ था, उन परमप्रभु भगवान् श्रीकृष्णके भी दर्शन हुए। गोपों और गोपियोंसे सुशोभित गोलोकधामको भी देखनेमें वे सफलता पा गये। फिर तो श्रीकृष्णकी स्तुति करके उन्होंने उनसे वरदान पाकर सृष्टिका कार्य आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम ब्रह्मासे सनकादि चार मानस पुत्र हुए। फिर शिवकी सुप्रसिद्ध ग्यारह कलाएँ रुद्ररूपसे प्रकट हुईं। फिर जगत्की रक्षाके व्यवस्थापक श्रीविष्णु प्रकट हुए। उस समय वे विराट्पुरुषके वामभागसे प्रकट होकर श्वेतद्वीपमें विराजमान थे। चार भुजाओंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। यों विराट्पुरुषके नाभिकमलपर प्रकट होकर ब्रह्माने विश्वकी रचना की। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—त्रिलोकीके सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंका उन्होंने सृजन किया।

नारद! इस प्रकार महाविराट्पुरुषके सम्पूर्ण रोमकूपोंमें एक-एक करके अनेक ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक विराट्-पुरुष और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रभृति सहयोगी देवता रहकर कार्यकी व्यवस्था करते हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रका वर्णन कर दिया। यह प्रसंग सुख एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्रह्मन्! तुम फिर क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ३)

☆

## सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच

नारदजीने कहा—भगवन्! आपके कृपाप्रसादसे यह अमृतमयी सम्पूर्ण कथा मुझे सुननेको मिली है। अब आप इन प्रकृतिसंज्ञक देवियोंके पूजनका प्रसंग विस्तारके साथ बतानेकी कृपा कीजिये। किस पुरुषने किन देवीकी कैसे आराधना की है? मर्त्यलोकमें किस प्रकार उनकी पूजाका प्रचार हुआ? किस मन्त्रसे किनकी पूजा तथा किस स्तोत्रसे किनकी स्तुति की गयी है? किन देवियोंने किनको कौन-कौनसे वर दिये हैं? मुझे देवियोंके स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव और पावन चरित्रके साथ-साथ उपर्युक्त सारी बातें बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—ये पाँच देवियाँ सृष्टिकी प्रकृति कही जाती हैं। इनकी पूजा और अद्भुत प्रभाव प्रसिद्ध है। अमृतकी तुलना करनेवाले इनके सुप्रसिद्ध चरित्रसे सम्पूर्ण मङ्गल सुलभ हो जाते हैं। ब्रह्मन्! प्रकृतिके अंश और कलासंज्ञक जो देवियाँ हैं, उनके पुण्य चरित्र तुम्हें बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। इन देवियोंके नाम हैं—काली, वसुन्धरा, गङ्गा, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा। इनके संक्षिप्त मधुर और वैराग्योत्पादक चरित्रमें भी पवित्र करनेकी पूर्ण शक्ति है। दुर्गा और राधाका चरित्र बहुत विस्तृत है। संक्षेपमें उसे कहता हूँ—सुनो। मुनिवर! सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने उन सरस्वतीकी पूजा की है, जिनके प्रसादसे मूर्ख व्यक्ति पण्डित बन जाता है। इन कामस्वरूपिणी देवीने श्रीकृष्णको पानेकी इच्छा प्रकट की थी। ये सरस्वती सबकी माता कही जाती हैं। सर्वज्ञानी भगवान् श्रीकृष्णने इनका
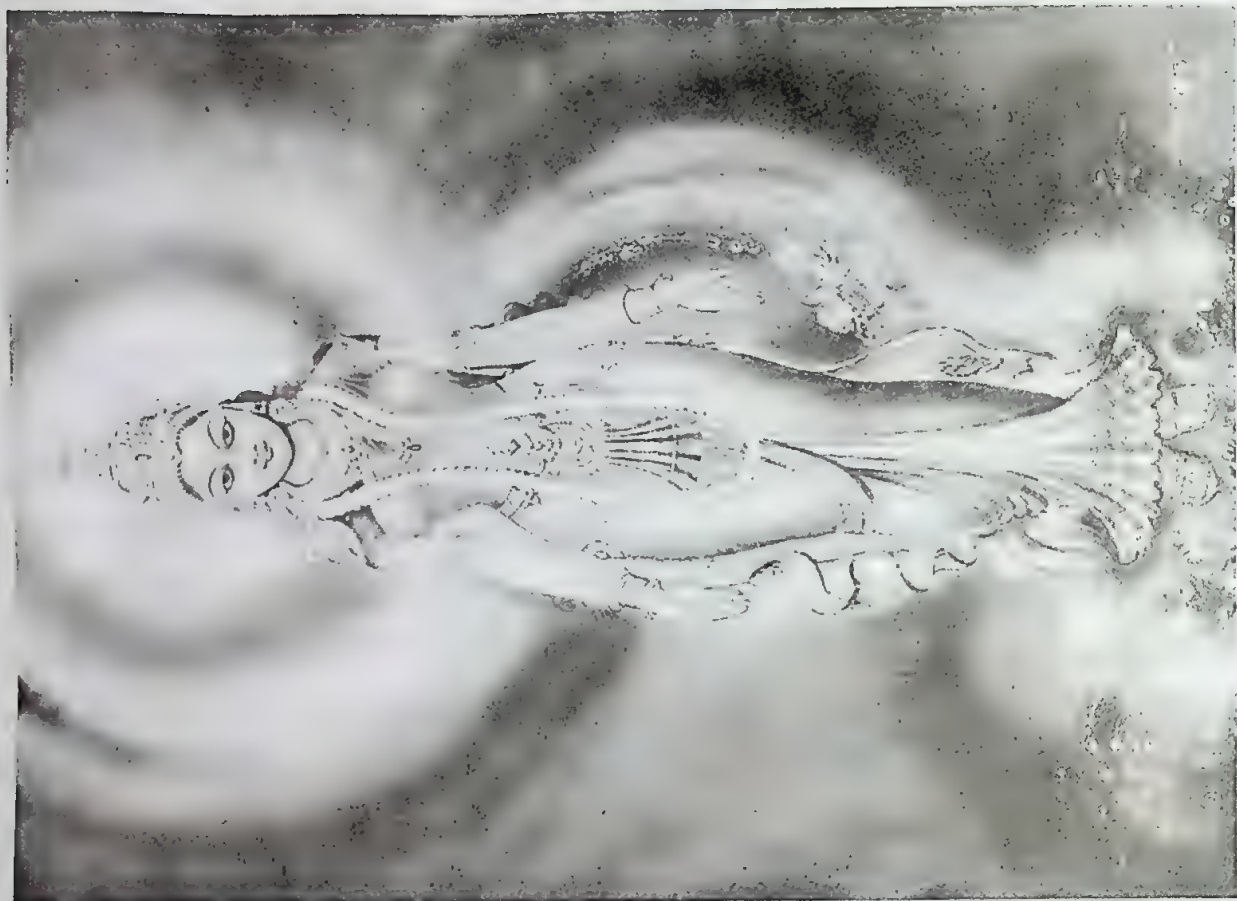
भगवती सरस्वती

भगवती लक्ष्मी

अभिप्राय समझकर सत्य, हितकर तथा परिणाममें सुख देनेवाले वचन कहे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—साध्वी! तुम नारायणके पास पधारो। वे मेरे ही अंश हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं। मेरे ही समान उन परम सुन्दर पुरुषमें सभी सद्गुण वर्तमान हैं। वे सदा तरुण रहते हैं। करोड़ों कामदेवोंके समान उनकी सुन्दरता है। लीलामय दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। मैं सबका स्वामी हूँ। सभी मेरा अनुशासन मानते हैं। किंतु राधाकी इच्छाका प्रतिबन्धक मैं नहीं हो सकता। कारण, वे तेज, रूप और गुण—सबमें मेरे समान हैं। सबको प्राण अत्यन्त प्रिय हैं फिर मैं अपने प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी इन राधाका त्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ? भद्रे! तुम वैकुण्ठ पधारो। तुम्हारे लिये वहीं रहना हितकर होगा। सर्वसमर्थ विष्णुको अपना स्वामी बनाकर दीर्घकालतक आनन्दका अनुभव करो। तेज, रूप और गुणमें तुम्हारे ही समान उनकी एक पत्नी लक्ष्मी भी वहाँ हैं। लक्ष्मीमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और हिंसा—ये नाममात्र भी नहीं हैं। उनके साथ तुम्हारा समय सदा प्रेमपूर्वक सुखसे व्यतीत होगा। विष्णु तुम दोनोंका समानरूपसे सम्मान करेंगे। सुन्दरी! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें माघ शुक्ल पञ्चमीके दिन विद्यारम्भके शुभ अवसरपर बड़े गौरवके साथ तुम्हारी विशाल पूजा होगी। मेरे वरके प्रभावसे आजसे लेकर प्रलयपर्यन्त प्रत्येक कल्पमें मनुष्य, मनुगण, देवता, मोक्षकामी प्रसिद्ध मुनिगण, वसु, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और राक्षस—सभी बड़ी भक्तिके साथ सोलह प्रकारके उपचारोंके द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे। उन संयमशील जितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा कण्व-शाखामें कही हुई विधिके अनुसार तुम्हारा ध्यान और पूजन होगा। घड़े अथवा पुस्तकमें तुम्हें आवाहित करेंगे। तुम्हारे कवचको भोजपत्रपर लिखकर उसे सोनेकी डिब्बीमें रख गन्ध एवं चन्दन आदिसे सुपूजित करके लोग अपने गलेमें अथवा दाहिनी भुजामें धारण करेंगे। पूजाके पवित्र अवसरपर विद्वान् पुरुषोंके द्वारा तुम्हारा सम्यक् प्रकारसे स्तुति-पाठ होगा।

इस प्रकार कहकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी उन सर्वपूजिता देवी सरस्वतीकी पूजा की। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, मुनीश्वर, सनकगण, देवता, मुनि, राजा और मनुगण—ये सभी भगवती सरस्वतीकी उपासना करने लगे। तबसे ये सरस्वती सम्पूर्ण प्राणियोंसे सदा सुपूजित होने लगीं।

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! आप भगवती सरस्वतीकी पूजाका विधान, कवच, ध्यान, उपयुक्त नैवेद्य, फूल तथा चन्दन आदिका परिचय देनेकी कृपा कीजिये। इसे सुननेके लिये मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल हो रहा है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! सुनो। कण्वशाखामें कही हुई पद्धति बतलाता हूँ। इसमें जगन्माता सरस्वतीके पूजनकी विधि वर्णित है। माघ शुक्ल पञ्चमी विद्यारम्भकी मुख्य तिथि है। उस दिन पूर्वाह्णकालमें ही प्रतिज्ञा करके संयमशील बन जाय। पवित्र रहे, स्नान और नित्यक्रियाके पश्चात् भक्तिपूर्वक कलश-स्थापन करे। फिर अपनी शाखामें कही हुई विधिसे अथवा तान्त्रिक विधिके अनुसार पहले गणेशपूजन करे। तत्पश्चात् इष्टदेवता सरस्वतीका पूजन करना उचित है। फिर ध्यान करके देवीका आवाहन करे। तदनन्तर व्रती

रहकर षोडशोपचारसे भगवतीकी पूजा करे। सौम्य ! पूजाके लिये कुछ उपयोगी नैवेद्य वेदमें कथित है। ताजा मक्खन, दही, दूध, धानका लावा, तिलके लड्डू, सफेद गन्ना, गुड़में बना हुआ मधुर पक्वान्न, मिश्री, सफेद रंगकी मिठाई, घीमें बना हुआ नमकीन पदार्थ, बढ़िया सात्त्विक चिउड़ा, शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँके आटेसे घृतमें तले हुए पदार्थ, पके हुए स्वच्छ केलेका पिष्टक, उत्तम अन्नको घृतमें पकाकर उससे बना हुआ अमृतके समान मधुर मिष्टान्न, नारियल, उसका पानी, कसेरू, मूली, अदरख, पका हुआ केला, बढ़िया बेल, बेरका फल, देश और कालके अनुसार उपलब्ध ऋतुफल तथा अन्य भी पवित्र स्वच्छ वर्णके फल—ये सब नैवेद्यके सामान हैं।

मुने ! सुगन्धित सफेद पुष्प और सफेद स्वच्छ चन्दन देवी सरस्वतीको अर्पण करना चाहिये। नवीन श्वेत वस्त्र और सुन्दर शङ्खकी विशेष आवश्यकता है। श्वेत पुष्पोंकी माला और भूषण भगवतीको चढ़ावे। महाभाग मुने ! भगवती सरस्वतीका श्रेष्ठ ध्यान परम सुखदायी है तथा भ्रमका उच्छेद करनेवाला है। वह वेदोक्त ध्यान यह है—

'सरस्वतीका श्रीविग्रह शुक्लवर्ण है। ये परमसुन्दरी देवी सदा हँसती रहती हैं। इनके परिपुष्ट विग्रहके सामने करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभा भी तुच्छ है। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र पहने हैं। इनके एक हाथमें वीणा है और दूसरेमें पुस्तक। सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए आभूषण इन्हें सुशोभित कर रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति प्रधान देवताओं तथा सुरगणोंसे ये सुपूजित हैं। श्रेष्ठ मुनि, मनु तथा मानव इनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। ऐसी भगवती सरस्वतीको मैं भक्ति-पूर्वक प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष पूजनके समग्र पदार्थ मूलमन्त्रसे विधिवत् सरस्वतीको अर्पण कर दे, फिर कवचका पाठ करनेके पश्चात् दण्डकी भाँति भूमिपर पड़कर देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम करे। मुने ! जो पुरुष भगवती सरस्वतीको अपना इष्टदेवता मानते हैं, उनके लिये यह नित्यक्रिया है। 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' यह वैदिक अष्टाक्षर मूल मन्त्र परम श्रेष्ठ एवं सबके लिये उपयोगी है। अथवा जिनको जिसने जिस मन्त्रका उपदेश दिया है, उनके लिये वही मूल मन्त्र है। 'सरस्वती' इस शब्दके साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर अन्तमें स्वाहा शब्द लगा लेना चाहिये। लक्ष्मी और योगमायाकी आराधनामें भी इसी मन्त्रका प्रयोग किया जाता है। इस मन्त्रको कल्पवृक्ष कहते हैं। प्राचीन कालमें कृपाके समुद्र भगवान् नारायणने वाल्मीकि मुनिको इसीका उपदेश किया था। भारतवर्षमें गङ्गाके पावन तटपर यह कार्य सम्पन्न हुआ था। फिर, सूर्यग्रहणके अवसरपर पुष्कर-क्षेत्रमें परशुरामजीने शुक्रको इसका उपदेश किया था। मारीचने चन्द्रग्रहणके समय प्रसन्न होकर बृहस्पतिको बताया था। बदरी-आश्रममें परम प्रसन्न ब्रह्माकी कृपासे भृगु इसे जान सके थे। जरत्कारु मुनि क्षीरसागरके पास विराजमान थे। उन्होंने आस्तीकको यह मन्त्र पढ़ाया था। बुद्धिमान् ऋष्यशृङ्गने मेरुपर्वतपर विभाण्डक मुनिसे इसकी शिक्षा प्राप्त की थी। शिवने आनन्दमें आकर गोतम गोत्रमें उत्पन्न कण्वमुनिको इसका उपदेश किया था। याज्ञवल्क्य और कात्यायनने सूर्यकी दयासे इसे पाया था। महाभाग शेष पातालमें बलिके सभा-भवनपर विराजमान थे। वहीं उन्होंने

पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज और शाकटायनको इसका अभ्यास कराया था। चार लाख जप करनेपर मनुष्यके लिये यह मन्त्र सिद्ध हो सकता है। इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर अवश्य ही मनुष्यमें बृहस्पतिके समान योग्यता प्राप्त हो सकती है। विप्रेन्द्र ! सरस्वतीका कवच विश्वपर विजय प्राप्त करानेवाला है। जगत्स्रष्टा ब्रह्माने गन्धमादन पर्वतपर भृगुके आग्रहसे इसे उन्हें बताया था, वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो।

भृगुने कहा—ब्रह्मन् ! आप ब्रह्मज्ञानी जनोंमें प्रमुख, पूर्ण ब्रह्मज्ञानसम्पन्न, सर्वज्ञ, सबके पिता, सबके स्वामी एवं सबके परम आराध्य हैं। प्रभो ! आप मुझे सरस्वतीका 'विश्वजय' नामक कवच बतानेकी कृपा कीजिये। मन्त्रोंका समूह यह कवच परम पवित्र है।

ब्रह्माजी बोले—वत्स ! मैं सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाला कवच कहता हूँ, सुनो। यह श्रुतियोंका सार, कानके लिये सुखप्रद, वेदोंमें प्रतिपादित एवं उनसे अनुमोदित है। रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोकमें विराजमान थे। वहीं वृन्दावनमें रासमण्डल था। उसी समय उन प्रभुने मुझे यह कवच सुनाया था। कल्पवृक्षकी तुलना करनेवाला यह कवच परम गोपनीय है। जिन्हें किसीने नहीं सुना है, वे अद्भुत मन्त्र इसमें सम्मिलित हैं। इसे धारण करनेके प्रभावसे ही भगवान् शुक्राचार्य सम्पूर्ण दैत्योंके पूज्य बन सके। ब्रह्मन् ! बृहस्पतिमें इतनी बुद्धिका समावेश इस कवचकी महिमासे ही हुआ है। वाल्मीकि मुनि सदा इसका पाठ और सरस्वतीका ध्यान करते थे। अतः उन्हें कवीन्द्र कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे भाषण करनेमें परम चतुर हो गये। इसे धारण करके स्वायम्भुव मनुने सबसे पूजा प्राप्त की। कणाद, गोतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और कात्यायन—इस कवचको धारण करके ही ग्रन्थोंकी रचनामें सफल हुए। इसे धारण करके स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यासदेवने वेदोंका विभाग कर खेल-ही-खेलमें अखिल पुराणोंका प्रणयन किया। शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर, याज्ञवल्क्य, ऋष्यशृङ्ग, भारद्वाज, आस्तीक, देवल, जैगीषव्य और ययातिने इस कवचके साथ ही पूरे ग्रन्थका अध्ययन किया था। इसीसे सर्वत्र उनका सम्मान होने लगा।

विप्रेन्द्र ! इस कवचके ऋषि प्रजापति हैं। स्वयं बृहती छन्द है। माता शारदा अधिष्ठात्री देवी हैं। अखिल तत्त्व-परिज्ञानपूर्वक सम्पूर्ण अर्थके साधन तथा समस्त कविताओंके विवेचनमें इसका प्रयोग किया जाता है।

श्रीं-ह्रीं-स्वरूपिणी भगवती सरस्वती सब ओरसे मेरे सिरकी रक्षा करें। श्रीमयी वाग्देवता सदा मेरे ललाटकी रक्षा करें। ॐ ह्रीं भगवती सरस्वती निरन्तर कानोंकी रक्षा करें। ॐ श्रीं-ह्रीं भगवती सरस्वती देवी सदा दोनों नेत्रोंकी रक्षा

करें। ऐं-ह्रीं-स्वरूपिणी वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सदा मेरी नासिकाकी रक्षा करें। ॐ ह्रींमयी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी होठकी रक्षा करें। ॐ श्रीं-ह्रीं भगवती ब्राह्मी दन्तपंक्तिकी निरन्तर रक्षा करें। 'ऐं' यह देवी सरस्वतीका एकाक्षर मन्त्र मेरे कण्ठकी रक्षा करे। ॐ श्रीं-ह्रीं मेरे गलेकी तथा श्रीं मेरे कंधोंकी सदा रक्षा करें। विद्याकी अधिष्ठात्री देवी ॐ ह्रीं-स्वरूपिणी सरस्वती सदा वक्षःस्थलकी रक्षा करें। विद्याधिस्वरूपा ॐ ह्रींमयी देवी मेरी नाभिकी रक्षा करें। ॐ ह्रीं-क्लीं-स्वरूपिणी देवी वाणी सदा मेरे हाथकी रक्षा करें। ॐ-स्वरूपिणी भगवती सर्ववर्णात्मिका दोनों पैरोंको सुरक्षित रखें। ॐ वाग्-अधिष्ठात्री देवीके द्वारा मैं सब प्रकारसे सदा सुरक्षित रहूँ। सबके कण्ठमें निवास करनेवाली ॐस्वरूपा देवी पूर्वदिशामें सदा मेरी रक्षा करें। सबकी जीभके अग्रभागपर विराजनेवाली ॐ-स्वरूपिणी देवी अग्निकोणमें रक्षा करें।

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।'

—इसको मन्त्रराज कहते हैं। यह इसी रूपमें सदा विराजमान रहता है। यह निरन्तर मेरे दक्षिण भागकी रक्षा करे। ऐं ह्रीं श्रीं—यह त्र्यक्षर नैर्ऋत्यकोणमें सदा रक्षा करे। जिह्वाके अग्रभागपर रहनेवाली ॐ ऐं-स्वरूपिणी देवी पश्चिमदिशामें मेरी रक्षा करें। ॐ-स्वरूपिणी भगवती सर्वाम्बिका वायव्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करें। गद्यमें निवास करनेवाली ॐ ऐं-श्रीं-क्लींमयी देवी उत्तरदिशामें मेरी रक्षा करें। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विराजनेवाली ऐं-स्वरूपिणी देवी ईशानकोणमें सदा रक्षा करें। ॐ ह्रीं-स्वरूपिणी सर्वपूजिता देवी ऊपरसे मेरी रक्षा करें। पुस्तकमें निवास करनेवाली ह्रीं-स्वरूपिणी देवी मेरे निम्नभागकी रक्षा करें। ॐ-स्वरूपिणी ग्रन्थ-बीजस्वरूपा देवी सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

विप्र! यह सरस्वती-कवच तुम्हें सुना दिया। असंख्य ब्रह्ममन्त्रोंका यह मूर्तिमान् विग्रह है। ब्रह्मस्वरूप इस कवचको 'विश्वजय' कहते हैं। प्राचीन समयकी बात है—गन्धमादन पर्वतपर धर्मदेवके मुखसे मुझे इसे सुननेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। तुम मेरे परम प्रिय हो। अतएव तुमसे मैंने कहा है। तुम्हें अन्य किसीके सामने इसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वस्त्र, चन्दन और अलंकार आदि सामानोंसे विधिपूर्वक गुरुकी पूजा करके दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर उन्हें प्रणाम करे। तत्पश्चात् उनसे इस कवचका अध्ययन करे। पाँच लाख जप करनेके पश्चात् यह कवच सिद्ध हो सकता है। इस कवचके सिद्ध हो जानेपर पुरुषको बृहस्पतिके समान पूर्ण योग्यता प्राप्त हो सकती है। इस कवचके प्रसादसे पुरुष भाषण करनेमें परम चतुर, कवियोंका सम्राट् और त्रैलोक्यविजयी हो सकता है। उसमें सब कुछ जीतनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है।* मुने! यह कवच कण्व-शाखाके अन्तर्गत है। अब स्तोत्र, ध्यान, वन्दन और पूजाका विधान बताता हूँ, सुनो। (अध्याय ४)

☆

* ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले॥

## याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सरस्वती देवीका स्तोत्र सुनो, जिससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। प्राचीन समयकी बात है—याज्ञवल्क्य नामक प्रसिद्ध एक प्रधान मुनि थे। उन्होंने भगवती सरस्वतीकी स्तुति की थी। जब गुरुने शाप देकर उनकी श्रेष्ठ विद्याको नष्ट कर दिया, तब वे अत्यन्त दुःखी होकर लोलार्क-कुण्डपर, जो उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाला स्थान है, गये। उन्होंने तपस्याके साथ ही शोकविह्वल होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति की; तब शक्तिशाली सूर्यने याज्ञवल्क्यको वेद और वेदाङ्गका अध्ययन कराया। साथ ही कहा—'मुने ! तुम स्मरण-शक्ति प्राप्त करनेके लिये भक्तिपूर्वक भगवती सरस्वतीकी स्तुति करो।' इस प्रकार कहकर दीनजनोंपर दया करनेवाले सूर्य अन्तर्धान हो गये। तब याज्ञवल्क्य मुनिने स्नान किया और नम्रताके कारण सिर झुकाकर

---

अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्॥
यद् धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः। यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः॥
पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः। स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः॥
कणादो गोतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः। ग्रन्थं चकार यद् धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्॥
धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च। चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥
शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः। यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः॥
ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा। जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः॥
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः। स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका॥
सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु॥
ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम्। ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदावतु। ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चौष्ठं सदावतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तिं सदावतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु। ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु॥
ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदावतु॥
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु। ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदावतु॥
ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु। ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु॥

वे भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

याज्ञवल्क्य बोले—जगन्माता! मुझपर कृपा करो। मैं बड़ा निस्तेज हो गया हूँ। गुरुके शापसे मेरी स्मरणशक्ति नष्ट हो गयी है। मैं विद्यासे वञ्चित हो बैठा हूँ। मुझे दुःख सता रहा है। तुम मुझे ज्ञान, स्मृति, शिष्योंको समझानेकी शक्ति, विद्या तथा ग्रन्थ-रचना करनेकी कुशलता देनेके साथ ही अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठित शिष्य बना लो। माता! तुम्हारी कृपासे मैं प्रतिभाशाली बनकर सज्जनोंकी सभामें जाऊँ और वहाँ विचार करनेमें मुझे उत्तम क्षमता प्राप्त हो सके। दुर्भाग्यवश मेरा जो सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया है, वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय। जिस प्रकार देवता धूलमें छिपे हुए बीजको समयानुसार अङ्कुरित कर देते हैं, वैसे ही तुम भी मेरे लुप्त ज्ञानको पुनः प्रकाशित कर दो। तुम ब्रह्मस्वरूपा, परमा, ज्योतीरूपा, सनातनी, सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिष्ठात्री एवं भगवती सरस्वती हो। तुम्हें बार-बार प्रणाम है। विसर्ग, बिन्दु एवं मात्रा—तीनोंमें जो अधिष्ठानरूपसे विद्यमान है, उसकी भी अधिष्ठात्री भगवती नीतिको बारम्बार नमस्कार है। वे देवी व्याख्यास्वरूपिणी हैं तथा व्याख्याकी अधिष्ठात्री भी वे ही हैं। जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी संख्याके परिगणनमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, उन कालसंख्यास्वरूपिणी भगवतीको बार-बार नमस्कार है। जो भ्रम सिद्धान्तरूपा तथा स्मृतिशक्ति, ज्ञानशक्ति और बुद्धिस्वरूपा हैं, उन देवीको बार-बार प्रणाम है। जो प्रतिभा-शक्ति और कल्पनाशक्ति हैं, उनको बार-बार प्रणाम है। एक बार सनत्कुमारने ब्रह्माजीसे ज्ञानका रहस्य पूछा था। उस समय ब्रह्मा भी मूक-जैसे हो गये थे। वे ब्रह्मसिद्धान्तके विषयमें कुछ भी कह न सके। उस समय स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पधारे। उन्होंने आते ही कहा—'प्रजापते! तुम भगवती सरस्वतीको इष्ट देवता मानकर उनकी स्तुति करो।' परमप्रभु श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर ब्रह्माने तुरंत सरस्वतीकी स्तुति आरम्भ कर दी। फिर तो देवीकी कृपासे उत्तम सिद्धान्तके विवेचनमें वे सफलीभूत हो गये।

ऐसे ही एक समयकी बात है—पृथ्वीने महाभाग अनन्तसे ज्ञानका रहस्य पूछा था। शेषकी भी मूकवत् स्थिति हो गयी। वे सिद्धान्त नहीं बता सके। उनके हृदयमें घबराहट उत्पन्न हो

---

ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां सर्वदावतु। ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥
ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु। ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥
ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदावतु। ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदावतु॥
ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाधो मां सदावतु। ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥
इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम्। इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्॥
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत् सुधीः॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यदि स्यात् सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्॥
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्। शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः॥
(९।४।६२—९०)

गयी। तब कश्यपके आज्ञानुसार उन्होंने सरस्वतीकी स्तुति की। इससे वे ऐसे सुयोग्य बन गये कि उनके मुखसे भ्रमको दूर करनेवाले निर्मल सिद्धान्तका विशद विवेचन हो सका। जब व्यासने वाल्मीकिसे पुराणसूत्रके विषयमें प्रश्न किया, तब वे चुप हो गये। ऐसी स्थितिमें वाल्मीकिने भगवती जगदम्बाको स्मरण किया। तब भगवतीने उन्हें वर दिया, जिसके प्रभावसे मुनिवर वाल्मीकि सिद्धान्तका प्रतिपादन कर सके। उस समय उन्हें भ्रमरूपी अन्धकारको मिटानेवाला प्रकाशमान ज्योतिके सदृश निर्मल ज्ञान प्राप्त हो गया। भगवान् श्रीकृष्णके अंश व्यासजी वाल्मीकि मुनिके मुखसे पुराणसूत्र सुनकर उसका अर्थ कविताके रूपमें स्पष्ट करनेके लिये कल्याणमयी देवीका ध्यान करने लगे। पुष्करक्षेत्रमें रहकर सौ वर्षोंतक उपासना की। माता ! तब तुमसे वर पाकर व्यासजी कवीश्वर बन सके। उसी समय उन्होंने वेदोंका विभाजन तथा पुराणोंकी रचना की। जब देवराज इन्द्रने भगवान् शंकरसे तत्त्वज्ञानके विषयमें प्रश्न किया, तब क्षणभर भगवतीका ध्यान करके वे उन्हें ज्ञानोपदेश करने लगे। फिर इन्द्रने बृहस्पतिसे शब्दशास्त्रके विषयमें पूछा। जगदम्बे ! उस समय बृहस्पति पुष्करक्षेत्रमें जाकर देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षतक तुम्हारे ध्यानमें संलग्न रहे। इतने वर्षोंके बाद तुमने उन्हें वर प्रदान किया। तब वे इन्द्रको शब्दशास्त्र और उसका अर्थ समझा सके। बृहस्पतिने जितने शिष्योंको पढ़ाया है और जितने सुप्रसिद्ध मुनि उनसे अध्ययन कर चुके हैं, वे सब-के-सब भगवती सुरेश्वरीका चिन्तन करनेके पश्चात् ही सफलीभूत हुए हैं। माता ! वह देवी तुम्हीं हो। मुनीश्वर, मनु और मानव—सभी तुम्हारी पूजा और स्तुति कर चुके हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता और दानवेश्वर प्रभृति—सबने तुम्हारी उपासना की है। जब हजार मुखवाले शेष, पाँच मुखवाले शंकर तथा चार मुखवाले ब्रह्मा तुम्हारा यशोगान करनेमें जडवत् हो गये, तब एक मुखवाला मैं मानव तुम्हारी स्तुति कर ही कैसे सकता हूँ।

नारद ! इस प्रकार स्तुति करके मुनिवर याज्ञवल्क्य भगवती सरस्वतीको प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिके कारण उनका कंधा झुक गया था। उनकी आँखोंसे जलकी धाराएँ निरन्तर गिर रही थीं। इतनेमें ज्योतिःस्वरूपा महामायाका उन्हें दर्शन प्राप्त हुआ। देवीने उनसे कहा—'मुने ! तुम सुप्रख्यात कवि हो जाओ।' यों कहकर भगवती महामाया वैकुण्ठ पधार गयीं। जो पुरुष याज्ञवल्क्यरचित इस सरस्वती-स्तोत्रको पढ़ता है, उसे कवीन्द्र पदकी प्राप्ति हो जाती है। भाषण करनेमें वह बृहस्पतिकी तुलना कर सकता है। कोई महान् मूर्ख अथवा दुर्बुद्धि ही क्यों न हो; यदि वह एक वर्षतक नियमपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, तो वह निश्चय ही पण्डित, परम बुद्धिमान् एवं सुकवि हो जाता है।* (अध्याय ५)

☆

---

* याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्। गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम्॥

## विष्णुपत्नी लक्ष्मी, सरस्वती एवं गङ्गाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना

भगवान् नारायण कहते हैं—**नारद ! स्वयं भगवती सरस्वती वैकुण्ठमें भगवान् श्रीहरिके पास रहती हैं। गङ्गाने इन्हें शाप दे दिया था। अतः ये भारतवर्षमें अपनी एक कलासे पधारीं। नदीके रूपमें इनका अवतरण हुआ। ये पुण्य प्रदान करनेवाली, पुण्यरूपा और पुण्यतीर्थ-स्वरूपिणी हैं। मुने ! पुण्यात्मा पुरुषोंको चाहिये कि वे इनका सेवन करें; क्योंकि उन्हींके लिये इनका यहाँ पधारना हुआ है। ये तपस्वियोंके लिये तपोरूपा हैं और तपस्याका फल भी इनसे**

---

ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम्। ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम्॥
प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम्। लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु॥
यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः। ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी॥
सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः। विसर्गबिन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च॥
तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नीत्यै नमो नमः। व्याख्यास्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी॥
यया बिना प्रसंख्यावान् संख्यां कर्तुं न शक्यते। कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥
भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः। स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी॥
प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः। सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै॥
बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः। तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः॥
उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते। स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः॥
चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्। यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा॥
बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः। तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया॥
ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्। व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा॥
मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम्। तदा चकार सिद्धान्तं तद्वरेण मुनीश्वरः॥
सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्ध्यध्वंसदीपकम्। पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः॥
तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे। तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह॥
तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः। यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम्॥
क्षणं तामेव संचिन्त्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः। पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे। तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम्॥
उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम्। अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः॥
ते च तां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम्। त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः॥
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः॥
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः। इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥
प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः। ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाप्युवाच तम्॥
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह। याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत्॥
स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्। महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत्॥
स पण्डितश्च मेधावी सुकवीन्द्रो भवेद् ध्रुवम्॥

(देवीभा० ९। ५। ६—३३)

कोई अलग वस्तु नहीं है। किये हुए सब पाप लकड़ीके समान हैं। उन्हें जलानेके लिये ये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं। भूमण्डलपर रहनेवाले जो मानव इनकी महिमा जानते हुए इनके तटपर अपना शरीर त्यागते हैं, उन्हें वैकुण्ठमें स्थान प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके भवनपर वे बहुत दिनोंतक वास करते हैं। चौमासेमें, पूर्णिमाके दिन, अक्षय नवमी तथा क्षय तिथिको एवं व्यतीपात, ग्रहण अथवा अन्य किसी भी पुण्यके दिन जो पुरुष किसी भी हेतुसे श्रद्धापूर्वक इनमें स्नान करता है, वह भगवान् श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। निश्चय ही उसे वैकुण्ठमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाती है। जो महान् मूर्ख होते हुए भी एक महीनेतक प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान करके इनके मन्त्रका जप करता है, वह कवीन्द्र बन सकता है; इसमें कोई संदेह नहीं। जो मनुष्य सिरके सारे बाल मुड़वाकर निरन्तर सरस्वतीके जलमें स्नान करता है, वह पुनः माताके गर्भमें वास नहीं कर सकता। इस प्रकार सरस्वतीकी महिमाका कुछ वर्णन किया गया है। इस सारभूत महिमाके प्रभावसे सुख और कामनाएँ सुलभ हो जाती हैं। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो।

सूतजी कहते हैं—शौनक! भगवान् नारायणकी बात सुनकर मुनिवर नारदने पुनः तुरंत उनसे यह संदेह पूछा।

नारदजीने कहा—सत्यस्वरूपा, पुण्यदा आदि शुभप्रदा गङ्गाने सरस्वती देवीको क्यों शाप दे दिया? इन दोनों तेजस्विनी देवियोंके विवादका कारण अवश्य ही कानोंको सुख देनेवाला होगा। आप इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! यह प्राचीन कथा मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा—ये तीनों ही भगवान् श्रीहरिकी भार्या हैं। एक बार सरस्वतीको यह संदेह हो गया कि श्रीहरि मेरी अपेक्षा गङ्गासे अधिक प्रेम करते हैं। तब उन्होंने श्रीहरिको कुछ कड़े शब्द कहे। फिर वे गङ्गापर क्रोध करके कठोर बर्ताव करने लगीं। तब शान्तस्वरूपा, क्षमामयी लक्ष्मीने उनको रोक दिया। इसपर सरस्वतीने लक्ष्मीको गङ्गाका पक्ष करनेवाली मानकर आवेशमें शाप दे दिया 'तुम निश्चय ही वृक्षरूपा और नदीरूपा हो जाओगी।'

लक्ष्मीने सरस्वतीके इस शापको सुन लिया; परंतु स्वयं बदलेमें सरस्वतीको शाप देना तो दूर रहा, उनके मनमें तनिक-सा भी क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। वे वहीं शान्त बैठी रहीं और सरस्वतीके हाथको अपने हाथसे पकड़ लिया। पर गङ्गासे यह नहीं देखा गया। उन्होंने सरस्वतीको शाप दे दिया। कहा—'बहन लक्ष्मी! जो तुम्हें शाप दे चुकी है, वह सरस्वती भी नदीरूपा हो जाय। यह नीचे मर्त्यलोकमें चली जाय, जहाँ सब पापीजन निवास करते हैं।'

नारद! गङ्गाकी यह बात सुनकर सरस्वतीने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातलपर जाना होगा और तुम पापियोंके पापको अङ्गीकार करोगी। इतनेमें भगवान् श्रीहरि वहाँ आ गये। उस समय चार भुजावाले वे प्रभु अपने चार पार्षदोंसे सुशोभित थे। उन्होंने सरस्वतीका हाथ पकड़कर उन्हें अपने समीप प्रेमसे बैठा लिया! तत्पश्चात् वे सर्वज्ञानी श्रीहरि प्राचीन अखिल ज्ञानका रहस्य समझाने लगे। उन दुःखित देवियोंके कलह और शापका मुख्य कारण सुनकर परम प्रभुने समयानुकूल बातें बतायीं।

भगवान् श्रीहरि बोले—लक्ष्मी ! शुभे ! तुम अपनी कलासे राजा धर्मध्वजके घर पधारो। तुम किसीकी योनिसे उत्पन्न न होकर स्वयं भूमण्डलपर प्रकट हो जाना। वहीं तुम वृक्षरूपसे निवास करोगी। 'शंखचूड़' नामक एक असुर मेरे अंशसे उत्पन्न होगा। तुम उसकी पत्नी बन जाना। तत्पश्चात् निश्चय ही तुम्हें मेरी प्रेयसी भार्या बननेका सौभाग्य प्राप्त होगा। भारतवर्षमें त्रिलोकपावनी 'तुलसीके' नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। वरानने ! अभी-अभी तो तुम भारतीके शापसे भारतमें 'पद्मावती' नामक नदी बनकर पधारो।

तदनन्तर गङ्गासे कहा—'गङ्गे ! तुम सरस्वतीके शापवश अपने अंशसे पापियोंका पाप भस्म करनेके लिये विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्षमें जाना। सुकल्पिते ! भगीरथकी तपस्यासे तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। धरातलपर तुमको सब लोग भगवती भागीरथी कहेंगे। समुद्र मेरा अंश है। मेरे आज्ञानुसार तुम उसकी पत्नी होना स्वीकार कर लेना।' इसके बाद सरस्वतीसे कहा—'भारती ! तुम गङ्गाका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें चलो। तुम अपने पूर्ण अंशसे ब्रह्मसदनपर पधारकर उनकी कामिनी बन जाओ; यह गङ्गा अपने पूर्ण अंशसे शिवके स्थानपर चलें। यहाँ अपने पूर्ण अंशसे केवल लक्ष्मी रह जायँ। कारण, इनका स्वभाव परम शान्त है। ये कभी तनिक-सा क्रोध नहीं करतीं। मुझपर इनकी अटूट श्रद्धा है। ये सत्त्वस्वरूपा हैं। ये महान् साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, क्षमामूर्ति, सुन्दर आचरणोंसे सुशोभित तथा निरन्तर धर्मका पालन करती हैं। इनके एक अंशकी कलाका महत्त्व है कि विश्वभरमें सम्पूर्ण स्त्रियाँ धर्मात्मा, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशीला बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं।

अब भगवान् श्रीहरि स्वयं अपना विचार कहने लगे—'अहो ! विभिन्न स्वभाववाली तीन स्त्रियों, तीन नौकरों और तीन बान्धवोंका एकत्र

रहना वेदकी अनुमतिसे विरुद्ध है। ये एक जगह रहकर कल्याणप्रद नहीं हो सकते। जिन गृहस्थोंके घर स्त्री पुरुषके समान व्यवहार करे और पुरुष स्त्रीके अधीन रहे, उसका जीवन निष्फल समझा जाता है। उसके प्रत्येक पगपर अशुभ है। जिसकी स्त्री मुखदुष्टा, योनिदुष्टा और कलहप्रिया हो, उसके लिये तो जंगल ही घरसे बढ़कर सुखदायी है। कारण, वहाँ उसे जल, स्थल और फल तो मिल ही जाते हैं। ये फल-जल आदि जंगलमें निरन्तर सुलभ रहते हैं। घरपर नहीं मिल सकते। अग्निके पास रहना ठीक है; अथवा हिंसक जन्तुओंके निकट रहनेपर भी सुख मिल सकता है; किंतु दुष्टा स्त्रीके निकट रहनेवाले पुरुषको अवश्य ही महान् क्लेश भोगना पड़ता है। वरानने ! पुरुषोंके

लिये व्याधिज्वाला अथवा विषज्वालाको ठीक बताया जा सकता है; किंतु दुष्टा स्त्रियोंके मुखकी ज्वाला मृत्युसे भी अधिक कष्टप्रद होती है। स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंकी शुद्धि शरीरके भस्म हो जानेपर भी हो जाय—यह अनिश्चित है। स्त्रीके वशमें रहनेवाला व्यक्ति दिनमें जो कुछ कर्म करता है, उसके फलका वह भागी नहीं हो पाता। इस लोकमें और परलोकमें—सब जगह उसकी निन्दा होती है। जो यश और कीर्तिसे रहित है, उसे जीते हुए भी मुर्दा समझना चाहिये। एक भार्यावालेको ही चैन नहीं; फिर जिसके अनेक स्त्रियाँ हों, उसके लिये तो सुखकी कल्पना ही असम्भव है। अतएव गङ्गे ! तुम शिवके पास जाओ और सरस्वती ! तुम्हें ब्रह्माके स्थानपर चले जाना चाहिये। यहाँ मेरे भवनपर केवल सुशीला लक्ष्मीजी रह जायँ; क्योंकि परम साध्वी, उत्तम आचरण करनेवाली एवं पतिव्रता स्त्रीका स्वामी इस लोकमें स्वर्गका सुख भोगता है और परलोकमें उसके लिये कैवल्यपद सुरक्षित है। जिसकी पत्नी पतिव्रता है, वह परम पवित्र, सुखी और मुक्त समझा जाता है।' (अध्याय ६)

☆

## भगवान्के मुखारविन्दसे भक्तोंके महत्त्व और लक्षणोंका विशद वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तब गङ्गा और लक्ष्मी तथा सरस्वती—तीनों देवियाँ परस्पर एक-दूसरेका आलिङ्गन करके रोने लगीं। शोक और भयने उनके शरीरको कँपा दिया था। उनकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। उन सबको एकमात्र भगवान् ही शरण्य दृष्टिगोचर हुए। अतः वे क्रमशः उनसे प्रार्थना करने लगीं।

सरस्वतीने कहा—नाथ ! मुझ दुष्टाको शापसे बचाइये। अन्यथा मैं आजीवन चिन्तामें डूबी रहूँगी। भला; आप-जैसे महान् सच्चरित्र स्वामीके परित्याग कर देनेपर ये स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। प्रभो ! मैं भारतवर्षमें योगसाधन करके इस शरीरका त्याग कर दूँगी—यह निश्चित है।

गङ्गा बोली—जगत्प्रभो ! आप किस अपराधसे मुझे त्याग रहे हैं ? मैं जीवित नहीं रह सकूँगी।

लक्ष्मीने कहा—नाथ ! आप सत्त्वस्वरूप हैं। बड़े आश्चर्यकी बात है, आपको कैसे क्षोभ हो गया। आप इन दोनों पत्नियोंको प्रसन्न कीजिये। कारण, सच्चरित्र पतिके लिये क्षमा ही परम धर्म है। मैं सरस्वतीका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें जाऊँगी। परंतु प्रभो ! मुझे कितने समयतक वहाँ रहना होगा और मैं पुनः कब आपके चरणोंके दर्शन प्राप्त कर सकूँगी। पापीजन मेरे जलमें स्नान और आचमन करके अपना पाप मुझपर लाद देंगे, तब तुरंत उस पापसे मुक्त होकर आपके चरणोंमें आनेका अधिकार मुझे कैसे प्राप्त हो सकेगा ? मैं अपनी एक कलासे 'तुलसी' रूप धारण करना भी स्वीकार कर रही हूँ। मैं धर्मध्वजकी पुत्री बनूँगी। परंतु अच्युत ! यह सब भोगनेके पश्चात् मुझे पुनः कब आपके चरणकमल प्राप्त होंगे। कृपानिधे ! आपको अधिष्ठातृ देवता मानकर मैं भारतवर्षमें वृक्षरूपसे वास करूँगी; किंतु आप यह तो बताइये कि आप मेरा उद्धार कब करेंगे। यदि ये गङ्गा सरस्वतीके शापसे

भारतवर्षमें जायँगी, तब फिर इन्हें किस समय पुनः ऐसा सुअवसर मिलेगा कि ये शापरूपी पापसे छुटकारा पाकर आपको प्राप्त कर सकें। गङ्गाके शापसे ये सरस्वती भी यदि भारतमें जाती हैं तो आप इन्हें भी शापसे मुक्त करके कब अपने चरणकमलोंका दर्शन करायेंगे? प्रभो! आप जो इन सरस्वतीसे कह रहे हैं कि तुम ब्रह्माके घर सिधारो अथवा गङ्गाको शिवके भवनपर जानेकी आज्ञा दे रहे हैं—आपके इन वचनोंके लिये मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ।

नारद! इस प्रकार कहकर भगवती लक्ष्मीने अपने स्वामी श्रीहरिके चरण पकड़ लिये। उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने अपने केशसे भगवान्‌के चरणोंको आवेष्टित करके बारम्बार रुदन करना आरम्भ किया। भगवान् श्रीहरि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये सदा चिन्तित रहते हैं। लक्ष्मीकी प्रार्थना सुनकर मुसकानभरे प्रसन्नमुखसे उन्होंने देवी कमलाको हृदयसे चिपका लिया और कहा।

भगवान् विष्णु बोले—सुरेश्वरी! कमलेक्षणे! मुझे तुम्हारे वचनके साथ ही अपनी बात भी तो सत्य करनी है। अतः सुनो, मैं तुम तीनोंमें समता कर देता हूँ। ये सरस्वती कलाके एक अंशसे नदी बनकर भारतवर्षमें जायँ, आधे अंशसे ब्रह्माके भवनपर पधारें तथा पूर्ण अंशसे स्वयं मेरे पास रहें। ऐसे ही ये गङ्गा भगीरथके सत्प्रयत्नसे अपने कलांशसे त्रिलोकीको पवित्र करनेके लिये भारतवर्षमें जायँ और स्वयं पूर्ण अंशसे मेरे पास भवनपर रहें। वहाँ इन्हें शंकरके मस्तकपर रहनेका दुर्लभ अवसर भी प्राप्त होगा। ये स्वभावतः पवित्र तो हैं ही, किंतु वहाँ जानेपर इनकी पवित्रता और भी बढ़ जायगी। वामलोचने! तुम अपनी कलाके अंशांशसे भारतवर्षमें चलो। वहाँ तुम्हें 'पद्मावती' नदी और 'तुलसी' वृक्षके रूपसे विराजना होगा। कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर तुम नदीरूपिणी देवियोंका उद्धार हो जायगा। तदनन्तर तुमलोग मेरे भवनपर लौट आओगी। पद्मभवे! सम्पूर्ण प्राणियोंके पास जो सम्पत्ति और विपत्ति आती है—इसमें कोई-न-कोई हेतु छिपा रहता है! बिना विपत्ति सहे किन्हींको भी गौरव प्राप्त नहीं हो सकता। अब तुम्हारे शुद्ध होनेका उपाय बताता हूँ। मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले बहुत-से संतपुरुष भी तुम्हारे जलमें नहाने-धोनेके लिये पधारेंगे। उस समय तुम उनके दर्शन और स्पर्श प्राप्त करके सब पापोंसे छुटकारा पा जाओगी। सुन्दरी! इतना ही नहीं; किंतु भूमण्डलपर जितने असंख्य तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श पाकर परम पावन बन जायँगे। भारतवर्षकी भूमि अत्यन्त पवित्र है। मेरे मन्त्रोंके उपासक अनगिनत भक्त वहाँ वास करते हैं। प्राणियोंको पवित्र करना और तारना ही उनका प्रधान उद्देश्य है। मेरे भक्त जहाँ रहते और अपने पैर धोते हैं, वह स्थान महान् तीर्थ एवं परम पवित्र बन जाता है—यह बिलकुल निश्चित है*। घोर पापी भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शके प्रभावसे पवित्र होकर जीवन्मुक्त हो सकता है। नास्तिक व्यक्ति भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो सकता है।

* मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च। तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद् ध्रुवम्॥ (९।७।२६)

जो कमरमें तलवार बाँधकर द्वारपालकी हैसियतसे जीविका चलाते हैं, मुनीमीमात्र जिनकी जीविकाका साधन है, जो इधर-उधर चिट्ठी-पत्री पहुँचाकर अपना भरण-पोषण करते हैं तथा गाँव-गाँव घूमकर भीख माँगना ही जिनका व्यवसाय है एवं जो बैलोंको जोतते हैं, ऐसे 'ब्राह्मण' को अधम कहा जाता है; किंतु मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्श उन्हें भी पवित्र कर देते हैं। विश्वासघाती, मित्रघाती, झूठी गवाही देनेवाले तथा धरोहर हड़पनेवाले नीच व्यक्ति भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे शुद्ध हो सकते हैं। मेरे भक्तके दर्शन एवं स्पर्शमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि उसके प्रभावसे महापातकी व्यक्तितक पवित्र हो सकता है। सुन्दरी ! पिता, माता, स्त्री, छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, बहन, गुरुकुल, नेत्रहीन बान्धव, सासु और श्वशुर—जो पुरुष इनके भरण-पोषणकी व्यवस्था नहीं करता, उसे महान् पातकी कहते हैं; किंतु मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श करनेसे वह भी शुद्ध हो जाता है। पीपलके वृक्षको काटनेवाले, मेरे भक्तोंके निन्दक तथा नीच ब्राह्मणको भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श पवित्र बना देता है। घोर पातकी मनुष्य भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो सकते हैं।

श्रीमहालक्ष्मीने कहा—भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आतुर रहनेवाले प्रभो ! अब आप उन अपने भक्तोंके लक्षण बतलाइये, जिनके दर्शन और स्पर्शसे हरिभक्तिहीन, अत्यन्त अहंकारी, अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाले, धूर्त, शठ एवं साधुनिन्दक अत्यन्त अधम मानवतक तुरंत पवित्र हो जाते हैं तथा जिनके नहाने-धोनेसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें पवित्रता आ जाती है; जिनके चरणोंकी धूलिसे तथा चरणोदकसे पृथ्वीका कल्मष दूर हो जाता है तथा जिनका दर्शन एवं स्पर्श करनेके लिये भारतवर्षमें लोग लालायित रहते हैं, क्योंकि विष्णुभक्त पुरुषोंका समागम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये परम लाभदायक है। जलमय तीर्थ तीर्थ नहीं है और न मृण्मय एवं प्रस्तरमय देवता ही देवता हैं; क्योंकि वे समयानुसार ही आश्रित जनोंको पवित्र करते हैं। अहो, साक्षात् देवता तो विष्णु-भक्तोंको मानना चाहिये, जिनके प्रभावसे तुरंत पवित्रता प्राप्त हो जाती है* ।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! महालक्ष्मीकी बात सुनकर उनके आराध्य स्वामी भगवान् श्रीहरिका मुखमण्डल मुसकानसे भर गया। फिर वे अत्यन्त गूढ़ एवं श्रेष्ठ रहस्य कहनेके लिये प्रस्तुत हो गये।

श्रीभगवान् बोले—लक्ष्मी ! भक्तोंके लक्षण श्रुति एवं पुराणोंमें छिपे हुए हैं। इन पुण्यमय लक्षणोंमें पापोंका नाश करने, सुख देने तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेकी समुचित शक्ति है। ये तत्त्वस्वरूप लक्षण परम गोप्य हैं। दुष्ट व्यक्तियोंके समाजमें इनकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। तुम शुद्धस्वरूपा एवं मुझे प्राणोंके समान प्रिय हो। अतः तुमसे कहता हूँ, सुनो। जिसको सद्गुरुके मुखसे विष्णुका मन्त्र प्राप्त होता है और जो सब कुछ छोड़कर केवल मुझको ही सर्वस्व मानता है, उसीको वेद पुण्यात्मा एवं श्रेष्ठ मनुष्य बतलाते हैं। ऐसे

* न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो॥ (९।७।४२)

व्यक्तिके जन्म लेनेमात्रसे पूर्वके सौ पुरुष, चाहे वे स्वर्गमें हों अथवा नरकमें —तुरंत मुक्तिके अधिकारी हो जाते हैं। यदि उन पूर्वजोंमेंसे किन्हींका कहीं जन्म हो गया है तो उन्होंने जिस योनिमें जन्म पाया है, वहीं उनमें जीवन्मुक्तता आ जाती है और समयानुसार वे परमधाममें चले जाते हैं। मुझमें भक्ति रखनेवाला मानव मेरे गुणोंसे सम्पन्न होकर मुक्त हो जाता है। उसकी वृत्ति ही मेरे गुणका अनुसरण करने लगती है। वह सदा मेरी कथा-वार्त्तामें लगा रहता है। मेरा गुणानुवाद सुननेमात्रसे वह आनन्दमें तन्मय हो उठता है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है और वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखोंमें आँसू भर आते और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। मेरी पवित्र सेवामें नित्य नियुक्त रहनेके कारण सुख, चार प्रकारकी सालोक्यादि मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व कुछ भी पानेकी अभिलाषा वह नहीं करता। ब्रह्मा, इन्द्र एवं मनुकी उपाधि तथा स्वर्गके राज्यका सुख—ये सभी परम दुर्लभ हैं; किंतु मेरा भक्त स्वप्नमें भी इनकी इच्छा नहीं करता*। ऐसे मेरे बहुत-से भक्त भारतवर्षमें निवास करते हैं। उन भक्तोंके-जैसा जन्म सबके लिये सुलभ नहीं है। जो सदा मेरा गुणानुवाद सुनते और सुननेयोग्य पद्योंको गाकर आनन्दसे विह्वल हो जाते हैं, वे बड़भागी भक्त अन्य साधारण मनुष्य, तीर्थ एवं मेरे परम धामको भी पवित्र करके धराधामपर पधारते हैं।

पद्मे ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रश्नका समाधान कर दिया। अब तुम्हें जो उचित जान पड़े, वह करो। तदनन्तर वे सभी देवियाँ भगवान् श्रीहरिने जो कुछ आज्ञा दी थी, उसीके अनुसार कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं। स्वयं भगवान् अपने सुखदायी आसनपर विराजमान हो गये। (अध्याय ७)

☆

## कलियुगके भावी चरित्रका, कालमानका तथा गोलोककी श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! तदनन्तर सरस्वती अपनी एक कलासे तो पुण्य-क्षेत्र भारतवर्षमें पधारीं तथा पूर्ण अंशसे उन्हें भगवान् श्रीहरिके निकट रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारतमें पधारनेसे 'भारती', ब्रह्माकी प्रेम-भाजन होनेसे 'ब्राह्मी' तथा वचनकी अधिष्ठात्री होनेसे वे 'वाणी' नामसे विख्यात हुईं। सरोवर एवं वापीके जलमें सर्वत्र सर्वव्यापी श्रीहरि सदा दृष्टिगोचर होते हैं; अतः श्रीहरिका एक नाम 'सरस्वान्' है और उनकी प्रिया होनेसे इन देवीको 'सरस्वती' कहा जाता है। नदीरूपसे पधारकर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गयीं। पापीजनोंके पापको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं।

नारद ! तत्पश्चात् गङ्गा अपनी कलासे धरातलपर पहुँचीं। भगीरथके सत्प्रयत्नसे इनका

* न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥
(९।७।५१-५२)

शुभागमन हुआ। ये गङ्गा आ ही रही थीं कि शंकरने इन्हें अपने मस्तकपर धारण कर लिया। कारण, गङ्गाके वेगको केवल शंकर ही सँभाल सकते थे। अतएव पृथ्वीकी प्रार्थनासे वे इस कामके लिये प्रस्तुत हो गये। फिर पद्मा अर्थात् लक्ष्मी अपनी एक कलासे भारतवर्षमें नदीरूपसे पधारीं। इनका नाम 'पद्मावती' हुआ। वे स्वयं पूर्ण अंशसे भगवान् श्रीहरिकी सेवामें उनके समीप ही रहीं। तदनन्तर अपनी एक-दूसरी कलासे वे भारतमें राजा धर्मध्वजके यहाँ पुत्री-रूपसे प्रकट हुईं। उस समय इनका नाम 'तुलसी' पड़ा। श्रीहरिके ही वचनानुसार इन विश्वपावनी देवीने अपनी कलासे वृक्षमय बन जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। कलिमें पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें रहकर ये तीनों देवियाँ सरित्-रूपका परित्याग करके वैकुण्ठमें चली जायँगी। काशी तथा वृन्दावनके अतिरिक्त अन्य प्रायः सभी तीर्थ भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे। शालग्राम, शिव, शक्ति और भगवान् पुरुषोत्तम कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भारतवर्षको छोड़कर अपने स्थानपर पधारेंगे। इनके साथ ही साधु, पुराण, शङ्ख, श्राद्ध, तर्पण तथा वेदोक्त कर्म भी भारतवर्षसे उठ जायँगे। देवपूजा, देवनाम, देवताओंके गुणोंका कीर्तन, वेद, शास्त्र, पुराण, संत, सत्य, धर्म, ग्रामदेवता, व्रत, तप और उपवास—ये सब भी साथ ही इस भारतसे चल पड़ेंगे।

प्रायः सभी लोग मद्य और मांसका सेवन करेंगे। झूठ और कपटसे किसीको घृणा न होगी। उपर्युक्त देवी एवं देवताओंके भारतवर्ष छोड़ देनेके पश्चात् शठ, क्रूर, दाम्भिक, अत्यन्त अहंकारी, चोर, हिंसक—ये सब संसारमें फैल जायँगे। पुरुषभेद (परस्पर मैत्रीका अभाव) होगा। स्त्रीविभेद अर्थात् केवल स्त्री और पुरुषका ही भेद रहेगा—जातिभेदकी सत्ता उठ जायगी। अतएव निर्भीकतापूर्वक किसी भी वर्णकी स्त्रीके साथ कोई भी विवाह कर लेगा। वस्तुओंमें स्व-स्वामिभेद होगा—परस्पर एक-दूसरेको कोई भी वस्तु नहीं देंगे। सभी पुरुष स्त्रियोंके अधीन होकर रहेंगे। घर-घरमें पुंश्चलियोंका निवास होगा। वे दुराचारिणी स्त्रियाँ निरन्तर घुड़क और तड़ककर अपने पतियोंको पीड़ित करेंगी। सेवकमें जितनी नीचता रहेगी, उससे कहीं अधिक नीच स्वामी बन जायगा। घरमें जो बलवान् होंगे, उन्हींको कर्ता माना जायगा। बान्धवोंकी सीमा स्त्रीके परिवारमें सीमित हो जायगी। एक साथ पढ़ने-लिखनेवाले लोगोंमें भी परस्पर बातचीततक भी व्यवहार न रहेगा। पुरुष अपने ही परिवारसे अन्य अपरिचित व्यक्तियोंकी भाँति व्यवहार करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्ण अपनी जातिके आचार-विचारको छोड़ देंगे। संध्या-वन्दन और यज्ञोपवीत आदि संस्कार तो प्रायः बंद ही हो जायँगे। चारों ही वर्ण म्लेच्छके समान आचरण करेंगे। प्रायः सभी लोग अपने शास्त्रोंको छोड़कर म्लेच्छ भाषा पढ़ेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णोंके लोग सेवावृत्तिसे जीविका चलायेंगे। सम्पूर्ण प्राणियोंमें सत्यका अभाव हो जायगा। जमीनपर धान्य नहीं उपजेंगे। वृक्ष फलहीन हो जायँगे। गौओंमें दूध देनेकी शक्ति नहीं रहेगी। लोग बिना मक्खनके दूधका व्यवहार करेंगे। स्त्री और पुरुषमें प्रेमका अभाव होगा। गृहस्थ

असत्य भाषण करेंगे। राजाओंका तेज-अस्तित्व समाप्त हो जायगा। प्रजा भयानक करके भारसे अत्यन्त कष्ट पायेगी। चारों वर्णोंमें धर्म और पुण्यका नितान्त अभाव हो जायगा। लाखोंमें कोई एक भी पुण्यवान् न हो सकेगा। बुरी बातें और बुरे शब्दोंका ही व्यवहार होगा। ग्राम और नगर जंगल-जैसे प्रतीत होंगे। मनुष्योंका अभाव होगा। जंगलोंमें रहनेवाले लोग भी 'कर'के भारसे कष्ट भोगेंगे। नदियों और तालाबोंपर धान्य होंगे अर्थात् समयोचित वर्षाके अभावसे अन्यत्र खेती न होनेके कारण लोग इनके तटपर ही खेती करेंगे। कलियुगमें सम्भ्रान्त कुलके पुरुषोंकी अवनति होगी।

नारद! कलिके मनुष्य अश्लीलभाषी, धूर्त, शठ और असत्यवादी होंगे। भली-भाँति जोते-बोये हुए खेत भी धान्य देनेमें असमर्थ रहेंगे। नीच वर्णवाले धनी होनेके कारण श्रेष्ठ माने जायँगे। देवभक्तोंमें नास्तिकता आ जायगी। नगरनिवासी हिंसक, निर्दयी तथा मनुष्यघाती होंगे। कलिमें प्रायः स्त्री और पुरुष—रोगी, थोड़ी उम्रवाले और युवा-अवस्थासे रहित होंगे। सोलह वर्षमें ही उनके सिरके बाल पक जायँगे। बीस वर्षमें उन्हें बुढ़ापा घेर लेगा। आठ ही वर्षमें स्त्रियाँ रजस्वला होकर गर्भ धारण करने लगेंगी। कलियुगमें भगवन्नाम बेचा जायगा। मिथ्या दान होगा—मनुष्य अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिये दान देकर स्वयं पुनः उसे वापस ले लेंगे। देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति अथवा गुरुकुलवृत्ति—चाहे वह अपनी दी हुई हो अथवा दूसरेकी—कलिके मानव उसे छीन लेंगे। कलियुगमें मनुष्यको अगम्यागमनमें कोई हिचक न रहेगी। कलियुगमें स्त्रियों और पतियोंका निर्णय नहीं हो सकेगा। अर्थात् सभी स्त्री-पुरुषोंमें अवैध व्यवहार होंगे। प्रजा किन्हीं ग्रामों और धनोंपर अपना पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त कर सकेगी। प्रायः सब लोग अप्रिय वचन बोलेंगे। सभी चोर और लम्पट होंगे। सभी एक-दूसरेकी हिंसा करनेवाले एवं नरघाती होंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—सबके वंशजोंमें पाप प्रवेश कर जायगा। सभी लोग लाख, लोहा, रस और नमकका व्यापार करेंगे। पञ्चयज्ञ करनेमें द्विजोंकी प्रवृत्ति न होगी। यज्ञोपवीत पहनना उनके लिये भार हो जायगा। वे संध्या-वन्दन और शौचसे विहीन रहेंगे। पुंश्चली, सूदसे जीविका चलानेवाली तथा कुटनी स्त्री रजस्वला रहती हुई भी ब्राह्मणोंके घर भोजन बनायेगी। अन्नोंमें, स्त्रियोंमें और आश्रमवासी मनुष्योंमें कोई नियम नहीं रहेगा। घोर कलिमें प्रायः सभी म्लेच्छ हो जायँगे।

इस प्रकार जब सम्यक् प्रकारसे कलियुग आ जायगा, तब सारी पृथ्वी म्लेच्छोंसे भर जायगी। तब विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घर उनके पुत्ररूपसे भगवान् कल्कि प्रकट होंगे। सुप्रसिद्ध पराक्रमी ये कल्किभगवान् नारायणके अंश हैं। ये एक बहुत ऊँचे घोड़ेपर चढ़कर अपनी विशाल तलवारसे म्लेच्छोंका विनाश करेंगे और तीन रातमें ही पृथ्वीको म्लेच्छशून्य कर देंगे। यों वसुधाको म्लेच्छरहित करके वे स्वयं अन्तर्धान हो जायँगे। तब एक बार पृथ्वीपर अराजकता फैल जायगी। डाकू सर्वत्र लूट-पाट मचाने लगेंगे। तदनन्तर मोटे धारसे असीम जल बरसने लगेगा। लगातार छः दिन-रात वर्षा होगी। पृथ्वीपर सर्वत्र जल-ही-जल दिखायी पड़ेगा। पृथ्वी प्राणी, वृक्ष और गृहसे शून्य हो जायगी। मुने! इसके बाद बारह

सूर्य एक साथ उदय होंगे, जिनके प्रचण्ड तेजसे पृथ्वी सूख जायगी।

यों होनेपर दुर्धर्ष कलियुग समाप्त हो जायगा, तब तप और सत्त्वसे सम्पन्न धर्मका पूर्णरूपसे प्राकट्य होगा। उस समय तपस्वियों, धर्मात्माओं और वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे पुनः पृथ्वी शोभा पायगी। घर-घरमें स्त्रियाँ पतिव्रता और धर्मात्मा होंगी। धर्मप्राण न्यायपरायण क्षत्रियोंके हाथमें राज्यका प्रबन्ध होगा। वे सभी ब्राह्मणोंके भक्त, मनस्वी, तपस्वी, प्रतापी, धर्मात्मा और पुण्यकर्मके प्रेमी होंगे। वैश्य व्यापारमें तत्पर रहेंगे। वे मनमें धार्मिक भावना रखते हुए ब्राह्मणोंके प्रति श्रद्धा रखेंगे। शूद्र धर्मपर आस्था रखते हुए पवित्रतापूर्वक सेवा करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके वंशज भगवती जगदम्बा शक्तिके परम उपासक होंगे। उनके द्वारा देवीके मन्त्रका निरन्तर जप होने लगेगा। सब लोग देवीके ध्यानमें तत्पर रहेंगे। समयानुसार व्यवहार करनेवाले पुरुषोंमें श्रुति, स्मृति और पुराणका पूर्ण ज्ञान प्राप्त रहेगा। इसीको सत्ययुग कहते हैं। इस युगमें धर्म पूर्णरूपसे रहता है। त्रेतामें धर्म तीन पैरसे, द्वापरमें दो पैरसे और कलिमें केवल एक पैरसे रहता है। घोर कलि आनेपर तो यह सम्पूर्ण पैरोंसे हीन हो जाता है।

विप्र ! सात दिन हैं। सोलह तिथियाँ कही गयी हैं। बारह महीने और छः ऋतुएँ होती हैं। शुक्ल और कृष्ण—दो पक्ष तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन—दो अयन होते हैं। चार पहरका दिन होता है और चार पहरकी रात होती है। तीस दिनोंका एक महीना होता है। संवत्सर तथा इडावत्सर आदि भेदसे पाँच प्रकारके वर्ष समझने चाहिये ! यही कालकी संख्याका नियम है। जैसे दिन आते-जाते रहते हैं, ऐसे ही चारों युगोंका भी आना-जाना लगा रहता है। मनुष्योंका एक वर्ष पूरा होनेपर देवताओंका एक दिन-रात होता है। कालकी संख्याके विशेषज्ञ पुरुषोंका सिद्धान्त है कि मनुष्योंके तीन सौ साठ युग व्यतीत होनेपर देवताओंका एक युग बीतता है। इस प्रकारके इकहत्तर दिव्य युगोंको एक मन्वन्तर कहते हैं। एक इन्द्र एक मन्वन्तरपर्यन्त रहते हैं। यों अट्ठाईस मन्वन्तर बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। इस मानसे एक सौ आठ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। इसीको प्राकृत लय समझना चाहिये। उस समय पृथ्वी नहीं दिखायी पड़ती। पृथ्वीसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें लीन हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ऋषि आदि सभी सच्चिदानन्द ब्रह्ममें प्रवेश कर जाते हैं। उस ब्रह्ममें ही प्रकृति भी लीन हो जाती है—प्रकृति-पुरुष एक हो जाते हैं। मुने ! इसीको प्राकृत-प्रलय कहते हैं। इस प्रकार प्राकृत-प्रलय हो जानेपर ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है। मुनिवर ! इतने सुदीर्घ कालको भगवती जगदम्बाका एक निमेष कहते हैं। इस प्रकार देवीके एक निमेषमें सम्पूर्ण विश्व और अखिल ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते हैं। फिर भगवतीके निमेषमात्रमें ही सृष्टिके क्रमसे अनेक ब्रह्माण्ड बन जाते हैं। यों सृष्टि और प्रलय होते रहते हैं। कितने कल्प गये और आये—इसकी संख्या कौन जान सकता है ? नारद ! सृष्टियों, प्रलयों, ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादि प्रधान प्रबन्धकोंकी संख्याका परिज्ञान भला किस पुरुषको हो सकता है ?

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके जो एकमात्र ईश्वर हैं, उन्हें 'परमात्मा' कहा जाता है। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय है। ब्रह्मा प्रभृति देवता, महाविराट् और स्वल्पविराट्—सभी उन

माया को कभी बुद्धि समझ नहीं सकती। इसके भीतर के गहरे सत्य तक

परमप्रभु परमात्माके अंश हैं। उन परमात्माको ही 'पराशक्ति' कहा जाता है। वही अर्धनारीश्वर श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हैं। ये स्वयं दो रूपोंमें विभक्त हो जाते हैं—एक द्विभुज और दूसरे चतुर्भुज। चतुर्भुज श्रीहरि वैकुण्ठमें विराजने लगते हैं और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णका गोलोकमें निवास होता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त—सबको प्राकृतिक कहना चाहिये। ये सभी नश्वर हैं; क्योंकि प्रकृतिसे उत्पन्न हुई सभी वस्तुओंका क्षय अवश्यम्भावी है। इस प्रकार सृष्टिके कारणभूत परब्रह्म परमात्मा नित्य, सत्य, सनातन, स्वतन्त्र, निर्गुण और प्रकृतिसे परे हैं; उनकी न कोई लौकिक उपाधि है और न कोई भौतिक आकार। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे सदा प्रस्तुत रहते हैं। उन्हींकी कृपासे ज्ञानी बने हुए कमलयोनि ब्रह्माके द्वारा ब्रह्माण्डकी रचना होती है।

शिवको मृत्युञ्जय और सर्वसत्त्ववित् कहा जाता है। ये सर्वेश एवं महान् तपस्वी हैं। परब्रह्मको जानकर उनकी तपस्याके प्रभावसे ये संहार-कार्यमें सफल होते हैं। उन परब्रह्मके प्रति श्रद्धा रखने तथा उनकी सेवा करनेके प्रभावसे ही जगत्पालक श्रीमान् विष्णु महान् विभूतिसे सम्पन्न, सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक, सम्पूर्ण शक्ति प्रदान करनेमें समर्थ तथा सर्वेश्वर हुए हैं। प्रकृतिको सर्वशक्तिस्वरूपिणी, महामाया और सर्वेश्वरी कहा जाता है। वे ही भगवती प्रकृति सच्चिदानन्दस्वरूपिणी कहलाती हैं। उन्हें जानकर भक्तिपूर्वक तपस्या एवं सेवा करनेसे देवमाता सावित्री वेदोंकी अधिष्ठातृदेवता हुई हैं। उन वेदज्ञानसम्पन्ना देवीकी ब्राह्मण सदा पूजा करते हैं। इन सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती प्रकृतिकी सेवाका ही प्रभाव है कि सरस्वतीको समस्त विद्याकी अधिष्ठात्री माना जाता है। अखिल विद्वान् उनकी उपासना करते हैं। इन मूल प्रकृतिको जानकर तथा इनकी सेवा एवं तपस्यासे ही लक्ष्मी सर्वत्र सुपूजित हुई हैं। इन्हींकी उपासिका होनेसे दुर्गाको सब लोग पूजते हैं और वे सर्वेश्वरी सबकी कामनाएँ पूर्ण कर देती हैं।

श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें शोभा पाती हैं तथा उन सर्वज्ञानसम्पन्ना देवीमें सबके कष्ट शान्त करनेकी योग्यता है। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्राणकी अधिष्ठातृदेवता माना जाता है। राधा श्रीकृष्णस्वरूपा ही हैं। इसीसे राधा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं। इसीसे उन्हें सबसे अधिक सुन्दर रूप, सौभाग्य एवं मान-सम्मान प्राप्त है। इसीसे श्रीराधाने श्रीकृष्णकी पत्नी बनकर उनके वक्षःस्थलपर रहनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। भगवती राधाने शतशृङ्ग पर्वतपर जाकर तपस्या

की थी। उस तपस्याका उद्देश्य यह था कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पति हों। फिर तो तुरंत

भगवान् श्रीकृष्ण सामने प्रकट हो गये। चन्द्रमाकी कलाके समान शोभा पानेवाली राधाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपने हृदयसे चिपका लिया और प्रेमके उद्रेकसे उनकी आँखें आँसू बहाने लगीं। उन्होंने राधाको यह उत्तम वर दिया। उन्होंने राधासे कहा—'प्रियतमे ! तुम सदा मेरे वक्षःस्थलपर विराजमान हो। मेरे प्रति तुम्हारा शाश्वत प्रेम है। सौभाग्य, प्रतिष्ठा, प्रेम और गौरव तुम्हारे नित्यसंगी होंगे। तुम मेरे पास ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक प्रेमभाजन बनकर रहोगी। तुम परम आदरणीया एवं गौरवसम्पन्ना देवी हो। प्राणवल्लभे ! मैं तुम्हारा ही हो गया हूँ और सदा तुम्हारी ही इच्छाके अनुकूल व्यवहार करूँगा।'

इस प्रकार परमसुन्दरी राधाको वर देकर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपनी नित्य प्राणप्रिया बना लिया। श्रीराधाका अन्य किसीसे कोई भी सम्पर्क नहीं है। मुने ! ऐसे ही अन्य भी जिन देवियोंने भगवती मूलप्रकृतिकी सेवा की है, वे उसके फलस्वरूप सुपूजित हुई हैं। मुने ! भगवती दुर्गाने हिमालय पर्वतपर तपस्या की है। वे मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाके चरणोंका सदा ध्यान करती रहीं। अतएव सबकी परम आराध्या बन गयीं। सरस्वतीने गन्धमादन पर्वतपर रहकर तप किया है। इसीसे ये सर्ववन्द्या बन सकीं। लक्ष्मीको पुष्कर क्षेत्रमें तपस्या करनेके बाद सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेकी योग्यता प्राप्त हुई है। सावित्रीने मलयागिरिपर आराधना की। अतः लोग इनकी वन्दना एवं पूजा करते हैं।

नारद ! इस प्रकार देवता, मुनि, मानव, राजा तथा ब्राह्मण—प्रायः सभी महानुभावोंने आदिदेवीकी आराधना करके जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय ८)

☆

## पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा स्तुति एवं पृथ्वीके प्रति शास्त्रविपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

नारदजीने कहा—भगवन् ! आपने बतलाया है कि देवीके निमेषमात्रमें ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। उसका सत्ताशून्य हो जाना ही 'प्राकृतिक प्रलय' कहा जाता है। उस समय पृथ्वी अदृश्य हो जाती है। सम्पूर्ण विश्व जलमें डूब जाता है। सब-के-सब परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाते हैं। तब उस समय पृथ्वी छिपकर कहाँ रहती है और सृष्टिके समय वह पुनः कैसे प्रकट हो जाती है ? धन्य, मान्य, सबके आश्रय एवं विजयशालिनी होनेका सौभाग्य उसे पुनः कैसे प्राप्त होता है ? प्रभो ! अब आप पृथ्वीकी उत्पत्तिके मङ्गलमय चरित्रको सुनानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! श्रुति कहती है कि सम्पूर्ण सृष्टियोंके आरम्भमें आदि-शक्ति भगवती जगदम्बासे ही अखिल जगत्की उत्पत्ति होती है और प्रलयोंके अवसरपर प्राणी उन्हींमें लीन भी हो जाते हैं। अब पृथ्वीके जन्मका प्रसंग सुनो। कुछ लोग कहते हैं, यह आदरणीया पृथ्वी मधु और कैटभके मेदसे उत्पन्न हुई है; इसका भाव यह है कि उन दैत्योंके जीवनकालमें पृथ्वी स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ती

थी। वे जब मर गये, तब उनके शरीरसे मेद निकला—वही सूर्यके तेजसे सूख गया। अतः 'मेदिनी' इस नामसे पृथ्वी विख्यात हुई। इस मतका स्पष्टीकरण सुनो। पहले सर्वत्र जल-ही-जल दृष्टिगोचर हो रहा था। पृथ्वी जलसे ढकी थी। मेदसे केवल उसका स्पर्श हुआ। अतः लोग उसे 'मेदिनी' कहने लगे। मुने! अब पृथ्वीके सार्थक जन्मका प्रसंग कहता हूँ। यह चरित्र सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाला है।

मैं पुष्करक्षेत्रमें था। महाभाग धर्मके मुखसे जो कुछ सुन चुका हूँ, वही तुमसे कहूँगा। महाविराट् पुरुष अनन्तकालसे जलमें विराजमान रहते हैं—यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वव्यापी समष्टि मन प्रकट होता है। महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूप उसके आश्रय बन जाते हैं। मुने! उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी निकल आती है। जितने रोमकूप हैं, उन सबमेंसे एक-एकसे जलसहित पृथ्वी बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है। सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थिर रहना और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर छिपकर जलके भीतर चले जाना—यही इसका नियम है। अखिल ब्रह्माण्डमें यह विराजती है। वन और पर्वत इसकी शोभा बढ़ाये रहते हैं। यह सात समुद्रोंसे घिरी रहती है। सात द्वीप इसके अङ्ग हैं। हिमालय और सुमेरु आदि पर्वत तथा सूर्य एवं चन्द्रमा प्रभृति ग्रह इसे सदा सुशोभित करते हैं। महाविराट्की आज्ञाके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता प्रकट होते एवं समस्त प्राणी इसपर रहते हैं। पुण्य तीर्थ तथा पवित्र भारतवर्ष-जैसे देशोंसे सम्पन्न होनेका इसे सुअवसर मिलता है। यह पृथ्वी स्वर्णमय भूमि है। इसपर सात स्वर्ग हैं। इसके नीचे सात पाताल हैं। ऊपर ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोकसे भी ऊपर ध्रुवलोक है।

नारद! इस प्रकार इस पृथ्वीपर अखिल विश्वका निर्माण हुआ है। ये निर्मित सभी विश्व नश्वर हैं। यहाँतक कि 'प्राकृत-प्रलय'का अवसर आनेपर ब्रह्मा भी चले जाते हैं। उस समय केवल महाविराट् पुरुष विद्यमान रहते हैं। कारण, सृष्टिके आरम्भमें ही परब्रह्म श्रीकृष्णने इन्हें प्रकट करके इस कार्यमें नियुक्त कर दिया है। सृष्टि और प्रलय प्रवाहरूपसे नित्य हैं—इनका क्रम निरन्तर चालू रहता है। ये समयपर नियन्त्रण रखनेवाली अदृष्ट शक्तिके अधीन होकर रहते हैं। प्रवाहक्रमसे पृथ्वी भी नित्य है। वाराहकल्पमें यह मूर्तिमान् रूपसे विराजमान हुई थी और देवताओंने इसका पूजन किया था। मुनि, मनु, गन्धर्व और ब्राह्मण—प्रायः सभी इसकी पूजामें सम्मिलित हुए थे। उस समय भगवान्का वाराहावतार हुआ था। श्रुतिके सम्मतसे यह पृथ्वी उनकी पत्नीके रूपमें विराजमान हुई। इससे मंगलका जन्म हुआ और मंगलसे घटेशकी उत्पत्ति हुई।

नारदने पूछा—प्रभो! देवताओंने वाराह-कल्पमें पृथ्वीकी किस रूपसे पूजा की थी? सबको आश्रय प्रदान करनेवाली इस साध्वी देवीकी उस कल्पमें सभी पूजा करते थे। यह मूलप्रकृति ही पञ्चीकरणमार्गसे प्रकट है। भगवन्! नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें इसके विविध पूजनका प्रकार एवं मंगलके जन्मका कल्याणमय प्रसंग विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! बहुत पहलेकी बात है। उस समय वाराहकल्प चल

श्रीपृथ्वीदेवी

रहा था। ब्रह्माके स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि हिरण्याक्षको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल ले आये। उसे जलपर इस प्रकार रख दिया मानो तालाबमें कमलका पत्ता हो। उसीपर रहकर ब्रह्माने सम्पूर्ण मनोहर विश्वकी रचना की। पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी एक परम सुन्दरी देवीके वेषमें थी। उसे देखकर भगवान् श्रीहरिके मनमें प्रेम करनेका विचार उत्पन्न हो गया। अतएव भगवान्ने अपना वाराहरूप बना लिया। उनकी कान्ति ऐसी थी, मानो करोड़ों सूर्य हों। उनके प्रयाससे परम सुन्दरी मूर्ति भलीभाँति रतिके योग्य बन गयी। उस देवीके साथ दिव्य एक वर्षतक वे एकान्तमें रहे। फिर उन्होंने उस सुन्दरी देवीका संग छोड़ दिया। खेल-ही-खेलमें वे अपने पूर्व वाराहरूपसे विराजमान हो गये। उनके द्वारा परमसाध्वी देवी पृथ्वीका ध्यान और पूजन आरम्भ हो गया। धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, फूल और बलि आदि सामग्रियोंसे पूजा करके भगवान्ने उससे कहा।

श्रीभगवान् बोले—शुभे! तुम सबको आश्रय प्रदान करनेवाली बनो। मुनि, मनु, देवता, सिद्ध और दानव आदि सबसे सुपूजित होकर तुम सुख भोगोगी। अम्बुवाचीके[1] अतिरिक्त दिनमें गृहप्रवेश, गृहारम्भ, वापी एवं तड़ागके निर्माण अथवा अन्य गृहकार्यके अवसरपर देवता आदि सभी लोग मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे। जो मूर्ख तुम्हारी पूजा नहीं करना चाहेंगे, उन्हें नरकमें जाना पड़ेगा।

उस समय पृथ्वी गर्भवती हो चुकी थी। उसी गर्भसे तेजस्वी मंगल नामक ग्रहकी उत्पत्ति हुई। भगवान्के आज्ञानुसार उपस्थित सम्पूर्ण व्यक्ति पृथ्वीकी उपासना करने लगे। कण्वशाखामें कहे हुए मन्त्रोंको पढ़कर उन्होंने ध्यान किया और स्तुति की। मूलमन्त्र पढ़कर नैवेद्य अर्पण किया। यों त्रिलोकीभरमें पृथ्वीकी पूजा और स्तुति होने लगी।

नारदजीने कहा—भगवन्! पृथ्वीका किस प्रकार ध्यान किया जाता है, इनकी पूजाका प्रकार क्या है और कौन मूलमन्त्र है? सम्पूर्ण पुराणोंमें छिपे हुए इस प्रसंगको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! सर्वप्रथम

भगवान् वाराहने इस पृथ्वीकी पूजा की। उनके पश्चात् ब्रह्मा उसके पूजनमें संलग्न हुए। तदनन्तर सम्पूर्ण प्रधान मुनियों, मनुओं और मानवोंद्वारा इसका सम्मान हुआ। नारद! अब मैं इसका ध्यान, पूजन और मन्त्र बतलाता हूँ, सुनो।

---

१. सौरमानसे आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरणमें पृथ्वी ऋतुमती रहती है। इतने समयका नाम अम्बुवाची है।

'ॐ ह्रीं श्रीं वसुधायै स्वाहा' इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुने इसका पूजन किया था। ध्यानका प्रकार यह है—'पृथ्वी देवीके श्रीविग्रहका वर्ण स्वच्छ कमलके समान उज्ज्वल है। मुख ऐसा जान पड़ता है, मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण अङ्गोंमें ये चन्दन लगाये रहती हैं। रत्नमय अलंकारोंसे इनकी अनुपम शोभा होती है। समस्त रत्न इनके ऊपर तथा अंदर भी विद्यमान हैं। रत्नोंकी खानें इनको गौरवान्वित किये हुए हैं। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र धारण किये रहती हैं। इनके मुखमण्डलपर मुसकान छायी है। सभी लोग इनकी उपासना करते हैं। ऐसी भगवती पृथ्वीकी मैं आराधना करता हूँ।' इसी प्रकार ध्यान करके सब लोगोंने पृथ्वीकी पूजा की। विप्रेन्द्र ! अब कण्वशाखामें प्रतिपादित इनकी स्तुति सुनो।

वहाँ श्रीनारायणने कहा है—भगवती जये ! तुम जलकी आधार हो। तुम्हारे अंदर जलका रहना स्वाभाविक गुण है। तुम सबको जल प्रदान करती हो। भगवान् श्रीहरि यज्ञवाराह-रूपसे पधारे थे और तुम उनकी पत्नी बनी थीं। तुम विजयसम्पन्न, मङ्गलमयी, मङ्गलका आश्रय तथा मङ्गलप्रदा हो। देवी ! मुझे जय देनेकी कृपा करो। भवे ! मङ्गलेशे ! मैं मङ्गल-प्राप्तिके लिये तुमसे प्रार्थना करता हूँ। अतः कृपया मुझे मङ्गल प्रदान करो। सबको आश्रय देनेवाली देवी ! तुम सर्वज्ञा एवं सर्वशक्तिसमन्विता हो। सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली भगवती भवे ! तुम मेरा सम्पूर्ण अभीष्ट कार्य सम्पन्न कर दो। तुम्हारा विग्रह पुण्यमय है। तुम पुण्योंकी बीज हो। तुम्हें भगवती सनातनी कहा जाता है। भवे ! तुम पुण्याश्रया, पुण्योंकी आस्पद तथा पुण्यप्रदा हो। सम्पूर्ण शस्योंको उत्पन्न करनेवाली देवी ! सभी फसलें तुमपर निपजती हैं। तुम खेतियोंसे लहलहाई रहती हो। अन्तमें सभी खेतियाँ तुम्हारे ही भीतर लीन भी हो जाती हैं। भवे ! तुम्हारा सर्वाङ्ग ही शस्यमय है। भूमे ! तुम राजाओंकी सर्वस्व हो। राजालोग सदा तुम्हारा सम्मान करते हैं। राजाओंको सुखी बनानेवाली भगवती भूमिदे ! तुम मुझे भूमि देनेकी कृपा करो* ।

नारद ! यह स्तोत्र परम पवित्र है। जो पुरुष प्रातःकाल इसका पाठ करता है, उसे बलवान् राजा होनेका सौभाग्य अनेक जन्मोंके लिये प्राप्त होता है। इसे पढ़नेसे मनुष्य पृथ्वीके दानसे उत्पन्न पुण्यके अधिकारी बन जाते हैं। पृथ्वी-दानके अपहरणसे, दूसरेके कुएँको बिना उसकी आज्ञा लिये खोदनेसे, अम्बुवाची योगमें पृथ्वीको

---

* श्रीनारायण उवाच

जय जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे॥
यज्ञसूकरजाये च जयं देहि जयावहे। मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे॥
मङ्गलार्थं मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे। सर्वाधारे च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते॥
सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे। पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि॥
पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे। सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे॥
सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे। भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे॥
भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे। (९।९।५२—५८)

खननेसे, दूसरेकी भूमिका अपहरण करनेसे जो पाप होते हैं, उन पापोंका उच्छेद करनेके लिये यह परम उपयोगी है। मुने! पृथ्वीपर वीर्य त्यागने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उससे भी पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मुक्त हो जाता है।

नारदजी बोले—भगवन्! पृथ्वीका दान करनेसे जो पुण्य तथा उसे छीनने, दूसरेकी भूमिका हरण करने, अम्बुवाचीमें पृथ्वीका उपयोग करने, भूमिपर वीर्य गिराने तथा जमीनपर दीपक रखनेसे जो पाप बनता है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! मेरे पूछनेके अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीजन्य पाप हैं, उनको, उनके प्रतीकारसहित बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! जो पुरुष किसी संध्यापूत ब्राह्मणको एक विश्वामात्र भी भूमि दान करता है, वह भगवान् शिवके मन्दिर-निर्माणके पुण्यका भागी बन जाता है। फसलोंसे भरी-पूरी भूमिको ब्राह्मणके लिये अर्पण करनेवाला सत्पुरुष उतने ही वर्षोंतक भगवान् विष्णुके धाममें विराजता है, जितने उस जमीनके रजःकण हों। जो गाँव, भूमि और धान्य ब्राह्मणको देता है, उसके पुण्यसे दाता और प्रतिगृहीता—दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवती जगदम्बाके लोकमें स्थान पाते हैं। जो परोपकारी पुरुष भूमिदानके अवसरपर दाताको उत्साहित करता है, उसे अपने मित्र एवं गोत्रके साथ वैकुण्ठमें जानेकी सुविधा प्राप्त होती है।

अपनी अथवा दूसरेकी दी हुई ब्राह्मणकी भूमि हरण करनेवाला व्यक्ति सूर्य एवं चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें स्थान पाता है। इतना ही नहीं, किंतु इस पापके प्रभावसे उसके पुत्र और पौत्र आदिके पास भी पृथ्वी नहीं ठहरती। वह श्रीहीन, पुत्रहीन और दरिद्र होकर घोर रौरव नरकका अधिकारी बनता है। जो गोचरभूमिको जोतकर धान्य उपार्जन करता है और वही धान्य ब्राह्मणको देता है तो इस निन्दित कर्मके प्रभावसे उसे देवताओंके वर्षसे सौ वर्षतक 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें रहना पड़ता है। गौओंके रहनेके स्थान, तड़ाग तथा रास्तेको जोतकर पैदा किये हुए अन्नका दान करनेवाला मानव चौदह इन्द्रकी आयुतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहता है। जो कामान्ध व्यक्ति एकान्तमें पृथ्वीपर वीर्य गिराता, उसे वहाँकी जमीनमें जितने रजःकण हैं, उतने वर्षोंतक 'रौरव' नरकमें रहना पड़ता है। अम्बुवाचीमें भूमि खोदनेवाला मानव 'कृमिदंश' नामक नरकमें जाता और उसे वहाँ चार युगोंतक रहना पड़ता है। जो दूसरेके तड़ागमें पड़ी हुई कीचड़को निकालकर शुद्ध जल होनेपर स्नान करता है, उसे ब्रह्मलोकमें स्थान मिलता है। जो मन्द-बुद्धि मानव भूमिपतिके पितरोंको श्राद्धमें पिण्ड न देकर श्राद्ध करता है, उसे अवश्य ही नरकगामी होना पड़ता है।

शिवलिङ्ग, भगवतीकी मूर्ति, शङ्ख, यन्त्र, शालग्रामका जल, फूल, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, गोरोचन, चन्दनकी लकड़ी, रुद्राक्षकी माला, कुशकी जड़, पुस्तक और यज्ञोपवीत—इन वस्तुओंको भूमिपर रखनेसे मानव नरकमें वास करता है। गाँठमें बँधे हुए यज्ञसूत्रकी पूजा करना सभी द्विजाति वर्णोंके लिये अत्यावश्यक है। भूकम्प एवं ग्रहणके

अवसरपर पृथ्वीको खोदनेसे बड़ा पाप लगता है। इस मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे दूसरे जन्ममें अङ्गहीन होना पड़ता है। इसपर सबके भवन बने हैं, इसलिये यह 'भूमि' कहलाती है। कश्यपकी पुत्री होनेसे 'काश्यपी' तथा स्थिररूप होनेसे 'स्थिरा' कही जाती है। महामुने ! विश्वको धारण करनेसे 'विश्वम्भरा', अनन्त रूप होनेसे 'अनन्ता' तथा पृथुकी कन्या होनेसे अथवा सर्वत्र फैली रहनेसे इसका नाम 'पृथ्वी' पड़ा है।

(अध्याय ९-१०)

☆

## गङ्गाकी उत्पत्तिका विस्तृत प्रसंग

नारदजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन् ! पृथ्वीका यह परम मनोहर उपाख्यान सुन चुका। अब आप गङ्गाका विशद प्रसंग सुनानेकी कृपा कीजिये। प्रभो ! सुरेश्वरी, विष्णुस्वरूपा एवं स्वयं विष्णुपदी नामसे विख्यात गङ्गा सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें किस प्रकार और किस युगमें पधारी ? किसकी प्रार्थना एवं प्रेरणासे उसे वहाँ जाना पड़ा ? पापका उच्छेद करनेवाला यह पवित्र एवं पुण्यप्रद प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! श्रीमान् सगर एक सूर्यवंशी सम्राट् हो चुके हैं। मनको मुग्ध करनेवाली उनकी दो रानियाँ थीं—वैदर्भी और शैब्या। उनकी पत्नी शैब्यासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुलको बढ़ानेवाले उस सुन्दर पुत्रका नाम असमञ्जस पड़ा। उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी उपासना की। शंकरके वरदानसे उसे भी गर्भ रह गया। पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर उसके गर्भसे एक मांसपिण्डकी उत्पत्ति हुई। उसे देखकर वह बहुत ही दुःखी हुई और उसने भगवान् शिवका ध्यान किया। तब भगवान् शंकर ब्राह्मणके वेषमें उसके पास पधारे और उन्होंने उस मांसपिण्डको साठ हजार भागोंमें बाँट दिया। वे सभी टुकड़े पुत्ररूपमें परिणत हो गये। उनके बल और पराक्रमकी सीमा नहीं रही। उनके परमतेजस्वी कलेवरने ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाका मानो हरण कर लिया था; परंतु वे सभी तेजस्वी कुमार कपिल मुनिके शापसे जलकर भस्म हो गये। यह दुःखद समाचार सुनकर राजा सगरकी आँखें निरन्तर जल बहाने लगीं। वे बेचारे घोर जंगलमें चले गये। तब उनके पुत्र असमञ्जसने गङ्गाको ले आनेके लिये तपस्या आरम्भ कर दी। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे। अन्तमें कालने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। असमञ्जसके पुत्रका नाम अंशुमान् था। गङ्गाको ले आनेके लिये लम्बे समयतक तपस्या करनेके पश्चात् वे भी कालके कलेवा बन गये।

अंशुमान्के पुत्र भगीरथ थे। भगीरथ भगवान्के परम भक्त, विद्वान्, श्रीहरिमें अटूट श्रद्धा रखनेवाले, गुणवान् तथा वैष्णव पुरुष थे। गङ्गाको ले आनेका निश्चय करके उन्होंने बहुत समयतक तपस्या की। अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके उन्हें साक्षात् दर्शन हुए। उस समय भगवान्के श्रीविग्रहसे ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। उनके दो भुजाएँ थीं। वे हाथमें मुरली लिये हुए थे। उनकी किशोर अवस्था थी। वे गोपके वेषमें पधारे थे। कभी गोपसुन्दरी (राधा) के रूपमें
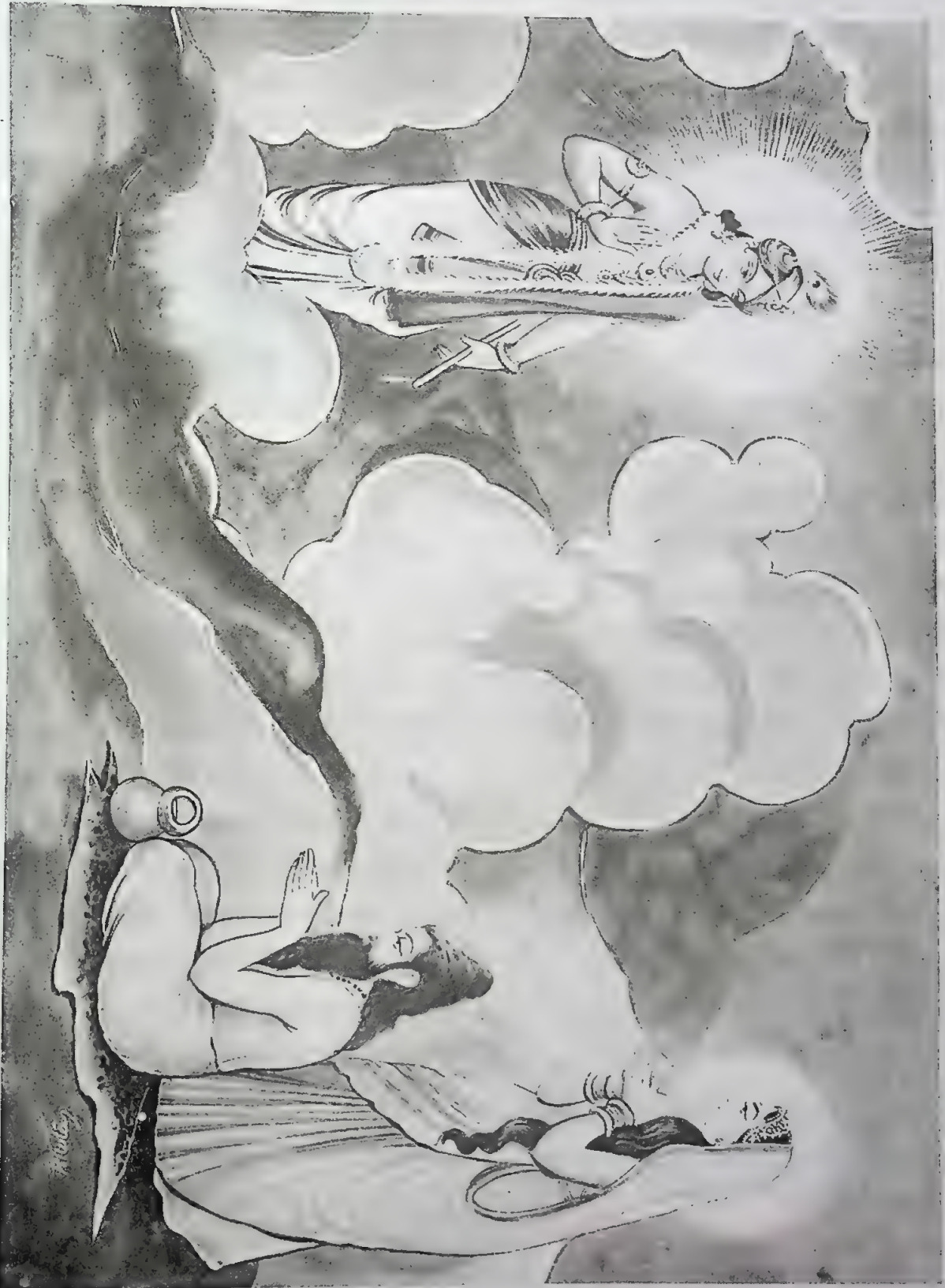
गङ्गा-भगीरथके सामने गोपवेषधारी श्रीकृष्णका प्राकट्य

भी उनके दर्शन हुआ करते हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही उन्होंने यह रूप धारण किया था। मुने ! भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परब्रह्म हैं। वे चाहे जैसा रूप बना सकते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि उनकी स्तुति कर रहे थे और मुनियोंने उनके सामने अपने मस्तक

झुका रखे थे। सदा निर्लिप्त, सबके साक्षी निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णका मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। विशुद्ध चिन्मय वस्त्र तथा दिव्य रत्नोंसे निर्मित आभूषण उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहे थे। उनकी यह दिव्य झाँकी पाकर भगीरथने बार-बार उन्हें प्रणाम किया और स्तुति भी की। लीलापूर्वक उन्हें भगवान्से अभीष्ट वर भी मिल गया। वे चाहते थे कि मेरे पूर्वज तर जायँ। परम आनन्दके साथ उन्होंने भगवान्की दिव्य स्तुति की थी।

भगवान् श्रीहरिने गङ्गाजीसे कहा—सुरेश्वरी ! तुम सरस्वतीके शापसे अभी भारतवर्षमें जाओ और मेरी आज्ञाके अनुसार सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र करो। तुमसे स्पर्शित वायुका संयोग पाकर ही वे सभी राजकुमार मेरे धाममें चले जायँगे। उनका भी विग्रह मेरे-जैसा ही हो जायगा और वे दिव्य रथपर सवार होंगे। उन्हें मेरे पार्षद होनेका सुअवसर प्राप्त होगा। वे सर्वदा आधि-व्याधिसे मुक्त रहेंगे। उनके जन्म-जन्मान्तरके पापोंकी समस्त पूँजी समाप्त हो जायगी। श्रुतिमें कहा गया है कि भारतवर्षमें मनुष्योंद्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मोंके पाप गङ्गाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा गङ्गादेवीमें मौसल[1] स्नान करनेसे दसगुना पुण्य होता है। सामान्य दिनमें भी स्नान करनेसे मनुष्योंके अनेकों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। पर्वों तथा विशेष पुण्यतिथियोंपर स्नान करनेका विशेष फल कहा गया है। सामान्यतः गङ्गामें स्नान करनेकी

१. गङ्गाको प्रणाम करके प्रवेश करे और निश्चेष्ट होकर अर्थात् बिना हाथ-पैर हिलाये शान्तभावसे स्नान कर ले। इसे मौसल स्नान कहते हैं।

अपेक्षा चन्द्रग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे करोड़गुना अधिक पुण्य कहा गया है। सूर्य-ग्रहणमें इससे दसगुना अधिक समझना चाहिये। इससे सौगुना पुण्य अर्धोदयके समय स्नान करनेसे मिलता है।

नारद ! इस प्रकार गङ्गा और भगीरथके सामने कहकर देवेश्वर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तब गङ्गाने भक्तिसे अत्यन्त नम्र होकर उनसे कहा।

गङ्गा बोलीं—नाथ ! सरस्वतीका शाप पहलेसे ही मेरे सिरपर सवार है; आप आज्ञा दे ही रहे हैं और इन महाराज भगीरथकी एतदर्थ तपस्या भी हो रही है। अतः मैं अभी भारतवर्षमें जा रही हूँ; परंतु प्रभो ! वहाँ जानेपर अनेकों पापी-जन अपने जिस-किसी प्रकारके भी पापको मुझपर लाद देंगे। ऐसी स्थितिमें मेरे ऊपर आये हुए वे पाप कैसे नष्ट होंगे—इसका उपाय तो बतला दीजिये। देवेश ! मुझे भारतवर्षमें कितने वर्षोंतक रहना पड़ेगा। फिर मैं कब आप परम प्रभुके धाममें आनेकी अधिकारिणी बन सकूँगी। प्रभो ! आप सर्वान्तर्यामीसे कोई भी बात छिपी नहीं है। सर्वज्ञ देव ! मेरे अन्तःकरणमें अन्य भी जो-जो कामनाएँ छिपी हैं, उनके भी पूर्ण होनेका उपाय बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान् बोले—सुरेश्वरी ! गङ्गे ! मैं तुम्हारे सभी अभिप्रायोंसे परिचित हूँ। तुम नदी-रूपसे भारतवर्षमें पधारोगी और मेरे ही अंश-स्वरूप समुद्र तुम्हारे पति होंगे। भारतवर्षमें सरस्वती आदि अन्य जितनी नदियाँ होंगी, उन सबमें समुद्रके लिये तुम ही सबसे अधिक सौभाग्यवती मानी जाओगी। देवेशी ! कलियुगके पाँच हजार वर्षोंतक तुम्हें सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें रहना है। देवी ! लक्ष्मीरूपा तुम रसिका हो और मेरे स्वरूप समुद्र रसिकराज हैं। तुम उसके साथ एकान्तमें निरन्तर प्रिय संगम करोगी। भारतवासी सम्पूर्ण मनुष्य भगीरथप्रणीत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे और उनके द्वारा भक्तिपूर्वक तुम सुपूजित भी होओगी। कण्वशाखामें बताये गये प्रकारसे तुम्हारा ध्यान करके लोग तुम्हारी पूजामें तत्पर होंगे। जो तुम्हारी स्तुति और तुम्हें प्रणाम करेगा, उसको अश्वमेध यज्ञका फल सुलभतासे प्राप्त होगा। चाहे सैकड़ों योजनकी दूरीपर क्यों न हो; किंतु जो 'गङ्गा-गङ्गा' इस नामका उच्चारण करके स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है। हजारों पापी व्यक्तियोंके स्नानसे जो तुमपर पाप आ जायँगे, भगवती जगदम्बाके भक्तोंके स्पर्शमात्रसे ही उनकी सत्ता नष्ट हो जायगी। हजारों पापी प्राणियोंके शवका स्पर्श अवश्य ही पापका साधन है; किंतु देवीके मन्त्रका अनुष्ठान करनेवाले पुण्यात्मा भक्त पुरुष भी तो तुम्हारेमें स्नान करने आयँगे। उनके स्नानसे तुम्हारा वह सारा पाप नष्ट हो जायगा। शुभे ! पवित्र भारतवर्षमें ही तुम्हारा निवास होगा। उस पापमोचन स्थानपर सरस्वती आदि सभी श्रेष्ठ नदियाँ तुम्हारा साथ देंगी। जहाँ तुम्हारे गुणोंका कीर्तन होगा, वह स्थान तुरंत तीर्थ बन जायगा। तुम्हारे रजःकणका स्पर्शमात्र हो जानेपर भी पापी पवित्र हो सकता है; और उन रजःकणोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षोंतक वह देवीके लोकमें बसनेका अधिकारी माना जाता है।

देवी ! जो भक्ति एवं ज्ञानसे सम्पन्न होकर

मेरे नामका स्मरण करते हुए प्राण-त्याग करते हैं, वे सीधे मेरे परमधाममें जाते हैं और वहाँ पार्षद बनकर दीर्घकालतक निवास करते हैं। वे असंख्य प्राकृतिक प्रलय देख सकते हैं। मृत व्यक्तिका शव बड़े पुण्यके प्रभावसे ही तुम्हारे अंदर आ सकता है। जितने दिनोंतक उसकी एक-एक हड्डी तुम्हारेमें रहती है, उतने समयतक वह वैकुण्ठमें वास करता है। यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे जलका स्पर्श करके प्राण-त्याग करता है तो वह मेरी कृपासे सालोक्य-पदका अधिकारी होता है। अथवा कोई कहीं भी मरे; यदि मरते समय जिस-किसी प्रकारसे भी तुम्हारे नामका स्मरण हो जाता है तो उसे मैं सालोक्य-पद प्रदान करता हूँ। ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वह वहाँ रह सकता है। कोई तीर्थमें मरे या अतीर्थमें—तुम्हारे स्मरणके प्रभावसे सारूप्य-पदका अधिकारी वह पुरुष ऐसा शक्तिशाली बन जाता है कि वह त्रिलोकीको भी पवित्र कर सकता है। जिनके बान्धव मेरे भक्त हैं—वे चाहे पशु आदि ही क्यों न हों—वे सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमानपर सवार होकर गोलोकमें चले जाते हैं।

मुनिवर! इस प्रकार गङ्गासे कहकर भगवान् श्रीहरिने राजा भगीरथसे कहा—'राजन्! तुम अभी इस गङ्गाकी स्तुति तथा भक्तिभावके साथ पूजा करो।' तब भगीरथ भक्तिपूर्वक गङ्गाके स्तवन और पूजनमें संलग्न हो गये। कौथुमिशाखामें कहे हुए ध्यान और स्तोत्रसे उन्होंने गङ्गाकी पूजा सम्पन्न की। तदनन्तर उन्होंने परमप्रभु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद भगीरथ और गङ्गाकी अभीष्ट स्थानकी ओर यात्रा आरम्भ हो गयी तथा भगवान् अन्तर्धान हो गये।

नारदने पूछा—वेदज्ञोंमें प्रमुख प्रभो! किस ध्यान-स्तोत्रसे तथा किस पूजाक्रमसे राजा भगीरथने गङ्गाकी पूजा की? यह मुझे स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! राजा भगीरथने नित्यक्रियाके पश्चात् स्नान किया। दो स्वच्छ वस्त्र धारण किये। तब इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखकर भक्तिपूर्वक छः देवताओंकी पूजा की। वे छः देवता हैं—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा। इन देवताओंका पूजन करनेपर वे गङ्गाजीकी पूजाके पूर्ण अधिकारी बन गये। नारद! विघ्न दूर होनेके लिये गणेशकी, आरोग्यताके लिये सूर्यकी, पवित्रताके लिये अग्निकी, लक्ष्मीप्राप्तिके लिये विष्णुकी, ज्ञानके लिये ज्ञानेश्वर शिवकी तथा मुक्ति पानेके लिये भगवती शिवाकी पूजा करना आवश्यक है। विद्वान् पुरुषको इन देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर लेनेपर ही अन्य किसी पूजामें सफलता प्राप्त होती है। मुने! सुनो, इस प्रकारसे भगीरथने गङ्गाका ध्यान किया था।

(अध्याय ११)

☆

## गङ्गाके ध्यान और स्तवनका वर्णन और श्रीराधा-कृष्णके अङ्गसे ही गङ्गाका प्रादुर्भाव

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! यह ध्यान सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है। गङ्गाका वर्ण श्वेत कमलके समान स्वच्छ है। ये समस्त पापोंका उच्छेद कर देती हैं। परब्रह्म पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे इनका प्राकट्य हुआ है। ये परम साध्वी उन्हींके समान सुयोग्य

हैं। चिन्मय वस्त्र इनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नमय भूषणोंसे ये विभूषित हैं। इन आदरणीया देवीने शरत्पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रमाओंकी स्वच्छ प्रतिभाको अपनेमें स्थान दे रखा है। ये सदा मुसकराती रहती हैं। इनके तारुण्यमें कभी

शिथिलता नहीं आती। ये शान्तस्वरूपिणी देवी भगवान् नारायणकी प्रिया हैं। सत्सौभाग्य कभी इनसे दूर नहीं हो सकता। इनके सिरपर सघन अलकावली है। मालतीके पुष्पोंकी माला इनकी शोभा बढ़ा रही है। इनके ललाटपर अर्धचन्द्राकार चन्दन लगा है और उसके ऊपर सिन्दूरकी बिंदी है। गण्डस्थलपर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थोंसे नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ रची गयी हैं। इनके परम मनोहर दोनों होठ पके हुए बिम्बाफलकी लालिमाको तुच्छ कर रहे हैं। इनकी मनोहर दन्तपंक्तियोंके सामने मोतियोंकी स्वच्छ माला नगण्य समझी जाती है। इनके कटाक्षपूर्ण चितवनसे युक्त परम मनोहर नेत्र सुन्दर मुखपर शोभा पा रहे हैं। श्रीफलके आकारवाले दो उरोज विराजित हैं। भूपद्मकी प्रभाका पराभव करनेवाले दो सुन्दर चरण हैं। रत्नमय पादुकाओंसे शोभा पानेवाले उन चरणोंमें महावर लगा है। देवराज इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए मन्दारके फूलोंके रजःकणसे इन देवीके श्रीचरणोंमें लालिमा आ गयी है। देवता, सिद्ध और मुनीन्द्र अर्घ्य लेकर सदा सामने खड़े हैं। तपस्वियोंके मुकुटमें रहनेवाले भौंरोंकी पंक्तिसे इनके चरण संयुक्त हैं। इनके पावन चरण मुमुक्षुजनोंको मुक्ति देनेमें तथा कामी पुरुषोंकी कामना पूर्ण करनेमें अत्यन्त कुशल हैं। ये परम आदरणीया देवी सबकी पूज्या, वर देनेमें प्रवीण, भक्तोंपर कृपा करनेमें परम कुशल, भगवान् विष्णुका पद प्रदान करनेवाली तथा विष्णुपदी नामसे सुविख्यात हैं। इन परमसाध्वी गङ्गादेवीकी मैं उपासना करता हूँ।

ब्रह्मन्! इसी ध्यानसे तीन मार्गोंसे विचरण करनेवाली कल्याणी गङ्गाका हृदयमें स्मरण करना चाहिये। इसके बाद सोलह प्रकारके उपचारोंसे इनकी पूजा करे। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन और सुन्दर शय्या—ये अर्पण करनेके योग्य सोलह उपचार हैं। इन्हें भगवती गङ्गाको भक्तिपूर्वक समर्पण करके प्रणाम करे और दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करे। इस प्रकार गङ्गादेवीकी उपासना करनेवाले बड़भागी पुरुषको अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

नारदजीने कहा—देवेश! लक्ष्मीकान्त! जगत्पते! अब मैं भगवान् विष्णुकी चिरसङ्गिनी भगवती गङ्गाके पापहारी एवं पुण्यप्रद स्तोत्र सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! सुनो, अब मैं पापध्वंसक पुण्यदायी स्तोत्र कहता हूँ।
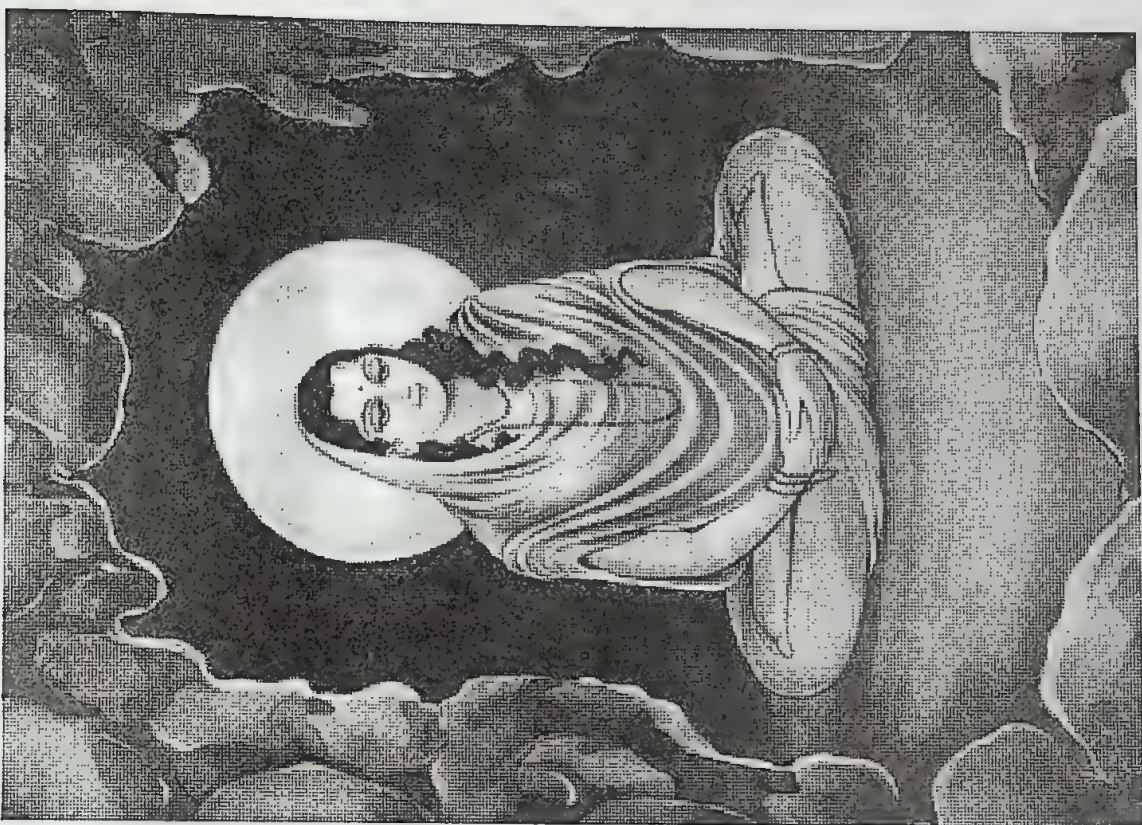
भगवती गङ्गा

भगवती तुलसी

जो श्रीगङ्गाजी भगवान् शंकरका संगीत सुनकर परम मुग्ध हुए श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई हैं तथा जो श्रीराधाके अङ्गद्रवसे सम्पन्न हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। सृष्टि आरम्भ होनेके अवसरपर गोलोकके रास-मण्डलमें जिनका आविर्भाव हुआ है, जो शंकरके संनिधानमें विराजती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। कार्तिकी पूर्णिमाके शुभ अवसरपर राधामहोत्सव मनाया जा रहा था। अनेक गोप और गोपियाँ विराजमान थीं। उस समाजमें शोभा पानेवाली भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो करोड़ योजन विस्तृत और लाख योजन चौड़ी हैं तथा जिनसे गोलोक भलीभाँति आच्छादित है, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो साठ लाख योजन चौड़ी और इससे चौगुने विस्तारसे वैकुण्ठमें विराजती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तीस लाख योजन चौड़ी और इससे पाँच गुने विस्तारसे ब्रह्मलोकमें फैली हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। तीस लाख योजन चौड़ाई और इससे चौगुनी लम्बाईमें होकर जो शिवलोककी शोभा बढ़ाती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो लाख योजन लम्बी और सातगुनी चौड़ी होकर ध्रुवलोकमें छायी हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। चन्द्रलोकमें लाख योजन विस्तृत और पञ्चगुने दैर्घ्यसे फैले रहनेवाली देवी गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। साठ हजार योजनकी दूरी और उससे दसगुनी चौड़ी होकर जो सूर्यलोकमें आवृत हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनकी लम्बाई लाख योजन तथा चौड़ाई उससे दसगुनी है, यों जो तपोलोकमें आवृत हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। एक हजार योजन विस्तृत तथा दसगुना दीर्घरूप बनाकर जनलोकमें फैली रहनेवाली भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। दस लाख योजन लम्बी और उससे पञ्चगुनी चौड़ी होकर महर्लोकमें आवृत भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। कैलासमें जो एक हजार योजन विस्तृत तथा सौ योजन चौड़ी होकर फैली हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सौ योजन लम्बी और दस योजन चौड़ी होकर मन्दाकिनी नामसे चन्द्रलोकमें शोभा पाती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो दस योजनके विस्तार तथा अपने कलेवरसे दस-गुनी चौड़ी होकर पाताललोकमें 'भोगवती'के नामसे प्रसिद्ध हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। एक कोस विस्तृत तथा कहीं-कहीं इससे भी कम होकर 'अलकनन्दा' नामसे जो पृथ्वीपर विराजमान हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सत्ययुगमें दूधके समान, त्रेतायुगमें चन्द्रमाके समान, द्वापरमें चन्दनके समान तथा कलियुगमें जलके समान होकर पृथ्वीपर अन्यत्र जहाँ-कहीं भी विचरती हैं एवं स्वर्गमें जो निरन्तर दूधके समान आभावाली रहती हैं, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके जलकणका स्पर्श होते ही पापियोंके हृदयमें ज्ञान प्रकट होकर अनेक जन्मोंके उपार्जित ब्रह्महत्यादि पापोंको भस्म कर देता है, उन भगवती गङ्गाको मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्मन्! इस प्रकार इक्कीस पद्योंमें गङ्गाकी स्तुति कही गयी है। इस उत्तम स्तोत्रके पाठ करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। यह पुण्यका उद्गमस्थान है। जो नित्यप्रति सुरेश्वरी गङ्गाकी

भक्तिभावके साथ पूजा करके यह स्तोत्र पढ़ता है, वह निस्संदेह अश्वमेध-यज्ञके फलका नित्य अधिकारी हो जाता है। इस स्तोत्रके प्रभावसे संतानहीन पुत्रवान् हो जाता है, स्त्रीहीनको स्त्री मिल जाती है, रोगी व्याधिसे छूट जाता तथा बन्धनमें पड़े हुए व्यक्तिके समस्त बन्धन कट जाते हैं, यह बिलकुल निश्चित है। इतना ही नहीं; किंतु छिपी हुई कीर्तिवालेका जगत्में उत्तम यश फैल जाता है तथा मूर्खके हृदयमें विचारनेकी श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। जो प्रातःकाल उठकर इस पवित्र गङ्गास्तोत्रका पाठ करता है, उसपर बुरे स्वप्न अपना अनिष्ट प्रभाव नहीं डाल सकते। साथ ही वह गङ्गामें स्नानके फलका भागी हो जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! राजा भगीरथ इस स्तोत्रसे गङ्गाकी स्तुति करके उन्हें साथ ले वहाँ पहुँचे, जहाँ सगरके साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गङ्गाका स्पर्श करके बहनेवाली वायुका स्पर्श होते ही वे राजकुमार तुरंत वैकुण्ठमें चले गये।*

---

* नारद उवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते ॥
विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम्।

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारणम्॥

शिवसंगीतसम्मुग्धश्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवाम्। राधाङ्गद्रवसंयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले। संनिधाने शंकरस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे। कार्तिकीपूर्णिमायां च तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः। समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। समावृता या वैकुण्ठे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता ब्रह्मलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः। आवृता शिवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता ध्रुवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता चन्द्रलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः। आवृता सूर्यलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता या तपोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः। आवृता जनलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता या महर्लोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः। आवृता या च कैलासे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः। मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
पाताले भोगवती चैव विस्तीर्णा दशयोजना। ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित्। क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसंनिभा। द्वापरे चन्दनाभा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥

भगीरथके सत्प्रयत्नसे गङ्गाका आगमन हुआ है। अतः गङ्गाको 'भागीरथी' कहते हैं। यों गङ्गाका सम्पूर्ण उत्तम उपाख्यान कह दिया। यह पुण्यदायी उपाख्यान मोक्षका अचूक साधन है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो ?

नारदजीने पूछा—भगवन्! भूमण्डलको पवित्र करनेवाली त्रिपथगा गङ्गा कैसे प्रकट हुईं ? प्रभो ! उनका कहाँ और किस प्रकारसे आविर्भाव हुआ ? यह सब प्रसंग बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—नारद ! एक समयकी बात है—कार्तिककी पूर्णिमा थी। राधा-महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया जा रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण सम्यक् प्रकारसे राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें विराजमान थे। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवता तथा शौनकादि ऋषि—प्रायः सभी महानुभावोंने बड़े आनन्दके साथ श्रीकृष्णपूजिता श्रीराधाजीकी पूजा की और फिर वे वहीं विराजमान हो गये। इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णको संगीत सुनानेवाली देवी सरस्वती हाथमें वीणा लेकर सुन्दर तालस्वरके साथ गीत गाने लगीं। तब ब्रह्माने प्रसन्न होकर एक सर्वोत्तम रत्नसे बना हुआ हार पुरस्काररूपमें उन्हें अर्पण किया। शिवसे उन्हें अखिल ब्रह्माण्डके लिये दुर्लभ एक उत्तम मणि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सम्पूर्ण रत्नोंमें श्रेष्ठ कौस्तुभमणि भेंट की। राधाने अमूल्य रत्नोंसे निर्मित एक अनुपम हार, भगवान् नारायणने एक सुन्दर पुष्पमाला तथा लक्ष्मीने बहुमूल्य रत्नोंके दो कुण्डल सरस्वतीको पुरस्काररूपमें दिये। विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना नामसे विख्यात भगवती मूलप्रकृतिने सरस्वतीके अन्तःकरणमें परम दुर्लभ परमात्मभक्ति प्रकट की। धर्मने धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करनेके साथ ही प्रपञ्चात्मक जगत्में उनकी कीर्ति विस्तृत की। अग्निदेवने चिन्मय वस्त्र तथा पवनदेवने मणिमय नूपुर सरस्वतीको प्रदान किये।

इतनेमें ब्रह्मासे प्रेरित होकर भगवान् शंकर श्रीकृष्णसम्बन्धी पद्य, जिसके प्रत्येक शब्दमें रसके उल्लासको बढ़ानेकी शक्ति भरी थी, बारम्बार गाने लगे। उसे सुनकर सम्पूर्ण देवता

---

जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले। स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसम्भवः। ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत्॥
इत्येवं कथिता ब्रह्मन् गङ्गा पद्यैकविंशतिः। स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम्॥
नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या सम्पूज्य च सुरेश्वरीम्। सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः॥
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम्। रोगात् प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥

मूर्च्छित-से हो गये। जान पड़ता था, मानो सब चित्र-विचित्र पुतले हैं। बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार उन्हें चेत हुआ। उस समय देखा गया कि समस्त रासमण्डलमें सम्पूर्ण स्थल जलसे आप्लावित है। श्रीराधा और श्रीकृष्णका कहीं पता नहीं है। फिर तो गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण—सभी अत्यन्त उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। उस समय ब्रह्माजी भी वहीं थे। उन्होंने ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका पुनीत विचार समझ लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके साथ जलमय हो गये हैं—यह बात उन्हें भली-भाँति मालूम हो गयी। तब वे सभी महाभाग देवता परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। सबने अपनी प्रार्थना सुनायी।

'विभो ! हमारा केवल यही अभीष्ट वर है कि आप अपनी श्रीमूर्तिके हमें पुनः दर्शन करा दें।' ठीक उसी समय अति मधुर तथा स्पष्ट शब्दोंमें आकाशवाणी हुई। सब लोगोंने उसे भलीभाँति सुना। आकाशवाणीमें कहा गया—'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी स्वरूपा-शक्ति राधा—हम दोनोंने ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह जलमय विग्रह धारण कर लिया है। सुरेश्वरो ! तुम्हें मेरे तथा इन राधाके शरीरसे क्या प्रयोजन है ? मनु, मुनि, मानव तथा अगणित वैष्णवजन मेरे मन्त्रोंसे पवित्र होकर मुझे देखनेके लिये मेरे धाममें आयेंगे। ऐसे ही तुम्हें भी यदि स्पष्ट दर्शन करनेकी इच्छा हो तो प्रयत्न करो। शम्भु वहीं रहकर मेरी आज्ञाका पालन करें। विधाता ! ब्रह्मन् ! तुम स्वयं जगद्गुरु शंकरसे कह दो कि वे वेदोंके अङ्गभूत परम मनोहर विशिष्ट शास्त्र अर्थात् तन्त्रशास्त्रका निर्माण करें और उसमें सम्पूर्ण अभीष्ट फल देनेवाले बहुत-से अपूर्व मन्त्र उद्धृत हों। स्तोत्र, ध्यान, पूजा-विधि, मन्त्र और कवच—इन सबसे वह तन्त्रशास्त्र सम्पन्न हो। जिस मन्त्रसे पापीजन मुझसे विमुख हो सकते हैं, उसे स्पष्ट नहीं करना चाहिये। हाँ, सहस्रोंमें कोई एक भी मेरा सच्चा उपासक मिल जाय तो उसके प्रति गोप्य मन्त्रका भी उद्घाटन कर देना। मेरे मन्त्रोंके प्रभावसे पुण्यात्मा बनकर मनुष्य मेरे धाममें पहुँचेंगे। यदि मेरे तन्त्र-शास्त्रोंका उद्घाटन नहीं हो सकेगा तो किसीको भी गोलोकमें रहनेकी सुविधा नहीं मिल सकेगी। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निष्फल हो जायगा। पर यह ठीक नहीं है। इसलिये तुम प्रत्येक सृष्टिमें पाँच प्रकारके मनुष्योंका निर्माण करो। इससे कितने पुरुष धरातलपर रहेंगे और बहुतोंको स्वर्गमें भी स्थान मिल जायगा। यदि शंकर देवसभामें ऐसा करनेके लिये सुदृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं तो उन्हें तुरंत ही मेरे दर्शन प्राप्त हो जायँगे।'

आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। उनकी वाणी सुनकर जगत्की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माने प्रसन्नतापूर्वक उसे भगवान् शंकरसे कहा। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा ज्ञानके अधिष्ठाता भगवान् शंकरने ब्रह्माकी बात सुननेके पश्चात् हाथमें गङ्गाजल ले लिया और आज्ञापालन करनेके लिये प्रतिज्ञा कर ली। फिर तो वे भगवती

---

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः। यः पठेत् प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम्॥
शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गङ्गास्नानफलं लभेत्। स्तोत्रेणानेन गङ्गां च स्तुत्वा चैव भगीरथः॥
जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः। वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना॥
(९।१२।१६—४३)

जगदम्बाके मन्त्रोंसे सम्पन्न उत्तम तन्त्रशास्त्रके निर्माणमें लग गये। 'प्रतिज्ञापालन करनेके लिये मैं वेदके सारभूत महान् तन्त्रशास्त्रका निर्माण करूँगा'—यह विचार उनके हृदयमें गूँजने लगा। उन्होंने अपना विचार व्यक्त किया कि यदि कोई मनुष्य गङ्गाका जल हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करेगा और फिर उस अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करेगा तो वह 'कालसूत्र' नामक नरकका भागी होगा और ब्रह्माकी पूरी आयुतक उसे वहाँ रहना पड़ेगा।

ब्रह्मन्! गोलोकमें देवताओंकी सभा जुड़ी थी। उसमें भगवान् शंकर जब इस प्रकारकी बात कह चुके, तब अकस्मात् परब्रह्म परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाके साथ वहाँ प्रकट हो गये। उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरिके प्रत्यक्ष दर्शन करनेपर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। वे उनकी स्तुति करने लगे।

इसके बाद उपस्थित देवताओंने अत्यन्त आनन्दमें भरकर फिरसे उत्सव मनाया। तत्पश्चात् समयानुसार भगवान् शंकरने मुक्तिदीप अर्थात् मुक्तिको प्रकाशित करनेवाले सात्त्विक तन्त्रशास्त्रका निर्माण किया।

नारद! इस प्रकार सम्पूर्ण परम गोप्य प्रसंग मैं तुम्हें सुना चुका। यह सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। वे ही पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण जलरूप होकर गङ्गा बन गये थे। गोलोकसे प्रकट होनेवाली गङ्गाका यही रहस्य है। यों भगवान् श्रीराधाकृष्ण ही गङ्गाके रूपमें प्रकट हुए हैं।

श्रीराधा और श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई यह गङ्गा भुक्ति और मुक्ति दोनोंको देनेवाली हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी व्यवस्थाके अनुसार जगह-जगह रहनेका सुअवसर इन्हें प्राप्त हो गया। श्रीकृष्णस्वरूपा इन आदरणीया गङ्गादेवीको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके लोग पूजते हैं।

(अध्याय १२)

☆

## श्रीराधाजीका गङ्गापर रोष, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, श्रीराधाके भयसे गङ्गाका श्रीकृष्णके चरणोंमें छिप जाना, जलाभावसे पीड़ित देवताओंका गोलोकमें जाना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गङ्गाका प्रकट होना, देवताओंके प्रति श्रीकृष्णका आदेश तथा गङ्गाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसंग

नारदजीने पूछा—सुरेश्वर! कलिके पाँच हजार वर्ष बीत जानेपर गङ्गाका कहाँ जाना होगा? महाभाग! यह प्रसंग मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायणने कहा—नारद! सरस्वतीके शापसे गङ्गा भारतवर्षमें आयीं। शापकी अवधि पूरी हो जानेपर वह पुनः भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वैकुण्ठमें चली जायँगी। ऐसे ही सरस्वती भारतवर्षको छोड़कर श्रीहरिके धाममें पधारेंगी। शाप समाप्त हो जानेपर लक्ष्मीका भी भगवान्‌के पास पधारना होगा। नारद! ये ही गङ्गा, सरस्वती और लक्ष्मी भगवान् श्रीहरिकी प्रेयसी पत्नियाँ हैं। ब्रह्मन्! तुलसीसहित चार पत्नियाँ वेदोंमें प्रसिद्ध हैं।

नारदने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंसे प्रकट हुई गङ्गादेवी किस प्रकार

परब्रह्मके कमण्डलुमें रहीं तथा शंकरकी प्रिया होनेका सुअवसर उन्हें कैसे मिला ? मुनिवर ! गङ्गा भगवान् नारायणकी प्रेयसी भी हो चुकी हैं। अहो, किस प्रकार ये सभी बातें संघटित हुईं ? आप यह रहस्य मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! प्राचीन समयकी बात है, जलमयी गङ्गा गोलोकमें विराजमान थीं। राधा और श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई यह गङ्गा उनका अंश तथा साक्षात् उनका स्वरूप ही हैं। जलमयी गङ्गाकी अधिष्ठात्री देवी अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके भूमण्डलपर पधारीं। उनका शरीर नूतन यौवनसे सम्पन्न था। उनके सभी अङ्ग अलंकारोंसे अलंकृत थे। शरदृतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलकी भाँति मुसकानभरा उनका परम मनोहर मुख था। तपाये हुए सुवर्णसदृश विग्रहकी आभा थी। तेजमें वह शरत्कालके चन्द्रमाको भी परास्त कर रही थीं। मनोहरसे भी मनोहर उनकी कान्ति थी। उन्होंने शुद्ध सात्त्विक स्वरूप धारण कर रखा था। विशाल दो नेत्र अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे। अत्यन्त कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वे देख रही थीं। सुन्दर अलकावली शोभा बढ़ा रही थी। उन्होंने मालतीके पुष्पोंका मनोहर हार पहन रखा था। ललाटपर अर्धचन्द्राकार चन्दनका तिलक था और उसके ऊपर सिन्दूरकी सुन्दर बिंदी थी। दोनों गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे मनोहर पत्र-रचनाएँ हुई थीं। नीचे उनका अधर-ओष्ठ इतना सुन्दर था मानो दुपहरियाका विकसित फूल हो। दाँतोंकी अत्यन्त उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। विशुद्ध दो चिन्मय वस्त्रोंको उन्होंने धारण कर रखा था। ऐसी वह गङ्गा लज्जाका भाव प्रदर्शित करती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं। निर्निमेष नेत्रोंसे वह भगवान्‌के मुखरूपी अमृतको प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर पान कर रही थीं। उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल रहा था। भगवान् श्रीकृष्णके रूपने उन्हें चेतनारहित तथा अत्यन्त पुलकायमान बना दिया था।

इतनेमें भगवती राधिका वहाँ पधारकर विराजमान हो गयीं। उस समय राधाके साथ असंख्य गोपियाँ थीं। राधाकी कान्ति ऐसी थी मानो करोड़ों चन्द्रमाओंकी ज्योत्स्ना एक साथ प्रकट हो। वे उस समय क्रोधकी लीला करना चाहती थीं; अतः उनकी आँखें लाल कमलकी तुलना करने लगीं। उनका वर्ण पीले चम्पककी तुलना कर रहा था तथा उनकी चाल ऐसी थी मानो मतवाला गजराज हो। अमूल्य रत्नोंसे बने हुए नाना प्रकारके आभूषण उनके श्रीविग्रहकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके शरीरपर अमूल्य रत्नोंसे जटित दो दिव्य चिन्मय पीताम्बर शोभा पा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णके अर्घ्यसे सुशोभित चरण-कमलोंको उन्होंने हृदयमें धारण कर रखा था। सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर बैठकर वे वहाँ पधारी थीं। ऋषिगण उनकी सेवामें संलग्न थे। स्वच्छ चँवर डुलाया जा रहा था। कस्तूरीके बिन्दुसे युक्त, चन्दनोंसे समन्वित, प्रज्वलित दीपकके समान आकारवाला बिन्दु-रूपमें शोभायमान सिन्दूर उनके ललाटके मध्यभागमें शोभा पा रहा था। उनके सीमन्तका निचला भाग परम स्वच्छ था। पारिजातके पुष्पोंकी सुन्दर माला उनके गलेमें सुशोभित थी। अपनी सुन्दर अलकावलीको कँपाती हुई वे

स्वयं भी कम्पित हो रही थीं। रोषके कारण उनके सुन्दर रागयुक्त ओष्ठ फड़क रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर वे सुन्दर रत्नमय सिंहासनपर विराजित हो गयीं। उनको पधारे देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उठ गये और कुछ हँसकर आश्चर्य प्रकट करते हुए मधुर वचनोंमें उनसे बातचीत करने लगे।

उस समय गोपोंके भयकी सीमा नहीं रही। नम्रताके कारण कंधे झुकाकर उन्होंने भगवती राधिकाको प्रणाम किया और वे उनकी स्तुति करने लगे। परब्रह्म श्रीकृष्णने भी राधिकाकी

स्तुति की। गङ्गा भी तुरंत उठ गयीं और उन्होंने राधाका स्तवन किया। उनके हृदयमें भय छा गया था। अत्यन्त विनय प्रकट करते हुए उन्होंने राधासे कुशल पूछी। वे डरकर नीचे खड़ी हो गयीं। ध्यानपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलकी शरण ही उनके लिये एकमात्र आधार थी। अपने हृदयरूपी कमलमें स्थित गङ्गाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उन डरी हुई देवीको अभय प्रदान किया। इस प्रकार सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे वर पाकर देवी गङ्गा स्थिरचित्त हो सकीं। अब गङ्गाने देखा, देवी राधिका ऊँचे सिंहासनपर बैठी हैं। उनका रूप परम मनोहर है। वे देखनेमें बड़ी सुखप्रद हैं। ब्रह्मतेजसे उनका श्रीविग्रह प्रकाशमान हो रहा है। वे सनातनी देवी सृष्टिके आदिमें असंख्य ब्रह्माओंको रचती हैं। उनकी अवस्था सदा बारह वर्षकी रहती है। अभिनव यौवनसे उनका विग्रह परम शोभा पाता है। अखिल विश्वमें उनके सदृश रूपवती और गुणवती कोई भी नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, परम साध्वी तथा आदि-अन्तरहित हैं। उन्हें 'शुभा', 'सुभद्रा' और 'सुभगा' कहा जाता है। अपने स्वामीके सौभाग्यसे वे सदा सम्पन्न रहती हैं। सम्पूर्ण स्त्रियोंमें वे श्रेष्ठ हैं तथा परम सौन्दर्यसे सुशोभित हैं। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी अर्द्धाङ्गिनी कहा जाता है। तेज, अवस्था और प्रकाशमें वे भगवान् श्रीकृष्णके ही समान हैं। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने लक्ष्मीको साथ लेकर उन महालक्ष्मीकी उपासना की है। परमात्मा श्रीकृष्णकी समुज्ज्वल सभाको ये अपनी कान्तिसे सदा आच्छादित करती हैं। सखियोंका दिया हुआ दुर्लभ पान उनके मुखमें शोभा पा रहा है। वे स्वयं अजन्मा होती हुई ही अखिल जगत्की जननी हैं। उनकी कीर्ति और प्रतिष्ठा विश्वमें सर्वत्र विस्तृत है। वे भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी साक्षात् अधिष्ठात्री देवी हैं। उन परम सुन्दरी देवीको भगवान् प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं।

नारद ! रासेश्वरी श्रीराधाकी इस अनुपम झाँकीको देखकर गङ्गाका मन तृप्त न हो सका। वे निर्निमेष नेत्रोंसे निरन्तर राधा-सौन्दर्य-सुधाका पान करती रहीं। मुने ! इतनेमें राधाने मधुर

वाणीमें जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा। उस समय श्रीराधाका विग्रह परम शान्त था। उनमें नम्रता आ गयी थी और उनके मुखपर मुसकान छायी थी।

श्रीराधाने कहा—प्राणेश ! आपके प्रसन्न मुखकमलको मुसकराकर निहारनेवाली यह कल्याणी कौन है ? इसके तिरछे नेत्र आपको लक्ष्य कर रहे हैं। इसके भीतर मिलनेच्छाका भाव जाग्रत् है। आपके मनोहर रूपने इसे अचेत कर दिया है। इसके सर्वाङ्ग पुलकित हो रहे हैं। वस्त्रसे मुख ढककर बार-बार आपको देखा करना मानो इसका स्वभाव ही बन गया है। आप भी उसकी ओर दृष्टिपात करके मधुर-मधुर हँस रहे हैं। कोमल स्वभावकी स्त्री-जाति होनेके कारण प्रेमवश मैं क्षमा कर देती हूँ।

आपने 'विरजा' (रजोगुणरहिता देवी) से प्रेम किया, फिर वह अपना शरीर त्यागकर महान् नदीके रूपमें परिणत हो गयी। आपकी सत्कीर्तिस्वरूपिणी वह देवी नदीरूपमें अब भी विराजमान है। आपके औरससे उससे समयानुसार सात समुद्र उत्पन्न हो गये। प्राणनाथ ! आपने 'शोभा'से प्रेम किया। वह भी शरीर त्यागकर चन्द्रमण्डलमें चली गयी। तदनन्तर उसका शरीर परम स्निग्ध तेज बन गया। आपने उस तेजको टुकड़े-टुकड़े करके वितरण कर दिया। रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठमणि, स्त्रियोंके मुखकमल, राजा, पुष्पोंकी कलियाँ, पके हुए फल, लहलहाती खेतियाँ, राजाओंके सजे-धजे महल, नवीन पात्र और दूध—ये सब आपके द्वारा उस शोभाके कुछ-कुछ भाग पा गये। मैंने आपको 'प्रभा' के साथ प्रेम करते देखा। वह भी शरीर त्यागकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर गयी। उस समय उसका शरीर अत्यन्त तेजोमय बन गया था। उस तेजोमयी प्रभाको आपने विभाजन करके जगह-जगह बाँट दिया। श्रीकृष्ण ! आपकी आँखोंसे दूर हुई प्रभा अग्नि, यक्ष, नरेश, देवता, वैष्णवजन, नाग, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्री तथा यशस्वी पुरुष—इन सबको थोड़े-थोड़े रूपोंमें प्राप्त हुई।

एक बार मैंने आपको 'शान्ति' नामक गोपीके साथ रासमण्डलमें प्रेम करते देखा था। प्रभो ! वह शान्ति भी अपने उस शरीरको छोड़कर आपमें लीन हो गयी। उस समय उसका शरीर उत्तम गुणके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर आपने उसको विभाजित करके विश्वमें बाँट दिया। प्रभो ! उसका कुछ अंश मुझ (राधा) में, कुछ इस निकुञ्जमें और कुछ ब्राह्मणमें प्राप्त हुआ। विभो ! फिर आपने उसका कुछ भाग शुद्ध सत्त्व-स्वरूपा लक्ष्मीको, कुछ अपने मन्त्रके उपासकोंको, कुछ देवीभक्तोंको, कुछ तपस्वियोंको, कुछ धर्मको और कुछ धर्मात्मा पुरुषोंको सौंप दिया।

पूर्व समयकी बात है, 'क्षमा' के साथ आप मुझे प्रेम करते दृष्टिगोचर हुए थे। उस समय क्षमा अपना वह शरीर त्यागकर पृथ्वीपर चली गयी। तदनन्तर उसका शरीर उत्तम गुणके रूपमें परिणत हो गया था। फिर उसके शरीरका आपने विभाजन किया और उसमेंसे कुछ-कुछ अंश विष्णुको, वैष्णवोंको, धार्मिक पुरुषोंको, धर्मको, दुर्बलोंको, तपस्वियोंको, देवताओं और पण्डितोंको दे दिया। प्रभो ! इतनी सब बातें तो मैं सुना चुकी। आपके ऐसे-ऐसे बहुत-से गुण हैं। आप सदा ही उच्च सुन्दर

देवियोंसे प्रेम किया करते हैं।

इस प्रकार रक्तकमलके समान नेत्रोंवाली राधाने भगवान् श्रीकृष्णसे कहकर साध्वी गङ्गासे कुछ कहना चाहा। गङ्गा योगमें परम प्रवीण थीं। योगके प्रभावसे राधाका मनोभाव उन्हें ज्ञात हो गया। अतः बीच सभामें ही अन्तर्धान होकर वे अपने जलमें प्रविष्ट हो गयीं। तब सिद्धयोगिनी राधाने योगद्वारा इस रहस्यको जानकर सर्वत्र विद्यमान उन दलस्वरूपिणी गङ्गाको अञ्जलिसे उठाकर पीना आरम्भ कर दिया। ऐसी स्थितिमें राधाका अभिप्राय पूर्ण योगसिद्धा गङ्गासे छिपा नहीं रह सका। अतः वे भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर उनके चरणकमलोंमें लीन हो गयीं।

तब राधाने गोलोक, वैकुण्ठलोक तथा ब्रह्मलोक आदि सम्पूर्ण स्थानोंमें गङ्गाको खोजा; परंतु कहीं भी वह दिखायी नहीं दीं। उस समय सर्वत्र जलका नितान्त अभाव हो गया था। कीचड़तक सूख गया था। जलचर जन्तुओंके मृत शरीरसे ब्रह्माण्डका कोई भी भाग खाली नहीं रहा था। फिर तो ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिसमाज, देवता, सिद्ध और तपस्वी—सभी गोलोकमें आये। उस समय उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूख गये थे। प्रकृतिसे परे सर्वेश भगवान् श्रीकृष्णको सबने प्रणाम किया; क्योंकि ये श्रीकृष्ण सबके परम पूज्य हैं। वर देना इन सर्वोत्तम प्रभुका स्वाभाविक गुण है। इन्हें वरका प्रवर्तक ही माना जाता है। ये परम प्रभु सम्पूर्ण गोप और गोपियोंके समाजमें प्रमुख हैं। इन्हें निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्विकार और निरञ्जन कहा गया है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी इच्छासे ये साकार रूपमें प्रकट हो जाते हैं। ये सत्त्वस्वरूप, सत्येश, साक्षीरूप और सनातन पुरुष हैं। इनसे बढ़कर जगत्में दूसरा कोई शासक नहीं है। अतएव इन पूर्णब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको उन ब्रह्मादि समस्त उपस्थित देवताओंने प्रणाम करके स्तवन आरम्भ कर दिया। भक्तिके कारण उनके कंधे झुक गये थे। उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी। आँखोंमें आँसू भर आये थे। उनके सभी अङ्गोंमें पुलकावली छायी थी। सबने उन परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की। इन सर्वेश प्रभुका विग्रह ज्योतिर्मय है। सम्पूर्ण कारणोंके भी ये कारण हैं। ये उस समय अमूल्य रत्नोंसे निर्मित दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। गोपाल इनकी सेवामें संलग्न होकर श्वेत चँवर डुला रहे थे। गोपियोंके नृत्यको देखकर प्रसन्नताके कारण इनका मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीराधा इनके वक्षःस्थलपर शोभा पा रही थीं। उनके दिये हुए सुवासित पान ये चबा रहे थे। उस अवसरपर ये देवाधिदेव परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें विराजमान थे।

वहीं मुनियों, मनुष्यों, सिद्धों और तपस्वियोंने तपके प्रभावसे इनके दिव्य दर्शन प्राप्त किये। दिव्य दर्शनसे सबके मनमें अपार हर्ष हुआ। साथ ही आश्चर्यकी सीमा भी न रही। सभी परस्पर एक-दूसरेको देखने लगे। तत्पश्चात् उन समस्त सज्जनोंने अपना अभीष्ट अभिप्राय जगत्प्रभु चतुरानन ब्रह्मासे निवेदित किया। ब्रह्माजी उनकी प्रार्थना सुनकर विष्णुको दाहिने और महादेवको बायें करके भगवान् श्रीकृष्णके

निकट पहुँचे। उस समय परम आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण और परम आनन्दस्वरूपिणी श्रीराधा साथ विराजमान थीं। उसी समय ब्रह्माने रास-मण्डलको केवल श्रीकृष्णमय देखा। सबकी वेष-भूषा एक समान थी। सभी एक-जैसे आसनोंपर बैठे थे। द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें परिणत सभीने हाथोंमें मुरली ले रखी थी। वनमाला सबकी छबि बढ़ा रही थी। सबके मुकुटमें मोरके पंख थे। कौस्तुभमणिसे वे सभी परम सुशोभित थे। गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था और प्रभासे सम्पन्न उन सबका अत्यन्त कमनीय विग्रह परम शान्त था। सभी परिपूर्णतम थे और सबमें सभी शक्तियाँ संनिहित थीं। उन्हें देखकर कौन सेवक हैं और कौन सेव्य—इस बातका निर्णय करनेमें ब्रह्मा सफल नहीं हो सके।

क्षणभरमें ही भगवान् श्रीकृष्ण तेजःस्वरूप हो जाते और तुरंत आसनपर बैठे हुए भी दिखायी पड़ने लगते। एक ही क्षणमें उनके दो रूप निराकार और साकार ब्रह्माको दृष्टिगोचर हुए। फिर एक ही क्षणमें ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अकेले हैं। इसके बाद तुरंत ही झट उन्हें राधा और कृष्ण प्रत्येक आसनपर बैठे दीख पड़े। फिर क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णने राधाका रूप धारण कर लिया है और राधाने श्रीकृष्णका। कौन स्त्रीके वेषमें है और कौन पुरुषके वेषमें—विधाता इस रहस्यको समझ न सके। तब ब्रह्माजीने अपने हृदयरूपी कमलपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान किया। ध्यानचक्षुसे भगवान् दीख गये। अतः अनेक प्रकारसे परिहार करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान्‌की आज्ञासे उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। फिर देखा तो श्रीराधाको वक्षःस्थलपर बैठाये हुए भगवान् श्रीकृष्ण आसनपर अकेले ही विराजमान हैं। इन्हें पार्षदोंने घेर रखा है। झुंड-की-झुंड गोपियाँ इनकी शोभा बढ़ा रही हैं। फिर उन ब्रह्मा प्रभृति प्रधान देवताओंने परम प्रभु भगवान्‌का दर्शन करके प्रणाम किया और स्तुति भी की। तब जो सबके आत्मा, सब कुछ जाननेमें कुशल, सबके शासक तथा सर्वभावन हैं, उन लक्ष्मीपति परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णने उपस्थित देवताओंका अभिप्राय समझकर उनसे कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! आपकी कुशल हो, यहाँ आइये। मैं समझ गया, आप सभी महानुभाव गङ्गाको ले जानेके लिये यहाँ पधारे हैं; परंतु इस समय यह गङ्गा शरणार्थी बनकर मेरे चरणकमलोंमें छिपी है। कारण, वह मेरे पास बैठी थी। राधाजी उसे देखकर पी जानेके लिये उद्यत हो गयीं। तब वह चरणोंमें आकर ठहर गयी। मैं आपलोगोंको उसे सहर्ष दे दूँगा; परंतु आप पहले इसको निर्भय बनानेका पूर्ण प्रयत्न करें।

नारद! भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कमलोद्भव ब्रह्माका मुख मुसकानसे भर गया। फिर तो वे सम्पूर्ण देवता, जो सबकी आराध्या तथा भगवान् श्रीकृष्णसे भी सुपूजिता हैं, उन भगवती राधाकी स्तुति करनेमें संलग्न हो गये। भक्तिके कारण अत्यन्त विनीत होकर ब्रह्माजीने अपने चारों मुखोंसे राधाजीकी स्तुति की। चारों वेदोंके प्रणेता चतुरानन ब्रह्माने भगवती राधाका इस प्रकार स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—देवी! यह गङ्गा आपके तथा भगवान् श्रीकृष्णके श्रीअङ्गसे समुत्पन्न है।

आप दोनों महानुभाव रासमण्डलमें पधारे थे। शंकरके संगीतने आपको मुग्ध कर

दिया था। उसी अवसरपर यह द्रवरूपमें प्रकट हो गयी। अतः आप तथा श्रीकृष्णके अङ्गसे समुत्पन्न होनेके कारण यह आपकी प्रिय पुत्रीके समान शोभा पानेवाली गङ्गा आपके मन्त्रोंका अभ्यास करके उपासना करे। इसके द्वारा आपकी आराधना होनी चाहिये। फलस्वरूप वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि इसके पति हो जायँगे। साथ ही, अपनी एक कलासे ये भूमण्डलपर भी पधारेंगी और वहाँ भगवान्‌के अंश क्षारसमुद्रको इनका पति बननेका सुअवसर प्राप्त होगा। माता ! यह गङ्गा जैसे गोलोकमें है, वैसे ही इसे सर्वत्र रहना चाहिये। आप देवेश्वरी इसकी माता हैं और यह सदाके लिये आपकी पुत्री है।

नारद ! ब्रह्माकी इस प्रार्थनाको सुनकर भगवती राधा हँस पड़ीं। उन्होंने ब्रह्माजीकी सभी बातोंको स्वीकार कर लिया। तब गङ्गा श्रीकृष्णके चरणके अंगूठेके नखाग्रसे निकलकर वहीं विराजमान हो गयीं। सब लोगोंने उसका सम्मान किया। फिर जलस्वरूपा गङ्गासे उसकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर परम शान्त विग्रहसे शोभा पाने लगी। ब्रह्माने गङ्गाके उस जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया। भगवान् शंकरने उस जलको अपने मस्तकपर स्थान दिया। तत्पश्चात् कमलोद्भव ब्रह्माने गङ्गाको 'राधा-मन्त्र' की दीक्षा दी। साथ ही राधाके स्तोत्र, कवच, पूजा और ध्यानकी विधि भी बतलायी। ये सभी अनुष्ठानक्रम सामवेद-कथित थे। गङ्गाने इन नियमोंके द्वारा राधाकी पूजा करके वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया।

मुने ! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी पत्नियाँ हैं। तत्पश्चात् परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर ब्रह्माको दुर्बोध एवं अपरिचित सामयिक बातें बतलायीं।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्रह्मन् ! तुम गङ्गाको स्वीकार करो। विष्णो ! महेश्वर ! विधाता ! मैं समयकी स्थितिका परिचय कराता हूँ; आपको ध्यान देकर सुनना चाहिये। तुमलोग तथा अन्य जो देवता, मुनिगण, मनु, सिद्ध और यशस्वी यहाँ आये हुए हैं, इन्हींको जीवित समझना चाहिये; क्योंकि गोलोकमें कालके चक्रका प्रभाव नहीं पड़ता। इस समय कल्प समाप्त होनेके कारण सारा विश्व जलार्णवमें डूब गया है। विविध ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि प्रधान देवता हैं, वे इस समय मुझमें विलीन हो गये हैं। ब्रह्मन् ! केवल वैकुण्ठको छोड़कर और सब-का-सब जलमग्न है। तुम जाकर पुनः ब्रह्मलोकादिकी सृष्टि करो। अपने ब्रह्माण्डकी भी रचना करना आवश्यक है। इसके पश्चात् गङ्गा वहाँ जायगी। इसी प्रकार

मैं अन्य ब्रह्माण्डोंमें भी इस सृष्टिके अवसरपर ब्रह्मादि लोकोंकी रचनाका प्रयत्न करता हूँ। अब तुम देवताओंके साथ यहाँसे शीघ्र पधारो। बहुत समय व्यतीत हो गया; तुमलोगोंमें कई ब्रह्मा समाप्त हो गये और कितने अभी होंगे भी।

मुने! इस प्रकार कहकर परमाराध्या राधाके प्राणपति भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये। ब्रह्मा प्रभृति देवता वहाँसे चलकर यत्नपूर्वक पुनः सृष्टि करनेमें तत्पर हो गये। फिर तो गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थानमें गङ्गाको रहनेके लिये परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दी थी, उस-उस स्थानके लिये उसने प्रस्थान कर दिया। भगवान् श्रीहरिके चरणकमलसे गङ्गा प्रकट हुई, इसलिये उसे लोग 'विष्णुपदी' कहने लगे। ब्रह्मन्! इस प्रकार गङ्गाके इस उत्तम उपाख्यानका वर्णन कर चुका। इस सारगर्भित प्रसंगसे सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। अब पुनः तुम्हें क्या सुननेकी इच्छा है?

नारदने कहा—भगवन्! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और जगत्को पावन बनानेवाली तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी ही प्रिया हैं। यह प्रसंग तथा गङ्गाके वैकुण्ठको जानेकी बात मैं आपसे सुन चुका; परंतु गङ्गा विष्णुकी पत्नी कैसे हुई, यह वृत्तान्त सुननेका सुअवसर मुझे नहीं मिला। उसे कृपया सुनाइये।

भगवान् नारायण बोले—नारद! जब गङ्गा वैकुण्ठमें चली गयी, तब थोड़ी देरके बाद जगत्की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा भी उसके साथ ही वैकुण्ठ पहुँचे और जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करके कहने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! श्रीराधा और श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई ब्रह्मद्रवरूपिणी गङ्गा इस समय एक सुशीला देवीके रूपमें विराजमान है। दिव्य यौवनसे सम्पन्न होनेके कारण उसका शरीर परम मनोहर जान पड़ता है। शुद्ध एवं सत्त्वस्वरूपिणी उस देवीमें क्रोध और अहंकार लेशमात्रके लिये भी नहीं हैं। श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई वह गङ्गा उन्हें छोड़ किसी दूसरेको पति नहीं बनाना चाहती। किंतु परम तेजस्विनी राधा ऐसा नहीं चाहती। वह मानिनी राधा इस गङ्गाको पी जाना चाहती थी, परंतु बड़ी बुद्धिमानीके साथ यह परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रविष्ट हो गयी, इसीसे रक्षा हुई। उस समय सर्वत्र सूखे हुए ब्रह्माण्डगोलकको देखकर मैं गोलोकमें गया। सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त जाननेके लिये वहाँ विराजमान थे। उन्होंने सबका अभिप्राय समझकर अपने चरणकमलके नखाग्रसे इसे बाहर निकाल दिया। तब मैंने इसे राधाकी पूजाके मन्त्र याद कराये। इसके जलसे ब्रह्माण्डगोलकको पूर्ण कराया। तदनन्तर राधा और श्रीकृष्णके चरणोंमें मस्तक झुकाकर इसे साथ लेकर यहाँ आया। प्रभो! आपसे मेरी प्रार्थना है कि इस सुरेश्वरी गङ्गाको आप अपनी पत्नी बना लीजिये। देवेश! आप पुरुषोंमें रत्न हैं; इस साध्वी देवीको स्त्रियोंमें रत्न माना जाता है। जिनमें सत्-असत्का पूर्ण ज्ञान है, वे पण्डित पुरुष भी इस प्रकृतिका अपमान नहीं करते। सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ भी उसीकी कलाएँ हैं। केवल आप भगवान् श्रीहरि ही उस प्रकृतिसे परे निर्गुण प्रभु हैं। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं दो भागोंमें विभक्त हुए। आधेसे तो दो

भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और उनका आधा अङ्ग आप चतुर्भुज श्रीहरिके रूपमें प्रकट हो गया। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके वामाङ्गसे आविर्भूत श्रीराधा भी दो रूपोंमें परिणत हुईं। दाहिने अंशसे तो वे स्वयं रहीं और उनके वामांशसे लक्ष्मीका प्राकट्य हुआ। अतएव यह गङ्गा आपको ही वरण करना चाहती है; क्योंकि आपके श्रीविग्रहसे ही यह प्रकट है। प्रकृति और पुरुषकी भाँति स्त्री-पुरुष दोनों एक ही अङ्ग हैं।

मुने ! इस प्रकार कहकर महाभाग ब्रह्माने भगवान् श्रीहरिके पास गङ्गाको बैठा दिया और वे वहाँसे चल पड़े। फिर तो स्वयं श्रीहरिने विवाहके नियमानुसार गङ्गाके पुष्प एवं चन्दनसे चर्चित करकमलको ग्रहण कर लिया और वे उसके प्रियतम पति बन गये। जो गङ्गा पृथ्वीपर पधार चुकी थी, वह भी समयानुसार अपने उस स्थानपर पुनः आ गयी। यों भगवान्‌के चरण-कमलसे प्रकट होनेके कारण इस गङ्गाकी 'विष्णुपदी' नामसे प्रसिद्धि हुई। गङ्गाके प्रति सरस्वतीके मनमें जो डाह था, वह निरन्तर बना रहा। गङ्गा सरस्वतीसे कुछ द्वेष नहीं रखती थी। अन्तमें ऊबकर विष्णुप्रिया गङ्गाने सरस्वतीको भारतवर्षमें जानेका शाप दे दिया था। मुने ! इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरिकी गङ्गासहित तीन पत्नियाँ हैं। बादमें तुलसीको भी प्रिय पत्नी बननेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। अतएव तुलसीसहित ये चार प्रेयसी पत्नियाँ कही गयी हैं। (अध्याय १३-१४)

☆

## तुलसीके कथाप्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन

नारदजीने पूछा—प्रभो ! साध्वी तुलसी भगवान् श्रीहरिकी पत्नी कैसे बनी, इसका जन्म कहाँ हुआ था और पूर्वजन्ममें यह कौन थी ? इस साध्वी देवीने किसके कुलको पवित्र किया था तथा इसके माता-पिता कौन थे ? किस तपस्याके प्रभावसे प्रकृतिके अधिष्ठाता भगवान् श्रीहरि इसे पतिरूपसे प्राप्त हुए ? क्योंकि ये परम प्रभु तो बिलकुल निःस्पृह हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि ऐसी सुयोग्या देवीको वृक्ष क्यों होना पड़ा और यह परम तपस्विनी देवी कैसे असुरके चंगुलमें फँस गयी ? सम्पूर्ण संदेहोंको दूर करनेवाले प्रभो ! आप मेरे इस संशयको मिटानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! दक्षसावर्णि नामसे प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा मनु हो चुके हैं। भगवान् विष्णुके अंशसे प्रकट ये मनु परम पवित्र, यशस्वी, विशद कीर्तिसे सम्पन्न तथा श्रीहरिके प्रति अटूट श्रद्धा रखनेवाले थे। इनके पुत्रका नाम था ब्रह्मसावर्णि। उनका भी अन्तःकरण स्वच्छ था। उनके मनमें धार्मिक भावना थी और भगवान् श्रीहरिपर वे श्रद्धा रखते थे। ब्रह्मसावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुए, जिनकी इन्द्रियाँ सदा वशमें रहती थीं और मन श्रीहरिकी उपासनामें निरत रहता था। धर्मसावर्णिसे इन्द्रिय-निग्रही एवं परमभक्त रुद्रसावर्णि पुत्ररूपमें प्रकट हुए। इन रुद्रसावर्णिके पुत्रका नाम देवसावर्णि हुआ। ये भी परम वैष्णव थे। देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था। फिर भगवान् विष्णुके अनन्य उपासक इन इन्द्रसावर्णिसे वृषध्वजका जन्म हुआ। भगवान् शंकरमें इस वृषध्वजकी असीम श्रद्धा थी। स्वयं भगवान् शंकर इसके यहाँ बहुत

कालतक ठहरे थे। इसके प्रति भगवान् शंकरका स्नेह पुत्रसे भी बढ़कर था। राजा वृषध्वजकी भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती—इनमें किसीके प्रति श्रद्धा नहीं थी। उसने सम्पूर्ण देवताओंका पूजन त्याग दिया था। अभिमानमें चूर होकर वह भाद्रमासमें महालक्ष्मीकी पूजामें विघ्न उपस्थित किया करता था। माघकी शुक्ल पञ्चमीके दिन समस्त देवता सरस्वतीकी विस्तृत-रूपसे पूजा करते थे; परंतु वह नरेश उसमें सम्मिलित नहीं होता था। यज्ञ और विष्णु-पूजाकी निन्दा करना उसका मानो स्वभाव ही बन गया था। वह केवल भगवान् शिवमें ही श्रद्धा रखता था। ऐसे स्वभाववाले राजा वृषध्वजको देखकर सूर्यने उसे शाप दे दिया—'राजन् ! तेरी श्री नष्ट हो जाय !'

भक्तपर संकट देख आशुतोष भोलेनाथ भगवान् शंकर हाथमें त्रिशूल उठाकर सूर्यपर टूट पड़े। तब सूर्य अपने पिता कश्यपजीके साथ ब्रह्माजीकी शरणमें गये। शंकर त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकको चल दिये। ब्रह्माको भी शंकरजीका भय था; अतएव उन्होंने सूर्यको आगे करके वैकुण्ठकी यात्रा की। उस समय ब्रह्मा, कश्यप और सूर्य तीनों भयभीत थे। उन तीनों महानुभावोंने सर्वेश भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण की। तीनोंने मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम किया, बारम्बार प्रार्थना की और उनके सामने अपने भयका सम्पूर्ण कारण कह सुनाया। तब भगवान् नारायणने कृपापूर्वक उन सबको अभय प्रदान किया और कहा—'भयभीत देवताओ ! स्थिर हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें कोई भय नहीं। विपत्तिके अवसरपर डरे हुए जो भी व्यक्ति जहाँ कहीं भी मुझे याद करते हैं, मैं वहीं पहुँचकर तुरंत उनकी रक्षा करता हूँ। देवो ! मैं अखिल जगत्का कर्त्ता-भर्त्ता हूँ। मैं ही ब्रह्मारूपसे सदा संसारकी सृष्टि करता हूँ और शंकररूपसे संहार। मैं ही शिव हूँ। तुम भी मेरे ही रूप हो और ये शंकर भी मुझसे भिन्न नहीं हैं। मैं ही नाना रूप धारण करके सृष्टि और पालनकी व्यवस्था किया करता हूँ। देवताओ ! तुम्हारा कल्याण हो; जाओ, अब तुम्हें भय नहीं होगा। मैं वचन देता हूँ, आजसे शंकरका भय तुम्हारे पास नहीं आ सकेगा। वे सर्वेश भगवान् शंकर सत्पुरुषोंके स्वामी हैं। उन्हें भक्तात्मा और भक्तवत्सल कहा जाता है और वे सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं। ब्रह्मन् ! सुदर्शनचक्र और भगवान् शंकर—ये दोनों मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। ब्रह्माण्डमें इनसे अधिक दूसरा कोई तेजस्वी नहीं है। ये शंकर चाहें तो लीलापूर्वक करोड़ों सूर्योंको प्रकट कर सकते हैं। करोड़ों ब्रह्माओंके निर्माणकी भी इनमें पूर्ण सामर्थ्य है। इन त्रिशूलधारी भगवान् शंकरके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं; तथापि कुछ भी बाहरी ज्ञान न रखकर ये दिन-रात मेरे ही ध्यानमें लगे रहते हैं। अपने पाँचों मुखोंसे मेरे मन्त्रोंका जप करना और भक्तिपूर्वक मेरे गुण गाते रहना इनका स्वभाव-सा बन गया है। मैं भी रात-दिन इनके कल्याणकी चिन्तामें ही लगा रहता हूँ; क्योंकि जो जिस प्रकार मेरी उपासना करते हैं, मैं भी उसी प्रकार उनकी सेवामें तत्पर रहता हूँ*—यह मेरा नियम है।'

इतनेमें भगवान् शंकर भी वहाँ पहुँच गये।

* यथा च मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (९।१५।२९)

उनके हाथमें त्रिशूल था। वे वृषभपर आरूढ़ थे और आँखें रक्तकमलके समान लाल थीं। वहाँ पहुँचते ही वे वृषभसे उतर पड़े और भक्तिविनम्र होकर उन्होंने शान्तस्वरूप परात्पर प्रभु लक्ष्मीकान्त भगवान् नारायणको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उस समय भगवान् श्रीहरि रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे। रत्ननिर्मित अलंकारोंसे उनका श्रीविग्रह सुशोभित था। किरीट, कुण्डल, चक्र और वनमालासे वे अनुपम शोभा पा रहे थे। नूतन मेघके समान उनकी श्याम कान्ति थी। उनका परम सुन्दर विग्रह चार भुजाओंसे सुशोभित था और चार भुजावाले अनेक पार्षद स्वच्छ चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रहे थे। नारद ! उनका सम्पूर्ण अङ्ग दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त था। वे अनेक प्रकारके भूषण और पीताम्बर धारण किये हुए थे। लक्ष्मीका दिया हुआ ताम्बूल उनके मुखमें शोभा पा रहा था। ऐसे प्रभुको देखकर भगवान् शंकरका मस्तक उनके चरणोंमें झुक गया। ब्रह्माने शंकरको प्रणाम किया तथा अत्यन्त डरते हुए सूर्य भी शंकरको प्रणाम करने लगे। कश्यपने अतिशय भक्तिके साथ स्तुति और प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् शिव सर्वेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करके एक सुखमय आसनपर विराज गये। विष्णु-पार्षदोंने श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की। जब उनके मार्गका श्रम दूर हो गया, तब भगवान् श्रीहरिने अमृतके समान अत्यन्त मनोहर एवं मधुर वचन कहा।

भगवान् विष्णु बोले—महादेव ! यहाँ कैसे पधारना हुआ ? अपने क्रोधका कारण बताइये ?

महादेवने कहा—भगवन् ! राजा वृषध्वज मेरा परम भक्त है। मैं उसे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानता हूँ। सूर्यने उसे शाप दे दिया

है—यही मेरे क्रोधका कारण है। जब मैं अपने कृपापात्र पुत्रके शोकसे प्रभावित होकर सूर्यको मारनेके लिये तैयार हुआ, तब वह ब्रह्माकी शरणमें चला गया और इस समय ब्रह्मासहित उसने आपकी शरण ग्रहण कर ली है। जो व्यक्ति ध्यान अथवा वचनसे भी आपके शरणापन्न हो जाते हैं, उनपर विपत्ति और संकट अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते। वे जरा और मृत्युसे सर्वथा रहित हो जाते हैं। भगवन् ! शरणागतिका फल तो प्रत्यक्ष ही है; फिर मैं क्या कहूँ ? आपका स्मरण करते ही मनुष्य सदाके लिये अभय एवं मङ्गलमय बन जाते हैं। परंतु जगत्प्रभो ! अब मेरे उस भक्तकी जीवनचर्या कैसे चलेगी—यह बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि सूर्यके शापसे उसकी श्री नष्ट हो चुकी है। उसमें सोचने-समझनेकी शक्ति भी तनिक-सी नहीं रह गयी है।

भगवान् विष्णु बोले—शम्भो ! दैवकी प्रेरणासे बहुत समय बीत गया। इक्कीस युग

समाप्त हो गये। यद्यपि वैकुण्ठमें अभी आधी घड़ीका समय बीता है। अतः अब आप शीघ्र अपने स्थानपर पधारिये। किसीसे भी न रुकनेवाले अत्यन्त भयंकर कालने इस समय वृषध्वजको अपना ग्रास बना लिया है। यही नहीं, किंतु उसका पुत्र रथध्वज भी अब जगत्में नहीं है। इस समय रथध्वजके दो पुत्र हैं। उन महाभाग पुत्रोंके नाम हैं—धर्मध्वज और कुशध्वज। वे परम वैष्णव पुरुष सूर्यके शापसे श्रीहीन होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं—ऐसा कहा जाता है। राज्य भी उनके हाथमें नहीं है। एकमात्र लक्ष्मीकी उपासना ही उनके जीवनका उद्देश्य बन गया है। अतः उनकी भार्याओंके उदरसे भगवती लक्ष्मी अपनी एक कलासे प्रकट होंगी। तब वे दोनों नरेश लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जायँगे। शम्भो ! अब आपके सेवक वृषध्वजका शरीर नहीं रहा। अतः आप यहाँसे पधार सकते हैं। देवताओ ! अब आपलोग भी जानेका कष्ट करें।

नारद ! इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि लक्ष्मीके सहित सभासे उठे और अन्तःपुरमें चले गये। देवताओंने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमकी यात्रा की। परिपूर्णतम शंकर उसी क्षण तपस्या करनेके विचारसे चल पड़े।

(अध्याय १५)

☆

## वेदवतीकी कथा, इसी प्रसंगमें भगवान् रामके चरित्रका एक अंश-कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! धर्मध्वज और कुशध्वज—ये दोनों नरेश कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी उपासना करके अपने एक-एक मनोरथसे सम्पन्न हो गये। महालक्ष्मीके वर-प्रसादसे उन्हें राजा होनेका सुअवसर पुनः प्राप्त हो गया। उनके मनमें धार्मिक भावना उत्पन्न हो गयी और वे पुत्रवान् बन गये। कुशध्वजकी परम साध्वी भार्याका नाम मालावती था। समयानुसार उसके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लक्ष्मीकी अंश थी। दीर्घकालसे उसे ज्ञान प्राप्त था। उस कन्याने जन्म लेते ही स्पष्ट स्वरसे वेदके मन्त्रोंका उच्चारण किया। वह उठकर सूतिकागृहसे बाहर निकल आयी। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'वेदवती' कहने लगे। उत्पन्न होते ही उस कन्याने स्नान किया और तपस्या करनेके विचारसे वह वनकी ओर चल दी। भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस देवीको प्रायः सभीने रोका; परंतु उसने किसीकी भी नहीं सुनी। वह तपस्विनी कन्या एक मन्वन्तरतक पुष्करक्षेत्रमें रही। उसका अत्यन्त कठिन तप लीलापूर्वक चलता रहा। अत्यन्त तपोनिष्ठ रहनेपर भी उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उसमें दुर्बलता नहीं आ सकी। इतनेमें सहसा उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'सुन्दरी ! दूसरे जन्ममें भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा प्रभृति देवता भी बड़ी कठिनतासे जिनकी उपासना कर पाते हैं, उन्हीं परमप्रभुको स्वामी बनानेका स्वर्ण अवसर तुम्हें प्राप्त होगा।'

मुने ! इस प्रकारकी आकाशवाणी सुननेके पश्चात् वेदवती नामकी वह कन्या गन्धमादन-पर्वतपर गयी और वहाँ उसने पहलेसे भी अधिक कठिन तप आरम्भ कर दिया। वहीं एक दिन उसे अपने सामने रावण दिखायी पड़ा, जो किसी

प्रकार हटाया नहीं जा सकता था। तब वेदवतीने अतिथि-धर्मके अनुसार पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जलसे उसका सत्कार किया। रावण अत्यन्त नीच था। फल खानेके पश्चात् वह वेदवतीके समीप आकर पूछने लगा—'कल्याणी ! तुम कौन हो और क्यों यहाँ ठहरी हुई हो ?' वह देवी परम सुन्दरी थी। उस साध्वी कन्याके मुखमण्डलपर हँसी छायी रहती थी। उसे देखकर दुराचारी रावण मूर्च्छित हो गया। उसका हृदय विकारसे संतप्त हो गया। उसने चाहा, वेदवतीको हाथसे खींचकर उसका शृङ्गार करने लगूँ। रावणकी इस कुचेष्टाको देखकर उस साध्वीका मन क्रोधसे भर गया। उसने रावणको अपने तपोबलसे इस प्रकार स्तम्भित कर दिया कि वह जडवत् होकर हाथों एवं पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया। कुछ भी कहने-करनेकी उसमें क्षमता नहीं रह गयी। ऐसी स्थितिमें उसने मन-ही-मन उस कमललोचना देवीके पास जाकर उसका मानस स्तवन किया। शक्तिकी उपासना विफल नहीं होती, इसे सिद्ध करनेके विचारसे देवी वेदवती रावणपर संतुष्ट हो गयी और परलोकमें उसकी स्तुतिका फल देना उन्होंने स्वीकार कर लिया। साथ ही उसे यह शाप दे दिया—'दुरात्मन् ! तू मेरे लिये ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कालका ग्रास बनेगा; क्योंकि तूने कामभावसे मुझे स्पर्श कर लिया है। अब तू मेरा यह बल देख।'

देवी वेदवतीने इस प्रकार कहकर वहीं योगद्वारा अपने शरीरका त्याग कर दिया। तब रावणने उसका मृत शरीर गङ्गामें डाल दिया और मनमें इस प्रकार चिन्ता करते हुए घरकी ओर प्रयाण किया—'अहो, मैंने यह कैसा अद्भुत दृश्य देखा। इस देवीके द्वारा कैसी अघटित घटना घट गयी।' इस प्रकार विचार करता हुआ रावण जोर-जोरसे रोने लगा। मुने ! वही देवी साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी कन्या हुई और उस देवीका नाम सीता पड़ा; जिसके कारण रावणको मृत्युका मुख देखना पड़ा था। वेदवती महान् तपस्विनी थी। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे स्वयं भगवान् श्रीराम उसके पति हुए। ये राम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं। इन जगत्पतिकी आराधना सबके लिये सहज नहीं है। देवी वेदवतीने घोर तपस्याके प्रभावसे इन्हें प्राप्त किया था। सीतारूपसे विराजमान उस सुन्दरी देवीने बहुत दिनोंतक भगवान् श्रीरामके साथ सुख भोगा। उसे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण थीं, फिर भी पूर्व समयमें तपस्यासे जो कष्ट हुआ था, उसने उसपर ध्यान नहीं दिया। वर्तमान सुखके सामने उसने सम्पूर्ण पूर्वक्लेशोंकी स्मृतिका त्याग कर दिया था। श्रीराम परम गुणी, समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न, रसिक, शान्तस्वभाव, अत्यन्त कमनीय तथा स्त्रियोंके लिये साक्षात् कामदेवके समान सुन्दर एवं श्रेष्ठतम देवता थे। वेदवतीने ऐसे मनोऽभिलषित स्वामीको प्राप्त किया। कालकी महिमा अपार है या भगवान्‌का लीला-वैचित्र्य है। रघुकुलभूषण, सत्यसंध भगवान् श्रीराम पिताके वचनको सत्य करनेके लिये वनमें पधार गये। वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप टिके थे। इसी बीच ब्राह्मणरूपधारी अग्निसे उनकी भेंट हुई। भगवान् रामको दुःखी देखकर विप्ररूपधारी अग्निका मन संतप्त हो उठा। तब सर्वथा सत्यवादी उन अग्निदेवने सत्यप्रेमी भगवान् रामसे ये सत्यमय वचन कहे।

ब्राह्मणवेषधारी अग्निने कहा—भगवन् ! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। श्रीराम ! सीताके हरणका समय अब आपके समीप उपस्थित हो रहा है। इसी अवसरपर इनका हरण होगा। अतएव आप इन जगज्जननी सीताको मुझमें स्थापित कर छायामयी सीताको अपने साथ रखिये। फिर समयपर इन्हें मैं आपको लौटा दूँगा। उसी समय इनकी परीक्षा-लीला भी हो जायगी। इसी कार्यके लिये मुझे देवताओंने यहाँ भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, किंतु साक्षात् अग्नि हूँ।

भगवान् श्रीरामने अग्निकी बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही अत्यन्त दुःखके साथ अग्निके प्रस्तावको मान लिया। नारद ! उन्होंने सीताको अग्निके हाथों सौंप दिया। तब अग्निसे मायारूपी एक सीता प्रकट हुई। उसके सभी अङ्ग और गुण साक्षात् सीताके समान ही थे। अग्निदेवके प्रभावसे ऐसी सीता रामको मिल गयी। फिर वे उसे लेकर आगे बढ़े। इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेके लिये मायासीताको भगवान् रामने रोक दिया। यहाँतक कि लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान सके; फिर दूसरेकी बात ही क्या ? इसी बीच भगवान् रामने एक सुवर्णमय मृग देखा। सीताने उस मृगको लानेके लिये भगवान् रामसे अनुरोध किया। भगवान् राम उस वनमें जानकीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्त करके स्वयं मृगकी ओर शीघ्रतापूर्वक दौड़े और बाणसे उसे मार गिराया। मरते समय उस मायामृगके मुखसे 'हा लक्ष्मण !' यह शब्द निकला। उसे परम सौभाग्यसे भगवान् श्रीरामका स्मरण हो आया और अकस्मात् उसके प्राणपखेरू उड़ गये। मृगका शरीर त्यागकर वह दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और रत्ननिर्मित विमानपर सवार होकर वैकुण्ठको चल दिया। यह मारीच पूर्वजन्ममें द्वारपालोंका अनुचर बनकर वैकुण्ठके द्वारपर रहता था। किसी कारणसे इसे राक्षसकी योनि मिल गयी थी। द्वारपालोंके आदेशानुसार वह पुनः वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया।

तदनन्तर 'हा लक्ष्मण !' इस कष्टभरे शब्दको सुनकर सीताने लक्ष्मणको रामके पास जानेके लिये प्रेरणा की। रावण अपनी धुनमें अटल था। अतः रामके पास लक्ष्मणके चले जानेपर सीताको अपहरण कर खेल-ही-खेलमें वह लङ्काकी ओर चल दिया। उधर लक्ष्मणको वनमें देखकर रामके कष्टकी सीमा नहीं रही। वे उसी क्षण अपने आश्रमपर गये और सीताको वहाँ न देखकर दुःखी हो गये ! फिर, सीताको खोजते हुए वे बारम्बार इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। कुछ समय बाद गोदावरी नदीके तटपर उन्हें सीताका समाचार मिला। तब वानरोंको अपना सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रमें पुल बाँधा। समयानुसार वे लङ्कामें पहुँच गये। रावणके साथ भयानक युद्ध हुआ और रावण तथा उसके भाई-बन्धु—सभी मृत्युके मुखमें चले गये। तत्पश्चात् सीताकी अग्निपरीक्षा हुई। अग्निदेवने उसी क्षण वास्तविक सीताको भगवान् रामके सामने उपस्थित कर दिया। तब छाया सीताने अत्यन्त नम्र होकर अग्निदेव और भगवान् श्रीराम—दोनोंसे कहा—'महानुभावो ! अब मैं क्या करूँगी, सो बतानेकी कृपा कीजिये।'

तब भगवान् श्रीराम और अग्निदेव बोले—देवी ! तुम तप करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें चली जाओ। वहीं रहकर तपस्या

करना। इसके फलस्वरूप तुम्हें स्वर्गलक्ष्मी बननेका सुअवसर प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके वचन सुनकर छाया सीताने पुष्करक्षेत्रमें जाकर तप आरम्भ कर दिया। उसकी कठिन तपस्या बहुत लम्बे कालतक चलती रही। इसके बाद उसे स्वर्गलक्ष्मी होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। समयानुसार वही छाया सीता राजा द्रुपदके यहाँ यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई। उसका नाम 'द्रौपदी' पड़ा और पाँचों पाण्डव उसके पतिदेव हुए। इस प्रकार सत्ययुगमें वही कल्याणी वेदवती कुशध्वजकी कन्या, त्रेतायुगमें छायारूपसे सीता बनकर भगवान् श्रीरामकी सहचरी तथा द्वापरमें द्रुपदकुमारी द्रौपदी हुई। अतएव इसे 'त्रिहायणी' कहा गया है। वहाँ तीनों युगोंमें यह विद्यमान रही है।

नारदजीने पूछा—संदेहोंके निराकरण करनेमें परमकुशल मुनिवर ! द्रौपदीके पाँच पति कैसे हुए ? मेरे मनकी यह शङ्का मिटानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! जब लङ्कामें वास्तविक सीता भगवान् श्रीरामके पास विराजमान हो गयी, तब रूप एवं यौवनसे शोभा पानेवाली छाया सीताकी चिन्ताका पार न रहा। तदनन्तर वह भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके आज्ञानुसार भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। पति प्राप्त करनेके लिये व्यग्र होकर वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही थी कि 'भगवान् त्रिलोचन ! मुझे पति प्रदान कीजिये।' यही शब्द उसके मुँहसे पाँच बार निकले। भगवान् शंकर परम रसिक हैं। छाया सीताकी यह प्रार्थना सुनकर उसे यह वर दे दिया। तुम्हें पाँच पति मिलेंगे। नारद ! इस प्रकार त्रेताकी जो छाया सीता थी, वही द्वापरमें द्रौपदी बनी और पाँचों पाण्डव उसके पति हुए। यह सब जो बीचकी बातें थीं, सुना चुका। अब जो प्रधान विषय चल रहा था, वह सुनो।

भगवान् रामने लङ्कामें मनोहारिणी सीताको पा जानेके पश्चात् वहाँका राज्य विभीषणको सौंप दिया और वे स्वयं अयोध्या पधार गये। अयोध्या भारतवर्षमें है। ग्यारह हजार वर्षोंतक भगवान् श्रीरामने वहाँ राज्य किया। तत्पश्चात् वे समस्त पुरवासियोंसहित वैकुण्ठधामको पधारे। लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत जो वेदवती थी, वह लक्ष्मीके विग्रहमें विलीन हो गयी। इस प्रकारका पवित्र आख्यान मैंने कह सुनाया। इस पुण्यदायी उपाख्यानके प्रभावसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। अब धर्मध्वजकी कन्याका प्रसंग कहता हूँ, सुनो।

(अध्याय १६)

☆

## भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था। वह राजाके साथ गन्धमादनपर्वतपर सुन्दर उपवनमें आनन्द करती थी। यों दीर्घकाल बीत गया, किंतु उन्हें इसका ज्ञान न रहा कि कब दिन बीता, कब रात। तदनन्तर राजा धर्मध्वजके हृदयमें ज्ञानका प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने हास-विलाससे विलग होना चाहा; परंतु माधवी अभी तृप्त नहीं हो सकी थी, अतएव उसे गर्भ रह गया। उसका गर्भ प्रतिदिन क्रमशः शोभा

बढ़ाता रहा। नारद ! कार्तिककी पूर्णिमाके दिन उसके गर्भसे एक कन्या प्रकट हुई। उस समय शुभ दिन, शुभ योग, शुभ क्षण, शुभ लग्न और शुभ ग्रहका संयोग था। यों शुक्रवारके दिन देवी माधवी लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत उस कन्याकी जननी हुई। उस कन्याका मुख ऐसा था मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। नेत्र शरत्कालीन कमलके समान थे। अधर पके हुए बिम्बा-फलकी तुलना कर रहे थे। मनको मुग्ध करने-वाली उस कन्याके हाथ और पैरके तलवे लाल थे। उसकी नाभि गहरी थी। शीतकालमें सुख देनेके लिये उसके सम्पूर्ण अङ्ग गरम रहते थे और उष्णकालमें वह शीतलाङ्गी बनी रहती थी। उसके शरीरका वर्ण श्याम था। उसके सुन्दर केश ऐसे थे मानो वटवृक्षको घेरकर शोभा पानेवाले बरोह हों। उसकी कान्ति पीले चम्पककी तुलना कर रही थी। वह सभी सुन्दरियोंमें एक थी। स्त्री और पुरुष उसे देखकर किसीके साथ तुलना करनेमें असमर्थ हो जाते थे; अतएव विद्वान् पुरुषोंने उसका नाम 'तुलसी' रखा। भूमिपर पधारते ही वह ऐसी सुयोग्या बन गयी मानो साक्षात् प्रकृति देवी ही हो।

सब लोगोंके रोकनेपर भी उसने तपस्या करनेके विचारसे बदरीवनको प्रस्थान किया। वहाँ रहकर वह दीर्घकालतक कठिन तपस्या करती रही। उसके मनका निश्चित उद्देश्य यह था कि स्वयं भगवान् नारायण मेरे स्वामी हों। ग्रीष्मकालमें वह पञ्चाग्नि तपती और जाड़ेके दिनोंमें जलमें रहकर तपस्या करती। वर्षा ऋतुमें वह आसन लगाकर बैठी रहती। जलकी धाराओंको निरन्तर सहन करना तो उसके लिये सहज काम हो गया था। हजारों वर्षोंतक वह फल और जलपर रही; फिर हजारों वर्षोंतक वह केवल पत्ते चबाकर रही और हजारों वर्षोंतक

केवल वायुके आधारपर उसने प्राणोंको टिकाकर रखा। इससे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। तदनन्तर वह बिलकुल निराहार रही। निर्लक्ष्य होकर एक पैरपर खड़ी हो वह तपस्या करती रही। उसे देखकर ब्रह्मा उत्तम वर देनेके विचारसे बदरिकाश्रममें पधारे। हंसपर बैठे हुए चतुर्मुख ब्रह्माको देखकर तुलसीने प्रणाम किया। तब जगत्की सृष्टि करनेमें निपुण विधाताने उससे कहा।

ब्रह्माजी बोले—तुलसी ! तुम मनोऽभिलषित वर माँग सकती हो। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति, उनकी दासी बनना अथवा अजर एवं अमर होना—जो भी तुम्हारी इच्छा हो, मैं देनेके लिये तैयार हूँ।

तुलसीने कहा—पितामह ! आप सर्वज्ञ हैं; तथापि मेरे मनमें जो अभिलाषा है, उसे मैं कह देती हूँ। अब आपके सामने मुझे लज्जा ही क्या है। पूर्वजन्ममें मैं तुलसी नामकी गोपी थी। गोलोक मेरा निवास-स्थान था। भगवान्

श्रीकृष्णकी प्रिया, उनकी अनुचरी, उनकी अर्द्धाङ्गिनी तथा उनकी प्रेयसी सखी—सब कुछ होनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त था। गोविन्द नामसे सुशोभित उन प्रभुके साथ मैं हास-विलासमें रत थी, उस परम सुखसे अभी मैं तृप्त नहीं थी। इतनेमें एक दिन रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधाने रासमण्डलमें पधारकर रोषसे मुझे यह शाप दे दिया कि 'तुम मानव-योनिमें उत्पन्न होओ।' उसी समय भगवान् गोविन्दने मुझसे कहा—'देवी ! तुम भारतवर्षमें रहकर तपस्या करो। ब्रह्मा वर देंगे, जिससे मेरे स्वरूपभूत अंश चतुर्भुज श्रीविष्णुको तुम पतिरूपसे प्राप्त कर लोगी।' इस प्रकार कहकर देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण भी अन्तर्धान हो गये। गुरो ! मैंने अपना वह शरीर त्याग दिया और अब इस भूमण्डलपर उत्पन्न हुई हूँ। सुन्दर विग्रहवाले शान्तस्वरूप भगवान् नारायण जो उस समय मेरे पति थे, उन्हींको अब भी मैं पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये वर माँग रही हूँ। आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करनेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट सुदामा नामक एक गोप भी इस समय राधिकाके शापसे भारतवर्षमें उत्पन्न है। उस परमतेजस्वी गोपको श्रीकृष्णका साक्षात् अंश कहते हैं। शापवश उसे दनुके कुलमें उत्पन्न होना पड़ा है। 'शङ्खचूड़' नामसे वह प्रसिद्ध है। त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसकी समता कर सके। वह सुदामा इस समय समुद्रमें विराजमान है। भगवान् श्रीकृष्णका अंश होनेसे उसे पूर्वजन्मकी सभी बातें स्मरण हैं। सुन्दरी ! शोभने ! तुम भी पूर्वजन्मके सभी प्रसंगोंसे परिचित हो। इस जन्ममें वह श्रीकृष्णका अंश तुम्हारा पति होगा। इसके बाद शान्तस्वरूप भगवान् नारायण तुम्हें पतिरूपसे प्राप्त होंगे। लीलावश वे ही नारायण तुमको शाप दे देंगे। अतः अपनी कलासे तुम्हें वृक्ष बनकर भारतमें रहना पड़ेगा और समस्त जगत्को पवित्र करनेकी योग्यता तुम्हें प्राप्त होगी। सम्पूर्ण पुष्पोंमें तुम प्रधान मानी जाओगी। भगवान् विष्णु तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानेंगे। तुम्हारे बिना पूजा निष्फल समझी जायगी। वृन्दावनमें वृक्षरूपसे रहते समय लोग तुम्हें वृन्दावनी कहेंगे। तुमसे उत्पन्न पत्तोंसे गोपी और गोपोंद्वारा भगवान् माधवकी पूजा सम्पन्न होगी। तुम मेरे वरके प्रभावसे वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोपरूपसे विराजनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके साथ स्वेच्छापूर्वक निरन्तर आनन्द भोगोगी। नारद ! ब्रह्माकी यह अमरवाणी सुनकर तुलसीके मुखपर हँसी छा गयी। उसके मनमें अपार हर्ष हुआ। उसने महाभाग ब्रह्माको प्रणाम किया और वह कहने लगी।

तुलसीने कहा—पितामह ! मैं बिलकुल सच्ची बातें कहती हूँ—दो भुजासे शोभा पानेवाले श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णको पानेके लिये मेरी जैसी अभिलाषा है, वैसी चतुर्भुज श्रीविष्णुके लिये नहीं है; परंतु उन गोविन्दकी आज्ञासे ही मैं चतुर्भुज श्रीहरिके लिये प्रार्थना करती हूँ। ओह, वे गोविन्द मेरे लिये परम दुर्लभ हो गये हैं। भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि उन्हीं गोविन्दको मैं पुनः निश्चय ही प्राप्त कर सकूँ। साथ ही मुझे राधाके भयसे भी मुक्त कर दीजिये।

ब्रह्माजी बोले—देवी ! मैं तुम्हारे प्रति भगवती राधाके षोडशाक्षर-मन्त्रका उपदेश करता हूँ। तुम इसे हृदयमें धारण कर लो। मेरे

वरके प्रभावसे अब तुम राधाको प्राणके समान प्रिय बन जाओगी। सुभगे ! भगवान् गोविन्दके लिये तुम वैसी ही प्रेयसी बन जाओगी जैसी राधा हैं।

मुने ! इस प्रकार कहकर जगद्धाता ब्रह्माने तुलसीको भगवती राधाका षोडशाक्षर-मन्त्र बता दिया। साथ ही स्तोत्र, कवच, पूजाकी सम्पूर्ण विधियाँ तथा किस क्रमसे अनुष्ठान करना चाहिये—ये सभी बातें बतला दीं। तब तुलसीने भगवती राधाकी उपासना की और उनके कृपाप्रसादसे वह देवी राधाके समान ही सिद्ध हो गयी। मन्त्रके प्रभावसे ब्रह्माजीने जैसा कहा था, ठीक वैसा ही फल तुलसीको प्राप्त हो गया। तपस्या-सम्बन्धी जो भी क्लेश थे, वे मनमें प्रसन्नता उत्पन्न होनेके कारण दूर हो गये; क्योंकि फल सिद्ध हो जानेपर मनुष्योंका दुःख ही उत्तम सुखके रूपमें परिणत हो जाता है।

(अध्याय १७)

☆

## तुलसीको स्वप्नमें शङ्खचूड़के दर्शन और शङ्खचूड़ तथा तुलसीके विवाहके लिये ब्रह्माजीका दोनोंको आदेश

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! एक समयकी बात है; वृषध्वजकी कन्या तुलसी अत्यन्त प्रसन्न होकर शयन कर रही थी। उसने स्वप्नमें एक सुन्दर वेषवाले पुरुषको देखा। वह पुरुष अभी पूर्ण नवयुवक था। उसके मुखपर मुसकान छायी थी। उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दनका अनुलेपन था। रत्नमय आभूषण उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके गलेमें सुन्दर माला थी। उसके नेत्र-भ्रमर तुलसीके मुख-कमलका रस-पान कर रहे थे। स्वप्नमें ही तुलसीका उसके साथ हास-विलास हुआ।

मुने ! यों स्वप्न देखनेके पश्चात् तुलसी जगकर विलाप करने लगी। इस प्रकार तरुण अवस्थासे सम्पन्न वह देवी वहीं रहकर समय व्यतीत कर रही थी। नारद ! उसी समय महान् योगी शङ्खचूड़का बदरीवनमें आगमन हो गया। जैगीषव्य मुनिकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र उसे प्राप्त हो चुका था। उसने पुष्करक्षेत्रमें रहकर उस मन्त्रको सिद्ध भी कर लिया था। सर्वमङ्गलमय कवचसे उसके गलेकी शोभा हो रही थी। ब्रह्मा उसे अभिलषित वर दे चुके थे और उन्हींकी आज्ञासे वह वहाँ आया भी था। वह आ रहा था, तभी तुलसीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। उसकी सुन्दर कमनीय कान्ति थी। वर्ण ऐसा था, मानो श्वेत चम्पा हो। रत्नमय अलंकारोंसे वह अलंकृत था। उसके मुखकी शोभा शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रही थी। नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो शारदीय कमल हों। दो रत्नमय कुण्डल उसके गण्ड-स्थलकी छबि बढ़ा रहे थे। पारिजातके पुष्पोंकी माला उसके गलेको सुशोभित कर रही थी और उसका मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। कस्तूरी और कुङ्कुमसे युक्त सुगन्धपूर्ण चन्दनद्वारा उसके अङ्ग अनुलिप्त थे। मनको मुग्ध कर देनेवाला वह शङ्खचूड़ अमूल्य रत्नोंसे बने हुए विमानपर विराजमान था।

इस शङ्खचूड़को देखकर तुलसीने वस्त्रसे अपना मुख ढँक लिया। कारण, लज्जावश उसका मुख नीचेकी ओर झुक गया था। शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमा उसके निर्मल दिव्य चन्द्र-जैसे

मुखके सामने तुच्छ थे। अमूल्य रत्नोंसे बने हुए नूपुर उसके चरणोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह मनोहर त्रिवलीसे सम्पन्न थी। सर्वोत्तम मणिसे निर्मित करधनी सुन्दर शब्द करती हुई उसकी कमरमें सुशोभित थी। मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केश-कलाप उसके मस्तकपर शोभा पा रहे थे। उसके कानोंमें अमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल थे। सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलको समुज्ज्वल बना रहा था। रत्नमय कंकण, केयूर, शङ्ख और अँगूठियाँ उस देवीकी शोभा बढ़ा रहे थे। साध्वी तुलसीका आचरण अत्यन्त प्रशंसनीय था। ऐसे भव्य शरीरसे शोभा पानेवाली उस सुन्दरी तुलसीको देखकर शङ्खचूड़ उसके पास आकर बैठ गया और मीठे शब्दोंमें बोला।

शङ्खचूड़ने पूछा—देवी ! तुम कौन हो, तुम्हारे पिता कौन हैं ? तुम अवश्य ही सम्पूर्ण स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं समादरकी पात्र हो। समस्त मङ्गल प्रदान करनेवाली कल्याणी ! तुम वास्तवमें हो कौन ? सदा सम्मान पानेवाली सुन्दरी ! तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो।

नारद ! सुन्दर नेत्रोंसे शोभा पानेवाली तुलसीने शङ्खचूड़के ऐसे वचनको सुनकर मुख नीचेकी ओर झुकाकर उससे कहना आरम्भ किया।

तुलसीने कहा—महाशय ! मैं राजा धर्मध्वजकी कन्या हूँ। तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें ठहरी हुई हूँ। तुम कौन हो ? तुम्हें आनन्दपूर्वक यहाँसे पधार जाना चाहिये; क्योंकि उच्च कुलकी किसी भी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें कोई भी कुलीन पुरुष बातचीत नहीं करता—ऐसा नियम मैंने श्रुतिमें सुना है। जो कलुषित कुलमें उत्पन्न है तथा जिसे धर्मशास्त्र एवं श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी सुअवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामी बनकर परस्त्रीकी कामना करता है। स्त्रीकी मधुर वाणीमें कोई सार नहीं रहता। वह सदा अभिमानमें चूर रहती है। वह वस्तुतः विषसे भरे हुए घड़ेके समान है; परंतु उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो सदा अमृतसे भरा हो। संसाररूपी कारागारमें जकड़नेके लिये वह साँकल है। स्त्रीको इन्द्रजालस्वरूपा तथा स्वप्नके समान मिथ्या कहते हैं। बाहरसे तो यह अत्यन्त सुन्दरता धारण करती है, परंतु उसके भीतरके अङ्ग कुत्सित भावोंसे भरे रहते हैं। उसका शरीर विष्ठा, मूत्र, पीब और मल आदि नाना प्रकारकी दुर्गन्धपूर्ण वस्तुओंका आधार है। रक्त-रञ्जित तथा दोषयुक्त यह शरीर कभी पवित्र नहीं रहता। सृष्टिकी रचनाके समय ब्रह्माने मायावी व्यक्तियोंके लिये इस मायास्वरूपिणी स्त्रीका सृजन किया है। मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके लिये यह विषका काम करती है। अतः मोक्ष चाहनेवाले व्यक्ति उसे देखना भी नहीं चाहते।

नारद ! शङ्खचूड़से इस प्रकार कहकर तुलसी चुप हो गयी। तब शङ्खचूड़ हँसकर कहने लगा।

शङ्खचूड़ने कहा—देवी ! तुमने जो कुछ कहा है, वह असत्य नहीं है। पर अब मेरी कुछ सत्यासत्यमिश्रित बातें सुननेकी कृपा करो। विधाताने दो प्रकारकी स्त्रियोंका निर्माण किया है—वास्तवस्वरूपा और अवास्तवस्वरूपा। दोनों ही एक समान मनोहर होती हैं, पर एकको प्रशस्त कहते हैं और दूसरीको अप्रशस्त। लक्ष्मी,

सरस्वती, दुर्गा, सावित्री और राधिका—ये पाँच देवियाँ सृष्टिसूत्र हैं—सृष्टिकी मूल कारण हैं। इन आद्या देवियोंके प्रादुर्भावका प्रयोजन केवल सृष्टि करना है। इनके अंशसे प्रकट गङ्गा आदि देवियाँ वास्तवरूपा कहलाती हैं। इनको श्रेष्ठ माना जाता है। ये यशःस्वरूपा और सम्पूर्ण मङ्गलोंकी जननी हैं। शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरपत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटिवी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, देदवती, गङ्गा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मङ्गलचण्डी, धर्मपत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षमा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, संध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—स्त्रीरूपमें प्रकट ये देवियाँ प्रत्येक युगमें उत्तम मानी जाती हैं।

जगदम्बाकी कलाकी कलाके अंशसे उत्पन्न जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, उन्हें अप्रशस्त कहा गया है। अखिल विश्वमें पुँश्चलीरूपसे ये विख्यात हैं। स्त्रियोंका जो सत्त्वप्रधान रूप है, वही ठीक है; उसीको उत्तम माना जाता है। विश्वमें इन साध्वीरूपा स्त्रियोंकी प्रशंसा की गयी है। विद्वान् पुरुष कहते हैं, इन्हींको 'वास्तवरूपा' कहा जाता है। रजोरूप और तमोरूप भेदसे कलाओंमें अनेक प्रकारकी स्त्रियाँ प्रसिद्ध हैं। रजोगुणका अंश जिनमें प्रधान है, वे मध्यम श्रेणीकी हैं; क्योंकि भोगोंमें उनकी नित्य स्पृहा बनी रहती है। सुखभोगके वशीभूत होकर वे सदा अपने कार्यमें संलग्न रहती हैं। कपट और मोह—ये दो दुर्गुण उनमें निवास करते हैं। कभी भी उनके द्वारा धर्मके अर्थका यथार्थ पालन नहीं होता। अतः रजोरूपप्रधान स्त्रीमें साध्वीपनका आना सम्भव नहीं। विद्वान् पुरुष इसे 'मध्यमरूपा' बतलाते हैं। तमोरूप दुर्निवार्य है। विज्ञ पुरुष इसको 'अधम' कहते हैं। देवी! तुमने जो कहा है, सत्-असत्का विचार रखनेवाले कुलीन पुरुष निर्जन, निर्जल अथवा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछते, सो ठीक है; मैं भी यही मानता हूँ। परंतु शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञा पाकर ही तुम्हारे कार्य-साधनके लिये तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्व-विवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनाऊँगा। देवताओंमें भगदड़ मचा देनेवाला शङ्खचूड़ मैं ही हूँ। दनुवंशमें मेरी उत्पत्ति हुई है। विशेष बात तो यह है कि मैं पूर्वजन्ममें श्रीहरिके साथ रहनेवाला उन्हींका अंश सुदामा नामक गोप था। जो सुप्रसिद्ध आठ गोप भगवान्के स्वयं पार्षद थे, उनमें एक मैं ही था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बना हूँ। भगवान् श्रीकृष्णका मन्त्र मुझे इष्ट है। अतः पूर्वजन्मकी बातोंको मैं जान जाता हूँ। तुम भी पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णके पास रहनेवाली तुलसी थी। यह जाननेकी योग्यता तो तुम्हें भी प्राप्त है। तुम भी जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुई हो, इसमें मुख्य कारण श्रीराधिकाका रोष ही है।

मुनिवर! जब इस प्रकार कहकर शङ्खचूड़ चुप हो गया, तब तुलसी उससे कहने लगी। उस समय तुलसीका मन संतुष्ट था और उसके मुखपर मुसकराहट छायी थी।

तुलसीने कहा—कान्त! इस प्रकारके सद्विचारसे सम्पन्न विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा

प्रशंसित होते हैं। स्त्रीका कर्तव्य है कि वह ऐसे ही सत्पतिकी निरन्तर अभिलाषा करे। आप सद्विचारवाले पुरुषसे इस समय मैं परास्त हो गयी। निन्दाका पात्र तथा अपवित्र तो वह पुरुष माना जाता है, जिसे स्त्रीने जीत लिया हो। स्त्रीजित् मनुष्यकी तो पितर, देवता तथा बान्धव—सभी निन्दा करते हैं। यहाँतक कि माता, पिता तथा भ्राता भी मन-ही-मन उसकी निन्दा करनेसे नहीं चूकते। जिस प्रकार जन्म तथा मृत्युके अशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंपर शुद्ध हो जाता है, क्षत्रिय बारह दिनोंपर और वैश्य पंद्रह दिनोंपर शुद्ध होते हैं। शूद्रोंकी शुद्धि एक महीनेपर होती है, ऐसे ही गान्धर्वविवाह-सम्बन्धी पति-पत्नीकी संतान भी समयानुसार शुद्ध हो जाती है। उसमें वर्णसंकर दोष नहीं आ सकता। यह बात शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। स्त्रीजित् मनुष्यकी तो आजीवन शुद्धि नहीं होती ! चितापर जलते समय ही वह इस पापसे मुक्त होता है। स्त्रीजित् मनुष्यके पितर उसके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते। देवता भी उसके समर्पण किये हुए पुष्प और जल आदिके लेनेमें सम्मत नहीं होते। जिसके मनको स्त्रीने हरण कर लिया है, उस व्यक्तिके लिये ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन है ? मैंने विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही आपकी परीक्षा की है। कारण, कामिनी स्त्रीका प्रधान कर्तव्य है कि कान्तकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपमें स्वीकार करे।

गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, कुरूप, परम क्रोधी, अशोभन मुखवाले, पङ्गु, अङ्गहीन, नेत्रहीन, बधिर, जड, मूक तथा नपुंसकके समान पापी वरको जो अपनी कन्या देता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। शान्त, गुणी, नवयुवक, विद्वान् तथा साधुस्वभाववाले वरको अपनी कन्या अर्पण करनेवाले पुरुषको दस अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति कन्याको पाल-पोसकर धनके लोभसे बेच देता है, वह 'कुम्भीपाक' नरकमें पचता है। उस पापीको नरकमें भोजनके स्थानपर कन्याके मल-मूत्र प्राप्त होते हैं। कीड़ों और कौओंद्वारा उसका शरीर नोचा जाता है। बहुत लम्बे समयतक वह कुम्भीपाक नरकमें रहता है। फिर जगत्में जन्म पाकर उसका रोगग्रस्त रहना निश्चित है।

तपको ही सर्वस्व माननेवाले नारद ! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी।

इतनेमें ब्रह्माजीने आकर कहा—शङ्खचूड़ ! तुम इस देवीके साथ क्या बातचीत कर रहे हो ? अब गान्धर्व-विवाहके नियमानुसार इसे पत्नीरूपसे स्वीकार कर लेना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है; क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी देवी भी कन्याओंमें रत्न समझी जाती

है। इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—'पतिव्रते ! तुम ऐसे गुणी पतिकी क्या परीक्षा करती हो ? देवता, दानव और असुर—सबको कुचल डालनेकी इसमें शक्ति है। जिस प्रकार भगवान् नारायणके पास लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मेरे पास सावित्री, भगवान् वाराहके पास पृथ्वी, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्दके पास देवसेना तथा धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे शोभा पाती है, वैसे ही तुम भी इस शङ्खचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ। इसके बाद तुम पुनः गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके पास चली जाओगी और यह शङ्खचूड़ भी इस शरीरका त्याग करनेके पश्चात् वैकुण्ठमें जाकर चतुर्भुज भगवान् विष्णुमें लीन हो जायगा।'

(अध्याय १०)

☆

## तुलसीके साथ शङ्खचूड़का गान्धर्व-विवाह तथा देवताओंके प्रति उसके पूर्वजन्मका स्पष्टीकरण

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! शङ्खचूड़ और तुलसीको इस प्रकार आशीर्वाद-रूपमें आज्ञा देकर ब्रह्माजी अपने लोकमें चले गये। तब शङ्खचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार तुलसीको अपनी पत्नी बना लिया। उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। आकाशसे पुष्प बरसने लगे। तदनन्तर शङ्खचूड़ अपने भवनमें जाकर तुलसीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा !

अपनी चिरसंगिनी धर्मपत्नी परमसुन्दरी तुलसीके साथ आनन्दमय जीवन बिताते हुए राजाधिराज प्रतापी शङ्खचूड़ने दीर्घकालतक राज्य किया। देवता, दानव, असुर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस—सभी शङ्खचूड़के शासन-कालमें सदा शान्त रहते थे। अधिकार छिन जानेके कारण देवताओंकी स्थिति भिक्षुक-जैसी हो गयी थी। अतः वे सभी अत्यन्त उदास होकर ब्रह्माकी सभामें गये और अपनी स्थिति बतलाकर बार-बार अत्यन्त विलाप करने लगे। तब विधाता ब्रह्मा देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये। वहाँ पहुँचकर मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश शिवसे सभी बातें कह सुनायीं। फिर ब्रह्मा और शंकर देवताओंको साथ लेकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए। वैकुण्ठ परम धाम है। यह सबके लिये दुर्लभ है। वहाँ बुढ़ापा और मृत्युका प्रभाव नहीं है। भगवान् श्रीहरिके भवनका प्रवेशद्वार परम श्रेष्ठ है। वहाँ पहुँचकर रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको जब देखा, तब इन ब्रह्मादि देवताओंका मन आश्चर्यसे भर गया। वे सभी परम सुन्दर थे। सभी पीताम्बर धारण किये हुए थे। रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। सबके गलेमें दिव्य वनमाला लहरा रही थी; सुन्दर शरीर श्याम रंगके थे। उनके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजाएँ थीं और प्रसन्न वदन मुसकानसे भरे थे। उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके सदृश विशाल थे।

उन द्वारपालोंसे अनुमति पाकर ब्रह्मा क्रमशः सोलह द्वारोंको पार करके भगवान् श्रीहरिकी सभामें पहुँचे। उस सभाभवनमें चारों ओर देवर्षि तथा पार्षद विराजमान थे। सभी पार्षदोंके चार भुजाएँ थीं; सबका रूप भगवान् नारायणके समान था और सभी कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे। उनकी आकृति ऐसी थी, मानो नवीन चन्द्रमण्डल हो। उस परम मनोहर सभाभवनके चारों कोने बराबर थे। सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे उसका निर्माण हुआ था। अमूल्य मणियोंसे ही वह सजी हुई थी। श्रीहरिके इच्छानुसार बना हुआ यह भवन अमूल्य दिव्य रत्नोंसे निर्मित था। मणिमय मालाएँ जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं और दिव्य मोतियोंकी झालरें उसकी छबि बढ़ा रही थीं। मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय दर्पणोंसे वह सभा सुशोभित थी। विचित्र रेखाओंसे वह शोभाभवन परम सुन्दर जान पड़ता था। अनेक प्रकारके अद्भुत चित्र उसकी सुन्दरता बढ़ा रहे थे। सर्वोत्कृष्ट पद्मराग-मणिसे निर्मित वह सभा मणिमय कमलोंसे परम सुशोभित थी। स्यमन्तक मणिसे बनी हुई सौ सीढ़ियोंसे युक्त वह भवन था। दिव्य चन्दन वृक्षके सुन्दर पल्लव रेशमके सूत्रोंमें बँधे वन्दनवारका काम दे रहे थे। चारों ओरके खम्भोंका निर्माण इन्द्रनील मणिसे हुआ था। उत्तम रत्नोंके कलशोंसे वह सभा संयुक्त थी। पारिजातपुष्पके बहुत-से हार उसे अलंकृत किये हुए थे। कस्तूरी और कुंकुमोंसे रञ्जित सुगन्धपूर्ण चन्दनके वृक्षोंसे वह भवन सुसज्जित था। सर्वत्र सुगन्धित वायु चल रही थी। एक हजार योजनकी दूरीमें वह विस्तृत था। सर्वत्र सेवक खड़े थे। वहाँ सभी कुछ दिव्य था। सभी उस सभाभवनको देखकर मुग्ध हो गये।

नारद! भगवान् श्रीहरि उस अनुपम सभाके मध्यभागमें इस प्रकार विराजमान थे, मानो नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो। देवताओंसहित ब्रह्मा और शंकरने उनके साक्षात् दर्शन किये। उस समय श्रीहरि दिव्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजित थे। दिव्य किरीट, कुण्डल और वनमालाने उनकी छबिको और भी अधिक बढ़ा दिया था। उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त थे। एक हाथमें कमल शोभा पा रहा था। भगवान्का श्रीविग्रह अतिशय शान्त था। लक्ष्मीजी उनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न थीं। लक्ष्मीके करकमलसे प्राप्त सुवासित ताम्बूल प्रभु भक्षण कर रहे थे। देवी गङ्गा उत्तम भक्तिके साथ सफेद चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। उपस्थित समाज अत्यन्त भक्ति-विनम्र होकर उनका स्तव-गान कर रहा था।

मुने! ऐसे परम विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिके दर्शन प्राप्त होनेपर ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता उन्हें प्रणाम करके स्तुति करने लगे। उस समय हर्षके कारण उनके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी थी, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद थी। परम श्रद्धाके साथ उपासना करके जगत्के व्यवस्थापक ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर बड़ी विनयके साथ भगवान् श्रीहरिके सामने सारी परिस्थिति निवेदित की। श्रीहरि सर्वज्ञ एवं सबके अभिप्रायसे पूर्ण परिचित हैं। ब्रह्माकी बात सुनकर उनके मुखपर हँसी छा गयी और उन्होंने मनको मुग्ध करनेवाला अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया।

भगवान् श्रीहरि बोले—ब्रह्मन्! यह महान्

तेजस्वी शङ्खचूड़ पूर्व-जन्ममें एक गोप था। यह मेरा ही अंश था। मेरे प्रति इसकी अटूट श्रद्धा थी। इसके सम्पूर्ण वृत्तान्तसे मैं पूर्ण परिचित हूँ। यह वृत्तान्त प्राचीन इतिहासके रूपमें परिणत है। गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले इस समस्त पुण्यप्रद इतिहासको सुनिये। शङ्खचूड़ उस समय सुदामा नामसे प्रसिद्ध गोप था। मेरे पार्षदोंमें उसकी प्रधानता थी। श्रीराधाके शापने उसे दानव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिये विवश कर दिया।

राधा अति करुणामयी है। सखियोंका तिरस्कार करनेके कारण राधाने शाप तो दे दिया, परंतु जब सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ सभाभवनसे बाहर जाने लगा, तब दयामयी राधा कृपावश तुरंत संतुष्ट हो गयीं। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने सुदामाको रोक लिया। कहा—'वत्स ! रुके रहो, मत जाओ, कहाँ जाओगे ?' तब मैंने उन राधाको समझाया और कहा—'सभी धैर्य रखें, यह सुदामा आधे क्षणमें ही शापका पालन करके पुनः लौट आयेगा।' 'सुदामन् ! तुम यहाँ अवश्य आ जाना'—यों कहकर मैंने किसी प्रकार राधाको शान्त किया। अखिल जगत्के रक्षक ब्रह्मन् ! गोलोकके आधे क्षणमें ही भूमण्डलपर एक मन्वन्तरका समय हो जाता है।

ब्रह्मन् ! इस प्रकार यह सब कुछ पूर्व-निश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण भाषाओंका पूर्ण ज्ञाता अपार बलशाली योगेश यह शङ्खचूड़ समयपर पुनः उस गोलोकमें ही चला जायगा। आपलोग मेरा यह त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें चलें। शंकर मेरे त्रिशूलसे उस राक्षसका संहार करें। दानव शङ्खचूड़ मेरे ही सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाले कवचोंको कण्ठमें सदा धारण किये रहता है। इसीलिये वह अखिल विश्व-विजयी है। ब्रह्मन् ! उसके कण्ठमें कवच रहते हुए कोई भी उसे मारनेमें सफल नहीं हो सकता। अतः मैं ही ब्राह्मणका वेष धारण करके कवचके लिये उससे याचना करूँगा। साथ ही जिस समय उसकी स्त्रीका सतीत्व नष्ट होगा; उसी समय उसकी मृत्यु होगी—यह भी मैंने उसको वर दे

रखा है। एतदर्थ उसकी पत्नीके उदरमें मैं वीर्य स्थापित करूँगा—मैंने यह निश्चित कर लिया है। वैसे 'तुलसी' मेरी चिरप्रिया है, इससे वस्तुतः मुझ सर्वात्माको कोई दोष भी नहीं होगा। उसी समय शङ्खचूड़की मृत्यु हो जायगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। तदनन्तर उस दानवकी वह पत्नी अपने उस शरीरको त्यागकर पुनः मेरी प्रिय पत्नी बन जायगी।

नारद ! इस प्रकार कहकर जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिने शंकरको त्रिशूल सौंप दिया। त्रिशूल लेकर रुद्र और ब्रह्मा सब देवताओंके साथ भारतवर्षको चल दिये। (अध्याय १९)

☆

# पुष्पदन्तका दूत बनकर शङ्खचूड़के पास जाना और शङ्खचूड़के द्वारा तुलसीके प्रति ज्ञानोपदेश

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! तदनन्तर ब्रह्मा दानवके संहार-कार्यमें शंकरको नियुक्त करके स्वयं उसी क्षण अपने स्थानपर चले गये। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। तब चन्द्रभागा नदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे जाकर देवताओंका अभ्युदय करनेके विचारसे महादेवजीने आसन जमा लिया। गन्धर्वराज चित्ररथ शंकरका बड़ा प्रेमी था। उन्होंने उसे दूत बनाकर तुरंत हर्षपूर्वक शङ्खचूड़के पास भेजा। उनकी आज्ञा पाकर चित्ररथ उसी क्षण शङ्खचूड़के नगरकी ओर चल दिया। दानवराजकी पुरी अमरावतीसे भी श्रेष्ठ थी। कुबेरका नगर उसके सामने तुच्छ था। उस नगरकी लम्बाई दस योजन थी और चौड़ाई पाँच योजन। स्फटिक मणिके समान रत्नोंसे वह बना था। नगरके चारों ओर वाहन थे। सात खाइयों और सात दुर्गोंसे वह सुरक्षित था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नोंद्वारा उसका निर्माण किया गया था। उसमें सैकड़ों सुन्दर सड़कें और मणिमय विचित्र वेदियाँ थीं। व्यापारकुशल पुरुषोंके द्वारा बनवाये हुए भवन और ऊँचे-ऊँचे महल चारों ओर सुशोभित थे, जिनमें नाना प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुएँ भरी थीं। सिन्दूरके समान लाल मणियोंद्वारा बने हुए असंख्य विचित्र, दिव्य एवं सुन्दर आश्रम उस नगरकी शोभा बढ़ाते थे।

मुने ! इस प्रकारके सुन्दर नगरमें जाकर चित्ररथने शङ्खचूड़का भवन देखा। वह नगरके बिलकुल मध्यभागमें था। नगरकी आकृति वलयके समान गोल थी। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो पूर्ण चन्द्रमण्डल हो। प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान चार परिखाएँ उसे सुरक्षित किये हुए थीं। शत्रुओंके लिये उस भवनमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था। परंतु हितैषी व्यक्ति बड़ी सुगमतासे उसमें जा सकते थे। अत्यन्त उच्च, गगनस्पर्शी तथा मणिसे निर्मित कंगूरेसे वह भवन सुशोभित था। बारह द्वारोंसे भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। प्रत्येक द्वारपर द्वारपाल थे। सर्वोत्तम मणियोंद्वारा निर्मित लाखों मन्दिर, बहुत-से सोपान तथा रत्नमय खम्भे थे। एक द्वारको देखनेके बाद पुष्पदन्तने दूसरे प्रधान द्वारको भी देखा। उस द्वारपर हाथमें त्रिशूल लिये एक पुरुष विराजमान था। उसके मुखपर हँसी छायी थी। उसकी पीली आँखें थीं। उसके शरीरका रंग ताँबेके सदृश लाल था। भय उत्पन्न करनेवाले उस द्वारपालसे आज्ञा पाकर पुष्पदन्त आगे बढ़ा और दूसरे द्वारको लाँघकर भीतर चला गया। यह दूत युद्धकी सूचना पहुँचानेवाला है—यह सुनकर कोई भी उसे रोकता नहीं था। इसके बाद पुष्पदन्त सबसे भीतर द्वारपर पहुँच गया। वहाँ द्वारपालसे अनुमति लेकर वह भीतर गया। वहाँ जाकर देखा, परम मनोहर शङ्खचूड़ राजाओंके मध्यमें सुवर्णके सिंहासनपर बैठा था। उस दिव्य सिंहासनमें सर्वोत्तम मणियाँ जड़ी थीं। उसके दण्डे रत्नके थे। रत्नोंद्वारा बने हुए श्रेष्ठ पुष्पोंसे उसकी निरन्तर शोभा होती थी। ऊपर सोनेका सुन्दर छत्र तना था। सफेद एवं चमकीले चँवर हाथमें लेकर पार्षद शङ्खचूड़की सेवामें संलग्न थे। सुन्दर वेष एवं रत्नमय भूषणोंसे आभूषित होनेके कारण वह परम

रमणीय जान पड़ता था। मुने! उसके गलेमें माला थी। शरीरपर चन्दनका अनुलेपन था। वह दो महीन उत्तम वस्त्र पहने हुए था। सुन्दर वेषवाला वह दानव उस समय असंख्य प्रसिद्ध दानवोंसे घिरा था। असंख्य अन्य दानव हाथोंमें अस्त्र लिये इधर-उधर घूम रहे थे। इस प्रकारके शङ्खचूड़को देखकर पुष्पदन्त आश्चर्यमें पड़ गया। तदनन्तर उसने शंकरके कथनानुसार युद्ध-विषयक संदेश सुनाना आरम्भ किया।

पुष्पदन्तने कहा—राजेन्द्र! प्रभो! मैं शंकरका सेवक हूँ। मेरा नाम पुष्पदन्त है। शंकरकी कही बातें ही मैं आपसे कह रहा हूँ, सुननेकी कृपा करें। अब आप देवताओंका राज्य तथा उनका अधिकार लौटा दें; क्योंकि वे देवेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन प्रभुने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशके लिये शंकरको भेजा है। त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव इस समय पुष्पभद्रा नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। आप या तो देवताओंका राज्य लौटा दें अथवा युद्धका निश्चय कर लें। मुझे यह भी बता दें कि मैं भगवान् शंकरके पास जाकर उनको क्या उत्तर दूँ।'

नारद! दूतके रूपमें गये हुए पुष्पदन्तकी बात सुनकर शङ्खचूड़के मुखपर हँसी छा गयी। उसने कहा—'दूत! मैं कल प्रातःकाल चलूँगा, तुम चलो।' तब पुष्पदन्त वटके नीचे पधारे हुए भगवान् शंकरके पास लौट गया और उनसे शङ्खचूड़की बात जो स्वयं उसने अपने मुखसे कही थी, कह सुनायी। इतनेमें ही योजनानुसार कार्तिकेय शंकरके समीप आ पहुँचे। वीरभद्र, नन्दीश्वर, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, पिङ्गलाक्ष, बाणासुर, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाख्य, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालकण्ठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम, आठों भैरव, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, इन्द्र, बारहों सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशान और प्रतापी कामदेव आदि भी आ गये।

साथ ही तीखे दाढ़वाली उग्रदंष्ट्रा, कोटरा, कैटभी तथा स्वयं आठ भुजासे सुशोभित भगवती भद्रकाली भी भयंकर रूप धारण करके वहाँ पधार गयीं। वे देवी अतिशय श्रेष्ठ रत्नद्वारा निर्मित विमानपर बैठी थीं। उनका विग्रह लाल रंगके वस्त्रसे सुशोभित था। उनके गलेमें लाल पुष्पोंकी माला थी। सभी अङ्ग लाल चन्दनसे अनुलिप्त थे। नाचना, हँसना, हर्षके उल्लासमें भरकर मीठे स्वरोंमें गाना, भक्तोंको अभय प्रदान करना तथा शत्रुओंको डराना उन अभयस्वरूपिणी भगवती भद्रकालीका सहज गुण बन गया था। उनके मुखमें लम्बी बड़ी विकराल जीभ लपलपा रही थी। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गम्भीर खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजनमें फैली हुई शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, पाश, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्व, गरुड़, ब्रह्म, पर्जन्य एवं पशुपति शंकरके अस्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायुका दण्ड, सम्मोहन-अस्त्र, अथर्ववेदोक्त दिव्य अस्त्र तथा दिव्य श्रेष्ठ शतक अस्त्रको धारण करके भगवती

भद्रकाली अनन्त योगिनियोंके साथ वहाँ आकर विराज गयीं! उनके साथमें अत्यन्त भयंकर असंख्य डाकिनियोंका यूथ भी सुशोभित था। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, राक्षस, यक्ष और किन्नर भी सहयोग देनेके लिये आ पहुँचे। सबको साथ लेकर स्वामी कार्तिकेयने अपने पिता चन्द्रशेखर शिवको प्रणाम किया और सहायता करनेके विचारसे उनकी आज्ञा लेकर पास बैठ गये।

इधर दूतके चले जानेपर प्रतापी शङ्खचूड़ अन्तःपुरमें गया और उसने अपनी पत्नी तुलसीसे युद्धसम्बन्धी बातें बतायीं। सुनते ही तुलसीके होठ और तालु सूख गये। उसका हृदय संतप्त हो उठा। फिर परमसाध्वी तुलसी मधुर वाणीमें कहने लगी।

तुलसीने कहा—'प्राणबन्धो ! नाथ ! आप मेरे प्राणोंके अधिष्ठाता देव हैं। आप विराजिये। मैं अपने नेत्रोंसे कुछ समयतक तो आदरपूर्वक आपके दर्शन कर लूँ। मेरे प्राण फड़फड़ा रहे हैं। आज मैंने रातके अन्तिम क्षणमें एक बुरा स्वप्न देखा है।'

महाराज शङ्खचूड़ ज्ञानी पुरुष था। तुलसीकी बात सुनकर उसने भोजन किया। जल पिया। फिर अवसर पाकर उसने सत्य, हितकर एवं यथार्थ वचन तुलसीसे कहे।

शङ्खचूड़ बोला—प्रिये ! कर्मभोगका सारा निबन्ध कालके सूत्रमें बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और मङ्गल—सभी कालके अधीन हैं। समयानुसार वृक्ष उगते, उनपर शाखाएँ फैलतीं, पुष्प लगते और क्रमशः वे फलसे लद जाते हैं। फिर काल ही उन फलोंको पकाता भी है। बादमें कालके प्रभावसे फूल-फलकर वे सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट भी हो जाते हैं। सुन्दरी ! समयपर विश्व उत्पन्न होता है और समयानुसार उसकी अन्तिम घड़ी आ जाती है। कालकी महिमा स्वीकार करके ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु पालनमें तत्पर रहते हैं। रुद्रका संहारकार्य भी कालके संकेतपर ही निर्भर है। सभी क्रमशः कालानुसार अपने व्यापारमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि प्रधान देवताओंकी भी अधिष्ठात्री देवी भगवती प्रकृति हैं। उन्हींको स्रष्टा, पाता और संहर्ता कहते हैं। केवल उन्हींमें कालको नचानेकी योग्यता है। उन्हींको परब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। वे ही समयपर स्वेच्छापूर्वक अपनेसे अभिन्न प्रकृतिको आगे करके विश्वमें रहनेवाले सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंको रचती हैं। सर्वेश, सर्वरूप, सर्वात्मा और परमेश्वर उनकी उपाधि हैं। जो जनसे जनकी सृष्टि करते, जनसे जनकी रक्षा करते तथा जनसे जनका संहार करते हैं, उन्हीं परमप्रभुकी अब तुम उपासना करो। उन्हींकी आज्ञासे शीघ्रगामी पवन प्रवाहित होते हैं, सूर्य आकाशमें तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वर्षा करते हैं, मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है, अग्नि यथावसर दाह उत्पन्न करते हैं तथा शीतल चन्द्रमा आकाश-मण्डलमें चक्कर लगाते हैं। प्रिये ! जो मृत्युकी मृत्यु, कालके काल, यमराजके श्रेष्ठ शासक, ब्रह्माके स्वामी, माताकी माता, जगत्‌की जननी तथा संहार करनेवालेके भी संहारकर्ता हैं, उन परमप्रभु भगवान् श्रीहरिकी शरणमें तुम जाओ। यहाँ कौन बन्धु है या किनके कौन हैं? कान्ते ! जो सबके बन्धु हैं, तुम उन्हींकी उपासना करो। ब्रह्माने हम दोनोंको एक रस्सीमें बाँध दिया। इससे तुम्हारे साथ

जगत्‌के व्यवहारमें मैं फँस गया। पुनः विलग हो जाना विधिकी इच्छापर ही निर्भर है। शोक एवं विपत्ति सामने आनेपर अज्ञानी व्यक्ति घबराता है न कि पण्डित पुरुष। कालचक्रके क्रमसे सुख और दुःख एकके बाद एक आते-जाते ही रहते हैं। अब तुम्हें निश्चय ही वे सर्वेश भगवान् नारायण साक्षात् पतिरूपमें प्राप्त होंगे, जिनके लिये बदरी-आश्रममें रहकर तुम तपस्या कर चुकी हो। तपस्या तथा ब्रह्माके वरप्रदानसे तुम्हें पानेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था। कामिनी! उस समय तुम भगवान् श्रीहरिके लिये तप कर रही थी। अतः अब उन्हींको प्राप्त करोगी। गोलोकमें वृन्दावन है। वहीं भगवान् गोविन्द तुम्हें अपनी प्राणप्रिया बनायेंगे। मैं भी इस दानवी शरीरका परित्याग करके उसी दिव्य-लोकमें चलूँगा। वहीं तुम मुझे देख सकोगी और मैं तुम्हें। इस समय जो मैं परम दुर्लभ भारतवर्षमें आया हूँ, इसमें कारण केवल श्रीराधाजीका शाप है? प्रिये! सुनो, मेरा गोलोकमें पुनः जाना सर्वथा निश्चित है। अतः शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। कान्ते! तुम भी अब शीघ्र ही इस शरीरका परित्याग करके दिव्य रूप धारणकर श्रीहरिको पतिरूपसे प्राप्त कर लोगी। अतः तनिक भी घबरानेकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार शङ्खचूड़ तुलसीके साथ सुन्दर बातचीत कर रहा था। इतनेमें सायंकालका समय हो गया। रत्नमय भवनमें पुष्प और चन्दनसे चर्चित श्रेष्ठ शय्या बिछी थी। वह उसपर सो गया और भाँति-भाँतिके वैभवोंकी बात उसके मनमें स्फुरित होने लगी। उसके भवनमें रत्नका दीपक जल रहा था। परम सुन्दरी स्त्रियोंमें रत्न तुलसी सेवामें उपस्थित थी। ज्ञानी शङ्खचूड़ने पुनः तुलसीको दिव्य ज्ञान प्रदर्शित करते हुए समझाया। साथ ही शङ्खचूड़ने तुलसीको सम्पूर्ण शोकोंको दूर करनेवाले उस उत्तम ज्ञानको बतलाया, जो दिव्य भाण्डीरवनमें भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उसे प्राप्त हुआ था। ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानको पाकर उस देवीका मुख प्रसन्नतासे भर गया। समस्त जगत् नश्वर है—यह मानकर वह हर्षपूर्वक हास-विलास करने लगी। फिर दोनों सुखपूर्वक शयन करने लगे। (अध्याय २०)

☆

## शङ्खचूड़का पुष्पभद्रा नदीके तटपर जाना, वहाँ भगवान् शंकरका दर्शन तथा उनसे विशद वार्तालाप

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! शङ्खचूड़ श्रीकृष्णका भक्त था। वह मनमें भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममुहूर्तमें ही अपनी पुष्पमयी शय्यासे उठ गया। उसने स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्याग दिये। धुले हुए दो वस्त्रोंको पहनकर उज्ज्वल तिलक कर लिया; फिर इष्टदेवताके वन्दन आदि प्रतिदिनके आवश्यक कर्त्तव्योंको पूरा किया। दही, घृत, मधु और लाजा आदि माङ्गलिक वस्तुएँ देखीं। नारद! प्रतिदिनकी भाँति उसने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको उत्तम रत्न, मणि, स्वर्ण और वस्त्र दान किये। यात्रा मङ्गलमयी होनेके लिये उसने अमूल्य रत्न तथा कुछ मोती, मणि एवं हीरे भी अपने गुरुदेव ब्राह्मणकी सेवामें समर्पण किये। वह अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ हाथी, घोड़े और सर्वोत्तम सुन्दर धन दरिद्र ब्राह्मणोंको खुले हाथों

बाँटने लगा। उस समय हजारों वस्तुपूर्ण भवन, लाखों नगर तथा असंख्य गाँव शङ्खचूड़ने दानरूपमें ब्राह्मणोंको दिये। इसके बाद उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी प्रेयसी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा एवं सेवक-वर्ग, कोष तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन सौंप दिये। उसने स्वयं कवच पहन लिया। हाथमें धनुष और बाण ले लिये। सब सैनिकोंको एकत्र किया। तीन लाख घोड़े और एक लाख उत्तम श्रेणीके हाथी उपस्थित हुए। दस हजार रथ तथा तीन-तीन करोड़ धनुर्धारी, कवचधारी और त्रिशूलधारी वीर उसकी सेनाके अङ्ग बने।

नारद! इस प्रकार दानवेश्वर शङ्खचूड़ने अपरिमित सेना सजा ली। युद्धशास्त्रके पारगामी एक महारथी वीरको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया। महारथी उसे समझना चाहिये, जो रथियोंमें श्रेष्ठ हो। राजा शङ्खचूड़ने उस महारथीको अगणित अक्षौहिणी सेनापर अधिकार प्रदान कर दिया। उस सेनाध्यक्षमें ऐसी योग्यता थी कि स्वयं तीस अक्षौहिणी सेनासे अपनी सेनाको बचा सकता था। तत्पश्चात् शङ्खचूड़ मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता हुआ बाहर निकला। उत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर सवार हुआ और गुरुवरोंको आगे करके भगवान् शंकरकी सेवामें चल दिया।

नारद! पुष्पभद्रा नदीके तटपर एक सुन्दर अक्षयवट है। वहीं सिद्धोंके बहुत-से आश्रम हैं। उस स्थानको सिद्धक्षेत्र कहा गया है। यह पवित्र स्थान भारतवर्षमें है। इसे कपिल मुनिकी तपोभूमि कहते हैं। यह पश्चिमी समुद्रसे पूर्व तथा मलयपर्वतसे पश्चिममें है, श्रीशैलपर्वतसे उत्तर तथा गन्धमादनसे दक्षिणभागमें है। इसकी चौड़ाई पाँच योजन है और लम्बाई पाँच सौ योजन। वहाँ भारतवर्षमें एक पुण्यप्रदा नदी बहती है। उसका जल स्वच्छ स्फटिक मणिके समान उद्भासित होता है। वह जलसे कभी खाली नहीं होती। उसे पुष्पभद्रा कहते हैं। वह नदी समुद्रकी पत्नीरूपसे विराजमान होकर सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। उसका उद्गम-स्थान हिमालय है। कुछ दूर आगे आनेपर शरावती नामकी नदी उसमें मिल गयी है। गोमती नदी उसकी बायीं ओर बहती है। अन्तमें पश्चिमी समुद्रसे उसका संगम हो गया है। वहाँ पहुँचकर शङ्खचूड़ने भगवान् शंकरको देखा।

उस समय भगवान् शंकर वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान उद्भासित हो रहा था। वे योगासनसे मुद्रा लगाकर बैठे थे। मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होकर वे इस प्रकार प्रदीप्त हो रहे थे, मानो शुद्ध स्फटिकमणि चमक रही हो। उनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश थे तथा शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर शोभा पा रहा था; वस्तुतः गौरीके प्रिय पति भगवान् शंकर परम सुन्दर हैं। उनका शान्त विग्रह भक्तके मृत्यु-भयको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ है। तपस्याका फल देना तथा अखिल सम्पत्तियोंको भरपूर रखना उनका स्वाभाविक गुण है। वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उनके मुखपर कभी उदासी नहीं आती। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये वे सदा चिन्तित रहते हैं। उन्हें विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर और विश्वसंहारक कहा जाता है। वे कारणोंके कारण तथा नरकसे उद्धार करनेमें परम कुशल हैं। वे

सनातन प्रभु ज्ञान प्रदान करनेवाले, ज्ञानके बीज तथा ज्ञानानन्द हैं। दानवराज शङ्खचूड़ उन्हें देखकर विमानसे उतर पड़ा। फिर सबके साथ भगवान् शंकरको उसने सिर झुकाकर भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। उस समय शंकरके वाम-भागमें भद्रकाली विराजित थीं और सामने स्वामी कार्तिकेय थे। इन तीनों महानुभावोंने शङ्खचूड़को आशीर्वाद दिया। उसे आये हुए देखकर नन्दीश्वर प्रभृति सब-के-सब उठकर

खड़े हो गये। तदनन्तर सबमें परस्पर सामयिक बातें आरम्भ हो गयीं। उनसे बातचीत करनेके पश्चात् राजा शङ्खचूड़ भगवान् शंकरके समीप बैठ गया। तब प्रसन्नात्मा भगवान् महादेव उससे कहने लगे।

महादेवजीने कहा—राजन्! ब्रह्मा अखिल जगत्के रचयिता हैं। उन धर्मज्ञ पुरुषके पुत्रका नाम धर्म है। धर्मके पुत्र मरीचि हैं। इनमें श्रीहरिके प्रति अपार श्रद्धा तथा धर्मके प्रति निष्ठा है। मरीचिने धर्मात्मा कश्यपको पुत्ररूपसे प्राप्त किया है। प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ इन्हें सौंपी हैं। उन्हीं कन्याओंमें उस वंशकी वृद्धि करनेवाली परम साध्वी एक दनु है। दनुके चालीस पुत्र हैं, जिन्हें परम तेजस्वी दानव कहा जाता है। उन पुत्रोंमें बल एवं पराक्रमसे युक्त एक पुत्रका नाम विप्रचित्ति है। विप्रचित्तिके पुत्र दम्भ हैं। ये दम्भ धर्मात्मा, जितेन्द्रिय एवं वैष्णव पुरुष हैं। इन्होंने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर भगवान् श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें लाख वर्षतक जप किया था; तब तुम कृष्णपरायण श्रेष्ठ पुरुष उन्हें पुत्ररूपसे प्राप्त हुए हो। पूर्वजन्ममें तुम भगवान् श्रीकृष्णके पार्षद एक महान् धर्मात्मा गोप थे। गोपोंमें तुम्हारी महती प्रतिष्ठा थी। इस समय तुम राधिकाके शापसे भारतवर्षमें आकर दानवेश्वर बने हो। वैष्णव पुरुष ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारी वस्तुओंको तुच्छ मानते हैं। उन्हें केवल भगवान् श्रीहरिकी सेवा ही अभीष्ट है। सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंतकको वे दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। उनके मनमें ब्रह्मत्व अथवा अमरत्वके प्रति कोई आस्था नहीं है। इन्द्रत्व या मनुष्यत्वको तो वे किसी भी गणनामें स्थान नहीं देते। तुम वही परम वैष्णव श्रीकृष्ण-भक्त पुरुष हो; फिर देवताओंके राज्यविषयक तुच्छ पदार्थमें क्यों तुम्हारी बुद्धि चक्कर काट रही है? राजन्! तुम देवताओंका राज्य वापस करके मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यमें सुखसे रहो और देवता अपने स्थानपर रहें। इस विरोधसे कोई प्रयोजन नहीं; क्योंकि सब-के-सब एक कश्यपजीके ही तो वंश हैं। ब्रह्महत्या आदिसे उत्पन्न हुए जितने पाप हैं, उनकी यदि जातिद्रोह-सम्बन्धी पापोंसे तुलना की जाय तो वे सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते।

राजेन्द्र ! यदि तुम अपनी सम्पत्तिकी हानि समझते हो तो भला सोचो तो कौन ऐसे पुरुष हैं, जिनकी सदा एक-सी स्थिति बनी रह सकी है। प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्मा भी अन्तर्धान हो जाते हैं। परब्रह्मके प्रभावसे फिर उनका प्राकट्य हो जाता है। उस समय उनकी स्मृति लुप्त-सी रहती है। ईश्वरकी इच्छासे तपस्या करके वे परम ज्ञानी बन जाते हैं—यह निश्चित है। फिर वे ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं। अतएव उन्हें स्रष्टाकी उपाधि मिलती है। राजन् ! सत्ययुगमें कोई असत्य भाषण नहीं करते। इसलिये उस युगमें धर्म अपने परिपूर्णतम अंशोंसे सदा विराजमान रहता है। वही धर्म त्रेतामें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा जाता है। पूर्वके क्रमसे एक-एक अंश कम होता रहता है। अमावस्याके चन्द्रमाकी भाँति कलिके अन्तमें धर्मकी कला केवल नाममात्र रह जाती है। ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा फिर शिशिर ऋतुमें नहीं रह सकता। एक दिनमें ही प्रातः, संध्या और मध्याह्नके अवसरपर सूर्य समान ताप पहुँचानेमें असमर्थ होते हैं। कालके क्रमसे उदय होकर वे बालसूर्यकी उपाधि धारण करते हैं; तत्पश्चात् उनका रूप अत्यन्त प्रचण्ड हो जाता है। समय आनेपर फिर वे अस्त भी हो जाते हैं। कभी तो काल दिनको ही ऐसा दुर्दिन बना देता है कि उन्हें दिनमें ही छिप जाना पड़ता है। राहुसे ग्रस्त होनेपर सूर्य काँपने लगते हैं, पुनः थोड़ी देरके बाद प्रसन्नता आ जाती है।

राजन् ! पूर्णिमाके अवसरपर चन्द्रमा जैसे अपनी सभी कलाओंसे युक्त रहते हैं वैसे सदा नहीं रह सकते। प्रतिदिन उनकी कलामें ह्रास होता रहता है। फिर वे पुष्ट भी हो जाते हैं। अमावस्यासे इनके अंशमें एक-एक कलाकी प्रतिदिन वृद्धि होती है। शुक्ल पक्षमें वे शोभायुक्त रहते और कृष्ण पक्षमें पुनः म्लान हो जाते हैं। ग्रहणके अवसरपर उनकी शोभा नष्ट हो जाती है तथा दुर्दिन आनेपर अर्थात् मेघाच्छन्न आकाशमें वे नहीं चमक पाते। कालभेदके अनुसार चन्द्रमा किसी समय शुक्ल तो किसी समय कृष्ण हुआ करते हैं। बलि सुतललोकके इन्द्र होंगे। यद्यपि इस समय इनका राज्य छिन गया है। समयपर विश्व नष्ट होते हैं और कालके प्रभावसे पुनः उनकी उत्पत्ति भी होती है। चराचर अखिल जगत् कालकी प्रेरणाके अनुसार 'सृष्टि' और 'संहार' शब्दको सार्थक करते हैं। केवल परब्रह्म परमात्मासे ही कालकी समता की जा सकती है। कारण, वे ही परमेश्वर हैं। उन्हींकी कृपासे मुझे भी 'मृत्युञ्जय' होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतएव जिसे कोई नहीं देख सकता, उस प्राकृत प्रलयको मैं बार-बार देखता हूँ। वे परमेश्वर ही प्रकृतिरूप हैं और उन्हींको पुरुष भी कहा जाता है। वे ही आत्मा और वे ही जीव हैं। वे नाना प्रकारके रूप धारण करके सदा कार्यमें संलग्न रहते हैं। कार्यके अनुसार उनमें नाम और गुणकी प्रसिद्धि होती है। उन्हीं परमेश्वरसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता मैं महादेव प्रादुर्भूत हुए हैं। उन्हींकी कृपासे हम सब लोग जगत्के शासक बने हैं। राजन् ! इस समय मैं प्रलयाग्निके समान भयंकर रुद्रको संहारके कार्यमें नियुक्त करके स्वयं उन परमेश्वरके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन करता हूँ। इसीसे मृत्यु मुझपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। इस ज्ञानकी महिमासे

मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मृत्यु भी मृत्युके भयसे इस प्रकार डरती है, जैसे गरुड़से सर्प डरते हैं।

नारद ! उस समय सर्वेश भगवान् शंकर सभाके मध्य-भागमें विराजमान थे। पूरी तत्परताके साथ सम्पूर्ण भावोंको प्रदर्शित करते हुए शङ्खचूड़से उपर्युक्त बातें कहकर वे चुप हो गये। तब दानवराजने उनके वचन सुनकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। साथ ही मधुर वाणीमें विनयपूर्वक अपना भाषण आरम्भ किया।

शङ्खचूड़ने कहा—भगवन् ! आपने जो कुछ कहा है, उसे कभी अन्यथा नहीं माना जा सकता; परंतु कुछ मेरी भी यथार्थ प्रार्थना है, उसे सुननेकी कृपा करें। अभी आपने जाति-द्रोहके विषयमें जो महान् पाप बतलाया है, सो ठीक है। मैं इस समस्त बलिके ऐश्वर्यको पातालसे उठाकर लाया हूँ। अतः इसपर मेरा ही पूर्ण अधिकार है। उस समय वहाँ भगवान् श्रीहरि गदा लेकर पहरा दे रहे थे। अतः मैं बलिको नहीं ला सका। परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिस्वरूप हैं। यह विश्व उनके मनोरञ्जनकी सामग्री है। वे जिस समय जिसको जो सम्पत्ति प्रदान करते हैं, वह उसीकी सम्पत्ति मानी जा सकती है। इस वैभवके विषयमें देवताओं और दानवोंका विवाद सदासे चला आ रहा है। कभी इसका अन्त नहीं होता। समयानुसार क्रमशः कभी वे जीतते हैं और कभी हारते हैं। वैसे ही हम भी समयानुसार जीतते-हारते हैं। इसलिये हम दोनों पक्षके विरोधमें आपका आना संगत नहीं जान पड़ता। आप तो हम दोनोंके एक समान सम्बन्धी, बन्धु, ईश्वर एवं परमात्मा ठहरे। यदि इस समय हमारे साथ आपका युद्ध ठन जाय तो यह आपके लिये लज्जाकी बात होगी। हम विजयी होंगे तो हमारी कीर्ति अधिक फैल जायगी और हम पराजित होंगे तो हमारी कीर्तिमें बहुत थोड़ा धब्बा लगेगा।

मुने ! शङ्खचूड़के ये वचन सुनकर भगवान् त्रिलोचन हँसने लगे। तत्पश्चात् उस दानवेश्वरका समुचित उत्तर देना उन्होंने आरम्भ किया।

महादेवजी बोले—राजन् ! तुमलोग भी तो ब्रह्माके ही वंशज हो। फिर तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे क्या बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर अपकीर्ति ही क्या होगी ? इसके पहले मधु और कैटभके साथ श्रीहरिका भी तो युद्ध हो चुका है !

राजन् ! एक बार वे हिरण्यकशिपुसे लड़े थे और पुनः दूसरी बार हिरण्याक्षसे। स्वयं मैं भी इससे पूर्व त्रिपुर नामक दैत्यके साथ युद्ध कर सका हूँ। यही नहीं, किंतु प्राचीन समयमें जो सर्वेश्वरी एवं प्रकृति नामसे प्रसिद्ध भगवती जगदम्बा हैं, जिनका शुम्भ आदि असुरोंके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ था। तुम तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्णके अंश और उनके पार्षद हो। जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारे-जैसे बलवान् नहीं थे। फिर राजन् ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे क्या लज्जा है ? देवता भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये हैं। तभी उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। अतः देवताओंका राज्य तुम लौटा दो। बस, मेरे कहनेका निश्चित अभिप्राय यही है अथवा मेरे साथ प्रसन्नतासे लड़नेके लिये तैयार हो जाओ। अब अधिक शब्दोंके अपव्यय करनेका क्या प्रयोजन है।

नारद ! जब इस प्रकार कहकर भगवान् शंकर चुप हो गये, तब शङ्खचूड़ भी अपने मन्त्रियोंके साथ तुरंत वहाँसे उठकर जानेको तैयार हो गया। (अध्याय २१)

☆

## भगवान् शंकर और शङ्खचूड़के पक्षोंमें घोर युद्ध, शंकर और शङ्खचूड़का युद्ध, शंकरके छोड़े हुए त्रिशूलसे शङ्खचूड़का भस्म होना और सुदामा गोपके स्वरूपमें विमानद्वारा गोलोक पधारना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर दानवराज प्रतापी शङ्खचूड़ने मस्तक झुकाकर महादेवजीको प्रणाम किया और मन्त्रियोंके साथ उठकर तुरंत वह रथपर सवार हो गया। उसी क्षण भगवान् शंकरने अपनी सेना और देवताओंको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दे दी। उधर सेनासहित शङ्खचूड़ भी युद्धके लिये तैयार हो गया। स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ और भास्कर विप्रचित्तिके साथ लड़ने लगे। दम्भके साथ चन्द्रमाकी, कालस्वके साथ कालकी, गोकर्णके साथ अग्निदेवकी, कालकेयके साथ कुबेरकी, मयके साथ विश्वकर्माकी, भयंकरके साथ मृत्युकी, संहारके साथ यमकी, विकङ्कके साथ वरुणकी, चञ्चलके साथ समीरणकी, धृतपृष्ठके साथ बुधकी, रक्ताक्षके साथ शनैश्चरकी, रत्नसारके साथ जयन्तकी, वर्चस्वीगणोंके साथ वसुगणोंकी, दीप्तिमान्के साथ अश्विनीकुमारोंकी, धूम्रके साथ नलकूबरकी, धुरन्धरके साथ धर्मकी, उषाक्षके साथ मङ्गलकी, शोभाकरके साथ भानुकी, पिठरके साथ मन्मथकी तथा गोधामुख, चूर्ण, खड्ग, ध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम, नान्दी, विश्व और पलाश प्रभृति दानवोंके साथ आदित्योंकी, ग्यारह भयंकर राक्षसोंके साथ ग्यारह रुद्रोंकी, उग्रचण्डादिके साथ महामारीकी तथा दानवियोंके साथ सम्पूर्ण नन्दीश्वरोंकी अत्यन्त भयंकर लड़ाई होने लगी। वह महान् भयंकर युद्ध प्रलयकालका सामना कर रहा था। भगवान् शंकर स्वामी कार्तिकेयके साथ वटवृक्षके नीचे बैठे थे। मुने! इधर दोनों पक्षोंके योद्धाओंमें भयानक युद्ध हो रहा था। वहीं रत्नमय भूषणोंसे भूषित शङ्खचूड़ एक रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान था। अगणित दानव उसके साथ थे।

युद्धमें शंकरदलके बहुत-से वीरोंको दानवोंने परास्त कर दिया; सम्पूर्ण देवता डरकर भाग चले; उन सबके शरीर छिद गये थे। उस अवसरपर स्वामी कार्तिकेयने कुपित होकर देवताओंको अभय प्रदान किया। अपने तेजसे गणोंने बलकी वृद्धि की। तदनन्तर वे स्वयं अकेले ही दानवोंके साथ लड़ने लगे। उन्होंने समराङ्गणमें सौ अक्षौहिणी सैनिकोंको समाप्त कर दिया। बहुत-से असुर कमलके समान नेत्र-वाली भगवती भद्रकालीके भीषण आघातसे भूमिशायी हो गये। तदनन्तर युद्धमें और भी भीषणता आ गयी। दानवसेना जब घबरा उठी, तब स्वयं शङ्खचूड़ने विमानपर चढ़कर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। उसने इस प्रकार बाण बरसाये, मानो प्रचण्ड मेघ जलधारा गिरा रहे हों। जब चारों ओर महान् भयंकर अन्धकार छा गया, तब उसने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। अब तो सम्पूर्ण देवताओंमें भगदड़ मच गयी। कोई भी नहीं रुक सके। अब युद्धके मुहानेपर केवल एक स्वामी कार्तिकेय ही डटे रहे। तब शङ्खचूड़के प्रयत्नसे बहुत-से पर्वत, सर्प, पत्थर तथा वृक्ष उनपर गिरने लगे। इनकी ऐसी भयङ्कर वृष्टि होने लगी, जिसे रोकनेमें कोई समर्थ नहीं था। फिर उस भयंकर दानवने स्कन्दके दुर्वह धनुषको,

दिव्य रथको तथा रथके बैठकको छिन्न-भिन्न कर दिया। उसके दिव्यास्त्रसे मयूरके सभी अङ्ग जर्जरित हो गये। फिर उसने सूर्यके समान चमकनेवाली प्राणघातिनी शक्ति स्वामी कार्तिकेयकी छातीपर चला दी। उस शक्तिके लगते ही वे क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये। फिर चेत होनेपर उन्होंने अपना दिव्य धनुष हाथमें उठा लिया। उन्हें वह धनुष पूर्वकालमें भगवान् विष्णुकी कृपासे प्राप्त हुआ था। उनके रथकी रचना महान् अमूल्य उपकरणोंसे हुई थी। उसी रथपर शस्त्र और अस्त्रको लेकर वे पुनः बैठ गये और उन्होंने अत्यन्त उग्र युद्ध प्रारम्भ कर दिया। बड़ा भीषण युद्ध हुआ; परंतु शङ्खचूड़ पराजित नहीं किया जा सका। शङ्खचूड़ बड़ा मायावी था। उसने मायाका आश्रय लेकर बाणोंका जाल फैला दिया। नारद ! उस समय समराङ्गणमें उसके बाणजालसे स्वामी कार्तिकेय ढक-से गये। दानवराजके पास कहीं न अटकनेवाली एक विचित्र शक्ति थी। सैकड़ों सूर्योंके समान उसका प्रकाश था। प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके सदृश उसकी आकृति थी। वह ऐसी उज्ज्वल थी, मानो प्रज्वलित अग्निका समूह हो। विष्णु-तेजसे आवृत ऐसी शक्तिको उसने रोषमें भरकर उठाया और बड़े वेगसे स्वामी कार्तिकेयके ऊपर उसे चला दिया। उस शक्तिके आघातसे वे मूर्च्छित हो गये। तब भद्रकाली कार्तिकेयको अपनी गोदमें उठाकर भगवान् शंकरके पास ले गयीं। उन्होंने अपने ज्ञानके प्रभावसे उन्हें लीलापूर्वक ही जीवित कर दिया। साथ ही असीम शक्ति भी प्रदान की। तब प्रतापी कार्तिकेय उठ गये। उनकी रक्षामें तत्पर जो भद्रकाली थीं, वे पुनः युद्धभूमिके लिये प्रस्थित हो गयीं। नन्दीश्वर प्रभृति जितने वीर थे, उन्होंने भद्रकालीका अनुगमन किया।

भद्रकालीको समराङ्गणमें उपस्थित देखकर शङ्खचूड़ भी बहुत शीघ्र वहाँ आ गया। दानव अत्यन्त डर रहे थे। उन्हें उसने अभय प्रदान किया। तब कालीने शङ्खचूड़पर प्रलयकालीन अग्निशिखाके सदृश प्रकाशमान अग्निबाण चलाया; परंतु दानवने हँसते-हँसते पार्जन्यास्त्रसे उसे निवारण कर दिया। इसी प्रकार कालीके वारुणास्त्र और माहेश्वरास्त्रका भी दानवराजने क्रमशः गान्धर्वास्त्र और वैष्णवास्त्रसे निवारण कर दिया। इसके बाद कालीका मन्त्रपूर्वक चलाया हुआ नारायणास्त्र पहुँचा। उसे देखते ही शङ्खचूड़ने रथसे उतरकर दोनों हाथ जोड़ लिये। वह नारायणास्त्र ऐसा प्रदीप्त था; मानो प्रलयकालीन अग्निकी शिखा हो; परंतु सत्कृत होकर वह ऊपरको उठ गया और शङ्खचूड़ भक्तिपूर्वक दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर उसे प्रणाम करने लगा। तदनन्तर देवीका मन्त्रपूर्वक प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र चला, पर वह दानवराजके ब्रह्मास्त्रसे शमित हो गया। तब देवीने मन्त्रोंका उच्चारण करके एक दिव्य अस्त्र और चलाया। दानवराजने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसकी भी शक्ति नष्ट कर दी। तब देवीने मन्त्रसे पवित्र किये हुए पाशुपत-अस्त्रको हाथमें उठा लिया और उसे चलाना ही चाहती थीं कि इसी बीच यह स्पष्ट आकाशवाणी हुई—'यह राजा एक महान् पुरुष है और इसकी पत्नी परम साध्वी है। पाशुपत-अस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं कि जो इसे मार सके। जबतक यह अपने गलेमें भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका कवच धारण किये रहेगा और जबतक इसकी पत्नी अपने सतीत्वकी रक्षा करती रहेगी,

तबतक इसके समीप जरा और मृत्यु अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती—यह ब्रह्माका वचन है।'

इस आकाशवाणीको सुनकर भगवती भद्रकालीने शस्त्र चलाना बंद कर दिया। अब वे क्षुधातुर होकर करोड़ों दानवोंको लीलापूर्वक निगलने लगीं। भयंकर वेषवाली वे देवी शङ्खचूड़को खा जानेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर झपटीं। तब दानवने अपने अत्यन्त तेजस्वी दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया। भद्रकाली अपनी सहयोगिनी योगिनियोंके साथ भाँति-भाँतिसे दैत्यदलका विनाश करने लगीं। उन्होंने दानवराज शङ्खचूड़को भी बड़ी चोट पहुँचायी, पर वे दानवराजका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकीं। तब वे भगवान् शंकरके पास चली गयीं और उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्ततक क्रमशः युद्ध-सम्बन्धी सभी बातें भगवान् शंकरको बतलायीं। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान् हँसने लगे।

भद्रकालीने यह भी कहा—'अब भी रणभूमिमें लगभग एक लाख प्रधान दानव बचे हुए हैं। मैं उन्हें खा रही थी, उस समय जो मुखसे निकल गये, वे ही बच रहे हैं। फिर जब मैं संग्राममें दानवराज शङ्खचूड़पर पाशुपतास्त्र छोड़नेको तैयार हुई और जब आकाशवाणी हुई कि यह राजा तुमसे अवध्य है, तबसे महान् ज्ञानी एवं असीम बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न उस दानवराजने मुझपर अस्त्र छोड़ना बंद कर दिया। वह केवल मेरे छोड़े हुए बाणोंको काट भर देता था!

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भगवान् शिव तत्त्व जाननेमें परम प्रवीण हैं। भद्रकालीद्वारा युद्धकी सारी बातें सुनकर वे स्वयं अपने गणोंके साथ संग्राममें पहुँच गये। उन्हें देखकर शङ्खचूड़ विमानसे उतर गया और उसने परम भक्तिके साथ पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया। यों

भक्तिविनम्र होकर प्रणाम करनेके पश्चात् वह तुरंत रथपर सवार हो गया और भगवान् शिवके साथ युद्ध करने लगा। ब्रह्मन्! उस समय शिव और शङ्खचूड़में बहुत लम्बे कालतक युद्ध होता रहा। कोई किसीसे न जीतते थे और न हारते थे। कभी समयानुसार शङ्खचूड़ शस्त्र रखकर रथपर ही विश्राम कर लेता और कभी भगवान् शंकर भी शस्त्र रखकर वृषभपर ही आराम कर लेते। शंकरके प्रयाससे असंख्य दानवोंका कचूमर निकल गया। इधर संग्राममें देवपक्षके जो-जो योद्धा मरते थे, उनको विभु शंकर पुनः जीवित कर देते थे। उसी समय भगवान् श्रीहरि एक अत्यन्त आतुर बूढ़े ब्राह्मणका वेष बनाकर युद्धभूमिमें आये और दानवराज शङ्खचूड़से कहने लगे।

वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें पधारे हुए श्रीहरिने कहा—राजेन्द्र! तुम मुझ ब्राह्मणको भिक्षा

देनेकी कृपा करो। इस समय सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान करनेकी तुममें पूर्ण योग्यता है। अतः तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो। मैं निरीह, तृषित एवं वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पहले तुम देनेके लिये सत्य-प्रतिज्ञा कर लो, तब मैं तुमसे कहूँगा।

राजेन्द्र शङ्खचूड़ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हाँ, हाँ, बहुत ठीक—आप जो चाहें सो ले सकते हैं।' तब अतिशय माया फैलाते हुए उस वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'मैं तुम्हारा 'कृष्णकवच' चाहता हूँ।' उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ शङ्खचूड़ने तुरंत वह दिव्य कवच उन्हें दे दिया और उन्होंने उसे ले भी लिया। फिर वे ही श्रीहरि शङ्खचूड़का रूप बनाकर तुलसीके निकट गये। वहाँ जाकर कपटपूर्वक उन्होंने उससे हास-विलास किया। (इस प्रकार शङ्खचूड़की पत्नीके रूपमें उसका सतीत्व भङ्ग हो गया। यद्यपि तत्त्वरूपसे तो वह श्रीहरिकी परमप्रेयसी पत्नी ही थी।) ठीक इसी समय शंकरने शङ्खचूड़पर चलानेके लिये श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल हाथमें उठा लिया। वह त्रिशूल इतना प्रकाशमान था, मानो ग्रीष्म ऋतुका मध्याह्नकालीन सूर्य हो अथवा प्रलय-कालीन प्रचण्ड अग्नि। वह दुर्निवार्य, दुर्धर्ष, अव्यर्थ और शत्रुसंहारक था। सम्पूर्ण शस्त्रोंके सारभूत उस त्रिशूलकी तेजमें चक्रके साथ तुलना की जाती थी। उस भयंकर त्रिशूलको शिव अथवा केशव—ये दो ही उठा सकते थे। अन्य किसीके मानका वह नहीं था। वह साक्षात् सजीव ब्रह्म ही था। उसके रूपका कभी परिवर्तन नहीं होता और सभी उसे देख भी नहीं पाते थे। नारद! अखिल ब्रह्माण्डका संहार करनेकी उस त्रिशूलमें पूर्ण शक्ति थी। भगवान् शंकरने लीलासे ही उसे उठाकर हाथपर जमाया और शङ्खचूड़पर फेंक दिया। तब उस बुद्धिमान् नरेशने सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरतीपर फेंक दिया और वह बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ अनन्य चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलका ध्यान करने लगा। त्रिशूल कुछ समयतक तो चक्कर काटता रहा। तदनन्तर वह शङ्खचूड़के ऊपर जा गिरा। उसके गिरते ही तुरंत वह दानवेश्वर तथा उसका रथ—सभी जलकर भस्म हो गये।

दानवशरीरके भस्म होते ही उसने एक दिव्य गोपका वेष धारण कर लिया। उसकी किशोर अवस्था थी। वह दो दिव्य भुजाओंसे सुशोभित था। उसके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी और रत्नमय आभूषण उसके शरीरको विभूषित कर रहे थे। इतनेमें अकस्मात् सर्वोत्तम दिव्य मणियोंद्वारा निर्मित एक दिव्य विमान गोलोकसे उतर आया। उसमें चारों ओर असंख्य गोपियाँ बैठी थीं। शङ्खचूड़ उसीपर सवार होकर गोलोकके लिये प्रस्थित हो गया।

मुने! उस समय वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती श्रीराधिका विराजमान थीं। वहाँ पहुँचते ही शङ्खचूड़ने भक्तिके साथ मस्तक झुकाकर उनके चरण-कमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपने चिरसेवक सुदामाको देखकर उन दोनोंके श्रीमुख प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपनी गोदमें उठा लिया। तदनन्तर वह त्रिशूल बड़े वेगसे आदरपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया। शङ्खचूड़की हड्डियोंसे शङ्खकी उत्पत्ति हुई। वही शङ्ख अनेक प्रकारके रूपोंमें विराजमान होकर

देवताओंकी पूजामें निरन्तर पवित्र माना जाता है। उसके जलको श्रेष्ठ मानते हैं; क्योंकि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये वह अचूक साधन है। उस पवित्र जलको तीर्थमय माना जाता है। उसके प्रति केवल शंकरकी आदरबुद्धि नहीं है। जहाँ-कहीं भी शङ्खध्वनि होती है, वहीं लक्ष्मीजी सम्यक् प्रकारसे विराजमान रहती हैं। जो शङ्खके जलसे स्नान कर लेता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त हो जाता है। शङ्ख साक्षात् भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठान है। जहाँपर शङ्ख रहता है, वहाँ भगवान् श्रीहरि भगवती लक्ष्मी-सहित सदा निवास करते हैं। अमङ्गल दूरसे ही भाग जाता है!

उधर शिव भी शङ्खचूड़को मारकर अपने लोकको पधार गये। उनके मनमें अपार हर्ष था। वे वृषभपर आरूढ़ होकर अपने गणोंसहित चले गये। अपना राज्य पा जानेके कारण देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। स्वर्गमें देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं और गन्धर्व तथा किन्नर यशोगान करने लगे। भगवान् शंकरके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। देवताओं और मुनिगणोंने भगवान् शंकरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। (अध्याय २२-२३)

☆

## शङ्खचूड़-वेषधारी श्रीहरिद्वारा तुलसीका पातिव्रत्य-भङ्ग, शङ्खचूड़का पुनः गोलोक जाना, तुलसी और श्रीहरिका वृक्ष एवं शालग्राम-पाषाणके रूपमें भारतवर्षमें रहना तथा तुलसीमहिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण तथा महत्त्वका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! भगवान् नारायणने कौन-सा रूप धारण करके तुलसीसे हास-विलास किया था? यह प्रसङ्ग मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भगवान् श्रीहरि देवताओंका कार्य-साधन करनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं। उन्होंने वैष्णवी माया फैलाकर शङ्खचूड़से कवच ले लिया। फिर शङ्खचूड़का ही रूप धारण करके वे साध्वी तुलसीके घर पहुँचे; क्योंकि शङ्खचूड़के निधनमें तुलसीके इस शरीरके पातिव्रत्यका भङ्ग ही एकमात्र साधन था।

तुलसीने पतिको युद्धसे आये देखकर उत्सव मनाया और महान् हर्ष-भरे हृदयसे स्वागत किया। फिर दोनोंमें युद्ध-सम्बन्धी चर्चा हुई; तदनन्तर शङ्खचूड़के वेषमें जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरि सो गये। नारद! उस समय तुलसीके साथ उन्होंने सुचारुरूपसे हास-विलास किया। पूर्व समागमके अवसरपर साध्वी तुलसी जितना आकर्षित थी, हास-विलासके अनन्तर वह स्थिति नहीं रही। अतः उसने सम्यक् प्रकारसे तर्क करके पूछा।

तुलसीने कहा—मायेश! बताओ तो तुम कौन हो? तुमने कपटपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया; मैं सती नहीं रह सकी, इसलिये अब मैं तुम्हें शाप दे रही हूँ।

ब्रह्मन्! तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना सुन्दर मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया। देवी तुलसीने अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर

श्रीहरिको विराजमान देखा। भगवान्‌का दिव्य विग्रह नूतन मेघके समान श्याम था। आँखें शरत्कालीन कमलकी तुलना कर रही थीं। लीला करते समय ये ऐसे प्रतीत होते थे मानो

कामदेव हों। रत्नमय भूषण उन्हें आभूषित किये हुए थे। उनका प्रसन्न वदन मुसकानसे भरा था। उनके दिव्य शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था। उन्हें देखकर कामिनी तुलसी मूर्च्छित हो गयी। फिर चेतना प्राप्त होनेपर उसने कहा।

तुलसी बोली—नाथ! आपका हृदय पाषाणके सदृश है; इसीसे आप इतने निष्ठुर बन गये। आज आपने छलपूर्वक (मेरे इस शरीरका) धर्म नष्ट करके मेरे इस शरीरके स्वामीको मार डाला। प्रभो! आप अवश्य ही पाषाण हृदय हैं, तभी तो उसमें दयाकी गन्धतक नहीं रही। देव! अब आप पाषाणरूप हो जायँ। अहो, बिना अपराध ही आपका भक्त मारा गया।

इस प्रकार कहकर शोकसे संतप्त हुई तुलसी आँखोंसे आँसू गिराती हुई बार-बार विलाप करने लगी। तदनन्तर करुणरसके समुद्र कमलापति भगवान् श्रीहरि करुणायुक्त तुलसी देवीको देखकर नीतिपूर्वक वचनोंसे उसे समझाने लगे।

भगवान् श्रीहरि बोले—भद्रे! तुम मेरे लिये भारतवर्षमें रहकर बहुत दिनोंतक तपस्या कर चुकी हो। उस समय तुम्हारे लिये शङ्खचूड़ भी तपस्या कर रहा था। (वह मेरा ही अंश था।) तुम्हें स्त्री-रूपसे प्राप्त करके वह सुखपूर्वक गोलोकमें चला गया। अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल देना उचित समझता हूँ।

रमे! तुम इस शरीरका त्याग करके दिव्य देह धारणकर मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये। तुम्हारा यह शरीर गण्डकी नदीके रूपसे प्रसिद्ध होगा। यह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षमें मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी।

तुम्हारा केशकलाप पवित्र वृक्ष होगा। तुम्हारे केशसे उत्पन्न होनेके कारण तुलसीके नामसे ही उसकी प्रसिद्धि होगी। वरानने! देवताओंकी पूजामें आनेवाले त्रिलोकीके जितने पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें वह प्रधान मानी जायगी। स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल तथा गोलोक—सर्वत्र तुम मेरे संनिकट रहोगी। तुम उत्तम वृक्षरूप होकर पुष्पोंको सुशोभित करोगी। गोलोक, विरजा नदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चन्दनवन तथा माधवी, केतकी, कुन्द और मल्लिकाके वनमें तुम्हारा निवास होगा। इन सभी पुण्यस्थानोंमें तुम्हारा पुण्यप्रद वास होगा। तुलसीवृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र होंगे; अतएव वहाँ सम्पूर्ण तीर्थोंका पुण्यप्रद अधिष्ठान होगा। वरानने! तुलसीके गिरे हुए पत्तोंको प्राप्त करनेके लिये उसीके नीचे समस्त देवता रहेंगे

तथा मैं भी रहूँगा। तुलसी-पत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नात तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित समझना चाहिये। साध्वी ! हजारों घड़े अमृतसे भगवान् श्रीहरिको जो तृप्ति होती है, उतनी ही तृप्ति वे तुलसीके एक पत्तेके चढ़ानेसे प्राप्त करते हैं। दस हजार गोदानसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कार्तिक महीनेमें तुलसीके पत्र-दानसे सुलभ है। जिस व्यक्तिके मुखमें मृत्युके अवसरपर तुलसी-पत्रका जल प्राप्त हो जाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकका अधिकारी बन जाता है। जो मनुष्य नित्यप्रति भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वह लाख अश्वमेध-यज्ञोंका फल पा लेता है। जो मानव तुलसीको अपने हाथमें लेकर तीर्थोंमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोकमें चला जाता है। तुलसी-काष्ठकी मालाको गलेमें धारण करनेवाला पुरुष पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है, इसमें संदेह नहीं।

जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर प्रतिज्ञा करता है और फिर उस प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर सकता, उसे सूर्य और चन्द्रमाकी अवधिपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें यातना भोगनी पड़ती है। जो मनुष्य तुलसीके समीप झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें जाता है और वहाँ दीर्घकालतक वास करता है। मृत्युके समय जिसके मुखमें तुलसीके जलका एक कण भी चला जाता है तो वह अवश्य ही विष्णुलोकको जाता है। पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, सूर्य-संक्रान्ति, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों संध्याएँ, अशौचके समय, रातमें सोनेके पश्चात् बिना नहाये-धोये—इन समयोंमें तथा तेल लगाकर जो मनुष्य तुलसीके पत्रोंको तोड़ते हैं, वे मानो स्वयं भगवान् श्रीहरिके मस्तकको ही काटते हैं। साध्वी ! श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक पवित्र ही रहता है। पृथ्वीपर अथवा जलमें गिरा हुआ तथा श्रीविष्णुको अर्पित तुलसीपत्र धो देनेपर दूसरे कार्यके लिये शुद्ध माना जाता है।*

गोलोक निरापद धाम है। तुम तुलसीकी

---

* तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति। तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता॥
त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम संनिधौ। भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी॥
गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने। भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥
माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने। वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः॥
तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम्। अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥
तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥
सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः। सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति॥
तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते॥

अधिष्ठात्री देवी बनकर गोलोकमें मुझ श्रीकृष्णके साथ निरन्तर क्रीड़ा करोगी। तुम्हारी देहसे उत्पन्न नदीकी जो अधिष्ठात्री देवी है, वह भारतवर्षमें परम पुण्यदा नदी बनकर क्षार-समुद्रकी पत्नी होगी। वह समुद्र मेरा ही अंश है। स्वयं तुम महासाध्वी वैकुण्ठमें मेरे संनिकट निवास करोगी। तुम लक्ष्मीके समान वहाँ विराजमान रहोगी, इसमें संशय नहीं है।

मैं तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिये भारतवर्षमें 'पाषाण' (शालग्राम) बनूँगा। गण्डकी नदीके तटपर मेरा वास होगा। वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीड़े अपने तीखे दाँतरूपी आयुधोंसे काट-काटकर उस पाषाणमें मेरे चक्रका चिह्न करेंगे। जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो वनमालासे विभूषित होगा, वह नवीन मेघके समान श्यामवर्णका पाषाण 'लक्ष्मीनारायण'का बोधक होगा। जिसमें एक द्वार और चार चक्रके चिह्न होंगे तथा वनमालाकी रेखा नहीं प्रतीत होती होगी, ऐसे नवीन मेघकी तुलना करनेवाले श्याम रंगके पाषाणको 'लक्ष्मी' और 'विष्णु' की प्रतिमा समझना चाहिये। दो द्वार, चार चक्र और गायके खुरके चिह्नसे सुशोभित एवं वनमालाके चिह्नसे रहित पाषाणको भगवान् 'राघवेन्द्र'का विग्रह मानना चाहिये। जिसमें बहुत सूक्ष्म दो चक्रके चिह्न हों और वनमालाकी रेखा न हो, उस नवीन मेघके समान कृष्णवर्णके पाषाणको भगवान् 'वामन' मानना चाहिये। अत्यन्त छोटे आकारमें दो चक्र एवं वनमालासे सुशोभित पाषाण स्वयं भगवान् 'श्रीधर'का रूप है—ऐसा समझना चाहिये। ऐसी मूर्ति गृहस्थोंको सदा श्रीसम्पन्न बनाती है। जो पूरा स्थूल हो, जिसकी आकृति गोल हो, जिसके ऊपर वनमालाका चिह्न अङ्कित न हो तथा जिसमें दो अत्यन्त स्पष्ट चक्रके चिह्न दिखायी पड़ते हों, वह पाषाण भगवान् 'दामोदर'का बोधक है। जो मध्यम श्रेणीका वर्तुलाकार हो, जिसमें दो चक्र तथा धनुष और बाणके चिह्न शोभा पाते हों एवं जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान् 'राम' मानना चाहिये। जो मध्यम श्रेणीका पाषाण सात चक्रोंसे तथा छत्र एवं आभूषणसे अलंकृत

---

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च मानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं सम्प्राप्नोति स मानवः॥
तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः। प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति॥
तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥
तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः। स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं प्राप्यते ध्रुवम्॥
पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि संध्ययोः॥
आशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नराः। तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥
त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥
(९। २४। ३२—५२)

हो, उसे भगवान् 'राजराजेश्वर'की प्रतिमा समझे। उसकी उपासनासे मनुष्योंको राजाकी सम्पत्ति सुलभ हो सकती है। चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघके समान रंगवाले स्थूल पाषाणको भगवान् 'अनन्त'का विग्रह मानना चाहिये। उसके पूजनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों फल प्राप्त होते हैं। जिसकी आकृति चक्रके समान हो तथा जो दो चक्र, श्री और गो-खुरके चिह्नसे शोभा पाता हो, ऐसे नवीन मेघके समान वर्णवाले मध्यम श्रेणीके पाषाणको भगवान् 'मधुसूदन' समझना चाहिये। केवल एक गुप्त चक्रसे युक्त पाषाण भगवान् 'गदाधर'का तथा दो चक्र एवं अश्वके मुखकी आकृतिसे युक्त पाषाण भगवान् 'हयग्रीव'का विग्रह कहा जाता है। साध्वी ! जिसका मुख अत्यन्त विस्तृत हो, जिसपर दो चक्र चिह्नित हों तथा जो बड़ा विकट प्रतीत होता हो, ऐसे पाषाणको भगवान् 'नरसिंह' की प्रतिमा समझनी चाहिये। मनुष्योंके लिये यह सद्यः वैराग्य प्रदान करनेवाला है। जिसमें दो चक्र हों, विशाल मुख हो तथा जो वनमालाके चिह्नसे सम्पन्न हो, गृहस्थोंके लिये सुखदायी उस पाषाणको भगवान् 'लक्ष्मी-नारायण'का विग्रह समझना चाहिये। जो द्वार-देशमें दो चक्रोंसे युक्त हो तथा जिसपर श्रीका चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़े, ऐसे पाषाणको भगवान् 'वासुदेव'का विग्रह मानना चाहिये। इस विग्रहकी अर्चनासे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो सकेंगी। सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त, नवीन मेघके समान श्याम तथा मुखपर बहुत-से छोटे-छोटे छिद्रोंसे सुशोभित पाषाण 'प्रद्युम्न'का स्वरूप होगा। उसके प्रभावसे गृहस्थ सुखी हो जायँगे। जिसमें दो चक्र सटे हुए हों और जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'संकर्षण'की प्रतिमा समझना चाहिये। जो अत्यन्त सुन्दर गोलाकार हो तथा पीले रंगसे सुशोभित हो, विद्वान् पुरुष कहते हैं कि गृहाश्रमियोंको सुख देनेवाला वह पाषाण भगवान् 'अनिरुद्ध'का स्वरूप है।

जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजते हैं और वहीं सम्पूर्ण तीर्थोंको साथ लेकर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं। ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे सब शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे नष्ट हो जाते हैं। छत्राकार शालग्राममें राज्य देनेकी तथा वर्तुलाकारमें प्रचुर सम्पत्ति देनेकी योग्यता है। शकटके आकारवाले शालग्रामसे दुःख तथा शूलके नोकके समान आकारवालेसे मृत्यु होनी निश्चित है। विकृत मुखवाले दरिद्रता, पिङ्गलवर्णवाले हानि, भग्न चक्रवाले व्याधि तथा कटे हुए शालग्राम निश्चितरूपसे मरणप्रद हैं। व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध आदि सत्कार्य शालग्रामकी संनिधिमें करनेसे सर्वोत्तम हो सकते हैं। शालग्रामके समक्ष रहनेवाला पुरुष सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुका तथा समस्त यज्ञोंमें उसे सफलता प्राप्त हो गयी। अखिल यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंके फलका वह अधिकारी समझा जाता है। साध्वी ! चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य शालग्रामशिलाकी उपासनासे प्राप्त हो जाता है। जो निरन्तर शालग्रामशिलाके जलसे अभिषेक करता है, वह सम्पूर्ण दानके पुण्य तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके उत्तम फलका मानो अधिकारी हो जाता है। शालग्राम-शिलाके

जलका निरन्तर पान करनेवाला पुरुष देवाभिलषित प्रसाद पाता है; इसमें संशय नहीं। सम्पूर्ण तीर्थ उस पुण्यात्मा पुरुषका स्पर्श करना चाहते हैं। जीवन्मुक्त एवं महान् पवित्र वह व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके पदका अधिकारी हो जाता है। भगवान्के धाममें वह उनके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयतक रहनेकी सुविधा प्राप्त करता है। वहाँ जाते ही भगवान् उसे अपना दास बना लेते हैं। उस पुरुषको देखकर ब्रह्महत्याके समान जितने बड़े-बड़े पाप हैं, वे इस प्रकार भागने लगते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प। उस पुरुषके चरणोंकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरंत पवित्र हो जाती है। उसके जन्म लेते ही लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है।

मृत्युकालके अवसरपर जो शालग्रामके जलका पान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है। उसे निर्वाणमुक्ति सुलभ हो जाती है। वह कर्मभोगसे छूटकर भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लीन हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। शालग्रामको हाथमें लेकर मिथ्या बोलनेवाला व्यक्ति 'कुम्भीपाक' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त उसे वहाँ रहना पड़ता है। जो शालग्रामको धारण करके की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे लाख मन्वन्तरतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहना पड़ता है। कान्ते! जो व्यक्ति शालग्रामपरसे तुलसीके पत्रको दूर करेगा, उसे दूसरे जन्ममें स्त्री साथ न दे सकेगी। शङ्खसे तुलसीपत्रका विच्छेद करनेवाला व्यक्ति भार्याहीन तथा सात जन्मोंतक रोगी होगा। शालग्राम, तुलसी और शङ्ख—इन तीनोंको जो महान् ज्ञानी पुरुष एकत्र सुरक्षितरूपसे रखता है, उससे भगवान् श्रीहरि बहुत प्रेम करते हैं।

नारद! इस प्रकार देवी तुलसीसे कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये। उधर देवी तुलसी अपना शरीर त्यागकर दिव्य रूपसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगी। कमलापति भगवान् श्रीहरि उसे साथ लेकर वैकुण्ठ पधार गये। नारद! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी—ये चार देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं। उसी समय तुरंत तुलसीकी देहसे गण्डकी नदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम शिला बन गये। मुने! वहाँ रहनेवाले कीड़े शिलाको काट-काटकर अनेक प्रकारकी बना देते हैं। वे पाषाण जलमें गिरकर निश्चय ही उत्तम फल प्रदान करते हैं। जो पाषाण धरतीपर पड़ जाते हैं, उनपर सूर्यका ताप पड़नेसे पीलापन आ जाता है; ऐसी शिलाको पिङ्गला समझनी चाहिये। (वह शिला पूजामें उत्तम नहीं मानी जाती।)

नारद! इस प्रकार यह सभी प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया; अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय २४)

☆

## तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवनका वर्णन

नारदजीने पूछा—प्रभो! जिस समय भगवान् नारायणने तुलसीको अपनी प्रिया बनाकर उनकी पूजा की, उस समय किस विधिसे उनका पूजन किया गया था और किस प्रकार स्तुति की गयी थी? यह प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा करें। भगवन्! सबसे पहले देवीकी पूजा

किसने की और किसने इनका स्तवन किया ? अथवा किस प्रकार ये देवी सुपूजित हुईं ? यह सभी मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो ! नारदकी बात सुनकर भगवान् नारायणका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने पापोंका ध्वंस करनेवाली परम पुण्यमयी कथा कहनी आरम्भ कर दी।

भगवान् नारायण बोले—मुने ! भगवान् श्रीहरि तुलसीका सम्मान करके उसके और लक्ष्मी—दोनोंके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको भी गौरव प्रदान करके उसे भी लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती बना दिया। लक्ष्मी और गङ्गा तो तुलसीके नवसङ्गम तथा सौभाग्य-गौरवको सहन करती रहीं; किंतु सरस्वतीको क्षोभ हो जानेके कारण उन्हें यह प्रसङ्ग अप्रिय हो गया। सरस्वतीके द्वारा अपमानित होकर तुलसी अन्तर्धान हो गयीं। देवी तुलसीको सम्पूर्ण योगसिद्धि प्राप्त थी। ज्ञानियोंके लिये सिद्धिस्वरूपा उस देवीने श्रीहरिकी आँखोंसे अपनेको सर्वत्र छिपा लिया। भगवान्ने उसे न देखकर सरस्वतीको समझाया और उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनके लिये चल पड़े। लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं) इन बीजोंका पूर्वमें उच्चारण करके 'वृन्दावनी' इस शब्दके अन्तमें (ङे) विभक्ति लगायी और अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा) का प्रयोग करके अर्थात् 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस दशाक्षर-मन्त्रका उच्चारण किया। नारद ! यह मन्त्रराज कल्पतरु है। जो इस मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, उसे निश्चय ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारोंसे तथा स्तोत्रद्वारा भगवान्से सुपूजित होनेपर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः वह वृक्षसे तुरंत बाहर निकल आयी और परम प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंकी शरणमें चली गयी। तब भगवान्ने उसे वर दिया—'देवी ! तुम सर्वपूज्या हो जाओ। तुम सुन्दर रूपवाली देवीको मैं अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण देवता तुम्हें अपने मस्तकपर धारण करेंगे।' यों कहकर भगवान् श्रीहरि अपने स्थानपर पधार गये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे आतुर होकर वृन्दावन चले गये थे और वहाँ जाकर उन्होंने तुलसीकी इस प्रकार स्तुति की थी।

श्रीभगवान् बोले—'जब वृन्दारूप और वृक्ष एकत्र होते हैं, तब उसे बुधजन 'वृन्दा' कहते हैं। ऐसी वृन्दा नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रिया तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ। जो देवी प्राचीन कालमें वृन्दावनमें प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ। जो असंख्य वृक्षोंमें निरन्तर पूजा प्राप्त करती है, अतः जिसका नाम 'विश्वपूजिता' पड़ा है, उस देवीकी मैं उपासना करता हूँ। देवी ! तुमने अनन्त विश्वको पवित्र किया है। ऐसी तुम 'विश्वपावनी' देवीकी मैं विरहसे आतुर होकर उपासना करता हूँ। जिसके बिना प्रचुर पुष्प अर्पण करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, ऐसी पुष्पसारा—पुष्पोंकी सारभूता शुद्धस्वरूपिणी तुलसी-देवीके शोकसे घबराकर मैं दर्शन करना चाहता हूँ। संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्त परम आनन्दित हो सकता है,

इसलिये 'नन्दिनी' नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी अब मुझपर प्रसन्न हो जाय। अखिल विश्वमें जिस देवीकी तुलना नहीं की जा सकती, अतएव जो 'तुलसी' कहलाती है, उस अपनी प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। वह साध्वी तुलसी भगवान् श्रीकृष्णकी जीवन-स्वरूपा निरन्तर प्रेम प्रदान करनेवाली होनेसे 'कृष्णजीवनी' नामसे विख्यात है। वह देवी तुलसी मेरे जीवनकी रक्षा करे।'*

इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि वहीं विराजमान हो गये। इतनेमें उनके सामने साक्षात् तुलसी प्रकट हो गयी। उस साध्वीने उनके चरणोंमें तुरंत मस्तक झुका दिया। अपमानके कारण उस मानिनीकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे; क्योंकि पहले उसे बड़ा सम्मान मिल चुका था। ऐसी प्रिया तुलसीको देखकर भगवान् श्रीहरिने उसे तुरंत हृदयसे लगा लिया। साथ ही सरस्वतीसे आज्ञा लेकर उसे अपने साथ ले गये। प्रयत्नपूर्वक सरस्वतीके साथ तुलसीका प्रेम स्थापित करवाया। साथ ही, भगवान्ने तुलसीको वर दिया—'देवी! तुम सर्वपूज्या और शिरोधार्या होओ। सब लोग तुम्हारा आदर एवं सम्मान करें।' भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर वह देवी परम संतुष्ट हो गयी। सरस्वतीने उसे खींचकर अपने पास बैठा लिया। नारद! उस समय लक्ष्मी और गङ्गाके मुखपर हँसी छा गयी। उन देवियोंने विनयपूर्वक साध्वी तुलसीका हाथ पकड़कर उसे भवनमें प्रवेश कराया। वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये देवी तुलसीके आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्रके रूपमें परिणत है। जो पुरुष तुलसीकी पूजा करके इस 'नामाष्टक' का पाठ करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है।† कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको

---

* नारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने तदा। तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः॥

श्रीभगवानुवाच

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च। विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥
पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने। तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्। तेन विश्वपूजिताख्या पूजितां च भजाम्यहम्॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा। तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना। तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्। नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च। तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥
कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती। तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम्॥

(९।२५।१७—२५)

† वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी। पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥
एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्। यः पठेत् तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

(९।२५।३२-३३)

देवी तुलसीका मङ्गलमय प्राकट्य हुआ और सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उसकी पूजा सम्पन्न की। तभीसे यह नियम बन गया है कि इस कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिभावसे पूजा करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। जो कार्तिक महीनेमें भगवान् विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गोदानका फल निश्चितरूपसे पा जाता है। इस तुलसी-नामाष्टकके श्रवणमात्रसे संतानहीन पुरुष पुत्रवान् बन जाता है, जिसे पत्नी न हो, उसे पत्नी मिल जाती है तथा बन्धुहीन व्यक्ति बहुत-से बान्धवोंको प्राप्त कर लेता है। इसके श्रवणसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति छुटकारा पा जाता है, भयभीत पुरुष निर्भय हो जाता है और पापी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

नारद ! यह तुलसी-स्तोत्र बतला दिया। अब ध्यान और पूजाविधि सुनो। तुम तो इस ध्यानको जानते ही हो। वेदकी कण्वशाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। ध्यानमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी अबाध शक्ति है। ध्यान करनेके पश्चात् बिना आवाहन किये भक्तिपूर्वक तुलसीके वृक्षमें षोडशोपचारसे इस देवीकी पूजा करनी चाहिये।

परम साध्वी तुलसी पुष्पोंमें सार हैं। इनका सम्पूर्ण मनोहर अङ्ग पवित्र है। किये हुए पापको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निकी लपटके समान हैं। पुष्पोंमें किसीसे भी इनकी तुलना नहीं की जा सकती। वेदोंमें इनकी महिमा वर्णित है। सभी अवस्थाओंमें ये पवित्रतामयी बनी रहती हैं। तुलसी नामसे इनकी प्रसिद्धि है। भगवान् इन्हें अपने मस्तकपर धारण करते हैं। सभीको इन्हें पानेकी इच्छा लगी रहती है। विश्वको पवित्र करनेवाली ये देवी नित्यमुक्त हैं। मुक्ति और भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करना इनका सहज गुण है। ऐसी भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ* । विद्वान् पुरुष इस प्रकार ध्यान, पूजन और स्तवन करके देवी तुलसीको प्रणाम करे। नारद ! तुलसीका उपाख्यान कह चुका। पुनः क्या सुनना चाहते हो।

(अध्याय २५)

☆

## सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान

नारदजीने कहा—भगवन् ! अमृतकी तुलना करनेवाली तुलसीकी कथा मैं सुन चुका ! अब आप सावित्रीका उपाख्यान कहनेकी कृपा करें। देवी सावित्री वेदोंकी जननी हैं; ऐसा सुना गया है। ये देवी सर्वप्रथम किससे प्रकट हुईं ? सबसे पहले इनकी किसने पूजा की और बादमें किसने ?

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने !

---

* तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहराम्। कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥
पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम्। पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥
शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी। जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥
(९।२५।४१—४३)

सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदजननी सावित्रीकी पूजा की। तत्पश्चात् ये देवताओंसे सुपूजित हुईं। तदनन्तर विद्वानोंने इनका पूजन किया। इसके बाद भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनकी उपासना की। तदनन्तर चारों वर्णोंके लोग इनकी आराधनामें संलग्न हो गये।

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! राजा अश्वपति कौन थे? किस कामनासे उन्होंने सावित्रीकी पूजा की थी?

भगवान् नारायण बोले—मुने! महाराज अश्वपति मद्रदेशके नरेश थे। शत्रुओंकी शक्ति नष्ट करना और मित्रोंके कष्टका निवारण करना उनका स्वभाव था। उनकी रानीका नाम मालती था। धर्मोंका पालन करनेवाली वह महाराज्ञी राजाके साथ इस प्रकार शोभा पाती थी, जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुके साथ। नारद! उन्हें कोई संतान नहीं थी, अतएव रानीने वसिष्ठजीके आदेशसे भक्तिपूर्वक भगवती सावित्रीकी आराधना की। परंतु उसे देवीकी ओरसे न तो कोई संकेत मिला, न देवीजीने साक्षात् दर्शन ही दिये। अतः कष्टका अनुभव करती हुई दुःखसे घबराकर वह घर चली गयी। राजा अश्वपतिने उसे दुःखी देखकर नीतिपूर्ण वचनोंद्वारा समझाया और स्वयं भक्तिपूर्वक वे सावित्रीकी तपस्याके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये। वहाँ रहकर इन्द्रियोंको वशमें करके उन्होंने बड़ी तपस्या की। तब भगवती सावित्रीके दर्शन तो नहीं हुए, किंतु कुछ उपदेश प्राप्त हुए। महाराज अश्वपतिको आकाशवाणी सुनायी दी। आकाशवाणीने कहा—राजन्! तुम दस लाख गायत्रीका जप करो।' इतनेमें ही वहाँ मुनिवर पराशरजी पधार गये। राजाने मुनिको प्रणाम किया। मुनि राजासे कहने लगे।

मुनिने कहा—राजन्! गायत्रीका एक बारका जप दिनके पापको नष्ट कर देता है। दस बार जप करनेसे दिन और रातके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ बार जप करनेसे महीनोंका उपार्जित पाप नहीं ठहर सकता। एक हजारके जपसे वर्षोंके पाप भस्म हो जाते हैं। गायत्रीके एक लाख जपमें इस जन्मके तथा दस लाख जपमें अन्य जन्मोंके भी पापोंको नष्ट करनेकी अमोघ शक्ति है। एक करोड़ जप करनेपर सम्पूर्ण जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। दस करोड़ गायत्री-जप ब्राह्मणोंको मुक्त कर देता है। ब्राह्मणको चाहिये कि पूर्वाभिमुख बैठकर हाथको सर्पके फणके समान कर ले। अँगुलीके पर्वसे क्रमशः नीचेसे ऊपर गिनते हुए जप करे। यही करमालाका क्रम है। राजन्! मलयागिरि चन्दनके बीजकी अथवा स्फटिक मणिकी पवित्र माला होनी चाहिये। इन्हीं वस्तुओंकी माला बनाकर तीर्थमें अथवा किसी देवताके समक्ष जप करे। पीपल अथवा कमलके पत्रपर संयमपूर्वक मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे। फिर गायत्री-जप करके विद्वान् पुरुष मालाको स्नान करावे। फिर उसी मालापर विधिपूर्वक गायत्रीके सौ मन्त्रोंका जप करना चाहिये। अथवा, पञ्चगव्य या गङ्गाजलसे स्नान कराकर शुद्ध की हुई मालासे भी जप किया जा सकता है।

राजर्षे! तुम इस क्रमसे दस लाख गायत्रीका जप करो। इससे तुम्हारे तीन जन्मोंके

पाप क्षीण हो जायँगे। तत्पश्चात् तुम भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन कर सकोगे। राजन्! तुम प्रतिदिन मध्याह्न, सायं एवं प्रातःकालकी संध्या पवित्र होकर निरन्तर करना; क्योंकि संध्या न करनेवाला अपवित्र व्यक्ति सम्पूर्ण कर्मोंके लिये सदा अनधिकारी हो जाता है। वह दिनमें जो कुछ सत्कर्म करता है, उसके फलसे वञ्चित रहता है। जो प्रातः एवं सायंकालकी संध्या नहीं करता है, वह ब्राह्मण सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत माना जाता है। जीवनपर्यन्त त्रिकाल संध्या करनेवाले ब्राह्मणमें तेज अथवा तपके प्रभावसे सूर्यके समान तेजस्विता आ जाती है। ऐसे ब्राह्मणकी चरणरजसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है। जिस ब्राह्मणके हृदयमें संध्याके प्रभावसे पाप स्थान नहीं पा सके हों, वह तेजस्वी द्विज जीवन्मुक्त ही है। उसके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। पाप उसे छोड़कर वैसे ही भाग छूटते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्पोंमें भगदड़ मच जाती है। त्रिकाल संध्या न करनेवाले द्विजके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको उसके पितर इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते तथा देवगण भी स्वतन्त्रतासे उसे लेना नहीं चाहते।

मुने! इस प्रकार कहकर मुनिवर पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि अभिलषित प्रयोग बतला दिये। उन महाराजको उपदेश देकर मुनिवर अपने स्थानको चले गये; फिर राजाने सावित्रीकी उपासना की। उन्हें उनके दर्शन प्राप्त हुए और अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया।

नारदने पूछा—भगवन्! मुनिवर पराशरने सावित्रीके किस ध्यान, किस पूजा-विधान, किस स्तोत्र और किस मन्त्रका उपदेश दिया था तथा राजाने किस विधिसे श्रुतिजननी सावित्रीकी पूजा करके किस वरको प्राप्त किया? किस विधानसे भगवती उनसे सुपूजित हुईं? मैं ये सभी प्रसङ्ग सुनना चाहता हूँ। सावित्रीकी श्रेष्ठ महिमा अत्यन्त रहस्यमयी है। कृपया मुझे सुनाइये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीके दिन संयमपूर्वक रहकर चतुर्दशीके दिन व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिके साथ भगवती सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये। यह चौदह वर्षका व्रत है। इसमें चौदह फल और चौदह नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प एवं धूप तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पण करनेका विधान है। एक मङ्गल-कलश स्थापित करके उसपर पल्लव रख दे। द्विजको चाहिये कि गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वतीकी पूजा करके आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका ध्यान करे। देवी सावित्रीका ध्यान सुनो। माध्यन्दिनी शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। स्तोत्र, पूजा-विधान तथा समस्त कामप्रद मन्त्र भी बतलाता हूँ। ध्यान यह है—

'भगवती सावित्रीका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान है। ये सदा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। इनकी प्रभा ऐसी है, मानो ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सहस्रों सूर्य हों। इनके मुखपर मुसकान छायी रहती है। रत्नमय भूषण इन्हें अलंकृत किये हुए हैं। दो विशुद्ध चिन्मय वस्त्रोंको इन्होंने धारण कर रखा है। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही ये साकाररूपसे प्रकट हुई हैं। जगद्धाता प्रभुकी इन प्राणप्रियाको 'सुखदा',

'मुक्तिदा', 'शान्ता', 'सर्वसम्पत्स्वरूपा' तथा 'सर्वसम्पत्प्रदात्री' कहते हैं। ये वेदकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वेद-शास्त्र इनके स्वरूप हैं। मैं ऐसी वेदबीजस्वरूपा वेदमाता भगवती सावित्रीकी उपासना करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके नैवेद्य अर्पण करे। फिर श्रद्धाके साथ कलशके ऊपर भगवती सावित्रीका आवाहन करे। वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके उपचारोंसे भगवतीकी पूजा करे। विधिपूर्वक पूजा और स्तुति सम्पन्न हो जानेपर देवेश्वरी सावित्रीको प्रणाम करे। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये देनेयोग्य षोडश उपचार हैं।

[आसनका मन्त्र यह है]—देवी ! यह आसन उत्तम काष्ठ अथवा सुवर्णनिर्मित है। देवताओंके वास करनेयोग्य यह पुण्यप्रद आसन आपके लिये अर्पण किया गया है। [पाद्य] देवी ! यह तीर्थका पवित्र जल पाद्यके रूपमें मैंने आपको समर्पण किया है। प्रीति उत्पन्न करने-वाला यह पाद्य पूजाका एक प्रधान अङ्ग माना जाता है। [अर्घ्य] देवी ! दूब, फूल, तुलसी तथा शङ्खके जलसे इस अर्घ्यको सजाया गया है। ऐसा पवित्र एवं पुण्यप्रद अर्घ्य मेरे द्वारा आपके लिये निवेदित है। [स्नान] देवी ! चन्दन मिलाकर इस जलको सुगन्धित किया गया है तथा साथ ही सुगन्ध प्रकट करनेवाला यह तैल भी है। स्नान करनेयोग्य इस जलको भक्तिपूर्वक मैंने आपके सामने अर्पण किया है। इसे स्वीकार करें। [अनुलेपन] अम्बिके ! जो सुगन्धित वस्तुओंसे बना है, जिससे गन्ध फैल रही है तथा चन्दनके जलसे जो गीला किया गया है, ऐसा यह प्रीति बढ़ानेवाला पवित्र अनुलेपन मैंने भक्तिपूर्वक आपके सामने निवेदित किया है—स्वीकार करें। [धूप] परमेश्वरी ! यह उत्तम धूप सर्वमङ्गलमय, सम्पूर्ण मङ्गलोंको देनेवाला तथा पुण्यप्रद है। आप इसे स्वीकार करें। [दीप] देवी ! सुगन्धयुक्त एवं सुखदायी तथा प्रकाश फैलानेवाले इस दीपको जगत्के प्रदर्शनार्थ मैंने आपको अर्पण किया है। यह दीपक अन्धकारको दूर करनेका प्रधान बीज है। [नैवेद्य] देवी ! तुष्टि, पुष्टि, प्रीति एवं पुण्य प्रदान करनेवाले तथा भूख शान्त करनेके परम साधन इस स्वादिष्ट नैवेद्यको आपके सामने मैंने अर्पण किया है। इसे ग्रहण करें। [शीतल जल] देवी ! जो प्यास बुझानेका कारण, जगत्को रूप प्रदान करनेवाला तथा जगत्का जीवन है, ऐसा यह परम शीतल जल सेवामें उपस्थित है। इसे स्वीकार कीजिये। [वस्त्र] परमेश्वरी ! रूई तथा रेशमसे बने हुए इस वस्त्रको ग्रहण कीजिये। शरीरके लिये यह शोभास्वरूप है। इसे धारण करनेसे सभामें परम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। [भूषण] देवी ! सुवर्ण आदि रत्नोंसे निर्मित, सदा प्रदीप्त रहकर शोभा बढ़ानेवाले तथा सुखदायी एवं पुण्यप्रद इस रत्नमय भूषणको आप स्वीकार करें। [फल] अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न, विविध रूपवाले फलस्वरूप तथा फल प्रदान करनेमें साधन इस फलको ग्रहण कीजिये। [माला] देवी ! अनेक प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई यह पुष्पमाला सम्पूर्ण मङ्गलोंकी प्रतिमा है। इसके सभी अङ्ग मङ्गलमय हैं। प्रभूत शोभासे यह सम्पन्न है। पुण्य प्रदान करनेवाली इस मालासे बड़ी

प्रसन्नता होती है। अतः आप इसे ग्रहण करें। [चन्दन] देवी ! आप पुण्यप्रद एवं अत्यन्त सुगन्धपूर्ण इस चन्दनको स्वीकार करें। [सिन्दूर] ललाटकी शोभा बढ़ानेवाला सुन्दर सिन्दूर भूषणोंमें सर्वोत्तम माना जाता है। अतः इसे आप ग्रहण करें। [यज्ञोपवीत] ग्रन्थिवाला यह यज्ञोपवीत परम शुद्ध है। पवित्र सूत्रोंसे यह बना है। वैदिक मन्त्रोंसे इसकी शुद्धि हुई है। अतः इसे स्वीकार कीजिये।*

विद्वान् पुरुष इन द्रव्योंको मूलमन्त्रसे भगवती सावित्रीके लिये अर्पण करके स्तोत्र पढ़े। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे। 'सावित्री' इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग होना चाहिये। इसके पूर्व लक्ष्मी, माया और कामबीजका उच्चारण हो। यही 'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं सावित्र्यै स्वाहा' यह अष्टाक्षर-मन्त्र कहा गया है। भगवती सावित्रीका सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र माध्यन्दिनी शाखामें वर्णित है। ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूप इस स्तोत्रको तुम्हारे सामने मैं व्यक्त करता हूँ, सुनो। प्राचीन कालकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक-धाममें विराजमान थे। उन्होंने सावित्रीको ब्रह्माके साथ जानेकी आज्ञा दी; परंतु सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेको प्रस्तुत नहीं हुईं। तब भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर सावित्रीने संतुष्ट होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया। ब्रह्माजीने सावित्रीकी इस प्रकार स्तुति की।

---

* दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा। देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥
तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्। पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥
पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पदलान्वितम्। पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥
सुगन्धं गन्धतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम्। मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥
गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं प्रीतिदं दिव्यगन्धदम्। मया निवेदितं भक्त्या गन्धतोयं तवाम्बिके॥
सर्वमङ्गलरूपं च सर्वं च मङ्गलप्रदम्। पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि॥
सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्। जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम्॥
अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्। तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्॥
पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्। ताम्बूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम्। सुशीतलं वारिशीतं पिपासानाशकारणम्॥
जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्। देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम्॥
कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्। काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा॥
सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम्। नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्॥
फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्। सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥
नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम्। प्रीतदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम्॥
पुण्यदं च सुगन्धाढ्यं गन्धं च देवि गृह्यताम्। सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम्॥
भूषणानां च प्रवरं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्। विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्॥
पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्। (९। २६। ५७—७४)

ब्रह्माजीने कहा—सुन्दरी ! तुम सच्चिदानन्द-स्वरूपा एवं मूलप्रकृतिमयी हो। तुम्हारा दिव्य विग्रह हिरण्यमय है। तुम मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करो। देवी ! तुम परम तेजस्वरूपा हो। तुम्हारे प्रत्येक अङ्गमें परम आनन्द व्याप्त है। द्विजातियोंके लिये जातिस्वरूपा सुन्दरी ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सुन्दरी ! तुम नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्दस्वरूपा तथा सम्पूर्ण मङ्गलमयी देवी हो। मैं तुम्हारी प्रसन्नता चाहता हूँ, कृपा करो। शोभने ! तुम ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्व हो। तुम सर्वोत्तम एवं मन्त्रोंकी सार-तत्त्व हो। तुम्हारी उपासनासे सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सुन्दरी ! तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्नि हो। ब्रह्मतेज प्रदान करना तुम्हारा सहज गुण है। तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी पाप करता है, वे सभी पाप तुम्हारे नामका स्मरण करते ही भस्म हो जायँगे* ।

इस प्रकार स्तुति करके जगद्धाता ब्रह्माजी वहीं सभाभवनमें ही विराजमान हो गये। तब सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोकमें जानेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। मुने ! इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति की थी। तब उन देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये। राजाने उनसे मनोऽभिलषित वर प्राप्त किया। यह स्तवराज परम पवित्र है। पुरुष यदि संध्याके पश्चात् इस स्तवका पाठ करता है तो चारों वेदोंके पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसी फलका वह अधिकारी हो जाता है। (अध्याय २६)

☆

## राजा अश्वपतिद्वारा सावित्रीकी उपासना तथा फलस्वरूप सावित्री नामक कन्याकी उत्पत्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! जब राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनका स्तवन किया तब देवी उनके सामने प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह इस प्रकार प्रकाशमान था। मानो हजारों सूर्य एक साथ उदित हो गये हों। साध्वी सावित्री अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसती हुई राजा अश्वपतिसे इस प्रकार बोलीं, मानो माता अपने पुत्रसे बात कर रही हो। उस समय देवी सावित्रीकी प्रभासे चारों दिशाएँ प्रकाशमान हो रही थीं।

---

* ब्रह्मोवाच—

सच्चिदानन्दरूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणि। हिरण्यगर्भरूपे त्वं प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपे च प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे। ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते नरः। तत् त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति॥

(९। २६। ७९—८४)

देवी सावित्रीने कहा—महाराज ! तुम्हारे मनकी जो अभिलाषा है, उसे मैं जानती हूँ। तुम्हारी पत्नीके सम्पूर्ण मनोरथ भी मुझसे छिपे नहीं हैं। अतः सब कुछ देनेके लिये मैं निश्चित-रूपसे प्रस्तुत हूँ। राजन् ! तुम्हारी परम साध्वी रानी कन्याकी अभिलाषा करती है और तुम पुत्र चाहते हो; क्रमसे दोनों ही प्राप्त होंगे।

इस प्रकार कहकर भगवती सावित्री ब्रह्म-लोकमें चली गयीं और राजा भी अपने घर लौट आये। यहाँ समयानुसार पहले कन्याका जन्म हुआ। भगवती सावित्रीकी आराधनासे उत्पन्न हुई उस कन्याका नाम राजा अश्वपतिने सावित्री रखा। वह ऐसी सुन्दरी थी, मानो कोई दूसरी लक्ष्मी ही हो। वह कन्या समयानुसार शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगी। समयपर उस सुन्दरी कन्यामें नवयौवनके लक्षण प्रकट हो गये। द्युमत्सेनकुमार सत्यवान्‌को वह पति बनाना चाहती थी; क्योंकि सत्यवान् सत्यवादी, सुशील एवं नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थे। राजाने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत करके अपनी कन्या सावित्रीको सत्यवान्‌के प्रति समर्पित कर दिया। सत्यवान् भी बड़े कौतुकके साथ उस कन्याको पाकर अपने घर चले गये। एक वर्ष व्यतीत हो जानेके पश्चात् सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल और ईंधन लानेके लिये अरण्यमें गये। उनके पीछे-पीछे साध्वी सावित्री भी गयी। दैववश सत्यवान् वृक्षसे गिरे और उनके प्राण प्रयाण कर गये। मुने ! यमराजने उन्हें देखकर उनके अङ्गुष्ठ-सदृश सूक्ष्म शरीरको साथ लेकर यमपुरीके लिये प्रस्थान किया। तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे लग गयी। संयमनी पुरीके स्वामी साधुश्रेष्ठ यमराजने सुन्दरी सावित्रीको पीछे-पीछे आते देखकर मधुर वाणीमें उससे कहा।

धर्मराजने कहा—अहो सावित्री ! तुम इस मानवीदेहसे कहाँ जा रही हो ? यदि पतिदेवके साथ जानेकी तुम्हारी इच्छा है तो पहले इस शरीरका त्याग कर दो। मर्त्यलोकका प्राणी इस पाञ्चभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोकमें नहीं जा सकता; नश्वर व्यक्ति नश्वरलोकमें ही जानेका अधिकारी है। साध्वी ! तुम्हारा पति सत्यवान् भारतवर्षमें आया था। इसकी आयु अब पूर्ण हो चुकी, अतएव अपने किये हुए कर्मका फल भोगनेके लिये अब वह मेरे लोकको जा रहा है। प्राणीका कर्मसे ही जन्म होता है और कर्मसे ही उसकी मृत्यु भी होती है। सुख, दुःख, भय और शोक—ये सब कर्मके अनुसार प्राप्त होते रहते हैं। कर्मके प्रभावसे जीव इन्द्र भी हो सकता है। अपना उत्तम कर्म उसे ब्रह्मपुत्रतक बनानेमें समर्थ है। अपने शुभ कर्मकी सहायतासे प्राणी श्रीहरिका दास बनकर जन्म आदि विकारोंसे मुक्त हो सकता है। सम्पूर्ण सिद्धि, अमरत्व तथा श्रीहरिके सालोक्यादि चार प्रकारके पद भी अपने शुभ कर्मके प्रभावसे मिल सकते हैं। देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव, गणेश, मुनीन्द्र, तपस्वी, क्षत्रिय, वैश्य, म्लेच्छ, स्थावर, जङ्गम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, किरात, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीड़े, दैत्य, दानव तथा असुर—ये सभी योनियाँ प्राणीको अपने कर्मके अनुसार प्राप्त होती हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इस प्रकार सावित्रीसे कहकर यमराज मौन हो गये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! पतिव्रता सावित्रीने यमराजकी बात सुनकर परम भक्तिके साथ उनका स्तवन किया; फिर वह उनसे पूछने लगी।

सावित्रीने पूछा—भगवन् ! कौन कार्य है, किस कर्मके प्रभावसे क्या होता है, कैसे फलमें कौन कर्म हेतु है, कौन देह है और कौन देही है अथवा संसारमें प्राणी किसकी प्रेरणासे कर्म करता है ? ज्ञान, बुद्धि, शरीरधारियोंके प्राण, इन्द्रियाँ तथा उनके लक्षण एवं देवता, भोक्ता, भोजयिता, भोज, निष्कृति तथा जीव और परमात्मा—ये सब कौन और क्या हैं ? इन सबका परिचय बतानेकी कृपा कीजिये।

धर्मराज बोले—साध्वी सावित्री ! कर्म दो प्रकारके हैं—शुभ और अशुभ। वेदोक्त कर्म शुभ हैं। इनके प्रभावसे प्राणी कल्याणके भागी होते हैं। वेदमें जिसका स्थान नहीं है, वह अशुभ कर्म नरकप्रद है। देवताओंकी संकल्परहित जो अहेतुकी सेवा की जाती है, उसे कर्म-निर्मूल-रूपा कहते हैं। ऐसी ही सेवा इष्टदेवताके प्रति श्रेष्ठ 'भक्ति' प्रदान करती है। कौन कर्मके फलका भोक्ता है और कौन निर्लिप्त— इसका उत्तर यह है। श्रुतिका वचन है कि ब्रह्मकी उपासना करनेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय—ये उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। साध्वी ! श्रुतिमें भक्ति भी दो प्रकारकी बतलायी गयी है—इसमें किसीका विरोध नहीं है। एकको 'निर्वाणप्रदा' कहते हैं और दूसरीको 'सारूप्य-प्रदा'। मनुष्य इन दोनोंके अधिकारी हैं। वैष्णव पुरुषोंको भगवान् श्रीहरिका सारूप्य प्रदान करनेवाली भक्ति अभीष्ट है और अन्य ब्रह्मज्ञानी योगी पुरुष निर्वाणप्रदा भक्ति चाहते हैं। कर्म बीजरूप है। निरन्तर फल प्रदान करना इसका सहज गुण है। यह कोई दूसरी वस्तु नहीं, किंतु परमात्मा भगवान् श्रीहरि तथा भगवती प्रकृतिका ही रूप है। देवी प्रकृति मायाविशिष्ट ब्रह्मस्वरूपा हैं। कर्म भी इन्हींसे उत्पन्न हुआ है। देह तो सदासे नश्वर है। पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश—ये पाँच भूत सूत्ररूप हैं। परमात्माके सृष्टि-प्रकरणमें इनका उपयोग होता है। कर्म करनेवाला जीव देही है। वही भोक्ता और अन्तर्यामीरूपसे भोजयिता भी है। सुख एवं दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवका ही दूसरा नाम भोग है। निष्कृति मुक्तिको ही कहते हैं। सदसत्सम्बन्धी विवेकके आदिकारणका नाम ज्ञान है। इस ज्ञानके अनेक भेद हैं। घट-पटादि विषय तथा उनका भेद ज्ञानके भेदमें कारण कहा जाता है। विवेचनमयी शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं। श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे इसकी प्रसिद्धि है। वायुके ही विभिन्न रूप प्राण हैं। इन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें शक्तिका संचार होता है। जो इन्द्रियोंमें प्रमुख, परमात्माका अंश, संशयात्मक कर्मोंका प्रेरक, प्राणियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका विरोधी है, उसे 'मन' कहा गया है। यह शरीरधारियोंका अङ्ग तथा सम्पूर्ण कर्मोंका प्रेरक है। यही इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाकर दुःखी बनानेके कारण शत्रुरूप हो जाता है और सत्कार्यमें लगाकर सुखी बनानेके कारण मित्ररूप है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं। सूर्य, वायु, पृथ्वी और ब्रह्मा आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं। जो प्राण एवं देहादिको धारण करता है, उसीकी 'जीव' संज्ञा है। प्रकृतिसे परे जो

सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म हैं, उन्हींको 'परमात्मा' कहते हैं। ये कारणोंके भी कारण हैं।

वत्से ! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने शास्त्रानुसार बतला दिया। यह विषय ज्ञानियोंके लिये परम ज्ञानमय है। अब तुम सुखपूर्वक लौट जाओ।

सावित्रीने कहा—प्रभो ! आप ज्ञानके अथाह समुद्र हैं। अब मैं इन अपने प्राणनाथ और आपको छोड़कर कैसे कहाँ जाऊँ ? मैं जो-जो बातें पूछती हूँ, उसे आप मुझे बतानेकी कृपा करें। जीव किस कर्मके प्रभावसे किन-किन योनियोंमें जाता है ? तात ! कौन कर्म स्वर्गप्रद है और कौन नरकप्रद ? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी मुक्त हो जाता है तथा गुरुदेवमें भक्ति उत्पन्न होनेके लिये कौन-सा कर्म कारण होता है ? किस कर्मके फलस्वरूप प्राणी योगी होता है और किस कर्मफलसे रोगी ? दीर्घजीवी और अल्पजीवी होनेमें कौन-कौनसे कर्म प्रेरक हैं ? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी सुखी होता है और किस कर्मके प्रभावसे दुःखी ? किस कर्मसे मनुष्य अङ्गहीन, एकाक्ष, बधिर, अन्धा, पङ्गु, उन्मादी, पागल तथा अत्यन्त लोभी और चोर होता है एवं सिद्धि और सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होनेमें कौन कर्म सहायक है ? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी ब्राह्मण होता है और किस कर्मके प्रभावसे तपस्वी ? स्वर्गादि भोग प्राप्त होनेमें कौन कर्म साधन है ? किस कर्मसे प्राणी वैकुण्ठमें जाता है ? ब्रह्मन् ! गोलोक निरामय और सम्पूर्ण स्थानोंसे उत्तम धाम है। किस कर्मके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो सकती है ? कितने प्रकारके नरक हैं और उनकी कितनी संख्या और उनके क्या-क्या नाम हैं ? कौन किस नरकमें जाता है और कितने समयतक वहाँ यातना भोगता है ? किस कर्मके फलसे पापियोंके शरीरमें कौन-सी व्याधि उत्पन्न होती है ? भगवन् ! मैंने ये जो-जो प्रश्न किये हैं, इन सबके उत्तर देनेकी आप कृपा करें। (अध्याय २७-२८)

☆

## सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर, सावित्रीको वरदान

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सावित्रीके वचन सुनकर यमराजके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हँसकर प्राणियोंके कर्म-विपाक कहनेके लिये उद्यत हो गये।

धर्मराजने कहा—वत्से ! अभी तुम हो तो बहुत छोटी-सी वयस्की बालिका, किंतु तुम्हें पूर्ण विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर ज्ञान प्राप्त है। पुत्री ! भगवती सावित्रीके वरदानसे तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम उन देवीकी कला हो। राजाने तपस्याके प्रभावसे तुम-जैसी कन्यारत्नको प्राप्त किया है। जिस प्रकार लक्ष्मी भगवान् विष्णुके, भवानी शंकरके, अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची इन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके, रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, संज्ञा सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास सौभाग्यवती प्रिया बनकर शोभा पाती हैं, तुम भी वैसी ही सत्यवान्‌की प्रिया बनो। मैंने यह तुम्हें वर दे दिया। महाभागे ! इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर मागो। मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर देनेको तैयार हूँ।

सावित्री बोली—महाभाग ! सत्यवान्‌से मुझे सौ औरस पुत्र प्राप्त हों—यही मेरा अभिलषित वर है। साथ ही, मेरे पिता भी सौ पुत्रोंके जनक हों, मेरे श्वशुरको नेत्र-लाभ हों और उन्हें पुनः राज्यश्री प्राप्त हो जाय, यह भी मैं चाहती हूँ। जगत्प्रभो ! सत्यवान्‌के साथ मैं बहुत लम्बे समयतक रहकर अन्तमें भगवान् श्रीहरिके धाममें चली जाऊँ, यह वर भी देनेकी आप कृपा करें।

प्रभो ! मुझे जीवके कर्मका विपाक तथा विश्वसे तर जानेका उपाय भी सुननेके लिये मनमें महान् कौतूहल हो रहा है; अतः आप यह भी बतावें।

धर्मराजने कहा—महासाध्वी ! तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं प्राणियोंका कर्म-विपाक कहता हूँ, सुनो। शुभ और अशुभ कर्मोंके फलस्वरूप जीव भारतवर्षमें जन्म पाते हैं। यही पुण्यक्षेत्र है। पतिव्रते ! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा मनुष्य—ये सभी कर्मके अधिकारी हैं। केवल पशु आदि जीवोंको ही कर्मका अधिकारी नहीं कह सकते। उत्तम कर्म करनेवाले प्राणी सम्पूर्ण योनियोंमें जन्म पाकर उसके फल भोगते हैं। शुभाशुभ कर्मफल भोगनेका स्थान स्वर्ग और नरक निश्चित है। कर्मकी विशेषतासे प्राणी समस्त योनियोंमें चक्कर काटते रहते हैं। उन्हें पूर्व-जन्मका उपार्जित किया हुआ कभी शुभ फल मिलता है और कभी अशुभ। शुभ कर्मके प्रभावसे प्राणी स्वर्गलोकमें जाता है। अशुभ कर्म उसे नरकमें भटकनेके कारण बन जाते हैं। कर्मके निःशेष हो जानेपर प्राणीके हृदयमें भक्ति उत्पन्न होती है। साध्वी ! भक्ति भी दो प्रकारकी बतलायी गयी है—एक निर्गुणा और दूसरी मायाविशिष्ट ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती प्रकृतिके प्रति की जानेवाली। पूर्वजन्मका बुरा कर्म प्राणीको दूसरे जन्ममें रोगी बनाता है और शुभ कर्म आरोग्यवान्। प्राणी अपने पूर्वकर्मके अनुसार दीर्घजीवी, अल्पायु, सुखी, दुःखी, अन्धा और अङ्गहीन होता है। पूर्वजन्मके उत्तम कर्मके फलस्वरूप दूसरे जन्ममें सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

देवी ! अब विशेष बातें सुनो। सुन्दरी ! यह अतिशय दुर्लभ विषय शास्त्रों और पुराणोंमें वर्णित है। इसे सबके सामने नहीं कहना चाहिये। सभी जातियोंके लिये भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म पाना परम दुर्लभ है। साध्वी ! सभी वर्णोंकी अपेक्षा सम्पूर्ण कर्मोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ माना जाता है। भारतवर्षमें ब्रह्मपर आस्था रखनेवाला ब्राह्मण अधिक गौरवका पात्र समझा जाता है। ब्राह्मणमें दो भेद हैं—सकामी और निष्कामी। कामनासे सम्पन्न ब्राह्मण जगत्‌में प्रतिष्ठा पाता है और निष्कामी भगवान्‌का भक्त बन जाता है। सकामी फल भोगनेमें व्यस्त रहता है और निष्कामी विघ्न-बाधासे रहित होकर भजन-भावमें लगा रहता है।

साध्वी ! ऐसा निष्कामी द्विज शरीर त्यागकर भगवान्‌के निरामय पदकी प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। ऐसे निष्कामी व्यक्तियोंको संसारमें बार-बार आना-जाना नहीं पड़ता। द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमेश्वर हैं। उनकी उपासना करनेवाले भक्तपुरुष अन्तमें दिव्य शरीर धारण करके गोलोकमें जाते हैं। सकामी वैष्णव पुरुष उच्च वैष्णवलोकोंमें जाकर समयानुसार

पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं। द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वे भी समयानुसार क्रमशः निष्काम भक्त बन जाते हैं और मेरे द्वारा उन्हें निर्मल भक्ति भी सुलभ हो सकती है। यह निश्चित है, सकाम ब्राह्मण एवं वैष्णवजन बहुत जन्मोंमें भी विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण विशुद्ध बुद्धि नहीं पा सकते। साध्वी ! जो तीर्थस्थानमें रहकर सदा तपस्या करते हैं, वे द्विज ब्रह्माके लोकमें जाते हैं; उन्हें पुनः भारतवर्षमें आना पड़ता है। जो तीर्थोंमें अथवा कहीं अन्यत्र भी रहकर सदा अपने कर्तव्य-कार्योंमें संलग्न रहते हैं, उन्हें शरीर त्यागनेपर सत्यलोक प्राप्त होता है। वे समयानुसार पुनः भारतवर्षमें जन्म पाते हैं। अपने धर्ममें निरत रहकर सूर्यकी उपासना करनेवाले ब्राह्मण सूर्यलोकमें जाते हैं; फिर उन्हें लौटकर भारतवर्षमें आना पड़ता है। जो धर्मात्मा पुरुष निष्कामभावसे मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी उपासना करते हैं, वे दिव्य मणिद्वीपलोकमें जाते हैं। आने-जानेकी परिस्थिति पुनः उनके सामने नहीं आ सकती। अपने धर्मसे विचलित न होनेवाले शिव, शक्ति और गणपतिके उपासक व्यक्ति तत्-तत् देवताओंके धामोंमें जाते तथा निश्चित अवधिके पश्चात् पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं।

साध्वी ! अन्य देवताओंकी उपासना करनेवाले स्वधर्मपरायण ब्राह्मण विभिन्न लोकोंमें जाते हैं; किंतु उन्हें पुनः भारतवर्षमें जन्म लेना पड़ता है। भगवान् श्रीहरिकी उपासना करनेवाले अपने धर्ममें निरत निष्काम द्विज भक्तिके प्रभावसे भगवान्के परमधाममें चले जाते हैं। जो अपने धर्मका पालन नहीं करते, वे आचारहीन, कामलोलुप लोग अवश्य ही नरकमें जाते हैं। चारों ही वर्ण अपने धर्ममें कटिबद्ध रहनेपर ही शुभ कर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं। जो अपना कर्तव्यकर्म नहीं करते, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं। कर्मका फल भोगनेके लिये वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतएव चारों वर्णोंके लिये अपने धर्मका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अपने धर्ममें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, स्वधर्मनिरत विप्रको अपनी कन्या देनेके फलस्वरूप चन्द्रलोकको जाते हैं। साध्वी ! यदि कन्याको अलंकृत करके दानमें दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है। उन साधुपुरुषमें यदि कामना हो तब तो वे चन्द्रमाके लोकमें जाते हैं। निष्काम भावसे दान करें तो वे भगवान् विष्णुके परमधाममें पहुँच जाते हैं। गव्य (दूध), चाँदी, सुवर्ण, वस्त्र, घृत, फल और जल ब्राह्मणोंको देनेवाले पुण्यात्मा पुरुष चन्द्रलोकमें जाते हैं। साध्वी ! एक मन्वन्तरतक वे वहाँ सुविधापूर्वक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे उन्हें सर्वोत्तम स्थानमें निवास प्राप्त होता है। पतिव्रते ! पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि द्रव्यका दान करनेवाले सत्पुरुष सूर्यलोकमें जाते हैं। वे भव-बाधासे शून्य हो उस विस्तृत लोकमें सुदीर्घ कालतक वास करते हैं। जो ब्राह्मणोंको पृथ्वी अथवा प्रचुर धन दान करता है, वह भगवान् विष्णुके परम सुन्दर श्वेतद्वीपमें जाता है और दीर्घकालतक वहाँ वास करता है। मुने ! वह पुण्यवान् पुरुष भगवान्के उस विशाल लोकमें विपुल वास प्राप्त करता है। भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गृहदान करनेवाले पुरुष भगवान् विष्णुके सुखदायी लोकमें दीर्घकालके लिये प्रस्थान करते हैं। भगवान् श्रीहरिका वह विशाल लोक महान् श्रेष्ठ है। वे उस लोकमें उतने दिनोंतक रहते हैं, जितनी संख्यामें उस दानगृहके

रज:कण हैं। मनुष्य जिस-जिस देवताके उद्देश्यसे गृहदान करता है, अन्तमें उसी देवताके लोकमें जाता है। अपने घरपर दान करनेकी अपेक्षा राजभवनपर जाकर दान करनेसे चौगुना, पवित्र तीर्थमें करनेसे सौगुना तथा किसी श्रेष्ठ स्थानमें करनेसे दुगुना फल होता है—यह ब्रह्माजीका वचन है।

समस्त पापोंसे मुक्त होनेके लिये तड़ागका दान करनेवाला व्यक्ति रेणुपर्यन्त वर्षोंकी अवधि लेकर जनलोकमें जाता है। बावलीका दान करनेसे मनुष्यको सदा दसगुना फल मिलता है। वह उस बावलीदानसे तड़ागके दानका भी पुण्यफल प्राप्त कर लेता है। तड़ागका प्रमाण चार हजार धनुष[1] चौड़ा और उतना ही लम्बा निश्चित किया गया है। इससे जो लघु प्रमाणमें है, वह वापी कही जाती है। सत्पात्रको दी हुई कन्या दस वापीके समान पुण्यप्रदा होती है। यदि उस कन्याको अलंकृत करके दान किया जाय तो दुगुना फल मिलता है। तड़ागके दानसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वही उसके जीर्णोद्धारसे सुलभ हो जाता है। वापीके कीचड़को दूर करनेसे उसके निर्माण कराने-जितना फल होता है। पतिव्रते ! जो पुरुष पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह हजारों वर्षोंके लिये भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। सावित्री ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये पुष्पोद्यान लगाता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें स्थान पाता है। पतिव्रते ! विष्णुके उद्देश्यसे विमानका दान करनेवाला मानव एक मन्वन्तरतक विष्णु-लोकमें वास करता है। यदि वह विमान विशाल और चित्रोंसे सुसज्जित किया गया हो तो उसके दानसे चौगुना फल प्राप्त होता है। शिविका-दानमें उससे आधा फल होना निश्चित है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे देवालय-दान करता है, वह अति दीर्घकालतक भगवान् विष्णुके लोकमें वास करता है। पतिव्रते ! राजभवनतक राजमार्ग बनवानेवाला सत्पुरुष हजारों वर्षोंतक इन्द्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है। जो पूर्व-जन्ममें दिया गया है, वही जन्मान्तरमें प्राप्त होता है। जो नहीं दिया गया है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है ? पुण्यवान् पुरुष स्वर्गीय सुख भोगकर भारतवर्षमें जन्म पाता है। उसके क्रमशः उत्तम-से-उत्तम ब्राह्मणकुलमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गसुख भोगनेके अनन्तर पुनः ब्राह्मण ही होता है। यही नियम क्षत्रिय आदिके लिये भी है। क्षत्रिय अथवा वैश्य तपस्याके प्रभावसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है—ऐसी बात श्रुतिमें सुनी जाती है। कितना ही काल क्यों न बीत जाय, बिना भोग किये कर्म क्षीण नहीं हो सकते। अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल प्राणियोंको अवश्य भोगना पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायता तथा कायव्यूहसे प्राणी शुद्ध हो जाता है।

साध्वी ! ये कुछ बातें तो तुम्हें बतला दीं, अब आगे और क्या सुनना चाहती हो ?

(अध्याय २९)

☆

[1] चार हाथकी लम्बाईको धनुषका प्रमाण कहते हैं।

## सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर तथा सावित्रीके द्वारा धर्मराजको प्रणाम-निवेदन

सावित्रीने कहा—धर्मराज ! जिस कर्मके प्रभावसे पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्ग अथवा अन्य लोकमें जाते हैं, वह मुझे बतानेकी कृपा करें।

धर्मराज बोले—पतिव्रते ! ब्राह्मणको अन्नदान करनेवाला पुरुष शिवलोकमें जाता है और दान किये हुए अन्नमें जितने दाने होते हैं, उतने वर्षोंतक वह वहाँ निवास पाता है। अन्न-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। इसमें न कभी पात्रकी परीक्षाकी आवश्यकता होती है और न समयकी*। साध्वी ! यदि ब्राह्मणों अथवा देवताओंको आसन दान किया जाय तो हजारों वर्षोंतक भगवान् विष्णुके लोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाती है। जो पुरुष ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौ दान करता है, वह गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उस लोकमें प्रतिष्ठित रहता है। यह गोदान साधारण दिनोंकी अपेक्षा पर्वके समय चौगुना, तीर्थमें सौगुना और नारायण-क्षेत्रमें कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो मानव भारतवर्षमें रहकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गौ प्रदान करता है, वह हजारों वर्षोंतक चन्द्र-लोकमें रहनेका अधिकारी बन जाता है। दुग्धवती गौ ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष उसके रोमपर्यन्त वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। ब्राह्मणको सुन्दर स्वच्छ छत्र दान करनेवाला व्यक्ति हजारों वर्षोंतक वरुणके लोकमें आनन्द करता है। साध्वी ! जो दुःखी ब्राह्मणको दो वस्त्र प्रदान करता है, उसे दस हजार वर्ष वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। वस्त्रसहित शालग्रामको ब्राह्मणके लिये अर्पण करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष बहुत ही लम्बे समयतक वैकुण्ठमें आनन्द करता है। मनोहर दिव्य शय्या ब्राह्मणको देनेसे दीर्घकालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा होती है। जो देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको दीपदान करता है, वह अग्निलोकमें वास करता है। भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथी दान करता है, वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान होता है। ब्राह्मणको घोड़ा देनेवाला भारतवासी मनुष्य वरुणलोकमें आनन्द करता है। यही फल उत्तम शिविका—पालकी प्रदान करनेका भी है। ब्राह्मणको उत्तम बगीचा देने-वाला व्यक्ति वायुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो ब्राह्मणको पंखा तथा सफेद चँवर अर्पण करता है, वह वायुलोकमें सम्मान पाता है। धन और रत्न दान करनेवाला दीर्घायु और विद्वान् हो सकता है। दाता और प्रतिगृहीता दोनों ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं।

---

* अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति। नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥ (९।३०।४)

जो भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका कीर्तन करता है, उस चिरञ्जीवी मनुष्यको देखते ही मृत्यु भाग जाती है। भारतवर्षमें जो विद्वान् मनुष्य पूर्णिमाकी रातमें दोलोत्सव मनानेका प्रबन्ध करता है, वह जीवन्मुक्त है। इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वह भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त होता है। उत्तराफाल्गुनीमें उत्सव मनानेसे इससे दुगुना फल मिलता है। जो भारतवर्षमें ब्राह्मणको तिल दान करता है, वह शिवजीके धाममें सम्मान पाता है। इसके बाद उत्तम योनिमें जन्म पाकर चिरञ्जीवी हो सुख भोगता है। ताँबेके पात्रमें तिल रखकर दान करनेसे दूना फल मिलता है। जो सुयोग्य एवं सदाचारसम्पन्न कन्याको भूषणोंसे अलंकृत करके वस्त्रसहित भार्या बनानेके लिये ब्राह्मणको अर्पण करता है, वह दीर्घकालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर उसका गन्धर्वलोकमें स्थान पाना सुनिश्चित है। उसके दिन-रात सुखभोगमें बीतते हैं। तत्पश्चात् सहस्रों जन्ममें उसे सती, सौभाग्यवती, सुकुमारी एवं प्रिय भाषण करने-वाली सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है। जो मनुष्य ब्राह्मणको सुपक्व फल प्रदान करता है, वह इन्द्रलोकमें सम्मान पाता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह सुयोग्य पुत्र प्राप्त करता है। फलवाले वृक्षोंके दानकी महिमा इससे हजार-गुना अधिक बतायी गयी है। अथवा ब्राह्मणको केवल फलका भी दान करनेवाला पुरुष दीर्घ-कालतक स्वर्गमें वास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म पाता है।

भारतवर्षमें रहनेवाला जो पुरुष अनेक द्रव्योंसे सम्पन्न तथा भाँति-भाँतिके धान्योंसे भरे-पूरे विशाल भवन ब्राह्मणको दान करता है, वह उसके फलस्वरूप दीर्घकालतक देवताओंके लोकमें वास पाता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनवान् होता है। साध्वी ! हरी-भरी खेतीसे युक्त सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करनेवाला पुण्यात्मा भारतवासी पुरुष निश्चयपूर्वक वैकुण्ठधाममें प्रतिष्ठित होता है। जो मानव उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको दान करता है, उसकी वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा होती है। फिर, जहाँकी उत्तम प्रजाएँ हों, जहाँकी भूमि पकी हुई खेतियोंसे लहलहा रही हो, अनेक प्रकारकी पुष्करिणियोंसे संयुक्त हो तथा फलवाले वृक्ष और लताएँ जिसकी शोभा बढ़ा रही हों, ऐसा श्रेष्ठ नगर भारतवर्षमें रहनेवाला जो पुरुष ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत लम्बे समयपर्यन्त कैलासमें सुप्रतिष्ठित होता है। फिर भारतवर्षमें उत्तम जन्म पाकर राजेश्वर होता है। उसे लाखों नगरोंका प्रभुत्व प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। निश्चितरूपसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य भूमण्डलपर उसके पास विराजमान रहते हैं।

अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीका भी नगर प्रजाओंसे सम्पन्न हो, वापी, तड़ाग तथा भाँति-भाँतिके वृक्ष जिसकी शोभा बढ़ाते हों, ऐसे सौ नगर ब्राह्मणको दान करनेवाला पुण्यात्मा वैकुण्ठलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है। जैसे इन्द्र सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें शोभा पाते हैं, वैसे ही भूमण्डलपर उस पुरुषकी शोभा होती है। कोटि जन्मोंतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती। वह महान्

सम्राट् होता है। अपना सम्पूर्ण अधिकार ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष चौगुने फलका भागी होता है; इसमें संशय नहीं है। जो पुरुष तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान करता है, उसे निश्चितरूपसे सौगुने फल प्राप्त होते हैं। जम्बूद्वीपका दान करनेवाले, सम्पूर्ण तीर्थोंमें निवास करनेवाले, समस्त तपस्याओंमें संलग्न सम्पूर्ण श्रेष्ठ स्थानोंके निवासी, सर्वस्व दान करनेवाले तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंके पारङ्गत जो भगवती जगदम्बाके उपासक पुरुष हैं, उन्हें पुनः जगत्में जन्म धारण करना नहीं पड़ता। उनके सामने असंख्य ब्रह्माओंका परिवर्तन हो जाता है, किंतु वे भगवतीके मणिद्वीप नामक उत्तम स्थानमें सुप्रतिष्ठित रहते हैं। भगवतीके मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष अपना मानव-शरीर त्याग करनेके पश्चात् जन्म, मृत्यु एवं जरारहित वैभवसम्पन्न दिव्य रूप धारण करके भगवती जगदम्बाकी सेवामें संलग्न हो जाते हैं। उन्हें सारूप्यमुक्ति प्राप्त हो जाती है। वे मणिद्वीपमें निवास करते हैं। देवता, सिद्ध तथा अखिल विश्व—ये सब-के-सब समयानुसार नष्ट हो जाते हैं, किंतु देवीभक्तोंका कभी नाश नहीं होता। जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था उनके निकट नहीं आ सकते।

जो पुरुष कार्तिक मासमें श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह तीन युगोंतक भगवान्के भवनमें विराजमान होता है। फिर उत्तम कुलमें उसका जन्म होता और निश्चितरूपसे भगवान्के प्रति उसके मनमें भक्ति उत्पन्न होती है। भारतमें रहनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंमें वह प्रमुख होकर भूमण्डलपर सुप्रतिष्ठित होता है। जो पुरुष अरुणोदयके मध्य समयमें गङ्गामें स्नान करता है, उसे दीर्घकालतक भगवान् श्रीहरिके मन्दिरमें आनन्द लाभ करनेका सुअवसर मिलता है। फिर वह उत्तम योनिमें आकर भगवान् श्रीहरिके मन्त्रकी उपासना करता हुआ शरीर धारण किये रहता है। पुनः यथासमय मानव-शरीरको त्याग-कर 'भगवद्धाम'में जाता है। वहाँसे पुनः पृथ्वी-तलपर आनेकी स्थिति उसके सामने नहीं आती। भगवान्का सारूप्य प्राप्त कर वह उन्हींकी सेवामें सदा लगा रहता है। गङ्गामें सर्वदा स्नान करनेवाला पुरुष सूर्यकी भाँति भूमण्डलपर पवित्र माना जाता है। उसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है, यह निश्चित है। उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। वह वैकुण्ठलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है। उस तेजस्वी पुरुषको जीवन्मुक्त कहना चाहिये। सम्पूर्ण तपस्वी उसका आदर करते हैं। जो पुरुष भारतवर्षमें सुवासित जल दान करता है वह कैलासमें आनन्द भोगता रहता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद और वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् होता है। वैशाख मासमें ब्राह्मणको सत्तू दान करनेवाला पुरुष शिवमन्दिरमें प्रतिष्ठित होता है। भारतवर्षमें रहनेवाला जो प्राणी श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत करता है, वह सौ जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। वह दीर्घकालतक वैकुण्ठलोकमें आनन्द भोगता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म लेनेपर उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है—यह निश्चित है। इस भारतवर्षमें ही शिवरात्रिका व्रत करनेवाला

पुरुष दीर्घकालतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो शिवरात्रिके दिन भगवान् शंकरको बिल्वपत्र चढ़ाता है वह अनेक युगोंतक कैलासमें सुखपूर्वक वास करता है। पुनः श्रेष्ठ योनिमें जन्म लेकर भगवान् शिवका परम भक्त होता है। विद्या, पुत्र, सम्पत्ति, प्रजा और भूमि—ये सभी उसके लिये सुलभ रहते हैं।

जो व्रती पुरुष चैत्र अथवा माघ मासमें शंकरकी पूजा करता है तथा बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन भक्तिपूर्वक नृत्य करनेमें तत्पर रहता है, वह चाहे एक मास, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।

साध्वी ! जो पुरुष भगवतीकी शरत्कालीन महापूजा करता है; साथ ही नृत्य, गीत तथा वाद्य आदिके द्वारा नाना प्रकारके उत्सव मनाता है, वह पुरुष भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर श्रेष्ठ योनिमें जन्म पाकर वह राजाधिराज होता है। निर्मल बुद्धि, अतुल सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि, महान् प्रभाव तथा हाथी, घोड़े आदि वाहन—ये सभी उसे प्राप्त हो जाते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। जो पुरुष पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें रहकर शुक्लाष्टमीके अवसरपर महालक्ष्मीकी उपासना भक्तिपूर्वक निरन्तर एक पक्षभर करता है, सोलह प्रकारके उत्तम उपचारोंसे भलीभाँति पूजा करनेमें संलग्न रहता है, वह पुरुष गोलोकमें रहनेका अधिकारी होता है।

भारतवर्षमें कार्तिककी पूर्णिमाके अवसर-पर सैकड़ों गोप एवं गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनानेकी बड़ी महिमा है। उस दिन पाषाणमयी प्रतिमामें सोलह प्रकारके उपचारोंद्वारा श्रीराधा-कृष्णकी पूजा करे। इस पुण्यमय कार्यको सम्पन्न करनेवाला पुरुष गोलोकमें वास करता है और भगवान् श्रीकृष्णका परम भक्त बनता है। उसकी भक्ति क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होती है। वह सदा भगवान् श्रीहरिका मन्त्र जपता है। वहाँ भगवान् श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके उनका प्रमुख पार्षद होता है। जरा और मृत्युको जीतनेवाले उस पुरुषका पुनः वहाँसे पतन नहीं होता।

जो पुरुष शुक्ल अथवा कृष्ण पक्षकी एकादशीका व्रत करता है, उसे वैकुण्ठमें रहनेकी सुविधा प्राप्त होती है। फिर भारत-वर्षमें आकर वह भगवान् श्रीकृष्णका अनन्य उपासक होता है। क्रमशः भगवान् श्रीहरिके प्रति उसकी भक्ति सुदृढ़ होती जाती है। शरीर त्यागनेके बाद पुनः गोलोकमें जाकर वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है। पुनः उसका संसारमें आना नहीं होता। जो पुरुष भाद्रपद मासकी शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन इन्द्रकी पूजा करता है, वह सम्मानित होता है। जो प्राणी भारतवर्षमें रहकर रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा करके हविष्यान्न भोजन करता है, वह सूर्यलोकमें विराजमान होता है। फिर भारतवर्षमें जन्म पाकर आरोग्यवान् और धनाढ्य पुरुष होता है। ज्येष्ठ महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीके दिन जो व्यक्ति भगवती सावित्रीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकमें प्रतिष्ठित

होता है। फिर वह पृथ्वीपर आकर श्रीमान् एवं अतुल पराक्रमी पुरुष होता है। साथ ही वह चिरञ्जीवी, ज्ञानी और वैभवसम्पन्न होता है। जो मानव माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिके दिन संयमपूर्वक उत्तम भक्तिके साथ षोडशोपचारसे भगवती सरस्वतीकी अर्चना करता है, वह मणिद्वीपमें स्थान पाता है। जो भारतवासी व्यक्ति जीवनभर भक्तिके साथ नित्यप्रति ब्राह्मणको गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह वैकुण्ठमें सुख भोगता है। भारतवर्षमें जो प्राणी ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो भारतवासी व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा दूसरेको कीर्तन करनेके लिये उत्साहित करता है, वह एक युगतक वैकुण्ठमें विराजमान होता है। यदि नारायणक्षेत्रमें नामोच्चारण किया जाय तो करोड़ों गुना अधिक फल मिलता है। जो पुरुष नारायणक्षेत्रमें भगवान् श्रीहरिके नामका एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है। वह पुनः जन्म न पाकर विष्णुलोकमें विराजमान होता है*। उसे भगवान्की सारूप्यता प्राप्त हो जाती है। वहाँसे वह फिर गिर नहीं सकता। उसके हृदयमें भक्ति सुदृढ़ हो जाती है। फिर वह भगवन्मय बन जाता है।

जो पुरुष प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवलिङ्गकी अर्चा करता है और जीवनभर इस नियमका पालन करता रहता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है और लम्बे समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित रहता है; तत्पश्चात् भारतवर्षमें आकर राजेन्द्रपदको सुशोभित करता है। निरन्तर शालग्रामकी पूजा करके उनका चरणोदक पान करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष अतिदीर्घकालपर्यन्त वैकुण्ठमें विराजमान होता है। उसे दुर्लभ भक्ति सुलभ हो जाती है। संसारमें उसका पुनः आना नहीं होता। जिसके द्वारा सम्पूर्ण तप और व्रतका पालन होता है, वह पुरुष इन सत्कर्मोंके फलस्वरूप वैकुण्ठमें रहनेका अधिकार पाता है। पुनः उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। जो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसे निर्वाणपद मिल जाता है। पुनः संसारमें उसकी उत्पत्ति नहीं होती। भारत-जैसे पुण्यक्षेत्रमें जो अश्वमेधयज्ञ करता है, वह इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है। राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्यको इससे चौगुना फल मिलता है।

सम्पूर्ण यज्ञोंसे भगवतीका यज्ञ श्रेष्ठ कहा गया है। वरानने! विष्णु और ब्रह्माने पूर्वकालसे देवीकी आराधना की है। त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये महाभाग शंकरने देवीकी आराधना की थी। सुन्दरी! सम्पूर्ण यज्ञोंमें भगवती भुवनेश्वरीका यज्ञ श्रेष्ठ है। त्रिलोकीमें इसके समान कोई भी यज्ञ नहीं है। पतिव्रते!

---

* नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्। न लभेत् स पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते॥
(९।३०।१०७-१०८)

पूर्व समयकी बात है, दक्ष प्रजापति और शंकरमें कलह मच गया था। उस अवसरपर दक्ष प्रजापतिने भगवती जगदम्बाका पूजन किया था। ब्राह्मणोंने क्रोधमें आकर नन्दीको शाप दे दिया। एतदर्थ भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञका विध्वंस कर डाला। पुनः दक्ष प्रजापति देवीका यज्ञ करनेमें संलग्न हो गये। धर्म, कश्यप, शेषनाग, कर्दम मुनि, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुव भगवती भुवनेश्वरीका यज्ञ कर चुके हैं। देवीका यज्ञ करनेवाला पुरुष हजारों राजसूय-यज्ञोंका फल निश्चितरूपसे पा जाता है। देवीभक्त सौ वर्षोंतक जीवन धारण करके अन्तमें जीवन्मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है।

भामिनी ! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, वैष्णव पुरुषोंमें नारद, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गङ्गा, पुण्यात्मा पुरुषोंमें शिव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड़, स्त्रियोंमें भगवती मूलप्रकृति राधा, सरस्वती और वसुन्धरा, चञ्चल स्वभाववाली इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजाओंमें राजा, वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमानोंमें लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती, पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्ण-पत्नियोंमें श्रीराधा सर्वोपरि मानी जाती हैं; उसी प्रकार सम्पूर्ण यज्ञोंमें 'देवीयज्ञ' श्रेष्ठ माना जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान, अखिल यज्ञोंकी दीक्षा तथा समस्त व्रतों एवं तपस्याओं और चारों वेदोंके पाठका तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल अन्तमें यही होता है कि भगवती भुवनेश्वरीकी उपासनाको करके पुरुष मुक्ति प्राप्त कर ले। पुराणों, वेदों और इतिहासोंमें सर्वत्र भगवती जगदम्बाके चरण-कमलोंकी उपासनाको ही सारभूत माना गया है। देवीके स्वरूपका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, स्तोत्रोंका पाठ, नमस्कार, जप, उनका चरणोदक और नैवेद्य ग्रहण करना यह नित्यका परम कर्तव्य है। साध्वी ! इसे सभी चाहते हैं और सर्वसम्मतिसे यही सिद्ध भी है।

वत्से ! अब तुम मूलप्रकृति निर्गुण परब्रह्मकी निरन्तर उपासना करो। मैं तुम्हारे पतिदेवको लौटा देता हूँ। इन्हें ले जाओ और सुखपूर्वक अपने भवनमें वास करो। मनुष्योंका यह मङ्गलमय कर्मविपाक मैंने तुमको सुना दिया। यह प्रसङ्ग सर्वेप्सित, सर्वसम्मत तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! धर्मराजके मुखसे उपर्युक्त वर्णन सुनकर सावित्रीकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक पड़े। उसका शरीर पुलकायमान हो गया। उसने पुनः धर्मराजसे कहा।

सावित्री बोली—धर्मराज ! वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो ! मैं किस विधिसे उन भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करूँ; यह बताइये। भगवन् ! मैं आपके द्वारा मनुष्योंके मनोहर शुभ कर्मका विपाक सुन चुकी। अब आप मुझे अशुभ कर्म-विपाककी व्याख्या सुनानेकी कृपा करें।

ब्रह्मन् ! सती सावित्री इस प्रकार कहकर फिर भक्तिसे अत्यन्त नम्र हो वेदोक्त स्तुतिका पाठ करके धर्मराजकी स्तुति करने लगी।

सावित्रीने कहा—प्राचीन कालकी बात है, महाभाग सूर्यने पुष्करमें तपस्याके द्वारा धर्मकी उपासना की। तब धर्मने जिन्हें पुत्र-रूपसे अपनेको प्रदान किया, उन भगवान् धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ। जो सम्पूर्ण भूतोंमें समता रखते हैं, सबके साक्षी हैं, अतः जिनका नाम शमन है, उन भगवान् शमनको मैं प्रणाम करती हूँ। जो कालके अनुसार इच्छापूर्वक विश्वके सम्पूर्ण प्राणियों-का अन्त करते हैं, उन भगवान् अन्तकको मैं प्रणाम करती हूँ। जो जगत्पर नियन्त्रण करनेके लिये तथा पापीजनोंको शुद्ध करनेके निमित्त सम्पूर्ण जीवोंके शासक बनकर हाथमें दण्ड धारण करते हैं, उन भगवान् दण्डधरको मेरा प्रणाम है। जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंके समयका निरन्तर परिगणन करते हैं, जो परम दुर्धर्ष हैं, उन भगवान् कालको मैं प्रणाम करती हूँ। जो तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, संयमी, जितेन्द्रिय और जीवोंके लिये कर्मफल देनेमें उद्यत हैं, उन भगवान् यमको मैं प्रणाम करती हूँ। जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सम्पूर्ण ज्ञानोंसे सम्पन्न, पुण्यात्मा पुरुषोंके लिये मित्ररूप तथा पापियोंके लिये कष्टप्रद हैं, उन 'पुण्यमित्र' नामसे प्रसिद्ध भगवान् धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ। जिनका जन्म ब्रह्माके अंशसे हुआ है तथा ब्रह्मतेजसे जो सदा प्रज्वलित रहते हैं एवं जिनके द्वारा परब्रह्मका सतत ध्यान होता रहता है, उन 'ईश' नामधारी भगवान् धर्मराजको मेरा प्रणाम है।*

मुने ! इस प्रकार प्रार्थना करके सावित्रीने धर्मराजको प्रणाम किया। तब धर्मराजने सावित्रीको भगवती मूलप्रकृतिके मन्त्र तथा शुभ कर्मके विपाकका प्रसङ्ग सुनाया। जो मनुष्य प्रातः उठकर निरन्तर इस यमाष्टकका पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि महान् पापी व्यक्ति भी भक्तिसे सम्पन्न होकर निरन्तर इसका पाठ करता है तो यमराज अपने काय-व्यूहसे निश्चित ही उसकी शुद्धि कर देते हैं।

(अध्याय ३०-३१)

☆

* तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा। धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः। अतो यन्नाम शमन इति तं प्रणमाम्यहम्॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्। कामानुरूपं कालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्॥
बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे। नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम्॥
विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च संततम्। अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्॥
तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी संजितेन्द्रियः। जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम्॥
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्। पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम्॥
यज्जन्म ब्रह्मणोऽशेन ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम्॥
(९।३१।७—१४)

# नरककुण्डों और उनमें जानेवाले पापियों तथा पापोंका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! रविनन्दन धर्मराजने सावित्रीको मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरीका महामन्त्र तथा विधिपूर्वक उपासनाका प्रकार बतलाकर अब 'अशुभ कर्मका विपाक' कहना आरम्भ किया।

धर्मराजने कहा—पतिव्रते ! मानव शुभ कर्मके विपाकसे नरकमें नहीं जा सकता। नरकमें जानेमें कारण हैं—अशुभ कर्मका विपाक। अतएव अब मैं अशुभ कर्मका विपाक बतलाता हूँ, सुनो। पुराणभेद और नामभेदसे नाना प्रकारके स्वर्ग हैं। प्राणी अपने-अपने कर्मोंके प्रभावसे उन स्वर्गोंमें जाते हैं। नरकोंमें जाना कोई मनुष्य नहीं चाहते, परंतु अशुभ कर्म-विपाक उन्हें नरकमें ले जानेके लिये विवश कर देते हैं। नरकोंके नाना प्रकारके कुण्ड हैं। ये सभी कुण्ड बड़े ही विस्तृत हैं। पापियोंको दुःखका भोग कराना ही इन कुण्डोंका प्रयोजन है। वत्से ! ये भयंकर कुण्ड अत्यन्त भयावह तथा कुत्सित हैं। इनमें छियासी कुण्ड तो प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अप्रसिद्ध भी हैं। साध्वी ! उन प्रसिद्ध कुण्डोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो—वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, दुःसह गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, आसृक्कुण्ड, अश्रुकुण्ड, गात्रमलकुण्ड, कर्णकुण्ड, मविटकुण्ड, मांस-कुण्ड, नक्रकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, अस्थिकुण्ड, ताम्रकुण्ड, क्लेशप्रद महान् प्रतप्त लोहकुण्ड, चर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तीक्ष्ण-कण्टककुण्ड, विषविस्तारक विषकुण्ड, तैल-प्रतप्तकुण्ड, दुर्वह कुन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, दुरन्तक सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दंशकुण्ड, भयंकर गरलकुण्ड। सुव्रते ! ऐसे ही वज्रसदृश दाँतोंवाले वृश्चिक आदि भयंकर जीवोंके कुण्ड, शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड (द्वितीय), काककुण्ड, मन्थानकुण्ड, बीजकुण्ड, वज्रकुण्ड, दुःसह तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, महान् असह्य ज्वाला-कुण्ड, भस्मकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तसूचीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, नक्रमुखकुण्ड, गोकामुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड तथा कुम्भीपाक, कालसूत्र, मत्स्योद, कृमिकुण्ड, पांशुभोज्य, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, प्रकम्पन, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन एवं ताण्डन, ज्वालरन्ध्र, देहचूर्ण, दलन, शोषणक, शूर्पज्वालामुख, धूमान्ध तथा नागवेष्टन कुण्ड हैं। सावित्री ! ये सभी कुण्ड पापियोंको क्लेश देनेके लिये निर्मित हैं। दस लाख अनुचर सदा इनकी देख-रेखमें नियुक्त रहते हैं। उन अनुचरोंके हाथोंमें दण्ड रहते हैं। वे भयंकर एवं मदाभिमानी अनुचर खड्ग लिये रहते हैं। उनके हाथोंमें भयावह गदा और शक्ति शोभा पाती है। वे सदा क्रोधमें तमतमाये रहते हैं। उनमें दयाका नामतक नहीं रहता। उन्हें कोई किसी प्रकार भी रोक नहीं सकता। उन तेजस्वी एवं निर्भीक अनुचरोंकी ताँबेके सदृश रक्तवर्णकी आँखें कुछ-कुछ पीले रंगकी हैं। योगसिद्धिसे सम्पन्न होनेके कारण वे नाना प्रकारके वीरोंका रूप धारण कर लिया करते हैं। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर पापियोंको वे

स्वयं दिखायी पड़ते हैं। देवी, सूर्य और गणपतिके उपासक तथा अपने कर्मोंमें निरत रहनेवाले सिद्ध एवं योगी पुरुषोंको अपने पुण्य-प्रभावसे उनके सम्मुख नहीं जाना पड़ता। जो अपने धर्ममें सदा निरत रहते हैं, जिनका हृदय विशाल है तथा जो पूर्ण स्वतन्त्र हैं, जिन्हें स्वप्नमें भी कहीं भी इष्टदेवका दर्शन प्राप्त हो सका है, ऐसे वैष्णव पुरुषोंको वे बलवान् एवं निःशङ्क अनुचर कभी दिखायी नहीं देते।

साध्वी ! इन कुण्डोंकी संख्याका निरूपण तो कर चुका, अब किन पापियोंको किन कुण्डोंमें जाना पड़ता है, उन्हें बताता हूँ, सुनो।

साध्वी ! भगवान् श्रीहरिकी सेवामें संलग्न रहनेवाले पुण्यात्मा, योगी, सिद्ध, व्रती, तपस्वी और ब्रह्मचारी पुरुष नरकमें नहीं जाते—यह ध्रुव सत्य है। जो शक्तिशाली मनुष्य बलके अभिमानमें आकर अपने कटुवचनोंद्वारा बान्धवोंको दग्ध करता है, वह व्यक्ति अग्निकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे नरकमें वास करना पड़ता है। फिर वह तीन बार पशुयोनिमें जन्म पाता है। जो मूर्ख मानव घरपर आये हुए भूखे और प्यासे दुःखी ब्राह्मणको भोजन नहीं देता, वह तप्तकुण्ड नामक नरकमें जाता है। दुःखप्रद नरकमें वास करनेके पश्चात् सात जन्मोंतक वह पक्षी होता है। जो मनुष्य रविवार, सूर्यसंक्रान्ति, अमावस्या और श्राद्धके दिन वस्त्रोंको क्षार पदार्थसे धोता है, उसे क्षारकुण्डमें जाना पड़ता है। जो अधम मानव मूलप्रकृति भगवती जगदम्बा, वेद, शास्त्र, पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी तथा सरस्वती आदि देवियोंकी सदा निन्दा करते हैं, वे सभी उन अत्यन्त भयंकर कुण्डोंमें जाते हैं, जिनसे बढ़कर दुःखदायी दूसरा कोई कुण्ड होगा ही नहीं। उन कुण्डोंमें दीर्घ कालतक रहनेके पश्चात् पुनः सर्पयोनिमें उनकी उत्पत्ति होती है। अपने अथवा दूसरे द्वारा उपलब्ध हुई ब्राह्मण और देवताओंकी वृत्तिको छीननेवाला व्यक्ति विट्कुण्ड नामक नरकमें जाता है। पुनः पृथ्वीपर आकर वह विष्ठाके कीड़ेकी योनिमें रहता है। जो दूसरोंके तड़ागमें बिना उसकी आज्ञा लिये तड़ाग निर्माण कराता है (तड़ाग बनवानेका झूठा यश लेता है) तथा जो वहाँ मूत्र आदिका उत्सर्ग करता है, ऐसा व्यक्ति उस दोषके कारण मूत्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसे वहाँ वे ही मूत्रादि अपवित्र वस्तुएँ भोजनके लिये मिलती हैं। पुनः भारत-वर्षमें वह बैल होकर रहता है। मधुर पदार्थको अकेले ही खा जानेवाला व्यक्ति श्लेष्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है। तत्पश्चात् वह प्रेत बनता है। जो पिता-माता, गुरु, स्त्री, पुत्र-पुत्री अथवा अनाथका भरण-पोषण नहीं करता, वह गरल (विष)-कुण्ड नामक नरकमें जाता है और खानेके लिये उसे विष ही मिलता है। तत्पश्चात् वह भूतयोनिमें जाता है। जो मनुष्य अतिथिको क्रोधभरे नेत्रोंसे देखता है, उस पापीके दिये हुए जलको पितर और देवता ग्रहण नहीं करते। जिसके द्वारा ब्रह्महत्या-जैसे घोर पाप बन जाते हैं तो इनके फलस्वरूप प्राणी दूषिकाकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँ दूषित पदार्थ भोजन करके रहना पड़ता है। फिर भूतकी योनिमें रहनेके पश्चात् वह पवित्र होता है। यदि ब्राह्मणको दी हुई वस्तु फिर दूसरेको दे दी जाय तो उस दूषित कर्मके प्रभावसे दाताको वसाकुण्ड नामक नरकमें जाना पड़ता है। तदनन्तर सात

जन्मोंतक उसे गिरगिट होना पड़ता है। जो स्त्री परपुरुषसे अथवा पुरुष परायी स्त्रीसे अवैध सम्बन्ध करता है, वह शुक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसमें कीटयोनिमें जन्म पाता है। तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है।

जो गुरु अथवा ब्राह्मणको मारकर उनके शरीरसे रक्त बहा देता है, उसे आसृक्कुण्ड नामक नरककी प्राप्ति होती है। उसमें रहकर वह रक्तपान करता है। तदनन्तर सात जन्मोंतक बाघ होता है। फिर मानवयोनिमें जन्म पाता है। भगवद्गुणगान करनेवाले भक्तको देखकर खेद-पूर्वक जिसकी आँखोसे आँसू गिरने लगते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्णके गुणसम्बन्धी संगीतके अवसरपर जो अनुचितरूपसे उपहास करता है, वह मानव सौ वर्षोंतक अश्रुकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। भोजनके लिये उसे अश्रु ही मिलते हैं। तत्पश्चात् तीन जन्मोंतक चाण्डालकी योनिमें उसका जन्म होता है, तब वह शुद्ध होता है। जो मनुष्य सुहृद्के साथ निरन्तर शठताका व्यवहार करता है, वह गात्रमलकुण्ड नामक नरकमें जाता है। इसके बाद उसे तीन जन्मोंतक गदहेकी तथा तीन जन्मोंतक शृगालकी योनि प्राप्त होती है। तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है। जो बहरेको देखकर हँसता और अभिमानवश उसकी निन्दा करता है, उसका कर्णविद् नामक नरककुण्डमें वास होता है और वहाँ उसे कानोंकी मैल भोजनके लिये मिलती है। फिर परम दरिद्र होकर जन्म लेता है और उसके कानोंमें सुननेकी शक्ति नहीं रहती। जो मनुष्य लोभवश अपने भरण-पोषणके लिये प्राणियोंकी हिंसा करता है, वह बहुत दीर्घकालतक मज्जाकुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है। वहाँ मज्जा ही उसे भोजनके लिये मिलती है। इसके बाद वह खरगोशकी योनिमें जन्म पाता है; फिर सात जन्मोंमें मछलीका जीवन व्यतीत करता है। तीन जन्मोंमें सूअर और सात जन्मोंमें मुर्गा होता है। फिर कर्मोंके प्रभावसे उसे मृग आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। तदनन्तर वह शुद्ध होता है। जो अपनी कन्याको पाल-पोसकर उसे बेचता है, वह अर्थलोभी महान् मूर्ख मानव मांसकुण्ड नामक नरकमें जाता है। कन्याका मांस ही उसे भोजनके लिये मिलता है। मेरे अनुचर उसे डंडोंसे पीटते हैं। मांस और रक्तका भार मस्तकपर उठाकर वह ढोता रहता है। तदनन्तर वह पापी जन्म पाकर कन्याकी विष्ठाका कीड़ा होता है। पश्चात् सात जन्मोंतक वधिक होता है। उसे तीन जन्मतक सूअर और सात जन्मोंतक मुर्गेकी योनि मिलती है। फिर उसे मेंढक, जोंक और कौएकी योनि मिलती है। तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है।

जो मनुष्य व्रतों, श्राद्धों और उपवासके अवसरपर क्षौर कर्म कराता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंके लिये अपवित्र माना जाता है। साध्वी ! ऐसा करनेवाला व्यक्ति नखकुण्डमें स्थान पाता है। जो मानव विष्णुपद नामक तीर्थमें पितरोंको पिण्ड नहीं देता है, वह अस्थिकुण्ड नामक नरकमें वास पाता है। फिर मानव-जन्म पाकर वह लँगड़ा होता है। महान् दरिद्रताके कारण अनेक स्थानोंपर भटकनेके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है। जो महामूर्ख मानव अपनी गर्भवती स्त्रीसे शारीरिक सेवा चाहता है, वह जलते हुए ताम्रकुण्ड नामक नरकमें वास पाता है। कायर तथा सद्यःऋतुस्नाताका अन्न खानेवाला व्यक्ति जलते हुए लौहकुण्ड नामक नरकमें रहता है।

इसके बाद उसे रजककी योनि और कौएकी योनि प्राप्त होती है। जो चाम छूकर बिना हाथ धोये देवद्रव्यका स्पर्श करता है, वह चर्मकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। जो बिना निमन्त्रण मिले शूद्रके घर जाकर उसका अन्न खाता है, वह ब्राह्मण तप्तसुर नामक नरककुण्डमें स्थान पाता है। जो कठोर वचन कहकर सदा स्वामीको कष्ट पहुँचाता है, वह तीक्ष्णकण्टक नामक नरककुण्डमें कण्टकभोजी बनकर वास करता है। मेरे दूत उसे दण्डसे कष्ट पहुँचाते हैं। जो निर्दयी व्यक्ति प्राणीको विष देकर मार डालता है, वह हजार वर्षोंतक विषभोजी होकर विषकुण्डमें रहता है। फिर सात जन्मोंतक नरघाती अर्थात् जल्लाद होता है। सात जन्मोंमें कोढ़ी होता है। उसके प्रत्येक अङ्गमें फोड़े-फुंसियाँ कष्ट देती हैं। तत्पश्चात् उसकी शुद्धि होती है। जो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जन्म पाकर बैल जोतनेवाला व्यक्ति डंडेसे बैलको स्वयं मारता है अथवा भृत्यद्वारा मरवाता है, वह तप्ततैल नामक नरककुण्डमें रहता है। उस बैलके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे बैल होकर कष्ट भोगना पड़ता है। साध्वी ! जो निर्दयी व्यक्ति भालेसे अथवा आगमें संतप्त किये गये लोहेसे अवहेलनापूर्वक प्राणीकी हिंसा करता है, वह युगोंतक कुन्तकुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है। इसके बाद मानवयोनिमें जन्म पाकर उदर-रोगसे दुःखी होता है। यों जो मांस खाता तथा इष्टदेवताको अर्पण किये बिना भोजन करता है, वह मांसलोभी नीच द्विज कृमिकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसे आहारके रूपमें मांस उपलब्ध होता है। तदुपरान्त तीन जन्मोंतक म्लेच्छकी योनि मिलती है। कृष्ण सर्पको तथा जिसके मस्तकपर कमलका चिह्न हो, ऐसे सर्पको जो मारता है, वह मानव सर्पकुण्ड नामक नरकका अधिकारी होता है,* उसे वहाँ सर्प काटते हैं। सर्पका विट् उसे खाना पड़ता है। तत्पश्चात् वह सर्पकी योनि पाता है। तदुपरान्त थोड़ी आयुवाला मानव होता है। उसके शरीरमें दाद आदि चर्मरोग होते हैं।

ब्रह्माके विधानमें रक्तपान जिनकी जीविका ही निश्चित है, उन मच्छर आदि क्षुद्र जन्तुओंको जो मारते हैं, वे मृत जीवोंके दंशकुण्ड और मशककुण्ड नामक नरकमें निवास करते हैं। दिन-रात वे जन्तु उन्हें काटते रहते हैं। उन्हें खानेको कुछ मिलता नहीं। तदुपरान्त उस क्षुद्र जन्तुकी योनिमें उनका जन्म होता है। फिर वे अङ्गहीन मानव होते हैं। जो दण्ड न देनेयोग्य व्यक्तिको अथवा ब्राह्मणको दण्ड देता है; वह वज्रद्रंष्ट्र नामक नरककुण्डमें जाता है। उसमें कीड़े-ही-कीड़े रहते हैं। उसे कीड़े खाते हैं और वह हाहाकार मचाया करता है। फिर सात जन्मोंतक सूअर और तीन जन्मोंतक कौआ होता है। जो मूढ मानव धनके लोभसे प्रजाको सताता है, वह वृश्चिककुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है। पुनः सात जन्मोंतक बिच्छू होता है। तत्पश्चात् मनुष्यकी योनिमें उसकी उत्पत्ति होती है। वह अङ्गहीन और रोगी होकर जीवन व्यतीत करता है। जो ब्राह्मण शस्त्र लेकर दूसरे व्यक्तिके आज्ञानुसार इधर-उधर जानेका काम करता है, कभी संध्या नहीं करता तथा भगवान् श्रीहरिकी

* कृष्ण सर्प तथा चिह्नित सर्प केवल उपलक्षण हैं। सभी सर्पोंके मारनेपर यह यातना भोगनी पड़ती है।

भक्तिसे विमुख रहता है, वह शर, शूल एवं खड्ग नामक नरककुण्डमें जाता है। शस्त्रोंसे उसके अङ्ग निरन्तर छिदते रहते हैं। मदके अभिमानमें चूर रहनेवाला जो व्यक्ति अन्धकार-पूर्ण कारागारमें प्रजाओंको मारता है, उसे अपने दोषके फलस्वरूप गोलकुण्ड नामक नरकमें जाना पड़ता है। वह नरक बड़ा ही भयंकर है। उसमें चारों ओर खौलता हुआ जल भरा रहता है। अन्धकार छाया रहता है। तीखे दाँतवाले कीड़े सर्वत्र फैले रहते हैं। ऐसे दारुण नरकमें वह पड़ा रहता है। तत्पश्चात् मनुष्य होकर उन प्रजाओंका भृत्य बनता है। सरोवरसे निकले हुए नक्र आदि जलचर जीवोंको जो मारता है, वह नक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें आकर कामभावसे परस्त्रीके वक्षःस्थल, श्रोणी, स्तन एवं मुख देखता है, वह काककुण्ड नामक नरकमें वास करता है। जो मूढ मानव भारतवर्षमें जन्म पाकर देवता और ब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है, वह मन्थानकुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है। मेरे दूत उसकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर डंडोंसे उसपर प्रहार करते हैं। इसके बाद वह तीन जन्मोंमें नेत्रहीन तथा सात जन्मोंमें दरिद्री होता है।

देवी ! ताँबे और लोहेकी चोरी करनेवाला मानव बीजकुण्ड नामक नरकमें जाता है। भारतवर्षमें जन्म पाकर देवताओंकी प्रतिमा तथा देवसम्बन्धी द्रव्यकी चोरी करनेवाला मानव दुस्तर वज्रकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे वास करता है। तीखे वज्रोंसे उसका शरीर दग्ध-सा होता रहता है। देवता और ब्राह्मणके रजत, गव्य (दूध-दही आदि) पदार्थ तथा तोतेकी चोरी करनेवाला व्यक्ति तप्तपाषाण नामक नरककुण्डमें स्थान पाता है—यह निश्चित है। फिर तीन जन्मोंतक कछुआ, तीन जन्मोंतक श्वेतकुष्ठी और एक जन्ममें कोढ़ी, फिर उज्ज्वल पक्षी, इसके बाद अल्पायु मानव होता है। रक्त-विकार और शूलरोगसे उसे असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है। जो व्यक्ति ब्राह्मण और देवताके पीतल तथा काँसेके पात्रका अपहरण करता है, वह तीक्ष्ण पाषाणकुण्डमें अपने रोमपर्यन्त वर्षोंतक स्थान पाता है। पुंश्चली तथा उसके द्रव्यसे जीविका चलानेवाले व्यक्तिका जो अन्न खाता है, वह लालाकुण्ड (जिसमें लार-ही-लार भरी रहती है) नरकमें वास करता है। फिर, नरकदुःख भोगनेके पश्चात् मानव बनकर नेत्ररोग और शूलरोगसे कष्ट पाता है।

साध्वी ! जो ब्राह्मण तथा देवताके धान्य आदिसे सम्पन्न खेती, ताम्बूल, आसन एवं शय्याका अपहरण करता है, वह पापी मानव चूर्णकुण्ड नामक नरकमें जाता है। चक्र एवं द्रव्य हरनेवाला पापी व्यक्ति चक्रकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। उसे डंडोंकी मार सहनी पड़ती है। गौओं और ब्राह्मणोंके प्रति क्रूर दृष्टि रखनेवाला मानव दीर्घकालतक वक्रकुण्ड नामक नरकमें रहता है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक टेढ़े शरीरवाला तथा अङ्गहीन मनुष्य बनता है। दरिद्रता उसे घेरे रहती है। घृत तथा तेलका अपहरण करनेवाला पातकी ज्वाला-कुण्ड तथा भस्मकुण्ड नामक नरकका अधिकारी होता है। जो मानव सुगन्धित तैल, आँवला तथा अन्य भी किसी उत्तम गन्धवाले द्रव्यका अपहरण करता है, वह दग्धकुण्डसंज्ञक नरकमें रहकर रात-दिन जलता है। साध्वी ! जो बलवान् व्यक्ति किसी दूसरेकी पैतृक भूमिको

छल-बलसे अथवा उसे मारकर छीन लेता है, उसे तप्तसूची नामक नरककुण्डमें स्थान मिलता है। दिन-रात उसका शरीर जलता है। वह नरक ऐसा है, मानो संतप्त तेलका कड़ाहा हो। उसीमें जीव निरन्तर जलता रहता है। जलते रहनेपर भी प्राणीका वह यातना-शरीर नष्ट नहीं होता। इसके बाद वह विष्ठाका कीड़ा होता है। फिर भूमिहीन एवं दरिद्र मानव होता है।

साध्वी ! जो अत्यन्त दारुण एवं निर्दयी व्यक्ति तलवारसे जीवोंको काटता तथा धनके लोभसे नरघाती बनकर मानवकी हत्या करता है, वह असिपत्र नामक नरकमें स्थान पाता है। मेरे दूत तलवारसे निरन्तर उसके अङ्ग काटते हैं। जब वह भोजनके अभावमें चिल्लाता है, तब दूत उसे मारते हैं। फिर सात-सात जन्मोंमें मन्थान नामक जन्तु विशेष, सूअर, मुर्गा, शृगाल और व्याघ्र तथा तीन जन्मोंमें भेड़िया एवं पुनः सात जन्मोंमें मेंढक होता है। तत्पश्चात् वह भारतवर्षमें भैंसेका शरीर पाता है। पतिव्रते ! ग्रामों और नगरोंमें आग लगानेवाला पापी मानव क्षुरधारसंज्ञक नरकका अधिकारी होता है। तीन युगोंतक उसमें रहता है और यमदूत उसके अङ्गको काटते रहते हैं। फिर उसे प्रेतकी योनि मिल जाती है और मुँहसे आग उगलता हुआ वह जगत्में भ्रमण करता है। सात-सात जन्मोंमें अमेध्यभोजी, कबूतर, महान् शूलरोगी एवं गलितकुष्ठी मानव होता है। जो दूसरेकी निन्दा करता है, दूसरेके दोष जाननेमें जिसकी विशेष स्पृहा रहती है तथा जो देवता एवं ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह तीन युगोंतक सूचीमुख नामक नरकमें स्थान पाता है। सूचीमें उसके सभी अङ्ग छिद जाते हैं। फिर बिच्छू, सर्प, वज्रवीट तथा आग फैलानेवाले कीड़ोंकी योनियोंमें सात-सात जन्मोंतक भटकता है। जो गृहस्थोंके घरमें सेंध लगाकर घुस जाता और भीतर पड़ी हुई वस्तुएँ चुरा लेता है तथा गाय, बकरे और भेंड़ोंकी भी चोरी करता है, वह गोकामुख नामक नरकमें जाता है। मेरे दूतोंकी मार खाते हुए तीन युगोंतक उसे वहाँ रहना पड़ता है। साधारण वस्तु चुरानेवाला व्यक्ति नक्रमुखसंज्ञक नरकमें जाता है। मेरे दूतोंकी मार सहते हुए वह वहाँ रहता है। तदुपरान्त उसकी शुद्धि हो जाती है। जो हाथियों-घोड़ों एवं गौओंको मारता है तथा वृक्षोंको काटता है, वह महान् पातकी व्यक्ति गजदंश नामक नरकमें दीर्घकालतक रहता है। मेरे दूत हाथीके दाँत लेकर उन्हींसे उसको निरन्तर पीटते हैं। फिर तीन-तीन जन्मोंतक वह हाथी, घोड़े, गौ एवं म्लेच्छ जातिकी योनिमें उत्पन्न होता है। प्यासी गौके जल पीते समय जो उसे दूर हटा देता है, वह पुरुष गोमुख नामक नरककुण्डमें पड़ता है। वहाँ सब ओर कीड़े और खौलता हुआ जल भरा रहता है। वह उसीमें जलता हुआ वास करता है। इसके बाद दीर्घरोगी एवं दरिद्र मानव होता है।

जो शास्त्रके वचनकी आड़ लेकर गौ, ब्राह्मण, स्त्री, भिक्षुक तथा गर्भकी हत्या करता है एवं अगम्या स्त्रीके साथ गमन करता है, वह महान् नीच व्यक्ति कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है। मेरे दूत निरन्तर मारते हुए उसे चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं। प्रज्वलित अग्नि, कण्टक और खौलते हुए तेलमें एवं गरम लोहे तथा आगसे संतप्त ताँबेपर वह क्षण-क्षणमें गिरता रहता है। फिर गीध, सूअर तथा कौवा और सर्प होता है। तदनन्तर वह विष्ठाका कीड़ा होता है

फिर बैल होनेके पश्चात् कोढ़ी मनुष्य होता है। दरिद्रता उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।

साध्वी ! जो भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी प्रतिमामें, अन्य देवताओं तथा उनके विग्रहोंमें, शिव तथा शिवलिङ्गमें, सूर्य तथा सूर्यकान्त-मणिमें, गणेश और उनकी प्रतिमामें—सर्वत्र भेदबुद्धि करता है, उसे आतिदेशिकी ब्रह्महत्या लगती है। अर्थात् शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार इसे ब्रह्महत्या लगती है। जो अपने गुरु, इष्टदेव और जन्मदाता मातामें भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है। जो विष्णुभक्तोंमें तथा अन्य देवभक्तों, ब्राह्मणोंमें एवं ब्राह्मणेतरोंमें भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है। ब्राह्मणोंका चरणोदक और शालग्रामका जल एक समान पवित्र है। जो इनमें भेद मानता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है। भगवान् शिवके नैवेद्य और श्रीहरिके नैवेद्यमें भेदबुद्धि रखनेवालेको ब्रह्महत्या लगती है। परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण सर्वेश्वरेश्वर हैं। ये सम्पूर्ण कारणोंके कारण हैं। इन सर्वान्तर्यामी आदि पुरुषकी सभी उपासना करते हैं। इनके अनेक रूप मायामय हैं। वस्तुतः ये एक निर्गुण ब्रह्म हैं। जो भगवान् शंकरके साथ इनकी भेदकल्पना करता है, वह आतिदेशिकी ब्रह्म-हत्याका अधिकारी माना जाता है। जो मानव भगवतीके भक्त तथा उनके शास्त्रके प्रति द्वेषबुद्धि रखता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है। वेदमें कहे हुए देवताओं और पितरोंके पूजनका परित्याग करके जो निषिद्ध कर्म करता है, वह ब्रह्महत्याको प्राप्त करता है। जो भगवान् हृषीकेश तथा उनके मन्त्रोपासकोंकी निन्दा करता है; जो पवित्रोंमें भी परम पवित्र हैं, जिनका विग्रह आनन्दमय ज्ञानस्वरूप है तथा जो वैष्णवजनोंके परम आराध्य एवं देवताओंके सेव्य हैं, उन सनातन भगवान् श्रीहरिकी जो पूजा नहीं करते, बल्कि उलटे निन्दा करते हैं, उनको ब्रह्महत्या लगती है। कारण, ब्रह्मस्वरूपिणी मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरी सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। इन महादेवीको सबकी जननी कहा जाता है। सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। सभी निरन्तर इनकी वन्दना करते हैं। इन सर्वकारण-रूपा भगवती जगदम्बाकी जो निन्दा करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या प्राप्त होती है। श्रीकृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी, शिवरात्रि और रविवार-व्रत—ये अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाले हैं। जो ये परमपवित्र पाँच व्रत नहीं करते, वे चाण्डालसे भी अधिक नीच मानव ब्रह्महत्याके भागी होते हैं। जो भारतवासी मानव अम्बुवाचीयोगमें अर्थात् आर्द्रानक्षत्रके प्रथम चरणमें पृथ्वी खोदते तथा जलमें शौच करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है। जो समर्थ होकर भी गुरु, माता, भाई, साध्वी स्त्री, पुत्र तथा अनिन्द्य पुत्रीका भरण-पोषण नहीं करता है, वह ब्रह्महत्याका अधिकारी होता है। जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे वञ्चित है, उसे ब्रह्महत्या लगती है। निरन्तर भगवान् श्रीहरिको भोग लगाकर भोजन नहीं करनेवाला और भगवान् विष्णु तथा पुण्यमय पार्थिवेश्वरकी उपासनासे विमुख रहनेवाला ब्रह्महत्यारा कहा जाता है।

(अब आतिदेशिकी गोहत्या बतलाते हैं—) कोई व्यक्ति गौको मार रहा हो, उसे देखकर जो निवारण नहीं करता, वह गोहत्याका अधिकारी होता है। जो मूर्ख डंडोंसे गौको पीटता है, बैलपर आरूढ़ होता हैं, उसे प्रतिदिन गोवधका पाप लगता है। जो गौओंको जूँठन

देता है तथा बैलपर सवारी करनेवाले व्यक्तिका अन्न खाता है, उसे निश्चय ही गोहत्या लगती है। जो पैरसे अग्निका स्पर्श और गौपर चरणप्रहार करता है तथा स्नान करके बिना पैर धोये देव-मन्दिरमें जाता है, उसे गोवधका पाप लगता है। जो ब्राह्मण कायर पुरुषका तथा योनिजीवी व्यक्तिका अन्न खाता है और संध्या नहीं करता, उसे गोहत्या लगती है। जो स्त्री अपने स्वामी अथवा देवतामें भेदबुद्धि करती तथा कठोर वचनोंसे पतिके हृदयपर आघात पहुँचाती है, उसे निश्चय ही गोहत्या लगती है। जो गौओंके जानेके मार्गको तथा तड़ाग एवं दुर्गको जोतकर उसमें धान बोता है, वह गोहत्याके पापका भागी होता है। राजकीय उपद्रव और दैवी प्रकोपके अवसरपर जो स्वामी यत्नपूर्वक गौकी रक्षा नहीं करता है, बल्कि उसे उलटे दुःख देता है, उस मूढ़ मानवको गोहत्या अवश्य लगती है। जो अतिथियोंके लिये सदा 'नहीं' ही किया करता, झूठ बोलता और दूसरोंको ठगता तथा देवता और गुरुसे द्वेष करता है, उसे गोहत्याका पाप लगता है। जो देवप्रतिमा, गुरु और ब्राह्मणको देखकर संदेह उत्पन्न करके उन्हें प्रणाम नहीं करता है, उसे गोहत्या अवश्य लगती है। जो ब्राह्मण प्रणाम करनेवाले व्यक्तिको क्रोधमें आकर आशीर्वाद नहीं देता तथा विद्यार्थीको विद्या नहीं पढ़ाता, उसे गोहत्या लगती है।

गुरुपत्नी, राजपत्नी, सपत्नी, माता, पुत्री, पुत्रवधू, सास, गर्भवती कोई स्त्री, भ्रातृकन्या, पतिव्रता, सहोदर भाईकी पत्नी, भाभी, बहन, फूआ, बहनकी सास, शिष्या, शिष्य-पत्नी, भानजेकी स्त्री, भाईके पुत्रकी पत्नी—इन सबको ब्रह्माजीने अगम्या बतलाया है। जो पुरुष कामभावसे इनपर दृष्टिपात करता है, उसे अधम मानव कहा गया है। वेदोंमें उसे मातृगामी कहा गया है। उसे ब्रह्महत्याका पाप-फल प्राप्त होता है। किसी भी सत्कर्ममें उसे नहीं लिया जा सकता। वह महापापी अत्यन्त दुष्कर कुम्भीपाक नामक नरकमें जाता है। भद्रे! मैंने नरकोंमें जानेवाले लोगोंके कुछ लक्षण बतला दिये। इन नरककुण्डोंसे अतिरिक्त नरकोंमें जो जाते हैं, उनका प्रसंग कहता हूँ, सुनो।

साध्वी! जो द्विज पुंश्चलीका अन्न खाता तथा उसके साथ गमन करता है, पतिव्रते! मरनेके पश्चात् वह 'कालसूत्र' नामक अत्यन्त दुर्गम नरकमें जाता है। इसके बाद रोगी होता है। एक पतिकी सेवा करनेवाली स्त्री 'पतिव्रता' कहलाती है। दोसे प्रेम करनेवालीको 'कुलटा' कहते हैं। तीनसे सम्बन्ध रखनेवालीको 'धर्षिणी' कहते हैं। चारके पास जानेवाली पुंश्चली मानी जाती है। पाँचके साथ गमन करनेवाली स्त्रीकी 'वेश्या' संज्ञा होती है। छः पति बनानेवाली 'पुङ्गी' कहलाती है। इससे अधिक सात, आठ तथा चाहे जितने पुरुषोंके पास जानेवाली स्त्रीको 'महावेश्या' कहते हैं। जो द्विज कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, पुङ्गी, वेश्या अथवा महावेश्याके साथ गमन करता है, वह 'मत्स्योद' नामक नरकमें जाता है—यह निश्चित है। कुलटागामी सौ वर्षोंतक, धर्षिणीगामी चार सौ वर्षोंतक, पुंश्चलीगामी छः सौ वर्षोंतक, वेश्यागामी आठ सौ वर्षोंतक, पुङ्गीगामी एक हजार वर्षोंतक तथा महावेश्यागामी कामुक मानव इससे दसगुने वर्षोंतक इस मत्स्योद नरकमें वास करता है। यमदूत उसपर प्रहार करते हैं। फिर कुलटागामी तित्तिर, धर्षिणीगामी

कौआ, पुंश्चलीगामी कोयल, वेश्यागामी शृगाल, पुङ्गीगामी सूअर तथा महावेश्यागामी सेमलका वृक्ष होकर सात जन्मोंतक पापका फल भोगते हैं।

जो ज्ञानहीन मानव सूर्यग्रहण अथवा चन्द्र-ग्रहणके समय भोजन करता है, वह अरुन्तुद नामक नरकमें जाता है। जितने अन्नके दाने खाता है उतने वर्षोंतक उसे उस नरकमें वास करना पड़ता है। इसके बाद वह उदररोगसे पीड़ित मानव होता है। फिर गुल्मरोगी, काना और दन्तहीन होता है। जो अपनी कन्याका वाग्दान करके किसी दूसरे वरके साथ उसका विवाह करता है, वह पांसुकुण्ड नामक नरकमें स्थान पाता है। पांसु ही उसे भोजनके लिये मिलता है। साध्वी ! उससे द्रव्य लेनेवाला व्यक्ति पांसुवेष्ट नामक नरकमें निवास करता है। शयन करनेके लिये उसे बाणोंकी शय्या मिलती है। मेरे दूतोंकी मार भी खानी पड़ती है। जो कुतर्कद्वारा ब्राह्मणको चुप करा देता है तथा जिसके भयसे ब्राह्मण काँपता है, वह व्यक्ति प्रकम्पन नामक नरकमें वास करता है। जो स्त्री क्रोधभरे मुखसे रोषपूर्वक अपने पतिको देखती तथा कटुवचन कहती है, वह उल्कामुख नामक नरकमें जाती है। मेरे दूत डंडोंसे उसके मस्तकपर प्रहार करते हैं। इसके बाद मनुष्ययोनिमें आकर वह विधवा तथा रोगिणी होती है। वेश्याको वेधनकुण्डमें, पुंगीको दण्डताडनकुण्डमें, महा-वेश्याको जलरन्ध्रकुण्डमें, कुलटाको देहचूर्ण-कुण्डमें, स्वैरिणीको दलनकुण्डमें तथा धर्षिणीको शोषणकुण्डमें यातना भोगनेके लिये निवास करना पड़ता है। मेरे दूत उनपर प्रहार करते हैं। साध्वी ! ये पापिनी स्त्रियाँ विष्ठा-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ खाकर निरन्तर कष्ट भोगती हैं।

जो पुरुष हाथमें तुलसी लेकर की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता अथवा झूठी शपथ खाता है, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। हाथमें गङ्गाजल तथा शालग्रामकी प्रतिमा ले प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करनेवाला भी ज्वालामुख नरकका भागी होता है। जो दाहिना हाथ उठाकर प्रतिज्ञा करता, देवमन्दिरमें जाकर या गौ और ब्राह्मणको छूकर वचनबद्ध होता और फिर उसका पालन नहीं करता, उसे भी ज्वालामुख नामक नरककी प्राप्ति होती है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, विश्वासघाती तथा झूठी गवाही देनेवाला—ये सभी ज्वालामुख नरकमें स्थान पाते हैं। वहाँ उन्हें प्रतप्त अङ्गार खानेके लिये मिलते हैं और मेरे दूत उन्हें पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। इसके बाद सात जन्मोंतक वे चाण्डाल होते हैं। गङ्गाजल लेकर प्रतिज्ञा करके उसे न पालनेवाला पाँच जन्मोंतक म्लेच्छ होता है। देवी ! शालग्रामका स्पर्श करके की हुई प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला सात जन्मोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। खुले हाथों देनेकी झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला सात जन्मोंतक सर्प होता है। इसके बाद ब्राह्मणेतर मानवकी योनिमें जन्म पाकर शुद्ध होता है। देवमन्दिरमें असत्य बोलनेवाला सात जन्मोंमें देवल होता है। ब्राह्मण आदिके सम्मुख प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करने-वाला व्याघ्रकी जातिमें जन्म लेता है। तदनन्तर तीन जन्मोंतक वह गूँगा और बहरा मानव होता है। मित्रसे द्रोह करनेवाला नेवला होता है और कृतघ्न, विश्वासघाती व्याध होता है। वक्तव्यमें जो झूठी गवाही देता है, वह मेंढक होता है। ये उपर्युक्त पापी मानव अपने आगे और पीछेकी

सात-सात पीढ़ियोंको नरकमें गिराते हैं। मूर्खताके कारण अपनी नित्यक्रियासे विहीन, वेदके वचनोंमें अनास्था रखकर निरन्तर कपट-पूर्वक उनका उपहास करनेवाला तथा व्रत और उपवाससे रहित एवं उत्तम सद्वाक्यका निन्दक ब्राह्मण धूम्रकुण्ड नामक नरकमें निवास पाता है। वहाँ उसे धूम्रके ही आहारपर रहना पड़ता है। फिर क्रमशः मत्स्य आदि नाना प्रकारकी जलचर योनियोंमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है। जो देवता और ब्राह्मणके धनका अपहरण करता है, वह धूमके अन्धकारसे पूर्ण धूम्रान्ध नामक नरकमें जाता है। उसे धूएँके कारण कष्ट भोगना पड़ता है। भोजनके लिये उसे धूम्र ही मिलता है। इस प्रकारकी यातना भोगते हुए वह वहाँ रहता है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक वह चूहेकी योनिमें जन्म पाता है। तदनन्तर नाना प्रकारके पक्षियों, कीड़ों, वृक्षों और पशुओंकी योनिमें जन्म पानेके पश्चात् शुद्ध होता है।

पतिव्रते ! ये सुविख्यात नरककुण्ड बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे अप्रसिद्ध नरक भी गिनाये गये हैं। अपने दुष्कर्मोंके फल भोगनेवाले पापियोंसे उन नरकोंका कोना-कोना भरा रहता है। कर्मफल भोगनेके लिये प्राणी नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकते हैं। कहाँतक बताया जाय।

(अध्याय ३२—३५)

☆

## पञ्चदेवोपासकोंके नरकमें न जानेका कथन तथा छियासी प्रकारके नरककुण्डोंका विशद परिचय

सावित्रीने कहा—महाभाग धर्मराज ! आप वेद एवं वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् हैं। जो सबका सारभूत, अभीष्ट, सर्वसम्मत, कर्मका उच्छेद करनेके लिये मूल आधार, परम श्रेष्ठ, मनुष्योंके लिये सुखदायी, सब कुछ देनेमें समर्थ, सबको सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाला है, जिसके प्रभावसे सम्पूर्ण मानव भय और दुःखदर्शनसे भी छूट जाते हैं, जिसकी महिमासे मनुष्य इन कुण्डोंमें पड़ते तो हैं ही नहीं, इनके पास भी नहीं जाते तथा जो मनुष्योंको जन्म आदि विकारोंसे रहित कर देता है; अब वह महान् सत्कर्म आप मुझे बतानेकी कृपा करें। साथ ही उन कुण्डोंके आकार कैसे हैं, वे किस प्रकार बने हैं तथा कौन-से पापी किस रूपसे उनमें वास करते हैं—यह मैं सुनना चाहती हूँ। देहके अग्निमें भस्म हो जानेके पश्चात् मानव किस देहसे लोकान्तरोंमें जाता और अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगता है तथा अत्यन्त क्लेश पानेपर भी वह शरीर नष्ट क्यों नहीं हो जाता आदि सभी बातें मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सावित्रीके वचन सुनकर धर्मराजने भगवान् श्रीहरिको स्मरण करते हुए कर्मरूपी बन्धनको काटनेवाली पवित्र कथा आरम्भ की।

धर्मराज बोले—वत्से ! पतिव्रते सुव्रते ! चारों वेद, धर्मशास्त्र, संहिता, पुराण, इतिहास, पाञ्चरात्र प्रभृति धर्मग्रन्थ तथा अन्य धर्मशास्त्र एवं वेदाङ्ग—इन सबमें पाँच देवताओंकी उपासनाको सर्वेष्ट एवं सारभूत बतलाया गया है। इस देवोपासनासे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा शोक-संताप नष्ट हो जाते हैं। यह साधन

सर्वमङ्गलरूप तथा परम आनन्दका कारण है। इससे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह नरकसे प्राणीका उद्धार करनेवाला है। भक्तिरूपी वृक्षमें अङ्कुर उत्पन्न करनेवाला तथा कर्मरूपी वृक्षको काटनेके लिये यह सदा कटिबद्ध रहता है। मोक्षमार्गपर अग्रसर होनेके लिये यह सोपान है। भगवान्‌के सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और सामीप्य आदि अविनाशी एवं शुभ पद प्रदान करानेवाला यह साधन बताया गया है। शुभे ! मेरे दूत नरककुण्डोंकी सदा रखवाली करते हैं। पञ्चदेवोंकी यथार्थ उपासना करनेवाले मनुष्य उन नरकोंको स्वप्नमें भी नहीं देख सकते।

जो भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना नहीं करते हैं, उन्हें मेरी पुरी देखनी पड़ती है। एकादशीका व्रत करनेवाले विष्णुलोकमें जाते हैं। जो निरन्तर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करते और उनकी प्रतिमाकी पूजा करते हैं, उन्हें भी मेरी भयंकर संयमनीपुरीमें नहीं जाना पड़ता। भगवान् शंकरके भक्तोंसे मेरे दूत इस प्रकार डरते हैं, जैसे गरुड़से सर्प। फिर भी वे पाश लेकर उनकी ओर जाते हैं; परंतु मैं उन्हें रोक देता हूँ। भगवान् श्रीहरिके भक्तोंके आश्रमको छोड़कर अन्यत्र सभी जगह मेरे सेवक जा सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके मन्त्रोपासक होनेके कारण हरिभक्त तो मेरे दूतोंको ऐसे भयानक लगते हैं, मानो सर्पोंके लिये गरुड़ हो। भगवती जगदम्बाके भक्त वहाँ पहुँच जाते हैं तो चित्रगुप्त मधुपर्क आदि उपचारोंसे बार-बार उनका सत्कार करके उनके लिये ब्रह्मलोक लिख देते हैं। साध्वी ! तब वे भगवतीके उपासक मणिद्वीपलोककी यात्रा करते हैं। जिनके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, वे देवीभक्त महान् सौभाग्यशाली हैं। कारण, उनके जन्मसे अनेकों कुलोंकी शुद्धि हो जाती है; उनके पाप जलती हुई आगमें पड़े हुए सूखे तिनकोंकी भाँति भस्म हो जाते हैं। देवीभक्तोंको देखकर मोह भी भयभीत होकर मोहित हो जाता है। साध्वी ! काम, क्रोध, लोभ, मृत्यु, रोग, जरा, शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग—ये सब देवीभक्तोंको देखकर अपना प्रभाव प्रकट करनेमें असमर्थ हो जाते हैं।

साध्वी ! जिन-जिन व्यक्तियोंको नारकी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती है, उनका परिचय बता चुका। अब आगमशास्त्रके अनुसार देहका विवरण बतलाता हूँ, सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व स्पष्ट ही हैं। स्रष्टाके सृष्टि-विधानमें प्राणियोंके लिये एक देहबीज पृथक् निर्मित होता है। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे बने हुए शरीरको कृत्रिम और नश्वर कहते हैं। चिताकी आगमें जलकर वह राख हो जाता है। उस समय जो जीव रहता है, उसकी बँधे हुए अँगूठे-जैसी आकृति हो जाती है। वही फल भोगनेके लिये सूक्ष्मरूपमें देह धारण कर लेता है। वह देह प्रज्वलित अग्निमें भस्म न होकर मेरी संयमनीपुरीमें जाता है। स्थूल शरीर तो जलनेपर तथा दीर्घकालतक प्रहार करनेपर नष्ट हो सकता है; परंतु उस यातनाशरीरको अस्त्र अथवा शस्त्र नष्ट नहीं कर सकते। अत्यन्त तीखी धारवाले काँटे तथा तपते हुए तेल, लौह और पाषाणपर पड़नेपर भी वह ज्यों-का-त्यों बना रहता है। जलती हुई प्रतिमासे सटनेपर भी वह न जलता और न मरता है, पूर्ववत् रह जाता है। उसे यों भयानक संताप भोगने पड़ते हैं।

साध्वी ! इसी प्रकार आगमशास्त्रमें देह-वृत्तान्त तथा कारण स्पष्ट किया गया है—इसे मैं तुम्हें बता चुका। अब तुम्हें कुण्डोंके सम्पूर्ण लक्षण बताता हूँ, सुनो।

पतिव्रते ! नरककुण्ड पूर्ण चन्द्रमण्डलकी भाँति गोलाकार हैं। उनकी गहराई भी पर्याप्त है। वे अनेक प्रकारके पाषाणोंसे निर्मित हैं। उनका नाश नहीं होता। वे प्रलयकालतक रहते हैं। भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे पापियोंको क्लेश देनेके लिये नाना रूपोंमें उनका निर्माण हुआ है। जो जलते हुए अङ्गारके समान एक कोसकी लम्बाई-चौड़ाईके विस्तारमें है तथा जिसमें सौ हाथ ऊपरतक आगकी लपटें निकला करती हैं। उसे 'अग्नि-कुण्ड' कहा गया है। भयानक चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वह सदा भरा रहता है। उनपर प्रहार करनेवाले मेरे दूत निरन्तर उसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। जो हिंसक जन्तुओंसे भरा-पूरा अत्यन्त भयंकर तथा आधे कोसका विस्तृत नरक है, उसे 'तप्तकुण्ड' कहते हैं। मेरे सेवकोंद्वारा कठिन प्रहार पड़नेपर नारकी जीव चिल्लाते रहते हैं। इसके बाद 'तप्तक्षारोद-कुण्ड' है। वह खौलते हुए खारे जलसे भरा रहता है। एक कोस विस्तारवाला वह भयानक नरक पापियों तथा कौओंसे भरपूर है। एक कोसके विस्तारमें 'विट्कुण्ड' नामक नरक है। निराहार रहनेके कारण सूखे हुए कण्ठ, ओठ और तालुवाले पापी उसमें इधर-उधर भागते रहते हैं। वह दारुण नरक विष्ठासे ही बना हुआ है। उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध फैली रहती है। वहाँ कीड़ोंसे उनका सारा अङ्ग छिद जाता है। 'मूत्रकुण्ड' नामक नरक खौलते हुए मूत्र तथा मूत्रके कीड़ोंसे भलीभाँति भरा हुआ है। अत्यन्त पातकी जीवोंसे भरा हुआ वह नरक दो कोसके परिमाणमें है। वहाँ कीड़े जीवोंको खाते रहते हैं। उसमें पड़े पापियोंके कण्ठ, ओठ और तालु सूखे रहते हैं। श्लेष्म आदि अपवित्र वस्तुओं और उसके कीड़ों तथा श्लेष्मभोजी पापीजनोंसे भरा नरक 'श्लेष्मकुण्ड' कहा गया है। आधे कोसके परिमाणमें विषभक्षी पापियों तथा कीड़ोंसे भरा हुआ नरक 'गरकुण्ड'के नामसे कहा जाता है। सर्पके समान आकारवाले वज्रमय दाँतोंसे युक्त तथा क्षुधातुर सूखे कण्ठवाले अत्यन्त भयंकर जन्तुओंद्वारा वह नरक भरा रहता है। आँखोंके मलोंसे युक्त आधे कोसके विस्तारवाला 'दूषिकाकुण्ड' है। कीड़ोंसे क्षत-विक्षत हुए पापी प्राणी निरन्तर उसमें चक्कर लगाते रहते हैं। वसासे पूर्ण चार कोसका लम्बा-चौड़ा 'वसाकुण्ड' है। वसाभोजी पातकी जीव उसमें व्याप्त रहते हैं। एक कोसकी लम्बाई-चौड़ाईवाला 'शुक्रकुण्ड' है। वीर्यके कीड़ोंसे वह व्याप्त रहता है। उसमें रहनेवाले पापियोंको जब कीड़े काटते हैं, तब वे इधर-उधर भागते रहते हैं। बावड़ीके समान परिमाण-वाला दुर्गन्धित वस्तुओंसे भरा हुआ 'रक्तकुण्ड' है। उस गहरे कुण्डमें रक्त पीनेवाले प्राणी तथा काटनेवाले कीड़े भरे रहते हैं। 'अश्रुकुण्ड' नेत्रोंके आँसुओंसे पूर्ण रहता है। अनेक पापीजन उसमें भरे रहते हैं। चार बावड़ी-जितना उसका विस्तार है। कीड़ोंके काटनेपर जीव उसमें रूदन करते रहते हैं। मनुष्योंके शारीरिक मलों तथा मलभक्षी पापी जीवोंसे युक्त 'गात्रमलकुण्ड' है। कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंके मारनेके कारण घबराये हुए जीव उसमें किसी प्रकार समय बिताते हैं। कानोंकी मैल खानेवाले पापियोंसे

आच्छादित 'कर्णविट्कुण्ड' है। चार बावड़ी-जितने प्रमाणवाला वह कुण्ड कीटोंद्वारा काटे जानेवाले पापियोंके चीत्कारसे पूरित रहता है। मनुष्योंकी मज्जा तथा अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त 'मज्जाकुण्ड' है, जो महापापियोंसे युक्त एवं चार वापीके विस्तारवाला है। मेरे दूतोंसे प्रताड़ित प्राणियोंसे युक्त स्निग्ध मांसवाला 'मांसकुण्ड' है। एक वापी-जितने प्रमाणवाले इस कुण्डमें भयानक प्राणी भरे रहते हैं। कन्याका विक्रय करनेवाले पापी वहाँ रहकर कन्याका मांस भक्षण करते हैं। कीड़ोंके काटनेपर वे अत्यन्त भयभीत हो 'बचाओ, बचाओ' की पुकार करते रहते हैं। चार बावड़ी-जितने लम्बे-चौड़े 'नखादि' चार कुण्ड हैं। ताम्रमय उल्कासे युक्त तथा जलते हुए ताँबेके सदृश 'ताम्रकुण्ड' है। ताँबेकी असंख्य प्रज्वलित प्रतिमाएँ उसमें भरी रहती हैं। प्रत्येक प्रतिमासे पापियोंको सटाया जाता है। तब वे चिल्ला उठते हैं। नारकी जीवोंसे भरा वह नरक दो कोस लम्बा-चौड़ा है। प्रज्वलित लोहे तथा चमकते हुए अङ्गारोंसे युक्त 'लौहकुण्ड' है। जलते हुए लौहकी प्रत्येक प्रतिमासे पापियोंको सटाया जाता है, तब वे चीत्कार कर उठते हैं। वहाँ निरन्तर जलते हुए वे पापी भयभीत होकर 'रक्षा करो, रक्षा करो' पुकारते रहते हैं। वह कुण्ड दो कोसमें विस्तृत तथा अत्यन्त भयानक है और वहाँ चारों ओर भयानक अन्धकार छाया रहता है। 'चर्मकुण्ड' और 'तप्तसुराकुण्ड' आधी बावड़ीके प्रमाणके ही हैं। चर्मभक्षण तथा सुरापान करनेवाले पापी जीव उसमें भरे रहते हैं।

कण्टकमय वृक्षोंसे सुशोभित 'शाल्मलि-कुण्ड' है वह दुःखप्रद नरक एक कोसकी दूरीमें है। लाखों मनुष्य उसमें अँट सकते हैं। वहाँ चार-चार हाथके अत्यन्त तीखे काँटे शाल्मली वृक्षसे गिरकर नीचे बिछे रहते हैं। एक-एक करके सभी काँटोंसे घोर पापियोंके अङ्ग छिद उठते हैं, उन अत्यन्त व्यग्र पापियोंके तालू सूख जाते हैं, तब महान् भयभीत होकर 'मुझे जल दो'—यों चिल्लाने लगते हैं। जिस प्रकार खौलते हुए तेलमें कोई वस्तु पड़ जाय तो वह नाचने लगती है, वैसे ही तक्षकसंज्ञक सर्पोंके विष निगलकर जीव जिसमें व्याप्त हैं, वह नरक 'विषोदकुण्ड' कहलाता है। उसका परिमाण एक-एक कोस है। 'प्रतप्ततैलकुण्ड'में सदा खौलता हुआ तेल भरा रहता है। जलनके कारण कीड़ेतक उसमें नहीं रहते; किंतु मेरे दूतोंकी चोट खाकर पापियोंको वहाँ रहना पड़ता है। जलता हुआ तैल ही उन्हें खाना पड़ता है। अङ्गारोंसे जो झुलस उठे हैं, ऐसे महान् पापियोंसे युक्त 'अङ्गारकुण्ड' नामक नरक है। वह अन्धकारसे पूर्ण, एक कोस विस्तृत, नारकी जीवोंके लिये कष्टप्रद एवं अतिशय भयानक है।

जिनके आकार त्रिशूल-जैसे हैं तथा जिनकी धार अत्यन्त तीक्ष्ण है, उन लौहमय शस्त्रोंसे सम्पन्न 'कुन्तलकुण्ड' है। चार कोसमें विस्तृत वह नरक ऐसा जान पड़ता है, मानो शस्त्रोंकी शय्या हो। भालोंसे छिद जानेके कारण जिनके कण्ठ, ओठ और तालू सूख गये हैं, ऐसे पापी जीवोंसे उस नरकका कोना-कोना भरा रहता है। साध्वी ! जिसमें सर्प-जैसे बड़े-बड़े असंख्य भयंकर कीड़े रहते हैं, उसे 'कृमिकुण्ड' कहा जाता है। विकृत वदनवाले उन कीड़ोंके दाँत बड़े तेज होते हैं। वहाँ सर्वत्र अन्धकार फैला है। 'पूयकुण्ड'को चार कोस लम्बा-चौड़ा

बताया जाता है। पूयभक्षी प्राणी उसमें निवास करते हैं। तालके वृक्ष-जितना गहरा तथा असंख्य सर्पोंसे युक्त 'सर्पकुण्ड' है। साँप पापियोंके शरीरसे लिपटकर उन्हें काटते रहते हैं। मशक आदि क्रूर जन्तुओंसे पूर्ण 'मशककुण्ड', 'दंशकुण्ड' और 'गोलकुण्ड'—ये तीन नरक हैं। महान् पापियोंसे युक्त उन नरकोंकी सीमा आधे-आधे कोसकी है। जिनके हाथ बँधे रहते हैं, रुधिरसे सर्वाङ्ग लाल रहता है तथा जो मेरे दूतोंसे घायल रहते हैं, उन प्राणियोंद्वारा वहाँ हाहाकार मचा रहता है। वज्र और बिच्छुओंसे ओत-प्रोत 'वज्रकुण्ड' और 'वृश्चिककुण्ड' हैं। आधी बावड़ीके प्रमाणवाले उन नरकोंमें वज्र एवं बिच्छुओंसे विद्ध प्राणी भरे रहते हैं। 'शरकुण्ड,' 'शूलकुण्ड' और 'खड्गकुण्ड'—ये तीनों आयुधोंसे व्याप्त हैं। उन नरकोंमें पड़े प्राणियोंका शरीर शस्त्रास्त्रोंसे छिदता रहता है। रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे वे लाल प्रतीत होते हैं। उन नरकोंका प्रमाण आधी बावड़ी है। संतप्त जलसे पूर्ण तथा अन्धकारमय 'गोलकुण्ड' है। टेढ़े-मेढ़े काँटोंकी-सी आकृतिवाले कीड़े यहाँके पापियोंको काटते हैं। उस नरकका विस्तार आधी बावड़ी है। कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंके मारनेपर भयसे घबराये हुए प्राणी रोते रहते हैं। पापियोंका झुंड कोसोंतक फैला रहता है। अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त तथा पापियोंको निरन्तर दुःख देनेवाला 'नक्रकुण्ड' है। वहाँ विकृत आकारवाले भयंकर नक्र आदि जन्तु उन्हें काटते रहते हैं। उस नरककी लम्बाई-चौड़ाई आधी बावड़ीके परिमाणमें है। विष्ठा, मूत्र और श्लेष्मभक्षी असंख्य पापियोंसे भरा हुआ 'काककुण्ड' है। उसमें विशाल आकारवाले भयंकर कौए पापियोंको नोचते रहते हैं। 'मन्थानकुण्ड' और 'बीजकुण्ड' इन्हीं दोनों वस्तुओं (कीटविशेषों)-से ओतप्रोत हैं। इन कुण्डोंका परिमाण सौ धनुष है। उन कीड़ोंसे दंशित प्राणी सदा चीत्कार मचाया करते हैं। पापी जीवोंसे व्याप्त तथा सौ धनुष विस्तृत 'वज्रकुण्ड' है। वज्रके समान दाँतवाले भयंकर जन्तु उसमें रहते हैं। वहाँ सर्वत्र घोर अन्धकार छाया रहता है। दो वापी-जितना लम्बा-चौड़ा 'तप्तपाषाणकुण्ड' है। उसका आकार ऐसा है। मानो आग धधक रही हो। पापी प्राणी संतप्त होकर इधर-उधर भागते रहते हैं। क्षुरेकी धारके समान तीखे पाषाणोंसे बना हुआ 'तीक्ष्ण पाषाणकुण्ड' है। महान् पापी उसमें वास करते हैं। रक्तसे लथपथ हुए प्राणियोंसे भरा हुआ 'लालाकुण्ड' है। वह कुण्ड एक कोस नीचेतक गहरा है। मेरे दूतोंसे संतप्त प्राणी उसमें खचाखच भरे रहते हैं। कज्जल वर्णवाले संतप्त पत्थरोंसे निर्मित तथा सौ धनुष परिमाणवाला 'मसीकुण्ड' है। पापियोंसे वह कुण्ड पूरित रहता है। तपे हुए बालूसे भरपूर एक कोस विस्तार-वाला 'चूर्णकुण्ड' है। उसमें प्रतप्त बालुकासे दग्ध प्राणी निवास करते हैं। कुम्हारके चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता हुआ 'चक्रकुण्ड' है। उसमें अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले सोलह अरे लगे हुए हैं, जिनसे वहाँके पापियोंके अङ्ग सदा क्षत-विक्षत होते रहते हैं। उस कुण्डका आकार अत्यन्त टेढ़ी-मेढ़ी कन्दराके समान है तथा वह पर्याप्त गहरा है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई चार कोस है। उसमें खौलता हुआ जल भरा रहता है। वहाँके घोर पापियोंको जलचर जन्तु काटते-खाते हैं। उस अन्धकारमय भयानक कुण्डमें संतप्त

प्राणियोंद्वारा करुण क्रन्दन होता रहता है। विकृत आकारवाले अत्यन्त भयंकर असंख्य कछुओंसे भरा हुआ 'कूर्मकुण्ड' है। जलमें रहनेवाले कछुए नारकी जीवोंको नोचते-खाते रहते हैं। प्रज्वलित ज्वालाओंसे व्याप्त 'ज्वालाकुण्ड' है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक कोस है। कष्टदायी उस कुण्डमें पातकी प्राणी निरन्तर चिल्लाते रहते हैं। एक कोस गहराई-वाला 'भस्मकुण्ड' है, जिसमें सर्वत्र प्रतप्त भस्म ही भरा रहता है। जलते हुए भस्मको खानेके कारण वहाँके पातकी जीवोंके अङ्गोंमें दाह-सी लगी रहती है।

जो तपे हुए लौहसे परिपूर्ण तथा जले हुए गात्रवाले पापियोंसे युक्त नरक है, उसे 'दग्धकुण्ड' कहा गया है। वह अत्यन्त भयंकर गहरा कुण्ड एक कोसके परिमाणमें है। वहाँ सर्वत्र अन्धकार छाया रहता है। ज्वालाके कारण पापियोंके तालु सूखे रहते हैं। जो बहुसंख्यक ऊर्मियों, संतप्त क्षार जलों, नाना प्रकारके शब्द करनेवाले जल-जन्तुओंसे युक्त है तथा जिसकी चौड़ाई चार कोस है; ऐसे गहरे और अन्धकार-युक्त नरकको 'प्रतप्तसूचीकुण्ड' कहते हैं। उस भयानक कुण्डमें दग्ध होनेके कारण आर्तनाद करते हुए प्राणी एक-दूसरेको नहीं देख पाते। जिसमें तलवारकी धारके समान तीखे पत्तेवाले बहुत-से ऊँचे-ऊँचे ताड़के वृक्ष हैं, उस नरकको 'असिपत्रकुण्ड' कहा गया है। उस नरकके ये ताड़वृक्ष आधे कोसकी लम्बाईतक ऊपरको फैले हुए हैं और उन्हीं वृक्षोंपरसे वहाँके पापियोंको गिराया जाता है। उन वृक्षोंके सिरसे गिराये गये पापियोंके रक्तोंसे वह कुण्ड भरा रहता है। उन पापियोंके मुखसे 'रक्षा करो' की चीख निकलती रहती है। वह भयानक कुण्ड अत्यन्त गहरा, अन्धकारसे आच्छन्न तथा रक्तके कीड़ोंसे परिपूरित है, जो सौ धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा तथा छुरेकी धारके समान अस्त्रोंसे युक्त है, उस भयानक नरकको 'क्षुरधारकुण्ड' कहते हैं। पापियोंके रक्तसे वह कभी खाली नहीं हो पाता। जिसमें सूईके समान नोकवाले अस्त्र भरे रहते हैं तथा जो पापियोंके रक्तसे सदा परिपूर्ण रहता है, पचास धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा वह नरक 'सूचीमुख' कहलाता है। वहाँ नारकी प्राणी अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। किसी एक जन्तुविशेषका नाम गोका है; उसके मुखके समान जिसकी आकृति है, उसका नाम 'गोकामुखकुण्ड' है। उसकी गहराई कुएँके समान है और उसका प्रमाण बीस धनुष है। वह नरक घोर पापियोंके लिये अत्यन्त कष्टप्रद है। उन गोकासंज्ञक कीड़ोंके काटनेसे नारकी जीवोंका मुख सदा नीचेको लटकता रहता है। नाक (जलजन्तुविशेष)-के मुखके समान जिसकी आकृति है, उसे 'नक्रकुण्ड' कहते हैं। वह सोलह धनुषके विस्तारमें स्थित है। उसकी गहराई कुएँ-जितनी है। उस कुण्डमें सदा पापी भरे रहते हैं। 'गजदंशकुण्ड' को सौ धनुष लम्बा-चौड़ा बतलाया गया है। तीस धनुष-जितना विस्तृत तथा गौके मुखकी आकृतिवाला एवं पापियोंके लिये अत्यन्त दुःखद जो नरक है, उसे 'गोमुखकुण्ड' कहा गया है। कालचक्रसे युक्त सदा चक्कर काटने-वाला भयानक नरक, जिसकी आकृति घड़ेके समान है, 'कुम्भीपाक' कहलाता है। चार कोसके परिमाणवाला वह नरक महान् अन्धकारमय है। साध्वी ! उसकी गहराई एक

लाख पोरसा[1] है। उस कुण्डके अन्तर्गत तप्ततैल एवं ताम्रकुण्ड आदि बहुसंख्यक कुण्ड हैं। उस नरकमें बड़े-बड़े पापी अचेत होकर पड़े रहते हैं। भयंकर कीड़ोंके काटनेपर चिल्लाते हुए नारकी जीव परस्पर एक-दूसरेको देखनेमें असमर्थ रहते हैं। उन्हें क्षण-क्षणमें मूर्च्छा आती है और वे पृथ्वीपर लोटपोट हो जाते हैं। पतिव्रते ! उन सभी कुण्डोंमें जितने पापी पड़े हुए हैं, उन सबकी ऐसी ही दुर्दशा है। मेरे दूतोंकी मार पड़नेपर वे क्षणमें गिरते और क्षणभरमें चिल्लाहट मचाने लगते हैं।

कुम्भीपाकके अन्तर्गत जो नरककुण्ड हैं, वे उससे कहीं चौगुने कष्टप्रद हैं। सुदीर्घकालतक मार पड़नेपर भी यातना भोगनेवाले उन शरीरोंका अन्त नहीं होता। कुम्भीपाकको सम्पूर्ण नरककुण्डोंमें प्रधान बताया गया है। कालनिर्मित सुदृढ़ सूत्रसे बँधे हुए पापी जीव जहाँ निवास करते हैं, उसे 'कालसूत्र' नामक नरककुण्ड कहा गया है। मेरे दूतोंके प्रयाससे प्राणी कभी ऊपर उठते हैं और कभी डूब जाते हैं। बहुत देरतक उनकी साँस बंद हो जाती है। वे अचेत-से हो जाते हैं। साध्वी ! उसका जल सदा खौलता रहता है। नरकभोगी प्राणियोंके लिये वह बड़ा ही कष्टप्रद है। 'अवटकुण्ड' और 'मत्स्योदकुण्ड' एक ही है। 'अवट' संज्ञक एक कूप है। अतः कोई उसे अवटकुण्ड कहा करते हैं। संतप्त जलसे वह परिपूर्ण रहता है। चौबीस धनुष-जितना वह लम्बा-चौड़ा है। जलते हुए शरीरवाले घोर पापी जीव उसमें निरन्तर व्याप्त रहते हैं। मेरे दूतोंकी कठिन मार उन्हें सहनी पड़ती है। उस कुण्डकी 'अवटोद' संज्ञा है। उसके जलका स्पर्श होते ही सम्पूर्ण व्याधियाँ पापियोंको अनायास घेर लेती हैं। उसकी गहराई सौ धनुष है। जिसमें पड़े हुए प्राणियोंको असंतुद नामक कीड़े काटते रहते हैं, उसे 'असंतुदकुण्ड' कहा जाता है। दुःखी जीव सदा हाहाकार मचाया करते हैं। अत्यन्त तपी हुई धूलोंसे व्याप्त नरकको 'पांसुकुण्ड' कहते हैं। वह सौ धनुष-जितना विस्तृत है। उसमें पड़े नारकी जीवोंके चमड़े जलते रहते हैं। खानेके लिये उसे जलती हुई धूल ही उपलब्ध होती है। जिसमें गिरते ही पापी पाशोंसे आवेष्टित हो जाता है, उसे विज्ञ पुरुषोंने 'पाशवेष्टनकुण्ड' कहा है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक कोस है। जहाँ पापी ज्यों ही गिरते हैं, त्यों ही शूलसे जकड़ उठते हैं, उसे 'शूलप्रोतकुण्ड' कहा जाता है। उसका परिमाण बीस धनुष है। 'प्रकम्पन' कुण्ड आधे कोसके विस्तारमें है। उसका जल बरफके समान गलता रहता है। उसमें पड़ते ही प्राणियोंके शरीरमें कँपकँपी मच जाती है। जिसमें पापियोंके मुखोंमें जलती हुई लुआठी घुसा दी जाती है उसे 'उल्कामुखकुण्ड' कहा गया है। वह भी बीस धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा है।

जिसकी गहराई लाख पोरसा है तथा सौ धनुष-जितना जो विस्तृत है, उस भयानक कुण्डको 'अन्धकूपनरक' कहते हैं। उसमें नाना प्रकारकी आकृतिवाले कीड़े रहते हैं। वह सदा अन्धकारसे व्याप्त रहता है। कूपके समान उसकी गोलाई है। कीड़ोंके काटनेपर प्राणी आतुर होकर परस्पर एक-दूसरेको चबाने लगते

१. पुरुषकी लम्बाईको पोरसा कहते हैं।

हैं। उन्हें खौलता हुआ जल ही पीनेको मिलता है। एक तो वे खौलते हुए जलसे जलते हैं, दूसरे कीड़े भी काटते रहते हैं। वहाँ इतना अन्धकार रहता है कि वे आँखोंसे कुछ भी देख नहीं सकते।

जहाँ जानेपर पापी अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे विंध जाते हैं, वह 'वेधनकुण्ड' कहलाता है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई बीस धनुष है। जहाँ डंडोंसे मारा जाता है उस सोलह धनुषके प्रमाणवाले नरकको 'दण्डताडनकुण्ड' कहते हैं। जहाँ जाते ही पापी जीव मछलियोंकी भाँति महाजालमें फँस जाते हैं तथा जो बीस धनुष-जितना विस्तृत है, वह 'जालरन्ध्रकुण्ड' कहलाता है। जहाँ गिरे हुए पापियोंके शरीर चूर्ण-चूर्ण हो जाते हैं, वह नरक 'देहचूर्णकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ गये हुए पापियोंके पैरमें लोहेकी बेड़ी पड़ी रहती है। असंख्य पोरसा वह गहरा है। लम्बाई और चौड़ाई बीस धनुष है। प्रकाशका तो वहाँ कहीं नाम नहीं रहता। उसमें प्राणी मूर्च्छित होकर जडकी भाँति पड़े रहते हैं। जहाँ गये पापी मेरे दूतोंद्वारा दलित और ताड़ित होते रहते हैं, उसको 'दलनकुण्ड' कहा गया है। वह सोलह धनुषके विस्तारमें है।

तपी हुई बालूसे व्याप्त होनेके कारण जहाँ गिरते ही पापीके कण्ठ, ओठ और तालू सूख जाते हैं तथा जो तीस धनुष-जितना परिमाणमें है और जिसकी गहराई सौ पोरसा है एवं जो सदा अन्धकारसे आच्छन्न रहता है, उस पापियोंके लिये अतिशय दुःखप्रद नरकको 'शोषणकुण्ड' कहते हैं। विविध चर्मसम्बन्धी कषाय जलसे जो लबालब भरा रहता है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई सौ धनुष है और जहाँ सदा दुर्गन्ध फैली रहती है तथा जहाँ उस अमेध्य वस्तुके आहारपर ही रहकर पापी जीव यातना भोगते हैं, वह नरक 'कषकुण्ड' कहलाता है। साध्वी ! जिस कुण्डका आकार शूर्पके सदृश है तथा जो बारह धनुषके बराबर लम्बा-चौड़ा है एवं जहाँ सर्वत्र संतप्त बालुका बिछी रहती है और पातकियोंसे कोई स्थल खाली नहीं रहता, उस नरकको 'शूर्पकुण्ड' कहते हैं। वहाँ सदा दुर्गन्ध भरी रहती है। वही खाकर पापी जीव वहाँ यातना भोगते हैं। पतिव्रते ! जहाँकी रेणुका अत्यन्त संतप्त रहती है तथा जो घोर पापी जीवोंसे युक्त रहता है एवं जिसके भीतर आगकी लपटें उठा करती हैं, ऐसी ज्वालासे भरे हुए मुखवाले नरकको 'ज्वालामुखकुण्ड' कहा जाता है। वह बीस धनुषमें विस्तृत है। ज्वालासे दग्ध पापी उसके कोने-कोनेमें भरे रहते हैं। उस कुण्डमें प्राणियोंको असीम कष्ट भोगना पड़ता है।

जहाँ गिरते ही मानव मूर्च्छित हो जाता है तथा जिसके भीतरकी ईंटें अत्यन्त संतप्त रहती हैं एवं जो आधे बावड़ी-जितना परिमाणवाला है, वह 'जिह्मकुण्ड' कहलाता है। जो धूममय अन्धकारसे संयुक्त रहता है तथा जहाँ गये हुए पापी धूमोंके कारण नेत्रहीन हो जाते हैं और जिसमें साँस लेनेके लिये बहुत-से छिद्र बने हैं, उस नरकको 'धूम्रान्धकुण्ड' कहा गया है। वह सौ धनुषके बराबर परिमाणमें है। जहाँ जानेपर पापीको तुरंत नाग बाँध लेते हैं तथा जो सौ धनुष-जितना लम्बा-चौड़ा है और जिसमें सदा नाग भरे रहते हैं, उसे 'नागवेष्टनकुण्ड' कहा गया है। इन सभी कुण्डोंमें मेरे दूत प्राणियोंको मारते, जलाते तथा भाँति-भाँतिसे भयानक कष्ट देते रहते हैं।

सावित्री ! सुनो, मैंने ये छियासी नरककुण्ड और इनके लक्षण भी बतला दिये। अब फिर तुम क्या सुनना चाहती हो।

(अध्याय ३६-३७)

☆

## भगवती भुवनेश्वरीके स्वरूप, महत्त्व और गुणोंकी अनिर्वचनीयता

सावित्रीने कहा—प्रभो ! अब आप मुझे जो समस्त सार पदार्थोंमें सर्वप्रधान है, वह भगवतीकी भक्ति प्रदान करनेकी कृपा कीजिये; क्योंकि वही मुक्तिका सिद्ध मार्ग है। उसीके प्रभावसे मनुष्य नरकसे तर जाते हैं। वही सम्पूर्ण अशुभ कर्मोंको नष्ट करनेकी शक्तिसे सम्पन्न है। उसकी महिमासे कर्मवृक्षकी जड़ ही कट जाती है। भगवन् ! मुक्ति किसको कहते हैं ? मुक्तियाँ कितने प्रकारकी होती हैं ? उनके क्या लक्षण हैं ? तथा भक्तिका वस्तुतः स्वरूप क्या है ? भक्तिके कितने भेद हैं एवं किये हुए कर्मोंके भोगका नाश किस प्रकार हो सकता है—ये सारी बातें भी मैं जानना चाहती हूँ। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो ! आप मुझे संक्षेपमें परम साररूप ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेसे जो महान् पुण्य होता है, वह यज्ञ, तीर्थ, स्नान, दान, व्रत और तपके सम्पूर्ण पुण्यफल उसकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। पिताकी अपेक्षा माताकी श्रेष्ठता सौगुनी अधिक मानी जाती है—यह बिलकुल निश्चित है। परंतु प्रभो ! ज्ञानदाता होनेके कारण गुरु उन मातासे भी सौगुने अधिक पूज्य हैं।

धर्मराज बोले—वत्से ! तुम जिसकी अभिलाषा कर रही हो, वह सब तो मैं तुम्हें पहले ही दे चुका हूँ। अब जो तुम भगवती जगदम्बाकी भक्ति चाहती हो, वह भी मेरे उस पहले दिये हुए वरके प्रभावसे ही प्राप्त हो सकती है। कल्याणी ! तुम जो मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाके गुणानुवादका श्रवण करना चाहती हो, सो यह बड़ा ही विलक्षण है। इसके पूछने, कहने और सुननेवाले—सभी अपने कुलको तारनेवाले हैं; परंतु है यह बहुत कठिन। सहस्रमुखवाले शेष भी इसे कहनेमें असमर्थ हैं। मृत्युञ्जय भगवान् शंकर यदि अपने पाँच मुखोंसे कहने लगें तो वे भी पार नहीं पा सकते। ब्रह्माजी चारों वेदों तथा अखिल जगत्के स्त्रष्टा हैं। चार मुखोंसे उनकी परम शोभा होती है। भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं, परंतु ये दोनों प्रधान देव भी भगवतीके गुणोंका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। स्वामी कार्तिकेय अपने छः मुखोंसे वर्णन करते रहें तो भी अन्त नहीं पा सकते। महाभाग गणेशजीको योगीन्द्रोंके गुरुका गुरु कहा जाता है, किंतु भगवतीके गुणोंका वर्णन कर पाना उनके लिये भी असम्भव है। सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारतत्त्व चार वेद हैं। ये वेद तथा इनसे परिचित विद्वान् भी भगवती जगदम्बाके गुणोंकी एक कला भी जाननेमें असमर्थ सिद्ध हो जाते हैं। देवीकी महिमा-वर्णनमें साक्षात् सरस्वती भी जडके समान होकर असमर्थता प्रकट करने लगती हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, धर्म, कपिल तथा सूर्य—ये तथा श्रीब्रह्माजीके अन्यान्य सुयोग्य पुत्र भी उनके महत्त्वका वर्णन करनेमें सफलता नहीं प्राप्त कर सके, तब फिर अन्य व्यक्तियोंसे क्या आशा की जा सकती है ?

श्रीदेवीके जिन गुणोंकी व्याख्या सिद्ध, मुनीन्द्र तथा योगीन्द्र भी नहीं कर सकते, उनका वर्णन अन्य पुरुष कैसे कर सकते हैं। तथा मैं ही कैसे कर सकता हूँ।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति देवता भगवतीके जिन चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, वे देवी भक्तोंके लिये जितनी सुगम हैं, उतनी ही भक्तिहीन जनोंके लिये दुर्लभ भी हैं। भगवतीका गुणानुवाद परम पवित्र है। कुछ लोग किसी अंशको जानते हैं। परम ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मा कुछ अतिरिक्त ही अंशसे परिचित हैं। ज्ञानियोंके गुरु गणेशजीको कुछ और ही ढंगसे भगवतीका गुण ज्ञात है। सबसे विलक्षण गुण सर्वज्ञानी भगवान् शंकर ही जानते हैं; क्योंकि परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उन्हें इनका ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

पूर्व समयकी बात है—भगवान् शंकर एक बार गोलोकमें गये थे। वहाँ एक परम निर्जन काननमें रासमण्डलका आयोजन था। वहीं भगवान् श्रीकृष्णने शंकरजीको भगवती जगदम्बाके कुछ पवित्र गुण सुनाये थे। इसके बाद स्वयं शिवजीने अपनी पुरीमें धर्मके प्रति उनका उपदेश किया था। महाभाग सूर्यके पूछनेपर धर्मने उनके सामने इनकी व्याख्या की थी। साध्वी ! मेरे पिता भगवान् सूर्य तपस्या करनेके पश्चात् देवीकी उपासना करके इस ज्ञानको कुछ प्राप्त कर सके थे। पूर्व समयमें मेरे पिताजी यत्नपूर्वक मुझे यमपुरीका राज्य दे रहे थे; किंतु मैं लेना नहीं चाहता था। सुव्रते ! वैराग्य हो जानेके कारण मेरे मनमें तपस्या करनेकी बात आ रही थी। तब पिताजीने मेरे सामने भगवतीके गुणोंका वर्णन किया। उस समय मैंने जो कुछ सुना था, उसी परम दुर्लभ विषयको आज मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो।

वरानने ! मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाके इतने अमित गुण हैं कि उन्हें वे स्वयं ही पूरा नहीं जानतीं; तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है। जैसे आकाश अपने भीतरकी सभी वस्तुओंसे अनभिज्ञ रहता है, वैसे ही भगवती भी अपने समस्त गुणोंसे अपरिचित ही हैं। इन ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका प्रथम रूप 'सर्वात्मा' है। जो सबके भगवान् एवं सम्पूर्ण कारणोंके कारण हैं; सर्वेश्वर, सर्वाद्य, सर्ववित् और सर्वपरिपालक आदि जिनके पृथक्-पृथक् नाम हैं; जो नित्यस्वरूप एवं नित्यविग्रह, सदा परमानन्दपरिपूर्ण रहते हैं; जो भौतिक आकारसे रहित हैं तथा जो निरङ्कुश, निःशङ्क, निर्गुण (त्रिगुणरहित), निरामय, निर्लिप्त, सर्वसाक्षी, सर्वाधार एवं परात्पर हैं, वे ही परमात्मा अपनी मायासे मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरीके रूपमें अभिव्यक्त हो जाते हैं। सभी नामधारी वस्तुओंकी अभिव्यक्ति या उत्पत्ति उन्हींसे हुई है। स्वयं परमात्मा ही प्रकृतिके संयोगसे 'प्रकृति' शब्दवाच्य हो जाते हैं। इन प्रकृति और पुरुष—दोनोंमें वस्तुतः इस प्रकारकी अभिन्नता है—जैसे अग्नि और दाहिका शक्तिमें कभी किञ्चित् भी भिन्नताकी कल्पना नहीं उठती। वे ही ये सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा शक्ति एवं महामाया नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका कोई रूप नहीं है, तथापि भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ये विविध रूप धारण किये हुए हैं। ये ही सर्वप्रथम गोपालसुन्दरीका रूप धारण कर चुकी हैं। अतः स्वयं परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण इन्हींके अभिन्न स्वरूप हैं। उस समय

उनकी अवर्णनीय शोभा थी। परम कमनीय

कलेवर था। मनोमुग्धकारिणी निरतिशय सुन्दर नवनील-नीरद आकृति थी। नित्य नवकिशोर गोपवेष था। उनके नेत्रकमलकी शोभाके सामने शरत्कालीन मध्याह्नके कमलकी सुषमा छबिहीन हो रही थी। उनकी सौन्दर्य-माधुरीपर अनन्त अनङ्ग न्योछावर हो रहे थे। उनके मधुर मनोहर मुखचन्द्रको देखकर शारदीय पूर्णिमाके कोटि-कोटि कलाधर छिपे जाते थे। दिव्य अमूल्य रत्नोंसे रचित प्रभामय आभूषणोंसे उनके सर्वाङ्ग अलंकृत थे। कटिप्रदेश परम प्रभाशाली पीताम्बरसे सुशोभित था। सहज ब्रह्मज्योतिसे उनका श्रीविग्रह उद्भासित था। उनके विशाल वक्षःस्थलपर दिव्य सुगन्धमयी वनमाला लहरा रही थी। चम्पा और मालतीकी मनोहर मालाएँ घुटनोंतक लटक रही थीं। उरस्थलपर कौस्तुभ-मणि चमचमा रही थी। समस्त अङ्ग कस्तूरी, केसर और अगुरुमिश्रित दिव्य चन्दनसे चर्चित थे। वह श्रीविग्रह मनोहर दिव्य चूड़ामणिसे सुशोभित था। मुखपर मधुर मनोहर मुसकान खेल रही थी। वे दोनों हाथोंमें मधुर मुरली लिये उसमें सुर भर रहे थे। मनोहारिणी दिव्य लीलाओंके तो साक्षात् धाम ही थे। वे परम शान्त और अनन्त माधुर्यसे युक्त, श्रीसे सम्पन्न एवं श्रीराधारानीके परम प्रिय प्राणवल्लभ थे। रासमण्डलके मध्यभागमें दिव्य रत्नमय विशद सिंहासनपर विराजमान थे। प्रेमकी मूर्तिमती प्रतिमा श्रीगोपाङ्गनाएँ मधुर स्मित करती हुई उनके मुखसरोजकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे निहार रही थीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे रस-सुधा-माधुरीका प्रवाह बह रहा था।

वे श्रीकृष्ण सभीके एकमात्र महेश्वर हैं। जगद्धाता ब्रह्मा उन्हींका भय मानकर सृष्टिका विधान तथा कर्मानुसार सम्पूर्ण कर्मोंका उल्लेखन करते हैं। उन्हींके आज्ञानुसार देवता सबको तपस्याओं तथा कर्मोंका फल देते हैं। उन्हींके आदेशसे भगवान् विष्णुको सबका रक्षक माना गया है। वे उन्हींका अनुशासन पाकर निरन्तर रक्षाके कार्यमें तत्पर रहते हैं। उनसे भीत रहनेवाले कालाग्नि रुद्रद्वारा अखिल जगत्का संहार होता है। जो ज्ञानियोंके गुरु-के-गुरु एवं मृत्युञ्जय नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव हैं, वे भी उन्हींको जाननेसे ज्ञानवान्, योगीश, प्रभु, परम आनन्दसे सम्पन्न तथा भक्ति एवं वैराग्यसे संयुक्त हैं। साध्वी ! उन्हींका भय मानकर शीघ्रगामियोंमें प्रमुख पवन चलते तथा सूर्य निरन्तर तपते हैं। उन्हींकी आज्ञाके अनुसार इन्द्र वर्षा करते, मृत्यु प्राणियोंपर प्रभाव डालते, अग्नि जलाते तथा जल शीतल करते हैं, उन्हींकी आज्ञासे भयभीत दिक्पालोंद्वारा दिशाओंकी रक्षा होती है। उन्हींके भयसे ग्रह राशिचक्रोंपर भ्रमण करते हैं। वृक्ष जो फूलते और फलते हैं, इसमें भी उनका भय ही कारण है। उन्हींकी आज्ञाको

शिरोधार्य करके काल जगत्का संहार करता है। उनकी आज्ञाके बिना जलचर और स्थलचर कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। उनकी आज्ञाके बिना संग्राममें तथा किसी भी विषमस्थलमें आबद्ध प्राणीको भी मृत्यु नहीं मार सकती। उन्हींकी आज्ञासे वायु अगाध जलको, जल कच्छपको, कच्छप शेषनागको, शेषनाग पृथ्वीको और पृथ्वी समुद्रों तथा पर्वतोंको धारण किये रहती है। जो सब प्रकारसे क्षमामयी है, वह पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे नाना प्रकारके रत्नोंको धारण करती है। उन्हींके आज्ञानुसार पृथ्वीपर सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न और नष्ट होते हैं।

पतिव्रते ! देवताओंके इकहत्तर युगोंकी इन्द्रकी आयु होती है। ऐसे अट्ठाईस इन्द्रोंके बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। इसी प्रकार तीस दिनोंका एक मास होता है और दो मासकी ऋतु तथा छः ऋतुओंका एक वर्ष होता है। ऐसे सौ वर्षकी ब्रह्माकी आयु होती है। यही ब्रह्माकी आयुका मान कहा गया है। ब्रह्माके शान्त होनेपर माया-विशिष्ट प्रकृति—ब्रह्म परमात्माकी एक पलक गिरती है। जब वे आँख मूँद लेते हैं, तब उसीको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं। उस प्राकृतिक प्रलयके समय सम्पूर्ण देवता, चराचर प्राणी, धाता तथा विधाता—ये सब भगवान् श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं। क्षीरसागरमें शयन करनेवाले श्रीविष्णु तथा वैकुण्ठवासी चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके वामपार्श्वमें लीन हो जाते हैं। ज्ञानके अधिष्ठाता सनातन—भगवान् शिव उन परमात्मा श्रीकृष्णके ज्ञानमें प्रवेश कर जाते हैं। सम्पूर्ण शक्तियाँ विष्णुमाया दुर्गामें तिरोहित हो जाती हैं। विष्णुमाया दुर्गा भगवान् श्रीकृष्णकी बुद्धिमें स्थान ग्रहण कर लेती हैं; क्योंकि वे उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। नारायणके अंश स्वामी कार्तिकेय उनके वक्षःस्थलमें लीन हो जाते हैं। सुव्रते ! गणोंके स्वामी देवेश्वर गणेशको भगवान् श्रीकृष्णका अंश माना गया है। वे उनकी दोनों भुजाओंमें प्रविष्ट हो जाते हैं। लक्ष्मीकी अंशभूता देवियाँ लक्ष्मीमें तथा लक्ष्मी श्रीराधामें लीन हो जाती हैं। गोपियाँ तथा सम्पूर्ण देवपत्नियाँ भी श्रीराधामें ही लीन हो जाती हैं। भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधीश्वरी देवी श्रीराधा उनके प्राणोंमें निवास कर जाती हैं। सावित्री, वेद एवं सम्पूर्ण शास्त्र सरस्वतीमें प्रवेश कर जाते हैं। सरस्वती परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी जिह्वामें विलीन हो जाती हैं। गोलोकके सम्पूर्ण गोप भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंमें लीन हो जाते हैं। उन प्रभुके प्राणोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणवायु, उनकी जठराग्निमें समस्त अग्नियोंका तथा उनकी जिह्वाके अग्रभागपर जलका लय हो जाता है। वैष्णव पुरुष अत्यन्त आनन्दित हो उन भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें लीन हो जाते हैं। सारके भी सार भक्तिरूपी रसमय अमृतको पीनेवाले भक्त महान् पुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं; क्योंकि वे उन्हींके अंश हैं। महाविराट् पुरुष उन्हें कहा जाता है, जिनके रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्व स्थान पाता है, जिनके आँख मीचनेपर प्राकृत प्रलय हो जाती है तथा जिनके शयन करनेके पश्चात् पुनः सृष्टिका कार्य आरम्भ हो जाता है। ब्रह्माके सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर सृष्टिका सूत्रलय होता है। सुव्रते ! ब्रह्माकी सृष्टि और प्रलयकी कोई संख्या ही नहीं है, जैसे पृथ्वीके रजःकणकी गणना नहीं की जा

सकती। जिन सर्वान्तरात्मा प्रभुके पलक मारनेपर प्रलय तथा शयन करनेके पश्चात् जिनकी इच्छासे पुनः सृष्टि होती है, वे परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण प्रलयकाल उपस्थित होनेपर उन मूलप्रकृति परात्परस्वरूपा शक्तिमें मिलकर एक हो जाते हैं। उस समय एक पराशक्ति ही रह जाती है। उसीको निर्गुण कहते हैं। उसीके विषयमें वेदके ज्ञाता विद्वानोंका कथन है कि 'सदेवेदमग्र आसीत्' अर्थात् वे ही ये पुरुष हैं जो सर्वप्रथम विराजमान थे। भगवती मूल-प्रकृति अव्यक्त होनेपर भी व्यक्त पदसे सम्बोधित होती है। उसे चिद्ब्रह्मसे अभिन्नत्व प्राप्त है, अतः प्रलयकालमें वह ज्यों-की-त्यों विराजमान रहती है। फिर ऐसे विशिष्ट गुणोंसे सम्पन्न भगवती जगदम्बाके गुणोंका वर्णन करनेके लिये अखिल ब्रह्माण्डमें कौन ऐसा पुरुष है, जो सफलता प्राप्त कर सके।

चारों वेदोंने मुक्तिके चार भेद बतलाये हैं। उन सबमें प्रभुकी भक्तिको प्रधान माना है; क्योंकि इसके सामने सभी तुच्छ हैं। एक मुक्ति 'सालोक्य' प्रदान करनेवाली, दूसरी सारूप्य देनेमें निपुण, तीसरी 'सामीप्य' प्रदान करनेवाली और चौथी निर्वाण पदपर पहुँचानेवाली कही जाती है। भक्तपुरुष परमप्रभु परमात्माकी सेवा छोड़कर इन मुक्तियोंकी इच्छा नहीं करते। वे शिवत्व, अमरत्व और ब्रह्मत्वकी भी अवहेलना करते हैं। मुक्ति सेवारहित होती है और भक्तिमें निरन्तर सेवाभावका उत्कर्ष होता रहता है। यही भक्ति और मुक्तिका भेद है। अब निषेक-खण्डनका प्रसङ्ग सुनो। विद्वान् पुरुष कहते हैं कि किये हुए कर्मोंका भोग ही निषेक है। उसके खण्डनका कल्याणप्रद उपाय तो यही है कि मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीकी उत्तम सेवा की जाय। साध्वी! यह तत्त्वज्ञान लोक और वेदमें स्थिर है। अतएव वत्से! तुम इस विघ्नरहित एवं शुभप्रद मार्गका सुखपूर्वक अनुसरण करो।

इस प्रकार कहकर सूर्यपुत्र धर्मराजने सावित्रीके पति सत्यवान्को जीवन प्रदान करके

सावित्रीको शुभ आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् वे जानेके लिये उद्यत हो गये। उन्हें जाते देखकर सावित्रीने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनके चरणोंको पकड़कर वह रो पड़ी। उन परम उदार धर्मराजके बिछोहके कारण वह दुःखी हो रही थी। कृपासागर धर्मराज सावित्रीकी यह स्थिति देखकर परम संतुष्ट हुए। साथ ही उनकी आँखोंसे भी स्नेह-जलकी धारा बहने लगी। उन्होंने सावित्रीसे कहा।

धर्मराज बोले—सावित्री! तुम पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें बहुत वर्षोंतक सुख भोगनेके अनन्तर उस लोकमें जाओगी जहाँ स्वयं भगवती विराजमान रहती हैं। भद्रे! अब तुम अपने घर जाओ और भगवती सावित्रीका व्रत करो। चौदह वर्षोंतक करनेपर यह व्रत नारियोंको मोक्ष

प्रदान करता है। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें चतुर्दशी तिथिको यह व्रत करना चाहिये। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमी तिथिके दिन महालक्ष्मीका व्रत होता है। शुचिस्मिते ! यह व्रत सोलह वर्षोंतक करना चाहिये। जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे भगवान् श्रीहरिका परम पद प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक मंगलवारके दिन मङ्गल प्रदान करनेवाली भगवती मङ्गलचण्डिकाकी पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षमें षष्ठीके दिन मङ्गलप्रदा भगवती षष्ठी देवसेनाकी उपासना करनेका विधान है। इसी प्रकार आषाढकी संक्रान्तिके अवसरपर सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाली भगवती मनसाकी पूजा होती है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमा तिथिको रासके अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणाधिका श्रीराधाकी उपासना करनी चाहिये तथा प्रत्येक मासकी शुक्ल अष्टमीके दिन मङ्गल प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गाका व्रत करना चाहिये। जो नारी पुत्रवती और सुहागिनी स्त्रियों, पुण्यमयी पतिव्रताओं एवं यन्त्रोंमें तथा प्रतिमाओंमें भगवती विष्णुमाया, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा तथा प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी भावना करके धन और संतति-प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवती श्रीदेवीके परमपदको प्राप्त होती है। साधक पुरुषको चाहिये कि इस प्रकार देवीकी विभूतियोंका निरन्तर पूजन करे। अतएव तुम निरन्तर सर्वरूपा मूलप्रकृति श्रीभुवनेश्वरीकी उपासना करो। इस परमेश्वरीकी सेवासे बढ़कर दूसरा कोई भी ऐसा कार्य नहीं है, जिससे प्राणी कृतकृत्य हो सके।

इस प्रकार कहकर धर्मराज अपने स्थानपर पधार गये। सावित्री भी पतिदेवको लेकर अपने घरपर लौट गयी। नारद ! यों सावित्री और सत्यवान्—दोनों जब घरपर चले आये, तब सावित्रीने अपने अन्य बान्धवोंसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर, वरके प्रभावसे क्रमशः सावित्रीके पिता पुत्रवान् बन गये। उसके श्वशुरकी आँखें ठीक हो गयीं और वे अपना राज्य पा गये। सावित्री स्वयं भी बहुत-से पुत्रोंकी जननी बन गयी। उस पतिव्रता सावित्रीने पुण्यभूमि भारतवर्षमें अनेक वर्षोंतक सुखभोग किया। तत्पश्चात् वह अपने पतिके साथ भगवती भुवनेश्वरीके लोकमें चली गयी। सूर्यमण्डलात्मक सविताकी अधिष्ठात्री होनेसे अथवा सूर्यके अन्तर्गत ब्रह्मप्रतिपादक गायत्री-मन्त्रकी अधिदेवता होनेसे इसका नाम 'सावित्री' हुआ है। अथवा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे जगत्‌में इसका सावित्री नाम प्रसिद्ध है।

वत्स ! इस प्रकार सावित्रीका श्रेष्ठ उपाख्यान तथा प्राणियोंके कर्मविपाक—ये प्रसंग तुम्हें बता दिये। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय ३८)

☆

# भगवती महालक्ष्मीके प्राकट्य तथा विभिन्न व्यक्तियोंसे उनके पूजित होनेका तथा दुर्वासाके शापसे महालक्ष्मीके देवलोक-त्याग और इन्द्रके दुःखी होकर बृहस्पतिके पास जानेका वर्णन

नारदजीने कहा—भगवन्! मैं धर्मराज और सावित्रीके संवादमें मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरी तथा निर्गुणस्वरूपा गायत्रीका निर्मल यश सुन चुका। इन देवियोंके गुणोंका कीर्तन निःसंदेह सत्यरूप एवं मङ्गलोंका भी मङ्गल है। प्रभो! अब मैं भगवती लक्ष्मीका उपाख्यान सुनना चाहता हूँ। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! सर्वप्रथम भगवती लक्ष्मीकी किसने पूजा की? इन देवीका कैसा स्वरूप है और किस मन्त्रसे इनकी पूजा होती है? आप मुझे इनका गुणानुवाद सुनानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! प्राचीन समयकी बात है—सृष्टिके आदिमें परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके वामभागसे रासमण्डलमें भगवती श्रीराधा प्रकट हुईं। उन परमसुन्दरी श्रीराधाके चारों ओर वटवृक्ष शोभा दे रहे थे। उनकी अवस्था ऐसी थी, मानो द्वादश-वर्षीया देवी हों। निरन्तर रहनेवाला तारुण्य उनकी शोभा बढ़ा रहा था। उनका दिव्य विग्रह ऐसा प्रकाशमान था, मानो श्वेत चम्पकका पुष्प हो। उन मनोहारिणी देवीके दर्शन परम सुखी बनानेवाले थे। उनका प्रसन्न मुख शरत्पूर्णिमाके कोटि-कोटि चन्द्रमाओंकी प्रभासे पूर्ण था। उनके विकसित नेत्रोंके सामने शरत्कालके मध्याह्नकालिक कमलोंकी शोभा छिप जाती थी। परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके साथ विराजमान रहनेवाली वे देवी उनकी इच्छाके अनुसार दो रूप हो गयीं। वर्ण, तेज, अवस्था, कान्ति, यश, वस्त्र, आभूषण, गुण, कृत्य, मुसकान, अवलोकन, प्रेम तथा अनुनय उनके ये सभी दिव्य गुण दोनों रूपोंमें समान ही थे। बायें अंशसे लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ और दाहिने अंशसे श्रीराधा ही विद्यमान रहीं। श्रीराधाने प्रथम परात्पर प्रभु द्विभुज भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपसे स्वीकार कर लिया। भगवान्का विग्रह अत्यन्त कमनीय था। महालक्ष्मीने भी श्रीराधाके वर लेनेके पश्चात् उन्हींको पति बनानेकी इच्छा प्रकट की। तब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें गौरव प्रदान करनेके विचारसे ही स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हो गये। अपने दक्षिण अंशसे वे दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और बायें अंशसे चतुर्भुज विष्णुके रूपमें परिणत हो गये। उन्होंने महालक्ष्मीको भगवान् विष्णुकी सेवामें समर्पित कर दिया। जो देवी अपनी स्नेहभरी दृष्टिसे विश्वको निरन्तर निरखती और लक्षित करती रहती है, वही अत्यन्त गौरवान्वित होनेके कारण महालक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके प्राणपति बने और चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु लक्ष्मीके। शुद्धसत्त्वस्वरूपा भगवती श्रीराधा गोपों और गोपियोंसे आवृत हो अत्यन्त शोभा पाने लगीं। फिर, चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु भगवती लक्ष्मीसहित वैकुण्ठधामको पधार गये। ये भगवान् श्रीविष्णु और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों समस्त अंशोंमें एक समान ही हैं।

भगवती श्रीमहालक्ष्मी योगसिद्धिके कारण नाना रूपोंमें विराजमान हुईं। वे परिपूर्णतम परमशुद्ध सत्त्वस्वरूपा भगवती लक्ष्मी सम्पूर्ण

सौभाग्योंसे सम्पन्न होकर 'महालक्ष्मी'के नामसे प्रसिद्ध हो वैकुण्ठधाममें निवास करने लगीं। प्रेमके कारण समस्त नारीसमुदायमें वे प्रधान हुईं। इन्द्रकी सम्पत्तिके समान सुन्दर विग्रह धारण करके देवी 'स्वर्ग-लक्ष्मी'के नामसे स्वर्गमें प्रसिद्ध हुईं। पातालमें उनका नाम 'नाग-लक्ष्मी' और राजाओंके यहाँ 'राज्य-लक्ष्मी' हुआ। गृहस्थोंके यहाँ 'गृह-लक्ष्मी'के नामसे वे पूजित हुईं। ये सभी रूप इन महालक्ष्मीके एक अंशके हैं। अपने पूर्णरूपसे तो ये नित्य वैकुण्ठधाममें ही विराजती हैं। गृहस्थोंके सम्पूर्ण मङ्गलोंको भी मङ्गल प्रदान करनेवाली देवी सम्पत्तिस्वरूपा होकर विराजने लगीं। गौओंमें 'सुरभि'रूपसे तथा यज्ञोंमें 'दक्षिणा' रूपसे ये पधारीं। क्षीरसागरके यहाँ उसकी कन्या बनीं। ये कमलिनियोंके लिये 'श्री'रूपा और चन्द्रमाके लिये 'शोभा' रूपा हुईं। इन्हींकी कृपासे सूर्यमण्डल शोभा पाने लगा। भूषण, रत्न, फल, जल, राजा, रानी, दिव्य नारी, गृह, सम्पूर्ण धान्य, वस्त्र, पवित्र स्थान, देवताओंकी प्रतिमा, मङ्गल-कलश, माणिक्य, मोतियोंकी सुन्दर मालाएँ, बहुमूल्य हीरे, चन्दन, वृक्षोंकी सुरम्य शाखा तथा नूतन मेघ—इन सभी वस्तुओंमें भगवती श्रीलक्ष्मीका अंश विद्यमान है।

मुने! सर्वप्रथम भगवान् नारायणने वैकुण्ठधाममें इन महालक्ष्मीकी पूजा की। दूसरी बार ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक इनका अर्चन किया। तृतीय श्रेणीके उपासक भगवान् श्रीशिव हैं। भगवान् विष्णुने क्षीरसागरमें इनकी पूजा की। तदनन्तर स्वायम्भुव मनु, मानवेन्द्र, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सभ्य गृहस्थ—इन लोगोंने जगत्में इन महालक्ष्मीकी उपासना की है। गन्धर्वों और नागोंने पाताललोकमें इनका पूजन किया। भाद्रपदमासकी शुक्ल अष्टमीके सुअवसरपर ब्रह्माद्वारा ये सुपूजित हुईं। नारद! भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षमें पूरे पक्षतक त्रिलोकीमें इनकी भक्तिपूर्वक पूजा होती रही। चैत्र, पौष तथा भाद्रपदमासके पवित्र मंगलवारको इनकी पूजाका महोत्सव होने लगा। श्रीविष्णुसे सुपूजित होनेके कारण त्रिलोकीमें सब लोगोंने बड़े भक्तिभावके साथ इनकी उपासना की। वर्षके अन्तमें पौषकी संक्रान्तिके अवसरपर मध्याह्नकालमें मनुने मङ्गलकलशपर इनकी प्रतिमाका आवाहन करके इनकी पूजा की। तत्पश्चात् वे महादेवी तीनों लोकोंके लिये नित्यपूज्य हो गयीं। इन्द्र इनके उपासक बने। राजा मङ्गलने मङ्गलाके रूपमें इनकी उपासना की। तदनन्तर राजा केदार, नील, बल, सुबल, ध्रुव, उत्तानपाद, शक्र, बलि, कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्रमा, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुणने इनकी उपासना की। इस प्रकार ये भगवती महालक्ष्मी सर्वत्र सब लोगोंसे सदा सुपूजित हुई हैं। ये सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्हें समस्त सम्पत्तियोंका साक्षात् विग्रह कहा गया है।

नारदजीने पूछा—भगवन्! श्रीमहालक्ष्मी भगवान् नारायणकी प्रिया होकर सदा वैकुण्ठमें विराजती हैं। उन सनातनी देवीको वैकुण्ठकी अधिष्ठात्री देवी कहा गया है। पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी बात सत्य करनेके लिये इन देवीने पृथ्वीपर आकर समुद्रकी कन्या होनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। सो ये समुद्रकी कन्या कैसे बनीं? मुझे स्पष्टरूपसे यह प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायणने कहा—नारद ! पूर्व समयकी बात है, दुर्वासाके शापसे भगवती श्री इन्द्रके पाससे चली गयीं। ऐसी स्थितिमें देवसमुदाय मर्त्यलोकमें भटकने लगा। लक्ष्मीने स्वर्गका त्याग करके कुपित हो दुःखके साथ वैकुण्ठके लिये प्रस्थान कर दिया। नारद ! वे वहाँ गयीं और महालक्ष्मीमें अपने रूपका संवरण कर दिया। उस समय सम्पूर्ण देवताओंके शोककी सीमा नहीं रही। वे परम दुःखी होकर भगवान् ब्रह्माकी सभामें गये। वहाँ जाकर ब्रह्माको अपना अगुआ बनाया और सब वैकुण्ठ पधारे। वहाँ भगवान् नारायण विराजमान थे। अत्यन्त दैन्यभाव प्रकट करते हुए देवताओंने उनकी शरण ग्रहण की। वस्तुतः देवता बहुत दुःखी थे। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। तब पुराणपुरुष भगवान् श्रीहरिकी आज्ञा मानकर वे सर्वसम्पत्तिस्वरूपा लक्ष्मी अपनी कलासे समुद्रकी कन्या हुईं।

देवताओं और दैत्योंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया था। उससे महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ। भगवान् विष्णुने उनका साक्षात्कार किया। उस अवसरपर उन प्रसन्नवदना देवीने देवताओंको वर दिया और क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुको वरमाला अर्पण कर वे स्वयं उन्हींके पास चली गयीं। नारद ! उनकी कृपासे देवताओंको असुरोंके हाथमें गया हुआ राज्य पुनः प्राप्त हो गया। तदनन्तर देवता उनकी भलीभाँति पूजा करके निरापद हो सर्वत्र आनन्द करने लगे !

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन् ! ब्रह्मनिष्ठ और तत्त्वज्ञ मुनिवर दुर्वासाने कब, क्यों और किस अपराधके कारण इन्द्रको शाप दे दिया था ? देवताओंने किस रूपसे समुद्रका मन्थन किया ? किस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर देवीने इन्द्रको साक्षात् दर्शन दिये थे ? प्रभो ! इन्द्र और दुर्वासामें किस प्रकारका संवाद हुआ था ? यह सब बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! प्राचीन कालकी बात है, मुनिवर दुर्वासाजी वैकुण्ठसे कैलासके शिखरपर जा रहे थे। इन्द्रने उन्हें देखा। मुनिवरका शरीर ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त हो रहा था। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो ग्रीष्मकालके मध्याह्नकालिक सूर्यकी सहस्रों प्रभाओंसे सम्पन्न हों। उनकी अत्यन्त स्वच्छ जटाएँ तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रही थीं। वे श्वेतवर्णका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे तथा उनके हाथोंमें मृगचर्म, दण्ड और कमण्डलु शोभा पा रहे थे। उनके ललाटपर महान् उज्ज्वल तिलक चन्द्रमाके सदृश जान पड़ता था। वेद-वेदाङ्गके पारगामी असंख्य शिष्य उनके साथ विद्यमान थे। उन्हें देखकर इन्द्रने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उनके शिष्योंको भी भक्तिपूर्वक प्रसन्नताके साथ इन्द्रने संतुष्ट किया। तब शिष्योंसहित मुनिवर दुर्वासाने इन्द्रको शुभ आशीर्वाद दिया; साथ ही भगवान् विष्णुद्वारा प्राप्त परम मनोहर पारिजातपुष्प भी उन्हें समर्पित किये। राज्यश्रीके गर्वमें गर्वित इन्द्रने जरा, मृत्यु एवं शोकका विनाश करनेवाले तथा मोक्षदायी उस पुष्पको लेकर अपने ऐरावत हाथीके मस्तकपर रख दिया। उस पुष्पका स्पर्श होते ही रूप, गुण, तेज और अवस्था—इन सबसे सम्पन्न होकर ऐरावत सहसा भगवान् विष्णुके समान हो गया। फिर तो इन्द्रको छोड़कर वह घोर वनमें चला गया। मुने ! उस समय इन्द्र

तेजसे युक्त उस ऐरावतपर शासन नहीं कर सके। इन्द्रने इस दिव्य पुष्पका परित्याग कर तिरस्कार किया है—यह जानकर मुनिवर दुर्वासाके रोषकी सीमा न रही। उन्होंने क्रोधमें भरकर शाप देते हुए कहा।

मुनिवर दुर्वासा बोले—अरे! राज्यश्रीके अभिमानमें प्रमत्त होकर तुम क्यों मेरा अपमान कर रहे हो? तुम्हें मैंने यह पारिजातपुष्प दिया; गर्वके कारण तुमने स्वयं इसका उपयोग न करके हाथीके मस्तकपर रख दिया। नियम तो यह है कि श्रीविष्णुको समर्पित किये हुए नैवेद्य, फल अथवा जलके प्राप्त होते ही उनका उपभोग करना चाहिये। त्याग करनेसे ब्रह्महत्याके सदृश दोष लगता है। सौभाग्यवश प्राप्त हुए भगवान् विष्णुके पावन नैवेद्यका जो त्याग करता है, वह पुरुष श्री और बुद्धिसे भ्रष्ट हो जाता है। भगवान् विष्णुके लिये अर्पित की हुई वस्तुको पाते ही उसे पा लेनेवाला बड़भागी पुरुष अपने सौ पूर्वजोंका उद्धार करके स्वयं मुक्त हो जाता है। जो पुरुष नैवेद्य भोजन करके निरन्तर भगवान् श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक पूजा और स्तुति करता है, वह भगवान् विष्णुके समान हो जाता है। उसका स्पर्श करके चलनेवाली वायुका संयोग पाकर तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। उसकी चरणरज लगते ही पृथ्वीमें अपार पवित्रता आ जाती है। बिना श्रीहरिको भोग लगाया हुआ अन्न पुंश्चली, कायर और शूद्रके अन्नके समान दोषप्रद होता है। वह मांस-भक्षणसे भी अधिक दोषावह है। शिवलिङ्गके लिये अर्पण किया हुआ अन्न तथा शूद्रयाजी, देवल, कन्याविक्रयी और योनिजीवीका अन्न, उच्छिष्ट, बासी, सबके भोजन करनेपर बचा हुआ अन्न, शूद्रापति एवं वृषवाही, अदीक्षित, शवदाही, अगम्यागामी, मित्रद्रोही, विश्वासघाती, कृतघ्न, मिथ्याभाषी ब्राह्मणोंका अन्न अत्यन्त दूषित समझा जाता है; परंतु ये सब भी भगवान् विष्णुको अर्पण करके भोजन करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। यदि चाण्डाल भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है तो उसमें करोड़ों मनुष्योंका उद्धार करनेकी शक्ति आ जाती है। श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख मानव स्वयं अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता। यदि अज्ञानमें भी भगवान् विष्णुको समर्पित नैवेद्य ग्रहण कर लिया जाय तो वह पुरुष अपने अनेक जन्मोंके उपार्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है। जान-बूझकर भक्तिपूर्वक जो श्रीहरिका प्रसाद ग्रहण करता है, उसके तो कई जन्मोंके पाप निश्चितरूपसे भस्म हो जाते हैं। इन्द्र! तुमने जो अभिमानमें आकर भगवान्‌के प्रसादरूप पारिजातके पुष्पको हाथीके मस्तकपर रख दिया, इस अपराधके फलस्वरूप लक्ष्मी तुम्हें छोड़कर भगवान् श्रीहरिके समीप चली जाय। मैं भगवान् नारायणका भक्त हूँ। मुझे देवताओं तथा ब्रह्मासे भी किंचित् भी भय नहीं है। काल, मृत्यु और जरासे भी मैं नहीं डरता; फिर दूसरोंकी तो गिनती ही क्या है? तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप भी मेरा क्या करेंगे? देवराज! तुम्हारे गुरु बृहस्पति भी मुझ निःशङ्क पुरुषका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। देखो, यह पुष्प जिसके मस्तकपर है, उसीकी पूजा श्रेष्ठ मानी जाती है।

मुनिवर दुर्वासाके ये वचन सुनकर देवराज इन्द्रने उनके चरण पकड़ लिये। भयके कारण उनके मनमें घबराहट छा गयी। शोकातुर होकर उच्च स्वरसे रोते हुए वे मुनिसे कहने लगे।

इन्द्रने कहा—प्रभो! आपने मुझे मायानाशक यह शाप देकर बहुत ही उचित किया

है। अब मैं गयी हुई सम्पत्तिकी याचना नहीं करता; आप मुझे कुछ ज्ञानोपदेश करनेकी कृपा कीजिये। ऐश्वर्य तो विपत्तियोंका बीज है। उससे ज्ञान ढक जाता है। इसीसे इसको मुक्तिमार्गका कुठार कहा जाता है। इसके कारण भक्तिमें पद-पदपर बाधा उपस्थित हुआ करती है।

मुनि बोले—देवराज ! सम्पत्ति, जन्म, मृत्यु, जरा, शोक और रागके बीजका उत्तम अङ्कुर है। इसके प्रभावसे अन्धा हुआ मानव मुक्तिके मार्गको नहीं देख सकता। इन्द्र ! जो मूढ मानव सम्पत्तिसे प्रमत्त हो गया है, उसीको मदिरासे मत्त भी समझना चाहिये। उसे ही बान्धवजन बन्धु कहकर घेरे रहते हैं। वैभवमत्त, विषयान्ध, विह्वल, महाकामी और राजसिक व्यक्तिमें सत्त्वमार्गका अवलोकन करनेकी योग्यता नहीं रह जाती। विषयान्ध भी दो प्रकारके बताये गये हैं—राजस और तामस। जिसमें शास्त्रका ज्ञान नहीं है, वह तामस कहलाता है और शास्त्रज्ञ राजस। सुरश्रेष्ठ ! शास्त्र दो प्रकारके मार्ग दिखलाते हैं—एक प्रवृत्ति-बीज और दूसरा निवृत्ति-बीज। पहला जो प्रवृत्तिमार्ग है, उसके भीतर दुःख-ही-दुःख भरे हैं; परंतु प्राणी उसीपर स्वच्छन्द, प्रसन्नता-पूर्वक तथा सर्वदा निर्विरोध होकर उसी प्रकार पैर रखते हैं, जैसे मधुका लोभी भौंरा सुख मानकर क्लेशके साथ पुष्पोंपर आ गिरता है। यह प्रवृत्तिमार्ग जन्म, मृत्यु, जरा और नाशके परिणामका मूल कारण है। प्राणी प्रसन्नतापूर्वक अनेक जन्मोंतक अपने विहित कर्मके परिणाम-स्वरूप नाना प्रकारकी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करनेके पश्चात् भगवान्‌की कृपासे मानव होकर सत्सङ्गका सुअवसर प्राप्त करता है। सत्सङ्ग संसाररूपी अपार सागरको पार करनेके लिये परम साधन तथा तत्त्वको प्रकाशित करनेके लिये प्रज्वलित दीपक है। सैकड़ों और सहस्रोंमें कोई विरला ही साधुपुरुष उसके प्रकाशसे मुक्तिमार्गका अवलोकन कर सकता है। तब बन्धनको तोड़नेके लिये उसके हृदयमें यत्न करनेकी भावना उत्पन्न होती है। जब अनेक जन्मोंके पुण्य एवं तपस्या और उपवास सहायक होते हैं, तब प्राणीको मुक्तिमार्गकी उपलब्धि होती है। यह मार्ग निर्विघ्न और परम सुखद है। पुरन्दर ! तुम जो यह विषय पूछ रहे हो, उसे मैं गुरुके मुखसे सुन चुका हूँ।

ब्रह्मन् ! मुनिवर दुर्वासाका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र वीतराग हो गये। प्रतिदिन उनके हृदयमें वैराग्यकी भावना बढ़ने लगी। मुनिके स्थानसे चलकर वे अपने भवनपर पहुँचे। उस समय उन्होंने देखा, उनकी अमरावती पुरी दैत्यों और असुरोंसे भलीभाँति भरी हुई है। उस पुरीमें रहनेवाले सब देवता भयसे व्याकुल हैं। सारी परिस्थिति विषम दृष्टिगोचर हो रही थी। कहीं किसीके भाई-बन्धु नहीं थे तो कहीं किसीके माता-पिता और स्त्रीने ही उसका साथ छोड़ दिया था। वहाँ अत्यन्त खलबली मची थी। सब ओर शत्रु-ही-शत्रु दिखायी देते थे। ऐसी स्थिति देखकर देवराज इन्द्र बृहस्पतिके पास चले गये। उस समय शक्तिशाली बृहस्पतिजी मन्दाकिनीके तटपर विराजमान हो परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते हुए देवराज इन्द्रके दृष्टिगोचर हुए। फिर देखा तो वे गङ्गाके जलमें पूर्वाभिमुख खड़े होकर सूर्यका अभिवादन कर रहे थे। उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू भरे थे। उनका शरीर पुलकित था। वे अत्यन्त आनन्दित थे। वे परम श्रेष्ठ, गाम्भीर्यसम्पन्न, धर्मात्मा, श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवित, बन्धुवर्गमें आदरणीय, भ्रातृसमुदायमें

ज्येष्ठ तथा देव-शत्रुओंके लिये अनिष्टकारी गुरुवर बृहस्पतिजी मन्त्रका जप कर रहे थे। देवराज एक पहरतक उन्हें देखते रह गये। तत्पश्चात् उन्हें ध्यानसे उपरत देखकर प्रणाम किया। फिर वे गुरुदेवके चरणकमलोंमें मस्तक झुकाकर उच्च स्वरसे रोने लगे। तदनन्तर दुर्वासाजीके द्वारा दिये गये शापके सम्बन्धकी सारी बातें इन्द्रने बृहस्पतिजीको बतायीं। इन्द्रकी सारी बातें सुनकर परम बुद्धिमान् एवं वक्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीने इस प्रकार कहा।

बृहस्पतिजी बोले—सुरश्रेष्ठ ! मैं सब कुछ

सुन चुका हूँ। तुम विषाद मत करो; मेरी बात सुनो। नीतिज्ञ पुरुष विपत्तिके अवसरपर कभी भी घबराता नहीं है; क्योंकि यह विपत्ति और सम्पत्ति श्रमसाध्य है—इसे नश्वर कहा जाता है। यह सम्पत्ति और विपत्ति अपने ही पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मका फल है। उसीके अधीन होकर स्वयं कर्त्ता फल भोगता है। प्रायः सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये प्रत्येक जन्ममें यही शाश्वत नियम है। चक्रकी भाँति वह सदा घूमता रहता है; फिर इस विषयमें चिन्ता किस बातकी ? शुभ हो अथवा अशुभ, जिस किसी प्रकारके अपने कर्मफलको भोगनेके लिये ही पुरुष शरीर प्राप्त करता है। करोड़ों कल्प क्यों न बीत जायँ, किंतु बिना भोग किये कर्मका अन्त नहीं होता। अतएव शुभाशुभ कर्मका फल भोगना अनिवार्य है। इस प्रकारकी बातें परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको सम्बोधित करके सामवेदकी शाखामें स्पष्ट की हैं। किये हुए सम्पूर्ण कर्मोंका भोग शेष रह जानेपर कर्मानुसार प्राणियोंका भारतवर्षमें अथवा कहीं अन्यत्र जन्म होता है। करोड़ों जन्मोंके किये हुए कर्म प्राणीके पीछे लगे रहते हैं। पुरन्दर ! छायाकी भाँति वे बिना भोगे अलग नहीं होते। काल, देश और पात्रके भेदसे कर्मोंमें न्यूनाधिकता हुआ ही करती है। जिस प्रकार कुशल कुम्भकार दण्ड, चक्र, शराव और भ्रमणके द्वारा क्रमशः मिट्टीसे सुन्दर घटका निर्माण कर लेता है, उसी प्रकार विधाता कर्मसूत्रसे प्राणियोंको फल प्रदान करते हैं। अतः देवराज ! जिनकी आज्ञासे इस जगत्‌की सृष्टि हुई है, उन भगवान् नारायण-की तुम उपासना करो। वे प्रभु त्रिलोकीमें विधाता-के-विधाता, रक्षक-के-रक्षक, स्रष्टा-के-स्रष्टा, संहर्ता-के-संहारकर्ता तथा कालके भी काल हैं। जो पुरुष महान् विपत्तिके अवसरपर उन भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्तिमें भी सम्पत्तिकी ही भावना उत्पन्न हो जाती है; ऐसा भगवान् शंकरने आदेश दिया है* ।

* महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्। विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शंकरः॥ (९।४०।९१)

नारद ! इस प्रकार कहकर तत्त्वज्ञानी बृहस्पतिजीने देवराज इन्द्रको हृदयसे लगा लिया और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें पूर्णरूपसे सारी बातें समझा दीं। (अध्याय ३९-४०)

☆

## भगवती लक्ष्मीका समुद्रसे प्रकट होना और इन्द्रके द्वारा महालक्ष्मीका ध्यान तथा स्तवन किये जाने और पुनः अधिकार प्राप्त किये जानेका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! तदनन्तर भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके देवराज इन्द्रने बृहस्पतिजीको आगे करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माकी सभाके लिये प्रस्थान किया। वे शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। सबको ब्रह्माजीके दर्शन हुए। इन्द्र और बृहस्पतिसहित समस्त देवताओंने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी हँस पड़े। उन्होंने देवराजसे कहा।

ब्रह्माजी बोले—वत्स ! तुम मेरे वंशज हो। तुम्हें उत्तम बुद्धि प्राप्त है। मेरे प्रपौत्र हो। बृहस्पतिजी तुम्हारे गुरु हैं और तुम स्वयं भी देवताओंके स्वामी हो। परम प्रतापी विष्णुभक्त दक्ष प्रजापति तुम्हारे मातामह हैं। भला, जिसके तीनों कुल ऐसे पवित्र हों, वह सुयोग्य पुरुष अहंकार क्यों करे? जिसकी माता परम पतिव्रता, पिता शुद्धस्वरूप और मातामह एवं मातुल जितेन्द्रिय हों, वह व्यक्ति अहंकारी क्यों बन जाय? क्योंकि यदि पिता, मातामह और गुरु—ये तीन दोषी हों, तो इन्हींके दोषसे सम्पन्न होकर पुरुष भगवान् श्रीहरिका द्रोही बन सकता है—यह निश्चित है। सर्वान्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। उनके देहसे निकल जानेपर उसी क्षण प्राणी शव बन जाता है। वे स्वामी हैं और हम सब लोग उनके अनुचर हैं। मैं प्राणियोंके शरीरमें इन्द्रियोंका स्वामी मन होकर रहता हूँ। शंकर ज्ञानका रूप धारण करके रहते हैं। विष्णुके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती श्रीराधा प्रकृतिके रूपमें विराजमान रहती हैं। बुद्धिको साध्वी दुर्गाका रूप माना गया है। निद्रा एवं क्षुधा आदि—ये सभी भगवती प्रकृतिकी कलाएँ हैं। आत्माका जो बुद्धिमें प्रतिबिम्ब है, वही जीव है। उसीने इस भोग-शरीरको धारण कर रखा है। जब शरीरका स्वामी आत्मा देहसे निकलकर जाने लगता है, तब ये सब भी तुरंत उसीके साथ-साथ चल पड़ते हैं; जैसे रास्तेमें वरके आगे चलनेपर सभी बाराती सज्जन उसका अनुसरण करते हैं। मैं, शिव, शेषनाग, विष्णु, धर्म एवं महाविराट् तथा तुम सब लोग—ये सब जिनके अंश और भक्त हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके निर्माल्यरूप पुष्पका तुमने अपमान कर दिया है। भगवान् शिवने जिस पुष्पसे उन श्रीहरिके चरणकमलोंकी पूजा की थी, वही पुष्प सौभाग्यवश मुनिवर दुर्वासाकी कृपासे तुम्हें प्राप्त हुआ था; परंतु तुमने उसका सम्मान नहीं किया। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलसे च्युत पुष्प जिसके मस्तकपर स्थान पाता है, वह सौभाग्यशाली व्यक्ति सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान माना जाता है और उसीकी पहले पूजा होती है। हा ! बलवान् दुर्दैवने तुम्हें ठग लिया। इस समय भगवान् श्रीकृष्णके निर्माल्यका परित्याग

करनेसे रोषमें आकर भगवती श्रीदेवी तुम्हारे पाससे चली गयी हैं। अब तुम मेरे तथा बृहस्पतिके साथ वैकुण्ठमें चलो। मैं वर देता हूँ, अतः तुम वहाँ लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिकी सेवा करके लक्ष्मीको अवश्य प्राप्त कर लोगे।

नारद ! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले वैकुण्ठ पधार गये। वहाँ जानेपर उन्हें परब्रह्म सनातन भगवान् श्रीहरिके दर्शन हुए। उस समय वे तेजःपुञ्ज प्रभु अपने ही तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उनका श्रीविग्रह ऐसा जान पड़ता था, मानो ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्न-कालिक असंख्य सूर्य एक साथ चमक रहे हों। वे आदि, मध्य और अन्तसे रहित लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि शान्तरूपसे विराजमान थे। वे चार भुजावाले पार्षदोंसे और भगवती सरस्वतीसे युक्त थे। चारों वेदोंसहित भगवती गङ्गा भक्ति प्रदर्शित करती हुई उनके पास विराजमान थीं। उन्हें देखकर ब्रह्माके अनुयायी सम्पूर्ण देवताओंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उनके प्रत्येक अङ्गमें भक्ति और विनयका विकास हो चुका था। आँखोंमें आँसू भरकर वे परम प्रभु भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करने लगे। स्वयं ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर भगवान्से यथावत् समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय समस्त देवता अपने अधिकारसे च्युत होनेके कारण रो रहे थे। विपत्तिने उनके हृदयमें भलीभाँति स्थान प्राप्त कर लिया था। भयके कारण उनमें घबराहटकी सीमा नहीं थी। उनके शरीरपर एक भी रत्न या आभूषण नहीं था। वे सवारीसे भी रहित थे। उन सभीके मुख म्लान थे। श्री तो पहले ही उनका साथ छोड़ चुकी थी। वे निस्तेज एवं भयग्रस्त थे। कुछ भी करनेकी शक्ति उनमें नहीं रह गयी थी। देवताओंको ऐसी दीन-दशामें पड़े हुए देखकर भयको दूर करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उनसे कहा।

भगवान् श्रीहरि बोले—ब्रह्मन् तथा देवताओ ! भय मत करो। मेरे रहते तुमलोगोंको किस बातका भय है। मैं तुम्हें परम ऐश्वर्यको बढ़ानेवाली अचल लक्ष्मी प्रदान करूँगा; परंतु मैं कुछ समयोचित बात कहता हूँ, तुमलोग उसपर ध्यान दो। मेरे वचन हितकर, सत्य, सारभूत एवं परिणाममें सुखावह हैं। जैसे अखिल विश्वके सम्पूर्ण प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रहते हैं, वैसे ही मैं भी अपने भक्तोंके अधीन हूँ। मैं अपनी इच्छासे कभी कुछ नहीं कर सकता। सदा मेरे भजन-चिन्तनमें लगे रहनेवाला निरङ्कुश भक्त जिसपर रुष्ट हो जाता है, उसके घर लक्ष्मीसहित मैं नहीं ठहर सकता—यह बिलकुल निश्चित है। मुनिवर दुर्वासा महाभाग शंकरके अंश एवं वैष्णव पुरुष हैं। उनके हृदयमें मेरे प्रति अटूट श्रद्धा भी है। उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया है। अतएव तुम्हारे घरसे लक्ष्मीसहित मैं चला आया हूँ; क्योंकि जहाँ शङ्खध्वनि नहीं होती, तुलसीका निवास नहीं रहता, शंकरकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं। ब्रह्मन् तथा देवताओ ! जिस स्थानपर मेरे भक्तोंकी निन्दा होती है, वहाँ रहनेवाली महालक्ष्मीके मनमें अपार क्रोध उत्पन्न हो जाता है। अतः वे उस स्थानको छोड़कर चल देती हैं। जो मेरी उपासना नहीं करता तथा एकादशी और जन्माष्टमीके दिन अन्न खाता है, उस मूर्ख व्यक्तिके घरसे भी लक्ष्मी चली जाती हैं। जो मेरे नामका तथा अपनी कन्याका विक्रय करता है

एवं जहाँ अतिथि भोजन नहीं पाता, उस घरको त्यागकर मेरी प्रिया लक्ष्मी अन्यत्र चली जाती हैं। जो ब्राह्मण पुंश्चलीके उदरसे उत्पन्न हुआ है अथवा पुंश्चलीका पति है, उसे 'महापापी' कहा गया है। उसके घर लक्ष्मी नहीं ठहर सकतीं।

जो ब्राह्मण बैल जोतता है, वह कमलालया भगवती लक्ष्मीका प्रेमभाजन नहीं हो सकता। अतः उसके यहाँसे वे चल देती हैं। जो अशुद्ध-हृदय, क्रूर, हिंसक और निन्दक है, उस ब्राह्मणके हाथका जल पीनेमें भगवती लक्ष्मी डरती हैं, अतः उसके घरसे वे चल देती हैं। जो शूद्रोंसे यज्ञ कराता है, कायर व्यक्तियोंका अन्न खाता है, निष्प्रयोजन तृण तोड़ता है, नखोंसे पृथ्वीको कुरेदता रहता है; जो निराशावादी है, सूर्योदयके समय भोजन करता है, दिनमें सोता और मैथुन करता है और जो सदाचारहीन है, ऐसे मूर्खोंके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं।

जो अल्पज्ञानी व्यक्ति भीगे पैर अथवा नंगा होकर सोता है तथा निरन्तर बेसिर-पैरकी बातें बकता रहता है, उसके घरसे साध्वी लक्ष्मी चली जाती हैं। जो सिरपर तैल लगाकर उसीसे दूसरेके अङ्गको स्पर्श करता है अर्थात् अपने सिरका तैल दूसरेको लगाता है तथा अपनी गोदमें बाजा लेकर उसे बजाता है, उसके घरसे रुष्ट होकर लक्ष्मी चली जाती हैं। जो द्विज व्रत, उपवास, संध्या और विष्णुभक्तिसे हीन है, उस अपवित्र पुरुषके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं। जो ब्राह्मणोंकी निन्दा तथा उनसे द्वेष करता है, जीवोंकी सदा हिंसा करता है और दयारहित है, उसके घरसे जगज्जननी लक्ष्मी चली जाती हैं।

जिस स्थानपर भगवान् श्रीहरिकी चर्चा होती है और उनके गुणोंका कीर्तन होता है, वहींपर सम्पूर्ण मङ्गलोंको भी मङ्गल प्रदान करनेवाली भगवती लक्ष्मी निवास करती हैं। पितामह ! जहाँ भगवान् श्रीकृष्णका तथा उनके भक्तोंका यश गाया जाता है, वहीं उनकी प्राणप्रिया भगवती लक्ष्मी सदा विराजती हैं। जहाँ शङ्खध्वनि होती है तथा शङ्ख, शालग्राम, तुलसी—इनका निवास रहता है एवं उनकी सेवा, वन्दना और ध्यान होता है, वहाँ लक्ष्मी सदा विद्यमान रहती हैं। जहाँ शिवलिङ्गकी पूजा और पवित्र कीर्तन तथा दुर्गापूजन एवं कीर्तन होता है, वहाँ कमलालया लक्ष्मी निवास करती हैं। जहाँ ब्राह्मणोंकी सेवा होती है, उन्हें उत्तम पदार्थ भोजन कराये जाते हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंका अर्चन होता है, वहाँ पद्ममुखी साध्वी लक्ष्मी विराजती हैं।

नारद ! रमापति भगवान् श्रीहरिने सम्पूर्ण देवताओंसे यों कहकर श्रीलक्ष्मीसे कहा—

'देवी ! तुम अपनी कलासे क्षीरसमुद्रके यहाँ जाकर जन्म धारण करना स्वीकार कर लो।' इस प्रकार लक्ष्मीसे कहनेके पश्चात् उन

जगत्प्रभुने पुनः ब्रह्मासे कहा—'पद्मज ! तुम समुद्रका मन्थन करो, उससे लक्ष्मी प्रकट होंगी। तब उन्हें देवताओंको सौंप देना।' मुने ! यों अपना प्रवचन समाप्त करके कमलाकान्त भगवान् श्रीहरि अन्तःपुरमें चले गये। देवता उसी क्षण क्षीरसागरकी ओर चल पड़े। वहाँ सभी देवता और दानव एकत्रित हुए। मन्दराचल-पर्वतको मन्थनकाष्ठ, कच्छपको पात्र तथा शेषनागको मन्थनकी रस्सी बनाकर वे क्षीर-समुद्रको मथने लगे। फलस्वरूप धन्वन्तरि वैद्य, अमृत, उच्चैःश्रवा घोड़ा, विविध रत्न, हाथियोंमें रत्न ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शनचक्र तथा वनमाला—ये अमूल्य पदार्थ उन्हें प्राप्त हुए। मुने ! उस समय भगवान् विष्णुमें अपार श्रद्धा रखनेवाली साध्वी श्रीलक्ष्मीने क्षीरशायी सर्वेश्वर श्रीहरिके गलेमें वनमाला पहना दी। फिर देवता, ब्रह्मा और शंकरके पूजा एवं स्तवन करनेपर उन्होंने देवताओंके भवनपर केवल दृष्टि फैला दी। इतनेमें ही देवताओंने दुर्वासा मुनिके शापसे मुक्त होकर दैत्योंके हाथमें गये हुए अपने राज्यको प्राप्त कर लिया। नारद ! यों महालक्ष्मीकी कृपासे वर पाकर वे परम सुखी हो गये।

इस प्रकार महालक्ष्मीका सम्पूर्ण श्रेष्ठ उपाख्यान मैंने बतला दिया। इस सारभूत उपाख्यानके प्रभावसे समस्त सुख प्राप्त हो जाता है। अब पुनः तुम क्या सुनना चाहते हो ?

नारदजीने कहा—प्रभो ! मैं भगवान् श्रीहरिका मङ्गलमय गुणानुवर्णन, उत्तम ज्ञान तथा भगवती लक्ष्मीका अभीष्ट उपाख्यान सुन चुका। अब आप ध्यान और स्तोत्रका प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! प्राचीन समयकी बात है, देवराज इन्द्रने क्षीरसमुद्रके तटपर तीर्थमें स्नान किया; दो स्वच्छ वस्त्र पहने, एक कलश स्थापित किया और छः देवताओंकी पूजा की। वे छः देवता हैं—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा। इन देवताओंकी गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजा करनेके पश्चात् इन्द्रने परम ऐश्वर्यस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीका आवाहन किया। अपने पुरोहित बृहस्पति तथा ब्रह्माजीके बताये अनुसार पूजा सम्पन्न की। मुने ! उस समय उस पवित्र देशमें अनेक मुनिगण, ब्राह्मणसमाज, गुरुदेव, श्रीहरि, देववृन्द तथा आनन्दमय ज्ञानस्वरूप भगवान् शंकर विराजमान थे। नारद ! देवराजने पारिजातका चन्दनचर्चित पुष्प लेकर भगवती महालक्ष्मीका ध्यान किया और उनकी पूजा की। पूर्वकालमें भगवान् श्रीहरिने ब्रह्माजीको जो ध्यान बतलाया था, उसी सामवेदोक्त ध्यानसे इन्द्रने भगवतीका चिन्तन किया। मैं वह ध्यान तुम्हें बताता हूँ, सुनो—'परमपूज्या भगवती महालक्ष्मी सहस्र दलवाले कमलकी कर्णिकाओं-पर विराजमान हैं। इनकी उत्तम कान्ति शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी शोभाको हरण कर लेती है। ये परमसाध्वी देवी स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित हो रही हैं। इन परम मनोहर देवीका दर्शन पाकर मन आनन्दसे खिल उठता है। ये मूर्तिमती होकर संतप्त सुवर्णकी शोभाको धारण किये हुए हैं। रत्नमय भूषण इनकी छबि बढ़ा रहे हैं। इन्होंने पीताम्बर पहन रखा है। इन प्रसन्नवदनवाली भगवती महालक्ष्मीके मुखपर मुसकान छा रही है। ये सदा युवावस्थासे सम्पन्न रहती हैं। इनकी कृपासे

सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ सुलभ हो जाती हैं। ऐसी कल्याणस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीकी मैं उपासना करता हूँ।'

नारद ! इस प्रकार ध्यान करके ब्रह्माजीके आज्ञानुसार सोलह प्रकारके उपचारोंसे देवराज इन्द्रने असंख्य गुणोंवाली उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की। प्रत्येक वस्तुको भक्तिपूर्वक मन्त्र पढ़ते हुए विधिके साथ समर्पण किया। अनेक प्रकारकी उत्तम वस्तुएँ प्रचुरमात्रामें उपस्थित कीं। [पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—] 'भगवती महालक्ष्मी ! जो अमूल्य रत्नोंका सार है तथा विश्वकर्मा जिसके निर्माता हैं, ऐसा यह विचित्र आसन स्वीकार कीजिये। कमलालये ! इस शुद्ध गङ्गाजलको सब लोग मस्तकपर चढ़ाते हैं। सभीको इसे पानेकी इच्छा लगी रहती है। पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये यह अग्नि-स्वरूप है। आप इसे पाद्यरूपमें स्वीकार करें। पद्मवासिनी ! शङ्खमें पुष्प, चन्दन, दूर्वा आदि श्रेष्ठ वस्तुएँ तथा गङ्गाजल रखकर अर्घ्य प्रस्तुत है। इसे ग्रहण कीजिये। श्रीहरिप्रिये ! यह उत्तम गन्धवाले पुष्पोंसे सुवासित तैल तथा सुगन्धपूर्ण आमलकी-चूर्ण शरीरकी सुन्दरता बढ़ानेका परम साधन है। आप इस स्नानोपयोगी वस्तुको स्वीकार करें। देवी ! इन कपास तथा रेशमके सूत्रसे बने हुए वस्त्रोंको आप ग्रहण कीजिये।

'देवी ! यह भूषण रत्न और सुवर्णका विकृत रूप है। इसे धारण करनेसे शरीरकी शोभा अतिशय बढ़ जाती है। यह सम्पूर्ण सुन्दरताका परम कारण है। पहनते ही शोभा निखर उठती है, अतः परम सुशोभित होनेके लिये आप इसे ग्रहण कीजिये। श्रीकृष्णकान्ते ! वृक्षका रस सूखकर इस रूपमें परिणत हो गया है। इसमें सुगन्धित द्रव्य मिला दिये गये हैं। ऐसा यह पवित्र धूप स्वीकार कीजिये। देवी ! सुखदायी एवं सुगन्धियुक्त यह चन्दन सेवामें समर्पित है, स्वीकार करें। सुरेश्वरी ! जो जगत्के लिये चक्षुःस्वरूप है, जिसके सामने अन्धकार टिक नहीं सकता तथा जो सुखस्वरूप है, ऐसे इस प्रज्वलित दीपको स्वीकार कीजिये। देवी ! यह नाना प्रकारका उपहारस्वरूप नैवेद्य अत्यन्त स्वादिष्ट है। इसमें विविध रस भरे हैं, स्वीकार कीजिये। देवी ! अन्नको ब्रह्मस्वरूप माना गया है। प्राणकी रक्षा इसीपर निर्भर है। तुष्टि और पुष्टि प्रदान करना इसका सहज गुण है। आप इसे ग्रहण कीजिये। महालक्ष्मी ! यह उत्तम पक्वान्न चीनी और घृतसे युक्त एवं अगहनी चावलसे तैयार है—इसे आप स्वीकार कीजिये। देवी ! शर्करा और घृतमें सिद्ध किया हुआ परम मनोहर एवं स्वादिष्ट स्वस्तिक नामक नैवेद्य है। इसे आपकी सेवामें समर्पित किया है, स्वीकार करें। अच्युतप्रिये ! ये अनेक प्रकारके सुन्दर पके हुए फल हैं तथा सुरभी गौके स्तनसे निकला हुआ मृत्युलोकके लिये अमृतस्वरूप परम सुस्वादु दुग्ध है—इन पदार्थोंको ग्रहण कीजिये। देवी ! ईखके स्वादभरे रसको अग्निपर पकाकर बनाया गया यह गुड़ है, इसे स्वीकार कीजिये। देवी ! जौ, गेहूँ आदिके चूर्णसे तैयार किया हुआ यह मिष्टान्न है। गुड़ और घृतके साथ अग्निपर यह सिद्ध किया गया है, इसे आप स्वीकार करें। धान्यके चूर्णसे बनाये गये स्वस्तिक आदि चिह्नोंसे युक्त इस पक्वान्नको भक्तिपूर्वक आपकी सेवामें समर्पित किया है; स्वीकार कीजिये। कमले ! शीतल वायु प्रदान करनेवाला यह व्यजन तथा स्वच्छ चवँर उष्ण-

कालके लिये परम सुखदायी है—इसे ग्रहण कीजिये। यह उत्तम ताम्बूल कर्पूर आदि सुगन्धित वस्तुओंसे सुवासित एवं जिह्वाको स्फूर्ति प्रदान करनेवाला है, इसे आप स्वीकार कीजिये। देवी ! प्यासको शान्त करनेवाला अत्यन्त शीतल, सुवासित एवं जगत्‌के लिये जीवन-स्वरूप यह जल स्वीकार कीजिये। देवी ! विविध ऋतुओंके पुष्पोंसे गूँथी गयी, असीम शोभाकी आश्रय तथा देवराजके लिये भी परम प्रिय इस मालाको स्वीकार करें। यह शुद्धि प्रदान करनेवाला, समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल, सुगन्धित वस्तुओंसे सम्पन्न दिव्य चन्दन आपकी सेवामें समर्पित है, स्वीकार कीजिये। कृष्णकान्ते ! यह पवित्र तीर्थ-जल, स्वयं शुद्ध तथा अन्यको भी सदा शुद्ध करनेवाला है, इसे आप आचमनके रूपमें स्वीकार करें। देवी ! यह अमूल्य रत्नोंसे बनी हुई सुन्दर शय्या वस्त्र और आभूषणोंसे सजायी गयी है, पुष्प और चन्दनसे चर्चित है, इसे आप स्वीकार करें। देवी ! यही नहीं, किंतु पृथ्वीपर जितने भी अपूर्व द्रव्य शरीरको सजानेके लिये परम उपयोगी हैं, वे दुर्लभ वस्तुएँ भी आपकी सेवामें उपस्थित हैं, इन्हें स्वीकार करें* ।'

---

* प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च। अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्वकर्मणा॥
आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम्। शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम्॥
पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये। पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम्॥
शङ्खगर्भस्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि। सुगन्धिपुष्पतैलं च सुगन्धामलकीफलम्॥
देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये। कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्॥
रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम्। शोभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम्॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम्। वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम्॥
श्रीकृष्णकान्ते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम्। सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम्॥
जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम्। प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि॥
नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम्। अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥
अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम्। तुष्टिदं पुष्टिदं चैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम्॥
शाल्यन्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम्। स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम्॥
शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम्। मया निवेदितं भक्त्या स्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम्॥
नानाविधानि रम्याणि पक्वान्नानि फलानि च। सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम्॥
मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यतामच्युतप्रिये। सुस्वादु रससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम्॥
अग्निपक्वमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम्। यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम्॥
सुपक्वं गुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम्। सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम्॥
मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्। शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम्॥
कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम्। ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥
जिह्वाजाड्यच्छेदकरं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्। सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम्॥
जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम्। नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम्॥
सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम्। शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥

मुने ! देवराज इन्द्रने इस सूत्ररूप मन्त्रको पढ़कर भगवती महालक्ष्मीको उपर्युक्त द्रव्य समर्पण करनेके पश्चात् भक्तिपूर्वक विधिसहित उनके मूलमन्त्रका दस लाख जप किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें मन्त्र-सिद्धि प्राप्त हो गयी। यह मूल मन्त्र सभीके लिये कल्पवृक्षके समान है। ब्रह्माजीकी कृपासे यह उन्हें प्राप्त हुआ था। पूर्वमें श्रीबीज (श्रीं), माया बीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं) का प्रयोग करके 'कमलवासिनी' इस शब्दके अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगानेपर अन्तमें 'स्वाहा' शब्द जोड़ दिया जाय। (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा) यही इस मन्त्रराजका स्वरूप है। कुबेरने इसी मन्त्रसे भगवती महालक्ष्मीकी आराधना करके परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है। इसी मन्त्रके प्रभावसे दक्षसावर्णि मनुको राजाधिराजकी पदवी प्राप्त हुई है तथा मङ्गल सातों द्वीपोंके राजा हुए हैं। नारद ! प्रियव्रत, उत्तानपाद तथा राजा केदार—इन सिद्ध पुरुषोंको राजेन्द्र कहलानेका सौभाग्य इसी मन्त्रने दिया है।

इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर भगवती महालक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिये। उस समय वे वरदायिनी सर्वोत्तम रत्नसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं। उनके तेजसे सप्तद्वीपवती पृथ्वी व्याप्त थी। उनका श्रीविग्रह ऐसा प्रकाशमान था, मानो श्वेत चम्पाका पुष्प हो। रत्नमय भूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके मुखपर मुसकान छायी थी। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये वे परम आतुर थीं। उनके गलेमें रत्नोंका हार शोभा पा रहा था। असंख्य चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थी। ऐसी जगत्को जन्म देनेवाली शान्तस्वरूपा भगवती महालक्ष्मीको देखकर देवराज इन्द्र उनकी स्तुति करने लगे। उस समय इन्द्रके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी थी। उनके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे पूर्ण थे और उनकी अञ्जलि बँधी थी। ब्रह्माजीकी कृपासे सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करनेवाला वैदिक स्तोत्रराज उन्हें स्मरण था। इसीको पढ़कर उन्होंने स्तुति आरम्भ की।

देवराज इन्द्र बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको बार-बार नमस्कार है। कृष्णप्रिया भगवती महालक्ष्मीको निरन्तर अनेकशः नमस्कार है। कमलके पत्रके समान नेत्रवाली कमलमुखी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी एवं वैष्णवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती महालक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है। सर्वसम्पत्स्वरूपिणी सर्वाराध्या देवीको नमस्कार है। भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करानेवाली तथा हर्ष प्रदान करनेमें परम कुशल देवीको बार-बार नमस्कार है। रत्नपद्मे ! शोभने ! तुम भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर विराजमान होकर कार्यकी व्यवस्था करती हो। तुम्हारा स्वरूप चन्द्रमाके समान सुन्दर है। तुम्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण सम्पत्तिकी

---

गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम्। पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा॥
गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम्। रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनचर्चितम्॥
वस्त्रभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम्। यद्यद् द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम्॥
देवभूषार्हभोग्यं च तद् द्रव्यं देवि गृह्यताम्॥ (९।४२)

अधिष्ठात्री महादेवीके लिये बार-बार नमस्कार है। वृद्धिस्वरूपा एवं वृद्धिप्रदा भगवतीके लिये अनेकशः प्रणाम है। देवी ! तुम वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसमुद्रके यहाँ लक्ष्मी, राजाओंके भवनमें राज्यलक्ष्मी, इन्द्रके स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, गृहस्थोंके घर गृहलक्ष्मी एवं गृहदेवता, सागरके यहाँ सुरभि और यज्ञके पास दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हो। तुम देवताओंकी माता अदिति हो। तुम्हें कमला और कमलालया कहा जाता है। हव्य प्रदान करते समय 'स्वाहा' और कव्य प्रदान करनेके अवसरपर 'स्वधा' का जो उच्चारण होता है, वह तुम्हारा ही नाम है। सबको धारण करनेवाली विष्णुमयी पृथ्वी तुम्हीं हो। भगवान् नारायणकी उपासनामें सदा तत्पर रहनेवाली देवी ! तुम्हारा सत्त्वमय विग्रह परम शुद्ध है। तुम्हारेमें क्रोध और हिंसाको किञ्चिन्मात्र भी स्थान नहीं है। तुम्हें वरदा, शारदा, शुभा, परमार्थदा एवं हरिदास्यप्रदा कहते हैं। तुम्हारी अनुपस्थितिमें सारा जगत् निस्तत्त्व होकर भस्मीभूत हो जाता है। तुम्हारे न रहनेसे अखिल विश्वकी प्राण रहते हुए भी मृतक-जैसी स्थिति हो जाती है। तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता हो। सबके बान्धवरूपमें तुम्हारा ही पधारना हुआ है। तुम्हारी ही कृपासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार बचपनमें दुधमुँहे बच्चोंके लिये माता है, वैसे ही तुम अखिल जगत्की जननी होकर सबकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण किया करती हो। स्तनपायी बालक माताके न रहनेपर भाग्यवश जी भी सकता है; परंतु तुम्हारे बिना कोई भी नहीं जी सकता—यह बिलकुल निश्चित है। अम्बिके ! सदा प्रसन्न रहना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। अतः मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सनातनी ! मेरा राज्य शत्रुओंके हाथमें चला गया है, तुम्हारी कृपासे वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय। हरिप्रिये ! मुझे जबतक तुम्हारा दर्शन नहीं मिला था, तभीतक मैं बन्धुहीन, भिक्षुक तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शून्य था; किंतु अब तो मुझे ज्ञान, धर्म, अखिल अभीष्ट सौभाग्य, प्रभाव, प्रताप, सर्वाधिकार, परम ऐश्वर्य, पराक्रम तथा युद्धमें विजय प्राप्त होना ही चाहिये।*

नारद ! इस प्रकार कहकर सम्पूर्ण

---

* पुरन्दर उवाच

नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः। कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः। पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥
सर्वसम्पत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः। हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः॥
कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः। चन्द्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने॥
सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः। नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे। स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥
गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता। सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया। स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुंधरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥

देवताओंके साथ देवराज इन्द्रने मस्तक झुकाकर भगवती महालक्ष्मीको बार-बार प्रणाम किया। उस समय उनकी आँखोंमें प्रेमानन्दके आँसू भरे थे। देवताओंके कल्याणार्थ ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग, धर्म तथा केशव—इन सभी महानुभावोंने भगवती महालक्ष्मीसे प्रार्थना की। तब उस देवसभामें शोभा पानेवाली भगवती प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने देवताओंको वर दिया और भगवान् श्रीकृष्णको मनोहर पुष्पमाला समर्पण की। सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये। स्वयं भगवती महालक्ष्मी क्षीरशायी भगवान् श्रीहरिके स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक पधार गयीं। मुने ! ब्रह्मा और शंकर भी देवताओंको शुभ आशीर्वाद देकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपने-अपने धामको पधार गये। यह स्तोत्र महान् पवित्र है। इसका त्रिकाल पाठ करनेवाला बड़भागी पुरुष कुबेरके समान राजाधिराज हो सकता है। पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिये यह स्तोत्र सिद्ध होता है। यदि इस सिद्ध स्तोत्रका कोई निरन्तर एक महीनेतक पाठ करे तो वह महान् सुखी एवं राजेन्द्र हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं है। (अध्याय ४१-४२)

☆

## भगवती स्वाहा तथा भगवती स्वधाका उपाख्यान, उनके ध्यान, पूजाविधान तथा स्तोत्रोंका वर्णन

नारदजीने कहा—**प्रभो ! नारायण ! आप रूप, गुण, यश, तेज एवं कान्तिसे सम्पन्न होनेके कारण मेरे लिये साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं। मुने ! आप ही ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपकी कृपासे मुझे महालक्ष्मीका महान् अद्भुत उपाख्यान ज्ञात हो गया। अब आप उचित समझें तो भगवती स्वाहा, भगवती स्वधा और भगवती दक्षिणाके चरित्र तथा उनका महत्त्व सुनाइये।**

सूतजी कहते हैं—**मुनियो ! नारदजीकी बात सुनकर मुनिवर नारायण हँस पड़े और उन्होंने पुराणोक्त प्राचीन उपाख्यान कहना आरम्भ किया।**

भगवान् नारायण कहते हैं—**मुने ! सृष्टिके समयका यह प्रसंग है—देवताओंको भोजन नहीं मिल रहा था। अतएव वे पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीकी मनोहारिणी सभामें गये। मुने ! वहाँ जाकर उन्होंने अपने आहारके लिये ब्रह्माजीसे**

---

क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा। परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥
यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्। जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत् सर्वं यया विना॥
सर्वेषां च परा माता सर्वबान्धवरूपिणी। धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥
यथा माता स्तनन्धानां शिशूनां शैशवे सदा। तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥
मातृहीनः स्तनन्धस्तु स च जीवति दैवतः। त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके। वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥
अहं यावत् त्वया हीनो बन्धुहीनश्च भिक्षुकः। सर्वसम्पद्विहीनश्च तावदेव हरिप्रिये॥
ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्। प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च॥
जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च। (९।४२।५१—६८)

प्रार्थना की। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा कि 'ब्राह्मणलोग जो हवन करते हैं, उसीसे तुम्हारे भोजनकी व्यवस्था कर दी जायगी।' तदनन्तर इसके लिये ब्रह्माजी भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे।

नारदजीने पूछा—मुने! भगवान् श्रीहरि अपनी कलासे यज्ञके रूपमें प्रकट हो चुके हैं। ब्राह्मण उस यज्ञमें देवताओंके उद्देश्यसे जो हवि प्रदान करते थे, वह क्या हो जाता था ?

भगवान् नारायण कहते हैं—मुनिवर! ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि वर्ण भक्तिपूर्वक जो हवन करते थे, वह देवताओंको उपलब्ध नहीं होता था। इसीसे वे सब उदास होकर ब्रह्मसभामें गये थे और वहाँ जाकर उन्होंने आहार न मिलनेका कारण बतलाया। ब्रह्माजीने देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ध्यानपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली। तब भगवान्ने उन्हें आदेश दिया और उसके अनुसार ध्यान करके ब्रह्माजी भगवती मूलप्रकृतिकी उपासना करने लगे। तब सर्वशक्तिस्वरूपिणी भगवती 'स्वाहा' भगवती भुवनेश्वरीकी कलासे प्रकट हुईं। उन परम सुन्दरी देवीके विग्रहकी सुन्दर श्याम कान्ति थी। वे मनोहारिणी देवी मुसकरा रही थीं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्यग्र चित्तवाली उन भगवती स्वाहाने ब्रह्माजीके सम्मुख उपस्थित होकर उनसे कहा—'पद्मयोने! तुम वर माँगो।' तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवतीका वचन सुनकर आश्चर्यपूर्वक कहा।

ब्रह्माजी बोले—तुम परम सुन्दरी देवी अग्निकी दाहिका शक्ति होनेकी कृपा करो। तुम्हारे बिना अग्नि आहुतियोंको भस्म करनेमें असमर्थ हैं। जो मानव मन्त्रके अन्तमें तुम्हारे नामका उच्चारण करके देवताओंके लिये हवन-पदार्थ अर्पण करेंगे, वह देवताओंको सहज ही उपलब्ध हो जायगा। अम्बिके! तुम सर्वसम्पत्-स्वरूपा श्रीरूपिणी देवी अग्निकी गृहस्वामिनी बनो। देवता और मनुष्य सदा तुम्हारी पूजा करें।

ब्रह्माजीकी बात सुनकर भगवती स्वाहा उदास हो गयीं। तदनन्तर उन्होंने स्वयं अपना अभिप्राय ब्रह्माजीके प्रति व्यक्त किया।

भगवती स्वाहाने कहा—ब्रह्मन्! मैं दीर्घ-कालतक तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करूँगी। उन परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त जो कुछ भी है सब स्वप्नवत् केवल भ्रम है। तुम जगत्की रक्षा करते हो। शंकरने मृत्युपर विजय प्राप्त की है। शेषनाग अखिल विश्वको धारण करते हैं। धर्मको धार्मिक पुरुषोंको जाननेकी योग्यता प्राप्त है। गणेश सम्पूर्ण देवसमाजमें सर्वप्रथम पूजा प्राप्त करते हैं। प्रकृतिदेवी सर्वपूज्या हुई हैं। यह सब उन भगवान् श्रीकृष्णकी उपासनाका ही फल है। उपर्युक्त सभी देवता सम्यक् प्रकारसे श्रीकृष्णकी आराधना कर चुके हैं। भगवान् श्रीकृष्णके सेवक होनेसे ही ऋषियों और मुनियोंका सर्वत्र सम्मान है। अतः मैं भी उन्हीं परमप्रभु श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करना चाहती हूँ।

ब्रह्माजीसे यों कहकर वे कमलमुखी देवी स्वाहा निरामय भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिये चल दीं। फिर एक पैरसे खड़ी होकर उन्होंने श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए बहुत वर्षोंतक तप किया। तब प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म श्रीकृष्णके दर्शन उन्हें प्राप्त हुए। भगवान्के परम कमनीय सौन्दर्यको देखकर सुरूपिणी देवी स्वाहा मूर्च्छित-सी हो गयीं। कारण, उन कामुकी देवीने कामेश प्रभुको

भगवती स्वधा
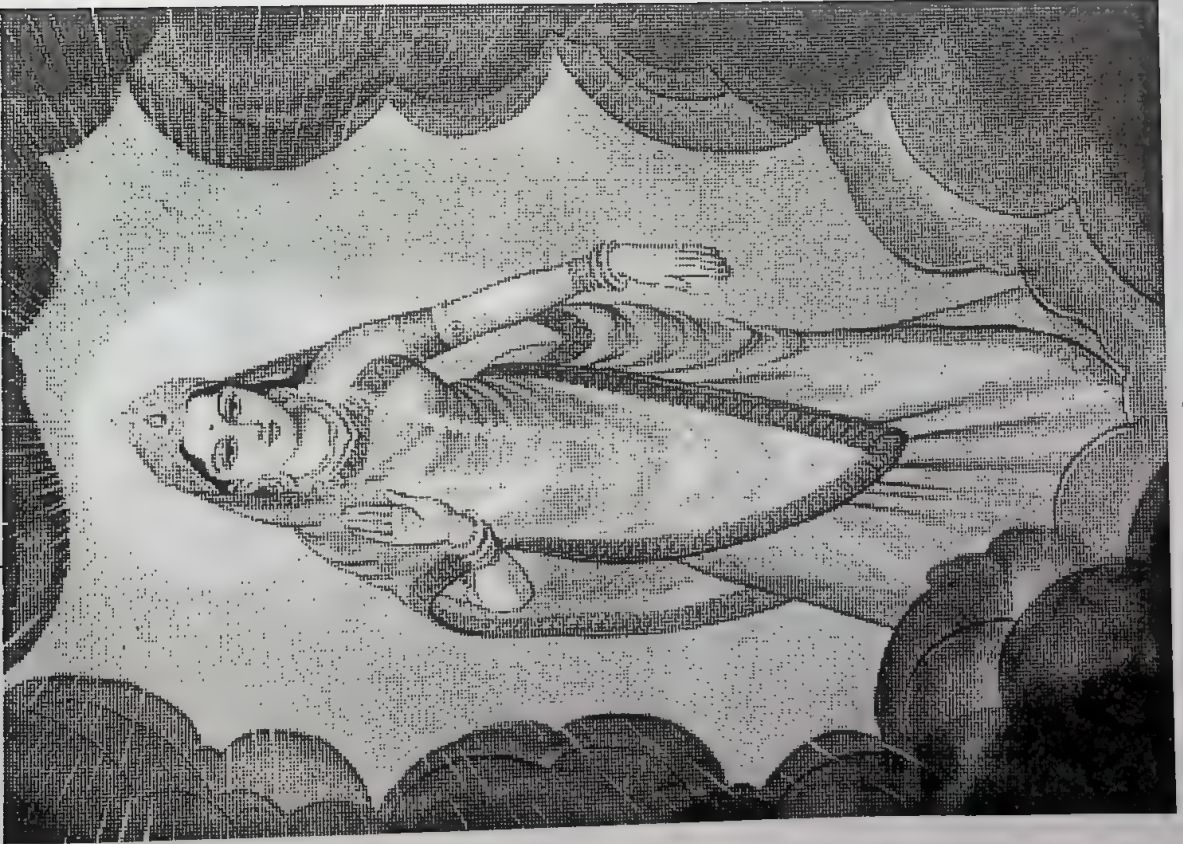
भगवती स्वाहा

सुदीर्घ समयके बाद देखा था। चिरकालतक तपस्या करनेके कारण क्षीण शरीरवाली देवी स्वाहाके अभिप्रायको सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण समझ गये। उन्होंने उन्हें उठाकर अपने अङ्कमें बैठा लिया और कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—कान्ते! तुम वाराह-कल्पमें मेरी प्रिया बनोगी। तुम्हारा नाम 'नाग्नजिती' होगा। राजा नग्नजित् तुम्हारे पिता होंगे। इस समय तुम दाहिकाशक्तिसे सम्पन्न होकर अग्निकी प्रिय पत्नी बनो। मेरे प्रसादसे तुम मन्त्रोंका अङ्ग बनकर पूजा प्राप्त करोगी। अग्निदेव तुम्हें अपनी गृहस्वामिनी बनाकर भक्ति-भावके साथ पूजा करेंगे। तुम परम रमणीया देवीको उनके साथ हासविलास करनेका सुअवसर प्राप्त होगा।

नारद! इस प्रकार देवी स्वाहासे सम्भाषण करके भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। फिर उनकी आज्ञाके अनुसार डरते हुए अग्निदेव वहाँ आये और सामवेदमें कही हुई विधिसे जगज्जननी भगवतीका ध्यान करने लगे। तदनन्तर उन्होंने देवीकी भलीभाँति पूजा और स्तुति की। तत्पश्चात् भगवती स्वाहा और अग्निदेवका मन्त्रपूर्वक विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। देवताओंके वर्षसे सौ वर्षतक वे उनके साथ आनन्द करते रहे। परम सुखप्रद निर्जन देशमें रहते समय देवी स्वाहा अग्निदेवके तेजसे गर्भवती हो गयीं। बारह दिव्य वर्षोंतक वे उस गर्भको धारण किये रहीं। तत्पश्चात् दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्निके क्रमसे मनको मुग्ध करनेवाले परम सुन्दर पाँच पुत्र उनसे उत्पन्न हुए। तब ऋषि, मुनि, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि सभी श्रेष्ठ वर्ण 'स्वाहान्त' मन्त्रोंका उच्चारण करके अग्निमें हवन करने लगे और देवताओंको वह आहाररूपसे प्राप्त होने लगा। जो पुरुष स्वाहायुक्त प्रशस्त मन्त्रका उच्चारण करता है, उसे केवल मन्त्र पढ़नेमात्रसे ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार विषहीन सर्प, वेदहीन ब्राह्मण, पतिसेवाविहीन स्त्री, विद्याहीन पुरुष तथा फल एवं शाखाहीन वृक्ष निन्दाके पात्र हैं, वैसे ही स्वाहाहीन मन्त्र भी निन्द्य है। ऐसे मन्त्रसे किया हुआ हवन कोई फल नहीं देता। फिर तो सभी ब्राह्मण संतुष्ट हो गये। देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं। मुने! भगवती स्वाहासे सम्बन्ध रखनेवाला इस प्रकार यह सारा श्रेष्ठ उपाख्यान कह सुनाया। यह प्रसङ्ग सुख और मोक्ष प्रदान करनेमें परम उपयोगी एवं रहस्यपूर्ण है। तुम अब क्या सुनना चाहते हो।

नारदजीने कहा—प्रभो! मुनीश्वर! अब मुझे भगवती स्वाहाकी पूजाका वह विधान, ध्यान एवं स्तोत्र बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे अग्निदेवने उनकी पूजा करके स्तुति की थी!

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! मुनिवर! भगवती स्वाहाके ध्यान, स्तोत्र और

पूजाका जो विधान सामवेदमें कहा गया है, वही मैं तुम्हें बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। पुरुषको चाहिये कि फल प्राप्त करनेके लिये सम्पूर्ण यज्ञोंके आरम्भमें शालग्रामकी प्रतिमाका अथवा कलशपर यत्नपूर्वक भगवती स्वाहाका पूजन करके यज्ञ आरम्भ करे। ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—'देवी स्वाहा अङ्गमय मन्त्रोंसे सम्पन्न हैं। इनका दिव्य विग्रह मन्त्रसिद्धिस्वरूप है। ये स्वयंसिद्ध, कल्याणमयी तथा मनुष्योंको सिद्धि एवं कर्मफल प्रदान करनेमें परम कुशल हैं।' मुने ! यों ध्यान करके मूल मन्त्रसे पाद्य आदि अर्पण करनेके पश्चात् स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्यको सम्पूर्ण सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मूलमन्त्र है—'ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा।' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक जो भगवती स्वाहाकी पूजा करता है, उसके सारे मनोरथोंके पूर्ण हो जानेमें कोई संदेह नहीं है।

अग्निदेव कहते हैं—स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, संतोषकारिणी, शक्ति, क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, गति, नरदाहिका, दहनक्षमा, संसारसाररूपा, घोर-संसारतारिणी, देवजीवनरूपा और देवपोषण-कारिणी—ये सोलह नाम भगवती स्वाहाके हैं। इसे पढ़नेवाला पुण्यात्मा पुरुष इस लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है* । उसका कोई भी शुभ कार्य अधूरा नहीं रह सकता। इस षोडश नामके प्रभावसे अपुत्री पुत्रवान् तथा भार्याहीन व्यक्ति प्रिय भार्या-सम्पन्न हो जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! अब भगवती स्वधाका उत्तम उपाख्यान कहता हूँ, सुनो। पितरोंके लिये यह तृप्तिप्रद एवं श्राद्धान्नके फलको बढ़ानेवाला है। जगत्स्रष्टा ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें सात पितरोंका सृजन किया। चार तो मूर्तिमान् थे और तीन तेजःस्वरूप। उन सातों सुखरूपी मनोहर पितरोंको देखकर उनके भोजनके लिये श्राद्ध-तर्पणपूर्वक दिया हुआ पदार्थ निश्चित किया। स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन तथा प्रतिदिन त्रिकालसंध्या—यह ब्राह्मणोंका परम कर्तव्य है—यह बात श्रुतिमें प्रसिद्ध है। जो ब्राह्मण नित्य त्रिकालसंध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलि और वेदध्वनि नहीं करता, उसे अजगर सर्पके समान समझना चाहिये ! नारद ! देवीकी सेवासे वञ्चित तथा भगवान्‌को बिना भोग लगाये खानेवाला व्यक्ति जीवन-पर्यन्त अपवित्र रहता है। उसे कोई भी शुभ कार्य करनेका अधिकार नहीं है। यों ब्रह्माजी तो पितरोंके आहारार्थ श्राद्ध आदिका विधान करके चले गये; परंतु ब्राह्मण प्रभृति व्यक्तियोंके दिये हुए कव्य पदार्थ पितर पा नहीं सकते थे। अतः वे सभी क्षुधा शान्त न होनेके कारण उदास होकर ब्रह्माजीकी सभामें गये। उन्होंने वहाँ जाकर ब्रह्माजीको सारी बातें बतायीं। तब उन महाभाग विधाताने एक परम सुन्दर मानसी

---

* वह्निरुवाच

स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी ॥
शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा। गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी। देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इहलोके परत्र च ॥
(९। ४३। ५०—५३)

कन्या प्रकट की।

सैकड़ों चन्द्रमाकी प्रभाके समान मुखवाली वह देवी रूप और यौवनसे सम्पन्न थी। उस साध्वी देवीमें विद्या, गुण, बुद्धि और रूप सम्यक् प्रकारसे विद्यमान थे। श्वेत चम्पाके समान उसका उज्ज्वल वर्ण था। वह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित थी। मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी अंशभूता वह देवी मुसकरा रही थी। सदा विशुद्ध, वर देनेवाली एवं कल्याण-स्वरूपिणी उस सुन्दरीका नाम 'स्वधा' रखा गया। भगवती लक्ष्मीके सभी शुभ लक्षण उसमें विराजमान थे। वह अपने चरणकमलोंको शतदल कमलपर रखे हुए थी। उसके मुख और नेत्र विकसित कमलके सदृश सुन्दर थे। उसे पितरोंकी पत्नी बनाया गया। ब्रह्माजीने पितरोंको संतुष्ट करनेके लिये इस तुष्टि-स्वरूपिणीको पत्नीरूपसे उन्हें सौंप दिया। साथ ही अन्तमें 'स्वधा' लगाकर मन्त्रोंका उच्चारण करके पितरोंके उद्देश्यसे पदार्थ अर्पण करना चाहिये—यह गोपनीय बात भी ब्राह्मणोंको बतला दी। तबसे ब्राह्मण उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे। यों देवताओंके लिये वस्तुदानमें 'स्वाहा' और पितरोंके लिये 'स्वधा' शब्दका उच्चारण श्रेष्ठ माना जाने लगा। उस समय देवता, पितर, ब्राह्मण, मुनि और मानव—इन सबने बड़े आदरके साथ उन शान्तस्वरूपिणी भगवती स्वधाकी पूजा एवं स्तुति की। देवीके वर-प्रसादसे वे सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। उनकी सारी मनःकामनाएँ पूर्ण हो गयीं।

मुने! इस प्रकार भगवती स्वधाके सम्पूर्ण उपाख्यानका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया। यह सबके लिये तुष्टिकारक है। पुनः क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महामुने! अब मैं भगवती स्वधाकी पूजाका विधान, ध्यान और स्तोत्र सुनना चाहता हूँ। यत्नपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! देवी स्वधाका ध्यान-स्तवन मङ्गलमय है। आश्विन मासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथिको मघा नक्षत्रमें अथवा श्राद्धके दिन यत्नपूर्वक भगवती स्वधाकी पूजा करके तत्पश्चात् श्राद्ध करना चाहिये। जो बुद्धिका अभिमानी ब्राह्मण स्वधादेवीकी उपासना न करके श्राद्ध करता है, उसके श्राद्ध और तर्पण सफल नहीं होते। ये भगवती स्वधा ब्रह्माजीकी मानसी कन्या हैं, ये सदा तरुणावस्थासे सम्पन्न रहती हैं। पितर सदा इनकी पूजा करते हैं। इन्हींकी कृपासे श्राद्धोंका फल मिलता है। ऐसी इन देवीकी मैं उपासना करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके शिला अथवा मङ्गलमय कलशपर इनका आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्रसे पाद्य आदि उपचारोंद्वारा इनका पूजन करना चाहिये। महामुने! 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करके ब्राह्मण इनकी पूजा, स्तुति और इन्हें प्रणाम करें। ब्रह्मपुत्र विज्ञानी नारद! अब स्तोत्र सुनो। यह स्तोत्र मानवोंके लिये सम्पूर्ण अभिलाषा प्रदान करनेवाला है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इसका पाठ किया था।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! 'स्वधा' शब्दके उच्चारणमात्रसे मानव तीर्थस्नायी समझा जाता है। वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर वाजपेययज्ञके फलका अधिकारी हो जाता है। 'स्वधा, स्वधा, स्वधा' यदि इस प्रकार तीन बार इनका स्मरण किया जाय तो श्राद्ध, बलि और

तर्पणके फल पुरुषको प्राप्त हो जाते हैं। श्राद्धके अवसरपर जो पुरुष सावधान होकर स्वधादेवीके स्तोत्रका श्रवण करता है, वह श्राद्धका फल पा लेता है—इसमें संशय नहीं है। जो मानव 'स्वधा, स्वधा, स्वधा' इस पवित्र नामका त्रिकालसंध्याके समय पाठ करता है, उसे पुत्रों तथा सद्गुणोंसे सम्पन्न, विनीत पतिव्रता प्रिय पत्नी प्राप्त होती है। देवी ! तुम पितरोंके लिये प्राणतुल्या और ब्राह्मणोंके लिये जीवन-स्वरूपिणी हो। तुम्हें श्राद्धकी अधिष्ठात्री देवी कहा गया है। तुम्हारी ही कृपासे श्राद्ध और तर्पण आदिके फल मिलते हैं। सुव्रते ! तुम्हारा विग्रह नित्य, सत्य और पुण्यमय है। तुम सृष्टिके समयमें प्रकट होती हो और प्रलयकालमें तुम्हारा तिरोभाव भी हो जाता है। तुम प्रणवस्वरूपा, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा एवं दक्षिणामयी देवीको नमस्कार है। चारों वेदोंद्वारा कर्मफलको सम्पन्न करनेके लिये तुम निरूपित हुई हो। कर्मोंकी पूर्तिके लिये ही ईश्वरने तुम्हारे ये चार रूप बनाये हैं* ।

इस प्रकार देवी स्वधाकी महिमा गाकर ब्रह्माजी अपनी सभामें विराजमान हो गये।

इतनेमें सहसा भगवती स्वधा उनके सामने प्रकट हो गयीं। तब पितामहने उन कमलनयनी देवीको पितरोंके प्रति समर्पण कर दिया। उन देवीकी प्राप्तिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे आनन्दसे विह्वल हो गये। यही भगवती स्वधाका पुनीत स्तोत्र है। जो पुरुष समाहित चित्तसे इस स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया। उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। (अध्याय ४३-४४)

☆

## भगवती दक्षिणाके प्राकट्यका प्रसंग, उनका ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तोत्र-वर्णन एवं चरित्रश्रवणकी फलश्रुति

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! भगवती स्वाहा और स्वधाका परम मधुर उत्तम उपाख्यान सुना चुका। अब मैं भगवती दक्षिणाके प्रसंगका वर्णन करूँगा। तुम सावधान होकर सुनो।

---

* स्वधास्वधास्वधेत्येवं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। प्रियां विनीतां स लभेत् साध्वीं पुत्रगुणान्विताम्॥
पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी। श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥
नित्या त्वं सत्यरूपासि पुण्यरूपासि सुव्रते। आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव॥
ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा। निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः॥
कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिता। (९।४४।३०—३४)

प्राचीन कालकी बात है, गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी एक गोपी थी। उसका नाम सुशीला था। उसे श्रीराधाकी प्रधान सखी होनेका सौभाग्य प्राप्त था। वह धन्य, मान्य एवं मनोहर अङ्गवाली गोपी परम सुन्दरी थी। सौभाग्यमें वह लक्ष्मीके समान थी। उसमें पातिव्रत्यके सभी शुभ लक्षण संनिहित थे। वह साध्वी गोपी विद्या, गुण और उत्तम रूपसे सदा सुशोभित थी। कलावती, कोमलाङ्गी, कान्ता, कमललोचना, सुश्रोणी, सुस्तनी, श्यामा और न्यग्रोधपयमण्डिता—ये सभी विशेषण उसमें उपयुक्त थे। उसका प्रसन्न मुख सदा मुसकानसे भरा रहता था। रत्नमय अलंकार उसकी शोभा बढ़ाते थे। उसके शरीरकी कान्ति ऐसी थी मानो स्वच्छ कमल हो। बिम्बाफलके समान लाल-लाल उसके अधरोष्ठ तथा मृगके सदृश उसके मनोहर नेत्र थे। हंसके समान गम्भीर गतिसे चलनेवाली उस कामिनी सुशीलाको रति-शास्त्रका सम्यक् ज्ञान था। भगवान् श्रीकृष्ण उससे प्रेम करते थे और वह भी उनके भावके अनुसार ही व्यवहार करती थी।

एक समय परमेश्वरी श्रीराधाने सुशीलाको कह दिया—'आजसे तुम गोलोकमें नहीं आ सकोगी।'

तदनन्तर श्रीकृष्ण वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब देवदेवेश्वरी भगवती श्रीराधा रासमण्डलके मध्य रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको जोर-जोरसे पुकारने लगीं; परंतु भगवान्ने उन्हें दर्शन नहीं दिये। तब तो श्रीराधा अत्यन्त विरह-कातर हो उठीं। उन साध्वी देवीको विरहका एक-एक क्षण करोड़ों युगोंके समान प्रतीत होने लगा। उन्होंने करुण प्रार्थना की—श्रीकृष्ण ! श्याम-सुन्दर ! आप मेरे प्राणनाथ हैं। मैं आपके प्रति प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेम करती हूँ। आप शीघ्र यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिये। भगवन् ! आप मेरे प्राणोंके अधिष्ठाता देव हैं। आपके बिना अब ये प्राण नहीं रह सकते। स्त्री पतिके सौभाग्यपर गर्व करती है। पतिके साथ प्रतिदिन उसका सुख बढ़ता रहता है। अतएव उसे धर्म-पूर्वक पतिकी सेवामें ही सदा तत्पर रहना चाहिये। कुलीन स्त्रियोंके लिये बन्धु, अधिदेवता, आश्रय, परम सम्पत्तिस्वरूप तथा सदा स्नेहदान करनेके लिये प्रस्तुत मूर्तिमान् विग्रह एकमात्र पति ही है। पतिव्रताएँ स्वामीको सम्मान प्रदान करके उनसे धर्म, शाश्वत सुख, प्रीति, शान्ति एवं सम्मान प्राप्त करती हैं। स्वामी ही स्त्रीके लिये सर्वस्व है। उसीकी कृपासे बान्धव बढ़ते हैं। वह केवल पति ही नहीं है, किंतु समय पड़नेपर वही उसका परम बन्धु भी है। उसे भरण करनेसे 'भर्ता', पालन करनेसे 'पति', शरीरका शासक होनेसे 'स्वामी' तथा कामनाकी पूर्ति करनेसे 'कान्त' कहते हैं। वह सुखकी वृद्धि करनेसे 'बन्धु', प्रीति प्रदान करनेसे 'प्रिय', ऐश्वर्यका दाता होनेसे 'ईश', प्राणका स्वामी होनेसे 'प्राणनायक' तथा रति-सुख प्रदान करनेसे 'रमण' कहलाता है। अतः कुलीन स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। पतिके शुक्रसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, इससे वह प्रिय माना जाता है। पतिव्रताएँ सौ पुत्रोंसे भी अधिक पतिको प्रेमपात्र समझती हैं। उनके मनसे यह धारणा कभी दूर नहीं होती। जो असत् कुलमें उत्पन्न है, वही स्त्री पतिके इस धार्मिक रहस्यको समझनेमें असमर्थ है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, अखिल यज्ञोंमें दक्षिणादान, पृथ्वीकी प्रदक्षिणा, अनेक प्रकारके तप, सभी व्रत, अमूल्य वस्तुदान, पवित्र

उपासनाएँ तथा गुरु, देवता एवं ब्राह्मणोंकी सेवा—इन श्रेष्ठ कार्योंकी बड़ी प्रशंसा सुनी है; किंतु ये सब-के-सब स्वामीके चरण-सेवनकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते। गुरु, ब्राह्मण और देवता—ये सभी एक-से-एक श्रेष्ठ हैं; किंतु इन सबकी अपेक्षा स्त्रीके लिये पति ही परम गुरु है। जिस प्रकार पुरुषोंके लिये विद्या प्रदान करनेवाले गुरु माने जाते हैं, वैसे ही कुलीन स्त्रियोंके लिये पति है।

'भगवन् ! आप असंख्य गोपों, गोपियों, ब्रह्माण्डों तथा वहाँके निवासी प्राणियोंके लिये एकमात्र स्वामी हैं। विश्वसे लेकर अखिल ब्रह्माण्ड गोलोकतकका साम्राज्य जो मुझे प्राप्त है यह केवल आपकी कृपाका ही प्रसाद है। स्त्री-स्वभाव मिटता नहीं। अतः मैं आपके रहस्यको न समझकर कभी-कभी इस प्रकारका दुराव कर बैठती हूँ। आप मुझे क्षमा करें।'

इस प्रकार कहकर श्रीराधा भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं। प्रेमके कारण उनकी आँखोंसे आँसू ढल रहे थे। नाथ ! नाथ ! की करुणध्वनि उनके मुखसे निकल रही थी। वियोगके कठिन दुःखका अनुभव करती हुई वे दैन्य भावसे कह रही थीं—'प्रभो ! अब तुरंत दर्शन देनेकी कृपा कीजिये।' तदनन्तर श्रीकृष्णने प्रकट होकर राधाके विरह-तापको शान्त किया।

मुने ! उसी समयका प्रसंग है—श्रीराधाकी सहचरी सुशीला नामकी जो गोपी थी, जिसे राधाने गोलोकसे च्युत होनेके लिये कह दिया था, वहाँसे चलकर देवी दक्षिणाके नामसे प्रकट हुई थी। इनके प्रकट होनेका प्रसंग इस प्रकार है—दीर्घकालतक तपस्या करके भगवती लक्ष्मीके विग्रहमें उसने स्थान प्राप्त कर लिया। तब अत्यन्त कठिन यज्ञ करनेपर भी देवताओंके सामने फल उपस्थित नहीं होता था। वे सभी उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उनकी प्रार्थना सुनकर जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। बहुत समयतक भक्तिपूर्वक ध्यान करनेके पश्चात् उन्हें आदेश प्राप्त हुआ। स्वयं भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके दिव्य विग्रहसे मर्त्यलक्ष्मीको प्रकट किया और 'दक्षिणा' नाम रखकर उसे ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने यज्ञसम्बन्धी कार्योंकी सम्पन्नताके लिये देवी दक्षिणाके यज्ञपुरुषके पास रहनेकी व्यवस्था कर दी। उस समय यज्ञपुरुषका मन आनन्दसे भर गया। उन्होंने विधिके साथ भगवती दक्षिणाकी पूजा और स्तुति की। उन देवीका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान था। प्रभा ऐसी थी, मानो करोड़ों चन्द्रमा हों। उनका अत्यन्त कमनीय विग्रह मनको मुग्ध कर देता था। कमलके समान मुखवाली वे कोमलाङ्गी देवी कमल-जैसी विशाल नेत्रोंसे शोभा पा रही थीं। भगवती लक्ष्मीसे प्रकट उन आदरणीया देवीके लिये कमल ही आसन भी था। शुद्ध चिन्मय वस्त्र उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन साध्वीका ओठ सुपक्व बिम्बाफलके सदृश था। उन्होंने अपने केशकलापमें मालतीके पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी। उनके प्रसन्न मुखपर मुसकान छायी थी। वे रत्ननिर्मित भूषणोंसे विभूषित थीं। उनका सुन्दर वेष था। उन्हें देखकर मुनियोंका मन भी मुग्ध हो जाता था। कस्तूरीमिश्रित चन्दनसे बिंदीके रूपमें अर्द्धचन्द्राकार तिलक उनके ललाटपर शोभा पा रहा था। केशोंके समीप सिंदूरकी एक छोटी बिंदी थी। उनके रहनेका स्थान भी जगमगा रहा था। सुन्दर

भगवती दक्षिणा

भगवती षष्ठी

नितम्ब, बृहत् श्रोणी और विशाल वक्षःस्थलसे वे शोभा पा रही थीं। फिर ब्रह्माजीके कथनानुसार यज्ञपुरुषने उन देवीको अपनी सहधर्मिणी बना लिया। कुछ समय बाद देवी दक्षिणा गर्भवती हो गयीं। बारह दिव्य वर्षोंके बाद उन्होंने सम्पूर्ण कर्मोंके फलस्वरूप श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया। कर्म समाप्त होनेपर फल प्रदान करना उस पुत्रका सहज गुण हुआ। अतएव वेदज्ञ पुरुष इस प्रकार कहते हैं कि भगवान् यज्ञ देवी दक्षिणा तथा अपने पुत्र 'फल'से सम्पन्न होनेपर ही कर्मोंका फल प्रदान करते हैं।

नारद ! इस प्रकार यज्ञपुरुष दक्षिणा तथा फलदाता पुत्रको प्राप्त करके सबको कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। तब देवताओंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सभी सफल मनोरथ होकर अपने-अपने स्थानपर चले गये। मैंने धर्मदेवके मुखसे ऐसा सुना है। अतएव मुने ! कर्ताको चाहिये कि कर्म करनेके पश्चात् तुरंत दक्षिणा दे दें। तभी सद्यःफल प्राप्त होता है—यह वेदोंकी स्पष्ट वाणी है। यदि दैववश अथवा अज्ञानसे यज्ञकर्ता कर्म सम्पन्न हो जानेपर तुरंत ही ब्राह्मणोंको दक्षिणा नहीं दे देता तो उस दक्षिणाकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है और साथ ही यजमानका सम्पूर्ण कर्म भी निष्फल हो जाता है। ब्राह्मणका स्वत्व अपहरण करनेसे वह अपवित्र मानव किसी कर्मका अधिकारी नहीं रह जाता। उसी पापके फलस्वरूप उस पातकी मानवको दरिद्र और रोगी होना पड़ता है। लक्ष्मी अत्यन्त भयंकर शाप देकर उसके घरसे चली जाती हैं। उसके दिये हुए श्राद्ध और तर्पणको पितर ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसे ही, देवता उसकी की हुई पूजा तथा अग्निमें दी हुई आहुति भी स्वीकार नहीं करते। यज्ञ करते समय कर्त्ताने दक्षिणा संकल्प कर दी; किंतु दी नहीं और प्रतिग्रह लेनेवालेने उसे माँगा भी नहीं तो ये दोनों व्यक्ति नरकमें इस प्रकार गिरते हैं, जैसे रस्सी टूट जानेपर घड़ा। विप्र ! इस प्रकारकी यह रहस्यभरी बातें बतला दीं। तुम्हें पुनः क्या सुननेकी इच्छा है।

नारदजीने पूछा—मुने ! दक्षिणाहीन कर्मके फलको कौन भोगता है ? साथ ही यज्ञपुरुषने भगवती दक्षिणाकी किस प्रकार पूजा की थी; वह भी बतलाइये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! दक्षिणाहीन कर्ममें फल ही कैसे लग सकता है; क्योंकि फल प्रसव करनेकी योग्यता तो दक्षिणावाले कर्ममें ही है। मुने ! बिना दक्षिणाका कर्म तो बलिके पेटमें चला जाता है। पूर्व समयमें भगवान् वामन बलिके लिये आहाररूपमें इसे अर्पण कर चुके हैं। नारद ! अश्रोत्रिय और श्रद्धाहीन व्यक्तिके द्वारा श्राद्धमें दी हुई वस्तुको बलि भोजनरूपसे प्राप्त करते हैं। शूद्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणोंके पूजा-सम्बन्धी द्रव्य, निषिद्ध एवं आचरणहीन ब्राह्मणों-द्वारा किया हुआ पूजन तथा गुरुमें भक्ति न रखनेवाले पुरुषका कर्म—ये सब बलिके आहार हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

मुने ! भगवती दक्षिणाके ध्यान, स्तोत्र और पूजाकी विधिके क्रम कण्वशाखामें वर्णित हैं। वह सब मैं कहता हूँ, सुनो। पूर्व समयमें कर्मफल प्रदान करनेवाली भगवती दक्षिणा जब यज्ञपुरुषको प्राप्त हुईं, तब वे उनके सुन्दर रूपपर मोहित हो गये। ऐसी स्थितिमें उन्होंने उन देवीकी स्तुति की।

यज्ञपुरुषने कहा—महाभागे ! तुम पूर्व समयमें गोलोककी एक गोपी थी। गोपियोंमें
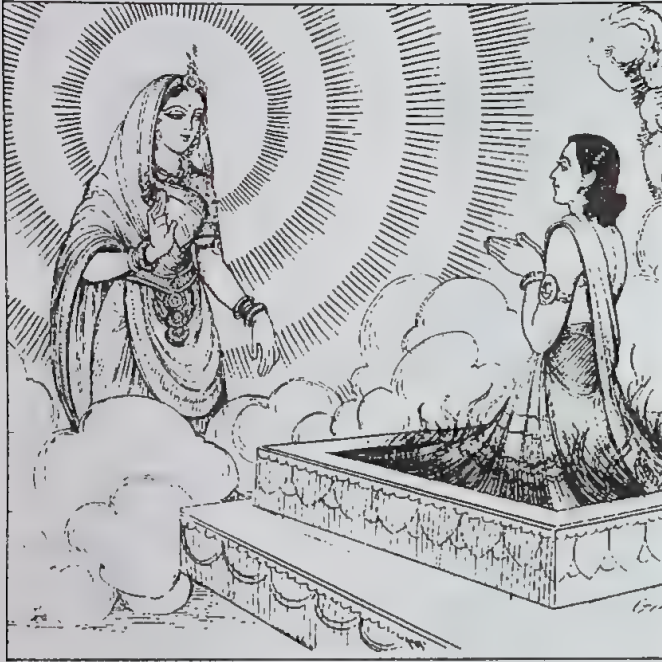
तुम्हारा प्रमुख स्थान था। राधाके समान ही तुम उनकी सखी थी। भगवान् श्रीकृष्ण तुमसे प्रेम करते थे। कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। कुछ कार्यान्तर उपस्थित हो जानेके कारण तुम भगवती महालक्ष्मीके दक्षिण कंधेसे प्रकट हुई थी। अतएव तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया। शोभने ! तुम इससे पहले परम शीलवती होनेके कारण 'सुशीला' कहलाती थी। तुम ऐसी सुयोग्या देवी श्रीराधाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर दक्षिणा नामसे सम्पन्न हो मुझे सौभाग्यवश प्राप्त हुई हो। सुभगे ! तुम मुझे अपना स्वामी बनानेकी कृपा करो। तुम्हीं यज्ञशाली पुरुषोंके कर्मका फल प्रदान करनेवाली आदरणीया देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। तुम्हारी अनुपस्थितिमें कर्मियोंका कर्म भी शोभा नहीं पाता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पाल प्रभृति सभी देवता तुम्हारे न रहनेसे कर्मोंका फल देनेमें असमर्थ रहते हैं। ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं। शंकरको फलरूप बतलाया गया है। मैं विष्णु स्वयं यज्ञरूपसे प्रकट हूँ। इन सबमें साररूपा तुम्हीं हो। फल प्रदान करनेवाले परब्रह्म और निर्गुणा भगवती प्रकृति तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही सहयोगसे शक्तिमान् बने हैं। कान्ते ! तुम्हीं मेरी शक्ति हो। वरानने ! तुम जन्म-जन्मान्तरमें निरन्तर मेरे समीप रहो और मैं तुम्हारे सम्पूर्ण कार्योंमें सहायता देनेमें सफल बना रहूँ।

यज्ञपुरुषके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर यज्ञकी अधिष्ठात्री देवी भगवती दक्षिणा प्रसन्न होकर उनके सामने उपस्थित हुई और उन महाभाग यज्ञको उन्होंने अपना स्वामी बना लिया। यह भगवती दक्षिणाका स्तोत्र है। जो पुरुष यज्ञके अवसरपर इसका पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंके फल सुलभ हो जाते हैं— इसमें संशय नहीं। सभी प्रकारके यज्ञोंके आरम्भमें जो पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके सभी यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जाते हैं—यह ध्रुव सत्य है।

यह स्तोत्र तो कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शालग्रामकी मूर्तिमें अथवा कलशपर आवाहन करके भगवती दक्षिणाकी पूजा करे। ध्यान यों करना चाहिये—'भगवती लक्ष्मीके दाहिने कंधेसे प्रकट होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं। सम्पूर्ण यज्ञ-यागादि कर्मोंमें अखिल कर्मोंका फल प्रदान करना इनका सहज गुण है। ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं। सबने इनकी वन्दना की है। ऐसी शुभा, शुद्धिदा, शुद्धिरूपा एवं सुशीला नामसे प्रसिद्ध भगवती दक्षिणाकी

मैं उपासना करता हूँ।' नारद ! इसी मन्त्रसे ध्यान करके विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करे। पाद्य, अर्घ्य आदि सभी इसी वेदोक्त मन्त्रके द्वारा अर्पण करने चाहिये। मन्त्र यह है—'ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा।' सुधीजनोंको चाहिये कि सर्वपूजिता इन भगवती दक्षिणाकी अर्चना भक्तिपूर्वक उत्तम विधिके साथ करें।

ब्रह्मन् ! इस प्रकार भगवती दक्षिणाका उपाख्यान कह दिया। यह उपाख्यान सुख, प्रीति एवं सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है। भूमण्डलपर रहनेवाला भारतवर्षका जो भी पुरुष देवी दक्षिणाके इस चरित्रका सावधान होकर श्रवण करता है, उसके कोई कर्म अधूरे नहीं रह सकते। पुत्रहीन पुरुष गुणवान् पुत्रके पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। जो भार्याहीन हो, उसे परम सुशीला सुन्दरी पत्नी सुलभ हो जाती है। साथ ही उसका घर कुलीन पुत्रवधूसे भी सम्पन्न हो जाता है। पुत्र उत्पन्न करना, विनय, मधुर भाषण, पातिव्रत्य तथा शुद्ध आचरण—ये सभी सद्गुण उस पुत्रवधूमें रहते हैं। विद्याहीन विद्वान्, दरिद्री धनवान्, भूमिहीन भूमिमान् तथा प्रजाहीन व्यक्ति श्रवणके प्रभावसे प्रजावान् बन जाता है। संकट, बन्धु-विच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनके अवसरपर एक महीनेतक इसका श्रवण करके पुरुष इन सभी विषम परिस्थितियोंसे छूट जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। (अध्याय ४५)

☆

## देवी षष्ठीके ध्यान, पूजन एवं स्तोत्र तथा विशद महिमाका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो ! भगवती 'षष्ठी' मङ्गलचण्डिका तथा देवी मनसा—ये देवियाँ मूलप्रकृतिकी कला मानी गयी हैं। मैं अब इनके प्राकट्यका प्रसंग तत्त्वपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण ये 'षष्ठी' देवी कहलाती हैं! बालकोंकी ये अधिष्ठात्री देवी हैं—इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें 'देवसेना' नामसे ये प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली इन साध्वी देवीको स्वामी कार्तिकेयकी पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त है। वे प्राणोंसे भी बढ़कर इनसे प्रेम करते हैं। बालकोंको दीर्घायु बनाना तथा उनका भरण-पोषण एवं रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है। ये सिद्धियोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं। ब्रह्मन् ! इनकी पूजा-विधिके साथ ही यह एक उत्तम इतिहास भी सुनो। पुत्र प्रदान करनेवाला यह परम सुखदायी उपाख्यान धर्मदेवके मुखसे मैंने सुना है।

प्रियव्रत नामके एक राजा हो चुके हैं। उनके पिताका नाम था—स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह करना नहीं चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि थी। परंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। मुने ! विवाहके बाद सुदीर्घ कालतक उन्हें कोई संतान नहीं हो सकी। तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया। राजाकी प्रेयसी भार्याका नाम मालिनी था। मुनिने उन्हें चरु प्रदान किया। चरुभक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। तत्पश्चात् सुवर्णके समान प्रतिभावाले एक कुमारकी उत्पत्ति हुई; परंतु सम्पूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न वह

कुमार मरा हुआ था। उसकी आँखें उलट चुकी थीं। उसे देखकर समस्त नारियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ भी रो पड़ीं। पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्च्छा आ गयी।

मुने! राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये। उस एकान्तभूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे। इतनेमें उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी पड़ा। शुद्ध स्फटिक मणिके समान चमकनेवाला वह विमान अमूल्य रत्नोंसे बना था। तेजसे जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी वस्त्रोंसे अनुपम शोभा हो रही थी! अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे वह विभूषित था। पुष्पोंकी मालासे वह सुसज्जित था। उसीपर बैठी हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक परम सुन्दरी देवीको राजा प्रियव्रतने देखा। श्वेत चम्पाके फूलके समान उनका उज्ज्वल वर्ण था। सदा सुस्थिर तारुण्यसे शोभा पानेवाली वे देवी मुसकरा रही थीं। उनके मुखपर प्रसन्नता छायी थी। रत्नमय भूषण उनकी छबि बढ़ाये हुए थे। योगशास्त्रमें पारंगत वे देवी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर थीं। ऐसा जान पड़ता था वे मानो मूर्तिमती कृपा ही हों। उन्हें सामने विराजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और बड़े आदरके साथ उनकी पूजा और स्तुति की। नारद! उस समय स्कन्दकी प्रिया देवी षष्ठी अपने तेजसे देदीप्यमान थीं। उनका शान्त विग्रह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमचमा रहा था। उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने पूछा।

राजा प्रियव्रतने पूछा—सुशोभने! कान्ते! सुव्रते! वरारोहे! तुम कौन हो, तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम किसकी कन्या हो? तुम स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं आदरकी पात्र हो।

नारद! जगत्‌को मङ्गल प्रदान करनेमें प्रवीण तथा देवताओंके रणमें सहायता पहुँचानेवाली वे भगवती 'देवसेना' थीं। पूर्व समयमें देवता दैत्योंसे ग्रस्त हो चुके थे। इन देवीने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष ले युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये थे। अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया। महाराज प्रियव्रतकी बात सुनकर ये उनसे कहने लगीं।

भगवती देवसेनाने कहा—राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। जगत्‌पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम 'देवसेना' है। विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया है। मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ। स्कन्दकी पतिव्रता भार्या होनेका गौरव मुझे प्राप्त है। भगवती मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें देवी 'षष्ठी' नामसे मेरी प्रसिद्धि है। मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीनजन प्रिया, दरिद्री धन तथा कर्मशील पुरुष कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति—ये सब कर्मके अनुसार होते हैं। अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन भी होते हैं। किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी—यह कर्मका ही फल है। गुणी, अङ्गहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामी, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है। कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष

आरोग्यवान् भी हो जाता है। अतएव राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—यह बात श्रुतिमें कही गयी है।

मुने! इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया। अब राजाने देखा तो सुवर्णके समान प्रतिभावाला वह बालक हँस रहा था। अभी महाराज प्रियव्रत उस बालककी ओर देख ही रहे थे कि देवी देवसेना उनसे अनुमति ले चलनेको तैयार हो गयीं। ब्रह्मन्! उस समय देवीने राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहा।

देवीने कहा—तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो। त्रिलोकीमें तुम्हारा शासन चलता है। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। तब मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। उसका नाम सुव्रत होगा। उसमें सभी गुण और विवेकशक्ति विद्यमान रहेगी। वह भगवान् नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा। उसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ वह बालक सौ अश्वमेध-यज्ञ करेगा। सभी उसका सम्मान करेंगे। उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण वह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह। वह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धरूप होगा। त्रिलोकीमें उसकी कीर्ति फैल जायगी। वह सबको सब सम्पत्ति प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार राजा प्रियव्रतसे कहनेके पश्चात् भगवती देवसेना उन्हें पुत्र प्रदान करनेके लिये तत्पर हो गयीं। राजा प्रियव्रतने पूजाकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर दे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। राजा भी प्रसन्नमन होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर लौट आये। आकर पुत्रविषयक वृत्तान्त सबसे कह सुनाया। नारद! यह प्रिय वचन सुनकर स्त्री और पुरुष सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। राजाने सर्वत्र पुत्र-प्राप्तिके उपलक्षमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करा दिया। भगवतीकी पूजा की। ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके अवसरपर भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी। सर्वत्र इसका पूरा प्रचार हो गया। स्वयं राजा प्रियव्रत भी पूजा करते थे।

सुव्रत! अब भगवती देवसेनाका ध्यान, पूजन, स्तोत्र कहता हूँ, सुनो। यह प्रसङ्ग कौथुमशाखामें वर्णित है। धर्मदेवके मुखसे सुननेका मुझे अवसर मिला था। मुने! शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवालपर पुत्तलिका बनाकर

प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्ध-स्वरूपिणी इन भगवतीकी इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष इनका इस प्रकार ध्यान करे—'सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्की माता हैं। श्वेत चम्पकके समान इनका वर्ण है। रत्नमय भूषणोंसे ये अलंकृत हैं। इन परम पवित्र-स्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' विद्वान् पुरुष यों ध्यान करनेके पश्चात् भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पण करे, पुनः ध्यान करके मूल मन्त्रसे इन साध्वी देवीकी पूजा करनेका विधान है। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फलद्वारा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उपचार अर्पण करनेके पूर्व 'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करना विहित है। पूजक पुरुषको चाहिये कि यथाशक्ति इस अष्टाक्षर महामन्त्रका जप भी करे।

तदनन्तर मनको शान्त करके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेके पश्चात् देवीको प्रणाम करे। फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो पुरुष देवीके उपर्युक्त अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, उसे अवश्य ही उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। मुनिवर ! अब सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र सुनो। नारद ! सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाला यह स्तोत्र वेदोंमें गोप्य है।

'देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। शान्तस्वरूपिणी भगवती सिद्धाको नमस्कार है। शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा एवं मोक्षप्रदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूल प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली सिद्धस्वरूपिणी भगवती षष्ठीको नमस्कार है। माया, सिद्ध, योगिनी, सारा, शारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुरेश्वरी ! तुम मुझे धन दो, प्रिया पत्नी दो और पुत्र देनेकी कृपा करो। महेश्वरी ! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुपूजिते ! तुम भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं जय प्रदान करो। तुम षष्ठी देवीको बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रतने षष्ठी देवीके प्रभावसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया। ब्रह्मन् ! जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि अपुत्री हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके इनका यह स्तोत्र सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जाते हैं। महान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेकी योग्यता

प्राप्त कर लेती है। वह भगवती देवसेनाकी कृपासे गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होती है। काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवती हो जाती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठी देवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है।

(अध्याय ४६)

☆

## भगवती मङ्गलचण्डी और मनसादेवीका उपाख्यान

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मपुत्र नारद! आगमशास्त्रके अनुसार षष्ठी देवीका चरित्र कह दिया। अब भगवती मङ्गलचण्डीका उपाख्यान सुनो, साथ ही उनकी पूजाका विधान भी। इसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था, वही बता रहा हूँ। यह श्रुतिसम्मत उपाख्यान सम्पूर्ण विद्वानोंको भी अभीष्ट है। कल्याण प्रदान करनेमें जो सुदक्षा चण्डी अर्थात् प्रतापवती हैं तथा मङ्गलोंके मध्यमें जो मङ्गला हैं, वे देवी 'मङ्गलचण्डी'के नामसे विख्यात हैं; अथवा भूमिपुत्र मङ्गल भी जिनकी पूजा करते हैं तथा जो उनकी अभीष्ट देवता हैं, इसलिये भी उन देवीकी मङ्गलचण्डिका संज्ञा है। मनुवंशमें मंगल नामक एक राजा थे। सप्तद्वीपवती पृथ्वी उनके शासनमें थी। उन्होंने इन देवीको अभीष्ट देवता मानकर पूजा की थी। इसीसे ये मङ्गलचण्डी नामसे विख्यात हुईं। जो मूलप्रकृति भगवती जगदीश्वरी 'दुर्गा' कहलाती हैं, उन्हींका यह रूपान्तरभेद है। ये देवी कृपाकी मूर्ति धारण करके सबके सामने प्रत्यक्ष हुई हैं। स्त्रियोंके लिये ये परम अभीष्ट हैं।

सर्वप्रथम भगवान् शंकरने इन सर्वश्रेष्ठरूपा देवीकी आराधना की। ब्रह्मन्! त्रिपुर नामक दैत्यके भयंकर वधके समयका यह प्रसङ्ग है। भगवान् शंकर बड़े संकटमें पड़ गये थे। दैत्यने रोषमें आकर उनके वाहन-विमानको आकाशसे नीचे गिरा दिया था। तब ब्रह्मा और विष्णुने उन्हें प्रेरणा की। उन महानुभावोंका उपदेश मानकर शंकर भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे। वे भी देवी मङ्गलचण्डी ही थीं। केवल रूप बदल लिया था। स्तुति करनेपर वे देवी भगवान् शंकरके सामने प्रकट हुईं और उनसे बोलीं—'प्रभो! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। स्वयं सर्वेश भगवान् श्रीहरि ही वृषभका रूप धारण करके तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे। वृषध्वज! मैं युद्ध-शक्तिस्वरूपा बनकर तुम्हारा साथ दूँगी। फिर स्वयं मेरी तथा श्रीहरिकी सहायतासे तुम देवताओंको पदच्युत करनेवाले उस दानवको, जिसने तुमसे घोर शत्रुता ठान रखी है, मार डालोगे।'

मुनिवर! इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। उसी क्षण उन शक्तिरूपी देवीसे शंकर सम्पन्न हो गये। भगवान् श्रीहरिने एक अस्त्र दे दिया था। अब उसी अस्त्रसे त्रिपुर-वधमें उन्हें सफलता प्राप्त हो गयी। दैत्यके मारे जानेपर सम्पूर्ण देवताओं तथा महर्षियोंने भगवान् शंकरका स्तवन किया। उस समय सभी भक्तिमें सराबोर होकर अत्यन्त नम्र हो गये थे। उसी क्षण भगवान् शंकरके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा और विष्णुने परम संतुष्ट होकर उन्हें शुभ आशीर्वाद और सदुपदेश भी दिया। तब भगवान् शंकर सम्यक्

प्रकारसे स्नान करके भक्तिके साथ भगवती मङ्गलचण्डीकी आराधना करने लगे। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, विविध वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, बलि, वस्त्र, अलंकार, माला, तीर, पिष्टक, मधु, सुधा तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा भक्तिपूर्वक उन्होंने देवीकी पूजा की। नाच, गान, वाद्य और नामकीर्तन भी कराया। तत्पश्चात् माध्यन्दिनशाखामें कहे हुए ध्यान-मन्त्रके द्वारा भगवती मङ्गलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान किया। नारद ! उन्होंने मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भगवतीको सभी द्रव्य समर्पण किये थे। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके हुँ हुँ फट् स्वाहा।' इक्कीस अक्षरका यह मन्त्र सुपूजित होनेपर भक्तोंको सम्पूर्ण कामना प्रदान करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप है। दस लाख जप करनेपर इस मन्त्रकी सिद्धि होती है।

ब्रह्मन् ! अब ध्यान सुनो। यह सर्वसम्मत ध्यान वेदप्रणीत है। 'सुस्थिरयौवना भगवती मङ्गलचण्डिका सदा सोलह वर्षकी ही जान पड़ती हैं। इन शुद्धस्वरूपा सुन्दरीके ओष्ठ बिम्बाफलके सदृश लाल हैं। इनका मुख शरत्कालके कमलकी छबिको धारण किये हुए है। श्वेत चम्पाके समान इनका वर्ण है। आँखें जान पड़ती हैं, मानो खिले हुए कृष्ण कमल हों। सबका धारण-पोषण करनेवाली ये देवी सबके लिये सम्पूर्ण वस्तुएँ प्रदान करनेमें परम कुशल हैं। संसाररूपी घोर समुद्रमें पड़े हुए व्यक्तियोंके लिये ये ज्योतिःस्वरूपा हैं। मैं सदा इनकी उपासना करता हूँ।' मुने ! यह तो भगवती मङ्गलचण्डिकाका ध्यान हुआ। ऐसे ही स्तवन भी है, सुनो।

महादेवजीने कहा—जगन्माता भगवती मङ्गलचण्डिके ! तुम सम्पूर्ण विपत्तियोंका विध्वंस करनेवाली हो एवं हर्ष तथा मङ्गल प्रदान करनेमें सदा प्रस्तुत रहती हो। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। खुले हाथ हर्ष और मङ्गल देनेवाली भगवती मङ्गलचण्डिके ! तुम मङ्गलदायिका, शुभा, मङ्गलदक्षा, मङ्गला, मङ्गलार्हा तथा सर्वमङ्गलमङ्गला कहलाती हो। देवी ! साधु-पुरुषोंको मङ्गल प्रदान करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। तुम सबके लिये मङ्गलकी आश्रय हो। देवी ! मङ्गलग्रहने तुम्हें अपनी अधिष्ठात्री देवी मानकर मंगलवारके दिन तुम्हारी पूजा की है। मनुवंशमें उत्पन्न राजा मंगल तुम्हारी निरन्तर पूजा करते हैं। मङ्गलाधिष्ठात्री देवी ! तुम मङ्गलोंके लिये भी मङ्गल हो। जगत्के समस्त मङ्गल तुमपर आश्रित हैं। तुम सबको मोक्षमय मङ्गल प्रदान करती हो। मंगलवारके दिन सुपूजित होनेपर मङ्गलमय सुख प्रदान करनेवाली देवी ! तुम जगत्सर्वस्व, मङ्गलाधार तथा सर्वमङ्गलमयी हो।

इस स्तोत्रसे स्तुति करके भगवान् शंकरने देवी मङ्गलचण्डिकाकी उपासना की। मंगलवारके दिन उन्होंने पूजन किया था। इसके बाद वे वहाँसे पधार गये। यों ये भगवती सर्वमङ्गला सर्वप्रथम भगवान् शंकरसे पूजित हुईं। उनके दूसरे उपासक मङ्गल ग्रह हैं। तीसरी बार राजा मंगलने तथा चौथी बार मंगलवारके दिन कुछ सुन्दरी स्त्रियोंने इन देवीकी पूजा की। पाँचवीं बार मङ्गलकी कामना रखनेवाले बहुसंख्यक मनुष्योंने मङ्गलचण्डिकाका पूजन किया। फिर तो विश्वेश शंकरसे सुपूजित ये देवी प्रत्येक विश्वमें सदा पूजित होने लगीं। मुने ! इसके बाद देवता, मुनि, मनु और मानव—सभी सर्वत्र इन परमेश्वरीकी पूजा करने लगे।

जो पुरुष मनको एकाग्र करके भगवती

मङ्गलचण्डिकाके इस मङ्गलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसे मङ्गल प्राप्त होता है। अमङ्गल उसके पास नहीं आ सकता। उसके पुत्र और पौत्रोंमें वृद्धि होती है तथा उसे प्रतिदिन मङ्गल ही दृष्टिगोचर होता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! देवी षष्ठी और मङ्गलचण्डिकाका यथागम उपाख्यान कह चुका। अब मनसादेवीका चरित्र, जो धर्मके मुखसे मैं सुन चुका हूँ, तुमसे कहता हूँ, सुनो। ये भगवती कश्यपजीकी मानसी कन्या अथवा मनसे जाननेकी विषय होनेके कारण देवी 'मनसा'के नामसे विख्यात हैं। आत्मामें रमण करनेवाली सिद्धयोगिनी इन वैष्णवी देवीने तीन युगोंतक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तपस्या की है। गोपीपति परमप्रभु उन परमेश्वरने इनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर इनका 'जरत्कारु' नाम रख दिया। साथ ही, उन कृपानिधिने कृपापूर्वक इनकी अन्य भी अभिलाषाएँ पूर्ण कर दीं। इनकी पूजाका प्रचार किया और स्वयं भी इनकी पूजा की। स्वर्गमें सुपूजित होनेके पश्चात् ये ब्रह्मलोकमें गयीं और वहाँसे भूमण्डल और पातालमें पधारीं। मनको मुग्ध करनेवाली ये सुन्दरी देवी 'गौरी' नामसे जगत्में निरन्तर पूजा प्राप्त करने लगीं। अतएव ये साध्वी देवी 'जगद्गौरी' के नामसे विख्यात होकर सम्मान प्राप्त करती हैं। भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ये देवी 'शैवी' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुकी ये अनन्य उपासिका हैं। अतएव लोग इन्हें 'वैष्णवी' कहते हैं। राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्हींके सत्प्रयत्नसे नागोंके प्राणोंकी रक्षा हुई थी, अतः इनका नाम 'नागेश्वरी' और 'नागभगिनी' पड़ गया। विषका संहार करनेमें परम समर्थ होनेसे इनका एक नाम 'विषहरी' है। इन्हें भगवान् शंकरसे योगसिद्धि प्राप्त हुई थी। अतः ये 'सिद्धयोगिनी' कहलाने लगीं। शंकरसे महान् ज्ञान एवं योग आदि प्राप्त करनेके कारण विद्वान् पुरुष इन्हें 'मृतसंजीविनी' तथा 'महाज्ञानयुता' कहते हैं। ये परम तपस्विनी देवी मुनिवर आस्तीककी माता हैं। अतः ये देवी जगत्में सुप्रतिष्ठित होकर 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात हुई हैं।

मुनिवर जरत्कारु बड़े महात्मा पुरुष थे। उन्होंने पत्नीरूपसे इन्हें स्वीकार किया था। जरत्कारु मुनि योगी थे। विश्व उनकी पूजा करता था। अतः उनके यहाँ ये 'जरत्कारुप्रिया' नामसे विख्यात हुईं। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी और महाज्ञानयुता—इन बारह नामोंसे विश्व इनकी पूजा करता है। जो पुरुष पूजाके समय इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजको भी सर्पका भय नहीं हो सकता।* जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें बहुतेरे नाग भरे हों, नागोंसे युक्त होनेके कारण जो महान् दारुण स्थान बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, वहाँ भी पुरुष इस

---

* जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी। वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा॥
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरेति च। महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत्। तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च॥
(९।४७।५१—५३)

स्तोत्रका पाठ करके सर्पभयसे मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। जो नित्य इसका पाठ करता है, उसे देखकर नाग भाग जाते हैं। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिसे यह स्तोत्र सिद्ध हो गया, वह विष-भक्षण करने तथा नागोंको भूषण बनाकर नागपर सवारी करनेमें भी समर्थ हो सकता है। वह नागासन, नागतल्प तथा महान् सिद्ध होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके साथ अहर्निश क्रीडा करनेका सौभाग्य प्राप्त करता है।

मुनिवर ! अब मैं देवी मनसाकी पूजाका विधान तथा सामवेदोक्त ध्यान बतलाता हूँ, सुनो। 'भगवती मनसा' श्वेत चम्पक पुष्पके समान वर्णवाली हैं। इनका विग्रह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित है। विशुद्ध चिन्मय वस्त्र इनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इन्होंने सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। महान् ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें भी ये प्रमुख मानी जाती हैं। ये सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ऐसी सिद्धि प्रदान करनेवाली सिद्धस्वरूपिणी भगवती मनसाकी मैं उपासना करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा गन्ध, पुष्प और अनुलेपनसे देवीकी पूजा होती है। सभी उपचार मूल मन्त्रको पढ़कर अर्पण करने चाहिये। मुने ! यह द्वादशाक्षर-मन्त्र सिद्ध हो जानेपर भक्त पुरुषोंके लिये मनोरथ पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षका काम करता है। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा।' पाँच लाख मन्त्र जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जिसे इस मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त हो गयी, वह धरातलपर सिद्ध है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है। उस पुरुषसे धन्वन्तरिकी तुलना की जा सकती है।

ब्रह्मन् ! जो पुरुष संक्रान्तिके शुभ अवसरपर स्नान करके यत्नपूर्वक भक्तिभावके साथ इन भगवती मनसाका आवाहन करके पूजा करता है तथा पञ्चमी तिथिको मनसे ध्यान करके उन देवीको बलि अर्पण करता है, वह अवश्य ही धनवान्, पुत्रवान् और कीर्तिमान् होता है। महाभाग ! पूजाका विधान कह चुका। अब धर्मदेवके मुखसे जैसा कुछ सुना है, वह उपाख्यान कहता हूँ, सुनो।

प्राचीन समयकी बात है, भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। अतः सबने मुनिवर कश्यपकी शरण ग्रहण की। कश्यपजी भी भयभीत हो गये; किंतु ब्रह्माजीके सहयोगसे उन्होंने मन्त्रोंकी रचना की। उसमें ब्रह्माजी उपदेष्टा थे। वेदबीजके अनुसार मन्त्रोंकी रचना हुई। साथ ही ब्रह्माजीने अपने मनसे उत्पन्न करके इन देवीको इस मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी बना दिया। तपस्या तथा मनसे प्रकट होनेके कारण ये देवी 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं। कुमारी अवस्थामें ही ये भगवान् शंकरके धाममें चली गयी थीं। कैलासमें पहुँचकर इन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान् चन्द्रशेखरकी स्तुति की। मुनिकुमारी मनसाने देवताओंके वर्षसे हजार वर्षोंतक भगवान् शंकरकी उपासना की। तदनन्तर भगवान् आशुतोष इनपर प्रसन्न हो गये। मुने ! भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर इन्हें महान् ज्ञान प्रदान किया। सामवेदका अध्ययन कराया और भगवान् श्रीकृष्णके कल्पवृक्षरूप अष्टाक्षर-मन्त्रका उपदेश किया।

मन्त्रका रूप ऐसा है—लक्ष्मीबीज,

मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके कृष्ण शब्दके अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगाकर नमः पद जोड़ दिया जाता है (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः)। भगवान् शंकरकी कृपासे जब मुनिकुमारी मनसाको त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच, पूजनका क्रम, सर्वसम्मत वेदोक्त पुरश्चरणका नियम तथा मन्त्र प्राप्त हो गया, तब वह साध्वी उनसे आज्ञा ले पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करनेके लिये चली गयी। वहाँ जाकर उसने परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तीन युगोंतक उपासना की। इसके बाद उसे तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने सामने प्रकट होकर उसे दर्शन दिये। उस समय कृपानिधि श्रीकृष्णने उस कृशाङ्गी बालापर अपनी कृपाकी दृष्टि डाली। उन्होंने उसका दूसरोंसे पूजन कराया और स्वयं भी उसकी पूजा की; साथ ही वर दिया कि 'देवी! तुम जगत्में पूजा प्राप्त करो।' इस प्रकार कल्याणी मनसाको वर प्रदान करके भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इस तरह इस मनसादेवीकी सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने पूजा की। तत्पश्चात् शंकर, कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिसे त्रिलोकीमें श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाली यह देवी सुपूजित हुई। फिर कश्यपजीने जरत्कारु मुनिके साथ उसका विवाह कर दिया। वे मुनि महान् योगी थे। विवाह करनेके पश्चात् वे तपस्या करनेमें संलग्न हो गये। वे एक दिन पुष्करक्षेत्रमें उस वटवृक्षके नीचे देवी मनसाकी जाँघपर लेट गये और उन्हें नींद आ गयी। इतनेमें सायंकाल होनेको आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थी। उसने मनमें विचार किया—'द्विजोंके लिये नित्य सायंकाल संध्या करनेका विधान है। यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा, क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकालकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता है, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है। यों विचार करके उस परमसुन्दरी मनसाने पतिदेवको जगा दिया। मुने ! मुनिवर जरत्कारु जगनेपर क्रोधसे भर गये।

मुनिने कहा—साध्वी ! मैं सुखपूर्वक सो रहा था; तुमने मेरी निद्रा क्यों भङ्ग कर दी। जो स्त्री अपने स्वामीका अपकार करती है, उसके व्रत, तपस्या, उपवास और दान आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। स्वामीका अप्रिय करनेवाली स्त्री किसी भी सत्कर्मका फल नहीं प्राप्त कर सकती। जिसने अपने पतिकी पूजा की, उससे मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सुपूजित हो गये। पतिव्रताओंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि ही पतिके रूपमें विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और देवपूजन—ये सब-के-सब स्वामीकी सेवाकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते। जो स्त्री भारतवर्ष-जैसे पुण्यक्षेत्रमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है। साध्वी ! जो असत्कुलमें उत्पन्न स्त्री अपने स्वामीके प्रतिकूल आचरण करती तथा उसके प्रति कटु वचन बोलती है, वह कुम्भीपाक नरकमें सूर्य और चन्द्रमाकी आयुपर्यन्त वास करती है। तदनन्तर चाण्डालके घरमें उसका जन्म होता है और पति एवं पुत्रके सुखसे वह वञ्चित रहती है। यों कहकर वे चुप हो गये। तब साध्वी मनसा भयसे काँपने लगी। उसने पतिदेवसे कहा।

साध्वी मनसाने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग ! आपकी संध्या लोप न हो जाय इसी भयसे मैंने आपको जगा दिया है—यह मेरा दोष अवश्य है।

इस प्रकार कहकर देवी मनसा भक्तिपूर्वक अपने स्वामी जरत्कारु मुनिके चरणकमलोंपर पड़ गयी। उस समय रोषके आवेशमें आकर मुनि सूर्यको भी शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। नारद ! उन्हें देखकर स्वयं भगवान् सूर्य संध्या-देवीको साथ लेकर वहाँ आये और भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिवर जरत्कारुसे सम्यक् प्रकारसे यथार्थ बात कहने लगे।

भगवान् सूर्यने कहा—भगवन् ! आप परम शक्तिशाली ब्राह्मण हैं। संध्याका समय देखकर धर्म लोप हो जानेके भयसे इस साध्वीने आपको जगा दिया। मुने ! विप्रवर ! मैं आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय सदा नवनीतके समान कोमल होता है। ब्राह्मण चाहें तो पुनः सृष्टि कर सकते हैं; इनसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई है ही नहीं। ब्रह्मज्योति ब्राह्मणके द्वारा निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना होती है।

सूर्यके उपर्युक्त वचन सुनकर विप्रवर जरत्कारु प्रसन्न हो गये। उनसे आशीर्वाद लेकर सूर्य अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन ब्राह्मण देवताने देवी मनसाका त्याग कर दिया। उस समय देवीके शोककी सीमा नहीं रही। दुःखके कारण उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा था। वे रो रही थीं। उस विपत्तिके अवसरपर भयसे व्याकुल होकर उस देवीने अपने गुरुदेव शंकर, इष्टदेवता ब्रह्मा और श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया। देवी मनसाके चिन्तन करनेपर तुरंत गोपीश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यप मुनि वहाँ आ गये। प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण मुनिवर जरत्कारुके अभीष्ट देवता थे। उनके दर्शन पाकर परम भक्तिके साथ मुनि बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। फिर भगवान् शंकर, ब्रह्मा और कश्यपको भी नमस्कार किया। 'महाभाग देवताओ ! आप-लोगोंका यहाँ कैसे पधारना हुआ है' यों पूछा।

मुनिवर जरत्कारुकी बात सुनकर ब्रह्माजीने समयोचित बातें कहीं। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके उन्होंने मुनिको उत्तर दिया—'मुने ! तुम्हारी यह धर्मपत्नी मनसा परम साध्वी एवं धर्ममें आस्था रखनेवाली है। यदि तुम इसे त्यागना चाहते हो तो पहले इसको किसी संतानकी जननी बना दो, जिससे यह अपने धर्मका पालन कर सके। संतान हो जानेके पश्चात् स्त्रीको त्यागा जा सकता है। जो पुरुष पुत्रोत्पत्ति कराये बिना ही प्रिय पत्नीका त्याग कर देता है, उसका पुण्य चलनीसे बह जानेवाले जलकी भाँति साथ छोड़ देता है।'

नारद ! ब्रह्माजीकी बात सुनकर मुनिवर जरत्कारुने मन्त्र पढ़कर योगबलका सहारा ले देवी मनसाकी नाभिका स्पर्श कर दिया और उससे कहा।

मुनिवर जरत्कारुने कहा—मनसे ! इस गर्भसे तुम्हें पुत्र होगा। वह पुत्र जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्रह्मज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणी, वेदवेत्ताओं, ज्ञानियों और योगियोंमें प्रमुख, विष्णुभक्त तथा अपने कुलका उद्धारक होगा। ऐसे सुयोग्य पुत्रके उत्पन्न होने मात्रसे पितर आनन्दमें भरकर नाचने लगते हैं। जो पातिव्रत्य धर्मका पालन करती है, प्रिय बोलती है और सुशीला है, वह प्रिया है। जो धर्ममें श्रद्धा रखती है, पुत्र उत्पन्न करती है तथा कुलकी रक्षा करती है, उसीको कुलीन स्त्री कहते हैं, जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करता एवं अभीष्ट सुख देनेमें तत्पर रहता है, वही बन्धु है। यदि भगवान् श्रीहरिके मार्गका प्रदर्शक हो तो उस बन्धुको पिता भी कह सकते हैं। वही गर्भधारिणी स्त्री कहलाती है, जो ज्ञानोपदेशद्वारा संतानको गर्भवाससे मुक्त कर दे। दयारूपा भगिनी उसको कहते हैं, जिसकी कृपासे प्राणी यमराजके भयसे मुक्त हो जाय। भगवान् विष्णुके मन्त्रको प्रदान करनेवाला गुरु वही है, जो भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करा दे। ज्ञानदाता गुरु उसीको कहते हैं, जिसकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनकी योग्यता प्राप्त हो जाय; क्योंकि ब्रह्मापर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता और नाश हो जाता है।

वेद अथवा यज्ञसे जो कुछ सारतत्त्व निकलता है, वह यही है कि भगवान् श्रीहरिका सेवन किया जाय। यही तत्त्वोंका भी तत्त्व है। भगवान् श्रीहरिकी उपासनाके अतिरिक्त सब कुछ केवल विडम्बनामात्र है। मैंने तुम्हें यथार्थ ज्ञानोपदेश कर दिया; क्योंकि स्वामी भी वही कहलाता है, जो ज्ञान प्रदान कर दे। ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त करनेवाला स्वामी माना जाता है और वही यदि बन्धनमें डालता है तो शत्रु है। जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, उसे शिष्यघाती कहते हैं; क्योंकि वह शिष्यको बन्धनमुक्त नहीं कर सका। जो जननीके गर्भजनित क्लेशसे तथा यमयातनासे मुक्त नहीं कर सकता, उसे गुरु, तात और बान्धव कैसे कहा जाय ? भगवान् श्रीकृष्णका सनातन मार्ग परम आनन्दस्वरूप है। जो निरन्तर ऐसे मार्गका प्रदर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है ? अतः साध्वी ! तुम निर्गुण एवं अच्युत ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करो; इनकी उपासनासे पुरुषोंके सारे कर्ममूल कट जाते हैं। प्रिये ! मैंने जो तुम्हारा त्याग कर दिया, मेरे इस अपराधको क्षमा करो। साध्वी स्त्रियाँ क्षमापरायण होती हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे उनमें क्रोध नहीं रहता। देवी ! मैं तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें जा रहा हूँ। तुम भी सुखपूर्वक यहाँसे जा सकती हो; क्योंकि निःस्पृह पुरुषोंके लिये एकमात्र मनोरथ यही है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी उपासनामें लग जायँ।

मुनिवर जरत्कारुका यह वचन सुनकर देवी मनसा शोकसे आतुर हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू भर गये। उसने विनयभाव प्रदर्शित करते हुए अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे कहा।

देवी मनसा बोली—प्रभो ! मैंने आपकी निद्रा भङ्ग कर दी—यह मेरा दोष नहीं कहा जा सकता, जिससे आप मेरा त्याग कर रहे हैं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि जहाँ मैं आपका

स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे दर्शन देनेकी कृपा कीजियेगा। पतिव्रता स्त्रियोंके लिये सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रेमका भाजन पति है। पति स्त्रियोंके लिये सम्यक् प्रकारसे प्रिय है; अतएव विद्वान् पुरुषोंने पतिको 'प्रिय' की संज्ञा दी है। जिस प्रकार एक पुत्रवालोंका पुत्रमें, वैष्णव पुरुषोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे जनोंका जलमें, क्षुधातुरोंका अन्नमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका वाणिज्यमें निरन्तर मन लगा रहता है, प्रभो ! वैसे ही पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने स्वामीका किङ्कर बना रहता है। इस प्रकार कहकर मनसा देवी अपने स्वामीके चरणोंमें पड़ गयी।

मुनिवर जरत्कारु कृपाके समुद्र थे। उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर क्षणभरके लिये उसे अपनी गोदमें ले लिया। मुनिके नेत्रोंसे जलकी ऐसी धारा गिरी कि वह साध्वी मनसा नहीं उठी। उस समय मुनिवर जरत्कारुकी गोदमें स्थान पानेवाली उस देवीके नेत्रोंमें आँसू आ गये। मुनिके अश्रुजलसे अभिषिक्त होनेपर भी सम्बन्ध-विच्छेद होनेके भयसे उसके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी थी। तत्पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हो गये।

तदनन्तर मुनिवर जरत्कारु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलका बार-बार स्मरण करते हुए अपनी प्रिया मनसाको समझाकर तपस्या करनेके लिये चले गये। उधर देवी मनसा भी कैलासपर पहुँचकर अपने गुरु भगवान् शंकरके मन्दिरमें चली गयी। वह शोकसे व्याकुल थी। भगवती पार्वतीने उसे भलीभाँति समझाया। भगवान् शंकरसे भी उसे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर मंगलवारका दिन था। सभी शुभ योग उपस्थित थे। उसी क्षण साध्वी मनसाने पुत्र उत्पन्न किया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों एवं ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह गर्भमें था तभी भगवान् शंकरके मुखसे उसे ज्ञानोपलब्धि हो चुकी थी। अतएव वह बालक योगीन्द्र तथा योगियों और ज्ञानियोंका गुरु होनेका अधिकारी बना। भगवान् शंकरने उसका जातकर्म और नामकरण आदि माङ्गलिक संस्कार कराया। भगवान् शिवने उस शिशुके कल्याणार्थ उसे वेद पढ़ाये। बहुत-से मणि, रत्न और किरीट ब्राह्मणोंको दान किये। देवी पार्वतीद्वारा लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न ब्राह्मणोंके लिये वितरण किये गये। भगवान् शिव स्वयं उस बालकको चारों वेद और वेदाङ्ग निरन्तर पढ़ाते रहे। साथ ही मृत्युञ्जयने श्रेष्ठ ज्ञानका भी उपदेश किया। उनकी कृपासे उस बालकमें अपने अभीष्ट गुरुदेवके प्रति अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। पिताके अस्त होनेके अवसरपर पुत्रकी उत्पत्ति हुई, इसलिये उस पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ।

मुनिवर जरत्कारु उसी क्षण भगवान् शंकरसे आज्ञा लेकर भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। उन तपोधन मुनिने परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके दीर्घकालतक तप किया। फिर वे महान् योगी मुनि भगवान् शंकरको प्रणाम करनेके विचारसे कैलासपर आये। शंकरको नमस्कार करके कुछ समयके लिये वहीं रुक गये। तबतक वह बालक भी वहीं था। उदार देवी मनसा उस बालकको लेकर अपने पिता कश्यप मुनिके आश्रमपर चली आयी। उस पुत्रवती कन्याको देखकर प्रजापति कश्यपके मनमें अपार हर्ष हुआ। मुने ! उस अवसरपर प्रजापतिने ब्राह्मणोंको प्रचुर रत्न दान किये।

शिशुके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया। परंतप ! कश्यपजीकी दिति-अदिति तथा अन्य भी जितनी पत्नियाँ थीं, उनके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वह कन्या मनसा पुत्रके साथ सुदीर्घ कालतक सदा उस आश्रमपर ठहरी रही। इसीका उपाख्यान अभी पुनः कहता हूँ, सुनो।

तदनन्तर अभिमन्युकुमार राजा परीक्षित्को ब्राह्मणका शाप लग गया। ब्रह्मन् ! दुर्दैवकी प्रेरणासे ऐसा कर्म बन गया कि सहसा परीक्षित् शापसे ग्रस्त हो गये। ब्राह्मणने कह दिया कि इस एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प तुम्हें काट खायगा। तक्षकने सातवें दिन उन्हें डँस लिया। राजा सहसा शरीर त्यागकर परलोक चले गये। जनमेजयने उन अपने पिताका दाह-संस्कार कराया। मुने ! इसके बाद उन महाराज जनमेजयने सर्पसत्र आरम्भ किया। ब्रह्मतेजके कारण समूह-के-समूह सर्प प्राणोंसे हाथ धोने लगे। तक्षक भयसे घबराकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। तब ब्राह्मणमण्डली इन्द्रसहित तक्षकको मारनेके लिये उद्यत हो गयी। ऐसी स्थितिमें इन्द्रके साथ देवता भगवती मनसाके पास गये। उस समय इन्द्र भयसे अधीर हो उठे थे। उन्होंने भगवती मनसाकी स्तुति की। फलस्वरूप मुनिवर आस्तीक माताकी आज्ञासे राजा जनमेजयके यज्ञमें आये। उन्होंने जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। ब्राह्मणोंकी आज्ञा अथवा कृपावश राजाने वर दे दिया। यज्ञकी पूर्णाहुति कर दी गयी। सुप्रसन्न राजाद्वारा ब्राह्मण यज्ञान्त दक्षिणा पा गये। तत्पश्चात् ब्राह्मण, देवता और मुनि सभी देवी मनसाके पास गये तथा सबने पृथक्-पृथक् उस देवीकी पूजा और स्तुति की। इन्द्रने पवित्र हो श्रेष्ठ सामग्रियोंको लेकर उनके द्वारा देवी मनसाका पूजन किया। फिर वे भक्तिपूर्वक नित्य पूजा करने लगे। षोडशोपचारसे अतिशय आदर प्रकट करते हुए उन्होंने पूजा और स्तुति की। यों देवी मनसाकी अर्चना करनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके आज्ञानुसार संतुष्ट होकर सभी देवता अपने स्थानोंपर चले गये।

मुने ! इस प्रकारकी ये सम्पूर्ण कथाएँ कह चुका। अब आगे पुनः क्या सुनना चाहते हो ?

नारदजीने पूछा—प्रभो ! देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की थी तथा किस विधिके क्रमसे पूजन किया था ? इस प्रसङ्गको मैं सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! देवराज इन्द्रने स्नान किया, पवित्र हो आचमन करके दो नूतन वस्त्र धारण किये। देवी मनसाको रत्नमय सिंहासनपर पधराया और भक्तिपूर्वक स्वर्गगङ्गाका जल रत्नमय कलशमें लेकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उससे देवीको स्नान कराया। विशुद्ध दो मनोहर चिन्मय वस्त्र पहननेके लिये अर्पण किये। देवीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दन लगाया। भक्तिपूर्वक पाद्य और अर्घ्यको उनके सामने निवेदन किया। उस समय देवराज इन्द्रने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और गौरी—इन छः देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् साध्वी मनसाकी पूजा की थी। 'ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मूल मन्त्रका उच्चारण करके यथोचित रूपसे पूजनकी सभी सामग्री देवीको अर्पण की। इस तरह सोलह प्रकारकी दुर्लभ वस्तुएँ देवराज इन्द्रके द्वारा साध्वी मनसाकी सेवामें अर्पित हुईं। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक भक्तिसहित पूजामें लगे रहे। उस समय उन्होंने नाना प्रकारके

बाजे बजवाये। देवी मनसाके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे पुलकित शरीर होकर नेत्रोंमें अश्रु भरे हुए इन्द्रने देवी मनसाकी स्तुति की।

इन्द्र बोले—देवी! तुम साध्वी पतिव्रताओंमें परम श्रेष्ठ तथा परात्पर देवी हो। इस समय मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ; किंतु यह महत्त्वपूर्ण कार्य मेरी शक्तिके बाहर है। देवी प्रकृते! तुम्हारे स्तोत्रोंके लक्षण और तुमसे सम्बन्ध रखनेवाले उपाख्यान वेदोंमें वर्णित हैं। मैं तुम्हारे गुणोंकी गणना नहीं कर सकता। तुम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हो, तुममें कोप और हिंसाका नितान्त अभाव है। मुनिवर जरत्कारु तुम्हें त्यागनेमें असमर्थ थे, अतएव उन्होंने तुमसे याचना की थी। तुम साध्वी देवी माता अदितिके समान मेरी परम पूज्या हो। तुम दयारूपसे भगिनी और क्षमारूपसे जननी हो। सुरेश्वरी! तुम्हारी कृपासे पुत्र और स्त्रीके साथ मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई है, मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति सदा बढ़ती रहे। जगदम्बिके! तुम सनातनी देवी हो। यद्यपि तुम्हारी सर्वत्र नित्य पूजा होती है; फिर भी मैं तुम्हारी पूजाका प्रचार कर रहा हूँ। सुरेश्वरी! जो पुरुष आषाढ़ मासकी संक्रान्तिके समय मनसासंज्ञक पञ्चमी अर्थात् नागपञ्चमी एवं मासके अन्तमें प्रतिदिन भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे, उनके यहाँ पुत्र, पौत्र और धनमें वृद्धि होगी—यह निश्चित है। साथ ही वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्वान् और गुणी होंगे। जो व्यक्ति अज्ञानके कारण तुम्हारी पूजासे विमुख होकर निन्दा करेंगे, उनके यहाँ लक्ष्मी नहीं ठहरेगी और उन्हें सर्पोंसे सदा भय बना रहेगा। तुम स्वयं सर्वलक्ष्मी हो। वैकुण्ठमें तुम्हें 'कमलालया' कहते हैं। ये मुनिवर जरत्कारु भगवान् नारायणके साक्षात् अंश हैं। तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा तुम्हारे पिताने तुम्हारी सृष्टि की है। तुम्हारी सृष्टिमें हमारी रक्षा ही उद्देश्य है। अतएव तुम मनसादेवी कहलाती हो। देवी! तुम मनसादेवीने स्वयं अपनी शक्तिसे ही योगसिद्धि प्राप्त की है। इससे तुम मनसादेवी सबकी पूज्या और वन्दिता होनेकी कृपा करो। देवता भक्तिपूर्वक निरन्तर तुम मनसाकी पूजा करते हैं, इसीसे विद्वान् पुरुष तुम्हें मनसादेवी कहते हैं। देवी! तुम सदा सत्यकी उपासिका होनेसे सत्यस्वरूपा हो। जो पुरुष निरन्तर तुम्हारा चिन्तन करते हैं, उन्हें तुम प्राप्त हो जाती हो। मुने! इस प्रकार इन्द्र देवी मनसाकी स्तुति करके उनसे वर पाकर अपने भवनको, जो अनेक प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत था, चले गये।*

---

* पुरन्दर उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम्॥
परात्परां च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना। स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम्॥
न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां गणनां तव। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता॥
न च शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः। त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे यथादितिः॥
दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः। त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि॥
अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीतिश्च वर्धतां सदा। नित्या यद्यपि पूज्या त्वं सर्वत्र जगदम्बिके॥

इधर देवी मनसाने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपजीके आश्रममें दीर्घकालतक वास किया। भ्रातृवर्ग सदा उनका पूजन, अभिवादन और सम्मान करता था। ब्रह्मन्! तदनन्तर गोलोकसे सुरभी गौ आयी और अपने दूधसे आदरणीया मनसाको स्नान कराकर वह सम्मान-पूर्वक पूजा करने लगी। साथ ही, उसने अत्यन्त दुर्लभ गोप्य ज्ञानका भी उपदेश किया। तदनन्तर सुरभी तथा देवताओंसे सुपूजित हुई देवी मनसा पुनः स्वर्गलोकको चली गयी।

यह स्तोत्र पुण्यबीज कहलाता है। जो पुरुष इस स्तोत्रको पढ़कर मनसादेवीकी उपासना करता है, उसे तथा उसके वंशके लिये भी नागसे भय नहीं हो सकता। यदि यह स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो पुरुषके लिये विष भी अमृत-तुल्य हो जाता है। इस स्तोत्रका पाँच लाख जप करनेपर यह सिद्ध हो जाता है; फिर मन्त्रसिद्ध पुरुष सर्पशायी तथा सर्पवाहन हो सकता है अर्थात् उसपर सर्पका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

(अध्याय ४७-४८)

☆

## आदिगौ सुरभीदेवीका उपाख्यान

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! वह सुरभीदेवी कौन थी, जो गोलोकसे आयी थी? मैं उसके जन्मका चरित्र सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! देवी सुरभी गोलोकमें प्रकट हुई। वह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदि, गौओंकी जननी तथा सम्पूर्ण गौओंमें प्रमुख थी। मुने! समस्त गौओंसे प्रथम वृन्दावनमें उस सुरभीका ही जन्म हुआ है। अतः मैं उसका चरित्र कहता हूँ, सुनो।

एक समयकी बात है—राधापति कौतुकी भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोपाङ्गनाओंसे घिरे हुए पुण्य वृन्दावनमें गये। कौतूहलवश थक जानेके बहाने सहसा किसी एकान्त स्थानमें बैठ गये और उन स्वेच्छामय प्रभुके मनमें दूध पीनेकी इच्छा हो गयी। उसी क्षण उन्होंने अपने वामभागसे लीलापूर्वक सुरभी गौको प्रकट कर दिया। बछड़ा उस गौके साथ था। उसके थनोंमें दूध भरा था। उसके बछड़ेका नाम 'मनोरथ' था। उस सवत्सा गौको सामने देखकर श्रीदामाने

---

तथापि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि। ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने। पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै॥
यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः। ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः॥
लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा। त्वं स्वयं सर्वलक्ष्मीश्च वैकुण्ठे कमलालया॥
नारायणांशो भगवान् जरत्कारुर्मुनीश्वरः। तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता॥
अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा। मनसा देवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी॥
तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भव। ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम्॥
तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति मनीषिणः। सत्यस्वरूपा देवी त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात्॥
यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्नोति तत्परः। इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं वरम्॥
प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम्। (९।४८।१२५—१४०)

एक नूतन पात्रमें उसका दूध दुहा। वह दूध जन्म और मृत्युको दूर करनेवाला एक दूसरा अमृत ही था। स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्णने उस स्वादिष्ट दूधको पिया। फिर हाथसे वह भाँड गिरकर फूटा और दूध धरतीपर फैल गया। गिरते ही वह दूध सरोवरके रूपमें परिणत हो गया। उसकी चारों ओरकी लम्बाई और चौड़ाई सौ-सौ योजन थी। वही यह सरोवर गोलोकमें 'क्षीरसरोवर' नामसे प्रसिद्ध है। गोपिकाओं और श्रीराधाके लिये वह क्रीडा-सरोवर बन गया। सभी वहाँ मनोरञ्जन करने लगीं। अमूल्य रत्नोंद्वारा उस परिपूर्ण सरोवरके घाट बने थे। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे उसी समय अकस्मात् असंख्य कामधेनु गौएँ प्रकट हो गयीं। जितनी वे गौएँ थीं, उतने ही गोप भी उस सुरभी गौके रोमकूपसे निकल आये। फिर उन गौओंसे बहुत-सी संतानें हुईं, जिनकी संख्या नहीं की जा सकती। यों उस सुरभी देवीसे गौओंकी सृष्टि कही जाती है, जिससे जगत् व्याप्त है।

मुने ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् त्रिलोकीमें उस देवीकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया। दीपावलीके दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभीकी पूजा सम्पन्न हुई थी—यह प्रसङ्ग मैं अपने पिता धर्मके मुखसे सुन चुका हूँ। महाभाग ! देवी सुरभीका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा पूजाकी विधिका क्रम मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। 'ॐ सुरभ्यै नमः' सुरभीदेवीका यह षडक्षर-मन्त्र है। एक लाख जप करनेपर मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिये कल्पवृक्षका काम करता है। ध्यान और पूजन यजुर्वेदमें सम्यक् प्रकारसे वर्णित हैं। 'जो ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हैं; जो लक्ष्मीस्वरूपा, श्रीराधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री, गौओंकी आदिजननी, पवित्ररूपा, भक्तोंके अखिल मनोरथ सिद्ध करनेवाली हैं तथा जिनसे यह सारा विश्व पावन बना है, उन भगवती सुरभीकी मैं उपासना करता हूँ। कलश, गायके मस्तक, गौओंके बाँधनेके स्तम्भ, शालग्रामकी मूर्ति, जल अथवा अग्निमें देवी सुरभीकी भावना करके द्विज इनकी पूजा करें। दीपमालिकाके दूसरे दिन पूर्वाह्णकालमें भक्तिपूर्वक पूजा होनी चाहिये। जो भगवती सुरभीकी पूजा करेगा, वह जगत्में पूज्य हो जायगा।'

एक समयकी बात है, वाराहकल्प बीत रहा था। देवी सुरभीने दूध देना बंद कर दिया। उस समय त्रिलोकीमें दूधका अभाव हो गया था। तब देवता अत्यन्त चिन्तित होकर ब्रह्मलोकमें गये और उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर देवी सुरभीकी स्तुति आरम्भ की।

इन्द्रने कहा—देवीको नमस्कार है। महादेवी सुरभीको बार-बार नमस्कार है। जगदम्बिके ! तुम गौओंकी आदिकारण हो; तुम्हें नमस्कार है। श्रीराधा-प्रियाको नमस्कार है। देवी पद्मांशाको बार-बार नमस्कार है। श्रीकृष्ण-प्रियाको नमस्कार है। गौओंको उत्पन्न करनेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है। सबके लिये जो कल्पवृक्षस्वरूपा हैं तथा क्षीर, धन और बुद्धि प्रदान करनेके लिये सदा तत्पर रहती हैं, उन भगवती सुरभीको बार-बार नमस्कार है। शुभा, सुभद्रा और गोप्रदा नामसे शोभा पानेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है। यश,
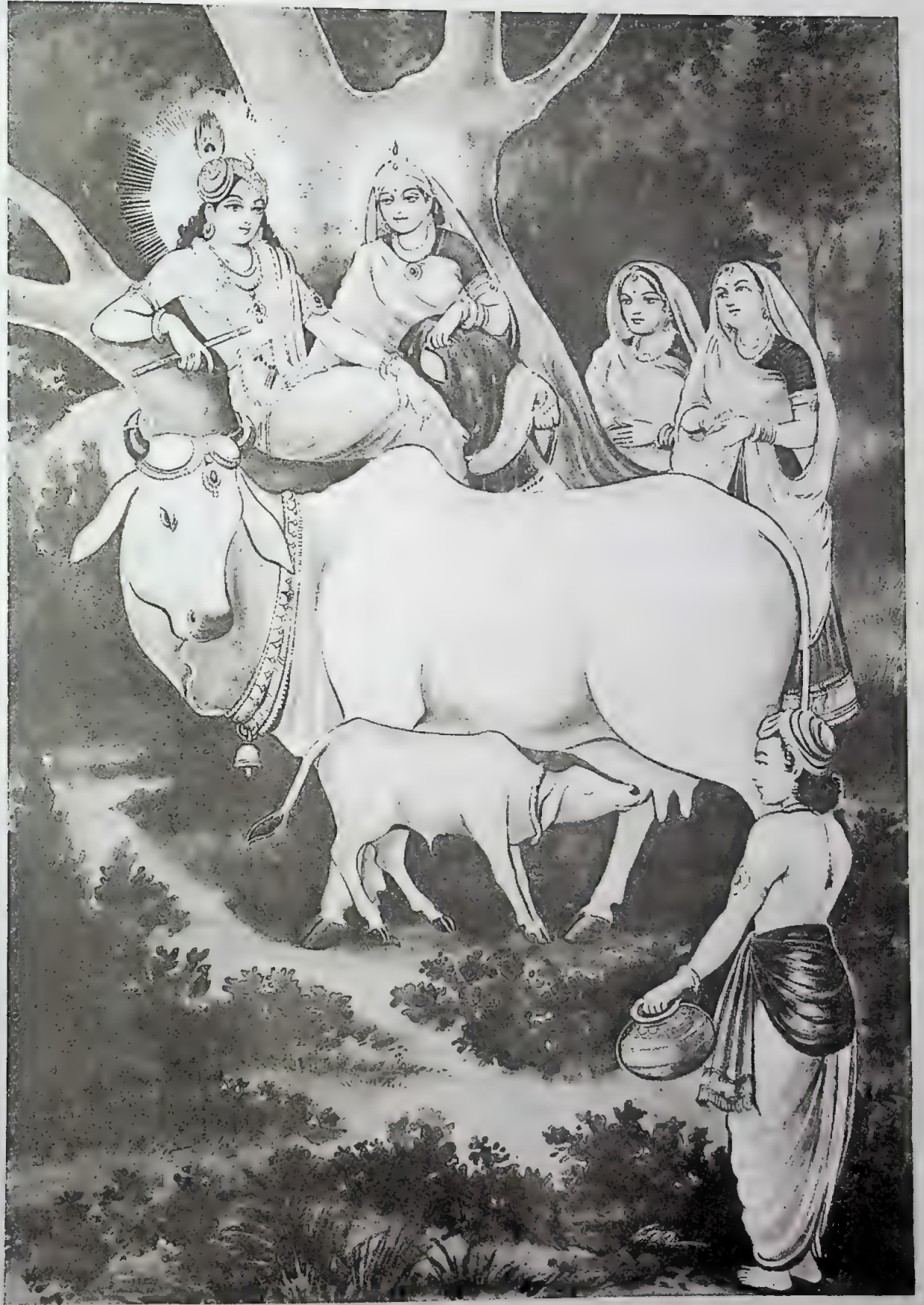
श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे सुरभिकी उत्पत्ति

कीर्ति और धर्म प्रदान करनेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है।*

इस प्रकार स्तुति सुनते ही जगज्जननी भगवती सुरभी संतुष्ट और प्रसन्न हो उस ब्रह्मलोकमें ही प्रकट हो गयीं। वह सनातनी देवी देवराज इन्द्रको परम दुर्लभ अभीष्ट वर देकर गोलोकको चली गयी। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। नारद ! अब विश्व सहसा दूधसे परिपूर्ण हो गया। दूधसे घृत बना और घृतसे यज्ञ सम्पन्न होने लगे तथा उनसे देवता संतुष्ट हुए।

जो मानव इस महान् पवित्र स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह गोधनसे सम्पन्न, प्रचुर सम्पत्तिवाला, परम यशस्वी और पुत्रवान् हो जायगा। उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा अखिल यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल सुलभ होगा। ऐसा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके धाममें चला जाता है। चिरकालतक वहाँ रहकर भगवान्‌की सेवा करता रहता है। पुनः इस संसारमें उसे नहीं आना पड़ता। वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीका पुत्र होकर वहीं निवास पाता है। (अध्याय ४९)

☆

## भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो ! मूलप्रकृति आराध्या देवियोंके सम्पूर्ण यथार्थ उपाख्यान सुन चुका, जिनके श्रवणमात्रसे प्राणी जन्म और मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है। अब मैं भगवती 'श्रीराधा' और 'दुर्गा' के वेदगोप्य रहस्य तथा उनके मन्त्रके अनुष्ठानका प्रयोग, जो श्रुतिमें वर्णित हैं, सुनना चाहता हूँ। मुनीश्वर ! आपने इन दोनों महान् देवियोंकी महिमा भी भलीभाँति वर्णन की है। भला कौन ऐसा पुरुष है, जो इनकी महिमा सुनकर गद्गद न हो जाय। जिनके अंशसे यह सारा जगत् विद्यमान है, जो चराचर जगत्पर शासन करती हैं तथा जिनकी भक्तिसे मानव सहज ही कृतार्थ हो जाता है, उन भगवती श्रीराधा और दुर्गाके विधान-मन्त्र और अनुष्ठानकी पूजाका प्रकार बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सुनो, यह वेदवर्णित रहस्य तुम्हें बताता हूँ। यह सर्वोत्तम एवं परात्पर सार-रहस्य जिस किसीके सम्मुख नहीं कहना चाहिये। इस रहस्यको सुनकर दूसरोंसे कहना उचित नहीं है; क्योंकि यह अत्यन्त गुह्य रहस्य है। मूलप्रकृतिस्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरीके सकाशसे जगत्‌की उत्पत्तिके समय दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री। ये ही दोनों देवियाँ सम्पूर्ण जगत्‌को नियन्त्रणमें रखती और

---

* पुरन्दर उवाच—नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे। क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः॥
शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः॥
(९।४९।२४—२७)

प्रेरणा प्रदान करती हैं। विराट् आदि चराचर-सहित सम्पूर्ण जगत् इन्हींके अधीन है। अतः इन भगवती श्रीराधा और दुर्गाको प्रसन्न करनेके लिये निरन्तर उनकी उपासना करनी चाहिये।

नारद ! पहले मैं श्रीराधाका मन्त्र बतलाता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो। इस श्रेष्ठ मन्त्रका ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने सदा सेवन किया है। 'श्रीराधा' इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके आगे वह्निजाया अर्थात् 'स्वाहा' शब्द जोड़ देना चाहिये। (श्रीराधायै स्वाहा) यह भगवती श्रीराधाका षडक्षर मन्त्र धर्म और अर्थका प्रकाशक है। इसीके आदिमें मायाबीज (ह्रीं) का प्रयोग करे तो यह भगवती श्रीराधावाञ्छाचिन्तामणि मन्त्र कहा जाता है (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा)। असंख्य मुख और जिह्वावाले भी इस मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन नहीं कर सकते। सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका जप किया था। उस समय भगवान् गोलोकमें थे, रासका प्रारम्भ था, मूलप्रकृति श्रीराधादेवीके आदेशसे इस मन्त्रके जपमें भगवान्‌की प्रवृत्ति हुई थी। फिर भगवान् श्रीकृष्णने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मदेवको और धर्मदेवने मुझे इसका उपदेश किया। इस प्रकार परम्परा चली आयी। मैं निरन्तर इस मन्त्रका जप करता हूँ, इसीसे ऋषि मेरा सम्मान करते हैं। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता नित्य प्रसन्न होकर उन भगवती राधाका ध्यान करते हैं; क्योंकि यदि श्रीराधाकी पूजा न की जाय तो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी पूजाका अनधिकारी समझा जाता है; इसलिये सम्पूर्ण विष्णुभक्तोंको चाहिये कि भगवती श्रीराधाकी उपासना अवश्य करें। ये देवी भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री हैं; अतएव भगवान् इनके अधीन रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके रासकी ये नित्यस्वामिनी हैं। इन श्रीराधाके बिना भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभर भी नहीं ठहर सकते। सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेके कारण इन देवीका नाम श्रीराधा हुआ है। यहाँ जितने मन्त्र उद्धृत हैं उनमें यह जो श्रीराधाका मन्त्र है, इसका ऋषि मैं नारायण हूँ, गायत्री छन्द है, श्रीराधा इस मन्त्रकी देवता हैं। ताराबीज और शक्तिबीजको इनकी शक्ति कहा गया है।

मुने ! इसके बाद रासेश्वरी भगवती श्रीराधाका सामवेदमें वर्णित पूर्वोक्त विधिके अनुसार ही ध्यान करना चाहिये। भगवती श्रीराधाका वर्ण श्वेतचम्पकके समान है। इनका मुख ऐसा प्रतीत होता है, मानो शरद्‌ऋतुका चन्द्रमा हो। इनका श्रीविग्रह असंख्य चन्द्रमाके समान चमचमा रहा है। आँखें शरद्‌ऋतुके विकसित कमलकी तुलना कर रही हैं। इनके अधर बिम्बाफलके समान, श्रोणी स्थूल और नितम्ब करधनीसे अलंकृत हैं। कुन्दपुष्पके सदृश इनकी स्वच्छ दन्तपंक्तिसे इनकी विचित्र शोभा होती है। पवित्र चिन्मय दिव्य रेशमी वस्त्र इन्होंने पहन रखे हैं। इनके प्रसन्न मुखपर मुसकान छायी हुई है। इनके विशाल उरोज हैं। रत्नमय भूषणोंसे विभूषित ये देवी सदा बारह वर्षकी अवस्थाकी ही प्रतीत होती हैं। शृङ्गारकी मानो ये समुद्र हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये इनमें समय-समयपर चिन्ता उठा करती है। इन्होंने अपने केशोंमें मल्लिका और मालतीकी मालाओंको धारण कर रखा है, जिससे इनकी शोभा विचित्र हो रही है। इनके सभी अङ्ग अत्यन्त सुकुमार हैं। रासमण्डलमें विराजमान होकर ये देवी सबको अभय प्रदान करती हैं। ये

शान्तस्वरूपा देवी सदा शाश्वतयौवना बनी रहती हैं। गोपियोंकी स्वामिनी बनकर ये रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। ये परमेश्वरी देवी भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिदेवता हैं। वेदोंने इनकी महिमाका वर्णन किया है।

इस प्रकार हृदयमें ध्यान करके बाहर शालग्रामकी मूर्ति, कलश अथवा आठ दलवाले यन्त्रपर श्रीराधादेवीका आवाहन करके विधि-पूर्वक पूजन करना चाहिये। क्रम यह है—पहले देवीका आवाहन करे। तत्पश्चात् आसन आदि समर्पण करे। मूलमन्त्रका उच्चारण करके ये आसन आदि पदार्थ भगवतीके सम्मुख उपस्थित करने चाहिये। उनके चरणोंमें पाद्य देनेका विधान है। अर्घ्य मस्तकपर देना चाहिये। मुखके सम्मुख जल ले जाकर मूलमन्त्रसे तीन बार आचमन कराना चाहिये। इसके अनन्तर मधुपर्क निवेदन करके श्रीराधाके लिये एक पयस्विनी गौ देनी चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें स्नान-गृहमें पधराकर वहीं इनकी पूजा सम्पन्न करे। तैल आदि सुगन्धित वस्तु लगाकर सविधि स्नान करानेके पश्चात् दो वस्त्र अर्पण करे। अनेक प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करके चन्दन अर्पण करे। अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाएँ तथा तुलसी निवेदन करे। पारिजात और कमल आदि नाना प्रकारके पुष्प चढ़ावे।

तत्पश्चात् परमेश्वरी श्रीराधाके पवित्र परिवारका अर्चन करना चाहिये। पूर्व, अग्निकोण और वायव्य दिशाके मध्यमें श्रीराधाके दिक्सम्बन्धी अङ्गकी पूजा होती है। इसके बाद अष्टदल-यन्त्रको आगे करके उसके अग्रभागमें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें परावती तथा ईशानकोणमें सुन्दरी प्रियकारिणी—इन-इन दिशाओंके दलोंमें बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त देवियोंकी पूजा करे। यन्त्रपर ही दलके बाहर ब्रह्मा आदि देवताओं, सामने भूमिपर दिक्पालों एवं वज्र आदि आयुधोंकी अर्चा करे—इस प्रकार भगवती श्रीराधाकी पूजा करनी चाहिये। ये पूर्वकथित देवता देवीके आवरण हैं। इनके साथ गन्ध आदि उत्तम उपचारोंसे बुद्धिमान् पुरुष भगवती श्रीराधाकी अर्चना करे। तदनन्तर इनके सहस्र-नामका पाठ करके स्तुति करनी चाहिये। यत्न-पूर्वक इन देवीके मन्त्रका नित्य एक हजार जप करनेका विधान है। इस प्रकार जो पुरुष रासेश्वरी परमपूज्या श्रीराधा देवीकी अर्चना करते हैं, वे भगवान् विष्णुके समान हो सदा गोलोकमें निवास करते हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष शुभ अवसरपर भगवती श्रीराधाका जन्मोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी श्रीराधा अपना सांनिध्य प्रदान कर देती हैं। गोलोकमें सदा निवास करनेवाली भगवती श्रीराधा किसी कारणसे वृन्दावनमें पधारीं। यहाँ कहे हुए सम्पूर्ण मन्त्रोंकी वर्ण-संख्या विधानके अनुसार होनी चाहिये। इसे पुरश्चरण कहा गया है। इसमें मन्त्रका दशांश हवन करना चाहिये। दूध, मधु और घृत आदि स्वादिष्ट पदार्थोंसे युक्त तिलोंद्वारा भक्तिसे सम्पन्न होकर हवन करे।

नारदजीने कहा—मुने ! अब आप सम्यक् प्रकारसे स्तोत्र सुनानेकी कृपा करें, जिससे भगवती श्रीराधा प्रसन्न हो जाती हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—भगवती परमेशानी ! तुम रासमण्डलमें विराजमान रहती हो। तुम्हें नमस्कार है। रासेश्वरि ! भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं,

तुम्हें नमस्कार है। करुणार्णवे ! तुम त्रिलोककी जननी हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करो। ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता तुम्हारे चरणकमलोंकी उपासना करते हैं। जगदम्बे ! तुम सरस्वती, सावित्री, शंकरी, गङ्गा, पद्मावती और षष्ठी, मङ्गलचण्डिका—इन रूपोंसे विराजती हो। तुम्हें नमस्कार है। तुलसीरूपे ! तुम्हें नमस्कार है। लक्ष्मीस्वरूपिणी ! तुम्हें नमस्कार है। भगवती दुर्गे ! तुम्हें नमस्कार है। सर्वरूपिणी ! तुम्हें नमस्कार है। जननी ! तुम मूलप्रकृतिस्वरूपा एवं करुणाकी सागर हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं, अतः तुम इस संसार-सागरसे हमारा उद्धार करनेकी कृपा करो।

जो पुरुष त्रिकालसंध्याके समय भगवती श्रीराधाका स्मरण करते हुए उनके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये कभी कोई भी वस्तु किञ्चिन्मात्र भी दुर्लभ नहीं हो सकती। आयु समाप्त होनेपर शरीरका त्यागकर वह बड़भागी पुरुष गोलोकमें जा रासमण्डलमें नित्य स्थान पाता है। यह परम रहस्य जिस-किसीके सामने नहीं कहना चाहिये* ।

विप्रवर ! अब भगवती श्रीदुर्गाकी पूजाका विधान सुनो, जिसके श्रवणमात्रसे घोर विपत्तियाँ स्वयं भाग जाती हैं। जो इन भगवती दुर्गाकी उपासना नहीं करता हो, ऐसा तो इस जगत्में कोई है ही नहीं; क्योंकि वे सबकी उपास्या, सबकी जननी, शैवी एवं शक्ति देवी बड़ी ही अद्भुत हैं। ये भगवती दुर्गा सबकी बुद्धिकी अधिदेवी हैं, अन्तर्यामीरूपसे सबके भीतर इनका वास रहता है। घोर संकटसे रक्षा करनेके कारण जगत्में ये दुर्गा नामसे प्रसिद्ध हैं। शैव और वैष्णव पुरुषोंद्वारा निरन्तर इनकी उपासना होती है। इन मूलप्रकृति श्रीदुर्गादेवीके सत्प्रयाससे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं। अब इनके उत्तम नवाक्षर-मन्त्रका वर्णन करता हूँ। सरस्वती बीज (ऐं), भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं)—इन तीनों बीजोंका आदिमें क्रमशः प्रयोग करके 'चामुण्डायै' इस पदको लगाकर, फिर 'विच्चे' यह दो अक्षर जोड़ देना चाहिये, (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) यही मनुप्रोक्त नवाक्षर-मन्त्र है। उपासकोंके लिये यह कल्पवृक्षके समान है। इस नवार्ण-मन्त्रके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन ऋषि कहे जाते हैं। गायत्री, उष्णिग् और त्रिष्टुप्—ये तीन छन्द हैं। महाकाली, महालक्ष्मी

---

* नारायण उवाच

नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि। रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये॥
नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे। ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे॥
नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शंकरि। गङ्गापद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके॥
नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि। नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि॥
मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम्। संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु॥
इदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेद् राधां स्मरन्नरः। न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचिच्च भविष्यति॥
देहान्ते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमण्डले। इदं रहस्यं परमं न चाख्येयं तु कस्यचित्॥
(९।५०।४६—५२)

श्रीदुर्गायन्त्रम्
पूर्व
वज्रसंयुताय
इन्द्राय नमः
गणेशाय नमः
योगिनीभ्यो नमः
ब्राह्म्यै नमः
माहेश्वर्यै नमः
चामुण्डायै नमः
सरस्वतीसहिताय
पद्मजाय नमः
नन्दजायै नमः
श्रियासहिताय
कौमार्यै नमः
दक्षिण
दण्डसंयुताय
यमाय नमः
उत्तर
गदासंयुताय
कुबेराय नमः
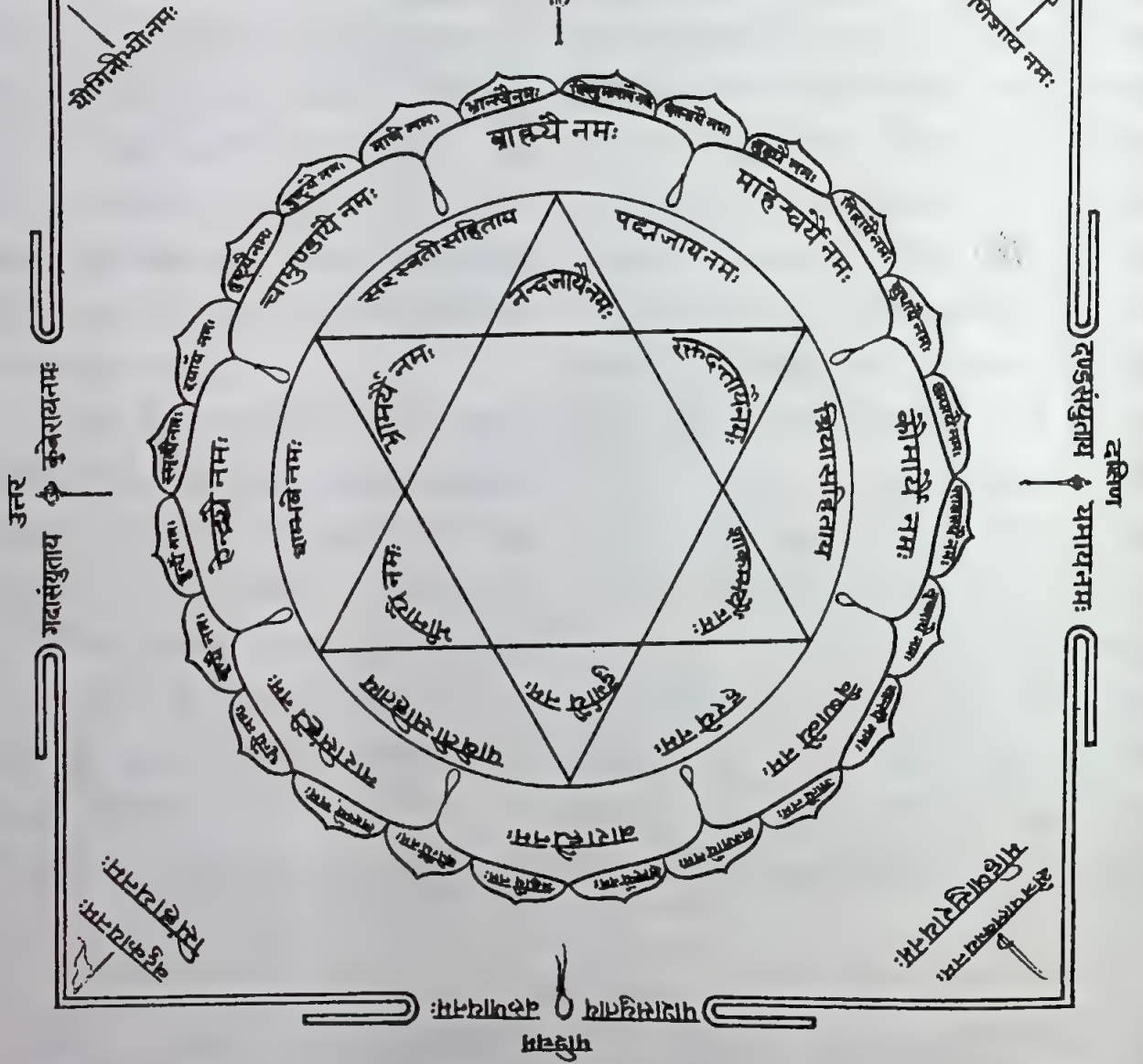
और महासरस्वती देवता हैं तथा रक्तदन्तिका, दुर्गा एवं भ्रामरी बीज हैं। नन्दा, शाकम्भरी और भीमा शक्तियाँ कही गयी हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका प्रयोग किया जाता है। ऐं ह्रीं क्लीं—तीन बीज-मन्त्र, चामुण्डायै ये चार अक्षर तथा विच्चेमें दो अक्षर—ये ही मन्त्रके अङ्ग हैं। प्रत्येकके साथ नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्—ये छः जातिसंज्ञक वर्ण लगाकर शिखा, दोनों नेत्र, दोनों कान, नासिका, मुख और गुदा आदि स्थानोंमें इस मन्त्रके वर्णोंका न्यास करना चाहिये। ध्यान इस प्रकार करे—

(महाकालीका ध्यान) तीन नेत्रोंसे शोभा पानेवाली भगवती महाकालीकी मैं उपासना करता हूँ। वे अपने हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शङ्ख धारण करती हैं। वे समस्त अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके शरीरकी कान्ति नीलमणिके समान है तथा वे दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं। कमलासन ब्रह्माजीने मधु और कैटभका वध करनेके लिये इन महाकालीकी उपासना की थी। इस प्रकार कामबीजस्वरूपिणी भगवती महाकालीका ध्यान करना चाहिये।

(महालक्ष्मीका ध्यान—) जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, घण्टा, मधुपात्र, त्रिशूल, पाश और सुदर्शन चक्र धारण करती हैं, जिनका वर्ण अरुण है तथा जो लाल कमलपर विराजमान हैं, उन महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मीका मैं भजन करता हूँ।

(महासरस्वतीका ध्यान—) जो अपने करकमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, कुन्दके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो शुम्भ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं, वाणी बीज जिनका स्वरूप है तथा जो सच्चिदानन्दमय विग्रहसे सम्पन्न हैं, उन भगवती महासरस्वतीका मैं ध्यान करता हूँ।

प्राज्ञ! अब यन्त्र बतलाता हूँ, सुनो। छः कोणसे युक्त त्रिकोण यन्त्र होना चाहिये। चारों ओर अष्टदल कमल हो। कमलमें चौबीस पंखुड़ियाँ होनी चाहिये। वह भूगृहसे युक्त हो। यों यन्त्रके विषयमें चिन्तन करे। शालग्राम, कलश, यन्त्र, प्रतिमा, बाणचिह्न अथवा सूर्यमें एकनिष्ठ होकर भगवतीकी भावना करके पूजा करे। जया एवं विजया आदि शक्तियोंसे सम्पन्न पीठपर देवीकी अर्चना करना श्रेष्ठ माना गया है। यन्त्रके पूर्वकोणमें सरस्वतीसहित ब्रह्मा, नैर्ऋत्यकोणमें लक्ष्मीसहित श्रीहरि तथा वायव्य-कोणमें पार्वतीसहित शम्भुकी पूजा करनी चाहिये। देवीके उत्तर सिंहकी तथा बायीं ओर महिषासुरकी पूजाका नियम है। छः कोणोंमें क्रमशः नन्दजा, रक्तदन्ता, शाकम्भरी, शिवा, दुर्गा, भीमा और भ्रामरीकी पूजा होनी चाहिये! आठ दलोंमें ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री और चामुण्डाकी अर्चना करें। इसके बाद चौबीस पंखुड़ियोंमें पूर्वके क्रमसे विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, पराशक्ति, तृष्णा, शान्ति, जाति, लज्जा, क्षान्ति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, माता और भ्रान्ति—इन देवियोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर भूगृह-कोणमें गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक और योगिनीकी भी बुद्धिमान् पुरुष पूजा करे। इसके बाहर वज्र

आदि आयुधोंसहित इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा करे। इसी रीतिसे देवीकी सावरण (परिकरों-सहित) पूजा होती है। भगवती श्रीदुर्गाके प्रसन्न होनेके लिये भाँति-भाँतिके राजोपचार उन्हें अर्पण किये जायँ। तत्पश्चात् अर्थपर ध्यान रखते हुए नवार्णमन्त्रका जप करे। इसके बाद भगवतीके सामने सप्तशती-स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इस स्तोत्रके समान त्रिलोकीमें दूसरा कोई स्तोत्र नहीं है। पुरुषको चाहिये कि प्रतिदिन इसी स्तोत्रसे भगवती श्रीदुर्गाको प्रसन्न करनेमें लगे रहें। ऐसा करनेवाला पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका आलय बन जाता है।

विप्र! यह भगवती श्रीदुर्गाके पूजनका प्रकार मैं तुमसे बता चुका। इसके प्रभावसे पुरुष कृतार्थ हो जाते हैं। सम्पूर्ण देवता, भगवान् श्रीहरि, ब्रह्मा, प्रमुख मनुगण, ज्ञाननिष्ठ मुनि, आश्रमवासी योगी तथा लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब-के-सब भगवती श्रीदुर्गाका ध्यान करते हैं। उसी समय जन्मकी सफलता समझी जाती है जब भगवती श्रीदुर्गाका स्मरण हो जाय। चौदह मनुओंने भगवती श्रीदुर्गाके चरणोंका ध्यान करके ही मनुपदको प्राप्त किया है। इन श्रीदुर्गाकी कृपासे ही देवता अपने-अपने स्थानपर विराजमान रहते हैं। मुने! यह सम्पूर्ण उपाख्यान परम रहस्यमय है। इसमें देवी प्रकृतिके पाँच मुख्य स्वरूपों तथा उनके अंशोंका वर्णन हुआ है। इसके नित्य श्रवण करनेसे मनुष्य चार प्रकारके पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है। मेरी यह वाणी सत्य है, सत्य है। इस रहस्यके प्रभावसे संतानहीन पुत्रवान् तथा विद्याका अभिलाषी विद्वान् बन जाता है। यही नहीं, जिसको जिस-जिस वस्तुकी कामना होती है, वह इस रहस्य-श्रवणके फलस्वरूप उस-उस मनोरथको प्राप्त कर लेता है। नवरात्रमें मनको सावधान करके भगवती दुर्गाके सम्मुख इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इससे जगद्धात्री भगवती जगदम्बा अवश्य ही संतुष्ट हो जाती हैं। जो पुरुष प्रतिदिन इस सप्तशती-स्तोत्रके एक अध्यायका भी पाठ करता है तो भगवती उसके अनुकूल हो जाती हैं, क्योंकि यह सप्तशती-स्तोत्र देवीको प्रसन्न करनेका परम साधन है। इस विषयमें यथाविधि शकुनकी परीक्षा करनी चाहिये। कुमारीके दिव्य हस्त अथवा वटुकके कर-कमलसे यह परीक्षा होती है। अपने मनोरथके निमित्त संकल्प करके पुस्तककी अर्चना करनेका विधान है। तत्पश्चात् जगदीश्वरी देवी जगदम्बाको पुनः-पुनः प्रणाम करे। उस समय एक कन्याको भलीभाँति स्नान कराकर यहाँ विराजमान करे। उसकी सविधि पूजा करके उसे स्वर्णशलाका अर्पण करे। यदि वह कन्या प्रसन्न हो तो भगवतीकी प्रसन्नता, अप्रसन्न हो तो भगवतीकी अप्रसन्नता तथा उदासीन हो तो भगवतीकी उदासीनता समझनी चाहिये। देवीकी प्रसन्नता, अप्रसन्नता अथवा उदासीनताके अनुसार कर्मका शुभ या अशुभ फल होना निश्चित है।

(अध्याय ५०)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका नवाँ स्कन्ध समाप्त

══★══

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## दसवाँ स्कन्ध

### स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना और वरप्राप्ति

नारदजीने कहा—सबका पालन करनेमें तत्पर भगवान् नारायण! अब जिन-जिन मन्वन्तरोंमें देवी जिस-जिस स्वरूपसे पधारी हैं, जिस-जिस आकारसे उन महेश्वरीका जैसा प्रादुर्भाव हुआ है, जगदम्बाके माहात्म्यसे संयुक्त उन सम्पूर्ण प्रसङ्गोंका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। साथ ही जैसे और जिस-जिस प्रकारसे भगवतीकी पूजा और स्तुति हुई है और उन भक्तवत्सला देवीने भक्तोंका जिस-जिस प्रकारसे मनोरथ पूर्ण किया है, वह सब चरित्र भी मैं सुनना चाहता हूँ। कृपासिन्धो! आप उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—महर्षे! तुम पापोंका संहार करनेवाला देवीमाहात्म्य सुनो। इस माहात्म्य-श्रवणके प्रभावसे भक्तोंके हृदयमें श्रद्धाका प्रादुर्भाव होता है और यह महान् सम्पत्तिका परम साधन है। सर्वप्रथम जगत्के आदिकारण महान् तेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी चक्रपाणि देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी नाभि-कमलसे प्रकट हुए। महामते! उस समय ब्रह्माजी अपने चार मुखोंसे शोभा पा रहे थे। उन्होंने स्वायम्भुव मनुको अपने मानसपुत्रके रूपमें प्रकट किया। फिर ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको मनसे ही प्रकट किया और उसे स्वायम्भुव मनुकी पत्नी बनाया। तब मनुजी क्षीरसागरके परम पावन तटपर ही महान् भाग्यफल प्रदान करनेवाली देवीकी आराधना करने लगे। महाराज स्वायम्भुव मनुने देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा की। उन्होंने एकान्तमें रहकर देवीका स्मरण करते हुए उनके वाग्भव मन्त्रका जप आरम्भ किया। वे निराहार रहते थे, इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं, वे व्रत और नियमका पालन करते थे। तदनन्तर वे पृथ्वीपर एक पगसे खड़े होकर निरन्तर तपस्या करते रहे। उन महात्माने काम और क्रोधपर विजय प्राप्त करके सौ वर्षोंतक तप किया। अपने हृदयमें भगवती जगदम्बाके चरणोंका चिन्तन करते हुए वे ऐसे प्रतीत होने लगे थे, मानो कोई स्थावर प्राणी हो; तब उनकी उस तपस्यासे जगन्मयी भगवती जगदम्बा प्रसन्न होकर प्रकट हो गयीं। उन्होंने यह दिव्य वचन कहा—'राजन्! तुम वर माँगो।' उस समय देवीके आनन्दप्रद वचनोंको सुनकर महाराज स्वायम्भुव मनुने
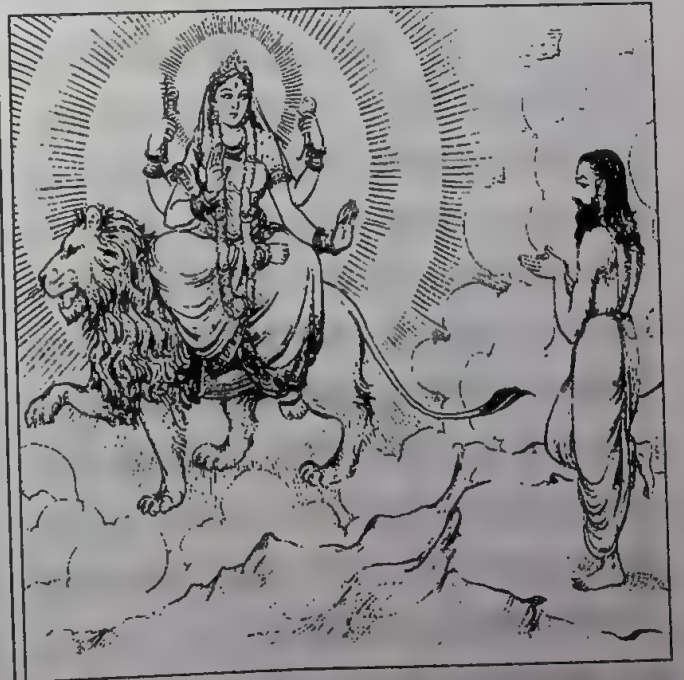
अपने हृदयगत तथा देवताओंके लिये परम दुर्लभ श्रेष्ठ वरकी याचना की।

स्वायम्भुव मनुने कहा—विशाल नेत्रोंसे शोभा पानेवाली देवी ! तुम्हारी जय हो ! समस्त प्राणियोंके भीतर निवास करनेवाली देवी ! तुम्हारी जय हो ! तुम परम मान्य, पूज्य, जगत्‌को धारण करनेवाली तथा सम्पूर्ण मङ्गलोंके लिये भी परममङ्गल हो। तुम्हारी भौंहोंके संकेतमात्रसे पद्मयोनि ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि, भगवान् विष्णु पालन तथा रुद्र संहारका कार्य सम्पन्न करते हैं। तुम्हारी ही आज्ञासे शचीपति इन्द्र त्रिलोकीपर शासन करते हैं। तुम्हारे आज्ञानुसार यमराज दण्ड लेकर प्राणियोंको शिक्षा प्रदान करते हैं। जलचर प्राणियोंके स्वामी वरुण हम-जैसे व्यक्तियोंके पालनमें तत्पर हैं। कुबेर सम्पत्तियोंके अविनाशी अधिपति बने हैं। अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशान और शेषनाग—ये सब तुम्हारे ही अंश हैं और सबमें तुम्हारी ही शक्ति व्याप्त है। तथापि देवी ! यदि अब तुम मुझे कुछ वर देना चाहती हो तो शिवे ! मेरी नम्रतापूर्वक यही प्रार्थना है कि सृष्टिके कार्यमें किसी प्रकारका विघ्न न उपस्थित हो। जो कोई पुरुष इस वाग्भव मन्त्रकी उपासना करे, उसके कार्योंके सिद्ध होनेमें किंचिन्मात्र विलम्ब न हो। देवी ! तुम्हारे इस संवादको जो पढ़ें-सुनें, उन्हें भुक्ति और मुक्ति सुलभ हो जायँ। शिवे ! तुम्हारे उपासकको पूर्वजन्मोंकी स्मृति बनी रहे और वह भाषण करनेमें परम प्रवीण हो। उसे ज्ञान-सिद्धि और कर्मयोगकी सिद्धि भी प्राप्त हो जाय तथा पुत्र, पौत्र और समृद्धिसे तुम्हारा उपासक सदा सम्पन्न रहे, यही मेरी प्रार्थना है। (अध्याय १)

☆

## भगवतीका विन्ध्यगिरिपर पधारना, विन्ध्यके प्रति नारदजीके द्वारा सुमेरुकी महिमाका कथन, विन्ध्यके द्वारा सूर्यका मार्गावरोध, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास गमन, भगवान् विष्णुकी सम्मतिसे देवताओंका काशीमें अगस्त्यमुनिकी शरणमें जाना और अगस्त्यजीकी कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना

श्रीदेवीने कहा—भूमिपाल ! महाबाहो ! मनुजाधिप ! तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार सब कुछ होगा। प्रधान दैत्योंका संहार करना मेरा स्वाभाविक गुण है। मेरी शक्ति कभी विफल नहीं होती। तुमने जो वाग्भव मन्त्रका जप किया है और तपस्या की है, इससे मैं अवश्य ही तुमपर परम संतुष्ट हूँ ! तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा। वंशकी वृद्धि करनेवाले पुत्र उत्पन्न होंगे। वत्स ! मुझमें तुम्हारी दृढ़ भक्ति होगी और अन्तमें तुम परम पदको प्राप्त करोगे।

इस प्रकार महात्मा स्वायम्भुव मनुको वर देकर भगवती महादेवी मनुके देखते-ही-देखते विन्ध्याचल पर्वतपर चली गयीं। यह वही विन्ध्याचल है, जो सूर्यके मार्गको रोकनेके लिये आकाशतक बढ़ा चला जा रहा था और अगस्त्यजी उसे रोकनेके लिये प्रस्तुत थे। मुनिवर ! वर देनेवाली वे ही भगवती विन्ध्यवासिनी हैं, जो भगवान् श्रीकृष्णकी अनुजा थीं। सम्पूर्ण प्राणियोंसे पूज्या होकर वे उस पर्वतकी शोभा बढ़ाने लगीं।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! वह विन्ध्याचल कौन है ? क्यों वह आकाशतक फैल गया

था ? उसने क्यों सूर्यके मार्गको रोकनेका दुष्प्रयत्न किया था ? और उस महान् उन्नत पर्वतको अगस्त्यजीने ही क्यों आगे नहीं बढ़ने दिया ? यह सब प्रसङ्ग कहनेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! सम्पूर्ण पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल नामका पर्वत था। उसपर बड़े-बड़े वन थे। अनेक वृक्षोंसे वह घिरा था। पुष्पोंसे लदी हुई लताओं और वल्लरियोंने उसे आच्छादित कर रखा था। मृग, वराह, महिष, व्याघ्र, शार्दूल, वानर, खरगोश, भालू और शृगाल—ये अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट एवं अत्यन्त चञ्चल वनपशु उस पर्वतपर चारों ओर सदा घूमते रहते थे। नदियों और नदोंके जलसे वह व्याप्त था। देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा तथा सबको मनोऽभिलषित फल देनेवाले वृक्ष उस विन्ध्यगिरिको सुशोभित कर रहे थे। एक समयकी बात है—देवर्षि नारदजी अत्यन्त प्रसन्न होकर इच्छापूर्वक भूमण्डलपर विचरते हुए उस सर्वगुणसम्पन्न विन्ध्याचल पर्वतपर पहुँच गये। देवर्षि नारदजीको देखकर बुद्धिमान् विन्ध्याचल तुरंत उठ गया और उसने मुनिको उत्तम आसनपर बैठाकर उन्हें पाद्य और अर्घ्य अर्पण किया। जब सुखपूर्वक प्रसन्न होकर नारदजी बैठ गये, तब पर्वतराजने उनसे कहा।

विन्ध्याचलने पूछा—देवर्षे ! कहिये, आपका श्रेष्ठ आगमन कहाँसे हुआ है ? आपके पधारनेसे मेरा गृह पवित्र हो गया, जैसे सूर्य जगत्के कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं, वैसे ही आपका भ्रमण करना देवताओंको अभय प्रदान करनेके लिये ही है। नारदजी ! आप अपने मनकी बात मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

नारदजी बोले—पर्वतराज ! इस समय मैं सुमेरुगिरिसे आ रहा हूँ। वहाँ मैंने इन्द्र, अग्नि, यम और वरुणके बहुत-से लोक देखे हैं। सम्पूर्ण लोकपालोंके असंख्य भवन चारों ओर

मुझे दृष्टिगोचर हुए हैं। पर्वतराज विन्ध्य ! वहाँ मैंने नाना प्रकारके भोग प्रदान करनेवाले देवताओंको भी देखा है।

तदनन्तर नारदजीने हिमालय तथा सुमेरु पर्वतकी बड़ी महिमा तथा प्रशंसा की; उसे सुनकर विन्ध्यके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! विन्ध्यगिरिसे मिलकर परम स्वतन्त्र देवर्षि नारदजी तो ब्रह्मलोक पधार गये; परंतु विन्ध्यका मन चिन्तासे व्याप्त हो गया। कामना और ईर्ष्यासे पापबुद्धि उत्पन्न होती है। अतः विन्ध्यके मनमें दूषित बुद्धिका उदय हो गया। उसने सोचा—'ये सूर्य ग्रहों और नक्षत्रोंसे सम्पन्न होकर सुमेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हैं। इसी कारण यह पर्वत अपनेको सर्वश्रेष्ठ मानता है। अब मैं अपने ऊँचे शृङ्गोंसे इस सूर्यके मार्गको रोक दूँगा; तब देखूँगा कि रुके हुए ये सूर्य किस प्रकार उसकी परिक्रमा करते हैं ? इस प्रकार जब मैं सूर्यका मार्ग रोक दूँगा, तब निश्चय है कि सुमेरुपर्वतका सारा अभिमान चूर-चूर हो जायगा।'

यों विचार करके विन्ध्यगिरिने अपने

शिखरोंको आकाशतक फैलाया। वह महान् उत्तुङ्ग शृङ्गोंसे सूर्यके सम्पूर्ण मार्गोंको रोककर प्रतीक्षा करने लगा कि कब सूर्योदय हो और कब मैं उसे रोकूँ ? इस प्रकार विचार करते-करते रात्रि व्यतीत हो गयी और विमल प्रभात-काल आया। सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकार-को दूर करने लगे। उदयाचलपर उदय होनेके लिये उनकी झलक मिलने लगी। उनकी शुभ किरणोंसे आकाश प्रकाशित हो गया, कमल खिलने लगे और कुमुदिनी संकुचित होने लगी। सम्पूर्ण प्राणी अपने-अपने कार्योंमें तत्पर हो गये। पराह्ण, अपराह्ण और मध्याह्नके विभागसे देवताओंके लिये हव्य, कव्य एवं भूतबलि आदिका संवर्धन करते हुए प्रकाशमान सूर्य क्रमशः वियोगिनी प्राची और अग्निदिशाको आश्वासन देकर दक्षिण दिशाके लिये प्रस्थित हुए। त्यागी हुई दिशाएँ इस प्रकार वियोगकी अग्निसे संतप्त हो उठीं, मानो विरहसे आतुर कामिनियाँ हों; किंतु सूर्य आगे नहीं बढ़ सके। उन्हें पता लगा कि सुमेरुसे स्पर्धा करके विन्ध्य-पर्वतने उनके मार्गको रोक दिया है। सूर्य बड़ी चिन्ता करने लगे, परंतु उन्हें मार्ग नहीं मिला।

इस प्रकार जब सूर्य रुक गये, तब जगत् स्वाहा और स्वधाकारसे रहित हो गया। पश्चिम और दक्षिणके प्राणी निद्रामें व्याप्त थे; क्योंकि उनके लिये अभी रात्रि ही चल रही थी। ऐसे ही पूर्व और उत्तरके प्राणी सूर्यके तीक्ष्ण तापसे दग्ध हो रहे थे। उस समय कितने ही प्राणी मृत्युको प्राप्त हो गये, कितने ही नष्ट हुए और कितनोंके अङ्ग-भङ्ग हो गये। इस प्रकार प्रजाके लिये असमयमें ही विनाशका काल उपस्थित हो गया। समस्त जगत्में हाहाकार मच गया। पितरोंके सब श्राद्ध-तर्पण बंद हो गये।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार जगत्के उपद्रवग्रस्त हो जानेपर इन्द्र प्रभृति सम्पूर्ण देवता ब्रह्माजीको अपना प्रधान बनाकर भगवान् शंकरकी शरणमें गये।

तदनन्तर भगवान् शंकरकी सम्मतिसे इन्द्र और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता रुद्रको आगे करके काँपते हुए भगवान् विष्णुके पास वैकुण्ठलोकमें पहुँचे।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! देवताओंने वैकुण्ठमें जाकर लक्ष्मीकान्त देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिके दर्शन किये। उस समय कमलके समान नेत्रवाले जगद्गुरु भगवान् विष्णु अपनी दिव्यशक्ति महालक्ष्मीके साथ शोभा पा रहे थे। देवताओंने गद्गद वाणीसे सत्कार करते हुए भक्तिपूर्वक स्तोत्र पढ़कर श्रीहरिकी स्तुति की।

देवता बोले—विष्णो ! रमेश ! आपकी जय हो। आप आद्य महापुरुष एवं सबके पूर्वज हैं। दैत्यारे ! आप कामदेवके पिता, अखिल कामनाओंके फल प्रदान करनेवाले तथा गोविन्द नामसे प्रसिद्ध हैं। आप महावराह एवं महायज्ञका रूप धारण कर चुके हैं। महाविष्णो ! आप ध्रुवेश तथा जगत्की उत्पत्तिके आदिकारण

हैं। आपने मत्स्यावतार धारण करके वेदोंका उद्धार किया है। जगत्प्रभो ! सत्यव्रतमें अटल रहनेवाले मत्स्यरूपधारी आप श्रीहरिके लिये नमस्कार है। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाले दयासागर दैत्यारे ! आपकी जय हो। अमृतकी प्राप्ति करानेवाले प्रभो ! आप कूर्मरूपधारीको नमस्कार है। आदिदैत्य हिरण्याक्षका वध करनेके लिये सूकररूपधारी आप भगवान्‌की जय हो। पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये उद्योगशील आप भगवान् वाराहको नमस्कार है। जिन्होंने नृसिंहावतार धारण करके महान् दैत्य हिरण्यकशिपुको नखोंसे विदीर्ण कर दिया, उन भगवान् नृसिंहके लिये नमस्कार है। राजा बलि त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित था। आपने वामनरूप धारण करके उसकी सम्पत्ति छीन ली थी। उन वामनरूपधारी आप भगवान्‌को नमस्कार है। आप जमदग्नि मुनिके यहाँ रेणुकाके गर्भसे प्रकट हो चुके हैं। दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करना आपका उद्देश्य था। कार्तवीर्यसे आपकी घोर शत्रुता थी। आपके उस परशुरामावतारको नमस्कार है। पुलस्त्य-नन्दन दुराचारी रावणके सिर काटनेमें परम कुशल तथा अनन्त पराक्रमी आप भगवान् दाशरथि रामको नमस्कार है। प्रभो ! कंस और दुर्योधन आदि राक्षस राजाओंके लिये लाञ्छन-स्वरूप थे। उनके भारसे पृथ्वी दबी जा रही थी। आप महाप्रभुने उन दुष्टोंका संहार कर डाला। आपके द्वारा धर्मकी स्थापना हुई और पापका अन्त हुआ। विभो ! उन आप भगवान् श्रीकृष्णस्वरूपको नमस्कार है। भगवन् ! निन्दित यज्ञका उच्छेद करने तथा पशुहिंसा रोकनेके लिये आप बौद्धावतार धारण कर चुके हैं। उन बुद्धरूपधारी आप भगवान्‌को नमस्कार है। प्रभो ! अखिल जगत् म्लेच्छमय बन गया था। दुराचारी नरेश प्रजाओंको सता रहे थे। ऐसी स्थितिमें आप कल्किरूपसे जगत्‌में पधारे थे; उन देवाधिदेव आप प्रभुको नमस्कार है। आपके ये दस अवतार भक्तोंकी रक्षा तथा दुष्ट दैत्योंका संहार करनेके लिये ही हुए हैं। अतएव आप सर्वदुःखहारी कहलाते हैं। भक्तोंका संकट दूर करनेके लिये ही आपने मोहिनी नामक स्त्री तथा जल-जन्तुओं (हंस आदि)-का रूप धारण किया था, आपकी जय हो। प्रभो ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन दयासागर हो सकता है ?

इस प्रकार देवाधिदेव पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करके उन सभी प्रधान देवताओंने भक्तिपूर्वक भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनकी स्तुति सुनकर गदा धारण करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम प्रसन्न हो गये। हर्ष प्रकट करते हुए उन्होंने उपस्थित समस्त देवताओंसे कहा—

श्रीभगवान् बोले—देवताओ ! मैं तुम्हारी

स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। अब तुम्हें मनमें संताप नहीं करना चाहिये। मैं तुम्हारे अत्यन्त दुःसह दुःखको दूर कर दूँगा।* देवताओ ! तुम मुझसे परम दुर्लभ वर माँग लो। इस स्तुतिके फलस्वरूप मैं परम प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हूँ। देवताओ ! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस स्तवनका पाठ करेगा, उसकी मेरे प्रति अपार श्रद्धा होगी और शोक कभी भी उसका स्पर्श नहीं कर सकेगा। दरिद्रता उसके घरपर आक्रमण न कर सकेगी। उसे किसी प्रकारकी व्याधि नहीं होगी। वेताल, ग्रह और ब्रह्मराक्षस उसे नहीं सता सकेंगे। वात, पित्त और कफ-सम्बन्धी बीमारियोंसे वह ग्रसित न होगा। कभी भी उसकी अकालमृत्यु नहीं होगी। उसकी संतान दीर्घजीवी होगी। इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषके गृहमें सुख आदि भोगकी सभी सामग्रियाँ सदा उपस्थित रहेंगी। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है—यह स्तोत्र सम्पूर्ण अर्थोंका परम साधक है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्योंके लिये भुक्ति और मुक्ति सुलभ रहेगी। देवताओ ! तुम्हें जो दुःख हो, उसे संदेह छोड़कर बतलाओ। मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेके लिये प्रस्तुत हूँ।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके वचन सुनकर

---

* देवा ऊचुः

जय विष्णो रमेशाद्य महापुरुष पूर्वज। दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद॥
महावराह गोविन्द महायज्ञस्वरूपक। महाविष्णो ध्रुवेशाद्य जगदुत्पत्तिकारण॥
मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक। सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः॥
जयाकूपारदैत्यारे सुरकार्यसमर्थक। अमृताप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः॥
जयादिदैत्यनाशार्थमादिशूकररूपधृक्। मह्युद्धारकृतोद्योगकोलरूपाय ते नमः॥
नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः। करजैर्वरदृप्ताङ्गं तस्मै नृहरये नमः॥
वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम्। बलिं संछलयामास तस्मै वामनरूपिणे॥
दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे। रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः॥
दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे। श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनन्तक्रमाय च॥
कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलाञ्छनैः। भाराक्रान्तां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः॥
धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः। तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो॥
दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये। बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः॥
म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते। कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः॥
दशावतारास्ते देव भक्तानां रक्षणाय वै। दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात् त्वं सर्वदुःखहृत्॥
जय भक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु। रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः॥
इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम्। प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टाङ्गं विबुधर्षभाः॥
तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः। उवाच विबुधान् सर्वान् हर्षयन् श्रीगदाधरः॥

श्रीभगवानुवाच

प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाहं देवास्तापं विमुञ्चथ। भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुस्सहम्॥

(१०।५।२—२०)

देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे पुनः भगवान् वृषाकपिसे कहने लगे।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् लक्ष्मीकान्त श्रीहरिकी वाणीने देवताओंको परम आश्वस्त कर दिया। वे सब अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान्‌से यों कहने लगे।

देवता बोले—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले देवाधिदेव भगवान् महाविष्णो! इस समय विन्ध्य-पर्वत सूर्यके मार्गको रोककर खड़ा है। महाविभो! उसके द्वारा सूर्यके मार्गका अवरोध हो जानेसे हमें भाग मिलना दुर्लभ हो गया है। अतः अब हम क्या करें और कहाँ जायँ?

भगवान् श्रीहरिने कहा—महानुभाव देवताओ! जो अखिल जगत्‌की जननी तथा कुलकी अभिवृद्धि करनेवाली भगवती आद्या हैं, उनके उपासक परम तेजस्वी अगस्त्यमुनि इस समय काशीमें विराजमान हैं। विन्ध्यपर्वतके उत्कर्षको वे ही रोक सकेंगे। देवताओ! काशी कल्याण प्रदान करनेके लिये सर्वोत्तम स्थान है। तुम वहाँ जाओ और परम प्रतापी द्विजवर अगस्त्यको प्रसन्न करके उनसे इस विषयमें याचना करो।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार भगवान् विष्णुसे आदेश प्राप्त करके वे प्रधान देवता संदेहरहित होकर नम्रतापूर्वक काशीपुरीको गये। मणिकर्णिका घाटपर भक्तिके साथ उन्होंने गङ्गामें स्नान किया। तत्पश्चात् वे मुनिवर अगस्त्यके परम पवित्र आश्रमपर आये। मुनिवर अगस्त्य अपने पवित्र आश्रममें विराजित थे। समस्त देवता दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें गिरकर बार-बार प्रणाम करने लगे।

देवताओंने कहा—भूदेव! आप द्विजगणोंके स्वामी, मान्य एवं पूज्य हैं। आपने वातापीके बलको नष्ट कर दिया है। आप घटसे प्रकट हुए हैं; आपके लिये नमस्कार है। भगवन् अगस्त्य! आप लोपामुद्राके प्राणनाथ, मित्रावरुणसे प्रकट, सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार तथा शास्त्रयोनि हैं। आपके लिये नमस्कार है। जिनके उदय होनेपर नदियोंके जल स्वच्छ एवं प्रसन्न हो जाते हैं, उन आप द्विजवर अगस्त्यके लिये हमारा प्रणाम स्वीकार हो। काशसंज्ञक पुष्पको विकसित करनेवाले, लंकागमनके अभिलाषी भगवान् रामके परम प्रिय, जटाकलापसे सम्पन्न एवं शिष्योंसे परम सुशोभित आप वीरवर अगस्त्यजी हमारा प्रणाम स्वीकार करें। महामुने! सभी देवता आपकी स्तुति करते हैं, आपकी जय हो। गुणनिधे! आप सबसे श्रेष्ठ एवं आदरणीय हैं। आप सपत्नीक द्विजवरको नमस्कार है। स्वामिन्! आप प्रसन्न हो जायँ, हम आपकी शरणमें आये हैं। परमद्युते! दुस्तर विन्ध्यद्वारा संतप्त होकर हम महान् क्लेशका अनुभव कर रहे हैं।

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम धार्मिक द्विजवर अगस्त्यमुनि हँसते हुए प्रसन्नतापूर्ण शब्दोंमें कहने लगे।

मुनिवर अगस्त्यजी बोले—देवताओ! आपलोग परम श्रेष्ठ पुरुष हैं। त्रिलोक आपका शासन मानता है। आप सभी महानुभाव लोकपाल हैं। निग्रह और अनुग्रह करनेमें आपकी पूर्ण क्षमता है। जो अमरावतीपुरीके स्वामी, वज्र-जैसे आयुधको धारण करनेवाले तथा मरुद्गणोंके नायक हैं, आठ प्रकारकी सिद्धियाँ जिनके द्वारपर विराजती हैं, वे ही ये शक्र हैं। निरन्तर हव्य एवं कव्य प्राप्त करनेवाले वैश्वानर एवं कृशानु नामसे विख्यात तथा सम्पूर्ण देवताओंके मुख-स्वरूप जो अग्नि हैं, उनके लिये यह कौन-सा दुष्कर कार्य है? देवताओ! जो

प्रतापी यम राक्षसगणोंके अधिपति हैं, जिन्हें सम्पूर्ण प्राणियोंके कर्मोंका साक्षी तथा शासक बनाया गया है तथा जो हाथमें दण्ड लेकर सदा व्यग्र रहते हैं, उन महाभागके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है? तथापि देवताओ! मेरी शक्तिसे सिद्ध होनेवाला जो भी कार्य हो, उसे आप कहें। मैं उसे पूर्ण करनेके लिये अवश्य प्रयत्न करूँगा।

मुनिवर अगस्त्यके ऐसे वचन सुनकर उन प्रधान देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास हो गया। वे अधीर होकर अपना अभिप्राय बताने लगे। वे बोले—'महर्षे! विन्ध्यपर्वतने सूर्यके मार्गको रोक लिया है, इससे त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया है। सभी प्राणी अचेत-जैसे हो गये हैं। मुने! आप अपनी तपस्याके प्रभावसे उस पर्वतकी वृद्धिको रोकनेकी कृपा कीजिये। अगस्त्यजी! आपके तेजसे वह अवश्य ही नम्र हो जायगा। हमारी यही प्रार्थना है।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! देवताओंकी उपर्युक्त बातें सुनकर द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनिने उनसे कहा—'मैं आपलोगोंका यह कार्य पूर्ण करूँगा!' जब कुम्भयोनि अगस्त्यजीने देवताओंका कार्य करना स्वीकार कर लिया तब उनके हर्षकी सीमा नहीं रही। मुनिके वाक्यपर निर्भर होकर वे अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

मुनि अगस्त्यजीको काशी छोड़कर जानेमें दुःख तो हुआ; परंतु वे भगवान् विश्वनाथके दर्शन, कालभैरवकी प्रार्थना और श्रीसाक्षी-विनायकको नमस्कार करके काशीसे बाहर निकल गये। सती लोपामुद्रा उनके साथ थीं। अपने तपरूपी विमानपर चढ़कर उन्होंने आधे निमेषमें ही मार्ग तय कर लिया। आगे जाकर देखा, विन्ध्यपर्वतने अत्यन्त ऊँचे होकर आकाशको रूँध रखा है। मुनिको सम्मुख उपस्थित देखकर विन्ध्य काँपने लगा। तदनन्तर वह अपने समस्त अभिमानका पूर्णरूपसे त्याग कर मुनिसे कुछ प्रार्थना करनेके विचारसे उनके सम्मुख पृथ्वीकी भाँति विनयावनत हो गया। भक्तिसे भावित होकर वह दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गया और मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा। उस समय नम्र शिखरवाले उस विन्ध्य नामक महान् पर्वतको इस रूपमें पड़े देखकर मुनिवर अगस्त्यजीके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने उससे कहा—'वत्स! तुम तबतक ऐसे ही लेटे रहो, जबतक कि मैं लौट न आऊँ। बेटा! मैं तुम्हारे शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ।' इस प्रकार कहकर मुनिवर अगस्त्यजी दक्षिण दिशाकी ओर जानेके लिये तैयार हो गये। वे विन्ध्यपर्वतके शिखरपर चढ़कर क्रमशः नीचे पृथ्वीपर उतर आये और

वहाँसे दक्षिणको चले। मार्गमें उन्हें श्रीशैलपर्वत दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने इसके मलयाचलपर जाकर अपना आश्रम बना लिया और सदाके लिये वहीं रहनेका निश्चय कर लिया। विन्ध्यपर जो देवी पधारी थीं, वे मनुके द्वारा पूजित हुईं।

शौनक ! वे ही देवी जगत्में विन्ध्यवासिनीके नामसे प्रसिद्ध हैं।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! शत्रुओंका संहार करनेवाला यह चरित्र परम पावन है। अगस्त्य और विन्ध्य-पर्वतके इस उपाख्यानके प्रभावसे पापोंका उच्छेद हो जाता है। भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करनेसे सकामी पुरुषोंके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने भक्तिपूर्वक देवीकी आराधना करके अपने मन्वन्तरभर पृथ्वीपर राज्य किया। सौम्य ! मन्वन्तरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह उपाख्यान तुम्हारे सामने मैंने कह सुनाया। यह भगवती श्रीदेवीका प्रथम चरित्र है; अब तुम्हें कौन प्रसङ्ग सुनाऊँ ? (अध्याय २—७)

☆

## स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामक मनुओंका वर्णन

शौनकजीने कहा—सूतजी ! आपने जैसे प्रथम मन्वन्तरका उपाख्यान सुनाया है, वैसे ही अन्य तेजस्वी मनुओंके प्रसङ्ग भी सुनानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शौनक ! इसी प्रकार आद्य स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनकर अन्य मनुओंका प्रादुर्भाव सुननेके विचारसे नारदजीने क्रमशः भगवान् नारायणसे पूछा था। वे परम ज्ञानी मुनि भगवतीके परम रहस्यको भलीभाँति जानते हैं।

नारदजीने कहा—सनातन प्रभो ! मुझे मनुओंका प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—महामुने ! अभी इन प्रथम स्वायम्भुव मनुकी कथा सुनायी है, जिन्होंने भगवतीकी आराधना करके निष्कण्टक राज्य भोगा था। उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो महातेजस्वी पुत्र हुए। राज्यका पालन करनेवाले उन दोनों मनुपुत्रोंकी भूमण्डलपर बड़ी ख्याति हुई। विद्वान् पुरुष स्वारोचिष मनुको द्वितीय मनु कहते हैं। ये अमित पराक्रमी श्रीमान् स्वारोचिष मनु प्रियव्रतके पुत्र हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंका प्रिय करनेवाले ये मनु यमुनाके तटपर रहकर सूखे पत्तोंके आहारपर तपस्या करने लगे। भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करने लगे। तात ! वनमें रहकर बारह वर्षोंतक तपस्या करनेके पश्चात् हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न देवी इनके सामने प्रकट हो गयीं। उस समय अपने उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उन देवेश्वरीने मनुद्वारा किये गये स्तवराजके प्रभावसे संतुष्ट होकर स्वारोचिष मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरका राजा बना दिया। उस समयसे ऐसी प्रथा ही प्रचलित हो गयी कि प्रायः सभी लोग भगवतीको जगद्धात्री और तारिणी मानकर उनकी उपासना करने लगे। इस प्रकार स्वारोचिष मनुने तारिणी-संज्ञक देवीकी आराधना करके सम्पूर्ण शत्रुओंसे रहित निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लिया। धर्मकी विधिवत् स्थापना की और अपनी प्रजाको पुत्रके समान मानकर वे उसकी रक्षा करने लगे। तदनन्तर अपने मन्वन्तर-कालपर्यन्त राज्य भोगकर वे स्वर्गको चले गये।

इसके बाद प्रियव्रतपुत्र श्रीमान् उत्तम तीसरे मनु हुए। वे गङ्गाके तटपर तपस्यामें संलग्न हो निरन्तर भगवती भुवनेश्वरीके मन्त्रका जप करने लगे। तीन वर्षोंतक उपासनाके पश्चात् उनपर भगवतीकी कृपा हुई। उन्होंने भक्तिपूर्ण मनसे उत्तम स्तोत्रका पाठ करके श्रीदेवीका स्तवन करनेके प्रसादस्वरूप निष्कण्टक राज्य तथा

दीर्घजीवी संतान प्राप्त की। राज्यसे प्राप्त होनेयोग्य सुखोंका भोग तथा युगके धर्मोंका पालन करके श्रेष्ठ राजर्षि जिस स्थानको प्राप्त कर चुके हैं, उसी पदपर वे भी चले गये। चौथे मनुका नाम तामस मनु हुआ। उनके पिता प्रियव्रत थे। नर्मदाके दक्षिणतटपर इन्होंने जगन्मयी भगवती जगदम्बाकी उपासना की। भगवती माहेश्वरीके कामबीज मन्त्रका इन्होंने जप किया। आश्विन और चैत्रके नवरात्रमें ये देवीकी उपासना करते रहे। इन्होंने उत्तम स्तोत्रोंका पाठ किया। इनके इस सत्प्रयत्नसे कमलके समान नेत्रोंसे अनुपम शोभा पानेवाली देवी संतुष्ट हो गयीं। उनकी प्रसन्नता प्राप्त करके तामस मनुने शान्तिपूर्वक निष्कण्टक विस्तृत राज्य भोगा। अपनी भार्याके उदरसे बड़े ही पराक्रमी शूरवीर दस पुत्रोंको उत्पन्न करके वे स्वयं उत्तम लोकके निवासी हुए।

रैवतको पाँचवाँ मनु कहा जाता है। ये तामस मनुके छोटे भ्राता हैं। यमुनाके तटपर रहकर इन्होंने कामबीजसंज्ञक मन्त्रका जाप किया। सम्मान प्रदान करनेवाला यह बीजमन्त्र साधकके लिये परम आश्रय-स्वरूप है। इसके द्वारा देवीकी आराधना करनेसे रैवत मनुको अपना समृद्धिशाली उत्तम राज्य तथा जगत्में सर्वत्र सिद्धि प्रदान करनेवाला अप्रतिहत बल प्राप्त हो गया। पुत्र, पौत्र आदि उत्तम चिरंजीवी संतान भी इनको सुलभ हो गयीं। इन्होंने धर्मकी स्थापना की और उसकी रक्षाका प्रबन्ध किया। तत्पश्चात् अप्रतिम शूरवीर ये रैवत मनु राज्यसुख भोगकर उत्तम स्वर्गलोकको सिधारे।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! इसके बाद भगवती जगदम्बाके अत्यन्त अद्भुत एवं उत्तम माहात्म्यको सुनो। जिस प्रकार अङ्गके पुत्र मनुने श्रेष्ठ राज्य प्राप्त किया था, वह प्रसङ्ग अब सुनाता हूँ। राजा अङ्गके उत्तम पुत्रका नाम चाक्षुष था। वे छठे मनु हुए। उन्होंने ब्रह्मर्षि श्रीमान् पुलहजीकी शरणमें जाकर कहा—'ब्रह्मर्षे ! मैं आतुर होकर नम्रतापूर्वक आपकी शरणमें आया हूँ। स्वामिन् ! आप मुझे अपना सेवक समझकर उपदेश दीजिये, जिससे मैं उत्तम 'श्री' प्राप्त कर सकूँ। साथ ही मुझे पृथ्वीका अखण्ड राज्य प्राप्त हो, मेरी भुजाओंमें अप्रतिहत बल हो और अस्त्र-शस्त्रके प्रयोगमें मैं पूर्णरूपसे निपुण हो जाऊँ। मेरी संतान चिरजीवी हो, मेरी उत्तम आयु विघ्न-बाधासे रहित हो तथा आपके उपदेशसे अन्तमें मैं स्वर्ग प्राप्त कर सकूँ।'

चाक्षुष मनुकी ऐसी बातें सुननेपर श्रीमान् मुनिवर पुलहने उन्हें देवीकी उत्तम उपासना करनेका आदेश दिया। कहा—'राजन् ! कानोंको सुख देनेवाली मेरी बातें सुनो। इस समय तुम भगवती जगदम्बाकी आराधना करो। उनकी कृपासे तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो जायगा।'

चाक्षुष मनुने पूछा—मुने ! उन देवीकी आराधनाका क्या स्वरूप है ? उनकी परम पवित्र उपासना किस प्रकार करनी चाहिये ? इसे आप बतानेकी कृपा कीजिये।

मुनिने कहा—राजन् ! सुनो, देवीकी पूजाका प्रकार बता रहा हूँ। यह श्रेष्ठ पूजा-पद्धति सनातन है। सरस्वतीबीजका अव्यक्तरूपसे निरन्तर जप करना चाहिये। प्रातः, सायं और मध्याह्न—तीनों कालमें जप करनेवाला मनुष्य भुक्ति और मुक्ति प्राप्त कर सकता है। राजनन्दन ! इस वाग्भव बीजके सिवा दूसरा कोई बीज ऐसा उपयोगी नहीं है। इसका जप करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। यह बल और वीर्यको बढ़ानेवाला है। सब देवताओंको इस जपके प्रभावसे ही शक्ति प्राप्त हुई है। राजन् ! भगवती जगदम्बाकी ऐसी महिमा प्रसिद्ध है।

अतः तुम भी इन्हींकी सम्यक् प्रकारसे आराधना करो। इसके फलस्वरूप तुम्हें शीघ्र समृद्धिशाली राज्य प्राप्त हो जायगा।

इस प्रकार मुनिवर पुलहके समझानेपर अङ्गपुत्र चाक्षुष मनु तपस्या करनेके विचारसे विरजा नदीके तटपर चले गये और उन्होंने वहाँ कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। वे सरस्वती-बीजके जपमें संलग्न हो गये। वृक्षके जीर्ण-शीर्ण पत्तोंपर ही वे अपना निर्वाह करने लगे। प्रथम वर्षमें वे पत्तोंपर रहे। दूसरे वर्ष केवल पानीके आधारपर रहे और तीसरे वर्ष एकमात्र पवन ही उनका आहार रहा। उनके शरीरकी स्थिति ऐसी हो गयी थी, मानो अविचल स्थाणु हो। निराहार रहकर बारह वर्षोंतक वे वाग्भव बीजका नित्य जप करते रहे। उनके अन्तःकरणमें ऐसी ही कल्याणमयी बुद्धि उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने देवीके श्रेष्ठ मन्त्रका जप करना ही जीवनका मुख्य उद्देश्य मान लिया था। अतः परमेश्वरी
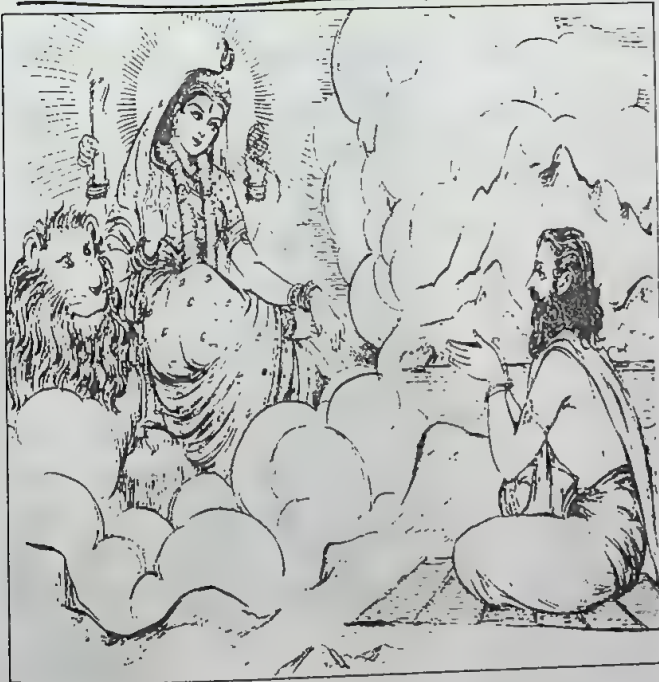
भगवती जगदम्बाने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये। परम दुर्धर्ष सर्वदेवमयी उन देवीका विग्रह अत्यन्त तेजोमय था। उन्होंने प्रसन्न होकर अङ्गकुमार चाक्षुष मनुसे सुन्दर शब्दोंमें कहा।

श्रीदेवी बोलीं—राजन्! तुमने जो भी उत्तम वर पानेकी बात मनमें सोची हो, वह मुझे बतलाओ। मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होनेके कारण उसे अवश्य पूर्ण करूँगी।

चाक्षुष मनुने कहा—देवदेवेशी! देवपूजिते! मैं जिस अभिलषित वस्तुके लिये प्रार्थना करना चाहता हूँ, तुम सबकी अन्तर्यामी-स्वरूपिणी होनेके कारण उसे भलीभाँति जानती ही हो। तथापि देवि! यदि मेरे सौभाग्यवश तुम्हारा दर्शन हो गया तो मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे मन्वन्तरका राज्य प्रदान करनेकी कृपा करो।

श्रीदेवी बोलीं—राजेन्द्र! मैं इस मन्वन्तरका राज्य तुम्हें दे चुकी। इसके सिवा महान् पराक्रमी तथा श्रेष्ठ गुणवाले अनेक पुत्र तुम्हें प्राप्त होंगे। तुम्हारा भावी राज्य निष्कण्टक होगा और अन्तमें तुम मेरे धाममें चले जाओगे। यह निश्चित है।

इस प्रकार चाक्षुष मनुके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर भगवती उन्हें उत्तम वर देकर तुरंत अन्तर्धान हो गयीं। वे ही राजा भगवती जगदम्बाकी कृपासे उनका आश्रय लेकर छठे मनु हुए। उन परम आदरणीय मनुको अखिल भूमण्डलका सुख प्राप्त हो गया। उनके अतिशय बलवान् तथा कार्य-भारको सँभालनेवाले अनेक पुत्र हुए। सभी पुत्र भगवतीके उपासक, शूरवीर, अमित बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न तथा सर्वत्र आदर पानेवाले और महान् राज्य-सुखके अधिकारी थे।

इस प्रकार चाक्षुष मनु भगवतीकी उपासना करके मनुओंमें प्रतिष्ठित होकर राज्य भोगनेके पश्चात् अन्तमें देवीके परमधाममें चले गये।

(अध्याय ८-९)

☆

# वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, मेरुसावर्णि, सूर्यसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, रुद्रसावर्णि और विष्णुसावर्णि नामक मनुओंका वर्णन, अरुणदानवके वर-लाभ, देवविजय तथा भ्रामरी देवीके द्वारा उसके निधनका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सप्तम मनु महाभाग वैवस्वत प्रसिद्ध हैं। अपार आनन्दसे सम्पन्न इन मनुको 'श्राद्धदेव' भी कहा जाता है। सभी नरेश इनका आदर करते थे। परमपूज्या भगवतीकी कृपा तथा तपस्याके प्रभावसे मन्वन्तरके अधिपति होनेका सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। आठवें मनु भूमण्डलपर 'सावर्णि' नामसे विख्यात हैं। वे पूर्वजन्ममें देवीकी आराधना करके उनसे वर पाकर इस जन्ममें मन्वन्तरके अधिपति हुए थे। सम्पूर्ण राजाओंसे उन्हें सम्मान प्राप्त था। वे अपार पराक्रमी, विद्वान् और भगवती जगदम्बाके परम उपासक थे।

वे सावर्णि मनु पूर्वजन्ममें सुरथ राजा थे। इस प्रसङ्गमें सुरथकी कथा सुनाते हुए भगवान् श्रीनारायणने सुरथ-सुमेधा-संवाद, मधुकैटभ-वध, महिषासुर तथा शुम्भ-निशुम्भ-वधकी कथाएँ सुनायीं और अन्तमें कहा कि यही सुरथ राजा इस जन्ममें सावर्णि मनु हुए थे।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! अब शेष मनुओंकी अद्भुत उत्पत्ति सुनो। वैवस्वत मनुके छः पुत्र थे— करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति और त्रिशङ्कु। सभी महान् पराक्रमी और निर्मल बुद्धिवाले थे। ये छहों पुत्र यमुनाके पावन तटपर जाकर भगवतीकी उपासना करने लगे। इन्होंने भोजन त्याग दिया। अपने श्वासपर पूरा नियन्त्रण रखा। सभी अलग-अलग देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर भाँति-भाँतिके उपचारोंसे आदरपूर्वक पूजा करते थे। इसके बाद उन समस्त महाबली पुत्रोंने अतिशय कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। पहले तो वे कुछ जीर्ण-शीर्ण पत्ते खा लेते थे। बादमें वायु, जल, धूम्र और किरणके आहारपर क्रमशः रहकर ये कठोर तप करने लगे। यों परम आदरके साथ सदा भगवतीकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले उन महानुभावोंको तपके फलस्वरूप सम्पूर्ण मोहका नाश करनेवाली निर्मल बुद्धि प्राप्त हुई। वे मनुपुत्र एकमात्र देवीके ही चरणचिन्तनमें लगे थे। पवित्र बुद्धिके प्रभावसे उन्हें अखिल जगत्का अपने आत्मामें ही साक्षात्कार होने लगा। उनकी बड़ी ही विचित्र स्थिति हो गयी। इस प्रकार वे लगातार बारह वर्षोंतक भगवती जगदीश्वरीकी तपस्या करते रहे। तत्पश्चात् हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न देवेश्वरी उनके सामने प्रकट हुईं। उन पुण्यात्मा छहों
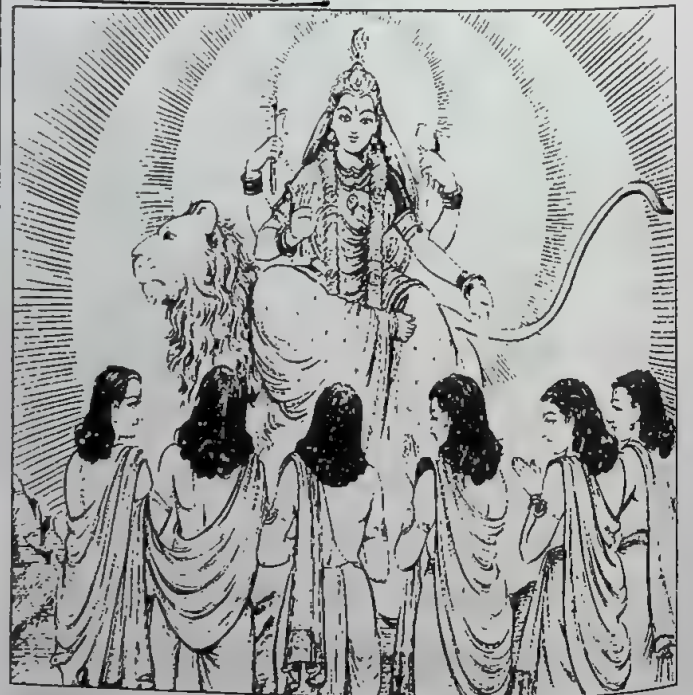
राजकुमारोंने देवीके साक्षात् दर्शन किये। तब वे भक्ति-विनम्र होकर सकाम भावसे भगवतीकी

स्तुति करने लगे।

राजकुमारोंने कहा—महेश्वरी ! आप सबकी स्वामिनी एवं करुणाकी परम आश्रय हैं। आपकी जय हो। देवी ! वाणी-बीजसे आराधना करनेपर आप बहुत शीघ्र प्रसन्न होती हैं। वाणीबीज-प्रतिपादिता आपका नाम ही है। क्लींकाररूपी विग्रहसे शोभा पानेवाली देवी ! आप 'क्लीं' इस बीजमन्त्रकी उपासनासे अपार प्रीति प्रदान करती हैं। महामाये ! आप कामेश्वरके मनको प्रसन्न करनेवाली तथा परम प्रभुको संतुष्ट करनेमें परम निपुण हैं। आपकी आराधनासे विपुल हर्ष एवं महान् साम्राज्य प्राप्त हो जाते हैं। भोगवर्धिनी ! ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आपके ही रूप हैं।

इस प्रकार उन महाभाग राजपुत्रोंके स्तुति करनेपर भगवती प्रसन्न होकर उनके प्रति कल्याणमय वचन बोलीं।

श्रीदेवीने कहा—कठिन तपस्या करनेवाले राजपुत्रो ! तुम बड़े महात्मा पुरुष हो गये हो। मेरी उपासनासे तुम्हारे सारे पाप धुल गये हैं। तुम्हें परम विमल बुद्धि प्राप्त है। अब तुम शीघ्र अपनी सारी मनःकामनाओंको वरके रूपमें मुझसे माँग लो। मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मेरे द्वारा इस समय तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जायँगे।

राजपुत्रोंने कहा—देवी ! हमें निष्कण्टक राज्य, दीर्घजीवी संतान, अव्याहत भोग, यथेच्छ यश, तेज और बुद्धि तथा सबसे अजेयत्व प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। बस, हमारी यही प्रार्थना है।

श्रीदेवी बोलीं—बहुत ठीक, ऐसा ही होगा। तुम सबके मनमें जो-जो कामनाएँ हैं, वे सभी पूर्ण होंगी। तुम सब लोग मन्वन्तरोंके स्वामी बनोगे। तुम्हें दीर्घजीवी संतान होगी, अनेक प्रकारके भोग भी प्राप्त होंगे। तुम्हारे बलको कोई खण्डित न कर सकेगा। ऐश्वर्य, यश, तेज और विभूतियाँ पूर्णरूपसे सदा तुम्हारा साथ देंगी। राजपुत्रो ! तुम क्रमशः मन्वन्तरोंके अधिष्ठाता बनोगे।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! राजकुमारोंने भक्तिपूर्वक भगवती भ्रामरीकी स्तुति की थी। उनपर प्रसन्न होकर जगदम्बाने उन्हें वर प्रदान किया और तदनन्तर उसी क्षण वे अन्तर्धान हो गयीं। उनकी कृपासे उन महान् तेजस्वी सभी राजकुमारोंने उस जन्ममें श्रेष्ठ राज्य और पृथ्वीके विपुल भोग भोगे। उन्हें उत्तम संतान प्राप्त हुई। वे सभी धरातलपर अपनी वंशावली स्थापित करके मन्वन्तरोंके अध्यक्ष बने रहे। वे ही दूसरे जन्ममें क्रमशः सावर्णि मनु कहलाये हैं। प्रथम राजकुमारका नाम 'दक्षसावर्णि' हुआ। वे नवम मनु कहलाये। भगवतीकी कृपासे उन्हें अव्याहत बल प्राप्त था। दूसरे पुत्र 'मेरुसावर्णि' हुए, जो दसवें मनु कहलाते हैं। महादेवीके प्रसादसे मन्वन्तरभर उन्होंने राज्य किया। तीसरे राजकुमार 'सूर्यसावर्णि'के नामसे विख्यात हुए। अपनी तपस्यासे महान् गौरव प्राप्त करनेवाले ये महान् उत्साही मनु ग्यारहवें मनु कहे जाते हैं। चौथे 'इन्द्रसावर्णि' हुए, जो बारहवें मनु कहलाते हैं। देवीकी आराधनाके प्रभावसे उन्हें मन्वन्तरका राज्य भोगनेका स्वर्ण अवसर प्राप्त था। पाँचवें राजकुमार 'रुद्रसावर्णि' नामसे विख्यात होकर तेरहवें मनु कहलाये। वे महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न होकर पृथ्वीपर राज्य करते रहे और छठे राजकुमारका नाम 'विष्णुसावर्णि' हुआ। ये चौदहवें मनु कहलाते हैं। भगवतीका वर प्राप्त करके ये जगत्में सुविख्यात राजा हुए।

ये चौदह मनु महान् तेजस्वी और अनुपम बलसे सम्पन्न हैं। ये सभी मनु भगवती 'भ्रामरी'की नित्य उपासना करते थे। अतएव इन्हें जगत्‌में पूज्य एवं वन्द्य होनेका सौभाग्य प्राप्त था। भगवती भ्रामरीके प्रसादसे ये सब महान् प्रतापी हो गये।

नारदजीने पूछा—प्राज्ञ ! वे भ्रामरी देवी कौन हैं, वे कैसे प्रकट हुई हैं और उनका कैसा स्वरूप है ? भगवन् ! शोक दूर करनेवाला वह विचित्र उपाख्यान सुनानेकी कृपा कीजिये। भगवतीकी कथा अमृतमयी है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! सुनो, अब मैं अचिन्त्य और अव्यक्तस्वरूपिणी भगवती जगन्मायाकी मोक्ष देनेवाली अद्भुत लीलाका वर्णन करूँगा। भगवती श्रीदेवीके जो-जो चरित्र हैं, वे सब किसी-न-किसी बहानेसे जगत्‌के कल्याणार्थ ही होते हैं। उन करुणामयी देवीके कार्य जगत्‌में वैसे ही हितभरे होते हैं, जैसे संतानवत्सला माताके पुत्रके प्रति।

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक महान् पराक्रमी दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह महान् नीच दानव पातालमें रहता था। उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी; अतः वह हिमालयपर जाकर पद्मयोनि ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। उसने चित्त शान्त करके अपना आसन जमा लिया। श्वास रोक लिया। भूख लगनेपर वह कभी सूखे पत्ते खा लिया करता था। वह तामसिक कामनासे तप करने लगा। इस प्रकार दस हजार वर्षोंतक उसकी तपस्या चलती रही। इसके बाद दस हजार वर्षोंतक थोड़ा-सा जल पीकर ही उसने तप किया। तदनन्तर उसके दस हजार वर्ष केवल वायुके आहारपर ही बीते। तत्पश्चात् दस हजार वर्षोंतक बिलकुल निराहार रहकर उसने तप किया। इस प्रकार घोर तपस्या करनेपर उसके शरीरसे एक प्रचण्ड अग्नि निकली, जो सम्पूर्ण जगत्‌को दग्ध करने लगी। उस समय यह बड़ी अद्भुत घटना हुई। 'यह क्या, यह क्या ?' कहकर सम्पूर्ण देवता काँप उठे। सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें आतङ्क छा गया। तब सभी प्रधान देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्हें इस बातकी सूचना दी। देवताओंकी बात सुनकर चतुर्भुज ब्रह्माजी गायत्रीदेवीको साथ ले हंसपर बैठे और प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे चल पड़े।

उस समय अरुणके सैकड़ों नाड़ियोंसे संयुक्त शरीरमें केवल प्राणमात्र रह गये थे। उसका पेट सूख गया था। उसके सभी अङ्ग शीर्ण हो चुके थे। वह नेत्रोंको मूँदे हुए ध्यानमें लीन था। अपने तेजसे वह ऐसा दिखायी पड़ता था मानो कोई दूसरा प्रचण्ड अग्नि हो। ब्रह्माजीने उससे कहा—'वत्स ! तुम्हारे मनमें जो कुछ भी
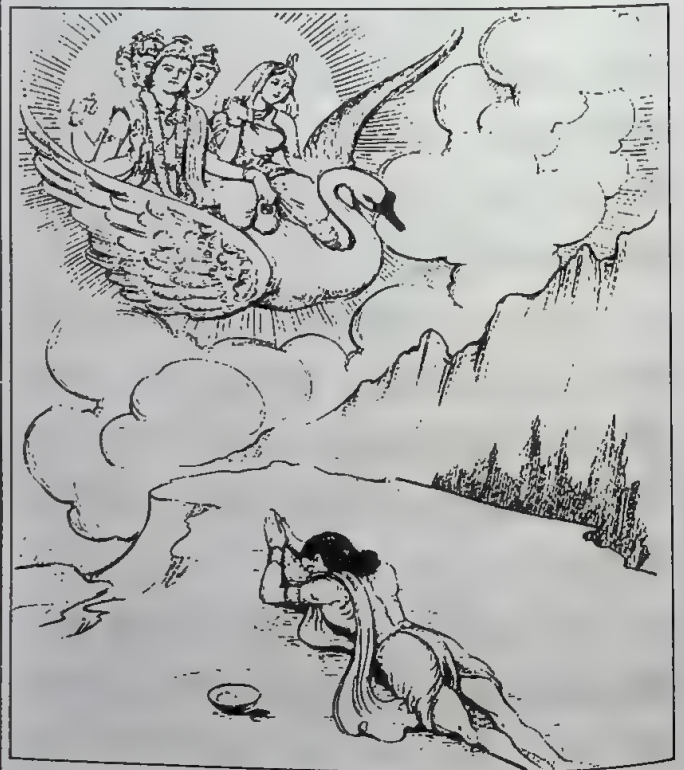
हो, वह मुझसे माँग लो।' ब्रह्माजीकी अमृतके

समान वाणी सुनते ही उसका मन संतुष्ट हो गया। अरुणने आँखें खोलीं तो उसे सामने कमलोद्भव ब्रह्माजीके दर्शन हुए। चारों वेदोंसे सम्पन्न महाभाग ब्रह्माजी गायत्रीदेवीके साथ विराजमान थे। वे हाथोंमें अक्षमाला और कुण्डिका लेकर अविनाशी ब्रह्म प्रणवका जप कर रहे थे। उन्हें देखकर अरुण उठ गया। उसने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। फिर उसने अपनी बुद्धिमें स्थित वरकी याचना की। उसका संकल्प था कि 'मैं कभी मरूँ नहीं'।

अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने आदर-पूर्वक उसे समझाया—'संसारमें जन्म लेनेवाला निश्चय मरेगा ही—यह सिद्धान्त है। अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो, जो मैं तुम्हें दे सकूँ।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर अरुणने पुनः आदर-पूर्वक उनसे इस प्रकार कहा—'प्रभो ! अच्छी बात है। तब मुझे यह वर देनेकी कृपा कीजिये कि मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी भी शस्त्र-अस्त्रसे मरूँ न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और न दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे मार सके। साथ ही आप मुझे ऐसा विपुल बल दीजिये, जिससे मैं सम्पूर्ण देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।' अरुणकी बात सुनकर ब्रह्माजीने तुरंत 'तथास्तु' कह दिया और इस प्रकार वर देकर वे उसी क्षण ब्रह्मलोकमें चले गये।

तदनन्तर अरुण नामक उस दैत्यने अपने स्थानपर रहनेवाले दैत्योंको पातालसे बुला लिया। वे सभी असुर आकर उस बलाभिमानी दानवके आज्ञाकारी बन गये। फिर उसने युद्ध करनेके अभिप्रायसे अपने दूतको अमरावती भेजा। उस समय उस दूतकी बात सुनकर देवराज इन्द्र भयसे काँपने लगे। वे महानुभाव देवता राक्षसोंके वधकी बात सोच ही रहे थे कि इतनेमें ही दैत्यराज अरुण अपनी दानवी सेनासे सुसज्जित हो स्वर्ग पहुँच गया एवं बात-की-बातमें उसने समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। मुने ! उसने तपस्याके प्रभावसे अनेक रूप बना लिये और सूर्य, चन्द्रमा, यम तथा अग्निके समस्त अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने हाथोंमें लेकर वह स्वयं सबका शासन करने लगा।

अपने-अपने स्थानसे च्युत होकर दीन बने हुए वे सभी देवता कैलासमें गये और एक-एक करके भगवान् शंकरको अपने दुःखकी गाथा सुनाने लगे। उस समय भगवान् शंकरके मनमें भी बड़ा विचार उत्पन्न हो गया। उन्होंने सोचा, ऐसी स्थितिमें अब क्या करना चाहिये ? क्योंकि ब्रह्माजी इसे वर दे चुके हैं। अतः यह दानव अब न युद्धमें, न शस्त्र एवं अस्त्रोंसे, न पुरुष एवं स्त्रीके द्वारा अथवा न द्विपद, चतुष्पद और न तदितर प्राणियोंसे ही मर सकता है। उस समय सभी आर्त होकर चिन्ता करने लगे। परंतु किसीको भी कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। ठीक उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'देवताओ ! तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो। वे ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेंगी। यदि दानवराज अरुण गायत्रीके जपसे पृथक् हो जाय तो उसकी मृत्युके योग्य परिस्थिति हो सकती है।' संतोष प्रदान करनेवाली यह वाणी बड़े उच्च स्वरसे हुई थी। इस दिव्य आकाशवाणीको सुनकर आदरणीय देवताओंने बृहस्पतिजीको बुलाया और देवराज इन्द्रने उनसे प्रार्थना की—'गुरो ! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये दानवराज अरुणके पास जाइये और जिस किसी

भी प्रकारसे वह दानव गायत्री-जपसे विरत हो सके, परम कर्तव्य मानकर आप वैसा ही प्रयत्न कीजिये। हमलोग ध्यानपूर्वक भगवती परमेश्वरीकी उपासना करते हैं। वे प्रसन्न होकर आपकी सहायता करेंगी।'

बृहस्पतिजीसे इस प्रकार कहकर सब देवता भगवती जाम्बूनदेश्वरीके पास जानेको तैयार हो गये। उनका उद्देश्य था कि वे परम सुन्दरी देवी दैत्यके भयसे घबराये हुए हम देवताओंकी रक्षा करें। वे वहाँ जाकर सुनिश्चित चित्तसे तपस्या करने लगे। उनके द्वारा मायाबीजका जप होने लगा। वे तन-मनसे देवीयज्ञमें तत्पर हो गये। इधर बृहस्पतिजी शीघ्र ही दानवराज अरुणके पास पहुँचे। सामने आये हुए उन मुनिवरसे दैत्यने पूछा—'मुने ! तुम कहाँसे कहाँ आ गये ? तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? शीघ्र बताओ ! मैं तुम्हारा पक्षपाती तो हूँ नहीं; बल्कि तुम्हारे प्रति मेरी शत्रुता ही रहती है।'

दानवराज अरुणकी बात सुनकर मुनिवर बृहस्पतिजीने उससे कहा—'दानवेन्द्र ! हम जिन देवीकी उपासना करते हैं, तुम भी निरन्तर उन्हींकी उपासना करते हो। अतएव तुम हमारे पक्षपाती हो ही गये। फिर कैसे कहते हो कि मैं तुम्हारा पक्षपाती नहीं हूँ।' बृहस्पतिजीकी यह बात सुनकर तथा देवमायासे मोहित हो, अभिमानमें आकर उसने कहा कि 'अच्छा अब मैं गायत्रीकी उपासना ही नहीं करूँगा' यों वह दैत्य गायत्रीके जपसे विरत हो गया। गायत्रीके जपका त्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। इस प्रकार अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करके बृहस्पतिजी वहाँसे निकले और अमरावतीमें लौट आये। उन्होंने आकर इन्द्रसे सारा समाचार कह सुनाया। इससे सभी देवताओंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भगवती परमेश्वरीकी उपासना करने लगे।

मुने ! इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेके पश्चात् किसी एक शुभ अवसरपर जगत्का कल्याण करनेवाली भगवती जगदम्बा प्रकट हुईं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। असंख्य कामदेवके सदृश वे सुन्दर थीं। उनके शरीरमें अद्भुत अनुलेपन लगा था। दो विचित्र वस्त्र उन्हें सुशोभित किये हुए थे। उनके गलेमें विचित्र माला थी और उनके सभी अङ्ग दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उनकी मुट्ठी अद्भुत भ्रमरोंसे भरी थी। वे करुणामयी देवी परम शान्त वर तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए थीं। नाना भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी माला उनकी छबि बढ़ा रही थी। वे चारों ओरसे असंख्य विचित्र भ्रमरोंद्वारा घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दका गायन करते थे और देवी उस गीतका अनुमोदन कर रही थीं। उनके पार्श्ववर्ती वे भ्रमर असंख्य थे। वे देवी सम्पूर्ण शृङ्गारोंसे समलंकृत थीं। वेदमें प्रशंसित सभी गुण उनमें विराजमान थे। वे देवी सर्वात्मिका, सर्वमयी, सर्वमङ्गल-रूपिणी, सर्वज्ञा, सर्वजननी, सर्वा, सर्वेश्वरी और शिवा—इन नामोंसे सुशोभित थीं। उन देवीके दर्शन पाकर हारे हुए सब देवता ब्रह्मा आदि प्रधान देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक उन वेद-प्रतिपादिता भगवती शिवाकी स्तुति करने लगे।

देवताओंने कहा—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली भगवती महाविद्ये ! आपको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली देवी ! आप सम्पूर्ण जगत्को धारण

करती हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है। विश्व-सहित तैजस प्राज्ञमय विराट्रूप धारण करनेवाली देवी ! आपको नमस्कार है। व्याकृतरूप तथा कूटस्थरूपसे शोभा पानेवाली देवी ! आपको नमस्कार है। सृष्टि, स्थिति और संहारसे रहित तथा दुष्टोंके लिये अर्गलास्वरूपिणी भगवती दुर्गे ! आप ज्योतिःस्वरूपिणी निर्मल भक्तिसे प्राप्य हैं, आपके लिये हमारा नमस्कार स्वीकार हो। माता श्रीकालिके ! आपको नमस्कार है। नीलसरस्वती, उग्रतारा और महोग्रा नाम धारण करनेवाली देवी ! आपको निरन्तर बार-बार नमस्कार है। त्रिपुर-सुन्दरी नामसे प्रसिद्ध देवी ! आपको नमस्कार है। देवी पीताम्बरे ! आपको नमस्कार है। भैरवी, मातङ्गी और देवी धूमावतीको बार-बार नमस्कार है। छिन्नमस्ते ! आपको नमस्कार है। क्षीरसागरकन्यके ! आपको नमस्कार है। शाकम्भरी ! आपको नमस्कार है। शिवे ! आपको नमस्कार है। रक्तदन्तिके ! आपको नमस्कार है। भगवती शिवे ! आपने शुम्भ और निशुम्भका दलन किया है। आपके द्वारा रक्तबीजकी जीवन-लीला समाप्त हुई है। आप वृत्रासुर और धूम्रलोचनको मारनेवाली हैं। आपने चण्ड और मुण्डके दलको मथ डाला है। आपके द्वारा बहुत-से दानव कालके ग्रास बन चुके हैं। कमलानने ! आप गङ्गा, शारदा और विजया नामसे प्रसिद्ध हैं। आपको नमस्कार है। दयास्वरूपिणी देवी ! पृथ्वी और तेज आपके रूप हैं; आपके लिये नमस्कार है। प्राणरूपा, महारूपा और भूतरूपा आप देवीको नमस्कार है। विश्वमूर्ते ! दयामूर्ते ! धर्ममूर्ते ! आपको बार-बार नमस्कार है। देवता, ज्योति और ज्ञानमय विग्रह धारण करनेवाली आप देवीको नमस्कार है। माता ! गायत्री, वरदा, सावित्री, सरस्वती, स्वाहा, स्वधा और दक्षिणा—ये सब आपके नाम हैं। आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण आगमशास्त्र 'नेति-नेति' वाक्योंके द्वारा जिनका बोध कराते हैं, उन प्रत्यक्षस्वरूपिणी आप पराशक्ति देवीकी हम उपासना करते हैं। भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण जो 'भ्रामरी' नामसे प्रसिद्ध हैं, उन आप भगवतीको हम नित्य-नित्य अनेकशः प्रणाम करते हैं। अम्बिके ! आपके पार्श्व तथा पृष्ठभागमें हमारा नमस्कार है। आपके आगे, ऊपर-नीचे सर्वत्र ही हमारा अनेकशः नमस्कार है। मणिद्वीपपर विराजनेवाली महादेवी ! आप हमपर कृपा कीजिये। जगदम्बिके ! आप अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी हैं। जगन्माता ! आपकी जय हो। परात्परस्वरूपिणी देवी ! आपकी जय हो। भगवती श्रीभुवनेश्वरी ! आपकी जय हो। सर्वोत्तमोत्तमे ! आपकी जय हो। कल्याणमय गुणोंकी आलय भगवती भुवनेश्वरी आपकी जय हो। हे परमेश्वरी ! आप प्रसन्न होइये। संसारको उत्पन्न करनेवाली आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें।*

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद !

---

* देवा ऊचुः

नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि। नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते॥
सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः। नमो व्याकृतरूपायै कूटस्थायै नमो नमः॥

देवताओंकी वाणी परम मधुर और प्रेमपूर्ण थी। उसे सुनकर कोयलकी भाँति मधुर भाषण करनेवाली भगवती जगदम्बा उनसे कहने लगीं।

श्रीदेवीने कहा—देवताओ! मैं तुमपर सदाके लिये प्रसन्न हूँ। वर देना मेरा स्वाभाविक गुण है। तुम समस्त देवताओंके मनमें जो भी अभिलषित हो, वही वर मुझसे माँग लो।

देवीका यह वचन सुनकर देवताओंने अपने दुःखका कारण बतलाया और दुश्चरित्र दैत्यके द्वारा जगत्को प्राप्त होनेवाली असह्य पीड़ाका वर्णन किया। वे बोले—'माता! देवताओं, ब्राह्मणों और वेदोंकी सर्वत्र निन्दा हो रही है। उनपर घोर आघात पहुँचा है। सभी देवता अपने-अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं। ब्रह्माजीने इस दानवराज अरुणको विचित्र वर दे रखा है।'

देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवती महादेवी भ्रामरीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको प्रेरित

किया; उन्हींके साथ ही अपने पार्श्वप्रान्त और अग्रभागमें रहनेवाले नाना रूपधारी भ्रमरोंको भी भेजा। उन्होंने असंख्य भ्रमरोंको और भी उत्पन्न किया। उन भ्रमरोंसे त्रिलोकी व्याप्त हो

---

दुर्गे सर्गादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले। निरर्गलप्रेमगम्ये भर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥
नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति। उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमो नमः॥
नमः पीताम्बरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि। नमो भैरवि मातङ्गि धूमावति नमो नमः॥
छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके। नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते रक्तदन्तिके॥
निशुम्भशुम्भदलनि रक्तबीजविनाशिनि। धूम्रलोचननिर्नाशे वृत्रासुरनिवर्हिणि॥
चण्डमुण्डप्रमथिनि दानवान्तकरे शिवे। नमस्ते विजये गङ्गे शारदे विकचानने॥
पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमो नमः। प्राणरूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते॥
विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमो नमः। देवमूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते॥
गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति। नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमो नमः॥
नेतिनेतीति वाक्यैर्या बोधते सकलागमैः। सर्वप्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम्॥
भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता। तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥
नमस्ते पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोऽम्बिके। नम ऊर्ध्वं नमश्चाधः सर्वत्रैव नमो नमः॥
कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपाधिवासिनि। अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिके जगदम्बिके॥
जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे। जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे॥
कल्याणगुणरत्नानामाकरे भुवनेश्वरि। प्रसीद परमेशानि प्रसीद जगतोरणे॥
(१०।१३।८७—१०३)

गयी। उस समय उन भ्रमरोंके कारण पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। आकाश, पर्वतशृङ्ग, वृक्ष और वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। यह दृश्य बड़ा ही आश्चर्यजनक था। उन सम्पूर्ण भ्रमरोंने तुरंत जाकर दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे उनको इस प्रकार काट रहे थे, जैसे मधु निकालनेवाले व्यक्तिको कोपमें भरी हुई मधु-मक्खियाँ। उस समय शस्त्रों तथा अस्त्रोंसे किसी प्रकार भी उनका निवारण नहीं किया जा सकता था। ऐसी स्थितिमें न युद्ध हो सका और न कोई सम्भाषण ही। दैत्योंको अपने सामने मृत्यु ही दृष्टिगोचर होती थी। जिस-जिस स्थलपर जो-जो दैत्य जिस-जिस रूपमें विद्यमान थे, वहीं-वहीं उसी-उसी रूपमें वे सब अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे। परस्पर किसीसे कोई कुछ बातचीत भी नहीं कर सका। क्षणमात्रमें ही वे सम्पूर्ण शक्तिशाली दानव नष्ट-भ्रष्ट हो गये। इस प्रकारका अद्भुत कार्य करके वे सब भ्रमर देवीके निकट लौटकर आ गये। 'यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है, बड़े ही आश्चर्यकी बात है' सब ओर यही ध्वनि गूँजने लगी। जिनकी ऐसी माया है, उन भगवती जगदम्बाके लिये कौन-सा विचित्र काम है।

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंने हर्षके समुद्रमें डूबकर भगवती जगदम्बाकी उपासना की। अनेक प्रकारके उपचार तथा भाँति-भाँतिकी सामग्रियोंसे देवीका पूजन किया गया। जय-जयकारकी तुमुल ध्वनि हुई। देवीके ऊपर पुष्प बरसने लगे। आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। श्रेष्ठ मुनिगण वेद-पाठ करने लगे। गन्धर्वोंके द्वारा यशोगान होने लगा। मृदङ्ग, मुरज, वीणा, ढाक, डमरू, घण्टा और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनिसे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी। उस समय सम्पूर्ण देवताओंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करके अपनी अञ्जलि मस्तकपर किये हुए देवीका जयकार आरम्भ किया और बार-बार कहा—'माता ईशानी! आपकी जय हो, जय हो।' तब भगवती महादेवीने संतुष्ट होकर सब देवताओंको पृथक्-पृथक् वर दिये। देवताओंके प्रार्थना करनेपर उन्होंने अपने प्रति उनको दृढ़ भक्ति प्रदान की। फिर उन देवोंके सामने ही वे अन्तर्धान हो गयीं।

नारद! इस प्रकार भगवती भ्रामरीका यह सम्पूर्ण विशद चरित्र मैं तुम्हें सुना चुका। इसके पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सुननेमें यह बहुत ही आश्चर्यजनक विषय है। इसके प्रभावसे मनुष्य संसाररूपी समुद्रसे तर जाता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण मनुओंका चरित्र भी पापोंका उच्छेद कर डालता है। 'देवीके माहात्म्यसे सम्बन्ध रखनेवाला यह विषय पढ़ने और सुननेवालोंके लिये कल्याणप्रद है।' जो पुरुष नित्य इस प्रसङ्गका पठन और श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवतीके परमपदको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १०—१३)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका दसवाँ स्कन्ध समाप्त

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## ग्यारहवाँ स्कन्ध

### सदाचारका वर्णन

नारदने कहा—भगवन्! भूतभव्येश! नारायण! सनातन! आपने भगवती जगदम्बाके परम आश्चर्यजनक उत्तम चरित्रका वर्णन किया है। देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये भगवतीके प्रादुर्भावकी बातें बतलायी हैं। भगवतीकी कृपासे देवताओंको उनके अधिकार प्राप्त हुए—यह प्रसङ्ग भी कहा। प्रभो! जिससे भगवती प्रसन्न होकर सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करती हैं, अब मैं वह सदाचार सुनना चाहता हूँ, बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—तत्त्वज्ञानी नारद! सुनो, अब मैं उस सदाचारका क्रमशः वर्णन करता हूँ, जिसके अनुष्ठानसे देवी प्रसन्न हो जाती हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर द्विजको जिसका पालन करना चाहिये, उस सदाचारका मैं वर्णन करूँगा। उदयसे अस्ततक द्विजको दिनभर धर्म-साधनमें—सत्कर्ममें लगे रहना चाहिये; क्योंकि माता, पिता, पुत्र, स्त्री और बन्धु-बान्धव—कोई भी आत्माकी सहायता नहीं कर सकते। केवल एक धर्म ही सहायक-रूपमें साथ देता है*। अतएव सभी साधनोंसे अपने सहायक धर्मका नित्य संचय करे। धर्मकी सहायतासे पुरुष दुस्तर अन्धकारको पार कर जाता है। आचारको ही पहला धर्म माना गया है—यह बात श्रुति और स्मृतिसे सिद्ध है; अतः इस जगत्में आकर द्विजको अपने कल्याणार्थ सदा सदाचारसे सम्पन्न रहना चाहिये। आचारसे ही आयु, संतान तथा प्रचुर अन्नकी उपलब्धि होती है। आचार समस्त पातकोंको दूर कर देता है। मनुष्योंके लिये आचारको कल्याणकारक परम धर्म माना गया है। आचारवान् पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें भी सुखी होता है।† धर्ममय आचार महान् दीपकका रूप

---

* आत्मैव न सहायार्थं पिता माता च तिष्ठति। न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम्॥ (११।१।७)

† आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः। आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हन्ति पातकम्॥
आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः। इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम्॥ (११।१।१०-११)

धारण करके मुक्तिका मार्ग दिखलाता है। आचारसे ही गौरव बढ़ता है और आचार ही मनुष्यको सत्कर्मी बनाता है। कर्मसे ज्ञानकी वृद्धि होती है—यह मनुका वाक्य है। यह आचार सम्पूर्ण धर्मोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण परम तप कहा जाता है। इसीकी ज्ञान संज्ञा भी है। आचारसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है।

आचार दो प्रकारके हैं—शास्त्रीय और लौकिक। शुभकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन दोनोंका पालन करना चाहिये। उनमें किसीका भी त्याग उचित नहीं है। सत्पुरुषोंको ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म और कुलधर्म—सबका आदर करना चाहिये। मुने ! इनमेंसे किसी भी धर्मका उल्लङ्घन करना अनुचित है; क्योंकि दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दाका पात्र समझा जाता है। उसे सदा कष्ट भोगने पड़ते हैं। व्याधि कभी उसका पिण्ड नहीं छोड़ती। जो अर्थ और काम धर्मसे हीन हों, उनका त्याग कर देना चाहिये। यदि धर्म भी लोकसे विरुद्ध हो तो वह भी सुखकारी नहीं हो सकता।

नारदजीने कहा—मुने ! जगत्में अनेक प्रकारके शास्त्र हैं। किसके आधारपर निश्चय किया जाय ? और धर्ममार्गके निर्णायक कितने प्रमाण हैं ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! श्रुति और स्मृति—ये दो नेत्र हैं। पुराणको हृदय कहा गया है। इन तीनोंकी वाणी ही धर्म है, अन्य किसीकी नहीं। यदि तीनोंमें परस्पर भेद हो तो ऐसी स्थितिमें श्रुतिके वचनोंको प्रमाण मानना चाहिये और श्रुति-स्मृति दोनोंमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ मानी जाती है। यदि श्रुति ही दो बातोंका समर्थन करती है तो वे दोनों धर्म माने जा सकते हैं। यदि स्मृतिमें दो प्रकारके वचन मिलें तो वहाँके विषयमें पृथक्-पृथक् कल्पना कर लेनी चाहिये। सभी पुराण वेदमूलक नहीं हैं; किंतु उनमें कहीं-कहीं तन्त्र भी देखे जाते हैं। ऋषिगण जिसे धर्म कहते हैं, उसीको धर्मरूपसे ग्रहण करना चाहिये, दूसरेको किसी प्रकार धर्म मानना समीचीन नहीं। यदि तन्त्र वेदसे सहमत हो तो उसकी प्रामाणिकतामें कोई संदेह नहीं है। जो श्रुतिसे प्रत्यक्ष विरुद्ध है, उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता। सम्यक् प्रकारसे यह वेद ही धर्मके मार्गका प्रमाण है। इसलिये वेदका अविरोधी जो कुछ है, वही प्रमाण है। जो वेदोक्त धर्मका त्याग करके दूसरेको प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे शिक्षा देनेके लिये यमलोकमें बहुत-से नरककुण्ड बने हैं। इसलिये भलीभाँति प्रयत्न करके वेदोक्त धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये। जो मनुष्योंको निन्दित शास्त्रोंका उपदेश करते हैं उन्हें, मुख नीचे और पैर ऊपर करके नरकमें वास करना पड़ता है। अतएव मनुष्य वेदोक्त सद्धर्मका ही सदा पालन करे। बार-बार सावधान होकर पुरुष स्वयं विचार करे कि आज मेरे द्वारा कौन-कौन-सा कार्य हो गया। मैंने किसको क्या दिया और क्या दिलाया अथवा वचनसे भी किसकी क्या सहायता की। सभी पातक और उपपातक अत्यन्त दारुण हैं—कहीं इनमें तो मैं नहीं फँस गया।

रात्रिके चौथे पहरमें उठकर ब्रह्मका ध्यान करे। वीरासनसे बैठकर ध्यान करना चाहिये। सीधे-से कुछ उत्तान होकर बैठे। मुख भी ऊपर रहे। आँखें मूँद ले। दाँतोंको दाँतसे स्पर्श न करे। जीभ तालूके पास रहे और उसमें हिलने-डुलनेकी क्रिया न हो। मुख बंद न करे। मन

शान्त रहे। सभी इन्द्रियाँ वशमें हों। आसन बहुत नीचा न हो। दो बार अथवा तीन बारके क्रमसे प्राणायाम करना चाहिये। इसके बाद जो दीपकके समान हृदयमें विराजमान हैं, उन श्रीभगवान्‌का ध्यान करे। विवेकी पुरुषके मनमें यह धारणा बनी रहनी चाहिये कि मेरे हृदयमें परमात्मा अवश्य विराजमान हैं। सधूम, विधूम, सगर्भ, अगर्भ, सलक्ष्य और अलक्ष्यके क्रमसे प्राणायाम छः प्रकारके होते हैं। इस प्राणायाममें भी रेचक, पूरक और कुम्भक—तीन प्रकारका भेद है। ये प्राणायाम वर्णत्रयात्मक अर्थात् प्रणवस्वरूप हैं। उस प्रणवको ही परमात्माका स्वरूप कहा गया है। वही तन्मय प्राणायाम भी है। इडा नाडीसे वायुको ऊपर खींचकर उदरमें पूर्णरूपसे स्थित करे। फिर दूसरी (पिंगला) नाडीसे धीरे-धीरे सोलह मात्रामें वायुका विरेचन अर्थात् त्याग करना चाहिये। मुने! इस प्रकार प्राणोंके आयामको ही 'सधूम' प्राणायाम कहते हैं।

मूलाधार, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य—इन छः स्थानोंमें चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल और द्विदल कमल हैं। इन कमलोंके पत्रोंपर प्रादक्षिणक्रमसे सभी वर्ण विराजमान हैं। ये ब्रह्मस्वरूप हैं। इन्हें मैं प्रणाम करता हूँ—इस प्रकार भावना करनी चाहिये। जो मूलाधारमें स्थित चार दलवाले अरुण कमलपर विराजमान, रजोगुणसे युक्त, मायाबीजसे चिह्नित तथा कमल-तन्तुके समान सूक्ष्मस्वरूपा हैं, सूर्य-विन्दु जिनका मुख है तथा अग्नि और चन्द्रमा जिनके स्तन हैं, ऐसी कुण्डलिनीस्वरूपा भगवती श्रीजगदम्बा यदि चित्तमें एक बार भी बस जायँ तो पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है। वे ही स्थिति हैं, वे ही गति हैं, वे ही यात्रा हैं, वे ही मति हैं, वे ही चिन्ता हैं, वे ही स्तुति हैं और वे ही वाणी हैं। देवी! मैं सर्वात्मा हूँ, मैं जो स्तुति करता हूँ, वह आपकी पूजा है। मैं आपका स्वरूप ही हूँ, दूसरा कुछ नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ। मुझमें लेशमात्र भी शोकका प्रवेश नहीं हो सकता। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ,—इस प्रकार स्वयं अपने आत्मामें भावना करे*।

जो प्रथम प्रयाणमें विद्युत्‌के सदृश प्रकाशमान रहती हैं और प्रतिप्रयाणमें भी अमृतके सदृश हैं तथा अन्तिम प्रयाणमें सुषुम्णा नाडीमें संचार करती हैं, उन आनन्दस्वरूपिणी भगवती कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। तदनन्तर अपने ब्रह्मरन्ध्रमें ईश्वरमय गुणका ध्यान करे। मानसिक उपचारोंसे विधिपूर्वक गुरुदेवकी पूजा करे। साधक संयतचित्त होकर इस मन्त्रसे गुरुदेवकी प्रार्थना करे—गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही महेश्वर हैं; अतः उन श्रीगुरुदेवके लिये मेरा नमस्कार है।†

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! वेद अपने छहों अङ्गोंसहित भी क्यों न अध्ययन

* अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्। सच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिन्तयेत्॥ (११।१।४६)

† गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ (११।१।४९)

किये गये हों; आचारहीन व्यक्तिको वे पवित्र नहीं कर सकते। ऐसे प्राणीको मृत्युकालमें अधीत छन्द उसी प्रकार त्याग देते हैं, जैसे पंख जम जानेपर पक्षी अपने घोंसलेको छोड़ देते हैं। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर अपने सम्पूर्ण सदाचारका पालन करे। रात्रिके चौथे प्रहरमें वेदका अभ्यास करना परम धर्म है; फिर कुछ समयतक अपने इष्टदेवताका चिन्तन करे। योगी पुरुष पूर्वोक्त मार्गसे ब्रह्मका ध्यान करें, जिससे जीव और ब्रह्मकी निरन्तर एकता हो जाय। नारद ! ऐसा पुरुष शीघ्र जीवन्मुक्त हो जाता है। रात्रिके अन्तमें पचपन घड़ीके बाद उषःकाल, सत्तावन घड़ीके बाद अरुणोदयकाल और अट्ठावन घड़ीके बाद प्रातःकाल होता है। इसके बादके समयको सूर्योदयकाल कहते हैं।

श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वह नैर्ऋत्य दिशामें बाण जितनी दूर जा सके, उससे आगे जाकर मल-मूत्रका त्याग करे। द्विज ब्रह्मचर्य आश्रममें रहते समय मल-मूत्र त्यागनेके अवसरपर यज्ञोपवीतको अपने कानपर रख ले। वानप्रस्थ और गृहस्थके लिये यज्ञोपवीतको निवीती करके पीठपर रख लेनेका विधान है। गृहस्थी यज्ञोपवीतको कण्ठी करके पीठकी ओर लटकाकर और ब्रह्मचारी कानपर रखकर मल-मूत्रका त्याग करे—यह साधारण नियम है। तृणोंसे वहाँकी भूमिको ढक दे। सिरको वस्त्रसे ढक ले। मौन रहे। दौड़नेके कारण यदि अधिक श्वास चल रहा हो तो उस समय शौचके लिये न बैठे। जोती हुई भूमिपर, जलमें, चिताके स्थानपर, पर्वतपर, टूटे-फूटे देव-मन्दिरके स्थानमें तथा सर्पके बिल एवं हरी घासपर मल-मूत्रका त्याग न करें। बहुत-से जीवोंवाले गड्ढोंमें, लोग चलते हों ऐसे मार्गमें, दोनों संध्या, जप, भोजन और दन्तधावन करते समय मल-मूत्रका त्याग अनुचित है। देवकार्य, पितृकार्य, पानीके झरनेपर; मैथुनके समय अथवा गुरुकी संनिधिमें मल-मूत्रका त्याग करना निषिद्ध है। शौच होनेके पहिले इस मन्त्रका उच्चारण करे— 'देवता, ऋषि, पिशाच, उरग और राक्षस— सभी भूत-समुदाय यहाँसे जानेकी कृपा करें; क्योंकि मैं यहाँ मल-त्याग करना चाहता हूँ* ।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् विधि-पूर्वक शौच करे। मल-मूत्रका त्याग करते समय वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और गौपर कदापि दृष्टिपात न करे। दिनमें उत्तरकी ओर तथा रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करे। पश्चात् उसे पत्ते अथवा तृणसे ढक दे। पात्रमें जल लेकर मल साफ करे। शुद्धि करनेके लिये तटसे मिट्टी ले। ब्राह्मणको सफेद, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीली और शूद्रको काली मिट्टी लेनी चाहिये अथवा श्रेष्ठ द्विज जिस देशमें जो मिल सके, उसी मृत्तिकासे काम चला ले। हाँ, पानीके भीतरसे, घरके देवमन्दिरसे, दीमकके स्थानसे, चूहेके बिलसे तथा शौचसे बची हुई मृत्तिका न ले। ऐसी पाँच प्रकारकी मृत्तिकाएँ अग्राह्य हैं। मूत्र-त्यागकी अपेक्षा शौचके बाद दुगुनी तथा मैथुनके बाद तीन गुनी जननेन्द्रियकी शुद्धि कही जाती है। मूत्र त्यागनेके

* देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः॥ इतो गच्छन्तु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम्।
(११।२।१३-१४)

बाद लिङ्गमें एक बार और दोनों हाथोंमें तीन-तीन बार मृत्तिका लगावे। इसे मूत्र-शौच कहा गया है। मल-शौचमें ये उपर्युक्त क्रियाएँ दूनी संख्यामें बतायी जाती हैं।

मल त्यागनेके पश्चात् शुद्धिके लिये लिङ्गमें दो बार, गुदामें पाँच बार तथा दोनों हाथोंमें ग्यारह बार मृत्तिका लगानेका विधान है। विद्वान् पुरुष पहले अपना बायाँ पैर धोवे, तत्पश्चात् दाहिना। प्रत्येक पैरमें चार-चार बार मिट्टी लगानी चाहिये। यह शौच-शुद्धिका नियम गृहस्थके लिये है। ब्रह्मचारीको इससे दुगुनी, वानप्रस्थको तिगुनी तथा संन्यासीको चौगुनी मिट्टी लेनेका विधान है। संन्यासियोंको प्रत्येक बार ताजे आँवलेके बराबर मिट्टी लेनी चाहिये। कभी इससे कम न लें। यह नियम दिनमें शौच करनेका है। रात्रि-शौचके समय आधेमें ही नियम पूर्ण मान लिया गया है। रोगीके लिये इससे आधा तथा मार्गमें जानेवालेके लिये उससे भी आधा नियम है। स्त्रियों, शक्तिहीनों और बालकोंके लिये शौच कर्ममें मिट्टी आदि लगानेकी कोई संख्या नहीं है। उनकी शुद्धि दुर्गन्धि मिट जानेतक सीमित है। जबतक दुर्गन्धि दूर न हो, तबतक मिट्टीका अनुलेपन करना चाहिये। सम्पूर्ण वर्णोंके लिये प्रायः यही नियम है, यह भगवान् मनुजीका कथन है।

बायें हाथसे शौच साफ करे। दाहिना हाथ लगाना अनुचित है। नाभिसे नीचे बायें हाथसे और ऊपर दाहिने हाथसे काम लेना चाहिये। श्रेष्ठ द्विजोंके लिये शौच कर्ममें यह नियम अवश्य पालनीय है। विज्ञजन मल और मूत्रका त्याग करते समय जलपात्र हाथमें न लिये रहें। कदाचित् मोह अथवा आलस्यवश आत्म-शुद्धिकी विधि पूरी न हो सके तो इसके प्रायश्चित्तस्वरूप तीन राततक केवल जल पीकर रहे या गायत्रीजप करे तब उसकी शुद्धि होती है। देश, काल, द्रव्य, शक्ति और अपनी उपपत्तिपर सम्यक् प्रकारसे विचार करके शौचमें प्रवृत्त होना चाहिये। शौचके सम्बन्धमें कभी आलस्य न करे। मल त्यागनेके पश्चात् शुद्धिके लिये बारह बार कुल्ला करना चाहिये। मूत्र-त्याग करनेके उपरान्त चार बार कुल्ला करनेका नियम है। मुख नीचे करके कुल्लेको धीरे-धीरे अपनी बायीं ओर फेंकना चाहिये; फिर आचमन करके आदरपूर्वक दन्तधावन करे। काँटे तथा दूधवाले वृक्षोंका बारह अङ्गुलके प्रमाणका छिद्रहीन दाँतुन होना चाहिये। वह हाथकी कनिष्ठिका अँगुली-जितना मोटा हो। पूर्वार्द्धमें दाँतोंको स्वच्छ करनेके लिये कूँची बनानी चाहिये। करञ्ज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा और बेरके वृक्ष दन्तधावनके विषयमें श्रेष्ठ माने गये हैं। [दाँतुनका मन्त्र] अन्नको सुपाच्य बनाने तथा विघ्न-बाधाको दूर करनेके लिये दाँतुनके रूपमें ये स्वयं राजा सोम ही यहाँ पधारे हुए हैं। ये यश और तेजसे मेरे मुखका प्रक्षालन करें। वनस्पते ! वे राजा सोम तुम्हीं हो। तुम मुझे आयु, बल, तेज, प्रजा, पशुधन, ब्रह्मज्ञान और बुद्धि प्रदान करनेकी कृपा करो*।

---

* अन्नाद्यायव्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत्। स मे मुखं प्रक्षाल्यते यशसा च भगेन च॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते॥
(११।२।३७—३९)

यदि दाँतुनके लिये काठ मिलना असम्भव हो अथवा निषिद्ध तिथियाँ हों तो उस समय बारह बार कुल्ला करनेमात्रसे दन्तधावनकी विधि पूरी हो सकती है। जो प्रतिपद्, दर्श, षष्ठी, नवमी और एकादशी तिथि तथा रविवारके दिन दाँतोंका काष्ठसे संयोग कराता है, उसे सूर्यपर आघात पहुँचाने तथा अपने कुलका विनाश करने-जैसा दोष लगता है। जलद्वारा पैरोंकी शुद्धि करके तीन बार आचमन करनेके पश्चात् दो बार मुखको पोंछे; तदनन्तर जल लेकर अँगूठे और तर्जनीसे दोनों नासिकाछिद्रोंका, अँगूठे और अनामिकासे दोनों नेत्रों तथा दोनों कर्णोंका एवं कनिष्ठिका और अँगूठेसे नाभि-देशका तथा हाथके तलवेसे हृदयका स्पर्श करे; फिर सभी अँगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे।

(अध्याय १-२)

☆

## सदाचार-वर्णन और रुद्राक्षका माहात्म्य-कथन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, तान्त्रिक और श्रौत—ये छः प्रकारके आचमन श्रुतियोंमें कहे गये हैं। मल-मूत्र त्यागनेके पश्चात् पवित्रताके लिये जो आचमन किया जाता है, उसे 'शुद्ध' आचमन कहते हैं। किसी कार्यके पूर्व किया हुआ आचमन 'स्मार्त' और 'पौराणिक' कहलाता है। ब्रह्मयज्ञ आरम्भ करनेके पूर्व 'वैदिक' और 'श्रौत' आचमन किया जाता है। अस्त्र-विद्याके प्रारम्भमें 'तान्त्रिक' आचमनकी विधि है।

'ॐकारसहित गायत्री-मन्त्रको तीन बार पढ़कर शिखा बाँधे। फिर आचमन करके हृदय, बाहु और कंधेका स्पर्श करे। छींकने, थूकने, दाँतोंसे उच्छिष्ट छू जाने, मुखसे असत्य बात निकलने तथा पतितोंके साथ बातचीत होनेपर शुद्ध होनेके लिये दाहिने कानका स्पर्श करे। नारद ! अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य और पवन—ये सभी देवता ब्राह्मणके दक्षिण कर्णपर विराजमान रहते हैं। मुनिवर ! इसके बाद नदी अथवा तालाब आदिपर जाकर देहको शुद्ध करनेके लिये सविधि स्नान करे। शरीर अत्यन्त अपवित्र रहता है। इसके नौ द्वारोंसे सदा मल निकलते रहते हैं। अतः इसकी शुद्धिके अभिप्रायसे प्रातःकालका स्नान परमावश्यक है। अनुचित स्थानपर जाने, दान लेने अथवा एकान्तमे कुछ निन्दित कर्म बन जानेसे जो पाप लगता है, वह प्रातःकालके स्नानसे धुल जाता है। जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान नहीं करता है, उसकी सम्पूर्ण क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। अतएव प्रतिदिन निरन्तर प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। स्नान और संध्यावन्दन आदि सभी कार्य कुशाके साथ करनेका विधान है। जो सात दिनोंतक स्नान नहीं करता, तीन दिनोंतक संध्या-रहित रहता है तथा बारह दिनोंतक हवन नहीं करता है, वह द्विज शूद्रके समान हो जाता है।

गायत्री-जपके समान श्रेष्ठ कार्य इस लोक अथवा परलोकमें भी दूसरा कुछ नहीं है। उच्चारण करनेवालेकी यह रक्षा करती है। इसलिये इसका नाम 'गायत्री' पड़ा है। प्रणव और तीन व्याहृतियाँ इसके साथ सदा रहनी चाहिये। ब्राह्मण प्राणायामके समय प्राण, अपान और समान—इन तीन वायुओंको संयममें रखे। वह श्रुतिसम्पन्न होकर अपने

धर्मपालनमें निरत रहते हुए निरन्तर वैदिक मन्त्रका जप करे। सगर्भ गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। केवल ध्यानके समय अगर्भका प्रयोग किया जाता है।

स्नान करते समय देवताओं और पितरोंको संतुष्ट करनेके लिये स्नानाङ्ग-तर्पण करना चाहिये। फिर जलसे बाहर निकलकर दो शुद्ध वस्त्र धारण कर ले। भस्म और रुद्राक्षकी माला धारण करे। इस प्रकार साधकको योगके क्रमसे सदा जप करना चाहिये।

रुद्राक्षका बड़ा माहात्म्य है। जो अपने कण्ठमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, दोनों कानोंपर छः-छः, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, दोनों भुजाओंमें सोलह-सोलह, शिखामें एक-एक तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह स्वयं भगवान् नीलकण्ठ समझा जाता है। मुने ! सुवर्ण अथवा चाँदीके तारमें पिरोकर बड़ी सावधानीके साथ नित्य शिखा या कानोंमें रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। पुरुष यज्ञोपवीत, हाथ, कण्ठ अथवा उदरपर भी रुद्राक्ष धारण करे। तथा प्रणवके साथ पञ्चाक्षर 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप करे। विद्वान् पुरुष निष्कपट भक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्षकी माला धारण करे। रुद्राक्ष धारण करना भगवान् शंकरके साक्षात् ज्ञानका साधन है। सभी वर्ण रुद्राक्षकी माला धारण कर सकते हैं। भेद यही है कि द्विज मन्त्रसे करें और शूद्र बिना मन्त्रके। रुद्राक्ष धारण करनेसे पुरुष स्वयं भगवान् शंकरके समान हो जाता है।

अहो ! रुद्राक्षकी कितनी महिमा है, इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। अतएव सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके रुद्राक्षकी माला धारण करनी चाहिये।

नारदजीने कहा—अनघ ! यह रुद्राक्ष इस प्रकारकी महिमावाला है—यह तो आपने बतला दिया। अब यह जो सबसे श्रेष्ठ माना जाता है— इसका क्या कारण है? सो बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! प्राचीन समयकी बात है, यही विषय स्वामी कार्तिकेयने भगवान् शंकरसे पूछा था। उन्होंने उनके प्रति जो कुछ कहा था, वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो।

भगवान् शंकरने कहा—षडानन ! मैं तत्त्वपूर्वक संक्षेपरूपसे तुम्हारे प्रश्नका समाधान करता हूँ, सुनो ! बहुत पहलेकी बात है, त्रिपुर नामका एक दैत्य था। कोई उसे जीत नहीं सकते थे। उसके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता महान् कष्ट पा रहे थे। तब सब लोगोंने मुझसे प्रार्थना की। ऐसी स्थितिमें मैं त्रिपुरासुरके विषयमें विचार करने लगा। मेरे एक दिव्य अस्त्रका नाम 'अघोर' है। वह अत्यन्त विशाल एवं परम सुन्दर है। उसे सम्पूर्ण देवताओंकी आकृति मानते हैं। उस भयंकर अस्त्रसे ज्वाला निकलती रहती है। समस्त उपद्रवोंको शान्त करनेकी उसमें शक्ति है। मैंने त्रिपुरका वध और देवताओंका उद्धार करनेके लिये उसी अपने अघोरसंज्ञक अस्त्रका चिन्तन किया। बहुत समयतक मेरी आँखें मुँदी रहीं। तत्पश्चात् मेरे नेत्रोंसे कुछ जलकी बूँदें पृथ्वीपर पड़ गयीं। महासेन ! उन्हीं अश्रु-विन्दुओंसे महान् रुद्राक्ष वृक्ष उत्पन्न हो गये। मेरी आज्ञासे समस्त देवताओंके कल्याणार्थ उन्हीं वृक्षोंसे अड़तीस प्रकारके रुद्राक्ष फलरूपमें प्रकट हुए। कपिल-वर्णवाले बारह प्रकारके रुद्राक्षोंकी सूर्यके

नेत्रोंसे, श्वेतवर्णके सोलह प्रकारके रुद्राक्षोंकी चन्द्रमाके नेत्रोंसे तथा कृष्णवर्णवाले दस प्रकारके रुद्राक्षोंकी अग्निके नेत्रोंसे उत्पत्ति मानी जाती है। ये ही इनके अड़तीस भेद हैं। श्वेतवर्ण-वाला रुद्राक्ष जातिसे 'ब्राह्मण', रक्तवर्णवाला, 'क्षत्रिय', मिले हुए रंगवाला 'वैश्य' तथा कृष्णवर्णवाला 'शूद्र' कहा जाता है (अर्थात् तत्तद्वर्णवाले पुरुषोंको तत्तद्वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये)।

एक मुखवाला रुद्राक्ष स्वयं शंकरका विग्रह समझा जाता है। दो मुखवालेको शंकर और पार्वतीका रूप मानते हैं। जिसमें तीन मुख हों, वह रुद्राक्ष स्वयं अग्निस्वरूप है। चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्मा माना जाता है। जिसमें पाँच मुख हों, उसे स्वयं कालाग्नि नामक रुद्र मानते हैं। छः मुखवाला रुद्राक्ष स्वामी कार्तिकेयका विग्रह है। पुरुषको उसे अपने दाहिने हाथमें धारण करना चाहिये। सात मुखवाले रुद्राक्षका नाम महाभाग अनङ्ग है। आठ मुखवाले रुद्राक्षको साक्षात् भगवान् गणेशकी प्रतिमा माना जाता है। आठ मुखवाले रुद्राक्षके धारण करनेसे सभी गुण उनके लिये सुलभ हो जाते हैं। नौ मुखवाला रुद्राक्ष भैरवका स्वरूप है। उसे बायीं भुजामें धारण करना चाहिये। जिसमें दस मुख हों, वह रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् जनार्दनका विग्रह है। ग्यारह मुखवाले रुद्राक्षको ग्यारह रुद्रोंकी प्रतिमा कहा गया है। जिसने बारह मुखवाले रुद्राक्षको अपने कर्णमें धारण कर लिया है, उसके द्वारा बारह सूर्योंकी नित्य उपासना हो चुकी। वत्स ! यदि तेरह मुखवाला रुद्राक्ष मिल जाय तो उसे सम्पूर्ण कामनाओं और सिद्धियोंका देनेवाला स्वामी कार्तिकेयके समान समझना चाहिये। प्रिय पुत्र ! यदि सौभाग्यवश चौदह मुखवाला रुद्राक्ष मिल जाय तो उसे अपने मस्तकपर धारण करना चाहिये। वह स्वयं मेरा विग्रह है। इन रुद्राक्षोंके धारणसे विभिन्न प्रकारके सभी छोटे-बड़े पापोंका नाश होता है और महान् शुभ फलकी प्राप्ति होती है।

मुने ! रुद्राक्ष धारण करनेवाला पुरुष सदा देवताओंसे सुपूजित होता है। उसे अन्तमें परमगति प्राप्त हो जाती है। षडानन ! एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी अथवा पचास एवं सत्ताईस दानोंकी माला बनाकर उसे धारण करे अथवा जप करे तो उसके द्वारा अनन्त फल मिलता है। यदि पुरुष एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला धारण करता है तो उसे प्रत्येक क्षणमें अश्वमेध यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर भगवान् शंकरने रुद्राक्षके प्रकार, मालाओंके लक्षण और प्रकारभेद, माला धारणकी विधि, उनके फल तथा रुद्राक्षकी महान् महिमा बड़े विस्तारसे बतलाकर अन्तमें कहा—एक मुखवाला रुद्राक्ष परम तत्त्वका प्रकाशक है। उसे धारण करनेसे हृदयमें परम तत्त्वका ज्ञान होता है। मुनिवर ! दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वरका रूप है। उसे निरन्तर धारण करनेसे भगवान् अर्धनारीश्वर प्रसन्न होते हैं। तीन मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् अग्निका विग्रह है। इसके प्रभावसे तत्काल ब्रह्महत्या भस्म हो जाती है; अथवा तीन मुखवाला रुद्राक्ष तीन अग्नियोंका स्वरूप है। जो उसे धारण करता है, उसपर अग्निदेव प्रसन्न हो जाते हैं। चार मुखवाले रुद्राक्षको ब्रह्माका स्वरूप माना गया है। उसे धारण करनेसे पुरुष महान् धनाढ्य, आरोग्यवान् और श्रेष्ठ माना जाता है। साथ ही

उसके हृदयमें ज्ञानकी प्रचुर सम्पत्ति भर जाती है। शुद्धिके लिये मनुष्य ऐसा रुद्राक्ष धारण करे। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष पञ्चब्रह्मस्वरूप है। उसे धारण करनेसे भगवान् शंकर संतुष्ट हो जाते हैं। छः मुखवाले रुद्राक्षके अधिदेवता स्वामी कार्तिकेय हैं। कुछ विद्वान् पुरुष कहते हैं कि इसके प्रधान देवता गणेश भी हैं। सात मुखवाले रुद्राक्षके अधिदेवता सात मातृकाएँ, सात अश्व और सात मुनि भी हैं। उसे धारण करनेसे महान् लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, पुरुष आरोग्य और आदरका पात्र होता है, उसे ज्ञानकी प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त होती है। पुण्यात्मा पुरुष इसे अवश्य धारण करे। आठ मुखवाले रुद्राक्षकी अधिदेवी अष्ट-मातृका हैं। ऐसा पवित्र रुद्राक्ष आठ वसुओं तथा गङ्गाको संतुष्ट करता है। उसे धारण करनेसे उपर्युक्त सत्यवादी देवता प्रसन्न हो सकते हैं। नौ मुखवाले रुद्राक्षको धर्मराजका स्वरूप कहा गया है। उसे धारण करनेसे किसी प्रकार भी यमराजका भय नहीं हो सकता। दस मुखवाले रुद्राक्षके प्रधान देवता दसों दिक्पाल कहे गये हैं। उसे धारण करनेसे पुरुष दसों दिशाओंका प्रेमभाजन बन जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। ग्यारह मुखवाले रुद्राक्षके देवता ग्यारह रुद्र हैं अथवा कुछ लोग इन्द्रको भी इसके प्रधान देवता कहते हैं। इसे धारण करनेसे सदा सुखकी वृद्धि होती है। बारह मुखोंसे युक्त रुद्राक्ष भगवान् महाविष्णुका स्वरूप है। उसके देवता बारह सूर्य हैं। ये देवता धारण करनेवालेका सदा भरण-पोषण करते हैं। तेरह मुखवाला सुन्दर रुद्राक्ष कामना और सिद्धि प्रदान करता है। उसे धारण करनेमात्रसे कामदेव संतुष्ट हो जाते हैं। चौदह मुखवाला रुद्राक्ष स्वयं भगवान् शंकरके नेत्रसे प्रकट हुआ है। उसके प्रभावसे सम्पूर्ण व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं और पुरुष सब प्रकारसे आरोग्यवान् बन जाता है। रुद्राक्ष धारण करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिंजना तथा लसौड़ाका फल न खाय। ग्रहण, विषुव, संग्राम, संक्रान्ति, अयन, अमावस्या और पूर्णमासी आदि पर्वों तथा पुण्य दिवसोंमें सदा रुद्राक्ष धारण किये रहे। इससे वह समस्त पापोंसे तुरंत छूट जाता है।

(अध्याय ३—७)

☆

## भूतशुद्धि, भस्ममाहात्म्य तथा प्रातःसंध्याका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—महामुने ! अब भूतशुद्धिका प्रकार कहता हूँ। पहले ऐसा चिन्तन करे—देवी कुण्डलिनी मूलाधारसे उठकर सुषुम्णामार्गपर होती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक पहुँची है। इसके बाद साधक पुरुष 'सोऽहम्' इस मन्त्रसे जीवका ब्रह्ममें संयोजन करे। इसके पश्चात् अपने शरीरमें पैरोंसे लेकर घुटनोंतकका भाग पृथ्वीका स्थान है—ऐसी भावना करे। यह पृथ्वीका स्थान चौकोर है। वज्रके चिह्नसे युक्त और पीतवर्ण है। इसमें 'लं' बीज अङ्कित है। घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागको जलका स्थान मानकर यह भावना करे कि इसकी आकृति अर्धचन्द्रके समान है। इसमें दो कमल-चिह्न अङ्कित हैं। इसका वर्ण शुक्ल है। यह जलमण्डल 'वं' इस बीज-मन्त्रसे अङ्कित है। नाभिसे लेकर कण्ठतकके भागको भावनाद्वारा त्रिकोणाकार अग्निमण्डलके रूपमें देखे। उसका वर्ण लाल है, उसमें स्वस्तिकका चिह्न है और वह

'रं' बीजसे युक्त है—इस प्रकार चिन्तन करे। हृदयसे ऊपर भौंहोंतकका भाग वायुमण्डल है। उसका वर्ण धूम्र है। उसकी आकृति षट्कोण है और वह छः बिन्दुओंसे चिह्नित और 'यं' इस बीजसे अङ्कित है—ऐसी भावना करे। भौंहोंके मध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतकका भाग आकाशमण्डल है। उसकी आकृति गोल और रंग श्वेत तथा परम मनोहर है। उसमें 'हं' बीज अङ्कित है—ऐसा ध्यान करे। इस प्रकार चिन्तन करनेके पश्चात् प्रत्येक भूतका एक-दूसरेमें लय करे—पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको प्रकृतिमें विलीन करे। यह प्रकृति ही अपरब्रह्म अथवा माया कहलाती है। इसका परमात्मामें लय करे। इस प्रकार परम ज्ञानसे सम्पन्न होकर अनादि जन्मोंमें संचित किये हुए पाप-समुदायका एक पुरुषके रूपमें चिन्तन करे। वह बायीं कुक्षिमें बैठा है। अँगूठेके परिमाणवाला वह पापपुरुष कृष्णवर्णका है। ब्रह्महत्या उसका शिरोभाग है। सुवर्णकी चोरी उसकी दो भुजाएँ हैं। वह सुरापानरूपी हृदयसे युक्त है। गुरुतल्प ही उसका कटिभाग है। इन पापों और पापियोंका संसर्ग ही उसके दो चरण हैं। उपपातक उसका मस्तक है। वह अपने हाथोंमें ढाल-तलवार लिये हुए है। उसके शरीरका रंग काला है। ऐसे उस दुःसह पापपुरुषका मुख नीचेकी ओर है। इस प्रकार चिन्तन करे। तत्पश्चात् वायुबीज 'यं' का स्मरण करते हुए पूरक प्राणायामसे वायुको भरकर उसके द्वारा इस पापपुरुषके शरीरको सुखा दे। फिर 'रं' इस वह्निबीजके द्वारा अग्नि प्रकट करके अपने शरीरसे युक्त उस पापपुरुषको भस्म कर दे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष यह चिन्तन करे कि कुम्भकके जपसे यह पाप-पुरुष भस्म हो गया है। अब इस पुरुषके दग्ध हुए शरीरके भस्मको वायुबीज 'यं' के जपसे रेचक प्राणायाम करके बाहर निकाल दे। तदनन्तर विद्वान् पुरुष अपने शरीरसे उत्पन्न हुए भस्मको सुधाबीज 'वं' का उच्चारण करनेसे प्रकट हुआ जो अमृत है, उससे आप्लावित करे। फिर भूबीज 'लं' से उसको एकत्र करके उसे सुवर्ण-अण्ड-जैसा बना ले। तदनन्तर आकाशबीज 'हं' उच्चारण करके उस अण्डको विकसित रूपमें परिणत करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुषको मस्तकसे लेकर पैरतक सम्पूर्ण अङ्गोंकी रचना करनी चाहिये। पुनः आकाश आदि पाँच भूतोंकी अपने चित्तमें कल्पना करे। 'सोऽहम्' इस मन्त्रके द्वारा अपने हृदयकमलपर आत्माको विराजमान करे। इसके बाद जिस कुण्डलिनीसे जीव ब्रह्ममें संयोजित हुआ है, उस कुण्डलिनीको तथा परमात्माके संसर्गसे सुधामय जीवको हृदयरूपी कमलपर स्थापित करके मूलाधारमें विराजनेवाली देवी कुण्डलिनीका ध्यान करे। 'रक्तवर्णवाले जलका एक समुद्र है। उसमें एक नौका है, जिसपर एक कमल खिला हुआ है। उसीपर यह देवी विराजमान हैं। इसने अपने छः करकमलोंमें त्रिशूल, इक्षुधनुष, रत्नमय पाश, अङ्कुश, पाँच बाण और रक्तसे भरा हुआ खप्पर धारण कर रखा है। तीन नेत्र इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। स्थूल उरोजों और सुन्दर नितम्बोंसे यह सम्पन्न है। ऐसी प्राणशक्ति-स्वरूपा भगवती कुण्डलिनी हमें सुख प्रदान करे।'

इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्ति

देवी कुण्डलिनीका ध्यान करनेके पश्चात् सम्पूर्ण कार्योंमें अधिकार प्राप्त करनेके लिये भस्म धारण करना चाहिये। विभूति-धारण करनेका महान् फल है।

तदनन्तर भगवान् नारायणने शिरोव्रत—भस्ममाहात्म्य, भस्म-भेद, भस्मधारण-विधि, भस्म-माहात्म्यका बड़े ही विस्तारसे वर्णन करके त्रिपुण्ड्रकी महिमा बतलायी। इसके बाद ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारणकी विधि एवं महिमा बतलाकर अन्तमें उन्होंने कहा—नारद! भस्म धारण करनेका विस्तृत माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया। अब संध्योपासनके उत्तम पुण्यका प्रसङ्ग सुनो। अनघ! पहले प्रातःसंध्योपासनका विधान बतलाता हूँ। प्रातःकालकी संध्या ताराओंके रहते-रहते, मध्याह्नकी संध्या जब सूर्य मध्य-आकाशमें हों तब और सायंकालकी संध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें चले जानेपर करनेका विधान है। इस प्रकार तीन तरहकी संध्या प्रतिदिन करनी चाहिये।

देवर्षिसत्तम! सूर्योदयसे पूर्व जबतक तारे दिखायी देते रहें—संध्याका उत्तम काल है। ताराओंके छिपनेसे लेकर सूर्योदयतक मध्यम और सूर्योदयके पश्चात् अधम काल है—यों तीन प्रकारकी प्रातःकालीन संध्या बतायी गयी है। जब सूर्य दिखायी देते रहें, उस समय की गयी सायं-संध्या उत्तम, सूर्यास्तके बाद ताराओंके उदयसे पहले की हुई संध्या मध्यम और ताराओंके उदयके पश्चात् की गयी सायं-संध्या निम्न श्रेणीकी समझी जाती है। सायं-कालीन संध्याके ये तीन प्रकार कहे गये हैं*। ब्राह्मण एक वृक्ष है। उनकी जड़ें ये संध्याएँ हैं, वेद शाखा हैं और धार्मिक कृत्य पत्ते हैं। अतएव यत्नपूर्वक जड़की ही रक्षा करनी चाहिये। यदि मूल ही कट गया तो न वृक्ष रहेगा और न शाखा ही।† जिसे संध्याका ज्ञान नहीं है और जो संध्या नहीं करता है, वह द्विज शूद्रके समान है। जीते हुए भी उसे मृतक समझना चाहिये और जन्मान्तरमें वह कुत्ता होता है। अतः द्विजको नित्य उत्तम संध्योपासना करनी चाहिये। संध्योपासनके अभावमें किसी भी शुभ कर्ममें उसका अधिकार नहीं है। जब सूर्य उदय और अस्त हों, उस समयसे तीन-तीन घड़ी बादतक संध्योपासना की जा सकती है। इसके बाद संध्या करनेपर प्रायश्चित्त लगता है। उचित समय बीत जानेपर यदि संध्या की जाय तो चार बार अर्घ्य देना चाहिये। अथवा संध्योपासनसे पूर्व एक सौ आठ (१०८) बार गायत्रीका जप करके तब संध्योपासन करे। (अभिप्राय यह है कि कुछ ही कालका अतिक्रमण हुआ हो, तब तो चार बार अर्घ्य देनेसे और अधिक समय व्यतीत हो गया हो तो १०८ बार गायत्रीका जप करनेसे प्रायश्चित्त सम्पन्न होता है।)

जिस समय जो कर्म करना हो, उस समयकी अधीश्वरी देवी गायत्री हैं; अतएव

---

* उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका। अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमास्तमिते रवौ। अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता॥
(११।१६।४-५)

† विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र संध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा॥ (११।१६।६)

संध्योपासना करके ही समयोचित कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। गृहपर की हुई संध्या 'साधारण' कही गयी है, गोशालाकी संध्याको 'मध्यम' कहते हैं, नदीके तटपर की गयी संध्या 'उत्तम' श्रेणीकी तथा देवालयमें की हुई संध्या 'उत्तमोत्तम' है। जो गायत्रीदेवीके उपासक हों, उनके लिये तो देवीके समीप ही संध्योपासन करना श्रेष्ठ है। वहाँ त्रैकालिक संध्या करनेसे अनन्त फल मिलता है। गायत्रीदेवीके अतिरिक्त ब्राह्मणोंके लिये और कोई देवता नहीं हैं। ब्राह्मणोंके लिये विष्णु और शिवकी नित्य उपासना भी महादेवी गायत्रीकी आराधनाके समान नहीं हो सकती—यह श्रुतिका वचन है। देवी गायत्रीकी उपासना सम्पूर्ण वेदोंका सार है। ब्रह्मा आदि देवता भी संध्याकालमें इन गायत्रीका ध्यान और जप करते हैं। वेदोंद्वारा नित्य इनका जप होता है; अतएव इनका नाम 'वेदोपास्या' है। देवी गायत्री ही वेदकी माता और आदिशक्ति हैं। अतः इन देवीकी उपासना परम आवश्यक है।

नारद ! अब संध्याकी विधिका क्रम बतलाते हैं—केशव आदि नामोंका उच्चारण करके आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् संध्योपासनमें प्रवृत्त होना चाहिये। वे नाम इस प्रकार हैं—केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि और श्रीकृष्ण। इन चौबीस नामोंके पूर्वमें ॐकार और अन्तमें 'स्वाहा' और 'नमः' लगाकर उच्चारण करके आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ केशवाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः'—इन तीन नाम-मन्त्रोंसे आचमन करके 'ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ माधवाय नमः'—इन दो मन्त्रोंसे हाथका प्रक्षालन करे। 'मधुसूदन' और 'त्रिविक्रम' इन दो नामोंसे अँगूठेके मूलद्वारा ओठका तथा 'वामन' और 'श्रीधर'—इन नामोंसे मुखका सम्मार्जन करे। 'हृषीकेश' का उच्चारण करके बायें हाथका, 'पद्मनाभ'से दोनों पैरोंका, 'दामोदर'से मस्तकका, 'संकर्षण'से बीचकी तीन अँगुलियोंद्वारा मुखका, 'वासुदेव' एवं 'प्रद्युम्न'—इन दो नामोंसे अँगूठे और तर्जनी अँगुलियोंद्वारा दोनों नासापुटोंका 'अनिरुद्ध' और 'पुरुषोत्तम'—इन दोनों नामोंसे अँगूठे और अनामिकाद्वारा दोनों नेत्रोंका, 'अधोक्षज' और 'नारसिंह'—इन दो नामोंसे दोनों कानोंका, 'अच्युत' का उच्चारण करके कनिष्ठिका और अँगूठेद्वारा नाभिका, 'जनार्दन' से हाथके तलवेद्वारा हृदयका, 'उपेन्द्र' से सिरका, एवं 'ॐ हरये नमः, ॐ कृष्णाय नमः'—इन दो नामोंसे दक्षिण और वाम भुजाका स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार इन नामोंद्वारा प्रत्येक अङ्गके स्पर्शका विधान है।

विवेकी पुरुष दाहिने हाथसे जल पीते समय उसका बायें हाथसे भी स्पर्श किये रहें। पीनेवाला जल तबतक शुद्ध नहीं समझा जाता जबतक बायें हाथका स्पर्श न हो। आचमन करते समय हाथकी मुद्रा गौके कानके समान होनी चाहिये। एक मासा जल पीनेका विधान है। दाहिना हाथ हो, अँगूठा और कनिष्ठिका—ये दोनों अलग-अलग हों तथा बीचकी तीनों अँगुलियाँ सटी हुई हों—यों आचमन करनेका विधान किया गया है।

तदनन्तर प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायाम करते समय पहले प्रणवका उच्चारण करके तुरीय पदके साथ गायत्रीका उच्चारण करे। नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुका रेचन करना, बायेंसे वायु भरना और वायुको धारण किये रहना—इन्हींको पण्डित पुरुषोंने रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम कहा है। वायुको खींचते समय दाहिनी नासिकाको अँगूठेसे दबावे, इसके बाद कनिष्ठिका और अनामिका दो अँगुलियोंसे बायीं नासिकाको बंद कर ले। 'मध्यमा' और 'तर्जनी' का स्पर्श होना निन्द्य है। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें संयमशील योगियोंद्वारा इसी प्रकारके रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायामका वर्णन किया गया है। जो वायुका सृजन करता है, वह रेचक, जो पूर्ण करता है वह पूरक और जो उसे साम्यस्थितिसे धारण किये रहता है, वह कुम्भक प्राणायाम कहलाता है। पूरक करते समय नील कमलदलके समान श्यामसुन्दर चतुर्भुज भगवान् विष्णुका नाभिदेशमें ध्यान करे। कुम्भक करते समय भगवान्‌की नाभिसे प्रकट हुए कमलके आसनपर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्भुज ब्रह्माजीका हृदयमें ध्यान करे तथा रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेतवर्ण, निर्मल पापोंका संहार करनेवाले महादेवजीका ललाटमें ध्यान करे। पुरुष पूरक प्राणायामसे भगवान् विष्णुका सायुज्य, कुम्भकसे ब्रह्मपद तथा रेचकसे भगवान्‌के तृतीय पदका अधिकारी होता है।

देवर्षिसत्तम ! मैंने पहले जो बतलाया है, वह पौराणिक आचमन है। मुने ! अब मैं पापहारी श्रौत आचमनकी विधि बतलाता हूँ, सुनो। पहले प्रणवका उच्चारण करके गायत्रीकी ऋचा (तत्सवितुः आदि) का जिसमें उच्चारण होता है और पदके आदिमें तीनों व्याहृतियाँ उच्चरित होती हैं—इस मन्त्रको पढ़कर किया हुआ श्रौत आचमन कहा जाता है। प्रणव, व्याहृति और शीर्षकके साथ गायत्रीका प्राणायामके समय जप करना चाहिये। यही तीन प्राणायाम हैं। लक्षणसहित प्राणायामोंका वर्णन कर चुका। यह अनेक पापोंका संहार और महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है।

अन्य पक्षकी रीतिसे प्राणायामकी मुद्रा बताते हैं। उनका यह सिद्धान्त है कि गृहस्थ और वानप्रस्थके लिये पाँचों अँगुलियोंद्वारा प्रणवका उच्चारण करके नासिकाके अग्रभागको दबाना चाहिये। इस मुद्रासे समस्त पाप भस्म हो जाते हैं। ब्रह्मचारी और संन्यासी कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठ—इन दो अँगुलियोंसे प्राणायाम करें। 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओंसे कुशाके जलद्वारा तीन बार शरीरका प्रोक्षण करे अथवा इन तीनों ऋचाओंमें जो नौ पद हैं, उनके आदिमें प्रणवका उच्चारण करके उनसे मार्जन करनेका नियम है। इस मार्जनसे एक वर्षका संचित पाप धुल जाता है। तत्पश्चात् 'सूर्यश्च०' इस मन्त्रको पढ़कर आचमन करे। यह आचमन अन्तः-करणके पापोंका अन्त करनेवाला है। (कुछ लोग मार्जन करनेका अन्य प्रकार बतलाते हैं—) उनका कथन है, प्रणव और व्याहृतिके साथ गायत्रीका और 'आपो हि ष्ठा' इस सूत्रका साथ-साथ उच्चारण करके मार्जन करना चाहिये। अपने दाहिने हाथको गौके कानके समान बनाकर उसमें जल ले ले। उस जलको नासिकाके अग्रभागपर रखे और सोचे कि मेरी वाम कुक्षिमें पाप बसा हुआ है। कुशके समान

उसकी आकृति है। उसका वर्ण कृष्ण है। यों भावना करते हुए 'ऋतञ्च सत्यम्०' इस ऋचाका पाठ करे। तत्पश्चात् 'द्रुपदादिव०' इस ऋचाको पढ़कर नासिकाके दाहिने छिद्रसे श्वास-मार्गद्वारा शरीरमें रहनेवाले उस पापको हाथके जलमें उपस्थित करे और उसपर दृष्टि न डालकर उस जलको अपने वामभागमें भूमिपर फेंक दे। ऐसी भावना करे कि मेरा शरीर अब बिलकुल निष्पाप हो गया। इसके बाद उठकर खड़ा हो जाय। दोनों पैर सटे रहें। अञ्जलिमें जल ले ले। तर्जनी और अँगूठेको अञ्जलिसे अलग रखे, फिर सूर्यनारायणकी ओर देखकर गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उनको अर्पण करे। मुनिवर ! अर्घ्य देते समय इसी प्रकार तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। इसके बाद उपासक सूर्यका मन्त्र पढ़ते हुए उनकी प्रदक्षिणा करे। मध्याह्न-समयमें एक बार और दोनों संध्याओंमें तीन-तीन बार अर्घ्यदानका नियम है। प्रातः-कालमें कुछ नम्र होकर, मध्याह्नकालमें दण्डकी भाँति सीधे खड़े होकर और सायंकालमें बैठे-ही-बैठे द्विज भगवान् सूर्यको जल अर्पण करे।

अर्घ्य क्यों दिया जाता है, इसका कारण सुनो। मन्देह नामके महापराक्रमी तीस करोड़ राक्षस हैं। उन कृतघ्न राक्षसोंकी आकृति अत्यन्त भयंकर है। वे सूर्यको खा जाना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें, तप ही जिनका धन है, ऐसे सम्पूर्ण ऋषि-मुनिगण भगवती महासंध्याकी उपासना करते हैं; साथ ही अञ्जलिमें जल भरकर उसे छोड़ते हैं। वही जल वज्रके समान हो जाता है, जिससे वे दैत्य भस्म हो जाते हैं। इसीलिये द्विज संध्योपासना करते हैं। यह संध्योपासनक्रिया महापुण्यकी जननी है। नारद ! अर्घ्यदानका यह मन्त्र कहा गया है, सुनो। इसके उच्चारणमात्रसे साङ्गोपाङ्ग संध्याका फल प्राप्त हो सकता है। 'वह सूर्य मैं ही हूँ। मैं ही आत्मज्योति हूँ। मैं ही शिव-सम्बन्धी ज्योति हूँ। आत्मज्योति मेरा ही रूप है। मैं सर्वशुक्र ज्योति हूँ। मैं रसस्वरूप हूँ। वरदायिनी भगवती गायत्री ! तुम ब्रह्मस्वरूपिणी हो। मेरे इस जपमय अनुष्ठानको सिद्ध करनेके लिये तुम यहाँ पधारकर मेरे हृदयमें प्रवेश करो। देवी ! उठो और इस अर्घ्यके जलमें पधारनेकी कृपा करो। देवी ! पुनः मुझे दर्शन देना* ।'

इस प्रकार अर्घ्य देकर पवित्र स्थानमें विद्वान् पुरुष अपना आसन लगावे। उसपर बैठकर वेदमाता गायत्रीका जप करे। मुने ! यहीं प्राणायामके पश्चात् खेचरी मुद्रा करनेका विधान है। मुनिवर ! प्रातःकालकी संध्याके समय इस मुद्राकी आवश्यकता है। नारद ! इसके नामकी व्याख्या करता हूँ, सुनो। जिसके प्रभावसे चित्त और जिह्वा आकाशमें जाकर विचरण करते हैं उसका नाम 'खेचरी' है। साथ ही, जिसकी प्रेरणासे दृष्टि दोनों भौंहोंके अन्तर्गत रहती है, वही मुद्रा खेचरी है। नारद ! सिद्धासनके समान न कोई आसन है, कुम्भक वायुके समान न कोई वायु है और खेचरी मुद्राके समान न कोई मुद्रा है—इसे ध्रुव सत्य

---

* सोऽहमर्कोऽस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः। आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम्॥
आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि। जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम॥
उत्तिष्ठ देवि गन्तव्यं पुनरागमनाय च। अर्घ्येषु देवि गन्तव्यं प्रविश्य हृदयं मम॥
(११। १६। ५८—६०)

समझना चाहिये। वायुको यत्नपूर्वक रोककर घण्टाध्वनिके समान प्लुत स्वरसे प्रणवका उच्चारण करे। उस समय अहंकार और ममताको हृदयसे निकालकर स्थिरभावसे आसनपर बैठे रहना चाहिये। मुनिवर नारद! अब सिद्धासनका लक्षण कहता हूँ, सुनो। एक पैरका मूल लिङ्गके मूलपर और दूसरे पैरका मूल अण्डकोशके नीचे दृढ़ स्थिर रहे तथा हृदय आदि शरीर दण्डकी भाँति सीधे हों। इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार रहे। स्थाणुकी भाँति हिले-डुले नहीं। भौंहोंके मध्यमें दृष्टि स्थिर रखे। इस प्रकारका आसन योगियोंके लिये अत्यन्त सुखदायी है। इसीको सिद्धासन कहते हैं।

(अब गायत्रीके आवाहन तथा नमस्कारका मन्त्र बतलाता हूँ—) 'छन्दोंकी माता भगवती गायत्री! महादेवी! यहाँ पधारें। माता! वे वरदायिनी देवी और अक्षर ब्रह्म तुम्हीं हो। ब्रह्मस्वरूपिणी देवी! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। जो दिनमें पाप बन चुके हैं, उनसे तुम्हारी सायंकालकी उपासनासे तथा रात्रिमें बने पापोंसे प्रातःकालीन उपासनासे मेरा उद्धार हो। महादेवी! तुम सर्ववर्णा, संध्या, विद्या, सरस्वती, अजरा, अमरा और सर्वदेवी नामसे विख्यात हो। तुम्हें नमस्कार है।' इसके बाद 'तेजोऽसीति०' इत्यादि मन्त्रसे देवीका आवाहन करना चाहिये। देवी! मैंने जो कुछ भी तुम्हारा यह अनुष्ठान किया है, वह सब पूर्ण हो जाय। इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे*।

तत्पश्चात् सम्यक् प्रकारसे शापसे मुक्त होनेके लिये यत्न करे। ब्रह्मशाप, विश्वामित्रशाप तथा वसिष्ठशाप—ये सभी शाप दो प्रकारके हैं। ब्रह्माका स्मरण करनेसे ही ब्रह्मशाप निवृत्त हो जाता है। ऐसे ही विश्वामित्रका स्मरण करनेसे उनका शाप तथा वसिष्ठका स्मरण करनेसे वसिष्ठका शाप नष्ट हो जाता है। परमात्माका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—'ये पुरुषाकार परब्रह्म परमात्मा मेरे हृदय-कमलपर विराजमान हैं। ये सत्यात्मक, सम्पूर्ण जगत्के साक्षात् विग्रह और शाश्वत हैं। इनकी परमात्मा संज्ञा है। ये एक, चिद्रूप तथा वाणीसे अगम्य हैं। ऐसे इन परम प्रभुका मैं नित्य ध्यान करता हूँ।'†

नारद! अब न्यासकी विधि कहूँगा। यह संध्याका प्रधान अङ्ग है। पहले ॐकारका प्रयोग करके तब मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। 'ॐ भूः पादाभ्यां नमः' यही उच्चारण करनेका नियम है। ऐसे ही 'ॐ भुवः जानुभ्यां नमः', 'ॐ स्वः कटिभ्यां नमः', 'ॐ महः नाभ्यै नमः', 'ॐ जनः हृदयाय नमः', 'ॐ तपः कण्ठाय नमः', और 'ॐ सत्यं ललाटाय नमः।' यह अङ्गन्यासका प्रकार है। करन्यास यों करना चाहिये—'ॐ तत्सवितुः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः', 'ॐ वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः', 'ॐ भर्गो देवस्य

---

* आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम्। गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे॥
यदह्नात् कुरुते पापं तदह्नात् प्रतिमुच्यते। यद् रात्रात् कुरुते पापं तद् रात्रात् प्रतिमुच्यते॥
सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति। अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोऽस्तु ते॥
(११।१६।६८—७०)

† हृत्पद्ममध्ये पुरुषप्रमाणं सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम्। ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम्॥
(११।१६।७५)

# ॥ श्रीगायत्रीयन्त्रम् ॥

मध्यमाभ्यां नमः', 'ॐ धीमहि अनामिकाभ्यां नमः','ॐ धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां नमः' तथा 'ॐ प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः'—इस प्रकार विद्वान् पुरुष अङ्गुष्ठ आदि न्यास करें। अब हृदयादि न्यास कहे जाते हैं—'ॐ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमः', 'ॐ विष्ण्वात्मने वरेण्यं शिरसे नमः', 'ॐ रुद्रात्मने भर्गो देवस्य शिखायै नमः', 'ॐ सत्यात्मने धीमहि कवचाय नमः', 'ॐ सर्वात्मने प्रचोदयात् नमः अस्त्राय फट्'—इस प्रकार हृदयादि न्यास करना चाहिये।

महामुने ! इसके बाद अक्षरन्यास कहता हूँ। यह पापोंका विध्वंसक न्यास गायत्रीके प्रत्येक वर्णसे किया जाता है। प्रथम प्रणवका उच्चारण करके वर्णन्यास करनेकी विधि बतलायी गयी है। पहले 'तत्' कारका उच्चारण करके पैरके दोनों अँगूठोंमें, 'स' कारका दोनों गुल्फोंमें, 'वि' कारका दोनों जाँघोंमें, 'तु' कारका दोनों जानुओंमें, 'व' कारका ऊरुओंमें, 'रे' कारका गुदामें, 'णि' कारका लिङ्गमें, 'य' कारका कटिभागमें, 'भ' कारका नाभि-मण्डलमें, 'गो' कारका हृदयमें, 'दे' कारका दोनों स्तनोंमें, 'व' कारका हृदयमें, 'स्य' कारका कण्ठकूपमें, 'धी' कारका मुख देशमें, 'म' कारका तालुमें, 'हि' कारका नासिकाके अग्रभागमें, 'धि' कारका नेत्रमण्डलमें, 'यो' कारका भ्रूमध्यमें, 'यो' कारका ललाटमें, 'न' कारका मुखके पूर्वभागमें, 'प्र' कारका मुखके दक्षिणभागमें, 'चो' कारका मुखके पश्चिम-भागमें, 'द' कारका मुखके उत्तर, भागमें, 'या' कारका मस्तकमें एवं 'त' कारका सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये। जपमें तत्पर रहनेवाले कुछ पुरुषोंने इस न्यासकी विधिको अभीष्ट नहीं माना है। तदनन्तर जगज्जननी भगवती जगदम्बाका, जो महादेवी नामसे विख्यात हैं, ध्यान करना चाहिये।

(भगवती गायत्रीका ध्यान—) इन भगवती परमेश्वरीका श्रीविग्रह जपाकुसुमके समान प्रतिभासे सम्पन्न होकर भास रहा है। ये कुमारी-अवस्थामें विराजमान हैं। लालचन्दनसे अनुलिप्त होकर रक्तकमलके आसनपर आसीन हैं। इनकी माला भी लाल वर्णकी है। चार मुखों और दो भुजाओंसे शोभा पानेवाली ये देवी लाल रंगके वस्त्र पहने हुए हैं। इनके प्रत्येक मुखमें दो-दो नेत्र हैं। इन्होंने स्रुक्, स्रुवा, जप-माला और कमण्डलु धारण कर रखा है। सम्पूर्ण आभरण इनके दिव्य विग्रहको प्रकाशित कर रहे हैं। ये भगवती ऋग्वेदका अध्ययन कर रही हैं। हंस इनका वाहन है। ब्रह्माजी इन्हें अपने हृदयमें विराजमान करके इनकी उपासना करते हैं। इनके (ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद) चार पद हैं। (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, अधर, अन्तरिक्ष और अवान्तर आदि दिशाएँ—इन) आठ कुक्षियोंसे ये शोभा पाती हैं। (व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्यौतिष, इतिहास-पुराण और उपनिषद्—ये) भगवती महेश्वरीके सात सिर हैं। अग्नि मुखके, रुद्र शिखाके और विष्णु चित्तके स्थानमें शोभा पाते हैं। इस प्रकार भगवती गायत्रीका ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मा जिनके कवच हैं, सांख्य-शास्त्र जिनका गोत्र कहा गया है तथा जो आदित्य-मण्डलमें विराजमान रहती हैं, उन भगवती महेश्वरीका अपने हृदयमें ध्यान करे।

इस प्रकार वेदमाता भगवती गायत्रीका विधिपूर्वक ध्यान करके उन्हें परम प्रसन्न

करनेवाली पवित्र मुद्राएँ बनानी चाहिये। सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलि, शकट, यमपाश, ग्रन्थित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव—ये चौबीस मुद्राएँ हैं। भगवती गायत्रीके सम्मुख इन मुद्राओंके प्रदर्शनका बड़ा महत्त्व है। इसके बाद विद्वान् पुरुषको सौ अक्षरोंवाली गायत्रीकी एक आवृत्ति करनी चाहिये। गायत्रीके चौबीस अक्षर तो वर्णित हैं ही; 'जातवेदसे सुनवाम सोम०' तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे०'—इन वैदिक मन्त्रोंका साथ ही उच्चारण करनेसे सौ अक्षरोंवाला यह गायत्री-मन्त्र सम्पन्न हो जाता है*। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि एक बार इसका भी जप करें। इस जपके पश्चात् पहले ॐकारका उच्चारण करके 'भूर्भुवः स्वः' इसके साथ चौबीस अक्षरोंवाली गायत्रीका जप करे। इस प्रकार नित्य जप करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण संध्याके सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त करके परम सुखी हो जाता है।

(अध्याय ८—१६)

☆

## गायत्री-महिमा तथा पूजा-विधि

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भिन्न पादवाली गायत्री ब्रह्महत्याका शमन करती है। अभिन्न पादवाली गायत्रीका जप किया जाय तो पुरुष पापका भागी बन जाता है। सुव्रत! धर्मशास्त्रों, पुराणों और इतिहासोंमें गायत्री विविध प्रकारकी मानी गयी है— प्रणवसे सम्पुटित, छः ॐकारसे संयुक्त। 'पाँच प्रणववाली गायत्रीका जप करना चाहिये' यह भी शास्त्रोंकी आज्ञा है। जितना जप करना अभीष्ट हो, उसके आठवें भागमें गायत्रीके चौथे पादका जप करना आवश्यक है। इस प्रकार जप करनेवाले द्विजको भी ज्ञानी समझना चाहिये। वह सायुज्यपदका अधिकारी हो जाता है। एक सम्पुटा, षडोंकारा—ये दो गायत्रियाँ केवल ब्रह्मचारियोंके लिये हैं। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा मोक्षकामी पुरुष तुरीया गायत्रीका जप करे। गायत्रीका तुरीय पाद 'परो रजसे सावदोम्' यही है। इस तुरीय पादमें ब्रह्मका ध्यान करनेसे ही जपका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। अब ध्यान बतलाता हूँ। सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निकी तुलना करनेवाला प्रणवस्वरूप, अचिन्त्यमय, विकसित, हृदयस्थ कमल ही जिनका आसन है, वे ब्रह्म अचल, परम सूक्ष्म, ज्योतिःस्वरूप एवं सच्चिदानन्दमय हैं; वे मेरी प्रसन्नताके साधक बनें।

त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्ष, माला, लिङ्ग और अम्बुज—ये सात महामुद्राएँ तुरीय गायत्रीको प्रदर्शित करनी चाहिये। संध्याको ही गायत्री कहते हैं। इसका रूप सच्चिदानन्दमय है;

---

* ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।—यह सौ अक्षरकी गायत्री है। इसमें 'भूर्भुवः स्वः' तीन व्याहृतियाँ नहीं गिनी जाती हैं। ॐ (एक प्रणव) से सम्पन्न है।

अतएव द्विजको चाहिये कि भक्तिपूर्वक इन गायत्रीदेवीका नित्य पूजन और नमन करे। मनमें ध्यान करके पाँच प्रकारके उपचारोंसे इनकी मानसिक पूजा की जाती है। 'लं' पृथ्वी-स्वरूपिणी देवीको गन्ध अर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। 'हं' आकाशस्वरूपिणी देवीको पुष्प समर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। 'यं' इस वायुस्वरूपिणी देवीको धूप समर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। 'रं' इस अग्निस्वरूपिणी देवीको दीपक प्रदान करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। 'वं' इस अमृतस्वरूपिणी देवीको नैवेद्य अर्पण करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है* । यं, रं, लं, वं, हं—इनका उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करनी चाहिये। इस प्रकार मानसिक पूजा करनेके उपरान्त मुद्रा प्रदर्शित करे। फिर मनसे देवीका ध्यान करते हुए मुखसे मन्त्रोंका धीरे-धीरे उच्चारण करे। सिर और ग्रीवाको कँपाना निषिद्ध है। दाँत न दिखाये—अर्थात् ठठाकर हँसे नहीं। विधिके साथ एक सौ आठ, अट्ठाईस अथवा अशक्त हो तो दस बार ही गायत्रीका जप करे। इससे कम किसी भी स्थितिमें नहीं जपना चाहिये। इसके बाद 'उत्तम०' इत्यादि अनुवाक्‌का मन्त्र पढ़कर देवीका विसर्जन किया जाता है।

विद्वान्‌को जलमें खड़े होकर कभी भी गायत्रीका जप नहीं करना चाहिये; क्योंकि कुछ महर्षियोंका यह कथन है कि यह अग्निमुखी कहलाती है। जपके बाद सुरभि, ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पङ्कज, लिङ्ग और निर्वाण—ये आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करे। तदनन्तर इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—'कश्यपके प्रति प्रिय भाषण करनेवाली देवी ! मेरे उच्चारण करनेमें जो अक्षर, पद, स्वर और व्यञ्जनकी त्रुटि हो गयी हो, वह सब आप क्षमा करनेकी कृपा करें।† महामुने ! तदनन्तर गायत्री-तर्पण करनेका नियम है। इसका गायत्री छन्द है, विश्वामित्र ऋषि कहे गये हैं, सविता देवता हैं। तर्पण करनेके लिये इसका विनियोग किया जाता है।

(तर्पणका यह नियम है—) 'भूः' से ऋग्वेद पुरुषका, 'भुवः' से यजुर्वेदका, 'स्वर्' से सामवेदका, 'महः' से अथर्ववेदका, 'जनः' से इतिहास-पुराणका 'तपः' से सम्पूर्ण आगम-शास्त्रोंका, 'सत्यं' से सत्यलोक-संज्ञक पुरुषका और 'ॐ भूः' से भूर्लोकसंज्ञक पुरुषका, 'भुवः' से भुवर्लोक पुरुषका, 'स्वर्'से स्वर्लोक पुरुषका, 'ॐभूः' से एकपदा नामवाली गायत्रीका, 'भुवः' से दो पदवाली गायत्रीका, 'स्वः' से तीन पदवाली गायत्रीका तथा 'ॐ भूर्भुवः' से चतुष्पदा गायत्रीका मैं तर्पण करता हूँ—यों कहना चाहिये। इसके बाद उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी, अजा, कौशिकी, साङ्कृति और सार्वाजति—इन नामोंका उच्चारण करके भगवती गायत्रीका तर्पण करना चाहिये। तर्पणके अनन्तर

---

* लं पृथिव्यात्मने गन्धमर्पयामि नमो नमः। हमाकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो नमः।
यं च वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत्। रं च वह्न्यात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत्॥
वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि चार्पयेत्॥ (११। १७। ११—१३)

† यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यञ्जनवर्जितम्। तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि॥ (११। १७। १९-२०)

'जातवेद सं०' आदि ऋचाका पाठ करना आवश्यक है। विद्वान् पुरुष शान्तिके लिये 'मानस्तोके०' इस मन्त्रका भी पाठ करे। इसके बाद 'त्र्यम्बकं०' इस मन्त्रका पाठ करे। शान्त्यर्थ 'तच्छन्त्यो०' इस मन्त्रका भी जप किया जाता है। इसके बाद 'देवा गातु०' इस मन्त्रको पढ़कर अपने दोनों हाथोंसे सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करे। फिर 'स्योना पृथिवी०' इस मन्त्रको पढ़कर पृथ्वीदेवीको प्रणाम करनेका विधान है। श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि वे प्रणाम करते समय नियमानुसार अपने नाम और गोत्रका उच्चारण कर लें।

इस प्रकारका विधान प्रातःकालकी संध्याका कहा गया है। संध्या-कर्म समाप्त करके स्वयं अग्निहोत्र भी करे। होम करनेके पश्चात् सावधान होकर पाँच देवताओंकी पूजा करनी चाहिये, ये पाँच देवता हैं—भगवती शिवा, शंकर, गणेश, सूर्य और विष्णु। पुरुष सूक्त, व्याहृति, मूलमन्त्र अथवा 'श्रीश्च ते०' इस मन्त्रसे पूजा की जा सकती है। मण्डलके मध्यभागमें भवानीकी पूजा होनी चाहिये। ईशानकोणमें माधवकी, अग्निकोणमें गिरिजापति शंकरजीकी, नैर्ऋत्य-कोणमें गणेशकी और वायव्य-कोणमें सूर्यकी क्रमशः स्थापना करके पूजा करे। सोलह प्रकारके उपचारोंसे सोलह ऋचाओंका पाठ करके मनुष्य इन देवताओंको वस्तुएँ अर्पण करे। सर्वप्रथम देवीकी पूजा करके क्रमशः अन्य देवताओंका पूजन करना चाहिये। कारण, देवीकी पूजासे बढ़कर पुण्य कहीं भी नहीं दिखायी पड़ता। इसीलिये संध्याओंमें संध्याकी उपासना की जाती है। अक्षतसे भगवान् विष्णुकी, तुलसीसे गणेशकी, दूर्वासे दुर्गाकी और केतकी पुष्पसे शंकरकी पूजा नहीं करनी चाहिये। मालती, चमेली, कुटज, पनस, किंशुक, बकुल, कुन्द, लोध, करवीर, शिंशपा, अपराजिता, अगस्त्य, मन्दार, सिन्दुवार, पलास, दूर्वा, बिल्वपत्र, कुशकी मञ्जरी, शल्लकी, माधवी, मन्दारका पुष्प, केतकी, कचनार, कदम्ब, नागकेसर, चम्पा, जुही और तगर आदि पुष्प भगवतीको अत्यन्त प्रिय हैं। गुग्गुलसे भवानीके लिये धूप और तिलके तेलसे दीपक प्रज्वलित करना चाहिये। इस प्रकार देवीकी पूजा करके मूलमन्त्रका जप करे। बुधजन यों पूजा समाप्त करनेके बाद ही वेदके अध्ययनमें तत्पर हों। इसके बाद अपनी वृत्तिके अनुसार अपवर्गका साधन करनेके लिये तपमें प्रवृत्त होना चाहिये। विद्वान् पुरुष दिनके तीसरे भागमें नियमपूर्वक इस तपका अवकाश प्राप्त करता है।

श्रीनारदजीने कहा—मानद ! अब मैं श्रीदेवीकी विशेष पूजाका विधान सुनना चाहता हूँ, जिसके करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—देवर्षे ! भगवती जगदम्बाकी पूजाका क्रम कहता हूँ, सुनो ! यह प्रसङ्ग भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला तथा स्वयं अखिल आपत्तियोंका निवारक है। सर्वप्रथम आचमन करके मौन होकर संकल्प करे। भूतशुद्धि आदि करना आवश्यक है। मातृकान्यास करके षडङ्गन्यास करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष शङ्खकी स्थापना करके अर्घ्य आदि सामग्री एकत्र करे। पूजनोपयोगी उपस्थित द्रव्योंका अस्त्रमय जलसे प्रोक्षण करे। फिर गुरुसे आज्ञा लेकर पूजा आरम्भ करे। प्रथम पीठकी पूजा सम्पन्न करके देवीका ध्यान

करनेका नियम है। भगवतीके प्रति सदा भक्ति और प्रेमपूर्वक आसन आदि उपचार अर्पण करनेके पश्चात् पञ्चामृत एवं रस आदिसे उन्हें स्नान कराये। जो पुरुष पौण्ड्र-संज्ञक गन्नेके रससे भरे हुए सैकड़ों कलशोंद्वारा भगवती महेश्वरीको स्नान कराता है, उसका फिर जगत्‌में जन्म नहीं होता। इसी प्रकार जो पुरुष वेदका पारायण करके आम अथवा ईखके रससे भगवती जगदम्बाको स्नान कराते हैं, उनके घरसे लक्ष्मी और सरस्वती कभी दूर नहीं होतीं। जो श्रेष्ठ मानव वेदका पारायण करते हुए दाखके रससे भगवती जगदम्बाका अभिषेक करते हैं, वे अपने कुटुम्बोंसहित रसमें जितने रेणु हैं, उतने वर्षोंतक देवीलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। कर्पूर, अगुरु, केसर, कस्तूरी और कमलके जलसे वेदपाठ करते हुए देवीको स्नान करानेवाले पुरुषके सैकड़ों जन्मोंके उपार्जित पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। जो पुरुष दुग्धपूर्ण कलशोंसे वेदके मन्त्र पढ़कर देवीको स्नान कराता है, वह कल्पपर्यन्त क्षीरसागरमें निरन्तर स्थान पाता है। दहीसे स्नान करानेवाला पुरुष दधि-कुण्डका अधिपति होता है। मधु, घृत तथा शर्करासे स्नान करानेवाले पुरुषोंको तत्तद् वस्तुओंके स्वामी होनेकी सुविधा प्राप्त होती है। भक्तिपूर्वक हजार कलशोंसे देवीको स्नान करानेवाला पुण्यात्मा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें भी सुखी होता है। भगवतीको दो रेशमी वस्त्र प्रदान करके पुरुष वायुलोकमें जाता है। रत्नजटित भूषण देवीको अर्पण करनेवाला मानव दूसरे जन्ममें राजा होता है। केसर, कस्तूरीकी बिन्दी, ललाटपर सिन्दूर एवं देवीके चरणोंमें महावर लगानेवाला पुरुष देवताओंका स्वामित्व प्राप्त करके इन्द्रासनपर विराजमान होता है।

साधुपुरुष पूजाकी विधिमें अनेक प्रकारके पुष्प बतलाते हैं। उन पुष्पोंको अर्पण करके पुरुष स्वयं कैलासधाम प्राप्त कर लेता है। भगवती आद्याशक्तिको पवित्र बिल्वपत्र अर्पण करने चाहिये। बिल्वपत्र समर्पण करनेवाले पुरुषको कभी किसी भी परिस्थितिमें दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। तीन पत्तेवाले बिल्वपत्रपर रक्त चन्दनसे यत्नपूर्वक स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरोंमें मायाबीज मन्त्र (ह्रीं) तीन बार लिखे। मायाबीज जिसके आदिमें हो, उस नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका उच्चारण करके अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़कर (ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः) इस मन्त्रसे महादेवी भगवती जगदम्बाके चरणकमलमें परम भक्ति-पूर्वक वह कोमल पत्र समर्पण करे। जो भक्तिके साथ इस प्रकार भगवतीकी उपासना करता है, वह ब्रह्माण्डका स्वामी होता है। अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ नूतन कुन्दपुष्पोंद्वारा देवीकी पूजा करनेवाला पुरुष निश्चय ही प्रजापतिके पदका अधिकारी होता है। ऐसे ही अष्टगन्धसे चर्चित कोटि-कोटि मल्लिका और मालतीसे जो भगवतीकी पूजा करता है, वह चतुर्मुख ब्रह्मा होता है। मुने ! इसी प्रकार दस करोड़ पुष्पोंसे पूजा करनेवाले मानवको विष्णुपदकी, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, प्राप्ति होती है। पूर्व समयमें भगवान् विष्णु भी अपना पद प्राप्त करनेके लिये यह व्रत कर चुके हैं। इस प्रकार एक अरब पुष्पोंके चढ़ानेसे सूत्रात्मा (सूक्ष्म-ब्रह्म) की प्राप्ति होती है। यत्नपूर्वक भक्तिके साथ सम्यक् प्रकारसे किये हुए इस व्रतके प्रभावसे ही भगवान् विष्णु हिरण्यगर्भ हुए हैं। जपाकुसुम (अड़हुल), बन्धूक (दुपहरिया)

और दाड़िम (अनार) का पुष्प भी भगवतीको अर्पण किया जाता है। ऐसी विधि कही गयी है। ऐसे अन्य भी बहुत-से पुष्प भगवती श्रीदेवीको विधिपूर्वक अर्पण करने चाहिये। इसके अनन्त पुण्यफलको ईश्वर भी नहीं जानते। जिस-जिस ऋतुमें जो-जो पुष्प उपलब्ध हो सकते हों, उन हजारों पुष्पोंसे प्रतिवर्ष सावधान होकर भगवती महादेवीकी पूजा करे। जो भक्तिपूर्वक इस प्रकार उपासना करता है, वह महापातकी एवं उपपातकी ही क्यों न हो, उसके सभी पाप भस्म हो जाते हैं। मुने ! ऐसा श्रेष्ठ साधक अन्तमें भगवतीके चरणकमलको, जो प्रधान देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं, प्राप्त कर लेता है—इसमें कोई संशय नहीं है।

कृष्ण अगुरु, कर्पूर, चन्दन, सिल्हक (लोबान), घृत और गुग्गुलसे युक्त धूप महादेवीको दिया जाय, जिससे मन्दिर सुवासित हो उठे। इससे प्रसन्न होकर भगवती देवेश्वरी साधकको तीनों लोक सौंप देती हैं। कर्पूर-खण्डोंसे युक्त दीपक देवीको निरन्तर अर्पण करे। इससे साधकको सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। चित्तको सावधान करके सैकड़ों एवं हजारों दीपक देनेका भी विधान है। इसके बाद देवीके सम्मुख नैवेद्यका पर्वत-जैसा ढेर लगा दे। उसमें लेह्य, चोष्य, पेय और षड्रस सभी वस्तुएँ होनी चाहिये। अनेक प्रकारके स्वादिष्ट रससे भरे हुए दिव्य फल हों। ये सभी पदार्थ सुवर्णके थालमें रखकर देवीको निरन्तर अर्पण करे। श्रीमहादेवीके तृप्त हो जानेपर तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं; क्योंकि अखिल जगत् उन्हींका तो रूप है। जैसे रस्सीमें सर्पका भान होता है, वैसे ही जगत् केवल भासमात्र है। इसके बाद प्रचुर मात्रामें पवित्र गङ्गाजल देवीको निवेदन करे। कर्पूर और नारियल-जलसे युक्त कलशका शीतल जल देवीको अर्पण करे। तत्पश्चात् मुखको सुगन्ध प्रदान करनेवाला ताम्बूल भगवतीको अर्पण करना चाहिये। उस ताम्बूलमें कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़े, इलायची और लवंग हों। इसे भक्तिपूर्वक अर्पण करनेसे भगवती प्रसन्न होती हैं। फिर मृदङ्ग, वीणा, मञ्जीर, डमरू और दुन्दुभि आदि वाद्योंकी ध्वनिसे, अत्यन्त मनोहर संगीत, वेदपाठ, स्तोत्र और पुराणोंके पाठसे भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करे। तदनन्तर सावधान होकर देवीको छत्र और चामर अर्पण करे। श्रीदेवीका नित्यप्रति राजोपचारसे पूजन करनेका नियम है। जगत्को धारण करनेवाली भगवती जगदम्बाको अनेक प्रकारसे दक्षिणा दे। फिर नमस्कार करके बार-बार क्षमा-प्रार्थना करे। एक बारके स्मरण-मात्रसे जब देवी प्रसन्न हो जाती हैं, तब इस प्रकारके उपचार करनेपर प्रसन्न हो जायँ तो इसमें संदेह ही क्या है। पुत्रपर कृपा करना माताका स्वभाव ही है; फिर जिसने माताके प्रति भक्ति की है, श्रद्धा की है, उसके विषयमें तो कहना ही क्या है।

इस विषयमें एक बहुत पुराना इतिहास तुम्हें बतलाता हूँ। मनमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला यह प्रसङ्ग राजा बृहद्रथसे सम्बन्ध रखता है। हिमालयदेशमें कहीं चक्रवाक पक्षी था। वह अनेक देशोंमें घूमता-घामता काशीमें पहुँच गया। भाग्यवश वह पक्षी अन्नपूर्णाके दिव्य स्थानपर जा पहुँचा। अनाथकी भाँति अन्न-कणके लोभसे ही वह वहाँ गया था। अनायास ही आकाशमें घूमते हुए उसके द्वारा मन्दिरकी

प्रदक्षिणा हो गयी। किसी अन्य देशमें न जाकर अब वह मुक्तिप्रदायिनी काशीपुरीमें ही रहने लगा। बहुत दिनोंके बाद वह मृत्युको प्राप्त हो स्वर्गमें गया। वहाँ दिव्यरूपधारी युवक बनकर उसने सम्पूर्ण भोग भोगे। स्वर्गमें दो कल्पतक रहनेके पश्चात् पुनः भूमण्डलपर उसका जन्म हुआ। क्षत्रियोंके उत्तम वंशमें उसकी उत्पत्ति हुई और भूमण्डलपर बृहद्रथ नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वह महान् यज्ञशाली, परम धार्मिक, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, त्रिकालज्ञ, शत्रुविजयी, संयमी और सार्वभौम राजा हुआ। उसे पूर्व-जन्मकी सभी बातें स्मरण थीं, जो जगत्‌में सबके लिंये दुर्लभ है। परम्परासे उसके इस गुणको सुनकर मुनिगण वहाँ आये। राजाने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। वे सब आसनपर विराजे। तत्पश्चात् मुनियोंने पूछा—'राजन्! किस पुण्यके प्रभावसे तुम्हें पूर्वजन्मकी सारी बातें स्मरण हो जाया करती हैं? तुम्हारे द्वारा कौन ऐसा पुण्य कार्य बन चुका है, जिससे तुम त्रिकालज्ञानी हो गये हो? तुम्हारे इस ज्ञानके रहस्यको जाननेके लिये ही हम यहाँ आये हैं। राजन्! तुम कपटरहित हो, यथार्थ बातें हमें बताओ।'

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! मुनियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर उन परम धार्मिक राजा बृहद्रथने उनसे सारी बातें कह सुनायीं। कहा—'मुनिवरो! आप सब लोग मेरे त्रिकालज्ञ एवं ज्ञानी होनेका कारण सुनें। इसके पहले मैं चक्रवाक था। नीच योनिमें मेरी उत्पत्ति हुई थी। मेरे द्वारा अज्ञानवश अकस्मात् देवीके मन्दिरकी प्रदक्षिणा हो गयी। उसी पुण्यके प्रभावसे मैं स्वर्गमें गया। दो कल्पोंतक वहाँ सुख भोगता रहा। उत्तम व्रतका पालन करने-वाले मुनियो! उसीके प्रभावसे इस भूमण्डलपर जन्म लेनेपर भी मुझे तीनों कालकी बातें जाननेकी शक्ति प्राप्त है। भगवती जगदम्बाके चरणोंका स्मरण करनेसे कितना फल होता है, इसे कौन जान सकता है? ओह! आज उनकी महिमाका स्मरण करते ही मेरी आँखोंसे निरन्तर आनन्दके आँसू झर रहे हैं। उन कृतघ्न और पापियोंके जन्मको धिक्कार है, जो जगज्जननी भगवतीको अपना उपास्य देवता समझते हुए भी उनकी आराधना नहीं करते। इस संशयशून्य विषयमें मैं अधिक क्या कहूँ? बस, भगवतीके चरणकमलोंकी ही निरन्तर उपासना करनी चाहिये। इससे बढ़कर धरातलपर दूसरा कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं है। निर्गुणा अथवा सगुणा किसी भी देवीकी भक्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! राजर्षि बृहद्रथ बड़े ही धार्मिक नरेश थे। उनके पूर्वोक्त वचन सुनकर मुनिगणोंका हृदय प्रसन्नतासे भर गया। वे सभी अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। ये भगवती जगदम्बा किस प्रकारके विलक्षण प्रभावोंसे सम्पन्न हैं। इनकी पूजाके कितने महान् फल हैं, इसके विषयमें कौन पूछे और कौन उत्तर दे? अर्थात् इसके प्रष्टा और वक्ता दोनों ही दुर्लभ हैं। (अध्याय १७-१८)

☆

## मध्याह्न-संध्या, तर्पण और सायं-संध्याका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मध्याह्नकालकी पुण्यमयी संध्याका प्रसङ्ग सुनो, जिसके अनुष्ठानसे मनुष्यको अपूर्व उत्तम फल प्राप्त होता है। भगवती गायत्री युवावस्थासे

सम्पन्न हैं। इनका श्वेत वर्ण है। तीन नेत्र इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे वरदमुद्रा, अक्षमाला और त्रिशूल हाथमें लेकर अभय प्रदान करती हैं। वृषभपर आरूढ़ हैं। यजुर्वेद-संहितामें इनकी महिमा गायी गयी है। रुद्र इनके देवता हैं। तमोगुणसे युक्त होकर ये भूमण्डलकी व्यवस्था करती हैं। इन्हींकी कृपासे सूर्य अपने मार्गपर संचरण करते हैं। ऐसी भगवती महामायाको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार आदिदेवीका ध्यान करके आचमन आदि सभी क्रियाएँ पूर्ववत् करनी चाहिये। अब अर्घ्यका प्रकरण बतलाता हूँ। सुन्दर पुष्प चुनना चाहिये। पुष्प न मिल सके तो जल और बिल्वपत्र मिलाकर ही अर्घ्य सम्पन्न करें। यह अर्घ्य सूर्यके सामने ऊपर मुँह करके देना चाहिये। आदिसे लेकर अन्ततक सभी नियम प्रातःकालकी संध्याके समान हैं। सायं और प्रातःकालकी संध्याके समय अर्घ्य देनेका कारण तो श्रुतिमें यह बतलाया गया है कि मन्देह नामके राक्षस सूर्यको निगल जाना चाहते हैं। उनके निवारणार्थ अर्घ्यकी आवश्यकता होती है। अतएव ब्राह्मणको यत्नपूर्वक उन राक्षसोंके निवारणार्थ अर्घ्य देना चाहिये। दोनों संध्याओंमें नित्य प्रणवसहित गायत्रीका उच्चारण करके यह अर्घ्य दिया जाता है। मध्याह्न-कालमें 'आकृष्णेन०' इस मन्त्रसे पुष्प और जल सूर्यको निवेदित करे। पुष्पके अभावमें बिल्वपत्र और दूर्वादलसे पूर्वोक्त विधिके अनुसार यत्नपूर्वक अर्घ्य देनेसे पुरुष साङ्गोपाङ्ग संध्याके फलका अधिकारी हो जाता है।

देवर्षिसत्तम! इसी प्रकरणमें तर्पणकी विधि भी बतलाता हूँ, सुनो। 'भुवः पुरुषं तर्पयामि नमो नमः', यजुर्वेदं तर्पयामि नमो नमः'—इसी प्रकार मण्डल, हिरण्यगर्भ, अन्तरात्मा, सावित्री, देवसेना, सांकृति, संध्या, युवती, रुद्राणी, नीमृजा, सर्वार्थसिद्धिकरी, सर्वमन्त्रार्थसिद्धिदा और भूर्भुवः स्वः पुरुष—इन नामोंके साथ भी 'तर्पयामि नमो नमः'—इन शब्दोंको जोड़कर तर्पण करना चाहिये। यही मध्याह्नका तर्पण है।

इसके बाद 'उदुत्यं० चित्रं देवानां०'इन मन्त्रोंका उच्चारण करके सूर्योपस्थान करे। नारद! तदनन्तर साधनमें तत्पर रहकर मन्त्रका जप किया जाता है। जपका भी प्रकार बतलाता हूँ, सुनो। प्रातःकालके जपके समय दोनों हाथोंको उत्तान, सायंकालमें औंधे और मध्याह्न-कालमें हृदयके पास करके जप करना चाहिये। अनामिका अंगुलीके दूसरे पोरवे अर्थात् मध्यसे आरम्भ करके कनिष्ठिकाके आदि-क्रमसे तर्जनीके मूलपर्यन्त 'करमाला' कही गयी है। हजार गायत्रीका जप करनेसे महापापी ब्राह्मण भी पवित्र हो सकता है। मन, वाणी और इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न हुआ पाप एक हजार गायत्रीका जप करनेसे नष्ट हो जाता है। एक ओर चारों वेदोंका अध्ययन और उनकी पुनः-पुनः आवृत्ति एवं दूसरी ओर गायत्रीका जप रखकर तुलना करनेपर गायत्रीका जप ही उत्तम सिद्ध होता है। इसके बाद ब्रह्मयज्ञकी विधिका क्रम बतलाऊँगा।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! द्विज तीन बार आचमन करके दो बार मार्जन करे। दोनों पैरोंका प्रोक्षण करे। सिर, नेत्र, नासिका, दोनों कान, हृदय और शिखाका सम्यक् प्रकारसे प्रोक्षण करे। देश और कालके उच्चारणपूर्वक संकल्प करके ब्रह्मयज्ञ करे। दाहिने हाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन, आसन, यज्ञोपवीत,

शिखा और तलवेके नीचे एक-एक कुशा रखे। 'विमुक्त होनेके लिये एवं सम्पूर्ण पापोंके विनाशार्थ तथा सूत्रोक्त देवताकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मयज्ञ करता हूँ' यह संकल्प करे। सर्वप्रथम तीन बार गायत्रीका जप करे। 'ॐ अग्निमीळे॰', 'यदङ्गे॰', 'अग्निर्वै॰', 'अथ महाव्रतं चैव पन्था॰' आदि मन्त्रोंका क्रमशः पाठ करे। इसके बाद संहिताके 'विदाम मघव॰', 'महाव्रतस्य॰', 'इषेत्वोर्जे॰', 'अग्न आयाहि॰' 'शन्नो देवी॰', 'अथ तस्य समाम्नाय वृद्धिरादैच॰', 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि॰', 'पञ्चसंवत्सर॰' 'मयरस तजभ॰' और 'गौर्मा॰' इत्यादि मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये। 'अथातो धर्मजिज्ञासा॰', 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा॰', 'तच्छन्त्यो॰', 'ब्रह्मणे नमः'—इन ऋग्वेदके पाँच मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये। इसके बाद देवताओंका तर्पण करके प्रदक्षिणा करे। प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषिगण, सम्पूर्ण छन्द, ॐकार, वषट्कार, व्याहृति, सावित्री, गायत्री, यज्ञ, आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिन-रात, सांख्य, सिद्ध, समुद्र, नदी, पर्वत, क्षेत्र, ओषधि, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सरागण, नाग, पक्षी, गौ, साध्यगण, विप्रगण, यक्ष, राक्षस, भूत एवं यमराज आदिके नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे।

इसके बाद जनेऊको कण्ठी करके ऋषियोंका भी तर्पण करना चाहिये। ऋषियोंके नाम इस प्रकार हैं—शतर्चि, माध्यम, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथ, पावमान, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोहलि और पञ्चशीर्ष। फिर अपसव्य होकर इन ऋषियोंका तर्पण करे—सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल; सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत और ये सभी धर्माचार्य तृप्त हो जायँ—यों उच्चारण करे। जानन्ति, वाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल, बाभ्रव्य, माण्डव्य, माण्डूकेय, गार्गी, वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भारद्वाज, पैङ्ग्य, महापैङ्ग्य, सुयज्ञ, सांख्यायन, ऐतरेय, महाऐतरेय, वाष्कल, शाकल, वसुजातवक्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक और आश्वलायन—ये तथा अन्य भी जो आचार्य हैं, वे सभी तृप्त हो जायँ। फिर पितरोंका तर्पण करे। तत्पश्चात् 'जो कोई मेरे कुलमें उत्पन्न होकर अपुत्र दिवंगत हो चुके हैं, जिनका मेरे गोत्रसे सम्बन्ध है, उनके लिये मैं वस्त्रको निचोड़कर जल देता हूँ, इसे वे स्वीकार करें*—यों कहकर वस्त्र-निष्पीडन करे। महामुने! यह ब्रह्मयज्ञकी विधि मैं तुम्हें बता चुका। जो साधक ब्रह्मयज्ञकी इस उत्तम विधिका पालन करता है, उसे अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके पाठका फल मिल जाता है।

तदनन्तर वैश्वदेव और नित्य-श्राद्ध करना चाहिये। प्रतिदिन अतिथियोंको अन्न देना परम कर्तव्य है। गोग्रास देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भोजन करे। दिनके पाँचवें भागमें यह उत्तम कार्य करना चाहिये। दिनका छठा और

---

* ये के चास्मत् कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः॥
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्। (११।२०।२६-२७)

सातवाँ भाग इतिहास और पुराण आदिके स्वाध्यायमें व्यतीत करे। आठवाँ भाग लौकिक कार्यके लिये है। इसके बाद पुनः संध्या करे।

महामुने! अब सायंकालकी संध्या बतलाता हूँ, जिसके अनुष्ठानसे भगवती महामाया प्रसन्न होती हैं। सायंकालमें साधक योगी आचमन और प्राणायाम करके शान्तचित्त हो पद्मासन लगाकर बैठ जाय। श्रुति-स्मृति-सम्बन्धी कर्मोंमें दो प्रकारके प्राणायाम हैं—सगर्भ और अगर्भ। प्राणवायुको रोककर किये जानेवाले प्राणायामको सगर्भ कहते हैं और केवल ध्यान करनेको अगर्भ। अगर्भ अमन्त्रक होता है। भूतशुद्धिके पश्चात् कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। अन्यथा उसे कर्म नहीं कह सकते। लक्ष्य स्थिर करके पूरक, कुम्भक और रेचक-द्वारा देवताका ध्यान करे। विद्वान् पुरुष सायंकालमें संध्या करते समय भगवती सरस्वतीका इस प्रकार ध्यान करें—'भगवती सरस्वती अब वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुकी हैं। इनका श्रीविग्रह कृष्णवर्ण है। कृष्णवर्णके वस्त्र पहने हुए हैं। इन्होंने अपनी भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे हैं। ये गरुड़पर विराजमान हैं। भाँति-भाँतिके रत्न इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। करधनी और पायजेबसे ध्वनि निकल रही है। इनके मस्तकपर अमूल्य रत्ननिर्मित मुकुट है। तारमय हार इन्हें सुशोभित करते हैं। मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे इनके कपोल परम शोभा पा रहे हैं। इन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है। ये सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं। सामवेद और सत्त्वमार्ग इनके अङ्ग हैं। स्वर्गलोककी व्यवस्था इनके हाथमें है। सूर्यमण्डलसे होकर ये पधारती हैं। अब ये देवी सूर्यमण्डलसे यहाँ आ रही हैं। मैं इनका आवाहन कर रहा हूँ।

इस प्रकार भगवती सरस्वतीका ध्यान करके सायंकालकी संध्याका संकल्प करना चाहिये। 'आपो हि ष्ठा०' इस मन्त्रसे मार्जन तथा 'अग्निश्चेति' से आचमन करें। शेष कर्म प्रातःकालकी संध्याके समान कहा गया है। साधक पुरुष शान्तचित्त हो भगवान् नारायणके प्रसन्नार्थ गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य दे। दोनों पैर समान हों। हाथकी अञ्जलिमें जल भर लिया जाय। मण्डलस्थ देवताका ध्यान करके क्रमशः अर्घ्य प्रदान करे। जलमें अर्घ्य देनेवाला मानव मूर्ख और अज्ञानी समझा जाता है। स्मृतियोंका उल्लङ्घन करनेसे ऐसा द्विज प्रायश्चित्तका भागी होता है। तदनन्तर सूर्यके मन्त्रसे उपस्थान करके कुशके आसनपर बैठकर गायत्रीका जप करना चाहिये। जप एक हजार हो या आधा हजार, किंतु श्रीदेवीका ध्यान करते हुए जप होना आवश्यक है। सायंकालकी संध्याके तर्पणमें भी प्रातःकालकी ही भाँति उपस्थान आदि कार्य करने चाहिये। पहले विनियोग इस प्रकार करे—इसके ऋषि वसिष्ठ, विष्णुरूपा सरस्वती देवता और सरस्वती छन्द हैं। सायंकालीन संध्याके तर्पणमें इसका विनियोग किया जाता है। स्वः पुरुष, सामवेद, मण्डल, हिरण्यगर्भ, परमात्मा, सरस्वती, वेदमाता, सांकृति, संध्या तथा विष्णुस्वरूपिणी वृद्धा सरस्वती, उषसी, निमृजी, सर्वसिद्धिकरी, सर्वमन्त्राधीश्वरी तथा भूर्भुवः स्वः पुरुष—इन नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। यह सायंकालीन तर्पण श्रुति-सम्मत है। नारद! सायंकालकी संध्याका विधान कह दिया। मुनिवर! यह पापोंका

नाशक, सम्पूर्ण क्लेशोंको दूर करनेवाला, व्याधिसे मुक्त करनेमें परम कुशल तथा मोक्षप्रद है। सम्पूर्ण सदाचारोंमें संध्या अपना मुख्य स्थान रखती है। संध्याके प्रभावसे देवी प्रसन्न होकर भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करती हैं।

(अध्याय १९-२०)

## गायत्रीपुरश्चरण और प्राणाग्निहोत्रकी विधि

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! अब देवी गायत्रीका पापनाशक, परम पवित्र तथा यथेष्ट फलदायी पुरश्चरण सुनो। पर्वतके शिखर, नदीतट, बिल्ववृक्षके नीचे, जलाशय, गोशाला, देवमन्दिर, पीपलके नीचे, उद्यान, तुलसीवन किसी पुण्यक्षेत्र अथवा गुरुके निकट तथा जहाँ भी चित्त एकाग्र रह सके, उस स्थलपर भी पुरश्चरण करनेवाला पुरुष सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है। जिस किसी मन्त्रका भी पुरश्चरण आरम्भ करना हो, उसके पूर्व तीनों व्याहृतियोंसहित दस हजार गायत्रीका जप कर लेना आवश्यक है। नृसिंह, सूर्य अथवा वराह—इन देवताओंके तान्त्रिक अथवा वैदिक कर्म गायत्रीका जप किये बिना निष्फल हो जाते हैं। सभी द्विजोंको आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी सदा उपासना करनी चाहिये। गायत्रीके जपद्वारा मन्त्रको शुद्ध करके यत्नपूर्वक पुरश्चरणमें लगना चाहिये। मन्त्रशोधनके पूर्व आत्मशुद्धि करना परमावश्यक है। आत्मतत्त्वकी शुद्धिके लिये बुधजन श्रुतिके कथनानुसार तीन लाख अथवा एक लाख गायत्रीका जप करे। आत्मशुद्धि किये बिना कर्त्ताकी जप-होम आदि क्रियाएँ सफल नहीं होतीं। तपस्याके द्वारा शरीरको तपाना, देवताओं और पितरोंका तर्पण करना पुरुषका प्रधान धर्म है। तपस्यासे स्वर्गकी प्राप्ति तथा महान् फल प्राप्त होता है। क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य धनसे और शूद्र द्विजकी सेवासे तथा श्रेष्ठ द्विज जप एवं होमसे अपने आत्माका उद्धार कर सकता है। अतएव द्विजवर! यत्नपूर्वक तप करना अपना परम धर्म है। तपस्याकी चरम सीमा शरीरको सुखा डालनेमें है। शरीरका शोधन करनेके लिये वैध मार्गसे कृच्छ्र एवं चान्द्रायण आदि व्रत करे।

नारद! अब अन्नशुद्धिका प्रकरण कहता हूँ, सुनो। तान्त्रिक और वैदिक पुरुषोंने अयाचित, उञ्छ, शुक्ल और भिक्षावृत्ति—ये चार निश्चित जीविकाएँ बतलायी हैं। इस अन्नसे आत्मा परम शुद्ध हो जाता है। भिक्षामें मिले हुए अन्नको लाकर उसके चार भाग कर ले। एक भाग द्विजोंको, दूसरा गौको और तीसरा अतिथियोंको दे। इसके बाद अवशिष्ट भागमें स्वयं तथा अपनी पत्नीसहित ग्रहण करे। जिस आश्रममें ग्रासकी जो विधि निश्चित है, उसी क्रमका पालन आवश्यक है। उस अन्नपर शक्ति एवं क्रमके अनुसार पहले गोमूत्रका छींटा दे। तत्पश्चात् वानप्रस्थी और गृहस्थको ग्रासकी संख्या निर्धारित करनी चाहिये। ग्रासका परिमाण कुक्कुटाण्ड-जितना है। गृहस्थके लिये आठ ग्रास और वानप्रस्थीके लिये चार ग्रास लेनेका नियम है। ब्रह्मचारी यथेष्ट ग्रास ले सकता है। सर्वप्रथम गोमूत्रकी विधि सम्पन्न करके नौ, छः अथवा तीन बार गायत्रीके मन्त्रद्वारा अन्नका प्रोक्षण करे। गायत्रीकी ऋचाका जप करते समय अंगुलियाँ अस्त-व्यस्त न हों। मन्त्रोंका उच्चारण करके मनसे प्रोक्षण करनेकी विधि कही गयी है।

गायत्री छन्दमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख (अर्थात् २४ लाख) जप करनेसे एक पुरश्चरण सम्पन्न होता है। विश्वामित्रजीका मत है कि बत्तीस लाख जप होना चाहिये। किंतु जिस कार्यसे शरीरके निष्प्राण होनेकी सम्भावना हो, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें अनुचित समझा जाता है तथा वह मन्त्र पुरश्चरणसे हीन कहा गया है। ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष, अधिक मास; मंगलवार, शनिवार; व्यतीपात, वैधृति, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, प्रदोष, रात्रि, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, जन्मनक्षत्र; मेष, कर्क, तुला, कुम्भ और मकर—ये सभी महीने, दिन, योग, तिथियाँ, समय, नक्षत्र और लग्न पुरश्चरण कर्ममें वर्जित हैं। चन्द्रमा और नक्षत्र अनुकूल हों, तब शुक्लपक्षमें पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये। यों पुरश्चरण करनेसे शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। आरम्भमें विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन और नान्दीमुख श्राद्ध करे। ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक भोजनवस्त्रसे संतुष्ट करे। फिर उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर पुरश्चरण आरम्भ करे! शिवके मन्दिर तथा अन्य किसी भी शिवसम्बन्धी स्थानपर द्विज पश्चिमाभिमुख बैठकर जप आरम्भ करे। काशी, केदार, महाकाल, नासिक और महान् क्षेत्र त्र्यम्बक—ये भूमण्डलपर पाँच सिद्ध स्थान हैं अथवा कूर्मासनको सर्वत्रके लिये 'सिद्धपीठ' कहा गया है। आरम्भके दिनसे लेकर समाप्तिके समयतक समानरूपसे प्रतिदिन जप करना चाहिये। न किसी दिन अधिक हो और न कम। प्रधान मुनिगण निरन्तर पुरश्चरण किया करते हैं। प्रातःकालसे आरम्भ करके मध्याह्नतक विधिवत् जप करे। मनपर अधिकार रखे। किसी प्रकारकी अपवित्रता न आने दे। इष्टदेवताका ध्यान और अर्थका चिन्तन करता रहे। घृत, खीर, तिल, बिल्वपत्र, पुष्प, यव और मधु आदि हव्य द्रव्योंसे दशांश हवन करे। मनुका कथन है कि दशांश हवन करनेपर ही मन्त्र सिद्ध होता है। यह गायत्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करती हैं।' अतः इनकी उपासना परमावश्यक है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—तीनों कर्मोंमें इसका पारायण उपयोगी है। इससे बढ़कर इस लोक और परलोकमें कोई भी दूसरा श्रेष्ठ साधन नहीं है। मध्याह्नमें बहुत थोड़ा भोजन करे। मौन रहे। तीनों समय स्नान और संध्योपासन करे। विद्वान् पुरुष मनकी सारी वृत्तियोंको रोककर जलमें तीन लाख मन्त्रोंका जप करे। पहले यों पुरश्चरण करनेके पश्चात् अभिलषित काम्यकर्मोंके निमित्त जप करना चाहिये। जबतक कार्यमें सफलता न प्राप्त हो, तबतक जपका क्रम चालू रखे।

सामान्य काम्यकर्ममें यथावत् विधि कहते हैं। प्रतिदिन सूर्योदय-कालमें ही स्नान करके एक हजार गायत्रीका जप करे। ऐसा करनेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और धन अवश्य प्राप्त होते हैं। तीन महीने, छः महीने अथवा वर्ष बीतते-बीतते पुरुषको सिद्धि प्राप्त हो जाती है। एक लाख घृताक्त कमलके पुष्प हवन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। मुक्ति तो सुलभ हो जाती है। बिना मन्त्रसिद्धिके कर्त्ताके जप और होम आदि सभी क्रियाएँ—चाहे वे सकाम हों अथवा निष्काम—सफल नहीं होतीं। पचीस लाख गायत्रीका जप तथा दही और दूधसे हवन करनेपर पुरुष स्वयं सिद्ध

हो जाता है—यह महर्षियोंका मत है। मनुष्यको अष्टाङ्गयोगसे जो फल प्राप्त होता है, वही फलसिद्धि इस जपके प्रभावसे प्राप्त होती है। साधक शक्त हो अथवा अशक्त; किंतु आहार निश्चितरूपसे करे। गुरुके वचनोंपर विश्वास रखते हुए सदा जप करता रहे। छः महीनेतक जप करनेसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है। एक दिन केवल पञ्चगव्य प्राशन करके रहे। एक दिन वायुके आहारपर रहनेका नियम है। एक दिन ब्राह्मणके हाथसे मिला हुआ कुछ सिद्ध अन्न भोजन कर ले। यों नियमपूर्वक गायत्रीका जप करे। गङ्गा आदि पवित्र नदियोंमें स्नान करके जलके भीतर ही सौ मन्त्रका जप करे। फिर सौ मन्त्रोंका उच्चारण करके जल पीये। यों करनेसे पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। यही नहीं; किंतु उसे चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि व्रतोंके फल निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाते हैं। यदि साधक राजा अथवा ब्राह्मण हो तो वह अपने घरपर ही गायत्रीका पुरश्चरण करे। ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थीको भी अपने अधिकारके अनुसार जप आदि करनेके पश्चात् पुरश्चरण करनेसे फल प्राप्त होता है। मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुष श्रौत और स्मार्त आदि कर्म करते हैं। पुरुषको चाहिये कि विद्वानोंसे शिक्षा प्राप्त करके आचारका पालन करते हुए साग्निक होकर यत्नपूर्वक जप करे। फलमूल खाकर रहे। स्वयं आठ ग्रास भोजन करे।

देवर्षे ! इस प्रकार पुरश्चरण करनेसे वह मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है, जिसके अनुष्ठान-मात्रसे दरिद्रता दूर हो जाती है। इसके श्रवणकी इतनी महिमा है कि बड़ी-से-बड़ी सिद्धि स्वयं पुरुषको उपलब्ध हो जाती है।

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब बलिवैश्वदेवकी विधि बतलाता हूँ सुनो। इस पुरश्चरणके प्रसङ्गमें मुझे यह बात स्मरण आ गयी है। देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ— इसीको वैश्वदेवयज्ञ कहते हैं। गृहस्थके घरमें चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली तथा जलस्थानके द्वारा अर्थात् भोजन बनानेके लिये आग जलाने, आटा आदि पीसने, झाड़ू लगाने, धान आदि कूटने तथा जलके घड़े रखने आदिसे पाँच पाप नित्य बनते रहते हैं। इन पापोंका नाश करनेके लिये यह यज्ञ परमावश्यक है। चूल्हा, लोहेके बर्तन, पृथ्वी, मिट्टीके पात्र, कुण्ड अथवा वेदीपर बलिवैश्वदेव नहीं करना चाहिये। अग्निको प्रज्वलित करनेके लिये हाथ, सूप अथवा वस्त्रसे हवा करना अनुचित है। उसे मुँहसे फूँककर प्रज्वलित कर लेना चाहिये; क्योंकि मुखसे तो अग्निका प्राकट्य ही है। कपड़ेद्वारा हवा करनेसे रोग, सूपसे धनका नाश तथा हाथसे हवा करनेसे मृत्यु प्राप्त होती है। मुखकी हवासे अग्निको प्रज्वलित करना कार्यसिद्धिका साधक है। फल, घृत, दही, मूल और शाक आदिसे बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इन वस्तुओंका अभाव हो तो काष्ठ, मूल अथवा तृण आदि किसी भी वस्तुसे किया जा सकता है। घृतसे तर किया हुआ हव्य हवन करना चाहिये। तैल और लवणमिश्रित वस्तु हवनमें निषिद्ध है। घृतके अभावमें दही और दूधसे मिश्रित तथा यदि इनका भी अभाव हो तो जलसे आर्द्र वस्तु भी हवन की जा सकती है। सूखा एवं वासी अन्न हवन करनेसे कोढ़ी, जूँठे अन्नके होमनेसे शत्रुके अधीन, रूखेसे दरिद्र तथा क्षार वस्तुका हवन करनेसे मानव नरकगामी

होता है। कुछ भस्ममिश्रित अङ्गारोंको अग्निसे निकालकर उत्तर दिशामें फेंक दे। तत्पश्चात् अक्षार आदि मिश्रित वस्तुसे हवन करे। बिना बलिवैश्वदेव किये जो द्विज भोजन करता है, उसकी बुद्धि मारी जा चुकी है। वह मूर्ख 'कालसूत्र' नामक नरकमें औंधेमुख रहकर वास करता है। फल, मूल अथवा पत्र—जो कुछ भी वस्तु भोजनके लिये उपलब्ध हो, उसीमेंसे संकल्पपूर्वक अग्निमें हवन करे। यदि वैश्वदेव करनेके पहले ही भिक्षाके लिये भिक्षुक आ जाय तो वैश्वदेवके लिये कुछ सामान अलग रख ले और शेष अन्नमेंसे भिक्षुकको भिक्षा देकर विदा कर दे; क्योंकि पहले वैश्वदेव न करनेसे उत्पन्न हुए दोषको भिक्षुक शान्त कर सकता है; किंतु भिक्षुकके अपमानसे जो दोष बन जाता है, उसे वैश्वदेव दूर करनेमें असमर्थ है। संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों सिद्ध अन्नके स्वामी माने जाते हैं। अतः इन्हें दिये बिना भोजन कर लेनेपर चान्द्रायण व्रत करना आवश्यक होता है।

बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात् गोग्रास निकालना चाहिये। देवर्षियोंद्वारा सुपूजित नारद ! गोग्रासका विधान बतलाता हूँ, सुनो, 'सुरभे ! तुम वैष्णवी माता हो। तुम्हारा नाम सुरभि है। तुम सदा वैकुण्ठमें विराजमान रहती हो। मेरा दिया हुआ यह गोग्रास स्वीकार करो। 'गोभ्यो नमः'*—यों कहकर गौकी पूजा करके ग्रास अर्पण करे। गोग्रास प्रदान करनेसे गोमाता सुरभि परम प्रसन्न हो जाती हैं। इसके बाद गोदोहन-कालतक घरके प्राङ्गणमें खड़े होकर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। जिस समय अतिथि निराश होकर घरसे लौट जाता है, उस समय वह अपना पाप गृहके स्वामीको देकर उसका पुण्य ले जाता है। माता, पिता, गुरु, भाई, प्रजा, सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाले व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्य कहे गये हैं†। जो इस प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न होकर मोहवश गृहस्थाश्रमका निर्वाह नहीं करता, उसके लिये न यह लोक है और न परलोक ही। धनी द्विज धर्मपूर्वक सोमयज्ञसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल एक निर्धन द्विज भलीभाँति पञ्चमहायज्ञ करनेसे पा लेता है।

मुनिवर ! अब प्राणाग्निहोत्रका प्रकरण कहता हूँ, जिसे जानकर प्राणी जन्म, मृत्यु और जरा आदि रोगोंसे मुक्त हो जाता है। इस विधिसे भोजन करनेवाला पुरुष तीनों ऋणोंसे छूट जाता है। वह अपनी इक्कीस पीढ़ीके पुरुषोंको नरकसे निकाल देता है। सम्पूर्ण यज्ञोंके फल उसे सुलभ हो जाते हैं। वह जहाँ कहीं भी जाने-आनेमें स्वतन्त्र हो जाता है। ऐसी भावना करनी चाहिये कि हृदयरूपी कमल अरणि है, मन मन्थन-काष्ठ है, वायु रस्सी है। यों मन्थन करनेपर अग्नि प्रकट हो गयी है। यह नेत्र अध्वर्यु बनकर यज्ञ कर रहा

---

* सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता। गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम्॥
गोभ्यो नमः॥ (११। २२। १७)

† अतिथिर्यत्र भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः। अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निरेते पोष्या उदाहृताः॥
(११। २२। १९-२०)

है। ऐसी भावना करके तर्जनी, मध्यमा और अँगूठेसे प्राणरूपी अग्निमें आहुति डाले। मध्यमा, अनामिका और अँगूठेसे अपानके लिये; कनिष्ठिका, अनामिका और अँगूठेसे व्यानके लिये; कनिष्ठा, तर्जनी और अँगूठेसे उदानके लिये तथा सम्पूर्ण अँगुलियोंसे अन्न उठाकर समान संज्ञक प्राणाग्निके लिये आहुति छोड़े। इन नाममन्त्रके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण करना चाहिये। अर्थात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा'—यों कहे। मुखमें आहवनीय अग्नि, हृदयमें गार्हपत्याग्नि, नाभिमें दक्षिणाग्नि तथा नीचेके भागमें सभ्य एवं आवसथ-संज्ञक अग्नि विद्यमान हैं—ऐसा चिन्तन करे। वाणी होता है, प्राण उद्गाता है और चक्षु ही अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, श्रोत्र आग्नीध्रके स्थानपर हैं, अहंकार यज्ञसम्बन्धी पशु है और प्रणवको पय कहा गया है। बुद्धिको पत्नी कहा गया है, जिसके अधीन रहकर गृहस्थ पुरुष कार्य सम्पादन करता है। छाती वेदी है, रोम कुश हैं तथा दोनों हाथ स्त्रुक् और स्त्रुवा हैं। 'ॐ प्राणाय स्वाहा' इस मन्त्रके सुवर्णके समान कान्तिवाले क्षुधाग्नि नामक ऋषि हैं, सूर्य देवता हैं और गायत्री इसका छन्द कहा जाता है। 'ॐ प्राणाय स्वाहा' इस मन्त्रके अन्तमें यह भी कहना चाहिये कि यह हवि महाभाग सूर्यके लिये है, न कि मेरे लिये; अर्थात् 'इदमादित्यदेवाय न मम।'

अपान-मन्त्रके गोदुग्धके समान शुक्ल आकृतिवाले श्रद्धाग्नि ऋषि हैं। सोमको इसका देवता कहा गया है। उष्णिक् छन्द है। 'ॐ अपानाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम' यों मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। व्यान-मन्त्रके कमलके सदृश वर्णवाले आख्यात-संज्ञक अग्नि ऋषि हैं, देवता अग्नि हैं और उसका अनुष्टुप् छन्द कहा गया है। 'ॐ व्यानाय स्वाहा' कहकर अन्तमें 'इदमग्नये न मम' यह भी उच्चारण करना आवश्यक है। उदान-मन्त्रके गोपबहूटीके समान वर्णवाले अग्नि ऋषि हैं और वायु इसके देवता कहलाते हैं। बृहती छन्द है। पहले-जैसे ही 'ॐ उदानाय स्वाहा, इदं वायवे न मम' इस प्रकार द्विजको उच्चारण करना चाहिये। समान-मन्त्रके बिजलीके समान वर्णवाले विरूपक नामक अग्नि ऋषि हैं। इस मन्त्रके देवता पर्जन्य माने जाते हैं और पंक्ति छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति 'ॐ समानाय स्वाहा, इदं पर्जन्याय न मम' इस मन्त्रका उच्चारण करे। इसके बाद छठी आहुति देनी चाहिये। इस मन्त्रके वैश्वानर नामक महान् अग्नि ऋषि कहे जाते हैं। गायत्री छन्द है। इसके देवता आत्मा हैं। मन्त्र स्वाहान्त उच्चारण करनेका विधान है—'ॐ परमात्मने स्वाहा, इदमात्मने न मम'। इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र किया जाता है। इस विधिको जानकर करनेके पश्चात् पुरुष ब्रह्म-भावको प्राप्त हो जाता है। यों इस प्राणाग्निहोत्र विद्याका संक्षेपसे तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया।　　(अध्याय २१-२२)

☆

## प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भोजनके पश्चात् उत्तम साधक पुरुष 'ॐ अमृतापिधानमसि'—इस मन्त्रका उच्चारण करके आचमन करे। इसके बाद पात्रमें बचे हुए अन्नको उच्छिष्टभागी पितरोंके लिये अर्पण करे। उस समय ऐसा कहना चाहिये—'हमारे कुलमें

उत्पन्न तथा जो भी दास-दासी हो चुके हैं तथा जो हमसे अन्न पानेकी अभिलाषा रखते हैं, वे सभी भूतलपर रखे हुए मेरे इस अन्नसे तृप्त हो जायँ* ।' तदुपरान्त इस मन्त्रसे जल दे—'रौरव नामक नरक घोर अपवित्र स्थान है। जो वहाँ असंख्य वर्षोंसे यातना भोग रहे हैं और जिन्हें मुझसे जल पानेकी इच्छा है। वे इस दिये हुए अक्षयोदकसे तृप्त हो जायँ†।' भोजनके समय हाथमें पड़े हुए पवित्रकको ग्रन्थि खोलकर पृथ्वीपर रख दे। जो विप्र उसे पात्रमें ही रख देता है, उसे पंक्तिदूषक कहते हैं। यदि द्विजका उच्छिष्टसे या कुत्ते अथवा चाण्डालसे स्पर्श हो जाय तो वह दोषका भागी होता है। उसे इस दोषसे छूटनेके लिये एक रात उपवास और पञ्चगव्यका प्राशन करना आवश्यक है। अनुच्छिष्टकी स्थितिमें स्पर्श होनेपर केवल स्नान कर ले। प्राणाग्निहोत्रके विशेषज्ञ ब्राह्मणोंको जो अन्नदान करता है, वह भी पुण्यका भागी होता है। दाता और भोक्ता—दोनों समान फलके भागी होते हैं। दोनोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

जो द्विज हाथमें पवित्रक धारण करके विधिपूर्वक भोजन करता है, उसे प्रत्येक ग्रासमें पञ्चगव्यके प्राशन-जैसा पुण्यफल उपलब्ध होता है। पूजाके तीनों काल अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें प्रतिदिन जप, तर्पण, होम और ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इसे ही पुरश्चरण कहते हैं। पृथ्वीपर शयन करे। मनमें धार्मिक भावना बनी रहे, क्रोधके वशीभूत न हो, इन्द्रियोंपर अधिकार रहे, थोड़ा और मधुर पदार्थ भोजन करे और चित्तको शान्त रखे। नित्य तीनों समय स्नान करे। मुँहसे कभी अपवित्र वाणी न निकाले। स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक और जूठे मुँह रहनेवालेसे बातचीत न करे। चाण्डालसे वार्तालाप न करे। मुनिवर ! जप, होम और पूजन करते समय किसीको प्रणाम करके बातचीत न करे। मैथुनसम्बन्धी बातचीत तथा गोष्ठी करना वर्जित है। मन, वाणी और कर्मसे सभी अवस्थाओंमें सर्वदा और सर्वत्र (अष्ट) मैथुनका त्याग करे। इसीको ब्रह्मचर्य कहते हैं।

राजा और गृहस्थके लिये भी ब्रह्मचर्यकी ऐसी बातें कही गयी हैं कि वे अपनी ऋतुस्नाता स्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक नियमित सङ्ग करें। स्त्री पाणिगृहीता और सवर्णा हो। ऋतु देखकर रात्रिके अवसरपर नियमित गमन करे। इससे ब्रह्मचर्यका नाश नहीं होता। तीनों ऋणोंका मार्जन और पुत्रोंको उत्पन्न किये बिना ही जो यज्ञोंका अनुष्ठान करके संन्यास लेना चाहता है, वह नरकमें गिरता है। बकरीके गलेके स्तनकी भाँति उसके जन्मको श्रुति निष्फल बतलाती है। विप्रेन्द्र ! इसलिये तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेका कार्य करना भी आवश्यक है। वे तीनों ऋण देवताओं, ऋषियों और पितरोंके हैं। ब्रह्मचर्य-द्वारा ऋषियोंके, तिलोदक-दानसे पितरोंके तथा यज्ञसे देवताओंके ऋणसे पुरुष मुक्त हो जाता है। अपने-अपने आश्रममें रहकर धर्मका आचरण करे। विद्वान् पुरुष दूध, फल, शाक और हविष्य भोजन करे। इस प्रकार रहकर जप करे। कृच्छ्र-

* ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकाङ्क्षिणः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन भूतले॥ (११।२३।२)

† रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम्। अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ (११।२३।३)

चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाला पुरुष लवण, क्षार, अम्ल, गाजर, काँसीपात्रमें भोजन, ताम्बूलभक्षण, दोनों समयका भोजन, दूषित वस्त्र-धारण, उन्मत्तकी भाँति बातचीत तथा श्रुति-स्मृतिसे विरुद्ध व्यवहार एवं रात्रिमें वैदिक मन्त्रका जप न करे। जूआ, स्त्री और परापवादमें समय न व्यतीत करे। देवताओंके पूजन, स्तवन और शास्त्रावलोकनमें उसका समय व्यतीत हो। पृथ्वीपर शयन करे। ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करे और मौन रहे। प्रतिदिन तीनों समय स्नान करे। नीच कर्मोंका परित्याग कर दे। पूजा, दान, आनन्द, स्तुति और कीर्तन—ये नित्य उसके द्वारा होते रहें। नैमित्तिक पूजा करे और गुरु एवं देवताओंमें विश्वास रखे। जपशील पुरुषके लिये परम सिद्धि प्रदान करनेवाले ये बारह धर्म हैं।

प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उनके सामने ही जप करे। निष्कामभावसे अपने किये हुए सम्पूर्ण कर्म देवताके अर्पण करे। पुरश्चरण करनेवाले पुरुषको इस प्रकारके नियमोंका पालन करना आवश्यक है। अतएव द्विज प्रसन्नतापूर्वक जप और होममें सदा लगा रहे। तपस्या और अध्ययन करता रहे तथा प्राणियोंपर दया करे। तपस्यासे स्वर्गकी प्राप्ति हो जाती है। तप महान् फलको देनेवाला है। नियमित रूपसे तपस्या करनेवाले पुरुषके सभी कर्म सिद्ध हो जाते हैं। जिन-जिन ऋषियोंने जिस-जिस प्रयोजनकी सिद्धिके लिये देवताओंकी स्तुति की, उन पुरश्चरण करनेवाले ऋषियोंकी वे-वे कामनाएँ पूरी हो गयीं। उनके शान्ति आदि कर्म, जो अनेक प्रकारके हैं, आगे बताये जायँगे; परंतु वे सभी कर्म, पहले पुरश्चरण करके आरम्भ करने चाहिये। तभी वे सिद्धि देनेवाले होते हैं।

स्वाध्यायाभ्यसन अर्थात् गायत्री-मन्त्रके पुरश्चरणमें द्विज पहले प्राजापत्य व्रत करे। इस व्रतका नियम यह है कि सिर और दाढ़ीके बाल बनवा ले, नखोंको कटवाकर पवित्र हो जाय। एक दिन-रात पवित्रतापर पूर्ण ध्यान दे। वाणीपर पूरा अधिकार रखे। सत्य बोले। पवित्र मन्त्रों तथा व्याहृतियोंका जप करे। गायत्रीकी तीनों ऋचाओंके आदिमें ॐकार लगाकर जप करे। 'आपो हि ष्ठा॰' यह सूक्त पवित्र एवं पापोंका संहारक है। ऐसे ही 'पुनन्त्यः स्वस्तिमत्यश्च॰' और 'पावमान्यः' ये भी पुनीत मन्त्र हैं। सभी कर्मोंके आदि और अन्तमें सर्वत्र इनका प्रयोग करना चाहिये। शान्त्यर्थ एक हजार, एक सौ अथवा दस बार इनका पाठ करना आवश्यक है। अथवा ॐकार और तीनों व्याहृतियोंसहित त्रिपदा गायत्रीका दस हजार जप करे। आचार्यों, ऋषियों, छन्दों और देवताओंका जलसे तर्पण करना चाहिये। अनार्य, शूद्र और नीच व्यक्तिसे बातचीत न करे। ऋतुमती स्त्री, पुत्रवधू, पतित, शूद्र मानव तथा देवता, ब्राह्मण, आचार्य और गुरुकी निन्दा करनेवाले व्यक्तिके साथ सम्भाषण न करे। माता और पितासे द्वेष रखनेवाले व्यक्तियोंके साथ भी वार्तालाप न करे। किसीका अपमान न करे। सम्पूर्ण कृच्छ्रव्रतोंके ये ही नियम हैं। मैं आनुपूर्वी इनका वर्णन कर चुका।

अब प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, कृच्छ्र और चान्द्रायणव्रतकी विधि कही जाती है। इसके प्रभावसे पुरुष पाँच प्रकारके पापों तथा सम्पूर्ण दुष्कृत्योंसे मुक्त हो जाते हैं। तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे सम्पूर्ण पाप उसी क्षण भस्म हो जाते हैं। तीन चान्द्रायणव्रत करनेपर पुरुष पवित्र होकर

चन्द्रलोकमें जाता है। आठ चान्द्रायणव्रतके प्रभावसे वर देनेवाले देवताओंका साक्षात्कार करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है। दस चान्द्रायण-व्रत करनेसे छन्दोंका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पा लेता है। तीन दिन प्रातः-काल और तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीका भोजन करे। इसके बाद तीन दिनतक उपवास करे। इस प्रकार द्विजको 'प्राजापत्य' व्रत करना चाहिये।

अब सान्तपनव्रतका स्वरूप बतलाते हैं। पहले दिन गोमूत्र, गोमय, गायका दूध, दही और घृत तथा कुशोदक—इनको एकमें मिलाकर पी ले। दूसरे दिन उपवास करे। इस प्रकार दो रात्रिमें यह कृच्छ्र-सान्तपनव्रत पूर्ण माना गया है। अब अतिकृच्छ्रव्रत कहते हैं। तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास, तीन दिनोंतक दो-दो ग्रास और तीन दिनोंतक तीन-तीन ग्रास तथा तीन दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार द्विजको अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। कृच्छ्र-सान्तपनव्रतमें जो नियम बतलाये गये हैं, उन नियमोंको तिगुनेरूपसे पालन किया जाय तो उसे महासान्तपनव्रत कहते हैं। अब तप्तकृच्छ्रव्रत बतलाते हैं। इस व्रतमें द्विजको चाहिये कि तीन-तीन दिनोंतक क्रमशः जल, क्षीर, घृत तथा वायु पीकर रहे। जल गरम पीना चाहिये। एक समय स्नान करे। नियम-पूर्वक केवल जलके आहारपर रहे। यह प्राजापत्यव्रतकी विधि बतलायी गयी है। मनको अधिकारमें रखे। प्रमत्तकी भाँति आचरण न करे। बारह दिनोंतक उपवास करे। इसीको पराककृच्छ्रव्रत भी कहते हैं। इसमें सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेकी शक्ति है।

अब चान्द्रायण-विधि बतलाते हैं। कृष्ण पक्षमें एक-एक ग्रास कम करे और शुक्ल पक्षमें एक-एक ग्रास बढ़ावे। अमावस्या तिथिको कुछ भी न खाय। चान्द्रायणव्रतमें इस प्रकारकी विधिका पालन करना चाहिये। इस व्रतमें त्रिकालस्नान करनेका नियम है। विप्र प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् अपना आह्निक कृत्य करके मध्याह्नकालमें चार ग्रास भोजन करे। रातमें भी चार ग्रास ले। इसको शिशु चान्द्रायण कहते हैं। संयमपूर्वक रहकर दिनके मध्याह्नकालमें हविष्यके आठ-आठ ग्रास भोजन करे। यह यतिचान्द्रायणव्रत कहलाता है। रुद्र, आदित्य और वसुगण तथा मरुद्गण एवं पृथ्वी आदि सम्पूर्ण कुशल देवता सदा इस व्रतका पालन करते हैं। विधिपूर्वक किया हुआ यह व्रत सात रातमें शरीरके भीतर रहनेवाली त्वक्, असृक्, पिशित, अस्थि, मेद और मज्जा आदि धातुओंको पवित्र कर देता है। यह एक-एक धातु सात रात्रियोंमें पवित्र हो जाती है। इसमें कोई संशय नहीं। इन व्रतोंके द्वारा पवित्र होकर सदा सत्कर्मका अनुष्ठान करता रहे। इस प्रकार शुद्ध हुए पुरुषके कर्म सिद्ध हो जाते हैं—इसमें संशय नहीं है। अन्तःकरणको शुद्ध करके सत्यवादी और जितेन्द्रिय बनकर उत्तम कर्म करनेका विधान है। तभी पुरुष अपने सम्पूर्ण अभिलषित कर्मोंको निश्चितरूपसे प्राप्त करता है। सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित होकर तीन राततक उपवास करे। अथवा तीन राततक नियमका पालन करे। तदनन्तर कार्य आरम्भ करे। इस प्रकार पुरश्चरणका फल प्रदान करनेवाला विधान कहा गया है, जिससे सम्पूर्ण फल सुलभ हो जाते हैं। गायत्रीके पुरश्चरणसे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। देवर्षे !

विशाल पापोंका उच्छेद करनेवाली यह गायत्रीकी उपासना तुम्हारे सामने स्पष्ट कर दी। मन्त्रके जापकको चाहिये कि आरम्भमें देहको शुद्ध करनेवाले व्रतका आचरण करे। तत्पश्चात् पुरश्चरण प्रारम्भ करे। वही सम्पूर्ण फलका अधिकारी होता है। इस प्रकार पुरश्चरणका यह गोपनीय विधान तुम्हें सुना दिया। इसे किसी साधारण व्यक्तिके सामने नहीं कहना चाहिये; क्योंकि इसे श्रुतियोंका सार बतलाया गया है।

(अध्याय २३)

☆

## कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग

नारदजीने कहा—नारायण ! महाभाग ! करुणानिधे ! अब आप गायत्रीकी शान्तिके प्रयोगोंका संक्षेपरूपसे वर्णन कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्माके विग्रहसे प्रकट होनेवाले नारद ! तुमने यह बड़ा ही गोप्य विषय पूछा है। किसी भी दुष्ट अथवा कृपणके सामने इस विषयका स्पष्टीकरण नहीं करना चाहिये। अब शान्तिका प्रकार बतलाते हैं ! द्विजको चाहिये, दूधवाली समिधाओंसे एक हजार गायत्रीका जप करके हवन करे। वे समिधाएँ शमीकी हों। इससे भौतिक रोग और ग्रह शान्त हो जाते हैं अथवा सम्पूर्ण भौतिक रोगोंकी शान्तिके लिये द्विज क्षीरवाले वृक्ष अर्थात् पीपल, गूलर, पाकड़ एवं वटकी समिधाओंसे हवन करे। जप और होमके पश्चात् हाथमें जल लेकर उससे सूर्यका तर्पण करे। इससे शान्ति प्राप्त होती है। जानुपर्यन्त जलमें रहकर गायत्रीका जप करके पुरुष सम्पूर्ण दोषोंको शान्त कर सकता है। कण्ठपर्यन्त जलमें जप करनेसे प्राणान्तकारी भय दूर हो जाता है। सभी प्रकारकी शान्तिके लिये जलमें डूबकर गायत्रीका जप करना चाहिये। ऐसा कहा गया है।

[अब दूसरा प्रयोग कहते हैं—] सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, मिट्टी अथवा किसी दूधवाले काष्ठके पात्रमें रखे हुए पञ्चगव्यद्वारा प्रज्वलित अग्निमें क्षीरवाले वृक्षकी समिधाओंसे एक हजार गायत्रीका मन्त्र उच्चारण करके हवन करे। यह कार्य धीरे-धीरे सम्पन्न करे। प्रत्येक आहुतिके समय मन्त्रका पाठ करके पात्रमें रखे हुए पञ्चगव्यसे समिधाको स्पर्श कराकर हवन करे। हजार बार यों करे। हवनके पश्चात् एक हजार गायत्री-मन्त्र पढ़कर पात्रमें अवशिष्ट पञ्चगव्यका अभिमन्त्रण करे और फिर मन्त्रका स्मरण करते हुए कुशोंद्वारा उस पञ्चगव्यसे वहाँके स्थानका प्रोक्षण करे। इसके बाद वहीं बलि देते हुए इष्टदेवताका ध्यान करे। यों करनेसे अभिचारसे उत्पन्न हुई कृत्या और पापका नाश हो जाता है। जो इस प्रकार करता है, देवता, भूत और पिशाच उसके वशमें हो जाते हैं। अतः गृह, ग्राम, पुर और राष्ट्र—इन सबपर वे अपना अनिष्ट प्रभाव नहीं डाल सकते।

भूमिपर चतुष्कोण मण्डल लिखकर उसके मध्य-भागमें गायत्रीमन्त्र पढ़कर त्रिशूल धँसा दे। इससे भी पिशाचोंके आक्रमणसे पुरुष बच सकता है। अथवा सब प्रकारकी शान्तिके लिये पूर्वोक्त कर्ममें ही गायत्रीके एक हजार मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिशूल गाड़े। वहीं सुवर्ण, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका नवीन दिव्य कलश स्थापित करे। उस कलशमें छिद्र नहीं होना चाहिये। उसे वस्त्रसे वेष्टित कर दे। बालूसे बनी

हुई वेदीपर उसे स्थापित करे। मन्त्रज्ञ पुरुष जलसे उस कलशको भर दे। फिर श्रेष्ठ द्विज चारों दिशाओंके तीर्थोंका उसमें आवाहन करे। इलायची, चन्दन, कर्पूर, जायफल, गुलाब, मालती, बिल्वपत्र, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, धान, यव, तिल, सरसों तथा दूधवाले वृक्ष अर्थात् पीपल, गूलर, पाकड़ और वटके कोमल पल्लव उस कलशमें छोड़ दे। उसमें सत्ताईस कुशोंसे निर्मित एक कूर्च रख दे। यों सभी विधि सम्पन्न हो जानेपर स्नान आदिसे पवित्र हुआ जितेन्द्रिय बुद्धिमान् ब्राह्मण एक हजार गायत्रीके मन्त्रसे उस कलशको अभिमन्त्रित करे। वेदज्ञ ब्राह्मण चारों दिशाओंमें बैठकर सूर्य आदि देवताओंके मन्त्रोंका पाठ करे। साथ ही इस अभिमन्त्रित जलसे प्रोक्षण, पान और अभिषेक करे। इस प्रकारकी विधि सम्पन्न करनेवाला पुरुष भौतिक रोगों और उपचारोंसे मुक्त होकर परम सुखी हो सकता है। इस अभिषेकके प्रभावसे मृत्युके मुखमें गया हुआ मानव भी मुक्त हो जाता है। विद्वान् पुरुष दीर्घ समयतक जीवन धारण करनेकी इच्छावाले नरेशको ऐसा अनुष्ठान करनेकी अवश्य प्रेरणा करे। मुने! अभिषेक समाप्त हो जानेपर ऋत्विजोंको दक्षिणामें सौ गौएँ दे। दक्षिणा उतनी होनी चाहिये, जिससे ऋत्विक्गण संतुष्ट हो सकें अथवा जिसकी जैसी शक्ति हो, उसके अनुसार दक्षिणा दी जा सकती है।

द्विज शनिवारके दिन पीपलके वृक्षके नीचे गायत्रीका सौ बार जप करे। इससे वह भौतिक रोग एवं अभिचारजनित महान् भयसे मुक्त हो जाता है। द्विजको चाहिये कि गुरुचको खण्ड-खण्ड करके उसे क्षीरमें भिगोकर अग्निमें आहुति दे। इस प्रकारके होमको 'मृत्युञ्जय' कहते हैं। इसमें सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश करनेकी शक्ति है। ज्वरकी शान्तिके लिये दूधमें भिगोये आमके पत्रोंसे हवन करे। क्षीरात्त मीठे वचका हवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है। तीन मधु अर्थात्, दूध, दही और घृतसे किये हुए होममें राजयक्ष्माको दूर करनेकी शक्ति है। खीरका हवन करके उसे भगवान् सूर्यको अर्पण करे। फिर प्रसादरूपसे स्वयं प्राशन करे तो राजयक्ष्माका उपद्रव शान्त हो जाता है। सोमलताको गाँठोंपरसे अलग-अलग करके उसे दूधमें भिगोकर क्षयरोगकी शान्तिके लिये द्विज अमावस्या तिथिको हवन करे। शङ्खके वृक्षके पुष्पोंसे हवन करके कुष्ठरोगका निवारण करे। अपामार्गके बीजसे यदि हवन किया जाय तो मिरगी दूर हो सकती है। क्षीरी वृक्षकी समिधासे हवन करनेपर उन्मादरोग शान्त हो जाता है। गूलरकी समिधाका हवन असाध्य प्रमेहरोगको दूर करता है। मधु अथवा ईखके रससे हवन करके पुरुष प्रमेहरोगको शान्त करे। त्रिमधु अर्थात् दूध, दही और घृतके हवनसे मसूरिका (चेचक) रोग शान्त होता है। कपिला गौके घृतसे हवन करके भी मसूरिका रोगको शान्त किया जा सकता है। गूलर, वट और पीपलकी समिधाओंसे हवन करके गौ, घोड़े और हाथीके रोगको दूर करे। पिपीलिका और मधुवल्मीकसंज्ञक जन्तुओंद्वारा गृहमें उपद्रव उपस्थित होनेपर द्विज शमीकी समिधाओं, खीर और घृतसे प्रत्येक कार्यके लिये दो सौ बार हवन करे। इस प्रकार करनेसे वह उपद्रव शान्त हो जाता है। अवशिष्ट पदार्थोंसे वहाँ बलि प्रदान करनी चाहिये।

बिजली गिरने और भूकम्प आदिके लक्षित

होनेपर जंगली बेंतकी समिधासे सात दिनोंतक हवन करे। ऐसा करनेसे राष्ट्रमें राज्यसुख विद्यमान रहता है। पुरुष सौ बार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके जिस दिशामें लोष्टद्वारा प्रताड़न करता है, वहाँ अग्नि, पवन और शत्रुओंसे भय नहीं हो सकता। इस गायत्रीका जप मानसिक ही करना चाहिये। ऐसा करनेसे बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है। गायत्रीका जप करके कुशसे स्पर्श करता हुआ पुरुष भौतिक रोग और विष आदिके भयसे रोगीको मुक्त कर देता है। अभिमन्त्रित जलका पान करके भूत, प्रेत आदिके उपद्रवोंसे मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। भूतादिके उपद्रवको शान्त करनेके लिये गायत्रीमन्त्रका सौ बार उच्चारण करके अभिमन्त्रित किये हुए भस्मको सिरपर धारण करे। ऐसा करनेसे पुरुष सम्पूर्ण व्याधियोंसे मुक्त होकर सौ वर्षोंतक सुखपूर्वक जीवन धारण कर सकता है। यदि स्वयं ऐसा करनेमें अशक्त हो तो दक्षिणा देकर ब्राह्मणद्वारा करवानेकी चेष्टा करे।

तदनन्तर पुष्टि, श्री और लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये द्विजको चाहिये कि पुष्पोंकी आहुति दे। लक्ष्मी चाहनेवाला पुरुष लाल पुष्पोंसे हवन करे। इससे उसे लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है। बिल्वफलके खण्डों, पत्रों और पुष्पोंसे हवन करके पुरुष उत्तम लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। समिधाएँ भी बिल्ववृक्षकी ही होनी चाहिये। दूध और घृतसे मिश्रित हवन करे। सात दिनोंतक प्रतिदिन दो-दो सौ आहुतियाँ देनेपर वह लक्ष्मीको पानेका अधिकारी होता है। तीन मधुओंसे युक्त लाजाका हवन करनेसे पुरुषको कन्या प्राप्त होती है। इस विधिका पालन करनेसे कन्या अभिलषित वर प्राप्त कर लेती है। एक सप्ताहतक लाल कमलकी सौ आहुति देनेपर सुवर्णकी प्राप्ति होती है। गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके सूर्यका तर्पण करनेसे जलमें छिपा हुआ सुवर्ण पुरुष प्राप्त कर लेता है। अन्नका हवन करनेसे अन्नके तथा व्रीहिका हवन करनेसे पुरुष व्रीहिके स्वामी हो जाते हैं। बछड़ेके गोबरके खण्डोंका हवन करनेसे पुरुष पशु-धन पा लेता है। दूध और घृतमिश्रित प्रियङ्गुके हवनसे प्रजाकी अनुकूलता प्राप्त करता है। खीर बनाकर हवन करे और उसे भगवान् सूर्यको अर्पण करके ऋतुस्नाता ब्राह्मणीको भोजन कराये तो पुरुषको श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति होती है। पलाशके अग्रभागसे युक्त समिधाका हवन करके पुरुष आयु प्राप्त करता है। पीपल, गूलर, वट और पाकड़की समिधाका हवन आयु प्रदान करनेवाला है। क्षीरी वृक्षोंकी अग्रभागयुक्त समिधाओंसे, जो तीनों मधुओंसे आर्द्र हों तथा व्रीहियोंसे सौ आहुति देकर पुरुष सुवर्ण और आयु प्राप्त करता है। सुनहरे रंगके कमलसे आहुति देनेपर सौ वर्षकी आयु प्राप्त होती है। दूर्वा, दूध, मधु अथवा घृतसे प्रतिदिन सौ-सौ आहुति देनेपर एक सप्ताहमें अपमृत्यु दूर होती है। ऐसे ही शमीकी समिधा, अन्न, क्षीर और घृतकी एक सप्ताहतक दी हुई सौ-सौ आहुतियाँ अपमृत्युका विनाश करती हैं। न्यग्रोधकी समिधाका हवन करके खीरका हवन करे। एक सप्ताहतक प्रतिदिन सौ-सौ आहुतियाँ होनी चाहिये। इसके प्रभावसे अपमृत्यु दूर हो जाती है।

केवल दूध पीकर गायत्रीका जप करता रहे। इससे एक सप्ताहमें वह मृत्युपर विजय प्राप्त करता है। यदि मौन रहकर बिना कुछ खाये-पीये जप करे तो तीन रातमें यमके पाशसे मुक्त

हो जाता है। यदि जलमें डूबकर जप करे तो उसी क्षण मृत्युसे छुट्टी मिल जाती है। यदि बिल्व-वृक्षके नीचे बैठकर जप करे तो एक महीनेमें राज्य मिल सकता है। मूल, फल और पल्लवसहित बिल्वकी आहुति राज्य प्रदान करती है। कमलकी सौ आहुति देनेपर मानव निष्कण्टक राज्य प्राप्त करता है। अगहनीके चूर्णकी लपसीका हवन करके पुरुष ग्राम प्राप्त करता है। पीपलके वृक्षकी समिधाओंका हवन युद्ध आदिके अवसरपर विजय प्रदान करता है। मदारकी समिधाके हवनसे पुरुष सर्वत्र विजयी होता है। क्षीरसे संयुक्त बेंतके पत्रोंसे अथवा खीरसे यदि सौ आहुति दी जाय तो एक सप्ताहमें वृष्टि होती है। अथवा नाभिपर्यन्त जलमें खड़े होकर एक सप्ताहतक जप करनेपर वृष्टि होती है। जलमें भस्मकी सौ आहुति देनेसे घोर वृष्टि बंद हो जाती है। पलाशकी समिधासे हवन करनेपर ब्रह्मतेज प्राप्त होता है। पलाशके पुष्पोंकी आहुतियाँ सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करती हैं। दूधकी आहुति मेधा तथा घृतकी आहुति बुद्धिकी प्राप्तिमें सहायक है। ब्राह्मी-बूटीके रसको गायत्रीके मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके यदि पान किया जाय तो निर्मल बुद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मी-बूटीके पुष्पोंका हवन करनेसे सुगन्ध तथा तन्तुओंके हवनसे उसीके समान पट प्राप्त होते हैं। मधुमिश्रित बिल्व-पुष्पोंकी आहुति इष्टको वशमें करनेवाली है।

जलमें खड़े होकर गायत्रीमन्त्रको पढ़ते हुए नित्य अञ्जलिसे अपने ऊपर अभिषेक करे। ऐसा करनेसे पुरुष बुद्धि, आरोग्यता, उत्तम आयु और स्वास्थ्य प्राप्त करता है। यदि ब्राह्मण दूसरेके निमित्तसे करे तो उस अन्य पुरुषको भी तुष्टि प्राप्त होती है। आयुकी कामना करनेवाला द्विज किसी पवित्र स्थानमें बैठकर उत्तम विधिके साथ महीनेभर प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करे। इससे उत्तम आयुकी प्राप्ति होती है। यदि आयु और आरोग्य दोनोंकी कामना हो तो द्विजको चाहिये कि दो मासतक एक-एक हजार मन्त्रका नियमसे जप करे। आयु, आरोग्यता और लक्ष्मी चाहनेवालेको तीन महीनेतक जप करना चाहिये। आयु, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री और यज्ञकी कामनावाला द्विज चार मासतक जप करे। पुत्र, स्त्री, आयु आरोग्य, लक्ष्मी और विद्या—इनकी कामना करनेवालेको पाँच महीनेतक एक हजारके नियमसे जप करनेका विधान है। यों जितने-जितने मनोरथ अधिक हों, उसीके क्रमसे महीनेकी संख्या भी बढ़ानी चाहिये।

एक पैरपर खड़े हो बिना किसी अवलम्बके बाहोंको ऊपर उठाये हुए तीन सौ मन्त्रोंका प्रतिदिन महीनेभर जप करनेसे द्विजको सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार ग्यारह सौ मन्त्रोंका महीनेभर जप करनेसे द्विजकी कोई भी अभिलाषा अधूरी नहीं रह सकती। यदि प्राण और अपान वायुको रोककर तीन सौ गायत्रीमन्त्रका एक महीना जप करे तो वह जिसकी इच्छा करे, वह उसे प्राप्त हो जाय। यों ग्यारह सौ मन्त्रोंका जप करनेपर पुरुष सर्वस्व पा जाता है। कौशिकजीका कथन है, एक पैरपर खड़े हो बाहें ऊपर उठाकर श्वास रोकते हुए सौ मन्त्रोंके क्रमसे एक महीना जप करे तो उसकी यथेष्ट कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। इस प्रकार तेरह सौ मन्त्रोंका प्रतिदिन महीनेभर जप करनेसे अखिल मनोरथ प्राप्त हो जाते हैं। जलमें डूबकर

सौ मन्त्रोंके नियमसे एक मास जप करे तो पुरुष अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है। यों तेरह सौ मन्त्रोंका महीनेभर जप करनेसे द्विजकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

यदि एक पैरसे, बिना किसी सहारे बाँहें ऊपर उठाकर खड़े हो एक वर्षतक जप करे, रातमें केवल हविष्यान्न खाय, वह पुरुष ऋषि हो जाता है। यों यदि दो वर्ष करे तो उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। अर्थात् वह जो कहता है, सो होकर रहता है। इस नियमसे तीन वर्षोंतक जप करनेपर मानव त्रिकालदर्शी हो जाता है। यदि चार वर्षोंतक करे तो स्वयं भगवान् सूर्य उसके सामने आकर दर्शन देते हैं। पाँच वर्षोंतक जप करनेसे अणिमादि सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार यदि छः वर्षोंतक जप करे तो पुरुषोंमें इच्छानुसार रूप धारण करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है। सात वर्षोंतक जप करनेसे देवत्व, नौ वर्षोंतक मनुत्व और दस वर्षोंतक करनेसे इन्द्रपद प्राप्त हो सकता है। ग्यारह वर्षोंतक जप करनेसे पुरुष प्रजापति तथा बारह वर्षोंके जपस्वरूप उसमें ब्रह्माकी योग्यता प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकारकी तपस्या करके नारद प्रभृति ऋषियोंने सम्पूर्ण लोकोंपर विजय प्राप्त की है। कुछ लोग केवल शाकके आहारपर रहते थे। बहुत-से ऐसे थे जिनका आहार केवल फल, मूल और दूध था। कुछ ऋषि घृत पान करते, कुछ सोमरस लेते और कुछ चरु भक्षण करते थे। कुछ लोग पक्षभरमें केवल एक बार भोजन करते और कितने प्रतिदिन भिक्षा माँगकर खाते थे। बहुत-से ऋषि हविष्यान्नभोजी थे। इस प्रकार रहकर उन ऋषियोंने कठिन तप किया है।

अब पातकोंकी शुद्धिके लिये द्विजको चाहिये कि तीन हजार गायत्रीका जप करे। एक महीनेतक प्रतिदिन जप करनेसे सुवर्णकी चोरीके पापसे उत्तम द्विज मुक्त हो जाता है। यदि महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्री-जप करे तो सुरापानके पापसे शुद्धि हो जाती है। प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्रका महीनेभर जप करनेवाला मानव यदि गुरुतल्पगामी हो तो भी पवित्र हो जाता है। वनमें कुटी बनाकर वहीं रहते हुए एक महीनेतक नित्य तीन हजार गायत्रीका जप करे। कौशिक मुनि कहते हैं कि ऐसा करनेसे पुरुष ब्रह्म-हत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। जलमें डूबकर बारह दिनोंतक प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करे तो महान् पापी द्विज सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। प्राणायामपूर्वक मौन होकर एक मासतक प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीका जप करे। ऐसा करनेसे महान् पातकी व्यक्ति भी असीम भयसे मुक्त हो जाता है। एक हजार प्राणायाम करनेसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो सकता है। प्राण और अपानवायुको ऊपर चढ़ाकर संयमपूर्वक गायत्रीमन्त्रका छः बार अभ्यास करे। यह प्राणायाम सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। मासपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका अभ्यास करनेसे राजा पवित्र हो जाता है। द्विजको चाहिये कि यदि गोवधकी हत्या लग जाय तो उसकी शुद्धिके लिये बारह दिनोंतक तीन-तीन हजार गायत्रीका जप करे। दस हजार गायत्रीका जप द्विजको अगम्यागमन, चोरी, प्राणिहिंसा और अभक्ष्यभक्षणके पापसे शुद्ध कर देता है। सौ बार प्राणायाम करके पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। यदि पुरुष सम्पूर्ण मिश्रित पापोंसे ग्रस्त

हो गया हो तो उनकी शुद्धिके लिये वनमें रहकर एक मासतक प्रतिदिन गायत्रीके एक हजार मन्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये। चौबीस हजार गायत्रीके अभ्यासको कृच्छ्रव्रत कहते हैं। चौंसठ हजार गायत्रीका जप चान्द्रायणव्रतके समान है। यदि प्रातः-सायं दोनों संध्याओंके समय नित्य प्राणायाम करके गायत्रीके सौ मन्त्रका जप किया जाय तो उससे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है। जलमें डूबकर सूर्यमयी देवीका ध्यान करते हुए त्रिपदा गायत्रीका नित्य सौ बार जप करनेवाला पुरुष अखिल पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

नारद ! इस प्रकार शान्ति और शुद्धिका प्रसङ्ग सम्यक् प्रकारसे तुम्हारे सामने वर्णन किया गया। इन सभी प्रसङ्गोंको तुम्हें सदा गोप्य रखना चाहिये। यह सदाचारका संग्रह संक्षेपसे बतला दिया गया। इसका विधिपूर्वक आचरण करनेसे महामाया दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्यकर्मके विषयमें जो मनुष्य विधिके अनुसार आचरण करता है, उसे भुक्ति और मुक्तिरूपी फल प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्यके लिये प्रथम धर्म आचार है एवं धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बा हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रोंमें आचारका महान् फल वर्णित है। नारद ! आचारवान् पुरुष सदा पवित्र, सदा सुखी और सदा ही धन्य है—'यह सत्य है, सत्य है* ।' सदाचारके विधानसे देवी परम प्रसन्न हो जाती हैं। यद्यपि सुना जाता है कि मनुष्य महान् सम्पत्तिसे सुखका भागी होता है; किंतु सदाचारसे तो मानवको इहलोक और परलोक दोनों जगहके सुख सुलभ हो जाते हैं। उसी सदाचारका प्रसङ्ग तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब और कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहते हो ? (अध्याय २४)

☆

## श्रीमद्देवीभागवतका ग्यारहवाँ स्कन्ध समाप्त

═══ ★ ═══

---

* आचारवान् सदा पूतः सदैवाचारवान् सुखी। आचारवान् सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद॥ (११।२४।९८)

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

# श्रीमद्देवीभागवत

## बारहवाँ स्कन्ध

### गायत्री-मन्त्र-जपकी विधिके विषयमें नारदजीका भगवान् नारायणसे प्रश्न, नारायणद्वारा गायत्रीकी प्रधानताका प्रतिपादन तथा उसके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द, देवता तथा उन वर्णोंकी शक्ति, रूप एवं मुद्राओंका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो ! आपने सदाचारकी विधिका वर्णन कर दिया, आपके मुखारविन्दसे निकली हुई भगवतीकी अमृतमयी कथा सुननेका मुझे सुअवसर भी मिल चुका। आपने चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं, वे बड़े दुःसाध्य मालूम होते हैं। अतएव अब कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिसे प्राणी सुखपूर्वक कर सके। आपने सदाचारके विषयमें गायत्रीकी जो विधि बतलायी है, उसमें मुख्यतम वस्तु क्या है और क्या करनेसे अधिक पुण्य मिलनेकी सम्भावना है? इसके अतिरिक्त आपने गायत्रीके जो चौबीस वर्ण बतलाये हैं, उनके कौन-कौन ऋषि हैं, उनके छन्दोंके क्या-क्या नाम हैं और उनके देवता कौन-कौन हैं। प्रभो ! यह सब भी बतलानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! अन्य कोई अनुष्ठान किया जाय अथवा न किया जाय; किंतु यदि द्विज केवल गायत्रीका ही अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है। मुने ! तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना और गायत्रीका जप करना आवश्यक है। प्रतिदिन तीन हजार जप करनेवाले पुरुषको देवतालोग आदर देते हैं। न्यास करे अथवा न करे; किंतु गायत्रीका जप तो अवश्य करे। निष्कपट वृत्तिसे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करके जप करना चाहिये।

ब्रह्मन् ! अब इस गायत्रीके वर्ण, ऋषि, छन्द तथा देवता आदि जितने तत्त्व हैं, उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो। वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महान् तेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महाभाग शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डुक, परम तपस्वी दुर्वासा, नारद और कश्यप—वर्णोंके क्रमसे ये चौबीस ऋषि कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहतीपंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्करी, अतिशक्करी, धृति, अतिधृति, विराट्, प्रस्तार, पंक्ति, कृति, प्राकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अक्षरपङ्क्ति, भूः, भुवर्, स्वर् और ज्योतिष्मती—महामुने ! ये गायत्रीके चौबीस छन्द कहे गये हैं। प्राज्ञ ! अब गायत्रीके चौबीस

अक्षरोंके देवताओंका परिचय सुनो। प्रथम वर्णके अग्नि, द्वितीयके प्रजापति, तृतीयके चन्द्रमा, चतुर्थके ईशान, पञ्चम और षष्ठके सूर्य, सप्तमके बृहस्पति, अष्टमके मित्रावरुण, नवमके भग, दशमके ईश्वर, एकादशके गणेश, द्वादशके त्वष्टा, त्रयोदशके पूषा, चतुर्दशके इन्द्राग्नि, पञ्चदशके वायु, षोडशके वामदेव, सप्तदशके मैत्रावरुणि, अष्टादशके विश्वेदेव, एकोनविंशके मातृक, विंशके विष्णु, एकविंशके वसुगण, द्वाविंशके रुद्र, त्रयोविंशके कुबेर और चतुर्विंश वर्णके देवता अश्विनीकुमार हैं। इस प्रकार इन चौबीस वर्णोंके चौबीस देवताओंका वर्णन किया गया।

भगवान् नारायण कहते हैं—महामुने ! अब वर्णोंकी कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं, उन्हें सुनो—वामदेवी, प्रिया, सत्या, विश्वा, भद्रविलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला, तमोऽपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जया, वशा, पद्मालया, पराशोभा, भद्रा और त्रिपदा—चौबीस वर्णोंकी ये चौबीस शक्तियाँ कही गयी हैं। मुने ! इसके बाद वर्णोंके यथार्थ रूपका परिचय बतलाता हूँ। चम्पा, अतसीके पुष्प, मूँगा, स्फटिक, कमलके पुष्प, तरुणसूर्य, शङ्ख-चन्द्रमा-कुन्दके समान, रक्तदल कमलकी पंखुड़ी, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, मोती, कुंकुम, काजल, रक्तचन्दन, वैदूर्य, मधु, हल्दी, कुँईके फूल एवं दुग्धके सदृश, सूर्यकान्तमणि, सुग्गेकी पूँछ, कमल, केतकी, मल्लिका और कनेरके पुष्पके समान क्रमशः इन वर्णोंके चौबीस रूप कहे गये हैं। मुने ! ये जो वर्णोंके रूप कहे गये हैं, इनमें महान् पापोंका संहार करनेकी शक्ति है। अब इन वर्णोंके तत्त्व बतलाते हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश तथा गन्ध, रस, रूप, शब्द और स्पर्श, उपस्थ, पायु, पाद, हस्त और वागिन्द्रिय तथा नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वचा और श्रोत्र एवं प्राण, अपान, व्यान और समान—वर्णोंके ये क्रमशः चौबीस तत्त्व कहे जाते हैं। अब इसके बाद क्रमशः वर्णोंकी मुद्रा बतलाऊँगा।

सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, प्रलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराहक, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव—त्रिपदा गायत्रीके चौबीस वर्णोंकी ये चौबीस मुद्राएँ हैं तथा त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिङ्ग और अम्बुज—ये महामुद्राएँ तूर्यरूपा गायत्रीके चौथे चरणकी हैं। महामुने ! गायत्रीके वर्णोंकी ये मुद्राएँ तुम्हें बतला दीं। (अध्याय १-२)

☆

## श्रीगायत्रीका ध्यान और गायत्रीकवचका वर्णन

नारदजीने पूछा—स्वामिन् ! आप जगत्के स्वामी, चौसठ कलाओंको जाननेवाले तथा योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। प्रभो ! मेरे मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हो रहा है कि किस पुण्यके प्रभावसे मनुष्य पापोंसे छूट सकते हैं और उनके ब्रह्मरूप होनेका क्या उपाय है तथा उनका देह देवरूप एवं विशेषतया मन्त्ररूप हो जाय, इसका क्या साधन है। यह सब मैं सुनना चाहता हूँ। प्रभो ! इसीके साथ उसके न्यास, विधि, ऋषि, छन्द अधिदेवता तथा ध्यानका भी विधिवत् वर्णन

सुननेकी मेरी इच्छा है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! इसके लिये 'गायत्रीकवच' नामक एक अत्यन्त गुह्य उपाय है। इसका पाठ करने और इसको धारण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। उसकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह स्वयं देवीका रूप बन जाता है। नारद ! इस गायत्रीकवचके ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये तीन ऋषि हैं। ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—ये चार छन्द हैं। परब्रह्म देवता हैं। यह गायत्री परम कलाओंसे सम्पन्न कही गयी है। भर्ग इसका बीज है। विद्वानोंने स्वयं इसीको शक्ति कहा है। बुद्धि कीलक है। मोक्षकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। चार वर्णोंसे हृदय, तीन वर्णोंसे मस्तक, चार वर्णोंसे शिखा, तीन वर्णोंसे कवच, चार वर्णोंसे नेत्र तथा चार वर्णोंसे इसके अन्य सभी अङ्ग सम्पन्न हैं। अब साधकोंको अभीष्ट प्रदान करनेवाला ध्यान कहता हूँ। मैं तत्त्व और वर्णस्वरूपिणी भगवती गायत्रीका भजन करता हूँ। वे मोती, मूँगा, सुवर्ण, नीलमणि तथा उज्ज्वल प्रभासे युक्त (पाँच) मुखोंसे सुशोभित हैं। तीन नेत्रोंसे उनके मुखोंकी अनुपम शोभा होती है। उनके रत्नमय मुकुट चन्द्रमासे सम्पन्न है। वे अपने हाथोंमें अभय और वर-मुद्रा, अङ्कुश, पाश, शुभ्र कपाल, रस्सी, शङ्ख, चक्र और दो कमल धारण करती हैं।

पूर्वदिशामें गायत्री मेरी रक्षा करें, दक्षिणमें सावित्री रक्षा करें तथा पश्चिममें ब्रह्म-संध्या एवं उत्तरदिशामें भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें। भगवती पार्वती पर्वतीय दिशा (अग्निकोण)-में, अग्नि और जलमें व्यापक रहनेवाली देवी उन-उन दिशाओंमें तथा राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाली भगवती यातुधानी राक्षसोंकी दिशाओं-(नैर्ऋत्यकोण) में मेरी रक्षा करें। वायुको आनन्द प्रदान करनेवाली भगवती पावमानीके द्वारा उस दिशा-(वायव्यकोण) में मेरी रक्षा हो। रुद्ररूप धारण करनेवाली भगवती रुद्राणी ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। ब्रह्माणी ऊपरकी ओर मेरी रक्षा करें और वैष्णवीदेवी नीचेकी ओरसे मेरी रक्षा करें। इसी प्रकार भगवती भुवनेश्वरी दसों दिशाओंमें मेरे सम्पूर्ण अङ्गोंकी रक्षा करें। 'तत्' पद मेरे पैरोंकी, 'सवितुः' मेरी जाँघोंकी, 'वरेण्यम्' कटिदेशकी, 'भर्गः' नाभिकी, 'देवस्य' हृदयकी 'धीमहि' दोनों कपोलोंकी, 'धियः' नेत्रोंकी, 'यः' ललाटकी, 'नः' मस्तककी तथा 'प्रचोदयात्' पद मेरी शिखाकी रक्षा करे। 'तत्' मस्तककी 'स'कार ललाटकी, 'वि'कार दोनों नेत्रोंकी, 'तु'कार रेफयुक्त दोनों कपोलोंकी, 'व'कार नासापुटकी, 'रे'कार मुखकी, 'णि'कार ऊपरके ओष्ठकी, 'य'कार नीचेके ओष्ठकी, 'भ'कार रेफयुक्त मुखमध्यकी, 'गो'कार चिबुक (ठुड्डीकी), 'दे'कार कण्ठकी, 'व'कार कंधोंकी, 'स्य'कार दाहिने हाथकी, 'धी'कार बायें हाथकी, 'म'कार हृदयकी, 'हि'कार उदरकी, 'धि'कार नाभिकी, 'यो'कार कमरकी, (दूसरा) 'यो'कार गुह्य अङ्गकी, 'नः' पद दोनों ऊरुओंकी, 'प्र'कार घुटनोंकी 'चो'कार जाँघोंकी, 'द'कार गुल्फोंकी, 'या'कार दोनों पैरोंकी और 'त'कार—यह व्यञ्जन मेरे सम्पूर्ण अङ्गोंकी सदा रक्षा करे।

भगवती गायत्रीका यह दिव्य कवच सैकड़ों बाधाओंको दूर करनेवाला है। इसकी

कृपासे चौसठ प्रकारकी कलाएँ प्राप्त हो जाती हैं। साथ ही यह मोक्षदायक भी है। इसका आश्रय करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। इसके पढ़ने अथवा सुननेसे भी एक हजार गोदानका फल मिलता है*। (अध्याय ३)

☆

## गायत्रीहृदय-न्यास और गायत्री-स्तोत्र

नारदजीने कहा—भगवन्! देवदेवेश! आप भूत एवं भविष्यत् जगत्‌के स्वामी हैं। प्रभो! मैं दिव्य कवच और गायत्री-मन्त्रका स्वरूप तो सुन चुका। अब श्रेष्ठ 'गायत्रीहृदय' सुनना चाहता हूँ, जिसके धारणसे गायत्रीजपसे मिलनेवाले अखिल पुण्य प्राप्त हो जाते हैं।

---

* श्रीनारायण उवाच

अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा। पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
सर्वान् कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते। गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
ऋषयो ऋग्यजुःसामाथर्वच्छन्दांसि नारद। ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला॥
तद्बीजं भर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः। कीलकं च धियः प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम्॥
चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम्। चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात् त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम्॥
चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात् तदस्त्रकम्। अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम्॥

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे। ब्रह्मसंध्या तु मे पश्चादुत्तरायां सरस्वती॥
पार्वती मे दिशं रक्षेत् पावकी जलशायिनी। यातुधानी दिशं रक्षेद्यातुधानभयंकरी॥
पावमानी दिशं रक्षेत् पवमानविलासिनी। दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा। एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी॥
तत्पदं पातु मे पादौ जङ्घे मे सवितुः पदम्। वरेण्यं कटिदेशं तु नाभिं भर्गस्तथैव च॥
देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः। धियः पदं च मे नेत्रे यः पदं मे ललाटकम्॥
नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात्। तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम्॥
चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः। नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखं तथा॥
णिकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु यकारस्त्वधरोष्ठकम्। आस्यमध्यं भकारार्णो गोकारश्चिबुकं तथा॥
देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशकम्। स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम्॥
मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा। धिकारो नाभिदेशं तु योकारस्तु कटिं तथा॥
गुह्यं रक्षतु योकार ऊरू द्वौ नः पदाक्षरम्। प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जङ्घदेशकम्॥
दकारं गुल्फदेशं तु याकारः पदयुग्मकम्। तकारव्यञ्जनं चैव सर्वाङ्गं मे सदावतु॥
इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम्। चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम्॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति। पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलं लभेत्॥

(१२।३।४—२५)

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! गायत्री देवीके हृदयका प्रसङ्ग अथर्ववेदमें स्पष्टरूपसे वर्णित है। वही परम रहस्ययुक्त प्रसङ्ग मैं तुम्हें सुनाऊँगा। महादेवी गायत्रीका विराट् रूप है। ये वेदकी जननी हैं। इनका ध्यान करके अङ्गोंमें इन देवताओंका ध्यान करना चाहिये। जैसे पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंमें एकता है, वैसे ही अपनेमें और देवीमें एकत्वकी भावना करनी चाहिये। साधक पुरुष देवीके रूपमें और अपनेमें कोई पार्थक्य न समझे। वेदज्ञ पुरुषोंका कथन है कि देवभावसे सम्पन्न होकर भी देवताकी पूजा करे। अतः इष्टदेवतामें अभेद-सम्पादन करनेके लिये अपने शरीरमें वक्ष्यमाण देवताओंका न्यास करना परम आवश्यक है।

*अब मैं इसका उपाय बतलाता हूँ, जिससे तन्मयता प्राप्त हो सकती है। इस 'गायत्री-हृदय'का मैं नारायण ही ऋषि कहा गया हूँ। गायत्री छन्द है, भगवती परमेश्वरी इसकी इष्टदेवता हैं। पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः अपने छहों अङ्गोंमें इसका न्यास करना चाहिये। एकान्त देशमें किसी आसनपर बैठकर मनको एकाग्र करके भगवती गायत्रीका ध्यान करे। अब अङ्गन्यासका प्रयोग बतलाया जाता है। मस्तकमें द्यौसम्बन्धी देवताकी, दन्त-पंक्तिमें अश्विनीकुमारोंकी, दोनों होठोंमें दोनों संध्याओंकी, मुखमें अग्निकी, जिह्वामें सरस्वतीकी, ग्रीवामें बृहस्पतिकी, दोनों स्तनोंमें आठों वसुओंकी, दोनों भुजाओंमें मरुद्गणोंकी, हृदयमें पर्जन्यकी, उदरमें आकाशकी, नाभिमें अन्तरिक्षकी, कटिमें इन्द्र और अग्निकी, पेड़ूमें विज्ञानघन प्रजापतिकी, एक जाँघमें कैलास और मलयगिरिकी, दोनों जानुओंमें विश्वेदेवोंकी, पिंडलियोंमें कौशिककी, गुदामें उत्तरायण एवं दक्षिणायनके अधिष्ठातृ-

---

* अथ तत् सम्प्रवक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत्। गायत्रीहृदयस्यास्याप्यहमेव ऋषिः स्मृतः ॥
गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी। पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥
आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥

**अथाङ्गन्यासः।** द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम्। दन्तपङ्क्तावश्विनौ। उभयोः सन्ध्ययोः चौष्ठौ। मुखेऽग्निः। जिह्वायां सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोर्वसवोऽष्टौ। बाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाश उदरम्। नाभावन्तरिक्षम्। कट्योरिन्द्राग्नी। जघने विज्ञानघनः प्रजापतिः। कैलासमलयो ऊरौ। विश्वेदेवा जान्वोः। जङ्घयोः कौशिकः। गुह्य अयने। ऊरौ पितरः। पादयोः पृथिवी। वनस्पतयोऽङ्गुलिषु। ऋषयो रोमसु। नखेषु मुहूर्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मांसयोः ऋतवः। संवत्सरा वै निमिषे। अहोरात्रयोरादित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ॐ तत् पूर्वाजयाय नमः। तत्प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातरधीयानोऽपापो भवति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात् पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति। अभोज्यभोजनात् पूतो भवति। अचोष्यचोषणात् पूतो भवति। असाध्यसाधनात् पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात् पूतो भवति। सर्वप्रतिग्रहात् पूतो भवति। पङ्क्तिदूषणात् पूतो भवति। अनृतवचनात् पूतो भवति। अथाब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यक् ग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यते इति ब्रह्मलोके महीयते। इत्याह भगवान् श्रीनारायणः। (१२।४।७—९)

देवताओंकी, दूसरी जाँघमें पितरोंकी, पैरोंमें पृथ्वीकी, अँगुलियोंमें वनस्पतिकी, रोमोंमें ऋषियोंकी, नखोंमें मुहूर्तोंकी, हड्डियोंमें ग्रहोंकी तथा रुधिर और मांसमें ऋतुओंकी भावना करे। संवत्सर जिनका एक पल है, जिनकी आज्ञाके अनुसार सूर्य और चन्द्रमा दिन और रातका विभाजन करते हैं तथा जो दिव्य परम पूज्य एवं सहस्रों नेत्रोंसे शोभा पानेवाली भगवती गायत्री हैं, उनकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। ॐ सूर्यके उस श्रेष्ठ तेजको प्रणाम है। पूर्व दिशामें उदय होनेवाले भगवान् सूर्यको प्रणाम है। प्रातः-कालीन भगवान् सूर्यको नमस्कार है। आदित्य-मण्डलमें प्रतिष्ठा पानेवाली भगवती गायत्रीको नमस्कार है। प्रातःकालमें इन गायत्रीदेवीका ध्यान करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है; सायंकालमें ध्यान करनेवाला दिनके पापोंका नाश करता है और दोनों समय ध्यान करनेवाला निष्पाप होता है। वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नात तथा अखिल देवताओंसे परिचित हो जाता है। गायत्रीके जपकी महिमासे पुरुष अवाच्य-भाषणसे, अभक्ष्य-भक्षणसे, अभोज्य-भोजनसे, अचोष्य-चोषणसे, असाध्य-साधनसे, सहस्रों दुष्प्रतिग्रहोंसे, सब प्रकारके प्रतिग्रहोंसे, पङ्क्ति-दूषणसे तथा असत्य-वचनसे भी कभी अपवित्र नहीं हो सकता। अब्रह्मचारीमें भी ब्रह्मचारीके गुण आ जाते हैं। इस गायत्री-हृदयका अध्ययन करनेसे हजार यज्ञोंका फल मिलता है। साठ लाख गायत्रीके जपसे जितना फल मिलता है, उतने ही फलका देनेवाला यह गायत्रीहृदय है। गायत्रीके अनुष्ठानमें आठ ब्राह्मणोंका सम्यक् प्रकारसे वरण करना चाहिये। ऐसा करनेसे सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर इस गायत्रीका अध्ययन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। ब्रह्मलोकमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। यह भगवान् नारायणकी अमर वाणी है।

नारदजीने कहा—भक्तोंपर अनुग्रह करने-वाले सर्वज्ञानी प्रभो! आपने गायत्रीके पाप-नाशक हृदयका वर्णन किया। अब 'गायत्री-स्तुति' सुनानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—आदिशक्ते! तुम जगत्‌की माता, भक्तोंपर कृपा करने-वाली, सर्वत्र व्याप्त तथा श्रीसम्पन्न हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं संध्या, गायत्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री हो। रक्त, श्वेत और कृष्ण—ये तुम्हारे रूप हैं। देवी! तुम प्रातः-कालमें बाल-अवस्थासे सम्पन्न, मध्याह्नकालमें युवावस्थावाली और सायंकालमें वृद्धावस्थासे युक्त हो जाती हो। मुनिलोग सदा तुम्हारे रूपके विषयमें इस प्रकारका चिन्तन करते हैं। तुम्हारे प्रातःकालके वाहन हंस, मध्याह्नकालके गरुड़ और सायंकालके वृषभ* हैं। तुम ऋग्वेदका अध्ययन करती हो। ऐसी मुद्रामें तपस्वीगण भूमण्डलपर तुम्हारी झाँकी प्राप्त करते हैं। तुम अन्तरिक्षमें विराजमान हो यजुर्वेदका पाठ करती हो। भूमण्डलपर सर्वत्र

---

* एकादश स्कन्धमें प्रातःसन्ध्याके समय कुमारी हंसारूढा, मध्याह्नकालमें युवती वृषभारूढा और सायंकालमें वृद्धा गरुडवाहनाके ध्यानका वर्णन आया है। इसके अतिरिक्त द्वादश स्कन्धके तृतीय अध्यायमें पञ्चमुख दशभुजा तथा षष्ठ अध्यायमें पञ्चमुख चतुर्भुजा गायत्रीके ध्यानका वर्णन है।

भ्रमण करते हुए तुम्हारे मुखसे सामवेदका भी उच्चारण होता है। विष्णुलोकमें निवास करनेवाली तुम देवीका रुद्रलोकमें भी पधारना होता है। देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये तुम्हीं ब्रह्मलोकमें विराजती हो। तुम सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेवाली, अनेक प्रकारके वर देनेमें कुशल महामाया हो। शिव-शक्तिके हाथ, नेत्र, अश्रु और स्वेदसे प्रकट हुई दस प्रकारकी दुर्गा भी तुम्हीं हो। तुम्हें आनन्द-जननी कहते हैं। इन दस दुर्गाओंके नाम इस प्रकार हैं—वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरवर्णिनी, गरिष्ठा, वरार्हा, वरारोहा, नीलगङ्गा, संध्या और भोग-मोक्षदा। देवी ! तुम मर्त्यलोकमें भगवती भागीरथी, पातालमें भोगवती और स्वर्गमें त्रिलोकवाहिनी (मन्दाकिनी)-का रूप धारण करके तीनों लोकोंमें निवास करती हो। तुम्हीं भूलोकमें शोकका नियन्त्रण करनेवाली धरित्रीरूपसे विराजमान हो। तुम भुवर्लोकमें वायु-शक्ति, स्वर्लोकमें तेजःपुञ्ज, महर्लोकमें महासिद्धि, जनलोकमें जना, तपोलोकमें तपस्विनी, सत्यलोकमें सत्यवाक्, विष्णुलोकमें कमला, ब्रह्मलोकमें गायत्री और रुद्रलोकमें भगवान् शंकरके अर्द्धाङ्गमें निवास करनेवाली भगवती गौरीके नामसे प्रसिद्ध हो। अहं और महत् तत्त्वोंकी प्रकृतिरूपसे तुम्हीं गायी जाती हो। तुम साम्य अवस्थामें विराजमान रहती हो। शबल-ब्रह्म तुम्हारा स्वरूप है। अतएव उन्हें परा, पराशक्ति और परमात्मा कहा जाता है। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति—ये तीनों शक्तियाँ तुम्हारी ही कृपासे प्राप्त होती हैं। गङ्गा, यमुना, विपाशा, सरस्वती, सरयू, देविका, सिन्धु, नर्मदा, इरावती, गोदावरी, शतद्रु, देवलोकमें विचरण करनेवाली कावेरी, कौशिकी, चन्द्रभागा, वितस्ता, सरस्वती, गण्डकी, तापिनी, करतोया, गोमती और वेत्रवती—ये नदियाँ भी तुम्हारे ही रूप हैं। इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अपूषा, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी आदि नामोंसे विख्यात प्राण-वहन करनेवाली नाड़ियोंके रूपसे तुम सबके शरीरमें निवास करती हो—ऐसा प्राचीन बुधजन कहते हैं। तुम प्राणशक्तिरूपसे हृदयकमलपर विराजमान रहती हो। कण्ठमें रहकर स्वप्नका सृजन करना तुम्हारा सहज गुण है। तुम सर्वाधारस्वरूपिणी हो। तालुओंमें तुम्हारा निवास है ! भौंहोंके मध्यमें बिन्दुरूपसे तुम विराजती हो। तुम्हें बिन्दुमालिनी कहते हैं। मूलाधारमें कुण्डलिनी नाडी तुम्हारी ही आकृति है। व्यापकरूपसे तुम सबके रोमकूपमें विराजती हो। तुम्हारी शिखाके मध्यमें परमात्मा तथा शिखाके अग्रभागमें मनोन्मनी शक्ति विराजमान रहती है। महादेवी ! अधिक कहनेसे क्या—त्रिलोकीमें जो कुछ है, वह सब तुम्हीं हो। संध्ये ! मैं मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये तुम्हें नमस्कार करता हूँ।

यदि संध्याके अवसरपर इस स्तोत्रका पाठ किया जाय तो प्रचुर पुण्य प्राप्त होता है। इस स्तोत्रके प्रभावसे ढेर-के-ढेर पापोंका नाश हो जाता है। यह स्तोत्र महान् सिद्धिप्रद है। जो पुरुष सावधान होकर संध्याकालमें इसका पाठ करता है, वह अपुत्री हो तो पुत्रवान् और धनकी इच्छावाला हो तो धनवान् हो जाता है। सम्पूर्ण तीर्थ एवं जप, तप, योग, यज्ञ और दानके पुण्य उसे प्राप्त हो जाते हैं। वह दीर्घकालतक प्रचुर भोग भोगकर अन्तमें मुक्त हो जाता है। तपस्वियोंके बनाये हुए इस स्तोत्रको जो स्नानके समय पढ़ता है, वह जहाँ कहीं भी जलमें स्नान करे, उसे संध्या करनेका उत्तम फल प्राप्त हो

**जाता है। नारद ! मेरी यह बात सत्य है, सत्य है—इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। नारद ! जो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रको सुनेगा, वह भी पापोंसे छूट जायगा। संध्याके उद्देश्यसे कहा हुआ यह स्तोत्र अमृतकी तुलना करनेवाला है*।**

**(अध्याय ४-५)**

☆

---

* नारद उवाच—भक्तानुकम्पिन् सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम्। गायत्र्याः कथितं तस्माद् गायत्र्याः स्तोत्रमीरय॥

श्रीनारायण उवाच—आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि। सर्वत्र व्यापिकेऽनन्ते श्रीसंध्ये ते नमोऽस्तु ते॥

त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती। ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा॥
प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत् पुनः। वृद्धा सायं भगवती चिन्त्यते मुनिभिः सदा॥
हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी। ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः॥
यजुर्वेदं पठन्ती च अन्तरिक्षे विराजते। सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि॥
रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी। त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी॥
सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा। शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा॥
आनन्दजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते। वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी॥
गरिष्ठा च वरार्हा च वरारोहा च सप्तमी। नीलगङ्गा तथा संध्या सर्वदा भोगमोक्षदा॥
भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि। त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी॥
भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री शोकधारिणी। भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः॥
महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि। तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक्॥
कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकगा। रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धाङ्गनिवासिनी॥
अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे। साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्मरूपिणी॥
ततः परापरा शक्तिः परमा त्वं हि गीयसे। इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा॥
गङ्गा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती। सरयूर्देविका सिन्धुर्नर्मदेरावती तथा॥
गोदावरी शतद्रुश्च कावेरी देवलोकगा। कौशिकी चन्द्रभागा च वितस्ता च सरस्वती॥
गण्डकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि। इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका॥
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषापूषा तथैव च। अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी प्राणवाहिनी॥
नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः। हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कण्ठस्था स्वप्ननायिका॥
तालुस्था त्वं सदाधारा बिन्दुस्था बिन्दुमालिनी। मूले तु कुण्डली शक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा॥
शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी। किमन्यद् बहुनोक्तेन यत्किंचिज्जगतीत्रये॥
तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते। इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं संध्यायां बहुपुण्यदम्॥
महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम्। य इदं कीर्तयेत् स्तोत्रं संध्याकाले समाहितः॥
अपुत्रः प्राप्नुयात् पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात्। सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत्॥
भोगान् भुक्त्वा चिरं कालमन्ते मोक्षमवाप्नुयात्। तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत्॥
यत्र कुत्र जले मग्नः संध्यामज्जनजं फलम्। लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं च नारद॥
शृणुयाद्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात् प्रमुच्यते। पीयूषसदृशं वाक्यं संध्योक्तं नारदेरितम्॥

(१२।५।१—२९)

## श्रीगायत्रीसहस्रनाम

नारद उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम्॥ १॥
सर्वपापहरं देव येन विद्या प्रवर्तते।
केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम्॥ २॥
ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्युनाशनम्।
ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन॥ ३॥
वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः।

नारदजीने कहा—**सम्पूर्ण धर्मोंको जानने-वाले भगवन्! आप अखिल शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् हैं। आपके श्रीमुखसे श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणोंका वह सर्वपापहारी रहस्य मुझे सुननेको मिला, जिससे विद्याकी प्रवृत्ति (प्राप्ति) होती है। कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाले देव! किससे ब्रह्मज्ञान होता है? मोक्ष-साधनमें कौन उपयोगी है? किसके अनुष्ठानसे ब्राह्मणको सद्गति प्राप्त होती है और किसके प्रभावसे मृत्यु पास नहीं आती? अथवा किसके सहारे पुरुष इहलोक और परलोकमें महान् फलके भागी हो सकते हैं? वह सारा प्रसङ्ग आप आद्योपान्त कहनेकी कृपा कीजिये।**

श्रीनारायण उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयानघ॥ ४॥
शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम्।
नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम्॥ ५॥
सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते।
अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः॥ ६॥
छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवी गायत्री देवता स्मृता।
हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः॥ ७॥
अङ्गन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै॥ ८॥
रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां
रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां
पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे॥ ९॥

भगवान् नारायण कहते हैं—**महाप्राज्ञ! अनघ! तुम्हें धन्यवाद है। तुमने बड़ी अच्छी बातें पूछी हैं, सुनो। मैं तुम्हारे सामने गायत्रीके एक सहस्र आठ नामोंका वर्णन करूँगा। ये दिव्य नाम परम मङ्गलकारी हैं। इनका श्रवण करनेसे पापोंका लेशमात्र भी शरीरमें नहीं रह सकता। बहुत पहले सृष्टिके आदिमें भगवान्ने जिसका प्रतिपादन किया है, वही सहस्रनाम मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इस एक सहस्र आठ नामवाले स्तोत्रके ऋषि ब्रह्माजी कहे जाते हैं। अनुष्टुप् छन्द है। भगवती गायत्री इसकी देवता कही गयी हैं। हल् अक्षर इसके बीज और स्वरोंको इसकी शक्ति कहा जाता है। मातृका मन्त्रके छः अक्षर ही इसके छः अङ्गन्यास और करन्यास कहे जाते हैं। अब साधकोंके कल्याणार्थ भगवतीका ध्यान कहता हूँ। जो रक्त, श्वेत, पीत, नील और धवल वर्णोंके (श्रीमुखोंसे) सम्पन्न हैं, तीन नेत्रोंसे जिनका विग्रह देदीप्यमान हो रहा है, जिन्होंने अपने रक्तवर्ण शरीरको लाल कमलोंकी मालासे सजा रखा है, जो अनेक मणियोंसे युक्त हैं, जो कमलके आसनपर विराजमान हैं, जिनके दो हाथोंमें कमल और कुण्डिका एवं दो हाथोंमें वर तथा अक्षमाला सुशोभित हैं, उन हंसकी सवारी करनेवाली, कुमारी-अवस्थासे सम्पन्न भगवती गायत्रीकी मैं उपासना करता हूँ। उनके ये १००८ पवित्र नाम हैं—**

अचिन्त्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ।
अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता ॥ १० ॥

१ अचिन्त्यलक्षणा—**बुद्धिकी पहुँचसे परेके लक्षणोंवाली,** २ अव्यक्ता—**जिनका तत्त्व जाननेमें नहीं आता, ऐसी,** ३ अर्थमातृमहेश्वरी—**अर्थ आदि पार्थिव पदार्थोंके परिच्छेदक ब्रह्मा आदि देवताओंपर नियन्त्रण करनेवाली,** ४ अमृता—**अमृतस्वरूपिणी,** ५ अर्णवमध्यस्था—**समुद्रके भीतर विराजनेवाली देवी,** ६ अजिता—**किसीसे परास्त न होनेवाली,** ७ अपराजिता—**जिन्हें युद्धमें दूसरा कोई भी नहीं जीत सकता, ऐसी।**

अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमण्डलसंस्थिता ।
अजराजापराधर्मा अक्षसूत्रधराधरा ॥ ११ ॥

८ अणिमादिगुणाधारा—**अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियोंकी आश्रयभूता देवी,** ९ अर्कमण्डलसंस्थिता—**सूर्यके मण्डलमें विराजमाना,** १० अजरा—**सदा तरुण-अवस्थासे शोभा पानेवाली,** ११ अजा—**जो जन्मरहित हैं; ऐसी,** १२ अपरा—**जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है वे देवी,** १३ अधर्मा—**जिनमें जात्यादिनिमित्तक लौकिक धर्म नहीं हैं वे,** १४ अक्षसूत्रधरा—**अक्षसूत्र धारण करनेवाली,** १५ अधरा—**जो अपने ही आधारपर स्थित हैं।**

अकारादिक्षकारान्ताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ।
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशाप्यञ्जनाद्रिनिवासिनी ॥ १२ ॥

१६ अकारादिक्षकारान्ता—**अकार जिनके आदिमें और क्षकार जिनके अन्तमें हैं, वे वर्णमातृकास्वरूपिणी देवी,** १७ अरिषड्वर्गभेदिनी—**(काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्यरूप) छः प्रकारके शत्रुओंका भेदन करनेवाली,** १८ अञ्जनाद्रिप्रतीकाशा—**अञ्जनगिरिके समान (आन्तरिक) कृष्णवर्ण प्रभासे सुशोभित,** १९ अञ्जनाद्रिनिवासिनी—**असित गिरिपर निवास करनेवाली देवी।**

अदितिश्चाजपाविद्याप्यरविन्दनिभेक्षणा ।
अन्तर्बहिःस्थिताविद्याध्वंसिनी चान्तरात्मिका ॥ १३ ॥

२० अदितिः—**देवताओंकी माता,** २१ अजपा—**अजपाजापरूपिणी,** २२ अविद्या—**अविद्याको भी सत्ता देनेवाली,** २३ अरविन्दनिभेक्षणा—**कमलके समान नेत्रोंसे शोभा पानेवाली,** २४ अन्तर्बहिःस्थिता—**व्यापकरूपसे प्राणिमात्रके भीतर और बाहर स्थित रहनेवाली,** २५ अविद्याध्वंसिनी—**अविद्याका ध्वंस करनेवाली,** २६ अन्तरात्मिका—**सबके अन्तःकरणमें विराजनेवाली।**

अजा चाजमुखावासाप्यरविन्दनिभानना ।
अर्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमण्डलमर्दिनी ॥ १४ ॥

२७ अजा—**जन्मसे रहित—प्रकृतिस्वरूपिणी,** २८ अजमुखावासा—**ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली हैं जो ऐसी,** २९ अरविन्दनिभानना—**कमलके समान प्रफुल्लित मुखसे अनुपम शोभा पानेवाली,** ३० अर्धमात्रा—**(प्रणवाङ्गभूत) अर्धमात्रास्वरूपा,** ३१ अर्थदानज्ञा—**चारों प्रकारके पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-का दान करनेमें कुशल,** ३२ अरिमण्डलमर्दिनी—**शत्रुसमूहोंका मर्दन करनेवाली देवी।**

असुरघ्नी ह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता ।
आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥ १५ ॥

३३ असुरघ्नी—**असुरोंके वधमें सदा तत्पर रहनेवाली,** ३४ अमावास्या—**अमावस्या तिथि जिनका रूप मानी जाती है,** ३५ अलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता—**अलक्ष्मीका नाश करनेवाली अन्त्यजा**

अर्थात् मातङ्गी देवीसे सुपूजित, ३६ आदिलक्ष्मीः—साम्यावस्थापन्न मायासे युक्त ब्रह्मकी मूर्तिरूपा, ३७ आदिशक्तिः—महामाया, ३८ आकृतिः—आकारस्वरूपिणी, ३९ आयतानना—ठठाकर हँसनेवाली।

आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ।
आचार्याऽऽवर्तनाऽऽचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥ १६ ॥

४० आदित्यपदवीचारा— आदित्य-मार्गपर चलनेवाली (सूर्यगतिरूपा), ४१ आदित्यपरिसेविता—सूर्यादि देवताओंसे सेवा पानेवाली, ४२ आचार्या—स्वयं सदाचारकी व्याख्या करनेवाली, ४३ आवर्तना—भ्रमणशील जगत्की रचना करनेवाली, ४४ आचारा—दक्षिणाचार आदि आचाररूपिणी, ४५ आदिमूर्तिनिवासिनी—आदिमूर्ति ब्रह्ममें जिनका निवास है ऐसी।

आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता ।
आधारनिलयाऽऽधारा चाकाशान्तनिवासिनी ॥ १७ ॥

४६ आग्नेयी—अग्निदेवकी अधिष्ठात्री, ४७ आमरी—देवताओंकी पुरी जिनका रूप माना जाता है वे, ४८ आद्या—आदिस्वरूपिणी भगवती योगमाया, ४९ आराध्या—सभी जिनकी आराधना करते हैं, ५० आसनस्थिता—दिव्य आसनपर विराजनेवाली, ५१ आधारनिलया—मूलाधारमें निवास करनेवाली कुण्डलिनीरूपा, ५२ आधारा—जगत्को धारण करनेवाली, ५३ आकाशान्तनिवासिनी—आकाश-तत्त्वके अन्तरूप अहंकारमें निवास है जिनका, वे देवी।

आद्याक्षरसमायुक्ता चान्तराकाशरूपिणी ।
आदित्यमण्डलगता चान्तरध्वान्तनाशिनी ॥ १८ ॥

५४ आद्याक्षरसमायुक्ता—सर्वप्रथम अक्षर (अकार)-से युक्त, ५५ आन्तराकाशरूपिणी—आन्तर आकाश (दहराकाश)-रूपिणी, ५६ आदित्यमण्डलगता—सूर्यमण्डलके भीतर शोभा पानेवाली देवी, ५७ आन्तरध्वान्तनाशिनी—अज्ञानरूप अन्धकारका नाश करनेवाली।

इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेन्दीवरनिभेक्षणा ।
इरावती चेन्द्रपदा चेन्द्राणी चेन्दुरूपिणी ॥ १९ ॥

५८ इन्दिरा—इन्दिरा अर्थात् लक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध, ५९ इष्टदा—भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली, ६० इष्टा—जिनकी साधक पुरुष इष्ट देवता मानकर उपासना करते हैं, ६१ इन्दीवरनिभेक्षणा—सुन्दर कमलके समान नेत्रोंवाली, ६२ इरावती—इरावती नामवाली नदी अथवा इरा अर्थात् पृथ्वीसे युक्त, ६३ इन्द्रपदा—जिनकी कृपासे इन्द्रने अपना पद प्राप्त किया है, वे ६४ इन्द्राणी—शचीके रूपसे विराजमान, ६५ इन्दुरूपिणी—चन्द्रमाके सदृश सुन्दर रूपवाली।

इक्षुकोदण्डसंयुक्ता चेषुसंधानकारिणी ।
इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिङ्गलरूपिणी ॥ २० ॥

६६ इक्षुकोदण्डसंयुक्ता—हाथमें इक्षुका धनुष धारण करनेवाली, ६७ इषुसंधानकारिणी—वाणोंका संधान करनेमें जो परम प्रवीण हैं वे देवी, ६८ इन्द्रनीलसमाकारा—इन्द्रनीलमणिके समान प्रतिभासे शोभा पानेवाली, ६९ इडापिङ्गलरूपिणी—इडा और पिङ्गला (आदि) नाड़ियाँ जिनके रूप हैं, वे।

इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता ।
उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना ॥ २१ ॥

७० इन्द्राक्षी—शताक्षी नाम्नी देवी, ७१ ईश्वरीदेवी—अखिल ऐश्वर्योंसे सम्पन्न तेजोमयस्वरूपा, ७२ ईहात्रयविवर्जिता—तीनों एषणाओं

(लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा)-से वर्जित, ७३ उमा—**भगवती उमा नामसे प्रसिद्ध,** ७४ उषा—**रात्रिविशेषरूपिणी अथवा बाणासुरके घर पुत्रीरूपसे विराजमान,** ७५ उडुनिभा—**नक्षत्रके सदृश प्रभावाली देवी,** ७६ उर्वारुकफलानना—**ककड़ीके फलके समान जिनका मुख सदा प्रफुल्लित रहता है।**

उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा।
ऊर्ध्वं चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी॥ २२॥

७७ उडुप्रभा—**जलके समान वर्णवाली,** ७८ उडुमती—**रात्रिरूपिणी,** ७९ उडुपा—**चन्द्रमा अथवा नौकारूपिणी,** ८० उडुमध्यगा—**चन्द्रमण्डलके मध्य विराजमान,** ८१ ऊर्ध्वं—**ऊर्ध्वदेशरूपिणी,** ८२ ऊर्ध्वकेशी—**जिनके केश ऊपरको उठे हुए हैं,** ८३ ऊर्ध्वाधोगतिभेदिनी—**ऊर्ध्वगति (स्वर्ग) और अधोगति (नरक) दोनोंका भेदन करनेवाली, मोक्षदायिका।**

ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी।
ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता॥ २३॥

८४ ऊर्ध्वबाहुप्रिया—**बाहुओंको ऊपर उठाकर प्रार्थना करनेवाले भक्तोंसे प्रेम करनेवाली,** ८५ ऊर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी—**तरङ्गमालाओंके समान श्रेष्ठ वाणीसे सम्पन्न वाणियोंको ग्रन्थरूपमें परिणत करनेवाली शक्ति,** ८६ ऋतम्—**सुनृतवाणीरूपा,** ८७ ऋषिः—**वेदरूपा,** ८८ ऋतुमती—**रजस्वला,** ८९ ऋषिदेवनमस्कृता—**ऋषि और देवता जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं।**

ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमण्डलचारिणी।
ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा॥ २४॥

९० ऋग्वेदा—**ऋग्वेदस्वरूपिणी देवी,** ९१ ऋणहर्त्री—**देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणका नाश करनेवाली,** ९२ ऋषिमण्डलचारिणी—**ऋषि-मण्डलीमें विराजमान,** ९३ ऋद्धिदा—**समृद्धि देनेवाली,** ९४ ऋजुमार्गस्था—**सीधे (सदाचारके) मार्गपर चलना जिनका स्वाभाविक गुण है, वे,** ९५ ऋजुधर्मा—**ऋजु (सहज) धर्मवाली,** ९६ ऋतुप्रदा—**जिनकी कृपासे ऋतुएँ अपने-अपने रूपमें परिणत होती हैं, वे देवी।**

ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्मप्रवर्तिनी।
लूतारिवरसम्भूता लूतादिविषहारिणी॥ २५॥

९७ ऋग्वेदनिलया—**ऋग्वेदमें विराजमान,** ९८ ऋज्वी—**सरल स्वभाववाली,** ९९ लुप्तधर्मप्रवर्तिनी—**लुप्त हुए धर्मोंका पुनः प्रवर्तन करनेवाली देवी,** १०० लूतारिवरसम्भूता—**लूतारि विशिष्ट रोगको दूर करनेवाले मन्त्र जिनसे प्रकट हुए हैं, वे देवी,** १०१ लूतादिविषहारिणी—**मकड़ी आदिके विषको हरण करनेवाली।**

एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता।
ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा॥ २६॥

१०२ एकाक्षरा—**एक अक्षरसे सम्पन्न,** १०३ एकमात्रा—**एक मात्रामें विराजनेवाली देवी,** १०४ एका—**अपने ढंगकी अकेली,** १०५ एकनिष्ठा—**सदा एकनिष्ठ रहनेवाली,** १०६ ऐन्द्री—**इन्द्रकी शक्तिरूपा,** १०७ ऐरावतारूढा—**ऐरावतपर विराजनेवाली,** १०८ ऐहिकामुष्मिकप्रदा—**इहलौकिक और पारलौकिक फल प्रदान करनेवाली।**

ओंकारा ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी।
और्वा ह्यौषधसम्पन्ना औपासनफलप्रदा॥ २७॥

१०९ ओंकारा—**प्रणवस्वरूपिणी,** ११० ओषधी—**संसार-रोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये**

ओषधिरूपा, १११ ओता—**मणिमें सूत्रकी भाँति सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान,** ११२ ओतप्रोतनिवासिनी—**ब्रह्ममें-ओत-प्रोतरूप जगत्‌में निवास करनेवाली,** ११३ और्वा—**वाडवाग्निरूपा,** ११४ औषधसम्पन्ना—**भवरोग दूर करनेकी ओषधिसे सम्पन्न,** ११५ औपासनफलप्रदा—**उपासना करनेपर उत्तम फल प्रदान करनेवाली।**

अण्डमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी।
कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी॥ २८॥

११६ अण्डमध्यस्थिता देवी—**ब्रह्माण्डके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजनेवाली देवी,** ११७ अःकारमनुरूपिणी—**अःकार (विसर्ग) रूप जिनका मन्त्रमय विग्रह है, वे,** ११८ कात्यायनी—**कात्यायन ऋषिद्वारा उपासित देवी,** ११९ कालरात्रिः—**राक्षसोंका संहार करनेके लिये कालरात्रिके रूपमें प्रकट,** १२० कामाक्षी—**कामको नेत्रोंमें धारण करनेवाली,** १२१ कामसुन्दरी—**सुन्दरतामें कामदेवको तुच्छ करनेवाली।**

कमला कामिनी कान्ता कामदा कालकण्ठिनी।
करिकुम्भस्तनभरा करवीरसुवासिनी॥ २९॥

१२२ कमला—**लक्ष्मीस्वरूपा,** १२३ कामिनी—**उपासकोंकी मङ्गलकामना करने-वाली,** १२४ कान्ता—**अत्यन्त कमनीय रूपवाली** १२५ कामदा—**भक्तोंकी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली,** १२६ कालकण्ठिनी—**कालको भी कण्ठमें रख लेनेवाली,** १२७ करिकुम्भ-स्तनभरा—**हाथीके कुम्भस्थल-सदृश पीन पयोधरोंसे भाराक्रान्त,** १२८ करवीरसुवासिनी—**करवीर अर्थात् महालक्ष्मी-क्षेत्रमें निवास करनेवाली देवी।**

कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी।
कुरुविन्ददलाकारा कुण्डली कुमुदालया॥ ३०॥

१२९ कल्याणी—**कल्याणमय विग्रहसे सम्पन्न,** १३० कुण्डलवती—**कानोंमें सुन्दर कुण्डल धारण करनेवाली,** १३१ कुरुक्षेत्र-निवासिनी—**कुरुक्षेत्रमें जिनका निवास है, वे देवी,** १३२ कुरुविन्ददलाकारा—**मुस्तादलके समान आकारसे शोभा पानेवाली,** १३३ कुण्डली—**कुण्डलिनी शक्तिके रूपमें विराजमान देवी,** १३४ कुमुदालया—**कुमुदके आसनपर विराजमान।**

कालजिह्वा करालास्या कालिका कालरूपिणी।
कमनीयगुणा कान्तिः कलाधारा कुमुद्वती॥ ३१॥

१३५ कालजिह्वा—**राक्षसोंके संहारार्थ कालरूपी जिह्वासे सम्पन्न,** १३६ करालास्या—**शत्रुओंके सामने भयंकर मुख-मुद्रा प्रदर्शित करनेवाली,** १३७ कालिका—**काले वर्णवाली देवी,** १३८ कालरूपिणी—**दैत्योंके लिये कालमय विग्रह धारण करनेवाली,** १३९ कमनीयगुणा—**सुन्दर गुणोंसे सुभूषित,** १४० कान्तिः—**दीप्तिमयी,** १४१ कलाधारा—**चौंसठ कलाओंको धारण करनेवाली,** १४२ कुमुद्वती—**कुमुदको धारण करनेवाली।**

कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभञ्जिनी।
कौमारी करुणापाङ्गी ककुबन्ता करिप्रिया॥ ३२॥

१४३ कौशिकी—**कौशिकी नामक देवी; कुशिक मुनिपर दया करनेवाली,** १४४ कमला-कारा—**कमलके समान सुन्दर आकारवाली,** १४५ कामचारप्रभञ्जिनी—**यथेच्छाचारका नाश करनेवाली,** १४६ कौमारी—**सदा कुमारी-अवस्थासे सम्पन्न,** १४७ करुणापाङ्गी—**भक्तोंपर करुणायुक्त कटाक्षपात करनेवाली,**

१४८ ककुबन्ता—**दिशाओंकी अवसानरूपा,** १४९ करिप्रिया—**हाथी जिन्हें अधिक प्रिय हैं, वे (महालक्ष्मीरूपिणी)।**

केसरी केशवनुता कदम्बकुसुमप्रिया।
कालिन्दी कालिका काञ्ची कलशोद्भवसंस्तुता॥ ३३॥

१५० केसरी—**सिंहरूपिणी,** १५१ केशवनुता—**भगवान् श्रीकृष्ण भी जिन्हें प्रणाम करते हैं, वे,** १५२ कदम्बकुसुमप्रिया—**कदम्बके फूलसे परम प्रसन्न होनेवाली,** १५३ कालिन्दी—**कलिन्दकन्या यमुनारूप, श्रीकृष्णकी पटरानीरूपा,** १५४ कालिका—**काली नामसे विख्यात,** १५५ काञ्ची—**काञ्चीनामक क्षेत्रमें जिनकी अधिक पूजा होती है, वे,** १५६ कलशोद्भवसंस्तुता—**कलशोद्भव अगस्त्यजीने जिनकी स्तुति की है।**

काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती।
कुमारी कुण्डनिलया किराती कीरवाहना॥ ३४॥

१५७ काममाता—**कामदेवकी जननी,** १५८ क्रतुमती—**यज्ञमय विग्रह धारण करनेवाली,** १५९ कामरूपा—**इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्था,** १६० कृपावती—**कृपासे ओत-प्रोत,** १६१ कुमारी—**कुमारीके रूपमें विराजमान,** १६२ कुण्डनिलया—**अग्निहोत्रके कुण्डमें विराजनेवाली,** १६३ किराती—**भक्तोंका कार्य साधन करनेके लिये किरातवेष धारण करनेवाली,** १६४ कीरवाहना—**तोता पक्षी जिनका वाहन है, वे।**

कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया।
कमण्डलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी॥ ३५॥

१६५ कैकेयी—**राजा केकयके घर पधारकर कैकेयीके नामसे प्रसिद्ध,** १६६ कोकिलालापा—**कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली,** १६७ केतकी—**फूलोंमें केतकी-रूपसे विराजमान,** १६८ कुसुमप्रिया—**पुष्प जिन्हें परम प्रिय हैं, वे,** १६९ कमण्डलुधरा—**ब्रह्मचारिणीके रूपमें कमण्डलु धारण करनेवाली,** १७० काली—**कालिकास्वरूपा,** १७१ कर्मनिर्मूलकारिणी—**जिनकी आराधनासे कर्म निर्मूल हो जाते हैं।**

कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमङ्गला।
कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः॥ ३६॥

१७२ कलहंसगतिः—**हंसके समान मन्द-गतिसे चलनेवाली,** १७३ कक्षा—**कक्षा नामसे प्रसिद्ध,** १७४ कृतकौतुकमङ्गला—**सदा विवाहोचित मङ्गलमय वेष धारण करनेवाली,** १७५ कस्तूरीतिलका—**कस्तूरीके तिलकसे सुशोभित,** १७६ कम्रा—**चञ्चला (स्फूर्तियुक्त),** १७७ करीन्द्रगमना—**ऐरावत हाथीपर सवारी करनेवाली,** १७८ कुहूः—**तिथियोंमें कुहू (अमावास्या) नामसे प्रसिद्ध।**

कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया।
कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा॥ ३७॥

१७९ कर्पूरलेपना—**कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थोंके लेपसे सुशोभित,** १८० कृष्णा—**श्यामल अङ्गवाली देवी,** १८१ कपिला—**भूरे रंगवाली,** १८२ कुहराश्रया—**बुद्धिरूप गुहा जिनका आश्रय है, वे,** १८३ कूटस्था—**पर्वत-शृङ्गपर निवास करनेवाली, अथवा ब्रह्मरूपमें सदा एकरस रहनेवाली,** १८४ कुधरा—**पृथिवीको जो धारण किये हुए हैं, वे,** १८५ कम्रा—**परम सुन्दरी,** १८६ कुक्षिस्थाखिलविष्टपा—**अपने कुक्षिस्थलमें रहनेवाले अखिल जगत्की रक्षा करनेवाली।**

खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना।
खट्वाङ्गधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता॥ ३८॥

१८७ खड्गखेटकरा—**हाथमें ढाल-तलवार**

लेकर द्रोही दानवोंको मारनेमें तत्पर, १८८ खर्वा—नाटे कदकी, १८९ खेचरी—आकाशमें विचरण करनेवाली, १९० खगवाहना—हंस जिनका वाहन है, वे, १९१ खट्वाङ्गधारिणी—खट्वाङ्गको आयुधके रूपमें धारण करनेवाली, १९२ ख्याता—जगत्प्रसिद्ध, १९३ खगराजोपरिस्थिता—पक्षिराज गरुड़की पीठपर विराजनेवाली।

खलघ्नी खण्डितजरा खण्डाख्यानप्रदायिनी।
खण्डेन्दुतिलका गङ्गा गणेशगुहपूजिता॥ ३९॥

१९४ खलघ्नी—दुष्टोंका संहार करनेवाली, १९५ खण्डितजरा—जिनका विग्रह बुढ़ापेसे रहित है, वे, १९६ खण्डाख्यानप्रदायिनी—पानशास्त्र अथवा भेदशास्त्रको जन्म देनेवाली, १९७ खण्डेन्दुतिलका—जो ललाटपर द्वितीयाके चन्द्रमाके आकारका तिलक धारण करती हैं, वे, १९८ गङ्गा—'स्वर्गाद् गां गतवतीति गङ्गा'—'स्वर्गसे भूतलपर गमन करनेके कारण गङ्गा नामसे प्रसिद्ध अथवा कलकल गान करनेवाली या ब्रह्मद्रवरूपा सच्चिदानन्दमयी देवी, १९९ गणेशगुहपूजिता—गणेश और स्वामी कार्तिकेयने जिनकी आराधना की है।

गायत्री गोमती गीता गान्धारी गानलोलुपा।
गौतमी गामिनी गाधा गन्धर्वाप्सरसेविता॥ ४०॥

२०० गायत्री—अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करनेवाली, २०१ गोमती—द्वारका अथवा नैमिषारण्यमें स्थित गोमती नदीस्वरूपा, २०२ गीता—भगवद्गीतास्वरूपा, २०३ गान्धारी—पृथ्वीको धारण करनेवाली वाराही-शक्तिस्वरूपा, अथवा पतिव्रता-शिरोमणि धृतराष्ट्र-पत्नीस्वरूपा, २०४ गानलोलुपा—संगीत सुननेके लिये उत्कट इच्छा रखनेवाली, २०५ गौतमी—गौतम मुनिके यहाँ पत्नीरूपसे पधारनेकी कृपा करनेवाली (अहल्यारूपा), २०६ गामिनी—व्यापकरूपसे सर्वत्र विचरनेवाली देवी, २०७ गाधा—पृथ्वी जिनके आश्रयपर टिकी हुई है, वे देवी, २०८ गन्धर्वाप्सरसेविता—गन्धर्व और अप्सराओंसे सेवित।

गोविन्दचरणाक्रान्ता गुणत्रयविभाविता।
गन्धर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना गमी॥ ४१॥

२०९ गोविन्दचरणाक्रान्ता— श्रीविष्णुके चरणोंसे आक्रान्त (पृथ्वीरूपा), २१० गुणत्रयविभाविता—तीनों गुणोंके साथ प्रकट हुई, २११ गन्धर्वी—गन्धर्वोंकी स्त्रीके रूपमें अभिव्यक्त रहनेवाली, २१२ गह्वरी—दुरूह महिमावाली, २१३ गोत्रा—पृथ्वीरूपा, २१४ गिरीशा—पर्वतोंकी अधिष्ठात्री देवी, २१५ गहना—गूढ़ स्वभाववाली, २१६ गमी—पर्यालोचन करनेवाली।

गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी।
गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी॥ ४२॥

२१७ गुहावासा—पर्वतकी कन्दरामें अथवा हृदयरूपा गुहामें निवास करनेवाली, २१८ गुणवती—अनेक सद्गुणोंसे सम्पन्न, २१९ गुरुपापप्रणाशिनी—जिनकी कृपासे बड़े-से-बड़े पाप ध्वंस हो जाते हैं, २२० गुर्वी—सर्वोपरि विराजमान, २२१ गुणवती—जिनमें विविध प्रकारके गुण विद्यमान हैं, २२२ गुह्या—गुप्तरूपसे सर्वत्र विराजनेवाली, २२३ गोप्तव्या—गुप्त धनकी भाँति हृदयमें छिपा रखनेयोग्य, २२४ गुणदायिनी—जिनकी कृपासे सभी सद्गुण प्राप्त हो जाते हैं।

गिरिजा गुह्यमातङ्गी गरुडध्वजवल्लभा।
गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा॥ ४३॥

२२५ गिरिजा—हिमवान्की पुत्रीरूपसे

**विराजमान,** २२६ गुह्यमातङ्गी—**ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी,** २२७ गरुडध्वजवल्लभा—**भगवान् विष्णुकी प्राणप्रिया देवी (लक्ष्मीस्वरूपा),** २२८ गर्वापहारिणी—**गर्वका अपहरण कर लेना जिनका स्वभाव ही है, वे,** २२९ गोदा—**गौ अथवा पृथ्वी प्रदान करनेवाली,** २३० गोकुलस्था—**गोकुलसमूहमें रहनेवाली,** २३१ गदाधरा—**जिनकी भुजामें गदा शोभा पाती है, वे।**

गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमण्डलवर्तिनी।
घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी॥ ४४॥

२३२ गोकर्णनिलयासक्ता—**गोकर्ण नामक तीर्थस्थानमें विराजनेवाली,** २३३ गुह्यमण्डल-वर्तिनी—**अत्यन्त गुह्यमण्डलमें जिनका निवास है,** २३४ घर्मदा—**(सूर्यप्रभाके रूपमें) ऊष्मा प्रदान करनेवाली,** २३५ घनदा—**जिनकी कृपासे मेघ प्रकट होते हैं,** २३६ घण्टा—**घण्टारूपमें विराजमान,** २३७ घोरदानवमर्दिनी—**भयंकर दानवोंका संहार करनेवाली देवी।**

घृणिमन्त्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी।
घण्टारवप्रिया घ्राणा घृणिसंतुष्टकारिणी॥ ४५॥

२३८ घृणिमन्त्रमयी—**सूर्यको प्रसन्न करने-वाले मन्त्ररूपसे विराजमान,** २३९ घोषा—**समराङ्गणमें भयंकर शब्द करनेवाली,** २४० घनसम्पातदायिनी—**मेघोंको जल बरसानेकी आज्ञा देनेवाली,** २४१ घण्टारवप्रिया—**घण्टानादसे प्रसन्न होनेवाली,** २४२ घ्राणा—**घ्राणेन्द्रियकी अधिष्ठात्री देवी,** २४३ घृणिसंतुष्ट-कारिणी—**सूर्यको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली।**

घनारिमण्डला घूर्णा घृताची घनवेगिनी।
ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी॥ ४६॥

२४४ घनारिमण्डला—**अनेकों दैत्य जिनके शत्रु हैं, वे,** २४५ घूर्णा—**सर्वत्र भ्रमण करनेवाली,** २४६ घृताची—**सरस्वतीरूपा अथवा रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी,** २४७ घनवेगिनी—**प्रचण्ड वेगवाली,** २४८ ज्ञान-धातुमयी—**चिन्मय धातुओंसे बनी हुई,** २४९ चर्चा—**परिभाषण-क्रियारूपा,** २५० चर्चिता—**चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंसे सुपूजिता,** २५१ चारुहासिनी—**जिनका मुखमण्डल सदा सुप्रसन्न रहता है।**

चटुला चण्डिका चित्रा चित्रमाल्यविभूषिता।
चतुर्भुजा चारुदन्ता चातुरी चरितप्रदा॥ ४७॥

२५२ चटुला—**चञ्चल स्वभाववाली, लक्ष्मीस्वरूपा,** २५३ चण्डिका—**शत्रुओंके लिये प्रचण्ड रूप धारण करनेवाली, क्रोधयुक्ता,** २५४ चित्रा—**अद्भुत रूपोंसे सम्पन्न,** २५५ चित्रमाल्य-विभूषिता—**भाँति-भाँतिकी मालाओंसे विभूषित,** २५६ चतुर्भुजा—**चार भुजाओंसे शोभा पानेवाली,** २५७ चारुदन्ता—**जिनके दाँत परम मनोहर हैं, वे,** २५८ चातुरी—**चातुर्यकी मूर्ति,** २५९ चरितप्रदा—**भक्तोंको (अपने आचरणोंद्वारा) सदाचारकी शिक्षा प्रदान करनेवाली।**

चूलिका चित्रवस्त्रान्ता चन्द्रमःकर्णकुण्डला।
चन्द्रहासा चारुदात्री चकोरी चन्द्रहासिनी॥ ४८॥

२६० चूलिका—**देवियोंमें चोटीका (सर्वोच्च) स्थान रखनेवाली,** २६१ चित्र-वस्त्रान्ता—**विचित्र (रंग-विरंगे) वस्त्रोंको धारण करनेवाली,** २६२ चन्द्रमःकर्णकुण्डला—**जिनके कानोंमें चन्द्राकार कुण्डल विराजमान हैं,** २६३ चन्द्रहासा—**जिनकी हँसी चन्द्रमाके समान आह्लाद उत्पन्न करनेवाली है, वे,** २६४ चारुदात्री—**सुन्दर वस्तुएँ देनेवाली,**

२६५ चकोरी—**चन्द्रस्वरूप परमात्मामें चकोरीके समान अनुरक्त,** २६६ चन्द्रहासिनी—**चन्द्रमाको भी अपने मुखचन्द्रद्वारा आह्लादित करनेवाली।**

चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चण्डिका।
चञ्चद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी॥ ४९॥

२६७ चन्द्रिका—**ज्योत्स्नास्वरूपिणी,** २६८ चन्द्रधात्री—**चन्द्रमाको (मस्तकपर) धारण करनेवाली,** २६९ चौरी—**अपनी शक्तिको छिपाकर रखनेवाली,** २७० चौरा—**भक्तोंके पापोंका अपहरण करनेवाली,** २७१ चण्डिका—**चण्डिका नामसे प्रसिद्ध,** २७२ चञ्चद्वाग्वादिनी—**चञ्चलतापूर्वक (तेजीसे) भाषण करनेवाली,** २७३ चन्द्रचूडा—**जिनकी चूडामें चन्द्रमा विराजमान हैं,** २७४ चोरविनाशिनी—**स्तेय कर्म करनेवालोंका संहार करनेमें तत्पर।**

चारुचन्दनलिप्ताङ्गी चञ्चच्चामरवीजिता।
चारुमध्या चारुगतिश्चन्दिला चन्द्ररूपिणी॥ ५०॥

२७५ चारुचन्दनलिप्ताङ्गी—**जिनके सभी अङ्ग उत्तम चन्दनोंसे अनुलिप्त हैं,** २७६ चञ्चच्चामर-वीजिता—**डुलाये जाते हुए चँवरोंसे सेवित,** २७७ चारुमध्या—**मनोहर कटिवाली,** २७८ चारुगतिः—**सुन्दर गतिसे सम्पन्न,** २७९ चन्दिला—**कर्नाटक देशकी सुप्रसिद्ध देवी,** २८० चन्द्ररूपिणी—**चन्द्रस्वरूपिणी देवी।**

चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका।
चन्द्रमण्डलमध्यस्था चन्द्रमण्डलदर्पणा॥ ५१॥

२८१ चारुहोमप्रिया—**श्रेष्ठ हवनसे जो परम प्रसन्न होती हैं, वे,** २८२ चार्वाचरिता—**पवित्र आचरणोंवाली,** २८३ चक्रबाहुका—**सुदर्शन-चक्रको हाथमें धारण करनेवाली,** २८४ चन्द्र-मण्डलमध्यस्था—**चन्द्रमण्डलके मध्यमें विराजनेवाली,** २८५ चन्द्रमण्डलदर्पणा—**चन्द्रमण्डलको ही दर्पणके रूपमें धारण करनेवाली।**

चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी।
चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चन्दनप्रिया॥ ५२॥

२८६ चक्रवाकस्तनी—**चक्रवाकके समान स्तनोंसे सुशोभित,** २८७ चेष्टा—**जिनके कारण चेतन प्राणियोंमें सब प्रकारकी चेष्टाएँ होती हैं, अथवा चेष्टारूपा,** २८८ चित्रा—**अद्भुत चरित्रोंवाली,** २८९ चारुविलासिनी—**मनोहर विलासोंसे सम्पन्न,** २९० चित्स्वरूपा—**चिन्मयी भगवती,** २९१ चन्द्रवती—**अपने ललाटपर चन्द्रमाको धारण करनेवाली** २९२ चन्द्रमाः—**चन्द्रस्वरूपा,** २९३ चन्दनप्रिया—**चन्दन जिन्हें अत्यन्त प्रिय है, वे।**

चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारुहेतुकी।
छत्रयाता छत्रधरा छाया छन्दःपरिच्छदा॥ ५३॥

२९४ चोदयित्री—**हृदयमें प्रेरणा प्रदान करनेवाली,** २९५ चिरप्रज्ञा—**सनातन विद्या-स्वरूपिणी,** २९६ चातका—**चातकके समान अटल टेकवाली,** २९७ चारुहेतुकी—**जगत्‌की रचना करनेमें सुन्दर हेतुओंसे सम्पन्न,** २९८ छत्रयाता—**उपासकगण जिनके चलते समय मस्तकपर छत्र ताने रहते हैं,** २९९ छत्रधरा—**छत्र धारण करनेवाली,** ३०० छाया—**छाया-स्वरूपिणी,** ३०१ छन्दःपरिच्छदा—**वेदसे ही जिनके अभिप्रायका ज्ञान होता है, वे।**

छायादेवीच्छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी।
छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता छिद्रोपद्रवभेदिनी॥ ५४॥

३०२ छायादेवी—**छायाकी अधिष्ठात्री देवी,** ३०३ छिद्रनखा—**छिद्रयुक्त नखोंवाली,** ३०४ छन्नेन्द्रियविसर्पिणी—**इन्द्रियविजयी योगियोंके पास पधारनेवाली,** ३०५ छन्दोऽनुष्टुप्-

प्रतिष्ठान्ता—**अनुष्टुप् छन्दवाला गायत्रीमन्त्र जिनका स्वरूप है,** ३०६ छिद्रोपद्रवभेदिनी—**कपटरूप उपद्रवको शान्त करनेवाली।**

छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया।
जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी॥ ५५॥

३०७ छेदा—**पापका उच्छेद करनेवाली,** ३०८ छत्रेश्वरी—**एकच्छत्र जगत्पर शासन करनेवाली,** ३०९ छिन्ना—**छिन्नमस्तारूप देवी,** ३१० छुरिका—**छुरिका नामक अस्त्र धारण करनेवाली,** ३११ छेदनप्रिया—**दैत्योंको छिन्न-भिन्न कर डालना जिन्हें परम प्रिय है,** ३१२ जननी—**जगत्को जन्म देनेवाली,** ३१३ जन्मरहिता—**जिनका कभी जन्म नहीं होता, वे देवी,** ३१४ जातवेदाः—**अग्निस्वरूपिणी,** ३१५ जगन्मयी— **सम्पूर्ण जगत्के रूपमें अभिव्यक्त।**

जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता।
जम्बूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जलशालिनी॥ ५६॥

३१६जाह्नवी—**राजा जह्नुके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली गङ्गारूपा,** ३१७ जटिला—**साधारण पुरुष जिनके रहस्यको समझ नहीं पाते,** ३१८ जेत्री—**सर्वत्र विजय प्राप्त करनेवाली,** ३१९ जरामरणवर्जिता—**जरा और मरणसे रहित नित्य तरुणीरूपा,** ३२० जम्बूद्वीपवती—**जम्बूद्वीपकी स्वामिनी,** ३२१ ज्वाला—**तेजःस्वरूपिणी, ज्वाला नामकी देवी,** ३२२ जयन्ती—**जयशीला, जयन्ती नामकी देवी,** ३२३ जलशालिनी—**विश्वको जल देनेवाली जलशालिनी शताक्षी देवी।**

जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया।
जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा॥ ५७॥

३२४ जितेन्द्रिया—**इन्द्रियोंपर विजय पायी हुई,** ३२५ जितक्रोधा—**जिन्होंने क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है,** ३२६ जितामित्रा—**शत्रुओंपर सदा विजय प्राप्त करनेवाली,** ३२७ जगत्प्रिया—**समस्त जगत् जिनसे प्रेम करता है,** ३२८ जातरूपमयी—**परम सुन्दर रूपवाली,** ३२९ जिह्वा—**प्राणियोंके मुखमें जिह्वारूपसे विराजमाना,** ३३० जानकी—**राजा जनकके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली,** ३३१ जगती—**विश्वरूपा अथवा सर्वत्र व्यापिनी,** ३३२ जरा—**संध्याकालमें वृद्ध रूप धारण करनेवाली।**

जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी।
ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा॥ ५८॥

३३३ जनित्री—**जिन्होंने अपने शरीरको प्रकट किया है,** ३३४ जह्नुतनया—**जह्नुकी पुत्री,** ३३५ जगत्त्रयहितैषिणी—**तीनों जगत्के हित-साधनमें सदा तत्पर रहनेवाली,** ३३६ ज्वालामुखी—**ज्वालामुखी पर्वत जिनका रूप है,** ३३७ जपवती—**सदा ब्रह्मका चिन्तन करनेवाली,** ३३८ ज्वरघ्नी—**जिनकी कृपासे सभी प्रकारके ज्वर शान्त हो जाते हैं,** ३३९ जितविष्टपा—**अखिल जगत्पर विजय प्राप्त करनेवाली।**

जिताक्रान्तमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता।
ज्वलन्ती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी॥ ५९॥

३४० जिताक्रान्तमयी—**सबपर प्रभाव डालनेवाली विजयशालिनी,** ३४१ ज्वाला—**प्रचण्ड तेजःस्वरूप जिनका विग्रह है,** ३४२ जाग्रती—**जिनपर निद्रा अपना प्रभाव नहीं डाल सकती,** ३४३ ज्वरदेवता—**ज्वरोंकी अधिष्ठात्री देवी,** ३४४ ज्वलन्ती—**सदा देदीप्यमान रहनेवाली,** ३४५ जलदा—**मेघोंके द्वारा जल बरसानेवाली,** ३४६ ज्येष्ठा—**परमादरणीया,**

३४७ ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी—**जिनके धनुषकी टंकार दिशाओं-विदिशाओंमें स्पष्टरूपसे सुनायी पड़ती है।**

जम्भिनी जृम्भणा जृम्भा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला।
झिंझिका झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी॥ ६०॥

३४८ जम्भिनी—**दाँतोंसे दैत्योंको चूर्ण करनेवाली,** ३४९ जृम्भणा—**समयानुसार जँभाईकी मुद्रासे सम्पन्न,** ३५० जृम्भा—**जृम्भस्वरूपिणी,** ३५१ ज्वलन्माणिक्यकुण्डला—**प्रज्वलित मणिमय कुण्डलोंसे शोभा पानेवाली,** ३५२ झिंझिका—**झींगुर-जैसे क्षुद्र प्राणी भी जिनके अंशसे उत्पन्न हुए,** ३५३ झणनिर्घोषा—**कंकणकी झनकार-ध्वनिसे सदा मुखरिता,** ३५४ झंझामारुतवेगिनी—**झंझावातके समान भयंकर वेगवाली।**

झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता।
टङ्कबाणसमायुक्ता टङ्किनी टङ्कभेदिनी॥ ६१॥

३५५ झल्लरीवाद्यकुशला—**झल्लरी (ढोलक) बाजेको बजानेमें निपुण,** ३५६ ञरूपा—**बलीवर्दरूपा,** ३५७ ञभुजा—**बलीवर्दके समान पराक्रमी दोनों भुजाओंसे सुशोभित,** ३५८ टङ्कबाणसमायुक्ता—**फरसा और बाण धारण करनेवाली,** ३५९ टङ्किनी—**संग्राममें धनुष टंकारनेवाली,** ३६० टङ्कभेदिनी—**शत्रुके धनुषकी टंकारको भेदन करनेवाली।**

टङ्कीगणकृताघोषा टङ्कनीयमहोरसा।
टङ्कारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी॥ ६२॥

३६१ टङ्कीगणकृताघोषा—**रुद्रगणके समान गम्भीर घोष करनेवाली,** ३६२ टङ्कनीयमहोरसा—**वर्णनीय महान् वक्षःस्थलवाली,** ३६३ टङ्कारकारिणी देवी—**टङ्कार शब्द करनेवाली देवियोंकी स्वामिनी,** ३६४ ठठशब्दनिनादिनी—**ठं ठं शब्द करके शत्रुओंको भयभीत करनेवाली।**

डामरी डाकिनी डिम्भा डुण्डुमारैकनिर्जिता।
डामरीतन्त्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी॥ ६३॥

३६५ डामरी—**तन्त्रशास्त्रकी अधिष्ठात्री देवी,** ३६६ डाकिनी—**डाकिनीस्वरूपा,** ३६७ डिम्भा—**बालरूपा,** ३६८ डुण्डुमारैकनिर्जिता—**डुण्डुमार नामक राक्षसको परास्त करनेवाली,** ३६९ डामरीतन्त्रमार्गस्था—**डामरतन्त्रके साधनमें स्थिता,** ३७० डमड्डमरुनादिनी—**डमड्-डमड्-ध्वनिसे डमरू बजानेवाली।**

डिण्डीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा।
ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा॥ ६४॥

३७१ डिण्डीरवसहा—**डिण्डी नामक वाद्य-विशेषकी ध्वनिको सहन करनेवाली,** ३७२ डिम्भलसत्क्रीडापरायणा—**मातृरूपसे बालकोंके साथ उल्लासपूर्वक क्रीड़ा करनेमें संलग्न रहनेवाली,** ३७३ ढुण्ढिविघ्नेशजननी—**ढुण्ढिराज गणेशकी माता,** ३७४ ढक्काहस्ता—**ढाक नामक बाजेको हाथोंमें लिये हुए,** ३७५ ढिलिव्रजा—**ढिलीनामक गण जिनके सहयोगी हैं।**

नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी।
त्रिगुणा त्रिपदा तन्त्री तुलसीतरुणातरुः॥ ६५॥

३७६ नित्यज्ञाना—**नित्य ज्ञानमयी,** ३७७ निरुपमा—**जिनकी उपमा दूसरे किसीसे नहीं दी जा सकती,** ३७८ निर्गुणा—**निर्गुणस्वरूपिणी (त्रिगुणसे रहित) देवी,** ३७९ नर्मदा—**नर्मदा संज्ञक नदीरूपसे विराजमान,** ३८० नदी—**अव्यक्त शब्द करनेवाली सरिता,** ३८१ त्रिगुणा—**सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके रूपमें प्रकट,** ३८२ त्रिपदा—**तीन**

पदोंवाली, ३८३ तन्त्री—**तन्त्रशास्त्र जिनके स्वरूप हैं,** ३८४ तुलसीतरुणातरुः—**वृक्षोंमें तरुण तुलसीरूपसे विराजमान।**

त्रिविक्रमपदाक्रान्ता तुरीयपदगामिनी।
तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिना तुरा॥ ६६॥

३८५ त्रिविक्रमपदाक्रान्ता— **भगवान् वामनके चरणसे आक्रान्त धरणीरूपा,** ३८६ तुरीयपदगामिनी—**चार पदोंसे गमन करनेवाली,** ३८७ तरुणादित्यसंकाशा—**प्रचण्ड सूर्यके समान प्रकाशसे सम्पन्न,** ३८८ तामसी—**दानव-वधके समय तामस रूप धारण करनेवाली,** ३८९ तुहिना—**चन्द्रमाके समान शीतल किरणोंवाली,** ३९० तुरा—**शीघ्रगामिनी।**

त्रिकालज्ञानसम्पन्ना त्रिवेणी च त्रिलोचना।
त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुङ्गा तुरङ्गवदना तथा॥ ६७॥

३९१ त्रिकालज्ञानसम्पन्ना—**भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका पूर्ण ज्ञान रखनेवाली,** ३९२ त्रिवेणी—**गङ्गा-यमुना-सरस्वती-रूपा,** ३९३ त्रिलोचना—**तीन नेत्रोंवाली देवी,** ३९४ त्रिशक्तिः—**महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती—इन तीन शक्तियोंके रूपमें विराजमान अथवा इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूपा,** ३९५ त्रिपुरा—**त्रिपुरादेवीरूपा,** ३९६ तुङ्गा—**श्रेष्ठ विग्रहवाली,** ३९७ तुरङ्गवदना—**हयग्रीवावतारके समय उनकी शक्तिरूपसे विराजमाना।**

तिमिङ्गिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादिनी।
तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा॥ ६८॥

३९८ तिमिङ्गिलगिला—**मत्स्योंको खानेवाले तिमिङ्गिलको भी उदरस्थ कर लेनेवाली,** ३९९ तीव्रा—**परम चञ्चल,** ४०० त्रिस्रोता—**तीन धाराओंसे सम्पन्न,** ४०१ तामसादिनी—**अज्ञानरूपी अन्धकारको खा जानेवाली,** ४०२ तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा—**तन्त्र-मन्त्रको विशेषरूपसे जाननेवाली देवी,** ४०३ तनुमध्या—**प्राणिमात्रके शरीरमें विराजमान,** ४०४ त्रिविष्टपा—**स्वर्गलोक जिनका स्वरूप है।**

त्रिसंध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी।
ताटङ्किनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी॥ ६९॥

४०५ त्रिसंध्या—**तीनों संध्याओंकी आराध्या देवी,** ४०६ त्रिस्तनी—**राजा मलयध्वजके यहाँ कन्यारूपसे विराजमान,** ४०७ तोषासंस्था—**सदा संतुष्ट रहनेवाली,** ४०८ तालप्रतापिनी—**ताली बजाकर शत्रुओंको आतङ्कित करनेवाली,** ४०९ ताटङ्किनी—**धनुष-टंकार करनेमें परम प्रवीण,** ४१० तुषाराभा—**बर्फके समान शुभ्र कान्तिवाली,** ४११ तुहिनाचलवासिनी—**हिमालयपर्वतपर वास करनेवाली।**

तन्तुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया।
तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः॥ ७०॥

४१२ तन्तुजालसमायुक्ता—**जिनका तन्तु-जाल जगत्में व्याप्त है,** ४१३ तारहारावलिप्रिया—**चमकीले तारोंसे युक्त हार जिन्हें परम प्रिय हैं,** ४१४ तिलहोमप्रिया—**तिलके हवनसे परम प्रसन्न होनेवाली,** ४१५ तीर्था—**तीर्थस्वरूपिणी देवी,** ४१६ तमालकुसुमाकृतिः—**तमाल-पुष्पके सदृश श्याम आकृतिवाली।**

तारका त्रियुता तन्वी त्रिशङ्कुपरिवारिता।
तलोदरी तिलाभूषा ताटङ्कप्रियवाहिनी॥ ७१॥

४१७ तारका—**अपने भक्तोंको तारनेवाली,** ४१८ त्रियुता—**तीन गुणों अथवा तीन वेदोंसे युक्त,** ४१९ तन्वी—**सूक्ष्म शरीरसे सुशोभित,** ४२० त्रिशङ्कुपरिवारिता—**राजा**

त्रिशङ्कुके द्वारा उपास्यरूपमें वरण की हुई, ४२१ तलोदरी—पृथ्वी जिनके उदररूपसे शोभा पाती है, ४२२ तिलाभूषा—तिलपुष्पके समान नील कान्तिवाली, ४२३ ताटङ्कप्रियवाहिनी—प्रेम-पूर्वक कानोंमें कर्णफूल धारण करनेवाली।

त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः।
तप्तकाञ्चनसंकाशा तप्तकाञ्चनभूषणा॥ ७२॥

४२४ त्रिजटा—तीन वेणियोंसे सुशोभित, ४२५ तित्तिरी—'तित्ति' इस प्रकारकी अव्यक्त ध्वनि करनेवाली, ४२६ तृष्णा—देवी तृष्णाके रूपसे विराजमान, ४२७ त्रिविधा—तीन प्रकारके रूप धारण करनेवाली, ४२८ तरुणाकृतिः—जिनका श्रीविग्रह सदा तरुण अवस्थासे सुशोभित रहता है, ४२९ तप्त-काञ्चनसंकाशा—तपाये हुए सुवर्णके सदृश दीप्तिसे सम्पन्न, ४३० तप्तकाञ्चनभूषणा—तपे हुए स्वर्ण-भूषणसे अलंकृत।

त्रैयम्बका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी।
तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुम्बुरुस्तुता॥ ७३॥

४३१ त्रैयम्बका—तीनों लोकोंको प्रकट करनेवाली माता, ४३२ त्रिवर्गा—धर्म, अर्थ और काम जिनके स्वरूप हैं, ४३३ त्रिकाल-ज्ञानदायिनी—भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका ज्ञान देनेवाली, ४३४ तर्पणा—तर्पणस्वरूपा, ४३५ तृप्तिदा—सबको तृप्ति प्रदान करनेवाली, ४३६ तृप्ता—सदा अपनी महिमामें तृप्त रहनेवाली, ४३७ तामसी—तामस-रूप धारण करनेवाली देवी, ४३८ तुम्बुरुस्तुता—गन्धर्व तुम्बुरु जिनकी सदा स्तुति करते हैं।

तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभङ्गी तनुवल्लरिः।
थात्कारी थारवा थान्ता दोहिनी दीनवत्सला॥ ७४॥

४३९ तार्क्ष्यस्था—गरुड़पर विराजनेवाली, लक्ष्मीरूपा, ४४० त्रिगुणाकारा—जिनके श्रीविग्रहमें सात्त्विक, राजस और तामस तीनों गुण हैं, ४४१ त्रिभङ्गी—तीन स्थानोंमें वक्रतासे युक्त, ४४२ तनुवल्लरिः—कोमल लताकी भाँति जिनके शरीरके अवयव हैं, ४४३ थात्कारी—समराङ्गणमें 'थात' इस शब्दका उच्चारण करनेवाली, ४४४ थारवा—भयसे मुक्त करनेवाले शब्दोंका उच्चारण करनेवाली, ४४५ थान्ता—मङ्गलमयी देवी, ४४६ दोहिनी—इच्छानुसार दोहन करनेयोग्य अर्थात् कामधेनु-स्वरूपा, ४४७ दीनवत्सला—दीनजनोंपर कृपा करनेवाली देवी।

दानवान्तकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी।
देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुन्दुभिस्वना॥ ७५॥

४४८ दानवान्तकरी—दानवोंका अन्त करनेवाली, ४४९ दुर्गा—संकटोंसे निवारण करना जिनका स्वाभाविक गुण है, ४५० दुर्गासुरनिबर्हिणी—दुर्ग नामक असुरको मारनेवाली, ४५१ देवरीतिः—दिव्यमार्गसे सम्पन्न, ४५२ दिवारात्रिः—दिन और रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी, ४५३ द्रौपदी—द्रौपदीरूपसे विराजमान, ४५४ दुन्दुभिस्वना—दुन्दुभिके समान उच्च घोष करनेवाली।

देवयानी दुरावासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा।
दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी॥ ७६॥

४५५ देवयानी—देवयानी नामक शुक्राचार्यकी कन्याके रूपमें विराजमान, ४५६ दुरावासा—दुर्गम आवासवाली, ४५७ दारिद्र्योद्भेदिनी—दरिद्रताका नाश करनेवाली, ४५८ दिवा—स्वर्गमयी देवी, ४५९ दामोदरप्रिया—भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, ४६० दीप्ता—परमप्रदीप्तस्वरूपिणी, ४६१ दिग्वासा—

**सम्पूर्ण दिशाएँ जिनके वस्त्र हैं—उलंगिनी,** ४६२ दिग्विमोहिनी—**समस्त दिशाओंको मोहित करनेवाली।**

दण्डकारण्यनिलया दण्डिनी देवपूजिता।
देववन्द्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः॥ ७७॥

४६३ दण्डकारण्यनिलया— **दण्डकारण्यमें निवास करनेवाली,** ४६४ दण्डिनी—**जिनके कर-कमलमें दण्ड शोभा पाता है,** ४६५ देवपूजिता—**देवताओंके द्वारा पूजा प्राप्त करनेवाली,** ४६६ देववन्द्या—**देवताओंकी परम वन्दनीया देवी,** ४६७ दिविषदा—**सदा स्वर्गमें विराजनेवाली,** ४६८ द्वेषिणी—**राक्षसोंके प्रति द्वेष रखनेवाली,** ४६९ दानवाकृतिः—**दानवोंके समक्ष उन्हीं-जैसी आकृति धारण करनेवाली।**

दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी।
धात्री धनुर्धरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी॥ ७८॥

४७० दीनानाथस्तुता—**दीनजनोंकी रक्षा करनेवाले भगवान्‌के द्वारा स्तुति प्राप्त करनेवाली,** ४७१ दीक्षा—**दीक्षास्वरूपिणी,** ४७२ दैवतादिस्वरूपिणी—**देवताओंकी आदि-स्वरूपा,** ४७३ धात्री—**जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाली,** ४७४ धनुर्धरा—**धनुष धारण करनेवाली,** ४७५ धेनुः—**कामधेनुस्वरूपिणी,** ४७६ धारिणी—**जगत्‌को धारण करनेवाली,** ४७७ धर्मचारिणी—**धर्मका आचरण करनेवाली।**

धरंधरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी।
धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा॥ ७९॥

४७८ धरंधरा—**अखिल जगत्‌का भार सहन करनेवाली,** ४७९ धराधारा—**पृथ्वी अथवा नदीकी धाराके रूपमें विराजमान धरतीकी आधाररूपा,** ४८० धनदा—**धन प्रदान करनेवाली,** ४८१ धान्यदोहिनी—**धान्य-दोहन करनेवाली,** ४८२ धर्मशीला—**सद्धर्मका पालन करनेवाली,** ४८३ धनाध्यक्षा—**धनकी स्वामिनी,** ४८४ धनुर्वेदविशारदा—**धनुर्वेदके रहस्यको भलीभाँति जाननेवाली।**

धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा।
धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी॥ ८०॥

४८५ धृतिः—**धारणाशक्ति या धैर्य-रूपिणी,** ४८६ धन्या—**सदा ही धन्य रहनेवाली,** ४८७ धृतपदा—**उत्तम पदपर प्रतिष्ठित,** ४८८ धर्मराजप्रिया—**धर्मराजके यहाँ प्रियारूपसे सुशोभित,** ४८९ ध्रुवा—**अपने निश्चयसे कभी न डिगनेवाली,** ४९० धूमावती—**धूमावती नामसे प्रसिद्ध देवी,** ४९१ धूमकेशी— **धूएँके समान धूमिल केशवाली,** ४९२ धर्मशास्त्र-प्रकाशिनी—**धर्मशास्त्रोंको प्रकट करनेवाली।**

नन्दा नन्दप्रिया निद्रा नृनुता नन्दनात्मिका।
नर्मदा नलिनी नीला नीलकण्ठसमाश्रया॥ ८१॥

४९३ नन्दा—**आनन्दस्वरूपिणी,** ४९४ नन्दप्रिया—**नन्दके घर यशोदारूपसे विराजमान,** ४९५ निद्रा—**निद्रा-रूप धारण करनेवाली—योगनिद्रा,** ४९६ नृनुता—**अखिल मानव जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं,** ४९७ नन्दनात्मिका—**नन्दके घर पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली,** ४९८ नर्मदा—**हास्यभरी वाणी बोलनेवाली या नर्मदा नदीरूपा,** ४९९ नलिनी—**कमलिनी-स्वरूपा,** ५०० नीला—**जिनके विग्रहका वर्ण नील है;** ५०१ नीलकण्ठसमाश्रया—**नीलकण्ठ महादेवको आश्रय प्रदान करनेवाली।**

नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः।
निराधारा निरुपमा नित्यशुद्धा निरञ्जना॥ ८२॥

५०२ नारायणप्रिया—**भगवान् नारायणकी**

**परम प्रिया लक्ष्मीदेवी,** ५०३ नित्या—**नित्यस्वरूपिणी,** ५०४ निर्मला—**मलरहित विग्रह धारण करनेवाली,** ५०५ निर्गुणा—**जो तीनों गुणोंसे रहित हैं,** ५०६ निधिः—**सम्पत्तिस्वरूपिणी,** ५०७ निराधारा—**जिन्हें किसीका आश्रय अपेक्षित नहीं है,** ५०८ निरुपमा—**अनुपम रूप धारण करनेवाली,** ५०९ नित्यशुद्धा—**सदा परम पवित्र रहनेवाली,** ५१० निरञ्जना—**मायारहित।**

नादबिन्दुकलातीता नादबिन्दुकलात्मिका।
नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता॥ ८३॥

५११ नादबिन्दुकलातीता— **नाद-बिन्दु-कलासे परे,** ५१२ नादबिन्दुकलात्मिका—**नाद-बिन्दु-कलारूपिणी,** ५१३ नृसिंहिनी—**नृसिंह-रूपा—भगवान् नृसिंह जिनके प्रियतम हैं,** ५१४ नगधरा—**पर्वतोंको धारण करनेवाली,** ५१५ नृपनागविभूषिता—**नागराजसे विभूषित।**

नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा।
निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी॥ ८४॥

५१६ नरकक्लेशशमनी—**नरकके कष्टको दूर करनेवाली,** ५१७ नारायणपदोद्भवा—**भगवान् नारायणके चरणसे प्रकट गङ्गा-स्वरूपिणी,** ५१८ निरवद्या—**निर्दोषरूपा,** ५१९ निराकारा—**आकाररहित (भौतिकरूपसे रहित),** ५२० नारदप्रियकारिणी—**नारदजीका प्रिय करनेवाली।**

नानाज्योतिःसमाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका।
नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी॥ ८५॥

५२१ नानाज्योतिःसमाख्याता— **नाना प्रकारकी ज्योतिरूपसे विख्यात,** ५२२ निधिदा—**अखिल वैभवको देनेवाली,** ५२३ निर्मलात्मिका—**शुद्धस्वरूपिणी,** ५२४ नवसूत्रधरा—**नवीन सूत्र धारण करनेवाली,** ५२५ नीतिः—**नीतिस्वरूपिणी,** ५२६ निरुपद्रवकारिणी—**सारे उपद्रवोंको शान्त करनेवाली।**

नन्दजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी।
नवनीतप्रिया नारी नीलजीमूतनिस्वना॥ ८६॥

५२७ नन्दजा—**नन्दके घर पुत्रीरूपसे प्रकट,** ५२८ नवरत्नाढ्या—**नौ रत्नोंसे युक्त,** ५२९ नैमिषारण्यवासिनी—**नैमिषारण्यमें भगवती ललिता नामसे विराजनेवाली,** ५३० नवनीतप्रिया—**नवनीत अर्पण करनेपर तुरंत प्रसन्न होनेवाली,** ५३१ नारी—**नारीरूपसे संसारमें सुशोभिता,** ५३२ नीलजीमूतनिस्वना—**नील मेघके समान भीषण गर्जना करनेवाली।**

निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी।
नामावलिर्निशुम्भघ्नी नागलोकनिवासिनी॥ ८७॥

५३३ निमेषिणी—**निमेष जिनका रूप है,** ५३४ नदीरूपा—**नदीरूपसे विराजनेवाली,** ५३५ नीलग्रीवा—**जिनकी ग्रीवामें नीलवर्ण सुशोभित है,** ५३६ निशीश्वरी—**रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी,** ५३७ नामावलिः—**अनेक नामोंसे प्रसिद्ध,** ५३८ निशुम्भघ्नी—**निशुम्भ नामक राक्षसका वध करनेवाली,** ५३९ नागलोकनिवासिनी—**पाताललोकमें निवास करनेवाली।**

नवजाम्बूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता।
नूपुराक्रान्तचरणा नरचित्तप्रमोदिनी॥ ८८॥

५४० नवजाम्बूनदप्रख्या—**नूतन सुवर्णके समान कान्तिवाली,** ५४१ नागलोकाधिदेवता—**पातालकी अधिष्ठात्री देवी,** ५४२ नूपुराक्रान्त-चरणा—**चरणोंमें सुन्दर नूपुर धारण करनेवाली,** ५४३ नरचित्तप्रमोदिनी—**मानवोंके चित्तको आह्लादित करनेवाली।**

निमग्नारक्तनयना निर्घातसमनिस्वना ।
नन्दनोद्याननिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी ॥ ८९ ॥

५४४ निमग्नारक्तनयना—**धँसी हुई लाल आँखोंवाली,** ५४५ निर्घातसमनिस्वना—**तूफानके समान शब्द करनेवाली,** ५४६ नन्दनोद्याननिलया—**दिव्य नन्दनवनमें विहार करनेवाली,** ५४७ निर्व्यूहोपरिचारिणी—**बिना व्यूह बनाये आकाशमें स्वच्छन्द विचरनेवाली ।**

पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा ।
पञ्चकोशविनिर्मुक्ता पञ्चपातकनाशिनी ॥ ९० ॥

५४८ पार्वती—**पार्वती नामसे विख्यात,** ५४९ परमोदारा—**अतिशय उदार स्वभाववाली,** ५५० परब्रह्मात्मिका—**परब्रह्मस्वरूपिणी,** ५५१ परा—**पराविद्या नामसे प्रसिद्ध,** ५५२ पञ्चकोशविनिर्मुक्ता—**अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पाँच कोषोंसे रहित दिव्य विग्रहवाली,** ५५३ पञ्चपातकनाशिनी—**पाँच प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली ।**

परचित्तविधानज्ञा पञ्चिका पञ्चरूपिणी ।
पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजः प्रकाशिनी ॥ ९१ ॥

५५४ परचित्तविधानज्ञा—**दूसरेके चित्तकी गति-विधिको जाननेवाली,** ५५५ पञ्चिका—**पञ्चिका देवीके नामसे सुविख्यात,** ५५६ पञ्चरूपिणी—**पञ्चस्वरूपिणी,** ५५७ पूर्णिमा—**पूर्ण कलाओंसे सम्पन्न,** ५५८ परमा—**सर्वोपरि श्रेष्ठतमा,** ५५९ प्रीतिः—**प्रीतिस्वरूपिणी,** ५६० परतेजः—**परम तेजोरूपिणी,** ५६१ प्रकाशिनी—**सर्वत्र प्रकाश फैलानेवाली ।**

पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा ।
पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी ॥ ९२ ॥

५६२ पुराणी—**सनातनमयी देवी,** ५६३ पौरुषी—**परम पुरुष परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली,** ५६४ पुण्या—**पुण्यमय विग्रह धारण करनेवाली,** ५६५ पुण्डरीकनिभेक्षणा—**प्रफुल्लित कमलके समान नेत्रोंसे सुशोभित,** ५६६ पातालतलनिर्मग्ना—**तलातलमें प्रवेश करनेकी शक्ति रखनेवाली,** ५६७ प्रीता—**सदा प्रेममयी,** ५६८ प्रीतिविवर्धिनी—**प्रेमकी सदा वृद्धि करनेवाली ।**

पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी ।
प्रजापतिः परिश्रान्ता पर्वतस्तनमण्डला ॥ ९३ ॥

५६९ पावनी—**पवित्र करनेवाली,** ५७० पादसहिता—**तीन पदोंसे शोभा पानेवाली,** ५७१ पेशला—**परम सुन्दर विग्रहवाली,** ५७२ पवनाशिनी—**वायुका आहार करनेवाली,** ५७३ प्रजापतिः—**प्रजाओंकी रक्षा करनेमें तत्पर,** ५७४ परिश्रान्ता—**भक्तोंकी रक्षामें भली प्रकार व्यस्त रहनेवाली,** ५७५ पर्वतस्तनमण्डला—**विशाल स्तनोंसे सुशोभित ।**

पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसम्भवा ।
पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥

५७६ पद्मप्रिया—**कमलसे अतिशय प्रेम रखनेवाली,** ५७७ पद्मसंस्था—**कमलके आसनपर विराजमान,** ५७८ पद्माक्षी—**कमलके समान नेत्रवाली,** ५७९ पद्मसम्भवा—**कमलपर प्रकट होनेवाली, ब्रह्माणी,** ५८० पद्मपत्रा—**कमल-पत्रके समान जगत्से निर्लिप्त,** ५८१ पद्मपदा—**कमल-जैसे चरणोंसे सुशोभित,** ५८२ पद्मिनी—**हाथमें कमल धारण किये रहनेवाली वा स्त्रियोंमें श्रेष्ठ पद्मिनीरूपा,** ५८३ प्रियभाषिणी—**प्रिय वचन बोलनेवाली ।**

पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरन्ध्री पुरवासिनी ।
पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया ॥ ९५ ॥

५८४ पशुपाशविनिर्मुक्ता— **पाशविक**

पाशसे सदा मुक्त, ५८५ पुरन्ध्री—घरका कार्य सँभालनेवाली स्त्रीके रूपमें विराजमान, ५८६ पुरवासिनी—नगरमें निवास करनेवाली, ५८७ पुष्कला—सर्वोत्कृष्ट देवी, ५८८ पुरुषा—परम पुरुषार्थसे सम्पन्न, ५८९ पर्वा—पुण्य पर्वपर पूजा प्राप्त करनेवाली या स्वयं पर्वस्वरूपा, ५९० पारिजातसुमप्रिया—पारिजातके पुष्पसे परम प्रसन्न होनेवाली।

पतिव्रता पवित्राङ्गी पुष्पहासपरायणा।
प्रज्ञावतीसुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी॥ ९६॥

५९१ पतिव्रता—पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली, ५९२ पवित्राङ्गी—पवित्र अङ्गोंसे सम्पन्ना ५९३ पुष्पहासपरायणा—प्रफुल्लित पुष्पके समान हँसनेवाली ५९४ प्रज्ञावतीसुता—प्रज्ञावतीके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट, ५९५ पौत्री—पौत्रीरूपसे विराजमान, ५९६ पुत्रपूज्या—पुत्रसे पूजा प्राप्त करनेवाली, ५९७ पयस्विनी—जगत्‌के लिये अमृतमय दुग्ध प्रदान करनेवाली।

पट्टिपाशधरा पङ्क्तिः पितृलोकप्रदायिनी।
पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी॥ ९७॥

५९८ पट्टिपाशधरा—भुजाओंमें पट्टिश एवं पाश धारण करनेवाली, ५९९ पङ्क्तिः—श्रेणीबद्ध, ६०० पितृलोकप्रदायिनी—जिनकी कृपासे प्राणी पितरोंके लोकमें पहुँच जाता है, ६०१ पुराणी—सदासे विराजमान रहनेवाली सनातनी देवी, ६०२ पुण्यशीला—पवित्र आचरणवाली, ६०३ प्रणतार्तिविनाशिनी—प्रणतजनोंका दुःख-नाश करनेवाली।

प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा।
पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना॥ ९८॥
पृथुजङ्घा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी।
प्रवालशोभा पिङ्गाक्षी पीतवासाः प्रचापला॥ ९९॥

६०४ प्रद्युम्नजननी—प्रद्युम्नकी माता, ६०५ पुष्टा—पुष्टिस्वरूपिणी, ६०६ पितामह-परिग्रहा—आदिशक्तिद्वारा पितामह ब्रह्माके लिये प्राप्त देवी, ६०७ पुण्डरीकपुरावासा—पुण्डरीकपुर अर्थात् चिदम्बर क्षेत्रमें निवास करनेवाली, ६०८ पुण्डरीकसमानना—कमलके समान मुखसे सुशोभित, ६०९ पृथुजङ्घा—विशाल जाँघों-वाली, ६१० पृथुभुजा—दीर्घ भुजाओंसे सम्पन्न, ६११ पृथुपादा—बृहच्चरणोंवाली, ६१२ पृथूदरी—पृथुल उदरवाली, ६१३ प्रवालशोभा—मूँगेके समान कान्तिवाली, ६१४ पिङ्गाक्षी—पिङ्गल नेत्रवाली, ६१५ पीतवासाः—पीताम्बरसे सुशोभित, ६१६ प्रचापला—अत्यन्त चञ्चल स्वभाववाली।

प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः।
पञ्चवर्णा पञ्चवाणी पञ्चिका पञ्जरस्थिता॥ १००॥

६१७ प्रसवा—अखिल जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, वे, ६१८ पुष्टिदा—पुष्टि प्रदान करनेमें परमनिपुण, ६१९ पुण्या—पुण्य-स्वरूपिणी, ६२० प्रतिष्ठा—सबकी आधारभूता देवी, ६२१ प्रणवागतिः—ओंकारकी मूलरूपा, ६२२ पञ्चवर्णा—पाँच वर्णोंसे सम्पन्न, ६२३ पञ्चवाणी—विस्तृत वाणीवाली, ६२४ पञ्चिका—किसी देशकी प्रसिद्ध देवता, ६२५ पञ्जरस्थिता—प्राणिमात्रके शरीरमें विराजनेवाली।

परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः।
पराकाष्ठा परेशानी पाविनी पावकद्युतिः॥ १०१॥

६२६ परमाया—परम मायास्वरूपिणी, ६२७ परज्योतिः—सर्वोत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूपा, ६२८ परप्रीतिः—परम प्रीतिमयी देवी, ६२९ परागतिः—सर्वोत्तम आश्रयस्वरूपा,

६३० पराकाष्ठा—**जिनसे परे जगत्में दूसरा कोई नहीं,** ६३१ परेशानी—**सबसे बढ़-चढ़कर शासन करनेवाली,** ६३२ पाविनी—**जिनकी उपासनासे प्राणी पवित्र हो जाता है, वे,** ६३३ पावकद्युतिः—**अग्निके समान प्रकाशवती।**

पुण्यभद्रा परिच्छेद्या पुष्पहासा पृथूदरी।
पीताङ्गी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी॥ १०२॥

६३४ पुण्यभद्रा—**पवित्र करनेमें परम कुशल,** ६३५ परिच्छेद्या—**सबसे विलक्षण स्वभाववाली,** ६३६ पुष्पहासा—**पुष्प जिनके हास्यके द्योतक हैं,** ६३७ पृथूदरी—**विशाल उदरवाली,** ६३८ पीताङ्गी—**पीले वर्णवाले अङ्गोंसे सुशोभित,** ६३९ पीतवसना—**पीले रंगके वस्त्र धारण करनेवाली,** ६४० पीतशय्या—**पीत रंगकी शय्यापर शयन करनेवाली,** ६४१ पिशाचिनी—**पिशाचोंका गण साथमें रखनेवाली।**

पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया।
पञ्चभक्षप्रियाचारा पूतनाप्राणघातिनी॥ १०३॥

६४२ पीतक्रिया—**मधुपान-क्रियारूपिणी,** ६४३ पिशाचघ्नी—**पिशाचोंका संहार करनेवाली,** ६४४ पाटलाक्षी—**खिले हुए गुलाब-पुष्पके समान नेत्रोंवाली,** ६४५ पटुक्रिया—**चातुरीपूर्वक कार्य सम्पादन करनेवाली,** ६४६ पञ्चभक्षप्रियाचारा—**भोज्य, चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय पाँच प्रकारके भोजन जिन्हें प्रिय हैं,** ६४७ पूतनाप्राणघातिनी—**पूतनाके प्राणोंका नाश करनेवाली।**

पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता।
पञ्चाङ्गी च पराशक्तिः परमाह्लादकारिणी॥ १०४॥

६४८ पुन्नागवनमध्यस्था—**जायफलके वनमें विराजनेवाली,** ६४९ पुण्यतीर्थनिषेविता—**पुण्यमय तीर्थोंमें जिनका वास है,** ६५० पञ्चाङ्गी—**पाँच अङ्गोंसे सुशोभित,** ६५१ पराशक्तिः—**परम आराध्या देवी,** ६५२ परमाह्लादकारिणी—**परमानन्द देनेवाली।**

पुष्पकाण्डस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा।
पानप्रिया पञ्चशिखा पन्नगोपरिशायिनी॥ १०५॥

६५३ पुष्पकाण्डस्थिता—**पुष्पित वृक्षोंके स्कन्धोंमें स्थित रहनेवाली,** ६५४ पूषा—**सदा परिपुष्ट रहनेवाली,** ६५५ पोषिताखिलविष्टपा—**अखिल जगत्का पोषण करनेवाली,** ६५६ पानप्रिया—**मधु आदि पेय पदार्थ जिन्हें परम प्रिय हैं,** ६५७ पञ्चशिखा—**पाँच वेणियोंसे सुशोभित,** ६५८ पन्नगोपरिशायिनी—**सर्प-पर शयन करनेवाली।**

पञ्चमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी।
पुराणन्यायमीमांसा पाटली पुष्पगन्धिनी॥ १०६॥

६५९ पञ्चमात्रात्मिका—**पाँच मात्राएँ जिनका स्वरूप हैं,** ६६० पृथ्वी—**पृथ्वीका रूप धारण करनेवाली,** ६६१ पथिका—**मार्गमें क्षेमकरीरूपसे विराजमान,** ६६२ पृथुदोहिनी—**बहुत-सी वस्तुओंका दोहन करनेवाली,** ६६३ पुराणन्यायमीमांसा—**पुराण, न्याय और मीमांसारूपमें विराजमान,** ६६४ पाटली—**गुलाबका पुष्प धारण करनेवाली,** ६६५ पुष्पगन्धिनी—**फूलोंकी गन्धसे सुवासित।**

पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा।
प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी॥ १०७॥

६६६ पुण्यप्रजा—**पुण्यमय प्रजाकी जननी,** ६६७ पारदात्री—**सबका उद्धार करनेवाली,** ६६८ परमार्गैकगोचरा—**श्रेष्ठ मार्गके द्वारा ज्ञात होनेवाली,** ६६९ प्रवालशोभा—**मूँगोंके समान अथवा मूँगोंसे शोभा धारण करनेवाली,**

# श्रीगायत्रीयन्त्रम्
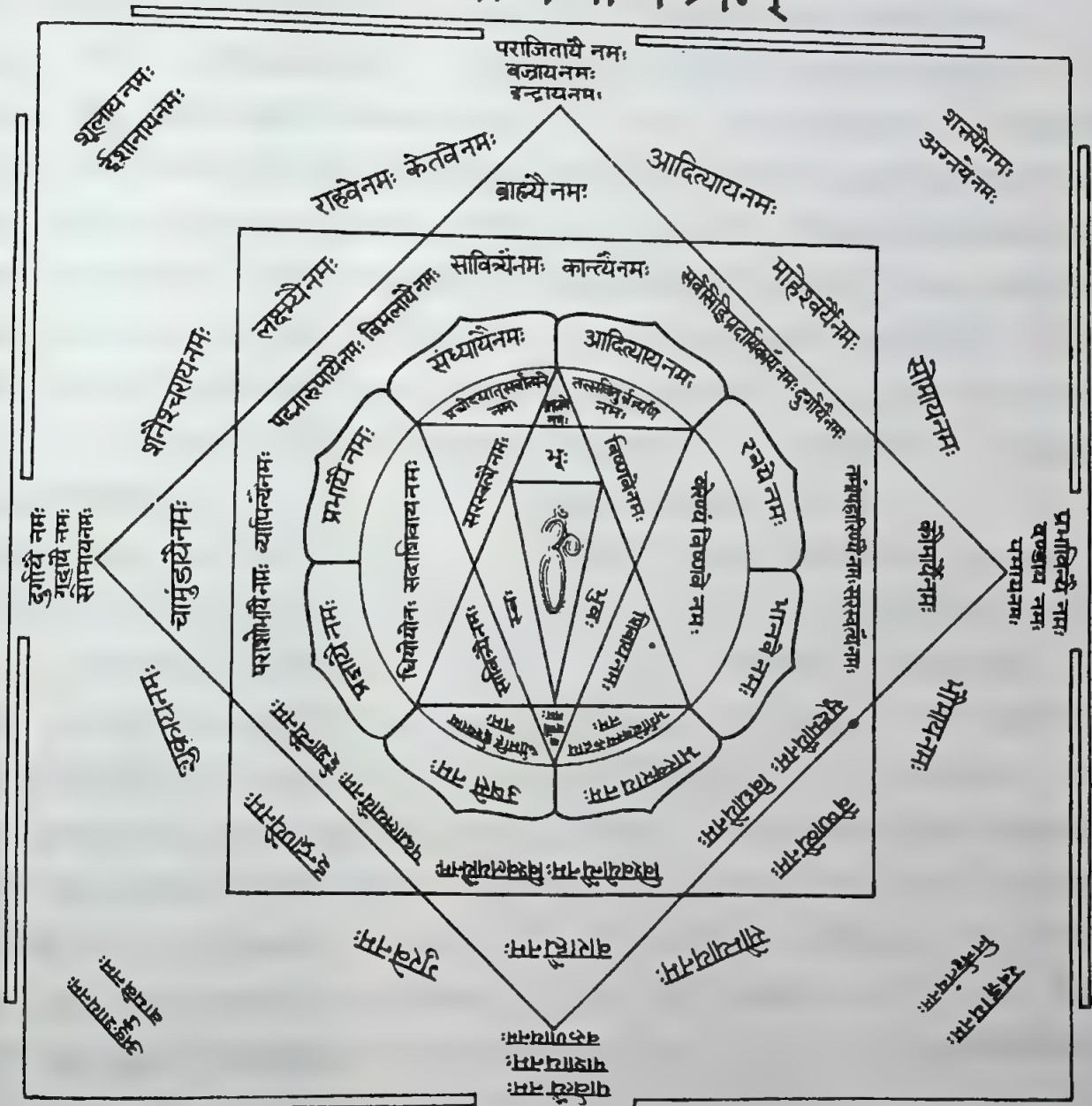
श्री विश्वामित्र कल्प अ. १२।१३ से ३५ के आधार पर

६७० पूर्णाशा—**जिनकी कोई आशा कभी अधूरी नहीं रह सकती,** ६७१ प्रणवा—**ॐकारस्वरूपिणी,** ६७२ पल्लवोदरी—**नवीन पल्लवके समान कोमल उदरवाली।**

फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः।
फणीन्द्रभोगशयना फणिमण्डलमण्डिता॥ १०८॥

६७३ फलिनी—**फलस्वरूपिणी,** ६७४ फलदा—**फल प्रदान करनेमें तत्पर,** ६७५ फल्गुः—**फल्गु नामक नदीके रूपमें विराजमान,** ६७६ फूत्कारी—**क्रोधके आवेशमें भरकर फूत्कार करनेवाली,** ६७७ फलकाकृतिः—**बाणके अग्रभागके समान आकृतिवाली,** ६७८ फणीन्द्रभोगशयना—**शेषनागपर शयन करनेवाली,** ६७९ फणिमण्डलमण्डिता—**शेषनागके मण्डलसे सुशोभित।**

बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका।
बलभद्रप्रिया वन्द्या वडवा बुद्धिसंस्तुता॥ १०९॥

६८० बालबाला—**बालिकाओंसे भी बाला,** ६८१ बहुमता—**सबके द्वारा सम्मानित,** ६८२ बालातपनिभांशुका—**प्रातःकालीन सूर्यकी भाँति अरुण वस्त्र धारण करनेवाली,** ६८३ बलभद्रप्रिया—**बलभद्रजीकी प्रिय पत्नी रेवतीजीके रूपमें विराजमान,** ६८४ वन्द्या—**जगत् जिनकी वन्दना करता है,** ६८५ वडवा—**बडवानलके रूपमें विराजमान,** ६८६ बुद्धिसंस्तुता—**बुद्धि आदि देवियोंद्वारा संस्तुत।**

बन्दीदेवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया।
बान्धवी बोधिता बुद्धिर्बन्धूककुसुमप्रिया॥ ११०॥

६८७ बन्दीदेवी—**बन्दीगणोंकी आराध्या,** ६८८ बिलवती—**गुहामें निवास करनेवाली,** ६८९ बडिशघ्नी—**जिनके सामने कपटकी सत्ता नहीं ठहर सकती,** ६९० बलिप्रिया—**बलिसे प्रसन्न होनेवाली,** ६९१ बान्धवी—**सम्पूर्ण प्राणियोंका बन्धुके समान हित करनेवाली,** ६९२ बोधिता—**अखिल ज्ञानसम्पन्ना,** ६९३ बुद्धिः—**बुद्धिस्वरूपिणी देवी,** ६९४ बन्धूककुसुमप्रिया—**बन्धूकके पुष्पसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाली।**

बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता।
बृहस्पतिस्तुता वृन्दा वृन्दावनविहारिणी॥ १११॥

६९५ बालभानुप्रभाकारा—**प्रातःकालीन सूर्यकी प्रभाके समान अरुण विग्रहवाली,** ६९६ ब्राह्मी—**ब्रह्माकी शक्तिरूपसे विराजमान,** ६९७ ब्राह्मणदेवता—**ब्राह्मणोंको देवता माननेवाली,** ६९८ बृहस्पतिस्तुता—**बृहस्पतिजीने जिनका स्तवन किया है,** ६९९ वृन्दा—**वृन्दा नामसे विख्यात,** ७०० वृन्दावनविहारिणी—**वृन्दावनमें विहार करनेवाली देवी।**

बालाकिनी बिलाहारा बिलवासा बहूदका।
बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका॥ ११२॥

७०१ बालाकिनी—**बकुलोंकी पंक्ति जिनका रूप माना जाता है,** ७०२ बिलाहारा—**कर्मोंकी त्रुटिको दूर करनेवाली,** ७०३ बिलवासा—**बिलरूपी गुहा जिनका निवासस्थान है,** ७०४ बहूदका—**नदीके रूपमें प्रकट होकर प्रभूत जलसे शोभा पानेवाली,** ७०५ बहुनेत्रा—**अनेक नेत्रोंसे सम्पन्न,** ७०६ बहुपदा—**जिनके अनगिनत पद हैं,** ७०७ बहुकर्णावतंसिका—**बहुत-से कर्णोंसे सुशोभित।**

बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी।
बिन्दुनादकलातीता बिन्दुनादस्वरूपिणी॥ ११३॥

७०८ बहुबाहुयुता—**अनेक भुजाओंसे सम्पन्न,** ७०९ बीजरूपिणी—**बीजरूप धारण करनेवाली देवी,** ७१० बहुरूपिणी—**बहुत-से रूपोंमें विराजमान,** ७११ बिन्दुनादकलातीता—

**बिन्दु, नाद और कलासे सर्वथा परे,** ७१२ बिन्दुनादस्वरूपिणी—**बिन्दु और नाद जिनका स्वरूप माना जाता है।**

बद्धगोधाङ्गुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी।
बृन्दारका बृहत्स्कन्धा बृहती बाणपातिनी॥ ११४॥

७१३ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा—**गोधाके चर्मका अङ्गुलित्राण धारण करनेवाली,** ७१४ बदर्याश्रमवासिनी—**बदरी-आश्रममें विराजमान,** ७१५ बृन्दारका—**परम सुन्दरी,** ७१६ बृहत्स्कन्धा—**विशाल कंधोंसे सुशोभित,** ७१७ बृहती—**बृहती छन्दरूपमें विराजमान,** ७१८ बाणपातिनी—**बाण बरसानेवाली।**

वृन्दाध्यक्षा बहुनुता वनिता बहुविक्रमा।
बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता॥ ११५॥

७१९ वृन्दाध्यक्षा—**वृन्दा आदि सखियोंकी अध्यक्षा,** ७२० बहुनुता—**जिनके चरणोंमें प्रायः सभी लोग मस्तक झुकाते हैं,** ७२१ वनिता—**परम सुन्दरी स्त्रीरूपिणी,** ७२२ बहुविक्रमा—**अपार बलसे सम्पन्न,** ७२३ बद्धपद्मासनासीना—**बद्धपद्मासन लगाकर बैठनेवाली,** ७२४ बिल्वपत्रतलस्थिता—**बिल्ववृक्षके नीचे निवास करनेवाली।**

बोधिद्रुमनिजावासा बडिस्था बिन्दुदर्पणा।
बाला बाणासनवती वडवानलवेगिनी॥ ११६॥

७२५ बोधिद्रुमनिजावासा—**पीपलके वृक्षके नीचे अपना स्थान बनानेवाली,** ७२६ बडिस्था (बलिस्था)—**शूरवीरोंमें शक्तिरूपसे विराजमान,** ७२७ बिन्दुदर्पणा—**अव्यक्त माया जिनका दर्पण है,** ७२८ बाला—**कन्यारूपसे विराजमान,** ७२९ बाणासनवती—**हाथमें धनुष धारण करनेवाली,** ७३० वडवानलवेगिनी—**बडवानलके समान वेगवाली।**

ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी।
भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी॥ ११७॥

७३१ ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था—**ब्रह्माण्डके भीतर-बाहर विराजमान,** ७३२ ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी—**ब्रह्मविद्याका प्रचार करनेवाली देवी,** ७३३ भवानी—**शिवपत्नी,** ७३४ भीषणवती—**दैत्योंका संहार करनेके लिये भयावह रूप धारण करनेवाली,** ७३५ भाविनी—**उत्पत्ति और पालन करनेवाली,** ७३६ भयहारिणी—**भयका हरण करनेवाली।**

भद्रकाली भुजङ्गाक्षी भारती भारताशया।
भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी॥ ११८॥

७३७ भद्रकाली—**भद्रकाली नामसे प्रसिद्ध देवी,** ७३८ भुजङ्गाक्षी—**सर्पोंके नेत्रके समान आँखोंवाली,** ७३९ भारती—**वाणीमयी देवी,** ७४० भारताशया—**अपने ज्ञानमें संलग्न पुरुषोंके अन्तःकरणमें विराजमान देवी,** ७४१ भैरवी—**भैरवी नामसे विख्यात,** ७४२ भीषणाकारा—**भयंकर आकृतिवाली,** ७४३ भूतिदा—**विभूति प्रदान करनेवाली,** ७४४ भूतिमालिनी—**प्रचुर ऐश्वर्यमयी।**

भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा।
भूतवासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता॥ ११९॥

७४५ भामिनी—**समयानुसार कोप करनेवाली देवी,** ७४६ भोगनिरता—**उपासकोंके अर्पण किये हुए पदार्थ भोगनेमें सदा तत्पर अथवा भुवनेश्वरके साथ सम्भोगरता,** ७४७ भद्रदा—**मङ्गल प्रदान करनेवाली,** ७४८ भूरिविक्रमा—**प्रचुर पराक्रमसे समन्वित,** ७४९ भूतवासा—**समस्त प्राणियोंके भीतर वास करनेवाली,** ७५० भृगुलता— **भृगुलताके रूपमें विराजमान,** ७५१ भार्गवी—**भृगुके यहाँ उनकी**

शक्तिके रूपमें विराजमान, ७५२ भूसुरार्चिता—ब्राह्मणोंसे भलीभाँति पूजिता।

भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा।
भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा ॥ १२० ॥

७५३ भागीरथी—राजा भगीरथके द्वारा लायी हुई गङ्गारूपसे विराजमान, ७५४ भोगवती—विविध प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न या भोगवती नदी, ७५५ भवनस्था—भव्य भवनमें विराजनेवाली, ७५६ भिषग्वरा—संसार-भयरूपी भोगसे मुक्त करनेके लिये सुप्रसिद्ध वैद्य, ७५७ भामिनी—उत्तम भावोंसे अलंकृत, ७५८ भोगिनी—नाना प्रकारके उत्तम भोगोंको भोगनेवाली, ७५९ भाषा—भाषारूपधारिणी, ७६० भवानी—भवानी नामसे प्रसिद्ध, ७६१ भूरिदक्षिणा—प्रचुर दक्षिणावाली।

भर्गात्मिका भीमवती भवबन्धविमोचिनी।
भजनीया भूतधात्रीरञ्जिता भुवनेश्वरी ॥ १२१ ॥

७६२ भर्गात्मिका—परम तेजःस्वरूपिणी, ७६३ भीमवती—संग्राममें भयंकर रूपसे विराजमान, ७६४ भवबन्धविमोचिनी—भवके बन्धनको काटनेवाली देवी ७६५ भजनीया—भजन करनेयोग्य, ७६६ भूतधात्रीरञ्जिता—जिनकी कृपासे प्राणी जीवन धारण करते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं, ७६७ भुवनेश्वरी—अखिल भूमण्डलकी स्वामिनी।

भुजङ्गवलया भीमा भेरुण्डा भागधेयिनी।
माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया ॥ १२२ ॥

७६८ भुजङ्गवलया—सर्पको वलयरूपसे हाथोंमें लपेटनेवाली, ७६९ भीमा—भयंकर वेषवाली, ७७० भेरुण्डा—भेरुण्डा नामसे विख्यात देवी, ७७१ भागधेयिनी—परम सौभाग्यशालिनी, ७७२ माता—जगज्जननी, ७७३ माया—माया-रूप धारण करनेवाली, ७७४ मधुमती—मधु-पान करनेवाली, ७७५ मधुजिह्वा—मधुका आस्वादन करनेवाली, ७७६ मधुप्रिया—मधुसे अतिशय प्रेम रखनेवाली।

महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना।
मायातीता मधुमती मधुमांसा मधुद्रवा ॥ १२३ ॥

७७७ महादेवी—समस्त देवियोंमें प्रधान, ७७८ महाभागा—महान् सौभाग्यशालिनी, ७७९ मालिनी—माला धारण करनेवाली, ७८० मीनलोचना—मछलीके नेत्रके समान आँखवाली, ७८१ मायातीता—मायासे परे, ७८२ मधुमती—मधु-पान करनेमें तत्पर, ७८३ मधुमांसा—मधुमांसरूपा, ७८४ मधुद्रवा—मधु-अर्पणसे प्रसन्न होनेवाली।

मानवी मधुसम्भूता मिथिलापुरवासिनी।
मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी ॥ १२४ ॥

७८५ मानवी—मानव-रूप धारण करनेवाली, ७८६ मधुसम्भूता—चैत्रमासमें प्रकट होनेवाली, ७८७ मिथिलापुरवासिनी—मिथिलापुरमें वास करनेवाली सीतारूपा, ७८८ मधुकैटभसंहर्त्री—मधु और कैटभका संहार करनेवाली, ७८९ मेदिनी—पृथ्वीरूपसे विराजमान, ७९० मेघमालिनी—मेघसमूहसे घिरी हुई।

मन्दोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया।
महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी ॥ १२५ ॥

७९१ मन्दोदरी—मन्दोदरीके रूपमें प्रकट देवी, ७९२ महामाया—महामाया नाम धारण करनेवाली आद्या शक्ति, ७९३ मैथिली—श्रीसीताके रूपमें विराजमान, ७९४ मसृण-प्रिया—मधुर चिकने पदार्थोंसे प्रेम करनेवाली, ७९५ महालक्ष्मीः—भगवती महालक्ष्मीके रूपसे

**विराजमान,** ७९६ महाकाली—**कालियोंमें सुप्रसिद्ध,** ७९७ महाकन्या—**महान् हिमालय-कन्याका वेष धारण करनेवाली,** ७९८ महेश्वरी—**महान् ईश्वरी।**

माहेन्द्री मेरुतनया मन्दारकुसुमार्चिता।
मञ्जुमञ्जीरचरणा मोक्षदा मञ्जुभाषिणी॥ १२६॥

७९९ माहेन्द्री—**शचीका रूप धारण करनेवाली देवी,** ८०० मेरुतनया—**सुमेरु पर्वतके यहाँ प्रकट होनेवाली,** ८०१ मन्दार-कुसुमार्चिता—**मन्दारके फूलोंसे सुपूजिता,** ८०२ मञ्जुमञ्जीरचरणा—**पैरोंमें सुन्दर पायजेब धारण करनेवाली,** ८०३ मोक्षदा—**मोक्ष प्रदान करनेवाली,** ८०४ मञ्जुभाषिणी—**मधुर भाषण करनेवाली।**

मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता।
मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा॥ १२७॥

८०५ मधुरद्राविणी—**कृपावश पिघलकर मधुर वचन बोलनेवाली,** ८०६ मुद्रा—**मुद्रा-रूपसे विराजमान,** ८०७ मलया—**मलयाचलपर निवास करनेवाली,** ८०८ मलयान्विता—**मलयगिरि चन्दनसे युक्त,** ८०९ मेधा—**बुद्धिस्वरूपिणी,** ८१० मरकतश्यामा—**मरकतमणिके समान श्याम वर्णवाली,** ८११ मागधी—**मगधमें सुपूजित या मगधदेशमें रहनेवाली,** ८१२ मेनकात्मजा—**मेनकाके यहाँ प्रकट होनेवाली।**

महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता।
मातृका मिहिराभासा मुकुन्दपदविक्रमा॥ १२८॥

८१३ महामारी—**महामारीरूपा,** ८१४ महावीरा—**असीम शक्तिसे सम्पन्न देवी,** ८१५ महाश्यामा—**सघन श्यामल शरीरसे सुशोभित,** ८१६ मनुस्तुता—**मनुने जिनका स्तवन किया है,** ८१७ मातृका—**मातृका नामसे प्रसिद्ध,** ८१८ मिहिराभासा—**सूर्यके समान प्रकाशमान देवी,** ८१९ मुकुन्दपदविक्रमा—**भगवान् विष्णुके पदका अनुसरण करनेवाली।**

मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी।
मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी॥ १२९॥

८२० मूलाधारस्थिता—**मूलाधारमें विराजमान कुण्डलिनीरूपा;** ८२१ मुग्धा—**सदा प्रसन्न रहनेवाली,** ८२२ मणिपूरकवासिनी—**मणिपूरकमें निवास करनेवाली देवी,** ८२३ मृगाक्षी—**मृगके नेत्रोंके सदृश नेत्रोंसे सुशोभित,** ८२४ महिषारूढा—**भैंसाकी सवारी करनेवाली यमीरूपिणी,** ८२५ महिषासुरमर्दिनी—**महिषासुरका मर्दन करनेवाली।**

योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया।
यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी॥ १३०॥

८२६ योगासना—**योगासन लगाकर बैठनेवाली,** ८२७ योगगम्या—**योग-साधनसे जाननेमें आनेवाली,** ८२८ योगा—**योग-स्वरूपिणी,** ८२९ यौवनकाश्रया—**सदा तरुण-अवस्थासे सम्पन्न,** ८३० यौवनी—**यौवन-रूपिणी,** ८३१ युद्धमध्यस्था—**समराङ्गणमें शोभा पानेवाली,** ८३२ यमुना—**यमुना नामक नदीरूपसे विराजमान,** ८३३ युगधारिणी—**युगोंको धारण करनेवाली।**

यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी।
यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा॥ १३१॥

८३४ यक्षिणी—**यक्षिणीरूपसे प्रकट,** ८३५ योगयुक्ता—**योगसे सम्पन्न,** ८३६ यक्षराज-प्रसूतिनी—**यक्षराजको जन्म देनेवाली देवी,** ८३७ यात्रा—**शत्रुओंपर धावा करनेवाली या यात्रारूपिणी,** ८३८ यानविधानज्ञा—**विमानोंकी**

**व्यवस्थामें परम कुशल,** ८३९ यदुवंशसमुद्भवा—**राजा यदुके वंशमें प्रकट होनेवाली देवी।**

यकारादिहकारान्ता याजुषी यज्ञरूपिणी।
यामिनी योगनिरता यातुधानभयंकरी॥ १३२॥

८४० यकारादिहकारान्ता—**यकारसे लेकर हकारतक सभी अक्षर जिनके रूप हैं,** ८४१ याजुषी—**यजुर्वेद जिनका रूप है,** ८४२ यज्ञरूपिणी—**यज्ञस्वरूपिणी,** ८४३ यामिनी—**रात्रिका रूप धारण करनेवाली,** ८४४ योगनिरता—**योगमें रत रहनेवाली,** ८४५ यातुधानभयंकरी—**राक्षसोंको भयभीत करनेवाली।**

रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः।
रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया॥ १३३॥

८४६ रुक्मिणी—**रुक्मिणी नामसे विख्यात,** ८४७ रमणी—**आनन्दस्वरूपिणी देवी,** ८४८ रामा—**योगियोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाली,** ८४९ रेवती—**रेवतके घर पुत्री-रूपसे प्रकट,** ८५० रेणुका—**परशुरामकी माता,** ८५१ रतिः—**कामदेवकी प्रेयसी भार्याके रूपसे सुशोभित,** ८५२ रौद्री—**भयंकर वेषवाली रुद्रपत्नी,** ८५३ रौद्रप्रियाकारा—**रौद्र आकार जिन्हें प्रिय है,** ८५४ राममाता—**कौशल्याके रूपसे प्रकट,** ८५५ रतिप्रिया—**रतिसे प्रेम करनेवाली।**

रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना।
राकेशी रूपसम्पन्ना रत्नसिंहासनस्थिता॥ १३४॥

८५६ रोहिणी—**रोहिणी नामसे विख्यात,** ८५७ राज्यदा—**राज्य प्रदान करनेवाली,** ८५८ रेवा—**रेवासंज्ञक नदी,** ८५९ रमा—**नेत्र और मनको रमानेवाली या लक्ष्मीजी,** ८६० राजीव-लोचना—**कमलके समान नेत्रोंसे सुशोभित,** ८६१ राकेशी—**चन्द्रमाको ललाटपर धारण करनेवाली,** ८६२ रूपसम्पन्ना—**अतिशय रूपवती देवी,** ८६३ रत्नसिंहासनस्थिता—**रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजनेवाली।**

रक्तमाल्याम्बरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
राजहंससमारूढा रम्भा रक्तबलिप्रिया॥ १३५॥

८६४ रक्तमाल्याम्बरधरा—**रक्तवर्णकी माला और वस्त्र धारण करनेवाली,** ८६५ रक्तगन्धानुलेपना—**लालचन्दनसे भलीभाँति अनुलिप्त,** ८६६ राजहंससमारूढा—**राजहंसपर सवारी करनेवाली,** ८६७ रम्भा—**रम्भा नामक अप्सराके रूपमें विराजमान,** ८६८ रक्तबलि-प्रिया—**युद्धमें रक्तकी बलि जिन्हें परम प्रिय है।**

रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला।
रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका॥ १३६॥

८६९ रमणीययुगाधारा—**मनोहर युगकी आश्रय-स्वरूपा,** ८७० राजिताखिलभूतला—**समस्त भूमण्डलको सुशोभित करनेवाली,** ८७१ रुरुचर्मपरीधाना—**मृगचर्म धारण करनेवाली,** ८७२ रथिनी—**रथपर विराजमान,** ८७३ रत्नमालिका—**रत्नोंकी माला पहननेवाली।**

रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी।
रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी॥ १३७॥

८७४ रोगेशी—**रोगोंपर शासन करने-वाली,** ८७५ रोगशमनी—**रोगोंका शमन करनेवाली,** ८७६ राविणी—**भीषण गर्जना करनेवाली,** ८७७ रोमहर्षिणी—**जिनके रोम पुलकायमान रहते हैं, वे,** ८७८ रामचन्द्र-पदाक्रान्ता—**भगवान् रामचन्द्रके पदसे आक्रान्ता,** ८७९ रावणच्छेदकारिणी— **रावणका संहार करनेवाली।**

रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा।
लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिङ्गधारिणी॥ १३८॥

८८० रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना—**रत्न और वस्त्रसे**

भलीभाँति आच्छादित, ८८१ रथस्था—रथपर विराजमान, ८८२ रुक्मभूषणा—सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, ८८३ लज्जाधिदेवता—लज्जाकी अधिष्ठात्री देवी, ८८४ लोला— अतिशय चञ्चल स्वभाववाली, ८८५ ललिता—परम सुन्दरी या ललितादेवी-रूपिणी, ८८६ लिङ्गधारिणी—उत्तम चिह्न धारण करनेवाली।

लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता।
लज्जा लम्बोदरी देवी ललना लोकधारिणी॥ १३९॥

८८७ लक्ष्मीः—भगवती लक्ष्मीके नामसे सुप्रसिद्ध, ८८८ लोला—कभी स्थिर न रहनेवाली, ८८९ लुप्तविषा—जिनपर विष अपना प्रभाव नहीं डाल सकता, वे, ८९० लोकिनी—जगत्स्वरूपिणी देवी, ८९१ लोकविश्रुता—सम्पूर्ण संसारमें प्रसिद्ध, ८९२ लज्जा—लज्जामयी देवी, ८९३ लम्बोदरी देवी—विशाल उदरवाली भगवती, ८९४ ललना—स्त्रीस्वरूपिणी, ८९५ लोकधारिणी—लोकोंको धारण करनेवाली।

वरदा वन्दिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः।
वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी॥ १४०॥

८९६ वरदा—वर प्रदान करनेवाली, ८९७ वन्दिता—सभी जिनकी वन्दना करते हैं, वे, ८९८ विद्या—विद्यास्वरूपिणी, ८९९ वैष्णवी—भगवान् विष्णुकी शक्ति, ९०० विमलाकृतिः—निर्मल आकृतिसे सुशोभित, ९०१ वाराही—वाराह-रूप धारण करनेवाली, ९०२ विरजा—विरजा नामक नदीके रूपमें विराजमान, ९०३ वर्षा—संवत्सरमयी देवी, ९०४ वरलक्ष्मीः—श्रेष्ठ लक्ष्मीका वेष धारण करनेवाली, ९०५ विलासिनी—सदा मनोरञ्जन करनेवाली।

विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता।
वारुणी वेणुसम्भूता वीतिहोत्रा विरूपिणी॥ १४१॥

९०६ विनता—विनताके रूपमें विराजमान, ९०७ व्योममध्यस्था—आकाशके मध्यमें सुप्रतिष्ठित, ९०८ वारिजासनसंस्थिता—कमलके आसनपर विराजमान, ९०९ वारुणी—वरुणकी शक्ति, ९१० वेणुसम्भूता—वेणुसे प्रकट होनेवाली, ९११ वीतिहोत्रा—हवनमें निष्णात, ९१२ विरूपिणी—विशिष्ट रूपसे सम्पन्न।

वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया।
विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा॥ १४२॥

९१३ वायुमण्डलमध्यस्था—वायुमण्डलके मध्यमें रहनेवाली, ९१४ विष्णुरूपा—विष्णु-स्वरूपिणी देवी, ९१५ विधिप्रिया—भगवती ब्रह्माणीके रूपमें विराजमान, ९१६ विष्णुपत्नी—स्वयं भगवती लक्ष्मी, ९१७ विष्णुमती—श्रीहरिके साथ सुशोभित, ९१८ विशालाक्षी—विशाल नेत्र धारण करनेवाली, ९१९ वसुन्धरा—भगवती भूदेवी।

वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी।
वेदाक्षरपरीताङ्गी वाजपेयफलप्रदा॥ १४३॥

९२० वामदेवप्रिया—रुद्राणीरूपसे विराजमान, ९२१ वेला—समयकी अधिष्ठात्री देवी, ९२२ वज्रिणी—वज्र धारण करनेवाली, ९२३ वसुदोहिनी—धन-धान्य दोहन करनेमें परम निपुण, ९२४ वेदाक्षरपरीताङ्गी—जिनके प्रत्येक अङ्ग वेदके अक्षरोंसे सुशोभित हैं, ९२५ वाजपेयफलप्रदा—जिनकी उपासनासे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है, वे।

वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलया वरा।
व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता॥ १४४॥

९२६ वासवी—इन्द्राणी, ९२७ वाम-

जननी—**वामदेवकी जननी,** ९२८ वैकुण्ठ-निलया—**वैकुण्ठमें विराजनेवाली,** ९२९ वरा—**परम आदरणीया देवी,** ९३० व्यास-प्रिया—**वेदव्यासकी प्रिया,** ९३१ वर्मधरा—**कवच धारण करनेवाली,** ९३२ वाल्मीकि-परिसेविता—**महर्षि वाल्मीकिसे भलीभाँति परिसेविता।**

शाकम्भरी शिवा शान्ता शारदा शरणागतिः।
शातोदरी शुभाचारा शुम्भासुरविमर्दिनी॥ १४५॥

९३३ शाकम्भरी—**शाकम्भरी नामसे प्रसिद्ध,** ९३४ शिवा—**कल्याणमयी देवी,** ९३५ शान्ता—**शान्तस्वरूपिणी,** ९३६ शारदा—**देवी शारदा नामसे प्रसिद्ध,** ९३७ शरणागतिः—**जगत्को शरणमें लेनेवाली,** ९३८ शातोदरी—**तेज:पूर्ण उदरसे सम्पन्न,** ९३९ शुभाचारा—**पवित्र आचरण करनेवाली,** ९४० शुम्भासुरविमर्दिनी—**शुम्भ नामक दैत्यका संहार करनेवाली।**

शोभावती शिवाकारा शंकरार्द्धशरीरिणी।
शोणा शुभाशया शुभ्रा शिरःसंधानकारिणी॥ १४६॥

९४१ शोभावती—**परम शोभासे सम्पन्न,** ९४२ शिवाकारा—**कल्याणमयी आकृति धारण करनेवाली,** ९४३ शंकरार्द्धशरीरिणी—**भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी,** ९४४ शोणा—**रक्तवर्ण-वाली देवी,** ९४५ शुभाशया—**मङ्गलमय हृदयसे सम्पन्न,** ९४६ शुभ्रा—**शुभ्र वर्णवाली,** ९४७ शिरःसंधानकारिणी—**दानवोंके मस्तकपर निशाना लगानेवाली।**

शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना।
शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना॥ १४७॥

९४८ शरावती—**बाणोंसे रक्षा करनेवाली,** ९४९ शरानन्दा—**बाण चलानेमें परम प्रसन्न,** ९५० शरज्ज्योत्स्ना—**शारदीय चन्द्रमाके समान उज्ज्वल किरणोंवाली,** ९५१ शुभानना—**मनोहर मुखसे सम्पन्न,** ९५२ शरभा—**हरिणी-रूपमें वनमें विहार करनेवाली,** ९५३ शूलिनी—**त्रिशूल धारण करनेवाली,** ९५४ शुद्धा—**शुद्ध-स्वरूपिणी,** ९५५ शबरी—**शबरीके रूपमें प्रकट,** ९५६ शुकवाहना—**शुकपर सवारी करनेवाली।**

श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानन्ददायिनी।
शर्वाणी शर्वरीवन्द्या षड्भाषा षड्ऋतुप्रिया॥ १४८॥

९५७ श्रीमती—**शोभायुक्त,** ९५८ श्रीधरानन्दा—**भगवान् विष्णुको आनन्दित करनेवाली,** ९५९ श्रवणानन्ददायिनी—**जिनका चरित्र श्रवण करनेसे भक्तोंको परम आनन्द प्राप्त होता है, वे,** ९६० शर्वाणी—**भगवान् महादेवकी शक्ति भगवती पार्वती,** ९६१ शर्वरीवन्द्या—**रात्रि अथवा प्रदोषकालमें वन्दित,** ९६२ षड्भाषा—**छः भाषाएँ जिनके रूप हैं, वे,** ९६३ षड्ऋतुप्रिया—**छहों ऋतुओंसे प्रेम रखनेवाली।**

षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी।
षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता॥ १४९॥

९६४ षडाधारस्थिता देवी—**छः प्रकारके आधारोंमें विराजनेवाली देवी,** ९६५ षण्मुख-प्रियकारिणी—**स्वामी कार्तिकेयका प्रिय करने-वाली,** ९६६ षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता—**षडङ्ग रूपवाले जो सुमति-संज्ञक देवता और असुर हैं, उनके द्वारा नमस्कृत।**

सरस्वती सदाधारा सर्वमङ्गलकारिणी।
सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसम्भवा॥ १५०॥

९६७ सरस्वती—**वाणीकी अधिष्ठात्री देवी,** ९६८ सदाधारा—**सबकी सदा आधार-स्वरूपिणी,** ९६९ सर्वमङ्गलकारिणी—**सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाली,** ९७० सामगानप्रिया—**सामगानसे परम प्रसन्न होनेवाली,** ९७१ सूक्ष्मा—

**इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे स्थित, सूक्ष्मस्वरूपा,** ९७२ सावित्री—भगवती सावित्री नामसे विख्यात, ९७३ सामसम्भवा—**सामवेदसे प्रकट होनेवाली।**

सर्वावासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा।
सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबन्धुपराक्रमा॥ १५१॥

९७४ सर्वावासा—**सर्वव्यापिनी,** ९७५ सदानन्दा—**सर्वदा प्रसन्न रहनेवाली,** ९७६ सुस्तनी—**सुन्दर स्तनोंसे सुशोभित,** ९७७ सागराम्बरा—**सागररूपी अम्बरको धारण करनेवाली,** ९७८ सर्वैश्वर्यप्रिया—**सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे प्रीति रखनेवाली,** ९७९ सिद्धिः—**अणिमा आदि अष्टसिद्धिस्वरूपा,** ९८० साधुबन्धुपराक्रमा—**अपने भक्तोंके लिये पराक्रम करनेवाली।**

सप्तर्षिमण्डलगता सोममण्डलवासिनी।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता॥ १५२॥

९८१ सप्तर्षिमण्डलगता—**सप्तर्षियोंके मण्डलमें विराजमान देवी,** ९८२ सोममण्डलवासिनी—**चन्द्रमण्डलमें निवास करनेवाली,** ९८३ सर्वज्ञा—**सब कुछ जाननेवाली,** ९८४ सान्द्रकरुणा—**करुण रससे ओत-प्रोत,** ९८५ समानाधिकवर्जिता—**सदा एक समान रहनेवाली।**

सर्वोत्तुङ्गा सङ्गहीना सद्‌गुणा सकलेष्टदा।
सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः॥ १५३॥

९८६ सर्वोत्तुङ्गा—**सर्वोपरि विराजमान,** ९८७ सङ्गहीना—**किसीमें आसक्ति न रखनेवाली,** ९८८ सद्‌गुणा—**सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न,** ९८९ सकलेष्टदा—**सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली,** ९९० सरघा—**मधु-मक्षिकाके रूपमें विराजमान,** ९९१ सूर्यतनया—**सूर्यपुत्री यमुना नदीके रूपसे सुशोभित,** ९९२ सुकेशी—**मनोहर केशोंसे शोभा पानेवाली देवी,** ९९३ सोमसंहतिः—**अनेक चन्द्रमाओंके समान सुशोभित।**

हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी।
क्षौमवस्त्रपरीताङ्गी क्षीराब्धितनया क्षमा॥ १५४॥

९९४ हिरण्यवर्णा—**स्वर्णके समान वर्णवाली,** ९९५ हरिणी—**किंचित्-हरित-वर्णविशिष्टा,** ९९६ ह्रींकारी—**ह्रीं जिनका रूप माना जाता है, वे देवी,** ९९७ हंसवाहिनी—**हंसपर सवारी करनेवाली,** ९९८ क्षौमवस्त्र-परीताङ्गी—**रेशमी वस्त्रसे जिनके सभी अङ्ग ढके रहते हैं, वे,** ९९९ क्षीराब्धितनया—**क्षीरसागरसे प्रकट होनेवाली,** १००० क्षमा—**सहनशीला, पृथ्वीस्वरूपा।**

गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती।
वेदगर्भा वरारोहा श्रीगायत्री पराम्बिका॥ १५५॥

१००१ गायत्री, १००२ सावित्री, १००३ पार्वती, १००४ सरस्वती, १००५ वेदगर्भा, १००६ वरारोहा, १००७ श्रीगायत्री और १००८ पराम्बिका।

इति साहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद।
पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासम्पत्तिदायकम्॥ १५६॥
एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि।
अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह॥ १५७॥
जपं कृत्वा होमपूजा ध्यानं कृत्वा विशेषतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः॥ १५८॥
सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै।
भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बान्धवेभ्यो न दर्शयेत्॥ १५९॥
यद्‌गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित्।
चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति॥ १६०॥
इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम्॥ १६१॥
मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम्।
रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ १६२॥

ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः ।
गुरुतल्पगतो वापि पातकान्मुच्यते सकृत् ॥ १६३ ॥
असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः ।
पाखण्डानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते ॥ १६४ ॥
इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव ।
ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १६५ ॥

नारद ! यह भगवती गायत्रीका सहस्रनाम है। यह महान् पुण्यप्रद, सम्पूर्ण पापोंका उच्छेद करनेवाला और प्रचुर सम्पत्तिदायक है। इस प्रकारके ये नाम भगवती गायत्रीको संतुष्ट करनेवाले हैं। ब्राह्मणोंके साथ अष्टमी तिथिके अवसरपर विशेषरूपसे इसका पाठ करना चाहिये। भलीभाँति जप, होम, पूजा और ध्यान करके भगवतीकी उपासना करनी चाहिये। जिस किसीको भी गायत्रीके इस सहस्रनामका उपदेश करना कदापि उचित नहीं है। सुयोग्य भक्त, आज्ञाकारी शिष्य अथवा ब्राह्मणके प्रति ही इसका उपदेश करे। भ्रष्ट साधक अथवा बान्धव ही क्यों न हो, किंतु उन्हें इसका प्रदर्शन न करावे। जिसके गृहमें इस गायत्री-सम्बन्धी शास्त्रका लेखन होता है, उसके यहाँ कभी भी भय नहीं टिक सकता। चञ्चला होती हुई भी लक्ष्मी उसके घर स्थिर होकर विराजमान रहती हैं। यह परम रहस्य गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है। इसके प्रभावसे मनुष्य पुण्यवान् होता है और दरिद्र धनवान् हो जाते हैं। मुमुक्षुओंको यह मोक्ष प्रदान करनेवाला है। सकामी पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। रोगीका रोगसे उद्धार हो जाता है और बन्धनमें पड़ा हुआ मानव बन्धनसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्या, सुरापान और सुवर्णकी चोरी तथा गुरुपत्नी-गमन—ऐसे महान् पाप करनेवाले मानव भी एक बार इस स्तोत्रका पाठ करनेसे उक्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। निषिद्ध दान लेने, अभक्ष्य पदार्थ खाने तथा पाखण्डपूर्ण बर्ताव करने और झूठ बोलनेके पापसे भी मानव इसके पाठके द्वारा मुक्त हो जाता है। नारद ! मैंने यह जो परम पवित्र रहस्यका वर्णन किया है, यह मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्य प्रदान करनेवाला है। यह बात सत्य है, सत्य है ! इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ६)

☆

## दीक्षाविधि

नारदजीने कहा—भगवन् ! मैं श्रीगायत्री देवीका सहस्रनामसंज्ञक विलक्षण फल प्रदान करनेवाला, प्रचुर भाग्यशाली बनानेमें कुशल एवं महान् उन्नतिके शिखरपर चढ़ा देनेवाला स्तोत्र सुन चुका। अब मैं दीक्षाका उत्तम लक्षण सुनना चाहता हूँ, जिसके बिना पुरुषोंको देवीमन्त्रका जप करनेका अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव प्रभो ! सामान्य विधिसे यह सारा प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! पुण्यात्मा शिष्ट पुरुषोंके दीक्षा लेनेका विधान कहता हूँ, सुनो; जिससे वे देवता, अग्नि और गुरुकी पूजाके अधिकारी हो सकते हैं। वेद-मन्त्रके पारगामी विद्वानोंका कथन है कि जो दिव्य ज्ञान प्रदान करती है तथा पापोंके ध्वंसमें मुख्य कारण है, उसीको 'दीक्षा' कहते हैं। अतएव दीक्षा लेना अवश्यकर्तव्य है; क्योंकि इससे बहुत-से फल प्राप्त होते हैं। परंतु इसमें गुरु और शिष्य दोनोंकी ही अत्यन्त शुद्धि अपेक्षित है। गुरुको चाहिये कि प्रातःकालका सम्पूर्ण कृत्य

विधिवत् सम्पन्न करके विधि-विधानके साथ स्नान और संध्या आदि सभी कृत्य सुचारुरूपसे करे। हाथमें कमण्डलु लेकर नदीके तटसे घरपर जाय। यज्ञमण्डपमें पहुँचकर एक श्रेष्ठ आसनपर बैठ जाय। आचमन और प्राणायाम करनेके पश्चात् गन्ध और पुष्पसे मिश्रित जलको 'ॐ फट्' इस अस्त्र-मन्त्रका सात बार जप करके अभिमन्त्रित करे। बुद्धिमान् पुरुष 'ॐ फट्' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए उसी अभिमन्त्रित जलसे सभी द्वारोंका तथा पूजाकी सामग्रीका प्रोक्षण करे। दरवाजेके ऊपरी भागमें एक ओर गणेशकी, मध्यमें भगवती लक्ष्मीकी तथा दूसरी ओर सरस्वतीकी पूजा करे। नाम-मन्त्रोंका उच्चारण करके गन्ध और पुष्पोंसे पूजा करे। द्वारकी दक्षिण शाखामें भगवती गङ्गा और गणेशकी तथा वामशाखामें क्षेत्रपाल और सूर्यतनया यमुनाकी पूजा करे। देहलीपर 'ॐ फट्' का उच्चारण करके अस्त्रदेवताकी पूजा करे। सब ओर ऐसी भावना करे कि वे सब देवीमय ही हैं।

इस अस्त्रमन्त्रके जपद्वारा दैवी विघ्नोंका उच्छेद करे तथा पदके आघातसे अन्तरिक्ष और भूतलके विघ्नोंको दूर करे। बायीं शाखाका स्पर्श करते हुए पहले दाहिना पैर रखकर मण्डपमें प्रवेश करे। भीतर जाकर जलका कलश रख दे। तत्पश्चात् सामान्य विधिसे वास्तुदेवताको अर्घ्य दे। नैर्ऋत्य दिशामें गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि वस्तुओंद्वारा उस अर्घ्यजलसे वस्तुके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पूजा करे। तदनन्तर अर्घ्यके उस अवशिष्ट जलसे पञ्चगव्य बनावे। गुरुदेव उस जलसे तोरणसे लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण मण्डलका प्रोक्षण करे। उस समय मनमें यह भावना करे कि यह सब कुछ देवीमय है। भक्तिके साथ मूलमन्त्रका जप करते हुए 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके प्रोक्षण करनेका नियम है। शरमन्त्र अर्थात् 'ॐ फट्' का उच्चारण करके पृथ्वीपर पादघात करनेके पश्चात् 'ॐ हुं' इस मन्त्रको पढ़कर उसपर जलके छींटे दे। धूपसे सुगन्ध दे। तदनन्तर विघ्नशान्तिके लिये जल, चन्दन, अक्षत, दूर्वा, भस्म आदि वस्तुएँ विकरण करे। कुशकी बनी हुई मार्जनीसे उस स्थानको झाड़ दे। मुने! उन द्रव्योंको ईशान दिशामें किसी एक जगह रख दे। इसके बाद पुण्याहवाचन करके गरीबों और निराश्रितोंको संतुष्ट करनेका यत्न करे। तत्पश्चात् कोमल आसनपर बैठे। अपने गुरुदेवको प्रणाम करके पूर्वाभिमुख बैठना चाहिये। फिर देयमन्त्रके जो देवता हैं, उनका विधिवत् ध्यान करे। ग्यारहवें स्कन्धमें बतायी हुई विधिके अनुसार पहले भूतशुद्धि आदि क्रिया कर लेना आवश्यक है। मुने! फिर देयमन्त्रके ऋषिका न्यास कर ले! मस्तकमें देयमन्त्रके मुनिका, मुखमें छन्दका, हृदयरूपी कमलमें देवताका, गुह्यमें बीजका और दोनों पैरोंमें शक्तिका न्यास करके तीन बार ताली बजा दे। फिर तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे।

इसके बाद प्राणायाम करके मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए अपने शरीरमें मातृका-न्यास करे। उसकी विधि इस प्रकार कही गयी है। मुने! मन्त्रज्ञ पुरुष 'ॐ नमः' का उच्चारण करके अपने सिरमें मातृकाका न्यास करे। इसी प्रकार सम्पूर्ण अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुष देयमूलमन्त्रका अङ्गुष्ठ आदि अँगुलियों और हृदय आदि अङ्गोंमें क्रमशः षडङ्गन्यास करे।

'नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट्'—इन पदोंके साथ ॐ लगा देनेसे ये मन्त्रके रूपमें परिणत हो जाते हैं। इन्हीं छः मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास करे। तत्पश्चात् देयमन्त्रके वर्णोंका तत्तत् कल्पित स्थानोंमें न्यास करे। इस प्रकार न्यासकी विधि कही गयी है।

मुने ! तदनन्तर अपने शरीरमें ऐसी भावना करे कि यह एक पवित्र आसन है। इसके दक्षिणभागमें धर्म, वामभागमें ज्ञान, वाम ऊरुमें वैराग्य, दक्षिण ऊरुमें ऐश्वर्य और मुखदेशमें अधर्म विराजमान है। इस प्रकार चिन्तन करे। फिर वामपार्श्व, नाभिस्थान तथा दक्षिणपार्श्वमें उक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि नामोंके साथ 'नमः' लगाकर अर्थात् 'ॐ अधर्माय नमः, अज्ञानाय नमः, अवैराग्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः' यह उच्चारण करके इनका न्यास करे। मुनिवर ! शरीरमें जो आसनकी कल्पना की है, उसके विषयमें ऐसी भावना करे कि यह एक सुन्दर पलंग है। इसके चारों पाये अधर्म कहे गये हैं। श्रेष्ठ मुनियोंका ऐसा कथन है कि शरीरमय पर्यङ्कके चार पाये अधर्ममय हैं। तत्पश्चात् ऐसी भावना करे कि इसके मध्यमें हृदय है और यह हृदय अत्यन्त सुकोमल स्थान है। इसपर भगवान् अनन्त विराजमान हैं। प्रपञ्चमय विमल कमलका चिन्तन करे और उसपर सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका मन्त्रोच्चारणपूर्वक कलायुक्त न्यास करे। कलाओंका संक्षिप्त परिचय बताता हूँ। सूर्यकी बारह, चन्द्रमाकी सोलह और अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। उन कलाओंके साथ उनका स्मरण करे। उनके ऊपर सत्त्व, रज और तमका न्यास करे। फिर उस पीठकी चारों दिशाओंमें आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा—इनका विद्वान् पुरुष न्यास करे। इस प्रकार पीठकी कल्पना करनी चाहिये।

इसके बाद साधक पुरुष 'ॐ अमुकासनाय नमः' यों मन्त्र पढ़कर शरीररूपी आसनकी पूजा करे; साथ ही उस आसनपर भगवती जगदम्बाका ध्यान करे। कल्पोक्त विधिसे देयमन्त्रके देवताकी मानसिक उपचारोंके द्वारा विधिवत् पूजा करे। फिर विद्वान् पुरुष प्रसन्नता प्रकट करनेवाली वे मुद्राएँ प्रदर्शित करे, जिनसे भगवतीको परम प्रसन्नता होती है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! इसके बाद अपने वामभागके अग्रदेशमें षट्कोण चक्रके ऊपर एक वर्तुलाकार चक्र बनावे। उसके ऊपर चन्दनसे चतुष्कोण मण्डल लिखे। फिर षट्कोणके मध्यमें त्रिकोणका उल्लेख करके शङ्खमुद्रा प्रदर्शित करे। छः कोणोंमें छः अङ्गोंकी पुष्प आदिसे पूजा करनी चाहिये। मुनिवर ! अग्नि आदि कोणोंमें छः अङ्गोंकी अर्चना करे। इसके बाद शङ्ख रखनेके पात्रको लेकर 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करके उस मण्डलमें स्थापित करे। 'ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः' यह पढ़कर फिर 'दशकलात्मने अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नमः।' इसका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष शङ्खके आधारका स्थापन करे। इस स्थापनके लिये यही मन्त्र है। आधारदेशमें पूर्वसे आरम्भ करके दक्षिणके क्रमसे अग्नि-मण्डलमें निवास करनेवाली दस कलाओंकी पूजा करे।

इसके बाद मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षित उत्तम मन्त्रको मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए उस आधारपर रख दे। 'ॐ सूर्यमण्डलाय नमः' कहकर 'द्वादशान्ते कलात्मने अमुकदेव्यर्घपात्राय

नमः' का उच्चारण करे। फिर 'ॐ शं शङ्खाय नमः' इस पदको पढ़कर इसीसे शङ्खका प्रोक्षण करे। फिर उस शङ्खमें बारह सूर्योंकी पूजा करे। सूर्यकी तपिनी आदि बारह कलाएँ हैं। यथाक्रम इनकी अर्चा करे। फिर मूलमन्त्र और विलोम मातृकाका उच्चारण करे। इसके बाद जलसे शङ्खको भर दे। उसमें चन्द्रमाकी कलाओंका न्यास करे। 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अमुकार्घ्यामृताय हृदयाय नमः' यह मन्त्रका रूप बतलाया गया है। इस मन्त्रको पढ़कर अङ्कुश-मुद्रासे जलकी पूजा करे। वहीं तीर्थोंका आवाहन करके आठ बार इस मनुप्रोक्त मन्त्रका जप करे। फिर जलमें षडङ्गन्यास करके 'हृदयाय नमः' इस मन्त्रद्वारा जलका पूजन करे। तत्पश्चात् आठ बार मूलमन्त्रका जप करके मत्स्यमुद्रासे जलको ढक दे। तदनन्तर दक्षिणभागमें शङ्खकी प्रोक्षणी रखे। शङ्खसे कुछ जल लेकर उसके द्वारा सब ओर प्रोक्षण करे। पूजाकी सामग्री और अपने शरीरका भी उसी जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर परम शुद्धिकी कल्पना कर ले।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! इसके बाद अपने सामने वेदीपर 'सर्वतोभद्रमण्डल' लिखकर उसकी कर्णिकाके मध्यभागको अगहनी धान्यके चावलसे भर दे। वहीं 'कूर्च' जिनकी संज्ञा है, ऐसे सत्ताईस कुशोंको स्थापित करे। फिर 'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ मूलप्रकृत्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ क्षमायै नमः, ॐ सुधासिन्धवे नमः, ॐ दुर्गादेवीयोगपीठाय नमः'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके पीठकी पूजा करे। तत्पश्चात् छिद्ररहित कलश हाथमें ले 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रसे उसे प्रक्षालित करे; फिर तीन गुणवाले लालसूत्रसे उस कलशको आवेष्टित करे। नवरत्न और कूर्च उस कलशमें रखकर गन्ध आदिसे सुपूजित करके प्रणवका उच्चारण करते हुए उस पीठपर उसे स्थापित कर दे। मुने ! इसके बाद कलश और पीठमें ऐक्यभावकी कल्पना करे। फिर प्रतिलोमके क्रमसे मातृकामन्त्रका उच्चारण करते हुए तीर्थके जलसे कलशको भर दे। देवता-बुद्धिसे मूलमन्त्रका जप करके उस कलशको पूरा करे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष पीपल, कटहल अथवा आम्रके कोमल नये पल्लवोंसे कलशके मुखको ढक दे और उसके ऊपर फल और अक्षतसहित पात्र स्थापित करके दो वस्त्रोंसे उस कलशको लपेट दे। प्राणप्रतिष्ठाका मन्त्र पढ़कर प्राणप्रतिष्ठा करे। आवाहनादि मुद्रासे परम आराध्या देवीको प्रसन्न करे। कल्पोक्त विधिसे उन भगवती परमेश्वरीका ध्यान करके उनके आगे स्वागत और कुशलप्रश्न आदि शब्दोंका उच्चारण करे। फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क और अभ्यङ्गस्नान आदि देवीको निवेदन करे। फिर दो वस्त्र अर्पण करे। वे वस्त्र लाल रंगके रेशमी और स्वच्छ होने चाहिये। इसके बाद ऐसी भावना करे कि नाना प्रकारकी अकल्पित मणियाँ भगवतीको अर्पण कर रहे हैं। तदनन्तर मनुपुटित वर्णोंद्वारा विधिपूर्वक देवीके अङ्गोंमें मातृकाका न्यास करके चन्दन आदि उपचारोंसे भलीभाँति पूजा करे। मुने ! काला अगुरु और कर्पूरयुक्त गन्ध, कस्तूरीयुक्त केसर, चन्दन, कुन्दके पुष्प भगवतीको अर्पण करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष अगुरु, गुग्गुल, उशीर, चन्दन, शर्करा और मधुमिश्रित धूप, जो भगवतीको अत्यन्त प्रिय हैं, अर्पण करे। फिर बहुत-से दीपक सेवामें

प्रदर्शित करके नैवेद्य अर्पण करे, प्रत्येक द्रव्यमें प्रोक्षणीका किञ्चित् जल छोड़े। प्रोक्षणीके सिवा दूसरा जल नहीं होना चाहिये। इसके बाद अङ्गपूजा और कल्पोक्त आवरणपूजा करे।

तदनन्तर देवीकी साङ्गपूजा करके विश्वेदेवकी पूजा करे। दक्षिण दिशामें वेदी बनाकर उसपर अग्निस्थापन करे। मूर्तिमान् देवताका आवाहन करके क्रमशः अर्चन करे। इसके बाद प्रणवपूर्वक व्याहृतिसहित मूल-मन्त्रका उच्चारण करे। मुने ! घृतसहित खीरकी पचीस बार आहुति देनेके पश्चात् व्याहृति मन्त्रोंसे हवन करे। गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करके देवीको उस पीठपर पधरावे। अग्निका विसर्जन करे। इसके बाद वहाँ चारों ओर खीरसे बलि दे। प्रधान देवताके पार्षदोंको गन्ध, पुष्प आदिसे युक्त पाँच प्रकारके उपचार अर्पण करके उन्हें ताम्बूल, छत्र और चँवर अर्पण करे। इसके बाद देवीके मन्त्रका एक हजार जप करे। पहलेसे ही ईशान दिशाको स्वच्छ करके वहाँ कर्करी स्थापित करे; वहीं भगवती दुर्गाकी अर्चना करे। तत्पश्चात् शिष्यके साथ गुरुदेव मौन होकर भोजन करें। उस रात उसी वेदीपर यत्नपूर्वक शयन करे।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! इसके बाद कुण्ड तथा वेदीका जिस विधिसे संस्कार किया जाता है, वह प्रसङ्ग संक्षेपसे बतलाता हूँ। मूलमन्त्रका उच्चारण करके कुण्ड अथवा वेदीका निरीक्षण करे। 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके दृढ़ करनेके विचारसे समिधा आदिका प्रोक्षण और ताडन करे। फिर 'ॐ हुं' इस कवचमन्त्रसे अभ्युक्षण करे। फिर वेदीपर तीन-तीन रेखाएँ खींचे। वे रेखाएँ प्रागग्र अथवा उदगग्र हों। प्रणवमन्त्रका उच्चारण करके अभ्युक्षण करे। इसके बाद देवीके सिंहासनकी पूजा करे। 'ॐ आधारशक्तये नमः' यहाँसे आरम्भ करके 'ॐ अमुकदेवीयोगपीठाय नमः' यहाँतकके मन्त्रोंको पढ़कर पीठकी पूजा करे। इसके बाद उस पीठपर परम दयालु भगवान् शंकर और पार्वतीका आवाहन करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा सावधानीके साथ उनकी पूजा करे। उस समय इस प्रकार देवीका ध्यान करे—

'भगवती पार्वती ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर भगवान् शंकरके पास विराज रही हैं। इनके मनमें मिलनाकाङ्क्षा जाग्रत् हो गयी है। दोनों महानुभाव कुछ हासविलास करना चाहते हैं।' तदनन्तर एक पात्रमें अग्नि लाकर उनके सम्मुख रखे। उसमेंसे क्रव्यादांशका परित्याग कर दे। तत्पश्चात् पूर्वकथित वीक्षण आदि क्रियाओंसे अग्निका संस्कार करके 'ॐ रं' इस बीजमन्त्रका उच्चारण करके उस अग्निमें चेतनाकी योजना करे; फिर सात बार प्रणवका उच्चारणकर उसका अभिमन्त्रण करे। फिर गुरुको चाहिये कि वे अग्निको धेनुमुद्रा प्रदर्शित करें। 'ॐ फट्' इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके अग्निको सुरक्षित करनेके पश्चात् 'ॐ हुं' इस कवचमन्त्रसे अवगुण्ठन करें। फिर श्रेष्ठ पुरुष अपने घुटनोंको पृथ्वीपर टेककर तारमन्त्रका उच्चारण करते हुए चन्दन आदिसे सुपूजित अग्निको प्रदक्षिणाके क्रमसे कुण्डके ऊपर तीन बार घुमावे। 'यह अग्नि शिवका बीजस्वरूप है' इस बुद्धिसे उसे कुण्डरूप देवीकी योनिमें छोड़ दे। फिर भगवान् शिव और भगवती जगदम्बिकाको आचमन कराये इसके बाद 'ॐ चित्पिङ्गल हन-हन दह-दह पच-पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्रको

पढ़कर अग्निको प्रज्वलित करे। 'जातवेदा' नामसे प्रसिद्ध प्रज्वलित अग्निदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। हुताशनसंज्ञक ये अग्निदेव सुवर्णके समान पीतवर्ण, निर्मल, परम प्रदीप्त और सर्वतोमुख हैं* । इस मन्त्रसे अत्यन्त आदरपूर्वक अग्निकी स्तुति करे। इसके बाद श्रेष्ठ आचार्यको वह्निमन्त्रका षडङ्गन्यास करना चाहिये। 'ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्राय वौषट्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्' इस प्रकार पूर्वस्थानोंमें षडङ्गन्यास करे। ये नाम अङ्गन्यासके समय जातियुक्त अर्थात् नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्—इन पदोंसे युक्त होकर छः अङ्गोंमें न्यस्त होते हैं। इसके बाद अग्निका ध्यान करे। ये अग्निदेव हेमवर्ण हैं; तीन नेत्रोंसे सुशोभित होकर कमलके आसनपर विराजमान हैं। तदनन्तर मन्त्रज्ञ पुरुष वरमुद्रा, शक्ति, स्वस्तिक, अभय, धारक और परम मङ्गल प्रदर्शित करके कुण्डमें मेखलाके ऊपर जलके छींटे दे। इसके बाद कुशोंसे परिस्तरण करे। तत्पश्चात् कुण्डके चारों ओर परिधि बनावे। अग्निस्थापनके पूर्व त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल कमल और भूपुरसहित यन्त्र लिखे अथवा अग्निस्थापन करके भी लिख ले। मुने ! उसके मध्यमें वह्निमन्त्रसे पूजा करे; वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ वैश्वानरो जातवेदा इहावह लोहिताक्षः सर्वकर्माणि साधय स्वाहा।' बीचके ६ कोणोंमें हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्तिका —अग्निकी इन सात जिह्वाओंकी पूजा करे। केसरोंमें अङ्गोंकी तथा दलोंमें शक्ति और स्वस्तिधारण करनेवाली मूर्तियोंकी पूजा करे। जातवेदा, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख और देवमुख—ये आठ अग्नियाँ प्रसिद्ध हैं। इन अग्नियोंके आदिमें 'ॐ अग्नये' और अन्तमें 'नमः स्वाहा' इस पदका उच्चारण करके पूजा करनेका विधान है—अर्थात् 'ॐ अग्नये जातवेदसे नमः स्वाहा', 'ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः स्वाहा', 'ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः स्वाहा,' ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः स्वाहा,' 'ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः स्वाहा', 'ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः स्वाहा', 'ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः स्वाहा, 'ॐ अग्नये देवमुखाय नमः स्वाहा'—इस प्रकार आठों दलोंमें आठों मूर्तियोंकी पूजा करे। इसके बाद चारों दिशाओंमें वज्र एवं आयुध धारण करनेवाले लोकपालोंकी पूजा करे।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! तदनन्तर स्रुक्, स्रुवा और घृतका संस्कार करके स्रुवासे घृतका अग्निमें हवन करे। मुनिवर ! घृतको दक्षिणभागसे उठाकर 'ॐ अग्नये स्वाहा'से अग्निके दक्षिण नेत्रमें, वामभागसे उठाकर 'ॐ सोमाय स्वाहा' से वाम नेत्रमें तथा मध्यसे घृत लेकर 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए अग्निके मध्य नेत्रमें हवन करे। फिर दक्षिणभागसे घृत लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा अग्निके मुखमें हवन करे। इसके बाद साधक पुरुष 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा' इनसे

*अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥ (१२।७।९४)

हवन करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त अग्निमन्त्रका उच्चारण करके तीन बार आहुति दे। मुने ! फिर प्रणवमन्त्रसे गर्भाधान आदि आठ संस्कारोंके निमित्त प्रणवका उच्चारण करते हुए घृतकी आठ आहुतियाँ दे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन और चूडाव्रतबन्ध—ये आठ संस्कार हैं। ऐसे ही चार वैदिक संस्कारोंके लिये भी चार बार प्रणवका उच्चारण करके घृतका हवन करे। वे वैदिक संस्कार इस प्रकार प्रसिद्ध हैं—महानाम्न्य, औपनिषद, गोदान और उदवाहक-व्रत। इसके बाद शिव और पार्वतीजीकी पूजा करके उनका विसर्जन करे। फिर साधक पुरुष अग्निके उद्देश्यसे पाँच समिधाओंका हवन करे। तदनन्तर आवरण देवताओंके लिये भी एक-एक आहुति दे। मुने ! इसके पश्चात् स्रुक्‌में घृत रखकर उसे ढक दे। अपने आसनपर बैठे ही स्रुवामें लेकर उसी घृतसे चार बार हवन करे। यह आहुति अग्निमन्त्रके साथ 'वौषट्' लगाकर उसीका उच्चारण करके करे। तदनन्तर महागणेश मन्त्रसे दस आहुतियाँ दे। पुनः देयमन्त्रके देवताके आसनकी अग्निमें पूजा करे। साथ ही उन देयमन्त्रसम्बन्धी देवताका ध्यान करे। तत्पश्चात् उन देवताके मुखमें मूलमन्त्रका उच्चारण करके पचीस आहुतियाँ दे। मुझमें, अग्नि और देयमन्त्रसम्बन्धी देवतामें एकता स्थापित हो जाय, इस भावनासे श्रेष्ठ साधकको ये आहुतियाँ अवश्य देनी चाहिये। फिर छः अङ्ग-देवताओंको पृथक्-पृथक् छः आहुतियाँ दे। मुनिवर ! इसके बाद अग्नि और देयमन्त्रसम्बन्धी देवताकी नाड़ियोंका एकीकरण करनेके लिये ग्यारह आहुतियाँ दे। मुने ! एक देवताके उद्देश्यसे एक आहुति, यों आवृत्तिपूर्वक क्रमशः यह एक-एक आहुति घृतसे दे। तदनन्तर कल्पोक्त द्रव्यों अथवा तिलसे देवताके मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए एक हजार आठ आहुतियाँ दे। मुने ! इस प्रकार आहुति देनेके पश्चात् मनमें यह भावना करे कि 'देवी अब मुझपर प्रसन्न हो गयीं। ऐसे ही आवृति देवी, अग्नि तथा देयमन्त्र-सम्बन्धी देवता भी प्रसन्न हो गये।'

तदनन्तर जिसने भलीभाँति स्नान कर लिया हो, जो संध्यावन्दन आदि क्रियाओंसे निवृत्त हो, दो वस्त्र धारण किये हुए हो, जिसके शरीरपर सुवर्णका कोई भूषण हो तथा हाथमें कमण्डलु हो; ऐसे शिष्यको आचार्य कुण्डके पास बुला ले। शिष्यको चाहिये कि गुरुदेवको, वहाँ बैठे हुए जो श्रेष्ठ पुरुष हों उनको तथा कुलदेवको नमस्कार करके वहीं आसनपर बैठ जाय। तब गुरुदेव कृपापूर्ण दृष्टिसे उस शिष्यको देखें। साथ ही शिष्यकी चेतना मेरे शरीरमें आ गयी—इस प्रकारकी भावना करें। तदनन्तर वे विद्वान् आचार्य दिव्य दृष्टिके अवलोकनके द्वारा हवनपूर्वक शिष्यके देहमें स्थित मार्गोंका परिशोधन करें, जिससे शिष्य देवताओंकी कृपाका शुद्ध अधिकारी बन सके।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने ! शिष्यके शरीरमें क्रमशः छः अध्वाओंका चिन्तन करना चाहिये—पैरोंमें कलाध्वाका, लिंगमें तत्त्वाध्वाका, नाभिमें भुवनाध्वाका, हृदयमें वर्णाध्वाका, ललाटमें पदाध्वाका तथा मस्तकमें मन्त्राध्वाका चिन्तन करे। कूर्चसे शिष्यको स्पर्श करते हुए 'ॐ अमुं अध्वानं शोधयामि स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा घृतमिश्रित तिलोंका हवन करे। प्रत्येक अध्वाके निमित्त आठ-आठ आहुतियाँ

देनी चाहिये। यों करके ऐसी भावना करे, शिष्यके ये छहों अध्वा अब ब्रह्ममें लीन हो गये।

फिर गुरु ब्रह्ममें लीन हुए उन अध्वाओंको पुनः सृष्टिमार्गसे उत्पन्न करनेकी भावना करे। अपने शरीरमें स्थित चैतन्यरूपको शिष्यमें नियोजित करना गुरुके लिये आवश्यक है। इसके पश्चात् पूर्णाहुति देकर होमके लिये आवाहित देवताको कलशपर स्थापित करे। फिर अग्निके अङ्गोंके उद्देश्यसे व्याहृतियोंका उच्चारण करके आहुतियाँ दे। एक-एक देवताके लिये एक-एक आहुति दे। यों करके आत्मामें अग्निका विसर्जन कर दे। इसके बाद गुरु 'ॐ वौषट्' इस मन्त्रको पढ़कर वस्त्रसे शिष्यकी दोनों आँखोंको ढक दे और उसे कुण्डके समीपसे उठकर कलशके पास उपस्थित होनेकी आज्ञा दे। फिर शिष्यके हाथसे प्रधान देवीके लिये पुष्पाञ्जलि समर्पित करावे। अब नेत्रोंका आवरण हटाकर शिष्यको कुशके आसनपर बैठा दे। फिर पूर्वकथित रीतिसे शिष्यके शरीरकी भूतशुद्धि करे। इसके बाद शिष्यके शरीरमें मन्त्रोक्तन्यास करनेके पश्चात् उसे दूसरे मण्डलमें शान्तभावसे बैठ जानेकी आज्ञा दे। तदनन्तर कलशमें रखे हुए पल्लवोंको शिष्यके मस्तकपर रखकर मातृकाका जप करे। फिर कलशके दिव्य जलसे शिष्यको नहानेकी आज्ञा दे। स्नानके पश्चात् शिष्यको भलीभाँति सुरक्षित रखनेके लिये वर्धनीसंज्ञक कलशके जलसे अभिषेक करे। इसके बाद शिष्य उठकर दो नये वस्त्र धारण करे और भस्म आदि लगाकर गुरुदेवके समीप बैठ जाय।

तब परम कृपालु गुरुदेव ऐसी भावना करें कि 'मेरे हृदयसे निकलकर भगवती शिवा अब इस शिष्यके हृदयमें विराज रही हैं।' अतः उन दोनोंमें ऐक्यकी भावनासे गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उनकी अर्चना करें। तत्पश्चात् गुरुदेव अपना हाथ शिष्यके सिरपर रखते हुए उसके दाहिने कानमें देवीके महामन्त्रका तीन बार उपदेश करें। मुने ! तब शिष्य उस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। गुरुको देवतास्वरूप मानकर पृथ्वीपर पड़कर उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करे। उन्हें अपनेको अर्पण कर दे। ऐसी सद्भावना उसके मनमें जीवनपर्यन्त रहनी चाहिये। तदनन्तर ऋत्विजोंको दक्षिणा दे और ब्राह्मणोंको भोजन करावे। सौभाग्यवती स्त्रियों, कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको भलीभाँति भोजन करावे। धनमें कृपणता न रखकर दीनों, अनाथों और दरिद्रोंकी सेवा करे। अपनेको कृतार्थ समझकर मन्त्रकी नित्य उपासना करे।

नारद ! इस प्रकार दीक्षाकी यह अनुत्तम विधि तुम्हें बतला दी गयी। इस विषयमें सम्यक् प्रकारसे विचार करके अब तुम देवीके चरणकमलकी उपासनामें संलग्न हो जाओ। ब्राह्मणके लिये इससे बढ़कर परम उपयोगी दूसरा कोई धर्म नहीं है। वैदिक पुरुष अपने-अपने गृह्यसूत्रमें कहे हुए नियमके अनुसार मन्त्रका उपदेश करे। तान्त्रिकको तन्त्रकी रीतिसे उपदेश करना चाहिये। यही सनातन प्रणाली है। जिनके लिये जो-जो प्रयोग निर्धारित हैं, वे उन्हीं-उन्हींका उपयोग करें, न कि दूसरेका।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद ! तुमने जो पूछा था, वह सब मैं बता चुका। अब तुम परम आदरणीया भगवती जगदम्बाके चरणकमलकी नित्य उपासना करो। मैं जो इस निवृत्तिमार्गपर पहुँचा हूँ, यह भी देवीकी सतत

आराधनाका ही सत्फल है।

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार यह सम्पूर्ण श्रेष्ठ प्रसङ्ग नारदजीसे कहकर भगवान् नारायणने अपनी आँखें मूँद लीं और वे भगवतीके चरणकमलका ध्यान करने लगे। ये भगवान् नारायण प्रधान मुनियोंके भी शिरोमणि हैं। उन परमगुरु भगवान् नारायणको प्रणाम करके नारदजी भी भगवतीका दर्शन करनेकी लालसासे उसी क्षण तपस्या करनेके लिये चले गये। (अध्याय ७)

☆

## देवताओंका विजयगर्व, अग्नि और वायुकी तृणको जलाने-उड़ानेमें असमर्थता, इन्द्रको भगवती उमाके दर्शन और उमाके द्वारा ज्ञानोपदेश

जनमेजयने पूछा—सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! आपसे धर्मका कोई भी रहस्य छिपा नहीं है। जब श्रुतिने सबके लिये 'शक्तिकी उपासना आवश्यक है'—यह घोषणा कर दी है, तब फिर लोग विभिन्न देवताओंकी आराधना क्यों करते हैं? ब्रह्मन्! इसमें क्या कारण है? यह आप बतलानेकी कृपा कीजिये। इसके अतिरिक्त आपने पहले मणिद्वीपके माहात्म्यकी चर्चा की थी! अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि देवीका वह परम उत्तम स्थान कैसा है? अनघ! मैं आपका भक्त हूँ, मेरे प्रति ये सभी विषय बतानेकी कृपा कीजिये।

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो! महाराज जनमेजयकी उपर्युक्त बात सुनकर भगवान् वेदव्यासजीने कहना आरम्भ किया।

व्यासजीने कहा—राजन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है; क्योंकि इस समयके लिये यह परम उपयोगी विषय है। वस्तुतः तुम बड़े बुद्धिमान् तथा वेदोंमें श्रद्धा रखनेवाले प्रतीत होते हो। महाराज! पूर्व समयकी बात है, मदाभिमानी दैत्य देवताओंके साथ युद्ध करने लगे। उनका अत्यन्त विस्मयकारक युद्ध सौ वर्षोंतक चलता रहा। राजन्! विविध शस्त्रोंका प्रहार तथा अनेक प्रकारकी मायाओंका विचित्र प्रयोग किया जा रहा था। उस समय उन देवताओं और दैत्योंका यह युद्ध ऐसा जान पड़ता था, मानो जगत्के लिये प्रलयकी ही घड़ी आ गयी है। उस समय भगवती पराशक्तिकी कृपासे देवताओंद्वारा संग्राममें दानवोंकी हार हो गयी। वे भूलोक और स्वर्ग छोड़कर पातालमें चले गये। तब देवताओंके मनमें अपार हर्ष हुआ। साथ ही वे मोहके कारण विजय-मदमें चूर होकर चारों ओर परस्पर अपने पराक्रमका बखान करने लगे।

वे कहने लगे—'अहो! हमारी विजय क्यों न हो? क्योंकि हमारी महिमा सर्वोत्तम जो ठहरी। कहाँ ये पराक्रमहीन मूर्ख दैत्य और कहाँ सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हम परम यशस्वी देवता। फिर हमारे सामने इन पामर दैत्योंकी कौन-सी बात।' पराशक्तिके प्रभावको न जाननेके कारण उस समय देवताओंमें इस प्रकारका मोह छा गया था। राजन्! तब उन देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये दयामयी भगवती जगदम्बा यक्षके रूपसे प्रकट हुईं। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान था। उनमें शीतलता इतनी थी मानो करोड़ों

चन्द्रमा हों। करोड़ों बिजलियोंके समान प्रकाशमान उनका श्रीविग्रह हस्त-चरण आदि इन्द्रियोंसे रहित था। पहले कभी न देखे हुए उस परम सुन्दर तेजको देखकर देवताओंके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे परस्पर कहने लगे—'यह क्या है? यह क्या है? यह देवताओंकी चेष्टा है या कोई बलवती माया है? यदि देवताओंको आश्चर्यमें डालनेवाली माया है तो यह किसके द्वारा रची गयी है?' इस प्रकारकी कल्पना करके वे सभी देवता उस समय परस्पर अपना उत्तम विचार प्रकट करने लगे। उन्होंने कहा—'इस यक्षके पास जाकर पूछना चाहिये कि तुम कौन हो? उसके बलाबलका ज्ञान होनेके पश्चात् ही कुछ करना चाहिये।' यों निश्चित विचार करके देवराज इन्द्रने अग्निको बुलाया और कहा—'अग्निदेव! तुम जाओ; क्योंकि तुम्हें हमलोगोंका मुँह कहा गया है, वहाँ जाकर यह जाननेका यत्न करो कि यह यक्ष कौन है?' सहस्राक्ष इन्द्रके मुखसे अपने पराक्रमगर्भित वचन सुनकर अग्निदेव शीघ्रतापूर्वक वहाँसे उठे और यक्षके पास पहुँच गये। तब यक्षने अग्निसे पूछा—'अजी, तुम कौन हो और तुममें कौन-सा पराक्रम है, तुम यह सब मुझे बतलाओ?' इसपर अग्निने कहा—'मैं अग्निदेव हूँ तथा मेरा नाम जातवेदा भी है। अखिल विश्वको जला डालनेकी मुझमें शक्ति है।' अग्निके यों कहनेपर उन परम तेजस्वी यक्षने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको भस्म कर डालनेकी शक्ति तुममें है तो इस तृणको जला दो।' तब अग्निदेवने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उस तृणको भस्म करनेका यत्न किया, परंतु उसे वे जला नहीं

सके; अतः लज्जित होकर वे देवताओंके पास लौट गये। उनके पूछनेपर अग्निने वहाँका पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, साथ ही कहा कि 'देवताओ! सर्वेश बननेका यह हमलोगोंका अभिमान सर्वथा व्यर्थ है।' इसके बाद इन्द्रने वायुदेवको बुलाकर उनसे कहा—'वायो! तुममें यह सारा जगत् ओत-प्रोत है, तुम्हारी चेष्टासे ही संसार सचेष्ट बना हुआ है। तुम प्राणरूप होकर अखिल प्राणियोंके शरीरमें सम्पूर्ण शक्तियोंका संचार करते हो। तुम्हीं जाकर पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है? इस परम तेजस्वी यक्षको जाननेके लिये दूसरा कोई भी समर्थ नहीं हो सकता।' इन्द्रकी गुण और गौरवसे गुम्फित यह बात सुनकर वायुके मनमें अभिमानका पार न रहा। वे तुरंत ही यक्षके समीप गये, वायुको देखकर यक्षने मधुर वाणीसे कहा—'तुम कौन हो और तुममें कौन-सी शक्ति है? मेरे सामने सब बतानेकी कृपा करो।' उस यक्षका वचन सुनकर वायुने अभिमानके साथ कहा—'मैं मातरिश्वा हूँ। मुझे लोग वायुदेव भी कहते हैं। सबका संचालन

और ग्रहण करनेके लिये मुझमें असीम शक्ति है। मेरी चेष्टासे ही समस्त जगत्‌के सब प्रकारके व्यापार चलते हैं।'

वायुकी उपर्युक्त वाणी सुनकर परम तेजस्वी यक्षने उनसे कहा—'तुम्हारे सामने यह तृण पड़ा है, इसे अपनी इच्छाके अनुसार चला दो। और यदि इसे नहीं चला सकते तो अभिमान त्यागकर लज्जित हो, इन्द्रके पास लौट जाओ।' यक्षका कथन सुनकर पवनदेव अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे उस तिनकेको उड़ानेमें लग गये। परंतु उड़ाना तो दूर रहा, वे उस तृणको अपने स्थानसे जरा-सा हिला भी नहीं सके। तब तो वे लज्जित होकर
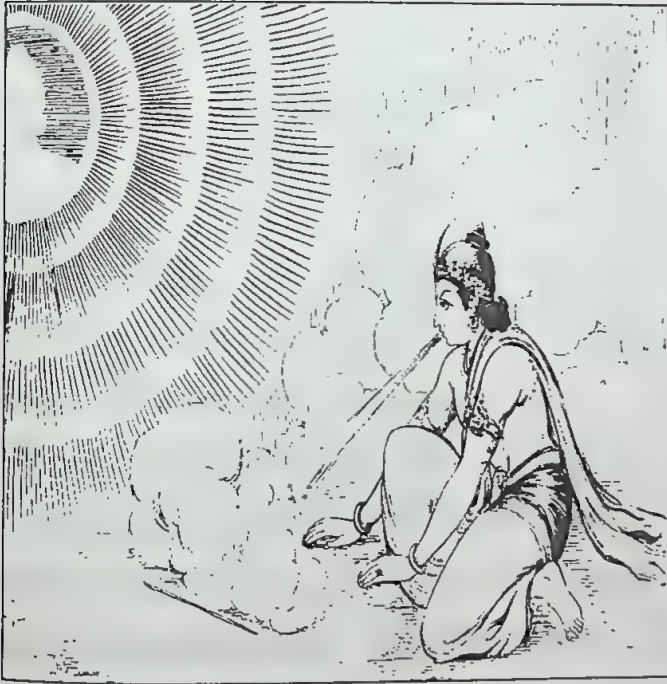
अभिमानका त्याग करके देवताओंके पास लौट गये। वहाँ उन्होंने गर्वको दूर करनेवाली सारी बातें उनको कह सुनायीं और इस प्रकार कहा—'हमलोग इस यक्षको जाननेमें असमर्थ हैं। हमलोग व्यर्थ ही अभिमानमें भूले हुए हैं। यह यक्ष बड़ा ही अलौकिक प्रतीत हो रहा है। इसका तेज असह्य है।' तब सम्पूर्ण देवताओंने इन्द्रसे कहा—'देवराज! आप हमलोगोंके स्वामी हैं, अतः यक्षके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिये आप ही प्रयत्न कीजिये।' यह सुनकर इन्द्र बड़े अभिमानसे यक्षके पास गये। वे उसके पास पहुँचे ही थे कि वह तेजस्वी यक्ष उसी क्षण अन्तर्धान हो गया। अब देवराज इन्द्रके मनमें लज्जाकी सीमा न रही। यक्षने उनसे बाततक नहीं की, इससे इन्द्र बड़ी ही आत्म-ग्लानिका अनुभव करने लगे। उन्होंने सोचा, 'अब मुझे देवताओंके समाजमें लौटकर नहीं जाना चाहिये; क्योंकि वहाँ जानेपर मुझे देवताओंके सामने अपनी हीनता प्रकट करनी पड़ेगी।' इस प्रकार कई विचार करनेके पश्चात् देवराज इन्द्र अपना अभिमान त्यागकर वहीं जिनका ऐसा चरित्र है, उन परम देवताके शरणागत हो गये। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'सहस्राक्ष! तुम मायाबीजका जप करो, तब सुखी हो सकोगे।' इन्द्रने परात्पर मायाबीजका जप आरम्भ कर दिया। आँखें मूँदकर देवीका ध्यान करते हुए वे निराहार रहकर जप करते रहे।

तदनन्तर एक दिन चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें नवमी तिथिके अवसरपर मध्याह्नकालमें उसी स्थलपर सहसा एक महान् तेज प्रकट हो गया। उस तेजःपुञ्जके मध्यमें नूतन यौवनसे सम्पन्न एक देवी प्रकट हो गयीं। उनकी कान्ति ऐसी थी मानो जपाकुसुम हो। प्रातःकालीन सूर्यके समान अरुण कान्तिसे वह शोभा पा रही थीं। द्वितीयाके चन्द्रमा उनके मुकुटमें विद्यमान थे। वे वर, पाश, अङ्कुश और अभयमुद्रा धारण किये हुए थीं। उनके सभी अङ्ग अत्यन्त मनोहर थे। कोमल लताकी भाँति शोभा पानेवाली वे भगवती शिवा थीं। भक्तोंके लिये वे भगवती जगदम्बा कल्पवृक्ष हैं। अनेक प्रकारके भूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। तीन नेत्रवाली वे देवी अपनी वेणीमें चमेलीकी माला धारण करनेके

कारण अत्यन्त शोभा पा रही थीं। उनकी चारों दिशाओंमें वेद मूर्तिमान् होकर उनका यशोगान कर रहे थे। उन्होंने अपने दाँतोंकी आभासे वहाँकी भूमिको इस प्रकार उज्ज्वल बना दिया था मानो पद्मराग बिछा हो। उनका प्रसन्न मुख करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर था। वे लाल रंगके वस्त्र पहने थीं और उनका श्रीविग्रह रक्तचन्दनसे चर्चित था। वे हिमालयपर प्रकट होनेवाली 'उमा' नामसे विख्यात कल्याण-

स्वरूपिणी भगवती जगदम्बा थीं। बिना ही कारण करुणामयी वे देवी सम्पूर्ण कारणोंकी भी कारण हैं। उनके दर्शन करते ही इन्द्रका अन्तःकरण प्रेमसे गद्गद हो गया। उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु और शरीरमें रोमाञ्च हो आया। भगवती जगदीश्वरीके चरणोंपर दण्डकी भाँति पड़कर उन्होंने प्रणाम किया। अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा भगवतीकी स्तुति की। इसके बाद भक्ति-विनम्र चित्तसे सिर झुकाये हुए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक देवीके प्रति कहा—
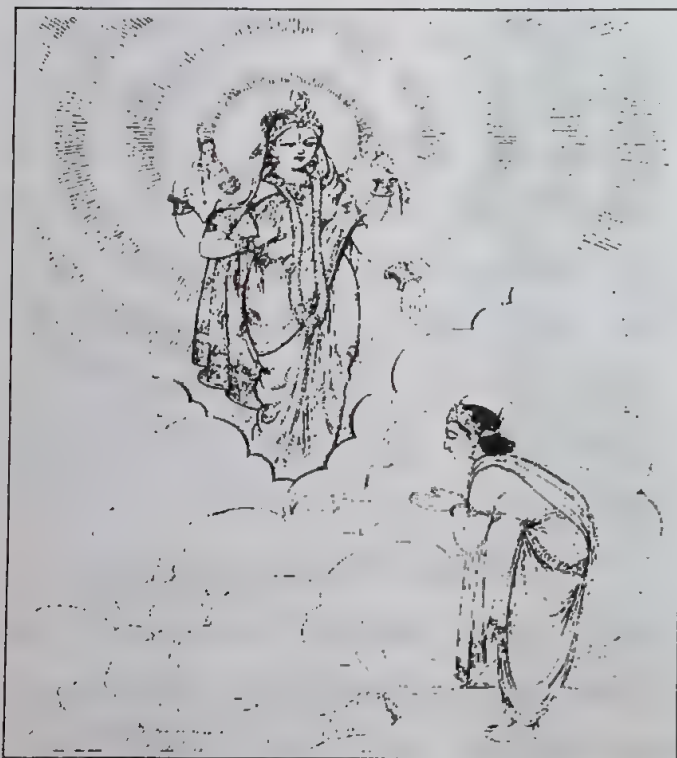
'परम शोभा पानेवाली देवी! यह यक्ष कौन था और क्यों यह प्रकट हुआ था? यह सब रहस्य बतलानेकी कृपा करें।' इन्द्रकी बात सुनकर दयाकी समुद्र वह देवी कहने लगीं—'प्रकृति आदि सम्पूर्ण कारणोंका भी कारण यह ब्रह्म मेरा ही रूप है। यह मायाका अधिष्ठान, सबका साक्षी तथा निरामय है। सम्पूर्ण वेद और तप जिस पदका क्रमशः वर्णन करते एवं लक्ष्य कराते हैं तथा जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है, वही पद संक्षेपसे मैं तुम्हें बताती हूँ। उसीको 'ॐ' यह एक अक्षरवाला ब्रह्म कहते हैं। वही 'ह्रीं' रूप भी है। देवेश्वर! 'ॐ' और 'ह्रीं' ये दो मेरे मुख्य बीज-मन्त्र हैं। इन्हीं दो भागोंसे सम्पन्न होकर मैं अखिल जगत्की सृष्टि करती हूँ। इसीका एक भाग 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' नामसे विख्यात है और दूसरे भागको 'माया प्रकृति' कहते हैं। वह माया ही पराशक्ति है। और अखिल जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली वह शक्तिशालिनी देवी मैं ही हूँ। चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति यह माया प्रकृति अभिन्नरूपसे सदा मुझमें विराजमान रहती है। सुरोत्तम! यह मेरी माया साम्यावस्थात्मिका है। प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत् इसमें लीन हो जाता है और प्राणियोंके कर्म-परिपाकवश वही अव्यक्तरूपिणी माया पुनः व्यक्तरूप धारण कर लेती है। जो अन्तर्मुखी है, उसे 'माया' या 'योगमाया' आदि नामोंसे व्यवहृत करते हैं और जो बहिर्मुखी माया है, उसे तमस् (अविद्या) कहते हैं। तमोरूपिणी उस बहिर्मुखी मायासे ही इस प्राणिजगत्की सृष्टि होती है। सुरश्रेष्ठ! सृष्टिके आदिमें वही रजोगुणरूपसे विराजती हैं।

'ब्रह्मा', विष्णु और महेश्वर—ये त्रिगुणात्मक कहे गये हैं। रजोगुणकी अधिकतासे ब्रह्मा, सत्त्वगुण अधिक होनेसे

विष्णु और तमोगुण अधिक होनेसे रुद्रके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। स्थूल देहवाले ब्रह्मा कहलाते हैं, सूक्ष्म शरीरवालेको विष्णु कहा गया है और कारण-देहधारी रुद्र कहलाते हैं और इन तीनोंसे परे एक चतुर्थ रूप धारण करनेवाली मैं ही हूँ। जिसे साम्यावस्था कहते हैं, वह सर्वान्तर्यामी रूप मेरा ही है। इसके ऊपर जो परब्रह्म रूप है, वह भी मेरा ही निराकार रूप है। निर्गुण और सगुण मेरे दो प्रकारके रूप कहे जाते हैं। माया-(शक्ति-) रहित निर्गुण है और माया-(शक्ति-) युक्त सगुण। वही मैं सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके उसके भीतर भलीभाँति प्रविष्ट हो निरन्तर जीवोंको कर्म और शास्त्रके अनुसार प्रेरणा करती रहती हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और कारणात्मक रुद्रको मेरे द्वारा ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेके लिये प्रेरणा प्राप्त होती है। पवन मेरे भयसे प्रवाहित होता है, मेरा भय मानकर सूर्य आकाशमें गमन करता है। उसी प्रकार इन्द्र, अग्नि और यम मुझसे भयभीत रहकर ही अपने-अपने कर्तव्यका सम्पादन करते हैं; क्योंकि मैं सर्वोत्तमा—सर्वशक्तिमती हूँ। मेरी कृपासे ही तुमलोगोंको सब प्रकारसे विजय प्राप्त हुई है। तुम सभी काठकी पुतलीके समान हो और मैं सबको नचानेवाली हूँ। मैं कभी तुम देवताओंकी विजय कराती हूँ और कभी दैत्योंकी। मैं स्वतन्त्र हूँ। अपनी इच्छाके अनुसार यह सब करती रहती हूँ; परंतु उनके प्रारब्धपर मेरा ध्यान अवश्य रहता है। तुमलोग अभिमानवश मुझ सर्वात्मिका मायाको—शक्तिको भूल गये थे। तुम्हारी बुद्धि अहंकारसे आवृत हो गयी थी। दुस्तर मायाकी तुमपर गहरी छाप पड़ चुकी थी। अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मेरा ही अनुत्तम तेज सहसा यक्षरूपसे प्रकट हुआ था। वस्तुतः वह मेरा ही रूप था। अब इसके बाद तुमलोग सब प्रकारसे अपने अभिमानका परित्याग करके सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी मुझ देवीके ही शरणागत हो जाओ।'

व्यासजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार कहकर मूलप्रकृति एवं ईश्वरी नामसे सुप्रसिद्ध भगवती महादेवी देवताओंके द्वारा भक्तिपूर्वक सुपूजित होकर उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर सम्पूर्ण देवता अपने अभिमानका परित्याग करके भगवती जगदम्बाके सर्वोत्तम चरण-कमलोंकी सब प्रकारसे आराधना करने लगे। उन सबने नियमपूर्वक भगवतीकी नित्य उपासना प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार सत्ययुगमें सभी गायत्रीके जपमें संलग्न थे। उनका मन प्रणव और हल्लेखा अर्थात् मूलप्रकृतिके जपमें ही लगा रहता था। सम्पूर्ण वेदोंने गायत्रीकी उपासनाको ही नित्य कहा है; जिसके बिना ब्राह्मणकी सर्वथा अधोगति हो सकती है। केवल गायत्री-मन्त्रसे ही वह कृतकृत्य हो जाता है, उसे दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा नहीं है। वह द्विज दूसरा कुछ सत्कार्य करे या न करे—केवल गायत्रीके जपमें लगा रहनेसे ही मुक्त हो जाता है। स्वयं मनुजीकी यह घोषणा है। राजन् ! इसीलिये सम्पूर्ण श्रेष्ठ द्विज सत्ययुगमें निरन्तर गायत्रीका जप तथा भगवतीके चरण-कमलकी उपासनामें ही सदा संलग्न रहते थे।

(अध्याय ८)

☆

## गायत्रीके अनुग्रहसे गौतमके द्वारा असंख्य ब्राह्मण-परिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान

व्यासजी कहते हैं—राजन्! एक समयकी बात है, प्राणियोंके कर्मका भोग करानेके लिये इन्द्रने पंद्रह वर्षोंतक जल बरसाना बंद कर दिया। इस अनावृष्टिके कारण संहारकारी घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। घर-घरमें इतनी लाशें एकत्र हो गयीं कि जिनकी गणना नहीं हो सकती थी। सभी मानव क्षुधाकी ज्वालासे संतप्त होकर एक-दूसरेको खानेके लिये दौड़े पड़ते थे। ऐसी बुरी स्थितिमें बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह उत्तम विचार उपस्थित किया कि 'गौतमजी तपस्याके बड़े धनी हैं। इस अवसरपर वे ही हमारे इस दुःखको दूर कर सकते हैं। अतः अब हम सब लोग मिलकर उनके आश्रमपर चलें। वे मुनिवर अपने आश्रमपर गायत्रीकी उपासना कर रहे हैं। सुना है, इस समय भी उनके यहाँ सुभिक्ष ही है। बहुत-से प्राणी वहाँ पहुँच चुके हैं। इस प्रकार विचार करके वे सभी ब्राह्मण अपने अग्निहोत्रके सामान, कुटुम्बी, गोधन तथा दास-दासियोंको साथ लेकर गौतमजीके आश्रमपर गये।' कुछ लोग पूर्वसे, कुछ दक्षिणसे, कुछ पश्चिमसे और कुछ उत्तरसे—अनेक दिशाओंसे बहुत-से ब्राह्मण वहाँ पहुँच गये। ब्राह्मणोंके इस बड़े समाजको उपस्थित देखकर गौतमजीने उनको प्रणाम किया। आसन आदि उपचारोंसे उन ब्राह्मणोंकी पूजा की। कुशल-प्रश्नके अनन्तर उनके आगमनका कारण पूछा। तब सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने अपना-अपना दुःख उनके सामने निवेदन किया। वस्तुतः ब्राह्मणसमाज बहुत दुःखी था। उन सबको दुःखी देखकर मुनिने अभय प्रदान किया। उन्होंने कहा—'विप्रो! यह आश्रम आप ही लोगोंका है। मैं सर्वथा आपलोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आपलोगोंको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इस समय आप तपोधन ब्राह्मणोंके पधारनेसे मैं कृतकृत्य हो गया। जिनके दर्शनमात्रसे दुष्कृत सुकृतके रूपमें परिणत हो जाते हैं, वे सभी ब्राह्मण अपने चरणोंकी धूलिसे मेरे गृहको पवित्र कर रहे हैं। आपके अनुग्रहसे मैं धन्य हो गया। मेरे सिवा किस दूसरेको ऐसा सौभाग्य मिल सकता है? संध्या और जपमें परायण रहनेवाले आप सभी द्विजगण सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहनेकी कृपा करें।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! मुनिवर गौतमजी इस प्रकार सभी ब्राह्मणोंको आश्वासन देकर भक्ति-विनम्र हो भगवती गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे—'देवी! तुम्हें प्रणाम है। तुम महाविद्या, वेदमाता और परात्परस्वरूपिणी हो। व्याहृति आदि महान् मन्त्र और प्रणव तुम्हारे रूप हैं।' माता! तुम साम्यावस्थामें विराजमान रहती हो। 'ह्रीं'का रूप धारण करनेवाली तुम देवीको मेरा नमस्कार है। 'स्वाहा' और 'स्वधा' रूपसे शोभा पानेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको देनेमें परम कुशल तुम देवीको मैं प्रणाम करता हूँ। तुम भक्तोंके लिये कल्पलता और तीनों अवस्थाओंकी परम साक्षिणी हो। तुम्हारा स्वरूप तुरीयावस्थासे अतीत है तथा तुम सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हो। तुम सम्पूर्ण वेदान्तोंकी वेद्यविषय हो। सूर्यमण्डलमें तुम्हारा निवास है। प्रातःकालमें तुम बालसूर्यके समान रक्तवर्ण-वाली कुमारी, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवती और

सायंकालमें वृद्धाके रूपसे विराजती हो। मैं तुम्हें नित्य प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंका उद्धार करनेवाली देवी परमेश्वरी! तुम मेरे अपराध क्षमा करो।' गौतमजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा उनके सामने प्रकट हो गयीं। उन्होंने मुनिको एक ऐसा पूर्णपात्र दिया, जिससे सबके भरण-पोषणकी व्यवस्था
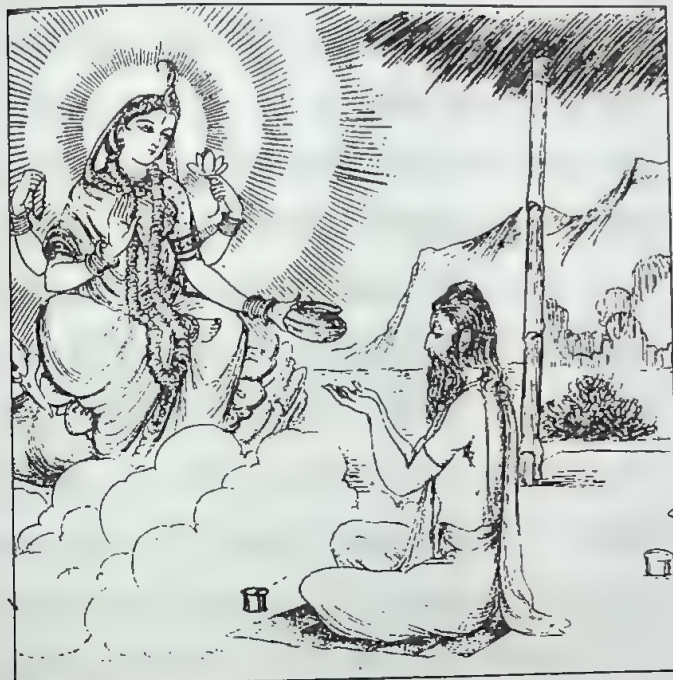
हो सकती थी। साथ ही उन भगवती जगदम्बाने मुनिसे कहा—'मुने! तुम्हें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा होगी, मेरा दिया हुआ यह पात्र उसे पूर्ण कर देगा।' यों कहकर श्रेष्ठ कला धारण करनेवाली भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं।

राजन्! उस समय उस पात्रसे प्राप्त अन्नोंके इतने ढेर लग गये, मानो पर्वत हों। छः प्रकारके विविध रस, भाँति-भाँतिके तृण, दिव्य भूषण, रेशमी वस्त्र, यज्ञोंकी सामग्रियाँ तथा अनेक प्रकारके पात्र देवीके दिये हुए उस पूर्णपात्रसे निकल आये। राजन्! मुनिवर गौतमजी बड़े महात्मा पुरुष थे। जिस-जिस वस्तुके लिये उनके मनमें इच्छा उत्पन्न होती थी, वे सभी पदार्थ देवी गायत्रीके पूर्णपात्रसे प्राप्त हो जाते थे। उस समय मुनिवर गौतमजीने सम्पूर्ण मुनियोंको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, वस्त्र-भूषण आदि समर्पण किये। उनके द्वारा गाय, भैंस आदि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ, जो सब-की-सब भगवती गायत्रीके पूर्णपात्रसे निकली थीं, आये हुए ब्राह्मणोंको प्राप्त हुईं। सभी लोग एकत्रित होकर गौतमजीकी आज्ञासे यज्ञ करने लगे। स्वर्गकी समानता रखनेवाला वह आश्रम उस समय एक महान् विस्तृत आश्रय-क्षेत्र हो गया था। त्रिलोकीमें जो जितनी भी सुन्दर वस्तुएँ दिखलायी पड़ती हैं, वे सब-की-सब भगवती गायत्रीकी कृपासे प्राप्त उस पात्रसे ही निकल आयी थीं। वहाँ उपस्थित मुनियोंकी स्त्रियाँ वस्त्राभूषण आदि धारण करनेके कारण ऐसी शोभा पाने लगीं, मानो देवाङ्गनाएँ हों। साथ ही वस्त्र, चन्दन और भूषणोंसे अलंकृत ब्राह्मणगण भी इन्द्र-जैसे प्रतीत हो रहे थे। उस समय गौतमजीके उस आश्रमपर नित्य उत्सव मनाया जाता था। न किसीको रोगका किञ्चिन्मात्र भय था और न दैत्य ही किसीको भय पहुँचा सकते थे। उस अवसरपर गौतमजीका वह आश्रम चारों ओरसे सौ-सौ योजनके विस्तारमें था। अन्य भी बहुत-से प्राणी वहाँ आये और आत्मज्ञानी मुनिवर गौतमजीने सभीको अभय प्रदान करके उनके भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दी। अनेक प्रकारके महान् यज्ञ विधिवत् सम्पन्न होनेके कारण उस समय देवता भी परम संतुष्ट हो गये। उन्होंने गौतमजीके यशकी पर्याप्त प्रशंसा की। महान् यशस्वी इन्द्रने भी अपनी सभामें यह श्लोक कहा—

'अहो, यह गौतममुनि हमलोगोंके लिये

इस समय स्वयं कल्पवृक्ष ही बन गये हैं। तभी तो इन महाभागके द्वारा हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हो रहे हैं, अन्यथा इस दुष्कालमें, जब कि जीनेकी आशा भी अत्यन्त दुर्लभ थी, हमारे लिये कौन हवि प्रदान करता?'* इस प्रकार मुनिवर गौतमजी बारह वर्षोंतक श्रेष्ठ मुनियोंके भरण-पोषणकी व्यवस्था करते रहे। वे पुत्रके समान सबकी सार-सँभाल करते थे; तथापि उनके मनमें अभिमानकी गन्धतक भी नहीं आ सकी थी। उन मुनिवरने गायत्रीकी आराधनाके लिये एक श्रेष्ठ स्थानका निर्माण करवा दिया था। सभी प्रधान-प्रधान मुनि वहाँ जाकर भगवती जगदम्बाकी उपासना करते थे। परम भक्तिके साथ तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं) वहाँ पुरश्चरण आदि कर्म सम्पन्न होते थे। अब भी उस स्थानपर भगवतीका रूप प्रातःकालमें बाला, मध्याह्नकालमें युवती तथा सायंकालमें वृद्धावस्थासे सम्पन्न दृष्टिगोचर होता है।

एक समयकी बात है, मुनिवर नारदजी वहाँ पधारे। उनकी विशाल वीणा बज रही थी और वे भगवतीके उत्तम गुणोंका गान कर रहे थे। वहाँ आकर वे पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये। गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने नारदजीका विधिवत् स्वागत किया। तदनन्तर नारदजी गौतमजीके यश-सम्बन्धी विविध प्रसङ्गोंका वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा—'मैं देवसभामें गया था। वहाँ देवराज इन्द्रने आपका यश गाया है। उनका कथन है, मुनिने सबका भरण-पोषण करके विशाल निर्मल यश प्राप्त किया है। मुनिवर! शचीपति इन्द्रकी बात सुनकर तुम्हें देखनेके लिये मैं यहाँ आ गया। भगवती जगदम्बाके कृपा-प्रसादसे तुम धन्यवादके पात्र बन गये हो।' मुनिवर गौतमजीसे इस प्रकार कहकर नारदजी गायत्री-सदनमें गये। उन्हें वहाँ भगवती जगदम्बाकी झाँकी प्राप्त हुई। दर्शन करके नारदजीकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं। उन्होंने देवीकी विधिवत् स्तुति की और पुनः स्वर्गको प्रस्थान किया।

उस समय वहाँ जितने ब्राह्मण थे, मुनिके द्वारा ही उन सबके भरण-पोषणकी व्यवस्था होती थी; परंतु उनमेंसे कुछ कृतघ्न ब्राह्मण गौतमजीके इस उत्कर्षको सुनकर ईर्ष्यासे जल उठे। उन्होंने द्वेषवश निश्चय किया कि जिस किसी प्रकारसे हमें सर्वथा वही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे उनकी ख्याति न बढ़े। उन लोगोंने इस प्रकारका निश्चित विचार कर लिया।

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद धरातलपर वृष्टि भी होने लगी। राजेन्द्र! अब सम्पूर्ण देशोंमें सुभिक्षकी बातें सुनायी पड़ने लगीं। उसे सुनकर वे ब्राह्मण एकत्र हुए और उन्होंने गौतमजीको शाप देनेका विचार किया। महाराज! कालकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? राजन्! उन कृतघ्न ब्राह्मणोंने मायाकी एक गौ बनायी। उस गौका शरीर जीर्ण-शीर्ण था। वह अब मरना ही चाहती थी। जिस समय मुनिवर गौतमजी हवनकाल उपस्थित होनेपर यज्ञशालामें हवन कर रहे थे, उसी क्षण वह गौ वहाँ पहुँची। मुनिने 'हुं हुं' इन

---

* अहो अयं नः किल कल्पपादपो मनोरथान् पूरयति प्रतिष्ठितः।
नोचेदकाण्डे क्व हविर्वपा वा सुदुर्लभा यत्र तु जीवनाशा॥ (१२।९।३६)

शब्दोंसे उसे वारण किया। इतनेमें ही उस गौके प्राण निकल गये। फिर तो उन ब्राह्मणोंने यह हल्ला मचा दिया कि इस दुष्ट गौतमने गौकी हत्या कर दी। मुनिवर गौतमजी भी हवन समाप्त करनेके पश्चात् अत्यन्त आश्चर्य करने लगे। वे आँखें मूँदकर समाधिमें स्थित हो इसके कारणपर विचार करने लगे। उन्हें तुरंत पता लग गया कि यह सब इन ब्राह्मणोंकी ही काली करतूत है। तब तो उनके मनमें इतना क्रोध हुआ, मानो प्रलयकालीन रुद्र हों। उनकी आँखें लाल हो गयीं और उन द्वेष करनेवाले सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको उन्होंने यह शाप दे दिया।
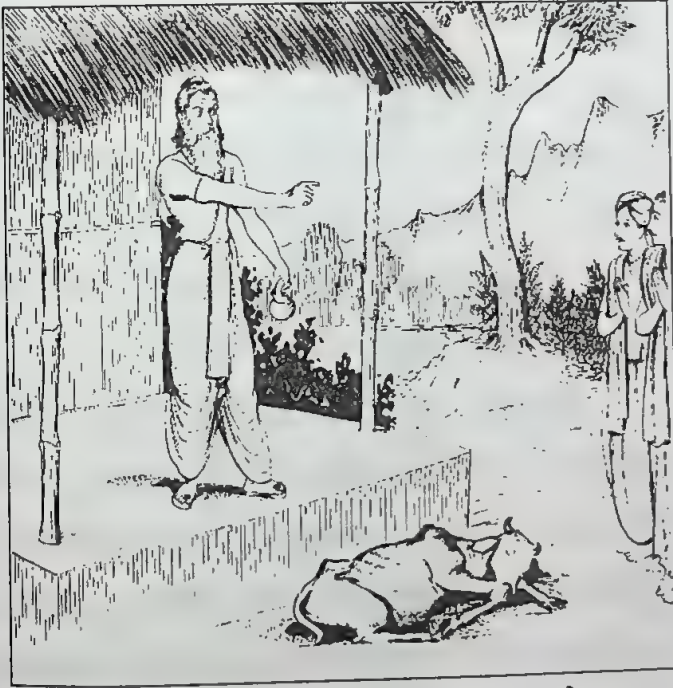
'अरे अधम ब्राह्मणो! आजसे तुम वेदमाता गायत्रीके ध्यान और उसके मन्त्रजपके सर्वथा अनधिकारी हो जाओ। वेद, वेदोक्त यज्ञ तथा वेदकी वार्ताओंमें तुम अधम ब्राह्मणोंका सर्वदा अनधिकार हो जाय। शिवकी उपासना, शिवमन्त्रका जप और शिव-सम्बन्धी शास्त्रके अध्ययनके लिये भी तुम अधम ब्राह्मण सदा अनधिकारी हो जाओ। मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीके ध्यान तथा उनकी कथाके श्रवणमें तुम्हारा अधिकार नहीं होगा, जिससे तुम सदा नीच श्रेणीके ब्राह्मण समझे जाओगे। देवीके मन्त्र, देवीके स्थान और उनके अनुष्ठानकर्ममें तुम्हारा अनधिकार होगा; अतएव तुम सदा अधम समझे जाओगे। देवीका उत्सव देखने और उनके नामोंका कीर्तन करनेमें विमुख होनेके कारण तुम सदा अधम बने रहोगे। देवी-भक्तके समीप रहने और देवीभक्तोंकी अर्चना करनेके लिये अनधिकारी होकर तुमलोग सदा नीच ब्राह्मणकी श्रेणीमें रहोगे। भगवान् शिवका उत्सव देखने और शिवभक्तका सम्मान करनेमें तुम्हारा अधिकार नहीं होगा; जिससे तुम सदा अधम ब्राह्मण गिने जाओगे। रुद्राक्ष, बिल्वपत्र और शुद्ध भस्म धारण करनेसे वञ्चित होकर तुम सदा अधम ब्राह्मण होकर जीवन व्यतीत करोगे। श्रौत-स्मार्तसम्बन्धी सदाचार तथा ज्ञानमार्गमें तुम्हारी गति नहीं होगी, अतः तुम सदा अधम ब्राह्मण समझे जाओगे। अद्वैत ज्ञाननिष्ठा तथा शम-दम आदि साधनसे तुम सदा उन्मुख होकर अधम ब्राह्मण बन जाओ। नित्य-कर्म आदिके अनुष्ठान तथा अग्निहोत्र आदि साधनमें भी तुम्हारा अनधिकार हो और तुम सदाके लिये अधम बन जाओ। स्वाध्यायाध्ययन तथा प्रवचनसे तुम उन्मुख होकर सर्वदा अधम जीवन व्यतीत करो। गौ आदि दान और पितरोंके श्राद्धसे ब्राह्मणाधमो! तुम विमुख हो जाओ। अधम ब्राह्मणो! कृच्छ्र, चान्द्रायण तथा प्रायश्चित्त व्रतमें तुम्हारा सदाके लिये अनधिकार हो जाय। पिता, माता, पुत्र, भ्राता, कन्या और भार्याका विक्रय करनेवाले व्यक्तिके समान होकर तुम्हें नीच ब्राह्मण होनेका अवसर मिल जाय। अधम ब्राह्मणो! वेदका विक्रय

करनेवाले तथा तीर्थ एवं धर्म बेचनेमें लगे हुए नीच व्यक्तियोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें प्राप्त हो। तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्री तथा पुरुष मेरे दिये हुए शापसे दग्ध होकर तुम्हारे ही समान होंगे। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन। गायत्री-नामसे प्रसिद्ध मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाका अवश्य ही तुमपर महान् कोप है; अतएव तुम-लोगोंको अन्धकूप आदि नरककुण्डोंमें वास करना पड़ेगा।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वचनोंद्वारा दण्ड देनेके पश्चात् गौतमजीने जलसे आचमन किया। भगवती गायत्रीका दर्शन करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर वे देवालयमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने महादेवीके चरणोंमें मस्तक झुकाया। परम आदरणीया देवी भी ब्राह्मणोंकी इस कृतघ्नताको देखकर स्वयं अपने मनमें विचार कर रही थीं। उस समय भी देवीका मुखकमल आश्चर्यसे युक्त दिखायी पड़ रहा था। अब आश्चर्यसे सम्पन्न मुखकमलवाली भगवती गायत्री मुनिवर गौतमजीसे कहने लगीं—'महाभाग! सर्पके लिये दिया हुआ दुग्ध भी विषको ही बढ़ानेवाला होता है। तुम धैर्य धारण करो। कर्मकी ऐसी ही विपरीत गति है।' इसके बाद भगवती जगदम्बाको प्रणाम करके मुनिवर गौतमजी अपने आसनपर चले गये।

तदनन्तर शापसे दग्ध होनेके कारण उन ब्राह्मणोंने जितना वेदाध्ययन किया था, वह सब-का-सब विस्मृत हो गया। गायत्रीमन्त्र भी उनके लिये अनभ्यस्त हो गया। वह एक अत्यन्त भयानक दृश्य उनके सामने उपस्थित हो गया। वे सब एकत्र होकर अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। फिर उन लोगोंने मुनिके सामने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर उन्हें प्रणाम किया। लज्जाके कारण उनके सिर झुके हुए थे और वे कुछ भी कहनेमें असमर्थ थे। वे बार-बार यही कह रहे थे—'मुनिवर! प्रसन्न होइये! प्रसन्न होइये! प्रसन्न होइये!' जब मुनिवरको चारों ओरसे होकर वे प्रार्थना करने लगे, तब दयालु मुनिका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने उन नीच ब्राह्मणोंसे कहा— 'ब्राह्मणो! जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार नहीं होगा, तबतक तो तुम्हें कुम्भीपाक नरकमें अवश्य रहना पड़ेगा; क्योंकि मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। यह तुम्हें समझ लेना चाहिये। इसके बाद तुमलोगोंका भूमण्डलपर कलियुगमें जन्म होगा। मेरी कही हुई ये सभी बातें होकर रहेंगी। ये अन्यथा नहीं हो सकतीं। हाँ, यदि तुम्हें शापसे मुक्त होनेकी इच्छा है तो तुम सब लोगोंके लिये परम आवश्यक यह है कि भगवती गायत्रीके चरणकमलकी सतत उपासना करो।'

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहकर ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् 'यह सब कुछ प्रारब्धका प्रभाव है' यों विचारते हुए मुनिने अपना चित्त शान्त कर लिया। राजन्! यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर जब कलियुग आ गया, तब कुम्भीपाक नरकसे वे ब्राह्मण निकल आये। भूमण्डलपर उनकी उत्पत्ति हुई। पूर्वकालमें जितने ब्राह्मण शापसे दग्ध हो चुके थे, वे ही त्रिकाल-संध्यासे हीन तथा गायत्रीकी भक्तिसे विमुख होकर ब्राह्मणकी जातिमें उत्पन्न हुए हैं। उस शापके प्रभावसे ही वेदके प्रति उनमें श्रद्धा नहीं रही और वे पाखण्डका प्रचार करने लगे। वे अग्निहोत्र आदि सत्कर्म नहीं करते तथा उनके

मुँहसे स्वधा और स्वाहाका उच्चारण नहीं होता। कितने तो ऐसे हैं, जिन्हें मूलप्रकृति अव्यक्त-स्वरूपिणी भगवती जगदम्बाका किञ्चिन्मात्र भी ज्ञान प्राप्त नहीं है। उन सबके दण्डित होनेपर भी उनके द्वारा दुराचारका ही प्रचार होता है। बहुत-से लम्पट तो ऐसे हैं, जो अत्यन्त दुराचारी होकर परस्त्रियोंके साथ कुत्सित व्यवहार करनेके कारण अपने घृणित कर्मके प्रभावसे पुनः कुम्भीपाक नरकमें ही जायँगे। अतएव राजन्! सब प्रकारसे भगवती परमेश्वरीकी ही आराधना करनी चाहिये। अब इसके बाद मणिद्वीपका वर्णन करता हूँ, सुनो। यह सुन्दर स्थान जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरीका दिव्य परमधाम है। (अध्याय ९)

☆

## मणिद्वीपका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना जाता है, वही मणिद्वीप है, जहाँ भगवती जगदम्बा विराजती हैं। सम्पूर्ण लोकोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण इसका 'सर्वलोक' यह नाम पड़ा है। इसके समान त्रिलोकीमें कहीं कोई भी सुन्दर धाम नहीं है। जगत्‌के लिये यह छत्रस्वरूप है। वहाँ सांसारिक ताप अपना प्रभाव नहीं जमा सकता। राजन्! सभी ब्रह्माण्ड उसीकी छत्रछायामें हैं। उस मणिद्वीपके चारों ओर अनेक योजन दीर्घ और विस्तारसे सम्पन्न अमृतका समुद्र विराजमान है। पवनके झोंकोंसे उठी हुई शत-शत तरङ्गें उसकी शोभा बढ़ाती रहती हैं। रत्नमय बालुका, मत्स्य और शङ्खसे वह भरा है। तरङ्गोंके संघर्षसे उठी हुई बड़ी-बड़ी लहरें चारों ओर शीतल जलके कण फैलाती हैं। अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे सम्पन्न तथा इधर-उधर जाने-आनेवाली नौकाएँ उस सुधासागरकी शोभा बढ़ाती हैं। इस सुधामय समुद्रके चारों ओर तटपर रत्नमय वृक्ष शोभा पा रहे हैं। इस समुद्रके बाद लौहमय धातुकी बनी हुई गगनचुम्बी चहारदीवारी है। उसका विस्तार सात योजन है। इस महान् परकोटेमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण करनेवाले, युद्धसम्बन्धी विविध विद्याओंके पारगामी बहुत-से रक्षक निवास करते हैं। यहाँ सर्वत्र आनन्दका ही साम्राज्य रहता है। इस परकोटेमें चार द्वार हैं। राजन्! इस चहारदीवारीके भीतर देवीमें भक्ति रखनेवाले अनेक गण रहते हैं। भगवती जगदम्बाका दर्शन करनेके लिये जो देवतालोग आते हैं, उनके गणोंके रहनेके लिये यहाँ स्थान बने हैं। उनके वाहन और विमान यहाँ रहते हैं। सैकड़ों विमानोंके संघर्षकी ध्वनिसे यहाँका कोना-कोना भरा रहता है। यहाँ स्थान-स्थानपर मीठे जलसे परिपूर्ण बहुत-से सरोवर हैं। राजन्! रत्नमय वृक्षोंसे सुशोभित अनेक प्रकारके सुन्दर बगीचे यहाँकी शोभा बढ़ाते हैं।

उस लौहमय प्राकारके आगे कांस्यनिर्मित परकोटा है। पहलेसे यह परकोटा बहुत बड़ा है। इसका शिखर आकाशको छू रहा है। तेजमें पूर्व प्राकारसे यह सौगुना अधिक माना जाता है। गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाला यह प्राकार अनेक वृक्षोंसे संयुक्त है। जितनी जातिके वृक्ष होते हैं, वे सब यहाँ पाये जाते हैं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते हैं। नूतन पल्लवों और उत्तम सुगन्धसे उन वृक्षोंका कोई भी अङ्ग खाली नहीं रहता। राजन्! अनेक जातिवाले वृक्षोंके बहुत-से वन और उपवन जो सैकड़ों

बावलियोंसे युक्त हैं, यहाँ शोभा पाते हैं। कोयलोंके कलरवसे युक्त, भ्रमरोंकी गुंजारसे मुखरित तथा स्निग्ध छायावाले वे सभी वृक्ष सदा रस टपकाते रहते हैं। अनेक ऋतुओंमें होनेवाले उन वृक्षोंपर भाँति-भाँतिके पक्षियोंके समाज निवास करते हैं। अनेक प्रकारके रसोंको प्रवाहित करनेवाली नदियोंके कारण उन वृक्षोंकी असीम शोभा होती है। कबूतर, तोते तथा हंस आदि पक्षियोंके पंखोंसे उठे हुए पवनद्वारा वहाँके वृक्ष सदा हिलते-डुलते रहते हैं।

काँसेकी चहारदीवारीके बाद ताँबेकी चहारदीवारी है। इस प्राकारका आकार चौकोर और ऊँचाई सौ योजन है। उन दोनों प्राकारोंके मध्यमें कल्पवृक्षकी सुन्दर वाटिका है। राजन्! उन वृक्षोंके पुष्प सुवर्णके समान चमकते हैं। पत्तोंसे भी सोने-जैसी ही आभा छिटकती है। बीज और फल रत्नसदृश हैं। वहाँकी सुगन्ध चारों दिशाओंमें दस योजनतक फैली रहती है। राजन्! वसन्त-ऋतुद्वारा वह वन सदा सुरक्षित रहता है। वहाँ पुष्पोंके छत्रसे सुशोभित होकर 'वसन्त' पुष्पनिर्मित सिंहासनपर विराजित रहता है। 'मधुश्री' और 'माधवश्री' इन नामोंसे प्रसिद्ध इसकी दो भार्याएँ हैं। कामदेवके समान मुखवाली वे देवियाँ फूलोंके गुच्छोंका गेंद हाथमें लेकर क्रीड़ा करती रहती हैं। वह अत्यन्त दिव्य वाटिका चारों ओर मधुकी धारा बहाती है।

पुष्पोंकी गन्धको लेकर चलनेवाली वायुने वहाँके दस योजनतकको सुवासित कर दिया है। गान करनेमें लोलुप दिव्य गन्धर्व अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ विराजमान हैं। अनुपम शोभा पानेवाला वह दिव्य वन मतवाली कोकिलोंकी काकलीसे निनादित है।

तत्पश्चात् ताँबेके परकोटेसे आगे शीशेका परकोटा प्रसिद्ध है। इसकी ऊँचाई सात योजन कही जाती है। राजन्! इन दोनों परकोटोंके मध्यमें संतान नामक वृक्षोंकी वाटिका है! वहाँके पुष्पोंकी सुगन्ध दस योजनतक चारों ओर सुवासित किये रहती है। निरन्तर विकसित पुष्प सुवर्णकी कान्ति धारण किये रहते हैं। अमृतके समान मधुर रसोंसे भरे हुए मीठे फलोंकी वहाँ प्रचुरता है। राजेन्द्र! उस वाटिकाका स्वामी 'ग्रीष्म' ऋतु है। उसकी दो भार्याएँ हैं—'शुक्रश्री' और 'शुचिश्री'। संतापसे तप्त प्राणी वहाँके वृक्षोंकी छायामें निवास करते हैं। अनेक सिद्धों और देवताओंसे वहाँका कोना-कोना भरा रहता है।

राजन्! इस शीशेके परकोटेके आगे एक सुन्दर पीतलद्वारा निर्मित चहारदीवारी है। इसकी लम्बाई सात योजन है। इन दो परकोटोंके मध्य-भागमें मलयागिरि वृक्षोंकी वाटिका कही जाती है। मेघोंपर सवारी करनेवाला 'वर्षा'ऋतु यहाँकी व्यवस्था करता है। इसके नेत्र पिंगलवर्णके हैं और यह मेघरूपी कवचको धारण किये रहता है। विद्युत्की कड़कड़ाहट ही इसका शब्द है। इन्द्रधनुष इसके धनुषका काम देता है! अपने गणोंसे सम्पन्न होकर सहस्रों जलधाराएँ बरसाना इसका स्वाभाविक गुण है। 'नभःश्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमालिनी, अम्बादुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्ती, चिबुणिका, वारिधारा और सम्मता' नामसे प्रसिद्ध ये बारह शक्तियाँ वर्षा-ऋतुकी देवियाँ कही गयी हैं! ये सदा मदसे विह्वल रहती हैं। नवीन पल्लवों तथा लताओंसे युक्त वृक्ष एवं हरे तृण वहाँ सदा पाये जाते हैं, जिनसे वहाँकी

सारी पृथ्वी परिवेष्टित रहती है। नदी और नद बड़े वेगसे प्रवाहित होते हैं। देवता, सिद्ध तथा देवीके यज्ञसम्बन्धी कार्यमें निरत एवं देवीके लिये वापी, कूप और तडाग बनवाकर अर्पण करने-वाले पुण्यात्मा पुरुष वहाँ निवास करते हैं।

पीतलके परकोटेके आगे सात योजन लम्बा पञ्चलौहसे बना हुआ परकोटा है। इसके बीचमें मन्दार नामक दिव्य वृक्षोंकी वाटिका है। भाँति-भाँतिके पुष्पों और लताओंसे परिव्याप्त यह वाटिका विविध पल्लवोंसे अनुपम शोभा पाती है। पवित्रात्मा 'शरद्'ऋतुको इसका अधिष्ठाता कहते हैं। उसकी दो सुप्रसिद्ध देवियाँ हैं—'इषुलक्ष्मी' और ऊर्जलक्ष्मी।' अपनी स्त्रियों तथा अनुचरोंके साथ अनेक सिद्धपुरुष वहाँ निवास करते हैं।

इस लौहात्मक छठे परकोटेके आगे सातवाँ चाँदीका परकोटा है। इसकी भी लंबाई सात योजन है। विशाल शिखर इस परकोटेकी शोभा बढ़ाते हैं। इसके मध्यभागमें पुष्पों और गुच्छोंसे सम्पन्न सुन्दर पारिजातका बगीचा है। चारों ओर दस योजनतक सुगन्ध फैलानेवाले वे पुष्प देवीयज्ञमें निरत समस्त गणोंको परम प्रसन्न करते हैं। महान् उज्ज्वल 'हेमन्त' ऋतु इस परकोटेका स्वामी है। राजन् ! यह हाथमें आयुध लिये रहता है और गण सदा साथ रहते हैं। रागियोंको रञ्जित करना इसका स्वाभाविक गुण है। इस हेमन्त-ऋतुके 'सहश्री' और 'सहस्यश्री' नामसे प्रसिद्ध दो शक्तियाँ हैं। भगवतीके कृच्छ्र आदि व्रतकी उपासना करनेवाले सिद्धपुरुष वहाँ रहते हैं।

इस चाँदीके परकोटेके बाद सतत सुवर्णसे निर्मित आठवाँ सौवर्णशाल कहा गया है। इसकी लंबाई सात योजन है। इसके बीचमें कदम्बकी सुन्दर वाटिका है। पुष्प और पल्लव इसे सुशोभित किये हुए है। 'शिशिर'ऋतुके आदरणीय देव वहाँके कार्यकी व्यवस्था करते हैं। 'तपःश्री' और 'तपस्यश्री' इन प्रतिष्ठित दो भार्याओंके साथ रहकर शिशिर-ऋतुकी आकृति धारण करनेवाले ये देवता प्रसन्नतापूर्वक वहाँ निवास करते हैं। देवीको प्रसन्न करनेके लिये गौ और भूमि दान करनेवाले महान् सिद्धपुरुषोंका वह निवासस्थान बना हुआ है।

इस हिरण्मय प्राकारसे आगे कुङ्कुमके समान अरुण वर्णवाला पुष्पराग-मणिसे बना हुआ सात योजन लंबा एक परकोटा है। वहाँकी भूमि, वन और उपवन भी पुखराजके समान ही प्रतीत होते हैं। वहाँके वृक्षों और बालुकाओंको भी पुष्पराग रत्नमय ही कहा गया है। जिस रत्नका वहाँ प्राकार बना हुआ है, उसी रत्नके द्वारा वहाँके वृक्ष, पृथ्वी, पक्षी, जल, मण्डप, उसके खम्भे, सरोवर और कमल भी निर्मित हैं, यही नहीं, बल्कि उस परकोटेके भीतर जो-जो वस्तुएँ हैं, वे सब पुष्पराग मणिसे ही बनी हुई हैं। राजन् ! रत्ननिर्मित परकोटोंका यह साधारण-सा परिचय है। प्रभो ! क्रमशः एक परकोटेसे दूसरा परकोटा तेजमें लाख गुना अधिक है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले इन्द्र आदि दिक्पाल अपना एक समाज बनाकर हाथोंमें उत्तम आयुध लिये हुए यहाँ निवास करते हैं।

इस मणिद्वीपकी पूर्व दिशामें ऊँचे शिखर-वाली अमरावतीपुरी है। भाँति-भाँतिके उपवन अमरावतीकी शोभा बढ़ाते हैं। वह पुरी देवराज इन्द्रकी है। स्वर्गमें जितनी शोभा है, उससे अधिक शोभा इस अमरावतीमें है। अनेकों इन्द्रके

सहस्त्रों गुणोंसे भी अधिक गुण वहाँ लक्षित होते हैं। वहाँके शतक्रतु प्रतापी इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर हाथमें वज्र लिये हुए देवसेनाके साथ शोभा पाते हैं। शची भी देवाङ्गनाओंसे सम्पन्न होकर वहाँ सुशोभित होती हैं।

राजन्! मणिद्वीपके अग्निकोणमें अग्निके समान प्रज्वलित वह्निपुरी है। 'स्वाहा' और 'स्वधा'—इन दो शक्तियोंके साथ 'अग्निदेव' वहाँ विराजते हैं। अपने वाहनों और भूषणोंसे सुशोभित होकर अपने गणोंसे युक्त हो उनका वहाँ निवास होता है। मणिद्वीपकी दक्षिण दिशामें यमराजपुरी है। राजन्! चित्रगुप्त आदि मन्त्रियोंके साथ अपने अनुचरोंसे घिरे हुए यमराज हाथमें विशाल दण्ड लेकर वहाँ विराजते हैं। सूर्यनन्दन महाभाग यमराज अपनी सहधर्मिणीके साथ वहाँ रहते हैं।

नैर्ऋत्यकोण राक्षसोंकी पुरी कही जाती है। यह पुरी मणिद्वीपके नैर्ऋत्यकोणमें है। हाथमें खड्ग धारण करनेवाले निर्ऋती अपनी शक्तिके साथ राक्षसोंसे घिरे हुए वहाँ विराजते हैं।

पश्चिम दिशामें पाश धारण करनेवाले प्रतापी वरुणराज विराजते हैं। महान् मत्स्य इनकी सवारीका काम देता है। मधुमय मधुपान करनेसे विह्वल होकर अपनी शक्ति और गणोंके साथ वहाँ ये विराजते हैं। उस लोकमें अपनी स्त्री वरुणानीके साथ वरुणदेवका वास होता है।

मणिद्वीपके वायव्यकोणमें वायुलोक है। वहाँ वायुदेव विराजते हैं। प्राणायाम करनेमें परम कुशल सिद्ध योगियोंसे घिरे हुए वायुदेव हाथमें ध्वजा लेकर शोभा पाते हैं। विशाल नेत्र-वाले इन वायुदेवकी सवारी मृग है। इनकी शक्ति साथ रहती है और मरुद्गण इन्हें घेरे रहते हैं।

राजन्! मणिद्वीपकी उत्तर दिशामें यक्षोंका महान् लोक है। वहाँ यक्षोंके स्वामी कुबेर अपनी ऋद्धि-वृद्धि प्रभृति शक्तियों तथा नवनिधियोंसे युक्त होकर विराजते हैं। मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूषण, मणिमाली और मणिधनुर्धर आदि नामोंसे प्रसिद्ध यक्षसेनाओंको साथ लिये हुए महाभाग कुबेर वहाँ विराजते हैं।

मणिद्वीपके ईशानकोणमें महान् रुद्रलोक कहा गया है। अमूल्य रत्नोंसे चित्रित इस लोकमें प्रधान देवता रुद्र निवास करते हैं। इनका क्रोधमय विग्रह प्रज्वलित नेत्रोंसे सम्पन्न है। ये पीठपर महान् तरकस बाँधे हुए हैं। तना हुआ धनुष इनके बायें हाथमें शोभा पाता है। अपने-जैसे ही असंख्य रुद्र हाथमें त्रिशूल और श्रेष्ठ धनुष लेकर इनका सहयोग कर रहे हैं। उन सहयोगी रुद्रोंका मुख बड़ा ही विकराल और विकृत है। वे मुखसे आग उगलते रहते हैं। कितनोंके दस हाथ हैं और कितने सौ हाथों और कितने हजार हाथोंसे सम्पन्न हैं। बहुत-से उग्रमूर्ति धारण करनेवाले रुद्र दस पैरों, दस गर्दनों और तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं। जो अन्तरिक्षलोकमें और भूलोकमें विचरण करनेवाले रुद्र प्रसिद्ध हैं तथा रुद्राध्यायमें जिनका वर्णन आता है, उन सभी रुद्रोंसे घिरे हुए भगवान् शंकर उस लोकमें विराजते हैं। करोड़ों रुद्राणियाँ और भद्रकाली आदि मातृकागण इनके साथ रहती हैं। ये विविध शक्तियोंसे सम्पन्न होकर डामरी आदि गणोंसे घिरे रहते हैं। राजन्! वीरभद्र आदिके साथ इनकी वहाँ विचित्र शोभा होती है। इनके गलेमें मुण्डोंकी माला, हाथमें सर्पका वलय, कंधेपर सर्पमय यज्ञोपवीत, शरीरपर बाघम्बर

और उत्तरीयके स्थानपर गजचर्म शोभा पाता है। ये अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें चिताकी राख लपेटे रहते हैं। प्रमथ आदि गण इनसे कभी अलग नहीं होते। इनके डमरूकी ध्वनिसे वहाँकी दिशाएँ बहरी हो जाती हैं। इनके अट्टहास और स्फुट शब्दोंने आकाशमें त्रास फैला रखा है। भूतोंके निवासभूत ये महान् रुद्र भूतोंकी टोलियोंसे सदा घिरे रहते हैं। ईशान दिशाके स्वामी होनेके कारण ही ये 'ईशान' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। (अध्याय १०)

☆

## मणिद्वीपका वर्णन चालू

व्यासजी कहते हैं—राजन्! इस पुष्परागनिर्मित परकोटेके आगे कुङ्कुमके समान अरुण विग्रहवाला पद्मरागमणिका एक परकोटा है। इसके मध्यकी भूमि भी ऐसे ही वर्णसे सम्पन्न है। यह प्राकार दस योजन लम्बा है। अनेक गोपुर और द्वार उसकी शोभा बढ़ाते हैं। राजन्! यहाँके सैकड़ों मण्डप पद्मराग मणियोंके स्तम्भोंसे युक्त हैं। इसके बीचकी भूमिपर अनेक आयुधोंको धारण करनेवाली रत्नमय भूषणोंसे भूषित वीरवेषवाली चौंसठ कलाएँ निवास करती हैं। उन कलाओंका एक-एक पृथक् लोक है। अपने-अपने लोककी वे अधीश्वरी हैं। वहाँकी जो कुछ भी वस्तुएँ हैं, वे सभी पद्मरागसे बनी हैं। अपने-अपने लोकके निवासियों तथा अपने-अपने वाहनोंसे युक्त ये कलाएँ अत्यन्त शोभा पाती हैं। जनमेजय! मैं तुम्हें इन कलाओंके नाम बतलाता हूँ, सुनो।

पिङ्गलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहति, माता, संध्या, परमसाध्वी हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुर-विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनङ्गा, अनङ्गमथना, अनङ्गमेखला, अनङ्गकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयङ्करी, शक्ति, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा और वागीशी—ये चौंसठ कलाएँ कही गयी हैं। इन सभी कलाओंके मुख प्रज्वलित जिह्वासे सम्पन्न हैं। ये अपने मुँहसे अग्नि उगला करती हैं। 'हम सभी जलको पीये डालती हैं; अग्निकी सत्ता हमारे सामने नहीं ठहर सकती। हम पवनको रोक देनेमें तत्पर हैं। अभी-अभी सारा जगत् हमारा ग्रास बन जायगा।'—इस प्रकारके शब्द उच्चारण करनेवाली वे कलाएँ क्रोधके आवेशमें आकर सदा आँखें लाल किये रहती हैं। उन सभी कलाओंके हाथोंमें धनुष और बाण शोभा पाते हैं। उन्हें युद्ध करनेकी अभिलाषा सदा लगी रहती है। उनके दाँतोंके कटकटानेसे वहाँकी दिशाएँ बहरी हुई रहती हैं। उन एक-एक कलाके पास सौ-सौ अक्षौहिणी सेना बतायी जाती हैं। अपने हाथमें सदा धनुष और बाण धारण करनेवाले वे सैनिक पिङ्गल-वर्णवाले उठे हुए केशोंसे सम्पन्न कहे गये हैं। एक-एक शक्तिमें इतनी सामर्थ्य है कि वे लाखों ब्रह्माण्डोंका संहार कर डालें। राजेन्द्र! ऐसी शक्तियोंकी सौ अक्षौहिणी सेनाएँ प्रत्येक

कलाके साथमें रहती हैं। इस जगत्‌में वे क्या नहीं कर सकतीं—यह कहना मेरी शक्तिसे बाहर है। मुने! इस पद्मरागनिर्मित परकोटेके भीतर युद्धकी सारी सामग्रियाँ सदा प्रस्तुत रहती हैं। यहाँके रथों, हाथियों, घोड़ों, शस्त्रों और गणोंकी तो गणना ही नहीं की जा सकती।

राजन्! इस पद्मरागमय परकोटेके आगे गोमेदरत्नसे बना हुआ दस योजनका एक महान् प्राकार है। इसकी कान्ति जपाकुसुम (अड़हुल)-के फूल-जैसी भासित होती है। इसके मध्यकी भूमि भी ऐसे ही वर्णसे सुशोभित है। गोमेदके प्राकारमें जैसा वर्णन मिलता है, ठीक वैसे ही भवन आदि भी इसमें हैं, पक्षी, श्रेष्ठ खंभे, वृक्ष, बावलियाँ और सरोवर—ये सब भी गोमेद-मणिसे ही निर्मित हैं। सबका विग्रह कुङ्कुमके समान अरुण है। इस प्राकारके मध्यभागमें बत्तीस प्रसिद्ध महान् शक्तियाँ या देवियाँ निवास करती हैं। इन देवियोंके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र शोभा पाते हैं और ये सभी गोमेदमणिसे अलङ्कृत हैं। एक-एक लोकमें निवास करनेवाली ये देवियाँ चारों ओर घिरकर रहती हैं। राजन्! इस गोमेदनिर्मित प्राकारमें पिशाचोंके समान भयंकर मुखवाली शक्तियाँ युद्धके लिये सजी-धजी तैयार रहती हैं। अपने लोकके रहनेवाले पुरुषोंद्वारा हाथमें चक्र धारण करनेवाली उन शक्तियोंकी नित्य पूजा होती है। क्रोधके कारण लाल आँखोंवाली वे देवियाँ कहती हैं—'इसे काटो, पचाओ, छेदो और भस्म कर डालो।' ये शब्द निरन्तर उनके मुखसे निकलते रहते हैं। उनके हृदयमें युद्धकी बड़ी लालसा रहती है। उन एक-एक महाशक्तिके साथ दस-दस अक्षौहिणी सेना कही गयी है। उनमें एक ही शक्ति लाख ब्रह्माण्डोंका संहार कर सकती हैं। राजन्! ऐसी विभूतियोंसे संयुक्त शक्तियोंकी महान् सेनाका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके रथों, गणों तथा वाहनोंकी गणना भी असम्भव है। भगवती जगदम्बाकी युद्धसम्बन्धी सभी सामग्रियाँ वहाँ विद्यमान रहती हैं। भगवतीकी ये अन्तरङ्ग सेना हैं। अब उनके पापनाशक नामोंका वर्णन करता हूँ। विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रा, वीर्या, प्रभा, आनन्दा, पोषिणी, ऋद्धिदा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भ-शुम्भमथिनी, महिषासुर-मर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्द्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका तथा ह्लादिनी—इस प्रकार ये बत्तीस शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ तो ब्रह्माण्डका तुरंत नाश हो जाय। कहीं किसी समय भी इनकी पराजय नहीं हो सकती।

अब इस गोमेदप्राकारके आगे हीरेसे बना हुआ दस योजन ऊँचा परकोटा है। उसमें अनेक गोपुर और दरवाजे बने हुए हैं। कपाट और साँकलसे वह बँधा रहता है। नवीन वृक्ष उसे प्रकाशित करते हैं। इस प्राकारके मध्यकी सारी भूमि हीरकमयी कही जाती है। बड़े-बड़े महल, गलियाँ, चौराहे, राजमार्ग, वृक्ष, लताएँ, शार्ङ्ग आदि पक्षी—ये सब भी हीरे-जैसे ही चमकते हैं। अनेक बावलियाँ, पोखरे और कुँओंसे वह युक्त है। वहाँ भगवती भुवनेश्वरीकी परिचारिकाएँ रहती हैं। एक-एक परिचारिकाकी सेवामें मदके अभिमानमें मस्त रहनेवाली नाना प्रकारकी सामग्री लिये लाखों दासियाँ रहती हैं।

भाँति-भाँतिके भूषण धारण करनेवाली बहुत-सी दासियाँ चित्रकारी बनाने, चरण दबाने और भूषण सजानेमें संलग्न रहती हैं। पुष्पोंके आभूषण बनानेवाली, पुष्प-शृंगारमें कुशल तथा नाना प्रकारके विलास-वैभवमें चतुर—इस प्रकारकी बहुत-सी श्रेष्ठ दासियाँ वहाँ विराजती हैं। युवावस्थासे सम्पन्न वे सभी देवियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने रहती हैं। देवीकी किञ्चिन्मात्र कृपासे ही तीनों लोकोंको तृणके समान समझती हैं। राजेन्द्र ! ये सभी शक्तियाँ देवीकी दूतिका कही गयी हैं। इनके नाम बतलाता हूँ, सुनो। अनङ्गरूपा, अनङ्गमदना, सुन्दरी, मदनातुरा, भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनङ्गवेदना और अनङ्गमेखला—इनके अङ्ग बिजलीके समान प्रकाशमान हैं। इनके कटिप्रान्त कई लड़ियोंसे युक्त किङ्किणियोंसे क्वणित होते रहते हैं। इनके चरणोंमें शब्दायमान नूपुर सुशोभित हैं। विद्युल्लताके समान चमकनेवाली ये सभी दूतियाँ वेगपूर्वक भीतर और बाहर जाते समय अत्यन्त शोभा पाती हैं। हाथमें बेंत लेकर सर्वत्र भ्रमण करनेवाली ये सम्पूर्ण कार्योंमें परम कुशल हैं। इस प्राकारकी भीतरी आठों दिशाओंमें तथा बाहर भाँति-भाँतिके वाहनोंसे सम्पन्न सुन्दर सदन इन दूतियोंके निवास करनेके लिये हैं।

इस हीरेके प्राकारसे आगे वैदूर्यमणिसे बना हुआ प्राकार है। गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाले इस प्राकारकी ऊँचाई दस योजन है। यहाँकी सारी भूमि, अनेक प्रकारके भवन, गलियाँ, चौराहे, राजमार्ग, वापी, कूप, तडाग और नदियोंके तट तथा बालुकाएँ—ये सब-के-सब वैदूर्यमणिके बने हुए हैं। राजेन्द्र ! इस प्राकारकी आठों दिशाओंमें सब ओर ब्राह्मी आदि देवियोंका समुदाय है। वहाँ ये देवियाँ अपने गणोंसे घिरी हुई विचित्र शोभा पाती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डकी मातृकाओंका ही यह समष्टिरूप कहा जाता है। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा—ये सप्त-मातृका नामसे प्रसिद्ध हैं। आठवीं मातृकाका नाम 'महालक्ष्मी' है। इस प्रकार मातृकाओंके नाम बतलाये गये हैं। जगत्का कल्याण करनेवाली तथा अपनी-अपनी सेनाओंसे समावृत इन मातृकाओंका आकार-प्रकार ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंके समान ही कहा जाता है। राजन् ! इस प्राकारके चारों महाद्वारोंपर भगवती महेश्वरीके वाहन अलंकारोंसे सज-धजकर प्रतिक्षण विराजमान रहते हैं। अनेक चिह्नोंसे शोभा पानेवाले विमान करोड़ोंकी संख्यामें हैं। उन विमानोंसे स्वयं महान् ध्वनि होती है और उनपर अनेक वाद्य भी रखे गये हैं।

वैदूर्यमणिके प्राकारसे आगे इन्द्रनील-मणिसे बना हुआ दस योजन ऊँचा एक उत्तम प्राकार कहा जाता है। उस प्राकारके मध्यकी भूमि, गलियाँ, राजमार्ग, भवन तथा वापी, कुएँ और तडागके घाट भी इन्द्रनीलमणिसे ही बने हैं। कहा जाता है कि वहाँ अनेक योजन विस्तृत एक कमल है। वह परम प्रकाशमान कमल ऐसा जान पड़ता है, मानो सोलह अरोंवाला कोई दूसरा सुदर्शनचक्र ही हो। उसपर सोलह शक्तियोंके विराजनेके लिये विविध स्थान बने हैं। वे सभी स्थान सम्पूर्ण सामग्रियों तथा समृद्धियोंसे सम्पन्न हैं। राजेन्द्र ! उन शक्तियोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो—कराली, विकराली,

उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति और आर्या—ये सोलह शक्तियाँ नीले मेघके समान वर्णसे सुशोभित हैं। सभी एक समान होकर अपने करकमलसे ढाल और तलवार धारण किये रहती हैं। इनके मनमें युद्धकी लालसा बनी रहती है। जगत्पर शासन करनेवाली भगवती श्रीदेवीकी ये सेनानी हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाली शक्तियोंकी ये स्वामिनी कही जाती हैं। भगवती जगदम्बाकी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेमें ये परम समर्थ हैं। अनेक शक्तियोंको साथ लेकर ये भाँति-भाँतिके स्थानोंपर विराजमान रहती हैं। सहस्र मुखवाले शेषनाग भी इनके पराक्रमका बखान करनेमें असमर्थ हैं।

राजन् ! इस इन्द्रनीलमणिके महान् प्राकारसे आगे एक बहुत विशाल मुक्ताप्राकार है। इसकी ऊँचाई दस योजन है। पूर्व प्राकारोंके समान ही इसके भी मध्यकी भूमि है। इसके मध्य भागमें एक आठ दलवाला कमल है। मुक्ता प्रभृति मणियोंवाला यह विस्तृत कमल केसरसे युक्त है। कमलके उन आठ दलोंपर भगवती भुवनेश्वरीके समान आकृतिवाली देवियाँ हाथमें आयुध लेकर सदा विराजमान रहती हैं। जगत्का समाचार सूचित करनेमें नियुक्त ये देवियाँ भगवतीकी आठ सचिवा कही गयी हैं। जगदम्बाके मनोभावको समझनेमें परम चतुर इन देवियोंका सारा आकार-प्रकार भगवतीके समान ही है। इन्हें सभी कार्योंकी कुशलता प्राप्त है। स्वामिनीका कार्य सम्पादन करनेमें ये सदा तत्पर रहती हैं। भगवती भुवनेश्वरीके अभिप्रायका ज्ञान रखनेवाली ये देवियाँ अत्यन्त सुन्दरी एवं परम प्रवीणा हैं। अनेक शक्तियाँ इनके साथ शोभा पाती हैं। अपनी ज्ञान-शक्तिके द्वारा जानकर प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाली प्राणियोंका समाचार बतलाना इनका प्रधान कार्य है। राजेन्द्र ! अब मैं इन देवियोंके नाम बतलाता हूँ, सुनो— अनङ्गकुसुमा, अनङ्ग-कुसुमातुरा, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा, शशिरेखा और गगनरेखा। इनका लाल विग्रह है और ये हाथोंमें पाश, अङ्कुश, वरद एवं अभयमुद्रा धारण किये रहती हैं। प्रतिक्षण विश्व-सम्बन्धी वार्ताका बोधन करना इनका प्रधान कार्य है।

इस मुक्ताप्राकारसे आगे महामरकतमणिसे बना हुआ एक दूसरा प्राकार है। दस योजन दीर्घ इस प्राकारको सभी प्राकारोंसे श्रेष्ठ कहा गया है। इसमें नाना प्रकारके सौभाग्यमय पदार्थ तथा भोग-सामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं। इसके मध्यकी भूमि और भवन भी महामरकतमणिके समान ही कहे जाते हैं। इस प्राकारमें भगवती भुवनेश्वरीका एक विशाल छः कोणवाला यन्त्र है। कोणपर रहनेवाले देवताओंके नाम बतलाता हूँ, सुनो। पूर्वकोणमें चतुर्मुख ब्रह्मा भगवती गायत्रीके साथ विराजते हैं। ये कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभयमुद्रादण्ड और श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए हैं। परम आदरणीया भगवती गायत्री भी उन्हीं आयुधोंको हाथमें लिये हुए हैं। वेद तथा विविध शास्त्र—सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजमान हैं। स्मृतियाँ और पुराण भी स्वरूप धारण करके वहाँ निवास करते हैं। जिन्हें ब्रह्मका विग्रह कहा जाता है तथा जो गायत्रीके विग्रह हैं, वे एवं व्याहृतियोंके विग्रह भी वहाँ नित्य निवास करते हैं।

नैर्ऋत्यकोणमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाली भगवती सावित्री विराजमान हैं। भगवान् विष्णु भी ऐसे ही वेषसे वहाँ विराजते हैं। मत्स्य और कूर्म आदि जो महाविष्णुके तथा जो गायत्रीके विग्रह हैं, उन सबके रहनेका स्थान वहाँ निश्चित है। फरसा, अक्षमाला, अभय और वरमुद्रा धारण करके महान् रुद्र इसके वायव्यकोणमें निवास करते हैं। वहाँ भगवती सरस्वती भी इसी वेषमें विराजती हैं। राजन्! दक्षिणामूर्ति आदि भेदसे जितने रुद्र तथा गौरी आदि भेदसे जितनी पार्वती हैं, वे सभी वहाँ निवास करती हैं। चौंसठ प्रकारके आगम तथा इनके अतिरिक्त जो अन्य आगमशास्त्र हैं, वे सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजते हैं। धनके स्वामी कुबेर अपने दोनों हाथोंमें रत्नमय कलश और मणिकरण्ड लिये अग्निकोणमें विराजमान हैं। अनेक प्रकारकी वीथियों और महालक्ष्मियोंसे ये युक्त हैं। अपने सद्‌गुणोंसे सम्पन्न कुबेर भगवती जगदम्बाके कोषकी रक्षा कर रहे हैं। वरुण-सम्बन्धी महान् कोणमें रतिके साथ कामदेव निवास करते हैं। कामदेवकी भुजाएँ पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणसे सदा सुसज्जित रहती हैं। मूर्तिधारी सम्पूर्ण शृंगारोंका वहाँ निवास होता है। ईशानकोणमें विघ्नोंपर शासन करनेवाले विघ्नविनाशक प्रतापी गणेशजी देवी पुष्टिके साथ पाश और अङ्कुश लिये हुए सदा विराजते हैं। राजेन्द्र! गणेशकी जितनी विभूतियाँ हैं, वे सभी महान् ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर वहाँ सुशोभित होती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्माप्रभृतिकी जितनी समष्टियाँ हैं, वे सभी 'ब्रह्मा' नामसे विख्यात हैं। इन सबके द्वारा भगवती जगदीश्वरीकी वहाँ सदा सेवा होती है।

इस महामरकत प्राकारसे आगे सौ योजन विस्तृत एक दूसरा प्रवालका प्राकार है। इसका विग्रह कुंकुमके समान अरुणवर्ण है। इसके मध्यकी भूमि तथा भवन भी पहले-जैसे हैं। इस प्राकारके मध्यभागमें पञ्चभूतोंके पाँच स्वामी निवास करते हैं। हल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका और महोच्छुष्मा—ये पञ्चभूतोंके समान ही उनकी पाँच शक्तियाँ हैं। पाश, अङ्कुश, वर और अभयमुद्रा धारण करनेवाली ये शक्तियाँ सदा अलंकृत रहती हैं। इनके प्रत्येक अङ्गमें नूतन तारुण्यका गर्व व्याप्त है। वेष-भूषामें ये भगवती जगदम्बाके समान ही हैं।

राजन्! इस प्रवालमय प्राकारके बाद नौ रत्नोंसे बना हुआ अनेक योजन विस्तृत एक बहुत बड़ा प्राकार है। आगमप्रसिद्ध 'आम्नाय' संज्ञक देवताओंके बहुत-से भव्य भवन वहाँ शोभा पाते हैं। वे सभी नौ रत्नोंसे निर्मित हैं। तड़ाग और पोखरे भी नौ रत्नमय ही हैं। राजन्! श्रीदेवीके जितने अवतार हैं, उन सबका निवासस्थान वहाँ निश्चित है। महाविद्याके सभी अवतार वहाँ सदा विराजते हैं। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सम्पूर्ण देवियाँ अपनी अङ्ग-रक्षक शक्तियों, भूषणों और वाहनोंके साथ वहाँ अनुपम शोभा पाती हैं। सात करोड़ महान् मन्त्रोंके देवताओंका भी वहाँ स्थान है।

इस नौ रत्नमय प्राकारसे आगे चिन्तामणि-निर्मित एक विशाल मन्दिर है। वहाँ रहनेवाली सभी वस्तुएँ चिन्तामणिसे बनी हुई हैं। सूर्य, चन्द्रमा एवं बिजलीके समान चमकनेवाले पत्थरोंसे बने हुए हजारों खम्भे उस भवनमें लगे हैं, जिनकी प्रभासे वहाँकी कोई वस्तु नेत्रोंके नीचे नहीं आती। (अध्याय ११)

## मणिद्वीपका वर्णन चालू

व्यासजी कहते हैं—राजन्! मध्यभागमें शोभा पानेवाला वही भवन भगवती जगदम्बाका है। उसमें चार मण्डप हैं। प्रत्येक मण्डप हजार-हजार स्तम्भोंसे युक्त है। पहला 'शृंगार-मण्डप', दूसरा 'मुक्तिमण्डप', तीसरा 'ज्ञान-मण्डप' और चौथा 'एकान्तमण्डप' नामसे विख्यात है। इन मण्डपोंमें अनेक प्रकारकी चाँदनियाँ तनी हैं। भाँति-भाँतिके धूपोंसे इन्हें सुवासित किया जाता है। ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान हैं। इन मण्डपोंके चारों ओर केसर, मल्लिका और कुन्दकी वाटिकाएँ कही जाती हैं। राजन्! इन वाटिकाओंमें पुष्कल गन्धवाले, मदोंसे परिपूर्ण तथा मदस्रावी असंख्य दिव्य भृङ्ग विराजमान हैं। चारों मण्डपोंके सभी ओर महापद्माटवी है। उसकी सीढ़ियाँ रत्नोंसे बनी हुई हैं। वह अमृतके समान मधुर रससे परिपूर्ण है। वहाँ भौंरे सदा गुंजार करते रहते हैं। कारण्ड नामके पक्षियों तथा हंसोंसे वह सदा भरी-पूरी रहती है। उसके चारों ओरके तट सुगन्धसे सुवासित रहते हैं। इस प्रकारकी असंख्य वाटिकाओंकी सुरम्य सुगन्धोंसे मणिद्वीप सुवासित है। पहला 'शृङ्गार-मण्डप' है, उसके मध्यभागमें एक दिव्य सिंहासनपर देवी विराजमान हैं। वहाँ सभासद-रूपसे रहनेवाले प्रधान देवता, देवाङ्गनाएँ तथा सम्पूर्ण अप्सराएँ विविध स्वरोंसे भगवती जगदम्बाके सामने गान करती हैं। दूसरा 'मुक्ति-मण्डप' है। उसके मध्यभागमें विराजनेवाली कल्याणमयी भगवती शिवा प्रत्येक ब्रह्माण्ड-निवासी भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती हैं। राजन्! तीसरे मण्डपका नाम 'ज्ञानमण्डप' है। भगवती वहाँ विराजमान होकर ज्ञानका उपदेश करती हैं। 'एकान्तमण्डपसंज्ञक' चौथे मण्डपमें भगवती जगदम्बा अनङ्गकुसुमा आदि सचिवा शक्तियोंके साथ बैठकर जगत्की रक्षाके विषयमें सदा परामर्श करती हैं।

राजन्! चिन्तामणिगृह देवीका प्रधान स्थान है। मूलप्रकृति भगवती भुवनेश्वरीके दस शक्तितत्त्व सोपानरूपसे वहाँ उपस्थित हैं। उनसे युक्त भगवतीका ऊँचा मञ्च महान् शोभा पाता है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सदाशिव—ये चारों देवता उस मञ्चके पाये हैं। सदाशिवको उस मञ्चका पटरा कहा जाता है। उस मञ्चके ऊपर महान् देवता परम आदरणीय भुवनेश्वर विराजित हैं। सृष्टिके आदिमें अपनी लीला करनेके लिये स्वयं भगवती ही दो रूपोंमें विराजमान हुईं। उस समय दाहिने भागसे वे भगवान् भुवनेश्वर और बायें भागसे सबलब्रह्मस्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरी प्रकट हुईं। भगवतीके अर्धाङ्गस्वरूप वे ही ये महान् ईश्वर हैं। कामदेवके मदका मर्दन करनेमें परम कुशल ये महेश्वर करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं। पाँच मुख और तीन नेत्रोंसे शोभा पानेवाले वे महेश्वर चिन्तामणिसे विभूषित तथा अपनी भुजाओंमें हरिण, अभय एवं वरमुद्रा तथा फरसा धारण किये हुए हैं। सबपर शासन करनेवाले उन महान् देवेश्वरकी आयु सोलह वर्ष-जैसी है। वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान हैं। शीतल ऐसे हैं मानो करोड़ों चन्द्रमा हों। शुद्ध स्फटिक मणिके समान देदीप्यमान हैं। उनके श्रीविग्रहसे शीतल प्रकाश फैलता है। उनके वामाङ्कमें भगवती भुवनेश्वरी विराजमान हैं। नौ प्रकारके रत्नोंसे बनी हुई दिव्य करधनी भगवतीके कटिभागकी छबि बढ़ा रही है। संतप्त सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे

सम्पन्न बाजूबंद देवीकी भुजाओंको सुशोभित किये हुए हैं, जिसमें सुवर्णके समान चमक है तथा जिसकी आकृति श्रीचक्र-जैसी है, ऐसा छतरीवाला कर्णफूल भगवती भुवनेश्वरीके मुखकमलको मनोहर बना रहा है। देवीके ललाटकी कान्तिके वैभवने अर्द्धचन्द्रमाकी शोभाको तुच्छ बना दिया है। बिम्बाफलको तिरस्कृत करनेवाले लाल होठों और मनोहर दाँतोंसे देवी परम सुशोभित हैं। कुङ्कुम और कस्तूरीके सुन्दर तिलकसे उनका मुखमण्डल असीम शोभा पा रहा है। वे चन्द्रमा और सूर्य-जैसी आकृतिवाली रत्ननिर्मित दिव्य चूडामणि मस्तकपर धारण किये हुए हैं। उदय-कालीन शुक्रताराके समान स्वच्छ नासिकाभूषण उनके प्रकाशमें परम साधन बना हुआ है। कण्ठके भूषणमें लटकती हुई मोतीकी स्वच्छ लड़ीसे देवी अतिशय शोभा पाती हैं। चन्दनके पङ्क, कर्पूर और कुङ्कुमसे उन्होंने स्तनोंको अलंकृत कर रखा है। विचित्र प्रकारके अद्भुत उनके कंधे शङ्खके समान सुन्दर जान पड़ते हैं। अनारके दानोंके सदृश स्वच्छ दाँतोंकी पंक्तिसे वे महान् शोभा पाती हैं। मस्तकपर अमूल्य रत्नोंका मुकुट धारण करनेसे वे अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं। देवीके मुखकमलपर अलकावली छायी है और उसपर मतवाले भ्रमर मँडरा रहे हैं। कलङ्ककी कालिमासे रहित चन्द्रमाकी भाँति उनका स्वच्छ मुखमण्डल है। गङ्गाके जलतरंग-जैसी सुन्दर नाभिसे वे शोभा पाती हैं। मणियोंसे जड़ित मुद्रिका उनकी अँगुलीको सुशोभित किये हुए है। कमलदलकी आकृति धारण करनेवाले तीन नेत्रोंसे वे अतिशय मनोहर जान पड़ती हैं। शानपर चढ़ाकर स्वच्छ किये हुए महाराग और पद्मरागमणिके समान उनकी उज्ज्वल कान्ति है। रत्ननिर्मित किङ्किणी और कङ्कणसे वे विचित्र शोभाशालिनी हो गयी हैं। मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें रहनेवाली अपार शोभा उनके चरणकमलसे उत्पन्न हुई है। रत्नमय विस्तृत अंगुलियोंके प्रभाजालसे उनके करकमल शोभा पा रहे हैं। उनकी कंचुकीमें गुँथे हुए विविध रत्न प्रकाश फैला रहे हैं। मल्लिकाकी सुगन्धिसे पूर्ण धम्मिल अर्थात् केशपाशकी मालापर भ्रमण करनेवाले भ्रमर भगवती भुवनेश्वरीके मुखको घेरे हुए हैं। अतिशय गोल, सघन एवं उच्च उरोजोंके भारसे भगवती शिवा कुछ अलसायी हुई जान पड़ती हैं। उनकी चार भुजाएँ पाश, अङ्कुश, वर और अभयमुद्रासे सुशोभित हैं। वे सम्पूर्ण शृंगारोंसे सम्पन्न, अत्यन्त सुकुमार अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधार-सर्वस्व तथा निष्कपट करुणाकी मूर्ति हैं। भगवतीने स्वयं अपने मधुर-स्वरसे वीणाके स्वरको तुच्छ कर दिया है। वे कोटि-कोटि सूर्यों और चन्द्रमाओंकी कान्तिको धारण किये हुए हैं। बहुत-सी सखियाँ, दासियाँ, देवस्त्रियाँ तथा अखिल देववृन्द भगवती भुवनेश्वरीके चारों ओर घेरकर बैठे हुए हैं। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे देवी संयुक्त हैं। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा—ये मूर्तिमती होकर भगवतीके पास विराजती हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और अमङ्गला— ये नौ पीठ-शक्तियाँ भगवती पराम्बाकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं। शङ्खनिधि और पद्मनिधि—ये निधियाँ भगवतीके पार्श्वभागमें विद्यमान हैं। नवरत्नवहा, काञ्चनस्रवा और सप्तधातुवहा संज्ञक नदियाँ इन उपर्युक्त निधियोंसे निकली हैं। राजेन्द्र ! ये सभी

नदियाँ सुधासिन्धुमें जा रही हैं। इस प्रकारकी विशिष्ट शक्तिशालिनी वे भगवती भुवनेश्वरी महाभाग भुवनेश्वरके वाम-अङ्कमें विराजती हैं। उन्हींके संगसे भुवनेश्वरको सर्वेश होनेकी योग्यता प्राप्त हुई है—इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।

राजन्! अब इस चिन्तामणिगृहका परिमाण सुनो। यह अति विशाल भवन हजार योजन लम्बा-चौड़ा कहा जाता है। इसके उत्तरभागमें बहुत-से सुदीर्घ प्राकार हैं। पूर्व प्राकारसे उत्तर प्राकार क्रमशः दुगुने परिमाणमें हैं—ऐसा कहा जाता है। भगवतीका यह मणिद्वीप भूमिपर न रहकर अन्तरिक्षलोकमें सुशोभित है। न तो प्रलयकालमें इसका नाश होता है और न सृष्टिके समयमें इसकी उत्पत्ति; किंतु कार्यवश पटकी भाँति निरन्तर इसमें संकोच एवं विकास होता रहता है। वहाँ जितने परकोटे हैं, उन सबकी शोभा उस चिन्तामणिगृहकी अवधिसे सापेक्ष है। वही भव्य भवन भगवती महामायाके विराजनेका स्थान कहा गया है। राजन्! जो-जो प्रत्येक ब्रह्माण्डवर्ती उपासक हैं तथा देवलोक, नागलोक एवं मनुष्यलोक आदि अन्य लोकोंमें जो श्रीदेवीके भक्त हैं, वे सभी यहीं आते हैं। जो देवीके क्षेत्रमें रहकर उनकी उपासनामें तत्पर रहते हुए प्राण त्यागते हैं, वे सब वहीं जाते हैं, जहाँ देवी महोत्सवा विराजती हैं। वहाँ घृतकुल्या, दुग्धकुल्या, दधिकुल्या, मधुस्त्रवा, अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा तथा आम्रेक्षुरसवहा आदि हजारों श्रेष्ठ नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वहाँ मनोरथरूपी फलवाले बहुत-से वृक्ष, बावलियाँ तथा कूप भी हैं। वे सभी यथेष्ट पान करनेयोग्य फल आदि प्रदान करते हैं। उनमें किंचिन्मात्र भी कमी नहीं है। मणिद्वीपमें रोगसे किसीका शरीर क्षीण नहीं होता है। कभी भी बुढ़ापा अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। वह दिव्य स्थान चिन्ता, मात्सर्य, काम और क्रोधसे रहित है। वहाँ रहनेवाले सभी युवावस्थासे सम्पन्न, स्त्रीयुक्त और हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी बने रहते हैं। वहाँ स्थित होकर भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी सतत उपासना करनेवाले व्यक्तियोंमें कितने सालोक्य मुक्ति और कितने सामीप्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। बहुत-से सारूप्य मुक्तिके भागी बन गये तथा कुछ श्रेष्ठ प्राणी सार्ष्टिताको प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके बहुत-से समाज मणिद्वीपमें रहकर भगवती जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। सात करोड़ महामन्त्र मूर्तिमान् होकर भगवतीकी आराधनामें तत्पर हैं। साम्यावस्थामें स्थित देवी शिवा कारणब्रह्मस्वरूपा हैं। उन्होंने मायामय सबल विग्रह धारण कर रखा है। सम्पूर्ण महाविद्याएँ सदा उनकी सेवामें संलग्न रहती हैं।

राजन्! इस प्रकार मैंने मणिद्वीपकी अतिशय महिमा बतला दी। करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और विद्युत् इस मणिद्वीपकी प्रभाके कोट्यंशकी भी तुलना करनेमें असमर्थ हैं। इस पुरीमें कहीं मूँगेके समान प्रकाश फैलता है और कुछ भाग मरकतमणिकी छबि धारण किये हुए हैं; कहीं बिजली और सूर्य-सदृश चमक है एवं कहीं जान पड़ता है मानो मध्याह्नकालिक प्रचण्ड सूर्य तप रहे हों। कहीं तो करोड़ों बिजलियोंके तेज धारण करनेवाली दिव्य कान्ति विस्तृत है, कहीं सिन्दूर और नीलेन्द्रमणिके समान छबि दृष्टिगोचर होती है। कुछ दिशाओंका भाग कान्तिमें दावानल तथा तपाये हुए सुवर्णके समान है, कहीं जान पड़ता

है कि चन्द्रकान्तमणि तथा सूर्यकान्तमणि पत्थरसे यह बना है। इस पुरीका शिखर रत्नमय है। प्राकार और गोपुर रत्नसे निर्मित है। रत्नमय वृक्षों, पत्रों और फूलोंसे यह भलीभाँति सुसज्जित है। इस प्रकाशमान पुरीमें दिव्य मोर सदा नाचते तथा कबूतर शब्द करते रहते हैं। कोकिलोंकी काकली और सुग्गोंकी मीठी वाणी इस पुरीको मुखरित किये रहती हैं। सुरम्य एवं रमणीय जलवाले लाखों सरोवरोंसे यह आवृत है। मणिद्वीपका मध्यभाग खिले हुए रत्नमय कमलोंसे अनुपम शोभा पाता है। उसके चारों ओरकी सौ योजन भूमि उत्तम गन्धोंसे सदा सुवासित रहती है। मन्दगतिसे प्रवाहित होकर वायु वृक्षोंको धीरे-धीरे स्पन्दित कर रहा है। चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योतिसे आकाश जगमगा रहा है। सर्वत्र बिखरे हुए रत्नोंकी प्रभासे सारी दिशाएँ अग्निकी भाँति चमक रही हैं। वृक्षोंकी मधुर सुगन्धोंसे युक्त सुखदायक पवन सदा पूर्णरूपसे प्रवाहित है। राजन्! दस हजार योजनतक चमकनेवाला मणिद्वीप धूपसे परम सुधूपित है। दर्पणयुक्त इस मणिद्वीपकी दिशाएँ रत्नमय जालियोंके छिद्रोंकी शोभा धारण करके सबके मनको मुग्ध कर रही हैं। राजन्! सम्पूर्ण ऐश्वर्यों, शृंगारों, सर्वज्ञताओं, तेजों, पराक्रमों, उत्तम गुणों और दयाओंकी इस मणिद्वीपपुरीमें ही समाप्ति हो जाती है। राजाके आनन्दसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जितने 'आनन्द' हैं, वे सब इस पुरीमें ही विद्यमान हैं।

राजन्! तुम्हारे सामने इस मणिद्वीपकी महिमाका वर्णन कर दिया। महादेवीका यह परम धाम सम्पूर्ण लोकोंसे अतिशय श्रेष्ठ है। इस मणिद्वीपके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि मरण-समयमें मणिद्वीपका स्मरण हो जाय तो प्राणी वहीं जाता है। आठवें अध्यायसे आरम्भ करके यहाँतकके विषयको 'अध्यायपञ्चक' कहते हैं। सावधान होकर नित्य इसका पाठ करनेवाला प्राणी भूत, प्रेत और पिशाच आदिकी बाधासे मुक्त हो जाता है। नवीन गृह बनवाने अथवा वास्तुदेवताकी पूजाके अवसरपर यत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये, इससे वहाँ कल्याण होता है।

(अध्याय १२)

☆

## जनमेजयके द्वारा अम्बायज्ञ तथा देवीभागवतकी महिमा

व्यासजी कहते हैं—निष्पाप राजन्! तुमने जो-जो पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया। आठवें स्कन्धसे आरम्भ करके यहाँतकका विषय महात्मा नारदके प्रति भगवान् नारायणके द्वारा कहा गया है, वह भी मैंने सुना दिया। भगवती महादेवीका यह पुराण परम अद्भुत है। इसे सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है; क्योंकि इससे वे अत्यन्त प्रसन्न हो जाती हैं। राजेन्द्र! अब तुम अपने तथा पिताके उद्धारके लिये देवीयज्ञ करो। पहले देवीके सर्वोत्तमोत्तम मन्त्रकी दीक्षा लेना तुम्हारे लिये परम कर्तव्य है। विधि-विधानके साथ ग्रहण किया हुआ यह मन्त्र मनुष्यके जन्मको सफल कर देता है।

सूतजी कहते हैं—शौनक आदि ऋषियो! उपर्युक्त बातें सुननेके पश्चात् महाराज जनमेजयने मुनिवरकी प्रार्थना करके उन्हींसे देवीके 'प्रणव' संज्ञक महामन्त्रकी विधि-विधानके साथ दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर उन्होंने नवरात्रके पुण्य अवसरपर धौम्य आदि मुनियोंको बुलाया और अम्बायज्ञ आरम्भ कर दिया; उसमें उन्होंने

खुले हाथों धन वितरण किया। इस उत्तम श्रीमद्देवीभावगत-महापुराणका ब्राह्मणोंके द्वारा पाठ कराया। भगवती श्रीदेवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये उनके सामने ही इस परम पावन पुराणका पारायण हुआ। असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको भी भोजन दिया गया तथा दीन और अनाथ भी भोजनसे तृप्त हुए। राजाने द्रव्य प्रदानसे उन सबको अत्यन्त संतुष्ट कर दिया। जिस समय महाराज जनमेजय यज्ञ समाप्त करके अपने स्थानपर विराजित हुए, उसी समय आकाशसे मुनिवर नारदजी वहाँ पधारे। प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी महामुनिकी विशाल वीणा बज रही थी। मुनिवर नारदजीको देखकर आश्चर्ययुक्त हो महाराज आसनसे उठ गये। उन्होंने आसन आदि उपचारोंसे मुनिकी पूजा की। तत्पश्चात् वे कुशल-प्रश्न करके पधारनेका कारण पूछने लगे।

राजाने पूछा—भगवन्! आप कहाँसे पधार रहे हैं? आपके लिये मैं क्या करूँ? आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये। भगवन्! आपके इस आगमनसे मैं सनाथ और कृतकृत्य हो गया।

राजा जनमेजयकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उनसे कहा—राजेन्द्र! आज मैंने देवलोकमें एक महान् अद्भुत दृश्य देखा है। वही तुम्हें बतानेके लिये परम विस्मित होकर मैं यहाँ तुम्हारे पास आ गया। राजन्! तुम्हारे पिताका अत्यन्त दिव्य शरीर हो गया है। बड़े-बड़े देवता और अप्सराएँ सब ओरसे भलीभाँति उनकी स्तुति कर रहे हैं। उत्तम रथपर बैठकर वे अब मणिद्वीपको पधार गये हैं। यह सब कुछ इस देवीभागवतके ही श्रवणका फल है। तुम्हारे द्वारा देवीयज्ञ सम्पन्न हुआ है, जिसके फलस्वरूप तुम्हारे पिताकी परम सद्‌गति हो गयी; अतः तुम धन्य और कृतकार्य हुए एवं तुम्हारा जीवन सफल हो गया। कुलको सुभूषित करनेवाले राजन्! तुमने अपने पिताका उद्धार किया है; इससे आज देवलोकमें तुम्हारी महान् कीर्तिका विस्तार हो रहा है।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! नारदजीके ये वचन सुनकर महाराज जनमेजयका हृदय प्रेमसे गद्‌गद हो गया। वे अद्भुतकर्मा व्यासजीके चरणकमलोंपर पड़ गये। उन्होंने कहा—'भगवन्! आपकी कृपासे ही मुझे इस कार्यमें सफलता प्राप्त हुई है। महामुने! नमस्कारके अतिरिक्त मैं आपके लिये कर ही क्या सकता हूँ। मुने! इसी प्रकार आपको मुझपर सदा ही कृपाभाव बनाये रखना चाहिये।' राजाके इस कथनको सुनकर व्यासजीने आशीर्वचनोंसे उनका अभिनन्दन किया; साथ ही उन भगवान् बादरायणिने राजासे यह मधुर वचन कहा—'राजन्! तुम सब कुछ परित्यागकर भगवतीके चरणकमलोंकी उपासना करो। सावधान होकर श्रीमद्देवीभागवतका पाठ करना तुम्हारा नित्यका नियम हो जाना चाहिये। भक्तिपूर्वक सदा अम्बायज्ञमें तत्पर हो जाओ। इसमें तुम्हें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। इसके फलस्वरूप संसाररूपी बन्धनसे तुम अनायास ही मुक्त हो जाओगे। पुराणों और वेदोंका यह समीचीन सार है। जनमेजय! इसका पाठ करनेसे पुरुषको वेदपाठ करनेके समान पुण्य प्राप्त होता है। अतएव श्रेष्ठ विद्वानोंको चाहिये कि वे यत्न-पूर्वक इसीका पारायण करें।

इस प्रकार महाराज जनमेजयसे कहकर मुनिवर व्यासजी पधार गये। साथ ही पवित्र अन्तःकरणवाले धौम्य आदि मुनि भी यथास्थान

सिधारे। उन मुनियोंके मुखसे श्रीमद्देवी-भागवतकी श्रेष्ठ प्रशंसाकी ही चर्चा होती रही। इसके बाद राजा जनमेजय मन-ही-मन अत्यन्त संतुष्ट होकर पृथ्वीका शासन करने लगे। वे निरन्तर श्रीमद्देवीभागवतको ही पढ़ते और सुनते थे।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! देवीके मुखकमलसे 'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्' यह जो आधा श्लोक निकला था, उसीका 'श्रीमद्देवीभागवत' नाम पड़ा। यह पुराण वेदके सिद्धान्तका बोधक है। वटके पत्रपर शयन करनेवाले विष्णुके प्रति देवीने इसका उपदेश किया था। इसीको सर्वप्रथम ब्रह्माजीने सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्ताररूपसे वर्णन किया। तत्पश्चात् वेदव्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ानेके लिये इसके सारभागको एकत्र करके अठारह हजार श्लोकोंमें इस पुराणकी रचना की। इसे बारह स्कन्धोंमें सजाया। उसी समय इसका नाम 'श्रीमद्देवी-भागवत' रख दिया। यह पुराण अब भी देवलोकमें वैसे ही विस्तृतरूपसे है। इसके समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यप्रद दूसरा कोई पुराण नहीं है। इसके एक-एक पदका अध्ययन करनेसे मनुष्यको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। पुराणका प्रवचन करनेवाले विद्वान्की वस्त्र और आभरण आदिसे पूजा करनी चाहिये। उनके प्रति व्यासबुद्धि रखकर नियमपूर्वक उनके मुखसे इस पुराणका श्रवण करे। मुने ! स्वयं अपने हाथसे लिखकर या लेखकद्वारा लिखवाकर भाद्रपदकी पूर्णिमाके पुण्य अवसरपर स्वर्णमय सिंहासनके साथ इस पुराणको पुराणवेत्ता विद्वान्के लिये दान कर दे। फिर दक्षिणाके लिये दूध देनेवाली, अलंकारोंसे युक्त, सोनेके हारसे विभूषित सवत्सा कपिला गौ व्यासको अर्पण करे। कथा समाप्त होनेपर जितने अध्याय हैं, उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराना आवश्यक है; उतनी ही सुवासिनियोंको, वटुकों एवं कुमारियोंसहित भोजन कराना चाहिये। उन सबमें देवीकी भावना करके वस्त्र और आभरण आदिसे उनकी पूजा करे। चन्दन, माला और पुष्प आदिसे सुपूजित करके उन्हें उत्तम पायसान्न भोजन कराये। इस पुराणके दानसे पृथ्वीदानका फल प्राप्त होता है। ऐसा पुण्यात्मा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें देवीके लोकमें चला जाता है।

जो इस श्रेष्ठ देवीभागवतका नित्य श्रवण करता है, उसके लिये कहीं कभी कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इस पुराण-श्रवणके प्रभावसे अपुत्री पुत्रवान्, धनार्थी धनवान् और विद्यार्थी विद्वान् हो जाता है। जगत्में उनकी कीर्ति फैल जाती है। वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या आदि दोषोंसे युक्त स्त्री इस पुराणके श्रवणसे दोषमुक्त हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। जिसके गृहमें भलीभाँति सुपूजित होकर यह पुराण स्थापित रहता है, उसके गृहको लक्ष्मी और सरस्वती कभी छोड़ नहीं सकतीं। वेताल, डाकिनी और राक्षस आदिकी दृष्टि उस गृहपर पड़ नहीं सकती। यदि ज्वरयुक्त मनुष्यका स्पर्श करके सावधानीके साथ इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहकारक ज्वर उसके मण्डलसे भाग जाता है। इस पुराणकी सौ आवृत्ति पाठ करनेसे क्षयरोग दूर हो जाता है। जो मनुष्य मनको एकाग्र करके संध्याके पश्चात् प्रत्येक संध्याके अवसरपर इस श्रीमद्देवीभागवतके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। शरद् ऋतुके नवरात्रमें उत्तम भक्ति-

पूर्वक इसका नित्य पाठ करना चाहिये। भगवती जगदम्बा उसपर प्रसन्न होकर उसकी इच्छासे अधिक फल प्रदान कर देती है। वैष्णव, शैव, सौर और गाणपत्य पुरुष अपने इष्टदेवकी शक्ति लक्ष्मी, पार्वती, छाया तथा ऋद्धि-सिद्धिको संतुष्ट करनेके लिये इस पुराणका पाठ करे। मुने ! वर्षमें आषाढ़, आश्विन, माघ और चैत्र—इन मासोंके शुक्लपक्षमें चार नवरात्र होते हैं। वैदिक पुरुषोंको चाहिये कि अपनी गायत्रीको प्रसन्न करनेके लिये इन चारों नवरात्रोंमें नित्य इस पुराणका पाठ करें। इस पुराणमें कहीं किसीका विरोध-वचन नहीं है। इसमें सबकी उपासनाका विषय आया है; क्योंकि भगवती जगदम्बा शक्तिरूपसे सभीके भीतर सदा विराजमान हैं। उस देवीमयी शक्तिको संतुष्ट करनेके लिये द्विजको नित्य इसका पारायण करना चाहिये। स्त्री और शूद्रको ब्राह्मणके मुखसे नित्य इसका श्रवण करना चाहिये; यही इसकी मर्यादा है। मैं तुम्हें वस्तुतः सार बात बतला रहा हूँ। द्विजवरो ! यह श्रीमद्देवीभागवत नामक महापुराण परम पवित्र एवं वेदोंका सारभाग है। इसके पढ़ने तथा सुननेपर पुरुष वेदपाठीके समान फलके भागी होते हैं, यह निश्चित है।

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्॥

'जो भगवती सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं, वे ही भगवती गायत्रीके नामसे विख्यात हैं। उन 'ह्रीं' मयी जगदम्बाको मैं प्रणाम करता हूँ। वे हमारी बुद्धिको सत्प्रेरणा प्रदान करनेकी कृपा करें।'

नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले तपोधन मुनियोंने पुराणवेत्ता परमश्रेष्ठ सूतजीका यह कथन सुनकर बड़े समारोहके साथ उनका सम्मान किया। सबका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा था। भगवती जगदम्बाके चरणकमलोंकी उपासना करके इस पुराणके प्रभावसे उनकी सारी लौकिक आकाङ्क्षाएँ शान्त हो गयी थीं। मुनियोंको कथा सुनानेमें सूतजीने जो परिश्रम किया था, उसे क्षमा करनेके लिये उन्होंने बार-बार उनसे प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'तात ! इस संसाररूपी समुद्रको पार करनेमें हमारे लिये आप ही नौका हुए हैं। यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सम्पूर्ण वेदोंका गुह्य विषय है। इसके प्रत्येक पदमें दुर्गमता छिपी हुई है। महाभाग सूतजीने प्रमुख मुनियोंके सम्मुख इसका श्रवण कराया। उस समय मुनियोंका समाज हाथ जोड़कर सूतजीके सामने उपस्थित था। मुनियोंने आशीर्वचनोंद्वारा उनके अभ्युदयकी चेष्टा की। इसके बाद भगवती जगदम्बाके चरणकमलोंमें भृङ्गकी भाँति सदा निवास करनेवाले सूतजी वहाँसे पधार गये। (अध्याय १३-१४)

☆

## बारहवाँ स्कन्ध समाप्त

═══ ★ ═══

### श्रीमद्देवीभागवत सम्पूर्ण

═══ ★ ═══

# जययुक्त श्रीदेवी-अष्टोत्तर-सहस्रनाम

(श्रीदेवीजीके १००८ नाम)

जय दुर्गे दुर्गतिनाशिनि जय।
जय मा कालविनाशिनि जय जय॥
जयति शैलपुत्री मा जय जय।
ब्रह्मचारिणी माता जय जय॥
जयति चन्द्रघण्टा मा जय जय।
जय कूष्माण्डा स्कन्दजननि जय॥
जय मा कात्यायिनी जयति जय।
जयति कालरात्री मा जय जय॥
जयति महागौरी देवी जय।
जयति सिद्धिदात्री मा जय जय॥
जय काली जय तारा जय जय।
जय जगजननि षोडशी जय जय॥
जय भुवनेश्वरि माता जय जय।
जयति छिन्नमस्ता मा जय जय॥
जयति भैरवी देवी जय जय।
जय जय धूमावती जयति जय॥
जय बगला मातंगी जय जय।
जयति जयति मा कमला जय जय॥
जयति महाकाली मा जय जय।
जयति महालक्ष्मी मा जय जय॥
जय मा महासरस्वति जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय॥
कौवेरी वारुणी जयति जय।
जय कच्छपी नारसिंही जय॥
जय मत्स्या कौमारी जय जय।
जय वैष्णवी वासवी जय जय॥
जय माधव-मनवासिनि जय जय।
कीर्ति, अकीर्ति, क्षमा करुणा जय॥
छाया, माया, तुष्टि, पुष्टि जय।
जयति कान्ति, जय भ्रान्ति, क्षान्ति जय॥
जयति बुद्धि, धृति, वृत्ति जयति जय।
जयति क्षुधा, तृष्णा, विद्या जय॥

जय निद्रा, तन्द्रा, अशान्ति जय।
जय लज्जा, सज्जा, श्रुति जय जय॥
जय स्मृति, परा-साधना जय जय।
जय श्रद्धा, मेधा, माला जय॥
जय श्री, भूमि, दया, मोदा जय।
मज्जा, वसा, त्वचा, नाडी जय॥
इच्छा, शक्ति, अशक्ति, शान्ति जय।
परा, वैखरी, पश्यन्ती जय॥
मध्या, सत्यासत्या जय जय।
वाणी, मधुरा, परुषा, जय जय॥
अष्टभुजा, दशभुजा जयति जय।
अष्टादश शुभ भुजा जयति जय॥
दुष्टदलनि बहुभुजा जयति जय।
चतुर्मुखा, बहुमुखा जयति जय॥
जय दशवक्त्रा, दशपादा जय।
जय त्रिंशल्लोचना जयति जय॥
द्विभुजा, चतुर्भुजा मा जय जय।
जय कदम्बमाला, चन्द्रा, जय॥
जय प्रद्युम्नजननि देवी जय।
जय क्षीरार्णवसुते जयति जय॥
दारिद्र्यार्णव-शोषिणि जय जय।
सम्पति वैभव-पोषिणि जय जय॥
दयामयी, सुतहितकारिणि जय।
पद्मावती, मालती जय जय॥
भीष्मकराजसुता, धनदा जय।
विरजा, रजा, सुशीला जय जय॥
सकल सम्पदारूपा जय जय।
सदाप्रसन्ना, शान्तिमयी जय॥
श्रीपतिप्रिये, पद्मलोचनि जय।
हरिहियराजिनि, कान्तिमयी जय॥
जयति गिरिसुता, हैमवती जय।
परमेशानि महेशानी जय॥

जय शंकर-मनमोदिनि जय जय।
जय हरचित्तविनोदिनि जय जय॥
दक्षयज्ञनाशिनि, नित्या जय।
दक्षसुता, शुचि सती जयति जय॥
पर्णा, नित्य अपर्णा जय जय।
पार्वती, परमोदारा जय॥
भव-भामिनि जय, भाविनि जय जय।
भवमोचनी, भवानी जय जय॥
जय श्वेताक्षसूत्रहस्ता जय।
वीणावादिनि, सुधास्त्रवा जय॥
शब्दब्रह्मस्वरूपिणि जय जय।
श्वेतपुष्पशोभिता जयति जय॥
श्वेताम्बरधारिणि, शुभ्रा जय।
जय कैकेयी, सुमित्रा जय जय॥
जय कौशल्या रामजननि जय।
जयति देवकी कृष्णजननि जय॥
जयति यशोदा नन्दगृहिणि जय।
अवनिसुता अघहारिणि जय जय॥
अग्निपरीक्षोत्तीर्णा जय जय।
रामविरह-अति-शीर्णा जय जय॥
रामभद्रप्रियभामिनि जय जय।
केवलपतिहित-सुखकामिनि जय॥
जनकराजनन्दिनी जयति जय।
मिथिला-अवधानन्दिनि जय जय॥
संसारार्णवतारिणि जय जय।
त्यागमयी जगतारिणि जय जय॥
रावणकुलविध्वंस-रता जय।
सतीशिरोमणि पतिव्रता जय॥
लवकुशजननि महाभागिनि जय।
राघवेन्द्रपद-अनुरागिनि जय॥
जयति रुक्मिणीदेवी जय जय।
जयति मित्रवृन्दा, भद्रा जय॥
जयति सत्यभामा, सत्या जय।
जाम्बवती, कालिन्दी जय जय॥
नाग्नजिती, लक्ष्मणा जयति जय।

अखिल विश्ववासिनि, विश्वा जय॥
अघगंजिनि, भवभंजिनि जय जय।
अजरा, जरा, स्पृहा, वाञ्छा जय॥
अजरामरा, महासुखदा जय।
अजिता, जिता, जयंती जय जय॥
अतितन्द्रा, घोरा तन्द्रा जय।
अतिभयङ्करा, मनोहरा जय॥
अतिसुन्दरी घोररूपा जय।
अतुलनीय सौन्दर्या जय जय॥
अतुलपराक्रमशालिनि जय जय।
अदिती, दिती, किरातिनि जय जय॥
अन्ता, नित्य अनन्ता जय जय।
अबला, बला, अमूल्या जय जय॥
अभयवरद-मुद्रा-धारिणि जय।
अभ्यन्तरा, बहिःस्था जय जय॥
अमला, जयति अनुपमा जय जय।
अमित विक्रमा, अपरा जय जय॥
अमृता, अतिशांकरी जयति जय।
आकर्षिणि, आवेशिनि जय जय॥
आदिस्वरूपा, अभया जय जय।
आन्वीक्षिकी, त्रयीवार्ता जय॥
इन्द्र-अग्नि-सुर-धारिणि जय जय।
ईज्या, पूज्या, पूजा जय जय॥
उग्रकान्ति, दीप्ताभा जय जय।
उग्रा, उग्रप्रभावति जय जय॥
उन्मत्ता, अतिज्ञानमयी जय।
ऋद्धि, वृद्धि, जय विमला जय जय॥
एका, नित्य सर्वरूपा जय।
ओजतेजपुञ्जा, तीक्ष्णा जय॥
ओजस्विनी, मनस्विनि जय जय।
कदली, केलिप्रिया, क्रीडा जय॥
कलमंजीर-रंजिनी जय जय।
कल्याणी, कल्याणमयी जय॥
कव्यरूपिणी, कुलिशाङ्गी जय।
कव्यस्था, कव्यहा जयति जय॥

केशवनुता, केतकी जय जय।
कस्तूरी-तिलका, कुमुदा जय॥
कस्तूरी-रसलिप्ता जय जय।
कामचारिणी, कीर्तिमती जय॥
कामधेनु-नन्दिनि आर्या जय।
कामाख्या, कुलकामिनि जय जय॥
कामेश्वरी, कामरूपा जय।
कालदायिनी कलसंस्था जय॥
काली, भद्रकालिका जय जय।
कुलध्येया, कौलिनी जयति जय॥
कूटस्था, व्याकृतरूपा जय।
क्रूरा, शूरा, शर्वा जय जय॥
कृपा, कृपामयि, कमनीया जय।
कैशोरी, कुलवती जयति जय॥
क्षमा, शान्ति संयुक्ता, जय जय।
खर्परधारिणि, दिगम्बरा जय॥
गदिनि, शूलिनी, अरिनाशिनि जय।
गन्धेश्वरी, गोपिका जय जय॥
गीता, त्रिपथा, सीमा जय जय।
गुणरहिता, निजगुणान्विता जय॥
घोरतमा, तमहारिणि जय जय।
चञ्चलाक्षिणी, परमा जय जय॥
चक्ररूपिणी, चक्रा जय जय।
चटुला, चारुहासिनी जय जय॥
चण्ड-मुण्डनाशिनि मा जय जय।
चण्डी जय, प्रचण्डिका जय जय॥
चतुर्वर्गदायिनि मा जय जय।
चन्द्रबाहुका, चन्द्रवती जय॥
चन्द्ररूपिणी, चर्वा जय जय।
चन्द्रा, चारुवेणि, चतुरा जय॥
चन्द्रानना, चन्द्रकान्ता जय।
चपला, चला, चञ्चला जय जय॥
चराचरेश्वरि, चरमा जय जय।
चित्ता, चिति, चिन्मयि, चित्रा जय॥

चिद्रूपा, चिरप्रज्ञा जय जय।
जगदम्बा जय, शक्तिमयी जय॥
जगद्धिता, जगपूज्या जय जय।
जगन्मयी, जितक्रोधा जय जय॥
जगविस्तारिणि पञ्चप्रकृति जय।
जय झिंझिका, डामरी जय जय॥
जन-जन क्लेशनिवारिणि जय जय।
जन-मन-रंजिनि जयति जना जय॥
जयरूपा, जगपालिनि जय जय।
जयंकरी, जयदा, जाया जय॥
जय अखिलेश्वरि, आनन्दा जय।
जय अणिमा, गरिमा, लघिमा जय॥
जय उत्पला, उत्पलाक्षी जय।
जय जय एकाक्षरा जयति जय॥
जय ऐंकारी, ॐकारी जय।
जय ऋतुमती, कुण्डनिलया जय॥
जय कमनीय गुणाकक्षा जय।
जय कल्याणी, काम्या जय जय॥
जय कुमारि, सधवा, विधवा जय।
जय कूटस्था, पराऽपरा जय॥
जय कौशिकी, अम्बिका जय जय।
जय खट्वाङ्गधारिणी जय जय॥
जय गर्वापहारिणी जय जय।
जय गायत्री, सावित्री जय॥
जय गीर्वाणी, गौराङ्गी जय।
जय गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री जय॥
जय गोदा, कुलतारिणि जय जय।
जय गोपालसुन्दरी जय जय॥
जय गोलोक-सुरभि, सुरमयि जय।
जय चम्पकवर्णा, चतुरा जय॥
जय चातका, चन्द-चूड़ा जय।
जय चेतना, अचेतनता जय॥
जय जय विन्ध्यनिवासिनि जय जय।
जय ज्येष्ठा, श्रेष्ठा, प्रेष्ठा जय॥

जय ज्वाला, जागृती, जयति जय।
जय डाकिनि, शाकिनि, शोषिणि जय॥
जय तामसी, आसुरी जय जय।
जयति अनंगा, औषधि जय जय॥
जयति असिद्धसाधिनी जय जय।
जयति इडा, पिंगला जयति जय॥
जयति सुषुम्णा, गान्धारी जय।
जयति उग्रतारा, तारिणि जय॥
जयति एकवीरा, एका जय।
जयति कपालिनि, करालिनी जय॥
जयति कामरहिता, कामिनि जय।
जय तुरीयपद-गामिनि जय जय॥
जयति ज्ञानबल-क्रियाशक्ति जय।
जयति तप्तकाञ्चनवर्णा जय॥
जयति दिव्य आभरणा जय जय।
जयति दुर्गतोद्धारिणि जय जय॥
जयति दुर्गमालोका जय जय।
जयति नन्दजा, नन्दा जय जय॥
जयति पाटलावती, प्रिया जय।
जयति भ्रामरी भ्रमरी जय जय॥
जयति माधवी, मन्दा जय जय।
जयति मृगावति, महोत्पला जय॥
जयति विश्वकामा, विपुला जय।
जयति वृत्रनाशिनि, वरदे जय॥
जयति व्याप्ति, अव्याप्ति, आप्ति जय।
जयति शाम्भवी, जयति शिवा जय॥
जयति सर्गरहिता, सुमना जय।
जयति हेमवर्णा, स्फटिका जय॥
जय दुरत्यया, दुर्गमगा जय।
दुर्गम आत्मस्वरूपिणि जय जय॥
जय दुर्गमिती, दुर्गमता जय।
जय दुर्गापद्विनिवारिणि जय॥
जय धारणा, धारिणी जय जय।
जय धीश्वरी, वेदगर्भा जय॥
जय नन्दिता, वन्दिता जय जय।

जय निर्गुणा, निरंजनि जय जय॥
जय प्रत्यक्षा, जय गुप्ता जय।
जय प्रवाल शोभा, फलिनी जय॥
जय पातालवासिनी जय जय।
जय प्रीता, प्रियवादिनि जय जय॥
जय बहुला, विपुला, विषया जय।
जय बायसी, बिराली जय जय॥
जय भीषण-भयवारिणि जय जय।
जय भुजंग-उरभाविनि जय जय॥
जय मोदिनि, मधुमालिनि जय जय।
जय भुजंग-वरशालिनि जय जय॥
जय भेरुण्डा, भिषम्बरा जय।
जय मणिद्वीपनिवासिनि जय जय॥
जय मधुमयि, मुकुन्दमोहिनि जय।
जय मधुरता, मेदिनी जय जय॥
जय मन्मथा, महाभागा जय।
जयति महामारी, महिमा जय॥
जय माण्डवी, महादेवी जय।
जय मृगनयनि, मञ्जुला जय जय॥
जय योगिनी, योगसिद्धा जय।
जय राक्षसी, दानवी जय जय॥
जय वत्सला, बालपोषिणि जय।
जय विश्वार्तिहारिणी जय जय॥
जय विश्वेश-वन्दनीया जय।
जयति शताक्षी, शाकम्भरि, जय॥
जय शुभचण्डी, शिवचण्डी जय।
जय शोभना लोकपावनि जय॥
जय षष्ठी, मंगलचण्डी जय।
जय संगीतकला-कुशला जय॥
जय संध्या, अघनाशिनि जय जय।
जय सच्चिदानन्दरूपा जय॥
जय सर्वाङ्गसुन्दरी जय जय।
जय सिंहिका, सत्यवादिनि जय॥
जय सौभाग्यशालिनी जय जय।
जय श्रींकारी, ह्रींकारी जय॥

जय हरप्रिया, हिमसुता जय जय।
जय हरिभक्तिप्रदायिनि जय जय॥
जय हरिप्रिया, जयति तुलसी जय।
जय हिरण्यवर्णा, हरिणी जय॥
जय कक्षा, क्लींकारी जय जय।
जरावर्जिता, जरा, जयति जय॥
जितेन्द्रिया, इन्द्रियरूपा जय।
जिह्वा, कुटिला, जम्भिनि जय जय॥
ज्योत्स्ना, ज्योति, जया, विजया जय।
ज्वलनि, ज्वालिनी, ज्वालाङ्गी जय॥
ज्वालामालिनि, धामनि जय जय।
ज्ञानानन्द-भैरवी जय जय॥
तपनि, तापनी, महारात्रि जय।
ताटंकिनी, तुषारा जय जय॥
तीव्रा, तीव्रवेगिनी जय जय।
त्रिगुणमयी, त्रिगुणातीता जय॥
त्रिपुरसुन्दरी, ललिता जय जय।
दण्डनीति, जय समरनीति जय॥
दानवदलनि, दुष्टमर्दिनि जय।
दिव्य वसनभूषणधारिणि जय॥
दीनवत्सला, दुखहारिणि जय।
दीना, हीनदरिद्रा जय जय॥
दुराशया, दुर्जया जयति जय।
दुर्गति, सुगति सुरेश्वरि जय जय॥
दुर्गमध्यान-भासिनी जय जय।
दुर्गमेश्वरी, दुर्गमाङ्गि जय॥
दुर्लभ मोक्षप्रदात्री जय जय।
दुर्लभ सिद्धिदायिनी जय जय॥
देवदेव-हरि-मनभावनि जय।
देवमयी, देवेशी जय जय॥
देवयानि, दमयन्ती जय जय।
देवहूति, द्रौपदी जयति जय॥
धनजन्मा धनदात्रि जयति जय।
धनमयि, द्रविणा, द्रवा जयति जय॥
धर्ममूर्ति, जय ज्योतिमूर्ति जय।
धर्म-साधु-दुख-भीति-हरा जय॥
धूम्राक्षी, क्षीणा, पीना जय।
नवनीरदघनश्यामा जय जय॥
नवरत्नाढ्या, निरवद्या जय।
नव-षद्रस-आधारा जय जय॥
नाना-ऋतुमयि, ऋतुजननी जय।
नानाभोगविलासिनि जय जय॥
नारायणी, दिव्यनारी जय।
नित्यकिशोरवयस्का जय जय॥
निर्गन्धा, बहुगन्धा जय जय।
अगुणा, सर्वगुणाधारा जय॥
निर्दोषा, सबदोषयुता जय।
निर्वर्णा, अनेकवर्णा जय॥
निर्बीजा जय, बीजकरी जय।
निष्कल-बिन्दु-नादरहिता जय॥
नीलाघना, सुकुल्या जय जय।
नीलाञ्जना, प्रभामयि जय जय॥
नीलाम्बरा, नीलकमला जय।
नृत्य-वाद्यरसिका, भूमा जय॥
पञ्चशिखा, पञ्चाङ्गी जय जय।
पद्मप्रिया, पद्मस्था जय जय॥
पयस्विनी, पृथुजंघा जय जय।
परंज्योति, पर-प्रीति नित्य जय॥
परम तपस्विनि, प्रमिला जय जय।
परमाह्लादकारिणी जय जय॥
परमेश्वरी, पाडला जय जय।
पर शृङ्गारवती, शोभा जय॥
पल्लवोदरी, प्रणवा जय जय।
प्राणवाहिनी अलंबुषा जय॥
पालिनि, जगसंवाहिनि जय जय।
पिंगलेश्वरी, प्रमदा जय जय॥
प्रियभाषिणी, पुरन्ध्रा जय जय।
पीताम्बरा, पीतकमला जय॥
पुण्यप्रजा, पुण्यदात्री जय।
पुण्यालया, सुपुण्या जय जय॥

पुरवासिनी, पुष्कला जय जय।
पुष्पगन्धिनी, पूषा जय जय॥
पुष्पभूषणा, पुष्पप्रिया जय।
प्रेमसुगम्या, विश्वजिता जय॥
प्रौढ़ा, अप्रौढ़ा, कन्या जय।
बला, बलाका, बेला जय जय॥
बालाकिनी, बिलाहारा जय।
बाला, तरुणि, वृद्धमाता जय॥
बुद्धिमयी, अति सरला जय जय।
ब्रह्मकला, विन्ध्येश्वरि जय जय॥
ब्रह्मस्वरूपा, विद्या जय जय।
ब्रह्माभेदस्वरूपिणि जय जय॥
भक्त-हृदय-तम-घन-हारिणि जय।
भक्तात्मा, भुवनानन्दा जय॥
भक्तानन्दकरी, वीरा जय।
भगात्मिका, भगमालिनि जय जय॥
भगरूपका भूतधात्री जय।
भगनीया, भवनस्था जय जय॥
भद्रकर्णिका, भद्रा जय जय।
भयप्रदा, भयहारिणि जय जय॥
भवक्लेशनाशिनि, धीरा जय।
भवभयहारिणि, सुखकारिणि जय॥
भवमोचनी, भवानी जय जय।
भव्या, भाव्या, भविता जय जय॥
भस्मावृता, भाविता जय जय।
भाग्यवती, भूतेशी जय जय॥
भानुभाषिणी, मधुजिह्वा जय।
भास्करकोटि, किरणमुक्ता जय॥
भीतिहरा जय, भयंकरी जय।
भीषणशब्दोच्चारिणि जय जय॥
भूति, विभूति, विभवरूपिणि जय।
भूरिदक्षिणा, भाषा जय जय॥
भोगमयी, अति त्यागमयी जय।
भोगशक्ति जय, भोक्तृशक्ति जय॥
मत्तानना, मादिनी जय जय।
मदनोन्मादिनि, संशोषिणि जय॥
मदोत्कटा, मुकुटेश्वरि जय जय।
मधुपा, मात्रा, मित्रा जय जय॥
मधुमालिनि, बलशालिनि जय जय।
मधुरभाषिणी, घोररवा जय॥
मधुर-रसमयी, मुद्रा जय जय।
मनरूपा जय, मनोरमा जय॥
मनहर-मधुर-निनादिनि जय जय।
मन्दस्मिता, अट्टहासिनि जय॥
महासिद्धि जय, सत्यवाक जय।
महिषासुरमर्दिनि मा जय जय॥
मुग्धा, मधुरालापिनि जय जय।
मुण्डमालिनी, चामुण्डा जय॥
मूलप्रकृति, अनादि जयति जय।
मूलाधारा, प्रकृतिमयी जय॥
मृदु-अङ्गी, वज्राङ्गी जय जय।
मृदुमंजीरपदा, रुचिरा जय॥
मृदुला, महामानवी जय जय।
मेघमालिनी, मैथिलि जय जय॥
युद्धनिवारिणि, निःशस्त्रा जय।
योगक्षेमसुवाहिनि जय जय॥
योगशक्ति जय, भोगशक्ति जय।
रक्तबीजनाशिनि मा जय जय॥
रक्ताम्बरा, रक्तदन्ता जय।
रक्ताम्बुजासना, रक्ता जय॥
रक्ताशना, रक्तवर्णा जय।
रजनी, अमा, पूर्णिमा जय जय॥
रतिप्रिया, रतिकरी, रीति जय।
रत्नवती, नरमुण्डप्रिया जय॥
रमाप्रकटकारिणि, राधा जय।
रमास्वरूपिणि, रमाप्रिया जय॥
रतनोल्लसतकुण्डला जय जय।
रुद्रचन्द्रिका, घोरचण्डि जय॥
रुद्रसुन्दरी, रतिप्रिया जय।
रुद्राणी, रम्भा, रमणा जय॥

रौद्रमुखी, विधुमुखी जयति जय।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा जय जय॥
ललिताम्बा, लीला, लतिका जय।
लीलावती, प्रेमललिता जय॥
विकटाक्षा, कपाटिका जय जय।
विकटानना, सुधाननि जय जय॥
विद्यापरा, महावाणी जय।
विद्युल्लता, कनकलतिका जय॥
विध्वंसिनि जगपालिनि जय जय।
विन्दुनादरूपिणी, कला जय॥
विन्दुमालिनी, पराशक्ति जय।
विमला, उत्कर्षिणि, वामा जय॥
विमुखा, सुमुखा, कुमुखा जय जय।
विश्वमूर्ति, विश्वेश्वरि जय जय॥
विश्व-प्राज्ञ-तैजसरूपा जय।
विश्वेश्वरी, विश्वजननी जय॥
विष्णुस्वरूपा, वसुन्धरा जय।
वेदमूर्ति जय, ज्ञानमूर्ति जय॥
शंखिनि, चक्रिणि, वज्रिणि जय जय।
शबल-ब्रह्मरूपिणि, अमरा जय॥
शब्दमयी, शब्दातीता जय।
शर्वाणी व्रजरानी जय जय॥
शशिशेखरा, शशाङ्कमुखी जय।
शस्त्रधारिणी, रणांगिणी जय॥
शालग्रामप्रिया, शान्ता जय।
शास्त्रमयी, सर्वास्त्रमयी जय॥
शुंभ-निशुंभ-विघातिनि जय जय।
शुद्धसत्त्वरूपा माता जय॥
शोभावती, शुभाचारा जय।
षट्चक्रा, कुण्डलिनी जय जय॥
संवित, चिति, नित्यानन्दा जय।
सकल-कलुष-कलिकालहरा जय॥
सत्-चित्-सुख-स्वरूपिणी जय जय।
सत्यवादिनी, सन्मार्गा जय॥
सत्या, सत्याधारा जय जय।
सत्ता, सत्यानन्दमयी जय॥
सर्गस्थिता, सर्गरूपा जय।
सर्वज्ञा, सर्वातीता जय॥
सर्वतापहारिणि जय मा जय।
सर्वमङ्गला, मनसा जय जय॥
सर्वबीजस्वरूपिणि जय जय।
सर्वसुमङ्गलरूपिणि जय जय॥
सर्वासुरनाशिनि, सत्या जय।
सर्वाह्लादनकारिणि जय जय॥
सर्वेश्वरी, सर्वजननी जय।
सर्वैश्वर्यप्रिया, शरभा जय॥
सामनीति जय, दामनीति जय।
साम्यावस्थात्मिका जयति जय॥
हंसवाहिनी, ह्रींरूपा जय।
हस्तिजिह्विका, प्राणवहा जय॥
हिंसा-क्रोधवर्जिता जय जय।
अति-विशुद्ध-अनुरागमना जय॥
कल्पद्रुमा, कुरंगाक्षी जय।
कारुण्यामृत-अम्बुधि जय जय॥
कुञ्जविहारिणि देवी जय जय।
कुन्दकुसुमदन्ता गोपी जय॥
कृष्ण-उरस्थल-वासिनि जय जय।
कृष्ण-जीवनाधारा जय जय॥
कृष्णप्रिया, कृष्णकान्ता जय।
कृष्णप्रेमकलंकिनि जय जय॥
कृष्णप्रेमतरंगिणि जय जय।
कृष्णप्रेमप्रदायिनि जय जय॥
कृष्णप्रेमरूपिणि मत्ता जय।
कृष्णप्रेमसागर-सफरी जय॥
कृष्णवन्दिता, कृष्णमयी जय।
कृष्णवक्षनितशायिनि जय जय॥
कृष्णानन्दप्रकाशिनि जय जय।
कृष्णाराध्या, कृष्णमुखी जय॥
कृष्णाह्लादिनि, कृष्णप्रिया जय।
कृष्णोन्मादिनि देवी जय जय॥

गुणसागरी, नागरी जय जय।
गोपी-उत्पादनि, मादिनि जय॥
गोपीकायव्यूहरूपा जय।
जय आह्लादिनि, सन्धिनि जय जय॥
जय कलिकलुषविनाशिनि जय जय।
जय कीर्तिदा-भानुनन्दिनि जय॥
जय गोकुलानन्ददायिनि जय।
जय गोपालवल्लभा जय जय॥
जय चन्द्रावलि, ललिनी जय जय।
जयति कामरहिता, रामा जय॥
जयति विशाखा, शीला जय जय।
जयति श्याम-मोहिनि, श्यामा जय॥
जय ललिता, नलिनाक्षी जय जय।
जय रससुधा, सुशीला जय जय॥
जय कृष्णाङ्गरता देवी जय।
दिव्यरूपसम्पन्ना जय जय॥
दुर्लभ महाभावरूपा जय।
नागर, मनोमोहिनी जय जय॥
नित्य-कृष्णसंजीवनि जय जय।
नित्य निकुञ्जेश्वरि, पूर्णा जय॥
प्रणय-राग-अनुरागमयी जय।
फुल्लपङ्कजानना जयति जय॥
प्रियवियोग-मनभग्ना जय जय।
श्यामसुधारसमग्ना जय जय॥
भुक्ति-मुक्ति-भ्रम भंगिनि जय जय।
भुक्ति-मुक्ति-सम्पादिनि जय जय॥
भुजमृणालिका, शुभा जयति जय।
मदनमोहिनी, मुख्या जय जय॥
मन्मथ-मन्मथ-मनमोहनि जय।
जय मुकुन्दमधुमाधुर्या जय॥
मुकुररञ्जिनी, मानिनि जय जय।
मुखरा, मौना, मानवती जय॥

जय रंगिणि, रसवृन्दा जय जय।
रसदायिनी रसमयी जय जय॥
रसमञ्जरी, रसज्ञा जय जय।
रासमण्डलाध्यक्षा जय जय॥
रासरसोन्मादी, रसिका जय।
रासविलासिनि, रासेश्वरि जय॥
रासोल्लासप्रमत्ता जय जय।
लावण्यामृत-रसनिधि जय जय॥
लीलामयि, लीलारंगी जय।
लोलाक्षी, ललिताङ्गी जय जय॥
वंशीवाद्यप्रिया देवी जय।
विश्वविमोहिनि, मुनिमोहनि जय॥
व्रजरसभाव-राज्य-भूपा जय।
व्रजलक्ष्मीवल्लवी जयति जय॥
व्रजेन्दिरा, विद्युद्-गौरी जय।
श्रीव्रजेन्द्रसुत-प्रिया जयति जय॥
श्यामप्रीतिसंलग्ना जय जय।
श्यामामृत-रसमग्ना जय जय॥
हरि-उल्लासिनि, हरिस्मृतिमयि जय।
हरिहियहारिणि, हरिरतिमयि जय॥
गंगा, यमुना, सरस्वती जय।
कृष्णा, सरयु, देविका जय जय॥
अलकनन्दिनी, अमला जय जय।
जय कौशिकी, चन्द्रभागा जय॥
जय गण्डकी, तापिनी जय जय।
जयति गोमती, गोदावरि जय॥
जयति वितस्ता, साभ्रमती जय।
जयति विपाशा, तोया जय जय॥
जय शतद्रु कावेरी जय जय।
वेत्रवती, नर्मदा जयति जय॥
स्नेहमयी, सौम्या मैया जय।
जय जननी जय जयति-जयति जय॥

★

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

## गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुराण, उपनिषद् आदि

| | |
|---|---|
| 28 | श्रीमद्भागवत-सुधासागर |
| 1490 | श्रीमद्भागवत-सुधासागर (विशिष्ट संस्करण) |
| 25 | श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें |
| 1535, 1536 | श्रीमद्भागवत-महापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण) |
| 26, 27 | श्रीमद्भागवत-महापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट |
| 29 | श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल, मोटा टाइप |
| 124 | श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल मझला |
| 1092 | भागवतस्तुति-संग्रह |
| 571 | श्रीकृष्णलीलाचिन्तन |
| 30 | श्रीप्रेम-सुधासागर |
| 31 | भागवत एकादश स्कन्ध |
| 728 | महाभारत—हिन्दी टीका-सहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध) |
| 38 | महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक |
| 1589 | ,, केवल हिन्दी |
| 637 | जैमिनीयाश्वमेध पर्व |
| 39, 511 | संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) |
| 44 | संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द |
| 1468 | सं० शिवपुराण (विशिष्ट संस्करण) |
| 789 | सं० शिवपुराण—मोटा टाइप |
| 1133 | सं० देवीभागवत |
| 48 | श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र |
| 1364 | श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी) |
| 1183 | सं० नारदपुराण |
| 279 | सं० स्कन्दपुराणांक |
| 539 | सं० मार्कण्डेयपुराण |
| 1111 | सं० ब्रह्मपुराण |
| 1113 | नरसिंहपुराणम्—सटीक |
| 1189 | सं० गरुडपुराण |
| 1362 | अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद) |
| 1361 | सं० श्रीवराहपुराण |
| 584 | सं० भविष्यपुराण |
| 1131 | कूर्मपुराण—सटीक |
| 631 | सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण |
| 1432 | श्रीवामन पुराण—सटीक |
| 557 | मत्स्यमहापुराण—सटीक |
| 1610 | देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठांक |
| 517 | गर्गसंहिता |
| 47 | पातंजलयोग-प्रदीप |
| 135 | पातंजलयोगदर्शन |
| 582 | छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य |
| 577 | बृहदारण्यकोपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य |
| 1421 | ईशादि नौ उपनिषद्-सानुवाद शांकरभाष्य |
| 66 | ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या |
| 67 | ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 68 | केनोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 578 | कठोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 69 | माण्डूक्योपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 513 | मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 70 | प्रश्नोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 71 | तैत्तिरीयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 72 | ऐतरेयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 73 | श्वेताश्वतरोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य |
| 65 | वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द |
| 639 | श्रीनारायणीयम्—सानुवाद |

ISBN 81-293-0070-2

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, फैक्स : २३३६९९७

GPPN 1133